

प्राणतोषिणी

श्रीरामतोषण भट्टाचार्य्येण

तन्त्रशास्त्रात् संकलय्य

विरचिता ।

वि, ए, उपाधिधारिणा पण्डितकुलपतिना

श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्येण

प्रकाशिता ।

द्वितीय संस्करणम् ।

कलिकातानगरे

कलिकाता यन्त्रे

मुद्रिता ।

१८८८

सूचीपत्रम् ।

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|------------------------------|------------|-----------------------------------|------------|
| मङ्गलाचरणम् | १ | तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाद्युत्पत्तिः | १४ |
| ग्रन्थ प्रशंसा | २ | शक्त्या सृष्ट्यादिकथनम् | १५ |
| ग्रन्थस्यानुक्रमणिका | ४ | शब्दब्रह्मोत्पत्तिकथनम् | १५ |
| ग्रन्थस्य कारणपरिच्छेदादि- | | तत्र ब्रह्मणो द्वैविध्यकथनम् | १६ |
| निरूपणम् | ४ | प्रथम परिच्छेद समाप्तिः | १७ |
| तन्त्रशास्त्र प्रशंसा | ६ | शब्दादीनां स्फोटवादः | १७ |
| गृहे तन्त्रशास्त्रस्थितिफलम् | ६ | षट्त्रिंशत् तत्त्वनिरूपणम् | २० |
| तन्त्रोक्त कर्मणो हानिनिषेधः | ६ | विष्णुशिवशक्तीनां पञ्चाश- | |
| न्योतिस्तन्त्रादौ अप्रशब्द- | | वृत्तयः | |
| निषेधः | ६ | कालोत्पत्तिकथनम् | २३ |
| तन्त्रशास्त्रे संशयनिषेधः | ६ | पञ्चाशत् विष्णुत्पत्तिः | २३ |
| तन्त्रशास्त्रे विश्वासफलम् | १० | पञ्चाशत् विष्णुशक्त्युत्पत्तिः | २३ |
| तन्त्रज्ञानफलम् | १० | पञ्चाशत् सद्गोत्पत्तिः | २३ |
| तन्त्रशास्त्राधिकारिकथनम् | १० | पञ्चाशत् सद्गोत्पत्त्युत्पत्तिः | २३ |
| कलौ तन्त्रोक्तकर्मणा फला- | | श्रीषधि प्रयोजनम् | |
| वाप्तिः | १० | परमब्रह्म निरूपणम् | |
| तन्त्रवक्तृ प्रशंसा | ११ | वर्णतो नानाशास्त्रोत्पत्तिः | |
| तन्त्रादिनिन्दाकरणे दोषः | ११ | राशिचक्रकथनम् | |
| तन्त्रश्रवणफलम् | ११ | राश्याधिपकथनम् | |
| शक्त्युत्पत्तिकथनम् | १२ | वर्णतो नक्षत्रसृष्टिकथनम् | |
| सृष्टिप्रकरणम् | १३ | अमावस्योत्पत्तिकथनम् | |
| तत्र त्रिविध विन्दुकथनम् | १३ | नक्षत्रवारादौ जपकथनम् | |
| त्रिविध शक्तिकथनञ्च | १३ | जन्मनक्षत्रे वृत्तछेदननिषेधः | |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|--------------------------------|------------|-------------------------------|------------|
| तत्त्वोच्चिकि शास्त्राध्ययने | | मन्त्रशोधनस्यावश्यकत्वम् | १२२ |
| शृगालयोनित्वप्राप्तिः | ११४ | मन्त्रशोधनप्रकारस्तत्र | |
| ज्ञानायादि तन्त्रप्रभेदाः | ११६ | महासुद्राकथनञ्च | १२८ |
| ज्ञानायादि भेदाः | ११७ | योनिमुद्रा कथनम् | १२८ |
| ज्ञानाभेदेनाचारभेदः | ११८ | योनिमुद्राकरणाशक्तौ भूत- | |
| ज्ञानाणां वेदाङ्गत्वाद- | | लिप्यादिना मन्त्रदोष- | |
| कथनम् | ११८ | शान्तिः | १२७ |
| न्येषां सामान्य शास्त्रत्वा- | | अस्या ऋष्यादिन्यासः | |
| दिकम् | ११८ | पङ्कज्यासादिकं ध्यान- | |
| त्र भागवत लक्षणम् | ११८ | कथनञ्च | १३८ |
| तृतीया वर्णभेदेभ्यः सर्व- | | अस्या ध्यानान्तरम् | १३८ |
| मन्त्रोत्पत्तिर्द्विविध मन्त्र | | भूतलिपेः प्राणप्रतिष्ठा | १३८ |
| जातिकथनञ्च | ११८ | भूतलिपिन्यासक्रमः | १३८ |
| योगविशेषसिद्ध्यर्थं मन्त्राणां | | अस्याः पूजाक्रमः | १४० |
| वैविध्यकथनं पुंनपुं- | | अस्याः प्रयोगफलञ्च | १४० |
| तृतीया भेदाश्च | ११८ | मन्त्राणां दोषशान्त्यर्थं दश- | |
| कीर्तने स्त्री नपुंसक मन्त्र | | संस्काराः वीजाभिधानञ्च | १४० |
| तृतीयादि कथनम् | १२० | दशम परिच्छेद प्रथम- | |
| प्रबुद्ध मन्त्राणां प्रयोग | | काण्ड समाप्तिः | १४१ |
| नेषधः | १२१ | द्वितीयकाण्डारम्भ उक्त | |
| तां सुप्त प्रबुद्ध लक्षणम् | १२१ | निर्णयश्च | १४१ |
| तम परिच्छेद समाप्तिः | १२१ | गर्भाधानादि संस्काराः | १४३ |
| ज्ञानाणां किञ्चादि दुष्टा- | | तत्रादौ ऋतुसंस्कारः | १४३ |
| स्थितिः | १२१ | गर्भाधानकथनम् | १४५ |
| ज्ञादिमन्त्राणां लक्ष- | | पुंसवन विधिः | १४६ |
| पानि | १२१ | पञ्चासृत विधिः | १४७ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-------------------------|------------|---------------------------|------------|
| सीमन्तोन्नयनविधिः | १४७ | सीमन्तोन्नयन प्रयोगः | १६१ |
| जातकर्म विधिः | १४७ | जातकर्म प्रयोगः | १६२ |
| तत्र कवित्वकारक प्रयो- | | नाम करण प्रयोगः | १६३ |
| गादिकम् | १४८ | निष्क्रमण प्रयोगः | १६३ |
| नामकरण विधिः | १४८ | अन्नप्राशन प्रयोगः | १६३ |
| निष्क्रमणविधिः | १५० | चूड़ाकरण प्रयोगः | १६४ |
| अन्नप्राशन विधिः | १५१ | अथोपनयन प्रयोगः | १६५ |
| चूड़ाकरणम् | १५१ | विवाह प्रयोगः | १६६ |
| अथोपनयनम् | १५२ | द्वितीय काण्ड प्रथम परि- | |
| तत्र यज्ञसूत्र परिमाणम् | १५३ | च्छेद समाप्तिः | १६८ |
| यज्ञसूत्र प्रमाणाज्ञाने | | द्वितीय परिच्छेदारम्भः | १६८ |
| दोषः | १५३ | गुरुप्रकरणं तत्रादौ गुरु- | |
| यज्ञसूत्रस्य कर्त्तनम् | १५३ | लक्षणादिकम् | १६८ |
| अस्य ग्रन्थि प्रकारः | १५३ | तत्र कुलीन गुरु प्रशंसा | |
| अस्य जीवन्त्यातः | १५४ | दिक्छ | १६८ |
| यज्ञोपवीतादि धारण | | गुरुनाथाचार्यशब्दानां | |
| विधिः | १५४ | व्युत्पत्ति कथनादिकम् | १७१ |
| दारपरिग्रहस्यावश्यकता | १५६ | गुरुविशेष लक्षणादिकश्च | १७२ |
| विवाह प्रकरणम् | १५६ | गुरु माहात्म्यम् | १७३ |
| धर्मपत्नी कामपत्नी- | | शास्त्रे गुरोरावश्यकत्वम् | १७४ |
| निर्णयः | १५८ | गुरुमन्त्रदेवतानामेक्यम् | १७५ |
| दशविध संस्कारप्रयोगः | १५८ | गुरुतुष्ट्यादि फलम् | १७५ |
| तत्रादौ गर्भाधानप्रयोगः | १५८ | गुरु शब्दोच्चारण फलम् | १७५ |
| पुंसवन प्रयोगः | १६० | गुरुशरीर ब्रह्मादीनां | |
| पञ्चासूत्र प्रयोगः | १६१ | स्थितिः | १७६ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|-------------------------------|------------|
| रुद्रप्री जगत्कृति- | | गुरुनिन्दा करणे दोषः | १८५ |
| कथनम् | १७६ | गुरौ मनुष्यज्ञाने दोषः | १८५ |
| वैभ्यो गुरोराधिक्यम् | १७६ | गुर्वपराधादि दोष कथनम् | १८५ |
| रूपूजने जगत् पूजन- | | गुरुसन्ततित्यागादि निषेधः | १८५ |
| कथनम् | १७६ | गुर्वादि मानन प्रकारः | १८५ |
| आशिञ्चादि भेदेन | | गुरुकुल पूजाक्रमः | १८५ |
| द्विविध गुरु कथनम् | १७६ | गुरुदर्शनदिन प्रशंसा | १८६ |
| रुभेद कथनम् | १७६ | गुरुप्रीती फलम् | १८७ |
| त्त्वज्ञ गुरुकरण वीजम् | १७७ | गुरुपूजां विना इष्टपूजायां | |
| रु विशेषादि कथनम् | १७७ | दोषः | १८७ |
| गौगुरु लक्षणम् | १७८ | गुर्वनुक्तक्रिया वैफल्य- | |
| रोः कर्त्तव्ये वर्जनीय- | | दिकम् | १८७ |
| कथनम् | १८० | गुरुप्रणामादि फलम् | १८७ |
| आज्यगुरु कथनम् | १८१ | गुरुगृहे कृतपुण्यकर्मफलम् | १८७ |
| आथ प्रकरणं शिष्यशब्द- | | गुरुपादरजो मस्तके | |
| द्युत्पत्तिश्च | १८१ | धारणफलम् | १८७ |
| आथ लक्षणम् | १८२ | गुरुपादोदकादि भक्षण- | |
| र्जनीय शिष्य लक्षणम् | १८३ | फलम् | १८८ |
| आथकर्त्तव्याकर्त्तव्यादि- | | मस्तके गुरुपादोदक धारण | |
| कथनम् | १८३ | फलम् | १८८ |
| गोराज्ञा लङ्घने दोषः | १८४ | गुरुपूजा तदन्नभक्षणादि | |
| वर्त्तनिष्ठकरणे दोषः | १८४ | फलञ्च | १८८ |
| रु शापजन्य दोषः | १८५ | गुरु गुरुपुत्राद्युच्छिष्टादि | |
| रुनिन्दा श्रवणे दोषः | १८५ | माहात्म्यम् | १८८ |
| स्य प्रतीकारः | १८५ | गुरुच्छिष्टाभक्षणे दोषः | १८८ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-------------------------------|------------|----------------------------------|------------|
| गुरुसमौपे महापौठादौ | | ज्ञान कारणम् | १८३ |
| च पादप्रक्षालनादि | | तत्र शुभ भूमि कथनम् | १८४ |
| निषेधः | १८६ | तत्र मध्यमाधम भूमि | |
| गुर्वज्ञया निषिद्धाचरणे | | कथनम् | १८४ |
| दोषाभावादि कथनम् | १८६ | तत्र शब्दोद्धारं विना | |
| गुर्वग्रे मानादि निषेधः | १८० | दोष कथनम् | १८५ |
| गुरुभक्ति फलम् | १८० | तत्र शुभफल कथनञ्च | १८५ |
| गुरुभक्त्यनुत्पत्तौ दोषः | १८१ | शब्दोद्धार धनोद्धारौ | १८५ |
| गुरु स्त्री पुत्रवन्धूनां दोष | | मण्डपादि पूर्वादि ज्ञान | |
| प्रकाश तद्द्रव्यभक्षण | | निर्णयः | २०५ |
| निषिद्धादिकम् | १८१ | तत्र शङ्कुनिखननप्रकारः | २०५ |
| गुरुशुश्रुषादिकम् | १८१ | तत्र शङ्कु सूत्रकरणं तत्र | |
| गुरुमित्र सहृदयादीनां | | शुभाशुभ कथनञ्च | २०५ |
| श्रवमानादि निषेधः | १८१ | मन्त्रप्रकरणम् | २०७ |
| द्वितीय परिच्छेद समाप्तिः | १८१ | तत्राज्ञापेणादिकम् | २०८ |
| दीक्षादौ गुरुशिष्य सम्भाषणं | | मण्डलकरण प्रकारः | २१० |
| नाडी नक्षत्र विचार- | | अस्त्रकार्यप्रकारादिकम् | २१५ |
| कथनम् | १८२ | द्वितीय परिच्छेद समाप्तिः | २१६ |
| दीक्षायां चक्रादि विचारः | १८३ | चतुर्थ परिच्छेदोद्धारश्च दीक्षा- | |
| तत्र मण्डपायं भूमि- | | प्रकारादिकम् | २१६ |
| परीक्षा | १८३ | दीक्षा साक्षात्तम् | २१७ |
| दीक्षायां वर्जनीय भूमि | | दीक्षाप्रकारः | २१७ |
| कथनम् | १८३ | दीक्षादौ निषेधः | २१७ |
| प्रदिकप्रवभूमि शुभाशुभम् | १८३ | दीक्षादौ निषेधः कथनम् | २१७ |
| तत्र ब्राह्मण्यादि भूमि | | तत्रैव मध्यमाधम फलम् | २१८ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|------------------------------|------------|
| दौक्षाया अकरणे दोषः | २१८ | अकारादि वर्णानां ध्याना- | |
| निन्द्यदौक्षा कथनम् | २१८ | दिकम् | २४६ |
| दौक्षाविधि कथनम् | २१८ | वर्णध्यानाकरणे दोषः | २५४ |
| नामक्रियाभेदेन दौक्षा- | | अकारादि वर्णानां पूजा- | |
| भेदाः | २१८ | मन्त्र कथनम् | २५४ |
| दौक्षायाः फलम् | २२० | दौक्षादौ पूजाक्रमश्च | २५५ |
| तत्राधिवास विधिः | २२८ | तत्र होमादि विधिः | २६० |
| अङ्गुरारोपण प्रयोगः | २३० | तत्रान्वादेशोधनविधिः | २६० |
| अधिवास प्रयोगः | २३२ | अभिषेक विधिः | २६१ |
| चतुर्थ परिच्छेद समाप्तिः | २३५ | अभिषेकफलश्च | २६२ |
| दौक्षाप्रकरणम् | २३५ | अभिषेकमन्त्राः | २६३ |
| तत्र वृद्धि आद्यादिकम् | २३५ | आणवी दौक्षाविधिः | २६८ |
| तत्र पञ्चदेव पूजा | २३६ | अस्या भेदकथनम् | २६८ |
| तत्र ग्रहपूजाग्रहमन्त्रो- | | तत्र वर्णमयी दौक्षा | २६८ |
| द्धारः | २३७ | क्रमदौक्षाविधिः | २६८ |
| ग्रहपूजाक्रमः | २३७ | कलौ तान्त्रिकसंस्कार- | |
| ग्रहपुरश्चरणादिकम् | २३८ | पत्र रत्न दौक्षादिकम् | २७१ |
| ग्रहदानादिकम् | २३८ | देवताभेदे मन्त्रलिखन- | |
| ग्रहकवचादिकम् | २३८ | प्रकारादिकम् | २७१ |
| दौक्षादौ तिथिपूजा | २४० | देवताविशेषे मन्त्रलिखन- | |
| तिथिध्यानमन्त्रपूजादिकम् | २४० | द्रव्य कथनम् | २७१ |
| पक्षध्यानादिकम् | २४३ | तत्तद्देवता प्राणप्रतिष्ठादि | |
| तिथिपक्षमन्त्रध्यानादिकम् | २४३ | कथनश्च | २७१ |
| तिथिपूजाद्यकरणे दोषः | २४५ | तत्र सूर्यार्घ्यदानं अर्घ्य- | |
| तिथिकवचादिकम् | २४५ | द्रव्य कथनश्च | २७१ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-----------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| प्रबल कलि कक्षणम् | २७३ | गुरुकवचान्तरं प्रणाम- | |
| कलिरूपशमप्रकारः | २७३ | स्तुत्यादिकं फलञ्च | २८८ |
| कलिगुण कथनादिकम् | २७४ | सद्गुरु प्रणाम मन्त्रः | २८२ |
| धर्मीकाण्ड समाप्तिः | २७६ | वाङ्मयगुरुचतुष्टय नम- | |
| अर्थकाण्डारम्भः | २७६ | स्कारादिकम् | २८२ |
| अस्थानुक्रमणिका | २७६ | स्त्रीगुरुध्यानस्तोत्रकवचा- | |
| आचारसप्तक कथनम् | २८० | दिकम् | २८३ |
| तत्र वेदाचारकथनम् | २८१ | स्त्रीगुरुगीता | २८६ |
| तत्र इष्टदेवताध्यानादिकम् | २८१ | गुरुपूजाविधिः | २८६ |
| गुरुध्यानाराधनादिकम् | २८१ | सप्तलोकगुरुपूजादिकम् | २८७ |
| मानसगन्धार्द्यैर्गुरुपूजा- | | सप्तलोकगुरुपूजामन्त्रो- | |
| दिकम् | २८२ | द्धारः | २८७ |
| गुरुपूजाक्रमः | २८३ | अस्य जपपूजादि फलम् | २८७ |
| गुरोर्ध्यानान्तरादिकम् | २८३ | गुरुपंक्तिचिन्तनम् | २८७ |
| सद्गुरुध्यानम् | २८४ | प्रथम परिच्छेद समाप्तिः | २८८ |
| कुलवृत्तलक्षणादिकम् | २८४ | कुण्डलिनोध्यानादिकम् | २८८ |
| कुलवृत्त प्रणामान्तरं गुरु- | | कुण्डलिनोस्तोत्रम् | ३०० |
| ध्यान गुरुपादुका मन्त्रो- | | अस्याः स्तोत्रान्तरम् | ३०२ |
| द्धार कथनम् | २८४ | कुण्डलिनीकवचम् | ३०२ |
| गुरुपादुकामाहात्म्यम् | २८४ | चौरगणेश मन्त्रः | ३०६ |
| गुरुपत्नीपूजामन्त्रादिकम् | २८५ | चौरगणेशमन्त्रं विना | |
| गुरुस्तोत्रम् | २८६ | पुराणपाठपूजा जपादौ | |
| पादुकापञ्चक स्तोत्रम् | २८७ | दोषकथनम् | ३०६ |
| गुरुस्तोत्रान्तरम् | २८८ | अजपामन्त्रजपकाल- | |
| गुरुकवचम् | २८८ | कथनम् | ३०७ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|------------------------------|------------|
| अस्य प्रयोगः | ३०७ | तत्र स्नानाकरणे दोष- | |
| अजपामन्त्रजपसमर्पणम् | ३०८ | कथनादिकम् | ३२३ |
| हंसस्य ध्यानम् | ३०८ | स्नानभेदादिकम् | ३२४ |
| जपरहस्यादिकम् | ३०८ | मसविधस्नानकथनम् | ३२४ |
| अहोरात्रमध्ये अजपा- | | तत्र वैष्णवाभ्यन्तर स्नानम् | ३२४ |
| जपसंख्या | ३०८ | शाक्ताभ्यन्तर स्नानम् | ३२४ |
| अजपा नामकारणञ्च | ३०८ | शैवाभ्यन्तर स्नानम् | ३२४ |
| मातृकावर्णस्वरूपकथनम् | ३१० | नित्यस्नानफलम् | ३२५ |
| अजपाया हेविध्यम् | ३१० | वाह्यस्नानफलम् | ३२५ |
| प्रातःकृत्यादिकम् | ३११ | शक्ते कुशविशेषः | ३२५ |
| देवपूजागृहसम्राजनादि- | | वैदिकस्नानानन्तरं तान्त्रिक- | |
| तत्फलञ्च | ३१२ | स्नानादिकं स्नान- | |
| देवगृहमार्जने विहित- | | सङ्कल्पादिकञ्च | ३२६ |
| निषिद्धद्रव्यं तत्फलञ्च | ३१२ | सङ्कल्पाकरणे दोषः | ३२७ |
| देवगृहोपलेपनादि फलञ्च | ३१३ | सङ्कल्पे विहित निषिद्ध- | |
| गुर्वादिनमस्कारविधिः | ३१३ | पात्रकथनम् | ३२७ |
| अद्वैत भावनादि कथनम् | ३१३ | मञ्जनप्रकारः | ३२७ |
| तत्र किन्नमस्तायाविशेषः | ३१४ | मृदालभनम् | ३२८ |
| दक्षिणकात्या विशेयः | ३१४ | सङ्केप तर्पणम् | ३२८ |
| अस्याः क्रमस्तवकथनं | | परखाते स्नाने विशेषः | ३२८ |
| फलञ्च | ३१६ | अयनादौ तेलस्नाननिषेधः | ३२८ |
| गुह्यकात्याःक्रमस्तोत्रम् | ३१८ | गात्रमार्जनप्रकारादिकम् | ३२८ |
| विपुरायाः क्रमस्तोत्रम् | ३२१ | गङ्गास्नानं विना महा- | |
| द्वितीय परिच्छेद समाप्तिः | ३२३ | विद्यापूजने दोषकथनम् | ३२८ |
| स्नानविधिः | ३२३ | गङ्गाया ध्यानमन्त्रादिकम् | ३३० |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-----------------------------|------------|----------------------------|------------|
| गङ्गाक्षितम् | ३३० | स्वाधिष्ठानतीर्थ मणिपुर- | |
| गङ्गानाममाहात्म्यम् | ३३१ | तीर्थकथनञ्च | ३३४ |
| गङ्गाजलमाहात्म्यम् | ३३१ | अनाहततीर्थ विशुद्धस्थ | |
| सगङ्गदेश प्राशस्त्यम् | ३३१ | तीर्थञ्च | ३३४ |
| गङ्गायां प्राणत्यागफलम् | ३३१ | आज्ञास्थतीर्थम् | ३३४ |
| गङ्गायात्रिकस्य पथि मृत्यु- | | मानसस्नानफलञ्च | ३३५ |
| फलम् | ३३१ | जले शुष्कवाससा स्थले | |
| गङ्गातीरे मृत्यु फलम् | ३३१ | चाद्र वाससा देव पैत्र- | |
| गङ्गायां मृतास्थिनिलेप- | | कर्मनिषेधः | ३३५ |
| फलम् | ३३१ | परिधेय वस्त्रपरिमाणम् | ३३५ |
| गङ्गाजले मरणफलम् | ३३१ | ब्राह्मणादीनां परिधेय- | |
| गङ्गायाश्चतुहस्तमध्ये | | वस्त्रनिर्णयः | ३३५ |
| पिण्डदानफलम् | ३३२ | वस्त्रपरिधानप्रकारः | ३३५ |
| गङ्गायां तर्पणफलम् | ३३२ | कर्मविशेषे वस्त्रविशेषः | ३३५ |
| गङ्गायां पर्युदस्त काला- | | नीलादिवस्त्रं परिधाय | |
| भावः | ३३२ | कर्मकरणे दोषः | ३३६ |
| तत्र कालभेदाचरणे दोषः | ३३२ | कलौ कार्पासादि वस्त्र- | |
| गङ्गायां परद्रव्यहरणे दोषः | ३३२ | प्रशंसा | ३३६ |
| गङ्गादा प्रतियहे दोषः | ३३२ | सूचीविद्धादिवस्त्रेण वैष- | |
| तत्रात्माभिषेकमन्त्रादिकम् | ३३२ | कर्म निषेधः | ३३६ |
| मानसस्नानम् | ३३३ | विजातीय वस्त्र क्रमिज- | |
| मनसो बन्ध मोक्षकारण- | | वस्त्रेण स्नाननिषेधः | ३३६ |
| त्वम् | ३३३ | क्रमिज श्वेतवस्त्र प्रशंसा | ३३६ |
| मानसप्रयागकथनम् | ३३३ | उत्तरीय वस्त्रप्रमाणम् | ३३६ |
| मूलाधार तीर्थः | ३३४ | यज्ञोपवीतमार्जनद्रव्याणि | ३३६ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|-------------------------|------------|
| यज्ञोपवीतमार्जनप्रकारः | ३३६ | गायत्री षडङ्गन्यासा- | |
| कण्ठादौ यज्ञोपवीतकरण- | | दिकम् | ३६१ |
| दोषः | ३३७ | गायत्री ध्यानादिकम् | ३६१ |
| तिलकप्रकरणं फलञ्च | ३३७ | अस्याः पूजाविधिः | ३६२ |
| तत्र गोपोचन्दन तुलसी- | | गायत्रीकवचम् | ३६४ |
| मूलमृत्तिकादि माहा- | | गायत्रीपुरश्चरणम् | ३६८ |
| त्मादिकम् | ३३७ | अस्याः काम्यकर्मादिकम् | ३६८ |
| त्रिपुण्ड्रधारणविधि फलञ्च | ३४५ | तान्त्रिक गायत्री पुर- | |
| कालाग्नि रुद्रोपनिषत् | ३४५ | श्चरणञ्च | ३६८ |
| त्रिपुण्ड्राकरणे निन्दा | ३४८ | अस्या ऋथादिकम् | ३६८ |
| सच्छिद्रत्रिपुण्ड्र करण- | | अस्या ध्यानादिकम् | ३६८ |
| निन्दा | ३४८ | अस्याः पूजाक्रमः | ३६८ |
| शक्तितिलकविधिः | ३५० | आसनकथनादिकं फलञ्च | ३७१ |
| उत्तौय परिच्छेद समाप्तिः | ३५१ | सिद्धासनम् | ३७४ |
| सन्ध्याविधिः | ३५१ | पद्मासनम् | ३७४ |
| तत्र योगीनां सन्ध्याविधिः | ३५४ | पूजाद्रथस्थापन क्रमः | ३७४ |
| एषां तर्पणविधिः | ३५५ | तत्रार्थादिपात्रनिर्णयः | ३७५ |
| योगीनामन्तर्यागरूपसूर्य- | | पाद्यपात्र लक्षणम् | ३७५ |
| पूजा | ३५५ | पाद्यप्रक्षेपणीय पात्र- | |
| कौलानां सन्ध्याविधिः | ३५५ | लक्षणम् | ३७५ |
| गैदिकापोमार्जनप्रकारः | ३५५ | अर्घ्य पात्र लक्षणम् | ३७६ |
| गायत्राराधनादिकम् | ३५५ | आचमनीय पात्रलक्षणम् | ३७६ |
| गायत्रीयन्त्रप्रकारादिकम् | ३५६ | गन्धपात्र लक्षणम् | ३७६ |
| गायत्रा ऋथादिन्यासा- | | धूपपात्र लक्षणम् | ३७७ |
| दिकम् | ३६० | दीपपात्र लक्षणम् | ३७७ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|--------------------------|------------|------------------------------|------------|
| दोपमाला लक्षणम् | ३७७ | शक्तिविषये पुष्पविशेषा- | |
| दोपाधार लक्षणम् | ३७८ | दिकम् | ३८६ |
| नोराजनपात्र लक्षणम् | ३७८ | तत्र करवीरादि माहात्म्यं | |
| घण्टा लक्षणम् | ३७८ | फलम् | ३८७ |
| नैवेद्यपात्र लक्षणम् | ३७९ | पुष्पविशेष दानेन ब्रह्म- | |
| पानीयपात्र लक्षणम् | ३७९ | हत्यादि पापप्रायश्चित्त- | |
| ताम्बूलपात्र लक्षणम् | ३७९ | कथनम् | ३८७ |
| तृतीय काण्डस्य चतुर्थे | | तत्र वृक्षस्य पुष्पदाननिषे- | |
| परिच्छेद समाप्तिः | ३८० | धादिकम् | ४०१ |
| भूतशुद्धि प्रकरणम् | ३८० | मध्याह्नस्नानानन्तरं पुष्प- | |
| अस्या अकरणे दोषः | ३८४ | च्छेदननिषेधः | ४०१ |
| प्राणायामः | ३८८ | पुष्पमाला | ४०१ |
| पूजाधार निरूपणम् | ३८८ | मालत्यादि पुष्पमालया | |
| प्रतिमानिकटे यन्त्रकरण | | कार्तिके विष्णुपूजनफलम् | ४०१ |
| निषेधः | ३८८ | नासविशेषे धातुफलदि- | |
| पार्थिव शिवलिङ्गे शक्ति- | | दानफलम् | ४०१ |
| पूजा निषेधः | ३८९ | भक्तियोगेन सर्वपुष्पैः पूजा- | |
| स्फाटिकलिङ्गे शक्तिपूजा- | | कथनम् | ४०२ |
| फलम् | ३८९ | जवापुष्पादिभिर्देवपूजन- | |
| शक्तेः साकारत्वादिकारणम् | ३८९ | फलम् | ४०२ |
| प्राणप्रतिष्ठा | ३८९ | चातुर्मास्ये लक्षसंख्यक | |
| तत्रासनाद्युपचाराः | ३९४ | मालतोपुष्पेण विष्णु- | |
| तत्र गन्धाष्टकप्रमाणा- | | पूजनफलम् | ४०२ |
| दिकम् | ३९५ | वर्ज्यपुष्प कथनम् | ४०२ |
| अथ पुष्पम् | ३९६ | कालविशेषे प्रशस्तपुष्पाणि | ४०३ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-------------------------------|------------|----------------------------|------------|
| पुण्याभावेन तत्पत्रेणापि | | देवपूजादौ विहिताविहित- | |
| देवतार्चनकथनम् | ४०३ | द्रव्यादिकम् | ४०७ |
| गुप्तपूजा पुष्पकथनम् | ४०३ | हविष्यादौ भक्ष्याभक्ष्य- | |
| दिवारात्रीभेदे पुष्पविशे- | | द्रव्यादिकथनम् | ४१३ |
| षेण पूजनकथनम् | ४०३ | तृतीय काण्ड समाप्तिः | ४१५ |
| देवालयजपुष्पेण देवपूजने | | चतुर्थकाण्डारम्भस्तस्यानु- | |
| दोषकथनम् | ४०३ | क्रमणिका च | ४१६ |
| देवताविशेषे पुष्पविशेष | | मन्त्रचेतन्यं फलञ्च | ४१८ |
| वर्जनादिकथनम् | ४०३ | मन्त्रार्थकथनम् | ४१८ |
| विल्वपत्रादीनां पर्युषित- | | कुलुकादिकथनम् | ४२१ |
| दोषाभावकथनम् | ४०३ | कुलुकाया अज्ञाने दोषः | ४२२ |
| धूपशब्दव्युत्पत्तिकथनम् | ४०४ | सेतुकथनम् अस्याज्ञाने | |
| धूपप्रमाणं दानफलञ्च | ४०४ | दोषकथनञ्च | ४२२ |
| दोपशब्दव्युत्पत्तिस्तत्त- | | महासेतुकथनं तत्फलञ्च | ४२२ |
| क्षणञ्च | ४०४ | निर्वाणकथनम् | ४२२ |
| देवताचर्नादौ वस्त्रालङ्का- | | अस्याज्ञाने दोषः | ४२२ |
| रादि प्रमाणम् | ४०४ | जपादौ मुखशोधनम् | ४२२ |
| नैवेद्यशब्दव्युत्पत्तिस्तत्त- | | अस्याकरणे दोषश्च | ४२३ |
| क्षणादिकञ्च | ४०४ | प्राणयोगप्रकरणम् | ४२७ |
| ताम्बूलक्षणादिकम् | ४०४ | दीपनकथनं तत्फलञ्च | ४२४ |
| निषिद्धचूर्णपर्णादिकम् | ४०४ | जपक्रमस्तत्फलञ्च | ४२४ |
| प्रणामप्रकरणं फलञ्च | ४०४ | पुरश्चरणविशेषः | ४२५ |
| तत्र प्रदक्षिणप्रणामादिकं | | वारपुरश्चरणम् | ४२५ |
| तत्तत्क्षणादिकं फलञ्च | ४०५ | तिथिपुरश्चरणम् | ४२६ |
| निर्माल्यकालनिरूपणा- | | मासनियतकार्याणि वा- | |
| दिकम् | ४०७ | रादिपुरश्चरण सङ्ख्याय | ४२६ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-----------------------------|------------|----------------------------|------------|
| एषां दक्षिणा वाक्यादिकम् | ४२७ | गुरुणा सहैकत्र शयनोप- | |
| तर्पणाभिषेकादिप्रयोगाः | ४२७ | वेगनादी दोषः | ४५४ |
| थोदुर्गाया रहस्य पुर | | कौलानामेकपात्रे पानादौ | |
| श्चरणम् | ४२८ | दोष प्रायश्चित्तादिकम् | ४५३ |
| तत्र नञ्चतपरश्चरणं फलञ्च | ४२८ | मन्त्रमात्रादिगमन प्राय- | |
| करणयोगपुरश्चणादिकं | | श्चित्तादिकम् | ४५३ |
| फलञ्च | ४३० | अनिवेद्यभोजनप्रायश्चित्तम् | ४५४ |
| संक्रान्तिपुरश्चरणं तत्- | | अनस्थि प्राणिपक्षिमर्प- | |
| फलञ्च | ४३० | मार्जारादीनां बधप्राय- | |
| यज्ञगपुरश्चरणं तत्फलञ्च | ४३० | श्चित्तादिकम् | ४५४ |
| मालाप्रकरणं तत्फलञ्च | ४३३ | क्षत्रियवैश्यादि बधप्राय- | |
| प्रथम परिच्छेद समाप्तिः | ४३७ | श्चित्तम् | ४५४ |
| साधनस्थानानि | ४३७ | महापातकादिप्राय- | |
| सिद्धपीठकथनम् | ४३८ | श्चित्तादिकथनम् | ४५४ |
| तत्र कामरूपमाहात्म्यम् | ४३८ | पशूनां व्रतभङ्गादि- | |
| पीठनिरूपणं फलञ्च | ४४० | प्रायश्चित्तम् | ४५४ |
| देवता स्थाननिरूपणम् | ४४० | शालग्रामशिलाद्यग्रे कृत्वा | |
| पूजाकालकथनम् | ४४८ | सृष्ट्वा दिव्यकरण प्राय- | |
| शान्तिवश्यादिकालाः | ४५० | श्चित्तम् | ४५४ |
| महानिशादिनिरूपणम् | ४५० | चतुर्थकाण्डस्य द्वितीय | |
| अक्रस्माद्देवपूजा वाधादि | | परिच्छेद समाप्तिः | ४५५ |
| प्रायश्चित्तम् | ४५२ | विशेषसाधनं तत्र पशु- | |
| गुरुत्यागादि प्रायश्चित्तम् | ४५२ | वाक्य प्रबोधोपायश्च | ४५५ |
| कौलानां प्रायश्चित्ताभावः | ४५२ | ककलाससिद्धिः फलञ्च | ४५६ |
| रिपुसन्त्रादिपरित्याग- | | प्रकारान्तरा ककलास- | |
| विधिः | ४५३ | सिद्धिः | ४५६ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|----------------------------|------------|
| वह्नीसिद्धिः फलञ्च | ४५६ | शुकशब्द ज्ञानम् | ४६४ |
| मूषिकासिद्धिः फलञ्च | ४५७ | सारससिद्धिः फलञ्च | ४६४ |
| मार्जारसिद्धिः फलञ्च | ४५७ | कपोतसिद्धिः फलञ्च | ४६४ |
| शृगालसिद्धिः फलञ्च | ४५७ | कुक्कुटशब्द ज्ञानम् | ४६५ |
| श्वशब्दसाधनं फलञ्च | ४५८ | शरालुसिद्धिः फलञ्च | ४६५ |
| मेकसाधनं फलञ्च | ४५८ | क्षेमङ्करीसिद्धिः फलञ्च | ४६५ |
| गोधासाधनं फलञ्च | ४५८ | टिट्ठिमसिद्धिः फलञ्च | ४६५ |
| गो शब्द ज्ञानम् | ४५८ | कोकसिद्धिः फलञ्च | ४६५ |
| मृगशब्द ज्ञानम् | ४५८ | चकोरशब्द ज्ञानम् | ४६५ |
| मेषशब्द ज्ञानम् | ४६० | कीटशब्द ज्ञानम् | ४६६ |
| ह्यगशब्द ज्ञानम् | ४६० | प्रकृतसाधनम् | ४६६ |
| वनविडालशब्द ज्ञानम् | ४६० | शय्यासाधनं फलञ्च | ४६६ |
| ऋतशब्द ज्ञानम् | ४६० | त्रिवाट चतुर्वाटसाधनं | ४६६ |
| व्याघ्रशब्द ज्ञानम् | ४६१ | फलञ्च | ४६६ |
| हस्तिसाधनं फलञ्च | ४६१ | विल्वसाधनं तत्फलञ्च | ४६७ |
| सिंहसाधनं फलञ्च | ४६१ | कार्तवोर्ध्वाङ्गुन प्रयोगः | ४७० |
| शूकरसाधनं फलञ्च | ४६१ | कार्तवोर्ध्वाङ्गुन कवचम् | ४७० |
| कङ्कालसिद्धिः फलञ्च | ४६२ | तृतीय परिच्छेद समाप्तिः | ४८८ |
| काकशब्द ज्ञानम् | ४६२ | कुक्कुटप्रयोगः | ४८८ |
| खञ्जनसिद्धिः फलञ्च | ४६२ | वश्यकर्मप्रयोगादिकम् | ४८८ |
| जलचरपक्षिसिद्धिः फलञ्च | ४६२ | आकर्षणप्रयोगः | ४८८ |
| मयूरसिद्धिः फलञ्च | ४६३ | स्तम्भनम् | ४८८ |
| विद्याधरपक्षिविशेषसिद्धिः | ४६३ | उच्चाटनम् | ४८८ |
| वक्रशब्द ज्ञानम् | ४६३ | अस्य प्रयोगान्तरं फलञ्च | ४८८ |
| चटकशब्द ज्ञानम् | ४६४ | उच्छिष्टचाण्डालीप्रयोगः | ४८८ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|------------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| ग्राममेधकथनं फलञ्च | ४८२ | षष्टिकर्त्तव्यकथनम् | ५०५ |
| धूमावतीप्रयोगः फलञ्च | ४८२ | सप्तमौक्त्यम् | ५०८ |
| कृत्यापरिमलप्रयोगः | ४८५ | अष्टमीकृत्यम् | ५१८ |
| जयदुर्गामन्त्र गृध्रगणपरि- | | अस्त्रपूजा | ५२१ |
| वृता ज्वालामुखी प्रयोगा- | | तत्र षोडशोपचार मन्त्राः | ५२२ |
| दिकञ्च | ४८८ | तत्र देव्याः स्तुतिः | ५२५ |
| चतुर्थ परिच्छेद समाप्तिः | ५०० | निशीथकृत्यम् | ५२५ |
| दुर्गास्तवविधिः | ५०० | नवमीकृत्यम् | ५२६ |
| अस्या पूजाप्रकारः | ५०० | दशमीकृत्यम् | ५२६ |
| पूजाकालादिनिर्णयः | ५०१ | पञ्चम परिच्छेद समाप्तिः | ५२७ |
| पूजाधारादिकथनम् | ५०२ | दुर्गाया मन्त्रविशेषः पूजा- | |
| प्रतिमाकरणे विधिनिषे- | | दिकञ्च | ५२७ |
| धादिकथनम् | ५०२ | दुर्गानामसाहाय्यं फलञ्च | ५२१ |
| पाङ्गणादिभेदेन विल्व- | | दुर्गायाः शतनामस्तोत्रम् | ५२५ |
| युग्मस्य विशेषफलकथनम् | ५०३ | दुर्गा गीताकथनम् | ५२६ |
| तत्र पूर्वादिस्थ विल्वयुग्म- | | वलि प्रकरणम् | ५३७ |
| फलम् | ५०३ | तत्र सात्विकादि वलि- | |
| तत्र विल्वयुग्मादेशुति | | लक्षणम् | ५३७ |
| दोषः | ५०३ | पञ्चादि वलिप्रकरणं तत्र- | |
| अस्या प्रायश्चित्तादिकम् | ५०४ | चणादिकञ्च | ५३८ |
| देशविशेषे स्तुतिविशेषा- | | तत्र शत्रु वलिविधिः | ५३८ |
| दिकम् | ५०४ | तत्र छागादीनामुत्तरो- | |
| पूजामण्डपस्थाननिरूपणा- | | त्तरप्राशस्त्यम् | ५४० |
| दिकम् | ५०४ | खट्वादिमन्त्रादिकम् | ५४० |
| सिंहासनादिलक्षणम् | ५०४ | खट्वपूजायां विशेषः | ५४४ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| बलिच्छेदनविधिः | ५४३ | यावणकृत्यं तत्फलञ्च | ५७८ |
| रुधिरपात्रलक्षणम् | ५४३ | भाद्रकृत्यं तत् फलञ्च | ५७८ |
| रुधिरग्रहणदान प्रकारः | ५४३ | वर्षकृत्यं तत्फलञ्च | ५८० |
| होमविधिः | ५४४ | तत्र देवी षोडश्यात्रा | |
| तत्राग्निपूजाविधिः | ५४८ | विधानं तत् फलञ्च | ५८२ |
| तत्राहुतदानप्रकारः | ५५३ | चतुर्थे काण्डे समाप्तिः | ५८७ |
| होमद्रव्यप्रमाणम् | ५५४ | पञ्चमे काण्डारम्भस्तस्यानु- | |
| मानाध्यायकथनम् | ५५६ | क्रमणिका च | ५८७ |
| षष्ठे परिच्छेदे समाप्तिः | ५५६ | गणेशप्रकरणम् अस्य पूजा | |
| मासकृत्यादिकथनम् | ५५७ | प्रयोगः फलञ्च | ५८९ |
| आखिनकृत्यम् | ५५७ | कुमार्याविसनम् | ६०३ |
| तत्र खञ्जनदशन शुभा- | | गजसम्पादनम् | ६०४ |
| शुभादिकम् | ५५७ | महालक्ष्म्यादिसाधनम् | ६०४ |
| तत्र कोजागरकृत्यादिकम् | ५५८ | गणेशस्य यन्त्रराजः फलञ्च | ६०५ |
| लक्ष्मीध्यानम् | ५५८ | आकर्षणादि प्रयोगः | ६०६ |
| कार्तिककृत्यं फलञ्च | ५५८ | गणेशगायत्री अस्याः | |
| अग्रहायणकृत्यं फलञ्च | ५६४ | प्रयोगः फलञ्च | ६०७ |
| पौषकृत्यं फलञ्च | ५६६ | गणेशबीजोद्धार ध्यान- | |
| माघकृत्यं फलञ्च | ५६७ | पूजादिकम् | ६०७ |
| फाल्गुनकृत्यं फलञ्च | ५७० | अस्य प्रयोगाः फलानि च | ६०७ |
| चैत्रकृत्यं फलञ्च | ५७५ | अणिमादि मन्त्राः पूजा- | |
| वैशाखकृत्यं ज्यैष्ठकृत्यं | | दिकञ्च | ६१० |
| फलञ्च | ५७६ | हरिद्रागणेश प्रकरणम् | |
| आषाढकृत्यं वैशाखाणां | | अस्योत्पत्त्यादि कथनञ्च | ६११ |
| मुद्राङ्गधारणं तत्फलञ्च | ५७६ | महागणपत्युपनिषत् | ६११ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|------------------------------|------------|
| गणपतिस्तोत्रम् | ६१३ | दैवललिङ्गलक्षणम् | ६२२ |
| वाणलिङ्ग लक्षणम् | ६१४ | गोललिङ्ग लक्षणम् | ६२२ |
| इन्द्रलिङ्ग लक्षणम् | ६१४ | आर्षलिङ्गलक्षणम् | ६२२ |
| आग्नेयलिङ्ग लक्षणम् | ६१४ | लिङ्गलक्षणम् | ६२२ |
| याम्यलिङ्गलक्षणम् | ६१४ | स्वयम्भू लिङ्गलक्षणम् | ६२२ |
| नैऋत लिङ्गलक्षणम् | ६१४ | लिङ्गनिर्माणद्रव्यादि | ६२३ |
| वारुणलिङ्ग लक्षणम् | ६१५ | शिवलिङ्ग संस्कारः | ६२६ |
| वायुलिङ्ग लक्षणम् | ६१५ | पार्थिवादि लिङ्गप्रमाणम् | ६२७ |
| कुवेरलिङ्ग लक्षणम् | ६१५ | लिङ्गशब्द व्युत्पत्त्यादिकम् | ६२८ |
| रौद्रलिङ्गलक्षणम् | ६१५ | लिङ्गमहिमादिकञ्च | ६२८ |
| वैष्णवललिङ्गलक्षणम् | ६१५ | द्रव्यविशेषनिर्मितलिङ्ग- | |
| वाणलिङ्गानामिकादश- | | पूजादिफलम् | ६२८ |
| चिह्नकथनम् | ६१५ | पारदशिवलिङ्गमाहात्म्यम् | ६३० |
| वाणलिङ्गलक्षणान्तरम् | ६१६ | पारदशिवलिङ्गनिर्माणम् | ६३१ |
| वाणलिङ्ग परीक्षा | ६१६ | शिवलिङ्गोत्पत्तिः | ६३२ |
| वाणशब्दव्युत्पत्त्यादिकम् | ६१७ | शिवपूजाधिकारिणः | ६३४ |
| वाणलिङ्गपूजन फलम् | ६१७ | शिवपूजाकरणे दोषः | ६३५ |
| निन्द्यलिङ्गकथनम् | ६१८ | शिवलिङ्गस्थापनादिकम् | ६३६ |
| शुभलिङ्गकथनम् | ६१८ | त्रैकालिक शिवलिङ्गपूजन- | |
| वाणलिङ्गोत्पत्त्यादिः | ६१८ | फलम् | ६३७ |
| वाणलिङ्गेष्ववाहनाभावः | ६१८ | कामनाभेदे पार्थिवलिङ्ग- | |
| वाणलिङ्गस्मरणफलादि | ६२० | संख्यादिकं फलञ्च | ६३८ |
| वाणलिङ्गस्तोत्रम् | ६२० | एकत्र लिङ्गद्वय पूजा | |
| रौद्रलिङ्गलक्षणम् | ६२१ | निषेधः | ६३८ |
| शिवनाभि लक्षणम् | ६२१ | द्वितीयपरिच्छेद समाप्तिः | ६३८ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---|------------|---|------------|
| पार्थिव शिवपूजाविधिः | | विल्ववृक्षमूले वेदीफलम् | ६५२ |
| तत्फलञ्च | ६३८ | पञ्चवटो स्थापनविधिः | ६५२ |
| शिवस्य षडक्षर मन्त्रोद्धारः | ६४१ | विल्वपत्रमाहात्म्यम् | ६५३ |
| अस्य पञ्चाक्षर मन्त्रोद्धारः | ६४१ | रुद्राक्षमाहात्म्यम् | ६५५ |
| अस्य मन्त्रान्तरम् | ६४१ | सम्बिदा प्रकरणम् | ६५६ |
| अस्याष्टमूर्त्तिपूजाविधिः | ६४१ | शालग्रामोत्पत्तिप्रकारः | ६६१ |
| शिवपूजा सूत्रम् | ६४१ | अस्यानुयोगेन लाभफलम् | ६६३ |
| शिवपूजां विना शक्ति- पूजादौ दोषकथनम् | ६४२ | तस्याः शुभाशुभलक्षणम् | ६६३ |
| शिवपूजायामुक्तपुष्पादि तन्माहात्म्यादिकञ्च | ६४२ | शालग्रामपूजन फलम् | ६६५ |
| शिवलिङ्गस्य कास्यपूजा- दिकम् | ६४३ | शालग्रामस्थित देशफलम् | ६६५ |
| उपचारादिभिः पूजनफलञ्च | ६४३ | सुदर्शनादिचक्रलक्षणम् | ६६५ |
| शिवार्पित द्रव्यफलम् | ६४४ | शालग्रामोत्पत्ति स्थान- निर्णयः | ६६५ |
| रिष्टशान्तिरेकाश्च शिव- पूजा फलञ्च | ६४४ | शिलासन्निधौ सत्यु फलम् | ६६६ |
| लिङ्गस्य सार्वकामिकपूजा विशेषादिकम् | ६४५ | शालग्रामक्षेत्रे स्नानदा- नादि फलम् | ६६६ |
| शिवनिर्मात्यभक्षणे दोषः | ६४५ | शालग्रामदानफलं मत्स्या- दिमूर्त्ति लक्षणञ्च | ६६६ |
| वाणलिङ्गनिर्मात्यग्राह्यत्वम् | ६४७ | ब्राह्मणादिभेदेन शाल- ग्राममूर्त्तिविशेषपूजा | ६७० |
| शान्त्यादौ शिवपूजाफलम् | ६४८ | स्त्रीशूद्रादीनां शालग्राम- स्पर्शनविधेः | ६८८ |
| शिवस्य स्तोत्रम् | ६४८ | शूद्राणां ब्राह्मणद्वारा शाल- ग्रामशिला पूजनादिकम् | ६८८ |
| शिवस्य कवचम् | ६५० | शालग्रामशिलापूजां विना भोजने दोषः | ६८८ |
| विल्ववृक्षादिमाहात्म्यम् | ६५१ | | |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|--------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| शिवलिङ्गद्वय शालग्राम- | | काष्ठपात्रे विष्णुपूजा- | |
| शिलाद्वयार्चननिषेधः | ६८८ | निषेधः | ७०७ |
| द्वादश शालग्रामपूजा- | | स्वर्णादिपात्रे विष्णुपूजा- | |
| फलम् | ६८८ | फलम् | ७०७ |
| शत शालग्राम पूजा- | | पुरुषसूक्तमाहात्म्यम् | ७०७ |
| फलम् | ६८९ | द्रव्यविशेषेण विष्णुस्नपनम् | ७०७ |
| शालग्रामविक्रयदोषाः | ६८९ | द्रव्यविशेषेण शिलाप्रक्षा- | |
| तुलस्या शालग्रामपूजा | ६९० | लनफलम् | ७०८ |
| शालग्रामद्वारकाचक्रयो- | | विष्णोर्महास्नानं फलञ्च | ७०८ |
| रेकतावस्थानफलम् | ६९० | शङ्खमाहात्म्यम् | ७०८ |
| शालग्रामाधिकरणक विष्णु- | | शङ्खादिलक्षणम् | ७०८ |
| पूजाफलम् | ६९० | त्रिपदौलक्षणम् | ७१० |
| द्वारकाशिलालक्षणं श्रीध- | | तुलसीमाहात्म्यम् | ७१० |
| रादि चक्र लक्षणानि च | ६९० | तुलसीरोपणविधिः | ७१२ |
| द्वारकाशिलामाहात्म्यम् | ६९० | तुलसीध्यानम् | ७१३ |
| निषिद्धशिलाः | ६९० | तुलसीस्तोत्रम् | ७१३ |
| चक्रभेदे मूर्तिभेदादिकम् | ६९१ | अस्याः प्रणाममन्त्रः | ७१३ |
| त्यज्यमूर्त्यादिकथनम् | ६९२ | तुलसीमालाधारणविधिः | ७१४ |
| शालग्रामपूजा | ६९५ | श्रीकृष्णार्पित माला- | |
| चरणामृतभक्षण फलम् | ६९७ | धारणे दोषः | ७१४ |
| विष्णुपूजा सूत्रम् | ६९८ | श्रीकृष्णार्पितमाला- | |
| विष्णुपूजोपचारमन्त्राः | ७०० | धारणे फलम् | ७१५ |
| अक्षयधनावाप्तिप्रयोगः | ७०१ | मालाधारणस्य नित्यता | ७१५ |
| विष्णुनाममाहात्म्यम् | ७०४ | वैष्णवप्रशंसा | ७१६ |
| श्रीकृष्ण शतनामस्तोत्रम् | ७०५ | दशावताराविर्भावकालः | ७१७ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---|------------|--|------------|
| महाविद्यानिरूपणम् | ७१७ | दक्षिणाकल्पकथनं फलञ्च | ७३८ |
| महाविद्या माहात्म्यम् | ७१८ | तान्त्रिकपूजाधिकारिणः | ७३८ |
| महाविद्यादीनां भैरव- निरूपणम् | ७१८ | गुरुद्वारा तान्त्रिकपूजा- फलम् | ७३८ |
| महारात्र्यादि निरूपणम् | ७२० | पुरोहितेन तान्त्रिक पूजादौ दोषकथनम् | ७३८ |
| वद्योत्पत्तिकथनम् | ७२१ | पूजाकालेऽन्यमुखावलो- कने दोषः | ७३८ |
| कालीमाहात्म्यम् | ७२१ | दोषान्वितादौ पूजाफलम् | ७४० |
| तारा माहात्म्यम् | ७२३ | अद्या पूजाप्रकरणम् | ७४० |
| षोडशी माहात्म्यम् | ७२४ | अस्याः पूजासूत्रादिकम् | ७४० |
| विद्युद्गौर्योत्पत्तिः | ७२६ | महाकालध्यानं खड्गादि- पूजा च | ७४१ |
| अर्हिनारीश्वराद्युत्पत्तिः | ७२७ | संक्षेप पूजासूत्रम् | ७४१ |
| छिन्नमस्ताद्युत्पत्तिः | ७२८ | नित्यपूजा सूत्रम् | ७४२ |
| उच्छिष्टचण्डालिन्युत्पत्तिः | ७२८ | पुरश्चरणविधिः | ७४२ |
| धूमावत्युत्पत्तिः | ७३४ | काली शतनाम स्तोत्रम् | ७४४ |
| वगलोत्पत्तिकारणम् | ७३५ | महाविद्या स्तोत्रम् | ७४६ |
| मातङ्गिन्युत्पत्तिः | ७३५ | महाविद्या कवचम् | ७४७ |
| भुवनेश्वरौमहालक्ष्म्यादीनां उत्पत्तिकारण कथनम् | ७३५ | श्मशानकालीकवचम् | ७४८ |
| महाकालोत्पत्तिः | ७३६ | शाक्तप्रशंसादिकम् | ७५१ |
| वटुकोत्पत्तिः | ७३६ | कुमारोपूजाविधिः फलञ्च | ७५३ |
| कालीप्रकरणम् | ७३६ | कुमारौ पूजाक्रमः | ७५७ |
| तत्राद्या प्रशंसा | ७३७ | कुमारौ दानक्रमः फलञ्च | ७५८ |
| अस्या निन्दने दोषः | ७३७ | कुमारौमन्त्र पुरश्चरणम् | ७६० |
| अस्या मन्त्राः फलञ्च | ७३७ | | |
| अस्या मन्त्रेण शान्ति- पुष्ट्यादिकर्म कथनम् | ७३८ | | |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|------------------------|------------|-------------------------|------------|
| कुमारो पूजाप्रयोगः | ७६१ | प्रावनो | ७८२ |
| कुमारो स्तोत्रम् | ७६३ | नेतीयोग फलञ्च | ७८२ |
| कुमारो तपणादिकम् | ७६६ | दन्तीयोग फलञ्च | ७८३ |
| कुमारो कवचम् | ७६७ | घौतीयोग फलञ्च | ७८३ |
| ब्राह्मण प्रशंसा | ७७० | नेङ्गनीयोग फलञ्च | ७८५ |
| तीर्थयात्रा | ७७१ | प्रकारान्तरधीतीयोगः | ७८५ |
| शगस्त्वगयाचेतननिर्णयः | ७७३ | गजकरिणीयोगः फलञ्च | ७८६ |
| गयामाहात्म्यादिकञ्च | ७७३ | वस्तीयोगः फलञ्च | ७८६ |
| काशी माहात्म्यम् | ७७७ | लौलीयोगः फलञ्च | ७८६ |
| षष्ठकाण्डानुक्रमणिका | ७७८ | नतीयोगः फलञ्च | ७८६ |
| पञ्चामरादि योगाः | ७८३ | कपालभातीयोगः फलञ्च | ७८६ |
| यमनियमाद्यष्टाङ्गयोगः | ७८५ | भूचरसिद्धादिकं फलञ्च | ७८६ |
| षडङ्गयोगो हठयोगश्च | ७८७ | सुद्रादशक फलञ्च | ७८८ |
| प्राणायामविधिः फलञ्च | ७८७ | सहामुद्रा | ७८८ |
| कुम्भकसिद्धिः | ७८८ | महाबन्धः फलञ्च | ७८८ |
| तत्र वर्ज्यानि | ७८० | महाविधः फलञ्च | ८०० |
| तत्रापथ्यानि पथ्यानि च | ७८० | खेचरीमुद्रा फलञ्च | ८०० |
| शीघ्र योगसिद्धिपायः | ७८० | मूलबन्धः फलञ्च | ८०३ |
| त्राटक कथनम् | ७८१ | उड्डीयानं फलञ्च | ८०८ |
| उड्डीय कथनम् | ७८१ | जालन्धर बन्धः फलञ्च | ८०८ |
| शोत्कारकथनम् | ७८१ | विपरीतकरणं फलञ्च | ८०९ |
| शोतलीकथनम् | ७८२ | वज्जीनी कथनं फलञ्च | ८०६ |
| मस्त्रिकाकथनम् | ७८२ | शक्तिचालनं तत्फलञ्च | ८०७ |
| भ्रामरीकथनम् | ७८२ | पृथिव्यादिपञ्चभूतधारणम् | ८०८ |
| मूर्च्छाकथनम् | ७८२ | कर्मविशिषे भूतोदयफलम् | ८१२ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-----------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| वाक्याद्यवस्थाभेदः | ८१३ | प्राणानां वह्निर्गतिनिर्णयः | ८२२ |
| वारादिभेदेन नाडीविशेष | | तत्त्वविशेषेण गति शुभा- | |
| फलम् | ८१४ | शुभत्वम् | ८२२ |
| नाडीविशेषे दिग्ज्ञानम् | ८१४ | भूतविशेषे षट्कर्मविशेषः | ८२३ |
| स्व स्व नाडीफलकथनम् | ८१४ | श्वासप्रवेशकाले प्रश्नफलम् | ८२४ |
| विपरीत निन्दा | ८१४ | तत्त्वेन घातस्थान निर्णयः | ८२४ |
| दिनभेदेन विपरीतफलम् | ८१४ | तत्त्वविशेषेण शुद्धादि- | |
| कालभेदेन कालफलम् | ८१५ | ज्ञानम् | ८२४ |
| वारभेदे पादयात्रा भेदः | ८१५ | यानशुद्धिविजय प्रकरणम् | ८२४ |
| पूर्णरिक्तयोः फलम् | ८१५ | वशोकरणम् | ८२५ |
| नाडीचालन कारणम् | ८१६ | गर्भप्रकरणं फलञ्च | ८२६ |
| कर्मनाडीफलम् | ८१६ | संवत्सरप्रकरणं फलञ्च | ८२७ |
| कर्मविशेषे पिङ्गला फलम् | ८१७ | रोगप्रकरणम् | ८२७ |
| कर्मविशेषे सुषुम्णा फलम् | ८१७ | कालज्ञानम् | ८२८ |
| भूतप्रक्रिया फलम् | ८१८ | नाडीज्ञानम् | ८२८ |
| भूतज्ञान प्रकारः | ८१८ | राजयोग कथनम् | ८३० |
| भूतविशेषे फलविशेषः | ८२० | लक्षयोगः फलञ्च | ८३३ |
| मूलजोवादिनिर्णयः | ८२१ | हठयोगस्तम्भ ललाटकञ्च | ८३५ |
| बहुपादादिनिर्णयः | ८२२ | ज्ञान योगलक्षणम् | ८३७ |
| भूतभेदेन धात्वादिकथनम् | ८२१ | वाह्यलक्ष्यादिकं फलञ्च | ८३७ |
| तत्त्वेन प्रश्नफलकालनिर्णयः | ८२१ | नाडीनां भेदकथनम् | ८३८ |
| शब्दादिगुणपरिमाणम् | ८२१ | मध्यलक्षणकथनं फलञ्च | ८३८ |
| पृथिव्यवस्था कथनम् | ८२२ | षोडशाधारभेदः फलञ्च | ८३८ |
| पूर्णनाद्यादि गतस्य प्रश्न- | | अष्टाङ्गयोगलक्षणम् | ८४१ |
| फलम् | ८२२ | पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यम् | ८४१ |

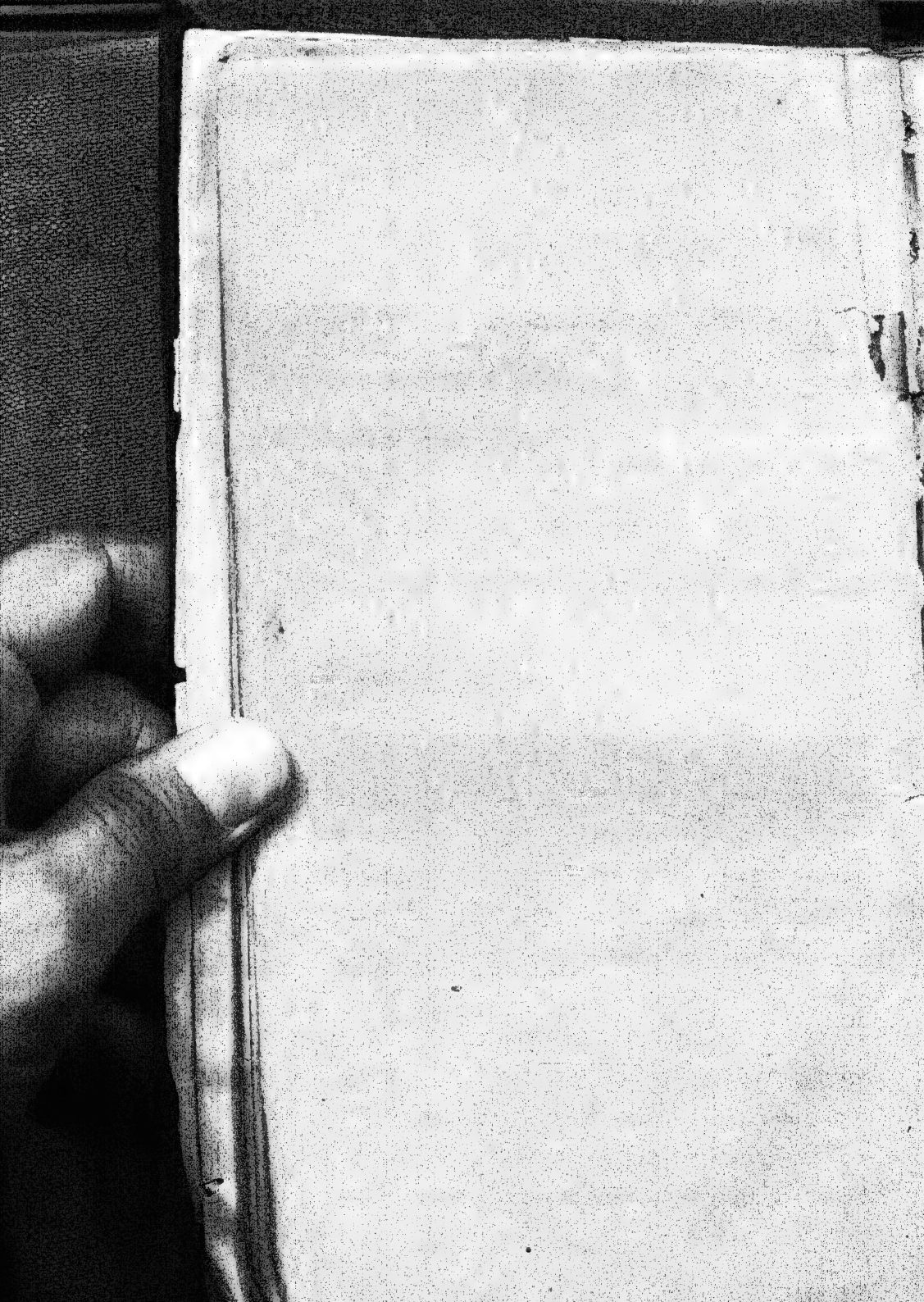
| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|-------------------------------|------------|-----------------------------|------------|
| पिण्डमध्ये सप्तलोकादिकम् | ८४१ | विशुद्धचक्रस्थानम् | ८५६ |
| तत्र षट्चक्रभेदादिकम् | ८४२ | आज्ञाचक्र कथनम् | ८५७ |
| तत्र सप्तद्वीपादिकम् | ८४२ | महसार लक्षणम् | ८५८ |
| तत्र सप्तसमुद्रादिकम् | ८४२ | ज्ञानप्रशंसादिकम् | ८६४ |
| नवखण्डादि कथनम् | ८४३ | अद्वैतज्ञानं फलञ्च | ८६४ |
| तत्राष्ट पर्वादादिकम् | ८४३ | द्विविधज्ञानादिकथनम् | ८६८ |
| तीर्थास्थित्यादि | ८४३ | तत्त्वज्ञानादिकं तत्फलञ्च | ८६८ |
| देहस्थ कमलानां सङ्केतः | ८४४ | क्रियाया मुक्तिमाधनत्वम् | ८७० |
| विद्योत्पत्त्यादि | ८४५ | ब्रह्मतत्त्वादि कथनम् | ८७१ |
| महाभूतगुणस्थानानि | ८४६ | ब्रह्मज्ञानप्रशंसादिकम् | ८७३ |
| योगदेशकथनम् | ८४७ | परमात्मस्वरूप कथनम् | ८७५ |
| योगाधिकारि कथनम् | ८४७ | परमात्म साधनादिकम् | ८७५ |
| योगमाहात्म्यादिकम् | ८४७ | ब्रह्मणो जगत्सृष्ट्यादि | ८७५ |
| योगभेद कथनम् | ८४८ | आत्मतत्त्वज्ञान प्रकारः | ८७५ |
| योगावस्था कथनम् | ८४८ | ब्रह्मज्ञान प्राप्तिफलम् | ८७६ |
| मन्त्रयोगलक्षणम् | ८४८ | ब्रह्मसाधनम् | ८७७ |
| लययोगः फलञ्च | ८४८ | ब्रह्ममन्त्र प्रशंसादिकम् | ८७८ |
| कालपुरुषलक्षणम् | ८४८ | मन्त्रार्थमन्त्रचैतन्यकथनम् | ८७८ |
| योगार्थं सुदृढब्रह्माण्डत्वेन | | ब्रह्ममन्त्रोपासनाप्रकारः | ८७८ |
| शरीरकथनम् | ८५१ | अस्य सन्ध्याविधिः | ८७८ |
| देहे बृहद्ब्रह्माण्डलक्षणम् | ८५१ | अस्य गायत्रीकृत्यादिकं | |
| तत्र मूलाधारचक्रलक्षणम् | ८५१ | ध्यानं पूजादिकञ्च | ८८० |
| स्वाधिष्ठान कथनम् | ८५३ | ब्रह्मस्तीव्रं फलञ्च | ८८० |
| मणिपूरचक्र कथनम् | ८५४ | ब्रह्मकवचं फलञ्च | ८८१ |
| अनाहत चक्रस्थानम् | ८५५ | ब्रह्मोपासना | ८८२ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|--------------------------|------------|---------------------------|------------|
| ब्रह्ममन्त्रपुरश्चरणम् | ८८२ | भावाश्रमप्रकारकथनम् | ८९८ |
| स्वरोदयोक्तमात्रादि | ८८३ | पशुभावनित्या | ८९० |
| मात्रास्वरचक्रं फलञ्च | ८८३ | दिव्यवीरयोः प्राशस्त्यम् | ८९२ |
| वर्णस्वरचक्रं फलञ्च | ८८३ | पशुवीरभावयोः कालः | ८९३ |
| ग्रहस्वरचक्रं फलञ्च | ८८४ | ब्रह्मचर्याश्रमनिर्णयः | ८९३ |
| जीवस्वरचक्रं फलञ्च | ८८५ | तत्र ताम्रधारण फलम् | ८९४ |
| राशीस्वरचक्रं फलञ्च | ८८५ | ब्रह्मचर्य फलम् | ८९४ |
| नक्षत्रस्वरचक्रादि | ८८५ | कलो ब्रह्मचर्याश्रमनिषेधः | ८९४ |
| स्वराणामुदयादिकम् | ८८५ | गाहस्थ्याश्रमादिकथनम् | ८९५ |
| स्वराणां वाक्याद्यवस्था | ८८७ | गृहस्थादीनां धर्मकथनम् | ८९५ |
| पुंस्त्री नपुंसकादिभेदाः | ८८८ | गृहस्थस्यातिथिपूजादि- | |
| स्वरात् दिनफलादि | ८८८ | फलम् | ८९६ |
| स्वरविवरणकथनम् | ८९० | अतिथिनिराशे दोषः | ८९६ |
| तिथिवारनक्षत्रस्वराः | ८९१ | मातृपितृादिसेवा फलम् | ८९६ |
| वालस्वरादीनां फलानि | ८९८ | गृहस्थधर्मकथनादिकम् | ८९७ |
| दिक्स्वरविवरणादिकम् | ९०० | यत्याश्रम कथनम् | ८९७ |
| सर्वतोभद्रचक्रं फलञ्च | ९१२ | दण्डग्रहणप्रकारः | ८९७ |
| एकाशीतिपदचक्रं फलञ्च | ९१६ | दण्डिनो भिक्षाचरणप्रकारः | ८९७ |
| शतपदचक्रं फलञ्च | ९२७ | दण्डिनं प्रति कर्त्तव्यम् | ८९५ |
| प्रस्तारचक्रं फलञ्च | ९२८ | दण्डिनोऽवस्थितिप्रकारः | ८९५ |
| अस्य व्याख्यादिकम् | ९२८ | आश्रमविशिषे संज्ञाभेदः | ८९६ |
| ज्ञानकाण्ड समाप्तिः | ९३३ | अवधूताश्रमकथनं फलञ्च | ८९७ |
| सप्तमकाण्डारम्भः | ९३३ | अस्य भेदाः | ८९७ |
| भावफलम् | ९३७ | एषां संज्ञाकथनम् | ८९९ |
| भावविशिष फलम् | ९३७ | अवधूतभेदो माहात्म्यञ्च | ८९९ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|--------------------------|------------|----------------------------|------------|
| अवधूतकर्तव्यकर्ममन्त्रा- | | कुलस्त्रीसेवनादिविधिः | ८८१ |
| दिकम् | ८६३ | कलौ दिव्यवोराचार- | |
| तन्मन्त्रप्रशंसा कथनम् | ८६३ | निषेधः | ८८१ |
| शैवावधूतस्य सर्वकर्मा- | | कलौ पशुभावेनैव मन्त्र- | |
| नर्हत्वम् | ८६४ | सिद्धिः | ८८१ |
| परमहंसप्रकारो लक्षणश्च | ८६४ | पञ्चमकारादिप्रकरणम् | ८८२ |
| आचारभेदाः फलञ्च | ८६५ | पञ्चतत्त्व कथनम् | ८८३ |
| वैष्णवाचारः फलञ्च | ८६५ | पञ्चतत्त्व विना देवता- | |
| शैवाचार कथनम् | ८६५ | विशेषपूजने दोषः | ८८३ |
| दक्षिणाचारः फलञ्च | ८६५ | सुरामाहात्म्यादिकम् | ८८३ |
| दिव्य वीरमतकथनम् | ८६५ | मत्स्यादि शब्दव्युत्पत्तिः | ८८३ |
| सिद्धात्ताचारलक्षणम् | ८६५ | तत्र वैष्णवाणां पञ्च- | |
| पूर्णाभिषेकप्रकरणं फलञ्च | ८६६ | तत्त्वानि | ८८४ |
| पूर्णाभिषेक प्रयोगः | ८७१ | पञ्चतत्त्वशोधनप्रकारः | ८८४ |
| वीरप्रशंसादिकम् | ८७८ | मांसादिशोधनप्रकारः | ८८६ |
| वीरकृत्यम् | ८७८ | शक्तिशोधनप्रकारः | ८८७ |
| भैरवीचक्रस्थापनादि | ८७८ | पञ्चमकारादिशोधन- | |
| सुराद्यभावे वर्णभेदेन | | प्रकारः | ८८७ |
| तदनुकल्पकथनम् | ८७९ | सुराशपमोचन मन्त्राः | ८८८ |
| वैधयानादौ दोषाभावः | ८८० | आनन्दभैरवानन्दभैरवी- | |
| असंस्कृत सुरापाने दोषः | ८८० | ध्यानम् | ८८८ |
| संस्कृतसुरापाने गुणाः | ८८० | मांस मोन मुद्रा शोधन- | |
| शपमोचनेनास्या मुक्तिः | ८८० | प्रकारः | ८८० |
| पशुमन्त्रिवी सुरापान- | | स्वयम्भु, कुसुमादिकथनम् | ८८० |
| निन्दा | ८८० | स्वयम्भु, कुसुमशुद्धादिकम् | ८८२ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|---------------------------|------------|-------------------------|------------|
| श्रीपावस्थापनादिकम् | ८८२ | एषां शान्तिः | १०२७ |
| तत्त्वशुद्धि कथनम् | ८८३ | कुलाचारादिकथनम् | १०२७ |
| वीराचार पूजादिकम् | ८८४ | कुलाचार प्रशंसा | १०३० |
| वीरपुरश्चरण फलञ्च | ८८६ | अन्तर्यागादिकथनं फलञ्च | १०३२ |
| धाद्यायाः प्रयोगः फलञ्च | १००५ | अन्तर्यजनं फलञ्च | १०३२ |
| तारायाः पूजाविधिः | १००८ | अन्तर्हीमादिकं फलञ्च | १०३७ |
| ताराशतनामस्तोत्रम् | १०११ | पञ्चाहुतयः | १०३८ |
| अस्याः स्तोत्रान्तरम् | १०१२ | श्रीचक्र क्रमः | १०३८ |
| वीरहोमविधिः फलञ्च | १०१३ | कर्मविशेषे पावविशेषः | १०३८ |
| देव्यै द्रव्यदानफलम् | १०१४ | मद्यप्रभेदादिकं फलञ्च | १०३८ |
| सुराभेदकथनम् | १०१४ | मद्याभावे वटिकादिकम् | १०३८ |
| महाशङ्खमाला जपफलम् | १०१४ | अभावे वटिकाभिस्तर्पणम् | १०४० |
| महाशङ्खमालाकरणम् | १०१५ | कुलपूजां विना पानदोषः | १०४० |
| महाशङ्खमाला संस्कारः | १०१५ | आराधनेऽशक्तानां कृत्यम् | १०४१ |
| वीरकृत्य कथनम् | १०१६ | कुलद्रव्येणाश्वनादिकम् | १०४१ |
| वीराणां नैष्कर्मसाधनार्थं | | कुलाचारकरण फलम् | १०४१ |
| रसास्वादानादिकम् | १०१७ | संस्कृतद्रव्यदान फलम् | १०४१ |
| वीराणां भेदकथनादि | १०१८ | कुलद्रव्यपानदोषः | १०४२ |
| वीराणां षट्कर्मसाधनम् | १०१८ | पूजकलक्षणादिकम् | १०४२ |
| तत्र मारणकथनम् | १०२० | मण्डललक्षणम् | १०४२ |
| शत्रून्नादनम् | १०२१ | सुराशोधनप्रकारः फलञ्च | १०४२ |
| स्तब्धनम् | १०२४ | कुलाचारकथनम् | १०४२ |
| वयोकरणान्तरम् | १०२४ | आनन्दस्वरूपकथनम् | १०४२ |
| विद्वेषणम् | १०२६ | द्रव्यादीनामनुकल्पः | १०४२ |
| मारणान्तरादिकम् | १०२६ | पञ्चतत्त्वकथने निन्दा | १०४८ |

| विषयः | पृष्ठाङ्कः | विषयः | पृष्ठाङ्कः |
|------------------------|------------|--------------------------|------------|
| क्रानुष्ठानकथनादिकम् | १०५० | शक्तिप्रशंसादिकम् | १०७८ |
| गात्रवन्दनादिकम् | १०५२ | लतासाधनम् | १०८१ |
| पानपात्र प्रमाणम् | १०५२ | योनिपूजा फलञ्च | १०८२ |
| पानविधानम् | १०५३ | घोड़श बन्धाः | १०८५ |
| शान्तिस्तोत्रं फलञ्च | १०५४ | ज्ञानकाण्ड समाप्तिः | १०८७ |
| आनन्दस्तोत्रं फलञ्च | १०५५ | श्रीषधिप्रकरणं फलञ्च | १०८७ |
| आनन्दोक्तासः | १०५७ | वश्यप्रकरणम् | १०८३ |
| पञ्चवक्रानुष्ठानम् | १०६० | विवादजयकरणादिकम् | १०८४ |
| कुलशक्ति कथनम् | १०६० | चौर बाधा हरणम् | १०८४ |
| कुलसाधनव्यवस्था | १०६४ | व्याधिनाशनमन्त्रादिकम् | १०८४ |
| शक्तवङ्गे जपस्थानकथनम् | १०६६ | दृष्टानाशप्रकारादिकम् | १०८४ |
| शक्तिसाधनं फलञ्च | १०६७ | आहारनाशनप्रकारः | १०८५ |
| कुलागारसाधनं फलञ्च | १०६७ | क्षुधादृष्टादिहरणमन्त्रः | १०८५ |
| शय्याशुद्धिः फलञ्च | १०६८ | सूचनाशादिप्रकारः | १०८५ |
| कुलशक्ति निर्णयादिकम् | १०६८ | शुक्रस्तम्भनम् | १०८६ |
| शक्तिविशेषलक्षणं फलञ्च | १०६८ | निद्रानाशनं मन्त्राश्च | १०८६ |
| कुलसाधनप्रयोगः फलञ्च | १०७३ | शुक्रस्तम्भान्तरम् | १०८७ |
| योनिस्तोत्रं फलञ्च | १०७४ | सर्वव्याधिविनाशनम् | १०८७ |
| योनिकवचनं फलञ्च | १०७६ | दृष्ट्या क्षुधानाशनादि | १०८७ |
| शिवशक्तिसमायोगः | १०७७ | ग्रन्थ समाप्तिः | १०८७ |



प्राणतोषिणी ।

जडे कार्यं दात्री द्रुतमुदकविन्दौ जलधितां पयोधौ पाथो-
 ऽणुत्वमपि ननु सर्वैकवशगा । गिरौ धूलिलेशत्वमचलवरत्नं
 रजसि वा विचित्रेच्छा खैरं जयति जयतारि ! तव नवा ॥ यत्पा-
 दाम्बुजसेवया प्रतिदिनं कर्म क्षणात्नीलया ब्रह्मोपेन्द्रमहेश्वरप्रभ-
 तयः कुर्वन्ति सृष्ट्यादिकम् । यामाराध्य मनुत्वमाप सुरयो ज्ञानं
 समाधिः स्वयं साक्षात्कं वितनोतु वाञ्छितफलं तस्मै भवान्यै
 नमः ॥ आसीद्विश्वासवंशे विमलमतिदयारामविश्वासनामा तत्-
 पुत्रोऽत्यन्तदान्तोऽप्यतिशयसुकृती रामहर्षाह्वयोऽसौ । विश्वासे
 विश्वनाथार्चनचरणरतो विश्वविश्वासवासो वाराणस्यामुषित्वा
 बहुविधमपि सत्कर्म कृत्वाप मुक्तिम् ॥ तत्सुनुर्भूमिपालो विविध-
 बुधगणैकाग्रगण्योऽतिधन्यो मान्यः श्रीप्राणकृष्णो यदनुजनुजग-
 न्मोहनाख्यः प्रसिद्धः । पुत्राः षड् यस्य जाताः सुविमलमतयो
 धैर्यगाम्भीर्यवन्तो दीनानाथान्धबन्धुहिजगणभरणैकान्तविभ्रा-
 न्तचित्ताः ॥ तत्रानन्दमयो महेशमहिषीध्यानावधानः सदा ज्येष्ठः
 श्रेष्ठतमः सदैव सदयो दारिद्र्यविद्रावणः । तस्योपेन्द्रसमः कृती
 भगवतीभक्तो भवानौपति-श्रीपादाम्बुजयुग्मलुब्धमधुपः श्रीराम-
 चन्द्रोऽनुजः । दाता कर्णसमो रणोऽर्जुनसमः शत्रौ कृतान्तीपमो
 दाता दीनदयामयस्तदनुजः श्रीविश्वनाथस्तथा ॥ श्रीयुक्तः शम्भु-
 नाथस्तदनु समभवत् सुन्दरस्तस्य पश्चात् श्रीकाशीनाथनामा
 तदनुज उदितश्चन्द्रवच्चन्द्रनाथः ॥ स्वर्धन्याः पूर्वतोरे सुरचिर-
 निलयः खड्गहाख्यः प्रसिद्धो नित्यानन्दादिसिद्धाश्रमविहित-

महाशुद्ध इन्द्रालयाभः । ग्रामो जीयान्महद्भिः कृतशुभनिलया
 रामभीमालयाक्यः कैल्कातातो नगर्याः क्षितिपतिनगरादुत्तां
 यामगम्यः ॥ तस्मिन् श्रीप्राणकृष्णो निवसति निखिलस्वीय
 निर्धूतदृष्टो जिष्णोस्तुल्योऽतिमूल्योत्तममणिगणसम्पूर्णकोषा-
 धिपालः । श्रीमान् धीमान् स्वकीर्त्या विधुरिव भुवि विश्वास-
 वंशावतंसः । साक्षात् सूर्यः प्रतापैररिदृष्टदहनो जीवतात् स
 प्रजाभिः ॥ अपि च ॥ ज्योतिर्ग्रन्थान् बहुविधानालोक्य बहुभि-
 र्बुधैः । संग्रहं कारयामास प्राणकृष्णक्रियाम्बुधिम् । ततो
 नानाभिधानानि समालोक्य समासतः । प्राणकृष्णोयशब्दाब्धिं
 कारयामास यत्नतः ॥ तन्त्राणि बहुधा नानादेशादाहृत्य त-
 त्परम् । स्वाभ्येषुसन्निभं नानासंग्रहञ्च कृतं बुधैः । संग्रहे जय-
 सिंहादिनृपाणां नामदर्शनात् । चिरं मृतानां ग्रन्थस्थनान्ना-
 द्यापि सुज्जीवताम् । ग्रन्थकीर्त्तिं वरां मेने सर्वकीर्त्तेरनश्वराम् ।
 ग्रन्थं कारयितुं धीरं यत्नतोऽन्वेषयत् कृती । न लेभे सहसा
 तेन सदा चिन्तापरः स्थितः । अथ श्रीशिवपादाब्जभ्रमरीकृत-
 मानसः । कैल्कातानगरे रम्ये चकार मठमेव यः । श्रीगोपीना-
 थमिश्रेणानीय तं रामतोषणम् । श्रीप्राणकृष्णविश्वासो विश्वास-
 वंशभास्करः । आदिष्टवांस्तन्त्रशास्त्रोत्तमसंग्रहेतवे । समस्त-
 ज्ञानदातृन् षड् गुरुन् नत्वा सहस्रशः । मुण्डमालां मल्लसूक्तं
 तन्त्रं महिषमर्दिनीम् । मायाञ्च मातृकाभेदं मातृकोदय-
 मुत्तमम् । महानिर्वाणतन्त्रञ्च मालिनीविजयं तथा । महानि-
 नीलं महाकालसंहितां मेरुतन्त्रकम् । धैरवं धैरवीं भूतडामर-
 द्वयमेव च । वीरभद्रं वीजचिन्तामणिमेकजटीं तथा । निर्वाण-
 तन्त्रं त्रिपुरासारं कालीविलासकम् । विश्वसारञ्च वरदां वासु-
 देवरहस्यकम् । वाराहीञ्च वृहन्नीतमीयं वर्णोद्भूतिं तथा ।
 विश्वसारस्थतन्त्रञ्च विष्णुजामलमेव च । वृहन्नीलं वृहदुयोनिं

रहस्यं विशुद्धममृतम् । वामजेश्वरतन्त्रश्च ब्रह्मज्ञानं ततः परम् ।
 ब्रह्मजामलमहैतं वर्णविलासमेव च । फेत्कारिणीं तथा तन्त्रं
 पुरश्चरणचन्द्रिकाम् । पुरश्चाररसोक्तासं तन्त्रं पञ्चदशीं शुभाम् ।
 पिच्छिलां प्रपञ्चसारं हंसाय पारमेश्वरम् । नवरत्नेश्वरं नित्यं
 नीलं नारायणीयकम् । निरुत्तरं नारदीयं नागार्जुनमतः परम् ।
 दक्षिणामूर्तितन्त्रश्च दक्षिणामूर्तिसंहिताम् । दत्तात्रेयसंहिता-
 द्वाष्टावक्रसंहितां तथा । यक्षिणीं योगिनीं योनिं योगसारं तद-
 र्णवम् । योगिनीहृदयं योगियाश्रवल्कलमनुत्तमम् । योग-
 श्वरोदयश्चेवाकाशभैरवमेव च । राजराजेश्वरीं राधां रेवतीं
 रुद्रजामलम् । रामार्चनचन्द्रिकाश्च सावरक्षेत्रजालकम् । काली-
 तन्त्रश्च कामाख्यां कामधेनुमतः परम् । श्रीकालीकुलसर्वस्वं कुमा-
 रीतन्त्रमेव च । ककलोत्तरीपिकाश्च कङ्कालमालिनीं तथा ।
 कालीत्तरं कुब्जिकाश्च कुलोब्दीयं कुलार्णवम् । कुलमूलावता-
 राख्यकल्पसूत्रं यक्षडामरम् । सरस्वतीं सारदाश्च शक्तिसङ्गम-
 तन्त्रकम् । शक्तिकागमसर्वस्वमूर्द्धाञ्चायं स्वरोदयम् । स्वतन्त्र-
 तन्त्रं सम्बोहं चीनाचारश्च तोडलम् । षडन्वयमहारत्नं सिद्धै-
 कवीरतन्त्रकम् । निगमस्य कल्पद्रुमं लतां तत्सारमेव च ।
 तारारहस्यं श्रीश्यामारहस्यं स्कन्दजामलम् । इत्याद्यनेक-
 तन्त्राणि पुराणं पञ्चरात्रकम् । श्रुतिस्मृतिसंग्रहांश्च दृष्टान्य-
 शास्त्रमेव च । रत्नान्येभ्यः समाहृत्य रत्नाकरेभ्य एव च ।
 श्रीरामतोषणेनेयं रोपिता प्राणतोषिणी ॥ कल्पद्रुमो दिशति
 वाञ्छितमेव चिन्तां चिन्तामणिः क्वचन कामदुघा त्वभी-
 ष्टम् । श्रीप्राणतोषणकृता व्रततिर्जनेभ्यो दृष्टैव यच्छति फलं
 भुवि सर्वदेयम् । एतामच्चरमालिकां न मनुतामघ्नः स्वभावो-
 ज्ज्वलां नानारत्नमयीं विलोकयतु सद्गुरुर्वङ्गिकारुष्यतः । विश्वं
 पश्यति मन्दधीर्हंतप्रिया प्रत्यक्षमेतज्जगद्ब्रह्मैवेति विलो-

कते स गुरुतो वैराग्यवाञ्छेत्तदा । आशावात-प्रौढतुङ्गोत्तर-
 ह्येऽपारे सारे हाभ्रमौ घोरसिन्धौ । जीर्णां नीकामाश्रितस्येष्ट-
 सिद्धौ भीतस्यैधि त्वं गुरो ! कर्णधारः । इमां मत्करिणो दोषद-
 ष्योपहसतः प्रति । तथ्यं वदामि श्रुत्वा यदोचते कुर्वतान्तु तत् ।
 मान्याः ! क्षताञ्जलिरहं विनयेन वक्षि सर्वाण्यमुत्र गुरुवृद्ध-
 वचांस्यमूनि । सञ्जीवकार लतिकावयवानमौभिर्दोषा न मे न
 च गुणाः परिवेद्य धीराः । गृह्णन्ति ये गुणकणानिव दोषराशेः
 पङ्केरुहाङ्गमलिनेऽन्यपिकालिकस्थे । पश्यन्तु मादृशविनिर्मि-
 तिचित्रवल्लीं रत्नोज्ज्वलां शुभवरीमुपसर्पकाणाम् । वल्लीयं सर्ग-
 धर्मार्थकमनभजन-ज्ञान-नैर्गुण्यसप्तकाण्डाचित-प्रसूनच्छदमुकुल-
 फला कोरकाद्यैर्विचित्रा । नानाविद्यार्थवादारुणकिरणमहास्त्रि-
 न्रचित्ताकुलानां स्त्रियःसिद्धान्तरूपप्रकृतवचनजच्छाययार्त्तिं नि-
 हन्तु । वैवस्वतान्तरगतस्य गजाक्षिसंख्यस्येयं युगस्य चरणेऽजनि
 तूर्य्यसंख्ये । भूनेत्रधर्मयुगसंस्मितवीतवर्षे राधे दिने गुणमिते
 मृदुला हिमांशोः ॥ शाके नेत्रयुगाद्रिकाश्रपिमितेऽतीतेऽचयायां
 तिथाविषा प्रादुरभूद्विचक्षणमनःकङ्कारसंज्ञादिनी । विप्रश्रियुत-
 रामतोषणकृता श्रीप्राणतोषण्यस्यौ सोमचेमसरस्वतीमयतया
 न्यक्कुर्वतीत्यं विषा ॥ वाणी श्रीप्राणतोषण्यसि सकलगुणा
 वज्रदृग्दीप्तदेहा नित्यं स्निग्धा नवीना नवरसरुचिरा रोपिता-
 राममध्ये । किन्त्वारावृद्धमूर्त्तिर्जगदिदमनुगम्यासि दुष्टार्थबुद्ध्या
 मन्दानर्थाभिमानान्धितखलधिषणान् देवि ! तुभ्यं नमोऽस्तु ॥
 प्रतिकाण्डं नमस्कृत्य देवतां विघ्ननाशिणीम् । काण्डानि निर्मस्ये
 सप्त रत्नोद्दीप्तिकराण्यहम् ॥ आशांशुका शुचिशशीनदिगभ्रकणा
 पञ्चाशदर्णघटिता स्रगनन्तमूर्त्तिः । ध्यातेष्टदा गलितकुन्तलभार-
 रम्या क्षेमाय नो भवतु सम्यति मालकान्ता ॥ आद्यं नूतनसर्ग-
 काण्डममलं यत्रास्ति शब्दाकरो नित्यानित्यविचारशब्दजनि-

विशुद्धोषधुद्योगाः । भूतोद्भूतमिदं चराचरमपि ब्रह्मध्वनि-
जन्तुतो वर्णान् प्रेरयतीति लेखनविधिर्वर्णमिधानादि च ॥
नृणांमत्र प्रवृत्त्यर्थमादौ निर्घण्टनं मया । केषाञ्चित् क्रियते-
ऽन्यानि भूयांसि चेत्तु तान्यपि ॥ आदौ तन्त्रप्रशंसादि वर्णवि-
र्भावकारणम् । शिवशक्त्याविर्भवनं तदवस्थानिरूपणम् । त्रिविधं
शक्तिरूपन्तु ब्रह्मादेः शक्तिनिर्णयः । शक्तिं विना जाद्यमेषां शब्द-
ब्रह्मनिरूपणम् । शब्दब्रह्मपरब्रह्ममूर्तिरीशस्य शाश्वती । इति
सर्गाद्यकाण्डस्य परिच्छेदस्तथादिमः ॥ १ ॥ अर्थाभिव्यक्तये
शब्दस्फोटवादनिरूपणम् । प्रसिद्धानित्यरूपे हि पत्रे नित्यस्य
कीर्त्तिते । अनित्यमतदोषश्च प्रसिद्धमतनिर्णयः । शब्दो ब्रह्मेति
शब्दार्थो ब्रह्मेति मतदूषणम् । नित्यमते पूर्वपक्षसिद्धान्ती च
निरूपितौ । शरीरं तत्त्वषट्त्रिंशन्निर्मितं कञ्चुकान्वितम् । शशी-
नाग्निकलावर्णोद्भवाश्चापि कलास्ततः । वर्णजाः सशक्तिविष्णु-
रुद्राश्चौषधयस्तथा । प्रयोजनचौषधीनां हंसो विक्रतिजाचरम् ।
तद्विक्रतेः प्रकारश्च प्रणवाङ्गसम्भवः । सह नाशे तत्प्रणवस्थिते-
र्निर्दर्शनं तथा । वर्णानां नित्यताबोधकारणं साधकान्तरम् ।
मतद्वये तु वेदानां नित्यानित्यत्वदर्शनम् । तथ्यं नित्यत्वमेतेषां
युक्तिदृष्टिप्रमाणकैः । वर्णभ्यो ग्रहराशुचोत्पत्तिश्चक्रभ्रमात्मिका ।
अमावास्याद्युद्भवश्च नक्षत्रवृत्तनिर्णयः । स्वनक्षत्रवृत्तमात्रच्छे-
दने दोषदर्शनम् । ऋक्षाधिष्ठातृदेवाश्च नक्षत्रयोनिनिर्णयः ।
तद्विरोधदर्शनञ्च दम्पत्यादिविचारणे । तिथिभेददर्शनञ्च तिथ्य-
धिपनिरूपणम् । इत्यङ्गुरपरिच्छेदद्वितीयस्य समापनम् ॥ २ ॥
सदाशिवदेवत्पत्तिर्लवादिकालनिर्णयः । तत्त्वसृष्ट्यारम्भणञ्चा-
हङ्कारस्य विधाकृतिः । त्रिविधाहङ्कृतः सृष्टिः शब्दादेर्भूत-
सम्भवः । भूतमण्डलरूपाणि देहसृष्टिश्चतुर्विधा । पञ्चीकृति-
प्रकारश्चोद्भिदुत्पत्तिस्ततः परम् । पापिनोद्भिदयोनिस्तुब्राह्मणश्चित्

ततः परम् । स्वेदजोत्पत्तिकयनमण्डजोत्पत्तिरेव च । मनु-
 श्वत्वप्रशंसा च जन्ममृत्युक्रमस्तथा । प्रकृत्या जायते सर्वं
 तस्यां संलीयते पुनः । इति शाखापरिच्छेदतृतीयस्य समा-
 पनम् ॥ ३ ॥ रजस्वलाया गर्भस्थात् पुंवैर्याद्वर्गसम्भवः ।
 रजस्वलानिदानञ्च गर्भं वीर्यगतिक्रमः । स्त्रीपुनपुंसको-
 त्पत्तिकारणं तदनन्तरम् । बह्वपत्यत्वादिवीजं बलवद्गर्भका-
 रणम् । जीवप्रवेशनं तत्र शक्राद्युत्पत्तिकारणम् । स्वेदमूत्र-
 पूरीषाणामुत्पत्तित्यागयोः क्रमः । रोगोत्पत्तेः कारणञ्च धातू-
 त्पत्तिक्रमस्ततः । प्राणादीनां क्रियां पश्चात् कललादिनिरूपणम् ।
 मल एष विवेकश्च मांसपिण्डाङ्गुरस्तथा । मेदोमज्जादिसम्भूति-
 रङ्गप्रत्यङ्गसम्भवः । अमीष्टदानं मातुस्तत्फलानिनिर्णयस्तथा ।
 त्वक्शुत्यादिसमुद्भूतिः सन्धेः सम्पूर्णता तथा । दोषदूष्यादिनि-
 र्णीतिरिन्द्रियादिनिरूपणम् । अन्तःकरणनिर्णीतिस्तत्त्वानां पञ्च-
 विंशकम् । पञ्चभूतगुणैर्देहो दशवायुनिरूपणम् । नाडीनिरू-
 पणं नाडीकन्दो द्वारस्थिताः शिराः । शाखाप्रशाखा नाडीनां
 ततः स्थाननिरूपणम् । अस्थ्यस्थिसन्धिपेश्यादि स्त्रीणां पेश्य-
 धिका मता । प्रशाखानामविच्छेदचतुष्कस्य समापनम् ॥ ४ ॥
 वायुनामानि वायूनां मुख्यत्वादिविनिर्णयः । तेषां रूपाणि स्था-
 नानि कर्माणि च पृथक् पृथक् । पिङ्गलेङ्गागते प्राणि सूर्या-
 चन्द्रमसोर्गतिः । दोषदूष्याग्निनामानि चोर्मिकोषनिरूपणम् ।
 क्षेत्रज्ञस्यार्थग्रहणप्रकारस्तदनन्तरम् । श्रोत्रादौ खादिसंस्थानं
 प्राधान्येन निदर्शितम् । वातपित्तकफैर्नुदधातुभीरोगसम्भवः ।
 पूर्वादृष्टस्मृतिर्गर्भस्थितिलक्षणमत्र तु । गर्भाशयप्रमाणन्तु त्रि-
 विधं कर्म तत्परम् । गर्भं चिन्ताप्रकारश्च निक्षेष्टा तदनन्तरम् ।
 देहस्थाक्षरवृत्तान्तं भुवनानि चतुर्दश । तनावद्विहीपखेटराशि-
 नक्षत्रसंस्थितिः । शक्रासृग्भ्यां रक्तविन्दुदर्शनादेश्च सम्भवः ।

सूर्याचन्द्रमसोः स्थानं ब्रह्मादीनां तथैव च । गर्भाच्छिरोर्निः-
 सरणं पूर्वोदान्तस्य विस्मृतिः । गर्भान्निर्गमकाले तु पापिनाम-
 धिका व्यथा । रोदनानेहमि तदा नादावस्थानिरूपणम् । देहा-
 वस्था पुनर्देहप्राप्तिः कर्मानुसारतः । ऐहिकस्य प्रेत्य भोगः क-
 र्मणो जायते ध्रुवम् । इति पञ्चवरूपेषु परिच्छेदसमापनम् ॥ ५ ॥
 अस्यष्टाक्षरभाषा तु श्रुतिमार्गाविभागतः । कुण्डलीस्फूर्तिरे-
 कादिपञ्चाशद्वा यदा भवेत् । गुणिता सा तदा शब्दार्थाद्युद्भूतिः
 क्रमेण च । पञ्चाशत् कामनामानि रतिनामानि च क्रमात् ।
 सशक्तिकगणेशाननामानि तदनन्तरम् । क्षेत्रपालस्य नामानि तत्-
 पूजादिफलं ततः । सुखाद्वर्णप्रकाशस्तत्प्रकाशान्ते तु विस्मृतिः ।
 वर्णप्रकाशस्थानानि चन्द्रसूर्याग्निजाक्षरम् । सर्वे विसर्गजा वर्णा
 अष्टस्थाननिरूपणम् । वर्णाक्षरक्रमाः पाञ्चभौतिकाक्षरनिर्णयः ।
 इति स्तवनरूपं परिच्छेदसमापनम् ॥ ६ ॥ पञ्चवक्त्रोद्वा मन्त्रा-
 निदानञ्च लिपिक्रमः । अकारादिक्षकारान्तवर्णानां दैवतैः
 सह । भूमौ लिपिनिषेधादिलेखनीनियमस्ततः । पुस्तकस्य
 ततो मानं पुस्तकच्छिद्वनिर्णयः । पुस्तिकापत्रनिर्णीतिर्वेदलेख-
 ननिन्दनम् । युगभेदेऽक्षरे देवभेदो लेखकपूजनम् । आरम्भादौ
 लेखकस्य वेतनग्रहदूषणम् । इति कोरकविच्छेदसप्तमस्य समा-
 पनम् ॥ ७ ॥ ईकारादिक्षकारान्तनामानि कुसुमानि च ।
 तन्त्रसङ्केतकारीष्यष्टमच्छेदसमापनम् ॥ ८ ॥ पञ्चवक्त्रोद्वा मन्त्रा-
 स्तन्त्रादिशास्त्रमेव च । गणेशेन सर्वतन्त्रविस्तारकरणं ततः ।
 महामहादिविद्यानां बीजत्वं तदनन्तरम् । तथाष्टदशविद्यानां
 दर्शनानाञ्च निर्णयः । ईश्वरस्य शक्तिसमावेशाच्छास्त्रादिकर्तृता ।
 मनुष्यप्रभृतीनाञ्च शास्त्रकर्तृनिरूपणम् । आन्वीक्षिक्यादिनि-
 र्णीतिर्गृहिणां न तु मानसम् । पापमीशो द्विधात्मानमकरोत्
 तस्य कारणम् । तन्त्रावतारबीजञ्च पञ्चवक्त्राद्यस्तथा । पञ्च-

वक्त्रस्य रूपञ्च पञ्चाम्नायनिरूपणम् । षडाम्नायस्य कथनमाश्ना-
यभेददेवता । आश्नायानां फलञ्चैव तथाश्च फलनिर्णयः । आश्ना-
यभेदमन्त्राणामाचारादिनिरूपणम् । अपवादोत्सर्गतया विद्या-
शास्त्रविनिर्णयः । मन्त्रविद्याविभागश्च देवताभेदतस्तथा । स्त्री-
पुनपुंसकत्वञ्च मन्त्राणां षट्सु कर्मसु । मन्त्राणां क्रूरसौम्यत्वं
स्वप्नजागरणादिकम् । इति केशरविच्छेदनवमस्य समापनम् ॥८॥
क्षिप्वादिदोषनिर्णीतिर्मन्त्राणां तत्प्रतिक्रिया । महामुद्रालक्ष-
णञ्च योनिमुद्राकृतस्तथा । कण्ठासनलक्षणञ्च षट्चक्रेष्ट-
स्मृतियंथा । सहस्राराम्बुजे ध्यानमिष्टदेव्यास्ततः परम् । पुन-
र्मूलाधारपद्मादिषु चित्ताक्रमस्तथा । मन्त्राक्षरस्य चिच्छक्तौ
प्रोतानन्तरकर्म यत् । तत्फलं संवत्सरेणाभ्यासात् सिद्धि-
रनुत्तमा । असक्तस्य योनिमुद्राकरणे तु जपक्रमः । भूतलिपि-
निधानञ्च तस्या ऋष्यादिनिर्णयः । ध्यानं भूतलिपेः प्राणप्रतिष्ठा
तदनन्तरम् । वर्णन्यासः पूजनञ्च नवावृत्तय एव च । होमस्य
कामनाभेदाद्भूतलिप्या पुटीकृतः । सहस्रकृत्वः सञ्चसो मासमात्रं
यदा तदा । मनुः सर्वसिद्धिकरो दशसंस्कारकारणम् । बीजना-
मानि बीजानां भूतडामरसम्मतम् । नामधेयमिदं व्योमपरि-
च्छेदसमापनम् ॥ १० ॥ यद्युत्तन्त्रसारकारैरस्मदंशाजभास्करैः ।
धृतं प्रमाणं तेनात्र नास्ति किञ्चित् प्रयोजनम् । द्रष्टव्यं तत्र
तत् सर्वं मन्त्रयन्त्रादिकं तथा । न्यासपूजादिमुद्रापि स्ववक्ष्य
कवचं तथा । मालासंस्कारकर्मादि सर्वं तत्रास्ति केवलम् ।
संगृह्णाम्यधृतं तेन स्मार्त्तेनापि क्वचित् क्वचित् । मूलग्रन्थानु-
क्रमेण व्याख्यार्थमपि वादिनाम् । आक्षेपस्य निराकृत्यै तद्वृतं
ध्रियते मया । यत्राभिप्रायमावन्तु दर्शितं तेन सूरिणा । प्रमाणं
नैव दत्तं तत् प्रमाणमपि लिख्यते । शब्दाभिप्रायव्याख्यापि
कृता यत्र महात्मना । तेन तदविदो मन्दधियो विहसतः प्रति ।

सष्टीकरोमि तां सर्वां यथाशास्त्रार्थनिश्चयाम् । एष क्रमः
 सर्वकाण्डे विज्ञातव्यो विचक्षणैः । वीजं नव्याङ्कुराख्यं तदनु
 समभवद्विव्यशाखाप्रशाखा जातं तत्पक्षवं तत्स्तवक उद-
 गमत् कोरकोऽतः प्रसूनम् । प्रोद्भूतः केशरः स्वाद्वज्जनि फलमिदं
 सर्गकाण्डस्त्वमीभिर्विद्वद्भ्यश्च यद्वाङ्मयनयुगमितो निर्मलं पश्य
 सर्वम् । धन्यो मान्यो वरेण्योऽग्रगण्यः सत्कीर्त्तिशालिनाम् ।
 स्थिरलक्ष्मीनिवासः श्रीयुतः स्वीयेष्टभक्तिमान् । प्राणकृष्णश्चिर-
 क्षीवी भवतादात्मजैः सह । मुण्डमालातन्त्रे अष्टमपटले । विना
 तन्त्रात् विना मन्त्रात् विना यन्त्रात् महेश्वरि ! । न च भुक्तिश्च
 मुक्तिश्च जायते वरवर्णिनि ! । मन्त्रसूक्ते महातन्त्रे चतुर्विंश-
 तिसाहस्रे उपरिभागे प्रथमचरणे चतुर्थपटले । विष्णुर्वरिष्ठो
 देवानां हृदानामुदधिर्यथा । नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां
 हिमालयः । अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राज्ञामिन्द्रो यथा वरः ।
 देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा । तथा समस्तशा-
 स्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम् । इति तन्त्रशास्त्रप्रशंसा । बृह-
 न्नीलतन्त्रे प्रथमपटले । यद्गृहे निवसेत्तन्त्रं तत्र लक्ष्मीः
 स्थिरायते । राजद्वारे श्मशाने च सभायां रणमध्यतः ।
 निर्जने च जले घोरि श्वापदैः परिभूषिते । माहात्म्यात्स्थ
 देवेशि ! चमत्कारो भवेत् प्रिये ! । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन
 गोपनीयं प्रयत्नतः । इति गृहे तन्त्रशास्त्रस्थितिफलम् । मन्त्र-
 सूक्ते । यानि तन्त्रागमोक्तानि न हन्तव्यानि हेतुभिः । ईश्व-
 रेण प्रणीतानि यस्मात्तस्माद्विजातिभिः । इति हेतुवादेन त-
 न्नोक्तकर्महानिनिषेधः । तत्रैव । ज्योतिषे मन्त्रवादे च वैद्यके
 वेदकर्मणि । अर्थमात्रन्तु गृह्णीयान्नापशब्दं विचारयेत् । मन्त्रस्य
 वादो यत्र इति मन्त्रवादस्तन्त्रमिति । ज्योतिरादौ शब्दवि-
 चारनिषेधः । तत्रैव । शब्दे मा संशयं कुर्याददृष्टस्त्विति कुब-

चित् । अद्वातयं विनिश्चित्य आनन्तराच्छब्दरूपतः । निर्वाण-
तन्त्रे नवमपटलेऽपि । शब्दब्रह्मस्वरूपञ्च मम वक्तादिनिर्गतम् ।
सन्देहो नैव कर्तव्यो यदि मुक्तिं समिच्छति । सन्देहात् परमं
याति रौरवं पिष्टभिः सह ॥ इति तन्त्रशास्त्रे संशयनिषेधः ।
गन्धर्वतन्त्रे द्वितीयपटले । सर्वकार्येषु सर्वत्र तान्त्रिके वैदिके
तथा । अविश्वासो महान् दोषो यन्नतस्तं विवर्जयेत् । संसिद्धेः
कारणं देवि ! विश्वासः समुदाहृतः ॥ इति शास्त्रे विश्वासफ-
लम् ॥ महानिर्वाणतन्त्रे चतुर्दशोक्तासे ॥ किं तस्य तीर्थभ्रमणैः
किं यज्ञैर्जपसाधनैः । जानन्नेव महातन्त्रं कर्मपात्रैर्विमुच्यते ।
स सिद्धः सर्वशास्त्रेषु सर्वधर्मविदां वरः । स ज्ञानी ब्रह्मवित् साधु
यस्तन्त्रं वेत्ति कालिके ॥ इति तन्त्रज्ञानफलम् ॥ तत्रैव ।
अलं वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः । किमन्यैर्बहुभि-
स्तन्त्रैः ज्ञात्वैकं सर्वविद्भवेत् । इत्येकतन्त्रस्यापि ज्ञानफलम् ॥
गन्धर्वतन्त्रे द्वितीयपटले । आस्ति कोऽथ शुचिर्दक्षो द्वैतहीनो
जितेन्द्रियः । ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवादी च ब्रह्मी ब्रह्मपरायणः ।
सर्वहिंसाविनिर्मुक्तः सर्वप्राणिहिते रतः । सोऽस्मिन् शास्त्रेऽधि-
कारी स्यात्तदन्यत्र न साधकः ॥ इति तन्त्रशास्त्राधिकारिकथ-
नम् ॥ कुजिकातन्त्रे प्रथमपटले ॥ श्रुतिस्मृतिविधानेन
पूजा कार्या युगत्रये । आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत्
सुधीः । न हि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः ॥
पुरश्चरणरसोक्तासतन्त्रे तृतीयपटलेऽपि ॥ तन्त्रोक्तं ध्यानमन्त्रञ्च
प्रशस्तं भारते कलौ । वेदोक्तञ्चैव स्मृत्युक्तं पुराणोक्तं वरानने । ।
न शस्तं चञ्चलापाङ्गि । कदाचिद्भारते कलाविति ॥ महानिर्वाण-
तन्त्रे द्वितीयोक्तासे च ॥ विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः
प्रिये ! । श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे ! । आगमोक्तेन
विधिना कलौ देवान् यजेत् सुधीः । कलावागममुक्त्वा योऽन्य-

मार्गं प्रवर्तते । न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥
 तथा, कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः । शक्ताः
 कर्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु । निर्वीर्याः श्रौतजातीया विष-
 ह्नीनोरगा इव । सत्यादौ सकला आसन् कलौ ते मृतका
 इव । पाञ्चालिका यथा भिक्षी सर्वेन्द्रियसमन्विताः । अमूर-
 शक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रशयः । अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म
 वन्त्यास्त्रीसङ्गमो यथा । न तत्र फलसिद्धिः स्यात् अम एव
 हि केवलम् । कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः ।
 दूषितो जाङ्गवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः । नान्यः पन्था मुक्ति-
 हेतुरिहामुत्र सुखामये । यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च
 सुखाय च ॥ इति कलौ तन्त्रशास्त्रोक्तकर्मणा फलप्राप्तिकथनम् ॥
 मुण्डमालायाम् । तन्त्रवक्ता गुरुः साक्षात् यथा च ज्ञानदः शिवः ।
 यथा गुरुर्महेशानि । यथा च परमो गुरुः । यथा परापरगुरुः
 परमेष्ठी यथा गुरुः । यथा चैव हि मन्त्रज्ञस्तन्त्रवक्ता गुरुः स्वयम् ।
 इति तन्त्रवक्तृप्रशंसा ॥ तत्रैव ॥ तन्त्रञ्च तन्त्रवक्तारं निन्दन्ति
 तान्त्रिकीं क्रियाम् । ये जना भैरवास्तेषां मांसास्थिचर्वणो-
 द्यताः । अतएव च तन्त्रञ्च न निन्दन्ति कदाचन । न हसन्ति
 न निन्दन्ति न वदन्तान्यथा क्वचित् ॥ इति तन्त्रादिनिन्दा-
 कारणदोषः ॥ प्रथमपटले ॥ शृणु देवि ! जगद्धात्रि ! सर्वमङ्गल-
 मङ्गलम् । तन्त्रं शृणुयाद्देवेशि ! ब्रह्मनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ दशम-
 पटले ॥ तन्त्रराजं महेशानि ! सारात्सारतरं प्रिये ॥ श्रुत्वा ज्ञात्वा
 मोक्षमाशु लभते नात्र संशयः ॥ एकादशपटले ॥ शृणुयात्
 यो मुण्डमालातन्त्रं परमकारणम् । ज्ञानदं मोक्षदं भक्तिभुक्ति-
 सौख्यप्रदं शिवे ! इत्येवं परमं देवि ! देवानामपि दुर्लभम् । यो
 वेद धरणीमर्धं स एव परमार्थवित् ॥ इति तन्त्रविशेषश्रवण-
 फलम् ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥ ज्ञानञ्च निर्मलं कृत्वा बुद्धिञ्च निर्मलां

ततः । महाभक्तियुतो भूत्वा सर्वप्राणिहिते रतः । शब्दब्रह्ममयं
 ज्ञात्वा शृणोति पटलं यदि । तदा मुक्तिमवाप्नुति सत्यं सत्यं न
 संशयः । अष्टादशपुराणानां श्रवणेनैव यत् फलम् । मेरुतुल्य-
 ध्रुवर्षश्च मुरवे ब्रह्मरूपिणे । सशस्यां परमेशानि ! सप्तद्वीपां वसु-
 न्धराम् । प्रदद्याद्भक्तिभावेन यदि स्यात् वेदपारगः । तस्माद्दे-
 परमेशानि ! फलं बहुविधं शिवे ! । अस्य तन्त्रस्य चार्वाङ्गि !
 शृणोति पटलं यदि । तत्फलत्वात् कोटिगुणितं फलं स लभते
 ध्रुवम् । इति तन्त्रस्य पटलमात्रश्रवणफलम् । शब्दज्ञानं विना सर्वो
 जाद्येन परिभूष्यते । प्रादुर्भूतिमतस्त्वग्रे शब्दानां वक्तुमारभे ।
 सारदातिलके प्रथमपटले ॥ सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमे-
 श्वरात् । आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्दिन्दुसमुद्भवः ॥ सच्चि-
 दानन्दविभवादित्यनेन अवियोपहितत्वेऽप्यौश्वरस्य स्वरूपहानि-
 रिति राघवभट्टः । सकलात् सप्रकृतिकादौश्वरात् शक्तिरासीदिति
 योजना । तथा च तत्रैव । निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः
 सनातनः । निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ॥ इति
 कला प्रकृतिस्तया सह वर्तमानादिति तद्वाक्यान्वयः । ननु
 शक्तिसहितादेव पुनः शक्तिः कथमासीदिति चेत् सत्यं या
 अनादिरूपा चैतन्याध्यासेन महाप्रलये सूक्ष्मतया स्थिता तस्या
 गुणवैषम्यात् सगुणतया सात्त्विकराजसतामससंश्लेषप्रपञ्चसाधने
 तद्गुणावस्थाने वीपचारादुत्पत्तिरिति सांख्यमतमाश्रित्य ग्रन्थ-
 कारस्योक्तिरियमिति ज्ञेयम् । तथाच मार्कण्डेयपुराणम् । देवानां
 कार्यसिद्धयर्थमाविर्भवति सा यदा । उत्पन्नेति तदा लोके सा
 नित्याप्यभिधीयते । राघवभट्टदृष्टतप्रयोगसारश्च । तस्माद्भिनिर्गता
 नित्या सर्वगा विश्वसम्भवा । विश्वेषां सम्भवो यस्या इति ।
 तद्भूतवायव्यसंहितापि । शिवेच्छया परा शक्तिः शिवतत्त्वैकतां
 गता । ततः परिस्फुरत्यादौ सर्गे तैलं तिलादिवेति । कुञ्जिका

तन्मे प्रथमपटले तु । आसीद्विन्दुस्ततो नादो नादाच्छक्तिः समु-
 ज्जवा । नादरूपा महेशानि । चिद्रूपा परमा कला । नादाच्चैव
 समुत्पन्ना अर्धविन्दुर्महेश्वरि ! । सार्धचितयविन्दुभ्यो भुजङ्गी
 कुलकुण्डली । विगुणा सगुणा देवि ! ब्रह्मरूपा सनातनी । चैत-
 न्यरूपिणी देवी सर्वभूतप्रकाशिनी । आनन्दरूपिणी देवी ब्रह्मा-
 नन्दप्रकाशिनी । इति विन्दोरादौ उत्पत्तिर्योक्ता सा आम्नायमे-
 देन अचिरुहेति । स चाम्नायमेदोऽग्रे स्फुटीभवित्यति । इति स-
 गुणशिवाच्छक्त्युत्पत्तिः । तस्याः शक्तेस्तु नादविन्दुसृष्ट्युपयोग्य-
 वस्थारूपी । तदुक्तं प्रयोगसारे । नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामय-
 पदोन्मुखी । शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता ।
 इति शक्त्यवस्थामेदः । इच्छासत्त्वादिरूपतया विन्दुरपि त्रिविध
 उक्तः सारदातिलके कान्त्यकुञ्जवासिना जगद्गुणा लक्षणाचा-
 र्येण । शिवशक्तिमयः साक्षाच्चिदासी भिद्यते पुनः । असौ विन्दुः
 शिवमयः शक्तिमय उभयमयश्चेति त्रिविधः । त्रिविधस्य स्वरू-
 पमुक्तं तत्रैव । विन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः ।
 विन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मिथः । समव्ययः समा-
 ख्यातः सर्वागमविशारदैः । क्रियासारेऽपि । (विन्दुः शिवा-
 त्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम् । तयोर्योगे भवेन्नादस्ताभ्यो
 जातास्त्रिशक्तयः) इति त्रिविन्दुकथनम् । शक्तिद्वयमुक्तं तत्रैव ।
 रौद्रीविन्दोस्ततो नादात् ज्येष्ठा बीजादजायत । कामा ताभ्यः
 समुत्पन्ना रुद्रब्रह्मरमाधिपाः । (ते ज्ञानेच्छाक्रियात्मानो वङ्गी-
 न्दकस्वरूपिणः) एतत् सार्धवचनं शारदायामपि । ते रुद्रब्रह्म-
 रमाधिपाः शिवब्रह्मनारायणा यथाक्रमं ज्ञानशक्तौच्छाशक्ति-
 क्रियाशक्तिस्वरूपा इत्यर्थः । अतएवैते वङ्गीन्दकस्वरूपिणः शब्दस्य
 सृष्ट्यन्तर्गता निबोधका अर्धेन्दुविन्दुरूपाः शक्तेरेवावस्थाविशेषा
 ज्ञेयाः । एतेन शक्तेरेव सृष्ट्यादिकर्तृत्वमिति ध्वनितम् । ननु

शब्दार्थभावि भुवनं सृजतीन्दुरूपा यावद्विभक्तिं पुनरर्कतनुः
 स्वशक्त्या । वङ्गगामिका चरति तत् सकलं युगान्ते तां शारदां
 मनसि जातु न विस्मरामीति । गोरक्षसंहितायामपि । इच्छा-
 क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी तु वैष्णवी । त्रिधा शक्तिः स्थिता
 यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति । यथासम्भवमुद्वेगम् अत्र ज्ञानं गौरी-
 शक्तिरिच्छा ब्राह्मीशक्तिः क्रिया वैष्णवीशक्तिरिति त्रिधा त्रिप्र-
 कारा सा । वक्ष्यमाणायामपि तस्यां सूर्येन्दुपावकान् । प्रणवस्य
 त्रिभिर्वर्णैरित्यादिप्रणवांशाः अकारोकारमकारा ब्रह्मविष्णु-
 रुद्रात्मका अकाराब्रह्मणोत्पन्नमित्यादि ब्रह्मविष्णुशेखरास्त-
 तन्मण्डलेषु व्यवस्थिता इति । तेन तत्र तत्र सूर्यरूपोऽकारो
 ब्रह्मा अत्र तु सूर्यरूपो विष्णुरिति पूर्वापरलिखनानुसारेण
 विरोध इति चेदर्थसृष्ट्यनुसारेण क्रमोऽनुसन्धेयो न तु लिखना-
 नुसारेणेति स्थितम् । योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे दशमपटले तु ।
 इत्युक्त्वा सा महाकाली ददावस्मासु शम्भवि ! । इच्छाक्रिया-
 ज्ञानशक्तिः सर्वकार्यार्थसाधना । इच्छा तु विष्णवे दत्ता क्रिया-
 शक्तिस्तु ब्रह्मणे । मह्यं दत्ता ज्ञानशक्तिः सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
 इत्यनेन विष्णोरिच्छाशक्तिरिति यदुक्तं तदाम्नायभेदेनाविरुद्धम् ।
 एवं वक्ष्यमाणपञ्चाम्नायप्रदाम्नायतत्तदाम्नायरूपादिनिरूपकप्रसृ-
 तिपरस्परविरुद्धवचनानि सात्त्विकादिभेदेनाम्नायभेदेन वा
 व्यवस्थेयानीति निबोधिकादिषष्टिकथनम् । निर्वाणतन्त्रे प्रथम-
 पटले तु । सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी ।
 भायावत्कलमुत्सृज्य द्विधा भिन्ना जगन्मयी । शिवशक्तिविभा-
 गेन जायते सृष्टिकल्पना । प्रथमे जायते पुत्रो ब्रह्मसंज्ञो हि
 पार्वति ! । कालिकोवात्र । शृणु पुत्र ! महावीर ! विवाहं कुरु
 यत्नतः । एतत् श्रुत्वा ततो ब्रह्मा उवाच सादरं वचः । त्वां
 विना जननी नास्ति शक्तिं मे देहि सुन्दरि ! । तत् श्रुत्वा ज-

गतां माता स्वदेहात् मोहिनीं ददौ । द्वितीया सा महाविद्या
 सावित्री परमा कला । अस्याः सङ्गं समासाद्य वेदविस्तारणं
 कुरु । अनायासे सृष्टिकर्ता भव त्वं महिमण्डले । द्वितीये जा-
 यते पुत्रो विष्णुः सत्त्वगुणान्ध्रः । कालिकोवाच । शृणु पुत्र !
 महावीर । विवाहं कुरु यद्वतः । विष्णुरुवाच । तव दर्शनमात्रेण
 निष्कामी जायते पुमान् । कथं करोमि हे मात । मोहिनीं देहि
 मे शिवे । देहाच्छक्तिं विनिष्कृष्य ददौ तस्मै च कालिका ।
 वैष्णवीं तां महाविद्यां श्रीविद्यां परमेश्वरि ! । तामाश्रित्य महा-
 विष्णुः पालयत्यखिलं जगत् । तृतीये जायते पुत्रो महायोगी
 सदाशिवः । तं दृष्ट्वा सा महाकाली ऋतुयुक्ताभवन्मुदा । शृणु
 पुत्र ! महायोगिन् ! महाकथं हृदयं कुरु । त्वां विना पुरुषः को
 वा मां विना कापि मोहिनी । अतस्त्वं परमानन्दो विवाहं
 कुरु मे शिव । । सदाशिव उवाच । यदुक्तं कर्म हे मातस्त्वां
 विना नास्ति मोहिनी । सत्यमेतत् जगन्मात ! मां विना पुरुषो
 न च । अस्मिन् देहे संस्थिते च न करोमि विवाहकम् । कुरु
 देहान्तरं मातः करुणा यदि वर्तते । तत्क्षणे सा महाकाली
 ददौ भुवनसुन्दरीमिति । कुञ्जिकातन्त्रे प्रथमपटले । ब्रह्माणो
 कुरुते सृष्टिं न तु ब्रह्मा कदाचन । अतएव महेशानि ! ब्रह्मा
 प्रेतो न संशयः । वैष्णवी कुरुते रक्षां न तु विष्णुः कदाचन ।
 अतएव महेशानि ! विष्णुः प्रेतो न संशयः । रुद्राणी कुरुते
 ग्रासं न तु रुद्रः कदाचन । अतएव महेशानि ! रुद्रः प्रेतो न
 संशयः । ब्रह्मविष्णुमहेशाया जड़स्यैव प्रकीर्तिताः । प्रकृतिश्च
 विना देवि ! सर्वकार्याक्षमा भ्रुवमित्युक्तम् । इति शक्त्या सृष्ट्या-
 दिकथनम् । शब्दब्रह्मण उत्पत्तिमाह । शारदायां प्रथमपटले ।
 भिद्यमानात् पराहिन्दोरव्यक्तात्मा वरोऽभवत् । शब्दब्रह्मेति तं
 माहुः सर्वागमविशारदा इति । पराहिन्दोरित्यनेन शक्त्यवस्था-

रूपो यः प्रथमो विन्दुस्तस्माद्विद्यमानादव्यक्तात्मा वर्णादिविशेष-
रहितोऽखण्डो नादमात्रमुत्पन्नमित्यर्थः । उक्तञ्चदुर्गेण यत्र ध्वना-
वकारादयो वर्णा विशेषरूपेण न व्यज्यन्ते स ध्वनिरव्यक्त इति ।
सृष्ट्यनुसुखपरमशिवप्रथमोक्तासमात्रमखण्डोऽव्यक्तो नादविन्दु-
मय एव व्यापको ब्रह्मात्मकः शब्दः । शब्दब्रह्मेति हृदयं तथा
च राघवमदृष्टं वचनम् । क्रियाशक्तिप्रधानायाः शब्दशब्दार्थकार-
णम् । प्रकृतेर्विन्दुरूपिण्याः शब्दब्रह्माभवत्परमिति । प्रयोग-
सारेऽपि । सोऽन्तरात्मा तदा देवि ! नादात्मा नदते स्वयम् ।
यथा सेस्थानभेदेन सम्भूय वर्णतां गतः । वायुना प्रेक्ष्यमाणासौ
पिण्डाद्वर्तिं प्रयास्यतीति । शारदातिलके । (चैतन्यं सर्वभूतानां
शब्दब्रह्मेति मे मतम् । तत् प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देह-
मध्यगम् । वर्णात्मनाविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः) तद्विद्यमान-
विन्दुरूपं चैतन्यं कुण्डलीस्वरूपं प्रणवाकारं प्राणिनां देह-
मध्यगं सत् वर्णात्मना आविर्भवति प्रकाशत इत्यन्वयः । किं कृत्वा
प्राप्य कण्ठादिकरणानीति शेषः । तथा च मूलाधारात् प्रथम-
मुदितो यस्तु तारः पराख्य इत्यादि प्रपञ्चसारे आश्चर्य्यो वक्ष्यति ।
अतएव वक्ष्यमाणा सृष्टिः कुण्डलीत इति ज्ञेयम् । शब्दब्रह्मपरम-
ब्रह्मभेदेन ब्रह्मणो वैविध्यमुक्तं कुलार्णवे पञ्चमखण्डे प्रथमोक्तासे ।
आगमोत्पत्त्यं विवेकोत्पत्त्यं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते । शब्दब्रह्मागमनखं
परं ब्रह्मविवेकजम् । श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे षोडशाध्यायेऽपि ।
अहं सर्वाणि भूतानि भूतात्मा भूतभावनः । शब्दब्रह्म परं ब्रह्म
ममोभे शाश्वती तनुरिति । शब्दब्रह्म प्रणवरूपं तथा च भग्न-
वद्गीता । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् । यः
प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिमिति । ओमिति
ध्वनिमात्रोपलक्षणमतो वक्ष्यमाणगुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म लभ्यते ।
तत्प्रसादत इत्यादिवचनैः सह न विरोधः । सर्वत्रैव ध्वनेर्विद्य-

मानत्वात् । प्रणवार्थो वा वाच्यन्तु परमं ब्रह्मप्रणवो वाचकः
स्मृत इत्यादिवचनात् ।

इति श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमकाण्डे वीजस्वरूपशब्दप्रादु-
र्भावरूपाकरकथनं नाम प्रथमः परिच्छेदः । * * * *

इत्याकरे समुद्भूते शब्दे संशयरूपतः विवादविलमुत्पन्नं पर-
स्परजिगीषयेति । अथ शब्दा नित्या अनित्याः प्रसिद्धाश्चेति मत-
त्रयम् । तत्र पूर्वमते शब्दब्रह्मेति सुष्ठुक्तम् । अनित्यवादिनोऽपि
बहवस्तेषां मध्ये आन्तरस्फोटवादिनो जातिव्यक्तिस्फोटात्मक-
वाह्यस्फोटवादिनश्चैवं विवदन्ते यथा अथ कथमर्थः शब्देन प्रति-
पाद्यते प्रतिपादयितुमक्षमत्वात् । तथा हि नियतवर्णाः पदार्था
गमयन्ति ते किं क्रमेण युगपद्वा । नाद्यः । गौरित्यादौ गादिवर्णैः
प्रत्येकमर्थप्रतिपादने कृते अपरवर्णवैयर्थ्यं स्यात् । अथ वर्णैरेकशः
कियानर्थावयवः प्रतिपाद्यत इति चेत्तदप्ययुक्तम् । न हि गवाद्यव-
यवे गादिवर्णानां सङ्केतोऽस्ति । न द्वितीयः । भिन्नकालोप-
लब्धानां यौगपद्याभावात् । उच्चरितप्रध्वंसिनो हि वर्णास्ताव-
त्कालमवतिष्ठन्ते । न च पूर्वपूर्ववर्णज्ञानं तस्योत्तरोत्तरवर्ण-
ज्ञानानुवृत्तौ नित्यत्वे प्रसङ्गात् अतएवेदं निरस्तम् । यावन्तो
यादृशा ये च तदर्थप्रतिपादने । वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्याः ते तथै-
वार्थबोधका इति । तस्मादनुत्पन्नोत्पन्ननष्टयोरसत्त्वे विशेषा-
भावात् वर्णभ्योऽर्थप्रत्ययो न सम्भवतीति वर्णाव्यतिरेकेण वर्णाः
भिद्यङ्गः स्फोटः परिकल्प्यते । स्फुटत्यर्थो यस्मादिति स्फोटो-
ऽपादानेऽल । वर्णोच्चारणन्तु स्फोटार्थमेव । पादवर्णा हि स्फोट-
व्यञ्जका इति क्रमयौगपद्याभ्यां व्यञ्जकासम्भव इति चेन्नवति
तावदर्थप्रतिपत्तिः तदनुपपत्त्या वर्णेष्वपि स्फोटः कल्प्यते । तस्मात्
वर्णस्फोटात् पदस्फोटस्तस्मादर्थप्रतिपत्तिरित्यत्र क्रमयौगप-
द्याभ्यां पदेभ्यो वाक्यार्थानुपपत्त्या पदस्फोटव्यञ्जितात् वाक्य

स्फोटो वाक्यार्थप्रतीतिः । ननु गौरित्युच्चारणानन्तरं वर्ण-
व्यतिरिक्तं परं किञ्चिन्नोपलभामहे । केवलं वर्णा एव प्रतिपा-
द्यन्ते । तस्मादनुपलभ्यमानत्वात् स्फोटरूपं नाम नास्त्येव शश-
विषाणादिवदिति स्फोटवादिनामाक्षिपन्ति । शपथैरपि ना-
देयं वचो वः स्फोटवादिनाम् । नभःकुसुममस्तीति कोऽभिदध्यात्
सचेतन इति । तत्र स्फोटवादिभिरुच्यते प्रत्यक्षेण न गृह्यते
स्फोटः । तथा हि गौरित्यत्र गकारौकारविसर्गेति वर्णत्रयस्य
क्रमेणानुभवानन्तरं पदमिति अभिन्नाकारा बुद्धिरुपजायते । न च
तस्यां वर्णत्रयानर्थक्यं प्रयुज्यते अभिन्नत्वात् बुद्धेः । यथा पटबुद्धि-
रभिन्ना तन्बुभिरवोपजायमाना तन्बुव्यतिरिक्तं पटमवलम्बते ।
तथा इहापि वर्णत्रयव्यतिरिक्तं वस्वन्तरमवलम्बते स च स्फोट
इति । ननु वर्णव्यतिरिक्तमन्यइस्तु न दृश्यत एव पटोऽपि तर्हि
तन्बुव्यतिरिक्तो न दृश्यते कथमङ्गीकर्तव्यः पटबुद्धौ पटः प्रकाशते
स्फोटोऽपि तर्हि तथा । अथ स्फोटः किंस्वरूप इदं तदिति
शृङ्ग्याहितया प्रतिपाद्यताम् । अथोच्यते । यो हि यदबुद्धिग्राह्यः
स तदबुद्धिबोध एव न बुद्धान्तरेभ्य इति पटोऽपि तर्हि तट-
बुद्धैव प्रतिपाद्यते । न तु बुद्धान्तरेण तस्मात् । यथा तन्बुनुभ-
वानन्तरमवयवी प्रत्यक्षसिद्धः पटस्तद्वत् सकलवर्णानुभवानन्तर-
मनुभूयमानो वर्णाभिव्यङ्ग्यः । प्रत्यक्षसिद्धस्फोट इति गोपीनाथ-
तर्काचार्याः । तस्मात्तद्वयं दूषयितुमुपक्रमन्ते शारदातिलके
प्रथमपटले आचार्याः । शब्दब्रह्मेति शब्दार्थं शब्दमित्यपरे
विदुः । एके आचार्याः शब्दार्थम् आन्तरस्फोटं शब्दब्रह्मेत्याहुः ।
यथाह । निरंश एव अभिन्नोनित्यबोधस्वभावः शब्दार्थ आन्त-
रस्फोट इति । अपरे वैयाकरणाः पूर्वपूर्ववर्णोच्चारणाभिव्यक्त-
तत्तत्पदसंस्कारसहायचरमपदग्रहणोद्बुद्धं वाक्यस्फोटलक्षण-
मखण्डैकार्थप्रकाशकं शब्दं शब्दब्रह्मेति वदन्ति । यथाह । एक

एव नित्योऽभिव्यक्तोभ्योऽखण्डो व्यक्तिस्फोटो जातिस्फोटो वा
 बहोरूप इति । न तु अनित्यः शब्दश्चेत्तदा नानामुनिभिर्महादेवेन
 देव्यर्चनानानाशास्त्रेषु एकमेव वचनं क्वचित् क्वचित् कथमुक्तं
 तदग्रे व्यक्तीभविव्यति । नित्यपक्षे तु नैष दोषो वचनस्यापि नित्य-
 त्वात् इति चेत् न । अनित्यपक्षेऽपि नानावक्तादेकस्वरूपा भा-
 रती वचनरूपेण निर्गतेत्यनेन कस्यापराधस्तस्याः शक्तेः वैचि-
 त्त्र्यात् । यत्तु योगिनौतन्त्रे प्रथमखण्डे दशमपटले । तन्मध्ये तु
 मया दृष्टं वर्षपुच्छं महोज्ज्वलम् । सूर्यकोटिसमाभासं चन्द्र-
 कोटिसुशीतलम् । वाङ्मकोटिमहोज्ज्वालं परं ब्रह्ममयं ध्रुवमिति
 वचनं तद्ब्रह्माण्डादिवदाद्याशरीरस्थत्वेन अवधातव्यमन्यथा
 तच्छरीरवर्तिनां ब्रह्माण्डादीनामपि नित्यं स्यात् । तच्छरीरे
 ब्रह्माण्डन्तु । अतीव बृहदाकारब्रह्माण्डकोटिकोटयः । चरन्ति
 सर्वदा देवि ! कः संख्यातुं क्षमो भवेत् । इति तदनन्तर-
 शिववचनाजज्ञेयम् । अथ भवन्मते मन्दवेदगायत्रादीनाम-
 नित्यत्वापत्तिरिष्टापत्तिरिति चेत् । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म
 व्याहरन् मामनुस्मरन् । इति गीतोक्तम् । गुरुवक्त्रे स्थितं ब्रह्म
 लभ्यते तत्रसादत ! इति गुरुगौतोक्तम् । गुरुणा यस्य यत्
 प्रोक्तं तत्तस्य ब्रह्मसंज्ञितम् । इति गुप्तसाधनतन्त्रे षष्ठपट-
 लोक्तम् । गायत्री ब्रह्मरूपिणीति तत्त्ववचोक्तमपौरुषेयाणि वेद-
 वाक्यानीति दुर्गसिंहोक्तञ्च । उक्तञ्च दोषाः सन्ति न सन्तीति
 पौरुषेयेषु विद्यते । वेदे कर्तुरभावात्तु दोषाश्चैव नास्ति नः ।
 इति तत्र तत्र लक्षणाया ब्रह्मप्रतिपादकमिति व्याख्यातव्यमिति
 चेन्नैवं लक्षणा रुद्धिप्रयोजनाभ्यां वञ्चितत्वादिति । उक्तञ्च काव्य-
 प्रकाशे । मुख्यार्थबाधे तदयोगे रुद्धितोऽर्थप्रयोजनात् । अन्यार्थो
 लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया । इति शब्दश्रवणमात्रा-
 वगम्योऽर्थः मुख्यार्थः । यथोक्तं गोपीनाथतर्काचार्येण । श्रुति-

मात्रेण यवास्य तादर्थ्यमवसीयते । तं मुख्यमर्थं मन्यन्ते गौणं
यत्रोपपादितमिति । बाधस्तु अन्वयानुपपत्तिः । यथेत्यर्थं यदित्य-
व्ययम् । क्रियाव्यापारः । आरोपिता अभिधेयप्रत्ययान्तरित-
प्रत्ययेति । प्रसिद्धादिनस्तु नामी वर्णा नित्यास्तल्लक्षणायोगात् ।
तथा हि सदकारणवन्नित्यमिति नित्यलक्षणम् । सत् सत्त्वाशक्ति
अकारणवत् कारणरहितं यत् तन्नित्यमित्यर्थः । केवलं सद-
ित्युक्ते षट्पटादेर्ध्वसंस्थापि नित्यत्वप्रसङ्गः स्यात् । केवलमकारण-
वदित्युक्तेऽपि प्रागभावस्यापि नित्यत्वप्रसङ्गः । अतो विशेषण-
द्वयमिति । वर्णास्तु कण्ठताल्लादिकरणक्रमानुविधायिजन्मानः
नित्या भवितुमर्हन्ति । नाप्यनित्याः स एवायं शब्दो यः पूर्व-
सुपालथ इति प्रत्यभिज्ञानात् । अथ तत्पतिरूपकोऽयमिति
चेत्तथापि सङ्केतान्तरप्रसक्तिः स्यात् । सङ्केतस्तु । अस्माच्छब्दा-
दयमर्थो वोहव्य इत्युद्देशनरूपः । वर्णादिषु उच्चरितप्रध्वस्तेषु
सङ्केतोऽपि ध्वस्त इति । तस्मान्न अस्मी वर्णा नित्या नाप्यनित्याः ।
किन्तु अनवच्छिन्नसन्तानाः प्रसिद्धा इति । ननु वर्णा नित्या-
श्चेत्तदा कथमुक्तं वर्णात्मनाविर्भवतीति । नैवमभिप्रायापरि-
ज्ञानाद्दोषमाशङ्कते तथा हि । शब्दो द्विविधो ध्वनिर्वर्णश्च ।
षड्जर्षभगान्धारमध्यपञ्चमधैवतनिषादेषु सप्तसु स्वरेषु वर्णं
विना ध्वनिः स्वातन्त्र्येण प्रतिभाति । अमरसिंहेनापि तन्त्री-
कण्ठोत्थिताः स्वरा इत्युक्तम् । तथा च षड्जं रौति मयू-
रस्तु गावो नर्दन्ति चर्षभम् । अजो रौति तु गान्धारं क्रीडं
क्षणति मध्यमम् । पुष्पसाधारणे काले ककिलो रौति पञ्चमम् ।
धैवतं कुञ्जरो रौति निषादं ह्येषते हय इति रायमुकुटप्रभृति-
धृतसङ्गीतवचनमिति । मालवादयो रागा अपि सूर्च्यतस्वर-
भेदेन ध्वनिरेव भवति । तथाच मालवोऽयं वसन्तश्चायमित्यादि
गौतिश्रवणसमये ध्वनिभेदेन सामाजिकानां प्रतीतिः स्यात् ।

ध्वनिभेदज्ञानन्तु स्वरभेदेन भवति । न तु वस्तुत इति । ध्वनि-
मन्तरेण वर्णो न प्रकाशते । अर्थावबोधाय ध्वनिवर्णात्मना आवि-
र्भवति प्रकाशत इति तस्य तात्पर्यम् । नन्वर्थावबोधाय परा
पश्यन्ती मध्यमा वैखरीत्वरूपावस्थः सन् ध्वनिरपि प्रकाशते ।
तथाच गवादीनां वस्त्रप्रभृत्यावाहनादर्थं नादः प्रवर्त्तते ॥ अत-
एवोक्तं स्वरशास्त्रे ॥ शिशुर्वेत्ति पशुर्वेत्ति वेत्ति गीतिरसं फणी ।
हरिर्वेत्ति हरो वेत्ति नारदोवेत्ति वा न वा ॥ इति चेत् सत्यम् ।
गवादीनां स्वरमात्रप्रतीतिसमवायिनां कियद्विषयकज्ञानमस्ति
न तु धीमेधाविज्ञानानि तानि तु वर्णज्ञानादृते न सम्भवन्ति ।
तथाहि ईश्वरविषयकज्ञानमपीश्वरशब्दं विना न भवति ।
एवमनिर्देश्यं निर्गुणं ब्रह्मापि अन्धकारावस्थितवस्तुप्रकाशकप्रदीपे-
नेव तत्प्रकाशकमात्रेण निर्गुणशब्देनैव व्यज्यते । अतएव ध्वनिं
वृणाय मत्वा शिशुर्वेत्ति पशुर्वेत्ति वेत्ति गीतिरसं फणी । एकन्तु
कवितातत्त्वमीश्वरो वेत्ति नापर इत्यनेन काव्यविद्विरूप-
हसितम् । कवितातु अर्थव्यङ्ग्या अतो वर्णात्मकशब्देनैव कविता
स्यादिति तु न शब्दवाच्यत्वं निर्गुणस्य ॥ सनिर्गुणः गुणश्चेति
शिवो ज्ञेयः सनातनः ॥ निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृत
इति शारदोक्तेर्वर्णानां प्रकृतिप्रभवत्वेन तत्र वृत्त्याभावात् प्रकृते-
रन्यः प्रकृत्या असम्बद्ध इत्यर्थः ॥ कुञ्जिकातन्त्रे प्रथमपटले तु शेषा-
ईमन्यथोक्तं यथा । निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः ।
निर्गुणाश्चैव सञ्ज्ञाता विन्दवस्तय एव च । ब्रह्मविन्दुर्विष्णुविन्दू-
रुद्रविन्दुर्महेश्वरीति ॥ अन्यथा प्रकृतीश्वरभेदोपलब्ध्यानन्तरं
मिलितत्वप्रतीतिविषयेण सगुणेन निर्गुणस्य भेदप्रतीतिर्न
स्यादतएव श्रुत्यध्याये ब्रह्मणा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे ॥ इति परोक्षितः प्रश्नो-
ऽपि सङ्गच्छते । आस्तां विस्तरः प्रस्तुतमभिधास्ये । तन्मतद्वयं

दूषयति शारदातिलकं मतद्वयेन शब्दशब्दार्थयोः ब्रह्मत्वमुक्तां
 न हि तेषां तयोः सिद्धिर्जडत्वादुभयोरपीति तेषां वादिनां
 मते तयोः शब्दशब्दार्थयोः शब्दब्रह्मत्वसिद्धिर्न । हेतुमाह उभयो-
 र्जडत्वादिति । अयमाशयः । शब्दं विनाशो जडः प्रतिपत्तुमशक्यः
 कस्तं प्रतिपादयिष्यतीत्येवमर्थं विना शब्दोऽपि जडः प्रतिपाद-
 यितुमशक्तः कं स बोधयिष्यतीति तेन शब्दार्थरूपविशिष्टस्य शब्द-
 ब्रह्मत्वमवधारितम् । तदुक्तम् अध्यायात्मविवेके । अनादिनिधनं
 ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो म-
 तेति । अन्यत्रापि शब्दब्रह्मोति शब्दावगम्यमर्थं विदुर्बुधाः ।
 स्वतोऽर्थानावरोधत्वात् प्रोक्तोऽप्येतादृशोऽक्षर इति । स तु सर्वत्र
 संस्थूते जाते भूताकारे पुनः । आविर्भवति देहेषु प्राणिना-
 मर्थविस्तृत इति ॥ अतएव कल्पसूत्रटीकायां शङ्कराचार्याः ॥
 षट्त्रिंशत्तत्त्वानि विश्वं शरीरं कञ्चुकितः शिवो जीवः । निष्क-
 चुकः परमशिव इति षट्त्रिंशत्तत्त्वानि शुद्धमिश्राशुद्धभेदानि यथा ।
 शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्येति शुद्धानि । मिश्राणि शुद्धा-
 शुद्धानि । शुद्धानि यथा मायाकला विद्यावागहङ्कारकालनियति-
 पुरुषप्रकृतिबुद्धिमनांसि ॥ अशुद्धानि यथा । ओन्नत्वक्चक्षूरसना-
 ब्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपस्पर्शान्धाकाशवायुतेजो-
 जल पृथिव्यात्मकानि ॥ तदुक्तं मृत्युञ्जयसंहितायाम् ॥ कलाविद्या-
 वाक्कालमायानियतिपञ्चकैः कञ्चुकितः शिवो जीवो भवति ।
 एवञ्च शिवजीवयोरुपाधिमात्रभेदः । तत्त्वानां विशेषस्तु दीक्षाप-
 रिच्छेदे वक्ष्यते ॥ कञ्चुकलक्षणं यथा परापरिमलोल्लासे ॥ अस्यैव
 सर्वकर्तुर्यत् किञ्चित्कल्वविभ्रमः । तस्य हेतुः कलानाम तत्त्वं
 तत्त्वविदो विदुः । सर्वत्रस्य त्वविद्या स्यात् किञ्चित् ज्ञातृत्व-
 विभ्रमः । पूर्णस्य रागो विषयेष्वभिषङ्ग इतीरितः । कालो
 हि नाम भावानां भौषणाभीषणात्मकः । क्रमावच्छेदकः सोऽयं

खवादिप्रलयावधिः । इदं समैव कर्तव्यमकर्तव्यमिदं मम । इत्थं
नियमनस्यास्य हेतुर्नियतिरुच्यते । तत्त्वपञ्चकमेतस्य स्वरूपा-
वरकं यतः । तस्मात् कञ्चुकमित्येतदुच्यते तत्त्वपञ्चकमित्याहुः ॥
कुलार्णवे पञ्चमखण्डेऽपि । दृष्ट्वा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति
पञ्चमी । कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्त्तिताः ।
पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ॥ इति शिवजीवयोरेक-
मुक्तम् । राघवभट्टस्तु यदि शब्दः शब्दार्थो वा ब्रह्मेत्युच्यते तदा
ब्रह्मपदवाच्यत्वं नोपपद्यते । यतः सच्चिदानन्दरूपो ब्रह्मपदार्थः ।
उक्तञ्च श्रुत्या । नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेत्याहुः । एतच्च
समीचीनम् । तेनैव लिखितकुण्डलीस्वरूपं ग्रन्थवाक्यारमित्यसङ्गतेः
विश्वसाराद्युक्तवचनजाताच्च ॥ तथाच विश्वसारे ॥ शब्द-
ब्रह्मेति तं प्राह साक्षाद्देवः सदाशिवः । अनाहतेषु चक्रेषु स
शब्दः परिकीर्त्त्यते ॥ अनाहतं मन्त्राचक्रं हृदये सर्वजन्तुषु ।
तत्र ओंकार इत्युक्तो गुणत्रयसमन्वितः । शिवो ब्रह्मा तथा
विष्णुरोङ्कारे च प्रतिष्ठितः । अकारश्च भवेद्ब्रह्मा उकारः सच्चिदा-
त्मकः । मकारो रुद्र इत्युक्त इति तस्यार्थकल्पना । अकारे
च भवेद्विष्णु रुकारे च प्रजापतिः । मकारे च भवेत् रुद्र इति
वा वर्णनिर्णयः ॥ फेल्कारिणीतन्त्रे प्रथमपटले च ॥ तैश्च एव
समुत्पन्ना वर्णभ्यो विष्णुशूलिनोः । मूर्त्तयः शक्तिसंयुक्ता उदयान्ते
ताः क्रमेण तु । इत्युक्ता विष्णुशिवशक्तीनां प्रत्येकं मूर्त्तयः
पञ्चाशदुक्ताः । प्रपञ्चसारे तृतीयपटलेऽपि ॥ शशीनाम्युत्थिता
यस्मात् स्वरस्य कृत्वापकाक्षराः । इनः सूर्यः सृक् स्यर्गः । तत्ति-
भेदे समुपन्ना अष्टविंशत् कला मताः । स्वराः सौम्याः स्यर्ग-
युग्मैः सौरा वाद्याश्च वज्रिजाः । षोडशद्वादशदशसंख्याः स्युः
क्रमशः कलाः ॥ क्रमश इति चन्द्रस्य षोडश द्वादश सूर्यस्य
संज्ञैर्दशैत्यष्टविंशत् कलाः । वर्णभ्य एव तारस्य पञ्चभेदेऽपि

भूतगैः । सर्वगाश्च समुत्पन्नाः पञ्चाशत्संख्यकाः कलाः ॥
 तारस्य प्रभवस्य ताभ्य एव तु तावत्यः शक्तिभिर्विष्णुमूर्त्तयः ।
 तावत्या मातृभिः साहं तेभ्यः स्थूरद्रमूर्त्तयः । तेभ्य एव तु
 पञ्चाशत् स्युरौषधय ईरिताः । याभिस्तु मन्त्रिणः सिद्धं प्राप्नु-
 युर्वाञ्छितप्रदाम् । अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रति-
 र्धृतिः । शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गना ।
 पूर्णापूर्णाद्यता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः । कुलार्णवे पञ्चम-
 खण्डे षष्ठोक्तासे तु चेति कथिता कुलनायिकेति पाठः । तपिनी
 तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः । सुपुष्पा भोगदा विश्वा
 बोधिनी धारिणी क्षमा । क्रमाद्या वसुदाः सौराष्ट्रान्ता
 द्वादशेरिता । धूम्राश्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी ।
 सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहेत्यपि । हव्यवहा कव्यव-
 हेति । यादयर्णयुक्ता वङ्गुत्या दश धर्मप्रदाः कलाः । कुलार्णवे तु ।
 आग्नेया यादिवर्णाद्या दश धर्मप्रदाः कलाः । इति पाठः । शार-
 दायाम् । अमृता मानदा इत्याद्युक्ता । अभयेष्टकरा ध्वेयाः श्वेत-
 प्रीतारुणाः क्रमात् । इति विशेष उक्तः । प्रपञ्चसारे । सृष्टि-
 र्धृतिः स्मृतिर्मंधा कान्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः स्थिरा । स्थितिः सिद्धि-
 रकारोऽस्याः कला दश समीरिताः । अकारप्रभवा ब्रह्मजाताः स्युः
 सृष्टये कलाः । शारदायाम् । अकाराद्ब्रह्मणोत्पन्नास्तप्तचामौ-
 करप्रभाः । द्रवीभूतस्वर्णवर्णा इत्यर्थः । एताः करष्टताक्षस्रक्-
 पङ्कजद्वयकुण्डिकाः । प्रपञ्चसारे । जरा च पालिनी शान्ति-
 रीश्वरी रतिकामिका । वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घाशोकारजाः
 कलाः ॥ शारदायान्तु । दीर्घाः स्युरष्टतवर्गजाः । उकाराहि-
 ष्णुनोत्पन्नास्तमालदलसन्निभाः । अभीतिवरचक्रेष्टबाहवः परि-
 कीर्त्तिताः । तीक्ष्णा रौद्रौ भया निद्रा तन्वी क्षुत् क्रोधनी क्रिया ।
 उत्कारी चैव मृत्युश्च मकाराक्षरजाः कलाः । मकारप्रभवा रुद्र-

जाताः संवृतये कलाः । शारदायान्तु । उत्कारी सत्युरेताः
स्युः कथिताः पयवर्गजाः । रुद्रेण मार्णादुत्पन्नाः शरच्चन्द्रनिभ-
प्रभाः । उदहन्त्योऽभयं शूलं कपालं बाहुभिर्वरम् । इत्यधिक-
मुक्तम् ॥ विन्दोरपि चतस्रः स्युः पीताः श्वेतरुणासिताः ।
ईश्वरेणोदिता विन्दोः पीताः श्वेतरुणासिताः । अनन्ताय यव-
गस्था जवाकुसुमसन्निभाः । अभयं हरिणं टङ्कं दधाना बाहु-
भिर्वरम् । इत्यधिकमुक्तं शारदायाम् ॥ कलाश्चैश्वरसञ्जाता-
स्तिरोधानाय विन्दुजाः । इति कुलार्णवे ॥ निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा
च विद्या शान्तिस्तथैव च । इन्विका दीपिका चैव रेचिका
मोचिका परा । सूक्ष्मा सूक्ष्मार्त्ता ज्ञानामृता चाप्यायनी तथा ।
व्यापिनी व्योमरूपा च अनन्ता नादसम्भवा । नादजाः षोडश
प्रोक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदायिकाः । सदाशिवेन सञ्जाता नादादेताः
सितत्विषः । अक्षसङ्गपुस्तकगुणकपोलाव्यकराब्जजाः । इति
पञ्चाशदाख्याताः कलाः सर्वसमृद्धिदाः । इत्यादिकं शारदायाम् ।
इति पञ्चाशत्कलाः । प्रपञ्चसारे ॥ केशवनारायणमाधवगोविन्द-
विष्णवः । मधुसूदनसंज्ञश्च सप्तमः स्यात् त्रिविक्रमः । वामनः
श्रीधराख्यश्च हृषीकेशस्तदन्तरम् । पद्मनाभस्तथा दामोद-
राख्यो वासुदेवयुक् । सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नः सानिरुद्धाः सरोद्भवाः ।
ततश्चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी शङ्गी हली तथा । मुप्रखी शूलि-
संज्ञश्च भूयः पाशी तथाङ्गुशी । मुकुन्दो नन्दजो नन्दो नरो
नरकजिह्वरिः । कृष्णः सत्यः सात्वतश्च शौरिः शूरी जनार्दनः ।
भूधारी विश्वमूर्तिश्च वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः । बली बलामुजो
बालो वृषभश्च वृषस्तथा । हंसो वराहो विमलो नृसिंहो मूर्त्तयो
हलात् । कादिद्यान्ताङ्गज्जनादित्यर्थः । केशवाद्या इमे श्यामा-
श्चक्रशङ्खलसत्कराः । इति शारदायामधिकम् ॥ फेत्कारिणी-
तन्त्रेऽपि ॥ शङ्खचक्रधराः सर्वे घनाभाः पीतवाससः । केश-

वाद्या निजाङ्गस्थशक्त्यालङ्कृतविग्रहाः । इति पञ्चाशद्विंशवः ।
 कीर्त्तिः कान्तिस्तुष्टिपुष्टी धृतिः शान्तिः क्रिया दया । मेधा सर्पो
 श्रद्धा स्यान्नज्जा लक्ष्मीः सरस्वती । प्रीतिरती रमा प्रोक्ताः क्रमेण
 स्वरशक्तयः । जया दुर्गा प्रभा सत्या चण्डा वाणी विलासिनो ।
 विजया विरजा विश्वा विनदा सुनदा स्मृतिः । ऋद्धिः ससृद्धिः
 शुद्धिश्च भक्तिर्भुक्तिर्मितिः क्षमा । रमोमा क्लोदिनी क्लिप्ता वसुदा
 वसुधा परा । परा परायणा सूक्ष्मा सन्ध्या प्रज्ञा प्रभा निशा ।
 अमोघा विद्युता चेति शक्तयः सर्वकामदाः । एताः प्रियतमा-
 ङ्गेषु निषणाः सस्मिताननाः । विद्युद्दामसमानाङ्गः पङ्कजा-
 भयवाहवः ॥ फेत्कारिणीतन्त्रे तु ॥ ताश्च सस्मितवक्त्राणां
 विद्युदाभाः प्रकीर्त्तिताः । कान्ताङ्गस्याश्च कीर्त्याद्याः कमला-
 भयपाणयः । इत्युक्तम् । इति पञ्चाशद्विंशशक्तयः ॥ श्रीकण्ठो-
 ऽनन्तसूक्ष्मो च विमूर्त्तिरमरेश्वरः । अर्घीशो भावभूतिश्चाति-
 थिश्च स्थाणुको हरः । भ्रिण्डीशो भेतिकः सद्योजातश्चानुग्रह-
 श्वरः । अक्रूरश्च महासेनः स्युरेताः स्वरमूर्त्तयः । ततः क्रोधीश-
 चण्डेशपञ्चान्तकशिवोत्तमाः । अथैकरुद्रकूर्मैकनेत्राश्चतुरा-
 ननाः । अजेशः सर्वसोमेशस्तथा लाङ्गलिदारकी । अर्धनारी-
 श्वरश्चोमाकान्तश्चाषादिदण्डिनी । स्युरप्रिमोनमेषाख्यालोस्थि-
 तश्च शिखी तथा । कृगलण्डद्विरण्डेयौ समहाकालवा-
 लिनौ । भुजङ्गेशपिनाकीशखड्गीशाख्यवकेशकाः । श्वेतस-
 र्वीशनकुलिशिवाः संवत्तकस्तथा । एते रुद्राः स्मृता रक्ता
 धृतशूलकपालकाः ॥ इति पञ्चाशद्रुदाः ॥ पूर्णोदरी स्याद्विरजा
 शास्त्रलो तदनन्तरम् । लोलाक्षी वर्तुलाक्षी च दीर्घघोणा
 समीरिता । सुदीर्घमुखामोमुख्यौ दीर्घजिह्वा तथैव च । कुण्डो-
 दय्यूर्ध्वकेश्यौ च तथा विहृतमुख्यपि । ज्वालामुखी ततो ज्ञेया
 प्रश्नादुष्कामुखी ततः । सुश्रीमुखो चैव विद्यामुख्येताः स्वर-

शक्तयः ॥ महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते । गौरी
 त्रैलोक्यविद्या स्यान्मन्त्रसिद्धिस्ततः परम् । आत्मशक्तिर्भूतमाता
 तथा लम्बोदरी स्मृता । द्राविणी नागरी भूयः खेचरी चापि
 मञ्जरी । रूपिणी चित्रिणी पश्चात् काकोदर्यपि पूतना । स्याद्
 भद्रकालीयोगिन्यौ शङ्खिनी गर्जिनी तथा । कालरात्रिश्च कुञ्जि-
 न्या कपर्दिन्यपि वज्रपा । जया च सुमुखिश्च रिवती माधवी
 ततः । वारुणी वायवी प्रोक्ता पश्चादणे विदारिणी । ततश्च सह
 आलक्ष्मीर्यापिनी माययान्विता । एता रुद्राङ्गपीठस्थाः सिन्दूरा-
 रुणविग्रहाः । रक्तोत्पलकपालाभ्यामलङ्कितकराब्जजाः । आयु-
 धादिध्यानं वामदक्षयोरेवं सर्वत्र । इति पञ्चाशद्गुह्यशक्तयः । चन्द-
 नकुचन्दनागुरुकर्पूरोशीररोगजलघुसृणाः । कक्कोलजातिमांसी-
 मुराचोरग्रन्थिरोचनापत्राः । पिप्पलविल्वगुहारुणहृणं कल-
 रङ्गाङ्गकुम्भीवल्लिन्यः । शोल्मस्वरकाश्मरिकास्थिराजदरपु-
 ष्पिका । मयूरशिखाङ्गच्छाग्निमन्यसिंहीकुशाङ्गदर्भाः । कृष्णदर-
 पुष्पीरोहिण्युण्डकवृहतीपाटलचित्रातुलस्यपामार्गाः । शत-
 मखलताद्विरफाविष्णुक्रान्तामूषण्यथाञ्जलिनी । दूर्वाश्रीदेवीसह
 तयैव लक्ष्मीसदाभद्रे । आदीनामिति कथिता वर्णानां क्रम-
 वशादथौषधयः । गुलिकाकवायभावितप्रमेदतो निखिलसिद्धि-
 दायिन्यः । चन्दनं प्रसिद्धम् । कुचन्दनं रक्तचन्दनम् । अमरुः
 प्रसिद्धः । कर्पूरं रसकर्पूरम् । उशीरं वीरणमूलम् । रोगः
 कुष्ठम् । जलं बाला । घृष्टणः कुङ्कुमम् । कक्कोलं काकोलीति
 प्रसिद्धम् । जातिः पुष्पविशेषः । लतामांसी जटामांसी । मुरा मुरा-
 मांसी । चोरश्चोरपुष्पी । ढोलकलम्बीति गौड़भाषा । ग्रन्थिः
 गाठियानीति गौड़प्रसिद्धम् । रोचना हरिद्रा । पत्रं तेजपत्रम्
 पिप्पलोऽश्वत्थः । विल्वः प्रसिद्धः । गुहा जयन्ती । अरुणहृणं
 मुश्रिपर्णी । फलरङ्गाङ्गः कामरङ्गा इति प्रसिद्धः । कुम्भी गाम्भारी ।

प्राणतोषिणी ।

वलिनी ताम्बूली । शोखम्बरं कोलङ्ग इति प्रसिद्धः । काश्म-
रिका कशेरुः । स्थिरा बला । अज इज्जलः हिजल इति यस्य
प्रसिद्धिः । दरपुष्पिका तिलपुष्पम् । मयूरशिखा अपामार्ग-
विशेषः सुपाडेति यस्य प्रसिद्धिः । प्लवो वटः । अग्निमन्यो
गन्धारिः । सिन्धौ कण्टकारी । कुशा कुशाहः प्रसिद्धः । दर्भः
काशविशेषः । कृष्णः पिप्पली । दरपुष्पी इन्द्रयवः । रोहिणं
कुटुकी । चुण्डुकं कुकुब्धम् ॥ वृहती प्रसिद्धा । पाटलः
पारलीति प्रसिद्धः । तुलसी प्रसिद्धा । अपामार्गः प्रसिद्धः ।
शतमखता इन्द्रलता । द्विरेफा भृङ्गराजः । विष्णुकान्ता
अपराजिता । मूषली तालमूली । अञ्जलिनी लाजालु लज्जा-
वतीति यस्याः ख्यातिः । दूर्वा प्रसिद्धा । श्रीदेवी धान्यमिति ।
लक्ष्मीः शतमूली । सदा रुद्रजटा । भद्रा भद्रपर्पटी इत्योष-
धयः ॥ ओषधीनां प्रयोजनमप्युक्तं राघवभट्टधृतेन ॥ यो यो
मन्त्रस्तस्य तस्य वर्णोषधिविनिर्मिता । तत्तद्वर्णोत्पत्त्यभिर्गु-
लिका मन्त्रसिद्धिदा । तयाभिषेकस्तद्वनं तत्स्रान्तद्विले-
पनम् । तत्पूजा च तथा सिद्धिदायकं स्यान्न चान्यथा ॥ इत्यो-
षधीनां फलकथनम् ॥ कामधेनुतन्त्रप्रथमपटलेऽपि ॥ अका-
रादिक्षकारान्ता माहका वीजरूपिणी । विसर्गश्चैव विन्दुश्च द्विस-
न्धिर्ब्रह्मविग्रहा । विसर्गः प्रकृतिर्विन्दुः पुरुषः । द्विसन्धिर्द्वयो-
र्भेदकः ॥ वर्णात्तु जायते ब्रह्मा तथा विष्णुः प्रजापतिः । रुद्रश्च
जायते देवि । जगत्संहारकारकः । इति सर्वेषामुपास्यानां
ब्रह्मविष्णुप्रभृतीनां सर्वगकलानामोषधीनाञ्च ब्रह्मस्वरूपप्रणव-
पञ्चरश्माकारोकारमकारविन्दुनादादिभ्य उत्पत्तेः । यदि वा
वाच्यवाचकसम्बन्धेन लक्षणया प्रणवशब्देन प्रणववाच्यं ब्रह्मे
त्यङ्गीक्रियते तदाप्युक्तदोषस्तदवस्थ एव । शारदाविश्वसार
प्रपञ्चसारीक्तप्रमाणजातैः प्रणवावयवा एव सर्वोत्पादका न ब्रह्मा

वयवविशेषवाचका इति । तेभ्यः कथं सर्वेषामुत्पत्तिश्च स्यात् ।
ननूत्पत्तिकर्तृमात्रं न ब्रह्म अपि तु उत्पत्तिस्थितिलयहेतुत्वे-
नावधारितं यत् तदेव । तथाच वेदान्तवृत्तिघृता श्रुतिः । यतो
वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्राप्याभि-
संविशन्ति तद्ब्रह्मेति व्यजाना इति प्रणवस्योत्पादकमात्रत्वात्
कथं तथात्वमिति चेत् सत्यं प्रणवरश्मुद्भवानां ब्रह्मादीनां सृष्ट्या-
दिकर्तृत्वदर्शनात् प्रणवस्य हेतुत्वं स्पष्टमवगम्यते । अथ तर्हि
प्रणवस्य ब्रह्मत्वमस्तु कथमन्येषां वर्णानामित्यपि कुदेश्यं प्रणव-
विकृतत्वेनापि ध्वनिमयत्वात्तेषामिति ॥ तथाच प्रपञ्चसारे
प्रथमपटले ॥ मूलार्णमर्णविक्रतीर्विक्रतेर्विक्रतोरपि । तद्य-
भिन्नानि सन्त्राणि प्रयोगांश्च पृथग्विधान् । वैदिकांस्तान्त्रिकांश्चैव
सर्वानित्यमुवाच हेति । मूलार्णां हंसः । अर्णविक्रतिरकारादि-
चकारान्ता । विक्रतेर्विक्रतिर्वर्णसंयोगादि । तेन प्रभिन्नानि भेदं
प्राप्तानि शेषं सुगमम् । इत्यमनेन प्रकारेण ब्रह्माणं सर्वान्
काल उवाचेत्यन्वयः । हंसो विकारप्रकारस्तु । चतुर्थपटले प्राणा-
त्मकं हकाराख्यं वीजं तेन तदुद्भवाः । षडूर्मयः स्यूरेफोल्या गुणा-
श्चत्वार एव च । पवनाद्याः पृथिव्यन्ताः स्पर्शाद्यैश्च गुणैः सह ।
करणान्यपि चत्वारि सङ्घातश्चेतनेति च । हकारस्य गुणाः
प्रोक्ताः षडिति क्रमतो बुधैः । उकारान्तास्त्वकाराद्याः षडूर्णाः
षड्भ्य एव तु । प्रभेदेभ्यः समुत्पन्ना हकारस्य महात्मनः ।
ऋकाराद्याश्च चत्वारो रेफोल्याश्च पराः स्मृताः । एकारादि-
विसर्गान्तं वर्णानां षट्कमुद्भूतम् । हकारस्य षडङ्गेभ्य इतीदं
षोडशाङ्गवत् । एभ्यः सञ्चञ्जिरेङ्गेभ्यः स्वराः षोडश सर्वगाः ।
तेभ्यो वर्णान्तराः सर्वे ततो मूलमिदं विदुः । स तारो वीजता-
मेष प्राणिष्वेव व्यवस्थितः । ब्रह्माण्डं ग्रन्थमेतेन व्याप्तं स्थावर-
जङ्गमम् । नादः प्राणाश्च जीवश्च घोषश्चेत्यादि कथ्यते । एष

पुंस्त्रीनियमितैर्लिङ्गैश्च सनपुंसकैः । रेफो मायां बीजमिति
 विधा मायाभिधीयते । शक्तिः श्रीः सन्नतिः कान्तिर्लक्ष्मोर्मधा
 सरस्वती । चान्तिः पुष्टिः स्थितिः शान्तिर्विद्याद्यैः स्थाय-
 वाचकैः । नानाविकारतां प्राप्तैः स्त्रैः स्त्रीर्भावैर्विकल्पितैः ।
 तामेतां कुण्डलीत्येके सन्तो हृदययनां विदुः । सा रौति सततं
 देवी भङ्गीसङ्गीतकध्वनिम् । आकृतिं स्वेन भावेन पण्डिता बहुधा
 विदुः । कुण्डली सर्वथा ज्ञेया सुषुम्नानुगतैव सा । चराचरस्य
 जगतो बीजत्वाद्बीजमेव तत् । मूलस्य विन्दुयोगेन शतानन्द-
 त्वदुद्भवः । रेफान्वितोकाराकारयोगादुत्पत्तिरेतयोः । हका-
 राख्योद्भवस्तेन हरिरित्येष शब्दाते । हरत्वमस्य तेनैव सर्वा-
 त्मत्वं ममापि च । अस्य विन्दोः समुत्पत्त्या तदन्ते सोऽहमुच्यते ।
 सहङ्कारः पुमान् प्रोक्तः स इति प्रकृतिः स्मृता । अजपेयं मता
 शक्तिस्तथा दक्षिणवामतः । विन्दुर्दक्षिणभागस्तु वामभागे
 विसर्गकः । तेन दक्षिणवामाख्यौ भागौ पुंस्त्रीविशिषितौ ।
 विन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिर्मता । पुम्प्रकृत्यात्मको हंस-
 स्तदात्मकमिदं जगत् । पुरुषा सा विदित्वाप्तं सोऽहंभावमुपा-
 गता । स एव परमाख्योऽयं मनुरस्य महात्मनः । सकारश्च
 हकारश्च लोपयित्वा प्रयोजयेत् । सन्निर्वै पूर्वरूपाख्यं ततोऽसौ
 प्रणवो भवेत् । तारादिभक्ताच्चरमांशतः स्युर्भूतानि खादीन्यथ
 मध्यमांशात् । इनादितेजांसि च पूर्वभावात् शब्दाः समन्ताः
 प्रभवन्ति लोके । समस्ता इत्यपि क्वचित् पाठः । विश्वसारे
 द्वितीयपटलेऽपि ॥ हंसौ तत्र समुद्भूतौ पुंस्त्रियौ तत्र सन्मती ।
 हं तत्र पुरुषः प्रोक्तः सकारः प्रकृतिः स्मृतः । ताविमौ सकलं
 विश्वं व्याप्नौ च कृतकोऽनलम् । कृतको भस्म । यथानलमग्निं
 व्याप्तस्तथा इमौ विश्वं व्याप्तावित्यर्थः । अग्निर्माणवक
 इत्यादिवदुपमासूचकशब्दमन्तरेणापि उपमाप्रतीतिः । यदा

तद्भावमाप्नोति तदा सोऽहमिति स्मृतः । स एव परमं ब्रह्म-
कूटस्थो जगदङ्कुरः । सर्वे देवास्तथा वेदा दिग्वाताकादय-
स्तथा । त्रुत्या दिक्कालकल्पाय तत्तदेव तथात्मकम् । यस्मिंश्च
प्रलयं यान्ति बाङ्नाशे जगदीश्वरि । यस्मिन् सृष्टिः सदै-
वैति यस्मिन्नद्यापि तिष्ठति । स एव परमं ब्रह्म सोऽहंभावेन
जायते । स्रष्टवर्णो विलुप्याय सन्निवर्णं दिग्देयदा । प्रणवः
सर्ववर्णेषु कथितः पद्मयोनिना । परानन्दमयं ब्रह्म शब्दब्रह्म-
विभूषितम् । आत्मनो देहमध्ये तु सर्वमन्वात्मकं प्रिये ॥ इति
रुद्रजामले उत्तरखण्डे द्वाविंशतिपटले च ॥ एकमूर्तिस्त्रयो
देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । मम विग्रहसंज्ञता सृजत्यवति हन्ति
च । प्रणवादुद्भवा एते योगविघ्नकराः सदा । अकारं ब्रह्मणो
वर्णं शब्दरूपं महाप्रभम् । प्रणवान्तर्गतं नित्यं योगपूरकमा-
श्रयेत् । उकारं वैष्णवं वर्णं शब्दभेदिनमोश्वरम् । प्रणवान्त-
र्गतं सत्त्वं योगकुम्भकमाश्रयेत् । मकारं शाश्वतं रूपं जीव-
भूतं विधूतम् । प्रणवान्तःस्थितं कालं लयस्थानं समाश्रयेत् ।
वर्णं एष विभागेन प्रणवं परिकल्पितम् । प्रणवाज्जायते हंसो
हंसः सोऽहं परो भवेत् । सोऽहं ज्ञानं महाज्ञानं योगिनामपि
दुर्लभम् । निरन्तरं भावयेद्यः स एव परमो भवेत् । हं पुमान्
स स्वरूपेण चन्द्रेण प्रकृतिस्तु सः । एतद्वसं विजानीयात् सूर्य-
मण्डलभेदकम् । विपरीतक्रमेणैव सोऽहंज्ञानं यदा भवेत् ।
तदैव सूर्यगः सिद्धो वासुदेवप्रपूजितः । हकारार्णं सकारार्णं
लोपयित्वा ततः परम् । सन्धिं कुर्यात्ततः पश्चात् प्रणवोऽसौ
महामनुः । इति प्रणवतः सर्वप्राग्भवादीनामाविर्भावदर्शनाच्च ।
अतएव सर्वजीवोत्पादक इति वर्णाभिधाने प्रणवस्य नाम
वक्ष्यति ॥ अथ प्रणवस्य ब्रह्मवाचकत्वं न तु ब्रह्मत्वसुक्तम्
सृष्टिप्रपञ्चस्तु अकारोकारमकारनादविन्दुरूपप्रणवावयवपञ्चक-

वाच्यब्रह्मविष्णुरुद्रशक्तीश्वरभ्य एवेति । अतएव समस्त व्यस्तं त्वां
 शरणद ! गृणात्योमिति पदमिति पुष्पदन्तेनाप्युक्तम् । अन्यत्रापि
 वाच्यन्तु परमं ब्रह्म प्रणवो वाचकः स्मृत इति । वाच्यस्य ब्रह्मत्व-
 सुक्तम् । न तु वाचकस्य प्रणवस्य इत्यतो वर्णस्यानित्यत्वमिति
 चेन्न कल्पसूत्रविरोधात् तत्तत्सूत्रञ्च वर्णात्मका नित्याः
 शब्दा इति । अयमाशयः । शब्दोहि द्विविधो ध्वन्यात्मको
 वर्णात्मकश्च । तत्र ध्वन्यात्मकोऽनुपलभ्यमानत्वादनित्य इति
 केचित् । ते तु सृदङ्गाद्याघातोद्भवमेव ध्वनिं मन्यमाना वर्णात्म-
 कस्य न ध्वनित्वमिति वदन्ति तदतीव मन्दं तथाहि । ध्वनि-
 र्हि विधस्तरङ्गनिभः कदम्बकोरकनिभश्च । आद्यः समीपवर्तिन-
 मात्मस्वरूपं तरङ्गन्यायेन क्रमशः प्रतिवर्णं परिवोधाभिधेयं
 प्रतिपादयति । द्वितीयस्तु कदम्बकोरकवदव्यक्तरूपेण दूर-
 वर्त्तिनमात्मानमेव प्रतिबोधयति नाभिधेयं यथा हृष्टादिरव
 इति । वर्णात्मकस्तु नित्य एव तदुक्तं मातृकोदये ॥ वेदा-
 नामीश्वरः कर्त्ता पुराणानां महर्षयः । यन्मास्याः श्रूयते कर्त्ता
 स्वयम्भूर्मातृका ततः ॥ जामलेऽपि ॥ ब्रह्मत्वं ब्रह्मणा प्राप्तं विष्णुत्वं
 विष्णुना स्वयम् ॥ पराक्रमेऽपि । धन्यैर्माहेश्वरैः स्वार्थप्रत्यभिज्ञान-
 शालिभिः । स्वपरिज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्ता भवन्ति हि । इत्य-
 नेन मन्त्राणां नित्यता दर्शिता । इति कुलमूलावतारकल्प-
 सूत्रटीकायां शङ्कराचार्यपादैर्व्याख्यातम् । वस्तुतस्तु वाच्यस्य
 परमब्रह्मत्वं न तु ब्रह्मत्वमिति पुरैवोक्तम् । नन्वपौरुषेयाणि
 वेदवाक्यानीति वेदे कर्तुरभावादिति चोक्तवाक्याभ्यां वेदस्य
 नित्यता दर्शिता । तर्हि कथं वेदानामीश्वरः कर्त्तेति । वेदस्य
 जन्यता वक्ष्यमाणवेदादिवीजमित्यादिवचनैस्तावन्मन्त्राणां जन्य-
 त्वान्मन्त्राणां नित्यतेति च सङ्गच्छत इति चेत् सत्यम् ।
 ईश्वरस्य प्रकाशकत्वेन वेदानां कर्तृत्वमङ्गीक्रियते न तूत्पा-

दकलेन । तथाच । वृहन्नोलतन्त्रे चतुर्थपटले ॥ वेदं ब्रह्मेति
साक्षाद् जानीहि नगनन्दिनि ॥ स्वयं प्रवर्तते वेदस्-
त्कर्त्ता नास्ति सुन्दरि ॥ स्वयम्भवे भगवता वेदो गीतस्तथा पुरा ।
शिवाद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मर्त्तारोऽस्य न कारकाः । प्रकाशका
भवन्त्येव कृष्णाद्यास्त्रिदिवीकास इति ॥ यत्तु नारदपञ्चरात्रे
प्रथमरात्रे त्रयोदशाध्याये सावित्रीस्तुतो ॥ सावित्री वेदमाता-
ऽहं वेदानां जनको विधिः । तमेव धातुर्धातारं नमामि त्रिगु-
णात् परम् । इति वचनेन न तस्य सावित्रीमातृकत्वं विधिजनक-
त्वञ्चोक्तम् । तदपि अस्याः सङ्गं समासाद्य वेदविस्तारणं कुर्विति
प्रागुक्तवचनेनैकवाक्यतया विस्तारकारकत्वेन अवधारणीयम् ।
अन्यथा तेने ब्रह्महृदेति भागवतप्रथमश्लोकस्य वेदान् युगान्ते
तमसा तिरस्कृतान् रसातलादयो नृतुरङ्गविग्रहः । प्रत्याददे
वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्ते वितथेहितायेति पञ्चमस्कन्धाष्टा-
दशाध्यायोक्तश्लोकस्य वैयर्थ्यं स्यात् । स्वयं वेदजनकस्य ब्रह्मणो-
ऽन्यस्माच्छिष्यमन्यस्यायाच्चाप्राप्तिर्न सम्भवतीति । अभि-
याच्यमानब्रह्मार्थं तमसा दैत्यरूपेण तिरस्कृतानपहृतान्
वेदान् नृतुरङ्गविग्रहो हयग्रीवमूर्तिः सन् रसातलात् प्रत्या-
ददे प्रत्युज्जहारित्यन्वयः । तर्हि कथं षष्ठस्कन्धे प्रथमाध्याये ।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति श्रूयम् । इत्यत्र श्रीधर-
स्वामिना व्याख्यातम् । वेदो नारायणादुद्भूतः स एव साक्षादुप-
चार इति स्वयम्भूरिति निश्वासमात्रेण स्वयमेव भवति तथा
च श्रुतिः । अस्य महतोभूतस्य निश्वासितमेतदयद्वग्वेद इति ॥
कामधेनुतन्त्रेऽपि ॥ अकारादित्रकारान्ता स्वयं परमकुण्डली ।
सर्वं चराचरं विश्वं वर्णात्मा सृयते ध्रुवम् । नानाशास्त्रं पुरा-
णञ्च इतिहासञ्च सुन्दरि ॥ वेदञ्च स्मृतिशास्त्रञ्च अन्यानि यानि
कानि च । अक्षराज्जायते सर्वं परं ब्रह्ममयं प्रिये ॥ इति

वचने कुण्डली वेदं स्रूयत इति वक्ष्यमाणं धामत्रयं सा वेदाना-
 मित्यादिश्रुत्यष्टादशविद्या इत्यादि च सङ्गच्छते । सत्यं वेदान्त-
 मतमाश्रित्य तत् सर्वं समाधेयम् । तन्मतन्तु केवलमीश्वरं
 विना सर्वपामनित्यत्वम् । अपौरुषेयाणीत्यादि सीमांसक-
 मतानुसारेणोक्तमिति । सर्वमनवद्यम् । वस्तुतस्तु सर्ववेदमयी
 देवी सर्वमन्त्रमयी तथेत्यादि वक्ष्यमाणशारदीयकुण्डलिन्याद्यैत-
 न्यरूपायाः शब्दब्रह्मत्वेन निरूपितायाः शब्दार्थोभयरूपिण्या
 वेदादिमयत्वेन वेदानां मन्त्राणाञ्च नित्यत्वमेव प्रमाणम् । तर्हि
 उक्तश्रुतेः का गतिरिति चेत् न । महतो भूतस्य विराड्मूर्तेरीश्व-
 रस्य निखसितं वेद इत्यर्थे वेदस्य जन्यत्वं नायातम् । यदि च
 श्रीधरस्वामिन्याख्यावलम्बिभिर्जन्यत्वमङ्गीक्रियते तदा पर-
 भेष्टिनो निष्वासहारेणाविर्भूतस्य भगवतो वराहमूर्तेः पर-
 भेष्टिजन्यत्वं स्यात् । तत्प्रमाणन्तु तृतीयस्कन्धे त्रयोदशाध्याये पर-
 भेष्टी त्वपां मध्ये तथा मग्नामवेक्ष्य गामित्युपक्रम्य यस्यास्मि
 हृदयादासं स ईशो विदधातु मे । इत्यभिधायतो नासाविव-
 रात् सहसानघ ॥ वराहतो को निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ।
 तस्याभिपश्यतः खलुः क्षणेन किल भारत ॥ गजमात्रः प्रवहधे
 तदद्गतमभून्नहत् । इति मैत्रेयवचनम् । इति नानाशास्त्री-
 त्यक्तिकथनम् । ग्रहादीनामपि वर्णादुत्पत्तिरुक्ता ॥ प्रपञ्च-
 सारे चतुर्थपटले ॥ तदा स्वर्गेशः सूर्योऽयं कवर्गेशस्तु लोहितः ।
 चवर्गप्रभवः काव्यष्टवर्गादुबुधसम्भवः । तवर्गोत्थः सुरगुरुः पव-
 र्गोत्थः शनैश्वरः । यवर्गजोऽयं शीतांशुरिति सप्तगुणा त्वियम् ॥
 विश्वसारतन्त्रे अन्तमाहकासम्भववर्गाधिष्ठाहदेवतात्वं ग्रहाणा-
 मुक्तम् ॥ यथा । सप्तवर्गस्य देवेशि ! देवताः कथयामि ते ।
 रक्तवर्णो भूमिपुत्रः कवर्गदेवता मता । काव्यष्टवर्गस्य विभुश्च-
 वर्गस्य बुधः स्मृतः । तवर्गस्य सुराचार्यः पवर्गस्य शनैश्वरः ।

यवर्गस्य तथा चन्द्रः स्वराणां देवता रविरिति ॥ प्रपञ्चसारे ॥
 अस्या विकारवर्णभ्यो जाता द्वादश राशयः । लवादिकालोपचि-
 तैस्तैः स्याच्चक्रगतिक्रिया । ऋक्षराश्यादिषु तथा चक्रगत्या
 जगत्स्थितिः । वक्ष्यामि चक्ररूपञ्च प्रबद्धं राशिभिर्यथा ।
 अन्तर्वह्निर्विभागेन रचयेद्राशिमण्डलम् । भूचक्र एव मेषादिः
 प्रविज्ञेयोऽथ मानुषः । आद्यैर्मेषाह्वयो राशिरीकारान्तैः प्रती-
 यते । ऋकारान्तैर्लृकारान्तैर्द्विषो युग्मं ततस्त्रिभिः । ततो
 मेषराश्युद्भवात् परं ऋकारान्तैस्त्रिभिर्द्विषो जात एवं लृकारा-
 न्तैस्त्रिभिर्मिथुनमित्यन्वयः ॥ एदीतोः कर्कटो राशिरोदीतोः
 सिंहसम्भवः । अमः श वर्णकेभ्यश्च सञ्जाता कन्यका मता । षड्भ्यः
 कचटतेभ्यश्च पयाभ्याश्च प्रजञ्चिरे । वणिगाद्यास्तु मीनान्ता
 राशयः शक्तिजृम्भणात् । चतुर्भिर्यादिभिः साङ्गं स्यात् चकारस्तु
 मीनगः ॥ इति वर्णतो राशिष्टष्टिकथनम् ॥ चैवाधिपोऽपि
 तत्रैव ॥ अङ्गाराजकवृद्धिकौ चतुले शुक्रस्य युक्त्यके कौधे
 कर्कटकाह्वयो हिमरुचः सिंहास्तथा गोपतेः । चापाज्जावपि
 धैषणौ मकरकुम्भाख्यौ च मन्द्यहाः प्रोक्ता राश्यधिपा वली च
 कलसे सोऽयं क्रमो दर्शितः । इति राश्यधिपकथनम् ॥ तत-
 स्तदूर्ध्वभागस्थो भुवश्चक्रसमस्तथा । स तु सिंहादिको यस्मिन्
 पैठकौ नियता गतिः । तदूर्ध्वभागसंस्थश्च स्वश्चक्रश्चापितादृशः । स
 तु चापादिको देवचक्रस्त्वेनाभिकस्वयम् । इति त्रिभुवनराशि-
 चक्रकथनम् ॥ तथा एभ्य एव तु राशिभ्यो नक्षत्राणाञ्च सम्भवः ।
 स चाप्यक्षरभेदेन सप्तविंशतिधा भवेत् । आभ्यामखयुजा जाता
 भरणी क्षत्तिका पुनः । लिपित्रयाद्रोहिणी च तत्परत्वाच्चतु-
 ष्ठयात् । एदेतोर्दृग्शीर्षाद्रे तदन्ताभ्यां पुनर्वसुः । अमसोः
 केवली योगो रेवत्यर्थं पृथग् गतः । कतस्तिथ्यस्तथाज्ञेयः
 खगयोर्धन्वयोर्मघा । ततः पूर्वोत्तराज्योत्तराज्यजयोस्तथा ।

प्राणतोषिणी ।

माया दिवसाश्च तथा निशाः । पञ्चा मासाश्च ऋतवद्यायनं
वर्षरस्तथा । युगञ्च युगमानश्च तथा मन्वन्तराणि च । महा-
प्रलयपर्यन्तं सर्वं विन्दात्मकं स्मृतम् । इत्यनेन सृष्टिरूप-
कालस्य लय उक्तः । किन्तु महाप्रलये कालबन्धोरिति ब्रह्म-
शब्देन कालस्य निमित्तत्वं सूचितम् । तथाच राष्ट्रवमह-
ष्टतम् ॥ लवादिप्रलवान्तो यस्मिन्शक्तिविजृम्भितः । निमित्त-
भूतः कालोऽयं भावानां जनुराशयोरिति लवादिमानमपि ॥
प्रपञ्चसारे प्रथमपटले ॥ नलिनीपत्रसंहत्यां सूक्ष्मसूचिविमे-
दने । दले दले तु यः कालः स कालोलवसंज्ञकः । लवैस्सूटिः
स्याल्लिङ्गिः कलां तावत् त्रुटिं विदुः । काष्ठा तावत् क्रमाञ्जयेया
तावत् काष्ठा निमेषकः । सोऽङ्गुलिस्फोटतुल्यश्च मात्राष्टाभिश्च
तैः स्मृता । कालेन यावतास्त्रीयो हस्तः स्वं जानुमण्डलम् ।
पर्येति मात्रा सा तुल्या स्वयैकश्चासतुल्यया । षष्ठ्युत्तरैस्तु त्रिंश-
तैर्निष्ठासैर्वटिका स्मृता । द्विनाडिका सुहर्तः स्यात् त्रिंशद्भिस्त्रै-
हर्निशम् । त्रिंशद्भिस्त्रैर्होरात्रैर्मासो द्वादशभिस्तु तैः ॥ सम्ब-
त्सरो मातृपोऽयमहोरात्रं दिवौकसाम् । तथा दिव्यैरहोरात्रै-
स्त्रिंशतैः षष्टिसंयुतैः । दिव्यः सम्बत्सरो ज्ञेयो दिव्यैः संवत्स-
रैस्तु तैः । भवेत् द्वादशसाहस्रैर्भिर्वैरेकं चतुर्युगम् । तैः सहस्रैः
शतानन्द ! तवैकं दिनमिष्यते । तावती तव रात्रिश्च कथिता
कालवेदिभिः । तथाविधैरहोरात्रैस्त्रिंशद्भिर्मासमृच्छसि । तथा-
विधैर्द्वादशभिर्मासैरब्दस्तव स्मृतः । तथाविधानामब्दानां शतं
त्वमपि जीवसि । त्वदायुर्मम निश्चासः कालेनैवं प्रचोद्यते ।
इति । तिथितत्त्वे संक्रान्तिप्रकरणधृतस्मृतौ तु । लघुचर-
चतुर्भागस्सूटिरित्यभिधीयते । त्रुटिद्वयं लवः प्रोक्तो निमेषस्तु
लवद्वयम् । अष्टादशनिमेषास्तु काष्ठेत्यादि सम्बर्तः प्रलयः
कल्प इत्यन्तो यः कालोऽभिहितोऽमरसिंहेन तस्य निमित्तत्वं

पूर्ववचनेन दर्शितम् । मेरुतन्त्रे प्रथमोद्देशेऽपि । इन्द्रायुः-
परिमाणं प्रकारान्तरेणोक्ता एवमिन्द्रैरिन्द्रसंख्यैर्ब्रह्मणो दिन-
मुच्यते । या ध्यायते महामाया भया तच्छासनिर्गमः । इन्द्र-
संख्यैश्चतुर्दशसंख्यैरित्यर्थः । प्रपञ्चो ब्रह्मदिवसः कुम्भको रात्रि-
रस्य तु । एवं तस्या घटिकया वर्षमेकं विधेः स्मृतम् । घटी-
शतमितं तस्या ब्रह्मा जीवति कौटवत् । पञ्चमेकं सतीरूपा
शुक्लं कृष्णान्तु पार्वती । ऋतुमात्रं हरिर्जीवद्वर्षमेकं सदा-
शिवः । एवं सा शतवर्षा वै महाकालस्य गेह्मिनी । सर्पकक्षुक्-
वद्देहं त्यक्त्वा त्यक्त्वा पुनर्नवा इति कालनिरूपणम् । एवं प्रकृताया-
मर्थसृष्टौ तत्त्वसृष्टिं वक्तुमुपक्रमते । शारदायां प्रथमपटले तु ।
मूलभूतादतो व्यक्ताद्विकृतात्परवस्तुनः । असीत् किल मह-
त्तत्त्वं गुणान्तःकरणत्मकम् ॥ शब्दब्रह्मणो विकृतात् सृष्ट्यु-
न्मुखाग्रहत्तत्त्वमासीदुत्पन्नमित्यन्वयः । सर्वसृष्टिर्मूलरूपादत
एवं परवस्तुनोऽव्यक्ताद्विन्दुरूपादिति वा । किंभूतं सत्त्वरज-
स्तमोगुणात्मकम् । मनो बुद्धहङ्कारचित्तरूपान्तःकरणचतुष्टय-
मेकञ्च तत्कारणमित्यभिप्रायः । कारणे कार्योपचारात्तदा-
त्मकत्वमिति । श्रुतिरपि प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कार इति ।
राघवभट्टतवामकेश्वरतन्त्रेऽपि ॥ अव्यक्तविग्रहात् शब्दब्रह्मणः
सर्वकारणम् । व्यक्तसत्त्वगुणं वक्तुं बुद्धितत्त्वमजायत । सांख्य-
मते महत्तत्त्वस्य बुद्धितत्त्वमिति संज्ञा । शारदायां प्रथम-
पटले ॥ अभूत्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधः सृष्टिभेदतः । वैकारि-
कादहङ्काराद्देवा वैकारिका दश । दिग्वाताकप्रचेतो-
ऽश्विवह्नौन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः । तैजसादिन्द्रियाण्यासंस्तम्बावाकम-
योगतः । भूतादिकादहङ्कारात् पञ्च भूतानि जज्ञिरे ॥ राघव-
भट्टतमपि ॥ सोऽहङ्कारस्त्रिभेदः स्यात् सत्त्वादिगुणभेदतः ।
वैकारः सात्त्विको नाम तैजसो राजसः स्मृतः । भूतादिस्वाम-

संस्ते च पृथक् तत्त्वाद्यवास्तजन् । अधिकेन व्यपदेशा भव-
 नीति न्यायात् । सात्त्विकादिविशेष उक्तः । वस्तुतस्त्रिव्येव
 न्यूनाधिकरूपेण त्रयो गुणा वर्तन्ते शिवशक्त्यात्मकादावपि तथा-
 नुसन्धेयम् । वैकारिकादिन्द्रियाधिष्ठातारश्चन्द्रश्च । तैजसात्
 पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि मनश्च । भूतादेस्तन्मा-
 त्राणि जज्ञिरे ॥ तथाच राघवभट्टकृतम् ॥ वैकारिकादिग-
 द्याश्च चन्द्रेणैकादश स्मृताः । इन्द्रियाणामधिष्ठातृदेवास्ते
 परिकीर्त्तिताः । यच्चापरं मनस्तत्त्वं सप्तद्वयविकल्पकम् ।
 तैजसादेव तज्जातमिन्द्रियाणि तथा दश । भूतादेः पञ्च तन्मा-
 त्राणि आसन् भूतमतः परम् ॥ तन्मात्राणि च शब्दस्पर्शरूपरस-
 गन्धाः ॥ शब्दतन्मात्रादाकाशम् । शब्दस्पर्शतन्मात्राभ्यां वायुः ।
 शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रेभ्योऽग्निः । शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रेभ्यो
 जलम् । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्रेभ्यो भूमिरुत्पद्यते ॥
 तदुक्तं प्रपञ्चसारि प्रथमपटले ॥ शब्दादगोमस्यर्शतस्तेन वायु-
 स्तस्मात् रूपाद्वज्रिरेवै रसाच्च ग्रन्थांसि एतैर्मन्वतो भूर्धराद्या भूताः ।
 पञ्च स्रुगुणानां क्रमेण ॥ ब्रह्मज्ञानतन्मनिर्वाणतन्मयोस्तु ॥
 आकाशाज्जायते वायुः वायोरुत्पद्यते रवि रवेरुत्पद्यते तोयं
 तोयादुत्पद्यते मही । मही संलीयते तोये तोयं संलीयते रवौ ।
 रविः संलीयते वायौ वायुर्नभसि लीयते । पञ्चतत्त्वाद्भवेत् सृष्टि-
 स्तत्त्वे तत्त्वं विलीयते ॥ श्रुती च ॥ तस्मात् ब्रह्मण आकाशः
 सम्भूत आकाशाद्वायुर्वायोस्तेजस्तेजस आपोऽग्नाः पृथिवी पृथिव्या
 ओषधय ओषधेभ्योऽन्नानीति भूतमात्मकतत्सृष्टिरुक्ता ॥ इति
 पञ्चभूतोत्पत्तिलयप्रकारः । तार्किकास्तु आकाशादीनां शब्दा-
 दयो गुणा इत्याचक्षते । सांख्या अपि शब्दी गुणो विद्यतः शब्द-
 स्पर्शौ वायोस्ती च रूपज्ञाने रसेन सह तानि जलस्य मन्थेन
 सह तानि पृथिव्या इति ॥ राघवभट्टकृतज्ञानसंहितायामपि ।

शब्दैकगुणमाकाशं शब्दस्पर्शगुणो मरुत् । शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज-
स्त्रिगुणमिथ्यते । शब्दस्पर्शरूपरसगुणा आपश्चतुर्गुणाः । शब्द-
स्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चगुणा मच्चैति । वस्तुतस्तु पञ्चीकरण-
रूपेण पञ्चसु प्रत्येकेषु पञ्चगुणाः सत्त्वादित्रिगुणवत् सन्ति अतो
नासिकादिषु प्रथिव्यादीन्द्रियेषु कटुस्वादप्रतीयते । इति पञ्च-
भूतगुणकथनम् ॥ भूतमण्डलानि शारदातिलके प्रथमपटले ॥
वृत्तं दिवस्तत् षड्विन्दुलाञ्छितं मातरिखनः । त्रिकोणं
स्वस्तिकोपेतं वज्रैर्द्वन्दुसंयुतम् । अक्षोजमभ्रसो भूमेश्चतुरस्रं
विदुर्बुधाः ॥ प्रपञ्चसारेऽपि ॥ वृत्तं व्योम्नो विन्दुषट्कान्वितं तद्
वायोरग्नेः स्वस्तिकोद्यच्चिकोणम् । अलोपेताद्वैन्दुमहिम्बमाप्यं
स्याद्ब्रजोद्यद्वृत्तिरस्रं धरायाः । यद्वा विश्वसारे ॥ आकाश-
मण्डलं प्रोक्तं वर्तुलं सर्वसम्मतम् । षट्कोणमण्डलं वायोस्त्रि-
कोणन्तु विभावसोः । अष्टास्रं वरुणस्यापि चतुरस्रं धरासुतम् ।
इति वेति क्त्वा मतत्रयं तत्र लिखितम् । एतत् प्रयोजनन्तु
प्रश्ने आकृतिज्ञानम् । प्राणायामभूतोदययोः प्रत्यक्षदर्शनम् ।
षट्कर्मासाधनञ्च सर्वमग्रे वक्ष्यते ॥ इति भूतमण्डलानि ॥
भूतरूपाण्यपि शारदायाम् ॥ स्वच्छं विद्यन्मरुत् कृष्णो रक्तो-
ऽग्निर्विषदं पयः । पीता भूमिः पञ्चभूतान्येकैकाधारतो विदुः ॥
स्वच्छं श्वेतमिति राघवभट्टः । विषदं श्वेतम् ॥ तथात्र प्रपञ्च-
सारे ॥ खमपि शुषिरचिह्नं समीरणः स्याच्चलनपरः परि-
पाकवान् कृशानुः । जलमपि रसवद्द्रवना धरा ते सितसिति-
पाटलशुक्लपीतभासः । शुषिरं छिद्रम् । सितिः कृष्णः ।
वस्तुतस्तु स्वच्छं निर्मलं नीलमिति यावत् । प्रश्नप्रकरणे स्पष्टी-
भविष्यति ॥ तन्मते सित इत्यत्राकारप्रश्नेषेणासित इति ।
छिद्रादिभिः खादयो ज्ञायन्त इति तात्पर्यम् । एकैकाधारत
इति स्वस्वकारणाधारणीत्यर्थः ॥ सूर्याचन्द्रोक्तभूतपञ्चकालक

११८

व ।

ख-

।।

२

चतुर्विधदेहसृष्टिस्तु ॥ विश्वसारतन्त्रे प्रथमपटले ॥ पृथिव्या
 ओषधिर्जाता ओषधेरन्नमेव च । तस्माद्वेत्तदा देवि ! रेतः सर्व-
 सुखावहम् । रेतसस्तु भवेद्देवि ! ब्रह्माण्डं शशिसूर्ययोः । शशि-
 सूर्यात्मकं सर्वं चराचरमिदं जगत् । चरं जङ्गममचरं
 स्थावरम् ॥ शारदातिलके प्रथमपटले ॥ पञ्चभूतात्मकं विश्वं
 चराचरमिदं जगत् । अचरा बहुधा भिन्ना गिरिवृक्षादि-
 मेदतः । चरास्तु त्रिविधा भिन्नाः खेदाण्डजजरायुजाः ।
 पञ्चभूतात्मकमित्यनेन त्रिवृत्करणपक्षः पञ्चीकरणपक्षोऽपि
 सूचित इति । तत्र ये तेजसा देवास्तेषामपि शरीरे अर्द्धं
 भागस्तेजसः । चतुर्थांशः पृथिव्याश्चतुर्थांशो जलस्येति त्रिवृ-
 त्करणपक्षः ॥ पञ्चीकरणपक्षे तु तेजसश्चत्वारोऽंशा अन्त्येषाम-
 ष्टमोऽष्टमोऽंशा एवमन्यत्रापि । तदुक्तं पञ्चदश्यां पञ्चम-
 प्रकरणे तत्त्वविवेके । स्थूलशरीराद्युत्पत्तिसिद्धये पञ्चीकरणं
 निरूपयितुमाह । तद्भोगाय पुनर्भोग्यभोगाय तनुजन्मने ।
 पञ्चीकरोति भगवान् प्रत्येकं विद्यदादिकम् । भगवानैश्व-
 र्यादि गुणषट्कसम्पन्नः । ऐश्वर्यादिगुणषट्कञ्च समग्रैश्व-
 र्यवीर्ययशःस्त्रीज्ञानवैराग्यरूपमुक्तञ्च । ऐश्वर्यस्य समग्रस्य
 वीर्यस्य यशसः त्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षष्ठां भग इति
 स्मृतिः । समग्रस्येत्यनेनानाणिमाद्यैश्वर्याष्टकं सूचितमतस्तमो-
 गुणात्मकेश्वरादधिकगुणतया भगवतः समसत्त्वादित्रिगुणा-
 त्मकत्वेनाधिक्यमायातम् । न तु सत्त्वमात्रप्रधानगुणात्मकस्य
 भगवदिति भ्रामधेयम् । तथात्वे त्रिगुणात्मिकाया भगवत्यास्ताद-
 भिधानं नोपपद्यत इति सुधीभिर्भाव्यम् । परमेश्वरः पुनः पुन-
 रपि तद्भोगाय तेषां जीवानां भोगायैव भोग्यभोगाय तनु-
 जन्मने भोग्यस्यान्नपानादेर्भोगायतनस्य जरायुजादिचतुर्विधश-
 रीरजातस्य च जन्मने उत्पत्तये विद्यदादिकमाकाशादिभूत-

पञ्चकं प्रत्येकमेकैकं पञ्चीकरोति । अपञ्चात्मकं पञ्चात्मकं
सम्यग्मानं करोति । द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः ।
स्वस्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात् पञ्चपञ्चतेति । अथ वा षड्-
शास्तेजसः पृथिवीजलवायुकाशानां दशमो दशमोऽंशः ।
एवं पार्थिवे अस्मदादिशरीरेऽपि पृथिव्याः षड्भागाः । जला-
दीनां दशमोदशमोऽंशस्तदुक्तं राघवभट्टहृतेन । पृथिव्यादीनि
भूतानि प्रत्येकं विभजेद्द्विधा । एकैकं भागमादाय पञ्चधा
विभजेत् पुनः । एकैकं भागमेकैकभूतैः संवेशयेत् क्रमात् ।
ततश्चाकाशभूतस्य स्वा भागाः षड्भवन्ति हि । वायुादि
भागाश्चत्वारो वायुादिष्वेव माविशेत् । एवञ्च खेचराणामा-
काशवायुभागाधिकाद्वियति गतिर्गृहगोधिकादीनामाकाश-
भागाधिकाद्विद्यादिगतिर्भूतादीनां वायुभागाधिकात् सर्वत्र
गतिरस्यैवेत्येति ॥ इति पञ्चीकरणम् ॥ प्रपञ्चसारप्रथम-
पटले ॥ प्रकृतौ कालनुन्नायां गुणान्तःकरणात्मनि । देह-
श्चतुर्विधो भिन्नो जन्तोरुत्पत्तिभेदतः । उद्भिदः स्वेदजोऽण्डा-
ज्जश्चतुर्थस्तु जरायुजः । गुणान्तःकरणकारणे कालप्रेरितायां
प्रकृतौ सत्यामुद्भिदादिचतुर्विध उत्पत्तिभेदतो जन्तोः शरी-
रिणो देहो भवतीत्यर्थः । उद्भिदलक्षणमुक्तम् । विश्वसारप्रपञ्च-
सारप्रथमपटले ॥ उद्भिद्य भूमिं निर्गच्छेदुद्भिदः स्थावरस्तु सः ।
निर्दिष्टः स्तब्धविटपपत्रपुष्पफलादिभिः । एषामुत्पत्तिप्रका-
रस्तु राघवभट्टहृतेन । उद्भिदाः स्थावरा ज्ञेयास्तृणगुल्मादि-
रूपिणः । तत्र सिक्ता जलैर्भूमिरन्तरूपा विपाचिता । वायुना
व्युद्यमाना तु वीजत्वं प्रतिपद्यते । तथा चोक्तानि वीजानि
संसिक्तान्यभसा पुनः । उच्छूनत्वं मृदुत्वञ्च मूलभावं प्रयान्ति
च । तन्मूलादङ्गुरोत्पत्तिरङ्गुरात् पर्णसम्भवः । पर्णात्मकं ततः
काण्डं काण्डाच्च प्रसवं पुनः ॥ इत्युद्भिदोत्पत्तिः ॥ पाप-

११२

व ।

ख-

त ।

द

कर्माचरणे प्रेत्य स्थावरयोनिप्राप्तिर्मन्त्र्यसूक्ते सप्तविंशतिपटले ॥
 पापात्मा पिष्टदौहित्यमाह्वयेषी तु यूथिका । पुत्रद्वेषी तु वरुणः
 कम्पद्रुषकनाशकः । भूहर्ता कोद्रवो देवि । तीर्थद्वेषी तु चम्पकः ।
 भार्यायाः केशनिर्वापे दूर्वा भवति शङ्करि । गोलोमदाह्वी तु
 कृशो ब्रह्मद्वेषी वक्रो भवेत् । भार्याद्वेषी कुक्षको मिष्टमुक्
 तित्तिङ्गीभवेत् । परान् वक्ष्यित्वा स्वयमेव यो मिष्टं भुङ्क्ते
 स एव तित्तिङ्गी च तात्पर्यम् ॥ ताम्रहर्ता तु पनसो मञ्जी-
 हर्ता तथार्जुनः । परस्त्रीहरणे देवि ! बहुजो भवति ध्रुवम् ।
 गुरुद्वेषी सोमतरुः श्वश्रूद्वेषी जयन्तिका । मातुः कलह-
 संयुक्तश्चोरवृक्षः प्रजायते । स्वामिना कलहे देवि ! ब्रह्मास्थो-
 जायते तरुः । द्विभार्य्यैकद्वेषी स्यात् चण्डालो जायते हि
 सः । भार्याया वधकश्च जायते करमर्दकः । विभक्तधनहर्ता
 तु नीपो भवति निश्चितम् । शस्यापहारी एरण्डो यज्ञद्वेषी
 ध्रुवो भवेत् । परास्त्रो विफलो देवि ! सुह्री सञ्जायते ध्रुवम् ।
 सुदकीव्रासको देवि ! राजगामिनि प्रैशुने । रामास्थवासको-
 जातः कुहालश्चौरवृत्तिकः । तैलहर्ता तिलतरुः सर्षप फल-
 द्रुषकः । परपुरुषगामिनी नारी कोद्रवो भवति ध्रुवम् । मत्स्यद्वेषी
 पितुवृक्षः पर्वगामी शिवामदः । शिवामैथुनिनो विप्रो धट
 वृक्षो विजायते । श्वशुरघ्नो नारिकेलः श्वश्रूहर्ता लता भवेत् ।
 परं पञ्चशिवावृक्षः श्यालद्वेषी जलं भवेत् । सपत्नीपुत्रद्वेषी
 स्याद्वस्त्रो जायते प्रिये । स्तनभेदी च पुङ्खः अन्तर्मेदी च
 मेरुकः । करमर्दः करच्छेदी जीवन्ती पादहा नरः । भूत-
 द्वेषो देवदारुर्नमेरुः शिशुनिन्दकः आम्बानशीलो बन्धूकः
 सन्ध्याह्वीनो जङ्गी भवेत् । अतिथिवधकश्चैव शरी नाम प्रजा-
 यते । पशवण्डलोपकः यूगः पर्णो गोमूत्रनिन्दकः । देव-
 द्वेषी जातितरुः शङ्खद्वेषी तु मञ्जिका । व्रतद्वेषी पूततरुः

सङ्कल्पभञ्जकश्च यः । भवेत् सोमतरुर्देवि ! आश्रमस्य तु
दूषकः । कामहृत्तो भवेद्देवि ! गव्यत्यागी शतावरी । भक्षा-
तको ज्ञानहर्ता अयाज्ययाजको वरिः । असत्यतिग्रहीता च
अटसारो भवेत् ध्रुवम् । राजस्वहरणादेवि ! भवेच्चाण्डालको
ध्रुवम् । देवदास्यास्तु हरणे कर्णिकारो विजायते । जले
निस्तारजादेव अशोको जायते प्रिये ! । देवायतनभागादि-
भेदको धातकी भवेत् । गृहहृत्तो तु जीवन्ती ब्रह्महानल एव
हि । अन्तहा सूतहा देवि ! तथा सर्वप्रदूषकः । गिरिकर्ण-
िकारो भवति भार्यात्यागी च भूरुहः । योनिभेदी तु कदली
बीजभेदी तु बीजकम् । बीजहर्ता बीजमूलं कामहर्ता मयू-
रकः । शिवहृत्तो भूवदरो मन्त्रहृत्तो जवा भवेत् । पट्टहर्ता
योगतरुर्वस्त्रहर्ता तु कासिका । लौहहर्ता वटो देवि ! ताम्र-
हर्ता तु वीनशः । कांसहर्ता रणतरुः रौप्यहर्ता तु शादलः ।
हृत्पञ्चापभेदे तु शतशोऽथ सहस्रशः । स्थावरत्वं गमिष्यन्ति
सर्वावस्थासु सर्वदा । इति पापादृक्षयोनिप्राप्तिः ॥ पापेन जल-
त्वप्राप्तिरत एव ॥ जलत्वं याति पापेन शैलत्वं याति शङ्करि ! ।
तस्य पापस्य भेदेन जायते वर्णसङ्करः । उदक्कागमने देवि !
नसीत्वं याति शङ्करि ! । मिथ्यावभाषणादेव स्थावरत्वं जलं
विदुः । मातापितृर्गुरोरर्थं तडागस्य जलं भवेत् । स्वास्यर्थे
च परैर्धनं च या नारी मन्दचारिणी । सा भवेद्भर्तृतोयञ्च या
शय्यां नारुहेत् पतेः । सा मृतान्यद्भवेत्तोयं सत्यमेव मम प्रिये ! ।
एकाशीत्या तथा षष्ठ्या पञ्चविंशतिभिर्यदा । तत्र तत्र विशु-
रूपं तोयं जानासि भाविनि ! । अशीतिमात्रं सासुद्रे हस्ता-
नाञ्च प्रमाणतः । कलाहस्ती भवेद्यत्र द्वादशे पापवर्जितः ।
अतोऽन्यत् पापसम्भूतिः स्वकालेनैव प्राप्स्यति ॥ इति जलत्व-
प्राप्तिः । तत्पापादनुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत् । शिवलिङ्गे

११८

व ।

ख-

त ।

दे

समभ्यर्च्य स्थापयित्वा यथाविधि ॥ चतुर्दश्यां निराहारी
 वृषस्ये भास्करे सिते । पापक्षयं समुच्चार्य गाञ्च दद्याद्द्विजक्षने ।
 तेषां पापस्य शुद्धयं प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ॥ इति तत्पाप-
 प्रायश्चित्तम् ॥ प्रपञ्चसारविश्वसारयोः ॥ कृमिकौटपतङ्गाद्याः
 खेदजा नाम देहिनः । तदुत्पत्तिप्रकारोऽपि तत्रैव ॥ खेदजः
 स्त्रियमानेभ्यो भूवङ्गाद्वा प्रजायते । यूकमत्कुणकौटाद्या ये
 चान्ये क्षणभङ्गुरा इति ॥ यूक उकनीति यस्य नाम मत्कुण-
 ऋणपोक इति यस्य प्रसिद्धिः ॥ भूमेरन्तरुषविपाकेन वीजत्वं
 शास्त्रसिद्धम् ॥ स्त्रियमानभूवङ्गजलवक्त्रस्थस्तु खेदजोत्पत्तिः ।
 प्रत्यक्षसिद्धा यथा गोमयपुञ्चादेः कौटाद्युत्पत्तिरित्यनयोर्भेदः ।
 अण्डजजरायुजयोः शुक्रशोणितसंयोगेनोत्पत्तिस्तु ॥ प्रपञ्च-
 सारि ॥ अण्डजो वर्तुलीभूतात् शुक्रशोणितसंयुतात् । कालेन
 भिन्नात् पूर्णात्मा निर्गच्छन् प्रक्रमिष्यति । अहिगोधावयो मेक-
 शिशुमारादिकश्च सः । राघवभट्टधृतम् । अण्डजाः पक्षिणः
 सर्पा नक्षमत्स्याश्च कच्छपाः । कुलीरगोधा मेकाद्याः शिशु-
 माराजसूक्तय इति । अजः शङ्खः ॥ इति तत्रापि किंव-
 दन्ती । अण्डं सृते गिलाहारश्चर्वाहारी जरायुजमिति ॥ प्रायि-
 कमेतत्क्षणम् । तथा रोमन्यायकजन्तोः स्थाच्छृङ्गं नान्यस्य
 जन्मिन इत्यपि ॥ शारदायाम् ॥ जरायुजा मनुष्याद्याः अनुवृत्तां
 निगद्यते ॥ विश्वसारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ मनुष्यसदृशं जन्म
 कुत्रापि नैव विद्यते । देवता पितरः सर्वे वाञ्छन्ति जन्म
 मानुषम् । दुर्लभो मानुषो देहः सर्वदेहेषु सर्वदा । तस्माच्च
 मानुषं जन्म एतदुक्तं सुदुर्लभम् । तत्रापि संशयचेता विशेषेण
 तु पार्वति । । मन्त्रतन्त्ररतः पुंसां सोऽपि चेदतिदुर्लभः ।
 तत्रागमविदः श्रेष्ठाः सर्वदेहेषु पूजिताः । तत्रापि साधकः
 श्रेष्ठः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ॥ रुद्रजामले उत्तरखण्डे द्वितीय-

पटले ॥ मानुषं सफलं जन्म सर्वशास्त्रेषु गोचरम् । चतुर-
शीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् । न मानुषं विनान्यत्र तत्त्व-
ज्ञानन्तु लभ्यते । कदाचित्तमते जन्म मानुषं पुण्यसञ्चयात् ।
सोपानभूतं मोक्षस्य मानुषं जन्म दुर्लभम् ॥ निर्वाणतन्त्रे
द्वितीयपटलेऽपि ॥ स्थावरादिषु कौटेषु पशुपक्षिषु शैलजे ।।
चतुरशीतिलक्षं वै जन्म चाप्नोति सोऽव्ययः ॥ ततो लभेत्
परेशानि । मानुषीं दुर्लभां तनुमिति । चतुरशीतिलक्षयोनिभ्रम-
णानन्तरं ब्राह्मणयोनिप्राप्तिः । कर्मविपाकेऽप्युक्ता यथा ।
स्थावरास्त्रिशलक्षश्च जलजो नवलक्षकः । क्षमिजा दशलक्षश्च
रुद्रलक्षश्च पक्षिणः । पशवो विंशलक्षश्च चतुर्लक्षश्च मानवाः ।
एतेषु भ्रमणं कृत्वा द्विजत्वमुपजायते । निर्वाणतन्त्रे ॥ मानुषीं
तनुमित्यत्र ब्राह्मणत्वावच्छिन्नमानुषीं तनुमित्यवगन्तव्यम् ।
दुर्लभेति विशेषणवलेनेति ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥ ततो मानुष-
देहश्च धर्माधर्माधिपक्ष सः । ततोऽपि लभते जन्म पुनर्यत्पुन-
वाप्नुयात् । जायन्ते च म्रियन्ते च कर्मपाशनिबन्धिताः ।
चतुरशीतिलक्षेषु नानायोनिषु शैलजे ।। इति मनुष्यत्वप्राप्ति-
प्रशंसा ॥ चण्डिकोवाच ॥ कथं वा लभते जन्म कथं मृत्यु-
र्भवेत् प्रभो ।। तत्प्रकारं महादेव ! श्रोतुमिच्छामि तद्वद ॥
शङ्कर उवाच ॥ इह यत् क्रियते कर्म तत् परचोपभुज्यते ।
जीवस्तृणजलीकेव देहाद्देहान्तरं व्रजेत् । सम्प्राप्य चतुरं देहं
देहं त्यजति पूर्वकम् । इति श्रुत्वा च सा चण्डी पप्रच्छ
शङ्करं प्रति ॥ प्राप्तं चतुरदेहन्तु पिण्डदानादिकं कथम् ॥
शिव उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मायादेहं तदेव हि ।
मायादेहः परेशानि ! वायुरूपो न चान्यथा । वायुरूपो यतो
देहः आकाशस्थो निराश्रयः । ततश्च पिण्डदानेन वायुः स्थिर-
तरो भवेत् । प्रथमे मस्तकं देवि ! जायते च क्रमावधि । ततो

११८

वि ।

स्व-

न ।

दे

मम पुरं गत्वा धर्मकर्मादिकश्चरेत् । तद्भुक्ताच्चापरं किञ्चिदयदा
 कर्म न विद्यते । ममाज्ञया यदा जीवः प्रययौ ब्रह्मशासनम् ।
 तस्मात् कर्मानुसारेण यदि स्याद्भुक्ता तनुः । महाविद्यां भाग्य-
 वशाद् यदि प्राप्नोति सद्गुरोः । तत्त्वज्ञानं महेशानि यदि भाग्य-
 वशात्कमेत् । तदैव परमो मोक्षो यावद्ब्रह्माण्डमण्डलम् ।
 महाविद्याप्रसादेन पुनरागमनं न हि ॥ द्वितीयपटले ॥ तीयात्तु
 बुद्बुदं जातं यथा तीये विलीयते । प्रकृत्या जायते सर्वं पुन-
 स्तस्यां प्रलीयते । ब्रह्मविष्णुशिवा देवि ! जायन्ते प्राकृताद्-
 भुवम् । तथा प्रलयकाले तु प्रकृत्यां लुप्यते पुनः ॥ इति
 श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमे सर्गकाण्डे चतुर्विधदेहसृष्टिकथनं नाम
 द्वितीयपरिच्छेदः ॥

गुरुं प्रणम्य यं तेनाज्ञानध्वान्तमुधाकरम् । वक्ति मर्त्यदेह-
 सृष्टिं द्विजः श्रीरामतोषणः ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणी प्रथमपरिच्छेद-
 धृतज्ञानभाष्यम् ॥ देव्युवाच ॥ शरीरं कीदृशं नाथ ! मुक्तिर्वा केन
 कर्मणा । इदानीं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे शशिशेखर । ॥ ईश्वर
 उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि शरीरं कर्मसंभवम् । रजस्वला च
 या नारी विशुद्धा पञ्चमे दिने । पीडिता कामवाणेन ततः पुरुष-
 मीहते । भगलिङ्गसमायोगान्मैथुनं स्यात्तदा तयोः । अन्योऽन्य-
 स्पर्शनादेव जायते च महासुखम् । चरते च यदा रेतः प्राणापान-
 विसं श्रितम् । क्षितिरेपस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । सर्वेषां
 तत्र तत्त्वं स्याद्देहस्थरक्तबीजयोः । गर्भाशयनिरूपणानन्तरं
 गर्भोत्पत्तिप्रकार उक्तो मातृकाकामेदतन्त्रे द्वितीयपटले ॥
 देव्युवाच ॥ वद ईशान ! सर्वज्ञ ! सर्वतत्त्वविदांवर ! । यत् त्वया
 कथितं देव ! मम सङ्गे विहारतः । कथं वा जायते पुत्रः कथं
 वा शुकेसंस्थितिः । पुत्र इति गर्भमात्रोपलक्षणम् । केन प्रका-
 रेण गर्भो जायत इति प्रश्नस्य तात्पर्यम् । वर्धमानस्य लिङ्गस्य

प्रवेशो वा कथं भवेत् । भीतियुक्ता ह्यहं नाथ ! त्वहि मां दुःख-
सङ्गटात् ॥ महादेव उवाच ॥ मणिपूरं महापद्मं सुसुम्नामध्य-
संस्थितम् । तस्मान्नालिन देवेशि ! नाभिपद्मं मनोहरम् । नाल-
त्रयसमायुक्तं सदा शुक्रविभूषितम् । ऊर्ध्वनालं सहस्रारे अतः
शुक्रविभूषितम् । तस्मादेव स्तनद्वन्द्वं वर्धमानं दिने दिने ।
मध्यनालं सुसुम्नान्तं वृन्ताकारं सुशीतलम् । आयोन्यग्रमधो-
नालं सदानन्दमयं शिवे ! । शृणु चार्वङ्गि ! सुभगे ! तन्मध्ये
लिङ्गताडनात् । यद्रूपं परमानन्दं तन्नास्ति भुवनत्रये । नाभि-
पद्मन्तु यद्रूपं तत् शृणुष्व समाहिता । वस्थानं मध्यदेशेऽस्य
सदा पद्मविराजितम् । बाह्यदेशे चाष्टपदं चतुरस्रञ्च तद्वहिः ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं सुवर्णमं सङ्ख्यन्तकम् । तत्पद्मेन भवेत् पुष्पं
वृन्तयुक्तं त्रिपदकम् । प्रफुल्ले तु त्रिपदे वै बाह्ये शोणितद-
र्शनम् । एतन्मध्ये महेशानि ! यदि स्यात्लिङ्गताडनम् । पद्म-
मध्ये गते शुक्रे सन्ततिस्तेन जायते ॥ पद्ममध्ये शुक्रगमन-
प्रकारस्तु प्रपञ्चसारे ॥ स्वस्थानतश्च्युतात् शुक्राद्विन्दुमादाय
माहृतः । गर्भाशयं प्रविशति यदा तुल्यं तदापरः । आर्त्तवात्
परमं बीजमादायाख्याय मूलतः । यदा गर्भाशयं नेत्यत्यथ
सन्निश्वयेन्मरुत् । सङ्गोभ्य संवर्द्धयति तन्मूलं शोणिताधिकम् ।
स्त्री स्यात् शुक्राधिकं ना स्यात् समेन च नपुंसकम् । वायुवज्जग-
न्मसां योगे गर्भवृद्धिः प्रजायते ॥ एतेन त्रिवृत्करणफलः
स्पष्टीकृतः ॥ ज्ञानभाष्ये ॥ नाभिपद्मे महादेवि ! आस्यते च
समीरणैः । कुम्भकारो यथा चक्रे घटते च घटादिकम् ।
तथा समीरणो गर्भं घटते प्राणिनां तनुम् ॥ शारदातिलके ॥
रक्ताधिका भवेन्नारी भवेद्वेतोऽधिकाः पुमान् । उभयोः सम-
तायान्तु नपुंसकमिति स्थितिः ॥ मातृकाभेदतन्त्रे ॥ पुरुषस्य
तु यत् शुक्रं शक्तेस्तस्याधिकं यदि । तदा कन्यां विजानीया-

हिपरीते पुमान् भवेत् । उभयोस्तुल्यशुक्रेण स्त्रीवं भवति
 निश्चितम् ॥ तत्राधिक्यतुल्यतादिकम् राघवभट्टृतवचनोक्त-
 प्रमाणस्यैव यथा ॥ द्वाविंशतीरजोभागाः शुक्रमात्राश्चतुर्दश ।
 गर्भसञ्चनने काले पुंस्त्रियोः सम्भवन्ति हि ॥ मात्राभाग इत्यर्थः ॥
 नारी रजोऽधिकांशे स्यान्नरः शुक्राधिकांशके । उभयोरुक्त-
 संख्यायां स्यान्नपुंसकसम्भवः । राघवभट्टृतवाग्मटे बह्वपत्य-
 कारणमुक्तं यथा ॥ वायुना बहुधा भिन्ने तद्विन्दौ बह्वपत्यता ।
 वियोनिविक्रताकारा जायन्ते विक्रते तथा । शृणु चार्चङ्गि !
 सुभगे ! पुण्यमाहात्म्यमुत्तमम् । मेध्यं तत् शुक्रसंयोगे वर्धते
 च दिने दिने । एवं दिङ्माससम्प्राप्ती तत्पुण्ये विन्दुसंयुते । गलिते
 परमेशानि ! व्यक्ता भवति सन्ततिः ॥ श्रीदेव्यवाच ॥ किञ्चिद्दो-
 गादिसम्भूते क्लमिकीटादिसम्भवे । तस्माज्जीवाः प्रणश्यन्ति
 सा नारी जीवते कथम् ॥ श्रीशङ्कर उवाच । तस्य पुण्यस्य
 माहात्म्यं किं वक्तुं शक्यते मया । विन्दुस्थानसहस्रान्तु पुण्यमध्ये
 प्रियंवदे ! । वृद्धदा येऽत्र तिष्ठन्ति तत्रैव सन्ततिर्भवेत् । एवं
 क्रमेण देवेशि ! सहस्रं सन्ततिर्यदि । वर्द्धमानं तदा पुण्यं पीडा
 किञ्चिन्न जायते ॥ वीर्यवद् गर्भकारणमाह ॥ राघवभट्टृतम् ॥
 पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सङ्गता । शुद्धगर्भाशये मार्गं
 रक्ते शुक्रोऽनिले हृदि । वीर्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाद्वयोः
 पुनः । रोगाल्यायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा । इति तत्र
 शुक्रशोणितसम्बद्धविन्दौ पूर्वपूर्वानेकजन्मसञ्चितकर्मणां मध्ये
 फलदानोन्मुखं पापपुण्यात्मकं प्रबलमेकं सुखदुःखोभयफलकं
 मनुष्यशरीरोपभोग्यं यत् कर्म तदनुरूपेणाविद्यारूपपाशबद्धः
 सन्नेकोऽपि बहुधा भिन्नो नित्योऽप्यात्मा गृहमिव देहं प्रविष्ट-
 स्तदुक्तं राघवभट्टृतपद्यात्मविवेके ॥ अस्ति ब्रह्म चिदानन्द-
 मयं ज्योतिर्निरञ्जनम् । सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः ।

अनाद्यविद्योपहिता यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गकाः । दीर्घाद्युपाधिसम्भिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः । सुखदुःखप्रदैः स्त्रीयैः पुण्यपापैरनियन्त्रिताः । तत्तज्जातिश्रुतं देहमायुर्भोग्यञ्च कर्मजम् । प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते मायापाशनियन्त्रिता इति ॥ निर्वाणतन्त्रेऽपि ॥ सत्यलोके महाकाली महारुद्रेण सम्पुटा । चणकाकारविस्तारा चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी । अनादिपुरुषोदयुक्ता तदंशा जीवसंज्ञकाः । ज्वलदग्नेर्यथा देवि ! स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः । तस्याश्रुतः परं विन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि । तदैव सहसा देवि ! शक्तियुक्तो भवत्यपि ॥ इति गर्भोत्पत्तिप्रकारकथनम् । इति शुक्रशोणितादुत्पत्तिप्रकारस्तु योगार्णवे ॥ आयुष्यं भुक्तमाहारं स वायुः कुरुते द्विधा । सम्प्रविश्याथ मध्यन्तु पृथग्नं पृथग् जलम् । स वायुः प्राणवायुः ॥ योगियाज्ञवल्के उत्तरखण्डे चतुर्थाध्यायेऽपि । आयुष्यं भुक्तमाहारं सहसा तैः समीकृतम् । तुन्दमध्यगतः प्राणस्तानि कुर्यात् पृथक् पृथक् । पृथक्करणप्रकारस्तु योगियाज्ञवल्के ॥ पुनरग्नौर्जलं प्राप्य अन्नादीनि जलोपरि । स्वयं ह्यपानः सम्प्राप्य तेनैव सह मारुतः । प्रयाति ज्वलनं तत्र देहमध्यगतं पुनः । अग्नौ जलं प्राप्य अन्नादीनि जलोपरि सम्प्राप्य तेनैव प्राणवायुर्नैवापानो वायुर्देहमध्यगतं ज्वलनं प्रयाति प्राप्नोतीत्यन्वयः । एवं च प्राणेन प्रेरितमिति प्राणस्थित्येति च प्राधान्येन वक्ष्यते । वस्तुतस्तु प्राणापानाभ्यामेव प्रेरितमित्यर्थः ॥ वायुना वह्नेते वह्निरपानेन शनैः शनैः । ततो ज्वलति विप्रेन्द्रि ! स्वकुले देहमध्यके । ज्वालाभिर्ज्वलनं तत्र प्राणेन प्रेरितं ततः । ज्वलत्युदकमाश्रित्य कोष्ठमध्यगतं तदा । अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तं जलोपरि समर्पितम् ॥ ततः सुषुप्तमकरोद्वाहिसन्तसवारिणा ॥ योगार्णवे च ॥ अग्नेरुद्भूतं जलं स्थाप्य तदन्नञ्च जलोपरि । जल-

स्वाधः स्वयं प्राणः स्थित्वा स्वेदयते शनैः । वायुना व्युद्यमानो-
 ऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् । अन्नं तदुष्णतोयिन समन्तात्
 पच्यते पुनः । द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक् कीटं पृथग्रसम् ॥
 कीटं मलम् ॥ तत्र रसोत्पत्तिप्रकारस्तु प्रपञ्चसारे द्वितीय-
 पटले ॥ अथाहृतं षड्रसं वाप्याहारं कण्ठमार्गगम् । श्लेष्मणा-
 नुगतं तस्य प्रभावान्धुरीभवेत् । तत्र स्वादुम्ललवणतिक्तो-
 षणकषायकाः । षड्रसाः कथिता भूतविकृत्या द्रव्यमाश्रिताः ॥
 स्वादुमिष्टमुषणं कटु ॥ तथैवमाशयगतं पश्चात् पित्ताशयं
 व्रजेत् ॥ आशयं किद्रम् ॥ तदा तस्यानुगमनात् कटुकत्वं प्रप-
 द्यते । तथात्रान्तरसंश्लिष्टं पच्यते पित्तवारिणा ॥ जलादीनां
 पाक्केनावस्थान्तरमुक्तम् योगियान्नवल्के ॥ स्वेदमूत्रे जलं
 स्यातां वीर्यरूपं रसो भवेत् । पुरीषमन्नं स्याद्भागि ! प्राणः
 कुर्यात् पृथक् पृथक् ॥ प्रपञ्चसारे ॥ ग्रहणी नाम सा पात्री प्रसृ-
 ताक्षलिसन्निभा ॥ पात्री नाडी ॥ अधस्तस्याः प्रधानाग्निः
 समानेनापि नुद्यते । तस्याधस्तात् त्रिकोणाभं ज्योतिराकार-
 मुत्तमम् । विद्यते स्थानमेतच्च मूलाधारं विदुर्बुधाः । प्रधा-
 नाग्निर्दोषदूथस्थान्निभ्यो भिन्नो वडवानलरूपोजठराग्निरिति
 प्रसिद्धः । तथाच । पच्यमानादसं भिन्नं वायूरक्तादिकं नयेत् ।
 तत्र कीटं पृथक् भिन्नं ग्रहण्यां चिनुतेऽनिलः । तच्चोद्यमानं
 विष्णाम ग्रहणीं पूरयेन्मुहुः । सा तथा शक्ता पूर्णबलितां प्रति-
 मुञ्चति । शक्ता मलेन ॥ पुरीषं पायुमार्गेण तत्पाके चाश्वस-
 स्ततः । अङ्गस्वेदवदभ्यन्तर्व्याप्तैः सूक्ष्मैः शिवामुखैः । वस्ति-
 मापूरयेद्वायुः पूर्णो मुञ्चति धारया । मूत्राशयो धनुर्वक्रो वस्ति-
 रित्यभिधीयते । मूत्रमित्याहुर्दृढं वस्तेनानिलनिर्गतम् । अप-
 थ्यभाजामनयोर्मार्गयोर्दोषदुष्टयोः । प्रमेहमूत्रकृच्छादेर्ग्रहण्या-
 देश्च सम्भवः ॥ राघवभट्टतसुश्रुते । त्वगसृक्कांसमेदोऽस्थि-

मज्जाशुक्राणि धातवः । भवन्त्यन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्त-
तेजसा इति । एतेन पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरं प्रति कारणत्वमुक्तम् ।
तथाच तत्रैव ॥ रसः सनाडीमध्यस्थः शरीरेणोष्मणा भृशम् ।
पच्यते पच्यमानाच्च भवेत् पाकद्वयं पुनः । चर्माविध्य समन्ताच्च
रुधिरन्तु प्रजायते । स्वस्वकोषाग्निना पक्वैर्जायन्ते धातवः क्रमात् ॥
योगार्णवे ॥ रसेन तेन ता नाडी प्राणः पूरयते शनैः । प्रतर्पयन्ति
सम्पूर्णास्ताश्च देहं समन्ततः ॥ योगियाञ्चवल्के ॥ समानवायु-
ना साहं रसं सर्वासु नाडिषु । व्यापयन् श्वासरूपेण देहे चरति
मारुतः । व्योमरन्ध्रैश्च नवभिर्विष्मूत्राणां विसर्जनम् । कुर्वन्ति
वायवः सर्वे शरीरेषु निरन्तरम् । निश्वासीच्छ्वासकासाश्च प्राण-
कर्मसमौरिताः । अपानवायोः कर्मेतद्विष्मूत्रादिविसर्जनम् ।
प्राणापाने च चेष्टादि व्यानकर्मेति चेष्यते । उदानकर्म तच्चोक्तं
देहस्योन्नयनादि यत् । पोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्त्ति-
तम् । उद्गारादिगुणो यस्तु नागकर्म समौरितम् । निमौलनादि
कूर्मस्य क्षुत्तृणा कृकरस्य च । देवदत्तस्य विप्रेन्द्रि ! जृम्भा कर्मेति
कीर्त्तितम् । धनञ्जयस्य पोषादि सर्वं कर्म प्रकीर्त्तितम् । वायूनां
स्थानादीन्ये वक्ष्यन्ते ॥ इति शुक्रशोणिताद्युत्पत्तिकथनम् ॥
योगार्णवे । मातुरस्त्ववहा नाडी ननु विज्ञा पराधिधा । नाभिस्य-
नाडीगर्भस्य मात्राकृतरसावहा इति । शाक्तानन्दतरङ्गिण्याम् ।
कलनञ्चैकरात्रेण वुडुदं पञ्चमे दिने । शोणितं दशरात्रेण
मांसपिण्डं चतुर्दशे ॥ प्रपञ्चसारे ॥ मारीयं नाम 'योगोत्थं'
पौरुषं कार्मणं मलम् । आणवं नाम सम्भोक्तं मिलितं तन्मल-
द्वयम् । सूक्ष्मरूपाणि तत्त्वानि चतुर्विंशमलद्वये । तत्र योगं
प्रकृत्याशु तत्तत्सु गर्भमारुतः । सङ्गोभ्य संवर्द्धयतीत्यादि पूर्वो-
क्तानान्वयः । स्वगतेर्मरुदग्न्यग्निः क्लिद्यते क्वाथ्यते च तत् । मिश्री-
भूतं तदङ्गैव मातुरङ्गुष्ठसम्भितम् ॥ सम्भितमिति मातुरङ्गुष्ठ-

११८

१।

१-

।

।

अखपरिमितमित्यर्थः ॥ रात्रवभट्टतयोगार्णवे ॥ घनमांसश्च
 विंशतिपिण्डभाजोत्पन्नितम् । पञ्चविंशतिपूर्णाहे पलं तद-
 द्भुरायते ॥ शाक्तानन्दे तु । मासैकेन तु पूर्णेन मांसपिण्डो-
 ऽद्भुरायते ॥ इत्युक्तम् तत्रैव । आदौ सञ्जायते बीजं ब्रह्माण्डं
 सहस्राङ्गुरः । तस्य मध्ये सुमेरुश्च कङ्कालदण्डरूपधृक् । चरा-
 चराणां सर्वेषां देवादीनां विशेषतः । आलयः सर्वभूतानां मेरो-
 रभ्यन्तरेऽपि च । प्रदीपकलिकाकारो जीवो हृदि सदा स्थितः ।
 रज्जुवदो यथा श्येनो गतोऽप्याकथ्यते पुनः । गुणवद्वस्तथा
 जीवः प्राणापानेन कथ्यते ॥ योगियज्ञवल्को द्वितीयाध्याये
 तु । तन्मध्ये नाभिरित्युक्तं नाभौ चक्रसमुद्भवः । द्वादशाङ्ग-
 युतं तच्च तेन देहः प्रतिष्ठितः । चक्रेऽस्मिन् ध्वनति जीवः पुण्ड्र-
 पापप्रणीदितः । तन्मुपस्तरनञ्चस्यो यथा श्वसति लूतिकाः ।
 लूतिका उर्ध्वनाभः साकरसा यस्य प्रसिद्धिः । नाभौ जीवस्य
 भ्रमणमात्रं स्थितिस्थानान्तु हृदयमेव । तेन पूर्ववचने न
 विवादः ॥ योगार्णवे ॥ मासद्वये तु सम्पूर्णं शिरोमेदः प्रजायते ।
 मज्जास्थि च त्रिभिर्मासैः केशत्वक् च चतुर्थके । एषु मासेष्व-
 ध्वालविवेके तु विशेष उक्तो यथा । द्रवत्वं प्रथमे मासे कल-
 लात्वं प्रजायते । द्वितीये तु घनः पिण्डः पेशीष्टघनमवुदम् ।
 पुंस्त्रीनपुंसकानान्तु प्रागवस्थाः क्रमादिमाः । तृतीये त्वङ्गुराः
 पञ्च करादिशिरसो भताः ॥ अत्र अन्यत्रये यज्ञेदतथमङ्गुरी-
 यदुत्तरेक्तं तच्छरीरमेव यवाङ्गुरभेदेनाविरुद्धमाकायभेदेन वा ।
 अङ्गप्रलङ्घभागाः स्युः सूक्ष्माश्च युगपत्तदा । अतुर्ये व्यक्ता तेषां
 भागानामभिजायते । मातृजञ्चास्य हृदयं विषयानभिकाङ्क्षति ।
 यतो मातृर्मनोऽभीष्टं कुर्यादभिसम्पदये । ताञ्च द्विहृदयो
 पारीभाहृदोहृदिनी बुधाः । अदानाहोहदानान्तु गर्भस्य व्यङ्ग-
 यादयः । मातृष्वेद्विषयालाभस्तदात्तो जायते सुतः । गर्भः

स्यादर्शवान् भोगी देहे दोहददर्शने । अलङ्कारे सुललितो
धर्मिष्ठस्तापसाश्रमे । देवतादर्शने भक्तो हिंस्रो भुजगदर्शने ।
गोधाशने तु निद्रालुर्बली गोमांसभक्षणे । माहिषेण तु
रक्ताक्षं लोमशं सूर्यते सुतम् । प्रहङ्गं पञ्चमे पिण्डं मांस-
शोणितपुष्टिभाक् । पठेऽस्थिस्त्रायुनाद्यादिनखकेशविविक्तता ।
बलवद्भौ चोपचितौ सप्तमे त्वगपूर्णता । अष्टमे त्वक्श्रुती
स्यातां श्रोजघैतच्च हृद्भवम् ॥ ज्ञानभाष्ये तु ॥ कर्णाक्षिनासि-
कारन्ध्रं कण्ठोदरञ्च पञ्चमे । प्रष्टे मुखं तथा पादौ सर्वा-
ङ्गानि तु सप्तमे । सन्धिः सम्पूर्णतां याति अष्टमे मासि वै
ततः । एतदपि पूर्ववत् ॥ अण्डाधारञ्च कङ्कालं प्रारभ्य गुद-
मूलतः । द्वाविंशज्ज्ञानविज्ञानग्रन्थिनो वर्द्धते सदा ॥ शार-
दायां प्रथमपटले ॥ अथ मात्वाहृतैरन्नपानार्थैः पोषितः क्रमात् ।
दिनात् पक्षात्तथा मासात् वर्द्धते तत्त्वदेहवान् ॥ तत्त्वदेहवा-
निति चतुर्विंशतितत्त्वात्मकशरीर इत्यर्थः । दीपैर्दूधैः सुखं
प्राप्तो व्यक्तिं याति निजेन्द्रियैः । वातपित्तकफा दोषा
दूष्याः स्युः सप्त धातवः ॥ इति धातुकथनम् ॥ शारदायाम् ॥
ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रं त्वक्हृग्जिह्वानासिकादयः । ज्ञाने-
न्द्रियार्थाः शब्दाद्याः स्मृताः कर्मेन्द्रियाण्यपि । शब्दाद्या इति
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । वाक्पाणिपादपायुन्मुखसंज्ञान्वाहर्मनी-
षिणः । मुखहस्तपादगुदलिङ्गानि । वचनादानगतयो विस-
र्गानन्दसंयुताः । कथनग्रहणगमनत्यागानन्दाः । कर्मेन्द्रियार्थाः
संप्रोक्ता अन्तःकरणमात्मनः ॥ विश्वसारं प्रथमपटले ॥ इन्द्रि-
याणां गुणान् वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने । चक्षुषो रूपमाख्यातं
कर्णयोः शब्दमेव च । गन्धस्तु नसि विज्ञेयस्त्वचि स्पर्श उदा-
हृतः । आदानं भुजयुग्मेषु जिह्वायां रस उच्यते । गुह्ये
विसर्गो विज्ञेय आनन्दः स्यादुपस्थके । गमनं पादयुग्मे च

११८

व ।

स-

र ।

द

कथनं मुखपङ्कजे । इतीन्द्रियेन्द्रियार्थकथनम् । अन्तःकरणं
 स्पष्टयति शारदाकृतम् ॥ मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तम् । परिकीर्त्ति-
 तम् । अत्र सङ्कल्पविकल्पात्मकं मनः । सर्वभावनिययकारिणी
 बुद्धिः । ज्ञावभिमानयुक्तोऽहङ्कारः । निर्विकल्पकं चित्तम् ।
 यदाह एषा शक्तिः परा वीजरूपिणी प्रोक्तलक्षणा ॥ सङ्कल्पश्च
 विकल्पश्च कुर्वाणा तु मनो भवेत् । बुद्धिरूपा तथा सर्वभाव-
 निययकारिणी । ज्ञातास्त्रीत्यभिमानाद्या सैवाहङ्कारसंज्ञिता ।
 निर्विकल्पात्मिका सैव खलु चित्तस्वरूपिणी । एवमेकैव बहुधा-
 नर्तकोव प्रतीयत इति । श्रुतिरपि । मनः सङ्कल्पयति बुद्धि-
 निश्चिनोति अहमभिमानयति चेतश्चेतयते इति । प्रपञ्चसारे-
 ऽपि ॥ परेण यास्या समनुप्रवृद्धया मनस्तदा सा तु महाप्रभावा ।
 यदा तु सङ्कल्पविकल्पकृत्या यदा पुनर्निश्चिनुते तदा सा ।
 स्यादबुद्धिसंज्ञा च यदा प्रवृत्तिर्ज्ञातारसात्मानमहङ्कतिः स्यात् ।
 तदा यदा सा त्वभिमीयतेऽन्तश्चित्तञ्च निर्धारितमर्थमेषामिति ॥
 शारदायाम् ॥ दशेन्द्रियाणि भूतानि मनसा सह षोडश ।
 विकाराः स्युः प्रकृतयः पञ्च भूतान्यहङ्कतिः । अव्यक्तं महदि-
 त्यष्टौ तन्मात्राश्च महानपि । साहङ्कारा विकृतयः सप्त तत्त्व-
 विदो विदुः । विकाराः षोडश अष्टौ प्रकृतयः यप्त विकृतय
 इति वचनस्य पर्यवसितार्थः । यदुक्तं मूलप्रकृतिरविकृति-
 महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न
 विकृतिरिति तत्त्वविद इति । एतानि प्रकृत्यन्तानि चतुर्विंशति-
 तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चविंशतिः ॥ तदुक्तं वायवीसंहिता-
 याम् ॥ त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः परा प्रकृतिरुच्यते । प्रकृतेस्तु परं
 प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम् । यद्वा तत्त्वविद एवं विदुः । एषां
 तत्त्वान्तर्भावात् तत्त्वविद्भिरेवं संज्ञा कृता इत्यर्थः ॥ शारदा-
 याम् ॥ अग्निप्रोमात्तको देदो विन्दुर्यदुभयात्मकः । शक्तः

मग्निरूपं रक्तं सोमरूपम् । स तदात्मकत्वादिन्दुरभयात्मक
इत्यर्थः ॥ तदुक्तं राघवभट्टधृतेन ॥ कलाषोडशकचन्द्रः स्यादु-
द्वादशकलो रविः । कलादशयुतो वज्रिः कलाष्टत्रिंशदंशभुक् ।
साम्प्रतं सम्भवन्तीह गर्भाधानस्य हेतवे । अग्निषोमात्मकं
तेन गीयते सचराचरम् । कलांशकेन योगेन भूयाद् गर्भस्य
सम्भवः ॥ ब्रह्मज्ञानतन्त्रे प्रथमपटले ॥ शिव उवाच ॥ अस्थि-
मांसनखाद्यैव नाडीत्वक् चेति पञ्चमः । पृथ्वीपञ्चगुणाः प्रोक्ता
ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् । मूलं मूलं तथा शुक्रं श्लेष्मा शोणितमेव
च । तीर्थं पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् । हासो
निद्रा क्षुधा चैव भ्रान्तिरालस्यमेव च । तेजःपञ्चगुणाः प्रोक्ता
ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् । धारणं चालनं क्षेपः सङ्कोचः प्रसवस्तथा ।
वायुपञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषितम् । कामक्रोधस्तथा
लोभस्त्रपा मोहश्च पञ्चमः । नभःपञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन
भाषितम् ॥ राघवभट्टधृतम् । अस्थि मांसं त्वचं स्नायुरोम एव
तु पञ्चमं । इति पञ्चविधा प्रोक्ता पृथिवी कठिनात्मिका ।
लाला मूलं तथा शुक्रं शोणितं मज्ज पञ्चमम् । अपां पञ्चगुणा
एते रुद्ररूपाः प्रकीर्त्तिताः । क्षुधा तृष्णा भयं निद्रा आलस्यं
भ्रान्तिरेव च । तृष्णात्मका गुणा एते तेजसः परिकीर्त्तिताः ।
धारणं वलनं भुक्तिराकुञ्चनप्रसारणम् । एते पञ्च गुणा वायोः
क्रियारूपा व्यवस्थिताः । रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस्त-
थैव च । व्योम्नः पञ्च गुणाः प्रोक्ताः शून्याख्ये शुषिरात्मनीति ।
इति पञ्चभूतोद्भवास्थ्यादिकथनम् ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिण्यम् ॥
प्राणापानसमानश्चोदानव्यानी च वायवः । नागः कूर्मोऽथ
ककरो देवदत्तो धनञ्जयः । एते दशगुणाः प्रोक्ताः सर्वप्राण-
वशात्मनः ॥ शारदातिलके ॥ दक्षिणांशः स्मृतः सूर्यो वाम-
भागो निशाकरः । नाडीर्दश विदुस्तासु सुख्यास्तिस्रः प्रकी-

११८

व ।

स्व-

ते ।

दे

र्त्तिताः । इडा वामतनोर्मध्ये सुषुम्ना पिङ्गला परे । मध्या
 तास्त्रपि नाडी स्यादग्नीषोमस्वरूपिणी । अत्रेडा वाममुष्काधःस्था
 धनुर्वक्रा वामनासापर्यन्तं गता । एवं पिङ्गला दक्षिणाण्डाधःस्था
 धनुर्वक्रा दक्षिणनासान्तं गता । पृष्ठवंशान्तर्गता सुषुम्ना इत्यर्थः ।
 एतदग्रे स्फुटोभविष्यति ॥ तथा प्रपञ्चसारे । ऊर्ध्वन्तु मरुता-
 नुना तस्मादपि मलद्वयी । उभयात्मिक्यधोवृत्ता नाडी दीर्घा
 भवेद्वज्रः । अवाङ्मुखी सा तस्याश्च भवेत् पक्षद्वये द्वयम् ।
 पक्षद्वये पार्श्वद्वये । नाष्टस्थाः सन्निरुद्धा स्युः सप्तान्या नाडिका
 मताः । तत्र या प्रथमा नाडी सा सुषुम्नेति कथ्यते । या वामे-
 डेति सा ज्ञेया दक्षिणा पिङ्गला मता ॥ तथा काचिन्नाडी
 बहिर्वक्त्रा या मातुर्हृदि वध्यते । यया स पुष्टिमायाति केदार
 इव कुन्धया । मातुराहाररसजैर्धातुभिः पुष्यते क्रमात् । क्रम-
 वृद्धौ परं ज्योतिः कलाक्षेत्रज्ञतामियात् । सत्क्षेत्रज्ञं मलं
 तत्तु समूतं सगुणं पुनः । सदोषं दूष्यसम्पन्नं जन्तुरित्यभिधी-
 यते । समूतपञ्चकं सत्क्षेत्रज्ञमात्रसञ्चितं तत् पूर्वोक्तमानवादिमलं
 जन्तुरित्युच्यते । इत्यन्वयः । किञ्चूतं सगुणं सत्त्वादिगुणं
 सत्त्वादिगुणयुक्तं सदोषं वायुपित्तकफयुक्तं दूष्यसम्पन्नं सप्त-
 धातूद्भवम् । इति जन्तुलक्षणम् ॥ फलकोषद्वयं तत्तु व्यक्तं
 पुंसो न तु स्त्रियाः । नपुंसकस्य किञ्चित्तु व्यक्तिरत्रोपलक्ष्यते ।
 फलकोषद्वयमण्डकोषद्वयम् ॥ निरुत्तरतन्त्रे प्रथमपटले ॥
 नाडीनां संवहो देवि ! कञ्जयोनिः खगाण्डवत् । तत्र नाड्यः
 समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः । कञ्जस्य पद्मस्य योनिरुत्प-
 त्तिस्थानं शालूकमिति यावत् । प्रधानाः प्राणवाहिन्यो नाड्यत्र
 दश स्मृताः । इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयिका ।
 मान्धारो हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी । अलम्बुषा
 कुङ्कुमैव शङ्खिनी च दश स्मृताः । एवं नाडीमयं चक्रं विज्ञेयं

शक्तिचक्रके । इडायाः पिङ्गलायाश्च मध्ये या सा सुषुम्निका ।
 इयञ्च त्रिगुणा ज्ञेया ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका । रजोगुणा च
 वज्राख्या चित्रिणी सत्त्वसंयुता । तमोगुणा ब्रह्मनाडी कार्य-
 भेदक्रमेण च । तथा । वायुर्भानुमयो ज्ञेयो मनश्चन्द्रात्मकं तथा ।
 प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानी च वायवः । या वाममुष्क-
 सम्बन्धा संस्थित्यन्ती सुषुम्नया । दक्षिणचक्रमाश्रित्य धनु-
 र्वक्त्रा हृदि स्थिता । वामांशयन्त्वान्तरगा दक्षिणं नासिका-
 मियात् । तथा दक्षिणमुष्कस्था नासाया वामरन्ध्रगा । तन्वा-
 न्तरे ॥ सुषुम्नाकलिता याता मुष्कं दक्षिणमाश्रिता । सङ्गता
 वामभागस्य यन्त्रमध्यं समाश्रिता । दक्षिणं नासिकाद्वारं
 प्राप्तेति गिरिजात्मजे । वाममण्डमनुस्यूतामनन्या सव्यनासिका-
 मिति । अनयोः स्वरूपमुक्तं योगार्णवे । इडा च शङ्खचन्द्राभा
 तस्या वामे व्यवस्थिता । पिङ्गला सितरक्ताभा दक्षिणं पार्श्व-
 माश्रिता इति । तन्वान्तरे इडायां संश्रितश्चन्द्रः पिङ्गलायां
 दिवाकर इति । तास्यपि सुषुम्ना मुखेत्यर्थः । उक्तञ्च श्रीतत्त्व-
 चिन्तामणौ ॥ मेरोर्वाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिवे सव्यदत्ते
 निषण्णे मध्ये नाडी सुषुम्ना त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा ।
 अन्यत्रापि तयोः पृष्ठवंशं समाश्रित्य मध्ये सुषुम्ना स्थिता ब्रह्म-
 रन्ध्रन्तु यावत् । अन्यासां नामान्यपि शारदायाम् । गान्धारी
 हस्तिजिह्वाख्या सपूषालम्बुषा मता । यशस्विनी शङ्खिनी च
 कुङ्कुः स्युः सप्त नाडयः । आसां स्थितिस्वरूपं योगार्णवे ॥ इडा-
 पृष्ठे तु गान्धारी मयूरगलसन्निभा । सव्यपादादिनेत्रान्ता
 गान्धारी परिकीर्तिता । हस्तिजिह्वोत्पलप्रेक्षा नाडी तस्याः
 पुरः स्थिता । सव्यभागस्य मूर्द्धादिपादाङ्गुष्ठान्तमाश्रिता । पूषा
 तु पिङ्गलापृष्ठे नीलजीमूतसन्निभा । याम्यभागस्य नेत्रान्ता
 यावत् पादतलं गता । यशस्विनी शङ्खवर्णा पिङ्गला पूर्वदेशगा ।

११८

वि ।

ख-

ने ।

दे

गान्धार्याश्च सरस्वत्या मध्यस्था शङ्खिनी मता । सुवर्णवर्णा
 पादादिवर्णान्ता सव्यभागके । पादाङ्गुष्ठादिमूर्धान्तयाम्यभागे
 कुङ्कुमता । रावणा सरस्वती विश्वोदरी शङ्खिनी एता अपि
 प्रधानत्वेनोक्ताः । उक्तञ्च । ताय भूरितरास्तासु सुस्थाः प्रोक्ता-
 स्तुर्दश । सुषुम्नेडा पिङ्गला च कुङ्करथ सरस्वती । गान्धारी
 हस्तिजिह्वा च रावणा च यशस्विनी । विश्वोदरी शङ्खिनी च
 ततः पूषा यशस्विनी । अलम्बुषेति ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृत-
 ज्ञानभाष्ये ॥ इडा च वामनासायां दक्षिणे पिङ्गला मता ।
 सुषुम्ना ब्रह्मरन्ध्रे च गान्धारी वामचक्षुषि । दक्षिणे हस्तिजिह्वा
 च पूषा कर्णेऽथ दक्षिणे । वामे यशस्विनी ज्ञेया मुखे चालम्बुषा
 मता । कुङ्कुश्च लिङ्गमूले स्यात् शङ्खिनी शिरसोपरि । एवं
 द्वारं समाश्रित्य तिष्ठन्ति दश नाडिकाः । चित्तिश्च वारि तेजश्च
 वायुराकाशमेव च । स्थैर्यं गता इमे पञ्च बाह्याभ्यन्तर एव
 च ॥ एवं प्रधाननाडीनिरूपणानन्तरं शास्त्रारूपनाडी निरु-
 पिता ॥ शारदायां ॥ नाड्योऽनन्ताः समुत्पन्नाः सुषुम्ना पञ्च-
 पर्वसु । सर्वाणि स्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धान्तानि ।
 तत्राधोऽधोऽग्रत्यिसारभ्योर्ध्वोर्ध्वसर्वग्रन्थिपर्यन्तं समाप्तिः । गणयि-
 तुमशक्यत्वादनन्ताः । यदाहुः । पूर्वीक्तायाः सुषुम्नाया मध्यस्थायाः
 सुलोचने । । नाभिहृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यपर्वसमुद्भवाः । अधो-
 मुखाः शिराः काश्चित् काश्चिदूर्ध्वमुखास्तथा । परास्तिर्यग्गताः
 काश्चित्तत्र लक्षत्रयाधिकाः । नाड्योऽर्द्धलक्षसंख्याताः प्रधानाः
 ममुदीरिताः ॥ तासु सर्वासु बलवान् प्राणो वायुः समन्ततः ॥
 विश्वसारं तु ॥ नाभेः सकाशाज्जायन्ते नाड्यः क्षेत्रप्रपोषिकाः ।
 इडा तु वामभागे स्याद्दक्षिणे पिङ्गला मता । मध्ये सुषुम्ना
 विज्ञेया चन्द्रसूर्यानलात्मिका । नाड्योऽनन्ताः समुत्पन्नास्तस्याः
 पञ्चसु पर्वसु । इति नाभेः सकाशादिति यदुक्तं तत्क्षेत्रप्रपोषिका

इत्यनेन रसादिचालनेन शरीरपुष्ट्यर्थं न तु ज्ञानध्यानाद्यर्थं
वायुसाधनप्रकरणे एतत् स्पष्टीकरिष्ये । नरपतिजयचर्या-
स्वरोदग्रधृतब्रह्मजामलमपि शरीरपुष्ट्यर्थमेव नाभी कुण्डलिनी-
माह यथा महाशक्तिः कुण्डलिनी नाडीस्थाहिस्वरूपिणी ।
ततो दशोर्दगा नाड्यो दश चाधोगतास्तथा । हे हे तिर्य्यगते
नाड्यौ चतुर्विंशतिसंख्यया । सूक्ष्ममुख्यास्वती नाड्यः सहस्राणां
द्विसप्ततिः । कुण्डलिन्यां महाशक्तौ मूलमार्गा भवन्त्यमी ।
ताभ्यः सूक्ष्ममुखा नाड्यः शरीरं प्रतिपोषिकाः । सप्त शतानि
जायन्ते समोत्तराणि संख्यया । प्रधाना दश नाड्यस्तु दश वायु-
प्रवाहिकाः ॥ योगियाञ्चवल्कोः प्रथमध्यायेऽपि नाभिचक्रमुप-
क्रम्य । कन्दमध्ये स्थिता नाडी सुषुम्नेति प्रकीर्तिता । तिष्ठन्ति
परितः सर्वाश्चक्रेऽस्मिन् नाडिकास्ततः । नाडीनामपि सर्वासां
मुख्या गार्गि ! चतुर्दश ॥ गार्गि इति याञ्चवल्कोः स्थियाः सम्बो-
धनम् ॥ इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च सरस्वती । वारुणी
चैव पूषा च हस्तिजिह्वा यशस्विनी । विश्वोदरी कुहूश्चैव
शङ्खिनी च पयस्विनी । अलम्बुषा च गान्धारी मुख्याश्चैता-
श्चतुर्दश । तासां मुख्यतमास्तिसस्तिष्वेकोत्तमोत्तमा । मुक्ति-
मार्गं तु सा प्रोक्ता सुषुम्ना विश्वधारिणी । कन्दस्य मध्यमे गार्गि !
सुषुम्ना च प्रतिष्ठिता । पृष्ठमध्ये तु तेनास्या सह मूर्ध्नि व्यव-
स्थिता । मुक्तिमार्गं सुषुम्ना सा ब्रह्मरन्ध्रेति कीर्तिता । अव्यक्ता
सा च विज्ञेया सुषुम्ना वैष्णवी स्थिता । इडा च पिङ्गला चैव
तस्याः सव्ये च दक्षिणे । इडा तस्याः स्थिता सव्ये पिङ्गला चैव
दक्षिणे । इडायां पिङ्गलायाञ्च चरतश्चन्द्रभास्करी । इडायां
चन्द्रमा ज्ञेयः पिङ्गलायां दिवाकरः । चन्द्रस्तामस इत्युक्तः
सूर्यो राजस उच्यते । विषभागी रवेर्भागश्चन्द्रभागोऽस्युतं
तथा । ताविव तदधः सर्वं कालं रात्रिन्दिवात्मकम् ॥ भोक्त्री

सुषुम्ना कालस्य गुह्यमेतदुदाहृतम् । सरस्वती कुङ्कुमैव सुषुम्ना
 पार्श्वयोः स्थिते । गान्धारी हस्तिजिह्वा च इडायाः पृष्ठपूर्वयोः ।
 यशस्विनी च पूषा च पिङ्गला पृष्ठपूर्वयोः । कुङ्कुम हस्तिजिह्वा
 च मध्ये विश्वोदरी स्थिता । यशस्विन्याः कुङ्कुममध्ये वारुणी
 सा प्रतिष्ठिता । पूषायाश्च सरस्वत्याः स्थिता मध्ये यशस्विनी ।
 गान्धार्याश्च सरस्वत्याः स्थिता मध्ये च शङ्खिनी । अलम्बुषा च
 विप्रेन्द्रि । कन्दमध्यादधः स्थिता । पूर्वभागे सुषुम्नायास्त्वामेद्रान्तं
 कुङ्कुमः स्थिता । अधश्चोर्ध्वं विज्ञेया वारुणी सर्वगामिनी । यश-
 स्विनी च याम्यस्य पादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते । पिङ्गला चोर्ध्वं
 याम्ये नासान्तं विद्धि मे प्रिये ।। याम्ये पूषा च नेत्रान्ता
 पिङ्गलायाः सुपृष्ठतः । पयस्विनी तथा गार्गी । याम्ये नेत्रान्त-
 मिष्यते । सरस्वती तथाचोर्ध्वं हस्तिजिह्वा प्रकीर्त्तिता । आस-
 व्यकर्णादिप्रेन्द्रि ! शङ्खिनी चोर्ध्वमागता । गान्धारी सव्यनेत्रान्त-
 मिडायाः सव्यतः स्थिता । इडा च सव्यनासान्तं मध्यभागे
 व्यवस्थिता । हस्तिजिह्वा तथा सव्यपादाङ्गुष्ठान्तमिष्यते ।
 विश्वोदरी तु सा नाडी तुन्दमध्ये व्यवस्थिता । अलम्बुषा
 महाभागे । वायुमूला तथोर्ध्वं । एतास्त्वन्याः समुत्पन्नाः शिवा-
 स्त्वन्याश्च ता अपि । यदश्वत्थदले तद्वत् पद्मपत्रेषु चापि वा ।
 नाडीष्वेतासु सर्वासु विज्ञातव्या तपोधने ।। इति नाड्युत्पत्ति-
 कथनम् । अध्यात्मविवेके । अस्यां शरीरे संख्या स्यात् षष्टियुक्तं
 शतत्रयम् । त्रयोष्ववास्थिशतान्यत्र धन्वन्तरिरभाषत । हे शते
 त्वस्थिसन्धीनां स्यातामव दशोत्तरे । पेशीस्त्रायुशिरासन्धि-
 सङ्गसङ्घितयं मतम् । नव स्त्रायुशतानि स्युः पञ्च पेशीशता-
 न्यपि । अधिका विंशतिः स्त्रीणां स्नानयोर्दिग्दिगीरिता । शिरा-
 धमनिकानान्तु लक्षाणि नव विंशतिः । सार्धानि स्युर्नवशती
 षट्पञ्चाशदयुता तथेति ॥ इत्यस्याद्युत्पत्तिकथनम् ॥ रुद्र-

जामले सप्तदशपटले ॥ तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च यानि लोमानि
मानुषे । नाडीमुखानि सर्वाणि घर्मबिन्दुं चरन्ति च । इति
नाडीमुखस्थानकथनम् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमे सर्गकाण्डेऽन्नमयकोषात्मक-
मनुष्यदेहकथनं नाम चतुर्थः परिच्छेदः ॥

एवं नाडीप्रभृतीनां निरूपणानन्तरं वायुप्रकरणस्योचित्या-
त्तन्निरूप्यते ॥ शारदातिलके ॥ मूलाधारोद्गतः प्राणस्ताभि-
र्व्याप्नोति तत्तनुम् । वायवोऽत्र दश प्रोक्ता वज्रयश्च दश
स्मृताः ॥ ताभिर्नाडीभिः ॥ तत्तनुमनुभूततनुम् ॥ वायुना-
मानि तत्रैव । प्राणाद्या मरुतः पञ्च नागः कूर्मो धनञ्जयः ।
ऊकरोः स्याद्देवदत्त इति नामभिरोरिताः ॥ प्राणाद्या इति
प्राणापानव्यानोदानसमानाः । योगियाज्ञवल्के चतुर्थाध्याये-
ऽपि । प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मश्च ऊकरो देवदत्तो धनञ्जयः । एते नाडीषु सर्वासु
चरन्ति दश वायवः । एतेषु वायवः पञ्च मुख्याः प्राणा-
दयः स्मृताः । तेषु मुख्यतमावेतौ प्राणापानौ नरोत्तमे । प्राण
एवैतयोर्मुख्यः सर्वप्राणभृतां सदा ॥ एषां रूपाणि स्थानानि च
योगार्णवे ॥ इन्द्रनीलप्रतीकाशं प्राणरूपं प्रकीर्तितम् । आस्थ-
नासिकयोर्मध्ये हृन्मध्यनाभिमध्यके । प्राणालयमिति प्राहुः
पादाङ्गुष्ठेऽपि केचन ॥ अपानयत्यपानोऽयमाहारश्च प्रलापि-
तम् । शुक्रं मूत्रं तथोत्सर्गमपानस्तेन मारुतः । इन्द्र-
गोपप्रतीकाशः सन्ध्याजलदसन्निभः । स च मेद्रे च पायौ च
उरुवज्रणजानुषु ॥ मेद्रे लिङ्गे पायौ गुदे ऊरौ प्रसिद्धरूपे वज्रणे
उरुसन्धौ जानुनि प्रसिद्धरूपे । इन्द्रगोपो रक्तवर्णकोटविशेषः ।
कापासियापोका इति ख्यातः । जङ्घोदरककाव्याश्च नाभिमूले
च तिष्ठति ॥ व्यानो व्यानशतोत्पन्नः सर्वव्याधिप्रकोपणः ।

वमेव ।

शास्त्र-

ोनि ।

यदि

री-

पा-

तां

ह-

महारजतसम्प्रेक्षो हारोपादानकारकः । महारजतं काञ्चनम् ।
 हारोपादानकारक आहारग्राहक इत्यर्थः ॥ स्त्रीयाक्षिकर्णयो-
 र्मध्ये कक्षां वै गुल्फयोरपि । कटिः प्रसिद्धाः । गुल्फः
 पादग्रन्थिः । ध्राणे गले स्फिगुद्देशे तिष्ठत्यत्र निरन्तरम् ।
 स्यन्दयत्यधरं वक्त्रं गात्रनेत्रप्रकोपणः ॥ उद्वेजयति चार्थानि
 तूदानो नाम मारुतः । विद्युत्पावकवर्णः स्यादुत्थाना-
 सनकारकः । पादयोर्हस्तयोश्चापि स तु सन्धिषु वर्तते ॥
 पीतं भक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफानिलान् ॥ समं नयति
 गात्रेषु समानो नाम मारुतः । गोक्षीरसदृशकारः सर्वदेहे
 व्यवस्थितः ॥ योगियाञ्जवल्के च ॥ आस्यनासिकयोर्मध्ये
 हृन्मध्ये नाभिमध्येके । प्राणालयमिति प्राहुः पादाङ्गुष्ठे
 च केचन । अधश्चोर्ध्वं कुण्डलिन्याः परितः प्राणसंश्रयः ।
 अपाननिलयं केचिद् गुदमध्योरुजानुषु । उदरे वृषणे कक्षां
 जङ्घे नाभौ वदन्ति हि । गुदाधारद्वयोस्तिष्ठेन्नभ्योऽपानप्रभ-
 च्छनः । स्थानेष्वेतेषु सततं प्रकाशयति दीपवत् । उदानः सर्व-
 सन्धिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि । समानः सर्वगात्रेषु सर्वं व्याप्य
 व्यवस्थितः ॥ रायमुकुटस्तु ॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो
 नाभिदेशके । उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरग इत्याह ॥
 उद्गारे नाग इत्युक्तो नीलजीमूतसन्निभः ॥ उन्मीलने स्थितः
 कूर्मो भिन्नाञ्जनसमप्रभः ॥ कृकरः क्षुत्परश्चैव जवाकुसुमस-
 न्निभः ॥ विजृम्भणे देवदत्तः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥ धनञ्जय-
 स्तथा घोरि महारजतवर्णकः ॥ ललाटे चौरसि स्कन्धे हृदि
 नाभौ त्वगस्थिषु । नागाद्या वायवः पञ्च सदैव परिनि-
 ष्ठिताः ॥ विश्वसारप्रथमपटले तु ॥ प्राण आदौ हृदि
 स्थाने पद्मरागसमद्युतिः । अपानो गुह्यदेशे च इन्द्रगोपसमः
 स्मृतः । गोक्षीरधवलाकारः समानो नाभिदेशके । उदानः

कण्ठदेशे च धूम्रवर्णः प्रकीर्तितः । व्यानः सर्वेषु चाङ्गेषु ज्योती-
रूपेण वर्तते ॥ एतद्वचनानुसारेण पूर्वकथितरायमुकुटधृतं वच-
नमिति पूर्ववचनोक्तैतद्वचनोक्तरूपमेदस्त्वाम्नायादिभेदेन समा-
धेय इति ॥ प्रपञ्चसारकारस्तु ॥ धनञ्जयाख्यो देहेऽस्मिन् कुर्या-
द्वहुविधान् ज्ञसान् । स तु लौकिकवायुत्वान्मृतञ्च न विमुञ्च-
तीति ॥ अतएव विश्वसारे ॥ मैथुनञ्चेच्छति यदा मैथुनञ्च तदा
चरेत् । काले धनञ्जयो वायुर्वीजं गर्भं च सञ्चयेत् । निधायानिल-
मार्गं च पुनरेव प्रवेशयेदिति धनञ्जयवायुतो गर्भसञ्चार इत्यु-
क्तम् । अन्येस्तु चत्वारो वायवोऽधिका उक्ता यथा । वैरम्भणः
स्थानमुख्यः प्रद्योतः प्रकृतस्तथा । वैरम्भणादयस्तत्र सर्ववायु-
वशं गता इति । नरपतिजयचर्यासरोदयधृतब्रह्मजामले ॥
पिङ्गलेङ्गासुषुम्नाभिर्नाडोभिस्त्रिभिर्बुधैः । प्रकटो वायुसञ्चारो
लक्ष्यते देहमध्यतः । इङ्गानाद्यां स्थितश्चन्द्रः पिङ्गला भानु-
बाहिनी । सुषुम्ना शम्भुरूपा च शम्भुर्हृदयरूपकः । हकारो
निर्गमः प्रोक्तः सकारस्तु प्रवेशने । हकारः शम्भुरूपः स्यात्
सकारः शक्तिरुच्यते । अत्र विशेषोऽग्रे वक्ष्यते ॥ शारदायां
द्वितीयपटले ॥ पिङ्गलायां स्थिता क्रस्ना इङ्गायां सङ्गताः परे ।
सुषुम्नामध्यगा ज्ञेयाश्चत्वारो ये नपुंसकाः । अत्र प्रकारः वाम-
नासातो दक्षिणनासाप्रवेशप्रारम्भसमये देहवायुः कञ्चित् काल-
मुभयत्र वहति स दक्षिणायणप्रारम्भसमयस्तदानीं ऋत्विकारा-
त्मकं क्रस्नवन्मुदेति । एवं दक्षिणनासातो वामनासागमनकाले-
ऽपि स उत्तरीयणप्रारम्भकालस्तदानीं ऋत्विक्त्वं दीर्घवन्मु-
देति । तदुक्तं प्रयोगसारे ॥ स्वरं सप्त समारभ्य चत्वारो
ये नपुंसकाः । ते सुषुम्नाश्रिते प्राणे प्रोदन्ययनसंक्रमे इति ॥
जामले ॥ शक्तिरूपः स्थितश्चन्द्रो वामनाडीप्रवाहकः । दक्षनाडी-
प्रवाहे तु शम्भुरूपो दिवाकरः । इति शरीरस्थवायुकथनम् ॥

११८

तत्त्वमेव ।
तीक्षास्त-
तीति ।

यदि
ादी-
त्या-
तेषां
दि-
प-

शारदायाम् ॥ अग्नयो दोषदूषेषु संलीना दश देहेषु । तेषां
 नामानि राघवमदृष्टानि यथा ॥ जृम्भको दीपकश्चैव विभ्रमो
 भ्रमशोभनः । श्रावसथाहवनीयौ दक्षिणाग्निस्तथैव च । अन्वा-
 हार्यौ गार्हपत्य इत्येते दश वङ्कयः ॥ भ्रमेण सह शोभन
 इति मध्यपदलोपिससासाश्रयणेन भ्रमशोभनवेति दशाग्नि-
 कथनम् ॥ शारदायाम् ॥ बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य मनसः
 स्मृतौ । शोकमोहौ शरीरस्य जरा मृत्युः षडूर्मयः ॥ प्रपञ्च-
 सारोऽपि ॥ बुभुक्षा च पिपासा च शोकमोहौ जरा मृत्युः ।
 षडूर्मयः प्राणबुद्धिदेहधर्मेषु संस्थिता इति ॥ ऊर्मोनामार्थ्य-
 त्पादकोऽवस्थाविशेषः ॥ शारदायाम् ॥ शुक्रात् स्नायुस्थिमज्जान-
 स्त्वङ्मांसाश्रूणि शोणितात् । पितुः शुक्रात् स्नायुादि । शोणिता-
 न्मातुः शोणितात् त्वगादि । पाट्कौषिकमिति प्रोक्तं सर्वदेहेषु
 देहिनाम् । प्रपञ्चसारि द्वितीयपटलेऽपि ॥ मज्जास्थिस्नायवः
 शुक्रादन्तास्त्वङ्मांसशोणितम् । इति पाट्कौषिको नाम देहो
 भवति देहिनाम् । वेदान्तविद्विस्त्वपरप्रकारेण पञ्च कोषा उक्ता
 यथा पौर्णमास्यां पञ्चकोषविवेकेऽष्टमप्रकरणे विद्यानन्दस्वा-
 मिना । पितृभुक्तान्नजादीर्याज्जातोऽन्नेनैव वर्धते । देहः सोऽन्न-
 भयो नात्मा प्राक् चोदं तदभावतः ॥ पितृभुक्तेत्यत्रैकशेषेण
 मातृपितृभुक्तान्नजातादिति लभ्यते । अन्नेन दुग्धाद्याहारेण
 प्राक् जन्मन इति शेषः । मरणादूर्ध्वं तदभावतः देहाभावतः ।
 पूर्णो देहे बलं स्याद् यस्तन्नाणां यः प्रवर्तकः । वायुः प्राणमयो
 नासावात्मा चैतन्यवर्जनात् । लौना सुप्तौ वपुर्वीधे वायुयादान-
 खाग्रगा । चिच्छायोपेतधीर्नात्मा विज्ञानमयशब्दभाक् । भव-
 तीति शेषः । कर्तृत्वकरणत्वाभ्यां विक्रियेतान्तरिन्द्रियम् ॥
 विज्ञानमनसी अन्तर्वह्निश्चैते परस्परमिति । अत्र रामकृष्ण-
 पण्डितस्य व्याख्यानम् । ननु मनोबुद्धीरन्तःकरणत्वाविशेषास्त-

नोमयविज्ञानमयरूपेण कोषद्वयकल्पना अनुपपन्नेत्याशङ्क्य कर्तृ-
करणत्वाभ्यां भेदसद्भावाद् घटत एव मनोमयत्वादिभेद इत्याह ।
कर्तृत्वेत्यादि अन्तरिन्द्रियमन्तःकरणं कर्तृत्वकरणत्वाभ्यां कर्तृ-
रूपेण करणरूपेण च विक्रियेत विपरिणमेत इत्यर्थः । एते
कर्तृकरणे विज्ञानमनसी विज्ञानमनःशब्दवाच्ये भवतः ।
एते च परस्परमन्तर्वह्निर्भावेन वर्तन्ते । अतः कोषद्वयत्वमुप-
पद्यते इत्यर्थः ॥ काचिदन्तर्मुखा वृत्तिरानन्दप्रतिबिम्बभाक् ।
पुण्यभोगे भोगशान्तौ निद्रारूपेण लीयते । इदानीमान-
न्दमयस्यानात्मत्वं दर्शयितुं तत्स्वरूपमाह काचिदित्यादि ।
पुण्यभोगे पुण्यकर्मफलानुभवकाले काचिदधीवृत्तिरन्तर्मुखा
सती आनन्दप्रतिबिम्बभाक् आत्मस्वरूपस्यानन्दस्य प्रति-
बिम्बं भजते । सैव भोगशान्तौ पुण्यकर्मफलभोगोपरमे सति
निद्रारूपेण लीयते विलीना भवति । सा वृत्तिरानन्दमय
इत्यभिप्रायः । एतेन मज्जामयोऽस्थिमयः स्नायुमयश्चर्ममयो
मांसमयो रक्तमयश्चेति ये षट्कोषास्तन्वविद्भिर्ज्ञास्ते तु वेदा-
न्तविद्भिर्नमयकोषान्तर्गतत्वेनैव पर्यवसिताः । अधिकास्तु
प्राणमयविज्ञानमयमनोमयानन्दमयेति चत्वार उक्ताः । अतो
दशकोषकोऽयं देह इत्यायातम् । इति शरीरकोषविवरणम् ॥
ग्रपञ्चसारे ॥ रसादितः क्रमात् पाकशुक्रान्तेषु तु धातुषु ।
धातुषु रसादितः क्रमात् पाको भवतीत्यन्वयः । शुक्रपाकात्
स्त्र्यं भित्ताज्जराणामष्टमी दशा । क्षेत्रज्ञस्य तदा जन्तु केवला-
खयमिथ्यते । यथा स्नेहः प्रदीपस्य यथाभ्रमशनित्विषः । बहु-
हारेण कुम्भेन संवृतस्य हविर्भुजः । यथा तेजः प्रसरति समी-
पालोक्तशक्तिमत् । तथा देहावृतस्यापि क्षेत्रज्ञस्य महात्विषः ।
इन्द्रियैः संविवर्द्धन्ते स्वं स्वमर्थग्रहं प्रति । प्रदीपस्य प्रज्वलन-
समये स्नेहस्तेलादिर्यथा प्रज्वलनार्थं शिखां प्रति प्रसरति स्वय-

११८

स्वत्वमेव ।
रीचास्व-
वृत्तौनि ।
यदि
पादौ-
त्या-
तेषां
दि-
प-
र-

धातुस्तदा क्रमादृक्तं लसीकां द्रावयेत् क्षणात् । द्रुता सा
तु लसीकाह्वा रोमकूपैः प्रवर्जते । वह्निः सर्वत्र कणशस्तथा
स्वेदः प्रवर्तते । यदा कफो मरुत्यत्तनुन्नो लीनः प्रवर्तते ।
ऊर्ध्वद्रुतो द्रुतं वाष्पं प्रत्येकञ्च प्रवर्तते । कफात्मिका तु विकृतिः
कर्णशष्कुलिपूरिका । गण्डमालादिकान् वापि कुर्याज्जन्तोस्तु
कर्मजान् ॥ शारदायाम् ॥ इत्थं भूतस्तदा गर्भे पूर्वजन्मशुभा-
शुभम् । स्मरंस्तिष्ठति दुःखात्मा कृन्नदेहो जरायुणा ॥
शाक्तानन्दतरङ्गिण्याम् । नवमे मासि गर्भस्थः सर्वान् संस्मरते
हृदा । नवद्वारपुरे देहो समयान् गमयेच्छनैः । स्थितिप्रका-
रस्तु राघवमदृष्टते । कृताञ्जलिर्ललाटेऽसौ मादृष्टमभिश्चितः ।
अध्यास्ते सङ्कुचद्वातो गर्भे दक्षिणपार्श्वगः । वामपार्श्वीयता
नाडी क्लीवं मध्याश्रितं मतम् ॥ विश्वसारे । योनिदेशोद्भवं
रन्ध्रं नाभिमूलमतः परम् । गर्भाशयन्तु तं प्राहुः सर्वतन्त्रविदो
जनाः । कललं तत्र तिष्ठेद्देहं तत्र गर्भः प्रजायते । कर्मयोगात्म-
रूपेण निर्माणं विधिरादिशेत् ॥ पूर्वोर्जितकर्मफलं पूर्वपूर्वतरा-
र्जितम् । जीवः प्रवेशनं कुर्यात् पूर्वकर्मबुद्ध्यया । प्राक्तनकर्म-
फलं भोक्तुमिच्छया जीवोऽविद्योपाधिकः प्रवेशनं कुर्याद् गर्भं
इति शेषः । पूर्वकर्मफलं किम्भूतम् पूर्वं पूर्वोर्जितमित्यादि । अय-
माशयः । कर्म त्रिविधं सञ्चितं प्रारब्धमागामि च । तत्र
सञ्चितस्य प्रायश्चित्तोषधादिना नाशः । आगामिनश्च तपसा ।
अत एव दोषप्रागभावासमकालीनदोषध्वंसवन्तः शिष्टा इति
गोपीनायतर्काचार्येण शिष्टलक्षणं कृतम् । प्रारब्धस्य भोगं
विना न गत्यन्तरमस्ति । अतस्तत्फलभोगाय गर्भे जीवप्रवेश-
माह । उक्तञ्च प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति ॥ शाक्तानन्द-
तरङ्गिण्याम् ॥ सुकृतं दुष्कृतञ्चैव यत् कृतं पूर्वजन्मनि । तत्
सर्वं सकलं ज्ञात्वा ऊर्ध्वपादस्त्वधोमुखः । गर्भे तु सम्प्रविष्टो-

११८

मेव ।

।स्त्र-

नि ।

दि

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

१-

ऽसौ स्तिमिते घोरदर्शने । स्तिमितेऽन्धकारे घोरदर्शने भय-
ङ्करे । अभ्यस्यामि शिवं ज्ञानं संसारार्णवतारणम् । चिरयोगी
ततो भूत्वा मुक्तो यास्यामि तत्पदम् । एवं गर्भस्थितो जीवो
गर्भयातनयार्दितः । नित्यं भावयते चित्ते लब्धचैतन्यलक्षणः ॥
विश्वसारे ॥ इत्यभ्यस्तदा गर्भः पूर्वजन्मशुभाशुभम् । क्षणं
तिष्ठेत् स्मरस्तत्र निश्चेष्टो भवति ध्रुवम् । शरीरे पञ्चाशदक्षर-
स्थितिं विना शब्दादिर्न निर्गन्तुमाननतः शक्तोऽतः शब्दब्रह्म-
प्रादुर्भावः गर्भं तेषां स्थानमुक्तम् तत्रैव । पुरा कृतयुगे देवि !
कैलासे पर्वतोत्तमे । त्वदीयपादयुगलं ध्यायेऽहं ध्यानयोगतः ।
मम सिद्धिर्भवेत्तत्र युगान्ते कमलानने ॥ परानन्दमयस्तत्र
हस्तवाद्यो ममाभवत् । तस्मिन्नेव क्षणे देवि ! शब्दब्रह्मविभू-
षितः । षट्दशभक्तत्र ममानन्दविविधे । शब्दार्थका-
त्मनादेन द्रव्ययोगेन शब्दते । पञ्चाशद्वर्णसंयुक्तं नादविन्दु-
विभूषितम् । पञ्चाशद्वर्णसंयुक्ता मातृका चक्रसंस्थिता । षट्-
चक्राङ्कितमन्त्रा च मातृकान्तः शरीरिणाम् । आधारि लिङ्गनाभौ
हृदयसरजिजे तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोडशारे विदशदशदले
द्वादशाङ्गे चतुष्के । वासान्ते बालमध्ये ङफकठसहिते कण्ठदेशे
स्वरांश्च हृत्तौ कोदण्डमध्ये न्यसतु विमलधी न्याससम्पत्ति-
सिद्धे । देहे चतुर्दशभुवनस्थानमुक्तम् शाक्तानन्दतरङ्गिण्याम् ।
पातालं भूधरा लोका आदित्यादिनवग्रहाः । भूधरादिसप्त-
स्वर्गाश्च नागाश्च सर्वदेहिनाम् । पिण्डमध्ये स्थिताः सर्वे स्थानं
तेषां वदामि ते । पादाधस्तात्तलं विद्यात्तदूर्ध्वं वितलन्तथा ।
जानुनोः सुतलञ्चैव अतलं सन्धिरम्बुके । तलातलं गुदमध्ये
लिङ्गमूले रसातलम् । पातालं कटिसन्धौ च पादादौ लक्ष्ये-
दबुधः । भूर्लोकौ नामिदंशे च भुवोलोकस्तथा हृदि । स्वर्लोकः
कण्ठदेशे च महर्लोकश्च चक्षुषि । जनलोकस्तदूर्ध्वं तपो-

लोको ललाटके । सत्त्वलोको महायोनी भुवनानि चतुर्दश ।
त्रिकोणे च स्थितो मेरुरुर्ध्वकोणे च मन्दरः । कैलासो दक्षिणे
कोणे वामकोणे हिमालयः । विन्ध्यो विशुस्तदूर्ध्वं च सन्ध्येते
कुलपर्वताः । अस्थिस्थाने महेशानि । जम्बुद्वीपो व्यवस्थितः ।
मांसेषु च कुशद्वीपः क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च । शाकद्वीपः स्मृतो
रक्ते प्राणिनां सर्वसन्धिषु । तदूर्ध्वं शास्त्रलिद्वीपः पुच्छश्च
लोमसञ्चये । नाभौ च पुष्करद्वीपः सागरस्तदनन्तरम् । लव-
णोदस्तथा मूत्रे शुक्ले क्षीरोदसागरः । मज्जा दधिसमुद्रश्च
तदूर्ध्वं घृतसागरः ॥ वशापः सागरः प्रोक्त इक्षुः स्यात् कटि-
शोणितम् । शोणिते च सुरासिन्धुः कथिताः सप्त सागराः ।
ग्रहाणां मण्डलञ्चैव शृणु वक्ष्यामि पार्वति ! । नादचक्रे स्थितः
सूर्यो विन्दुचक्रे च चन्द्रमाः । लोचने मङ्गलः प्रोक्तो हृदि सोम-
सुतस्तथा । उदरे च गुरुश्चैव शुक्ले शुक्लस्तथैव च । नाभि-
स्थितोऽथ मन्दो वै मुखे राहुस्तथा स्थितः । पादौ पाणौ च
केतुश्च शरीरे तीर्थमण्डलम् । विश्वसारे ॥ शीर्षे मुखे तथा
वाही हृदये चोदरे क्रमात् । कटौ वस्ती च गुह्योरुजानु-
जङ्घाङ्घ्रिषु स्थिताः । मेषाद्या राशयो देहे तेषां रूपाख्यतः शृणु ।
अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशङ्गौ । पिङ्ग-
लकर्कुरकमलिनारुचयो यथासंख्यम् । हरितः श्यामलः ।
सितेतरः कण्ठः । पिशङ्गो नीलपीतमिश्रः । कर्कुरः प्रसिद्धः ।
वभ्रुः कपिलः ॥ मेषं वृषं समिथुनं कर्कटं सिंहमेव च । कन्यां
तुलां वृश्चिकञ्च धनुषं मकरं तथा । कुम्भं मीनं न्यसेद् गात्रे
ॐकाराद्यं नमोऽन्वितम् ॥ अश्विनौ भरणी चैव कृत्तिका
रोहिणी तथा । मृगशिरस्तथार्द्रा च पुनर्वसुरतः परम् ।
पुष्याश्लेषा मघा चैव पूर्वफल्गुन्यतः परम् । उत्तराफल्गुनी चैव
हस्ता चित्रा ततः परा । स्वाती विशाखातुराधा ज्येष्ठा

११८

मेव ।

प्रास्त्र-

नि ।

दि

ने-

रा-

तां

मूला ततः परा । पूर्वाषाढा चोत्तरा च श्रवणाभिजितस्तथा ।
 धनिष्ठा शतभिषा चैव पूर्वभाद्रपदा तथा । उत्तरभाद्रपदा चैव
 रेवत्यन्ताः समीरिताः । मूर्ध्नि भूयुगले चाक्ष्णीः कर्णयोर्नसि
 गण्डयोः । ओष्ठयोर्दन्तपंक्तौ च जिह्वायां शीवमूलके । स्तन-
 द्वन्द्वे तथा वक्षःपार्श्वयोर्नाभिदेशके । नितम्बे च तथा पृष्ठे
 गुह्ये च पादयोः पुनः । पादमेकं दिनक्षत्रं राशीनां परिणाम-
 क्तम् । शरीरे राशिनक्षत्रकथनप्रयोजनन्तु प्रश्नकाले प्रष्टा
 यदङ्गे हस्तं दत्त्वा पृच्छति तदङ्गे यो राशिः पतितः तेन
 वर्णादिकं ज्ञातव्यम् इत्यभिप्रायः ॥ श्रीविद्याया राशिन्यासो
 नक्षत्रन्यासश्चानेनैवोक्त इति ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतज्ञान-
 भाष्ये । शुक्रादुत्पद्यते रक्तं रक्तादिन्दुसमुद्भवः । प्राणतो वायु-
 रुत्पन्नः कालाग्निः स्यादपानतः । शुक्रतो नाभिरुत्पन्ना शुक्रा-
 दग्निसमुद्भवः । अपानात् कालाग्निर्जातो नाभिस्थानस्थो
 वडवाग्निरूपो य आहारं पचति शुक्रसम्भूता वायुपित्तकफधा-
 तुस्था दशाग्नय इति भेदेन वङ्गप्रत्यतिर्दिशक्ता । मांसतश्च मलो-
 त्यत्तिर्मज्जा चापि ततो भवेत् । शुक्रेणोत्पादिता जिह्वा नासिका
 सप्त देहिनाम् । रक्तादुत्पद्यते नेत्रं वामञ्चैव तु दक्षिणम् ।
 प्राणादुत्पद्यते शून्यं ब्राह्मरन्ध्रद्वयं तथा ॥ तत्त्वसारे षष्ठपटले ॥
 ईश्वर उवाच । चन्द्रः सूर्यस्तथा वङ्गिः शरीरे दश नाडिकाः ।
 देहस्था वायवः पञ्च मनो विन्दुस्तथैव च । षट्चक्रं मेरुदण्डश्च
 उड्डीयानं तथैव च । जालन्धरः कामरूपः पूर्णश्रीवः श्रीहटकः ॥
 निर्वाणतन्त्रे प्रथमपटले ॥ जन्तोराकारं ब्रह्माण्डं नानावर्णं च
 पार्वति ! । ब्रह्माण्डं विग्रहं प्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मादिकं हि तत् ।
 मेरुपर्वतो मध्ये च देवि ! सप्त कुलाचलाः । मूलादिमस्तकान्तं
 हि सुमेरुर्नाम पर्वतः । स्थितो मेरोरधोभागे द्वाङ्गुलद्वौर्द्ध-
 देशतः । भूर्लोकदि महेशानि ! सप्तसर्गं क्रमेण हि । द्वाङ्गुलं

सप्त पातालास्तिष्ठन्ति परमेश्वरोति । तच्चसारे ॥ प्रकृतिः पु-
रुषो देहे ब्रह्मा विष्णुः शिवस्तथा । नदाद्यैव समुद्राश्च भुवनानि
चतुर्दश । ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे । तेषां
सङ्केपतः सर्वं प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते । मेरुपृष्ठे स्थितचन्द्रो द्विरष्ट-
कलयान्वितः । अहर्निशं तुषाराभां धारां वर्षत्यधोमुखः ।
सुधांशुर्विविधस्रावी पीयूषविन्दुरेव च । विन्दुरक्षस्य मध्येन
देहसिद्धिः प्रजायते । जवाकुसुमसङ्काशो वस्तिदेशे सुशोभने ।।
शङ्खिनीमूलं संव्याप्य सूर्यस्तिष्ठति देहिनाम् । द्वादशकलया
सूर्यो वह्निर्दशकलात्मकः । सर्वेषां देहिनां देहे सदा अन्नादि-
पाचकः । तुषारं वर्षते चन्द्रो रविः शयति सर्वदा । संयोगेन
स्थितः प्राणो वियोगे मरुत्वं भवेत् । ऊर्ध्वं त्वयवे रश्मिर-
धश्चन्द्रासृतं सदा । अभ्यासं कामरूपस्य योगं योगविदो विदुः ।
संयोगो च भवेद्योगी प्राणापानैकयोगतः । प्राणश्चन्द्रमयः
प्रोक्तोऽपानः सूर्यमयस्तथा । अनयोः सङ्गमो मध्ये रजो रोगस्य
साधनम् । उड्डीयानं दृढं बद्धा कुर्याद्रेचकपूरकौ । समानो-
दानयोर्योगः प्राणापानैकयोगतः । कामरूपे त्रिभिर्योगं प्राणा-
पानसमानकैः ॥ नाभिश्चक्षिद्वयोर्मध्ये उड्डीयानः स उच्यते ।
वस्ती जालन्धरो ज्ञेयः कामरूपस्य गर्भके । पूर्णग्रीवो भ्रुवो-
र्मध्ये श्रीहृदस्तालुकोपरि ॥ तथा । नाभिमध्ये स्थितो ब्रह्मा
हृदि मध्ये च केशवः । शङ्करः शिरसि ज्ञेयस्त्रिस्थानं मुक्ति-
दायकम् ॥ इति शरीरे तीर्थादिकथनम् ॥ शाक्तानन्दतर-
ङ्गिणाम् ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवि ! विश्लेषां गर्भसङ्कटे । नवमे
दशमे मासि प्रवर्तैः सूतिमारुतैः । निःसार्यते वाण इव जन्तु-
न्मिच्छद्रेण सञ्चरः । पीडार्दित इत्यर्थः । पातितोऽपि न जानाति
मूर्च्छितोऽपि ततश्च्युतिम् । सूतिवातस्य वेगेन योनिरभ्युस्य
पीडनात् । विस्मृतं सकलं ज्ञानं गर्भे यच्चिन्तितं हृदि ॥ तत्र

पापिनां जन्मसमये पीडाधिक्यं तदुक्तम् प्रपञ्चसारे द्वितीय-
 पटले ॥ अथ पापकृतां शरीरभाजामुदरान्निष्क्रमितुं महान्
 प्रयासः । नलिनोद्भवधौर्विचित्रवृत्ता नितरां कर्मगतिस्तु मानु-
 षाणाम् । नलिनोद्भवस्य ब्रह्मणः । जायतेऽधिकसङ्गिनो
 जृम्भतेऽङ्गैः प्रकम्पितैः । यात्युत्पणं निखसिति भोत्या रोदितुमि-
 च्छति । भूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तु तारः पराख्यः पश्चात्
 पश्यत्यथ हृदयगो बुद्ध्युद्भवमाख्यम् । वक्त्रे वैखर्येथ रु-
 दिषोर्यस्य जन्तोः सुषुम्नावद्वस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्घः ।
 जन्मानन्तरवालकरोदनस्याप्यव्यक्तवर्णात्मकत्वात् वर्णोत्पत्तिप्रकारं
 वदन् कुण्डलिनीतः सामान्यतः सर्ववर्णानामुत्पत्तिं दर्शितवान् ।
 श्रोतोमार्गस्याविभक्तत्वहेतोस्तत्त्वार्णानां जायते न प्रकाशः ।
 तावद् यावत्कुण्डमूर्द्धादिभेदो वर्णव्यक्तिस्थानसंस्था यतोऽतः ।
 जातोऽस्मीति यदा भावो मनोऽहङ्कारबुद्धिमान् । जातश्चित्पूर्वको
 जन्तोः स्वभावः क्रमवर्धितः । वध्नाति भातापितोस्तु ततो बन्धुषु
 च क्रमात् । स पीत्वा बहुशः स्तन्यं मातरं स्तनपायिनीम् । न
 रोदिति च तां वीक्ष्य तत्र स्यादितरेतरम् ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिण्याम् ॥
 पञ्चेतान्यपि मृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः । आयुः कर्म च वित्तञ्च
 विद्या निधनमेव च । बालकश्च शिशुश्चैव गण्डः कैशोरकस्तथा ।
 अतः परन्तु युवकः प्रौढश्चैव ततः परम् । अतिप्रौढस्तथा वृद्ध-
 स्वतिवृद्धस्ततः परम् । पलितं मरणञ्चैव अवस्थाः परिकौ-
 र्त्तिताः ॥ इत्येकादशावस्थाकथनम् ॥ मरणानन्तरमपि तत्रैव ॥
 ततः स नरके याति स्वर्गं वा स्वेन कर्मणा । देवत्वमथ मानुष्यं
 पशुत्वं पक्षितां तथा । क्षमित्वं स्थावरत्वञ्च जायते जन्मक-
 र्मेभिः ॥ तथा । कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते । देहे
 विनष्टे तत्कर्म पुनर्देहं प्रपद्यते । यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो
 विन्दति मातरम् । तथा शुभाशुभं कर्म कर्तारमनुगच्छति ।

नन्वाशु विनाशिनः कथं कर्मणोऽमुत्र भोग इति सन्देहस्य निर-
सनाय सट्टष्टान्तमुक्तम् कुलार्णवे पञ्चमखण्डे प्रथमोक्तासे ॥
इह यत् क्रियते कर्म तत्परबोपमुच्यते । सित्तमूलस्य वृक्षस्य
फलं शाखासु दृश्यते इति ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमकाण्डे मनुष्यजन्मकथनं

नाम पञ्चमः परिच्छेदः ॥

प्रस्तुतं वर्णोत्पत्तिप्रकारं क्रमेण दर्शयति प्रपञ्चसारे ॥ अवै-
शद्यान्मुखश्रोतोमार्गस्याविशदाक्षरम् । अप्यव्यक्तं प्रलपति यदा
सा कुण्डली तदा । मूलाधारे विष्वनति सुषुम्नां वेष्टते
मुहुः । मुखश्रोत्रमार्गस्यावैषम्यादनैर्मूल्याङ्गेतोयदा सा कुण्डली
अविशदाक्षरमविस्पष्टमक्षरं यत्राव्यक्ते ध्वनाविति शेषस्तं प्रल-
पति अर्थात् कलभाषणादिकं करोति तदा मूलाधारे
विष्वनति शब्दायते सुषुम्नाञ्च मुहुर्वेष्टते इत्यन्वयः । कुण्डली-
स्वरूपमुक्तम् शारदातिलके ॥ ततश्चैतन्यरूपा सा सर्वगा
विश्वरूपिणी । शिवसन्निधिमाश्रित्य नित्यानन्दगुणोदया ॥ तिष्ठ-
तीति परेणान्वयः । शिवसन्निधात्यनेन शक्तिशब्दवाच्येयमित्याया-
तम् अतः स्त्रीलिङ्गेन विशेषणानि । यद्यपि शिवशक्तयोरेकात्मक-
त्वेनाभेदस्तथापि काव्यनिकं भेदमुरीक्षत्य शिवसन्निधीत्युक्तम् ॥
तदुक्तमभिनवगुप्तपादाचार्यैः ॥ शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाश्च शक्तिरूपेण
वाञ्छति । तादात्म्यमनयोर्नित्यं वङ्गिदाहिकयोरिव । गुणा-
नामुदयो यस्यां नित्यानन्दा चासौ गुणोदया चेति सा ।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्ना सर्वा सर्वार्थगा शुभा । परापरविभागेन
परा शक्तिरियं मता । काचन परशक्तिः काचनापरशक्तिस्तद्वि-
भागेनापीयं परशक्तिरेव ॥ तदुक्तं भगवद्गीतायाम् । भूमिरापो-
ऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना
प्रकृतिरष्टधा । अपरेयमिति त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥

११८

प्रत्वमेव ।

ोचास्त्र-

तीनि ।

यदि

दी-

या-

षां

दि-

ग-

जीवभूतां महाबाहो ! यवेदं धार्यते जगत् ॥ शारदायम् ॥
 योगिनां हृदयाभोजे नृत्यन्ती नृत्यमञ्जसा ॥ अञ्जसा तत्त्वे-
 नेत्यर्थः ॥ आधारे सर्वभूतानां स्फुरन्ती विद्युदाकृतिः । आधारे
 मूलाधारे भूतानां जन्तूनाम् ॥ शङ्खावर्तक्रमदेवी सर्वमावृत्य
 तिष्ठति । शङ्खमध्ये य आवर्तः स यथा शङ्खमावृत्य तिष्ठति
 तद्वदियमपि सर्वं शिवमावृत्य तिष्ठतीत्यर्थः । कुण्डलीभूत-
 सर्पाणामङ्गस्थियमुपेयुषी । सर्ववेदमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा ।
 सर्वतत्त्वमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा विभुः । विभुः इय-
 त्तया ज्ञातुमशक्या । त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी ।
 त्रिधामेति चन्द्रसूर्याग्निरूपा । द्विचत्वारिंशद्वर्णात्मा पञ्चा-
 शद्वर्णरूपिणी ॥ द्विचत्वारिंशदिति भूतलिपिमन्त्रमयी । पञ्चाश-
 दिति मातृकामयीत्यर्थः । गुणिता सर्वगात्रेण कुण्डली पर-
 देवता । विश्वात्मना प्रबुद्धा सा सूते मन्त्रमयं जगत् । सर्वगात्रेण
 सर्ववर्णेन गुणिता परस्परमिलिता सती मन्त्रमयं जगत् सूते
 प्रकाशयतीत्यन्वयः ॥ मूलाधारे सर्पवत् कुण्डलीभूता नाडी
 वर्तते तन्मध्यस्थायित्वादियं कुण्डली । एकधा गुणिता शक्तिः
 सर्वविश्वप्रवर्त्तिनी । सर्वविश्वेत्युभयोपादानात् शब्दार्थरूपो-
 भयोत्पादिकेति सूचितम् ॥ वेदादिवीजं श्रीवीजं शक्तिवीजं
 मनोभवम् ॥ प्रासादं तुम्बुरुं पिण्डं चिन्तारत्नं गणेश्वरम् ।
 सार्त्तण्डभैरवं दौगं नारसिंहं बराहजम् । वासुदेवं ह्ययश्रीवं
 वीजं श्रीपुरुषोत्तमम् । अन्यान्यपि च बीजानि तदोत्पादयति
 ध्रुवम् । यदा भवति सा संविद्द्विगुणीकृतत्रिगुहा । हंसवर्णी
 परात्मानो शब्दार्थो वासरक्षणे । सृजत्येषा परा देवी तदा
 प्रकृतिपुरुषी । यद्यदन्त्यज्जगत्स्मिन् युगं तत्तदजायत । त्रिगु-
 णीकृतसर्वाङ्गी चिद्रूपा शिवगेहिनी । प्रसूते त्रैपुरं मन्त्रं मन्त्रं
 शक्तिविनायकम् । पाशाद्यं त्राक्षरं मन्त्रं त्रैपुटं चण्डनायकम् ।

सौरं सृष्ट्युच्चयं शक्तिं शाम्भवं विनतासुतम् । वागीशी त्र्यम्बरं
मन्त्रं नीलकण्ठं विष्णुपद्मम् । मन्त्रं त्रिगुणितं देव्या लोकत्रय-
गुणत्रयम् । धामत्रयं सा वेदानां त्रयं वर्णत्रयं शुभा । त्रिपुष्करं
स्वरान् देवी ब्रह्मादीनां त्रयं त्रयम् ॥ त्रिपुष्करमिति ज्येष्ठ-
मध्यमकनिष्ठत्वेन तौर्ध्वत्रयम् । स्वरानिति उदात्तानुदात्तसमा-
हारान् ॥ वङ्गः कालत्रयं शक्तेस्त्रयं वृत्तित्रयं महत् । नाडीत्रयं
त्रिवर्गं सा यद्व्यद्व्यक्षिप्ता मतम् ॥ प्रपञ्चसारे द्वितीयपटले-
ऽपि ॥ द्विचतुःपञ्चषट्सप्त चाष्टौ च दश एव च । तथा द्वादश-
पञ्चाशद्वेदेन गुणयेत् क्रमात् । यदा यदा त्रिगुणयेत्तदा
त्रिगुणता विभुः । शक्तिः कालाग्निनादात्मा गूढमूर्तिः प्रती-
यते । तदा तां तारामित्याहुर्व्यामात्मनि बह्व्युताः । तामेव
शक्तिं ब्रुवन्ति हरेत्यात्मनि चापरे । त्रिगुणा सा त्रिदोषा सा
त्रिवर्णा सा त्रयो च सा । त्रिलाका सा त्रिभूर्तिः सा त्रिरेखा
सा विशिष्यते । एतेषां तारणात्तारः शक्तिस्तद्भूतशक्तिः । यदा
चतुर्धा गुणिता सूत्रादिस्थानचारिका । वाचिका जाग्रदा-
दीनां करणानाञ्च सा तदा । सा यदा पञ्चगुणिता पञ्चपञ्च-
विभेदिनी । पञ्चानामक्षराणाञ्च वर्णानां मरुतां तथा । मरुतां
प्राणादीनाम् ॥ गुणिता सा यदा षाढा कौषोमिरसभेदिनी ।
तदा षड्गुणिताख्यस्य चन्द्रस्य च विभेदिनी । यदा सा सप्त-
गुणिता तारहस्तस्यवास्तया । भेदेरहाद्यैः श्रान्तान्तैर्विद्यते
सप्तभिः पृथक् । अकारश्चाप्युकारश्च मकारो विन्दुरेव च ।
नादः शक्तिश्च शान्तिश्च तारवदाः समीरिताः । हकारो रैफ-
माथे च विन्दुनादो तथैव च । शक्तिशान्तौ च सा प्रोक्ताः शक्ते-
र्भेदाश्च सप्तधा । अङ्गभ्यांऽस्यान्तु सप्तभ्यः सप्तधा भिद्यते जगत् ।
लोकाद्विहीपपातालसिन्धुग्रहमुनोश्चरैः । धात्वादिभिस्तथान्यैश्च ।
सप्तसंख्याप्रभेदकैः । यदाष्टधा सा गुणिता तदा प्रज्ञातमेदिनी ।

११८

ब्रह्ममेव ।
तीक्षास्त्र-
तौनि ।
यदि
गादी-
ल्या-
नेषां
दि-
प-

अष्टाक्षरा हि वस्त्राश मातृमूर्तिप्रभेदिनी । दशधा गुणिता
 नाडी मर्माशादिविभेदिनी । द्वादशादिक्यपि यदा तदा
 राश्र्यकर्ममूर्तियुक् । मन्त्रश्च द्वादशाक्षरमभिधत्ते स्वरानपि ।
 तत्संख्यश्च तदा मन्त्रं शक्तिस्तद्गुणितात्मकम् । पञ्चाशद्वा
 प्रगुणिता पञ्चाशद्वर्णभेदिनी । पञ्चाशदंशगुणिताथ यदा भवेत्
 सा देवी तदात्मविनिवेशितदिव्यभावा । सौषुम्नवर्त्मशुषिरोदित-
 नादसङ्गात् पञ्चाशदीरयति पंक्तिश्च एव वर्णान् । सुषुम्नापथ-
 रन्ध्रोद्धतध्वनेः सङ्गात् सा शक्तिः पञ्चाशतं वर्णान् प्रेरयतीत्यर्थः ॥
 शारदायाम् ॥ चतुःप्रकारगुणिता शाश्वती शर्मदायिनी । तदानीं
 पद्मिनीबन्धोः करोति चतुरक्षरम् । चतुष्टयं गणेशानामात्मा-
 दीनां चतुष्टयम् । श्रीजापूजादिकं पीठं वर्मादीनां चतुष्टयम् ।
 दलकादीन् गजान् देवि ! यद्यदन्यच्चतुष्टयम् । पञ्चधा गुणिता
 पद्मी शश्वोः सर्वार्थदायिनी । त्रिपुरा पञ्चकूटं वा तस्याः पञ्चा-
 क्षरद्वयम् । पञ्चरत्नं महादेव्या सर्वकामफलप्रदम् । पञ्चाक्षरं
 महेशस्य पञ्चवर्णं गरुत्मतः । सम्मोहनान् पञ्च वाणान्
 कामान् पञ्च सुरद्रुमान् । पञ्च प्राणादिकान् वायून् पञ्च वर्णान्
 महेशितुः । मूर्तिः पञ्चकलाः पञ्च पञ्च ब्रह्म ऋचः क्रमात् ।
 सृजत्येषा परा शक्तिर्वेदेवदार्थरूपिणी । षोढा सा गुणिता
 देवी धत्ते मन्त्रं षडक्षरम् । षट्कूटं त्रिपुरामन्त्रं गाणपत्यं
 षडक्षरम् । षडक्षरं हिमरुचेर्नारसिंहं षडक्षरम् । ऋतून् वस-
 न्तमुत्थान् षडामोदादीन् गुणाधिपान् । कोषानूर्मावसान्
 शक्तीर्डाकिन्याद्याः षडध्वनः । यन्त्रं षड्गुणितं शक्तेः षडा-
 क्षरानजीजनत् । षड्विधं यज्जगत्किन् सत्त्वं तत् परमे-
 श्वरो । सप्तधा गुणिता नित्या शङ्करार्द्रशरीरिणी । सप्तार्धं
 त्रिपुरामन्त्रं सप्तवर्णं विनायकम् । सप्तकं व्याहृतीनां सा
 सप्तवर्णं सुदर्शनम् । लोकान् गिरीन् सुरान् धातून् मुनीन्

सप्त ग्रहान् द्विपान् । समिधः सप्त संख्याताः सप्त जिह्वा हवि-
र्भुजः । अन्यं सप्तविधं यद् यद् तत्तदस्यामजायत । अष्टधा
गुणिता शक्तिः शैवमष्टाक्षरद्वयम् । अष्टाक्षरं हरेः शक्तेरष्टा-
क्षरद्वयं परम् । भानोरष्टाक्षरं दीर्गमष्टार्णं परमात्मनः । अष्टार्णं
नीलकण्ठस्य वासुदेवात्मकं मनुम् । यन्त्रं कामार्गलं दिव्यं
देवीयन्त्रं घटार्गलम् । गन्धाष्टकं शुभं देवोदेवानां हृदय-
ङ्गमम् । ब्राह्मणगद्या भैरवान् सर्वान् मूर्त्तीराशं वसून्पि ।
अष्टपीठं महादेव्या अष्टाष्टकसमन्वितम् । चष्टौ सा प्रकृति-
विघ्नवक्रतुण्डादिकान् क्रमात् । अणिमादिगुणान्नागान् वज्रे-
मूर्त्तीर्यमादिकान् । अष्टात्मकं जगत्त्रयं सर्वं वितनुते तदा ।
नवधा गुणिता नित्या सूते मन्त्रं तदात्मकम् । नवकं शक्ति-
तत्त्वानां तत्त्वरूपा महेश्वरी । नवकं पीठशक्तौनां शृङ्गारादीन्
रसान्नव । साणिक्यादीनि रत्नानि नव वर्गशुतानि च । नवकं
प्राणदूतीनां मण्डलं नवकं शुभम् । यद् यन्नवात्मकं लोके सर्व-
मस्यामुदञ्चति । दशधा विहता शम्भोर्भाविनी भवदुःखहा ।
दशाक्षरी गणपतेश्वरिताया दशाक्षरम् । त्रिपुरा दशकूटं
सा त्रिपुराया दशाक्षरम् । दशाक्षरं सरस्वत्या यक्षिण्याः सा
दशाक्षरम् । वासुदेवात्मकं मन्त्रमश्वारूढादशाक्षरम् । नाम्ना
प्रज्ञावतोमन्त्रं वायुमन्त्रं दशाक्षरम् । दशकं शक्तितत्त्वानां
तत्त्वरूपा महेश्वरी । नारीणां दशकं विष्णोरवतारान् दश
क्रमात् । दशकं लोकपालानां यद् यदन्यत् सृजत्यसौ । एका-
दश क्रमात् संविद्गुणिता सा जगन्मयी । रुद्रैकादशिनीमाद्य-
शक्तेरैकादशाक्षरम् । एकादशाक्षरं वाण्या रुद्रानैकादश
क्रमात् । समुन्निरति सर्वज्ञा गुणिता हादश क्रमात् । नित्या-
मन्त्रं महेशाद्या वासुदेवात्मकं मनुम् । राशीन् भानून् हरेर्मूर्त्ती-
र्यन्त्रं सद्वादशात्मकम् । अन्यदेतादृशं सर्वं यत्तदस्यामजा-

११८

स्वत्वमेव ।
तीक्षास्व-
दृतीनि ।
यदि
गदी-
ल्या-
तेषां
दि-
प-

यत ॥ राघवमदृष्टपदार्थादर्शे । त्रयोदशधा गुणिता वागी-
 श्वर्यस्वारूढामन्त्रं विश्वदेशादिकञ्च । चतुर्दशधा गुणिता
 वामुदेवगोपालमन्त्रभुवनादिकम् । पञ्चदशधा गुणिता नित्या
 शूलिनी मन्त्रतिथ्यादिकम् । षोडशधा गुणिता चक्रमन्त्रस्वर-
 कलादिकम् । स्वरति अकारादिविषयान्तम् । सप्तदशधा
 गुणिता लघुपञ्चमी ताराविद्यामन्त्रादिकम् । अष्टादशधा
 गुणिता कृष्णवामनमन्त्राभिसंस्कारादिकम् । जनविंशतिधा
 कृष्णधरामन्त्रादिकम् । विंशतिधा गुणिता रत्नधारोमा-
 महेश्वरमन्त्रादिकम् । एकविंशतिधा गुणिता बहुकनाममन्त्र-
 यन्त्रादिकम् । द्वाविंशतिधा गुणिता कृष्णाब्जाधिपतिसुमुखी-
 मन्त्रादिकम् । त्रयोविंशतिधा गुणिता लघुश्यामापुरुषोत्तम-
 हृदयङ्गममन्त्रादिकं सूते इति ॥ शारदायाम् ॥ चतुर्विंशति-
 तत्त्वात्मा यदा भवति शोभना । गायत्री खलितुः शम्भो गायत्री
 नटनात्मिका । गायत्री विष्णुगायत्री गायत्री त्रिपुरात्मनः ।
 गायत्री इन्द्रिणामूर्तेर्गायत्री शम्भुयोषितः । चतुर्विंशतितत्त्वानि
 तस्यामासन् परात्मनि । तत्राप्यन्यदिति श्रेयम् ॥ द्वाविंश-
 ज्ञेयगुणिता सर्वमन्त्रजयो विभुः । सूते सृष्ट्युक्तय मन्त्रं नारसिंहं
 महामनुम् । लवणाक्षं महामन्त्रं वरुणस्य महात्मनः । हय-
 ग्रीवमनुं दीर्घं वाराहं वज्रिनायकम् । गणशितुर्महामन्त्रं मन्त्रं
 सेनाभिपत्य सा । मन्त्रं श्रीदक्षिणामूर्तेर्मालामन्त्रं मनोभुवः ।
 त्रिष्टुभं वनवासिन्या अवाराख्यं महामनुम् । मन्त्रं सा देवकी-
 सुनीमन्त्रं श्रीपुरुषोत्तमम् । श्रीगोपालमनुं भूमिर्भनुं तारा-
 मनुं क्रमात् । महामन्त्रं महालक्ष्म्या मन्त्रं भूतेश्वरस्य सा ।
 क्षेत्रपालात्मकं मन्त्रं मन्त्रमार्पान्नवारकम् । सूते मातङ्गिनीं
 विद्यां सिद्धिविद्यां शुभोदयाम् । अनेन क्रमयोगेन गुणिता
 शिववक्त्रभा । षट्त्रिंशत्पञ्चतत्त्वानि शैवानि रचयत्यसौ ।

अन्यान्मन्त्रांश्च यन्त्राणि शुभदानि प्रसूयते । अत्र प्रकरणे सूते
अजीजनदित्यादि यदुक्तं तत् प्रकाशकत्वाभिप्रायेण प्रतीत्यभि-
प्रायेण वा । अन्यथा सर्ववेदमयीत्यादि प्रागुक्तमनुपपन्नं स्यात् ॥
सर्वेषां मातृकारूपकुण्डल्यवयवात्मकत्वेन जन्मादि विरुद्धमिति
सुधीभिः सुनिपुणेन मानसेन विवेचनीयम् । अक्षरोत्पत्ति-
क्रममाहुः शरदायामाचार्याः ॥ द्विचत्वारिंशता मूले गुणिता
विश्वनायिका । सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः ।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निबोधिका । ततोऽर्द्धेन्दु-
स्ततो विन्दुस्तस्मादासीत् परा ततः ॥ मूले मूलाधारे द्विच-
त्वारिंशता गुणिता विश्वनायिका कुण्डलिनी अनेन क्रमेण
अकारादिसकारान्तां द्विचत्वारिंशदालिकां भूतलिपिमन्त्रा-
लिकां वर्णमालिकां सूते इत्यन्वयः । क्रममाह शक्तिमिति ।
सा कुण्डलिनी शक्तिं सूते ततः शक्तेर्ध्वनिरासीदिति योजना ।
ततो ध्वनेरित्यादि ज्ञेयम् । अथ च क्रमः सर्वाक्षरोत्पत्तौ ज्ञेयः ।
तत्र सत्त्वप्रविष्टा चिच्छक्तिशब्दवाच्या पुरमाकाशस्था सैव सत्त्व-
प्रविष्टा रजोऽनुविद्धा सती ध्वनिशब्दवाच्या अक्षरावस्था सैव
ततोऽनुविद्धा नादशब्दवाच्या अव्यक्तावस्था सैव तमःप्राचुर्यान्नि-
बोधिकाशब्दवाच्या सैव तत्त्वभयप्राचुर्यादर्द्धेन्दुशब्दवाच्या ।
उक्तञ्च पदार्थादर्शं ॥ इच्छाशक्तिबलौदघुष्टो ज्ञानशक्तिप्रदीपकः ।
पुरुषिणी च सा शक्तिः क्रियास्था सृजति प्रभुः । असावेव
विन्दुः स्थानान्तरगतः पराद्याख्यो भवति । पश्यन्ती मध्यमा
बाची वैखरी शब्दजन्मभूः ॥ तत्र परा मूले पश्यन्ती
स्वाधिष्ठाने मध्यमा हृदये वैखरी मुखे । तदुक्तं पदार्थादर्शं ॥
सुष्मा कुण्डलिनी मध्ये ज्योतिर्मात्रास्वरूपिणी । अश्रोत्र-
विषया तस्मादुद्गच्छत्यूर्ध्वगामिनी । स्वयंप्रकाशा पश्यन्ती
सुषुम्नामाश्रिता भवेत् । सैव हृत्पद्मजं प्राप्य मध्यमा नाद-

११८

स्वत्वमेव ।

रीक्षास्त्र-

ष्टतौनि ।

। यदि

पादौ-

ख्या-

तेषां

दि-

प-

ग-

रूपिणी । ततः सञ्जल्पमात्रा स्यादविभक्तोर्द्धगामिनी । सैवीरः-
 कण्ठतालुस्था शिराग्राणवद्विधिता । जिह्वामूलोष्ठनिर्धूतसर्व-
 वर्णपरिग्रहा । शब्दप्रपञ्चजननी श्रोत्रग्राह्या तु वैखरी । इच्छा-
 ज्ञानक्रियात्मासी तेजोरूपा गुणात्मिका । क्रमेणानेन सृजति
 कुण्डली वर्णमालिकाम् । अकारादिसकारान्तां द्विचत्वारिं-
 शदालिकाम् । पञ्चाशद्द्वारगुणिता पञ्चाशद्वर्णमालिकाम् । सूते
 तद्वर्णतो भिन्नाः कला रुद्रादिकान् क्रमात् । कला रुद्राश्च
 पूर्वोक्ताः । आदिशब्देन पञ्चाशत्कामाः कामशक्तयो गणेशा-
 स्तच्छक्तयः क्षेत्रपालाद्योक्ताः । कामनामानि राघवभट्टकृतानि
 यथा ॥ कामकामदकान्ताश्च कान्तिमान् कामगस्तथा । काम-
 चारश्च कामौ च कामुकः कामवर्द्धनः । रामो रमश्च रमणो
 रतिनाथो रतिप्रियः । रात्रिनाथो रमाकान्तो रममाणो निशा-
 चरः । नन्दको नन्दनश्चैव नन्दी नन्दयिता पुनः । पञ्चवाणो
 रतिसखः पुष्पधन्वा महाधनुः । भ्रामणो भ्रमणश्चैव भ्रम-
 माणो भ्रमोऽपरः । भ्रान्तश्च भ्रामको भृङ्गो भ्रान्ताचारी
 भ्रमावहः । मोहनो मोहको मोहो मोहवर्द्धन एव च । मदनो
 मन्मथश्चैव मातङ्गो मङ्गनायकः । गायनो गीतिजश्चैव नर्तकः
 खेलकस्तथा । उन्मत्तो मत्तकश्चैव विलासो लोभवर्द्धनः ।
 दाडिमीकुसुमाभश्च वामाङ्गे शक्तिसंयुतः । सौम्या रक्ताम्बराः
 सर्वे पुष्पवाणाश्चकार्मुके । बिभ्राणाः सर्वभूषाढ्याः कामाः
 पञ्चाशदौरिताः ॥ तच्छक्तिनामानि च तत्रैव ॥ रतिः प्रीतिः
 कामिनी च मोहिनी कमलप्रिया । विलासिनी कल्पलता
 श्यामला च शुचिस्मिता । विस्मिताक्षी विशालाक्षी लेलिहाना
 दिगम्बरी । वामा कुञ्जाधरा नित्या कल्याणी मोहिनी तथा ।
 मदना च सुरश्रेष्ठा लापिनौ मर्दिनौ तथा । कलहप्रिया तथै-
 काक्षी सुमुखी नलिनी ततः । जयिनी पालिनी चैव शिवा

मुग्धा सविभ्रमा । चारुनेत्रा सुलोला च दीर्घजिह्वा रति-
प्रिया । लोलाक्षी शृङ्गिणी चैव पावना मादना तथा । माला
च हंसिनी विश्वतोमुखी नन्दिनी तथा । रमणी च तथा
कान्तिः कलकण्ठी वृकोदरी । मेघश्यामा रूपोन्मत्ता एक-
पञ्चादशीरिता । शक्तयः कुङ्कुमनिभाः सर्वाभरणभूषिताः ।
नीलोत्पलकरा ध्येयास्त्रैलोक्याकर्षणक्षमा इति ॥ पञ्चाशद्विंश-
स्तच्छक्तयश्च तत्रैव ॥ विघ्नेशो विघ्नराजश्च विनायकशिवोत्तमौ ।
विघ्नहृद्विघ्नकर्त्ता च गणैकद्विसुदन्तकाः । गजवक्त्रनिरञ्जनी
कपर्दी दीर्घजिह्वकः । शङ्खकर्णश्च वृषभध्वजश्च गणनायकः ।
गजेन्द्रः सूर्यकर्णश्च स्यात् त्रिलोचनसंज्ञकः । लम्बोदरमहानन्दी
चतुर्भुजसदाशिवौ । अमोघदुर्मुखौ चैव सुमुखश्च प्रमो-
दकः । एकपादो द्विजिह्वश्च सूरवीरशिवामुखाः । वरदो
वामदेवश्च वक्रतुण्डो द्विरण्डकः । सेनानीर्ग्रामणीर्मन्त्रो विमन्त्रो
मत्तवाहनः । जटो मुखी तथा खड्गी वरेण्यो वृषकेतनः ।
भक्ष्यप्रियो गणेशश्च मेघनायकसंज्ञकः । व्यापी गणेश्वरः प्रोक्तः
पञ्चाशद्विंशपा इमे । तरुणारुणसङ्काशा गजवक्त्रास्त्रिलोचनाः ।
पाशाङ्कुशवराभीतिहस्ताः शक्तिसमन्विताः ॥ क्लीः श्रीश्च पुष्टिः
शान्तिश्च चान्तिश्चैव सरस्वती । स्वाहा मेघा कान्तिकामिन्यो
मोहिन्यपि वै नटी । पार्वती ज्वलिनी नन्दा सुयशः काम-
रूपिणी । उग्रतन्जोवती सत्या विघ्नेशानी सुरूपिणी ॥
कामदा मदजिह्वा च भूतिः स्याद्भौतिका सिता । रमा च
महिषी प्रोक्ता भस्मिनी च विकर्णपा । भृकुटिः स्यात्तथा लज्जा
दीर्घघोणा धनुर्धरा । यामिनी रात्रिसंज्ञा च कामान्धा च
शशिप्रभा । लोलाक्षी चञ्चला दीप्तिः शुभगा दुर्भगा शिवा ।
गर्भा च भगिनी चैव भोगिनी सुभगा मृता । कालरात्रिः
कालिका च पञ्चाशच्छक्तयः स्मृताः । सर्वालङ्करणोद्दीप्ताः

११८

स्वत्वमेव ।
रीक्षास्त्र-
मृतीनि ।
यदि
पादौ-
गत्या-
तेषां
दि-
प-
प-
प-

प्रियाङ्गुः सुशोभनाः । रक्तीत्पलकरा ध्येया रक्तमाल्याम्बरा-
 रुणाः । इत्येकोनपञ्चाशत्तण्डुलशतयः । एकोनपञ्चाशत् चैत्रपालाश्च
 चैत्रपालप्रकरणे प्रयोगसारे ॥ भेदा एकोनपञ्चाशत् चैत्र-
 पालस्य कीर्तिताः । मातृकावीजभेदेन सन्निधा नामभेदतः ।
 अजरश्चापकुम्भश्च इन्द्रस्तुतिस्ततः परम् । इडाचारश्चोक्तसंज्ञ
 लम्बाद ऋषिसूदनः । समुक्तो लुप्तकेशश्च क्षेपकश्चैकदंष्ट्रकः । ऐरा-
 वतश्चौघवन्भूगोगाधीशस्तथैव च । अञ्जनश्चास्त्रवारश्च कवलः
 खरुखानलः । चामुख्यश्चैव घण्टादोष्णश्च चण्डवारणः ।
 छटाटोपो जटालाख्यो ऋद्धीवश्च जडश्चरः । टङ्कपाणिस्तथा
 चान्यष्टानवन्धुश्च डामरः । टट्टावारोणवाणश्च तडिहेहः
 स्थिरस्तथा । दन्तुरो धनदश्चाप्यनन्तिकान्तः प्रचण्डकः । फट्-
 कारो वीरसङ्घश्च शृङ्गाख्यो मेघभामुरः । युगान्तो चौहवश्चाथ
 लम्बीष्टौ वसवस्तथा । शुकनन्दः षडालाख्यः शुनानाहं वृक-
 स्तथा । एते भेदाः समाख्याता मातृकाक्षरयोनिकाः । चैत्र-
 पालकथनप्रयोजनमुक्तम् तत्रैव ॥ नामपद्यस्य वर्णानां यो
 वर्णो मातृकान्तरे । दृश्यते प्रथमं तत्र तत्रायं चैत्रपालकः ।
 तत्र तत्र विशिष्टात्मा भेदैरेतैर्व्यवस्थितः । ततो विशिष्टो
 यष्टव्यः चैत्रपालस्तु सर्वतः । चैत्रपालमसम्पूज्य यः कर्म कुरुते
 क्वचित् । तस्य कर्मफलं हन्ति चैत्रपालो न संशयः । इति
 एकोनपञ्चाशत्चैत्रपालकथनम् । वैखरीष्टिं वक्तुमारभते ॥
 शारदायां द्वितीयपटले ॥ ततो व्यक्तिं प्रवक्ष्यामि वर्णानां
 वदने नृणाम् । प्रेरिता मरुता नित्यं सुषुम्नारन्ध्रनिर्गताः ।
 कण्ठादिकरणैर्वर्णाः क्रमादाविर्भवन्ति ते । नृणां वदने वर्ण-
 व्यक्तिं वर्णप्रकाशकारणं वक्ष्यामीत्यन्वयः । ननु । पञ्चरे शुक-
 सारङ्गपतगाः पक्षियोनयः । गृह्णन्ति साधुसंसर्गान्मन्त्राम मङ्गलं
 महत् । इति रुद्रजामलोत्तरखण्डप्रथमपटलोक्तवचनेन पक्षि-

णामपि वर्णोच्चारणदर्शनात् । महाभारतादावपि हंसका-
कीयोपाख्यानादिना तस्य सुस्पष्टावगमात् पक्षिपठनस्य प्रत्यक्ष-
सिद्धत्वाच्च कथं नृणामित्युक्तमिति चेत् सत्यं प्रायिकत्वेन मनु-
थस्य प्रकरणवल्लभत्वेन वा नृणामित्युक्तं न तु पक्ष्यादि-
व्यावर्तनाय । यद्वा नृणामिति बहुवचननिर्देशाद्वर्णोच्चारणा-
हर्गणो लभ्यते अतो न कश्चिदोष इति वर्णव्यक्तिप्रकारमाह
प्रेरिता इत्यादि ॥ मरुता प्रेरिताः पश्यन्तीस्थानं प्रापिता
उत्पत्युन्मुखीकृताः । सुषुम्नारन्ध्रनिर्गताः कण्ठादिकरणैः
क्रमादाविर्भवन्ति इति सम्बन्धः । एकदोच्चारणाभावात् क्रमा-
दित्युक्तं तदुक्तं भट्टहरिणा ॥ आत्मा बुद्ध्या समर्थार्थान् मनो-
युक्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति ध्वनिमिति ॥ कण्ठादौ-
त्यादिशब्दे न तात्त्वादि ॥ तथाच शिञ्जासूत्रम् ॥ अष्टौ स्थानानि
वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा । जिह्वाभूलञ्च दन्ताश्च नासि-
कौष्ठौ च तालु चेति । पञ्चाशन्मातृकावर्णोच्चारणं गुरुतोऽभ्यसे-
दिति वक्ष्यमाणवचनेन मनुथस्य वर्णोच्चारणेऽपि गुरुरूपसाधु-
संसर्गः पक्षिणामिव कारणात्मकत्वेनावधार्यः । पूर्वस्मिन्
वर्णानां सोमसूर्याग्निरूपत्वं सामान्यत उक्तम् । अधुना तद्वि-
शेषयति शारदायाम् । एषु स्वराः स्मृताः सौम्याः स्पर्शाः सौराः
शुभोदयाः । आग्नेया व्यापकाः सर्वे सोमसूर्याग्निरूपिणः ॥
एषु वर्णेषु ॥ स्वराः षोडश विख्याताः स्पर्शास्ते पञ्चविंशतिः ।
तत्त्वात्मानः स्मृताः स्पर्शा मकारः पुरुषो यतः । यस्मात्प्रकारः
पुरुषः परमात्मा रविस्वरूपस्तस्मात् ककारादिभ्यस्तत्त्वा-
त्मानः प्रकृत्यादिचतुर्विंशतितत्त्वमया इत्यर्थः । अतएव सर्व-
वीजेषु विष्णुरूपमकारयोगात् पुरुषैक्यं तेषामिति मन्तव्यम् ।
मकारस्य विन्दुरूपत्वादिन्दुः पुमान् रविः प्रोक्त इति वक्ष्य-

शास्त्रत्वमेव ।
परीक्षास्त-
पद्यतीनि ।
च यदि
ल्यादौ-
शिल्पा-
तेषां
यादि-
दूष-
ण-
या-
या

माणं साधु सङ्गच्छते । सूर्यरूपविन्दात्मना मकारेण स्पृश्य-
मानत्वादेते कादयः स्पर्शाः । व्यापका दश ते कामधनधर्म-
प्रदायिनः । एषां दोषदूष्येषु वर्तमानत्वादप्रापकत्वम् । तत्रा-
ग्नीनामपि सत्त्वादाग्नेया इत्यपि । नृसिंहास्थकालाग्निरूपक्ष-
कारान्तत्वेन वा आग्नेया इति द्रष्टव्यम् । ते वर्णा यथाक्रमं स्वराः
कामप्रदाः स्पर्शा धनप्रदा व्यापका धर्मप्रदा इत्यर्थः । प्रणवार्ध-
सोत्पत्तिप्रकारो दर्शितः सम्प्रति हंसतः सर्वाक्षरोत्पत्तिप्रकार-
माह प्रपञ्चसारे तृतीयपटले ॥ यथा भवन्ति देहान्तरमी
पञ्चाशदक्षराः । भेदा येन प्रकारेण तथा वक्ष्यामि तत्त्वतः ।
समीरिताः समीरेण सुषुम्नारम्भनिर्गताः । व्यक्तिं प्रयान्ति
वदने कण्ठादिस्थानघटिताः । उच्चैरुन्मार्गणो वायुरुदात्तं
कुरुते स्वरम् ॥ नीचैर्गतेऽनुदात्तञ्च स्वरितं तिर्य्यगागतः ।
स्वरितं समाहारम् ॥ अर्धैकद्वित्रिसंख्याभिर्मात्राभिर्लिपयः क्रमात् ।
यस्यञ्जनङ्गखदीर्घप्लुतसंज्ञा भवन्ति ताः । अकारिकारयोर्व्यो-
मदेकारो वर्ण इष्यते । तस्यैवाकारयोगेन स्यादैकाराक्षरं तथा ।
इकारयोगात्तस्यैव स्यादोकाराक्षरं स्वरः । तस्याकारस्य ॥
तस्यैवौकारयोगेन स्यादौकाराक्षरं स्वरः । सम्यक्षराः सुब-
न्धकारो मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः । लवर्णवर्णयोर्व्यक्तिर्न वै सम्यक्
प्रदर्श्यते । विन्दुसर्गात्मनोर्व्यक्तिमनसोरजपा वदेत् । कण्ठात्
निःसरन् सर्गः प्रायश्चात्मकतः परः । नखरः सर्ग एव स्यात्
सोच्छ्रासः प्राणकस्तु हः ॥ सर्गो विसर्ग एव नखरो विज्ञतः ।
सोच्छ्रासः काररूपः उच्छ्रासोऽन्तःप्रवेशशाली वायुः स्यादि-
त्यन्वयः । एवं प्राणको वह्निर्निर्गमनशाली वायुर्हः स्यात् स
एव उच्छ्रासः सोच्छ्रास इति सन्धिस्तु न विसर्जनीयेति नञा
निर्दिष्टत्वात् । सञ्चासावुच्छ्रासश्चेति वा । प्राणश्चासौ को वायु-
इति प्राणकः । स सर्गः श्लेषितः कण्ठो वायुना कादिमीर-

येत् । वर्गस्पर्शनमात्रेण कं स्वरस्पर्शनात्तु खम् । स्तोकगभी-
रसंस्पर्शात् पघी उच्च वह्निर्गतम् । विसर्गस्तालुगः सोष्मा
शञ्च वर्गञ्च यं तथा । ऋटुरेफप्रकारञ्च मूर्ध्नि दन्तगस्तथा ।
लृतवर्गलसानोष्ठगानुपूपध्वानसंज्ञकान् । दन्तीष्ठाभ्यां वक्ष
तत्तत्स्थानगोऽर्णान् समीरयेत् ॥ अत एवोक्तं शिञ्चासूत्रे ॥
अवर्णकवर्गहविसर्जनीयाः कण्ठगाः ॥ इवर्णचवर्गयशा स्ता-
लव्याः ॥ ऋवर्णटवर्गरषा मूर्ध्न्याः ॥ लृवर्णतवर्गलसा दन्त्याः ॥
उवर्णपवर्गोपध्वनीया ओष्ठगाः ॥ वो दन्तीष्ठाः ॥ एफे कण्ठ-
तालव्यौ ॥ ओओ कण्ठगौष्ठौ ॥ वरदातन्त्रे दशमपटले ॥
श्रीशिव उवाच ॥ यद्गुह्यं सर्वतन्त्रेषु वर्णोच्चारविधिं शिवे ! ।
तव स्नेहान्महेशानि ! तदद्य कथयामि ते । पञ्चाशन्मा-
तृकावर्णोच्चारणं गुरुतोऽभ्यसेत् । अकुत्तुटुपुशु अष्टौ
वर्गाः प्रकीर्तिताः । उकारः पञ्चपञ्चवर्णविभागार्थः । अकहा-
कण्ठतो ज्ञेयास्तालुतद्युयशाः स्मृताः ॥ ऋटुरपास्तु मूर्ध्न्या
दन्त्या लृतुलसा भताः ॥ उपराश्चोष्ठसम्भूताः स्थानानि
कथितानि ते । विशेषं कथयाम्यद्य प्रोच्चार्याः कण्ठतः स्वराः ।
ऋइयं जिह्वाया मूर्ध्ना लृइयं जिह्वदन्तजम् । मुखस्थानाद्वलो
वाच्याः चकारः कण्ठघातजः । व्यञ्जनद्वयसंयोगे भवेत् पूर्व-
स्वरो गुरुः । पदान्तादिमवर्णस्य संयोगेषु श्रुतिर्द्वयोः । अप-
दान्तादिसंयोगे योरन्यत्र तथेथ्यते । यूः श्रुतिस्तु तिरोभूय
स्वरवत् श्रुतितां ब्रजेत् । त्रियावीजे शकारस्य कश्रुतिः परमे-
श्वरि ! । कश्रुतिश्च वादिभृगौ तथादिस्थे तु चश्रुतिः ॥ सहस्र
इत्यादौ नमस्तस्मै आस्था इत्यादौ च ॥ रेफादिके तदन्ते वा
हकारे समवाचता । वहङ्गद इत्यादौ । किन्तु वैजात्यमा-
श्रित्य स्फुटं नात्रास्य वाचता । तु तुर्यध्वनिमाप्नोति यादिस्थे
परमेश्वरि ! । बाह्य इत्यादौ । पु चतुर्थध्वनिं याति वादिस्थे तु

११८

शास्त्रत्वमेव ।
तपरीक्षास्त्र-
प्रभृतौनि ।
तच्च यदि
एल्पादी-
शिल्पा-
तेषां
त्यादि-
द्रूप-
तण-
श-
ता

विशेषतः । आह्वानमित्यादौ । लादिस्थेऽप्यथ नादिस्थे वैजात्यं
 खल्यवाच्यता । प्रह्लाद अह्नाय इत्यादौ । मादिस्थे मे च म-
 स्यापि नासिकामूलवाच्यता । उज्जणनमा विन्दुनासिका-
 मूलजाः स्मृताः । यकारशुद्धतीयत्वं पदादौ सर्वदा ब्रजेत् ।
 केयूरादावपि तथा अन्यत्र कण्ठमात्रगः ॥ नादिस्थशसयो-
 ऽश्रुत्वं स्वरयोगान्तवर्गके । प्रश्न ज्ञान इत्यादौ । वर्णोत्तरेषु
 उटयोर्वक्रजिह्वादिवाच्यता । वैजात्यमपि तत्रास्ति गुरोरेव
 समभ्यस्येत् । आदिरेफस्तु सम्योक्तो दृशेरन्यो ब्रजेद्वताः । एवं
 ज्ञात्वा महेशानि ! पठेत् स्तोत्रं जपेच्चनुम् । कवचञ्च महेश-
 शानि ! नान्यथा फलमाप्नुयात् । यत्नैव परमेशानि ! स्तोत्रं
 वा संहितां पठेत् । तत्र तत्र परं यत्नात् समाप्तं कीर्तयेद्बुधः ॥
 इति वर्णोच्चारणप्रकारणकधनम् ॥ शारदायाम् ॥ ऋस्वः स्वरैषु
 पूर्वोक्तः परो दीर्घः क्रमादिमे । शिवशक्तिमयास्ते स्युर्विन्दु-
 सर्गावसानकाः । विन्दुः पुमान् रविः प्रोक्तः सर्गः शक्तिर्निशा-
 करः । एकारोकारयोर्दीर्घत्वेऽप्यत्र पारिभाषिकं ऋस्वत्वम् ।
 इमे ऋस्वदीर्घाः क्रमात् शिवशक्तिमया ऋस्वा अ इ उ ऋ लृ
 ए ओ अं एते शिवमयाः पुरुषाश्च इत्यर्थः । आ ई ऊ ऋ लृ
 ऐ औ अः एते दीर्घाः शक्तिमयाः स्त्रीरूपाश्चेति । विन्दुविसर्गौ
 पुरुषप्रकृतिरूपौ पृथग्भूतावेताविति विवक्षया ते विन्दुसर्गा-
 वसानकाः स्युरित्यन्वयः । ते ऋस्वा अन्ते विन्दुयुक्ता दीर्घाश्च
 अन्ते विसर्गयुक्ता ऋस्वेषु विन्दुरष्टमो दीर्घेषु विसर्गोऽष्टम
 इत्यर्थः । विसर्गो निशाकर इत्युक्ते तदितरस्वराणां तत्काला-
 रूपतिथ्यात्मकत्वम् । अत एव स्वराः सौम्या इत्युक्तम् । स्वराणां
 मध्यगं यत्तु तच्चतुष्कं नपुंसकम् । विना स्वरैस्तु नान्येषां
 जायते व्यक्तिरक्षसा । शिवशक्तिमयान् प्राहुस्तस्माद्वर्णान् मनी-
 षिणः । अयमभिप्रायः स्वराणां शक्तिमयत्वं पूर्वमुक्तं स्वरं विना

अञ्जनानामुच्चारणस्याशक्यत्वात् स्वरसहितोच्चारणे शिवशक्ति-
मयत्वमिति । शारदायाम् । कारणात् पञ्चभूतानामुद्भूता
माहका यतः । ततो भूतात्मका वर्णाः पञ्चपञ्चविभागतः ॥
शिवशक्तिसमवायाद्विन्दोः कारणाद् यतो माहका उद्भूतास्ततः
कारणात् पञ्चपञ्चविभागतो वर्णाः पञ्चभूतात्मका ज्ञेया इत्यन्वयः ।
अकारादिचकारान्तवर्णसमुदायस्य माहका इति संज्ञा । उद्दिष्टं
स्पष्टयति । वायुग्निभूजलाकाशाः पञ्चाशस्त्रिपयः क्रमात् । पञ्च
ह्रस्वाः पञ्च दीर्घा विन्दन्ताः सन्धिसम्भवाः । पञ्चशः कादयो
यक्षलसहान्ताः समीरिताः । वायुकाशयोराद्यन्तेन निर्दिष्ट-
त्वाद्भुत्क्रमोक्तिः पञ्चोक्तरणप्रक्रियाया मुख्यत्वद्योतनाय ।
अन्यत् सर्वं सुगमम् । ननु कथमत्र विसर्गो न गणित इति
चेदुच्यते मूलाधारात् सञ्ज्ञातविवक्षोत्पन्नप्राणप्रवर्णमैत्रिः
स्थानान्तरमप्राप्य कण्ठादेव निःसरन् प्रकृत्यात्मकसर्गाऽत्र भूतेषु
न गणितः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमकाण्डे वर्णोत्पत्तिक्रमकथनं

नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥ ६ ॥

एवं वर्णेषु प्रादुर्भूतेषु कदाचित् शब्दात्मकेषु पुरुषाणां
भ्रान्तिरपि सम्भवतीत्यतस्तेषामीश्वरेण पञ्चारूढमूर्तिः
कल्पिता ॥ तदुक्तं ज्योतिस्तत्त्वे बृहस्पतिना ॥ पाश्चात्तिकेऽपि
समये भ्रान्तिः सञ्जायते यतः । धात्राक्षराणि सृष्टानि पञ्चा-
रूढान्यतः पुरा इति । तेषां लेखनप्रकारस्तु वर्णोद्धारतन्त्रे
प्रथमपटले भगवतीप्रश्नानन्तरं शिव उवाच ॥ वर्णोद्धारतन्त्र-
तन्त्रे तु कथयामि शृणुष्व मे । पञ्चाशन्माहका नित्या साक्षाद्
ब्रह्मस्वरूपिणी । इत्युपक्रम्य सर्ववर्णलेखनप्रकारं स एवो-
पदर्शितवान् स प्रकारोऽग्रे स्फुटीभविष्यति । कामधेनुतन्त्रे
प्रथमपटले ॥ शृणु तत्त्वमकारस्य अतिगोप्यं वरानने । शर-

११६

शास्त्रत्वमेव ।
नपरीक्षास्व-
प्रभृतीनि ।
कच्च यदि
शल्यादी-
शिल्या-
तेषां
त्यादि-
रूप-
वर्ण-
ष्टा-
वा
।

चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चकोणमयं सदा । पञ्चदेवमयं वर्णं शक्तिद्वय-
 समन्वितम् । निर्गुणं सगुणोपेतं स्वयं कैवल्यमूर्तिमत् । विन्दु-
 द्वयमयं वर्णं स्वयं प्रकृतिरूपिणी । वर्णोद्धारतन्त्रे । दक्षतः
 कुण्डली भूत्वा कुञ्चिता वामतो गता । ततोर्ध्वसङ्गता रेखा
 दक्षोर्ध्वा तामु शङ्करः । विधिर्नारायणश्चैव सन्तिष्ठेत् क्रमतः
 सदा । अर्धमात्रा शक्तिरूपा ध्यानमस्य च कथ्यते । अ ॥ काम-
 धेनुतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ आकारं परमाश्चर्यं शङ्खज्योतिर्मयं
 प्रिये ! । ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं तथा रुद्रमयं प्रिये ! । पञ्चप्राणमयं
 वर्णं स्वयं परमकुण्डली ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ अकाररूपमा-
 साद्य दक्षक्रोडायता त्वधः । ब्रह्मादयस्तथा शक्तिस्तासु तिष्ठन्ति
 नित्यशः । आ । कामधेनुतन्त्रे ॥ इकारं परमानन्दं सुगन्ध-
 कुङ्कुमच्छवि । हरिब्रह्ममयं वर्णं सदा रुद्रमयं प्रिये ! । सदा-
 शक्तिमयं देवि ! गुरुब्रह्ममयं तथा । सदाशिवमयं वर्णं परं-
 ब्रह्मसमन्वितम् ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वाधः कुञ्चिता मध्ये रेखा
 तत्सङ्गता भवेत् । लक्ष्मीर्वाणी तथेन्द्राणी क्रमात्तास्त्रेव स-
 सेत् । शीर्षाधः कुञ्चिता रेखा दक्षोर्ध्वा कामरूपिणी । मात्रा
 शक्तिः कोणयुता ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ इ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥
 ईकारं परमेशानि ! स्वयं परमकुण्डली । ब्रह्मविष्णुमयं वर्णं
 तथा रुद्रमयं सदा । पञ्चदेवमयं वर्णं पीतविविक्तताकृतिः ।
 चतुर्जनिमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वाधः
 कुञ्चिता मध्ये त्रिकोणाधोगता पुनः । अधोगता कोणशीर्षा
 कुञ्चिता दक्षतः शुभा । शीर्षादक्षे कोणयुता कुञ्चितोर्ध्वगता
 पुनः । चन्द्रसूर्याग्निरूपा सा मात्राशक्तिः प्रकीर्तिता ॥ ई ॥
 कामधेनुतन्त्रे ॥ उकारं परमेशानि ! अधः कुण्डलिनी स्वयम् ।
 पीतचम्पकसङ्काशं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणमयं देवि ! चतु-
 र्वर्गप्रदायकम् । वर्णोद्धार ॥ ऊर्ध्वाधोमध्यतः कुञ्जा रेखा वाम-

गता शुभा । तिष्ठन्ति वायुवह्नीन्द्राः शक्तिर्मात्रा परा स्मृता ॥
 उ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ शङ्खकुन्दसमाभास उकारः परकुण्डली ।
 पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणयुतं वर्णं तथा त्रय-
 गुणात्मकम् । विन्दुत्रययुतं वर्णं पीतविद्युत्क्षताकृति । धर्मार्थ-
 काममोक्षञ्च सदा सुखप्रदायकम् ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ तद्रूपा-
 धोगता रेखा कुञ्जिता वामतः शुभा । तद्रूपा पूर्वोक्तोकाररूपा ।
 तिष्ठन्ति तासु रेखासु यमाग्निवरूणाः क्रमात् । अधोर्द्विगामिनी
 मात्रा लक्ष्मोर्वाणी च सा स्मृता ॥ ऊ ॥ कामधेनौ ॥ ऋकारः
 परमेशानि ! कुण्डली मूर्तिमान् स्वयम् । अत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च
 रुद्रश्चैव वरानने । सदाशिवयुतं वर्णं सदा ईश्वरसंयुतम् ।
 वर्णोद्धारतन्त्रे । ऊर्द्धा दक्षगता वक्रा त्रिकोणा वामतस्ततः ।
 पुनस्त्वधोदक्षगता मात्राशक्तिः परा स्मृता । मात्रासु ब्रह्मविष्णो-
 शास्तिष्ठन्ति क्रमतः परा ॥ ऋ ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ तद्रूपाधोगता
 दक्षा वामतः कुञ्जिता त्वधः । पुनर्दक्षगता रेखा तासु ब्रह्मेश-
 विष्णवः । मात्राशक्तिः परा ज्ञेया ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ ऋ ॥
 कामधेनुतन्त्रे ॥ लकारं चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डली परदेवता ।
 तत्र ब्रह्मादयः सर्वे तिष्ठन्ति सततं प्रिये ! । पञ्चदेवमयं वर्णं
 चतुर्ज्ञानमयं सदा । पञ्चप्राणयुतं वर्णं तथा गुणत्रयात्मकम् ।
 विन्दुत्रयत्माकं वर्णं पीतविद्युत्क्षताकृति ॥ वर्णोद्धारे ॥ रेखाधः
 कुण्डली वक्रा दक्षतो वामतो गता । वह्नीश्रवायवस्तासु नित्यं
 सन्ति च नित्यशः ॥ ल ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ लकारं परमेशानि !
 पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं सदा । गुण-
 त्रयात्मकं वर्णं तथा विन्दुत्रयात्मकम् । चतुर्वर्गमयं देवि ! स्वयं
 परमकुण्डली ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ तत्क्रोडतुल्यरूपा च रेखा
 सा वैष्णवी स्मृता । तासु बन्ध्या सुरेशानि ! दुर्गा वाणी सर-
 स्वती ॥ ल ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ एकारं परमं दिव्यं ब्रह्मविष्णु-

शास्त्रत्वमेव ।
 निपरीक्षास्त्र-
 रप्रभृतौनि ।
 कञ्च यदि
 शिल्पादी-
 शिल्पा-
 । तेषां
 त्यादि-
 रद्रूप-
 तण-
 शा-
 वा
 ।
 ॥

शिवात्मकम् । वङ्गिनीकुसुमप्रेक्ष्यं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणा-
 त्मकं वर्णं तथा विलशयात्मकम् । चतुर्वर्णमयं देवि ! स्वयं परम-
 कुण्डली । वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ कुञ्चिता वामतो रेखा दक्षकोणा-
 यता त्वधः । पुनर्वामगता सैव तासु वङ्गीशवायवः ॥ ए ॥ काम-
 धेनुतन्त्रे षष्ठपटले ॥ ऐकारं परमं दिव्यं महाकुण्डलिनी
 स्वयम् । कोटिचन्द्रप्रतीकाशं पञ्चप्राणमयं सदा । ब्रह्मविष्णु-
 मयं वर्णं तथा रुद्रमयं प्रिये । । सदाशिवमयं वर्णं विन्दुत्रय-
 समन्वितम् । वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऐकाररूपमध्ये तु किञ्चिद्दक्षे
 तदोर्द्ध्वतः । चन्द्रेन्दुमानवस्तासु मात्राशक्तिः क्रमात् स्मृताः ।
 त्रिधा शक्तिमयी सूर्या दुर्गा मायी सरस्वती ॥ ऐ ॥ कामधेनु-
 तन्त्रे ॥ एतद्वर्णं महेशानि ! स्वयं परमकुण्डली ॥ वर्णोद्धार-
 तन्त्रे ॥ वामतः कुण्डली भूत्वा दक्षान्तर्ध्वे तु कुञ्चिता । किञ्चि-
 दक्षगता या तु कुञ्चिता वामतस्त्वधः । ब्रह्मेशविष्णवस्तासु
 मात्रा तु ब्रह्मरूपिणी । शक्तिश्च परमा सैव ध्यानमस्य प्रव-
 च्यते ॥ ओ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ रक्तविद्युत्प्रताकारमौकारं
 कुण्डली स्वयम् ॥ स्वयं ब्रह्मादयस्तत्र तिष्ठन्ति सततं प्रिये । ।
 पञ्चप्राणमयं वर्णं सदाशिवमयं सदा । सदा ईश्वरसंयुक्तं चतु-
 र्वर्गप्रदायकम् ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ओकारमध्यदक्षे तु गता तूर्द्ध्व-
 गतायता । किञ्चित् सा वामतो वक्रा तासु ब्रह्मेशविष्णवः ।
 शक्तिमध्यगता रेखा ध्यानमस्य च कथ्यते ॥ ओ ॥ कामधेनु-
 तन्त्रे ॥ अकारं विन्दुसंयुक्तं पीतविद्युत्समप्रभम् । पञ्चप्राणा-
 त्मकं वर्णं ब्रह्मादिदेवतामयम् । सर्वज्ञानमयं वर्णं विन्दुत्रय-
 समन्वितम् । शक्तित्रयमयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली ॥ वर्णो-
 द्धारतन्त्रे ॥ अकाररूपशीर्षे तु दक्षिणे विन्दुरूपिणी । ब्रह्मा
 विष्णुश्च रुद्रश्च क्रमशस्तासु तिष्ठति । या तु विन्दुमयी रेखा
 सैवाद्या शक्तिरीरिता ॥ अं ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ अकारं परमे-

शानि ! रक्तविद्युद्यभामयम् । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा ।
 सर्वज्ञानमयं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् । विन्दुत्रयमयं वर्णं शक्ति-
 त्रयमयं सदा ॥ वर्णोद्धारः ॥ आकाररूपदत्ते तु द्विविन्दुरध-
 ऊर्ध्वतः । ब्रह्मेशविष्णवस्तासु माचाशक्तिः समीरिता । विन्दु-
 द्वयान्विता रेखा सैवाद्या शक्तिरीरिता । अः ॥ वर्णोद्धारः ॥
 वामरेखा भवेद् ब्रह्मा विष्णुर्दक्षिणरेखिका । अधोरेखा भवे-
 द्द्रो मात्रा साक्षात् सरस्वती ॥ कुण्डली चाङ्गुशाकारा मध्य-
 शून्यं सदाशिवः ॥ कदम्बगोलकाकारं ककारं भावयेत् सुधीः ॥
 क ॥ कामधेनुतन्त्रे तृतीयपटले ॥ वामरेखा भवेद् ब्रह्मा
 विष्णुर्दक्षिणरेखिका । अधोरेखा भवेद्द्रो मात्रा साक्षात्
 सरस्वती । कुण्डली चाङ्गुशाकारा मध्यशून्यं सदाशिवः । जवा-
 कुसुमसङ्काशा वामरेखा वरानने । शरच्चन्द्रप्रतीकाशा दक्ष-
 रेखा महेश्वरि । अधोरेखा वरारोहे ! महामरकतद्युतिः । शङ्ख-
 कुन्दसमा कीर्त्तिर्मात्रा साक्षात् सरस्वती । कुण्डली चाङ्गुशा-
 कारा कोटिविद्युज्जताकृतिः । कोटिचन्द्रप्रतीकाशो मध्ये शून्यः
 सदाशिवः । शून्यगर्भस्थिता काली कैवल्यपददायिनी । अर्थश्च
 जायते देवि ! तथा धर्मश्च नान्यथा । ककारः सर्ववर्णानां मूल-
 प्रकृतिरेव च । कामिनी या महेशानि ! स्वयं प्रकृतिसुन्दरी ।
 माता सा सर्वदेवानां कैवल्यपददायिनी । ऊर्ध्वकोणे स्थिता
 वामा ब्रह्मशक्तिरितीरिता । वामकोणे स्थिता ज्येष्ठा विष्णुशक्ति-
 रितीरिता । दक्षकोणस्थिता शक्तीरौद्री संहाररूपिणी ।
 ज्ञानात्मा सा तु चार्द्धङ्गी कुलचतुष्टयात्मकम् ॥ इच्छाशक्तिर्भवेद्
 ब्रह्मा विष्णुश्च ज्ञानशक्तिमान् । क्रियाशक्तिर्भवेद्द्रुः सर्वप्रकृति-
 मूर्त्तिमान् । आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैः सदा मात्रा प्रतिष्ठिता ।
 आसनं त्रिपुरादेव्याः ककारः पञ्चदेवतः । ईश्वरो यस्तु देवेशि !
 त्रिकोणे तस्य संस्थितिः । त्रिकोणमेतत् कथितं योनिमण्डल-

११८

१ शास्त्रत्वमेव ।
 येनपरीक्षास्व-
 रप्रसूतीनि ।
 कच्च यदि
 शिल्पादौ-
 शिल्पा-
 । तेषां
 त्यादि-
 ररूप-
 जण-
 टा-
 वा
 ।
 ॥

मुत्तमम् । कैवल्यं प्रपदे यस्याः कामिनौ सा प्रकीर्तिता ॥ क ॥
 वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ शिवरूपा वामरेखा वज्ररूपा च सा स्मृता ॥
 ख ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ अयाकुञ्चितरेखा या गणेशी सा प्रकी-
 र्तिता । ततो दक्षगता या तु कमला तत्र संस्थिता । अधो-
 गतागता या तु तस्यामीशः सदा वसेत् । अधोमुखेन गता
 पुनरुर्द्ध्वमुखेनागतेत्यर्थः ॥ ग ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ स्रष्टिरूपा वाम-
 रेखा किञ्चिदाकुञ्चिता ततः । कुण्डलीरूपमास्थाय ततोऽधो-
 गत्य दक्षतः । अत ऊर्ध्वं गता रेखा शम्भुर्नारायणस्तयोः । ब्रह्म-
 स्वरूपिणी देवि ! मात्राशक्तिः प्रकीर्तिता ॥ घ ॥ वर्णोद्धार-
 तन्त्रे ॥ ऊर्द्धाधः क्रमतो रेखा किञ्चिदाकुञ्चिता ततः । अधो-
 गता कुण्डली तु मात्राशक्तिः स्वरूपिणी । रेखात्रयेषु ब्रह्मेशवि-
 षण्वः सन्ति सर्वदा ॥ ङ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ चवर्णं शृणु सुश्रोणि !
 चतुर्वर्गप्रदायकम् । कुण्डलीसहितं देवि ! स्वयं परमकुण्डली ॥
 स ततः कुण्डलयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्च-
 प्राणात्मकं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं प्रिये ! ॥
 वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ वार्त्ताकुवर्त्तुलाकार ऊर्द्धाधः क्रमतो गतः । रेखा-
 त्रयेषु चन्द्राग्निसूर्यास्तिष्ठन्ति नित्यशः । शक्तिर्मात्रा तु विज्ञेया
 ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ च ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्द्धादधोगता रेखा
 कुञ्चिता कुण्डली ततः ॥ पुनश्चाधोगता तासु सन्ति ब्रह्मेश-
 विण्वः ॥ छ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ जकारं परमेशानि ! या स्वयं
 मध्यकुण्डली । शरच्चन्द्रप्रतीकाशं सदा त्रिगुणसंयुतम् । पञ्चदेव-
 मयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं द्विविन्दु-
 सहितं प्रिये ! ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ उर्द्धाधः कुञ्चिता रेखा तासु
 ब्रह्मेशविण्वः । वाग्देवी कमला नित्या द्विधा मात्रा प्रकी-
 र्तिता ॥ ज ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ भकारं परमेशानि ! कुण्डली-
 मोहरूपिणी । रक्तविद्युत्क्षताकारं सदा त्रिगुणसंस्थितम् । पञ्च-

देवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णं त्रिश-
क्तिसहितं सदा ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ त्रिकोणकुण्डलीरूपा वाम-
दक्षिणयोगतः । क्रमशस्तासु तिष्ठन्ति चन्द्रसूर्याग्नयः प्रिये ! ।
तत्र षोडशधा मात्रा शक्तिब्रह्मस्वरूपिणी । ऊर्ध्वमात्रा तथे-
न्द्राणी मध्ये नारायणी स्मृता ॥ भ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ सदा
ईश्वरसंयुक्तं जकारं शृणु सुन्दरि ! । रक्तविद्युल्लताकारं या
स्वयं परकुण्डली । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणात्मकं सदा ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥
कुण्डलीरूपमास्थाय दक्षतो वामतस्ततः । ऋजुश्चाधोगता मात्रा
वामतः कुञ्चिता पुनः । तिष्ठन्ति तासु नित्यासु सूर्येन्द्रवरूपाः
सदा । कुण्डलीद्वयरूपा तु या मात्रा मध्यतः स्थिता । महा-
शक्तिस्वरूपा सा ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ ज ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥
टकारं परमेशानि । स्वयं परमकुण्डली । कोटिविद्युल्लताकारं
पञ्चदेवमयं सदा ॥ पञ्चप्राणयुतं वर्णं गुणत्रयसमन्वितम् ।
त्रिगुणीसहितं वर्णं द्विविन्दुसहितं सदा ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥
ऊर्ध्वाधः क्रमतो रेखा कुण्डलीरूपतस्त्वधः । तिष्ठन्ति तासु
नित्यासु कुदेवमवायवः । मात्रा कोणगता चोर्ध्वतत ऊर्ध्वगता
तु सा । या नित्या परमा शक्तिश्चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥ ट ॥ काम-
धेनुतन्त्रे ॥ ठकारं चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डली मोक्षरूपिणी ।
पीतविद्युल्लताकारं सदा त्रिगुणसंयुतम् । पञ्चदेवात्मकं वर्णं
त्रिशक्तिसहितं सदा ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ वाक्ताकुवर्तुलाकारा
रेखाधिष्ठितदेवताः । तिष्ठन्ति क्रमतो नित्यं चन्द्रसूर्याग्नयः
प्रिये ! । मात्राहौनस्तूर्ध्वशिखश्ठकारः परमेश्वरि ! ॥ ठ ॥ वर्णो-
द्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वाधः क्रमतो रेखा मध्ये त्वाकुञ्चिता तथा ।
लक्ष्मीर्वाणी भवानो च क्रमशस्तत्र संस्थिता । ब्रह्मरूपा तथा
मात्रा महाशक्तिः प्रकीर्तिता ॥ ड ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वाधः

११८

नेन शास्त्रत्वमेव ।
ध्येनपरीक्षास्त-
हारप्रभृतौनि ।
द्विकञ्च यदि
शिल्पादी-
। शिल्पा-
। तेषां
येत्यादि-
वरद्रूप-
तद्वर्ण-
ताष्टा-
त्वा
ते ।
॥
॥

क्रमतो रेखा वामदक्षिणतो गता । ततः सा कुण्डलीरूपा
 विष्णुशिवब्रह्मरूपिणी । महाशक्तिमयी मात्रा ध्यानमस्य प्रव-
 च्यते ॥ ८ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ एकारं परमेशानि ! या स्वयं
 परकुण्डली । पीतविद्युलताकारं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्च-
 प्राणमयं देवि ! सदा त्रिगुणसंयुतम् । आत्मादितत्त्वसंयुक्तं महा-
 मोक्षप्रदायकम् । वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ कुण्डलीत्वगता रेखा मध्य-
 तस्त्रत ऊर्ध्वतः । वामादधोगता सैव पुनरूर्ध्वं गता प्रिये ! ।
 ब्रह्मेशविष्णुरूपा सा चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ ९ ॥ कामधेनुतन्त्रे
 पञ्चमपटले ॥ महादेव उवाच ॥ तकारं चञ्चलापाङ्गि ! स्वयं
 परमकुण्डली । पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणमयं तथा । त्रिशक्ति-
 सहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतम् । त्रिविन्दुसहितं वर्णं पीत-
 विद्युत्समप्रभम् ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ आदौ विन्दुस्ततो मध्ये
 कुण्डलीत्वमवाप्य सा । दक्षाद्वामगता नित्या ब्रह्मविष्णुशिव-
 रूपिणी ॥ १० ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ थकारं चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डली
 मोक्षरूपिणी । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ॥
 वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ कुञ्चिता कुण्डली भूत्वा वामादक्षिणतस्ततः ।
 वामतः कुञ्चिता भूत्वा दक्षाधो दक्षतो गता । ऊर्ध्वं ऋज्वायता
 रेखा सुरा गङ्गादयः क्रमात् । वाणी भवानी लक्ष्मीश्च ध्यान-
 मस्य प्रवच्यते ॥ ११ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ दकारं शृणु चार्वाङ्गि !
 चतुर्वर्गप्रदायकम् ॥ पञ्चदेवात्मकं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा ॥ १२ ॥
 वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ त्रिकोणरूपरेखायां त्रयो देवा वसन्ति च ।
 विश्वेश्वरौ विश्वमाता वामतः स्कन्धतः स्थिता ॥ १३ ॥ काम-
 धेनुतन्त्रे । नकारं शृणु चार्वाङ्गि ! रक्तविद्युलताकृति । पञ्चदेव-
 मयं वर्णं स्वयं परमकुण्डली । पञ्चप्राणात्मकं वर्णं हृदि भावय
 पार्वति ! । वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ वामतः कुण्डली रेखा ऊर्ध्वधः
 क्रमतः स्थिता । चन्द्रसूर्याग्निरूपा सा मात्रा वाणी प्रकीर्तिता ।

॥ न ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रकाराक्षरम-
व्ययम् । चतुर्वर्गप्रदं वर्णं शरच्चन्द्रमयप्रभम् । पञ्चदेवमयं वर्णं
स्वयं परमकुण्डली । पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा ।
त्रिगुणसहितं वर्णं आत्मादितत्त्वसंयुतम् । महामोक्षप्रदं वर्णं
हृदि भावय पार्वति ! वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ कुञ्चिता वामरेखायाः
कोणादक्षिणतोऽपरा । कुञ्चिता सापि विज्ञेया माता वामो-
द्गता तथा । शम्भुर्ब्रह्मा भगवती क्रमशस्तासु तिष्ठति ॥ प ॥
कामधेनुतन्त्रे ॥ फकारं शृणु चार्वङ्गि ! रक्तविद्युत्प्रतापमम् ।
चतुर्वर्गप्रदं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणमयं वर्णं सदा
त्रिगुणसंयुतम् । आत्मादितत्त्वसंयुक्तं त्रिविन्दुसहितं सदा ।
वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ वक्रा वामगता रेखा ततोऽधः सङ्गता भवेत् ।
तस्मादूर्ध्वगता भूत्वा दक्षमारभ्य कुण्डली । ब्रह्मा रुद्रश्च विष्णुश्च
कुण्डली ब्रह्मरूपिणी । मात्रा वामादक्षिणतः क्रमशः शक्ति-
रीरिता ॥ फ ॥ कामधेनुतन्त्रे । वकारं शृणु चार्वङ्गि ! चतुर्वर्ग-
प्रदायकम् । शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणात्मकं
वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ त्रिकोणरूपिणी
रेखा विष्णुशम्भुब्रह्मरूपिणी । मात्राशक्तिः परा ज्ञेया ध्यानमस्य
प्रवक्ष्यते ॥ य ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ भकारं शृणु चार्वङ्गि ! स्वयं
परमकुण्डली । महामोक्षप्रदं वर्णं तरुणादित्यसम्प्रभम् । पञ्च-
प्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा । वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वाधः
क्रमतो रेखा वामे वक्रा तु कुण्डली । पुनश्चाधोगता सैव अत
ऊर्ध्वगता पुनः । ब्रह्मा शम्भुश्च विष्णुश्च क्रमशस्तासु तिष्ठति ॥
भ ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ मकारं शृणु चार्वङ्गि ! स्वयं परमकु-
ण्डली । तरुणादित्यसङ्काशं चतुर्वर्गप्रदायकम् । पञ्चदेवमयं वर्णं
पञ्चप्राणमयं सदा ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वाधः क्रमतो रेखा
चतुष्कोणमयी शुभा । नारायणेशविधयस्तासु तिष्ठन्ति नि-

न्येन शास्त्रत्वमेव ।
त्रस्येनपरीक्षास्त्र-
तङ्कारप्रभृतौनि ।
दिकश्च यदि
शिल्पादी-
१ । शिल्पा-
२ । तेषां
यथेत्यादि-
चरद्रूप-
लक्षण-
याष्टा-
युत्वा
के ।
॥
न

त्यशः । मात्वा कुण्डलिनी ज्ञेया ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ म ॥
 कामधेनुतन्त्रे ॥ यकारं शृणु चार्वङ्गि ! चतुर्वर्गमयं सदा ।
 पलालधूमसङ्काशं स्वयं परमकुण्डली । पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्च-
 देवमयं सदा ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वाधः क्रमतो रेखा त्रिको-
 णाधोगता हि सा । विधिरीशः केशवश्च तासु तिष्ठन्ति नित्यशः ।
 ऊर्ध्वस्थिता तु या मात्वा सा शक्तिः परिकीर्तिता । तस्य मध्य-
 गता रेखा वङ्गिरूपा हि सा स्मृता । निर्गुणोऽसौ सदा वर्णो
 न कदाचिद् गुणी भवेत् ॥ य ॥ कामधेनुतन्त्रे षष्ठपटले ॥
 रेफञ्च चञ्चलापाङ्गि ! कुण्डलीद्वयसंयुतम् । रक्तविद्युल्लताकारं
 पञ्चदेवात्मकं सदा । पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा ।
 वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ दक्षतः कुण्डली रेखा वामाद्वक्षगताप्यधः ।
 पुनर्दक्षगता द्वेधा ततोऽधोगत्य चोर्ध्वतः । भवानो शङ्करो वङ्गि-
 स्तासु तिष्ठन्ति नित्यशः । अर्द्धमात्वा ब्रह्मरूपा महाशक्तिः
 प्रकीर्तिता ॥ र ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ लकारं चञ्चलापाङ्गि !
 कुण्डलीद्वयसंयुतम् । पीतविद्युल्लताकारं सर्वरत्नप्रदायकम् ।
 पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिवि-
 न्दुसहितं सदा । आत्मादितत्त्वसहितं हृदि भावय पार्वति ! ।
 वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ कुण्डलीद्वयसंयुक्ता वामाद्वक्षगता त्वधः ।
 पुनरूर्ध्वगता रेखा तासु नारायणः शिवः । ब्रह्मशक्तिश्च सन्ति-
 ष्ठेद्भ्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ ल ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ वकारं चञ्चला-
 पाङ्गि ! कुण्डली मोक्षमव्ययम् । पञ्चप्राणमयं वर्णं त्रिशक्ति-
 सहितं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् । पञ्च-
 देवमयं वर्णं पीतविद्युल्लतामयम् । चतुर्वर्गप्रदं वर्णं सर्वसिद्धिप्रदा-
 यकम् । त्रिशक्तिसहितं देवि ! त्रिविन्दुसहितं सदा ॥ वर्णो-
 द्धारतन्त्रे ॥ कोणद्वययुता रेखा ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका । माया-
 शक्तिः परा नित्या ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ व ॥ शकारं परमे-

शानि ! शृणु वर्णं शुचिस्मिते ! । रक्तवर्णप्रभाकारं स्वयं परम-
कुण्डली । चतुर्वर्गप्रदं देवि ! शकारं ब्रह्मविग्रहम् । पञ्चदेवमयं
वर्णं पञ्चप्राणात्मकं प्रिये ! । रत्नपञ्चतमोदयुक्तं त्रिविन्दुसहितं
सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् ॥ वर्णोद्धारं ॥
चतुष्कोणात्मिका रेखा वामदक्षिणतः क्रमात् । वङ्गीन्द्रविश्व-
स्तासु तिष्ठन्ति क्रमतः सदा । ऊर्ध्वमात्रा शक्तिरूपा महालक्ष्मी-
समा स्मृता । मात्रा मध्यगता मात्रा वाग्देवी सा परा स्मृता ॥
श ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ षकारं शृणु चार्वङ्गि ! अष्टकोणमयं सदा ।
रक्तचन्द्रप्रतीकाशं स्वयं परमकुण्डली । चतुर्वर्गमयं वर्णं सुधा-
निर्मितविग्रहम् । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । रजः-
सत्त्वतमोयुक्तं त्रिशक्तिसहितं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णं आत्मा-
दितत्त्वसंयुतम् । सर्वदेवमयं वर्णं हृदि भावय पार्वति ! ॥ वर्णो-
द्धारतन्त्रे ॥ कुञ्चिता वामतो दक्षगता च गोज्जतिस्त्वधः ।
पुनरूर्ध्वगता तासु वङ्गिचन्द्रदिवाकराः । मात्रा भवानी
विज्ञेया ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ ष ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥ सकारं
शृणु चार्वङ्गि ! शक्तिबीजं परात्परम् । कोटिविद्युल्लताकारं
कुण्डलीत्रयसंयुतम् । पञ्चदेवमयं देवि ! पञ्चप्राणात्मकं सदा ।
रजःसत्त्वतमोयुक्तं त्रिविन्दुसहितं सदा ॥ स ॥ कामधेनुतन्त्रे ॥
हकारं शृणु चार्वङ्गि ! चतुर्वर्गप्रदायकम् । कुण्डलीत्रयसंयुक्तं
रक्तविद्युल्लतोपमम् । रजःसत्त्वतमोयुक्तं पञ्चदेवमयं सदा ।
पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिशक्तिसहितं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णं
हृदि भावय पार्वति ! ॥ वर्णोद्धारतन्त्रे ॥ ऊर्ध्वादाकुञ्चिता मध्ये
कुण्डलीत्वगता त्वधः । ऊर्ध्वं गता पुनः सैव तासु ब्रह्मादयः
क्रमात् । मात्रा च पार्वतो ज्ञेया ध्यानमस्य प्रवक्ष्यते ॥ ह ॥
कामधेनुतन्त्रे ॥ क्षकारं शृणु चार्वङ्गि ! कुण्डलीत्रयसंयुतम् ।
चतुर्वर्गमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा । पञ्चप्राणात्मकं वर्णं त्रिशक्ति-

सहितं सदा । त्रिविन्दुसहितं वर्णमात्मादितत्त्वसंयुतम् ।
 शरच्चन्द्रप्रतीकाशं हृदि भावय सुन्दरि ! ॥ च ॥ योगिनीतन्त्रे
 तृतीयभागे सप्तमपटले । न भूमौ विलिखेद्वर्णं मन्त्रं न पुस्तके
 लिखेत् । न मुक्ता पुस्तकं स्थाप्यं न मुक्तमाहरेत्तु तत् । भूकम्पे
 ग्रहणे चैव अक्षरं वायु पुस्तकम् । भूमौ तिष्ठति देवेशि ! जन्म-
 जन्मसु मूर्खता । तदा भवति देवेशि ! तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ॥
 इति भूमौ वर्णलेखनादिनिषेधः । वंशसूच्या लिखेद्वर्णं तस्य हानि-
 र्भवेद् ध्रुवम् । ताम्रसूच्या तु विभवो भवेन्न तत्क्षयो भवेत् ।
 महालक्ष्मीर्भवेन्नित्यं सुवर्णस्य शलाकया । वृहन्नलस्य सूच्या वै
 मतिवृद्धिः प्रजायते । वृहन्नलस्य वोले इति गौडप्रसिद्धस्य ॥
 तथा अग्निमयैर्देवि ! पुत्रपौत्रधनागमः । अग्निमयैश्चित्काष्ठ-
 मयैः ॥ रौत्येन विपुला लक्ष्मीः कांस्येन मरणं भवेत् ॥ रौत्येन
 पित्तलेन ॥ अष्टाङ्गुलप्रमाणेन दशाङ्गुलेन वाथवा । चतुरङ्गुल-
 सूच्या वा यो लिखेत् पुस्तकं शुभे ! । तत्तदक्षरसंख्ये तु स्वल्पायु-
 र्याति वै दिने ॥ यथा रौत्येनेत्यादिवचने एकत्रैव विधिनि-
 षेधौ तथात्राप्यष्टाङ्गुलदशाङ्गुलयोर्विधिर्निषेधश्चतुरङ्गुले ॥ इति
 लेखनौकरणशुभाशुभे पुस्तकमानमपि तत्रैव ॥ मानं वक्ष्ये
 पुस्तकस्य शृणु देवि ! समासतः । मानेनापि फलं विन्द्या-
 दमाने श्रीर्हता भवेत् । हस्तमात्रं मुष्टिमात्रमाबाहु द्वादशा-
 ङ्गुलम् । दशाङ्गुलं तथाष्टौ च अतो हीनं न कारयेत् । इति
 पुस्तकमानम् ॥ वेधद्वयं मुष्टिहस्तं बाहुमात्रे चिरन्तनम् । सप्त-
 भागे महेशानि ! हस्तादौ रूपबन्धकम् । अष्टाङ्गुलं परित्यज्य
 मध्ये वेधं न कारयेत् । प्रादेशादौ भवेद्भ्रूयो द्वाङ्गुले वा समा-
 चरेत् । पुस्तकस्य च आद्यन्ते यन्त्रवेधं विकल्पयेत् । भार्या-
 हानिर्भवेदाशु धनानां वा क्षयो भवेत् । दग्धरन्ध्रे भवेत् पीडा
 वृत्तुलं शुभदं भवेत् । चतुष्कोणे विप्लवस्तु त्रिकोणे मरणं

भवेत् । इति पुस्तकविधफलम् ॥ भूर्जे वा तेजपत्रे वा ताले वा ताडिपत्रके । अगुरुणापि देवेशि ! पुस्तकं कारयेत् प्रिये ! । सन्धवे स्वर्णपात्रे च ताम्रपात्रे च शङ्करि ! । अन्यद्वचत्वचि देवि ! तथा केतकिपत्रके । मार्तण्डपत्रे रौप्ये वा वटपत्रे वरानने ! । अन्यपत्रे च सुदले लिखित्वा यः समभ्यसेत् । स दुर्गतिमवाप्नोति धनहानिर्भवेद् ध्रुवम् । इति पुस्तककरणपत्रफलम् ॥ वेदस्य लिखनं कृत्वा यः पठेद् ब्रह्महा भवेत् । पुस्तकं वा गृहे स्थाप्य वज्रपातो भवेद् ध्रुवम् । इति पुस्तके वेदलिखननिषेधः ॥ सत्येऽक्षरे स्थितः शम्भुः शूलपाणिस्त्रिलोचनः । प्रजापतिर्द्वारे च त्रेतायां सूर्य एव च । कृते युगे पिनाकी च कलौ लिप्यक्षरे हरिः । आरम्भे च समाप्ती च लेखकं प्रतिपूजयेत् । हरिश्च गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रैश्च सुमनोहरैः । यावदक्षरसंस्थानं प्रतिपद्ये च सुन्दरि ! । तावद् युगसहस्राणि ब्रह्मलोके वसेच्चिरम् ॥ इति लेखकपूजाफलम् ॥ वेतनं यस्तु गृह्णीयात् लिखित्वा पुस्तकं स तु । यावदक्षरसंस्थानं तावच्च नरके वसेत् ॥ इति लिखितस्य वेतनग्रहणदोषः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमसर्गकाण्डे अक्षरलेखनादिप्रकार-
कथनं कोरकनाम सप्तमः परिच्छेदः ।

तन्त्रसङ्केतबोधार्थमाहृत्य तन्त्रशास्त्रतः । वर्णनामानि कतिचि-
द्व्यामि विदुषां मुदे । ॐकारो वर्तुलस्तारो वामश्च हंसका-
रणम् । मन्त्राद्यः प्रणवः सत्यं विन्दुशक्तिस्त्रिदेवतम् । सर्वजीवो-
त्पादकश्च पञ्चदेवो ध्रुव त्रिकः । सावित्री त्रिशिखो ब्रह्म त्रिगुणो
गुणजीवकः । आदिवीजं वेदसारो वेदवीजमतः परम् । पञ्च-
रश्मिस्त्रिकुटे च चिभवे भवनाशनः । गायत्रीवीजपञ्चांशौ मन्त्र-
विद्याप्रसूः प्रभुः । अक्षरं मातृकासूत्रानादिरद्वैतमोक्षदौ ॥
ओम् ॥ अः श्रीकण्ठः सुरेशश्च ललाटञ्चैकमात्रिकः । पूर्णोदरी

त्वमेव ।
चास्त्र-
तीनि ।
यदि
दी-
पा-
पां
दे-

सृष्टिमेधौ सारस्वतः प्रियंवदः । महाब्राह्मी वासुदेवो धनेशः
 केशवोऽसृत्तम् । कौर्त्तिर्निवृत्तिर्वागीशो नरकारिर्हरो मरुत् ।
 ब्रह्मा वामाद्यजो ऋष्यः करसूः प्रणवाद्यकः । प्रणवाद्यावयव
 इत्यर्थः ॥ ब्रह्माणी कामरूपश्च कामेशी वाशिनी वियत् ।
 विश्वेशः श्रीविष्णुकण्ठौ प्रतिपत्तिथिरंशिनी । अर्कमण्डल-
 वर्णाद्यो ब्राह्मणः कामकर्षिणी ॥ अः ॥ आकारो विजयानन्तो
 दीर्घच्छायो विनायकः । क्षीरोदधिः पयोदश्च पाशो दीर्घास्य-
 वृत्तकौ । प्रचण्ड एकजो रुद्रो नारायण इतेश्वरः । प्रतिष्ठा
 मानदा कान्तो विश्वान्तकगजान्तकः । पितामहो द्विठान्तो भूः
 क्रिया कान्तिश्च सम्भवः । द्वितीया मानदा काशी विघ्नराजः
 कुजो वियत् । स्वरान्तकश्च हृदयमङ्गुष्ठो भगमालिनी ॥ आ ॥
 इः सूक्ष्मा शास्त्राली विद्या चन्द्रः पूषा सुगुह्यकः । सुमित्
 सुन्दरो वीरः कोटरः काटरः पयः । स्मृत्यो माधवस्तुष्टि-
 र्दक्षनेत्रश्च नासिका । शान्तः कान्तः कान्तिनी च कामो विघ्न-
 विनायकः । नेपालो भरणी रुद्रो नित्या क्षिप्ता च पावकः ॥
 इः ॥ ईस्त्रिमूर्तिर्महामाया लोलाक्षी वामलोचनम् । गोविन्दः
 शेष्वरः पुष्टिः सुभद्रा रत्नसंज्ञकः । विष्णुर्लक्ष्मीः प्रह्लासश्च वाप्ति-
 शुद्धः परापरः । कलौत्तरीयो भेरुण्डा रतिश्च पौण्ड्रवर्द्धनः ।
 शिवोत्तमः शिवा तुष्टिश्चतुर्थी विन्दुमालिनी । वैष्णवी वैन्दवी
 जिह्वा कामकलसनादका । पावकः कोटरः कौर्त्तिर्मोहनी काल-
 कारिका । कुचद्वन्द्वं तर्जनी च शान्तिस्त्रिपुरसुन्दरी ॥ ई ॥
 उः शङ्करो वक्तुंलाक्षो भूतः कल्याणवाचकः । अमरेशो दक्ष-
 कर्णः षड्वक्त्रो मोहनः शिवः । उग्रप्रभुर्धृतिर्विष्णुर्विश्वकर्मा
 महेश्वरः । शतद्वन्द्वेष्टिका पुष्टिः पञ्चमी वज्रवासिनी ।
 कामघ्नः कामना चेशो मोहिनी विघ्नघ्नश्चही । उटसूः
 कुटिला ओत्तं पारद्दीपो वृषो हरः ॥ उ ॥ ऊः कण्ठको रतिः

व्रतमेव ।
तीक्ष्ण-
तौनि ।
यदि
पदौ-
ल्या-
वेषां
दि-
प-

शान्तिः क्षोधनो मधुसूदनः । कामराजः कुजेशश्च महेशो
वामकर्णकः । अर्घीशो भैरवः सूक्ष्मो दीर्घवीणा सरस्वती ।
विलासिनी विघ्नकर्ता लक्ष्मणो रूपकर्षिणी । महाविद्येश्वरी
षष्ठी षण्डो भूः कान्यकुब्जकः ॥ ऊ ॥ ऋः पुर्दीर्घमुखी रुद्रो
देवमाता त्रिविक्रमः । भावभूतिः क्रिया क्रूरा रेचिका
नासिकाष्टतः । एकपादशिरोमाला मण्डला शान्तिनी जलम् ।
कर्णः कामलभा मेधो निवृत्तिर्गणनायकः । रोहिणी शिवदूती
च पूर्णगिरिश्च सप्तमी ॥ ऋ ॥ ऋः क्रोधोऽतिथिशो वाणी
वामनो गोऽथ श्रीधृतिः । ऊर्ध्वमुखी निशानाथः पद्ममाला
विनष्टधौः । शशिनी मोचिका श्रेष्ठा दैत्यमाता प्रति-
ष्ठिता । एकदन्ताद्वयो माता हरिता मिथुनो दया । कोमलः
श्यामला मेधो प्रतिष्ठा पतिरष्टमी । ब्रह्मण्यमिव कीलाले
पावको गन्धकर्षिणी ॥ ऋ ॥ लः स्थाणुः श्रीधरः शुद्धो मेघधूम्रो
वको वियत् । देवयोनिर्दक्षगण्डो वह्नेशः कौन्तेरुद्रकौ । विश्वे-
श्वरो दीर्घजिह्वा महेन्द्रो लाङ्गलिः परा । चन्द्रिका पार्थिवो
धूम्रा द्विदन्तः कामवर्द्धनः । शुचिस्त्रिता च नवमौ कान्तिरा-
यातकेश्वरः । चित्ताकर्षिणी काशश्च तृतीयकुलसुन्दरी ॥ ल ॥
लृकारः कमला हर्षा हृषीकेशो मधुव्रतः । सूक्ष्मा कान्तिर्वाम-
गण्डो रुद्रः कामोदरी सुरा । शान्तिक्वत् स्वस्तिका शक्रो मा-
यावी लोलुपो वियत् । कुशमी सुस्थिरो माता नीलपीतो
गजाननः । कामिनी विश्वया कालो नित्याशुङ्गः शुचिः क्षती ।
सूर्यो धैर्योऽकर्षणी च एकाकी दनुजप्रसूः ॥ लृ ॥ एकारो
वास्तवः शक्तिर्भीष्मेशोष्ठो भग्नं मरुत् । सूक्ष्माभूतोऽर्द्धकेशो
च ज्योत्स्ना अद्वा प्रसर्दनः । भयं ज्ञानं कृपा धीरा जङ्घा सर्व-
समुद्भवः । वज्रिर्विष्णुर्भगवती कुण्डली मोहिनी वसः । योषि-
दाधारशक्तिश्च त्रिकोणा ईशसंज्ञकः । सन्धिरकादशी भद्रा

पञ्चनाभः कुलाचलः ॥ ए ॥ ऐर्लज्जा भौतिकः कान्ता वायवी
 मोहिनी विभुः । दक्षा दामोदरः प्रज्ञोऽधरो विह्वतमुख्यपि ।
 क्षमात्मको जगद्योनिः परः परनिबोधकः । ज्ञानाभ्युत्पत्ता
 कपर्दिनीः पीठेशोऽग्निः समाह्वकः । त्रिपुरा लोहिता राज्ञी
 वाग्मवी भौतिकासनः । महेश्वरो द्वादशी च विमलश्च सर-
 स्वती । कामकोटो वामजानुरंशमान् विजया जटा ॥ ऐ ॥
 ओकारः सत्यपौयूषी पश्चिमास्यः श्रुतिः स्थिरा । सद्योजातो
 वासुदेवो गायत्री दीर्घजङ्घकः । आप्यायनी चोर्ध्वदन्तो लक्ष्मी-
 र्वाणोमुखी द्विजः । उद्देश्यदर्शकस्तीव्रः कैलासो वसुधाक्षरः ।
 प्रणवांशो ब्रह्मसूत्रमजेशः सर्वमङ्गला । त्रयोदशी दीर्घनासा
 रतिनाथो दिगम्बरा । त्रैलोक्यविजया प्रज्ञा प्रीतिर्वीजादि-
 कर्षिणी ॥ ओ ॥ औकारः शक्तिको नादस्तेजसो वामजङ्घकः ।
 मनुजजगद्देशश्च शङ्खकर्णः सदाशिवः । अधोदन्तश्च कण्ठोष्ठी
 सङ्घर्षणः सरस्वती । आज्ञा चोर्ध्वमुखी शान्तो व्यापिनी प्रकृतः
 परः । अनन्ता ज्वालिनी व्योमा चतुर्दशी रतिः प्रियः । नेत्र-
 मात्मा कर्षणी च ज्वालामालिनिकाश्रुः ॥ औ ॥ अङ्कारश्चक्षुषो
 दन्तो घटिका समगुह्यकः । प्रद्युम्नः श्रीमुखो प्रीतिर्वीजयोनि-
 र्वषध्वजः । परं शशी प्रमाणीशः सोमविन्दुः कलानिधिः ।
 अक्रूरश्चेतना नादपूर्णा दुःखहरः शिवः । शिरःपुनरेशश्च
 सुखदुःखप्रवर्त्तकः । पूर्णिमा रेवती शुद्धः कन्याक्षरविद्यद्विः ।
 असृता कर्षिणी शून्यं विचित्रा व्योमरूपिणी । केदारो रात्रि-
 नाशश्च कुजिका चैव वुहुदः ॥ अं ॥ अः कण्ठको महासेनः
 काला पूर्णामृता हरिः । इच्छा भद्रा गणेशश्च रतिविद्यामुखी
 सुखम् । द्विविन्दुरसना सोमोऽनिबद्धो दुःखसूचकः । द्विजिह्वः
 कुण्डलं वक्त्रः सर्गः शक्तिर्निशाकरः । सुन्दरी सुयशानन्ता
 गणनाथो महेश्वरः ॥ अः ॥ कः क्रोधीशो महाकाली कामदेव-

प्रकाशकः । कपाली तेजसः शान्तिर्वासुदेवो जयामलः । चक्री
प्रजापतिः सृष्टिर्दक्षस्कन्धो विशाम्पतिः । अनन्तः पार्थिवो
विन्दुस्तापिनी परमात्मकः । वर्गाद्यश्च मुखी ब्रह्मा स खाद्योऽम्भः
शिवो जलम् । माहेश्वरी तुला पुष्या मङ्गलश्चरणं करः । नित्या
कामेश्वरी मुख्यः कामरूपो गजेन्द्रकः । श्रीपुरं रमणो वङ्ग-
कुसुमा परमात्मकः ॥ क ॥ खः प्रचण्डः कामरूपी ऋद्धिर्वङ्गिः
सरस्वती । आकाशमिन्द्रियं दुर्गा चण्डीशस्तापिनी गुरुः ।
शिखण्डी दन्तजातीशः कफोष्णिर्गुरुतो यदि । शून्यं कपाली
कल्याणी सूर्यकर्णो जरामरः । शुभ्राम्नेया चण्डलिङ्गो जना-
व्याङ्गारखङ्गकौ ॥ ख ॥ गो गौरी गौरवो गङ्गा गणेशो गोकु-
लेश्वरः । शार्ङ्गी पञ्चान्तको गाथा गन्धर्वः सर्वगः स्मृतिः ।
सर्वसिद्धिः प्रभा धूम्रा द्विजाख्यः शिवदर्शनः । विश्वात्मा गौः
पृथग्रूपा बालवर्द्धस्त्रिलोचनः । गीतं सरस्वती विद्या भोगिनी
नन्दनी धरा । भोगवती च हृदयं ज्ञानं जालन्धरो लवः ॥
ग ॥ घः खड्गी घुर्वुरो घण्टी घण्टीशस्त्रिपुरान्तकः । वायुः
शिवोत्तमः सत्या किङ्किणी घोरनायकः । मरीचिर्वरुणो मेधा
कालरूपी च दाम्भिकः । लम्बोदरा ज्वालामूलं नन्देशो हननं
ध्वनिः । त्रैलोक्यविद्यासंहर्ता कामाख्यमनघामयः ॥ घ ॥
ङः शङ्गी भैरवश्चण्डो विन्दूत्तंसः शिशुप्रियः । एकरुद्रो दक्ष-
नखः खर्परौ विषयसृष्टा । कान्तिः श्वेताङ्गयो धीरो द्विजात्मा
ज्वालिनो वियत् । मन्त्रशक्तिश्च वदनो विघ्नेशी चात्मनायकः ।
एकनेत्रो महानन्दो दुर्जरश्चन्द्रमा यतिः । शिवयोषा नीलकण्ठः
कामेशी च मयांशुकौ ॥ ङ ॥ चः पुष्करो हली वाणी चात्म-
शक्तिः सुदर्शनः । चर्ममुण्डधरो भूत्वा महिषाचारसन्धिनी ।
एकरूपो रुचिः कूर्मश्चामुण्डा दीर्घवालुकः । वामबाहुर्मूलमाया
चतुर्भूर्त्तिस्ररूपिणी । दयितश्च द्विनेत्रश्च लक्ष्मीस्त्रितयलो-

स्त्वमेव ।
तीक्षास्व-
रुतौनि ।
यदि
गदी-
ल्या-
तेषां
दि-
प-
प-

चनः । चन्दनं चन्द्रमा देवश्चेतनोवृश्चिको बुधः । देवी कीट-
 मुखेच्छात्मा कौमारी पूर्वफलुनी । अनङ्गमेखला वायुर्मेदिनी
 च मुलावती ॥ च ॥ कृच्छ्रन्दनं सुषुम्ना च पशुः पशु पतिर्भूतिः ।
 निर्मलं तरलं वङ्गिभूतमात्रा विलासिनी । एकनेत्रश्च वृषली
 द्विशिरा वामकूर्परः । गोकर्ण लाङ्गली वामः काममत्ता सदा-
 शिवः । माता निशाचरः पायुर्विचतः स्थितिशब्दकः ॥ छ ॥
 जः श्वो वानरः शूली भोगदा विजया स्थिरा । ललदेवो जयो
 जेता धातकी सुमुखी विभुः । लम्बोदरी स्मृतिः शाखा सुप्रभा
 कर्णका धरा । दीर्घरूपो बहुरुचिर्हंसो नन्दी तेजाः सुराधिपः ।
 जवनो वेगितो वामो मानवाक्षः सदात्मकः । हृन्मारुतेश्वरो
 वेगी चामोदो मदविह्वलः ॥ ज ॥ भो भङ्गारी गुहो भङ्गमावायुः
 सत्यः षडुन्नतः । अजेशो द्राविणी नादः पाशी जिह्वा जलं स्थितिः ।
 विराजेन्द्रो धनुर्हस्तः कर्कशो नादजः कुजः । दीर्घबाहुबलो
 रूपमाकन्दितः सुचञ्चलः । दुर्मुखो नष्ट आत्मवान् विकटा-
 कुचमण्डलः । कलहंसप्रिया वामा अङ्गुलीमध्यपर्वकः ।
 दक्षहासाष्टहासश्च पाथात्मा व्यञ्जनः स्वरः ॥ झ ॥ जकारो
 बोधिनी विश्वा कुण्डली मथदो वियत् । कौमारी नागविज्ञानी
 सव्याङ्गुलनयरो वकः । सर्वेशचूर्णिता बुद्धिः स्वर्गात्मा घर्घर-
 ध्वनिः । धर्मैकपादौ सुमुखौ विरजा चन्दनेश्वरी । गायनः
 पुष्पधन्वा च रागात्मा च वराक्षिणी ॥ ज ॥ टटङ्कारः कपाली
 च सोमवाः खेचरी ध्वनिः । मुकुन्दो विनदा पृथ्वी वैष्णवी
 वारुणी नवः । दत्ताङ्गकार्द्विचन्द्रश्च जरा भूतिः पुनर्भवः । वृह-
 स्पतिधनुश्चित्रा प्रमोदा विमला कटिः । राजा गिरिर्महाधनु-
 र्प्राणात्मा सुमुखो मरुत् ॥ ट ॥ ठः शून्यो मञ्जरी वीजः पाणिनी
 लाङ्गली क्षया । वनजो नन्दनो जिह्वा सुनञ्जपूर्णकः सुधा ।
 वर्तुलः कुण्डलो वङ्गिरभूतं चन्द्रमण्डलः । दक्षजानूरुभावश्च

देवभक्तो बृहदध्वनिः । एकपादो विभूतिश्च ललाटं सर्वमित्तकः ।
 वृषघ्नो ब्रह्मिनी विष्णुर्महेशो ग्रामणीः शशी ॥ ठ ॥ डः स्मृतिर्दा-
 रुको नन्दिरूपिणी योगिनीप्रियः । कौमारी शङ्करस्त्रासस्त्रि-
 वक्तो नदको ध्वनिः । दुरुहो जटिली भीमा द्विजिह्वः पृथिवी
 सती । कोरगिरिः क्षमा कान्तिर्नाभिः स्वाती च लोचनम् ॥ ड ॥
 ढो ढक्कानिर्णयः पूर्वो यज्ञेशादनदेश्वरः ॥ अर्धनारीश्वरस्तोय-
 मीश्वरो त्रिशिखी नवः । दक्षपादाङ्गुलेर्मूलं सिद्धिदण्डा विना-
 यकः । प्रहासा त्रिवरा ऋद्धिर्निर्गुणो निधनो ध्वनिः । विघ्ने शः
 पालिनी त्वक्धारिणी क्रोडपुच्छकः । एतापूरं त्वगात्मा च
 विशाखा श्रीमनो रतिः ॥ ठ ॥ णो निर्गुणं रतिज्ञानं जम्भनः
 पक्षिवाहनः । जया शम्भो नरकजित् निष्कला योगिनीप्रियः ।
 द्विमुखं कोटवी श्रोत्रं समृद्धिर्बोधनी मता । त्रिनेत्रो मानुषी
 व्योम दक्षपादाङ्गुलेर्मुखः । बाधवः शङ्खिनी वीरो नारायणश्च
 निर्णयः ॥ ण ॥ तः पूतना हरिः शुद्धिः शक्ती शक्तिर्जटी ध्वजा ।
 वामस्त्रिक्रवामकक्षी च कामिनी मध्यकर्णकः । आषाढी
 तण्डतुन्नश्च कामिकाष्टपुच्छकः । रत्नकश्च श्याममुखी वाराही
 मकरोऽरुणा । सुगतोऽर्धमुखा बुद्धेजानुश्च क्रोडपुच्छकः । गन्धो
 विखा मरुच्छत्रशानुराधा च सौरकः । जयन्ति पुलको भ्रान्ति-
 रनङ्गमदनातुरा ॥ त ॥ थः स्थिरामो महाग्रन्थिर्ग्रन्थिर्ग्राहो
 भयानकः । शिली शिरसिजो दण्डी भद्रकाली शिलोच्चयः ।
 कृष्णो बुद्धिर्विकर्मा च दक्षनासाधिपोऽमरः । वरदा भोगदा
 केशो वामजानुरसोऽनलः । लोलौ जर्जयिनी गुह्यः शरच्चन्द्रो
 दिवाकरः ॥ थ ॥ दोऽद्रीशोभतकिर्धाता दाता दलं कल-
 चकम् । दीनं ज्ञानञ्च दानञ्च भक्तिराहवनी धरा । सुपुन्ना
 योगिनो सद्यः कुण्डलो वामगुल्फकः । कात्यायनी शिवा दुर्गा
 लङ्घनाना त्रिकण्डकी । स्वस्तिकः कुटिलारूपः कृष्णश्रीमा

११८

स्वत्वमेव ।
 रीक्षास्त्र-
 भूतीनि ।
 यदि
 पादौ-
 ल्या-
 तेषां
 दि-
 प-
 ण-

जितेन्द्रियः । धर्मद्वयामदेवश्च भ्रमा बहुसुचञ्चला । हरिद्रा-
 पुरमत्नी च दक्षपाणिस्त्रिरेखकः ॥ दं ॥ धो धनार्थो रुचिः स्थाणुः
 सात्त्वतो योगिनीप्रियः । मीनेशः शङ्खिनी तोयं नागेशो विश्व-
 पावनी । धिषणा धरणा चिन्ता नेत्रयुग्मं प्रियो मतिः । पीत-
 वासा त्रिवर्णा च धाता धर्मप्लवङ्गमः । सन्दर्शो मोहनो लज्जा
 वञ्चतण्डाधरं धरा । वामपादाङ्गुलेर्मुलं जेष्ठा सुरपुरभवः ।
 स्पर्शात्मा दीर्घजङ्घा च धनेशो धनसञ्चयः ॥ ध ॥ नो गर्जिनी
 क्षमा सौरिर्वारुणी विश्वपावनी । मेघश्च सविता नेत्रं दन्तुरो
 नारदोऽञ्जनः । जङ्घुचाली द्विरण्डश्च वामपादाङ्गुलेर्मुखः ।
 वैनतेयस्तुतिर्वल्लभश्चरणिर्वालिवागमः । वामनो ज्वालिनी दीर्घा
 निरौहः सुगतिर्वियत् । शब्दात्मा दीर्घघोणा च हस्तिना-
 पुरमेचकौ । गिरिजायकनीलौ च शिवो नादिर्महामतिः ॥ न ॥
 पः पूरप्रियता तीक्ष्णा लोहितः पञ्चमो रमा । गुह्यकर्ता निधिः
 श्रेष्ठः कालरात्रिः सुवाहिता । तपनः पालनः पाता पञ्चरेणु-
 निरञ्जनः । सावित्री पातिनो पानं वीरतत्त्वो धनुर्धरः । दक्ष-
 पार्श्वश्च सेनानी मरीचिः पवनाशनिः । उड्डीशं जयिनी कुम्भो-
 ऽलसं रेखा च मोहकः । मूला द्वितीयमिन्द्राणी लोकाची मन
 आत्मनः ॥ प ॥ फः सखी दुर्गिणी धूम्रा वामपाश्वर्षो जनार्दनः ।
 जया पादः शिखा रौद्री फेल्कारः शाखिनीप्रियः । उमा विहङ्गमः
 कालः कुञ्जिनी प्रियपावकौ । प्रलयान्निर्नीलपादोऽक्षरः पशुपतिः
 शशी । फुल्कारो याजिनी व्यक्ता पावनो मोहवर्द्धनः । निष्फल-
 वागहङ्कारः प्रयागो ग्रामणीः फलम् ॥ फ ॥ वोऽवनीभृधरो मार्गी
 वर्धरी लोचनप्रियः । प्रवेताः कालसः पद्मी स्थलगण्डः कप-
 दिनी । पृष्ठवंशोभयामातः शिखिवाहो युगन्धरः । सुखविन्दु-
 र्वली घण्टा योद्धा त्रिलोचनप्रियः । जेदिनी तापिता भूमिसुग-
 णिन्द्रबलिप्रियः । सुरभिर्मुखविष्णुश्च संहारो वसुधाधिपः ।

षष्ठी पुरं चपेटा च मोदको गगनं प्रति । पूर्वाषाढामध्यलिङ्गी
 शनिः कुम्भतृतीयकौ ॥ ब ॥ भः क्लिन्ना भ्रमरो भीमो विश्व-
 मूर्त्तिर्निशा भयम् । द्विरण्डो भूषणो मूलं यज्ञसूत्रस्य वाचकः ।
 नक्षत्रं भ्रमणा दीप्तिर्वयो भूमिः पयो नभः । नाभिर्भद्रं महा-
 बाहुर्विश्वमूर्त्तिर्विताण्डकः । प्राणात्मा तापिनी वज्रा विश्व-
 रूपी च चन्द्रिका । भीमसेनः सुधासेनः सुखो मायापुरं हरः ॥
 भ ॥ मः काली क्लेशितः कालो महाकालो महान्तकः । वैकु-
 ण्डो वसुधा चन्द्रो रविः पुरुषराजकः । कालभद्रो जया मेधा
 विश्वदा दीप्तसंज्ञकः । जठरञ्च भ्रमा मानं लक्ष्मीर्मातोय-
 वन्धनी । विषं शिवो महा महावीरः शशिप्रभा जनेश्वरः ।
 प्रमत्तः प्रियसूरुद्रः सर्वाङ्गो वज्रिमण्डलम् । मातङ्गमालिनी
 विन्दुः श्रवणाभरथो वियत् ॥ म ॥ यो वाणी वसुधा वायु-
 विक्रतिः पुरुषोत्तमः । युगान्तः श्वसनः शीघ्रो धूमार्चिः प्राणि-
 सेवकः । शङ्खा भ्रमो जटी लोला वायुवेगीयशङ्करी । सङ्कर्षणः
 क्षपा बालो हृदयं कपिला प्रभा । आग्नेयो व्यापकस्यागो
 होमो यानं प्रमा सुखम् । चण्डः सर्वेश्वरो धूमश्चासुण्डा सुमु-
 खेश्वरो ॥ त्वगात्मा मलयो माता हंसिनी भृङ्गिनायकः ॥ तेन
 मः शोषको मीनो धनिष्ठानङ्गवेदिनी । मेष्ठः सोमं पत्तिनामा
 पापहा प्राणसंज्ञकः ॥ य ॥ रो रक्तः क्रोधिनी रेफः पावक-
 स्त्रोजसो मतः । प्रकाशा दर्शनी दीपो रतक्लृणा परं बली ।
 भुजङ्गेशो मतिः सूर्यो धातुरक्तः प्रकाशकः । व्यापको रेवती
 दासं कुक्षंशो वज्रिमण्डलम् । उग्ररेखा स्थूलदण्डो वेदकण्ठ-
 पला पुरा । प्रकृतिः सुगलो ब्रह्मशब्दश्च गायको धनम् ।
 श्रीकण्ठ उष्मा हृदयं मुण्डी त्रिपुरसुन्दरी । सविन्दुयोजिजो
 ज्वाला श्रीशैलो विश्वतोमुखी ॥ र ॥ लखन्द्रः पुतना पृथ्वी
 माधवः शत्रुवाचकः । बलानुजः पिनाकीशो व्यापको मांस-

स्वत्वमेव ।
 रीचास्व-
 मृतौनि ।
 व यदि
 म्यादी-
 यत्वा-
 तेषां
 तादि-
 रूप-
 ण-
 य-
 य

संज्ञकः । खड्गी नादोऽमृतं देवी लवणं वारुणीपतिः । शिखा
 वाणी क्रिया माता भामिनी कामिनी प्रिया । ज्वालिनी वेगिनी
 नादः प्रद्युम्नः शोषणी हरिः । विश्वात्ममन्द्री बली चेतो मेरु-
 गिरिः कला रसः ॥ ल ॥ वो बालो वारुणी सूक्ष्मा वरुणो मेद-
 संज्ञकः । खड्गीशो ज्वालिनी वङ्कः कलसध्वनिवाचकः । उत्-
 कारीशस्तु नावीतो वज्रा स्फिक् सागरः शुचिः । त्रिधातुः
 शङ्करः श्रेष्ठो विशेषो यमसादनम् ॥ व ॥ शः सव्यश्च कामरूप-
 कामरूपौ महामतिः । सौख्यनामा कुमारोऽस्थि श्रीकण्ठो
 वृषकेतनः । वृषघ्नः शयनं शान्ता सुभगा विस्फुलिङ्गिनी ।
 सृष्टुर्देवो महालक्ष्मीर्महेंद्रः कुलकौलिनी । बाहुहंसो विय-
 इक्ष्णं हृदनङ्गाहुशः खलः । वामोरुः पुण्डरीकात्मा कान्तिः
 कल्याणवाचकः ॥ ष ॥ षः श्वेतो वासुदेवश्च पीता प्रज्ञा विना-
 यकः । परमेष्ठी वामबाहुः श्रेष्ठो गर्भविमोचनः । लज्जोदरो
 यमोऽजेशः कामधुक् कामधूमकः । सुश्रीरुष्मा वृषो लज्जा मरु-
 त्तथ्यः प्रियः शिवः । सूर्यात्मा जठरः कोषो मत्ता वक्षोविदा-
 रिणी । कलकण्ठो मध्यभिन्वा युद्धात्मा मलपूः शिवः ॥ ष ॥
 सो हंसः सुयशा विष्णुर्भृग्वीशश्चन्द्रसंज्ञकः । जगद्बीजं शक्ति-
 नामा सोऽहं वेशरती भृगुः । प्रकृतिरौश्वरः शुद्धः प्रभा श्वेता
 कुलोज्ज्वलः । दक्षपादोऽमृतं ब्राह्मी परमात्मा परोऽक्षरः ।
 सुरुपा च गुणेशो गौः कलकण्ठो वृकोदरी । प्राणाद्याश्च पुरा
 देवी लक्ष्मीः सोमो हिरण्यपुः । दुर्गोत्तारिणी सम्मोहाज्जीवो
 मूर्तिमनोहरः ॥ स ॥ हः शिवो गगनं हंसो नागलोकोऽम्बिका-
 प्रतिः । नकुलीशो जगत्प्राणः प्राणेशः कपिलामलः । पर-
 मात्मात्मजो जीवो यवाकः शान्तिदोऽङ्गनः । मृगोभयोऽरुणा
 स्थाणुः क्रुटकूपविरावणः । लक्ष्मीर्मविहरः शम्भुः प्राणशङ्कि-
 ललाटजः । स्वकोपवारणः शूली चैतन्यं पादपूरणः । महा-

लक्ष्मीः परं शम्भुः शाखीठः सोममण्डलम् ॥ ह ॥ ला पृथ्वी
विमला मेघोऽनन्तोऽव्यवहासिता । व्यापिनी शिवदा केतु-
जगत्सारतरं हठः । ग्लौमृङ्गानी च वेदार्थसारी नारायणः
स्वयम् । जठरो नकुलिः पीता शिवेशोऽनङ्गमालिनी ॥ ल ॥
क्षः कोपस्तुम्बुकः कालो रुक्षः संवर्त्तकः परः । नृसिंहो वि-
द्युतामाया महातेजा युगान्तकः । परात्मा क्रोधसंहारौ
बलान्तो मेरुवाचकः । सर्वाङ्गः सागरः कामः संयोगान्धस्त्रि-
पूरकः । क्षेत्रपालो महाक्षोभो मातृकान्तानलक्षयः । मुखं
कव्यवहानन्ता कालजिह्वा गणेश्वरः । छायापुत्रश्च सङ्घातो
मलयश्रीर्ललाटकः ॥ क्ष ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमे सर्गकाण्डे वर्णाभिधान-

कथनं नामाष्टमः परिच्छेदः ॥

मन्त्राणां वर्णमयत्वात् वर्णप्रकरणानन्तरं मन्त्रप्रकरणस्यौ-
चित्यात् मन्त्रप्रकरणमुच्यते विश्वसारतन्त्रे तृतीयपटले ॥
अथ मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कामलानने ! । यस्य प्रसादमा-
त्रेण चतुर्वर्गं लभेन्नरः । कैलासस्य चतुर्दिक्षु मन्त्राणां साधकस्य
च । सन्ति सर्वत्र तन्त्राणि चतुर्द्धा परमेश्वरि ! । कोटिकोटिश्च
मन्त्राणां यन्त्राणां साधकस्य च । पृथिव्यां देवलोकेषु गन्धर्वेषु
रसातले । नरलोके ऋषिलोके कुष्माण्डराक्षसेषु च । नाना-
रूपाणि तन्त्राणि सन्ति वैशेषिकाणि च । सर्वेषां तन्त्रमन्त्राणां
मानुषेषु विशिष्यते ॥ तथा । सुक्तापीतपयोदविद्रुमजवावर्णै-
र्मुखैः पञ्चभिस्त्र्यक्षैरञ्जितमीशमिन्दुसुकुटं पूर्णैन्दुकोटिप्रभम् ।
शूलं टङ्ककपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्गुशान् पाशं भीतिहरं
दधानमसिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥ प्रणम्य कथयिष्येऽहं सर्वलोक-
हितं परम् । यस्मिन् यादृश आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः ।
कृतार्थस्तेन जायेत स्वर्गमोक्षसमन्वितः । भ्रान्तिस्तत्र न

स्वत्वमेव ।
रीक्षास्त्र-
धृतीनि ।
यदि
पादी-
ख्या-
तेषां
दि-
प-
प-

कर्त्तव्या तदा सिद्धिः प्रजायते ॥ तथा । मुक्तामुखे देवतायाः
 सर्वमन्त्रं जगाद सः । यच्चगन्धर्वनागेषु तथा पीतमुखेन च ।
 कुष्माण्डविघ्नलोकेषु पयोदेन मुखेन वै । वैदूर्येण जवाभेन
 मनुष्येषु निगद्यते । शिष्येभ्यो दापयामास महाविद्याः सुरे-
 श्वरः ॥ शिष्येभ्यो दापनप्रकारस्तु गायत्रीतन्त्रं दशमब्राह्मण-
 पटले ॥ शिव उवाच ॥ लम्बोदर ! महाभाग ! शृणु मे परमं
 वचः । इदं महासुसन्दर्भं मम वक्ताद्विनिर्गतम् । निर्गतं
 पार्वती वक्तात्तन्त्रं परमदुर्लभम् । विलिख्य बहुयत्नेन गच्छ
 सिद्धाश्रमं सुत ! । यत्र तिष्ठन्ति मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ।
 अणिमादिगुणैर्युक्तः शीघ्रं त्वं भव मे सुत ! । इत्युक्तः शङ्करे-
 णासी चाष्टबाहुरभूत्ततः । चतुर्भिर्हस्तैः संलिख्य शिवाय
 विनिवेदयेत् ॥ शिव उवाच ॥ गच्छ पुत्र ! महाबाहो ! तन्त्र-
 मादाय सत्वरम् । सिद्धाश्रमं वनं रम्यं यथेन्द्रस्य च नन्द-
 नम् । प्रणम्य प्रययौ शीघ्रं तन्त्रमादाय तदनम् ॥ इत्युपक्रम्य ॥
 मुनेर्वाक्यं ततः श्रुत्वा तत्तन्त्रं मुनये ददौ । एवं तन्त्राणि
 सर्वाणि विलिख्य विनिवेदयेत् ॥ इति पृथिव्यां तन्त्रावत-
 रणप्रकारः ॥ विश्वसारे ॥ जीवकोटिप्रविष्टा सा महाविद्या महेश्वरि ! ।
 महाविद्या महेशानि ! जीवेनैव प्रकीर्तिता । जीवे
 जीवत्वसिद्धिः स्यादेवदेवत्वसिद्धये । मातृकावर्णभेदेभ्यः सर्वे
 मन्त्राः प्रजन्तिरे । प्रजन्तिरे प्रादुर्बभूवुरित्यर्थः ॥ महाविद्या
 महापूर्वा महामन्त्राश्च भाविनि ! । सर्वेषां वीजमित्युक्तं शङ्करस्य
 मतेन च । कुलमूलावतारकल्पसूत्रटीकाष्टततापनी च । पर-
 मशिवभट्टारकः श्रुत्यष्टादशविद्याः सर्वाणि दर्शनानि च लीलया
 तत्तदवस्थापन्नः प्रणीय सविमत्या भगवत्या स्वात्माविभिन्नया
 पृष्टः पञ्चभिर्मुखैः पञ्चान्नायान् परमार्थस्वरूपान् प्रणिन्ये इति ।
 एतान् व्याचक्षते शङ्कराचार्याः । परमशिव इति तदुक्तं परि-

मलीहासे ॥ परमेशः प्रसन्नात्मा प्रकाशस्य महेशितुः । प्रथमो
यः परिख्यन्दः शिवतत्त्वं तदुच्यते ॥ भट्टारकः सर्वनियमकर्ता ।
कुलार्णवे पञ्चमखण्डे सप्तदशोक्तासे ॥ भवपापप्रशमनात् टङ्गा-
रेन्दुकशेखरात् । रक्षणात् कमनीयाद्वा भट्टारक इति स्मृतः ॥
श्रुतिप्रसिद्धा अष्टादशविद्या इति । चत्वारो वेदा उपवेदाश्चत्वारः
षडङ्गानि पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राख्येतावत्यः ॥ श्रुति-
प्रसिद्धा इति सर्वतः प्रामाण्येनोक्तम् । चत्वारो वेदा इति ऋक्-
सामाथर्वयजूंषि । उपवेदा इत्यायुर्वेदगान्धर्ववेददण्डनीतिधनु-
र्वेदा यथाक्रममुक्तवेदानामित्यवगन्तव्यम् । तथा च शौन-
कोक्ती चरणव्यूहे ऋग्वेदस्यायुर्वेदोपवेदो यजुर्वेदस्य धनुर्वेदोप-
वेदः सामवेदस्य गान्धर्ववेदोपवेदोऽथर्ववेदस्यार्थशास्त्राणि
भवन्तीति अस्त्रशास्त्राणि भवन्तीति चतुर्थचरणं दाक्षिणात्याः
पठन्ति । श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे द्वादशाध्याये तु । आयु-
र्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः । स्थापत्य चासृजद्वेदं क्रमात्
पूर्वादभिमुखैरित्युक्तम् । स्थापत्यं विश्वकर्मशास्त्रमिति स्मर्यते ।
तत्तु गृहवास्तुकुण्डादिकरणशास्त्रम् । एतेषां श्रुतिवेदमन्त्रशा-
स्त्रेभ्यः प्रामाण्यकीर्तनाय सर्वशास्त्राणामादौ निर्देशः कृतः
शङ्कराचार्यैः । श्रीधरस्वामिना तु श्रीभगवद्गीताटीकायां स्मृति-
शास्त्रापेक्षया दण्डनीतेर्दुर्बलत्वमुक्तम् । तथात्वे त्वायुर्वेदोक्तमहौ-
षधानामभक्ष्यापेयानामग्राह्यत्वं स्यात् । शरलास्तु तादृशीषधम-
क्षणे तु प्रायश्चित्तमाहुः । तन्न । एतान्येव व्याधितस्य भिषक्-
क्रियायामप्रतिषिद्धानि यात्रि-चैवविधानि तेऽप्यदोष इति
स्मृत्युक्तेः । षडङ्गानीति शिक्षाकल्पव्याकरणनिरुक्तच्छन्दोज्यो-
तींषि । पुराणं पञ्चलक्षणाक्रान्तं व्यासप्रणीतम् । न्यायः कर्म-
मीमांसा । गौतमेन तथा न्यायमिति वक्ष्यमाणवचनादान्वीक्षि-
क्यपि । मीमांसां ब्रह्ममीमांसा वेदान्त इति यावत् । धर्मशा-

स्त्वमेव ।
रीक्षास्त्र-
धृतीनि ।
। यदि
पादौ-
त्या-
तेषां
दि-
प-
ए-

स्त्राणि मन्वादिप्रणीतानि । एतावत्योऽष्टादशविद्या इति दर्शनानि
 व्याचक्षते आचार्याः । यथादर्शनानि बौद्धशैवब्राह्मसौरवैष्णव-
 शाक्तानीति । सम्प्रति तु वेदान्तसांख्यमीमांसाविशेषतर्कशा-
 स्त्राणि दर्शनानि मन्यन्ते सुधिय इति । लीलयेति लीला इच्छा-
 विशेषः । अन्यथा सृष्टिकर्तृत्वे निरौहस्य भगवतः कारणान्त-
 रापेक्षा नास्त्येव । तत्तदवस्थापन्न इति ब्रह्मविष्णुरुद्रव्यासनार-
 दादिशरीरीति । अतएव गन्धर्वतन्त्रे प्रथमपटले ॥ प्रथमं हि
 मया प्रोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् । मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः सम्प्रो-
 क्तानि ततः परम् । कणादेन च सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् ।
 गौतमेन तथा न्यायं सांख्यन्तु कपिलेन तु । धिषणेन तथा
 प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् । दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना
 बुद्धरूपिणा । बौद्धशास्त्रं तथा प्रोक्तं लग्ननीलपटादिकम् ।
 आपत्यं श्रुतिवाक्याभ्यां दर्शयन् लोकगर्हितम् । कर्मस्वरूपत्या-
 ज्यत्वमत्र वै प्रतिपद्यते । सर्वकर्मपरिध्वष्टं कल्पन्तु तदुच्यते ।
 गौतमप्रोक्तशास्त्रार्थनिरताः सर्व एव हि । शार्ङ्गालीं योनि-
 मापन्नाः सन्दिग्धाः सर्वकर्मसु । अतएव महाभारते मोक्षधर्मे
 काश्यपेन्द्रसंवादे ॥ अहमासं पण्डितको हैतुको वेदनिन्दकः ।
 आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकामिति प्रस्तुत्य आ-
 क्रोष्टा चातिवक्ता च ब्रह्मयज्ञेषु वै द्विजान् । यस्येयं फलनिष्पत्तिः
 शृगालत्वं मम द्विजेति ब्राह्मणं प्रति शृगालवाक्यम् ॥ ननु
 आन्वीक्षिकी दण्डनीतिस्त्रयी त्रिदिवसुन्दरीति कालीकुलसर्व-
 स्त्रीयवचनेनाद्यासहस्रनामान्तर्गतत्वेनान्वीक्षिक्याः श्रीमद्दक्षिण-
 कालिकास्वरूपाया अध्ययनरूपोपासनया यदि शृगालत्वं
 स्यात्तदा चतुर्वर्गफलं कुतो लब्धव्यमिति चेत् सत्यमान्वीक्षिक्य-
 ध्यात्मविद्येति ब्रूमः । सा च दत्तात्रेयप्रणीता न गौतमोक्ता ।
 तथा च भागवते प्रथमस्कन्धे । षष्ठमखेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनुसू-

यया । आन्वीक्षिकीमलकार्यं प्रज्ञादादिभ्य ऊचिवानिति ।
अत्रिणा वृतः सन् तस्यापत्यत्वं प्राप्तः । कथमित्याह अनुसूया-
याममिवापत्यं वृतवानिति दोषदृष्टिमकुर्वन्नित्यर्थः । शेषं सुग-
मम् । आन्वीक्षिकीमात्मविद्यामिति श्रीधरस्वामिना व्याख्या-
तम् । न गौतमोक्तविद्या सा तु तर्काद्वयत्वेन प्रसिद्धेति चेन्नैवम् ।
तथात्वे आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामिति मोक्षधर्मश्लोके तर्कवि-
द्येति विशेषणमान्वीक्षिकी दण्डनीतिस्तर्कविद्यार्थशास्त्रयोरित्य-
मरसिंहोक्तञ्च न सङ्गच्छते । तस्मात्तयोर्द्वयोरेवान्वीक्षिकीति
नामधेयम् । अथ तर्हि उक्तदोषस्तदवस्थ इति सत्यं गन्धर्वतन्त्रा-
भिप्रायमनालोच्य दोषमाशङ्कसे तथाहि । निष्ठाया अतीता-
र्याभिधायित्वाच्छार्गालीं योनिमापन्नाः प्राप्तशृगालयोनिकाः
सर्व एव गौतमप्रोक्तशास्त्रार्थनिरताः केवलतर्कशास्त्रनिपुणाः
सन्तः सर्वकर्मसु सन्दिग्धा भवन्तीति वचनस्य निर्गलितार्थः ।
शास्त्रान्तरव्यावृत्तिस्तु निपातेन व्यज्यते । अतएव आम्नायार्था-
विवादेन न्यायचिन्तां करोति यः । तेन निःश्रेयसं प्राप्यं शार्गाली
योनिरन्यथेति पठन्ति । मोक्षधर्मश्लोकार्थस्तु । तर्कविद्या-
मान्वीक्षिकीमनुरक्तोऽहं द्विजानाक्रोष्टातिवक्ता च यस्य ब्राह्मणं
प्रत्याक्रोशस्यातिवादस्य च फलनिष्पत्तिर्मम शृगालत्वमिति ।
युक्तञ्चैतद्वाचिकपापस्य मनुना तथात्वस्य प्रतिपादितत्वात् ॥
तथाच मनुः ॥ शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः । वा-
चिकैः पक्षिजातित्वं मानसैरन्यजातितामिति । मानसपापन्तु
न गृहस्थानामित्यग्रे वक्ष्यते कलीतरपरं वा । तथाच भागवते
प्रथमस्कन्धे । नानुद्देष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ।
कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् । सारङ्गो भ्रमर
इव सारयाही सम्राट् राजा कलिं नानुद्देष्टीत्यन्वयः । कुशलानि
पुण्यानि आशु सङ्कल्पेन सिध्यन्ति फलन्ति । इतराणि पापानि

स्त्वमेव ।
रीक्षास्व-
यतीनि ।
व यदि
मादी-
पत्या-
तेषां
दि-
प-
प-
प-

नाशु सिध्यन्ति यतस्तानि कृतान्येव सिध्यन्ति न तु सङ्कल्पमात्रा-
 णीत्यर्थः । सङ्कल्पः कर्म मानसमित्यमरः ॥ यदि तु तर्कविद्या-
 पाठेन शृगालत्वमुच्यते तदा तु मोक्षधर्मस्याक्रोष्टेत्यादि श्लोकस्य
 वैयर्थ्यं स्यादिति सुधीभिर्विचार्यमिति ॥ गान्धर्वं ॥ द्विजन्मना
 जैमिनिना सर्ववेदमपार्थतः । निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं
 महत्तरम् । सविमत्येति सविमतिर्विमर्षरूपा । भगवत्येति भग-
 वतो सच्चिदानन्दरूपलक्षणा । स्वात्माविभिन्नयेति । स वै नैव
 रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत । सहैतावाननवास
 यथा स्त्रीपुंसौ सम्परिष्वक्तौ स तावानेवात्मानं द्वेधार्पयेत् । पतिश्च
 पत्नी चाभवताम् । तस्मादिदमर्द्धं गच्छत इति तस्मात्तु याज्ञ-
 वल्क्यस्तस्मादयमाकाशस्त्रिधापूर्यत एव तां समभवत्ततो मनुष्या
 अजायन्त सौहे यमीजाञ्जने । इति श्रुतिः । एतदुक्तं 'स्वच्छन्द-
 भैरवे । गुरुशिष्यपदे शिष्या स्त्रयं देवो महेश्वरः । पूर्वोत्तर-
 पदैर्वाक्यैस्तन्वान् समवतारयत् ॥ परापञ्चाशिकायामपि ।
 परमेशः प्रकाशात्मा प्रकाशस्य महेशितुः । विमर्षकस्त्रभावत्वं
 न कचिद्व्यवधीयते । पञ्चभिर्मुखैरिति ईशानतत्पुरुषवास-
 देवाघोरसद्योजातस्वरूपैः । पञ्चान्नायानिति पूर्वपश्चिमदक्षि-
 णोत्तरनिरुत्तरान् सर्वेषां देवानां तत्तत्प्रकरणस्वरूपान् ॥
 तदुक्तं भैरवतन्त्रे ॥ पूर्वपश्चिमदक्षिण उत्तरश्च निरुत्तरमिति ।
 अन्यत्रापि पूर्वान्नायः पूर्वमुखः पश्चिमः पश्चिमामुखः । दक्षिणो
 दक्षिणस्तदुत्तरश्चोत्तरः परः । निरुत्तरं तथा चोर्ध्वं सिद्धान्तागस-
 रूपिणम् । ऊर्ध्वान्नायपरिज्ञानं नाल्पस्य तपसः फलमिति ।
 अन्यत्र । पूर्वान्नायः शब्दरूपो दक्षिणः कर्णरूपकः । पश्चिमः प्रश्न-
 रूपः स्यादुत्तरश्चोत्तरस्तथा । ऊर्ध्वान्नायस्तत्त्वबोधः केवलानु-
 भवात्मकः ॥ कुलार्णवतन्त्रेऽपि ॥ मम पञ्चमुखेभ्यश्च पञ्चान्नायाः
 समुद्गता इत्यादि । परमार्थस्वरूपानिति सर्वेषां शैवाद्यान्ना-

यानां सारभूतान् ॥ निर्वाणतन्त्रे षष्ठपटलेऽपि ॥ विभाव्य
मुखपद्मं हि शिवस्य वरवर्णिनि ! । सद्योजतं वामदेवमघोरञ्च
ततः परम् । तत्पुरुषं तथेशानं पञ्चवक्त्रं प्रकीर्तितम् । सद्यो-
जातञ्च वै शुक्लं शुद्धस्फटिकमन्निभम् । पीतवर्णं तथा सौम्यं
वामदेवं मनोहरम् । कृष्णवर्णमघोरञ्च समं भीमविवर्द्धनम् ।
रक्तं तत्पुरुषं देवि ! दिव्यमूर्त्तिमनोहरम् । श्यामलञ्च तथे-
शानं सर्वदेवशिवात्मकम् । चिन्तयेत् पश्चिमे चार्धं द्वितीयञ्च
तथोत्तरे । अघोरं दक्षिणे देवं पूर्वं तत्पुरुषं तथा । ईशानं
मध्यतो ज्ञेयं चिन्तयेद्भक्तितत्परः ॥ समयोच्चारतन्त्रे द्वितीय-
पटले तु षडान्नाया उक्ता यथा ॥ पूर्वामायो यदा मन्त्र-
स्तदा प्राचीदिशि स्थितः । सदाशिवोऽहं भगवानाचारः परि-
कीर्तितः । एवं वै दक्षिणाम्नायो दक्षिणस्यां दिशि स्थितः ।
एवमेवोत्तराम्नाय उत्तरस्यां दिशि स्थितः । मखमूर्द्धकृतं
देवि ! यत् प्रोक्तं तव सन्निधौ । ऊर्ध्वाम्नायश्च कथितो देवा-
नामपि दुर्लभः । यदाचारो मुखे देवि ! यत् प्रोक्तं गिरिजे !
प्रिये ! । अथ आम्नाय इत्युक्तः सत्यं सत्यं सुमध्यमे ! । षडा-
न्नायाश्च कथिताश्चोत्पत्तिक्रमनामतः । यस्मिन् यस्मिंश्च वै
देवाः कथिताश्च वरानने ! । तान् देवांश्च प्रवक्ष्यामि साधकानां
हिताय वै । श्रीविद्याभेदसहिता तारा च त्रिपुरा तथा ।
भुवनेशी चान्नपूर्णा पूर्वाम्नाये प्रकीर्तिता । वगलामुखी वशिनी
त्वरिता धनदा तथा । महिषघ्नी महालक्ष्मीर्दक्षिणाम्नाय-
कीर्तिताः । वाशिनी बालभैरवीत्यर्थः ॥ महासरस्वती विद्या
तथा वाग्वादिनी परा । प्रत्यङ्गिरा भवानी च पश्चिमांनाय-
कीर्तिताः ॥ कालिकाभेदसहिता ताराभेदश्च संयुता । मातङ्गी
भैरवी च्छिन्ना तथा धूमावती परा । उत्तराम्नायकथिताः
काली शीघ्रफलप्रदाः । समस्तभेदसहिताः कालिकायाः प्रकी-

११८

स्त्वमेव ।
रीचास्त्र-
भृतीनि ।
व यदि
व्यादी-
शब्दा-
तेषां
गदि-
रूप-
ण-
ग-
ग

र्त्तिताः । हाविशत्यक्षरी तासां दक्षिणान्नायकीर्त्तिता । तत्परा
 परमा विद्या न विद्यान्तरगोपिता ॥ पराप्रासादमन्त्रश्च ऊर्द्धा-
 न्नाये प्रकीर्त्तिताः । वागौश्वरादयो देवा अध आन्नायकीर्त्तिताः ।
 ऊर्द्धाम्नाया अधश्चैव केवलं मोक्षदो भवेत् । धर्मार्थकाममोक्षार्थं
 आम्नायान्ये प्रकीर्त्तिताः । यथोक्तविधानां भद्रे ! कृत्वा फल-
 मवाप्नुयात् । पूर्वाम्नायादि सर्वासां विधानं शृणु सुन्दरि ! ।
 कृत्वा येनाशु लभते फलं यदुत्तमोत्तमम् । षट्कर्मफलदा नृणां
 षडाम्नायाः प्रकीर्त्तिताः । उत्तराम्नायो देवेशि ! तेषामाशु फल-
 प्रदः ॥ अतएव पादुकापञ्चकस्तोत्रे षडाम्नायफलोपेतमित्युक्तम् ।
 अत्राम्नायादीनां नानातन्त्रैर्वर्णविरोधः पञ्चषडित्याम्नायविरो-
 धश्चाम्नायादिभेदेन समाधानीय इति पूर्वमुक्तं कल्पभेदेन वा ।
 तत्राम्नायभेदेनाचारभेद उक्तस्तु निरुत्तरतन्त्रे प्रथमपटले ॥
 पूर्वाम्नायोदितं कर्म पाशवं कथितं प्रिये ! । यदुक्तं दक्षिणा-
 म्नाये तदेव पाशवं स्मृतम् । पश्चिमाम्नायजं कर्म पशुवीरसमा-
 श्रितम् । उत्तराम्नायजं कर्म दिव्यवीराश्रितं प्रिये ! । दिव्यो-
 ऽपि वीरभावेन साधयेत् पितृकानने । वीरासनं विना दिव्यः
 पूजयेत् पितृकानने । ऊर्द्धाम्नायोदितं कर्म दिव्यभावाश्रितं
 प्रिये ! । एतेन तन्त्रादीनामेवाम्नायत्वमायातम् । तुल्यप्रमा-
 णत्वज्ञापनाय तु श्रुतिवेदाम्नायानामेकपर्यायता अमरसिंहेन
 स्वीकृता । अतएव मेरुतन्त्रे प्रथमप्रकाशे ॥ न वेदः प्रणवं
 त्यक्त्वा मन्त्रो वेदसमुत्थितः । तस्माद्वेदपरो मन्त्रो वेदाङ्गश्चा-
 गमः स्मृत इति । तन्त्राणां वेदाङ्गत्वमुक्तम् वेदे परो वेदपर
 उत्तम इत्यर्थः । वेदा मन्त्रा एवाङ्गानि यस्य स तथा । निरु-
 त्तरतन्त्रेऽपि ॥ आगमः पञ्चमो वेदः कौलस्तु पञ्चमाश्रम
 इति । एवञ्च प्रागुक्ततापनौव्याख्याने शङ्कराचार्यैरेतावत्य इति
 विशेषणदानेन तापन्युक्ताष्टादशेति विशेषणेन च दर्शनानां

पृथङ्निर्देशनाप्यन्येषां न विद्यात्वं किन्तु सामान्येन शास्त्रत्वमेव ।
तानि तु कामसूदनटमुद्राशिल्पाश्वगजरत्नश्वेनपरीक्षास्त्र-
निर्माणस्थापत्यकेरलिसरशकुनराजनीतिकाव्यालङ्कारप्रभृतौनि ।
अतएव विद्याः शास्त्राणि शिल्पानि नृत्यगीतादिकञ्च यदि
सरस्वतीस्तवे विद्याशास्त्रयोः पृथगुपादानम् तर्हि शिल्पादी-
नामपि शास्त्रत्वात् कथं तत्र पृथङ्निर्देश इति चेन्नैवम् । शिल्पा-
दिशब्देन शिल्पादिक्रिया तन्वाभिमतता अतो न दोषः । तेषां
शास्त्रत्वे प्रमाणन्तु कामशास्त्रमजानन्तो रमन्ते पशवो यथेत्यादि-
वचनम् । अष्टादशविद्यान्तःपातिपुराणविद्यामध्ये प्रचरद्रूप-
त्वात् सटीकतया निःसन्दिग्धार्थत्वाच्च भागवतमात्रस्य लक्षण-
मुच्यते । नारदपञ्चरात्रे द्वितीयरात्रे सप्तमाध्याये ॥ ग्रन्थाष्टा-
दशसाहस्रं द्वादशस्कन्धसम्मितम् । शुकप्रोक्तं भागवतं श्रुत्वा
निर्वाणतां व्रजेत् । पुरा भगवता प्रोक्तं क्षण्येन ब्रह्मणे शुके ।
पुराणसारं शुद्धं तत् तेन भागवतं विदुः ॥ शारदाद्वितीयपटले ॥
मातृकावर्णभेदेभ्यः सर्वे मन्त्राः प्रजन्तिरे । मन्त्रविद्याविभागेन
द्विविधा मन्त्रजातयः । मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्याः स्त्रीदेवताः
स्मृताः ॥ प्रयोगसारोऽपि ॥ द्विधा प्रोक्ताश्च ते मन्त्राः सौम्य-
सौरविभागतः । सौराः पुंदेवता मन्त्रास्ते च मन्त्राः प्रकी-
र्त्तिताः । सौम्याः स्त्रीदेवतास्तद्विद्यास्ते विश्रुता इति प्रयोग-
विशेषसिद्ध्यर्थं मन्त्राणां त्रैविध्यमाह शारदायाम् । पुंस्त्रीनपुं-
सकात्मनो मन्त्राः सर्वे समीरिताः । पुंमन्त्रा हुंफडन्ताः
स्युर्हिठान्ताश्च स्त्रियो मताः । नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता
मनवस्त्रिधा ॥ ननु निष्कलचेतन्यात्मकानन्दवाच्यस्य मन्त्रस्य
कथं पुंस्त्र्यादिकल्पनमिति चेत् सत्यं वस्तुतो नास्त्येव उपासका-
नामर्थं कल्पनामात्रं यदाहुः । चिन्मयस्य द्वितीयस्य निष्क-
लस्याशरीरेणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ।

हुं फडिति सम्प्रदायाद्वास्तसमस्तास्तदन्ता इति । द्विठान्ता
 इति स्वाहान्त इत्यर्थाः ॥ ठशब्देन लिपिसाम्यादर्याद्विन्दु-
 र्च्यते । ठः शून्ये च ब्रह्मबलाविति कोषात् । शून्यरूपमेव तस्य
 द्वित्वं तेन विसर्गः स च शक्तिरूप इति द्विठशब्देनाग्निशक्तिः
 स्वाहोक्ता । प्रयोगसारे तु वषट्स्वाहान्तगाः स्त्रियः । नपुंसका
 हुंनमोऽन्ता इति मन्त्रास्त्रिधा स्मृताः । तारेणाम्यनुमीयन्ते
 मन्त्राः स्वाद्यन्तमध्यतः । प्रत्यासन्नात्मभावेन यथा पुंस्त्रीनपुं-
 सकाः । विन्दुसर्गेन्दुखण्डान्तास्तद्वदेव प्रकीर्तिताः । शारदा-
 याम् ॥ शस्तास्ते त्रिविधा मन्त्रा वश्यशान्त्याभिचारके ॥ नारा-
 यणीये ॥ शेषाः पुमांसः शस्तास्ते वश्योच्चाटविशेषतः । जुद्र-
 क्रियाद्युपध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र नपुंसकाः । शारदायाम् ॥ अग्नी-
 षोमात्मका मन्त्रा विज्ञेयाः क्रूरसौम्ययोः । पूर्वं मातृकायाः
 कुण्डल्या आविर्भावस्योक्तत्वात्तस्य अग्नीषोमात्मकत्वात् मन्त्रा-
 णामपि तथेति हृदयम् । तत्रैव कर्मणोर्वह्नितारान्यवियत्-
 प्रायाः समीरिताः ॥ क्रूरसौम्ययोः कर्मणोरित्यन्वयः । वह्नी-
 रेफः । तार ऊँकारः । अन्तः लकारः । वियत् हकारः ।
 प्रायःशब्दो बाहुल्यवाची ॥ आग्नेया मनवः सौम्या भूयिष्ठेन्द्र-
 मृताक्षराः । आग्नेया इति पूर्वेण सम्बध्यते ॥ इन्दुः सकारः ।
 तत्त्वान्यासे इन्दुमण्डलस्य सकारादित्वेन न्यस्तत्वात् । अमृतं
 वकारः ॥ अत्रैकस्य बाहुल्ये तत्त्वम् । उक्तचेष्टानसंहितायाम् ॥
 ताराकाशायन्तवाद्यन्तवर्णा आग्नेयाः स्युः सौम्यवर्णास्ततोऽन्ये ।
 आग्नेयाऽपि स्यात्तु सौम्यो नमोऽन्तः सौम्योऽपि स्यादग्निमन्त्रः
 फडन्त इति । स्यादाग्नेयः क्रूरकर्मप्रसिद्धः । सौम्यः सौम्य-
 काः कुर्याद् यथावदिति ॥ नारायणीयेऽपि ॥ तारोऽन्याग्नि-
 वियत्प्रायो मन्त्र आग्नेय इष्यते । शिष्टः सौम्यप्रशस्ती तौ
 कर्मणोः क्रूरसौम्ययोरिति ॥ शारदायाम् ॥ आग्नेयाः सम्प्र-

बुध्यन्ते प्राणे चरति दक्षिणे । भागे नाभिस्थिते प्राणे सौम्या
बोधं प्रयान्ति च । नाडीद्वयं गते प्राणे सर्वं बोधं प्रयान्ति च ।
प्रयच्छन्ति शुभं सर्वं प्रबुद्धा मन्त्रिणां सदा ॥ सुप्तकाले प्रयोगो
न कार्यः । उक्तञ्च नारायणोद्ये ॥ सुप्तः प्रबुद्धमात्रो वा मन्त्रः
सिद्धिं न यच्छति । स्वापकाले वामवहो जागरे दक्षिणावहः ॥
आग्नेयस्य मनःसौम्यमन्त्रस्यैतद्विपर्ययः ॥ स्वापकाले दक्षिण-
श्वासो जागरणे वामनिश्वास इति वैपरीत्यम् । प्रबोधकालं
जानीयादुभयोरन्तयोर्वहमिति ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां प्रथमे सर्गकाण्डे आम्नायभेदरूप-
केशरकथनं नामाष्टमः परिच्छेदः ।

यद्यपि छिन्नादिदुष्टमन्त्राणां लक्षणं तन्त्रसारकारेणैव धृतं
तथापि तेषां व्याख्यानार्थं नानाशोधनदर्शनार्थञ्चात्र लिख्यते ॥
शारदायाम् । छिन्नादिदुष्टमन्त्रास्ते पालयन्ति न साधकम् ।
छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनः पराङ्मुख इतीरितः । वधिरौ नेत्र-
हीनश्च कीलितः स्तम्भितस्तथा । दग्धः स्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च
तिरस्कृतः । भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छितः । हतवी-
र्यश्च हीनश्च प्रध्वस्तो बालकः पुनः । कुमारश्च युवा प्रौढो वृद्धो
निस्त्रिंशकस्तथा । निर्वीर्यः सिद्धिहीनश्च मन्दः कूटस्तथा पुनः ।
निरंशः सत्त्वहीनश्च केकरो वीजहीनकः । धूमितालिङ्गितौ
ख्यातां मोहितश्च लुधार्त्तकः । अतिदृष्टोऽङ्गहीनः स्यादति-
क्रुद्धः समीरितः । अतिक्रूरश्च सव्रीडः शान्तमानस एव च ।
स्थानभ्रष्टश्च विकारः सातिवृद्धः प्रकीर्तितः । निःस्नेहः पीडि-
तश्चापि वक्ष्याम्येषाञ्च लक्षणम् ॥ तथा पुनरित्यनेन कूट एव
निरंशक इत्याह । अतिवृद्ध इति निःस्नेहविशेषणम् । तेन
निःस्नेह इत्यनन्तरमतिवृद्ध इत्युक्तमिति राघवभट्टः ॥ मनोर्य-
स्यादिमध्यान्तेष्वानलं वीजमुच्यते । संयुक्तं वा वियुक्तं वा

स्वराक्रान्तं त्रिधा पुनः । चतुर्धा पञ्चधा वाथ स मन्त्रश्चिन्तनसं-
 ज्ञकः । आदिमध्यावसानेष्विति समुच्चयः । संयुक्तं वा अक्षरान्तर-
 युक्तं वियुक्तं वा केवलं वा इत्येकैकं द्विः सम्बध्यते । विशिष्टं
 मलिनं वा विशिष्टं वीजं वा यस्य स छिन्नसंज्ञक इति । वीजं
 शक्तिवीजं स्वराक्रान्तं दीर्घस्वराक्रान्तम् आ ई ऊ ऐ ओ एतत्
 स्वरयुक्तम् इति सम्प्रदायविदः । वीजशब्देन मायावीजं कथ-
 मिति चेदुक्तं शैवे ॥ मायावीजस्य नामानि मानिनी शिववल्गवी ।
 वातावर्त्तिः कला वाणी वीजं शक्तिश्च कुण्डलीति ॥ आदिमध्या-
 वसानेषु भूवीजद्वन्द्वलाञ्छितम् । रुद्रमन्त्रः स विज्ञेयो भुक्ति-
 मुक्तिविवर्जितः । भूवीजं लः । द्वन्द्वेति प्रत्येकं सम्बध्यते ।
 पिङ्गलामते । आदौ द्विधा द्विधा मध्ये पुनश्चान्ते द्विधा भवेत् ।
 इन्द्रवीजमसौ मन्त्रो रुद्र इत्यभिधीयते ॥ मायात्रितत्त्वश्रीवीज-
 वारहीनस्तु यो मनुः । शक्तिहीनः स कथितो यस्य मध्ये न
 विद्यते । माया भुवनेशीवीजम् । त्रितत्त्वं ह्रुद्धारः प्रणवो वा ।
 वारः फुद्धारः । श्रीवीजं लक्ष्मीवीजम् । एषां न समुच्चयः ।
 तदुक्तम् । मायावीजं न यत्रास्ति त्रितत्त्वं वारमेव वा । श्रीगृहं
 वापि मन्त्रोऽसौ शक्तिहीनः प्रकीर्तितः । पिङ्गलामतेऽपि ।
 मायावीजं त्रितत्त्वं वा श्रीगृहं यत्र नास्ति चेत् । शक्तिहीन
 इति ख्यातः सामर्थ्यं हन्ति मन्त्रिण इति ॥ कामवीजं मुखे
 माया शिरस्यङ्गुशमेव वा । असौ पराङ्मुखः प्रोक्तो हकारो विन्दु-
 लाञ्छितः । यस्य मध्ये इति पूर्वपदचरणेनान्वयः । मुखे
 आदौ । शिरसि अन्ते । अङ्गुशं क्रोद्धारः । वाशब्दः समुच्चये ।
 यदुक्तं पिङ्गलामते ॥ कामवीजं नयन्मध्ये मायादावन्तिमो-
 ऽङ्गुशः । पराङ्मुख इति प्रोक्तो मनुः सिद्धे पराङ्मुख इति ॥
 मन्त्रमुक्तावल्यामपि । यस्य कामकलावीजं मध्यस्थाने न वि-
 द्यते । आदौ मायाङ्गुशान्ते ज्ञेयश्चासौ पराङ्मुख इति ॥ आ-

द्यन्तेमध्येविन्दुर्वा न भवेद्वधिरः स्मृतः । हकारो विन्दुलाञ्छित
इति पूर्वश्लोकचरणेनान्वयः । विन्दुलाञ्छित इन्दुरित्यनेनापि
सम्बध्यते । आद्यन्तमध्येष्विति न समुच्चयः । यदुक्तम् । शून्यं
विन्दुसमायुक्तमाद्यन्ते वाथ मध्यतः । न भवेज्जीववीजं वा
यस्यासौ वधिरः स्मृत इति । केचिद्विन्दुशब्देन ठकाराख्यमाच-
क्षते । जीववीजित्यनेन एतदपि परास्तम् ॥ पञ्चवर्णी मनुष्यः
स्याद्रेफार्केन्दुविवर्जितः । नेत्रहीनः स विज्ञेयो दुःखशोकामय-
प्रदः । अर्को हकारः ॥ वैष्णवकृतत्वन्यासे ॥ अर्कमण्डलतत्त्वस्य
हकारादित्वेन न्यस्तत्वात् हकारस्य पुरुषत्वाद्वा अर्कत्वम् । इन्दुः
सकारः । दुःखशोकामयप्रद इति क्रमेण फलम् । यतोऽग्नि-
सूर्यचन्द्राणां नेत्रत्रयात्मकत्वादेकहिहीनतः कारणतापि ज्ञेया ।
तदुक्तं पिङ्गलामते ॥ पञ्चाक्षरस्तु यो मन्त्रो वज्रिचन्द्रार्कवर्जितः ।
नेत्रहीन इति ज्ञेयो दुःखशोकभयावह इति ॥ आदिमध्याव-
सानेषु हंसप्रासादवाग्भवौ । विद्येते स तु मन्त्रः स्यात् स्तम्भितः
सिद्धिरोधकः । हंसस्वरूपं प्रासादो हौवीजम् । वाग्भव ऐ-
वीजम् ॥ वज्रिवायुसमायुक्तो यस्य मन्त्रस्य मूर्धनि । सप्तधा
दृश्यते तन्तु दग्धं मन्येत मन्त्रवित् । वज्रीरेफः वायुर्यकारस्तेन
समवेतः अत ऊर्ध्वं वा मूर्धनि आदौ । तदुक्तं पिङ्गलामते । आ-
दिस्थैः सप्तभिर्वीजैर्मातैः पावकाक्षरम् । दीपितं यत्र तं मन्त्र-
मार्था दग्धं प्रचक्षते ॥ अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टाभिर्ह-
श्यतेऽक्षरैः । सस्तः सोऽभिहितो यस्य मुखेन प्रणवः स्मृतः ।
द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टाभिर्वा अक्षरैर्वा यस्य अस्त्रं फट्कारो
दृश्यते । पिङ्गलामते भीतनाम्ना अयमुक्तः । आदिमध्यावसानेषु
यदि मन्त्रोऽसंयुतः । भीत इत्युच्यते मन्त्रः फलहीनो विशा-
रदैः ॥ शिवो वा शक्तिरथ वा भीताख्यः स प्रकीर्तितः । यस्य
मुखेनेत्यादिगतश्लोकचरणेनान्वयः । यस्य मुखे आदौ शिवो

हङ्कारः शक्तिः सकारो नास्ति । अयन्तु मन्वान्तरेणीकृतः । पिङ्ग-
 लामते ॥ शिवशक्तिस्तथोङ्कारो यस्यादौ नास्ति तं मनुम् ।
 वदन्ति मातृकाहोत्रं होत्रशक्तिप्रदायकम् ॥ आदिमध्यावसानेषु
 भवेन्मार्णचतुष्टयम् । यस्य मन्त्रः स मलिनो मन्त्रवित्तु विव-
 र्जयेत् ॥ आदौत्यादेः समुच्चयः । मार्णचतुष्टयमित्यत्रापि समु-
 च्चयः । तेन स्थानत्रये मिलित्वा मार्णचतुष्टयमपेक्षितम् । तदुक्तं
 पिङ्गलामते ॥ आदिमध्यान्तदेशेषु चतुर्धा यत्र दृश्यते । मकारो
 मलिनं विद्यात्तं मन्त्रं मन्त्रवित् सदा ॥ यस्य मध्ये दकारो वा
 क्रोधो वा मूर्धनि द्विधा । अस्त्रं तिष्ठति मन्त्रः स तिरस्कृत
 उदाहृतः । क्रोधो ह्रवौजम् । मध्ये दकारक्रोधयोर्विकल्प इति ।
 मूर्धनि अन्ते । अस्त्रं द्विधास्त्रमिति सम्बन्धः । तदुक्तम् । दकारः
 क्रोधवौजं वा यस्य मध्ये व्यवस्थितम् । फड् हयञ्च स्थिते प्राप्ते
 यन्मनोः स तिरस्कृत इति ॥ ॐ हयं सुखे शीर्षे वषट्स्त्रञ्च म-
 ध्यतः । यस्यासौ भेदितो मन्त्रस्याज्यः सिद्धिषु सूरभिः । शीर्षे
 अन्ते । वषट् अस्त्रं फट् ॥ मन्त्रमुक्तावल्याम् । अस्त्रवर्णद्वयं मध्ये
 वषट्स्त्रे तथैव च । यस्य मन्त्रस्य भिन्नोऽसौ विज्ञेयः सिद्धि-
 वर्जित इति ॥ पिङ्गलामतेऽपि ॥ अस्त्रवर्णद्वयं मध्ये वषट्स्त्रे
 तथोदिताः । अधमाः स्युरसौ मन्त्रो भेदितः परिकीर्तितः ॥
 त्रिवर्णो हंसहीनो यः सुषुप्तः स उदाहृतः । त्रिवर्ण इति त्रिव-
 र्णत्वं हंसहीनत्वमेकस्यैवोक्तम् ॥ पिङ्गलामते ॥ वर्णत्रयं भवेद्
 यत्र हंसहीनं स शम्भुना । सुषुप्त इति सिद्धान्तः प्रोक्तः सिद्धि-
 फलापह इति ॥ मन्त्रमुक्तावल्यामपि ॥ वर्णत्रयात्मको मन्त्रो
 यस्तु हंसविवर्जितः । प्रसुप्तः स तु विज्ञेयः सर्वसिद्धिफलापहः ।
 शारदायाम् ॥ मन्त्रो वाप्यथ वा विद्या सप्ताधिकदशाक्षरः ।
 फट्कारपञ्चकादिर्यो मदोन्मत्त उदीरितः । सप्ताधिकानि अष्टौ
 दश चाक्षराणि यत्र सः ॥ फट्काराणां पञ्चकमादौ यस्य सः ।

तदुक्तं राघवभट्टतेन । विद्या वा यदि वा मन्त्रो यद्यष्टादश-
वर्णकः । पञ्चफट्कारपूर्वः स्यान्मदोन्मत्तः स उच्यते । पिङ्गला-
मतेऽपि ॥ विद्या वा मन्त्रराजो वा यः स्यात् सप्तदशाधिकः ।
फट्काराः पञ्च पूर्वञ्चेदुन्मत्तः स प्रकीर्तितः ॥ शारदायाम् ॥ तद्व-
दस्त्रं स्थितं मध्ये यस्य मन्त्रः स मूर्च्छितः । यस्य मन्त्रस्य मध्ये
तदस्त्रं स्थितं पञ्च वा फट्कारवीजानि स्थितानि स मूर्च्छित
इत्यर्थः ॥ विरामस्थानगं यस्य हृतवीर्यं स उच्यते । विराम-
स्थानगमन्त्रे अस्त्रं दृश्येत्यर्थः । पिङ्गलामते तु ॥ अस्त्रमन्त्रे
भवेद्यस्य मध्ये प्राग् च शम्भुना । हृतवीर्यं इति ख्यातः स
मन्त्रो नैव लिखिद इति ॥ शारदायाम् ॥ आदौ मध्ये तथा
चान्ते चतुरस्रयुतो मनुः । ज्ञातव्यो हीन इत्येष यः स्यादष्टा-
दशाक्षरः । आदाविति समुच्चयः । स्थानत्रये मिलित्वा अस्त्रचतुष्ट-
यम् । तन्त्रान्तरे तु भीतनाम्ना अयमुक्तः । यथा । आदावन्ते
तथा मध्ये चतुरस्रेण संयुतम् । अष्टादशाक्षरं मन्त्रं भीतं तं
भैरवोऽब्रवीत् । अन्यत्र भीमनाम्ना अयमुक्तः । यथा । आदौ
मध्ये तथा चान्ते चतुरस्रयुतो मनुः । ज्ञातव्यो भीम इत्येष यः
स्यादष्टादशाक्षरः ॥ शारदायाम् ॥ एकोनविंशत्यर्णो वा यो मन्त्र-
स्त्वारसंयुतः । ह्रस्वेखाङ्गुशवीजाव्यस्तं प्रध्वस्तं प्रवक्षते । तारः
प्रणवः । ह्रस्वेखा ङीमिति । अङ्गुशः ऋमिति । एकोनविंशति-
वर्णोऽष्टादशाक्षरो वा ॥ तथा च राघवभट्टतवचनम् । स स्याद-
ष्टादशाक्षरः । विंशत्येकोनवर्णश्च मायौङ्गाराङ्गुशान्वितः । प्र-
ध्वस्त इत्यसौ मन्त्रः शम्भुदेवेन कीर्तित इति ॥ सप्तवर्णो ध्रुव-
युतो मनुर्निखिंश ईरितः । ध्रुवः प्रणवः । अन्यत् सुगमम् ॥ सप्त-
वर्णो मनुर्बालः कुमारोऽष्टाक्षरः स्मृतः । षोडशार्णो युवा प्रौढ-
श्चत्वारिंशत्त्रिपिर्मनुः ॥ लिपिरक्षरम् ॥ राघवभट्टतसपि ॥ सप्ता-
क्षरो भवेद्बालः कुमारश्चाष्टवर्णकः । चत्वारिंशाक्षरः प्रौढस्तरणः

षोडशाक्षर इति ॥ त्रिंशद्वर्णश्चतुःषष्टिवर्णो मन्त्रः शताक्षरः । चतुः-
 शताक्षरश्चापि वृद्ध इत्यभिधीयते ॥ नवाक्षरो ध्रुवयुतो मनु-
 निस्त्रिंश ईरितः ॥ नवाक्षरत्वं ध्रुवयुक्तत्वञ्चैकस्यैव ॥ पिङ्गलामते ॥
 नवाक्षरस्तु निस्त्रिंशो ध्रुवयुक्तश्च सृष्ट्युद इति ॥ शारदायाम् ॥
 यस्यावसाने हृदयं शिरोमन्त्रो च मध्यतः । शिखा वर्म च न
 स्यातां वीषट् फट्कार एव वा । शिवशक्त्यार्यहीनो वा स नि-
 र्वीर्य्य इति स्मृतः ॥ हृदयं नमः । शिरः स्वाहा । शिखा वषट् ।
 वर्म ह्रम् । शिवो हकारः । शक्तिः सकारः । राघवभट्टदृष्टम् ॥
 अन्ते तु ह्रस्विरोवोजो मध्ये वर्म शिखा तथा । शिवशक्त्या-
 त्मको वर्णो न स्यो यस्य स मन्त्रराट् । निर्वीर्य्य इति सम्प्रोक्तः
 सर्वकर्मसु गडितः ॥ तन्त्रान्तरे तु ॥ निर्वीर्य्यस्तु समाख्यात आदा-
 वोङ्कारवर्जित इति ॥ एषु स्थानेषु फट्कारः षोढा यस्मिन्
 प्रदृश्यते । स मन्त्रः सिद्धिहीनः स्यान्नन्दः पन्त्यक्षरो मनुः । आदि-
 मध्यावसानेषु एषां समुच्चयः । षोढेति स्थानद्वये भिलित्वेत्यर्थः ।
 मन्द इति पन्त्यक्षरो दशाक्षरः । पन्तिच्छन्दसो दशाक्षरत्वात्
 उक्तदशाक्षरो भवेन्नन्द इति ॥ कूट एकाक्षरो मन्त्रः स एवोक्तो
 निरंशकः ॥ द्विवर्णः सत्त्वहीनः स्यात् चतुर्वर्णस्तु केकारः ॥
 षड्क्षरो बीजहीनस्त्वर्द्धसप्ताक्षरो मनुः । अर्द्धसप्ताक्षरत्वम्
 अर्द्धद्वादशवर्णत्वञ्च वक्ष्यमाणम् । अन्ते स्वरस्य न सत्त्वाज्ज्ञेयम् ॥
 सार्द्धद्वादशवर्णो वा धूमितः स तु निन्दितः । सार्द्धबीजत्रयं तद्द-
 देकविंशतिवर्णकः । सार्द्धबीजत्रयमपि पूर्ववत् तद्वद्वूमित इत्यर्थः ।
 तदुक्तं पिङ्गलामते ॥ अर्द्धसप्ताक्षरो मन्त्रः सार्द्धद्वादशवर्णकः ।
 धूमितः स समाख्यातः सार्द्धवर्णत्रयोऽथ वेति ॥ विंशत्यर्ण-
 स्त्रिंशद्वर्णो वा यः स्यादालिङ्गितस्तु सः ॥ द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो
 मोहितः परिकीर्तितः ॥ द्वात्रिंशद्वर्णो मन्त्रो यः सप्तविंश-
 तिवर्णकः । क्षुधार्तः स तु विज्ञेयश्चतुर्विंशतिवर्णकः ॥ एका-

दशाक्षरो वापि पञ्चविंशतिसंख्यकाः । त्रयोविंशतिवर्णो वा
मन्त्रो दृप्त उदाहृतः ॥ उद्देशावसरे अतिदृप्तस्योक्तत्वात् लक्ष-
णावसरे दृप्तलक्षणं कथं क्रियते इति नोद्देश्यं सत्यपि उत्तमं
भेदात् ॥ तदुक्तं राघवभट्टदृतमन्त्रमुक्तावल्याम् ॥ धात्वर्थे
बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्तते । तमेव विशिनध्यन्योऽनर्थको-
ऽन्यः प्रयुज्यते ॥ षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रः षड्विंशत्यक्षरस्तथा ।
त्रिंशदेकोनवर्णो वाप्यङ्गहीनोऽभिधीयते ॥ अष्टाविंशत्यक्षरो य
एकत्रिंशदद्यापि वा । अतिक्रुद्धः स कथितो निन्दितः सर्व-
कर्मसु ॥ त्रिंशदक्षरको मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशदद्यापि वा । अतिक्रूरः
स गदितो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥ चत्वारिंशतमारभ्य त्रिषष्टि-
र्याविदापतेत् । तावत्संख्या निगदिता मन्त्राः समीपसंज्ञकाः ।
चत्वारिंशदक्षरमारभ्य एकैकाक्षरवृद्ध्या चतुर्विंशतिप्रकारः स
ब्रीडित इत्यर्थः ॥ पञ्चषष्ठ्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः ॥
एकोनशतपर्यन्ताः पञ्चषष्ठ्यक्षरोदिताः । ये मन्त्रास्ते निग-
दिताः स्थानभ्रष्टाह्वया बुधैः ॥ पञ्चषष्ठ्यक्षरमादिर्यस्य इति अत-
द्गुणसंविज्ञानो बहुब्रीहिरयम् । अन्यथा पञ्चषष्ठ्यक्षरस्य पूर्व
शान्तमानसत्वेनोक्तत्वात्तस्यापीयं संज्ञा स्यात् ॥ स्यष्टमुक्तं मन्त्र-
मुक्तावल्यां यथा ॥ पञ्चषष्ठ्युत्तरा ये च यावदेकोनकं शतमिति ।
तेन एकैकाक्षरवृद्ध्या चतुस्त्रिंशत्प्रकाराः स्थानभ्रष्टसंज्ञका इति ॥
त्रयोदशाक्षरा ये स्युर्मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः । विकलास्तेऽभिधी-
यन्ते शतं साडंशतन्तु वा । शतद्वयं दिनवतिरेकहीनाथवापि
वा । शतत्रयं वा यत्संख्या निःस्नेहास्ते समीरिताः । एकहीना
दिनवतिरेकाधिका नवतिरित्यर्थः ॥ चतुःशतान्यथारभ्य यावद्वर्ण-
सहस्रकम् । अतिवृद्धः प्रयोगेषु परित्याज्यः सदा बुद्धैः ॥ सहस्रा-
र्णाधिका मन्त्रा दण्डकाः पीडिताह्वयाः ॥ द्विसहस्राक्षरा मन्त्राः
खण्डशः सप्तधा कृताः । ज्ञातव्याः स्तोत्ररूपास्ते मन्त्रा एते यथा

स्थिताः । तथा विद्याश्च बोद्धव्या मन्त्रिभिः सर्वकर्मसु । तथा
सदोषा इत्यर्थः ॥ राघवभट्टवृत्तम् ॥ यथा मन्त्रास्तथा विद्या
भेदभिन्नाः परस्परम् । ज्ञातव्या देशिकेन्द्रेण नानातन्त्रेषु भाषिता
इति । भेदभिन्ना इति लक्षणभेदेन भिन्ना नतु परमार्थतः । केचित्तु
सर्वकर्मस्वित्वात् काम्यकर्मस्विति पठन्तो मुक्त्यर्थजपे एतदोषा-
भावात् दशसंस्कारादि न कर्तव्यमित्याहुः । तन्न । मुक्त्यर्थजपे-
ऽपि वक्ष्यमाणशोधनादिकं कर्तव्यमेवेति राघवभट्टोक्तवदिति ॥
शारदातिलके द्वितीयपटले ॥ दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्रान्
भजते बुधः । सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि । इत्यादि-
दोषदुष्टांस्तान्मन्त्रानात्मनि योजयन् । शोधयेद्बुद्धं पवनो बद्धया
योनिमुद्रया । बद्धया योनिमुद्रया ऊर्ध्वपवनः क्षतकुम्भकः
साधक आत्मनि मन्त्रान् योजयन् शोधयेदित्यन्वयः ॥ शोधन-
प्रकारस्तु राघवभट्टवृत्तेनोक्तो यथा ॥ बद्धा तु योनिमुद्रां तां
सङ्कोचाधारपङ्कजम् । तदुत्पन्नान् मन्त्रवर्णान् कुर्वतश्च गता-
गतान् । ब्रह्मरन्ध्रावधि ध्यात्वा वायुनापूर्य कुञ्चयेत् । सहस्रं
प्रजपेन्नन्त्रं मन्त्रदोषोपशान्तये । योनिस्थानमुद्रयाद् योनि-
मुद्रा । महामुद्रया मूलबन्धं संशोधयेत् ॥ महामुद्रा तु
राघवभट्टवृत्ता यथा ॥ पादमूलेन वामेन योनिं सम्पीड्य
दक्षिणम् । पादं प्रसारितं कृत्वा कराभ्यां पूरयेन्मुखम् । कण्ठे
वक्त्रं समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः । मूलरन्ध्रस्तु । पार्श्व-
भागेन सम्पीड्य योनिमाकुञ्चयेद् गुदम् । अपानमूर्ध्वमाकुञ्च्य
मूलबन्धो निगद्यते ॥ अथ योनिमुद्रा कुञ्जिकातन्त्रे षष्ठ-
पटले ॥ अथ वक्ष्ये महेशानि ! शारदेन्दुनिभानने । । अतीव
परमं देवि । न प्रकाश्यं कदाचन । न प्रकाश्यमिदं देवि !
स्वयोनिरिव पार्वति । । निशीथे मुक्तकेशस्तु नग्नः शक्तिसम-
न्वितः । चिन्तयेदिष्टदेवीञ्च योगिनां योगरूपिणीम् । गुह्य-

देशे वामपादगुल्फं संयोजयेत् सुधीः । शरीरञ्च स्थिरीकृत्य
जिह्वायां तालुकं न्यसेत् । नासाग्रं नेत्रयुक्तञ्च कर्तव्यञ्च महेश्वरि ! ।
कण्ठासनं तथा कृत्वा चिन्तयेद्दूर्ध्वाहिनीम् । भुजङ्गरूपिणीं देवीं मूलाधारनिवासिनीम् । प्रातराधारकमले
हुतभुञ्जण्डलोपरि । चतुर्भुजां महादेवीं परमास्तवंहिताम् । श्यामवर्णां महादेवीं महापद्मासनस्थिताम् । अभयञ्च
वरञ्चैव दक्षिणे धारिणीं सदा । खड्गं मुण्डञ्च वामेऽस्मिन् धारयन्तीं सनातनीम् । मुक्तकेशीं स्मितमुखीं श्मशानालय-
वासिनीम् । दन्तुरां दक्षिणव्याप्ति मुक्तकेशीं दिगम्बरीम् । शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चो हसन्मुखीम् ॥ लम्बमानां मुण्ड-
मालां धारयन्तीं सदाशिवाम् । शवस्य हृदये चैव दक्षपाद-
निषेविताम् । महाकालेन रत्यर्थमत्यन्तलालसापराम् । चन्द्र-
सूर्यवह्निरूपनयनत्रयसंयुताम् । अर्द्धचन्द्रधरां देवीं पीनोन्नत-
पयोधराम् । शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् । चतु-
र्वेदैरपाराञ्च सर्ववेदविभूषिताम् । कामदां कामरूपाञ्च भक्तानां
त्राणकारिणीम् । चतुर्वर्गप्रदां भीमां वन्दे दक्षिणकालिकाम् । स्वाधिष्ठाने महादेवीं चिन्तयेदिन्दुरूपिणीम् । तत्र देवीञ्च
सञ्चिन्त्य निर्मलं विश्वरूपिणम् । अभयं वादञ्चैव हस्तञ्च सुर-
सुन्दरि ! । धनुर्वाणधरां देवीं पाशाङ्कुशधरां पुनः । वालिलिङ्ग-
समायुक्तां नीलमेघाननप्रभाम् । ललज्जिह्वां महादेवीं विष्णुरूपां
सनातनीम् । बालयुग्मलसत्कर्णां दुष्टासुरनिसृदिनीम् ॥ व्याघ्र-
चर्मपरीधानां ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनीम् । अतिप्रसन्नवदनां स्फो-
ननसरोरुहाम् । मणिपूरे चिन्तयेत्तु तेजःपुञ्जां सनातनीम् । दिगम्बरीं करालास्यां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् । रक्तवर्णां महा-
देवीं रक्तवस्त्रविधारिणीम् । पद्मासनां महादेवीं सर्वनागविभू-
षिताम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणीं सुरपूजिताम् । धर्मायै

दायिनीं देवीं भक्तानां चाणकारिणीम् । सर्वसिद्धिप्रदां देवीं
 जगतां मोहिनीं पुनः । महामायां मोहिनीञ्च ज्ञानिनां ज्ञानदां
 सतीम् । सुन्दरीं रमणीं रामां चतुर्वर्गफलप्रदाम् । शान्तां
 शान्तप्रियामुग्रामुग्रदैत्यविनाशिनीम् । मधुमांसप्रियां कृष्णां
 यशोदानन्दकारिणीम् । भक्तिगम्यां महादेवीं महाकालनिवा-
 सिनीम् । सर्वेषां जननीं नित्यां चिन्तयेत् सुरपूजिताम् ।
 अनाहते महादेवि ! चिन्तयेत् परदेवताम् । अष्टभुजां महा-
 देवीं रक्तवर्णां त्रिशक्तिकाम् । धनुर्वाणञ्च खड्गञ्च चक्रञ्च दधतीं
 शिवे ! । पाशाङ्कुशधरां देवीं ब्रह्मादिसुरवन्दिताम् । अर्द्ध-
 चन्द्रधरां देवीं पीनोन्नतपयोधराम् । पद्मासनां महामायां
 महापद्मासनस्थिताम् । एवं सच्चिन्तयेद् देवीं ब्रह्ममार्गेण
 गामिनीम् । विशुद्धे तु महाचक्रे चिन्तयेत् परमेश्वरीम् । दश-
 भुजां महादेवीं पीतवर्णां सनातनीम् । कपालं खेटकं शङ्खं
 दर्पणं चामरं तथा । दक्षिणे बिम्बतीं देवीं कामराजोपरि
 स्थिताम् । वामे खड्गं महापद्मं कर्तृकं पाशमङ्गुशम् । धार-
 यन्तीं महादेवीं महासिंहासनस्थिताम् । दिव्यवस्त्रपरीधानां
 जटामुकुटमण्डिताम् । ब्रह्मविष्णुमहादेववन्दितां सुरसुन्द-
 रीम् । आज्ञाचक्रे महेशानि ! द्विभुजां चिन्तयेत् सुधीः । सिंह-
 स्कन्धसमारूढां द्विभुजां सुमनोहराम् । वरामयं दधानाञ्च
 नानामणिविभूषिताम् ॥ जटामुकुटसंयुक्तामर्द्धचन्द्रविभूषिताम् ।
 रत्नकाञ्चीसमायुक्तां रत्नमालाविभूषिताम् । रक्तवस्त्रपरीधानां
 कमलापतिसेविताम् । संसारदुःखशमनीं संसारार्णवतारिणीम् ।
 सुषुम्नावर्त्मना देवीं चिन्तयेद्द्वालरूपिणीम् । षट्चक्रमेदयोगिन
 चिन्तयेत् परमेश्वरीम् । सहस्रारदले चैव चिन्तयेत् परम-
 ेश्वरीम् । कामं भ्रमन्तं तन्मध्ये पञ्चवाणविभूषितम् । गङ्गादि-
 सर्वतीर्थञ्च अमृतं प्रतिचक्रके । वसन्तादि महादेवि ! सर्वर्तु-

परिशोभितम् । श्वेतवर्णं महादेवि ! सहस्रदलमुत्तमम् । सर्व-
 देवसमायुक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम् । सर्वमन्त्रमयं देवि ! चतु-
 र्वेदविभूषितम् । एकादशमहादेवां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
 कर्णिकां स्वर्णवर्णाञ्च तत्र देवं विचिन्तयेत् । चिन्मयं परशिवं
 देवि ! ध्यानगम्यं सनातनम् । सारात्कारतरं परादपि परं
 चेतोवचोऽगोचरम् नित्यानन्दनिरन्तरं निरुपमं वेदैरपारं
 परम् । शिवशक्तिमयं देवि ! निर्गुणं सगुणात्मकम् । प्रदीप-
 कलिकाकारं योगिनां ध्यानरूपिणम् । चैतन्यरूपिणं देवं पर-
 मामृतवंहितम् । तन्मध्ये चिन्तयेद्देवीं त्रिगुणाञ्च सनातनीम् ।
 घोरदंष्ट्रां करालास्यां ललज्जिह्वां चतुर्भुजाम् । सदाशुक्लशिरः-
 खड्गवामोर्ध्वाधःकरास्त्रुजाम् । अभयं वरदञ्चैव दक्षिणाधोर्ध्व-
 पाणिकाम् । नीलमेघप्रभां तन्वीं घोररूपां दिगम्बराम् । कण्ठा-
 वसक्तमुखालीगलद्रुधिरचर्चिताम् । कर्णावतंसतां नीतशवयुग्म-
 भयानकाम् । बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् । सूक्ल-
 हयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ॥ मुक्तकेशीं स्मितमुखीं श्मश-
 नालयवासिनोम् । शवानां करसङ्घातैः छतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।
 शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् । महाकालेन रत्यर्थमुप-
 विष्टां स्मरातुराम् । शिवाभिर्वीररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्वि-
 ताम् । अतिप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् । अनाहतस्तु तत्रैव
 तडित्कोटिसमप्रभाम् । तस्योर्ध्वं तु शिखा तन्वि ! चिद्रूपा
 परमा कला । तया सहितमालानमेवभूतं विचिन्तयेत् ।
 गच्छन्तीं ब्रह्मसार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण तु ॥ सूर्यकोटिप्रभाकारं
 चन्द्रकोटिसुशीतलम् । अमृतं तद्धि संज्ञस्थं परज्ञानन्द-
 लक्षणम् ॥ गत्वा कुलाकुलां दिव्यां पुनरेव कुलं विशेत् ।
 एवमभ्यस्यमानस्य अत्यन्तस्येह निश्चयात् । जरामरणदुःखाद्यै-
 र्मुच्यते भवबन्धनात् ॥ चतुर्विधा तु सा सृष्टिस्तस्यां योनौ प्रव-

र्जते । योनिमुद्रेयमाख्याता सर्वसिद्धिप्रदायिका । मूलाधार-
 सरोजे तु त्रिकोणं सुमनोहरम् । कामं भ्रमन्तं तन्मध्ये बाला-
 र्ककोटिसन्निभम् । तदूर्ध्वं कुण्डलीं शक्तिं तडित्कोटिसम-
 ग्रभाम् । सुषुप्तभुजगाकारां सार्द्धत्रिवलयान्विताम् ॥ मूलाधार-
 त्रिकोणे तां भावयेत् सुरसुन्दरीम् । अरोप्यारोप्यशक्तिं कमल-
 जनिलयामात्मना साकमेषु स्थानेष्वज्ञानेषु प्रणिहितहृदयां
 चिन्तयन्तीं क्रमेण । नित्यानन्दावसानं खगमुकुलमहापद्मसङ्घा-
 न्तरस्थां ध्यायेच्चैतन्यरूपामभिनवजलदां मोक्षमार्गैकमार्गाम् ॥
 साक्षात्साक्षारसाभां गगनमतमहापद्मसंस्थाञ्च हंसात् पीत्वा
 दिव्यामृततीघ्रं पुनरपि च विशेषमध्यदेशं कुलस्य । चक्रे चक्रे
 क्रमेणामृतसरविसरैस्तर्पयेद्देवतास्ताः डाकिन्याद्याः समस्ताः
 सकलदलगतां तर्पयेत् कुण्डलीं ताम् । इन्द्रस्तदूर्ध्वबोधिन्यां
 नादेनादस्तथैव च । शक्तौ पुनर्यापिकांशमामृतं मनुगोचरे ॥
 मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रीतानि परिभाषयेत् । तामेव परमो
 व्योम्नि परमासुतवृंहिते । दर्शयेदात्मसम्भावं पूजाहोमादिकं
 विना । एवं सच्चिन्त्येकमन्त्रं स योगी नात्र संशयः ॥ सर्वपाप-
 विनिर्मुक्त इष्टदेवीं प्रपश्यति । षण्मासे सर्वसिद्धिः स्यादात्मा-
 नञ्च प्रपश्यति ॥ अष्टादशमहासिद्धिर्वत्सरान्ते भविष्यति ।
 एवं सच्चिन्त्येद्देवीं परमात्मस्वरूपिणीम् ॥ स एव शङ्करः साक्षात्
 स एव विष्णुरव्ययः । स एव परमं ब्रह्म स एव देवतोत्तमः ॥
 इति ते कथिता देवि ! योनिमुद्रा महेश्वरि ! । वत्सरेण लभेत्
 सिद्धिं पूर्णकामः लभेत् पुनः । श्रीपार्वत्युवाच ॥ अशक्ता योनि-
 मुद्रायां हीनबुद्धिनराः कलौ । विहितं साधने शक्तौ कथं यान्ति
 परां गतिम् ॥ सदाशिव उवाच ॥ साधु पृष्टं महादेवि ! जन्तूनां
 हितकारिणि ! । योनिमुद्रां महेशानि ! यदि कर्तुं न शक्यते ।
 मयया वा श्रिया वापि कामेन प्रणवेन वा ॥ सम्पुटं मूल-

मन्त्रन्तु जपेदष्टसहस्रकम् । तेनैव च सुसिद्धं स्यान्मन्त्रसाधनमा-
चरेत् । शृणु चान्यत् प्रवक्ष्यामि साधनं परमाद्भुतम् । येना-
नुष्ठितमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते । पञ्च ऋक्षाः सन्धिवर्णा व्योमे-
राग्निर्जलं धरा । अन्यमाद्यं द्वितीयञ्च चतुर्थं मध्यमं क्रमात् ॥
पञ्चवर्णाक्षराणि स्युर्वान्तः श्वेतेन्दुभिः सह । एषां भूतलिपिः
प्रोक्ता द्विचत्वारिंशदक्षरैः । आयम्बराण्यवर्गाणां पञ्चमाः शान्तसं-
युताः । वर्गाद्या इति विज्ञेया नववर्गाः स्मृता अमो । एतद्वचनं
शारदायां षष्ठपटलेऽपि ॥ अस्यार्थः ॥ पञ्चऋक्षाः अ इ उ ऋ लृ
इति प्रथमवर्गः । सन्धिवर्णा ए ऐ ओ औ इति द्वितीयो वर्गः ।
व्योम हकारः । इरो यकारः । अम्बोरिफः । जलं वकारः ।
धरा लकार इति तृतीयो वर्गः । पञ्चवर्गाक्षराणां क्रममाह
अन्यमिति । अन्यं ङः । आद्यं कः । द्वितीयं खः । चतुर्थं घः ।
मध्यमं गः । अयं क्रमश्चतुर्वन्त्येष्वपि वर्गेषु एवमष्टवर्गः । रान्तः
शकारः । श्वेतं यकारः । इन्दुः सकारः । अयं नवमवर्गः । नवमव-
र्गाद्यक्षराण्याह आयम्बराण्य इति । अम्बराणीं हकारः । अथ एष
अम्बराण्येति इन्द्वे अ ए इत्यत्र सन्धौ ऐ अम्बरे परे आयादेशे
आअम्बर इति वर्गाणां पञ्चमा ङ ज ण न म इति वर्णाः । शान्त-
संयुताः शकारान्तास्तेन अ ए इ ङ ज ण न म श इत्यक्ष-
राणि इति नवमो वर्गः । वर्गवर्णानां पञ्चभूतात्मकं दर्शयति
शारदा ॥ व्योमेराग्निजलक्षीणी वर्गवर्णान् पृथग्विधः । द्वितीय-
वर्गे भूर्न स्यान्नवमे न जलं धरा । द्वितीयवर्गस्य चतुरक्षरत्वा-
दन्त्यभूतात्मकमक्षरं नास्ति एवमन्त्यवर्गस्य त्रिवर्णात्मकत्वादु-
भयं नास्तीत्यर्थः । विरिञ्चिविश्वरुद्राश्विप्रजापतिदिगीश्वराः ।
क्रियादिशक्तिसहिताः क्रमात् स्युर्वर्गदेवताः । दिगीश्वरा इन्द्र-
यमवरुणचन्द्राः । सर्वे किम्भूताः क्रियाज्ञानेच्छाशक्तिसहिता
इत्यन्वयः । त्रिधावृत्तक्रियाज्ञानेच्छाशक्तिभिरुपेताः । केचित्सु

दिगोश्वरा इत्येकक्रियाशक्त्यादयस्त्रिस इति नव देवता वदन्ति ।
 ऋषिः स्यादक्षिणामूर्त्तिर्गायत्रं छन्द ईरितम् । देवता कथिता
 मङ्गिः साक्षाद्दर्शनी परा । हादिषड्वर्गकैः कुर्यात् षडङ्गानि
 मजातिभिः । ध्यायेत्लिपितरोमूले देवीं तन्मयपङ्कजे । वदन्ति
 सुधियो वृत्तं नित्यवर्णमयं परम् । परसंविन्महाबीजं विन्दु-
 नादमहाशिफम् । पृथिव्यक्षरशास्त्राभिः सर्वाशासु विजृम्भितम् ।
 मलिलाक्षरपत्रैः स्वैः सञ्छादितजगत्त्रयम् । वङ्गिवर्णाङ्कुरैर्दीप्तं
 रत्नैरिव सुरद्रुमम् । मरुद्वर्णलसत्पद्मैर्द्योतयन्तं वपुःश्रियम् ।
 अकाशार्णफलैर्नम्रं सर्वभूताश्रयं परम् । परास्मृताक्षप्रभुभिः
 सिञ्चन्तीं परमेश्वरौम् । वेदागमादिभिः क्लृप्तं समुन्नतिमनो-
 हरम् । शिवशक्तिमयं साक्षाच्छायाश्रितजगत्त्रयम् । एनमा-
 श्रित्य मुनयः सर्वान् कामानवाप्नुयुः ॥ अस्वार्थः ॥ लिपितरो-
 मूले तन्मयपङ्कजे वर्णमयपद्मे देवीं ध्यायेदित्यन्वयः । ध्यानं
 पश्चाद्व्यस्यति । लिपितरुमाह वदन्तीति । वर्णमयं वृत्तं पण्डिता
 नित्यं वदन्ति । किम्भूतं परसंवित् कुण्डलिनी परब्रह्म वा बीजम् ।
 एवं विन्दुनादो शिफे मूले यस्य तम् । ननु तद्वृत्तो नित्यश्चेत्तदा
 कथं परसंविन्महाबीजमित्युक्तम् । सत्यं व्यञ्जकत्वेन बीजवदुपच-
 र्यते । शेषं सुगमम् । ध्यानमाह ॥ अङ्गीन्मुक्तशशाङ्गकोटिसदृशी-
 मापीनतुङ्गस्त्रीं चन्द्रार्द्धाङ्गितमस्तकां मधुमदादालोलनेत्रव-
 याम् । विष्णोणामनिशं वरं जपवटीं विद्यां कपालं करैराद्यां यौव-
 नगर्वितां लिपितनुं वागीश्वरौसाश्रये ॥ कुजिकातन्त्रोक्तध्यानं
 यथा । अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं विद्याः करैरविरतं दधतीं
 विनेत्राम् । अर्द्धेन्दुसौलिमरुणामरविन्दमालां वर्णेश्वरीं प्रणमत
 स्तनभारगन्धामिति । तया । पाशाङ्कुशपुटं कृत्वा मायां ततः
 समोरणम् । दहनं धरणीं तीव्रं माहेश्वरं ततः परम् ॥ प्रासा-
 दञ्च समुच्चाये गतिः सर्वसमन्विता । अमुथा भूतलिप्याश्च

प्राणा इह ततो वदेत् । पुनर्मन्त्रान् समुच्चार्य पाशादींश्च ततो
वदेत् । जीव इह स्थित इति पुनस्तांश्च समुच्चरेत् । सर्वेन्द्रिया-
णोल्लेताश्च क्रमात्तानुच्चरेत् सुधीः । वाङ्मनश्चक्षुस्त्वगिति श्रोत्र-
घ्राण प्राणा इहागत्य ततो वदेत् । सुखं चिरं समुच्चार्य तिष्ठन्तु
वह्निवल्गभा । इति प्राणान् प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत्तामिस्रसिद्धये ॥
इत्युक्त्वा ध्यानमुक्तम् । ततो न्यासं कुर्यात् ॥ तदुक्तं शारदायाम् ॥
आधारदेशेऽधिष्ठाने नाभौ हृदि पदे पुनः । विन्दौ नादे ततः
शक्त्यां शिवे देशिकसत्तमः । नवाधारेषु विन्यसेत् स्वरान्नव यथा-
विधि । मूलाधारे स्वाधिष्ठाने नाभौ हृदि पदे भ्रुमध्ये मूर्द्धि
तदुपरिदेशे द्वादशदलपद्मे इति नवसु स्थानेषु नव स्वरान् न्यसे-
दित्यर्थः । द्वादशवर्णास्ततो न्यसेन्मुखे मूर्द्धादितः सुधीः । ऊर्ध्व-
माहेन्द्रयास्य दिक्पश्चिमेषु समाहितः ॥ दोःपत्सु वेदवर्गांश्च
वर्णान् देशिकसत्तमः । वर्णा मूलोपमूलाग्रमध्यदेशक्रमेण तु ।
तवाग्रमङ्गुल्यः । मूलमंशादि । उपमूलं कूर्परजानुनी । उपाग्रं
करपादाङ्गुली प्रथमसन्धिः मणिवन्धगुल्फे । समाहित इत्यनेन
सावधानतया स्थानविपर्ययाः । भावदुष्टेऽप्युक्तः शारदायाम् ॥
गुह्यहृदुभुविले न्यसेच्छादिवर्णत्रयं क्रमात् । सृष्ट्यां सर्गा-
वसाना स्यात् स्थितौ वह्निर्मरुत् प्रियः । वियद्भूमिक्रमाव्यस्ये-
द्बिन्दुसर्गावसानिकाम् । संहृतौ प्रतिलोमेन विन्यसेद्बिन्दुभूषि-
ताम् । सृष्ट्यामिति सर्गावसानिका भूतलिपिरिति शेषः ।
स्थितौ बिन्दुसर्गावसानिकां तां क्रमाव्यस्येदित्यर्थः । तत्रायं क्रमः ॥
ऊः इः ऋः अः लृः ओः औः ऐः एः रं यः वः हं लं । खं
कां घं गं ङं कं चं भं जं ञं ठं टं ढं ङं णं थं तं धं
दं नं फं पं भं वं मं सं षं शं । कश्चित्तु वह्निवर्गवर्णान्
सर्वान् प्रथमं विन्यस्य पञ्चान्नरुद्वर्णान् ततो जलान्तान् एतान्
सविन्दून् ततो वियद्भूमिवर्णान् सविसर्गान् न्यसेदित्याह स्म ।

शारदायाम् । आगमोक्तेन मार्गेण दीक्षितः साधकोत्तमः । लक्ष-
 न्यस्येज्जपेत्तावज्जुहुयादयुतं तिलैः ॥ तावदिनि लक्षम् । तत्र
 एको न्यास एकावृत्तिश्चेति क्रमोऽनुसन्धेयः । शारदायाम् । पूज-
 येदन्वहं देवीं पौठे प्रागौरिते सुधीः । प्रागौरिते इत्यनेन सर-
 स्वतीप्रकरणीयपौठशक्तिरत्रापि पूजयेदिति सूचितम् । तं नाष्ट-
 दलं षोडशदलं द्वाविंशदलं चतुःषष्टिदलं भूपुरञ्च कृत्वा तत्र
 पौठशक्तिं पूजयेत् ॥ शारदायाम् ॥ वर्णाब्जेनासनं कुर्यान्
 मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् । देवीं सम्पूजयेदस्यामङ्गाद्यावरणेः सह ।
 आदावङ्गावृत्तिः पञ्चादम्बिकाद्याभिरोरिता । द्वितीया मातृभिः
 प्रोक्ता तृतीया ह्यष्टशक्तिभिः ॥ चतुर्थी पञ्चमी प्रोक्ता द्वाविंश-
 च्छक्तिभिः पुनः । चतुःषष्ट्या स्मृता षष्ठी शक्तिभिर्लोकपालकैः ।
 सप्तमी वृत्तिरेतेषां मन्त्रे स्यादष्टमी वृत्तिः । वर्णाब्जेनासनं
 दत्त्वा मूर्तिं मूलेन सङ्कल्प्य तत्र देवौमभ्यर्च्य केशरेषु अङ्गान्य-
 भ्यर्च्य तदुपरि दिग्दलेषु चतस्रोऽम्बिकादिकाः तदुपरि ब्राह्मगा-
 द्यास्ततः षोडशदले करालाद्या द्वाविंशदले विद्याद्याश्चतुःषष्टि-
 दले पिङ्गलाद्याः पूजयेत् ॥ तदुपरि भूपुरे लोकपालांस्तदस्त्राणि
 चेति । वर्णाब्जेन हंसैः भूतलिपिः सरस्वती । योगपौठाय नमः
 इति प्रयोगः ॥ शारदा ॥ एवं पूज्या जगद्वात्री श्रीभूतलिपिदेवता ।
 स्थानेषूक्तेषु विधिवदभ्यर्च्यार्ङ्गानि पूर्ववत् ॥ पूर्ववत् सरस्वती-
 प्रकरणवत् ॥ अम्बिका वाग्भवो दुर्गा श्रीशक्तिः प्रोक्तलक्षणा ।
 ब्राह्मगाद्याः पूर्ववत् पूज्याः करालौ विकराल्युमा । सरस्वती
 श्रीर्दुर्गोमा लक्ष्मीः श्रुतिः स्मृतिर्धृतिः । अङ्गा मेधा मतिः कान्ति-
 रार्थाः षोडशशक्तयः । खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याः
 खलङ्कृताः । विद्याश्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुङ्कुमः पुनः । रुद्र-
 वीर्या प्रभा नन्दा स्यात् पोषिण्यृद्धिदा शुभा । कालरात्रिर्महा-
 रात्रिर्भद्रकाली कपालिनी । प्रकृतिर्दण्डिमुण्डिन्यौ सिन्दुखण्डा

शिखण्डिनी । निशुम्भशुम्भमथनी महिषासुरमर्दिनी । इन्द्राणी
 चैव रुद्राणी शङ्करार्द्धशरीरिणी । नारी नारायणी चैव त्रिशू-
 लिन्यपि पाशिनी । अम्बिका ह्यादिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयः
 शिवाः । चक्रहस्ताः पिशाचाद्याः सम्पूज्याश्चारुभूषणाः । पिङ्ग-
 लाङ्गी पिशाचाङ्गी सन्तुष्टिर्द्विरेव च । अद्या स्वाहा स्वधा भिक्षा
 माया संज्ञा वसुधरा । त्रिलोकरात्रिः सावित्री गायत्री त्रिद-
 शेश्वरी । स्वरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाता हुतप्रिया । विमला
 चामला पश्चादरुणी पूर्णवारुणी । प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः
 संहतिरेव च । सन्ध्या माया सती हंसी मर्दिकी रक्तिकी परा ।
 देवमाता भगवती देवकी कमलासना । त्रिमुखी सप्तमुख्यान्या
 सुरासुरविमर्दिनी । लम्बोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी ।
 रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथापरा । गगनवेगा पवनवेगा
 च तदनन्तरम् । ततो भुवनपालाख्या ततः स्यान्मदनानुरा ॥
 अङ्गनानङ्गवदना तथैवानङ्गमेखला । अनङ्गकुसुमा विश्वरूपा-
 सुरभयङ्करी । आख्याह्वसत्यवादिन्यौ वज्ररूपा शुचित्रता । वर-
 दाख्या च वागीशी चतुःषष्टिः समोरिताः । चापवाणधराः सर्वा
 ज्वालाञ्चिन्ना महाप्रभाः । दंष्ट्रिण्यश्चोर्ध्वकेश्यस्ता युद्धोपक्रान्त-
 मानसाः । सर्वाभरणसन्दीप्ता पूजनीयाः प्रयत्नतः । लोकेशाः पूर्व-
 वत् पूज्यास्तद्वज्रादिकान्यपि । इत्यं यः पूजयेन्नन्वी श्रीभूत-
 लिपिदेवताम् । श्रीवाण्योः स भवेद्भूमिर्देवैरप्यभिनन्द्यते । क-
 मलैरयुतं हुत्वा राजानं वशमानयेत् । उत्पलैर्जुह्वतस्तद्वन्महा-
 लक्ष्मीः प्रजायते । पलाशकुसुमैर्हुत्वा वल्करेण दाविर्भवेत् । वाजी
 लवणहोमेन वनितां वशमानयेत् । मातृकोक्तानि कर्माणि
 कुर्यादत्रापि साधकः । भूतलिप्या पुटीकृत्य यो मन्त्रं भजते
 नरः । क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तस्य सिद्धो भवेन्ननु । कुञ्जि-
 कातन्त्रे ॥ ध्यानानन्तरम् ॥ एवं ध्यात्वा महेशानि ! जपेत्ताञ्ज

प्रसन्नधीः । क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या भूतलिप्या पुरस्किया ।
 भूतलिप्या पुटीकृत्य यो यं मन्त्रं जपेन्नरः । सहस्रैकप्रमाणेन
 हठात् सिद्धिर्भवेद्भुवम् । मासमात्रं जपेन्मन्त्रं भूतलिप्या तु
 सम्पुटम् । क्रमोत्क्रमाद्वरारोहे ! ततः सिद्धिरनुत्तमा । मन्त्र-
 दोषशान्त्यर्थं शारदायां दशसंस्कारकरणमपि लिखितम् ॥ तत्त-
 स्मादत्यतिवृद्धप्रपितामहसहृदयगोष्ठीगरिष्ठकृष्णानन्दागमवागी-
 शभट्टाचार्यैः स्वकृतमन्त्रसारे लिखितम् । अन्वेषकैस्तत्र द्रष्टव्यम् ।
 दोषान्तरेऽपि दश संस्कारा उक्ताः समयाचारतन्त्रे यथा ॥ गुरो-
 र्यहीतमन्त्रश्च जप्त्वा तां गतिसाधकः । दुष्टाचारं प्रमादाद्वा आ-
 लस्यद्वापि सुन्दरि ! हीनवीर्यत्वमाप्नोति स तु मन्त्रो वरानने ! ।
 इत्यादिदोषनाशार्थं दशसंस्कारमाचरेत् ॥ इति मन्त्रदोषशान्ति-
 विधिः ॥ वीजसङ्केतबोधार्थमाहृत्य तन्त्रशास्त्रतः । वीजनामानि
 कतिचिद् वक्ष्यामि विदुषां मुदे । माया लज्जा परा संवित्
 त्रिगुणा भुवनेश्वरी । हृल्लेखा शम्भुवनिता शक्तिर्देवीश्वरी शिवा ।
 महामाया पार्वती च संस्थानकतरुपिणी । परमेश्वरी च भुवना
 धात्री जीवनमध्यगा ॥ स्त्रीं ॥ वज्रिहीनेऽस्त्रयुद्धाया स्थिरमाया
 प्रकीर्तिता ॥ ह्रीं ॥ शान्तिशान्तिविन्दुनादैर्लक्ष्मीप्रणव उच्यते ।
 श्रीर्लक्ष्मीर्विष्णुवनिता रमा क्षीरसमुद्रजा ॥ श्रीं ॥ षोडशव्यञ्जनं
 वज्रिवामाक्षिविन्दुसंयुतम् । चन्द्रवीजसमारूढं बधूवौजमिदं
 स्मृतम् । बधूर्वामिलणा योषिदेकाक्षी स्त्री च कामिनी ॥
 स्त्रीं ॥ नादविन्दुसमायुक्तो द्वादशस्तु सुरो भगम् । योनिः
 सरस्वती वीजमधरं दाग्मवच्च वाक् । ऐं ॥ हकारो वाम-
 कर्णाब्जो नादविन्दुविभूषितः । कूर्चं क्रोध उपदण्डं दीर्घह-
 र्हार उच्यते । शब्दश्च दीर्घकवचं तारा प्रसव इत्यपि ॥ ह्रं ॥
 कामाक्षरं वज्रिसंस्थं रतिविन्दुविभूषितम् । कालीवीजमिदं
 प्रोक्तं रतिवीजं तदेवहि ॥ क्लीं ॥ कामाक्षरं धरासंस्थं रति-

विन्दुविभूषितम् । गुप्तकालीबीजमिदं गोपालबीजमित्यपि ॥
तत्कामबीजं कामेशीबीजं शक्तिस्त्वसौ परा ॥ क्लीं ॥ सत्या-
न्तयुग् व्योमसेन्दु शैवं प्रासादमुच्यते ॥ ह्रीं ॥ कलायं क्लेदिनी-
बीजं क्रोडारस्त्वङ्गुशभिधः ॥ क्लीं ॥ आकारी विन्दुमान्
पाशः शेषश्च समुदीरितः । सकला भुवनेशानी कामेशीबीज-
मुच्यते । नमस्तु हृदयम् स्वाहा द्विष्ठयुगलं ठठः । नमः
स्वाहा ॥ चन्द्रयुग्मं शिवो वेदमाता ज्वलनसुन्दरी । स्वाहा
परा देवभोज्यं ठठयं चन्द्रयुग्मकम् । शिवो हविर्वेदमाता देवास्त्र्यं
वज्रिसुन्दरी ॥ स्वाहा ॥ शिखा वषट् शिरोमध्यं शक्रमाता हर-
प्रिया । शिखा वषट् च । वषट् कवचं क्रोधो वर्म हुमित्यपि ।
क्रोधाख्यो हं तनुत्वच्च शस्त्रादौ रिपुसंज्ञकः ॥ ह्रं ॥ अस्त्रनेत्रयुगं
वौषट् ॥ वौषट् ॥ फडस्त्रं शस्त्रमायुधम् ॥ फट् ॥ तार्तीयन्तु
हेसौः प्रेतबीजम् ॥ हेसौः ॥ हंसोऽजपामनुः ॥ हंसः ॥ गकारो
विन्दुमान् वीघ्नबीजं गणेशबीजकम् ॥ गं स्मृतिस्थं मांसमौ
विन्दुयुतम् ॥ भूबीजमीरितम् ॥ लं ॥ ठान्तं दहननेत्रेन्दुयुतन्तु
विष्ववीजकम् ॥ ड्रीं ॥ अथ कामकला वामनयनं विन्दुसंयुतम्
अर्कमात्रा कलावाणी नादोऽर्द्धेन्दुः सदाशिवः । अनुच्चार्य्य तुरीया
च विश्वमात्मकलापरा ॥ ॥ नादः ॥ भूतडामरसङ्केतबोधार्थं भूत-
डामरीयबीजनामान्यपि लिख्यन्ते ॥ प्रणवो विष्ववीजं स्याद्
ध्रुवं हालाहलं स्मृतम् कालश्रुतिपथं ज्ञेयं बहुरूपि निरञ्जनम् ॥
प्रणवम् ॥ क्षतजस्थं व्योमवक्त्रं धूम्रभैरव्यलङ्कृतम् । नादविन्दु-
समायुक्तं बीजं प्राणात्मिकं स्मृतम् ॥ क्लीं ॥ क्रोधीशं क्षतमारुढं
धूम्रभैरव्यलङ्कृतम् । विद्याज्जिह्वाविन्दुयुतं पितृभूवासिनी
स्मृतम् ॥ क्लीं ॥ क्रोधकालात्मकं कुर्याद्भौतिकं वाग्भवं स्मृतम् ।
नादविन्दुसमायुक्तं समाधायोग्यभैरवीम् । बीजमेतत्तु कथितं
शुद्धबुद्धिप्रवर्तकम् ॥ ऐं ॥ क्रोधीशं वलभ्यूभैरवी नाद-

विन्दुभिः । तिमूर्तिमन्त्रं कामराजस्त्रैलोक्यमोहनम् । इन्द्रा-
 सनगतो ब्रह्मसमूर्तिस्तु समन्त्रः ॥ क्लीं ॥ संयुक्तं धूम्रभैरव्या
 रक्तस्थं बलिभोजनम् । नादविन्दुसमायुक्तं किङ्किनीवीज-
 मुत्तमम् ॥ क्लीं ॥ नादविन्दुसमायुक्तं रक्तस्थं बलिभोजनम् ।
 कालरात्रासनोपेतं विशिखाख्यं महामनुम् ॥ क्लीं ॥ विदार्थी-
 लिङ्गितोग्रास्यो वसिस्तु क्षतजोक्षितः । नादविन्दुसमायुक्तो
 विज्ञेयः पिशिताशनः ॥ हुं ॥ धूम्रध्वजाधः कालाग्निः सोर्द्ध-
 केशीन्दुविन्दुभिः । युगान्तकारकं वीजं भैरवेण प्रकाशितम् ॥
 स्फे ॥ कपर्दिनं समादाय क्षतजोक्षितविग्रहम् । संयुक्तं धूम्र-
 भैरव्यां क्षोऽयं नादविन्दुमान् ॥ प्रीं ॥ कपालीद्वयमादाय महा-
 कालेन मण्डितम् । समासनमिति प्रोक्तं चण्डिकाख्यं प्रयो-
 जयेत् ॥ ठं ठं ठः ठः ॥ क्षतजस्थं व्योमवक्त्रं चन्द्रखण्डविभू-
 षितम् । खद्योतमिति सम्योक्तं ग्रासिनी कालरात्रियुक् ॥ क्लीं
 क्लीं ॥ क्षतजोक्षितमाकाशं नादविन्दुविभूषितम् । विदारी-
 भूषितश्चैव वीजं वैवस्वतो दृक् ॥ क्लीं ॥ कीर्त्याख्याकालवक्त्रा
 च महाकालेन साधितम् । तदनादिघञ्चरशिः स्मृष्टिस्थित्यन्त-
 कृद्धिधिः ॥ ॐ ॥ व्योमस्थं तालजङ्घास्थं विन्दुनादविभूषितम् ।
 कूर्चं कालो महाकालः क्रोधवीजं निरञ्जनम् ॥ ह्रं ॥ पृथ्वीपालो
 नवद्वीपपतिरतिमतिः क्षणचन्द्रो महात्मा विद्याब्राह्मण्यमान्यं
 यमजनयदमुं दान्तमौशनचन्द्रम् । तस्मात् सत्स्वाप यो विश्व-
 विजयिपदवीं खेष्टदेवीप्रसादाच्चक्रे तेनाद्यमेतद्विदभिमतफलं
 सर्गकाण्डं विचित्रम् ॥ हंसः प्राणो मनश्चन्द्रः क्षणा मध्यं गत-
 स्तयोः । गौडोदये पुष्पवन्तौ श्रीप्राणक्षणाचन्द्रकौ ॥ अन्नदा-
 मङ्गलं देशभाषयाचीकरोद् यतः । तस्माद्विदेशेऽमावास्या-
 क्षणचन्द्रस्य भूपतेः ॥ एषा निर्जरभाषया समुदिता भास्वत्प्रभा
 निर्मला विश्वोद्दीप्तिकरी जगद्दिनकरी श्रीप्राणतोषिण्यतः ।

श्रीमान्नीवृति नीवृति चितितलेऽभूत् प्राणकृष्णाभिधो हंसो
नास्तमितः सदोदययुतः कीर्त्यानया शाश्वतः ।

इति श्रीप्राणकृष्णविश्वासानुमतायां विश्वविजयिश्रीराम-
तोषणविद्यालङ्कारविरचितायां श्रीप्राणतोषिण्यां

फलकयनरूपदशमपरिच्छेदान्वितं

सर्गकाण्डं समाप्तम् ।

अचिन्त्यापि ध्येया स्वखिलहृदये ध्वान्तरुचिरा मनोध्वान्तं
गाढं हरसि करुणाभोनिधिरपि । महाकालो खैरिण्यसि
सकलमूर्तिः कदहमानदृश्या लोकानां त्वमसि जयतादद्भुत-
तमः ॥ आसीदामहरोति पुरुषहरी राकेन्दुभाजित्वरीराशा-
पूर्त्तिकरीः सुशीतलहरीः कीर्त्तीः समासादयन् । विश्वासान्वय-
पावनो गुरुकृपापात्रं कुलोद्दीपकम् यो देवैर्जनयाम्बभूव-
कृतिनं श्रीप्राणकृष्णाभिधम् ॥ कृष्णमङ्गलविद्यावागीशसूनुः
सतां मुदे । गङ्गादेवसुतोऽकार्षीर्द्धर्मकाण्डं द्वितीयकम् ॥ द्विती-
यस्योच्यते धर्मकाण्डस्य संस्क्रियात्मनः । निर्घण्टः प्रथमं तत्र
संस्कारस्य प्रशंसनम् ॥ द्विजानां दश संस्काराः कर्ममात्राधि-
कारकाः । शूद्रशूद्रप्रकाराणां विज्ञातव्या नवैव ते । मायादि-
कत्वं मन्त्राणां विज्ञेयं कलिसम्मतम् । ऋतुकर्म ततो गर्भा-
धानं पुंसवनं ततः । पञ्चाश्रुतप्रदानञ्च सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्म ततो मेधाजननं कविताकरम् । मायादिदानं विप्रैर्यो
वालस्य पुष्टिकारणम् । विज्ञेयं नामकरणं ततो निष्क्रमणं
स्मृतम् । अन्नाशनं ततश्चूडाकर्णवेधस्ततः परम् । कुमारी-
शूद्रजातीनां सर्वमेतदमन्त्रकम् । उपनायो वैदमेदे सूत्रमाणं
प्रकीर्तितम् । सूत्रनिर्माणसंस्कारौ सूत्राधिष्ठातृदेवता । सा-
वित्रीग्रहणं कर्म समावर्त्तनमित्यपि । अदारजननिन्दा च धर्म-
पत्नीनिरूपणम् । विवाहो दशसंस्कारप्रयोगस्तदनन्तरम् ।

इति द्वितीयकाण्डाद्य परिच्छेदसमापनम् ॥ आदौ गुरोर्लक्ष-
णञ्च ततः सद्गुरुलक्षणम् । कौलगुरुप्रशंसा च कूटार्थकति-
दूषणम् । गुरुविशेषकथनं शास्त्रे त्वावश्यकं गुरोः । गुरुमन्त्र-
देवतानामेकत्वभादनाक्रमः । गुरुसन्तुष्ट्यादिफलं गुरुचारणजं
फलम् । गुरुदत्ते जगत्तृप्तिराधिक्यं सर्वतो गुरोः । जगत्पूजा-
फलावाप्तिर्गुरुपादास्तु जेष्ठिन्ते । दौक्षाशिक्षादिभेदेन गुरुभेद-
निरूपणम् । एक एव महाकालोगुरुर्न मानुषः क्वचित् । तद-
धिष्ठानवशतो माहात्म्यं मानुषस्य च । गुरुवंशस्य मर्यादा
पशुमन्त्रादिभेदतः । परापरादिभेदश्च गुरुणां तदनन्तरम् ।
स्त्रीगुरोर्लक्षणं वर्ज्यं गुरुत्वकल्पने तथा । त्याज्यो गुरुश्च
शिष्यस्य लक्षणं वर्जनं तथा । वर्ज्या शिष्यकर्तृनिन्दा गुर्वज्ञा-
लङ्घने तथा । गुरुद्रव्यादिहरणदोषानिष्टकृतेस्तथा । गुरुशा-
पजन्यदोषस्तन्निन्दा श्रवणस्य च । तच्छ्रवणप्रतीकारो गुरु-
निन्दाकरस्य च । दोषो गुरौ मनुष्यत्वज्ञाननिन्दा तथैव च ।
गुरुद्रोहादिदोषश्च त्यागो गुरुकुलस्य च । निषेधो गुरुगोत्रस्य
माननापूजने तथा । गुरुदर्शनकालस्य पूज्यत्वं गुरुपूजनम् ।
विनेष्टपूजादोषश्च गुरुपूजादिजं फलम् । गुरुगृहस्थितकृत्य-
गुण्यस्याक्षयता तथा । गुरुपादपञ्चरेणूदकमाहात्म्यवर्णनम् ।
गुर्वन्नभक्षणफलं गुरुच्छिष्टफलं तथा । तदुच्छिष्टाभोजनज-
दोषश्च तदनन्तरम् । गुरुपादुकादिप्रणतिर्निषिद्धं गुरुसन्निधौ ।
गुर्वज्ञया निषिद्धस्याचरणान्नास्ति पातकम् । जातिविद्यादि-
गवेष्य त्यागः श्रीगुरुसन्निधौ । सदा श्रीगुरुपादाब्जध्यानस्य
फलनिर्णयः । गुरुणैकासनत्यागो गुरुभक्तिफलं तथा । पैत्र-
गुरुकुलत्यागदोषः श्रीपूर्वकीर्तनम् । गुर्वीदरर्चनाकाल एवं
तवामभाषणम् । चतुर्विधा तु शुश्रूषा गुरुमित्रादिमानना ।
गुर्वालये प्रवेशस्य प्रकारस्तदनन्तरम् । इति द्वितीयकाण्डस्य

परिच्छेदे द्वितीयकः ॥ नाडीचक्रविचारश्च भूपरीक्षा ततः परम् ।
 दिग्विशेषप्रवा भद्रा भद्रफलप्रदायिनी । ब्रह्मण्यादिमहीज्ञानं
 शुभभूमिनिरूपणम् । त्याज्या भूम्यो हि चक्रञ्च तस्य व्याख्यान-
 मेव च । शल्योद्धारः स द्विविधः शङ्कुना दिङ्गिरूपणम् । मण्डप-
 करणं तस्मात्तोरणञ्च ततः परम् । अङ्गुरारोपणं तस्य परीक्षा
 तदनन्तरम् । अशुभाङ्गुरशान्तिश्च परिच्छेदतृतीयके ॥ दीक्षा-
 शब्दार्थनिर्णोतिर्दीक्षामाहात्म्यकौत्सनम् । अदीक्षितस्य निन्दा
 च दीक्षितस्य प्रशंसनम् । दीक्षया चैव ज्येष्ठत्वं दीक्षया मोक्ष-
 साधनम् । एकमन्त्रसाधनेन सर्वमन्त्रस्य साधनम् । मन्त्रग्रहण-
 निन्दा च पुस्तकालोकनादितः । दीक्षां विना नाधिकारः
 पूजादौ निन्द्यदीक्षितः । ततश्च त्रिविधा दीक्षा चतुर्धापि
 प्रकीर्तिता । अधिवासनिधिक्षाङ्गुरार्पणाद्यधिवासयोः । प्रयोग
 इति तुर्याख्यपरिच्छेदसमापनम् ॥ गुरोर्निमन्त्रणं पूर्वं स्नानादि-
 तन्त्रकर्मणि । सौरमाससमुत्प्रेषो मातृकादिप्रपूजनम् । वृद्धि-
 आहं सर्वकार्यं पञ्चदेवप्रपूजनम् । लक्ष्म्यादिपूजनञ्चैव ग्रह-
 मन्त्रस्ततः परम् । ग्रहपूजादानविधिग्रहाणां कवचं ततः ।
 तिथिध्यानमन्त्रपूजाकवचं तदनन्तरम् । वर्णध्यानाद्यासनस्य
 शुद्धिश्चैव ततः परम् । अर्चनाहोमकर्माणि समासेन ततः
 परम् । इति पञ्चमविच्छेदसमाप्तिरभिधीयते ॥ दीक्षा नाना-
 विधा षष्ठे कीर्तितान्यद् यथास्थलम् । ज्ञानव्यमुद्देशमात्रं
 निघण्टेन कृतं मया । व्याख्याया ग्रन्थबाहुल्यद्वयनादधुना मया ।
 प्रमाणभावं लिखितं मीमांसापि क्वचित् क्वचित् ॥ इदानीं
 प्राप्तावसरिणं गर्भाधानादिसंस्कारा उच्यन्ते । संस्काराणां प्रयो-
 गस्यावश्यत्वाद्वाद्ये प्रयोगो लेखनीयो नातो व्याख्याजाताप्रमाण-
 भावं लिख्यते ॥ महानिर्वाणतन्त्रे नवमोक्तासे ॥ सदाशिव
 उवाच ॥ संस्कारेण विना देवि ! देहशुद्धिर्न जायते । नासं-

स्त्रुतोऽधिकारी स्याद्देवे पैत्रे च कर्मणि । अतो विप्रादिभि-
 र्वर्णैः स्वस्ववर्णोक्तसंस्क्रिया ॥ कर्त्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हिते-
 स्फुभिः । वीजसेकः पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातनाम्नो
 निष्क्रमणमन्नाशनमतः परम् । चूड़ोपनयनोद्वाहाः संस्काराः
 कथिता दश । शूद्राणां शूद्रभिन्नानामुपवीतं न विद्यते । शूद्र-
 भिन्नानां शूद्रप्रकाराणामधमशूद्रकैवर्त्तादीनामित्यर्थः । तेषां
 नवैव संस्कारा द्विजातीनां दश स्मृताः । नित्यानि सर्वकर्माणि
 तथा नैमित्तिकानि च । काम्यान्यपि वरारोहे ! कुर्याच्छाश्व-
 वर्त्मना । संस्कारेषु च सर्वेषु तथैवान्येषु कर्मसु । विप्रादिवर्ण-
 भेदेन क्रमान्मन्वाश्च दर्शिताः । सत्यव्रतादापरिषु तत्तत्कर्मसु
 कालिके ! । प्रणवाद्यांस्तु तान् मन्वान् प्रयोगेषु नियोजयेत् ।
 कलौ तु परमेशानि ! तैरेव मनुभिर्नराः । मायाद्यैः सर्वकर्माणि
 कुर्युः शङ्करशासनात् । निगमागमतन्त्रेषु वेदेषु संहितासु च ।
 सर्वे मन्वा मयैवोक्ताः प्रयोगा युगभेदतः । अथोच्यते महामाये !
 गर्भाधानादिका क्रिया । तत्रादावृतुसंस्कारः कथ्यते क्रमतः
 शृणु । कृतनित्यक्रियः शुद्धः पञ्च देवान् समर्चयेत् । ब्रह्मा दुर्गा
 गणेशश्च ग्रहा दिक्पतयस्तथा । स्थण्डिलेन्द्रादिदिग्भागे घटेष्वे-
 तान् प्रपूजयेत् । ततस्तु मातृकाः पूज्या गौर्याद्याः षोडश
 क्रमात् । गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देव-
 सेना स्वधा स्वाहा शान्तिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा । आत्मनो देवता
 चैव तथैव कुलदेवता । आयान्तु मातरः सर्वास्त्रिदशानन्दका-
 रिकाः । विवाहव्रतयज्ञानां सर्वाभीष्टं प्रकल्पयताम् । आन-
 शक्तिसमारूढाः सौम्यमूर्तिधराः सदा । आयान्तु मातरः सर्वा
 यज्ञोत्सवसमृद्धये । इत्यावाह्य मातृगणान् स्वशक्त्या परिपूज्य
 च । देहल्यां नाभिमात्रायां प्रादेशपरिमाणतः । सप्तधा पञ्च
 वा विन्दून् दद्यात् सिन्दूरचन्दनैः । प्रत्येकविन्दौ मतिमान्

कामं मायां रमां स्मरन् । वृत्तधारामविच्छिन्नां दत्त्वा तत्र
वसुं यजेत् । वसुधारां प्रकल्प्यैवं मयोक्तेनैव वर्त्मना । विरच्य
स्थण्डिलं धीरो वज्रिस्थापनपूर्वकम् । होमद्रव्याणि संस्कृत्य पचे-
च्चरुमनुत्तमम् । प्राजापत्यश्चरुश्चात्र वायुनामा हुताश्वतः । समा-
प्य धाराहीमान्तं कृत्यमार्त्तवमारभेत् । ह्रीं प्रजापतये स्वाहा
चरुणैवाहुतित्रयम् । प्रदायैवाहुतिं दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयन् ।
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि यच्छतु ॥ आसिञ्चतु प्रजा-
पतिर्धाता गर्भं दधातु ते । स्वाहा आज्येन चरुणापि वा । सूर्यं
प्रजापतिं विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमः सृजेत् । गर्भं धेहि सिनीवाली
गर्भं धेहि सरस्वती । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करमजौ ।
ध्यात्वा देवीं सिनीवालीं सरस्वत्यश्विनौ तथा । स्वाहान्तमनु-
नानेन दद्यादाहुतिमुत्तमाम् । अतः कामं बधून् मायां रमां
कूर्चं समुच्चरन् । अमुष्यै पुत्रकामायै गर्भमाधेहि सद्विठम् ।
उक्त्वा ध्यात्वा रविं विष्णुं जुहुयात् संस्कृतेऽनले । यथेयं पृथिवी
देवी ह्युत्ताना गर्भमादधे । तथा त्वं गर्भमाधेहि दशमे मासि
सूतये । स्वाहान्तेनामुना विष्णुं ध्यायन्नाहुतिमाचरेत् । पुन-
राज्यं समादाय ध्यात्वा विष्णुं परात्परम् । विष्णो ! ज्येष्ठेन
रूपेण नार्य्यामस्यां वरीयसम् । सुतमाधेहि ठडन्वमुक्त्वा वज्री
हविस्त्यजेत् । कामेन पुटितां मायां मायया पुटितां बधूम् ।
पुनः कामञ्च मायाञ्च पठित्वास्याः शिरः सृशेत् । पतिपुत्रवती-
भिश्च नारीभिः परिवेष्टितः । शिर आलभ्य हस्ताभ्यां बध्वाः
क्रोडाञ्चले पतिः । विष्णुं दुर्गां विधिं सूर्यं ध्यात्वा दद्यात्
फलत्रयम् । ततः स्निष्टिकृतं हुत्वा प्रायश्चित्तं समापयेत् । यद्वा
प्रदोषसमये गौरीशङ्करपूजनात् । भास्करार्घ्यप्रदानाच्च दम्पत्योः
शोधनं भवेत् ।

आर्त्तवं कथितं कर्म गर्भाधानमथो शृणु ॥ तद्वाताव-

न्यरात्रौ वा युग्मायां निशि भार्यया । सदनाभ्यन्तरं गत्वा
 ध्यात्वा देवं प्रजापतिम् । सृशेत् पत्नीं पठेद्भर्ता मायावीजपुर-
 सरम् । आवयोः सुप्रजायै त्वं शय्याशुभङ्करी भव । आरुह्य भा-
 र्यया शय्यां प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः । उपविश्य स्त्रियं सृश्यन्
 हस्तमादाय मस्तके । वामेन पाणिनालिङ्ग्य स्थाने स्थाने मनुं
 जपेत् । शीर्षे कामं शतं जप्त्वा चिवुके वाग्भवं शतम् । कण्ठे
 रमां विंशतिधा स्तनद्वन्द्वे शतं शतम् । हृदये दशधा मायां
 नाभौ तां पञ्चविंशतिम् । जप्त्वा योनीं करं दत्त्वा कामेन सह
 वाग्भवम् । शतमष्टोत्तरं जप्त्वा लिङ्गेऽप्येवं समाचरन् । विकाम्य
 मायया योनिं स्त्रियं गच्छेत् सुताप्तये । रितः सम्पातसमये ध्यात्वा
 विश्वकृतं पतिः । नाभेरधस्तात् चित्कुण्डे वस्त्रिकायां प्रपा-
 तयेत् । शुक्रसेकान्तरे विद्वान् इमं मन्त्रमुदीरयेत् । यथाग्निना
 सगर्भा भूर्यौर्यथा वज्रधारिणा । वायुना दिग् गर्भवती तथा
 गर्भवती भव ॥ इति गर्भाधानम् ॥

जाते गर्भे ऋतौ तस्मिन्नन्यस्मिन् वा महेश्वरि । तृतीये
 गर्भमासे तु चरेत् पुंसवनं गृही । कृतनित्यक्रियो भर्ता पञ्च
 देवान् समर्चयेत् । गौर्यादिमातृकाश्चैव वसोधारां प्रपातयेत् ।
 द्विष्ट्याहं ततः कृत्वा पूर्वोक्तविधिना सुधीः । धाराहोमान्तमा-
 प्राद्य कुर्यात् पुंसवनक्रियाम् । प्राजापत्यश्चरुस्तत्र चन्द्रनामा
 हुताशनः । गव्ये दध्नि यवञ्चैकं द्वौ माषावपि निक्षिपेत् ।
 प्रतिः पृच्छेत् स्त्रियं भद्रे ! किं त्वं पिबसि त्रिः कृतम् । ततः
 मीमन्तिती ब्रूयान्नया पुंसवनं त्रिधा । प्रष्टुतींस्त्रीन् पिबे-
 न्नारो यवमाषयुतं दधि । जीवत्सुताभिर्वनितां यागस्थानं
 समानयेत् । संस्थाप्य वामभागे तां चरुहोमं समाचरेत् । पूर्व-
 वच्चरुमादाय मायां कूर्चं समुच्चरन् । ये गर्भविघ्नकर्तारो ये
 च गर्भविनाशकाः । भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला बाल-

घातिकाः । तान् सर्वान् नाशय चन्द' गर्भरक्षां कुरु द्विठः ।
मन्त्रेणानेन रक्षोघ्नं चिन्तयित्वा हुताशनम् । रुद्रं प्रजापतिं
ध्यायन् प्रदद्याद्वादशाहुतीः । ततो मायाचन्द्रमसे स्वाहेत्या-
हुतिपञ्चकम् । दत्त्वा भार्यां हृदि स्पृष्ट्वा मायां लक्ष्मीं शतं
जपेत् । ततः स्विष्टिकृतं हुत्वा प्रायश्चित्तं समापयेत् ॥ इति
पुंसवनम् ॥

ततस्तु पञ्चमे मासि दद्यात् पञ्चानृतं स्त्रियै । शर्करा मधु
दुग्धञ्च घृतं दधि समांशकम् । पञ्चानृतमिदं प्रोक्तं देहशुद्धौ
विधीयते । वाग्भवं मदनं लक्ष्मीं मायां कूर्चं पुरन्दरम् ।
पञ्चगव्योपरि शिवे ! प्रजप्य पञ्च पञ्चधा । एकौकृत्यामृता-
न्यत्र प्राशयेद्दयितां पतिः ॥ इति पञ्चानृतदानम् ॥

सीमन्तोन्नयनं कुर्यान्मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि वा । यावन्न जाय-
तेऽपत्यं तावत् सीमन्तनक्रिया । पूर्वोक्तधाराहोमान्तं कर्म कृत्वा
स्त्रिया सह । उपविश्यासने प्राज्ञः प्रदद्यादाहुतित्रयम् । विष्णवे
भास्करे धात्रे वज्रिजायां समुच्चरन् । ततश्चन्द्रमसं ध्यात्वा
शिवनाम्नि हुताशने । सप्तधा हवनं कुर्यात् सोममुद्दिश्य मा-
नवः । अश्विनी वासवं विष्णुं शिवं दुर्गां प्रजापतिम् । ध्यात्वा
प्रत्येकतो दद्यादाहुतीः पञ्चधा शिवे ! । स्वर्णकङ्कतिकां भर्ता
गृहीत्वा दक्षिणे करे । सीमन्ताद्वज्रकेशान्तःकेशपाशे निवेश-
येत् । शिवं विष्णुं विधिं ध्यायन् मायावीजं समुच्चरन् । भार्ये !
कल्याणि ! सुभगे ! दशमे मासि सुव्रते ! । सुप्रसूता भव प्रीता
प्रसादादिश्वकर्मणः । आयुष्मति ! कङ्कतिका वर्चस्वी ते शुभं
कुरु । ततः समापयेत् कर्म स्विष्टिकृद्वनादिभिः ॥ इति
सीमन्तोन्नयनम् ॥

जातमात्रं सुतं दृष्ट्वा दत्त्वा स्वर्णं गृहान्तरे । पूर्वोक्तविधिना
धीरो धाराहोमं समापयेत् । ततः पञ्चाहुतीर्दद्यादग्निमिन्द्रं

प्रजापतिम् । विश्वान् देवांश्च ब्रह्माणमुद्दिश्य तदनन्तरम् ।
 मधुसर्पिः कांक्षपात्रे समानीय समांशकम् । वाग्भवं सप्तधा जह्वा
 प्राशयेत्तनयं पिता । दक्षहस्तानामिकया मन्त्रमेवं समुच्चरन् ।
 आयुर्वर्चो बलं मेधा वर्द्धतां ते सदा शिशो ! । इत्यायुर्जननं
 कृत्वा गुप्तं नाम प्रकल्पयेत् । गन्धर्वतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ बाल-
 कस्य तु जिह्वायां त्रिदिनाभ्यन्तरे न्यसेत् । मधुना श्वेतदूर्वाभिः
 सुवर्णस्य शलाकया । इदं वाग्भवकूटन्तु लिखेद्दे जननान्तरे ।
 स एव पण्डितो भूयान्न तु मूर्खो भवेद्भ्रुवम् ॥ वाग्भवकूटमपि
 तत्रैव यथा । कामदेवस्ततो योनिस्तुर्यस्वरपुरन्दरी । भुव-
 नेशो ततः पश्चात् पञ्चवक्त्रविभूषितः । अयं स वाग्भवो देवीवागी-
 शत्वप्रदायकः । इदं वाग्भवकूटन्तु बालिशस्यापि मूर्धनि ।
 हस्तं दत्त्वा पठेत् सिद्धमष्टोत्तरशतं श्रिये ॥ सोऽपि श्लोकं
 मञ्जेशानि ! करोत्येव न संशयः ॥ बालिशस्य मूर्खस्य । सप्त-
 कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारवित् । जिह्वायां न्यासनादेवि !
 मूर्कोऽपि सुकविर्भवेत् । बृहन्नीलतन्त्रे सप्तमपटले द्वितीय-
 विद्यात्रयचरोमन्त्रप्रधिकृत्य । इदानीं शृणु चार्वाङ्गि ! कविता-
 कारकं परम् । प्रयोगं दुर्लभं गोप्यं तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
 चण्डीं चाण्डालिनीञ्चैव त्यागिनं सर्वमोहनम् । वीजत्रयं जपे-
 द्रात्रौ मध्ये चैव रवेर्दिने । अष्टाधिकसहस्रस्य प्रमाणेन जपं
 चरेत् । शताभिमन्त्रितं कृत्वा पिबेच्च जलमुत्तमम् । सप्तदिन-
 प्रयोगेण कविता चित्तमोदिनी । जायते नात्र सन्देहः सत्यं
 सुरगणार्चितं ॥ पाणिना दक्षिणेनैव मधुलाजान् समानयेत् ।
 नाडीच्छेदाच्च प्रागेव बालं संस्कुर्व्याच्च साधकः । कवित्वं जायते
 तेन पाण्डित्यं सुरवन्दितम् ॥ जिह्वां सम्प्रार्ज्य देवेशि ! लिखेद्देम-
 शलाकया । दूर्वया वा महादेवि ! जिह्वोष्ठयोः समालिखेत् ।
 पंक्तिद्वयेन संलेख्य कुर्याच्च बालसंस्क्रियाम् । एकादशाहं देवेशि !

द्वादशाहैऽथ वा पुनः । वर्णजात्यादिभेदेन मासान्तः सम्भवि-
ष्यति । यथाशक्त्युपचारेण देवतां पूजयेत् पुनः । सम्पूज्य
देवतां भक्त्या लिखेन्मन्त्रं महेश्वरि ! । यदा पिता न देशस्थः
पितृव्यो मातुलोऽपि वा । लिखित्वा परमेशानि । कुर्याच्च
बालसंस्क्रियाम् । मूलमन्त्रं लिखेन्मन्त्री यस्यैष्ठे श्वेतदूर्वया ।
वाक्योच्चारणतो बालो वाग्मी द्रुतकविर्भवेत् । जन्मसंस्कारकं
नाम पुत्रे जाते प्रशस्यते । जिह्वायाञ्च लिखेद्यन्त्रं यत्रे दारुकु-
शेन वा । वारत्रयन्तु सम्भार्य दक्षिणेनैव पाणिना । मन्त्रमु-
च्चार्य प्रत्येकं पंक्तिं कुर्यात् सुशोभनम् । आदौ संस्कारः कर्त्तव्य-
स्वादन्ते विलिखेन्मनुम् । गन्धचन्दनपुष्पैश्च पूजयेत् तारिणीं
शिवे ! । उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थापयेत् पीठमुत्तमम् । पूज-
येत् तारिणीं देवीं नानाभक्ष्यैः सुशोभनैः । पीठेऽप्युपचारैश्च
पूजयेद् भक्तिभावतः । धूपं दद्यात्पुष्पमालां सर्वकामप्रदम् ।
नारिकेलं तथा रत्नां वदरं चतुर्धा । वीजधूपं कर्णिकारं
शर्करां गन्धसंयुताम् । मधूदकं कलायञ्च सिद्धन्त्रं पायसामु-
तम् । माषं मत्स्यं पिष्टकञ्च दद्यादतिप्रियं महत् । कविर्वाग्मी
भवेत् पुत्रः सर्वकामप्रकारकः । जितेन्द्रियः सत्यवादी धार्मिको
जायते महान् ॥ दद्यादित्यनेन सम्प्रदानोपस्थितेर्वचने ब्राह्मण-
पदस्याभावेऽपि ब्राह्मणेभ्य इति लभ्यते । अतो ब्राह्मणसम्प्रदान-
कमाषादिदानव्यवहार इति ॥ महानिर्वाणतन्त्रे ॥ कृतोपन-
यने पुत्रे तेन नाम्ना समाह्वयेत् । प्रायश्चित्तादिकं कृत्वा जात-
कर्म्म समापयेत् । नालच्छेदं ततो धात्री कुर्यादुत्साहपूर्वकम् ।
यावन्न च्छिद्यते नालं तावत् शौचं न बाधते । प्रागेव नाडीका-
च्छेदात् देवीं पैत्रीं क्रियाञ्चरेत् । कुमार्याश्चापि कर्त्तव्यमेव-
मेवममन्त्रकम् ॥ इति जातकर्म्म ॥

षष्ठे वा चाष्टमे मासि नाम कुर्यात् प्रकाशतः । स्नाप-

यित्वा शिशुं माता परिधाप्यास्वरे शुभे । भर्तुः पार्श्वं समा-
 गत्य प्राङ्मुखं स्थापयेत् सुतम् । अभिषिञ्चेत् शिशोर्मूर्ध्नि सहिर-
 ण्यकुशोदकैः । जाङ्गवी यमुना रेवा सपत्न्या सरस्वती ।
 नर्मदा वरदा कुन्भी सागराश्च सरांसि च । एते त्वामभिषिञ्चन्तु
 धर्मकामार्थसिद्धये । ह्रीं । आपो हिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जो
 दधातन । महैरणाय चक्षुषे यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजय-
 तेह नः । उग्रतीरिव मातरः तस्मा अरङ्गमाम वो क्षयाय
 जित्वथ आपो जनयथा च नः । अभिषिच्य त्रिभिर्मन्त्रैः
 पूर्ववद्वह्निःसंस्क्रियाम् । कृत्वा सम्पाद्य धारान्तं दद्यात् पञ्चाहुतीः
 सुधीः । अग्नये प्रथमं दत्त्वा वासवाय ततः परम् । ततः प्रजानां
 पतये विश्वेदेवेभ्य एव । ब्रह्मणे चाहुतीं दद्याद्वह्नी पार्थिव-
 संज्ञके । ततोऽङ्गे पुत्रमादाय आवयेद्वह्निण्युती । स्वध्यात्वरं
 सुखोच्चार्यं शुभं नाम विप्रक्षयः । आवयित्वा त्रिधा नाम ब्रा-
 ह्मणेभ्यो निवेद्य च । ततः समापयेत् कर्म कृत्वा खिष्टिकृता-
 दिकम् । कन्याया निष्क्रमो नास्ति वृद्धिश्चाहं न विद्यते ।
 नामान्नप्राशनं चूडां कुर्याद्बीमानमन्त्रकम् । चतुर्थे मासि षष्ठे
 वा कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोः । कृतनित्यक्रियस्तातः सम्पूज्य
 गणनायकम् । स्नापयित्वा तु तनयं वस्त्रालङ्कारभूषितम् । सं-
 स्थाप्य पुरतो विद्वानिमं मन्त्रमुदीरयेत् । ब्रह्मा विष्णुः शिवो
 दुर्गा गणेशो भास्करस्तथा । इन्द्रो रायुः कुबेरश्च वरुणो-
 ऽग्निर्वहस्पतिः । शिशोः शुभं प्रकुर्वन्तु रक्षन्तु पथि सर्वदा ।
 इत्युक्त्वाङ्गे समादाय गीतवाद्यपुरःसरम् । वह्निर्निष्क्रामयेद्दालं
 सानन्दैः स्वजनैः सह । गत्वाध्वनि क्रियदूरं शिशुं सूर्यं निरी-
 क्षयेत् । ह्रीं । तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुचरत् । पश्येम
 शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् । शृणुयाम शरदः शतम् ।
 इत्यादित्वं दर्शयित्वा समागत्य निजालयम् । अर्घ्यं दत्त्वा

दिनेशाय स्वजनान् भोजयेत् पिता ॥ इति निष्क्रमणम् ॥

षष्ठे मासि कुमारस्य मासे वाप्यष्टमे शिवे ।। पितृभ्राता
पिता वापि कुर्यादन्नाशनक्रियाम् । पूर्ववद्देवपूजादि वङ्गि-
संस्करणं तथा । एवं धारान्तकर्माणि सम्प्राप्य विधिवत् पिता ।
दद्यात् पञ्चाहुहीस्तत्र शुचिनाम्नि हुताशने । अग्निमुद्दिश्य
प्रथमां द्वितीयां वासवं स्मरन् । ततः प्रजापतिं देवं विश्वान्
देवान् ततः परम् । ब्रह्माणञ्च समुद्दिश्य पञ्चमीमाहुतिं
त्यजेत् । ततोऽग्नावन्नदां ध्यात्वा दत्तपञ्चाहुतिः पिता । तत्रा-
थवा गृहेऽन्यस्मिन् वस्त्रालङ्कारशोभितम् । क्रोडे निधाय
तनयं प्राशयेत् पायसामृतम् । पञ्चप्राणाहुतेर्मन्त्रैर्भोजयित्वा
तु पञ्चधा । ततोऽन्नव्यञ्जनादीनां दत्त्वा किञ्चित् शिशो-
मुखे । शङ्खतूर्यादिघोषेण प्रायश्चित्तं समापयेत् ।

इत्यन्नप्राशनं प्रोक्तं चूड़ाविधिमतः शृणु । तृतीये पञ्चमे
वर्षे कुलाचारानुसारतः । चूड़ाकर्म शिशोः कुर्याद्बालसंस्का-
रसिद्धये । देवपूजादिधारान्तकर्म निष्प्राप्य साधकः । सत्या-
ग्नेरुत्तरे देशे वृषगोमयपूरितम् । तिलगोधूमसंयुक्तं शरावं
स्थापयेद्बधः । कवोष्णं सलिलञ्चापि क्षुरमेकं सुशोणितम् ।
आसाद्य तनयं तत्र जनकः स्वीयवामतः । संस्थाप्य जननीक्रोडे
कवोष्णसलिलैश्च तैः । वारुणं दशधा जप्त्वा सम्मार्ज्यं शिशुमूर्ध-
जान् । मायया कुशपत्राभ्यां जुष्टिमेकां प्रकल्पयेत् । मायां
लक्ष्मीं त्रिधा जप्त्वा गृहीत्वा लौहजं क्षुरम् । छित्त्वा तु जुष्टिका-
मूलं मातृहस्ते निवेशयेत् । कुमारमाता हस्ताभ्यामादाय
गोमयान्विते । शरावे स्थापयेज्जुष्टिं नापिताय पिता वदेत् ।
क्षुरमुण्डे शिशोः क्षीरं सुखं साधय ठहयम् । पठित्वा नापितं
पश्यन् सत्यनामनि पावके । प्रजापतिं समुद्दिश्य प्रदद्यादाहुति-
त्रयम् । नापितेन कृतक्षीरं स्नापयित्वा शिशुं ततः । वस्त्रा-

लङ्कारमात्रेण भूषयित्वाग्निस्त्रिधौ । स्ववामभागे संस्थाप्य
स्त्रिष्टिकृद्भोममाचरेत् । प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा दद्यात् पूर्णा-
हुतिं पिता । माया शिशो ! ते कुशलं कुरुतां विश्वकृद्भिः ।
पठित्वैनं शिशोः कर्णं स्वर्णमय्या शलाकया । राजत्या लौहमय्या
वा तत्र वेधं प्रकल्पयेत् । आपोहिष्ठेति मन्त्रेण अभिषिच्य सुतं
ततः । शान्त्यादिदक्षिणां कृत्वा चूडाकर्म समापयेत् । गर्भा-
धानादिचूडान्तं समानं सर्वजातिषु । शूद्रसामान्यजातीनां
सर्वमेतदमन्त्रकम् । जातकर्मादिचूडान्तं कुमार्थाश्चाप्यम-
न्त्रकम् । कर्तव्यं पञ्चभिर्वर्णैरेकं निष्क्रमणं विना ॥

अथोच्यते द्विजातीनामुपवीतिक्रियाविधिः । यस्मिन् कृते
द्विजज्ञानो दैवपैत्र्याधिकारिणः । गर्भाष्टमेऽष्टमे वार्धे कुर्यादु-
पनयंशिशोः । षोडशाब्दाधिको नोपनेतव्यो निष्क्रियो हि सः ।
कृतनित्यक्रियो विद्वान् पञ्च देवान् समर्चयेत् । गौर्यादिमातृ-
काश्चैव वसुधारं प्रकल्पयेत् । वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्यात् देवता-
पितृहस्तये । कुम्भस्त्रिकोक्तविधिना धाराहोमान्तमाचरेत् ।
प्रातः कल्पाशनं बलं सुस्नातञ्च स्वलङ्कृतम् । शिखां विना कृत-
क्षीरं क्षीमाश्वरविभूषितम् । क्षायामण्डपमानीय समुद्भवहुता-
शितुः । समीपे चात्मनो वामे संस्थाप्य विमलासने । शिष्यं
वटेद्वज्रचर्यं कुरु वज्र ! ततः शिशुः । ब्रह्मचर्यं करोमीति गुरवे
विनिवेदयेत् । ततो गुरुः प्रसन्नात्मा शिशवे शान्तचेतसे ।
काषायवाससौ दद्याद्दोषाषुष्टाय वर्चसे । मौञ्जीं कुशमयीं वापि
त्रिवृतां ग्रन्थिसंयुताम् । तूष्णीञ्च मेखलां दद्यात् काषायवस्त्र-
धारिणे । मायामुच्चार्य सुभगा मेखलां स्थाच्छुभप्रदा । इत्युक्त्वा
मेखलां बद्धा मौनी तिष्ठेद् गुरोः पुरः । यज्ञोपवीतं परमं प्रवित्रं
ब्रह्मस्तेर्यत् सहजं पुरस्तात् । आयुधमयं प्रतिमुञ्च शुभं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ मन्त्रेणानेन शिशवे दद्यात् कृष्णा-

जिनान्वितम् । यज्ञसूत्रपरिमाणन्तु मातृकामेदतन्त्रे एकादश-
पटले ॥ यज्ञसूत्रस्य यन्मानं तत् शृणुष्व वरानने ।। ऋग्वेदी
धारयेत् सूत्रं नाभेरुर्ध्वं स्तनादधः । यजुषां सूत्रमानं हि आश्वय्यं
शृणु शैलजे ।। बाहुमूलप्रमाणेन यज्ञसूत्रं द्विजातिभिः । धारणीयं
प्रयत्नेन नान्यदघ्नं कदाचन । नान्यदघ्नं नान्यप्रमाणमित्यर्थः ।
सामगस्य दीर्घसूत्रं त्रिविधं वरवर्णिनि ।। ब्रह्मरन्ध्रान्नाभिदेश-
पर्यन्तं यज्ञसूत्रकम् । अथवापि च ग्रीवायामारोप्य नाभिमा-
सृशेत् । तस्मात् पृष्ठे मेरुदण्डपर्यन्तं यज्ञसूत्रकम् । अथवा
परमेशानि । प्रकारान्तरमुच्यते । ग्रीवाया दक्षिणाङ्गुष्ठपर्यन्तं
यज्ञसूत्रकम् । अथर्वो धारयेत् सूत्रं यत्नेन यजुषां मतम् ।
अथवा धारयेत् सूत्रं सामगस्य प्रमाणतः । अथवा धारयेत्
यज्ञसूत्रं परममोहनम् । आज्ञाचक्रान्नाभिदेशपर्यन्तं यज्ञ-
सूत्रकम् । एतत् सङ्केतमज्ञात्वा यः कुर्यात् सूत्रधारणम् । स
चण्डालसमो देवि ! यदि व्याससमो भवेत् ॥ प्रसङ्गाद् यज्ञ-
सूत्रस्य कर्त्तनं जीवन्वासस्य लिख्यते ॥ गायत्रीतन्त्रे चतुर्थ-
ब्राह्मणपटले ॥ कन्या च कर्त्तयेत् सूत्रं पतिपुत्रवती तथा ।
विधवाऽविधवा वापि पुत्रहीनापि ब्राह्मणी । क्षत्राणी वैश्यदारा
च कर्त्तयेन्न तु शूद्रिणी । दीक्षिता यदि सा शूद्रा कर्त्तनेन च
निन्दिता । सच्छूद्रा यदि सा भद्रे ! शूद्रा सा सूत्रकर्त्तने । अस-
च्छूद्रा महेशानि ! निन्दिता सूत्रकर्त्तने । कार्पाससम्भवं सूत्रं
यज्ञसूत्रं विनिर्मितम् । सूक्ष्मातिसूक्ष्मं परमं सर्वदेवमयं
तथा ॥ इति निर्माणम् ॥ अणुग्रन्थिः । ग्रन्थिकाले स्मरेद्विप्रान्
सूत्रं भवति मूर्त्तिमत् । ब्रह्मा च काश्यपो विप्रः सनकश्च स-
नन्दनः । सनत्सनातनो विप्रो नारदः कपिलस्तथा । मरीचि-
रत्रिः पुलहः पुलस्त्यो गौतमः क्रतुः । भृगुर्दक्षः प्रचेताश्च
वशिष्ठो वाल्मीकिस्तथा । द्वैपायनो भरद्वाजः शुक्रो जैमिनि-

रेष च । विदूरथः शुनःशेफो जातुकर्णश्च रौरवः । और्वः
 संवर्त्तकः शुक्रः सुराचार्यो बृहस्पतिः । चन्द्रः सूर्यो बुधः
 श्रीमान् यज्ञसूत्रस्य ग्रन्थिषु । तिष्ठन्तु मम वामांशे वामस्कन्धे
 त्वहर्निशम् । ब्रह्माद्या देवताः सर्वा यज्ञसूत्रस्य देवताः ॥ तथा ।
 जीवन्त्यासं प्रवक्ष्यामि यज्ञसूत्रस्य संश्रृणु । यज्ञसूत्रं करे कृत्वा
 दक्षिणे द्विजसत्तमः । गायत्रीं प्रथमं जप्त्वा प्रणवं प्रजपेत् शतम् ।
 गायत्रीं पुनरुक्त्वा वै वामस्कन्धे निवेशयेत् । जीवन्त्यासं विना
 देवि ! यज्ञसूत्रञ्च सूत्रवत् ॥ महानिर्वाणे ॥ यज्ञोपवीतं
 दण्डञ्च वैष्णवं खादिरञ्च वा । पालाशमथवा दद्यात् क्षीरवृक्ष-
 समुद्भवम् । आपोहिष्ठेति मन्त्रेण मायया पुटितेन च । तिरा-
 वृत्त्वा कुशान्भोभिर्धृतदण्डोपवीतकम् । अभिषिच्य ततस्तोयैः
 पूरयेद्वालकाञ्जलिम् । तदञ्जलिं दिनेशाय दातारं ब्रह्मचा-
 रिणम् । तच्चक्षुरिति मन्त्रेण दर्शयेद्भास्करं गुरुः । दृष्ट्वा भास्क-
 रमाचार्यो वदेन्माणवकं ततः । मम व्रते मनो धेहि मम चित्तं
 ददामि ते । जुषस्त्वैकमना वत्स ! मम वाचोऽस्तु ते शिवम् ।
 हृदि स्पृष्ट्वा पठित्वैनं किंनामासौति तं वदेत् । शिष्यस्त्वमुकशर्माहं
 भवन्तमभिवादये । कस्य त्वं ब्रह्मचारीति गुरौ पृच्छति पार्वति ॥
 शिष्यः सावहितो ब्रूयाद्भवतो ब्रह्मचार्यहम् । इन्द्रस्य ब्रह्म-
 चारो त्वमाचार्यस्ते हुताशनः । इत्युक्त्वा स गुरुः पश्चाद्देवेभ्यस्तं
 समर्पयेत् । त्वां प्रजापतये वत्स ! सवित्रे वरुणाय च । पृथिव्यै
 सर्वदेवेभ्यः सर्ववेदेभ्य एव च । समर्पयामि ते सर्वे रक्षन्तु त्वां
 निरन्तरम् । ततो माणवको वज्रं दक्षिणावर्त्मयोगतः । गुरुं
 प्रदक्षिणौकृत्य आसने पुनराविशेत् । गुरुः शिष्येण सम्पृष्टः समु-
 द्भवहुताशने । पञ्च देवान् समुद्दिश्य दद्यात् पश्चाद्भुतोः प्रिये ! ।
 प्रजापतिस्ततः शक्रो विष्णुर्ब्रह्मा शिवस्तथा । मायादिवाङ्मिजाया-
 न्तैर्जुहुयात् स्वस्वनामभिः । अगुक्तमन्त्रे सर्वत्र विधिरेष प्रकीर्तितः ।

ततो दुर्गा महालक्ष्मीः सुन्दरी भुवनेश्वरी । इन्द्रादिदशदिक्-
पाला भास्करादिनवग्रहाः । प्रत्येकनाम्ना हुत्वैतान् वाससाच्छाद्य
बालकम् । पृच्छेन्माणवकं प्राज्ञो ब्रह्मचर्य्याभिमानिनम् । को
वाञ्छयस्ते तनय ! ब्रूहि किन्ते मनोगतम् । ततः शिष्यः साव-
हितो धृत्वा गुरुपदद्वयम् । करोतु मामाश्रमिणं ब्रह्मविद्योप-
देशतः । एवं प्रार्थयमानस्य दक्षकर्णे शिशोस्तदा । आवयित्वा
त्रिधा तारं सर्वमन्त्रमयं शिवे ! । व्याहृतित्रयमुच्चार्य सावित्रीं
आवधेद् गुरुः । ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
अधिष्ठात्री च सावित्री मोक्षार्थे विनियोगिता । अन्तर्गतं मह-
द्वर्चो वरणीयं यथात्मभिः । ध्यायेन्म तत् पदं सत्यं सर्वव्यापि
सनातनम् । यो भर्गः सर्वसाक्षी नो मनोबुद्धीन्द्रियाणि च ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु प्रेरयेद्विनियोजयेत् । इत्यमर्थयुतां ब्रह्म-
विद्यामासाद्य सद्गुरुः । शिष्यं नियोजयेद्देवि ! गृहस्थाश्रम-
कर्मसु । ब्रह्मचर्य्याचितं वेशं वस्त्रेदानीं परित्यज । शास्त्रवो-
दितमार्गेण देवान् पितृन् समर्चय । ब्रह्मविद्योपदेशेन पवित्रं
ते कलेवरम् । प्राप्ता गृहस्थाश्रमिता तदुक्तं कर्म कल्पय । उप-
वीतद्वयं दिव्यवस्त्रालङ्करणानि च । गृहाण पादुकाच्छत्रं गन्ध-
माल्यानुलेपनैः । ततः काषायवसनं कृष्णाजिनसमन्वितम् ।
यज्ञसूत्रं मेखलाञ्च दण्डं भिक्षाकरण्डकम् । आचारादर्जितां
भिक्षां समर्प्य गुरवे शिवे ! । शुद्धोपवीतयुगलं परिधायाम्बर-
शुभे । गन्धमाल्यधरस्तूष्णीं तिष्ठेदार्थसन्निधौ । ततो गृहस्था-
श्रमिणं शिष्यमेतद्वदेद् गुरुः । जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्रह्मविद्या-
रतो भव । स्वाध्यायाश्रमकर्माणि यथाधर्मेण साधय । इत्यादिश्ल-
त्विदं पश्चात् समुद्भवहुताशने । मायादिप्रणवान्तेन भूर्भुवः-
स्वस्त्रयेण च । हावयित्वा त्रिधाचार्यः स्त्रिष्टिकृद्धोममाचरेत् ।
हृत्वा पूर्णाहुतिं भद्रे ! व्रतकर्म समापयेत् । वीजसेकादिसं-

स्कारा व्रतान्ताः पितृतो नव । उद्वाहः पितृतो वापि स्वतोऽपि
 सिध्यति प्रिये । ॥ मत्स्यमूक्ते एकत्रिंशत्पटले ॥ अदारस्य गति-
 नास्ति सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः । सुरार्चनं महायज्ञं हीनभार्या
 विवर्जयेत् । एकचक्ररथो यद्वदेकपत्नी यथा खगः । अभार्याऽपि
 नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु । भार्याहीने क्रिया नास्ति भार्या-
 हीने कुतः सुखम् । भार्याहीने गृहं कस्य तस्माद्भार्यां समाश्र-
 येत् । सर्वस्वेनापि देवेशि ! कर्तव्यो दारसंग्रहः । इति दार-
 परिग्रहस्यावश्यकत्वम् तत्रैव ॥ सत्रासमथवा कार्यं तृतीयं नोप-
 पद्यते । सवर्णा ब्राह्मणी या तु धर्मपत्नी च सा स्मृता । असवर्णा
 च या भार्या कामपत्नी तु सा स्मृता ॥ इति धर्मपत्नीनिर्णयः ।
 महानिर्वाणतन्त्रे ॥ विवाहे हि कृतस्नानः कृतनित्यक्रियः कृती ।
 पञ्च देवान् समभ्यर्च्य गौर्यादिमातृकास्तथा । वसोर्धारां कल्प-
 यित्वा वृद्धिश्चाङ्गं समाचरेत् । रात्रौ प्रतिश्रुतं पात्रं गीतवाद्य-
 पुरःसरम् । छायामण्डपमानीय उपविश्य वरासने । वासवाभि-
 मुखं दाता पश्चिमाभिमुखो विशेत् । आचार्यः स्वस्तिसृष्टिञ्च
 कथयेद्ब्राह्मणैः सह । साधुप्रश्नं वरं पृच्छेदर्चनाप्रश्नमेव च ।
 वराग्रश्रोत्तरं नीत्वा पादाद्यैर्वरमर्चयेत् । समर्पयामि वाक्येन
 देशद्रव्यं समर्पयेत् । पादयोरर्पयेत्पादं शिरस्यर्घ्यं निवेदयेत् ।
 आचम्यं वदने दद्याद्गन्धं माल्यं सुवाससी । दिव्याभरणरत्नानि
 यज्ञसूत्रं समर्पयेत् । ततस्तु भाजने कांस्ये कृत्वा दधि घृतं
 मधु । समर्पयामि वाक्येन मधुपर्कं करेऽर्पयेत् । वरोऽपि पात्र-
 मादाय वामे पाणी निधाय च । दद्याद्गुष्ठानामिकाभ्यां प्राणा-
 हुत्यक्तमन्त्रकैः । पञ्चधाघ्राय तत्पात्रमुदीच्यां दिशि धारयेत् ।
 मधुपर्कं समाप्यैवं पुनराचामयेद् द्वयम् । दूर्वाक्षताभ्यां जामातु-
 विष्टृत्य जानु दक्षिणम् । स्मृत्वा विष्णुं तत्सदिति मासपक्षौ
 तिथिं ततः । समुल्लिख्य निमित्तानि वृणुयाद्वरमुत्तमम् । गीत-

प्रवरनामानि प्रत्येकं प्रपितामहात् । षष्ठान्तानि समुच्चार्य वरस्य
जनकावधि । द्वितीयान्तं वरं ब्रूयाद्भोत्रप्रवरनामभिः । तथैव
कन्यामुद्दिश्य ब्राह्मोद्वाहेन पण्डितः । दातुं भवन्तमित्युक्त्वा
हृणोऽहमिति कीर्तयेत् । वृतोऽस्मीति वरो ब्रूयात् ततो दाता
वदेद्वरम् । यथाविहितमित्युक्त्वा विवाहकर्म कुर्विति । वरो
ब्रूयाद् यथाज्ञानं करवाणि तदुत्तरम् । ततः कन्यां समानीय
वस्त्रालङ्कारभूषिताम् । वस्त्रान्तरेण सञ्छाद्य स्थापयेद्वरसममुखे ।
पुनर्वरं समर्थ्य वासोऽलङ्करणदिभिः । वरस्य दक्षिणे पाषी
कन्यापाणिं नियोजयेत् । तन्मध्ये पञ्चरत्नानि फलताम्बूलमेव
वा । दत्त्वाञ्चयित्वा तनयां वराय विदुषेऽर्पयेत् । प्राग्वत् त्रैपु-
रुषाख्यानं निमित्ताख्यानमेव च । आत्मनः काममुद्दिश्य चतु-
र्थ्यन्तं वरं वदेत् । कन्याभिधां द्वितीयान्तामर्चितां समलङ्कु-
ताम् । साच्छादनां प्रजापतिदेवताकासुदौरयन् । तुभ्यमह-
मिति प्रोच्य दद्यात् सम्प्रददे वदन् । वरः स्वस्तीति स्वीकृत्वा
सम्प्रदाता वरं वदेत् । धर्मं चार्थं च कामे च भवता भार्यया
सह । वर्तितव्यं वरो वाचमुक्त्वा कामस्तुतिं पठेत् । दाताः कासी
अहोतापि कामायादाच्च कामिनीम् । कामेन त्वां प्रतिगृह्णामि
कामः पूर्णोऽस्तु चावयोः । ततो वदेत् सम्प्रदाता कन्यां जामा-
तरं प्रति । प्रजापतिप्रसादेन युवयोरभिवाञ्छितम् । पूर्णमस्तु
शिवञ्चास्तु धर्मं पालयतं युवाम् । तत आच्छाद्य वस्त्रेण सम्प्रदाता
सुमङ्गलैः । परस्परमुखालोकं कारयेद्वरकन्ययोः । ततो हिर-
ण्यरत्नानि यथाशक्त्वनुसारतः । जामात्रे दक्षिणं दद्यादच्छिद्र-
मवधारयेत् । वरस्तु भार्यया सार्द्धं तद्राजं दिवसेऽपि वा ।
कुशण्डिकोक्तविधिना वज्रिस्थापनमाचरेत् । वीजकाख्यः पाव
कोऽत्र प्राजापत्यश्चरुः स्मृतः । धारान्तं कन्यामुद्दिश्य दद्यात्
पञ्चाहुतीर्वरः । शिवं दुर्गां तथा विष्णुं ब्रह्मण्यं सप्तधारिणम् ।

ध्वात्वैकैकं समुद्दिश्य जुहुयात् संस्तुतेऽनले । भार्यायाः पाणि-
युगलं गृह्णीयात्तान्युदीरयन् । पाणिं गृह्णामि सुमगै ! गुरुदेव-
रता भव । गाहस्यं धर्मकर्मण यथावदनुशीलय । घृतेन स्वामि-
दत्तेन लाजैर्भ्राताहृतैः शिवे ! । प्रजापतिं समुद्दिश्य दद्याद्-
द्वा चाहुती वरः । प्रदक्षिणीकृत्य वङ्गिमुत्थाय भार्यया सह । दुर्गां
शिवं रमां विष्णुं ब्राह्मीं ब्रह्माणमेव च । युग्मं युग्मं समुद्दिश्य
त्रिस्त्रिधा हवनं चरेत् । अश्ममण्डलिकासप्तारोहौ कुर्यादम-
न्त्रकम् । निशायाच्चेत्तदा स्त्रीभिः पश्येद्धूम्रामरुन्धतीम् । प्रत्या-
वृत्त्यासने सम्यगुपविश्य वरस्तदा । स्त्रिष्टिक्रदोमपूर्णाहुत्यन्तं
कर्म समापयेत् । ब्राह्मो विवाहो विहितो दोषहीनः सवर्णया ।
कुलधर्मानुसारेण गोत्रभिन्ना सपिण्डजा । ब्राह्मोद्वाहेन या
याह्या सैव पत्नी गृहेश्वरी । तदनुज्ञां विना ब्राह्मविवाहं ना-
चरेत् पुनः । अस्या अपत्ये तदंशे विद्यमाने कुलेश्वरि ! ॥

अथ महानिर्वाणतन्त्रोक्तदशसंस्कारप्रयोगः । संस्कारै-
र्विना देवपैत्रकर्मनधिकारितया सर्वैर्विप्रादिभिर्वर्णैः स्वस्व-
वर्णोक्ताः संस्काराः कार्याः । दश संस्कारास्तु वीजसेकपुंसवन-
सीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूड़ोपनयन-
विवाहाः । ततः शूद्राणामधमशूद्राणामुपनयनं नास्ति तेषां
नवैव संस्काराः । ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानास्तु दश संस्कारा इति ॥

अथ गर्भाधानम् । कृतनित्यक्रिय आसने उपविश्य दौक्षा-
पडतिलिखित्यमाणमन्त्रैर्घटान् संस्थाप्य तत्र ब्रह्मदुर्गागणेश-
विष्णुसूर्यशिवरादित्यादिनवग्रहेन्द्रादिदशदिक्पालान् सम्पूज्य
ततो गौर्यादिषोडशमाह्वकाः पूजयेत् । षोडशमाह्वकास्तु ॥
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा
स्वाहा शान्तिः पुष्टिर्धृतिः क्षमा ॥ आत्मदेवता कुलदेवता एता-
वत्यः । पूजाक्रमस्तु ॥ अर्घ्यस्थापनं कृत्वा बद्धाञ्जलिः । क्लीं

आयान्तु मातरः सर्वास्त्रिदशानन्दकारिकाः । विवाहव्रतयज्ञानां
सर्वाभीष्टं प्रकल्पयताम् । यानशक्तिसमारूढाः सौम्यमूर्तिधराः
सदा । आयान्तु मातरः सर्वा यज्ञोत्सवसमृद्धये ॥ इति मातृ-
कागणमावाह्यं ह्रीं गौर्यै मात्रे नम इति पाद्यादिभिर्यथाशक्ति
सम्पूज्य एवं पञ्चायै मात्रे नम इत्यादिभिः षोडशमातृकार्चनं
स्वशक्त्या विधाय नाभिमात्रायां भित्तौ प्रादेशमात्रमध्ये सिन्दू-
रेण रक्तचन्दनेन वा सप्त वा पञ्च वा विन्दून् दद्यात् । ततः
प्रत्येकविन्दौ ह्रीमिति ह्रीमिति श्रीमिति वीजत्रयेणाविच्छिन्नां
वृत्तधारां दत्त्वा तत्र वसुं यजेत् । ततो होमप्रकरणलेख्य-
स्थण्डिलादिवह्निस्थापनान्तं कर्म कृत्वा होमद्रव्याणि संस्थाय
प्राजापत्यं चरुं अर्पयेत् । ततो वायुनामानमग्निं ध्यात्वा आवाह्यं
वृतेन पाद्यादिभिः सम्पूज्य धाराहोमान्तं कर्म कृत्वा ह्रीं प्रजा-
पतये स्वाहा इति मन्त्रेण चरुणा वारत्रयं जुहुयात् । ततो ह्रीं
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि यच्छतु । आसिञ्चतु प्रजा-
पतिर्धाता गर्भं दधातु ते । स्वाहा इत्यनेन चरुणा वारमेकं जुहु-
यात् । तत आज्येन चरुणा साज्येन न चरुणा वा सूर्यप्रजा-
पतिविष्णून् ध्यात्वा ह्रीं सूर्याय स्वाहा ह्रीं प्रजापतये स्वाहा
ह्रीं विष्णवे स्वाहा इति मन्त्रत्रयेण प्रत्येकं जुहुयात् । ततः
सिनीवालीसरस्वत्यश्विनान् ध्यात्वा ह्रीं । गर्भं धेहि सिनीवाली
गर्भं धेहि सरस्वती । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥
स्वाहा इत्यनेन वृतेन जुहुयात् । ततो मनसा रविं विष्णुं ध्यात्वा
ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं हुमित्यमुष्यै पुत्रकोमायै गर्भमाधेहि स्वाहा ।
इति मन्त्रेणाज्येन जुहुयात् । ततो विष्णुं मनसा ध्यात्वा ह्रीं ।
यथेयं पृथिवी देवी ह्युत्ताना गर्भमादधे । तथा त्वं गर्भमाधेहि
दशमे कासि सूतये ॥ स्वाहा इति मन्त्रेणाज्येन जुहुयात् ।
ततः पुनरपि विष्णुं मनसा ध्यात्वा ह्रीं । विष्णोर्ज्यैष्ठेन रूपेण

नार्थ्यामस्यां वरीयसम् । सुतमावेहि । स्वाहा इत्यनेनाज्येन जुहु-
यात् । ततः क्लीं ह्रीं स्त्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीमिति मन्त्रेण बध्वाः शिरः-
स्पृशेत् । ततः पुत्रवतीभिर्नारीभिः परिवेष्टितो हस्ताभ्यां बध्वाः
शिर आलभ्य विष्णुं दुर्गां विधिं सूर्यञ्च ध्यात्वा तस्याः क्रोडा-
ञ्चले फलत्रयं पतिर्दद्यात् । ततः स्निष्टिकृतं हुत्वा प्रायश्चित्त-
होमं कुर्यात् । ततः प्रदोषसमये गौरीसहितशङ्करं सम्पूज्य
भास्करार्घ्यं दद्यादिति । ततस्तद्रात्रावन्धरात्रौ वा युग्मायां
भार्यया सह भवनान्तरं गत्वा प्रजापतिं मनसा ध्यात्वा पत्नीं
संस्पृश्य शय्याशोधनं कुर्यात् । यथा । ह्रीं आवयोः सुप्रजायै
त्वं शय्ये ! शुभकरी भव । ततो भार्यया सह शय्यामारुह्य
प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य स्त्रियं पश्यन् तन्मस्तके हस्तं
दत्त्वा वामेन पाणिना तामालिङ्ग्य तस्याः शीर्षे क्लीमिति शतधा
चिवुके ऐमिति शतधा कण्ठे औमिति विंशतिधा स्तनद्वन्द्वे
औमिति शतधा हृदये ह्रीमिति पञ्चविंशतिधा जम्बा योनौ
करं दत्त्वा क्लीं ऐमिति अष्टोत्तरशतं जम्बा लिङ्गेऽपि ऐं क्लीमि-
त्यष्टोत्तरशतं जपेत् । ततो ह्रीमिति मन्त्रेण योनिं विकाशय
सुतप्राप्तये स्त्रियमुपगच्छेत् । ततो रेतःपातसमये विश्वकर्माणं
ध्यात्वा नाभेरधस्तात् चित्कुण्डे रेतः पातयेत् । शक्रपातान्त-
समये इमं पठेत् । ह्रीं । यथाग्निना सगर्भा भूधर्यैर्यथा वज्रधा-
रिणा । वायुना दिग्भवंती तथा गर्भवती भव ॥ इति गर्भा-
धानम् ॥

अथ पुंसवनम् । पतिः कृतनित्यक्रियः पञ्चदेवतापूजादिद्वि-
धादान्तं गर्भाधानपद्धत्युक्तं विधाय ततो वज्रिस्थापनादि कृत्वा
चन्द्रनामानमग्निं ध्यात्वावाह्य सम्पूज्य प्राजापत्यं चरुं पचेत् ।
ततो गव्ये दधि यवमेकं द्वौ माषौ च निक्षिप्य स्त्रियं पृच्छेत् ।
हे भद्रे ! किं त्वं द्विः कृतं पिबसि इति । ततः स्त्री ब्रूयात् मया

पुंसवनं कृतं पीयते । इत्युक्त्वा यवमाषशुतदधिप्रसृतित्वयं
पिबेत् । ततो जीववत्साभिर्वनिताभिस्तां यागस्थानं समान-
येत् । ततो वामभागे तां संस्थाप्य चरुमानीय ह्रीं हुं ये चात्र
विघ्नकर्तारो ये च गर्भविनाशकाः । भूताः प्रेताः पिशाचाश्च
वेताला बालघातकाः । तान् सर्वान्नाशय नाशय गर्भरक्षां कुरु
स्वाहा । इत्यनेन मन्त्रेण रक्षोघ्नं विचिन्त्य प्रजापतिञ्च ध्यायन्
चरुणा द्वादशाहुतीर्जुहुयात् । ह्रीं चन्द्रमसे स्वाहेति मन्त्रेण
पञ्चाहुतीर्दद्यात् । ततो भार्याहृदि सृष्ट्वा ह्रीं श्रीमिति मन्त्रं
शतं जपेत् । ततः स्त्रिष्टिज्जहोमस्तदनन्तरं प्रायश्चित्तहोमादि-
वह्निविसर्ज्जनान्तं कर्म कृत्वा दक्षिणाच्छिद्रावधारणान्तं कुर्या-
दिति पुंसवनम् ॥

अथ पञ्चासृतदानम् । तत्तु गर्भजननमासावधिके पञ्चमे
मासि गर्भिण्यै देयम् । पञ्चासृतन्तु समांशेन दधिमधुदुग्ध-
घृतशर्करामिश्रितरूपम् । अनेन स्त्रिया देहशुद्धिर्भवति । तत्र
प्रत्येकं द्रव्ये ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं हुं लमिति पञ्चधा जप्त्वा सन्निधौ
गर्भिणीं प्राशयेदिति पञ्चासृतदानम् ॥

अथ सीमन्तोन्नयनम् । तत्तु षष्ठेऽष्टमे वा मासि कर्तव्यम् ।
तत्राशक्तावपत्यजननात् पूर्वं कार्यम् । तत्र पतिः पञ्चदेवता-
पूजादिधारोहोमान्तं गर्भाधानप्रकरणोक्तं विधाय स्त्रिया सहा-
सने उपविश्य शिवनामानमग्निं ध्यात्वा आवाह्य यथाशक्ति
सम्पूज्य ह्रीं विष्णवे स्वाहा ह्रीं भास्वते स्वाहा ह्रीं धात्रे स्वाहा
इत्याहुतित्रयं दद्यात् । ततः सीमं ध्यात्वा ह्रीं सीमाय स्वाहा
इति सप्तधा जुहुयात् । अश्विनौ वासवं विष्णुं शिवं दुर्गाञ्च
प्रजापतिञ्च ध्यात्वा प्रत्येकं पञ्चाहुतीर्दद्यात् । ततः पतिः
स्वर्णकङ्कतिकां दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा स्त्रियाः सीमन्ताद्वदके-
शान्तप्राशे निवेश्य शिवं विष्णुं विधिञ्च ध्यायन् ह्रीं । भाव्यैः

कल्याणि ! सुभगे ! दशमे मासि सुव्रते । सुप्रसूता भव
प्रीता प्रसादादिश्वकर्मेण । आयुष्मति ! कङ्कतिका वर्चस्वी ते
शुभं कुरु ॥ इति पठेत् ॥ ततः स्विष्टिक्कङ्कोमप्रायश्चित्तहोमो
कृत्वा दक्षिणामग्निसर्जनादिकञ्च कुर्यादिति सीमन्तोद-
यनम् ॥

अथ जातकर्म । जातमात्रवालकं पिता स्वर्णं दत्त्वा पश्येत् ।
ततो गृहान्तरे गर्भाधानपद्मैर्युक्तं पञ्चदेवतापूजादिधाराहोमान्तं
कर्म कृत्वा पञ्चाहुतौर्दद्यात् । ह्रीमग्ने स्वाहा ह्रीमिन्द्राय
स्वाहा ह्रीं प्रजापतये स्वाहा ह्रीं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ह्रीं
ब्रह्मणे स्वाहा । इत्येभिर्मन्त्रैरिति । ततः कांस्यपात्रसमांशेन
मधुसर्पिणी समानीय तदुपरि ऐमिति सप्तधा जप्त्वा । ह्रीं । आयु-
र्वर्चो बलं देवा वर्धतां ते लघा शिशोः । इति मन्त्रेण दक्षिण-
हस्तानामिकया शिशुं प्राश्येत् । इत्यायुर्जननं कृत्वा पिता
गुप्तं नाम कुर्यात् । ततो जन्मदिनावधि त्रिदिनाभ्यन्तरे श्वेत-
दूर्वाभिः स्वर्णशलाकया वा मधुना बालकस्य जिह्वायां वाग्भव-
कूटं लिखेत् । अनेन वाग्भवकूटेन बालकः पण्डितः सुकविः
शब्दालङ्कारविच्च भवति । यदौमं मन्त्रं कृतपुरश्चरणो मूर्खस्य
शिरसि हस्तं दत्त्वा अष्टोत्तरशतं जपेत्तदा सोऽपि श्लोकं करि-
ष्यति । यदि चेमं मूकस्य जिह्वायां न्यसेत्तदा सोऽपि कवि-
र्भवति । अथ वा द्वितीयायास्त्र्यक्षरीं दूर्वया बालकस्य जिह्वीष्टौ
सम्भार्य पंक्तिद्वयेन लिखेत् । तत्र क्रमः । नाडीच्छेदात् प्रागे-
कादशाहे द्वादशाहे मासान्ते वा यथाशक्ति उपचारेण तां देवतां
सम्पूज्य मन्त्रं लिखेत् । यदि पिता न देशस्थस्तदा पिठव्यादि-
रेतत् कुर्यात् । अथवा श्वेतदूर्वया कुलदेवतामन्त्रं बालक-
स्थौष्ठे लिखेत् । स बालो वाग्मी द्रुतकविर्भवेत् । ततः स्विष्टि-
क्कङ्कोमादिवह्निविसर्जनान्तं कर्म कुर्यात् । कुमार्या अप्पेवं

सर्वममन्त्रकं कुर्यात् । तत उक्ताहपूर्वकं धात्री नाडीं छिन्यात् ।
तदनन्तरमशौचं भवतीति जातकर्म ॥

अथ नामकरणम् । षष्ठेऽष्टमे वा मासि प्रकाशतो नाम
कुर्यात् । तत्र माता शिशुं स्नापयित्वा नवे अश्वरे परिधाप्य
पत्युः पार्श्वं वामक्रोडासनमागत्य बालं प्राङ्मुखं स्थापयेत् ।
ततः पिता सहिरण्यकुशजलेन शिशोर्मूर्दानमभिषिञ्चेदेभि-
र्मन्त्रैर्यथा । ह्रीं जाङ्गवी यमुना रेवा सपवित्रा सरस्वती ।
नर्मदा वरदा कुक्षी सागराश्च सरांसि च । एते त्वामभिषिञ्चन्तु
धर्मकामार्थसिद्धये । ह्रीं । आपोहिष्ठाग्रयो भुवस्ता न ऊर्जो
दधातन महेरणाय चक्षसे । यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाज-
यतेह नः । उशतौरिव मातरः । तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य च-
याय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः । इत्यभिषिच्य पूर्वव-
द्विज्जिस्थापनादिधाराहोमान्तं कर्म कृत्वा पार्थिवनामानसग्निं
ध्यात्वा स्वत्याक्षरं सुखोच्चार्यं नाम त्रिधा पिता आवयित्वा
ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् । ततः स्विष्टिकृद्वोमान्तं कर्म समा-
पयेत् । एतत् कर्म कन्याया अप्यमन्त्रकं कर्तव्यमिति नाम-
करणम् ॥

अथ निष्क्रमणम् । निष्क्रमणन्तु चतुर्थे मासि षष्ठे वा
कुर्यात् । तत्र पिता कृतनित्यक्रियो गणेशं सम्पूज्य शिशुं स्नाप-
यित्वा वस्त्रालङ्कारैर्भूषयित्वा अग्रे संस्थाप्य ह्रीं ब्रह्मा विष्णु-
रित्यादिप्रमाणप्रकरणोक्तं पठित्वा बालकमङ्गे निधाय गीत-
वाद्यपुरःसरं सानन्दैः स्वजनैर्वृतो वह्निर्निष्क्रमयेत् । ततः
क्रियदूरं गत्वा ह्रीं तच्चतुर्देवहितमिति मन्त्रेण बालकं सूर्यं
दर्शयेत् । ततो गृहमागत्य सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा स्वजनान् भोजये-
दिति निष्क्रमणम् ॥

अथान्नप्राशनम् । तत्र षष्ठे मासि अष्टमे वा पितृभ्राता

पिता वा अन्नप्राशनक्रियां कुर्यात् । तत्र कृतनित्यक्रियः पूर्ववत्
सगणाधिपगौर्यादिकं सम्पूज्य शुचिनामानमग्निं संस्कृत्य
प्रागुक्तधाराहोमान्तं कर्म समाप्य पञ्चाहुतीर्जुहुयात् । यथा
ह्रीं अग्नये स्वाहा ह्रीं इन्द्राय स्वाहा ह्रीं प्रजापतये स्वाहा
ह्रीं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा । इति हुत्वा
तत्त्वान्यस्मिन् गृहे वा बालकं क्रोडे कृत्वा पञ्चप्राणाहुतिमन्त्रैः
प्रायसं पञ्चधा भोजयित्वा शिशोर्मुखे किञ्चिदन्नव्यञ्जनादि
दत्त्वा आचामयेत् । ततो गीतवाद्यपुरःसरं प्रायश्चित्तहोमादि
समापयेदित्यन्नप्राशनम् ॥

अथ चूडाकरणम् ॥ तृतीये वर्षे पञ्चमे कुलाचारप्राप्ते वा
चूडाकरणम् । तत्र कृतनित्यक्रियः सगणाधिपमातृकादिपूजां
विधाय सत्यनामानमग्निं संस्कृत्य धाराहुत्यन्तं कर्म समाध्याग्ने-
रुत्तरे तिलगोधूपसहितं वृषगोमयपूर्णं नवशरावं स्थापयेत्
कवोष्णं जलं शाण्णतं क्षुरञ्च । ततः पिता स्ववामे जननी-
क्रोडे बालकं निधाय वमिति दशधा जप्त्वा तेन कवोष्णतोयेन
केशान् सममार्ज्यं ह्रीमिति मन्त्रेण कुशपत्रद्वयनिर्मितजुष्टिका-
मेकां तत्र बध्नीयात् । ततो मायालक्ष्मीवीजद्वयं त्रिधा जप्त्वा
लौहजं क्षुरं गृहीत्वा सजुष्टिककेशमुपमूलं क्षिन्द्यात् । ततः
कुमारमाता तं सजुष्टिककेशं हस्ताभ्यां गृहीत्वा तस्मिन् गोम-
थान्वितनवशरावे स्थापयेत् । ततः पिता नापिताय ब्रूयात् ।
क्षुरमुण्डे शिशोः क्षीरं सुखं साधय स्वाहा । इति पठित्वा
बालकं पश्यन् सत्यनामानौ ह्रीं प्रजापतये स्वाहा इति त्रिवारं
जुहुयात् । ततः कृतक्षीरं स्नातं समलङ्कृतं समाल्यं बालं वाम-
भागे संस्थाप्य खिष्टिकृतप्रायश्चित्तहोमं हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्यात् ।
ततो ह्रीं शिशोः ! ते विश्वकर्मा कुशलं कुरुतामिति पठित्वा स्वर्ण-
मय्या राजत्या शलाकया वा शिशोः कर्णद्वये वेधं कल्पयेत् ।

तत आपोहिष्ठेत्यादिमन्त्रेण तमभिषिच्य शान्त्यादिकं कृत्वा
दक्षिणां कुर्यादिति चूडाकरणम् ॥

गर्भाधानादिचूडान्तं कर्म सर्वजातिषु समानं केवलं शूद्रा-
णामिदं सर्वममन्त्रकमिति ॥ अथोपनयनम् ॥ गर्भाष्टमेऽष्टमे-
ऽष्टे वा उपनयनं कर्त्तव्यमिति । षोडशब्दपर्यन्तमनुपनी-
तस्य बालस्य देवपैत्राक्रियायां नाधिकारः ॥ तत्र कृतनित्य-
क्रियः सगणाधिपमातृपूजादिदृष्टिश्चाङ्गान्तं कर्म कृत्वा कुश-
ण्डिकोक्तविधानेन समुद्भवनामानमग्निं संस्थाप्य धाराहोमान्तं
कर्म कृत्वा प्रातः कृताशनं शिखां विना मुण्डितशिरसं सुस्नातं
क्षौमास्त्रधरं खलङ्कृतं बालं क्वायामण्डपमानीय वह्निः समीपे
स्ववामे शुद्धासने उपवेशयेत् । ततो ह्रीं ब्रह्मचर्यं कुरु इति
गुरुः । ह्रीं ब्रह्मचर्यं करोमीति शिष्यो ब्रूयात् । ततो गुरु-
स्तस्मै शिष्याय काषाये वाससी कुशमयीं मेखलाञ्च दद्यात् । ह्रीं
सुभगा मेखला शुभप्रदा स्यादिति पठित्वा शिष्यो मीनी तिष्ठेत् ।
ह्रीं यज्ञोपवीतमिति मन्त्रं पठित्वा गुरुः शिष्याय कृष्णाजिन-
युक्तयज्ञोपवीतं दद्यात् । वेदभेदे सूत्रमानन्तु प्रमाणमध्ये अनुस-
न्धेयम् । पुनर्यज्ञोपवीतमात्रं वंशदण्डञ्च दद्यात् पालाशञ्च । ततो
मायापुटितापोहिष्ठादिमन्त्रेण त्रिपत्रकुशेन धृतकायं वस्त्रमेख-
लाजिनयज्ञसूत्रदण्डं शिष्यमभिषिच्य तोयेन तदञ्जलिं पूरयेत् ।
ततः सूर्यायाञ्जलिं दापयित्वा बालं ह्रीं तच्चक्षुरिति मन्त्रेणादित्यं
दर्शयेत् । ततो गुरुर्मणिवक्त्रहृदयं स्पृष्ट्वा ह्रीं मम व्रते ते इति
मन्त्रं पठित्वा किं नामासि इति पृच्छेत् । ततः शिष्यः श्रीश्रमु-
कनामाहं त्वामभिवादये इति वदेत् । ततो गुरुः कस्य त्वं ब्रह्म-
चारीति । शिष्यः भवतो ब्रह्मचार्थहम् । ततो गुरुः । इन्द्रस्य
ब्रह्मचारी त्वमाचार्यस्ते हुताशनः । इत्युक्त्वा ह्रीं प्रजापतये वक्त्र
इति मन्त्रेण माणवकं समर्प्य दक्षिणावर्त्तयोगेन वह्निं प्रद-

क्षिणीकारयित्वा आसने उपवेशयेत् । ततः शिष्येण सृष्टौ गुरुः
 ह्रीं प्रजापतये स्वाहा । ह्रीं इन्द्राय स्वाहा । ह्रीं विष्णवे
 स्वाहा । ह्रीं ब्रह्मणे स्वाहा । ह्रीं शिवाय स्वाहा । ततो
 मायादिस्वाहान्तेन नाम्ना दुर्गालक्ष्मीसुन्दरीभुवनेश्वरीन्द्रादिदश-
 दिक्पालभास्करादिनवग्रहेभ्यः स्वस्वनाम्ना प्रत्येकं जुहुयात् । ततो
 माणवकं वाससा आच्छाद्य को वाश्रमस्ते तनय ! बृहि किन्ते
 मनोगतम् । ततः शिष्यो गुरुपादद्वयं धृत्वा करोतु मामाश्र-
 मिणं ब्रह्मविद्योपदेशतः । इति प्रार्थयमानस्य शिष्यस्य दक्षकणे
 त्रिधा प्रणवं संश्राव्य संश्राद्धतिकां सावित्रीं श्रावयेत् । अन्या-
 ब्रह्मविद्या । गायत्र्याः सदाशिवं ऋषिरनुष्टुप्कृन्दः सावित्री
 देवता मोक्षार्थं विनियोगः । तदर्थं च ज्ञापयेत् । ततो माणवको
 भिक्षां कुर्व्यात् । ततो गुरुः ह्रीं ब्रह्मचार्य्युक्तवेशमिति पठेत् ।
 ततो माणवकः कषायवस्त्रं सकृन्नाजिनयज्ञसूत्रं मेखलां दण्डं
 भिक्षाकरण्डमजितभिक्षाञ्च गुरवे निवेद्य शुद्धयज्ञोपवीतद्वयं
 शुक्तवस्त्रद्वयञ्च परिधाय धृतगन्धमास्यं आचार्य्यसन्निधौ तूष्णीं
 तिष्ठेत् । ततो गुरुः । ह्रीं जितेन्द्रियः संत्यवादीत्यादि पठित्वा
 शिष्येण हावयेत् । यथा । ह्रीं ॐ भूः स्वाहा ह्रीं ॐ भुवः स्वाहा
 ह्रीं ॐ स्वः स्वाहा इत्यनेन । ततः ख्रिष्टिकद्वामादिदक्षिणान्तं
 कर्म समापयेदित्युपनयनम् ॥

अथ विवाहः । तत्र कृतनित्यक्रियः पञ्चदेवतापूजादिद्वि-
 आहान्तं कर्म कृत्वा रात्रौ गौतवाद्यपुरःसरं वरं क्वायामण्डप-
 मानीय पूर्वाभिमुखमासने समुपवेशयेत् । ततो ब्राह्मणैः
 पुण्याहं वाचयित्वा ह्रीं साधु भवानास्तामिति वरं पृच्छेत् । ततो
 वरः । ह्रीं साध्वहमासे इति वदेत् । ह्रीं अर्चयिष्यामो भवन्त-
 मिति वरं पृच्छेत् । ह्रीमर्चय इति वरो वदेत् । ह्रीं पाद्यं सम-
 र्पयामीत्यादिना पाद्यार्घ्याचमनीयगन्धपुष्पवस्त्रालङ्कारयज्ञसूत्रैर्वर-

मभ्यर्थं द्वीं मधुपर्कं समर्पयामीति वरहस्ते मधुपर्कं समर्पयेत् ।
ततो वरो मधुपर्कं गृहीत्वा वामहस्ते निधाय दक्षिणहस्ताना-
मिकाङ्गुष्ठाभ्यां द्वीं प्राणाय स्वाहा द्वीं अपानाय स्वाहा द्वीं समा-
नाय स्वाहा द्वीं उदानाय स्वाहा द्वीं व्यानाय स्वाहा इति
मन्त्रेण तन्मधुपर्कद्रव्यं पञ्चधा आधाय तत् पात्रमुदीच्यां दिशि
स्थापयेत् । ततो वराय पुनराचमनीयं दत्त्वा दाता दूर्वाक्ष-
ताभ्यां वरस्य दक्षिणं जानुं स्पृष्ट्वा विष्णुरोम् तत्सदस्य अमुके
मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुक-
गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकगोत्रस्यामुकप्रवरस्यामुकदेवशर्मणः
प्रपौत्रं पुनर्गोत्राद्युल्लिख्यामुकदेवशर्मणः पौत्रं पुनर्गोत्राद्युल्लि-
ख्यामुकदेवशर्मणः पुत्त्रं पुनर्गोत्रादिद्वितीयान्तमुल्लिख्य श्रीअमु-
कदेवशर्माणमर्चितं वरम् । एवं गोत्रप्रवरनामषष्ठान्तं प्रपिता-
महपितामहपितृणामुक्ता यथाक्रमं प्रपौत्रीं पौत्रीं पुत्रीञ्चोक्त्वा
अमुकगोत्राममुकप्रवरां श्रीअमुकीदेवीं ब्राह्मविवाहेन दातुं
भवन्तमहं वृणे इति वदेत् । वरस्तु द्वीं हतोऽस्मीति वदेत् ।
तदा यथाविहितं विवाहकर्म कुरु । वरः द्वीं यथाज्ञानतः
करवाणीति । ततः सवस्त्रालङ्कारां कन्यां ह्यायामण्डपमानीय
वरसम्मुखे स्थापयेत् । ततो वरहस्ते कन्याहस्तं नियोज्य
फलरत्नादिकं दत्त्वा प्राग्वत् सौरमासाद्युल्लेखानन्तरं प्रपितामह-
पितामहपितृणां गोत्रप्रवरनामषष्ठान्तमुल्लिख्य यथाक्रमं प्रपौ-
त्राय पौत्राय पुत्राय इत्युक्त्वा अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय श्रीअ-
मुकदेवशर्मणे वराय इत्युच्चार्य कन्यायाश्च प्रपितामहपितामह-
पितृणां षष्ठान्तं गोत्रप्रवरनामोल्लिख्य प्रपौत्रीं पौत्रीं पुत्रीमिति
यथासम्भवमुच्चार्य अमुकगोत्राममुकप्रवरां श्रीअमुकीदेवीं कन्या-
मित्यन्तं त्रिरुच्चार्य एनामर्चितां साच्छादनालङ्कारां प्रजापति-
देवताममुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति वराय दद्यात् ।

वरः स्वस्तीति स्वीकुर्यात् । ततः सम्प्रदाता धर्मं चार्थं च कामे
च भवता भार्यया सह वर्त्तितव्यम् । वरो वाङ्मिल्युक्ता काम-
स्तुतिं पठेत् । ततः सम्प्रदाता कन्याजामातरौ द्वीं प्रजापति-
प्रसादेनेत्यादि आवयित्वा वस्त्रेणाच्छाद्य सुमङ्गलपुरःसरैर्वर-
कन्ययोः परस्परमुखावलोकं कारयेत् । ततः काञ्चनादिकं
वराय दक्षिणां दत्त्वा अच्छिद्रावधारणं कुर्यात् । ततो वरस्त-
द्रात्रौ परदिवसे वा कुशण्डिकोक्तविधानेन योजकनामाग्निं
संस्थाप्य प्राजापत्यं चक्रं अर्पयेत् । ततो धाराहोमान्तं कर्म
कृत्वा द्वीं शिवाय स्वाहा । द्वीं दुर्गायै स्वाहा द्वीं विष्णवे स्वाहा
द्वीं ब्रह्मणे स्वाहा द्वीं इन्द्राय स्वाहा इति जुहुयात् । ततो द्वीं
पाणिं गृह्णामीति मन्त्रं पठित्वा भार्यायाः पाणिं गृह्णीयात् ।
ततः कन्या हस्तस्थेन स्वामिदत्तेन घृतेन भ्रात्राद्याहृतलाजैः
प्रजापतिमुद्दिश्य द्वीं प्रजापतये स्वाहा इति चतुर्धा जुहुयात् ।
ततो भार्यया सह उत्थाय वस्त्रं प्रदक्षिणोक्त्य द्वीं दुर्गाशि-
वाभ्यां स्वाहा द्वीं ब्राह्मीब्रह्मभ्यां स्वाहा । इति त्रिधा हुत्वा
अश्मारोहणसप्तपदीगमने अमन्त्रकं कारयेत् । रात्रौ चेहोम-
स्तदा स्त्रीभिः सह चन्द्रमरुत्यतीच्च पश्येत् ॥ ततः खिष्टिक्क-
जोमादिदक्षिणान्तं कर्म समापयेत् ॥ इति विवाहः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां द्वितीये धर्मकाण्डे संस्काररूपग्रन्थि-

कथनं नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

वक्ष्यमाणवच्चनैर्दीक्षाया अपि संस्काररूपत्वात् संस्कारमर्थं
वक्तव्यत्वमुचितम् । तस्या गुरुमूलतया त्वादी गुरुप्रकरणमु-
च्यते । तत्र गुरुलक्षणं शारादायां द्वितीयपटले ॥ माहृतः पितृतः
शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः । सर्वागमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थ-
तत्त्ववित् । परोपकारनिरतो जपपूजादितत्परः । अमोघ-
व्रचनः शान्ति वेदवेदाङ्गपारगः । योगमार्गार्थसन्वाधौ देवता-

हृदयङ्गमः । इत्यादिगुणसम्पन्नो गुरुरागमसम्मतः । देवता-
वत् हृदयङ्गमो मनोहर इत्यर्थः ॥ विश्वसारतन्त्रे द्वितीयपटले-
ऽपि ॥ सर्वशास्त्रपरो दक्षः सर्वशास्त्रार्थवित् सदा । सुवचाः
सुन्दरः स्वाङ्गः कुलीनः शुभदर्शनः । जितेन्द्रियः सत्यवादी
ब्राह्मणः शान्तमानसः । पिष्टमाह्निते युक्तः सर्वकर्मपरायणः ।
आश्रमी देशस्थायी च गुरुरेवं विधीयते ॥ आश्रमी गृहस्थः ।
तथाच मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे त्रयोदशपटले ॥ मध्यदेशसमुद्भूतः
शान्तः सर्वगुणैर्युतः । पुत्रदारैश्च सम्पन्नो गुरुरागमसम्मतः ॥
मध्यदेशसमुद्भूत इति श्रेष्ठत्वदर्शनार्थम् । तत्रमाणन्तु तन्त्रसार-
कारणैव लिखितमतोऽत्र न प्रयोजनमिति गुरुलक्षणम् ॥ रुद्र-
जामले पूर्वखण्डीयपञ्चदशपटलोत्तरखण्डीयद्वितीयपटलयोः ।
आदौ साधकदेवश्च सदाचारमतिः सदा । पशुभावस्ततो वीरः
सायाङ्गो दिव्यभाववान् । एतेषां भाववर्गाणां गुरुर्वेदान्तपारगः ।
शान्तो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेशवान् । शुद्धाचारः सुप्र-
तिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान् । आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्रवि-
शारदः । निग्रहानुग्रहे शक्तो वशी मन्त्रार्थजापकः ॥ शान्त इत्याद्ये-
तत् सर्वं रामार्चनचन्द्रिकायामपि केवलं शेषचरणे वशी-
त्यादौ गुरुरित्यभिधीयत इति पाठः ॥ शान्तो विषयोत्कटेच्छा-
रहितः शमादिगुणसंयुक्तः । शमस्तु श्रवणादिकव्यतिरिक्तविष-
येभ्यो मनसो निग्रहः । यथा । तीव्रायां बुभुक्षायां जातायां
भोजनादन्यो व्यापारो मनसि न रोचते । भोजनविलम्बश्च
सङ्गते तथा सक्चन्दनादिविषयेष्वत्यन्तमभिरुचिस्तत्त्वज्ञान-
साधनेषु श्रवणमननादिष्वत्यन्तमभिरुचिश्च जायते इति । शान्त-
रूपेण प्रसिद्धो वा । दान्तस्तपःक्लेशसहः दमयुक्तो वा । दमस्तु
वाङ्मेन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यो निवर्तनम् । ज्ञानसाधन-
श्रवणादिसाधनेभ्यो विलक्षणेषु शब्दादिविषयेषु प्रवर्तनमिति

ओत्तादीनि बाह्येन्द्रियाणि येन वृत्तिविशेषेण निवर्तन्ते स दम
 इत्यभिप्रायः । अतएव शान्तोऽन्तरिन्द्रियनिग्रहकर्ता दान्तो
 वहिरिन्द्रियनिग्रहकर्ता इति वेदान्तविद्विरुक्तम् ॥ बृहन्नौल-
 तन्त्रे तृतीयपटलेऽपि । वहिरिन्द्रियहर्त्ता च गुरुः सर्वत्र
 दुर्लभः । अन्तरिन्द्रियहर्त्ता च गुरुः सर्वत्र शोभनः । आचार-
 वान्महाविद्याराधनिष्ठश्च तत्परः । तत्कल्याचारसंस्क्रो गुरु-
 रित्यभिधीयत इति । कुलौनः कौलः । एतेषामित्यादिवच-
 नान्यदृष्ट्वा कुलौनः शुद्धजन्मा आचारादिनवगुणशाली वेति
 कश्चित् स्वबुद्ध्या व्याचष्टे एतदतीव मन्दम् । वक्ष्यमाणसारसंग्रह-
 वचने विशुद्धमातापितृककुलीनेति हयोरुपादानात् । येनैवं
 व्याख्यायते तस्य सन्देहस्तु विशुद्धमन्त्रोपदेशरि कुलाचाराभाव
 इति । स तु सन्देहः कामाख्याकुलार्णवरुद्रजामलादीनामदृष्टुरेव
 स्फुरति । तत्र तु सौरमाणपत्यशैववैष्णवशाक्तानां सर्वेषां कुला-
 चारोपदेशस्य सुस्पष्टत्वादिति तत्प्रमाणमग्रे लिखितव्यमिति ।
 गुरुकरणे वर्जनौयप्रकरणे श्यावदन्तं कुलाचाररहितमित्यादि-
 पञ्चाचारविवर्जितमिति च वक्ष्यमाणं तेन न दृष्टमिति । अत
 एव कुलौनः सर्वमन्त्राणामधिकारीति गीयते । दीक्षाप्रभुः स
 एवात्मा सर्वमन्त्रस्य नापरः । इति तन्त्रसारधृतं साधु सङ्गच्छते ॥
 कामाख्यातन्त्रे तृतीयपटलेऽपि ॥ शान्तो दान्तः कुलौनश्च
 शुद्धान्तःकरणस्तथा । पञ्चतत्त्वात्मको यस्तु सद्गुरुः स प्रकी-
 र्त्तितः । मित्रोऽसाविति विख्यातो ब्रह्मुभिः शिष्यपालकः ।
 चमत्कारी दैवशक्त्या सद्गुरुः कथितः प्रिये ॥ अश्रुतं सन्भूतं
 वक्ति वाक्यं साधु जनोद्धारम् । तन्त्रमन्त्रं समावेत्ति य एव सद्ग-
 रुश्च सः ॥ सह निर्वाणतन्त्रे दशमोक्तासे च ॥ शाक्ते शाक्तो गुरुः
 शस्तः शैवे शैवो गुरुर्मतः । वैष्णवे वैष्णवः सौरि सौरो गुरुरुदा-
 हृतः । गाणपे गाणपः ख्यातः कौलः सर्वत्र सद्गुरुः । अतः सर्वा-

ल्लेना धीमान् कौलाहीक्षां समाचरेत् ॥ नानाविकल्पविभ्रान्ति-
नाशमित्यादिसद्गुरुलक्षणं वक्ष्यते । इति सद्गुरुलक्षणम् ॥ तथा ॥
पशोर्वक्त्रालम्बमन्त्रः पशुर्व न संशयः । वीरालम्बमनुर्वीरः
कौलाच्च ब्रह्मविद्भवेत् ॥ वृहन्नौलतन्त्रेऽपि ॥ शैवोऽपि परवि-
द्यानामुपदेष्टा न संशयः । वैष्णवः स्वमतस्थानां सौरः सौरविदां
सताम् ॥ गाणपत्येस्तु देवेशि ! गणदौक्षाप्रवर्त्तकः । शैवे शाक्ते
च सर्वत्र दौक्षास्वामी न संशयः । कौलस्तस्मात् प्रयत्नेन कुलीनं
गुरुमाश्रयेत् ॥ इति कुलीनगुरुप्रशंसा ॥ ननु रुद्रजामलीयो-
त्तरखण्डीयपष्टपटलोक्तेन । भावस्तु त्रिविधो देव ! दिव्यवीरपशु-
क्रमात् । गुरुवस्त्रिविधाश्चात्र तथैव मन्त्रदेवताः । इत्यनेन
पशुगुरुविषयकमेतद्व्याख्यादीनां वामसिद्धान्तकुलमार्गानुसारिणां
वचनैरामार्चनचन्द्रिकादिवचने पारिभाषिकं कुलीनमङ्गीकृत्य
कथमेतादृग्व्याख्यानं कर्त्तव्यमिति चेन्न ॥ महानिर्वाणतन्त्रे
कौलस्य सर्वमन्त्रोपदेष्टृत्वसद्गुरुत्वयोः स्पष्टमुक्तत्वात् । एतेन शान्त्या-
दिगुणवत्त्वे सति अभिशस्तत्वादिदोषरहितत्वं सद्गुरुत्वमिति
सद्गुरुलक्षणमर्वाचीनैः कृतमप्यपास्तम् । कौलस्यैव सद्गुरुत्वेनो-
क्तत्वात् । अथ कुलीनः शुद्धवर्णजन्मा आचारादिनवगुणशालीव
इतीतरलोकप्रसिद्धकुलीनव्याख्याननिन को दोष इति चेन्न । तन्त्र-
शास्त्रे कूटार्थकल्पनाया निन्दाश्रुतेः । यथा महानिर्वाणतन्त्रे एका-
दशोक्तासे । एतस्मिन् शास्त्रे शास्त्रे व्यक्तार्थपदवञ्चिते । कूटेनार्थं
कल्पयन्तः पतिता यान्त्रयोगतिम् ॥ रुद्रजामले उत्तरखण्डे
द्वितीयपटले ॥ नीरोगी निरहङ्कारो विकाररहितो महान् ।
तपस्वी सत्यवादी च सदा ध्यानपरायणः । आगमार्थविशिष्टज्ञो
निजधर्मपरायणः । अव्यक्तलिङ्गचिह्नस्थो भावको भद्रदानवान् ।
लक्ष्मीमान् धृतिमान्नाथो गुरुरित्यभिधीयते ॥ गुरुनाथाचार्य-
शब्दानां व्युत्पत्तिस्तु कुलार्णवे पञ्चमखण्डे सप्तदशोक्तासे । गुह्या-

गमार्थतत्त्वानुसन्धानाद्बोधनादपि । रुद्रादिदेवरूपत्वादगुरुरि-
 त्यभिधीयते । श्रीमोक्षज्ञानदाहत्वान्नादब्रह्मात्मबोधनात् । स्थ-
 गितज्ञानचिह्नत्वात् श्रीनाथः कथितः प्रिये । स्वयमाचरते
 शिथानाचारे स्थापयत्यपि । आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचा-
 र्येस्तेन कथ्यते । चराचरसमासन्नमध्यापयति यः स्वयम् ।
 यमादियोगसिद्धत्वादाचार्य इति कथ्यते ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणी-
 धृतसारसंग्रहे ॥ विशुद्धमातापितृको जितेन्द्रियः सर्वागमज्ञः
 परदुःखकातरः । यथार्थवाग्देविदङ्गपारगः शान्तः कुलीनो
 गुरुरीरितो द्विजः ॥ द्विज इत्यपादानान्नान्येभ्यो मन्त्रग्रह-
 णम् । अनाचारो द्विजो यस्तु वर्णानां गुरुरेव सः ॥ इति वच-
 नात् । स इत्यनेनैवकारः सम्बध्यते । स एव गुरुरित्यनेन जा-
 त्यन्तरं व्यवच्छिद्यते । गुरुशब्देनैवकारः सम्बध्यते व्यावृत्तेर-
 भावात् ॥ कुलमूलावतारकल्पसूत्रटीकाधृतनवचक्रेश्वरे ॥ शिव-
 रूपं समादाय भवपाशनिवृत्तये । सिद्धान्तसारवेत्ताहं सिद्धान्त-
 सारभेदकः । अविच्छिन्नाप्रमत्तश्च सदानुग्रहनिग्रहे । शिवो
 दिव्याकृतिर्देवि ! न च दृगोचरोऽप्यहम् । तथा श्रीगुरुरूपेण
 शिथान् शास्त्रामि पार्वति ! । परं संवित्तिजननं परानन्द-
 समुद्भवम् । तत्तत्त्वं विदितं येन स गुरुः कुलनायिके ! । भूत-
 भव्यौ मन्त्रतन्त्रौ शास्त्रव वेत्ति यः सदा । वेधस्य षड्विधं देवि !
 स गुरुः कुलनायिके ! । वर्णं कलां पदं तत्त्वं मन्त्रं भुवनमेव
 च । बोधयेदुयः षडध्वानं स गुरुः कुलनायिके ! । षडाधारं नव-
 द्वारं षोडशाधारनिर्णयम् । यो जनाति विधानेन स गुरुः कुल-
 नायिके ! । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च रूपश्च तदतीतकम् । यो वेत्ति
 पञ्चकं देवि ! स गुरुः कुलनायिके ! । सम्मोहनतन्त्रे प्रथमपटले-
 ऽपि ॥ षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलोकं व्योमपञ्चकम् । सदेहे
 यो विजानाति स गुरुः कथितो बुधैः ॥ क्रमेणैतानि व्याख्यायन्ते ।

यः षडध्वानं शिष्यं बोधयेत् स गुरुरित्यन्वयः । अध्वानमाह
वर्णमित्यादि । एतान् षडध्वनो दीक्षाप्रकरणे स्पष्टीकरिष्ये ।
षडाधारं षट्चक्राणि पृथिव्यादीनामाधाररूपत्वात् । नवद्वारं
इक्ष्वाक्यानां सनासिकागुह्यलिङ्गच्छिद्ररूपम् । उक्तञ्च सम्बोहन-
तन्त्रे द्वितीयपटलेऽपि । नवद्वारं नवच्छिद्रं पुरं वपुः प्रकीर्त्ति-
तम् । नवपद्माणि चक्राणि विस्मृतं नाडिकात्रयमिति । षोड-
शाधारस्वरूपमपि तत्रैव ॥ मूलाधारस्वाधिष्ठानं मणिपूरमना-
हतम् । विशुद्धमाज्ञाचक्रञ्च विन्दुर्भूयः कलापदम् । निबोधिका
तथाईन्दुर्नादो नादान्त एव च । उन्मनी विश्ववक्त्रञ्च ध्रुवमण्ड-
लिका ततः । इत्येतत् षोडशाधारं कथितं योगिदुर्लभमिति ।
विधानेन प्रयत्नेन प्राणायामादिनेति यावत् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति-
मिति बुद्धेरावर्तनयरूपम् । विन्दुस्तदतीतं निरञ्जनमित्यग्रे स्पष्टी-
भविष्यति । त्रिलोकादिकमपि तत्रैव स्वयम्भूर्वाण इतरस्त्रिलोचं
परिकीर्त्तितम् । पृथिव्यादीनि भूतानि कथितं व्योमपञ्चक-
मिति । तत्र स्वयम्भूलिङ्गं मूलाधारे वाणलिङ्गमनाहते । इतर-
माज्ञाचक्रे ॥ नवचक्रेश्वरे ॥ पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं चतु-
ष्टयम् । यो वा सम्यग् विजानाति स गुरुः परिकीर्त्तितः ।
पिण्डादिचतुष्टयं स्पष्टीकृतं गुरुगीतायाम् । पिण्डं कुण्डलिनी-
शक्तिः पदं हंसः प्रकीर्त्तितः । रूपं विन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं
निरञ्जनम् ॥ नवचक्रेश्वरे ॥ यो वा पराञ्च पश्यन्तीं मध्यमामपि
वैखरीम् । चतुष्टयं विजानाति स गुरुः परिकीर्त्तितः ॥ इति
गुरुविशेषलक्षणम् ॥ रुद्रजामले उत्तरखण्डे प्रथमपटले ॥
गुरुमूलं जगत् सर्वं गुरुमूलं परं तपः । गुरोः प्रसादमात्रेण
मोक्षमाप्नोति सद्दशी ॥ मुण्डमालातन्त्रे प्रथमपटले ॥ गुरुरेकः
शिवः साक्षात् गुरुः सर्वार्थसाधकः । गुरुरेव परं तत्त्वं सर्वं
गुरुमयं जगत् । विना गुरुप्रसादेन कोटिपुरश्चरणेन किम् ।

पिच्छिलातन्त्रे पूर्वखण्डे प्रथमपटलेऽपि । गुरुमूलमिदं शास्त्रं
 नान्यः शिवतमः प्रभुः । अतएव महेशानि ! यद्वतो गुरुमाश्र-
 येत् ॥ इति गुरुमाहात्म्यम् ॥ रुद्रजामले पूर्वखण्डे चतुर्दश-
 पटले ॥ गुरुं विना यस्तु मूढः पुस्तकादिविलोकनात् । जप-
 बन्धं समाप्नोति किल्बिषं परमेश्वरि ! । न माता न पिता भ्राता
 तस्य को वा गतिः प्रिये ! । गुरुरेको वरारोहे ! पापं नाशयति
 क्षणात् । गुरुं विना यतस्तन्त्रे नाधिकारः कथञ्चन । अतएव
 प्रयत्नेन गुरुः कर्तव्य उत्तमः ॥ इति शास्त्रे गुरोरावश्यकत्वम् ।
 जामले ॥ गुरुरेकः शिवः प्रोक्तः सोऽहं देवि ! न संशयः । गुरु-
 स्त्वमपि देवेशि ! मन्त्रोऽपि गुरुकृत्यते । अतो मन्त्रे गुरौ देवे
 न हि भेदः प्रजायते । कदाचित् ससहस्रारं पद्मे ध्येयो गुरुः
 सदा । कदाचित् हृदयान्धोजे कदाचिद्वृष्टिगोचरे ॥ मण्डमाला-
 तन्त्रे ॥ देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया । तदा सिद्धौ
 भवेन्नन्त्रः प्रकटे हानिरेव च ॥ पार्वत्युवाच ॥ ऐक्यज्ञानं महा-
 देव ! कथमुत्पद्यते प्रभो ! । नराकृतिं गुरुं मन्ये देवता ध्यान-
 रूपिणी । मन्त्रश्चाक्षररूपो हि कथमैक्यं भवेच्छिव ! ॥ शिव
 उवाच ॥ एकजातिस्वरूपेण स्वभावादेकजन्मतः । एतेषां भाव-
 योगे तु एकसाधनमेव हि । गुरोर्जातश्च मन्त्रश्च मन्त्राज्जाता तु
 देवता । अतएव वरारोहे ! देवतायाः पितामहः । पितुश्च भाव-
 नाद्देवि ! यथा चैव पितुः पितुः । तदुद्भवस्तोषमेति विपरीतिं
 विपर्ययः ॥ अयमभिप्रायः । एकजातिस्वरूपेणेति निराकार-
 स्वरूपेणेति तात्पर्यम् ॥ तथा हि महाकालस्यैव गुरुत्वेन वक्ष्य-
 भाणत्वान्नन्त्रस्य ध्वनिमयत्वाद्देवताया आकारस्य कल्पितत्वाच्च
 लयाणां निराकारत्वमवगन्तव्यम् । एकप्रकारसाधनत्वेनेति वा ।
 गुरोर्जातश्च मन्त्रश्चेत्यनेन यथा पुत्रपौत्राभ्यां पितुरंशजत्वे-
 नैक्यं तथा गुरुमन्त्रदेवतानामिति मतव्ययेणैक्यं दर्शितम् ॥ यद्वा

मातृकामेदतन्त्रे दशमपटले ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नराकृतिं गुरुं
नाथ ! मन्त्रवर्णात्मकं सदा । ध्यानानुरूपिणं देवमेकत्वं वा कथं
वद ॥ श्रीशिव उवाच ॥ गुरुवक्त्रान्महामन्त्रो लभ्यते साधको-
त्तमैः । यद्देवाज्जायते बीजस्तस्य मुक्तिर्भवेद्भ्रुवम् । देवतायाः
शरीरं हि बीजादुत्पद्यते प्रिये ! । गुरोराज्ञानुसारेण चान्यमू-
र्त्तिस्तु जायते । गुर्वादिभावनाद्देवि ! भावसिद्धिः प्रजायते ।
अतएव महेशानि ! चैकत्वं परिकथ्यते ॥ मुण्डमालातन्त्रे ॥
मन्त्रे वा गुरुदेवे वा न भेदं यस्तु कल्पते । तस्य तुष्टा जगद्वात्री
किन्न दद्याद्दिने दिने ॥ इति गुरुमन्त्रदेवतानामेकत्वप्रकारकथ-
नम् ॥ गुरुतन्त्रे ॥ गुरुः कर्त्ता गुरुर्हर्त्ता गुरुः पाता महीतले ।
गुरुसन्तोषमात्रेण तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः । वामकेश्वरतन्त्रे एक-
पञ्चाशत्पटलेऽप्येतद्वचनम् । किन्तु पातित्वत्तु गुरुर्दातेति पाठः ।
गुरौ तुष्टे शिवस्तुष्टो रुष्टे रुष्टस्त्रिलोचनः । गुरौ तुष्टे शिवा तुष्टा
रुष्टे रुष्टा च सुन्दरी । अतो गुरुर्महेशानि ! संसारार्णवलङ्घने ।
कर्त्ता पाता च हर्त्ता च गुरुर्मोक्षप्रदायकः ॥ इति गुरुतुष्ट्यादि-
फलम् ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतस्मृतजामले ॥ गकारः सिद्धिदः
प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः । उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयात्मा
गुरुः स्मृतः ॥ कङ्कालमालिनीतन्त्रे प्रथमपटले ॥ निर्गुणञ्च परं
ब्रह्म गुरुरित्यक्षरद्वयम् । महामन्त्रं महादेवि ! गोपनीयं परा-
त्परम् ॥ गुरुतन्त्रे ॥ गुरुरित्यक्षरं यस्य जिह्वाग्रे देवि ! वर्त्तते ।
तस्य किं विद्यते मोहः पाठैर्वेदस्य किं वृथा । गकारोच्चारण-
मात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति । उकारोच्चारणमात्रेण मुच्यते जन्म-
पातकात् । रेफोच्चारणमात्रेण उकारोच्चारणात् पुनः । विस-
र्गोच्चारणात् कोटिजन्मजं पातकं हरेत् । गुरुरित्यक्षरं देवि !
जपतो मम निश्चितम् । ब्रह्महत्या पुरा मुक्ता सत्यमेतन्न संशयः ।
परशुरामो मातृकध्यात् देवेन्द्रो ब्रह्महिंसनात् ॥ पातकादपि मुक्तो-

ऽभूत् गुरोरुच्चारमात्रतः ॥ इति गुरुशब्दोच्चारणफलम् ॥ तत्रैव ॥
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पार्वती परमेश्वरी । इन्द्रादयस्तथा देवा
 यक्षाद्याः पिबदेवताः । गङ्गाद्याः सरितः सर्वा गन्धर्वाः सर्प-
 जातयः । स्थावरा जङ्गमाश्चान्ये पर्वताः सार्वभौतिकाः । एते
 चान्ये च तिष्ठन्ति नित्यं गुरुकलेवरे । श्रीगुरोस्तृप्तिमात्रेण तृप्ति-
 रेषाञ्च जायते ॥ इति गुरौ तृप्ते जगत्तृप्तिकथनम् ॥ तत्रैव ॥
 न गुरोरधिकं शास्त्रं न गुरोरधिकं तपः । न गुरोरधिको मन्त्रो
 न गुरोरधिकं फलम् । न गुरोरधिका देवी न गुरोरधिकः
 शिवः । न गुरोरधिका मूर्त्तिर्न गुरोरधिको जपः ॥ विश्वसार-
 तन्त्रीयगुरुगीतायाम् ॥ गुरोर्मूर्त्तेः सदा ध्यानं गुरोस्तत्त्वं सदा
 जपेत् । काशीक्षेत्रं निवासोऽस्य जाङ्गवौ चरणोदकम् । गुरुर्वि-
 श्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्म निश्चितम् । तथा । ध्यानमूलं गुरो-
 र्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् । मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं सिद्धिमूलं
 गुरोः कृपा । तथा । मुनिभिः पद्मगैर्वापि सुरैर्वा शापितो यदि ।
 कालमृत्युभयाद्वापि गुरुरुत्तिष्ठति पार्वति ॥ गुप्तसाधनतन्त्रे हि-
 तीयपटले ॥ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुस्तीर्थं
 गुरुर्यज्ञो गुरुर्दानं गुरुस्तपः । गुरुरग्निर्गुरुः सूर्यः सर्वं गुरुमयं
 जगत् ॥ इति सर्वेभ्यो गुरोराधिक्यकथनम् ॥ किं दानेन किं
 तपसा किमन्यत्तीर्थसेवया । श्रीगुरोरर्चितौ येन पादौ तेनार्चितं
 जगत् । ब्रह्माण्डभाण्डमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै । गुरोः
 पादतले तानि निवसन्ति हि सन्ततम् । इत्यनेन गुरुपादार्चन-
 वशात् विश्वपूजासिद्धिः स्पष्टमवगम्यते ॥ इति गुरुपूजने जगत्-
 पूजनसिद्धिकथनम् ॥ पिच्छिलातन्त्रे ॥ गुरुस्तु द्विविधः प्रोक्तो
 दीक्षाशिक्षाप्रभेदतः । आदौ दीक्षागुरुः प्रोक्तः शेषे शिक्षागुरु-
 र्मतः । यन्मुखात्तु महामन्त्रः श्रूयतेऽभ्यस्यतेऽपि वा । स गुरुः पर-
 मो ज्ञेयस्तदान्ना सिद्धिदायिनी । कुलमूलावतारकल्पसूत्रटीका-

धृतकुलागमि ॥ प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा । शिष्यको
 बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः । पञ्चैते कार्यभूता स्युः कारणं
 बोधको भवेत् ॥ इति गुरुभेदकथनम् । तथा । तत्त्वज्ञैरुपदिष्टा ये
 तत्त्वज्ञास्ते न संशयः । पशुभिश्चोपदिष्टा ये देवि ! ते पशवः स्मृताः ।
 अभिज्ञश्चोदरेन्मूर्खं न मूर्खो मूर्खमुदरित् । शिलां सन्तारयेत्क्षीहो
 न शिला तारयेच्छिलाम् ॥ अतएव गुरुतन्त्रे ॥ गुरवो बहवः
 सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः । तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्ताप-
 नाशकम् । एकः श्रेष्ठो भवेत्तेषां भुक्तिमुक्तिप्रदायकः । इति
 तत्त्वज्ञगुरुकरणबीजम् ॥ योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे प्रथमपटले ॥
 श्रीदेव्युवाच ॥ गुरुः को वा महेशान ! वद मे करुणामय ! ।
 त्वत्तोऽप्यधिक एवायं गुरुस्त्वया प्रकीर्तितः । श्रीईश्वर उवाच ॥
 आदिनाथो महादेवि ! महाकालो हि यः स्मृतः । गुरुः स एव
 देवेशि ! सर्वमन्त्रेषु नास्ति । शैवे शाक्ते वैष्णवे च गाणपत्ये
 तथैन्दवे । महाशैवे च सौरि च स गुरुर्नात्र संशयः । मन्त्रवक्ता
 स एव स्थान्नापरः परमेश्वरि ! । मन्त्रप्रदानकाले हि मानुषे
 गिरिनन्दिनि ! अधिष्ठानं भवेत्तस्य महाकालस्य शङ्करि ! ।
 अतो न गुरुता देवि ! मानुषे नात्र संशयः । मन्त्रदाता शिवः
 पद्मे यद्ग्रानं कुरुते गुरोः । तद्ग्रानं कुरुते देवि ! शिष्योऽपि
 शीर्षशङ्कजे । तद्ग्रानं शिष्यशिरसि चोपदिष्टं न चान्यथा ।
 इति कामाख्यातन्त्रे तृतीयपटले शेषार्धम् ॥ अतएव महेशानि !
 एक एव गुरुः स्मृतः । अधिष्ठानवशात्तस्य मानुषस्य महेश्वरि ! ।
 माहात्म्यं कीर्तितं तस्य सर्वशास्त्रेषु शङ्करि ! ॥ कामाख्यातन्त्रे
 तृतीयपटलेऽपि ॥ अतएव महेशानि ! कतो हि मानुषो गुरुः ।
 मानुषे गुरुता देवि ! कल्पना न तु मुख्यतः । मोक्षो न जायते
 देवि ! मानुषे गुरुभावनादिति ॥ तथा । अतएव गुरुर्नैव मनुजः
 किन्तु कल्पना । दीक्षादौ साधकानाञ्च वृक्षादौ पूजनं यथा ।

ननु यदि मानुषश्चेन्न गुरुस्तदा । अविद्यो वा सविद्यो वां गुरुः
 परमदैवतम् । इत्यादितन्त्रसारधृतवचनस्य का गतिरिति चेत्
 सत्यं प्रागुक्तवृत्तादिवन्माननीयत्वेनोक्तम् । न तु वस्तुतस्तथात्वे
 वक्ष्यमाणगुरौ मनुष्यबुद्धीत्यादिवचनं गुरौ मनुष्यताबुद्धि-
 मित्यादितन्त्रसारकारधृतञ्च न सङ्गच्छते । घटस्य छिद्रव्रणा-
 दिदोषवन्महापातकादिदोषो मनुष्यस्य इति सुधीभिर्ध्ययम् ॥
 गुरुतन्त्रेऽपि ॥ एक एव गुरुर्देवि ! सर्वत्र परिगीयते । भेद-
 स्तस्य न कर्तव्यः सर्वं गुरुमयं जगत् ॥ इति वचनाद्गुरोर्नित्य-
 त्वेन गुरुमरणे त्रिरात्राशौचमिति वदन्तो मूर्खा एव । अशौ-
 चादेः स्मृत्युक्तत्वेन गुरुमरणाशौचं स्मृत्युक्तगुरुपरं वैदिकगुरु-
 परं वा । यदि च मत्स्यसूक्तादिवचनानुसारेण तान्त्रिकगुरुपर-
 मप्यङ्गीकुर्वते । तदपि कुलागमप्रोक्तप्रेरकादिगुरुपरम् । पञ्चा-
 चारयुक्तशिष्यस्य कर्तव्यत्वेनोक्तं वेति केचित् । न तु बोधक-
 गुरुपरमिति सुधीभिर्ध्ययम् । विशेषं शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं
 गुरुगोचरम् । पशुमन्त्रप्रदाने तु मर्यादा दशपौरुषी । वीर-
 मन्त्रप्रदाने तु पञ्चविंशतिपौरुषी । महाविद्यासु सर्वासु पञ्चा-
 शत्पौरुषी मता । ब्रह्मयोगप्रदाने तु मर्यादा शतपौरुषी ।
 अयमभिप्रायः । पञ्चाचारादिमतप्रदेयमन्त्रो यदि शिष्येण गुरुतो
 गृहीतस्तदनन्तरं शिष्यमन्त्रत्यागं गुर्वन्तराद् यदि मन्त्रो गृहीत-
 स्तथापि पैतृकगुरुत्यागजन्यदुरदृष्टशालिना पैतृकगुरुदशमादि-
 वंशपर्यन्तं स्त्रीयदशमादिवंशावधिकेन गुरुवन्मर्यादा कार्या ।
 अन्यथा प्रत्येकेन प्रत्येकतो यदि मन्त्रो गृह्यते तदा तेषां सर्वेषां
 गुरुतया वंशमर्यादाकल्पनमनर्थकं स्वादिति त्यक्तगुरुवंश-
 मर्यादाकथनम् । यद्वा वक्ष्यमाणकामाख्यातन्त्रोक्तवचनेन
 लुब्धदुष्टादिगुरुत्यागस्य वैधत्वेन यदि शिष्येण स गुरुस्त्यज्यते
 तथापि तद्वंशमर्यादार्थमेतदुक्तम् । दिव्यवीरगुर्वोरपि दोषदुष्टत्वे

स्वास्थ्यं वक्ष्यते । एवञ्च गुरुत्यागाद्भवेन्मृत्युरित्यादितन्त्रसार-
 कारधृतवचनमदुष्टादिगुरुत्यागे बोध्यम् ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणी-
 धृतमहिषमर्दिनौतन्त्रे ॥ मानवस्य महेशानि ! सङ्गे पान्निग-
 दामि ते । गुरुः परगुरुश्चैव परापरगुरुस्तथा । स्वगुरुः परमे-
 शानि ! साक्षाद्ब्रह्म न संशयः । तत्पिता परमगुरुः स्वयं
 विष्णुः क्षिती सदा । तत्पिता परापरगुरुर्महेश्वरसमः सदा ।
 ब्रह्मन्नीलतन्त्रे द्वितीयपटले तु ॥ परापरगुरुणाञ्च निर्णयं शृणु
 पावंति । आदौ सर्वत्र देवेशि ! मन्त्रदः परमो गुरुः । परापर-
 गुरुस्त्वं हि परमेष्ठौ त्वहं गुरुः ॥ कुलार्णवतन्त्रे । पारम्पर्या-
 गमात्रायं मन्त्राचार्यादिकं प्रिये ! । सर्वं गुरुमुखात्तत्त्वं सफलं
 स्यान्न चान्यथा ॥ पारम्पर्यशब्दव्युत्पत्तिस्तु सप्तदशोक्तासे ॥
 पाशच्छेदकरादेवि ! रञ्जनात्परतेजसः । जातिभिस्त्रिदशमानाञ्च
 पारम्पर्यमितौरितम् ॥ अथ स्त्रीगुरुलक्षणम् ॥ रुद्रजा-
 मले उत्तरखण्डद्वितीयपटलपूर्वखण्डपञ्चदशपटलयोः ॥ साध्वी
 चैव सदाचारा गुरुभक्ता जितेन्द्रिया । सर्वमन्त्रार्थतत्त्वज्ञा
 सुशीला पूजने रता । सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपिका पद्मलोचना ।
 रत्नालङ्कारसंयुक्ता स्वर्णभरणभूषिता । शान्ता कुलीना कुलजा
 चन्द्रास्या सर्ववृद्धिदा । अनन्तगुणसम्पन्ना रुद्रत्वदायिनी
 प्रिया । गुरुरूपा शक्तिदात्री शिवज्ञानविरूपिणी । गुरुर्योग्या
 भवेत् सा हि विधवा परिवर्जिता । स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता
 मातृश्राष्टगुणा स्मृता । पुत्रिणी विधवा याह्या केवलानन्द-
 कारिणी । सिद्धमन्त्रं यदि तदा गृह्णीयाद्विधवामुखे । केवलं
 सुफलं तत्र मातुरष्टगुणं स्मृतम् । स्वयं वा स्वप्नविलये ददाति
 यदि मन्त्रानुम् । तत्राष्टगुणमाप्नोति यदि सा पुत्रिणी सती ।
 यदि माता स्वीयमन्त्रं ददाति तनुजाय च । तदाष्टसिद्धिमा-
 प्नोति भक्तिमार्गे न संशयः । तदेव दुर्लभं देव ! यदि माता प्रदी-

यते । आदौ भक्तिं ततो मुक्तिं सम्प्राप्य कामरूपधृक् । सहस्र-
कोटिविद्यार्थं जानाति नात्र संशयः । स्वप्ने वा यदि वा माता
ददाति च स्वमन्त्रकम् । पुनर्दीक्षां सोऽपि कृत्वा दानवत्वमवा-
प्नुयात् । यदि भाग्यवशेनैव जननीच्छानुवर्तिनी । तदा सिद्धि-
मवाप्नोति तत्र मन्त्रं विचारयेत् । स्वीयमन्त्रोपदेशेन न कुर्या-
द्गुरुचिन्तनम् ॥ इति स्त्रीगुरुकथनम् ॥

गुरौ कर्त्तव्ये वर्जनौयमाह रुद्रजामलीयोत्तरखण्डीयदि-
तीयपटलपूर्वखण्डीयपञ्चदशपटलयोः ॥ वर्जयेच्च परानन्द-
रहितं रूपवर्जितम् । निन्दितं रोगिणं क्रूरं महापातकिनं
गुरुम् । अष्टप्रकारकुष्ठे च गलत्कुष्ठिनमेव च । श्वित्रिणं जन-
हिंसार्थं सदाप्यग्राहिणं तथा । स्वर्णविक्रयिणं चौरं बुद्धिहीनं
सुखर्वरम् । श्यावदन्तं कुलाचाररहितं शान्तिवर्जितम् । सक-
लङ्गं नेत्ररोगपीडितं परदारगम् । असंस्कारप्रवक्तारं स्त्रीजि-
तञ्चाधिकाङ्गकम् । कपटात्मानमेवञ्च विशिष्टं बहुजल्पकम् ।
बह्वाग्निनं हि कृपणं मिथ्यावादिनमेव च । अशान्तं भावहीनञ्च
पञ्चाक्षरविवर्जितम् । दोषजालैः पूजिताङ्गं पूजयेन्न गुरुं विना ।
गुरुं विना न पूजयेदित्यभिधानात् गुरौ कृते यः कुष्ठादिदोष-
दुष्टो भवति तं पूजयेत् । गुरुकरणसमये तु यः कुष्ठादिस्त-
वजयेदिति वचनस्य तात्पर्यम् । तच्चोक्तं महापातकिनं गुरुं
वर्जयेदिति तदपि भाविनि भूतवदुपचार इतिकर्त्तव्यगुरुपर-
मन्यथा पूर्वापरलिखितेकग्रन्थयोर्विषयं स्यात् ॥ निरुत्तरतन्त्रे
द्वादशपटले ॥ पशुं शठञ्च धूर्तञ्च चुम्बकञ्च विशेषतः । धर्माथ-
काममोक्षार्थीं गुरत्वेन न चार्हयेत् ॥ जामले पूर्वखण्डे पञ्चदश-
पटले तु ॥ गुरोर्विचारः सर्वत्र तातमातामहं विना । प्रमादाच्च
यदा ताभ्यां दीक्षाविधिमुपाचरेत् । प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा
पुनर्दीक्षां समाचरेत् । सावित्री मन्त्रजापञ्च लक्षसंख्यं जगत्-

पतेः । विष्णोर्वा प्रणवं लक्षं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् । अशक्त-
 श्वेकहादेवि ! चायुतं प्रजपेन्ननुम् । दशसाहस्रप्रजप्येन सर्व-
 किल्बिषनाशिनी । गायत्री कृन्दसां माता पापराशितुलानलः ।
 कठिनञ्च रिपुञ्चैव सोदरं वैरिपक्षिणम् । मातामहञ्च पितरं
 यतिनं वनवासिनम् । वर्जयित्वा च शिष्येन्द्रो दौर्चाविधिमुदा-
 चरेत् । अन्यथा तद्विरोधेन कायनाशो भवेद्भुवम् । सिद्धमन्त्रञ्च
 गृह्णीयाद्दुष्कुलादपि भैरवि ! । स्वप्ने तु नियमो नास्ति दौर्चासु
 गुरुशिष्ययोः । स्वप्नलब्धे स्त्रिया दत्ते संस्कारेणैव श्रूयति ॥
 राघवभट्टधृतमहाकपिलपञ्चरात्रे ॥ नातिबालो न वृद्धश्च न
 खञ्जो न कशस्तथा । नाधिकाङ्गो न हीनाङ्गो न खल्वाटो न
 दन्तुरः । वोरमित्रोदयधृतं कल्पचिन्तामणौ ॥ क्षययोगी च
 दुश्कर्मा कुनखो श्यावदन्तकः । कर्णान्यः कुसुमाक्षश्च खल्वाटः
 खञ्जरीटकः ॥ कर्णान्यो वधिरः । खञ्जरीटः खञ्जः ॥ अङ्ग-
 होनोऽतिरिक्ताङ्गः पिङ्गाक्षः पूतिनासिकः । वृद्धाण्डो वामनः
 कुञ्जः श्वित्री चैव नपुंसकः ॥ पूतिनासिको दुर्गन्धिनासिकः ।
 इत्याद्यैर्देहजेर्दोषैः संयुक्तो निन्दितो गुरुः । संस्काररहितो
 मूर्खो वेदशास्त्रविवर्जितः । श्रौतस्मार्त्तक्रियाशून्यः शुष्कभाषः
 सुकुलितः । पुरयाजनजोवी च नरो वैद्यश्च कामुकः । क्रूरो
 दम्भी मत्सरौ च व्यसनो कपणः खलः । कुसङ्गी नास्तिको
 भौतो महापातकचिह्नितः । देवाग्निगुरुविद्यादिपूजाविधि-
 पराङ्मुखः । सन्ध्यातर्पणपूजादिमन्त्रज्ञानविवर्जितः । आल-
 स्योपहतो भोगी धर्महीन उपश्रुतः । इत्याद्यैर्बहुभिर्दोषै-
 रागमोक्तैश्च यत्नतः । वर्जनीयो गुरुः प्राज्ञैर्दीक्षासु स्थापना-
 दिषु ॥ मत्स्यसूक्ते त्रयोदशपटले ॥ अपुत्रश्चासुतपत्नीकः शक्ति-
 हीनोऽथ वामनः । कुञ्जः कुष्ठः श्यावदन्तो वृषलीपतिरेव
 च । मातामहस्यानुजस्य सोदरस्य तथैव च । पित्रोर्मन्त्रं न

गृह्णीयात्तथा चैवाश्रितस्य च । कदाचिद्यदि गृह्णाति पुनः
 संस्कारमर्हति ॥ त्याज्यगुरुमाह कामाख्यायां तृतीयपटले ॥
 मानुषे गुरुत्वस्य कल्पनामात्रमुक्ता । यथा भोक्ते तु भोज्यं हि
 स्वर्णादिपात्रके न च । दीयते च यथा देवि ! तस्मै सर्वसमर्प-
 णम् । यदि निन्द्यञ्च तत्पात्रं स्वर्णं वापि कुलेश्वरि ! । तदा
 त्यजेत्, तत्पात्रमन्यपात्रेण भोजयेत् । अतो हि मनुजं तुल्यं
 दृष्टं शिष्यो हि सन्त्यजेत् । सर्वेषां भुवने सत्यं ज्ञानाय गुरुरेव
 हि । ज्ञानास्मिन्नमवाप्नोति तस्माज्ज्ञानं परात्परम् । अतो यो
 ज्ञानदानं हि न क्षमेत् त्यजेद्गुरुम् । अन्नाकाङ्क्षी निरन्नं हि यथा
 सन्त्यजति प्रिये ! । ज्ञानं तत्र समाभाति स गुरुः शिव एव हि ।
 अज्ञानिनं वर्जयित्वा शरणं ज्ञानिनां व्रजेत् । मधुलुब्धो यथा
 भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् । ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गु-
 र्वन्तरं व्रजेत् ॥ तथा । पूर्वाक्तदोषयुक्तश्रेष्ठियो वा वीर एव वा ।
 तयोरपि न कर्तव्या शिष्येण गुरुभावना । किन्तु कार्यं हितै-
 षित्वं गुरुताकल्पनं त्यजेत् ॥ कौलानान्तु तत्रैव ॥ महाविद्यां
 सम्प्रदायं वीराचारं ददाति न । स याति नरकं घोरं शिष्यो-
 ऽपि पतितो भवेत् । पशुभावे स्थितो यो हि कालिकातारिणी-
 मनुम् । दत्त्वाचारं वदेन्नैव नरकान्न निवर्त्तते । तस्मात् पशु-
 गुरुत्वाज्यः साधकैः सर्वदा प्रिये ! । यदि देवात् पशोर्दीक्षां
 लभते श्राक्त एव च । कौलात्तु कौलिकीं कृत्वा तन्मनुं पुनरा-
 लमेत् ॥ इत्युक्तवचनादभिषेकादिना पुनर्गुरुः करणीय इत्यग्रेऽपि
 वक्ष्यते ॥ गुरुता शिष्यत्वापेक्षणीत्यतो गुरुप्रकरणानन्तरं शिष्य-
 प्रकरणमुच्यते ॥ तत्र शिष्यशब्दव्युत्पत्तिस्तु कुलार्णवे पञ्चमखण्डे
 सप्तदशोक्तासे ॥ शरीरमर्थं प्राणांश्च सद्गुरुभ्यो निवेद्य यः ।
 गुरुभ्यः शिष्यतो योगं शिष्य इत्यभिधीयते ॥ अथ शिष्यलक्षणम् ।
 रुद्रजामले उत्तरखण्डे द्वितीयपटले ॥ गुरुलक्षणमुक्ता । शिष्यस्तु

तादृशौ भूत्वा सद्गुरुं पर्युपाश्रयेत् ॥ कुलमूलावतारकल्प-
सूत्रटीकायाम् । चतुर्भिराद्यैः संयुक्तः श्रद्धावान् सुखिराशयः ।
अलुब्धः स्थिरगात्रश्च प्रेक्षाकारी जितेन्द्रियः । आस्तिको दृढ-
भक्तिश्च गुरौ मन्त्रे च दैवते । एवंविधो भवेत् शिष्यस्त्वितरो
दुःखं कृद्गुरोः ॥ चतुर्भिराद्यैः संयुक्तः श्रमादिचतुष्कयुक्त इत्यर्थः ॥
शारदातिलके द्वितीयपटले ॥ शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थ-
परायणः । अधीतवेदः कुशलो दूरमुक्तमनोभवः । हितैषी
प्राणिनां नित्यमास्तिकस्यक्तनास्तिकः । स्वधर्मनिरतो भक्त्या
पितृमातृहितोद्यतः । वाङ्मनःकायवसुभिर्गुरुशुश्रूषणे रतः ।
एतादृशगुणोपेतः शिष्यो भवति नापरः । समाचारतन्त्रे द्वितीय-
पटले ॥ शिष्योऽपि स्वगुणैर्युक्तो गुरुभक्तिरतः सदा । धर्मका-
मादिसंयुक्तो गुरुमन्त्रपरायणः । सत्यबुद्धिर्गुरोर्मन्त्रे देवपूजन-
तत्परः । गुरुपदिष्टमार्गं च सत्यबुद्धिरुदारधीः । एवंलक्षण-
संयुक्तः शिष्यश्चापि परीक्षितः ॥ मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे त्रयोदश-
पटलेऽपि । शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थपरायणः । अधीत-
वेदः कुशलो दूरमुक्तमनोभवः । हितैषी प्राणिनां नित्यमास्तिक-
स्यक्तनास्तिकः । स्वधर्मनिरतो भक्त्या पितृमातृहितोद्यतः ।
वाङ्मनःकायवसुभिर्गुरुशुश्रूषणे रतः । एतादृशगुणोपेतः शिष्यो
भवति शङ्करि ! ॥ इति शिष्यलक्षणम् ॥

रुद्रजामलीयगुरुमाननादिप्रकारविधायकानि । गुरुः पिते-
त्यादिजन्महेतुरित्यादि । सद्गुरुः स्वाश्रितमित्यादिवचनान्य-
स्मदत्यतिवृद्धप्रपितामहकृष्णानन्दागमवागीशेन स्तुततन्त्रसारे
लिखितान्यतो नैवात्र प्रयोजनमिति ॥ वर्ज्यशिष्यमाह रुद्रजा-
मलपूर्वखण्डपञ्चदशपटलोत्तरखण्डद्वितीयपटलयोः ॥ कामुकं
कुटिलं लोकनिन्दितं सत्यवर्जितम् । अविनीतमसमर्थं प्रजा-
हीनं रिपुप्रियम् । सदा पापक्रियायुक्तं विद्याशून्यं जडात्म-

कम् । कलिदोषसमूहाङ्गं वेदक्रियाविवर्जितम् । आश्रमा-
चारहीनञ्चाशुवान्तःकरणोद्यतम् । सदा अज्ञाविरहितमधमं
क्रोधिनं भ्रमम् । असच्चरित्रं विगुणं परदारतुरं तथा । सम्ब-
द्धाङ्गं समूहोद्यमभक्तं द्वैतचेतसम् । नानानिन्दावृताङ्गञ्च तं
शिष्यं वर्जयेद्गुरुः ॥ इति निन्द्यशिष्यलक्षणम् ॥ जामले ॥ यदि
न त्यज्यते वीरो धनादिदानहेतुना । नारकौ शिष्यवत् पापी
तद्विशिष्टमवाप्नुयात् । क्षणादसिद्धः स भवेच्छिष्यासादितपा-
तकैः । अकस्मान्नरकं प्राप्य कार्यनाशाय केवलम् । विचार्य
यत्नाद्विधिवच्छिष्यसंग्रहमाचरेत् । अन्यथा शिष्यदोषेण नर-
कस्थो भवेद्गुरुः । इति वर्ज्यशिष्यकरणनिन्दा ॥ शिष्यकर्तव्या-
कर्तव्ये उक्ते रुद्रजामले उत्तरखण्डे प्रथमपटले । यथा । न लङ्घ-
येत्, गुरोराज्ञामुत्तरं न वदेत्तथा । दिवा रात्रौ गुरोराज्ञां दासवत्
प्रतिपालयेत् ॥ इति गुर्वाज्ञापालनविधिः ॥ न शृणुयाद्गुरोर्वाक्यं
शृणुयाद्वा पराङ्मुखः । अहितं वा हितं वापि रौरवं नरकं व्रजेत् ।
आज्ञाभङ्गं गुरोर्देवि ! यः करोति स मूढधीः । प्रयाति नरकं
घोरं शूकरत्वमवाप्नुयात् ॥ तथा एकविंशतिपटले ॥ वृथा
धर्मं वृथा चर्यं वृथा दोक्षां वृथा तपः । वृथा सकृतिमाख्यातिं
गुर्वाज्ञालङ्घने नृणाम् ॥ इति गुर्वाज्ञालङ्घनदोषः । द्वितीयपटले ।
आज्ञाभङ्गं तथा निन्दां गुरोरप्रियवर्णनम् । गुरुद्रोहञ्च यः कुर्या-
त्तत्संसर्गं न कारयेत् । कारयेत् इत्यत्र स्वार्थेण च न कुर्यादि-
त्यर्थः । कुलार्णवे पञ्चमखण्डे एकादशोक्तासे ॥ गुरुद्रव्याभिलाषी
यो गुरुस्त्रीगमनोत्सुकः । स तिर्यग्योनिमाप्नोति क्रव्यादौर्भक्ष्यते
प्रिये ! ॥ रुद्रजामले ॥ गुरुद्रव्याभिलाषी च गुरुस्त्रीगो भवेद्
यदि । पातकञ्च भवेत्तस्य प्रायश्चित्तं न कारयेत् ॥ प्रायश्चित्तं
न कारयेदित्यनेनात्यन्तनिषिद्धमिति ध्वनितम् ॥ यथा । कामतो
ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते । इति मनुवचनतात्पर्यमु-

क्तम् । भविष्यपुराणे ॥ कामतो ब्राह्मणबधे यदेतन्मनुजोदितम् ।
 एकान्ततो विप्रबधवर्जनार्थमुदौरितम् ॥ जामले ॥ गुरुं दुष्कृत्य
 रिपुवन्निर्गत्य परिवादतः । अरण्ये निर्जने देशे स भवेद्ब्रह्मरा-
 क्षसः ॥ इति गुर्वनिष्टकारणदोषः ॥ गुरुगौतायाम् ॥ अशक्ता हि
 सुराः सर्वे अशक्ता मुनयस्तथा । गुरुशापमृताः क्षीणाः क्षयं
 यान्ति न संशयः ॥ इति गुरुशापजन्यदोषः ॥ रुद्रजामले पूर्व-
 खण्डे चतुर्दशपटले ॥ गुरोर्निन्दाञ्च पैशुन्यं यः शृणोति दिना-
 न्तरे । तस्य तद्दिनजां पूजां न तु गृह्णाति सुन्दरौ ॥ इति गुरु-
 निन्दाश्रवणदोषः ॥ कुलार्णवे द्वादशोक्तासे ॥ यत्र श्रीगुरुनिन्दा
 स्थान्निधाय श्रवणे स्वके । सद्यस्तस्माद्विनिष्क्रमेद्दूरं न श्रवणं
 यथा । गुरोर्नाम स्मरेत् पश्चात् श्रवणे सा प्रतिक्रिया । इति गुरु-
 निन्दाश्रवणप्रतीकारः ॥ जामले ॥ गतश्रीश्च गतायुश्च गुरोर्निन्दा-
 करो नरः । कल्पकोटिशतं देवि ! नरके पतति ध्रुवम् ॥ तथा ।
 एवं श्रुत्वा महादेवि ! गुरुनिन्दां करोति यः । स याति नरकं
 घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ इति गुरुनिन्दाकरणे दोषः ॥ गुरु-
 तन्त्रे ॥ गुरौ मनुष्यताबुद्धिः शिष्याणां यदि जायते । न हि तस्य
 भवेत् सिद्धिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ इति गुरौ मनुष्यज्ञानजन्य-
 दोषकथनम् ॥ कुलार्णवे ॥ आज्ञाभङ्गोऽप्येवमरणं गुरोरप्रियवर्ण-
 नम् । गुरद्रोहमिदं प्राहुः कुर्यात् स तु पातकी । गुरुको-
 पात्तु नाशः स्याद्गुरुद्रोहात् पातकम् । विमृत्युर्गुरुनिन्दायां
 गुर्वनिष्टान्महापदः । जीवेदग्निं प्रविष्टो वा नरः पीतविषोऽपि
 वा । मृत्युहस्तगतो वापि नापराधकरो गुरोः ॥ इति गुर्वपरा-
 धादिदोषः ॥ रुद्रजामले पूर्वखण्डे ॥ गुरोस्तु सन्ततिं त्यक्त्वा
 न गुर्वन्तरमाश्रयेत् । गुरुनिन्दा न कर्त्तव्या न श्रोतव्या कदा-
 चन ॥ इति गुरुसन्ततित्यागनिषेधः ॥ गुर्वादिमाननप्रकारश्च
 पुरश्चरणरसोक्तासे दशमपटले ॥ गुरुश्च भावयेन्नित्यं सदा शिव-

मयं सदा । गुरोः सुतञ्च चार्वङ्गि ! गणेशसदृशं सदा । गुरोः
 स्नुषा वरारोहे ! वाणो लब्धौरिव प्रिये ! । गुरोः कुलं महेशानि !
 भैरवाणां गणं यथा ॥ कल्पसूत्रटीकाधृतकुलागमे शाक्तानन्दतर-
 ङ्गिणाञ्च ॥ गन्धैर्मातृत्वैश्च चार्वङ्गि ! पूजयेत् सर्वदा गुरुम् ।
 गुरोः पत्नीं तथा देवि ! पूजयेद्द्विधिनामुना ॥ गुरुपत्नीपदं गुरु-
 योषिदुपलक्षणम् । न तु पत्युर्नो यज्ञसम्बन्धे इति पाणिनि-
 सूत्रानुसारेण विवाहसंस्कृतापरम् । सूत्रार्थस्तु पतिशब्दस्यान्ते
 नकारादेशो भवति यज्ञसम्बन्धे गम्यमाने । यज्ञशब्देनात्र
 विवाहाङ्गयज्ञ उच्यते । तथात्वे पञ्चविधगुरुर्योषित्वपूजाविधानं
 कुलार्णवोक्तमसङ्गतं स्यात्तथा च । कुलार्णवतन्त्रे पञ्चमखण्डे
 प्रथमोक्तावे । ऊढा धृता तथा क्रीता मूख्येन च समाहृता ।
 सक्तत् कामगता चापि पञ्चधा गुरुर्योषितः । अलङ्कृताः पूज-
 नीयाश्चागम्याश्च गुरुर्योषितः ॥ दृढनीलतन्त्रे तृतीयपटले ॥
 गुरुपत्नी च युवती न संवाह्येत पादयोः । पुनर्विशतिवर्षेण गुण-
 दोषौ विज्ञानता । अतएव महेशानि ! न कुर्यात् पादसेव-
 नम् ॥ कुलागमे ॥ गुरुवद्गुरुपुत्रेषु गुरुवत्तत्सुतादिषु । पूजयेत्
 प्रत्यहं भक्त्या अमुना विधिना प्रिये ! ॥ पूजाक्रमस्तु तत्रैव ॥
 गुरोरभावे चार्वङ्गि ! गुरुपत्नीं प्रपूजयेत् । अभावे अलाभे ॥
 तदभावे च चार्वङ्गि ! गुरुपुत्रं समर्चयेत् । तदभावे वरारोहे !
 गुरुकन्याञ्च पूजयेत् । तदभावे च चार्वङ्गि ! गुरुस्नुषां प्रपूज-
 येत् । एषामभावे चार्वङ्गि ! गुरुगोत्रं प्रपूजयेत् । तदभावे वरा-
 रोहे ! तथा मातामहस्य च । मातुलं मातुलानीं वा पूजयेद्द्विधि-
 नामुना ॥ इति गुरुकुलपूजाक्रमकथनम् । तथा । पूजाकाले च
 चार्वङ्गि ! आगच्छेच्छिष्यमन्दिरे । गुरुर्वा गुरुपत्नी वा पुत्रो वापि
 समागतः । ज्येष्ठो वाप्यर्चनामध्ये शिष्यः सर्वार्चनां त्यजेत् ।
 तमेव पूजयेच्छिष्य इति शास्त्रस्य निर्णयः ॥ इति पूजाकाले

गुर्वादावागते सति शिष्यकर्तव्यम् तत्रैव ॥ शिष्यस्य तद्दिनं
 देवि ! कोटिसूर्यग्रहेः समम् । चन्द्रग्रहणकालं हि तद्दिनं वर-
 वर्णिनि ! । गुरोर्दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । तत्क्षणाच्चञ्चला-
 पाङ्गि ! दानं कुर्याद्विचक्षणः ॥ इति गुरुदर्शनदिनप्रशंसा ॥
 गुरौ प्रीतिसमापन्ने देवता प्रीतिमाप्नुयात् । देवे च प्रीतिमा-
 पन्ने मन्त्रसिद्धिर्भवेद्भ्रुवम् ॥ इति गुरुप्रीतिफलम् ॥ मुण्डमाला-
 तन्त्रे ॥ गुरुपूजां विना देवि ! इष्टपूजां करोति यः । मन्त्रस्य
 तस्य तेजांसि हरते भैरवः स्वयम् ॥ रुद्रजामले ॥ गुरुपूजां विना
 नाथ ! कोटिपुण्यं वृथावहम् । अतः सर्वजने ख्यातं गुरुणा
 सिद्धिमाप्नुयात् ॥ राघवभट्टदृष्टम् ॥ गुर्वनुक्ताः क्रियाः सर्वा नि-
 ष्फलाः स्युर्यतो ध्रुवम् । जपो होमाच्च न विधिः कार्थ्यो दौक्षा-
 न्वितैस्ततः ॥ तथा । प्रणम्य गुरुपादाब्जं ध्यात्वा च गुरुपादु-
 काम् । ज्ञात्वा परमतत्त्वं वै यो जपेत् कुलचण्डिकाम् । स
 कृतार्थः स धन्यश्च स कुलजः स पण्डितः । स भावन्नो महादेवि !
 जायते नात्र संशयः ॥ गुरुगीतायाम् ॥ संसारसागरसमुद्धरणैक-
 मन्त्रं ब्रह्मादिदेवमुनिसेवितसिद्धिमन्त्रम् । दारिद्र्यदुःखभय-
 शोकविनाशमन्त्रं वन्दे महाभयहरं गुरुदेवमन्त्रम् ॥ गुरुतन्त्रे ॥
 गुरोः सेवा गुरोर्ध्यानं गुरोः स्तोत्रं गुरोर्जपः । गुरोः पूजा गुरो-
 स्तृप्तिर्गुरोर्मक्तिर्नृणां यदि । जन्मभाग्यवशाद्देवि ! तेषां सञ्जा-
 यते क्वचित् । तेषां मन्त्रो भवेत् सिद्धो जीवन्मुक्ताश्च ते नराः ।
 गुरोर्गेहे स्थितः शिष्यो यत् पुण्यं सनुपाचरेत् । तत् पुण्यमद्यं
 प्रोक्तं पुण्यतीर्थं शताधिकम् ॥ इति गुरुगृहनिध्यादितपुण्यकर्म-
 फलम् ॥ तत्रैव ॥ गुरोः पादरजो यस्तु सुधोर्मूर्धनि धारयेत् ।
 स तीर्थकोटिजफलात् फलं दशगुणं लभेत् । गुरोः पादोदकं
 यस्तु नित्यं पिबति भक्तितः । साध्वैत्रिकोऽपि तीर्थानां फलं स
 लभते ध्रुवम् ॥ गुप्तसाधनतन्त्रे ॥ त्रिसन्ध्यं पिबति यस्तु गुरुपादो-

दकं सुधोः । तस्य नास्ति पुनर्जन्म संसारे मोहवर्त्मनि । ब्रह्मा
विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वाश्च पितृदेवताः । तिष्ठन्ति यौगुरोः पादपद्मा-
च्चैतजले शुभे । गुरोः पादोदकं यस्तु नित्यं पिबति मानुषः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामधिपो जायते च सः ॥ योगिनीतन्त्रे ॥
सुभक्त्या विगलत्पादप्रक्षालनजलं यदि । पिबेदमृतभावेन यः
स देवौपुरं व्रजेत् ॥ गुप्तसाधनतन्त्रे ॥ गुरोः पादोदकं यस्तु शि-
रसा धारयेन्नरः । स सर्वतीर्थेषु पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥
गुरुतन्त्रे ॥ त्रिसन्ध्यं पूजयेद् यस्तु गन्धपुष्पैर्जगद्गुरुम् । तस्य
किं मन्त्रपूजादिविधानैर्न्यासजापकैः । गुरोरन्नं महादेवि !
यस्तु भक्षणमाचरेत् । कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणात्तस्य
नश्यति । न स्नानं पादशौचञ्च न चैवाचमनञ्चरेत् । प्राप्तिमात्रेण
भोक्तव्यं नैव स्नानं विचारयेत् । न ब्राह्मण्यं न कौलीन्यं न
जातीनां विचारणम् । न ज्ञातिसुतवन्धूनां सभ्यानां तत्र
चिन्तनम् । एकस्थानस्थितं ह्यन्नं तत्तीर्थमण्डलौकृतम् । भोक्तव्यं
मोक्षदं देवि ! शूद्रसृष्टं न चिन्तयेत् । गुरोरन्नं सुधाबुद्ध्या
यस्त्वद्यान्मतिमान्नरः । शिवोऽपि तस्य देवेशि ! तुष्टो भवति
नान्यथा । गुरोरुच्छिष्टकं देवि ! भक्तिमुक्तिप्रदं भवेत् । अवश्यं
वैष्णवैः शिष्येर्भोक्तव्यं तद्दिने दिने ॥ योगिन्यां प्रथमपटले ॥ गुरु-
च्छिष्टञ्च देवेशि ! तत्सुतोच्छिष्टमेव च । भोजनीयं न सन्देहो
विकारश्चेदयोगतिः । तवोच्छिष्टं महादेवि ! ब्रह्मादीनां
सदुर्लभम् । गुरुच्छिष्टं तथा प्रोक्तं महापूतं परात्परम् ॥ नन्वे-
तावता गुरुपद्मगच्छिष्टं न भक्षणायमिति चेन्न । गुरुपद्मी
महेशानि ! गुरुरेव न संशय इत्येतद्वचनेन तस्या गुरुत्वेन गुरु-
च्छिष्टभोजनविधिना तदुच्छिष्टभोजनविधिः सिद्धत्वात् । गुरुणा
गुरुपद्मं वा गुरुपुच्छेण वा प्रिये ! । सृष्टान्नं मुष्टिमात्रं वा
योऽश्लीयाद्वर्षविंशतिम् । चिरजीवी जरारोगविमुक्तोऽसौ

शिवो भवेत् ॥ गुरुतन्त्रे ॥ गुरोरुच्छिष्टकैर्यस्तु सर्वाङ्गमनुलेप-
येत् । वज्रोऽपि तस्य गात्राणि न भिनत्ति कदाचन । गुरो-
रुच्छिष्टमन्नं यो भक्षयेद्भक्तिभावतः । अन्नपूर्णा जगद्वाती तस्य-
श्वर्यं प्रयच्छति । इति गुरुच्छिष्टभोजनफलं तत्रैव ॥ कदाचित्
परमेशानि ! यदि तत्र भ्रमो भवेत् । न तस्य निष्कतिर्दृष्टा
कल्पकोटिशतैरपि । न भक्षयेद् यस्तु मोहाद्गुरोरुच्छिष्टकं
प्रिये ! । तस्य क्रुद्धा भवेत्स्व' हि विपत्तिश्च पदे पदे ॥ इति
गुरुच्छिष्टाभक्षणजन्यदोषकथनम् ॥ तत्रैव ॥ पादुकां वसनं
कृत्रं शयनं भूषणादिकम् । दृष्ट्वा गुरोर्नमस्कुर्यादात्मभोगं न
कारयेत् ॥ कुलार्णवे पञ्चमखण्डे द्वादशोक्ताये ॥ पादुकामासनं
कृत्रं वाहनं वस्त्रचामरे । दृष्ट्वा गुरोर्नमस्कुर्यात् नात्मभोगाय
कल्पयेत् । पादप्रक्षालनं स्नानमभ्यङ्गं दन्तधावनम् । सूत्र-
निष्ठीवनं क्षौरं शयनं स्त्रीनिषेवणम् । वीरासनञ्च दुर्वाक्यमासनं
हास्यरोदनम् । केशमोचनमुष्णीषं कञ्चुकं लग्नतां तथा ।
पादप्रसारणं वादं कलहं दूषणं प्रिये ! । अङ्गभङ्गाङ्गवा-
द्यादिकरास्त्रालविधूननम् । द्यूतकुकुटमक्तादियुद्धमित्यादि
चाखिके ! । गुरुसिद्धमहासिद्धपीठक्षेत्राश्रयेषु च । नाचरेदा-
चरेन्मोहात् देवताशापमाप्नुयात् । उपचारं विना तिष्ठेद् गुर्वग्रे
नेच्छया विशेत् ॥ इति गुरुसमीपे महापीठादौ पादप्रक्षा-
लनादिनिषेधः ॥ योगिनौतन्त्रे पूर्वखण्डे प्रथमपटले ॥ सुरां
यथप्यसंस्कारां गुरोराज्ञावशात् पिबेत् । प्रायश्चित्तं न तत्रास्ति
वेदेऽपि स्थितमेव हि । अपि तन्त्रविरुद्धं वा गुरुणा कथ्यते
यदि । तत्सम्मतं भवेद्देर्माहारुद्रवचो यथा । इति गुर्वाज्ञया
निषिद्धाचरणे दोषाभावः । निर्गतं यद् गुरोर्वक्त्रात् सर्वं शास्त्रं
तदुच्यते । गुरुकार्ये स्त्रयं शक्तो नापरं प्रेरयेत् प्रिये ! । रुद्र-
जामले । बन्धुभृत्यपुरैर्भृत्यैः सहितोऽप्यतिभक्तिमान् । गच्छन्

तिष्ठन् स्वप्न् जाग्रत् जपन् जुह्वत् प्रपूजयेत् । गुर्वज्ञामिव
 कुर्वीत तद्वतनान्तरात्मना । अभिमानो न कर्त्तव्यो जातिविद्या-
 धनादभिः । सर्वदा सेवयेन्नित्यं शिष्यः श्रीगुरुसन्निधौ ॥ इति गु-
 र्वये माननिषेधः ॥ तत्रैव ॥ सदा च पादुकामन्त्रं जिह्वाग्रे यस्य
 वर्त्तते । अनायासेन धर्मार्थकाममोक्षं लभेन्नरः ॥ श्रीगुरोश्च-
 रणाभ्योजं ध्यायेद् यच्च सदैवतम् । भक्तये भक्तये वीरो नान्यो
 भक्तस्ततोऽधिकः । विद्याङ्गभासनं मन्त्रं मुद्रां तन्त्रादिकं प्रभो ! ।
 सर्वं गुरुमुखाल्लभ्यं सफलं नान्यथा भवेत् ॥ वाक्यभेदेनान्वयः ॥
 कखले कमले वापि प्रासादे संस्थिते तथा । दीर्घकाष्ठे तथा
 पृष्ठे गुरोरिकासनं त्यजेत् । श्रीगुरोः पादुकामन्त्रं मूलमन्त्रं
 स्वपादुकाम् ॥ शिष्याय नैव देवेश ! प्रवदेव्यस्य कस्यचित् । यद्-
 यदात्महितं वस्तु तद्व्यं नैव वञ्चयेत् । गुरोर्लब्धैकवर्णो यस्तस्य
 तुष्ट्यामि सुव्रत ! । भक्त्या वित्तानुसारेण गुरुमुद्दिश्य यत् कृतम् ।
 तयोरेव फलं देव ! तुल्यमाव्यदरिद्रयोः । स्वल्पे महति वा पुण्य-
 मिति तृतीयचरणे कुलार्णवे पञ्चमखण्डे द्वादशोक्तासे पाठः ॥
 सर्वस्वमपि यो दद्याद् गुरुभक्तिविवर्जितः । नरकं तदवाप्नोति
 भक्तिरेव हि कारणम् । कुलार्णवे तु । शिष्यो न फलमाप्नोति
 इति तृतीयचरणे पाठः । गुरुभक्त्या च शक्रत्वं मङ्गल्य्या शूकरो
 भवेत् ॥ गुरुं विना मय्येव या भक्तिस्तथेति तात्पर्यम् । गुरु-
 भक्तिपरं नास्ति सर्वशास्त्रेषु तत्त्वतः ॥ इति गुरुभक्तिफलम् ॥
 धिग्धनं धिग्वलं तेषां धिक्कुलं धिग्विचेष्टितम् । तेषां नोत्प-
 द्यते भक्तिर्गुरुदेवे महेश्वरि ! । इति भक्त्यनुत्पत्तौ दोषः ।
 जामले ॥ गुरुस्त्रीपुत्रबन्धूनां दोषं नैव प्रकाशयेत् । भक्त्येव
 च तद्व्यं दत्तं नैव परित्यजेत् । गुरुगीतायाम् ॥ गुरुणा दर्शितं
 मार्गं मनःशुद्धिञ्च कारयेत् । गुरुणा सदसद्वापि यदुक्तं तच्च
 लङ्घयेत् । गुरोरग्रे न वक्तव्यमसत्यञ्च कदाचन ॥ पिच्छिला-

तस्मै ॥ पैत्रं गुरुकुलं यस्तु त्यजेद्वै धर्ममोहितः । स याति
नरकं घोरं यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ कुलार्णवे पञ्चमखण्डे एका-
दशोल्लासे ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्य या गुरुसन्ततिः ॥ तस्य
मे सर्वशिष्यस्य कौलः पूज्यो महीतले । इति निश्चितबुद्धिर्यः स
भवेदावयोः प्रियः ॥ श्रीगुरुं कुलशास्त्राणि पूजास्थानानि यानि
च । भक्त्या श्रीपूर्वकं देवि ! प्रणम्य च प्रकीर्तयेत् । गुरुं
नाम्ना न माषेत जपकालादृते प्रिये ! । श्रीनाथदेवस्वामीति
विवादे साधने वदेत् । अथ गुरुशुश्रूषा । तथा द्वादशोल्लासे ॥
आत्मार्थमान्यसद्भावैः शुश्रूषा स्याच्चतुर्विधाः । शुश्रूषया धिया
देवि ! शिष्यः सन्तोषयेद्गुरुम् । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्य-
संशयम् । केवलं गुरुशुश्रूषा त्वत्कृपाकारिणी प्रिये ! । मङ्गलि-
सहिता चेत् सा सर्वकामफलप्रदा । क्षीयन्ते सर्वपापानि वर्धन्ते
पुण्यराशयः । सिध्यन्ति सर्वकार्याणि गुरुशुश्रूषया प्रिये । यद्-
यदात्महितं वस्तु तत्तद्विक्तमवच्यन् । गुरुदेवार्चको यस्तु तस्य
पुण्यं न गण्यते । गुरुमित्रसुहृद्दासीदासाद्यान्नावमानयेत् । न
निन्देदस्य समयान् वेदशास्त्रागमादिकान् । तथा । विविक्तु-
देशिकावासं शान्तचित्तोऽतिभक्तिमान् । वाहनं पादुकां छत्रं
चामरं व्यजनादिकम् । ताम्बूलं वेशमुत्सृज्य प्रविशेच्च शनैः
शनैः ॥ देशिकव्युत्पत्तिस्तु सप्तदशोल्लासे ॥ देवतारूपधारि-
त्वाच्छिष्यानुग्रहकारणात् । कर्णामयमूर्तित्वाद्देशिकः कथ्यते
प्रिये ! ॥ देशिकावासं गुर्वावासमित्यर्थः । तथा । रिक्तहस्तश्च
जोषिद्याद्राजानं दैवतं गुरुम् । फलपुष्पाम्बरादीनि यथाशक्त्या
समर्पयेत् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां द्वितीये धर्मकाण्डे गुरुशिष्य-

प्रकरणरूपशास्त्रादयकथनं नाम

द्वितीयः परिच्छेदः ।

दरपतिजयचर्याखरोदयधृतन्नजामले ॥ अश्विन्यादि-
 लिखेच्चक्रं सर्पाकारं त्रिनाडिकम् । तत्र विधवशाज्ज्ञेयं विवा-
 ह्नादिशुभाशुभम् । त्रिनाडीविधनक्षत्रमश्विन्यार्द्रा युगोत्तरा ।
 हस्तोन्मूलवारुणः पूर्वाभाद्रपदास्तथा । याम्यः सौम्यो गुरु-
 र्योनिश्चित्रासित्रजलाह्वयम् । धनिष्ठा चोत्तराभाद्रमध्यनाडी
 व्यवस्थिता । कृत्तिका रोहिणी सर्पा मघा स्वातीविशाखके ।
 उत्तरा श्रवणा पौषक्रीडनाडी व्यवस्थिता । अश्विन्यादि-
 नाडीविधर्त्ते षष्ठं द्वितीयकं क्रमात् । याम्यादितुष्यं तुष्यञ्च कृत्ति-
 कादौ द्विषट्ककम् । एवं निरीक्षयेद्देधं कन्यामन्त्रे गुरौ सुरे ।
 पुण्यस्त्रीस्वामिभिन्नेषु देशे आत्रे पुरे गृहे । एकनाडीस्थि-
 ण्णाणि यदि स्युर्वरकन्ययोः । तदा देधं विजानीयाद् गुर्वादपु
 तयैव च । प्रकटं यस्य जन्मर्त्तं तस्य जन्मर्त्ततो व्यधः । प्रशस्तं
 जन्मभं यस्य तस्य नामर्त्ततो वदेत् । ह्योर्जन्मभयोर्विधे न
 कर्त्तव्यं कदाचन । एकनाडीस्थिता चेत् स्वाङ्गर्त्तनाशाय चा-
 ङ्गना । एकनाडीस्थिता यत्र गुरुर्मन्दश्च देवता । तत्र देधं रुजं
 मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत् । प्रभुः पुण्याङ्गना मित्रं देशो यामः
 पुरं गृहम् । एकनाडीगता त्याज्या भव्या विधविवर्जिता ॥
 इत्यादिवचनाद् गुरुशिथमन्त्राणां नाडीनक्षत्रविचारोऽवश्यक-
 रणीय इति ॥ दीक्षायां कर्त्तव्यायां चक्रादिविचारस्यावश्यकत्वम् ।
 तत्तु अस्मन्नोष्ठौगरिष्ठकृष्णानन्दागमवागीशेन स्वज्ञततन्त्रसारं
 सर्वं लिखितमतो नात्र प्रयोजनम् ॥ यत्तु नात्र सिद्धयप्रज्ञास्ती-
 त्यादिवचनमात्रप्रदर्शिभिरिदं प्रशंसापरं पर्वत विचारस्यावश्यक-
 त्वमिति तन्त्रसारकारस्य स्वकपोलकल्पितमित्युपहसितम् । तैः
 रुद्रजामलोत्तरखण्डीयचतुर्ष्वेष्टलाप्युक्तं न दृष्टं न श्रुतञ्च तद्-
 यथा । कालीतारादिमन्त्रस्य सिद्धादीन्नेव शोधयेत् । तथापि शोध-
 यिन्मन्त्रं प्रशंसापरमेव तत् । विचाराभावप्रतिपादकवचनमात्रं

यत्यादिपरं न गृह्यपरमित्यग्रे वक्ष्यते ॥ चक्रविचारप्रतिप्रसव-
स्त्वन्नदाकल्पे द्वितीयपटले उक्तो यथा ॥ हरचक्रादिचक्रनरक-
मुक्ता ॥ नवचक्रविशुद्धात्मा मन्त्रोऽभीष्टाय कल्प्यते । उपासिता
यदि भवेत् पैतृकी पुरुषाः क्रमात् । तदा तदग्रहणे धीरो विचारं
नैव कारयेत् । तत्तु मन्त्रञ्च वनिताश्रयेद्वाग्यवशाद्यदि । तदा
भर्तुर्विचारेण विचारोऽस्या न तु स्वतः । कुलचक्रे समुत्पन्ने
वोरान् माहेश्वरोमुक्त्वात् । कृपया दीयमानस्य विचारो नास्ति
भैरव ! । स्वान्तःकरणवृत्तैर्वा यत्र श्रद्धा गरीयसी । सैवोपास्या
प्रयत्नेन विचारस्तत्र निष्फलः ॥ दीक्षाकर्मणि मण्डपकरण-
स्यावश्यम्भावेन भूमिपरीक्षां विना मण्डपादिकरणनिषेधदर्शनेन
चादौ भूमिपरीक्षोच्यते ॥ तच्च, राघवभट्टवृत्तमहाकपिलपञ्च-
रात्रे ॥ तत्र भूमीं परोक्षेन वास्तुतत्त्वविशारदः । स्फुटिता च
सशल्या च वल्लीकारोहिणी तथा । दूरतः परिवर्ज्या भूः कर्तुं-
रायुर्धनापहा ॥ स्फुटिता चेति चकारेणोषरेति न लभ्यते ।
स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी । शशल्या क्लेशदा नित्यं
विषमा शत्रुतो भयम् ॥ इति वर्जनौयभूमिकथनम् ॥ तत्रैव ॥
ईशकोणप्लवासा च कर्तुः श्रीदा सुनिश्चितम् । पूर्वप्लवा वृद्धिकरी
धनदा तूत्तरप्लवा । विद्वेषं मरणं व्याधिं कुर्यादग्निप्लवा मही ।
धर्मराजप्लवा भूमिर्नित्यं मृत्युभयप्रदा । गृहक्षयकरी सा च
भूमिर्या नैक्यतप्लवा । धनहानिकरी पृथ्वी कीर्त्तिता वरुणप्लवा ।
वातप्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी । इति दिक्प्लवभूमि-
शुभाशुभे ॥ तत्रैव । श्वेता तु ब्राह्मणी भूमिरक्ता वै क्षत्रिया
स्मृता । वैश्या पीता तु विज्ञेया शूद्रा लक्षणा प्रकीर्त्तिता ।
ब्राह्मणी घृतगन्धा स्यात् क्षत्रिया रक्तगन्धिका । क्षीरगन्धा
भवेद्वैश्या शूद्रा विड्गन्धिनी क्षितिः । मधुरा ब्राह्मणी भूमिः
कषाया क्षत्रिया स्मृता । वैश्या तिक्ता च विज्ञेया शूद्रा स्यात्

कटुका मही । ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छ्वाकुला ।
 कुशकाशाकुला वैश्या शुद्रा सर्वलणकुला ॥ इति ब्राह्मण्यादि-
 भूमिज्ञानकरणकथनम् । तत्रैव । सिता पीता तथा रक्ता,
 कृष्णवर्णसमन्विता । स्थिरोदका दृढा स्निग्धा भूमिः सर्व-
 सुखावहा । शीतस्पर्शोष्णकाले च वज्रिस्पर्शा हिमागमे ।
 वर्षासु चोभयस्पर्शा सा शुभा परिकीर्तिता । तद्भृतहयशीर्ष-
 पञ्चरात्रेऽपि ॥ सुरभीणां रतिर्यत्र सवत्सानां वृषैः सह । सुन्द-
 रीणां रतिर्यत्र पुरुषैः सह सत्तमः । काश्मीरचन्दनामोदा
 कर्पूरागुरुगन्धिनी । कमलोत्पलगन्धा च जातिचम्पकगन्धिनी ।
 पाटला मल्लिकागन्धा नागकेशरगन्धिनी । दधिक्षौराज्यगन्धाब्ज्या
 मदिरासवगन्धिनी । सुगन्धिब्रीहिगन्धाब्ज्या शुभगन्धयुता च
 सा । सर्वेषामेव वर्णानां भूमिः साधारणी मता । इति शुभ-
 भूमिकथनम् । मदग्रजरामलोचनविद्याभूषणकृतवास्तुयागप्रदी-
 पिकाधृतहयशीर्षपञ्चरात्रे ॥ ज्ञात्वा भूमीं परीक्षेत पूर्वोदक्-
 प्लवनां शुभाम् । असङ्कटां तथाच्छत्रां कृतैस्तोयपरिप्लुताम् ।
 सम्पूर्य मार्गे खाते तु तथाधिकसृदं शुभाम् । कुसुमप्रकरस्तद्वद-
 यस्यां न ग्लानिमृच्छति । न निर्वाति तथा दीपः शीघ्रं पुष्पं
 न शीथ्यते । श्वेतराणां पीतकृष्णा विप्रादीनां विशिष्यते ॥ प्रश-
 स्यते इत्यर्थः ॥ व्याज्या भूमिः क्षारगन्धा पूतिगन्धा च या भवेत् ।
 मधुरा च कषाया च अम्ला च कटुका च या । कुशैः शरैस्तथा
 काशैर्दूर्वाभिर्या च सम्भृता । सम्भृता अत्यन्तसङ्कीर्णा ॥ तथाधि-
 कसृदमित्याद्युक्तविवरणमुक्तं प्रयोगसारे ॥ विस्तिस्मात्प्रविस्तारं
 निर्माय विवरं भुवि । निक्षिपेत्तां सृदं तस्मिन् तासु शिष्टासु
 शोभनम् । समासु मध्यमं विद्यान्नान्स्वधममुच्यते । परीक्ष्यैवं
 प्रयत्नेन त्यक्त्वा भूमीं कनीयसीम् । अङ्गारतुपकेशास्थिहीनं
 कृत्वाथ भूतलम् । अङ्गारैत्यादिनिषिद्धद्रव्यमात्रोपलक्षणम् । हीनं

कृत्वेल्यनेन शब्दोद्धारक्रमः सूचितः । अकरणे दीर्घोऽपि ।
अतएव कुण्डकरणे दुष्टा ॥ खन्यमाने यदा कुण्डे पाशो न
प्राप्यते भुवि । तदापसृत्यवे चास्थिकेशाङ्गारैर्धनक्षयः । भस्म-
नाग्निभयं प्रोक्तं तुषैः प्रोक्ता दरिद्रता । इति दुष्टफलमुपदर्शि-
तवान् ॥ शुभफलमपि स एव । गोमृङ्गं पीतमण्डूकः शङ्खः
शूक्तिश्च कच्छपः । शम्बूकश्च प्रशस्ताः सूर्ये चान्ये रत्नजातयः ॥

अथ शब्दोद्धारधनोद्धारौ ॥ सरोदयष्टतत्रद्वाजामले ॥ अहि-
चक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम् । द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं
येन जानन्ति साधकाः । निधिनिर्वर्त्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भू-
तले । तत चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुपस्थितम् ॥ ऊर्ध्वं रेखा
ष्टकं लेख्यं तिर्यक् पञ्च तथैव च । अहिचक्रं भवत्येवमष्टा-
विंशतिकोष्टकम् । तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्चं कृत्तिकामघभाष्यभम् ।
उत्तराफाल्गुनी लेख्यं पूर्वपङ्क्त्यां भसप्तकम् ॥ अहिर्वाजपा
दक्षं पतभं ब्रह्मसर्पभम् । पुष्यं हस्तं समालेख्यं द्वितीयां पङ्क्ति-
मास्थितम् । अभिजिद्विष्णुवसृच्चं सौम्यं रौद्रपुनर्वसू । चित्र-
भञ्ज ढतीयायां पङ्क्तौ धिष्णरस्य सप्तकम् । विश्वर्चं तोयभं मूलं
ज्येष्ठा मैत्रं विशाखभम् । स्वातीं पङ्क्त्यां चतुर्थ्यान्तु कृत्वा चक्रं
विलोकयेत् । एवं सञ्जायते चक्रं संस्थाने पद्मगाहति । द्वार-
देशे मघायाभ्यौ द्वारस्था कृत्तिका मता । अश्वीशपूर्वाषाढादित्रि-
कपञ्चत्तुष्टयम् । पौष्णप्रीष्ठपदा चेन्दोर्भाणि शेषाणि भास्वतः ।
१ । २ । ३ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । २० । २१ । २२ । २७ । २५
इति चन्द्रस्य । ४ । ५ । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ ।
१७ । १८ । १९ । २३ । २४ । २६ । इति सूर्यस्य । उदयादि-
गता नाडी भक्ताः षड्याप्तशेषके । दिनेन्दुभुक्तयुक्तोऽसौ भवेत्त-
त्कालचन्द्रमाः । चन्द्रवत् साधयेत् सूर्यसूक्ष्मं चेष्टकालिकम् ।
पञ्चादिलोकयेत्तौ च स्वस्वर्चं वान्यतः स्थितौ । चन्द्रश्चे दाय-

केन्द्रं तदास्ते नियतं निधिः । भानुऋक्षस्थिते तौ तु तदा
 शब्दं विनिर्दिशेत् । स्वस्वमे द्वितयं ज्ञेयं नास्ति किञ्चिद्विपर्यये ।
 स्थितं न लभ्यते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते । पुष्टे चन्द्रे भवेत्पुष्टः
 क्षीणचन्द्रेऽल्पको निधिः । ग्रहदृष्टिवशात् सोऽपि विज्ञेयो
 नवधा बुधैः । हेम ताम्रञ्च तारारं रत्नकांस्यायसं तपु । नागं
 चन्द्रे विजानीयाद् भास्करादिग्रहेक्षिते । मिथ्ये मिथ्यं भवेद्
 द्रव्यं शून्यं दुष्टिविवर्जिते । सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे विज्ञेयोऽसौ
 महानिधिः । हेम तारञ्च ताम्रारं पाषाणं मृण्मयायसम् । सूर्या-
 दिग्रहग्रे चन्द्रे द्रव्यभाण्डं प्रजायते । शुभक्षेत्रगते चन्द्रे द्रव्य-
 लाभो न संशयः । पापक्षेत्रे न लाभः स्याज्ज्ञातव्यं ज्योतिषां
 बुधैः । भुक्तराश्यांशमानेन भूमानं कार्मिकैः करैः । नीचे विघ्नं
 परे नीचे जलस्थोऽसौ भवेन्निधिः । उच्चस्थे ऊर्ध्वगं द्रव्यं नवा-
 शकक्रमेण च । परमोच्चे परे तुङ्गे भित्तिस्थमृक्षसंक्रमे । चन्द्रा-
 श्भुक्तमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते । तस्माच्चेज्जायते वृद्धिः षड्-
 वर्गेषु बलक्रमात् । अधिष्ठितं भवेद्द्रव्यं यत्र चन्द्रो ग्रहान्वितः ।
 तदधिष्ठायको ज्ञेयो भास्करादिग्रहैः क्रमात् । ग्रहा ह्युपग्रहा-
 श्चैव क्षेत्रपालश्च मातृका । दीपेशो भीषणो रुद्रो यक्षो नागः
 क्रमान्ततः । ग्रहहोमश्च कर्तव्यो मुखे नारायणे बलिः । क्षेत्र-
 पाले सुरा मांसं मातृकायां महाबलिः । दीपे प्रदीपजा पूजा
 भीषणे भीषणाच्च नम् । रुद्रे रुद्रजपो जप्यो यक्षे यक्षादिशा-
 न्तिकम् । नागे नागगणाः पूज्या गणनाथेन संयुताः । लक्ष्मीं
 धरादितत्वानि सर्वकार्येषु पूजयेत् । एवं कृते विधानेन दुः-
 साध्यः साध्यते निधिः । निधिप्राप्त्या नरो लोके पूज्यते सर्वदा
 बुधैः ॥ अस्यार्थः ॥ सर्वज्ञभाषितं श्रीसदाशिवभाषितम् । अहि-
 चक्रम् अहं प्रवक्ष्यामि प्रकर्षेण कथयिष्यामीत्यन्वयः । येन चक्रेण
 द्रव्यं शब्दं तदुभयं शून्यं द्रव्यशब्दहीनं स्थानं पण्डिता जानन्ति

भविष्यत्सामीप्यं वर्त्तमाननिर्देशात् आस्यन्तीति तात्पर्यम् ॥
 निधिरिति निवर्त्तनैकस्थो दीर्घग्रहस्ततः द्विशतहस्तमाने
 भूतले दशाधिकद्विशतहस्तपरिमिते वा यत्र सम्भ्रान्तो भ्रम-
 विषयो निधिस्तत्र इदं चक्रं स्थाप्यम् । निवर्त्तनप्रमाणन्तु सि-
 द्धान्तशिरोमणी लीलावत्यभिधे पाटीगणिते तथा करणाद्
 दशकेन विंशः निवर्त्तनं विंशतिवंशसर्गाख्यः क्षेत्रं चतुर्भिश्च भुजै-
 र्निबद्धमिति । सरोदयटोकाकारस्तु ॥ सप्तहस्तेन हस्तेन त्रिंश-
 द्दण्डो निवर्त्तनमित्याह । तदुभयमतं प्रामाण्यम् । अस्य दीर्घतः
 ग्रहस्ततश्च एकादशवार्षिकनवाङ्गुलैश्चतुर्दशहस्तैश्च परिमितद्वय-
 मवधार्यम् । सरोदयटोकाकृन्मते दीर्घग्रहस्तादिकमेतदनुसा-
 रेण पण्डितैर्विविच्य कर्त्तव्यम् । चक्रं कौटुम्भं स्थानद्वारमुखस्थितं
 क्षेत्रादौ द्वाराक्षाने एवं प्रजायते । चक्रे प्रस्तारं पद्मगाकृतिरित्यु-
 पसंहारवचनार्थतो भाद्रादितेषु मासेषु पूर्वादिकतुर्दिक्षु शिरः
 कृत्वा नागः श्येते तेन तत्तन्मासि प्रश्ने सति तस्यां तस्यां दिशि
 अहिबलचक्रमुखं कृत्तिकानक्षत्रव्यवस्थितं कृत्वा व्यवहरणीय-
 मित्युपदेशः । ऊर्द्ध्वंति ॥ ऊर्द्ध्वं रेखाष्टकं ऊर्द्ध्वं च क्रमेण रेखाष्टकं
 लेख्यम् । तथैव पञ्चरेखास्तित्येकक्रमेण लिखेत् । एवमष्टाविंश-
 तिकोष्ठम् । तत्र कोष्ठेषु पौष्णो रेवती अश्विनी याम्यर्क्षं
 भरणी कृत्तिका मघा भाग्यभं पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी चेति
 नक्षत्रसप्तकं प्रथमपञ्क्त्यां लेखनीयम् । अहिव्रधेति ॥ अहि-
 व्रधः उत्तरभाद्रपदः अजपादः पूर्वभाद्रपदः शतभिषा ब्राह्मं
 रोहिणी सर्पभमश्लेषा पुष्या हस्ताश्वेति नक्षत्रसप्तकं द्वितीय-
 पञ्क्तिमास्थितं लेख्यम् । विधिरिति । विधिः अभिाजत विष्णुः
 श्रवणा सीम्यं मृगशिरा रौद्र आर्द्रा पुनर्वसु चित्रा चेति
 नक्षत्रसप्तकं तृतीयपञ्क्तौ । विम्वर्चमुत्तराषाढा मूला येडा
 अनुराधा विशाखा स्वाती चेति नक्षत्रसप्तकं चतुर्थपञ्क्तौ एवं

कृत्वा अर्थादालोक्य चक्रं विलोकयेदिति । एवमनेन प्रकारेण
 कृत्तिकानिचक्रानुक्रमस्थित्या पद्मगाकृतिः सर्पाकृतिः । द्वारशा-
 खेति मन्त्राभरण्यौ । द्वारशाखे द्वारोभयपार्श्वस्थिते । कृत्तिका-
 द्वारस्थनागमुखम् । अश्वीशेति । अश्विनी ईश आर्द्रा पूर्वाषाढा
 एतानि आदिभूतानि कृत्वानुक्रमेण त्रिपञ्चचतुष्टयं नक्षत्रं
 यथा अश्विनी भरणी कृत्तिका इति त्रीणि । आर्द्रा पुनर्वसु
 पुष्या अश्लेषा मघा चेति पञ्च । पूर्वाषाढोत्तराषाढा अभिजित्
 श्रवणेति चत्वारि नक्षत्राणि । अश्विनी भरणी कृत्तिकाऽर्द्रा
 पुनर्वसु पुष्या अश्लेषा मघा पूर्वाषाढा उत्तराषाढा अभिजित्
 श्रवणा रेवती पूर्वभाद्रपदा एतानि नक्षत्राणि । इन्दोश्चन्द्रस्य ।
 शेषाणि भानि रोहिणी मृगशिराः पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी हस्ता
 चित्रा स्वाती विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा मूला धनिष्ठा शत-
 भिषा उत्तरभाद्रपदसंज्ञकानि । भास्वतः सूर्यस्य ज्ञातव्यानि ॥
 उदयादीति । उदयो नक्षत्रप्रवृत्तिसमयस्तदादिः । इष्टसमयेन
 च यावन्तो दण्डाश्चन्द्रेण भुक्तास्तदवधिगता नाड्यो भग्नाः
 सप्तविंशत्या पूरिताः षष्ठ्या हृताः कार्याः । गृहीतभागिनामशेषके
 आप्ते लब्धे शेषे चासौ तत्कालचन्द्रमा भवति । स किम्भूतः दिने-
 न्दुमुक्तयुक्तः । दिने दिने इन्दुना चन्द्रेण भुक्तेन नक्षत्रेण युक्तः ।
 सप्तविंशत्यधिके सप्तविंशतिमपास्य अधिकमश्विनीतो भुक्तेनक्षत्र-
 संख्या भवति । एवं सूर्योऽपि स्वभुक्ताश्विन्यादिनक्षत्रयोगेन
 तात्कालिको भवति । एवमेव स्वरोदयटीकायां नरहरिणा
 व्याख्यातम् । सूर्यभुज्यमाननक्षत्रज्ञानन्तु मानसपञ्चिकागणन-
 नवमश्लोकेनोक्तम् ॥ सङ्क्षेपतः प्रवक्ष्यामि तत्कालेन्दुं परिस्फुटम् ।
 येन विज्ञानमात्रेण बुध्यते च शुभाशुभम् । अहोरात्रस्य मध्ये तौ
 विश्रान्तौ धिष्णप्रमण्डले । स चैव प्रश्नकाले च यात्राकाले विप्र-
 क्षतः । दण्डेष्वपञ्चभीरागिरेवं स्युर्द्वादश क्रमात् । लग्नवङ्कु-

भागस्य त्यागाच्छेषः क्रमोत्क्रमः । प्रवासः सुखता मृत्युर्हास्यो
जयो ज्वरो रतिः । शून्यता ज्ञासिता क्रीडा मुग्धिभुक्तिश्च
मेषतः । एताश्च द्वादशवस्थाः शशाङ्कस्य दिने दिने । शुभा-
शुभेषु कार्येषु फलं नामानुरूपतः ॥ नक्षत्रमेकं प्रतिपञ्चदण्ड-
क्रमेण द्वादशचन्द्रास्तात्कालिका भवन्ति चेन्न । यस्य नक्षत्रस्य
उदयादिगता नाडी ग्राह्या तस्यादौ पञ्च दण्डान् व्याप्य तस्य
नक्षत्रस्य चन्द्रो भवति । तत्परपञ्चदण्डान् व्याप्य तत्पर-
चन्द्रमा भवति । एवं क्रमेण द्वादश चन्द्रमसो भवन्ति । कस्य-
चिन्मते सूर्योदयावधिषष्टिदण्डात्मककाले द्वादश चन्द्रमसो
भवन्ति । तन्मते सूर्योदयावधिपञ्चदण्डे यन्नक्षत्रं तस्य चन्द्रमा
भवति । तत्परपञ्चपञ्चदण्डे क्रमेण चन्द्रमा दिवारात्रौ द्वादश-
चन्द्रास्तात्कालिका भवन्ति । यात्रायामेवेति । उदयादिगता
इत्यस्यार्थः । षष्ठ्याप्तश्च शेषः षष्ठ्याप्तशेषकं तस्मिन् षष्ठ्याप्त-
शेषके । एतेन षष्ठ्या दण्डषष्ठ्या हृतशेषके चेति यावत् । तस्मिन्
षष्ठ्या हृतलब्धाङ्को दिनेन्दुभुक्तयुक्तस्तात्कालचन्द्रमा भवति । तत्-
षष्ठ्या हृतभागशेषाङ्के उदयादिगतनाडीयुक्तेन यः संख्याङ्को
भवति स तस्य चन्द्रमसो भोग्यदण्डो भवतीति भावः । शेषक
इति स्वार्थे कः । अत्र यदि शेषो न लब्धस्तदा उदयादिगता
नाडीमात्रसंख्याङ्कस्तस्य भोग्यदण्ड इति भावः । एतेन खण्ड-
नक्षत्रस्यैवं भोगवशात्तात्कालिकचन्द्रस्य स्थाननिश्चयो बोद्धव्यः ।
षष्ठ्याप्तशेषकैरिति पाठे तु षष्ठ्याप्तेन षष्ठ्या हृतलब्धाङ्केन दिने-
न्दुभुक्तयुक्तयेत् तत्कालचन्द्रमा भवति । शेषकैः षष्ठ्या हृतभाग-
शेषाङ्कैरुदयादिगतानाडीसंख्याङ्कयुक्तेन यः संख्याङ्कः स तस्य
चन्द्रमसो भोग्यदण्डो भवति ॥ अत्रादिति ॥ ऋजस्यं नक्ष-
त्रस्यं चेष्टनाडीकं प्रश्नसमर्थं द्वादशदण्डं तात्रा एकद्वित्रिदिन-
क्रमेण प्रत्येकं दिनं दण्डानां साधनं सङ्कलय्य ग्राह्यम् । एवं

क्रमेण नक्षत्रस्य प्रश्नकाले सूर्येण यावन्तो दण्डा भुक्तास्तानेव
सप्तविंशतिसंख्यया सङ्ख्यया षष्ठ्या हरणालम्ब्य शेषञ्च भवति लम्बञ्च
सूर्यभुक्तनक्षत्रसंख्यया संयोज्य सप्तविंशत्यधिके सति सप्त-
विंशतिमपास्यावशिष्टं भुक्तनक्षत्रं तत्संख्या अश्विनीतो भवति ।
षष्टिहरणशेषं भुज्यमाननक्षत्रम् । तत्र कोष्ठे तन्नक्षत्रस्य तात्का-
लिकः सूर्यो वेधनीयः पश्चात् स्वनक्षत्रचन्द्रनक्षत्रयोर्व्यवस्थित-
श्चिन्तनीयः । नक्षत्रे सूर्यभुक्तषष्टिदण्डपूर्णता तु चत्वारिंशदण्ड-
न्यूनचतुर्दशदिनेन सकलनक्षत्रभोगः प्रत्यहं सप्तदशपलाधिकाश्च-
त्वारो दण्डा भवन्ति न्यूनभोगेन किञ्चित् पले ऋसति । तेन
नक्षत्रभोगप्रवृत्तिसमयादारभ्य प्रश्नकालं यावन्तो दण्डा-
स्तेषु प्रतिषष्टि चत्वारो दण्डाः सप्तविंशत्यलानि षष्टिमानेन
तदनुमानेन न्यूनता सूक्ष्मकालस्य सूर्यमण्डलादिग्रहनक्षत्रतात्-
कालिकीकरणे पैतामहश्लोको लिख्यते ॥ ऋक्षप्रवेशादिष्टान्त-
नाद्यः षष्ठ्या भताङ्गिताः । ऋक्षप्रदेशादात्यागघटिकाभिर्विभा-
जिताः । लब्धं दण्डादि यत्र तु तद्भग्नं षष्टिभिर्हृतम् अश्वरादि-
सूर्यभुक्तेन युक्तस्तात्कालिको रविः । पश्चात्तात्कालिकीकरणा-
नन्तरं सूर्याचन्द्रमसौ स्वस्वर्चव्यवस्थितौ स्वनक्षत्रे वापरनक्षत्रे
स्थितौ विलोकयेत् । चन्द्र इति चन्द्रऋक्षे अश्वीशेत्यादिकथितन-
क्षत्रे यदि अर्कन्दू तात्कालिकौ स्तस्तदा निधिर्नियतं निश्चितमस्ति
चेद्भानुनक्षत्रे सूर्यनक्षत्रे तौ सूर्याचन्द्रमसौ स्थितौ तदा शल्यं
भवति । स्वस्वम इति स्वस्वमे चन्द्रे रवौ च स्वस्वनक्षत्रे स्थितौ
द्वितीयं निधिः । शल्यञ्च चन्द्रस्थाने निधिं सूर्यस्थाने शल्यं वदेत् ॥
विपर्यये चन्द्रनक्षत्रे सूर्यं सूर्यनक्षत्रे चन्द्रे स्थिते सति न
किञ्चित् निधिः शल्यञ्च नास्तीत्यर्थः । क्रूरान्विते तात्कालिक-
चन्द्रे स्थिते द्रव्यं न लभ्यते पारिशेष्यात् शुभग्रहयोगे लभ्यते
इति ॥ पुष्ट इति ॥ चन्द्रपुष्टे शुक्लपक्षैकादशीपर्यन्तं पुष्टस्तत्र

पुष्टोऽतिशयितो निधिर्भवेत् । क्षीणचन्द्रे तु निधिरल्पक इति ।
क्षीणेन्दुश्च कृष्णैकादशीतः शुक्लपञ्चमी यावदिति ॥ उभयपक्षप-
ष्टौदशमीपर्यन्तं न तु मध्यवलत्वम् । तेन मध्यत्वं द्रव्यस्य ग्राह्यम् ।
एवं व्यवस्थितौ किं द्रव्यमित्याकाङ्क्षायामाह ॥ हेमेति ॥ सूर्या-
दिना वीक्षिते तात्कालिके चन्द्रे हेमादिद्रव्यं विजानीयादित्यर्थः ।
तत्र सूर्यवीक्षिते हेम सुवर्णं स्थूलचन्द्रेक्षिते तारं रजतं कुजेक्षिते
ताम्रं बुधेक्षिते आरं पित्तलं जीवेक्षिते रत्नं शुकेक्षिते कांस्यं
शनैश्चरेक्षिते आयसं लौहविकारः राहुवीक्षिते वङ्ग इति केतुवी-
क्षिते नागं सीसकमिति प्रसिद्धं द्रव्यम् ॥ मिश्रेति ॥ मिश्रैर्नाना-
ग्रहैर्दृष्टे मिश्रं नानाप्रकारं वदेत् । ये ये ग्रहाः पश्यन्ति तस्य
तस्य द्रव्याणि भवन्तीति तात्पर्यम् । दृष्टिवर्जिते चन्द्रे शून्यं न
किमपीत्यर्थः । सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे असौ महानिधिर्विज्ञेय इति ।
असौ निधिः ग्रहाणां सूर्यादिग्रहाणां दृष्टिवशान्नवधा नवप्रकारो
बुधैर्ज्ञातव्य इति ॥ द्रव्याधारमाह हेमेति ॥ चन्द्रे सूर्यादि-
राशिस्थे द्रव्यभाण्डमाधारो भाजनं प्रजायते इत्यर्थः । यथा
सूर्यग्रहे सिंहे हेम । चन्द्रग्रहे कर्कटे रजतम् । कुजग्रहे
मेघे वृश्चिके वा ताम्रम् । बुधग्रहे कन्यायां मिथुने वा आरम् ।
गुरुग्रहे धनुषि मीने वा पाषाणः । शुक्रग्रहे वृषे तुलायां वा
मृत्समम् । शनिग्रहे मकरे कुम्भे वा आयसं लौहम् । एवं
राहुग्रहं कन्या तत्र बुधदृष्टिविहीने वङ्गम् । केतुग्रहे मीने
जीवानलोकिते सीसकमित्यपि ज्ञेयम् ॥ शुभक्षेत्र इति ॥
शुभाश्वन्द्रबुधगुरुशुक्रास्तेषां क्षेत्रे राशी चन्द्रे सति द्रव्यस्य
लाभो न संशय एव । एवं पापक्षेत्रे पापग्रहराशिगे सति तदा
न लाभः । इति स्वरविद्धिर्ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ भुक्तेति । भुक्त-
राश्यां शमानेन तात्कालिकचन्द्रेण यावन्तो राश्यां भा भुक्तास्तन्मा-
नेन तत्संख्यया कार्मिकैर्बद्धमुष्टिभिः करैर्हस्तैर्भूमानं धृत-

द्रव्यगतभूमानं भुक्तांशकसंख्यकहस्तप्रमाणं कर्तव्यं स्वाति
 द्रव्यमस्तीति वक्तव्यम् । नीचे नीचराशिद्विचिकस्ये चन्द्रे तदेव
 मानं द्विगुणितं परे नीचे द्विचिकतृतीयांशस्ये च चन्द्रे
 असी निधिर्जलस्यो वक्तव्यः ॥ तावत् स्वातन्त्र्यं यावज्जलस्य
 द्रव्यं लभ्यते ॥ उच्चस्ये इति । वृषराशिद्वितीयांशस्ये चन्द्रे नवां-
 शकक्रमेण यावन्तो नवांशा भुक्तास्तावन्तः पूर्ववदृष्टं परमोच्च
 वृषतृतीयांशस्ये चन्द्रे अत्युच्चप्रदेशे द्रव्यमस्तीति । ऋक्षसंक्रमे
 तात्कालिकनक्षत्रशेषपलगते भित्तिस्थं भवति ॥ चन्द्रांशिति ॥
 चन्द्रांशभुक्तकालेन तात्कालिकचन्द्रेण राशेर्यावन्तोऽंशा भुक्ता-
 स्तन्मानेन द्रव्यसंख्यां विधीयते । प्रत्येकं भुक्तांशे दशसंख्या च
 षड्वर्गेषु गृहे होराद्रेकाणनवांशद्वादशांशविंशांशेषु बलक्रमा-
 दशगुणे वृद्धिः यदि स्वकीयषड्वर्गभागे तिष्ठति तदा अंशादु-
 दितद्रव्यं दशगुणं स्यात् । अधिष्ठितमिति वर्णप्रश्ने चन्द्रो ग्रहा-
 न्वितो भवति तत्र द्रव्यमधिष्ठितं भास्करादिग्रहैः प्रत्येकं
 सहिते क्रमात्तदधिष्ठायको द्रव्याधिष्ठितो ज्ञेयः । यथा चन्द्रे
 सूर्यान्विते ग्रहस्थूलचन्द्रसहिते उपग्रहः कुजसहिते क्षेत्रपालः
 बुधसहिते मातृका गुरुसहिते दीपेशः शुकसहिते भौषणः शनि-
 सहिते रुद्रः राहुसहिते यक्षः केतुसहिते नाग इति क्रमात् ॥
 ग्रह इति । ग्रहे अधिष्ठिते हेमग्रहस्यैव मुखे मुखग्रहः नारायणो
 नारायणसम्बन्धो बलिः पूजोपहारादिरिति ॥ क्षेत्रपाले अधि-
 ष्ठिते तस्मै सुरा मद्यं मांसञ्च देयमिति । मातृकायामधिष्ठितायां
 महाबलिः । मानुषबलिस्तदभावे व्हागादयोऽपि अविरोधा बलि-
 त्वेनोपकल्प्याः । दीपेशे अधिष्ठिते दीपजा दीपप्रधाना पूजा ।
 भौषणे भौषणाच्चर्चनं भयजनकार्चनम् । लोहितपुष्पादिकृते रुद्रे-
 ऽधिष्ठिते रुद्रजापो रुद्रमन्त्रस्य जपः जाप्यो रुद्राध्यायः । यक्षे-
 ऽधिष्ठिते यक्षादिशाकं यक्षादिपूजनम् । नागेऽधिष्ठिते नागगणाः

पूज्याः । गणनाथेन गणेशेन संयुताः प्रतिशान्तिके गणेशपूजा ।
लक्ष्मीधरादिभूत्यादिपञ्चविंशतिसंख्यकानि सर्वकार्येषु पूज-
येत् ॥ एवमिति । विमाने यथाविधि क्रमेण एवं कृते पूजा-
होमादौ दुःसाध्यो निधिः साध्यते । एतन्निरूपकस्य दृष्टप्रयो-
जनमाह एवं प्रकारेण नरो मनुष्यो निधिप्राप्त्या वन्दनीयः नम-
स्कारणीयः स्तुत्यो वा भवत्यत्र न संशय इति ॥

अथवा महाकपिलपञ्चरानोक्तक्रमेण शल्योद्धारः कर्तव्यः ।
स क्रमो यथा । प्रासादारम्भकाले च गृहादौ च विशेषतः ।
शल्योद्धारस्तु कर्तव्यो यदीच्छेच्छुभमात्मनः । प्रासादारम्भकाले
च यदङ्गं स्पृशते पुमान् । वास्तुदेहे दृढं तत्र शल्यं दद्याद्विच-
क्षणः । कण्डूयति शिरः पुंसि शिरःशल्यं समुद्धरेत् । शल्यं
तत्रास्ति विज्ञेयं खन्यमाने करत्रये । अग्निदाहश्च रोगश्च धन-
हानिश्च जायते । यत्ने नोत्पाटयेच्छल्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।
ब्राह्मो कण्डूयमाने तु निर्दिशेत्तौहृष्टलम् । हस्तद्वयेन मानं
तल्लक्षणं कथितं तव । स्वामिनो मरणं विद्याद्विदेशगमनं तथा ।
यत्ने नोत्पाटयेच्छल्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः । ऊरौ कण्डूयमाने
तु कांस्यशल्यं विनिर्दिशेत् । हस्तैकेन च सन्तिष्ठेत्तल्लक्षणं कथितं
तव । असतौ च भवेद्भार्या यशोहानिः प्रजायते । यत्ने नोत्पा-
टयेच्छल्यं यदीच्छेच्छुभमात्मनः । हस्ते कण्डूयमाने कङ्कालश्च
विनिर्दिशेत् । त्रिहस्तेन तु सन्तिष्ठेत् खन्यमाने न चान्यथा ।
अग्निदाहश्च रोगश्च पीडा च मरणं भवेत् । यत्ने नोत्पाटयेच्छल्यं
यदीच्छेच्छुभमात्मनः । पृष्ठे कण्डूयमाने तु बाहुशल्यं विनि-
र्दिशेत् । हस्तेनैकेन सन्तिष्ठेद्वाच कार्या विचारणा । स्वामिनाशो
भवेत्तत्र भार्या वा जायतेऽसती । पदे कण्डूयमाने तु हस्त-
शल्यं विनिर्दिशेत् । सार्द्धहस्तेन सन्तिष्ठेत्तल्लक्षणं गदितं तव ।
अङ्गनाशो राजदण्डः शस्यहानिश्च जायते । यत्ने नोत्पाटयेच्छल्यं

यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः । कुक्षौ कण्डूयमाने तु पाषाणं तत्र
 निर्दिशेत् । हस्तद्वितयमानेन लक्षणं गदितं तत्र । भुजङ्गदंश-
 स्तत्र स्यात् तस्माच्छल्यं समुद्धरेत् । जानौ कण्डूयमाने तु
 भस्म तत्र विनिर्दिशेत् । हस्तद्वयेन सन्तिष्ठेत्तत्र गदितं तत्र ।
 अग्निदाहो मनस्तापं क्लेशदुःखमयानि च । करोत्येवंविधं कर्म
 तस्मात्तं वै समुद्धरेत् ॥ ज्योतिषे ॥ सुनिश्चितां मन्दिरभूमिमादौ
 निखाय तोयावधियत्नतस्त्याम् । कुर्याद्विशल्यामथवा न मानं
 स्याद्वायवा प्रश्नवशाद्विधिज्ञः । दूर्वाप्रबालाक्षतपुष्पपाणिः शुचिः
 शुचिं देवविदं समेत्य । पृच्छेद्विनीतो मधुरस्वरेण शल्यस्य तत्त्वं
 भवने तदीशः । तत्प्रश्नस्यादिमो वर्णः सन्धार्यो यत्नतोऽथ
 वा । क्रमात् पुष्पापरादेव फलानां ब्राह्मणादितः । क्रमादित्य-
 नेन ब्राह्मणः पुष्पनाम वदेत् क्षत्रियो नदीनाम वैश्यो देवनाम
 शूद्रः फलनामे इत्यायातम् । प्रणवो धरणी धारिणी करौ न
 तदनन्तरम् । भूत्यै नमश्च इत्येष मन्त्रो वज्रिप्रियान्तकः । वज्रि-
 प्रिया स्वाहा । मन्त्रेणानेन कठिनीमभिमन्त्र्य विभाजयेत् ।
 नवधा सदनक्षेत्रं तया पश्चाद्विलेखयेत् । वक्त्रतण्डुः शप-
 या नव चेत् प्रश्नाक्षराणि जायन्ते प्रागादिकोष्ठनवके वर्णास्ते
 शल्यमाख्यान्ति । प्रश्ने वकारः पुरतो नरास्थि ब्रवीति शल्यं
 मरकप्रदायि ॥ १ ॥ क्षीणीशदण्डोरगहेतुमृत्युप्रदं ककारः खर-
 शल्यमग्नौ ॥ २ ॥ यास्यां चकारः प्लवगास्थिवेश्म प्रभोर्विना-
 शावहमाह शल्यम् ॥ ३ ॥ रक्षोदिशि स्वास्थिगृहस्थितानां मह-
 द्ययं वक्ति सुनिश्चितं तः ॥ ४ ॥ एः पाशदिश्वस्थिश्चिशोर्ब्रवीति
 मृत्युप्रवासाहवमाह शल्यम् ॥ ५ ॥ हो वायुकोणे नररूपमाह
 दारिद्र्यमिष्टक्षयकक्षिते ॥ ६ ॥ धनपदिशि शकारः प्राह
 विप्रास्थिवित्तक्षयकृत् ॥ ७ ॥ अथ पकारो वक्ति ऋक्षास्थि-
 शम्भौ ॥ ८ ॥ तदिह कुलविनाशं गोधनानाञ्च हानिं वितरति

गृहनाथस्यापि गुप्तस्य देवैः । यो मध्यभागे भस्मितं कपालं
कालायसञ्चाह कुलक्षयाय ॥ ८ ॥ यद्वादपास्यान्यधुना प्रमाणं
सर्वत्र तथ्यं कथयामि शल्ये । इन्द्ररक्षोजलेशानि शल्यं सार्द्ध-
करे कटौ । वज्रान्तककुबेरिषु पुरुषे मध्यवातयोः ॥ देवौ-
पुराणे ॥ पुरुषाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् ।
प्रसादे दोषदं शल्यं भवेद् यावज्जलान्तिकम् ॥ इति
शल्योद्धारः ॥

पूर्वादिज्ञाननिश्चयमेव मण्डपादि कुर्यादन्यथा दोष उक्तो
राघवभट्टधृतवचनेन यथा ॥ यदि कुर्याद् यथा दृष्टं विपन्नो
निरयं व्रजेत् । भानोर्गत्या दिशो ज्ञात्वा कुर्यात् कर्माणि
देशिकः । वास्तुवैषम्यतो यत्र सम्यङ् न ज्ञायते किल । तत्र
शङ्कुं प्रतिष्ठाप्य जानीयात् शङ्कुदिकस्थितिम् ॥ शङ्कुप्रमाणन्तु
ज्योतिस्तत्त्वे । अर्काङ्गुलाय सूच्यथा काष्ठौ द्वाङ्गुलमूलिका ।
शङ्कुसंज्ञा भवेत्तस्यास्तच्छायां परिकल्पयेत् ॥ राघवभट्टधृतम् ॥
तद्वत्त्वा दिकपरिज्ञानं शृणु वल्ले यथाविधि । सुसमे भूतले
कृत्वा उत्तं भ्रमणरूपतः । तन्मध्यविन्दौ शङ्कुन्तु स्थापयेद्
द्वादशाङ्गुलम् । अग्रच्छायान्वयदशाङ्कुत्ते । पूर्वापराहयोः कृत्वा
चिह्ने तमभितस्तथा । सुसमानपरिभ्रान्त्या कार्यं वृत्तद्वयं
पुनः । तयोः संश्लेषसञ्जातमध्यदक्षोत्तरे स्थिते । सन्निवये तु
प्राक् प्रत्यक् सूत्रं मध्ये च विन्यसेत् । सूत्रदक्षोत्तरं तेषामग्रैः
प्रागादि कल्पयेत् ॥ क्रियासारेऽपि ॥ कृत्वा भूमिं समां तत्र
वृत्तं हस्तमितं समम् । द्वादशाङ्गुलमानोच्चं शङ्कुं खादिर-
निर्मितम् । अलाभे यज्ञकाष्ठस्य तत्र संस्थापयेत् सुधौः ।
तच्छाया संस्पृशेद्यत्र तन्मध्ये मध्यमं स्मृतम् । तिर्यक् प्रसा-
रयेत् सूत्रं मध्ये यास्योत्तरे स्मृते । कोणाः स्फुरन्ते चत्वारश्चतुः-
सूत्रप्रसारणात् । एवमाशापरिज्ञानं समाख्यातं यथा स्फुटम् ।

ज्ञात्वेवं मण्डपादीनि कुर्यात् सम्यग् विचारतः ॥ महाका-
 पिलपञ्चरात्रे तु विशेषः । त्रिषुवेऽनुगते सूर्ये शङ्कुमानं समा-
 चरेत् । खादिरं विन्यसेच्छङ्कुं द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् । इति
 पूर्वादिदिग्ज्ञाननिर्णयः ॥ शङ्कुनिखननप्रकारोऽपि तत्रैव ।
 निश्चलीकृत्य हन्तव्यं गृहीत्वा लौहमुद्गरम् । अष्टधा च समा-
 हन्यात् प्रशस्तं क्रमतो लघु । हन्यमाने यदा शङ्कुं हस्तात्
 पतति मुद्गरः । तदा ताडयितुः शोको जायते दुस्तरो म-
 हान् ॥ इति शङ्कुनिखननप्रकारः ॥ शङ्कुसूत्रकरणमपि तत्रैव ॥
 मौञ्जकौशिकार्पासं प्राणिबालजमेव वा । चतुर्यवपरीणाहं
 सूत्रं शङ्कुं तु वेष्टयेत् । वेष्ट्यमानं यदा सूत्रं शङ्कुं मुञ्चति
 लक्षणम् । पुच्छस्य मरणं विद्यात् छिन्ने वैश्यविनाशनम् ॥
 तत्रापि चारसिंहेन होमेनाशुभनाशनमिति ॥ तथा ॥ शङ्कुं
 सारं भूमेः प्रोक्तं तस्याग्रं चित्रवृत्तकम् । तस्य वृत्तादिनादौ तु
 स्थापयेत् समभूतले । शङ्कुदिगुणमानेन तन्मध्ये वर्तुलं
 लिखेत् । पूर्वापराह्वयोऽध्याया यदा तन्मण्डलान्तगा । तद्विन्दु-
 द्वयगं सूत्रं पूर्वपरा दिगिष्यते । विन्दुद्वयान्तरभ्रान्तशरफट्टय-
 पुच्छगम् । दक्षिणोत्तरगं सूत्रमेवं सूत्रद्वयं न्यसेत् । तदग्राण्य-
 परान्तानि सूत्राणि च विनिक्षिपेत् ॥ सूत्राणि स्थापयेत्
 प्राज्ञः प्रागुत्तरमुखानि चेति ॥ ह्यशौर्मपञ्चरात्रेऽपि ॥ भूमिं
 तोयस्र्मां कृत्वा दर्पणोदरसन्निभाम् । द्वादशाङ्गुलमानेन तत्र
 वृत्तञ्च भ्रामयेत् । मध्ये तु निश्चलं शङ्कुं स्थाप्य छायां निरी-
 क्षयेत् । वृत्तरेखा या बाह्यस्या शङ्कुच्छाया प्रकल्पिता । प्रवेश-
 निर्गमे तस्यां शङ्कुच्छायां निरूपयेत् । शङ्कुच्छायाप्रचिन्नाभ्यां
 प्राक्प्रतीच्यौ प्रसाधयेत् । रात्रौ तु प्राचीसाधनं यथा ॥ कृत्तिका
 श्रवणा पुष्या चित्रास्वात्योर्यदन्तरम् । एतत् प्राच्या दिशो रूपं
 युग्मावोदिते पुर इति ॥ त्रिकाण्डमण्डलेऽपि ॥ अत्रणस्योदये

प्राची कृत्तिकायास्तथोदये । चित्रास्वात्यन्तरे चन्द्रसूर्ययोः ।
इति शङ्खप्रकरणम् ॥

अथ मण्डपकरणम् । विश्वसारं द्वितीयपटले ॥ दीक्षायां
मण्डपं कुर्यात् सुन्दरं सुमनोहरम् । नानावर्णैश्चित्रवर्णैश्चि-
त्रितं सुमनोहरम् । भित्तिस्तम्भादिसर्वेषु स्पर्शरत्नविभूषितम् ।
नानावर्णैश्चित्रवर्णैश्चित्रितं मणिमण्डपम् । वितानपत्रशालध्व-
रलङ्कृत्यादिधानतः । पताकाभिर्ध्वजं कुर्याच्चतुर्दिक्षु मनो-
हरम् । अष्टौ कुम्भानष्टदिक्षु मण्डपं रचयेत् सुधीः ॥ अत्रे-
तिकर्तव्यता उक्ता शारदातिलके द्वितीयपटले ॥ पुण्याहं वाच-
यित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम् ॥ पुण्याहमिति यजमानस्य ।
पुण्याहं भवन्तोऽधिभुवन्तु एवं स्वस्ति भवन्त इति ऋद्धिं भवन्त
इति त्रिभिः पुण्याहवाचनम् ॥ तदुक्तं राघवभट्टतृतीयबोधायनेन ॥
पुण्याहं स्वस्ति ऋद्धिमित्योङ्कारपूर्वं त्रिस्त्रिरेकैकामाशिषं वाच-
यित्वेति । आशिषं वाचयित्वेति निर्देशात् सुतरां यजमान-
नामोल्लेख आयाति । तेन नामोल्लेखमकृत्वा केवलं पुण्याह-
मित्यादिवचनमनुभवविरुद्धमिति । शारदायाम् ॥ पञ्चभिः सप्त-
भिर्हस्तैर्नवभिर्वा मितान्तरम् । षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तोषु
मध्यगाः । अष्टहस्तसमुच्छायाः संस्थाप्य द्वादशाभितः । पञ्च-
हस्तप्रमाणस्तो निष्क्रिद्रा ऋजवः शुभाः ॥ मध्यस्तम्भस्याष्ट-
हस्तपरिमाणमितरेषां द्वादशानां पञ्चहस्तपरिमाणमिति ॥
तत्पञ्चमांशं निखनेन्द्रेदिन्यां मन्त्रवित्तमः ॥ नारिकेलदलैर्वैशे-
ष्ठादयेत्तत्समन्ततः ॥ वंशैर्वैशदलैरुभयत्र बहुवचननिर्देशेनेत्या-
दिबहुवचनान्ता गणस्य संसूचका भवन्तीति न्यायाच्छादनोप-
युक्तमन्यदपि लभ्यते । द्वारेषु तोरणानि स्युः क्रमात् क्षौरिमह्वी-
रुहाम् । स्तम्भोच्छायः स्मृतस्तोषां सप्तहस्तैः पृथक् पृथक् । दशा-
ङ्गुलप्रमाणेन तत्परीणाह ईरितः । तिर्थ्यक् फलकमानं स्यात्

स्तन्मानामूर्ध्वमानतः । मूलानि कल्पयेन्मध्यं तोरणे हस्तमा-
नतः । दिक्षु ध्वजानि वध्नीयात् लोकपालसमप्रभान् । वितान-
दर्भमानाद्यैरलङ्कुर्वीत मण्डपम् ॥ चौरिमहीरुहामिति अश्व-
त्योडुस्वरप्लक्षवटानाम् ॥ तदुक्तं राघवमदृष्टतेन ॥ न्यग्रोधतोरणं
पूर्वं याम्ये तूडुस्वरं मतम् । पश्चिमेऽश्वत्यसम्भूतमुत्तरे प्लक्षतो-
रणम् ॥ पूर्वं वा प्लक्षसम्भूतं न्यग्रोधोत्तरे मतमिति ॥ तोर-
णकरणकारणन्तु महाकपिलपञ्चरात्रे । देवास्तेरणरूपेण
संहिता यज्ञमण्डपे । विघ्नविध्वंसनार्थञ्च रक्षार्थं त्वध्वरस्य च ।
अध्वरस्य यज्ञस्य । इति मण्डपादिकरणम् ॥

अथाङ्कुरार्पणम् । प्रपञ्चसारे पञ्चमपटले ॥ सप्ताहतो वा न-
वमाहतो वा प्रागेव दीक्षादिवशाद्यथावत् । सपालिकापञ्च-
मुखीशरावचतुष्टये वीजनिवापयुक्तम् । अन्यस्मिन् भवने च
भूतलतले शुद्धे स्थले मण्डलं कुर्यात् प्राग्वरुणायतं पदचतुष्कोणे
तु भानूदयम् । पीतारक्तसितासितं प्रतिपदं वज्रादिसप्तान्ति-
कम् याम्योदीच्यसमायतं प्रणिगदन्यन्येऽपि तन्मन्त्रिणः । वैष्ण-
व्यस्त्वय पालिका अपि चतुर्विंशाङ्गुलिव्यापका वैरिञ्चयो घटि-
कास्तु पञ्चवदनाद्यष्टाङ्गुलोच्छ्रायकाः । शैवाः स्यर्दिषडङ्गुला अपि
शरावास्ता जलचालिताः सूत्रैश्च प्रकलय्य पंक्तिषु च ताः प्रोक्त-
क्रमाद्विन्यसेत् ॥ पृथगपि शालीतण्डुलपूर्णान् सदर्भवड्कूर्चासु ।
मृदालुकाकरीषैः क्रमेण पूर्णानि पात्राणि ॥ शालीकङ्कुश्यामाक-
तिलसर्षपमुद्गमाषनिष्यावाः । खल्वाढकीसमेता वीजानि विदुः
प्ररोहयोग्यानि ॥ प्रक्षाल्य तानि निवपेदभिमन्त्र्य मूलवीजेन
साधकवरस्त्वपि पात्रकेषु । विप्राशिषा च विधिवत् प्रतिपाद्य-
मानशङ्खादिमुख्यतमपञ्चकनिस्त्रयैश्च ॥ हारिद्राङ्गिः सम्यगभ्युक्ष्य
वस्त्रैराच्छाद्याङ्गिः सिच्यतां पञ्चवोषैः । सायं प्रातः सर्वरीषु
प्रदद्यादुक्तैर्द्रव्यैस्तद्वलिं साधकेन्द्रः ॥ भूतपिढयक्षनागवृद्धाग्निवा

देवताश्च विष्णुन्ताः । ताभ्यः क्रमेण रात्रिषु सप्त सुरान् वसु वां
तद्वलिर्देयः ॥ लाजतैलरत्नरजनीदधिशक्तान्नानि भूतक्रूराख्यम् ।
पैत्रं तिलतण्डुलकं सान्नपूपं करम्भलाजकं याक्षम् ॥ नारि-
केलोदकशक्तुपिष्टं नागं पद्माक्षतञ्च वैरिञ्चयम् । अन्नापूपं शैवं
दुग्धानञ्च वैष्णवेयम् ॥ यदि नवरात्रं क्रमेण बलिरुक्तः । तारा-
दिर्केनमोऽन्तैः स्वैः स्वैरपि नामभिर्वलिमन्त्रः । पाचाणि
त्रिविधान्यपि परितः पुनरष्टदिक्षु बलिहृप्तिः । वीजारोपण-
कर्म प्रथितमिदं सार्वकामिकं भवति । सार्वकामिकमित्युपा-
दानाद्वक्ष्यमाणद्वौक्षायामित्यादिवचनाच्चाख्यावश्यकत्वम् । एते-
षामर्थस्तु विश्वसारशारदावक्ष्यमाणप्रमाणैः स्पष्टीभविष्यत्यतोऽत्र
व्याख्या न कृता । विश्वसारतन्त्रे तृतीयपटले च । जाताङ्गुराः
प्रकुर्वीत चतुर्दिक्षु च पालिकाः । पालिकाः पञ्च मुख्यश्च शरावाश्च
ततः क्रमात् । षोडशद्वादशाष्टाभिरङ्गुलीभिः क्रमादिमाः । सुग-
न्धितोयपूर्णं जाताङ्गुरमुदाहृतम् । सुधावीजेन वीजानि निक्षि-
पेत्तत्र सर्वतः । आचार्यो विधिना कुर्यात् सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
श्यामाकमाषकङ्कुश्च ब्रीहयः सर्वतः स्मृताः । द्वौक्षायाः सप्तमे
पूर्वं दिवसे संयतः सदा । सप्तरात्रेषु कुर्वीत पूजनं सर्वदेवताः ।
नानोपहारबलिभिः पूजयेत् परमेश्वरि । । प्रणवाद्या नमोऽन्ताश्च
पूजयेत् सर्वतः सुधीः । भूतानि पितरो यक्षा नागा ब्रह्मा शिवो
हरिः । क्रमेण पूजयेत् सर्वान् सप्तरात्रिषु देशिकः । सप्ताना-
मपि रात्रीणां देवताः सर्वसम्भताः । उपहारैः पूजयेत्तान् तानि
वक्ष्यामि पार्वति । । लाजैश्च पूजयेद्भूतान् गन्धपुष्पादिचन्दनैः ॥
भूताधिपं भूतगणं भूतेशञ्च क्रमेण तान् । तैलहरिद्रादधि-
शक्तुभिः पूजोपहारकैः । तण्डुलान् तिलसन्निभान् सान्नपूपैः
प्रपूजयेत् । पितृणां पूजयेन्नित्यं कथितं पद्मयोनिना । करम्भ-
लाजौ यक्षेभ्यो नारिकेलोदकान्वितम् । शक्तुं पिष्टञ्च नागभ्यः

पूजयेद्विधिनामुना । पङ्कजातपतण्डुलदूर्वाशालिभिरुत्तमा ।
 पूजयेत् कथिता तेवि ! ब्रह्मणः सर्वसम्पत्ता । सापूपमन्नं सर्वाय
 सर्वतन्त्रस्य सम्पत्तम् । गुडोदकं गुडान्नञ्च नानारससमन्वितम् ।
 दधि दुग्धं पायसान्नं दद्यात् प्रियतमं महत् । विष्णवे च निवे-
 द्याथ सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ॥ अत्र बलिद्रव्याधिक्यदर्शनात् प्रागुक्त-
 प्रपञ्चसारोदितबलिद्रव्यमुपलक्षणमात्रं शक्ताशक्तपरं वा । शार-
 दातिलके तृतीयपटलेऽपि ॥ प्रागेव दीक्षादिवशात् सप्तभिर्वि-
 धिवद्भिर्नैः । सर्वमङ्गलसम्पत्तौ विदध्यादङ्गुरार्पणम् । मण्डल-
 स्योत्तरे भागे शालां पूर्वापरायताम् । गूढां कुड्यान्ततस्तस्यां
 मण्डलं रचयेत् सुधीः । पञ्चदशस्तप्रमाणानि पञ्चदशाणि पात-
 येत् । पूर्वापरायतान्येषामङ्गुरां द्वादशाङ्गुलम् । दक्षिणोत्तर-
 सूत्राणि तद्वदेकादशार्पयेत् । पदानि तत्र जायन्ते चत्वारिंशत्
 प्रमार्जयेत् । पन्था वीथीश्चतस्रोऽन्तश्चतुष्कोभयपार्श्वयोः ।
 वीथी द्वे च चतुष्कोष्ठमेकमत्रावशिष्यते । पदानि रञ्जयेत्तानि
 श्वेतपीतारुणासितैः । रजोभिः श्यामलेनाथ वीथीरापूरयेत्
 सुधीः । पात्राणि विविधान्याङ्गुरङ्गुरार्पणकर्मणि । पालिकाः
 पञ्चमुख्यश्च शरावाश्च ततः क्रमात् । प्रोक्ताः स्युः सर्वतन्त्रेषु हरि-
 ब्रह्मशिवात्मकाः । एषामुत्सेधतोऽन्वेयैः योडशद्वादशाष्टभिः ।
 अङ्गुलैः क्रमशस्तानि शुभान्यावेष्ट्य तन्तुना । प्रक्षाल्य देशिकस्तेषु
 पादेष्वहितशालिषु । सगन्धदर्भकूर्चेषु पश्चिमादि निवेशयेत् ।
 करीषवालुकामृद्भिस्तानि पात्राणि पूरयेत् । सुधावीजन
 वीजानि दुग्धैः प्रक्षाल्य तत्त्वपित् । मूलमन्त्रविजस्तानि पञ्चघोष-
 पुरःसरम् । आशीर्वाण्भिर्विजातीनां मङ्गलाचारपूर्वकम् । निर्व-
 पत्तेषु पात्रेषु देशिको यतमानसः । शालिश्यामादकीमुन्नतिल-
 निष्ठावसर्षपाः । कुलत्पकङ्गुमापाश्च वीजान्यङ्गुरकर्मणि । हरि-
 द्राक्षः सप्तान्युत्पलैराञ्छाद्य देशिकः । बलिं विविधपात्राणां

दिक्षु पूर्वादितः क्षिपेत् । प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च रात्रौ रात्रौश-
नामभिः । भूतानि पितरो यक्षा नागा ब्रह्मा शिवो हरिः । सप्ता-
नामपि रात्रीणां देवताः समुदीरिताः । भूतैश्च स्युर्लाजतिल-
हरिद्रादधिशक्तवः । शाल्यः पिष्टभ्यः सतिलास्तण्डुलाः परि-
कीर्तिताः । करञ्जलाजौ यक्षेभ्यो नारिकेलोदकान्वितम् । शक्तं
पिष्टञ्च नागेभ्यो ब्रह्मणे पङ्कजाक्षतम् । सपूपमन्नं सर्वाय विष्णवे
स्याद्गुडौदनम् । ततो लोकेश्वरेभ्योऽपि विधिवद्वितरेहलिम् ।
दीक्षायामभिषेकेषु नववेश्मप्रवेशने । उल्लवेषु च सम्पत्त्यै विदध्या-
दङ्गुरार्पणम् ॥ एतेषामर्थः ॥ दीक्षादिवशात् पाकसमभिर्दिनै-
रित्यनेन दीक्षादिनमष्टमं यथा भवति तथा कर्त्तव्यमित्युक्तम् ।
विधिवदित्यनेन नवभिः पञ्चभिस्त्रिभिर्वा इत्यायातम् ॥ तदुक्तं
सिद्धान्तशेखरे ॥ प्रतिष्ठायाञ्च दीक्षायां स्थापने चोत्सवे तथा ।
सम्प्रोक्षणे च शाल्यैर्वा विवाहे मौञ्जिवन्धने । सर्वमङ्गलकार्येषु
कारयेदङ्गुरार्पणम् ॥ महाकपिलपञ्चरात्रेऽपि ॥ पुण्याहचोषणं
कृत्वा ब्राह्मणैः सह देशिकः । मङ्गलाङ्गुरयज्ञञ्च कुर्यात्तत्रैव
वाहनि ॥ प्रशस्तयागदिवसात् पुरस्तात् सप्तमेऽहनि शुभे नवमे
वा । पञ्चमेऽथ सुदिने सुमुहूर्त्ते मङ्गलाङ्गुरविधिं विदधीत ॥
गुरुर्विशुद्धः प्रागेव शुद्धाहात् सप्तमेऽहनि । सङ्कल्पोपोष्य
कर्त्तव्यमङ्गुरारोपणं शुभम् । कुर्यान्नान्दीमुखश्राद्धं पूर्वैद्युः
स्वस्तिवाचनम् । स्वर्गहोक्तप्रकारेण तदेतद्विदधीत वै । संहि-
तायामपि । सर्वत्राभ्युदयश्राद्धमङ्गुरोत्पादनं तथा । आदादेव
प्रकुर्वीत कर्मणोऽभ्युदयात्मनः ॥ शालामिति विंशत्या तु करै-
र्मानं दशायामेन विस्तृतेति शालाया उक्तममानम् । अत्रैतावत्याः
प्रयोजनाभावादर्थेन मध्यममानेन शाला कार्या । तेन दशहस्त-
दीर्घा पञ्चहस्तायामा अत्र शाला कर्त्तव्या तामेव पूर्वापराया-
तामिति । दीर्घप्रहस्तचतुरस्तरूपां गूढां कपाटादिपरिहृतां

दक्षिणैकद्वारवतीं निवाताञ्च कुर्यात् । तदुक्तं प्रयोगसारे ॥
 अर्वादुदक्स्थितां कृत्वा निवातां तां कुटीं दृढामिति । तत्र
 मण्डलकरणप्रकारमाह । पञ्चहस्तेति पूर्वपश्चिमक्रमेण पञ्च
 सूत्राणि पातयित्वा द्वादशाङ्गुलान्येकैकान्तरितान्येकादशसूत्राणि
 दक्षिणोत्तरक्रमेण पातयेत् तेन चत्वारिंशत्कोष्ठा भवन्ति ।
 मार्जयेदिति पञ्चादन्वेति ॥ पञ्चधावाञ्च चतस्रो वीथीर्मार्जयेत्
 मार्जनप्रकारस्तु ॥ प्रथमं पूर्वस्थां चतुष्कोष्ठात्मिकामेकां वीथीम्
 ततो दक्षिणस्यामष्टकोष्ठात्मिकामपराम् पश्चिमायां चतुष्कोष्ठा-
 त्मिकामन्याम् उत्तरस्यामष्टकोष्ठात्मिकामितराञ्च मार्जयेत् । ततः
 अन्तश्चतुष्कस्य उभयपार्श्वयोर्द्वे वीथ्यौ द्विद्विकोष्ठरूपे पुनर्मार्ज-
 येत् । तेनात्र मण्डले चतुष्कोष्ठत्रयमवशिष्यते । तानि शि-
 ष्टानि चतुष्कोष्ठत्रयस्थानि द्वादशपदानि प्रत्येकं चतुष्कोष्ठं
 श्वेतादिभीरजोभीरञ्जयेत् । तत्र वायुपदे श्वेतं आग्नेये पीतं
 नैऋते अरुणं ईशाने कृष्णम् । ततः श्यामलेन वीथीरापूर-
 येत् । पत्राणीति स्थूलान्युच्चानि शरावाखेव पालिकाशब्दे नो-
 च्यन्ते । पालिका एव नीचाः पञ्चमुखस्थिताः पञ्चमुख्य उच्यन्ते
 शरावाः प्रसिद्धा एव । पालिका हरिरूपाः पञ्चमुख्यो ब्रह्मरूपाः
 शरावाः शिवरूपाः । एतेन हरिब्रह्मेश एषु पात्रेषु पूज्या
 इत्युक्तं भवति । तदुक्तं सारस्वततन्त्रे ॥ प्रोक्तेषु तेषु पात्रेषु ब्रह्म-
 विष्णुशिवान् यजेत् ॥ सिद्धान्तशेखरेऽपि ॥ सम्पूजयेत् शरावेषु
 रुद्रं चन्दनपुष्पकैः । पालिकासु तथा विष्णुं ब्रह्माणं घटिकासु
 चेति । उत्सेधत औन्नत्येन ॥ महाकपिलपञ्चरात्रे ॥ पालिका
 वक्त्रविस्तारा षोडशाङ्गुल उच्यते । भवेत्कण्ठविलङ्घ्यास्या गुदे-
 ऽष्टाङ्गुलविस्तृतम् । पादपीठस्य विस्तारः षडङ्गुल उदाहृतः ।
 चतुरङ्गुल उत्सेधस्तत्तन्निष्ठाङ्गुलद्वयम् । तत्तन्ध्वं भवेन्नाहः
 पादपीठाईमेव च । भवेत् पञ्चमुखी चैवं घटिका सर्वकामदा ।

चरतुङ्गुलविस्ताराण्यहर्वक्त्राणि पञ्च वै । चत्वारि च चतुर्दिक्षु
ऊर्ध्वमेकं यथाविधि । घटिकायामविस्तारो द्वादशाङ्गुल उच्यते ।
आचार्याः कथयन्त्येके षोडशाङ्गुलमेव वै । द्वादशाङ्गुलविस्तारं
शरावस्य मुखं स्मृतम् । चतुरङ्गुलविस्तारमधस्तान्मूलमुच्यते ।
राघवभट्टतम् । तालमात्रमपि पञ्चमुखी स्याद्व्यासतोच्छ्रयमिता
घटिका स्यात् । दिक्षु तन्मुखचतुष्टयमेकं मध्यमन्तु समवर्त्तित-
भागम् । अलविस्तृतमुखे तु शरावं व्यासतोच्छ्रयगताईमिताङ्गुः ।
दण्डमस्य चरङ्गुलनाहं कण्ठमध्यविलवज्जं मन्दग्रम् । सम्भवे
कनकरूप्यताम्रतो मार्त्तिकाख्यभिनवान्यथवा स्युः ॥ सिद्धान्त-
शेखरे तु ॥ यथासम्भवमानन्तु पालिकादि समाचरेदित्युक्तम् ।
शुभानीति कृष्णवर्णव्रणादिरहितानीति राघवभट्टः । तन्तुनेति
त्रिगुणेन पूर्वं प्रक्षालनं पश्चात्त्रिगुणतन्तुना वेष्टनम् । दर्भकूर्चं मग्रे
वक्ष्यमाणम् । पश्चिमादौति पश्चिमचतुष्के पालिकाचतुष्टयम्
मध्यमचतुष्के पञ्चमुखीचतुष्टयम् पूर्वचतुष्के शरावचतुष्टयं
निवेशयेत् । तन्मध्ये आग्नेयादिस्थापनम् । देशिक इत्यनेनो-
क्तम् ॥ तदुक्तं प्रयोगसारे ॥ एवं कृत्वा साधकस्तु तत्र पात्राणि
विन्यसेत् । वज्रादीशानपर्यन्तं चतुष्केषु पृथक् पृथक् । करौ-
षेत्यादि ॥ करौषं शुद्धगोमयचूर्णम् ॥ एतैरुत्तरोत्तरं सर्वा-
ण्यपि पात्राणि पूरयेत् । तदुक्तं हयशीर्षपञ्चरात्रे ॥ पूरयेदु-
त्तरोत्तर इति । प्रयोगसारेऽपि । ऋङ्गालुकाकरौषैश्चोर्द्धतः
पात्राणि पूरयेदिति ॥ अत्र विशेषः सिद्धान्तशेखरे ॥ गन्धादि-
भिश्च कुडालं पूजयित्वा दिनान्तरे । गीतनृत्यसमायुक्तं गज-
वाजिसमन्वितम् । गुर्वादयो रथारूढा गजारूढास्तथा परे ।
गत्वा तीरं तडागस्य नद्याः पुष्पवनस्य वा । तत्र शुद्धं भुवो भागं
दर्भैः सम्भार्य वास्ततः । अभ्युक्ष्य चार्घ्यतोयेन तत्तन्मन्त्रमनुस-
रन् । हृदा भूमिं समावाह्य गन्धपुष्पैः समर्चयेत् । कुडाली-

मन्त्रमन्त्रेण खात्वा भूमिमथो मृदम् । गृहीत्वा वामदेशेन पूर-
येत् कांस्थपात्रके । हृदा मृदन्तु सन्मृज्य वस्त्रेणाच्छाद्य धारयेत् ।
पुरं वा निलयं वापि सर्वमङ्गलनिस्त्रनैः । गुरुः प्रदक्षिणं कृत्वा
मण्डपं वानयेत्ततः । तत्तत्कर्म दिवाकाले कुर्याद्रात्रौ न
बुद्धिमान् । तेषु वीजारोपणमाह सुधेति ॥ सुधावीजेन व-
मितिमन्त्रेण । दुग्धैः प्रक्षाल्येति । महाकपिलपञ्चरात्रे तु वि-
शेषः ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण क्षालयित्वा तु वारिणेति ॥ सार-
स्वतमतेऽपि ॥ वीजानि तानि प्रक्षाल्य जलक्षीरेण च क्रमादिति ।
एतत्सर्वं तन्त्रविदित्यनेन सूचितम् । मूलेति मूलमन्त्रेण अभि-
जप्तानि अष्टोत्तरशतमित्यर्थः । तदुक्तं महाकपिलपञ्चरात्रे ॥
संख्यानुक्तौ शतं साष्टं सहस्रं वा जपादिष्विति ॥ पञ्चवोधस्तु ॥
षट्हकांस्थमृदङ्गमुखवाद्यशङ्खाः । मङ्गलाचारेति । चतुरङ्गैः
सुप्रसिद्धहलहलध्वन्यादिभिः । ततस्तानि वीजान्येकीकृत्य
रात्रौ प्राङ्मुखोऽदङ्मुखो वा मूलमन्त्रेण पालिकादिषु निर्वपे-
दित्युक्तम् । तदुक्तं सिद्धान्तशेखरे । वीजमुख्येन मूलेन प्राङ्मुखो
वाप्युदङ्मुखः । वापयेत् सर्ववीजानि पालिकादिष्वनुक्रमात् ।
वीजानामधिपः सोमस्तस्माद्रात्रौ तु निर्वपेत् ॥ सारस्वतमते-
ऽपि ॥ वीजेभ्यो देवतेभ्यश्च स रात्रौ कान्तिमान् यतः । तस्माद्
गुरुस्तु वीजानि निशायामेव वापयेदिति ॥ वीजान्याह शा-
लीति । शालयो हैमन्तिकाः श्यामाः श्यामाकाः । कान्यकुब्ज-
भाषायां साम्बा इति । गौडभाषायां शामा इति प्रसिद्धिः ।
आढकी तुवरी अरहर इति गौडभाषाप्रसिद्धिः । निष्पावा-
वोरा इति गौडभाषाप्रसिद्धिः । सारस्वतमते प्रत्येकं वीजेषु
देवतापूजोक्ता यथा । स्कन्दं प्रियङ्गी निष्पावे वायुमग्निं कुल-
त्यके । आढक्यां निर्ऋतिं सोमं सुग्धे ! वैवस्वतं तिले । प्रजा-
पतिं शालिवीजे खनन्तं सर्पपेऽर्चयेत् । इमं श्यामे च माषे च

वरुणन्तु नगात्मजे । इति । सिद्धान्तशेखरे तु प्रत्यहं सोमपूजाप्युक्ता
यथा । सोमं सम्पूजयेन्नित्यमधिवासदिनावधि । अधिवासदिने
प्राप्ते सोममुक्तासयेद्गुरुरिति । हरिरिन्द्रेति तत्तन्मन्त्रे उक्तः ।
प्रयोगसारः । त्रिपञ्चकाय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च । सर्वलोक-
प्रधानाय शाश्वताय नमो नमः । विकीर्यानेन मन्त्रेण हरिद्रा-
चूर्णमिश्रितम् । तोयं प्रवर्षयेत्तेषु सिञ्चेत् तोयैर्दिनं प्रति । प्रति-
दिनमित्यर्थः । वस्त्रैर्नूतनवस्त्रैः । बहुवचनं कपिञ्जलाधिकरण-
न्यायेन त्रित्वे पर्यवस्यति । आच्छाद्येति पात्रचतुष्टयमेकैकेन
रात्रौ बलिं क्षिपेदित्यन्वयः । प्रातः पुनः स्थलमार्जनादि कृत्वा
द्वितीयरात्रादौ बलिदानं प्रणवाद्यैरिति तत्र मन्त्रः । ॐ भूतेभ्यो
नम एवमन्यत्रापि मन्त्रः । महाकपिलपञ्चरात्रे तु विशेषः ।
ततो गन्धविमिश्रेण सिञ्चेद्द्वै शुद्धवारिणा । तिराजन्तु यथान्यायं
पञ्चरात्रमथापि वा । सारस्वतमते तु । प्ररुढान्यङ्गुराण्यन्यो न
वीक्षेत कदाचन । आचार्य एव प्रविशेत् शिष्यो वापि तदा
क्षयेति ॥ सिद्धान्तशेखरेऽपि ॥ वस्त्रैराच्छाद्य यत्नेन सुगुमानि
च कारयेत् । सप्तसु रात्रिषु पृथग्बलिद्रव्याणां भूतेभ्य इति ।
करभ्यो दधिशक्तवः । अक्षता अखण्डतण्डुला इति राघवभट्टः ।
आहुतस्त्वष्टतवचने अक्षता यवा इति । यदा नवसु रात्रिषु
बलिदानं तदा रात्रिद्वये बलिदानम् । द्रव्यं देवता च पुरैवोक्तम् ।
तत्तद्दिशि पायसादिना बलिर्विधेयः । तत्रेशानपूर्वयोर्मध्ये
ब्रह्मणे नैर्ऋतपश्चिमयोर्मध्येऽनन्ताय बलिर्देयः ॥ अथाङ्गुरप-
रीक्षा ॥ सिद्धान्तशेखरे । यजमानाभिहृद्द्वयमङ्गुराणि परीक्षयेत् ।
सम्यगङ्गं प्ररुढानि कोमलानि सितानि च । धूस्रवर्णान्यपूर्वाणि
तथा तिर्यग्गतानि च । श्यामलानि च कुलानि वर्जयेदशुभानि
तु । आवृष्टिं कुरुते कृष्णं धूस्रमं कलहं तथा । अपूर्वं जननाशञ्च
कुभिर्द्वं श्यामलाङ्गुरम् । तिर्यग्गते भवेद्दयाधिः कुजे शत्रुभयं तथा ॥

सारस्वतमतेऽपि ॥ प्ररुद्धैरङ्गुरैः कर्तुर्निर्दिशेच्च शुभाशुभम् ।
 श्यामैः कृष्णैरङ्गुरैर्यहानिस्तिथ्यद्वैर्व्याधिरान्दोलितैस्तैः । कुक्षै-
 र्दुःखं दुष्प्ररुद्धैर्लृतिश्च रोगं भुङ्गे स्थानदेशेष्टहानिरिति ॥
 अशुभे चाङ्गुरे जाते शान्तिहोमं समाचरेत् । मूलमन्त्रेण जुहुयाद्
 गुस्त्रं ब्राह्मणैः सह । अघोरास्त्रेण चास्त्रेण घतं वाय सहस्रक-
 मित्यङ्गुरारोपणम् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां द्वितीये धर्मकाण्डे गुरुशिष्यविचा-
 राद्यङ्गुरारोपणान्तकर्मकथनरूपपञ्चव-

कथनं नाम तृतीयः परिच्छेदः ।

दीक्षाव्युत्पत्तिस्तु रुद्रजामले । ददाति शिवतादात्म्यं
 क्षिणोति च मलत्रयम् । अतो दीक्षेति सम्प्रोक्ता दीक्षातन्त्रार्थ-
 वेदिभिः ॥ लघुकल्पसूत्रे च ॥ दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाप-
 पङ्क्तिः । तेन दीक्षोच्यते मन्त्रे स्वागमार्थबलाबलात् । योगिनी-
 तन्त्रे तृतीयभागे षष्ठपटलेऽपि । दीयते ज्ञानमत्यर्थं क्षीयते
 पापबन्धनम् । अतो दीक्षेति देवेशि ! कथिता तत्त्वचिन्तकैः ।
 मनसा कर्मणा वाचा यत् पापं समुपार्जितम् । तेषां विशेष-
 करणी परमज्ञानदा यतः । तस्माद्दीक्षेति लोकेऽस्मिन् गीयते
 शास्त्रवेदकैः । विज्ञानफलदा सैव द्वितीया लयकारिणी ।
 तृतीया मुक्तिदा चैव तस्माद्दीक्षेति धीयते ॥ विश्वसारतन्त्रे
 द्वितीयपटले च ॥ अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलाननं ! ।
 यस्य विज्ञानमान्त्रेण देवत्वं लभते नरः । दिव्यज्ञानं यतो
 दद्यात् कुर्व्यात् पापक्षयं ततः । तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता
 सर्वतन्त्रस्य सम्प्रता ॥ अथ दीक्षामाहात्म्यम् । रुद्रजामलपूर्व-
 खण्डे तृतीयपटले ॥ देवि ! दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च
 १ सद्गतिः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् । विचारं
 चक्रसारस्य करणीयमवश्यकम् । अदीक्षितोऽपि मरणे रौरवं

नरकं व्रजेत् । तस्माद्दीक्षां प्रयत्नेन सदा कुर्याच्च तान्विकीम् ॥
 पञ्चदशपटले ॥ अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
 न भवन्ति प्रिये ! तेषां शिलायामुप्तवीजवत् । कल्पसूचटीका-
 धृतकुलार्णवतन्त्रे ॥ रसेन्द्रेण यथा विद्धमयः सुवर्णतां व्रजेत् ।
 दीक्षाविद्धस्तथैवात्मा शिवत्वं लभते प्रिये ! । दीक्षाग्निदग्धकर्मासौ
 यायाद्विच्छिन्नबन्धनः । गतस्तस्य कर्मबन्धो निर्जीवश्च शिवो
 भवेत् । गतं शूद्रस्य शूद्रत्वं विप्रस्यापि च विप्रता । दीक्षा-
 संस्कारसम्भिन्ने जातिभेदो न विद्यते । शिवलिङ्गे शिलाबुद्धिं
 कुर्वन् यत्पापमाप्नुयात् । दीक्षितस्यापि पूर्वत्वं स्मरन् तत्पाप-
 माप्नुयात् । दार्वश्मलौहसृद्रत्नजातिलिङ्गं प्रतिष्ठितम् । यथो-
 च्यते तथा शुद्धाः सर्वे वर्णाश्च दीक्षिताः । येन पूजितभावेण
 चाब्रह्मभुवनान्तिकम् । पूजितं तेन सर्वं स्याद्दीक्षितेन न संशयः ।
 दीक्षितस्य न कार्यं स्यात्तपोभिर्नियमव्रतैः । न तीर्थगमने-
 नापि न च शरीरयन्त्रणैः ॥ पञ्चमखण्डे षष्ठोल्लासेऽपि । गवां
 सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यात्मपोषणम् । स्वकर्मचरितं दण्डं
 पुनस्तामेव पोषयेत् । एवं सर्वशरीरस्थसर्पिर्वत् परमेष्ठरि ! ।
 विना चोपासनाद्देवि ! न ददाति फलं नृणाम् ॥ पुरश्चरण-
 रसोल्लासे प्रथमपटले । न च दीक्षापरं ज्ञानं न च दीक्षापरं
 तपः । न च दीक्षापरं कालं तस्माद्दीक्षा गरीयसी ॥ इति दीक्षा-
 प्रशंसा ॥ दीक्षायां वारतिशिनक्षत्रमासादिभद्राभद्रे अस्मद-
 त्यतिवृद्धप्रपितामहकृष्णानन्दागमवागीशेन तन्त्रसारे लिखिते
 ते तत्र द्रष्टव्ये । विशेषस्तु पुरश्चरणरसोल्लासे ॥ दीक्षायां
 चञ्चलापाङ्गि ! न कालनियमः क्वचित् । सहुरोर्दर्शनादेव सूर्य-
 पर्वं च सर्वदा । शिष्यमाह्वय गुरुणा कृपया यदि दीयते । तत्र
 लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्य कदाचन । एतत् सर्वं दिव्यवीर-
 विषयम् । तथा च इतः पूर्वम् । दिव्यवीरगुरुं लब्ध्वा दीक्षां

क्त्वा विचक्षणः । ततः समाहितो भूत्वा पुरश्चर्यां करिष्यति ।
 इत्युक्तम् एतेन पशुगुरुतो दीक्षायां सर्वं विचार्यमित्यायातम् ।
 कल्पसूत्रटीकाधृतकुलार्णवे ॥ द्विजोऽपि दीक्षितः पश्चादन्यजः
 पूर्वदीक्षितः । द्विजः कनिष्ठः स ज्येष्ठ इति शास्त्रस्य निर्णयः ।
 ज्येष्ठत्वेन च ते पूज्या नावसान्याः कथञ्चन ॥ इति दीक्षाज्येष्ठ-
 त्वादिकथनम् ॥ कुलार्णवेऽपि ॥ दीक्षां विना न मोक्षः स्यात्
 प्राणिनां शिवशासनात् । सा च न स्याद्विनाचार्यमित्याचार्य-
 परम्परा । उपासनाशतेनापि यां विना नैव सिध्यति । तां
 दीक्षामाश्रयेद् यत्नात् श्रीगुरोर्मन्त्रसिद्धये ॥ महाकपिलपञ्च-
 रावनारायणीययोः ॥ मन्त्रो यः साधयेदेकं जपहोमार्चना-
 दिभिः । क्रियाभिर्भूरिभिर्यस्य सिध्यन्त्यन्येऽल्पसाधनात् ।
 सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किञ्चन । बहुमन्त्रवतः
 पुंसः का कथा हानिरेव सः ॥ इत्येकमन्त्रसाधनफलं राघव-
 भट्टधृतम् ॥ पुस्तके लिखितो मन्त्रो येन सुन्दरि ! जप्यते ।
 न तस्य जायते सिद्धिर्हानिरेव पदे पदे ॥ षट्कर्मदीपिकाधृत-
 मपि ॥ पुस्तके लिखिता विद्या येन सुन्दरि ! जप्यते । सिद्धिर्न
 जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि । राघवभट्टधृतम् ॥ द्विजा-
 नामनुपेतानां षट्कर्माध्ययनादिषु । यथाधिकारो नास्तीह
 स्वाचीपनयनादनु । तथाचादीक्षितानाञ्च मन्त्रदेवार्चनादिषु ।
 नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मनः शिवसंस्कृतमिति ॥ दीक्षाया
 अकरणे दोषकथनम् ॥ नारायणीये ॥ यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं
 कृत्रेणापि क्लृप्तेन वा । पत्रेक्षितं वा यथावत्तज्जघन्यमनःश्रुत् ॥
 इति निन्द्यदीक्षाकथनम् ॥ राघवभट्टेऽपि ॥ विप्रस्य विधिव-
 द्दीक्षामभिषेकावसानिकाम् । श्रुत्वा तन्मन्त्रं गुरोर्लब्धं साधये-
 द्दीक्षितं मनुम् । गुरुमुख्याः क्रियाः सर्वा सुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।
 तस्मात् सेव्यो गुर्नित्यं मुक्त्यर्थं सुसमाहितैः । गुर्वनुक्ताः क्रियाः

सर्वा निष्फलाः स्युर्यतो ध्रुवम् । जपो होमार्चनविधिः कार्थ्यो
दीक्षान्वितैर्नरैः ॥ इति दीक्षाविधिकथनम् ॥

मूलसूत्रम् ॥ दीक्षास्त्रिसः शाक्ती शाम्भवी मान्दवी चेति ।
तत्र शाक्ती शक्तिप्रवेशनात् शाम्भवी चरणविन्यासात् मान्दवी
मन्त्रोपदिष्टा सर्वाश्च कुर्यादेकैकमित्येके । एतद्वगचक्षते
श्रीशङ्कराचार्याः । शाक्तीति शक्तिः कुण्डलिनी परचिद्रूपा
तस्याः क्रियासमभिव्याहारेण कुलाकुलभेदाद्ब्रह्मणाद्यां पर-
शम्भुमेलनं शक्तिप्रवेशः । शाम्भवी चरणविन्यास्यादिति ते
चरणाश्चत्वारः शुक्लरक्तमिश्रपरस्वरूपाः । मान्दवी मन्त्रोप-
दिष्टेति । तदुक्तं रुद्रजामले ॥ शाक्ती शक्तिभवा दीक्षा
शक्तिः श्रीपरकुण्डली । तस्याः प्राणविलोमेन प्रवेशः पर-
शाम्भवे । चरणद्वयसम्भूता शाम्भवी शीघ्रसिद्धिदा । मान्दवी
मन्त्रोद्भवा दीक्षा तच्छक्तिः स्वात्मसम्भवा । मन्त्रयन्त्रार्चनादुक्त
क्रियाभिर्भोगमोक्षदा । चरणद्वयं शिवशक्तिरूपम् । तत्र सत्त्व-
प्रधानः शुक्लः रजःप्रधानो रक्तः तमःप्रधानो मिश्रः । गुणा-
तीतो निर्वाणः । साक्षात् परमानन्दनिर्भरः सदाशिवस्वरूपः ।
सहस्रदलकमलकर्णिका-मध्यवर्त्ति-चन्द्रमण्डलगतपीयूषधाराप्ला-
व्यमानाश्चिन्तनीयाः । उक्तञ्च भगवता दत्तात्रेयेण ॥ मूमध्यगौ
विधिहरी तव शुक्लरक्तौ पादौ रजोमलगुणौ खलु सेव्यमानौ ।
सृष्टिस्थितौ वितनुतो हृदये तृतीयमाद्यं भजन् हरति विश्व-
मुदयमुग्रः । तुर्यं तवार्थचरणं निरुपाधिबोध्यम् सान्द्रा-
सृतं शिवपदे सततं नतोऽस्मि ॥ रुद्रजामले ॥ त्रिविधा सा
भवेद्दीक्षा प्रथमा आणवी परा । शाक्ती च शाम्भवी चान्या सद्यो
मुक्तिविधायिनौ । मन्त्रार्चनासनन्यासस्थानोपचारकादिभिः ॥
दीक्षा सा आणवी प्रोक्ता यथाशास्त्रोक्तरूपिणी । सिद्धै च
शक्तिमालोक्य तथा केवलया शिशोः । निरुपायं कृता दीक्षा

शक्त्यो परिकीर्त्तिता । अभिसन्धिं विनाचार्यशिष्ययोरुभयो-
रपि । देशिकानुग्रहेणैव शिष्यता व्याप्तिकारिणी ॥ घड़न्वय-
महारत्नेऽपि ॥ द्विविधा सा भवेद्दीक्षा प्रथमा आणवी परा ।
शक्त्यो शाम्भवी चान्या सद्योमुक्तिविधायिनी । मन्त्रार्चनास-
न्धानस्थापनोपासनादिभिः । कृता दीक्षा सा त्वाणवी प्रोक्ता
यथाशास्त्रोक्तरूपिणी । सिद्धौ स्वशक्तिमालोक्य तया केवलया
शिशोः । निरुपायं कृता दीक्षा शक्त्यो परिकीर्त्तिता ।
अभिसन्धिं विनाचार्यशिष्ययोरुभयोरपि । देशिकानुग्रहेणैव
शिवताव्यक्तिकारिणी । सेयन्तु शाम्भवी दीक्षा शिवादेशन-
कारिणी । वायवीयसंहितायामपि । शाम्भवी चैव शक्ती च
मान्नी चैव शिवाग्ने । दीक्षापदिश्यते तेषां शिवेन परमात्मना ।
गुरोरा लोकमात्रेण स्पर्शात् सम्भाषणादपि । सद्यः संज्ञा भवे-
ज्जन्तोर्दीक्षा सा शाम्भवी मता । शक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्य-
देहं प्रविश्य तु । गुरुणा ज्ञानमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा । मान्नी
क्रियावती दीक्षा कुम्भमण्डलपूर्विका ॥ इति नामक्रियाभेदाद्दी-
क्षाभेदकथनम् ॥ दीक्षाभेदान्तरन्तु शारदायां चतुर्थपटले ॥
चतुर्विधा सा सन्दिष्टा क्रियावत्यादिभेदतः । क्रियावती वर्ण-
मयी कलात्मा वैधमय्यपि ॥ प्रयोगसारे ॥ मन्त्रमार्गानुसारेण
साक्षात्कृत्वैष्टदेवताम् । गुरुबोद्धो धयेच्छिष्यं मन्त्रदीक्षेति
सोच्यते ॥ सूत्रान्तरमाह, सर्वाश्च कुर्यादेकैकां वेल्लेके ॥ रुद्र-
जामले ॥ आणवो बहुधा दीक्षा शाम्भवी च तथा पुनः । एवैका
वापि विद्वद्भिः पठ्यते शास्त्रकोविदैः । शिवशक्तिसमायोगा-
ज्जन्मान्तरङ्गतात् शुभात् । शिवपूजानुसन्धानात् कर्मसार्यं
यदा भवेत् । शिव एव तदा साक्षादाणव्या दीक्षया भवेत् ।
इति दीक्षाफलकथनम् ॥ विश्वसारतन्त्रे ॥ चतुर्विधा तु सा
दीक्षा ब्रह्मणा भाषिता पुरा । क्रियावती कलावती वर्णवैध-

मयी गुनः । ताः क्रमेणापि कथ्यन्ते सर्वसम्पत्प्रदाः शुभाः ॥
एवं सर्वासां दीक्षाणां मानसादिकैवल्यन्तं समानमेव फलम् ॥
तदुक्तं रुद्रजामले ॥ सर्वासासिव दीक्षाणां मुक्तिः फलम-
खण्डितम् । अविरोधाद्भवत्येषा प्रासङ्गिक्यस्तु भक्तयः ॥

अथाधवासविधिः ॥ तत्रादौ गृहप्रवेशानन्तरं विघ्ननिवा-
रणपूर्वकं सूर्यः सोमादि पठित्वा भूरसीत्यादि मन्त्रैर्घटस्थापनं
कुर्यात् । तदुक्तं विश्वसारतन्त्रे तृतीयपटले ॥ गुरुणा वाल्मना
शिष्यः सर्वं कुर्याद्विधानतः । गुरुणा कारयेत् कर्म शिष्यः सर्वं
हरेत् सुधीः । चन्दनागुरुकर्पूरैर्धूपयेद् यागमण्डपम् । गृहं
प्रविश्य विधिना तत्र विघ्नान् विनाशयेत् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा
मन्त्रमेनं समुच्चरेत् । ओं सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि
पञ्च च । एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः । घटस्था-
रोपणं कुर्यान्मन्त्रेणानेन देशिकः । घटारोपणमन्त्रोऽयं सर्वत-
न्त्रेषु सम्मतः । ओं भूरति भूमिरस्यदितिरसि विश्वधा या विश्वस्य
भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीं इह पृथिवीं मा हिंसीः
भूमिशोधनमित्युक्तं सर्वतन्त्रसमन्वितम् । मन्त्रेणानेन देवेशि !
शुक्लधान्यं विनिक्षिपेत् । ओं धान्यमसि धिनुहि देवान् धिनुहि
यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिं धिनुहि मां यज्ञनम् । ओं प्राणो मन्त्रो
दा नाम त्वा कामाय मत्वा दीर्घां ननु प्रमितिदशानुमेषां देवो
वः सविता हिरण्यपाणिः । प्रतिगृह्णात्यच्छिद्रेण शिलाचक्षुषे
त्वा मही मां पयोऽसि । हस्तमानं घटं कृत्वा नवरत्नोदरेण
च । घटं संस्थापयेत्तत्र मन्त्रेणानेन देशिकः । ओं आजिन्न
कलसं मद्भात्मा विशन्तुन्दवम् । पुनरुर्जानि वर्तस्व सा नः ।
सहस्रं धुञ्जोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशता द्रयिः । मन्त्रेणानेन
देवेशि ! घटं संस्थापयेत्ततः । मुक्तामाणिक्यवैदूर्यगोमेदवज्र-
विद्रुमान् । पद्मरागं मरकतं नीलञ्चैव क्रौमान्नव । नवरत्नानि

तत्रैव निक्षिपेद् विभवावधि । मेरुतन्त्रेऽपि । पुष्पं नीलञ्च
 वैदूर्यं विद्रुमं मौक्तिकं तथा । ततो मरकतं वज्रं गोमेदं
 पद्मरागकम् । प्रोक्तानि नवरत्नानि देशिकैर्मन्त्रवित्तमैः । ॐ
 आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमहृद्यं भवावाजस्य सङ्गथे ।
 मन्त्रेणानेन देवेशि ! जलं दद्याद्घटोपरि । ॐ धन्नना गा धन्नना
 जिज्ञयेम धन्नना तीव्राः समदो जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कु-
 णोतु धन्ननाः सर्वाः प्रदिशो जयेम । मन्त्रेणानेन देवेशि ! शास्त्रां
 दद्याद्घटोपरि । ताम्बूलं श्रीफलं दद्यात् कदलीं वा विशेषतः ॥
 ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पद्मगा अहोरात्रे पाश्वर्षे नक्षत्राणि रूप-
 मश्विनौ । व्याप्तमिष्टुमीशानमुं म ईशानः सर्वलोकमहेशानः ॥
 मन्त्रेणानेन देवेशि ! घटे पुष्पं विनिक्षिपेत् । सफलं शालि-
 धूर्णञ्च शरावञ्च घटोपरि । विनिक्षिप्याय विधिना क्षीरशास्त्रि-
 समन्वितम् । सुवस्त्राच्छादनं कुर्यान्मन्त्रेणानेन साधकः ।
 ॐ वस्त्रञ्च पावनं श्वेतं बहुतन्तुविनिर्मितम् । मया निवेदितं
 भक्त्या वस्त्रञ्च प्रतिगृह्यताम् । काथितो जम्बुचूर्णेन इन्द्रवल्ली-
 दलेन च । घटं संवेद्य विधिना सिन्दूरादिविभूषितम् । स्थाप-
 येत्तं घटं मन्त्रमुच्चार्य यत्नतः सुधीः ॥ काथितो जम्बुचूर्णेनेति
 प्रदर्शनार्थमुक्तमन्त्रेणापि तद्विशेषो मेरुतन्त्रे तृतीयप्रकाशे ॥
 पञ्चाशदोषधीः काथैः पूरयेत्तदनन्तरम् । एकेन सहितास्ताश्च
 वर्णैर्षध्वः क्रमादिमाः । चन्दनञ्चापि रक्ताख्यचन्दनञ्चागुरु-
 स्तथा । कर्पूरोशीरकुष्ठानि बालकञ्चापि केशरम् । कक्कोलकं
 जातिफलं जटामांसीं सुरां तथा । अन्ध्रिकं रोचना जातीपत्रं
 पिप्पलविल्वकौ । पृश्निपर्णी चित्रकञ्च करङ्गं कत्तृणं तथा ।
 कटफलञ्चापि गुञ्जा च दद्रुहं वकाकाश्मरी । पद्मकोषं शङ्खपुष्पी
 मयूरस्य शिखा तथा । झञ्जोऽग्निमन्यस्य तथा मुहपर्णी कुशाः
 पुनः । पाषाणमेदकः काश्यपश्चपुष्पी च रोहिणी । श्लोणाको

ब्रह्मती चैव पाटली मुखकर्णिका । तुलसी शिखरा इन्द्रवल्ली
 भृङ्गाभिधा पुनः । ततोऽपराजिता तालमूली चापि कृताञ्जली ।
 दूर्वा श्रीदेवकन्याख्या भार्ग्याख्या भद्रमुस्तकम् । लवङ्गरहिता-
 श्वेताः पञ्चाशत्संख्यका इति ॥ यद्यपि प्रथमकाण्डे पञ्चाशदो-
 षधयो निरूपितास्तथाप्येकपञ्चाशत्त्वप्राप्त्यर्थमुक्तस्य दुरुहत्वनि-
 वृत्तये क्रमभेदज्ञापनाय च पुनर्दर्शिताः । दुग्धवृक्षत्वचः काथै-
 ब्रह्मवृक्षोद्भवैस्तथा । गन्धपङ्कप्रसूनादिवासितैर्वाश्रुतैर्जलैरिति ।
 ततो घटं स्थिरीकुर्यात् यावद्दीक्षाविधिर्भवेत् । ॐ स्थिरो भव
 विडङ्ग आशुर्भव वाटवर्वन् पृथुर्भव सुषदस्त्रमग्ने पुरीशराहनः ।
 मन्त्रेणानेन देवेशि ! स्थिरीकरणमुत्तमम् । ततः कृताञ्जलि-
 भूत्वा मन्त्रमेनं पठेत्ततः । ॐ गुरुभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो
 विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः । व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च
 नमः । नमो गृह्येभ्यो गृह्यपतिभ्यश्च वो नमः । पुण्याहं
 वाचयेदादौ स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-
 श्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः ।
 स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ अस्त्राय फडिति मन्त्रेण भीमान्
 विघ्नान् विदारयेत् । दिव्यदृष्ट्या दिव्यविघ्नान् दूरयेच्च चतु-
 र्दिशि । दिव्यदृष्टिलक्षणं तत्रैव । अनिमेषाक्षिदृष्टिश्च दिव्यदृष्टिः
 प्रकौर्त्तिता । माषभक्तेन चान्नेन यावकेन च संयुतम् । अजा-
 कर्णस्य रक्तेन दुग्धेन मधुरेण च । माषभक्तबलिं दद्यादभूतप्रे-
 तपिशाचके । ॐ भूताः प्रेताः पिशाचाश्च पातालभूतले स्थिताः ।
 पर्वताग्रे तथा वृक्षे गृहक्षेत्रादिषु स्थिताः । तुष्टा भवन्तु ते सर्वे
 मम गृह्छन्त्विमं बलिम् । यजेच्च रक्तकुसुमैरक्तमाहिषशोणितैः ।
 मत्स्यमांसादिभिर्भृष्टैर्दुग्धैश्च विधिनासुना । बलिं दद्याच्च तत्रापि
 तदा मङ्गलमारभेत् । दीक्षाया धर्मकर्मरूपत्वेन तत्र विघ्ननि-
 रास उक्तो योगिनीतन्त्रे उत्तरखण्डेऽष्टमपटले । तीर्थे प्रासादः

करणे धर्मारम्भे विशेषतः । व्रतयज्ञसमारम्भे विघ्नानि निव-
 सन्ति वै । तानि सम्पूजयेदादौ बलिभिर्मोदकादिभिः । अन्यथा
 जायते विघ्नमिति जानीहि मे प्रिये ! । अथापराणि विघ्नानि
 शरीरे निवसन्ति वै । मानसाज्ञाननिर्हारास्तानि शृणु मम
 प्रिये ! । कश्चिन्निवर्त्तको देवि ! कश्चित् प्रवर्त्तकस्तथा । सन्निकर्षं
 विदूरं वा सहस्रं फलमेव वा । पापानुसरणञ्चैव आलस्येनापि
 दूषणम् । शोकमोहज्वराव्याधितारुण्यं धनलालसा । कलहं
 भार्यया साहं दुर्मित्रं गृहसङ्गतम् । नानाव्रतसमाकीर्णं धार्मि-
 कोऽस्मीतिमानसः । प्राप्तशोकस्तु धर्मस्य कारणे हीनपत्नि-
 कम् । वृक्षपत्रञ्च तुलसी धात्री वृक्षफलं तथा । शालग्रामं शिला-
 खण्डं प्रतिमां दारुजां तथा । मानुषं ब्राह्मणञ्चैव स्वयम्भू-
 वर्त्तुलां शिलाम् । शङ्खं शम्भूकभेदञ्च खड्गस्य मांससम्भवम् ।
 दृष्ट्यादावाभवेदेवं तीर्थजातं जलं तथा । गङ्गायां वा नदीरूपं
 पुण्यक्षेत्रञ्च भूमिकाम् । इत्येतानि च विघ्नानि संयान्ति च पुनः
 पुनः । पूजयित्वा विधानेन द्वारदेशे न साधयेत् । कवचेनैव
 वीजेन सप्तकृत्वो जपेन च । निःसार्य विघ्नान् तान् सर्वान्
 तदा रक्षां दिशेत् पुनः ॥ विश्वसारतन्त्रे ॥ आत्मानं रक्षयेत्
 तत्र वज्रिप्राचीरयोगतः । वज्रिवीजे चतुर्दिक्षु प्राचीरं भावये-
 द्विया । तदा तालत्रयं दद्याद्वज्रिवीजेन देशिकः । ऊर्ध्वोर्ध्वक्रम-
 योगेन गुरुं च प्रणमेत्ततः । ॐ गुरुभ्यो नमो नित्यं तदा च
 गुरुपादुकाम् । परं परापरं देवि ! परात्परमतः परम् । क्रमेण
 प्रणमेद्बौमान् ॐकारादि उदीरितान् । गणेशं दक्षिणे नत्वा
 सम्मुखे चेष्टवताम् । गणेशं स्थापयेत्तस्य पूर्वाङ्गे तु घटे सुधीः ।
 आवाहय्यहं देवं गणेशं शिवनन्दनम् । व्याघ्रचर्माम्बरधरं व्याल-
 यज्ञोपवीतिनम् । गणकोट्या परिवृतं देवं मोदकभोजनम् ।
 अविघ्नेशं महाकायं सर्वलोकैकपूजितम् । बलिनं सर्वशान्त्यर्थं

रौद्रमावाहयाम्यहम् । एहोहि भगवन् ! देव ! सर्वविघ्नविना-
शक ! । इमां पूजां गृहाण त्वं सर्वं मे सफलं कुरु । सिन्दूररक्त-
पुष्पाद्यैः पूजयेच्छिवनन्दनम् । अञ्जल्यावाहयेदादौ सर्वत्रायं
विधिः स्मृतः । स्वागतादि ततः प्रश्नं प्रत्युत्तरसमन्वितम् । आस-
नन्तु ततो दत्त्वा पाद्यमर्घ्यं निवेदयेत् । ॐ पाद्यं सुवासितं
देव ! सर्वभूतसुखावहम् । दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं तद्व्रतिगृह्य-
ताम् । पाद्यं नमः पादयुगे स्वाहाय्यं शिरसि स्थितम् । मधुपर्कं
स्वधान्ते तु पुनराचमनीयकम् । स्नानीयञ्च नमो ब्रूयात् पुन-
र्गन्धादिकं ततः । वस्त्रं यज्ञोपवीतञ्च नमोऽन्ते परिकल्पयेत् ।
अन्नं भक्ष्यं स्वधान्ते तु धूपं दीपं विधानतः । क्रमेण निक्षिपे-
त्तत्र देवाय विधिनामुना । अर्घ्यपात्रे प्रदायार्घ्यं ततः शृणु
वरानने । । अर्घ्योदकं भवेच्छङ्गे श्यामाकयवदूर्वके । नानागन्ध-
समायुक्तं कुशांश्च तिलसर्षपम् । विष्णुक्रान्ताञ्च यवकं षडर्घ्यो-
ऽयं प्रकीर्तितः । ॐ काण्डाच्चैव मन्त्रेण अर्घ्यं दद्याच्च साधकः ।
पाद्यमन्त्रेण कुर्वीत तथा चाचमनीयकम् । ॐ नमः स्वाहा-
समायुक्तं ब्रह्मत्वफलहेतवे । मया निवेदितं भक्त्या मधुपर्कं
गृहाण मे । मूलमन्त्रेण सर्वत्र ॐकारादिनमोऽन्विते ॥ छान्द-
सत्वान्न वर्णनाशः । ॐकारादिनमोऽन्वितेन मूलमन्त्रेणेत्यर्थः ॥
दध्ना च मधुसर्पिर्भ्यां मधुपर्कः प्रकीर्तितः । यज्ञोपवीतमन्त्रेण
दद्याद्यज्ञोपवीतकम् । यज्ञोपवीतमन्त्रस्तु ॥ ॐ यज्ञोपवीतं
परमं पवित्रं ब्रह्मस्तेर्यत् सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्रं प्रति-
मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ ॐ नानारत्नैश्च घटितं
विश्वकर्मादिनिर्मितम् । सर्वाङ्गशोभाभरणं गृहाण फलहेतवे ।
श्रीं वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाब्धो गन्ध उत्तमः । आग्नेयः सर्व-
देवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् । श्रीं सुप्रकाशो महादीपः सर्व-
तस्तिमिरापहः । सवाह्याभ्यान्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।

प्रदीपावलिभिः कुर्यान्निकटे धूपदीपकौ । प्रक्षालनाय हस्तस्य
 पश्चात्पात्रं क्षिपेत् सुधीः । शीतकुम्भप्रपूर्णेन मण्डपं रचयेत्
 सुधीः । गणेशं पूजयित्वा च अर्कं विष्णुं शिवं शिवाम् । पूज-
 येद्विधिना तत्र घटे सर्वसमृद्धये । कूर्चमुष्टिं क्षिपेदादौ फड-
 मन्त्रेण तु साधकः । तिलान् कुशान् सर्षपांश्च कूर्चमुष्टिः प्रकी-
 र्त्तिता । विकिरान् प्रक्षिपेत्तत्र सप्त सप्त शराणुना ॥ विकिरा
 दीक्षायां बध्यन्ते ॥ शराणुना अस्त्रमन्त्रेण । ततो गुरुः स वेद्यान्तु
 गत्वा स्वस्यासने विशेत् ॥ मेरुतन्त्रे तृतीयप्रकाशे ॥ सञ्चिन्त्य
 मन्त्रेण मूर्तिमेवं तस्मिन् गुरुत्तमः । तस्यां मूर्तीं समावाह्य
 पूजयेद्विष्टदेवताम् । स्मृत्वा मूलमनु मन्त्रो सम्यङ् नाडीमुखा-
 त्ततः । निर्गमस्य च चैतन्यं नासिकाग्रविनिर्गतम् । अञ्जली
 मातृकापद्मे महः पुष्पांस्त्रिते गुरुः । मस्तकास्तं समुत्थाप्य
 तस्यामावाहयेत्ततः । संस्थापनं सन्निधानं सन्निरोधं ततश्चरेत् ।
 सम्मुखीकरणञ्चापि सकलीकरणं ततः । ततोऽवगुण्ठनं कार्य-
 मसृतीकरणं ततः । परमीकरणं कुर्यात् क्रमशः स्वस्वमुद्रया ।
 क्रमाद्विदध्याच्च तत उपचारान् प्रकल्पयेत् । आसनादि प्रभू-
 तानां उपचारान् प्रकल्प्य च । ततो मन्त्रविधानेषु प्रोक्ताङ्गाव-
 रणान्यपि ॥ पुनः पूर्वादिकाष्टासु क्रमादस्तादिकान् यजेत् ।
 लोकपालान् मण्डलेषु कुम्भोपरि च तत्र वा । ऐरावतं पुण्ड-
 रीकं वामनं कुमुदाञ्जनी । पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं तद-
 ग्रतः । सर्वान्ते लोकपालानां तदस्ताणां प्रपूजनम् । इन्द्रादि-
 पूजनात् पूर्वं ब्राह्मणादिपूजनमपि । तथा च विश्वसारि ॥ अष्ट-
 दिक्षु चाष्ट कुम्भान् काथतोयप्रपूरितान् । ब्राह्मणादिमातृकाः
 पूज्याः सर्वतन्त्रसमन्विताः । ज्ञात्वा ज्ञानविधानेन गन्धपुष्पाद्य-
 वारिभिः । दण्डं कमण्डलुकरमक्षुत्वाभयं तथा । बिम्बतीं
 कनकच्छायां ब्राह्मीं कृष्णाजिनोज्ज्वला ॥ १ ॥ शूलं कपालं

धरशुं नृणां पीतं मनोहरम् । वहन्ती हेमसङ्काशा ध्येया माहे-
 श्वरी शुभा ॥ २ ॥ अङ्गुशं दण्डखट्वाङ्गं पाशञ्च दधती करैः ।
 ध्येया बन्धूकसङ्काशा कौमारी शर्मदायिनी ॥ ३ ॥ चक्रं घण्टां
 गदां खड्गं बिभ्रती सुमनोहरा । तमालश्यामला ध्येया वैष्णवी
 शर्मदायिनी ॥ ४ ॥ मुषलं करबालञ्च खेटकं दधती हलम् ।
 करैश्चतुर्भिर्बाराही ध्येया कालघनच्छविः ॥ ५ ॥ अङ्गुशं तोमरं
 विद्युत् कुलिशं बिभ्रती करैः । इन्द्रनीलनिमेन्द्राणी ध्येया सर्व-
 समृद्धिदा ॥ ६ ॥ शूलं कपालं नृशिरः कपालं दधती करैः ।
 मुण्डसङ्मण्डिता ध्येया चामुण्डा रक्तविग्रहा ॥ ७ ॥ अक्षमजं
 वीजपूरं कपालं पङ्कजं करैः । वहन्ती हेमसङ्काशा महालक्ष्मी-
 हेरिप्रिया ॥ ८ ॥ मेरुतन्त्रे । विधाय पूजामेवं हि धूपदीपनिवे-
 द्यत्तैः । कृते निवेद्ये च ततो मण्डलं परितः क्रमात् । प्रबाला-
 ङ्गुरपत्राणि स्थापनीयानि मन्त्रिणा । वेदिकाया दक्षभागे
 कृत्वा स्थण्डिलमुत्तमम् । संस्थाप्य वज्रिं संस्तुत्य वैश्वदेवं समा-
 रमेत् । यथाविधि ततस्तत्र गन्धार्घ्यैर्देवतां यजेत् । ततः प्रणव-
 पूर्वाभिर्हुत्वा व्याहृतिभिः पुरा । जुहुयान्मूलमन्त्रेण पायसेन
 हृतेन च । पञ्चविंशतिभिः पञ्चाहुत्वा व्याहृतिभिः पुरा ।
 सम्पूज्य तां चन्दनाद्यैः पीठमूर्त्तौ नियोजयेत् । अग्निं विमृज्य
 शिष्टेन पायसेन बलिं हरेत् । पार्श्वदेश्यचन्दनादिपुष्पाक्षत-
 समन्वितम् । तत उल्थाप्य नैवेद्यं तत्स्थलं शोधयेत् सुधीः ।
 पुनर्यजज्ञोपचारैः पञ्चभिर्दर्शयेत्ततः । दर्पणं व्यजनं कृत्वा चामरं
 मुखवासकम् । सहस्रञ्च जपेन्नन्ती मूलमन्त्रं समाहितः ॥
 विश्वसारि ॥ जलं समर्प्य विधिना तदा कुर्वीत मङ्गलम् । हिज-
 स्त्रीणां ब्राह्मणानामाशीर्वादं प्रगृह्य च । जयशब्दैर्ब्राह्मणशब्दै-
 र्ब्राह्मणान् परितोष्य च । बन्धुवर्गं प्रतोष्याथ अधिवामं ततो
 दिशेत् । मन्त्रेणानेन द्रव्येण क्रमेण देशिकोत्तमः । अधिवामं

प्रकुर्वीत शिष्यस्य सावधानतः । ओंकारं पूर्वमुच्चार्य नमोऽन्तेन
 समर्पयेत् । ओं भूरसीति च मन्त्रेण मृत्तिकां प्रक्षिपेत्ततः । ओं
 गन्धदारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां
 त्वामिहोपह्वये श्रियम् । गन्धं दद्याच्च विधिना मन्त्रेणानेन
 साधकः । ओं प्रपर्वतस्य वृषभस्य पुष्टां वावश्चरन्ती शशि च
 इयानाता आववृत्तमदधागुदक्ता । अहिं ब्रध्नमनुरीपमणा विष्णो-
 र्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि वैष्णवे
 त्वा ॥ मन्त्रेणानेन विधिना शिलां दद्याद्विचक्षणः । धान्यमन्त्रेण
 धान्यस्य दानं तन्त्रेषु सम्मतम् । ओं काण्डात् काण्डात् प्ररो-
 हन्ती पुरुषं पुरुषः पवि । एतान् दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।
 मन्त्रेणानेन देवेशि ! दूर्वां दद्याद्विधानतः । ओं यीश तेति च
 मन्त्रेण पुष्पं दद्याद्विधानतः । ओं याः फलिनीति च मन्त्रेण
 फलं दद्याद्विचक्षणः । ओं दधिक्रावोऽत्यकार्यं जिष्णोरश्वस्य
 वाजि वः । सुरभीनो सुखाकरत् प्रणतानंसितायत् । मन्त्रे-
 णानेन तं ध्यात्वा अधिवासं समादिशेत् । ओं घृतवती भुवना-
 नामभिश्चियोर्वी पृथ्वीमधुदुवे सुपेशसा । द्यावापृथिवी वरुणस्य
 धर्मणा विष्कभीति अजरे भूरिरेतसा । मन्त्रेणानेन देवेशि !
 दद्याच्छिष्यस्य मस्तके । ओं स्वस्ति न इति मन्त्रेण स्वस्तिकं
 विनिवेदयेत् । ओं सित्योरिव प्राध्वने सुघनासो वातप्रमीय-
 पतन्ती जिह्वा घृतस्य धारा अरुषो न वाजीकाष्ठाभिन्दन्नूर्मिभिः
 पिन्नमानः । इति मन्त्रेण सिन्दूरं दद्याच्च शिष्यमस्तके । ओं
 शङ्ख ! त्वं शङ्खपुण्यानां मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । विष्णुता विधृता
 नित्यं मम शान्तिप्रदो भव । शङ्खस्पर्शनमन्त्रोऽयं सर्वतन्त्रस्य
 सम्मतः । ओं समिधोऽङ्गनं कदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्
 पिन्नमानः । वाजीवहन् वाजिनं जातवेदा देवानां वाक्षि-
 प्रियमादधन्त । मन्त्रेणानेन देवेशि ! कज्जलं विनिसज्जयेत् ।

ओं शुक्लन्ति ब्रह्मरूपं चरन्तं परितस्थुः । रोचन्ते रोचना
दिवि । रोचनां परितो दद्यान्मन्त्रेणानेन सुन्दरि । ओं
अन्नपते अन्नस्य नो धेह्यन्नमीरस्य शुष्णिणः । प्रदातारं तार्ष
ऊर्जं नो धेहि द्विपदेशं चतुष्पदे । विश्वकर्माणे स्वाहा । मन्त्रे-
णानेन देवेशि ! स्पर्शनं परिकीर्तितम् । ओं हिरण्यगर्भः सम-
वर्त्तताग्रं भूतस्य जातः पतिरैक आसीत् । स दाधार पृथिवीं
द्यामुतेमां कक्षैर्देवाय हविषा लिखेम वा । मन्त्रेणानेन देवेशि !
काञ्चनं परितो न्यसेत् । ओं रूपेण वै रूपमर्त्यानां पृथोमा
विश्ववेदा विभजतु सुत्तमस्य पथा वेदश्चन्द्रदक्षिणापश्यन्त-
रोक्षं यत् सुषट्पदैः । मन्त्रेणानेन देवेशि ! रूप्यं दद्याद्वि-
धानतः । ओं असौ यस्तामोऽरुण उत वसुः सुमङ्गलः । ये
चैनं सदा अभितो दिक्षु श्रिताः । सहस्रशो वै यां हेलषीमहे ।
मन्त्रेणानेन देवेशि ! ताम्रं दद्याद्विधानतः । ओं रक्षोहनो
बल्वह्नः प्रोक्षयामि वैष्णवान् रक्षोहनो बल्वह्नो बल-
यामि वैष्णवान् रक्षोहनो बल्वह्नो वस्तृणामि वैष्णवान्
रक्षोहनो बल्वह्न उपदधामि वैष्णवं रक्षोहनो बल्वह्नः
पथ्येयामि वैष्णवीन् वैष्णवमसि वैष्णवाः स्थ । मन्त्रेणानेन
सिद्धार्थं दत्त्वा बालस्य मूर्धनि । ओं आक्षुषेण रजसा वर्त्तमानौ
निवेशयन्न भृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति
भुवनानि पश्यन् । मन्त्रेणानेन देवेशि ! दर्पणं प्रतिपादयेत् ।
ओं मनोज्योतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोतु । अरिष्टं
यज्ञमिमं दधातु विश्वे देवाः स इह मादयन्ता सोम्यतिष्ठ । मन्त्रे-
णानेन देवेशि । दीपं दद्याद्विधानतः ॥ ओं प्रतिपदसि प्रति-
पदेत्वा अनुपदसि अनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि
तेजसेत्वा तेजोमयि धेहि । ओं प्रशस्तमात्रमसि भूतपात्रे शिर-
सार्थं मम कुरु सर्वं देवीचरयुगलं वन्दनीयम् ॥ शारदातिलके

चतुर्थपटले ॥ अस्त्रेण क्षालिते पात्रे नवे ताम्रमयादिके ।।
 तण्डुलान् शालिसम्भूतान् मूलमन्त्राभिमन्त्रितान् । प्रसूतीनाञ्च
 दशभिः क्षिप्त्वा चान्द्रमनुं जपेत् । प्रक्षाल्य पात्रवदनं विधाय क-
 वचानुना । प्राङ्मुखो मूलमन्त्रेण देशिकेन्द्रश्चरं पचेत् । शुवे-
 णाज्येन संस्त्रिजे दद्यात्तप्ताभिमारणम् । मूलेन पञ्चात्तत्पात्रं
 कवचेनावतारयेत् । अस्त्रजप्ते कुशास्तौर्णे मण्डले विधिवद्-
 गुरुः । तं विभज्य त्रिधा भागमेकं देवाय कल्पयेत् । अन्य-
 दग्नौ च जुहुयादपरं देशिकः स्वयम् । शिष्येण सार्द्धं भुञ्जीत
 विहिताचमनं ततः । आचान्तं शिष्यमादाय सकलीकृत्य दे-
 शिकः । तालप्रमाणं हृज्जप्तं क्षीरिहृत्तादिसम्भवम् । दन्तकाष्ठं
 तदा दद्याच्छिष्याय नियतात्मने । दन्तान् विशेष्य स पुनस्तत्
 प्रक्षाल्य विसर्जने । यथाविधि तमाचान्तं शिष्यावन्त्याभिरक्षि-
 तम् । विधाय सार्द्धममुना वेद्यां दर्भान्तरे गुरुः । शयीत तस्यां
 तां रात्रिमधिवासः समीरितः ॥ विशेषस्तु मेरुतन्त्रे तृतीय-
 प्रकाशे अनुसन्धेयः ॥ इति अधिवासविधिः ॥

अथाङ्गुरारोपणप्रयोगः । तत्र दीक्षादिवशात् प्राक् नवमे
 सप्तमे पञ्चमे शुभे तस्मिन् वज्रिमण्डपप्रान्तरे पञ्चहस्तमितानि
 पञ्चसूत्राणि पूर्वपश्चिमक्रमेण पातयित्वा दक्षिणोत्तरक्रमेण द्वाद-
 शाङ्गुलान्तरितान्येकादशसूत्राणि पातयेत् तेन चत्वारिंशत्कोष्ठा
 भवन्ति । तेषां वह्निश्चतुस्रो वीथीर्मार्जयेत् । मार्जनप्रकारश्च
 प्रथमं पूर्वस्थां चतुष्कोष्ठात्मिकामेकां वीथीं ततो दक्षिणस्यामष्ट-
 कोष्ठात्मिकामपरां पश्चिमायां चतुष्कोष्ठात्मिकामन्यामुत्तरस्या-
 मष्टकोष्ठात्मिकामितराञ्च मार्जयेत् । ततोऽन्तश्चतुष्कस्य पूर्व-
 पश्चिमपार्श्वयोर्द्वे वीथी द्विकोष्ठात्मिके पुनर्मार्जयेत् । तेन मण्डले
 चतुष्कोष्ठात्मकं कोष्ठत्रयमवशिष्यते । ततश्चतुष्कोष्ठत्रयस्थानि
 द्वादशपदानि प्रत्येकं चतुष्कोष्ठं खेतादिभीरजोभीरञ्जयेत् ।

तत्र वायुपदे खेतमाग्नेये पीतं नैऋते अरुणमीशाने कृष्णम् ।
ततः श्यामलेन मार्जितवीथीरापूरयेत् । तेषु पदेषु पालिका-
पञ्चमुखीशरावाणां सुप्रक्षालितं त्रिगुणसूत्रवेष्टितं शुष्कगोमय-
चूर्णबालुकाष्टङ्गित्तरोत्तरपरिपूरितम् । हरिब्रह्मरुद्रस्वरूपं
कृष्णवर्णव्रणादिरहितं पश्चिमादिक्रमेणाग्निकोणमारभ्येशान-
कोणपर्यन्तं प्रत्येकं चतुष्कोष्ठेषु स्थापयेत् । ततः पश्चिमदिशि
पालिकाचतुष्के विष्णुं मध्ये पालिकाचतुष्के ब्रह्माणं पूर्वस्थां
शरावचतुष्के रुद्रं ध्यात्वावाह्य पूजयेत् । ततो वमिति मन्त्रेण
विष्णुविप्रये श्रीं नमो भगवते वासुदेवायेति मन्त्रेण दुग्धेना-
श्रसा च बीजानि प्रक्षाल्य बीजोपरि दातव्यमन्त्रमष्टोत्तरशतं
जपेत् । ततः कङ्कौ स्कन्दं निष्पावे वायुं कुलत्थे वङ्गिमाढक्यां
निऋतिं मुद्गे सोमं तिले वैवस्वतं शालौ प्रजापतिं सर्षपेऽनन्तं
श्यामाके सूर्यं माषे च वरुणं सम्पूज्य बीजानि मिश्रयित्वा तत्र
सोमं पूजयित्वा प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा । श्रीं त्रिपञ्चकाय सर्वाय
शङ्कराय शिवाय च । सर्वलोकप्रधानाय शाश्वताय नमो नमः ।
इति मन्त्रेण तेषु पात्रेषु बीजानि निर्वपेत् । ततो हरिद्राचूर्ण-
मिश्रितजलेन गन्धमिश्रितजलेन च तानि सिञ्चेत् । उक्तप्रकार-
जलसेचनं सोमपूजनञ्चाधिवासदिनपर्यन्तं प्रत्यहं कुर्यात् ।
ततो नूतनवस्त्रत्रयेण तानि पात्राण्याच्छाद्य प्रत्येकरात्रिषु देव-
ताभ्यो बलिं दद्यात् । तत्र प्रथमरात्रौ श्रीं भूतेभ्यो नम इति
मन्त्रेण गन्धपुष्पे दत्त्वा लाजतिलदधिशक्नुभिर्बलिं दद्यात् ।
ततः स्थानमार्ज्जनादि कुर्यात् । द्वितीयरात्रौ श्रीं पित्र्येभ्यो नम
इति गन्धपुष्पे दत्त्वा सतिलान्नतण्डुलैर्बलिं दद्यात् । तृतीयरात्रौ
श्रीं यज्ञेभ्यो नम इति गन्धपुष्पे दत्त्वा दधिशक्नुलाजैर्बलिं द-
द्यात् । चतुर्थरात्रौ श्रीं नागेभ्यो नम इति गन्धपुष्पे दत्त्वा ना-
रिकेलोदकशक्नुपिष्टकैर्बलिं दद्यात् । पञ्चमरात्रौ श्रीं ब्रह्मणे

नम इति गन्धपुष्पे दत्त्वा सपङ्कजाक्षततण्डुलेन बलिं दद्यात् ।
षष्ठरात्रौ ओं शिवाय नम इति गन्धपुष्पे दत्त्वा सपूपाक्षबलिं
दद्यात् । सप्तमरात्रौ ओं विष्णवे नम इति गन्धपुष्पे दत्त्वा
गुडौदनेन बलिं दद्यात् । ततः पायसादिना लोकपालेभ्यो बलि-
दानम् । तत्र ईशानपूर्वयोर्मध्ये ब्रह्मणे । नैऋतवरुणयोर्मध्ये
अनन्ताय बलिर्देयः । प्ररूढानङ्कुरानन्यो न पश्येत् । अशुभेषु
अङ्कुरेषु शान्त्यादिकं कुर्यादित्यङ्कुरारोपणम् ॥

अथ अधिवासप्रयोगः ॥ तत्रादौ गुरुर्गृहं प्रविश्य चन्दना-
गुरुधूपायैर्गृहं सुवासितं कृत्वा विघ्नान् विनाश्य ओं सूर्यः
सोम इत्यादि पठित्वा घटस्थापनं कुर्यात् । तत्क्रमस्तु ओं
भूरसीति भूमिशोधनम् ॥ १ ॥ ओं धान्यमसीति मन्त्रेण तत्र
शुक्लधान्यनिलेपः ॥ २ ॥ ओं प्राण इति मन्त्रेण हस्तप्रमाणस्य
घटस्योदरे नवरत्नदानम् ॥ ३ ॥ ओं आजिघ्न इत्यादिमन्त्रेण तत्र
तस्य स्थापनम् ॥ ४ ॥ ओं आप्यायस्वेति मन्त्रेण घटोपरि जल-
दानम् ॥ ५ ॥ ओं धन्न नेति तदुपरि शाखादानम् ॥ ६ ॥ तदुपरि
ताम्बूलस्य श्रीफलस्य च दानं कदलौ फलस्य वा ॥ ७ ॥ ओं
श्रीध्व तेति तदुपरि पुष्पदानम् ॥ ८ ॥ ततः सफलं शालिचूर्णे-
युक्तं शरावस्य घटोपरिनिधानम् ॥ ९ ॥ ओं वस्त्रञ्चेति
क्षीरशाखिशाखासहितवस्त्रार्पणम् ॥ १० ॥ जम्बूपद्माशदोष-
धिक्रायेन घटपूरणम् ॥ ११ ॥ इन्द्रवज्रा घटवेशनम् ॥ १२ ॥
घटे सिन्दूरदानम् ॥ १३ ॥ ओं स्थिरो भवेति दीक्षापर्यन्तं
घटस्य स्थिरीकरणम् ॥ १४ ॥ एवं घटं संस्थाप्य ओं गुरुभ्यो
नम इत्यादि पठित्वा ओं यजमानस्य पुण्याहमित्यादिना पुण्याहं
वाचयित्वा ओं स्वस्ति न इति स्वस्तिवाचनं कृत्वा ओं अस्त्राय
फडिति भौमान् विघ्नाननिमेषाच्छिष्टिरूपदिव्यदृष्ट्या चतुर्दिशि-
दिव्यान् विघ्नानपसार्य ओं भूताः प्रेता इति मन्त्रेण माघभक्तौ

नान्नेन यावकेनाजाकर्णरक्तेन दुग्धेन मधुरद्रव्येण वा वलिं दत्त्वा
 रक्तपुष्पेण तान् पूजयेत् । ततो हुमिति सप्तकृत्वो जप्तेन विकि-
 रेण सर्वान् विघ्नान् निःसार्य रमिति जलधारया चतुर्दिक्षु वज्रि-
 प्राकारं कल्पयेत् । ततो बमित्यूङ्गोर्ध्वक्रमेण तालत्रयं दत्त्वा ओं
 गुरुभ्यो नम एवं गुरुपादुकाभ्यः परमगुरुभ्यः परापरगुरुभ्यश्च
 ऊर्ध्वोर्ध्वक्रमेण वामे नत्वा दक्षिणे ओं गणेशाय नमः मध्ये
 इष्टदेव्यै नमः इति प्रणमेत् । ओं आवाहयाम्यहमित्यादिना
 गणेशं ध्यात्वा एहोहीत्यादिना घटे आवाह्य सिन्दूररक्तकुसुमा-
 दिना तं पूजयेत् । तत्क्रमस्तु स्वागतप्रश्नोत्तरानन्तरमासन-
 दानम् । ओं पाद्यमिति पादयोर्नम इति पाद्यदानम् । शङ्खो-
 दकश्यामाकदूर्वाकुशतिलसर्षपापराजितायवरूपषडङ्गार्घ्यं गन्ध-
 युक्तं शङ्खे निधाय । ओं काण्डादिभिः स्वाहेति शिरस्यर्घ्य-
 दानम् । पाद्यमन्त्रेणाचमनीयदानम् । ओं नम इति दधि-
 मधुघृतरूप मधुपर्कस्य स्वधेति दानम् । मूलमन्त्रेण स्वधेति
 पुनराचमनीयदानम् । मूलमन्त्रेण नम इति स्नानीयदानम् ।
 ओं यज्ञोपवीतमिति यज्ञसूत्रदानम् । ओं नानारत्नैश्चेत्याद्या-
 भरणदानम् । मूलेन नम इति गन्धदानम् । मूलेन वीष-
 डिति पुष्पदानम् । वनस्पतीति धूपदानम् । ओं सुप्रकाश इति
 दीपदानम् । मूलेन दौपाबलिभिर्नम इति नीराजनम् ।
 मूलेन निवेदयामीति नैवेद्यदानम् । ततः प्रागुक्तनमो गुरुभ्य
 इति वन्दनम् । इति गणेशं सम्पूज्य । एवं क्रमेणार्कविष्णु-
 शिवदुर्गा घटेपूजयेत् । तत ओं फडिति मन्त्रेण तिलकुशसर्षप-
 रूपकूर्चमुष्टिं प्रक्षिपेत् । तत ओं अस्त्राय फडिति सप्तकृत्वः
 सञ्चल्य लाजचन्दनखेतसर्षपभस्मदूर्वारूप-विघ्नविनाशकविकिर-
 प्रक्षेपं कुर्यात् । ततो गुरुर्वेदिकोपरि स्त्रीयासने उपविश्य मूलेन
 मूर्तिं कल्पयित्वावाह्य आवाहय्यादिमुद्राः प्रदर्श्यासनादि-

पुष्पांतेनेष्टदेवतां सम्पूजयेत् । ततोऽङ्गावरणादिं सम्पूजयेत् ।
 तत्क्रमस्तु तन्वसारोऽनुसन्धेयः । ततोऽष्टसु दिक्षु अष्ट कुम्भान्
 कायतोय प्रपूरितान् पूर्वोक्तमन्त्रैः संस्थाप्य तेष्वष्टमातृकाध्याना-
 वाहनपूर्वकं पूजयेत् । ततो दशदिक्षु इन्द्रादिलोकपालानैरा-
 वतादीनष्टौ गजान् वज्राद्यस्त्राणि सम्पूज्य धूपदीपौ नैवेद्यञ्चेष्ट-
 देवतायै निवेद्य वेदिकाया दक्षभागे मण्डलं कृत्वाङ्कुरपात्राणि
 स्थापयेत् । ततो दक्षिणे स्थण्डिलं कृत्वाङ्कुरं संस्तव्य तत्र
 देवतां सम्पूज्य ओं भूः स्वाहा ओं भुवः स्वाहा ओं स्वः स्वाहा
 इति व्याहृतिभिर्हृतेन हुत्वा पायसेन मूलमन्त्रेण पञ्चविंशति-
 वारं जुहुयात् । पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्याग्निं
 विष्टजेत् । ततोऽवशिष्टपायसेन पार्श्वदेवेभ्यो बलिं दद्यात् ।
 ततो नैवेद्यमुत्थाप्य स्थानमार्जनं कृत्वा पुनर्देशोपचारैरिष्ट-
 देवतां घटे सम्पूज्य दर्पणं चामरं व्यजनं कृत्वा मुखवासकताम्बू-
 लञ्च दर्शयेत् ततो मूलमन्त्रं सहस्रधा जप्त्वा जपं समाप्य प्रणम्य
 ब्राह्मणान् परितोष्य मङ्गलध्वनिनृत्यगौतमपुरःसरमधिवासं कु-
 र्यात् ॥ यथा ओं भूरसीति शिथ्यमस्तके मृत्तिकास्पर्शनम् ॥ १ ॥
 ओं गन्धद्वारामिति गन्धः ॥ २ ॥ ओं प्रपर्वतस्येति शिला ॥ ३ ॥
 ओं धान्यमसीति धान्यम् ॥ ४ ॥ ओं काण्डादिति दूर्वा ॥ ५ ॥
 ओं ग्रीष्मेति पुष्पम् ॥ ६ ॥ ओं याः कलिनीति फलम् ॥ ७ ॥
 ओं दधौति दधि ॥ ८ ॥ ओं घृतवतीति घृतम् ॥ ९ ॥ ओं स्वस्ति
 न इति स्वस्तिकम् ॥ १० ॥ ओं सिन्धोरिवेति सिन्दूरम् ॥ ११ ॥
 ओं शङ्ख त्वमिति शङ्खः ॥ १२ ॥ ओं समिध इति कज्जलम् ॥ १३ ॥
 ओं युञ्जन्तीति राचना ॥ १४ ॥ ओं अन्नेति सिद्धाब्जम् ॥ १५ ॥
 ओं हिरण्येति काञ्चनम् ॥ १६ ॥ ओं रूपेणेति रूप्यम् ॥ १७ ॥
 ओं असौ य इति ताम्रम् ॥ १८ ॥ ओं रत्नोद्भन इति सिद्धार्थः
 ॥ १९ ॥ ओं आकण्ठनेति दर्पणम् ॥ २० ॥ ओं मनोज्योतिरिति

दीपः ॥ २१ ॥ ओं प्रतिपदेति प्रशस्तपात्रम् ॥ २२ ॥ सर्वाण्ये-
तानि शिथ्यमस्तके दद्यात् ॥ ततः फड़िति मन्त्रेण प्रक्षालिते
नवे पात्रे मूलमन्त्राभिमन्त्रितदशप्रसूतिमितशालितण्डुलान्
कृत्वा हुमिति मन्त्रेण पात्रवदनं प्रक्षाल्य चरुं पचेत् । सुस्निग्धे
चरौ मूलेनाभिघारणं कुर्यात् । ततो ह्रमिति तत्पात्रमवतार्य
कुशास्तीर्णं मण्डले फड़िति मन्त्रेण स्थापयेत् । तं चरुं त्रिधा
विभज्य एकं देवाय दद्यात् अपरं वज्री जुहुयात् । अपरं भागं
शिथ्येण साङ्गं गुरुर्भुञ्जीत । तत आचान्ताय शिथ्यायाङ्गन्यासं
कृत्वा स्थिताय द्वादशाङ्गुलं दन्तकाष्ठं गुरुर्दद्यात् । शिथ्यस्तु
तेन दन्तकाष्ठेन दन्तान् संशोध्य तत् काष्ठं प्रक्षाल्य विसृजेत् ।
तत आचान्तशिथ्येन साङ्गं वेद्यां दर्भसंस्तरे तां रात्रिं गुरुः शयी-
तेत्यधिवासविधिः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां द्वितीये धर्मकाण्डे अधिवास-

रूपपुष्पकथनं नाम चतुर्थः परिच्छेदः ।

अथ दीक्षा ॥ विश्वसारतन्त्रे ॥ गुरोर्निमन्त्रणं कृत्वा परेद्युः
साधकस्तदा । वस्त्रालङ्कारवर्णाद्यैर्गोभिश्चैव विधानतः । ततः
स्नात्वा विधानेन नद्यादौ साधकोत्तमः ॥ विधानेन सङ्कल्पा-
दिना तान्त्रिककर्मणि सङ्कल्पादौ सौरमासोल्लेख उक्तः । पिच्छि-
लातन्त्रे पञ्चमपटले ॥ सौरमासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न च
तारके । प्रयोगादीनि सर्वाणि सौरैरेव समाचरेत् ॥ विश्वसारे
द्वितीयपटले । अङ्कुरारोपणानन्तरम् ॥ मातृकाः पूजयेत्तत्र
गौर्याद्याः सर्वसम्पत्ताः । गणेशाद्याः पूजयेत्ताः क्षमस्वेति क्षमां
वदेत् ॥ मातृकाः पूर्वमुक्ताः ॥ वसोर्धारा तदा देया सर्वविघ्न-
विनाशिनी । पूजयेत् परया भक्त्या राजोपरिचरं बुधः । तथा
नान्दीमुखश्चाङ्गं कुर्याच्च विधिनामुना । पितरं पितामहश्चैव
तथैव प्रपितामहम् । जीवे पितरि तत् आङ्गं कुर्यात्तत् पितृ-

पूर्वकम् । मातामहं प्रमातामहं ब्रह्मप्रमातामहं ततः । षट्-
 पिण्डान् प्रक्षिपेद्देवि । तानुपास्य सुसाधकः । नामगोत्रानुरूपेण
 आङ् कुर्त्यादिधानतः । देवतापूर्वकं आङ् कुर्त्यान्नान्दीमुखं
 ततः । पुरोरवा माद्रवाश्च सर्वकार्येषु देवता । नान्दीमुखवसुः
 सत्या देवता परिकीर्त्तिता । सर्वं दैवक्रमेणैव आङ् दद्याज्ज-
 लादि च । यत्तु मह्यं निर्वाणतन्त्रे दशमोक्तासे ॥ नान्दीमु-
 खाश्च पितरो नान्दीमुख्यश्च मातरः । पितामहादयोऽप्येवं
 मातामहादयोऽपि च । आङ् नान्द्याभ्युदयिके समुल्लेख्या
 वरानने ! ॥ तथा । तत्रादौ देवपक्षे तु वाक्यं शृणु शुचिस्मिन्ति ! ।
 कालादीनि निमित्तानि समुल्लिख्य ततः परम् । तत्तत्कर्माभ्यु-
 दयार्थमुक्त्वा साधकसत्तमः । पित्रादीनां त्रयाणान्तु मात्रादीनां
 तथैव च । मातामहानाञ्च मातामह्यादीनामपि प्रिये ! । ष-
 ट्पञ्चान्तं कीर्त्तयेन्नाम गोत्रोच्चारणपूर्वकम् । विश्वेषाञ्चैव देवानां
 आङ् पदमुदीरयेत् । कुशनिर्मितयोः पञ्चाङ्गिप्रयोरहमित्यपि ।
 करिष्ये परमेशानौत्यनुच्चावाक्यमौरितम् । विश्वान् देवान् परि-
 त्यज्य पित्रपक्षे तु पार्वति ! । तथा मातामहस्यापि पक्षेऽनुच्चा
 प्रकीर्त्तिता ॥ इति मात्रादीनां मातामह्यादीनाञ्च आङ्मुक्तं
 तद्वादशदैविकआङ्गपरम् । विश्वसारोक्तवचनन्तु आभ्युदयिक-
 आङ्गपरम् । तदपि सामगानामेव । ऋग्वेदयजुर्वेदयोस्तु नव-
 दैवतआङ्गमिति । एवञ्च द्वादशदैवताभ्युदयिकआङ्गयोरुक्तप्रमाण-
 दर्शनादिच्छाविकल्पयति ॥ विश्वसारे तथा ॥ पुण्याहं वाचयित्वा
 तु सर्वकार्यं समुद्दिशेत् ॥ इति ब्रह्मिआङ्गम् ॥

पञ्चदेवपूजापि तत्रैव ॥ सर्वत्र सर्वकार्येषु गणेशषट्पूर्वकम् ।
 गणेशं सवितारञ्च शिवां शिवमतः परम् । विष्णुञ्च पूजयेद् यत्रात्
 सर्वकार्यार्थसिद्धये । लक्ष्मीं सरस्वतीं गङ्गां यमुनाञ्च तथैव च ।
 दिक्पालान् दिग्गजान् देवानृषीन् विघ्नवासिनीं ग्रहांस्ततः-

परम् । मासराशितिथीर्योगान् करणानि च पार्वति ! । पूज-
येत् परया भक्त्या सर्वतन्त्रसमन्वितान् ॥ दिक्पालादिपूजा पूर्व-
मुक्ता तद्विशेषस्त्वग्रतोऽनुसन्धेयः । सम्प्रति ग्रहपूजार्थमादौ ग्रह-
मन्त्रा उच्यन्ते ॥ ग्रहजामले चतुर्थपटले ॥ प्रणवो वज्रिमारूढः
शिव आस्येन्दुसंयुतः । मायायाः सप्तमः सर्गश्चतुर्वर्णो रवेर्मनुः ।
मन्त्रस्तु ओं क्रां क्रीं सः ॥ १ ॥ प्रणवः कचतुर्थस्तु स मनुः स्वरवि-
न्दुकः । हादिवज्रिसमारूढश्चतुर्दशस्वरान्वितः । विन्दू रषष्ठः
सर्गश्च इन्दोर्वेदार्णको मनुः । मन्त्रस्तु ओं घौं खौं सः ॥ २ ॥ तारः
शिखिसमारूढः शिवो मुखसमन्वितः । विन्दाब्जः पुटितानेन
भाषाहादिः ससर्गकः । पञ्चवर्णात्मको देवि ! भौमस्य कथितो
मनुः । मन्त्रस्तु ओं क्रां क्रीं सः ॥ ३ ॥ तारो नादसमारूढः
सतुर्थः समनुस्वरः । विन्दुरेतद्वयं भानोर्द्विचतुर्थार्णकस्तथा ।
पञ्चवर्णात्मको देवि ! बुधमन्त्रः समीरितः । मन्त्रस्तु ओं क्रीं
क्रीं क्रां सः ॥ ४ ॥ तारः कदशमार्णश्च समनुस्वरविन्दुकः । एत-
त्त्रयं सूर्यतुर्थ्यो गुरोः पञ्चार्णको मनुः ॥ मन्त्रस्तु ओं जौं जौं
जौं सः ॥ ५ ॥ चन्द्रजादिद्वितीयश्च दिननाथत्रितुर्थकः । चतु-
र्वर्णात्मको मन्त्रः शुक्रस्य कथितः प्रिये ! । मन्त्रस्तु ओं क्रीं क्रीं
सः ॥ ६ ॥ प्रणवो रचतुर्थस्तु समनुस्वरविन्दुकः । एतद्वयं सूर्य-
तुर्थश्चतुर्वर्णः शनेर्मनुः । मन्त्रस्तु ओं श्रौं श्रौं सः ॥ ७ ॥ मनुस्वराब्जो
चतुर्थः सविन्दुस्तेन सम्पुटः । खषष्ठो मुखविन्दाब्जो भानुतुर्थ्या-
स्तकः प्रिये ! । चतुर्वर्णात्मको मन्त्रः श्रीराहोः समुदीरितः ।
मन्त्रस्तु ओं क्रीं क्रीं क्रीं सः ॥ ८ ॥ तारो दपञ्चमो वर्णो मनुस्वर-
नभोऽन्वितः । साम्यविन्दुः खषष्ठार्णः सोष्ठावो विन्दुनाष्टमः ।
सूर्यतुर्थ्यो महेष्टानि ! केतोः पञ्चार्णको मनुः । मन्त्रस्तु ओं
फौं फां फौं सः ॥ ९ ॥ पूजाक्रमस्तु आदौ मन्त्रं समुच्चार्य पश्चात्
द्रव्यमुदीरयेत् । सम्प्रदानपदं पश्चात्त्यागात्मकपदं ततः । इति

रुद्रजामलीयवचनानुसारेण मूलमुच्चार्य एतत्पाद्यं श्रीं सूर्याय
 ग्रहाय नम इत्यादिना पूजयेत् । सर्वेषामेष क्रमो ज्ञेयः । प्रस-
 ज्ञात्तेषां पुरश्चरणादिकं लिख्यते ॥ यथा ब्रह्मजामले शिववा-
 क्यम् । विगुणे तु ग्रहे देवि ! व्याधिशत्रुनृपार्दने । राष्ट्रोपप्लवने
 घोरि आयुषो नाश आगते । जातिध्वंसे कुलोच्छेदे सर्वनाश
 उपस्थिते । धनपुत्रादिकामे च कुर्याद्यह्नपुरष्क्रियाम् । दशोक्त-
 वर्षसंख्येन सहस्रेण जपेन तु । पुरश्चरणमुद्दिष्टं सर्वेषां व्योम-
 चारिणाम् । दशांशं जुहुयादङ्गौ त्रिमध्वाक्तसमिद्धरैः । कल्पोक्तै-
 र्गन्धकर्पूरमिश्रितेनोदकेन च । तर्पयेद्देवतां देवि ! तद्दशांश-
 क्रमेण तु । अभिषिञ्चेत्तद्दशांशं कर्पूरवासितैर्जलैः । तद्दशांश-
 क्रमेणैव कुर्याद्वाह्मणभोजनम् । आद्यन्ते महती पूजा दक्षिणा
 विभवाविधिः ॥ इति ग्रहपुरश्चरणम् । वरदातन्त्रे तृतीयपटले ॥
 अतस्तत् साधकेनापि कर्त्तव्यं ग्रहपूजनम् । अन्यथा ग्रहदोषेण
 न कदाचित् फलं भवेत् । सर्वाणि साधनानीह कृत्वा भक्त्या
 विधानतः । ऐहिके फलफलभाङ् न स्याद्विना हि ग्रहपूजनम् ।
 कथयामि समासेन ग्रहसाधनमुत्तमम् । चन्द्रतारानुकूलं हि
 दिनं ग्राह्यं विचक्षणैः । ये ग्रहाश्चाभवन् दुष्टास्तान् प्रयत्नेन
 पूजयेत् । वस्त्रपुष्पाणि सर्वाणि तत्तद्वर्णानि दापयेत् । जुहुयात्तु
 यथाशक्ति ग्रहेष्विष्टप्रसिद्धये । तत्तदग्रहोक्तद्रव्याणि तेभ्यो दत्त्वा
 द्विजे दिशेत् ॥ ग्रहदानन्तु ग्रहजामले षष्ठपटले ॥ श्रीदेव्युवाच ॥
 दीनबन्धो ! दयासिन्धो ! यदि तुष्टोऽसि मां प्रति । आपद्दिना-
 शनं कर्म कृपया कथय प्रभो ! ॥ ईश्वरोवाच ॥ तैलवर्त्तिप्रप-
 न्नस्य दीपस्य पवनात् प्रिये ! । विनाशः स्याद्यथा तद्ददकाले
 प्राणसंचयः ॥ अत आपद्दिनाशाय दीर्घायुष्कत्वहेतवे । सारमेकं
 प्रवक्ष्यामि यन्नाहानं समाचरेत् । तुलादानञ्च यो दद्याद्यह्न-
 विप्राय सुन्दरि ! । आपन्मुक्तो भवेत् सोऽपि भुवि सम्मोदते

सुखम् ॥ १ ॥ सुवर्णस्य तुलां दद्याद् ग्रहविप्राय यः प्रिये ! । तस्य
तुष्टः सुरगुरायुर्वृद्धिं करोति सः । यस्तु रौप्यतुलादानं दद्याद्
ग्रहहिजाय च । सन्तुष्टस्तस्य शुक्रः सन् संसृजेद्दीर्घजीवितम् ॥ २ ॥
ग्रहहिजाय यो दद्यात्तुलां ताम्रस्य पार्वति ! । सन्तुष्टो मङ्गल-
स्तस्य दीर्घायुष्टं करोति हि ॥ ३ ॥ यो यद्याद् ग्रहविप्राय
पित्तलस्य तुलां प्रिये ! । तस्य तुष्टो बुधः कुर्यादायुःपुष्टिं सुगी-
रवम् ॥ ४ ॥ ग्रहविप्राय लौहस्य तुलां यस्तु प्रयच्छति । प्रीतः
शनेश्वरस्तस्य विपुलायुः प्रयच्छति ॥ ५ ॥ सीसकस्य तुलां दद्याद्
ग्रहविप्राय यः प्रिये ! । तस्याशु राहुः सुप्रीतः सौभाग्यायुः
प्रयच्छति ॥ ६ ॥ यः स्वर्परतुलां दद्याद् ग्रहविप्राय सुन्दरि ! ।
सन्तुष्टो भगवान् केतुस्तस्यायुर्वृद्धयेत् सुखम् ॥ ७ ॥ तुलां
ताम्रस्य यो दद्याद् ग्रहविप्राय सुन्दरि ! । आदित्यस्तस्य
सुप्रीतो दीर्घायुः परियच्छति ॥ ८ ॥ ग्रहविप्राय यो दद्यात्तुलां
कांस्यस्य सुन्दरि ! । सन्तुष्टस्तस्य रात्रीशो विभूत्यायुः प्रयच्छति
॥ ९ ॥ वैदूर्यं नीलमाणिक्ये पद्मरागञ्च मौक्तिकम् । वज्रं परेशं
गोमेदं तथा मरकतं प्रिये ! । दद्यादुत्सृज्य विप्राय स्वयञ्च
विभृयात्करे ॥ इति ग्रहदानम् ॥

अथ ग्रहकवचम् ॥ अष्टादशपटले ॥ पार्वत्युवाच । श्रीशान !
सर्वशास्त्रज्ञ ! देवताधीश्वर ! प्रभो ! । अक्षयं कवचं दिव्यं ग्रहा-
दिदैवतं विभो ! । पुरा संसूचितं गुह्यं सुभक्ताक्षयकारकम् ॥
कृपा मयि तवास्ते चेत् कथय श्रीमहेश्वर ! ॥ श्रीशिव
उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रियतमे ! कवचं देवदुर्लभम् । यद्वृत्वा
देवताः सर्वे अमराः स्वर्वरानने ! । तव प्रीतिवशाद्विभो न देयं
यस्य कस्यचित् । ओं क्कां क्कीं सी मे शिरः पातु श्रीसूर्यग्रह-
मूपतिः । ओं वीं सौं ओं मे मुखं पातु श्रीचन्द्रो ग्रहराजकः ।
ओं क्कां क्कीं क्कां सः करो पातु ग्रहसेनापतिः कुजः । पायादशौ

ह्रौं ह्रां सः पादौ त्रौ नृपबालकः । ओं जौं जौं जौं सः कटिं
पातु पायादमरपूजितः । ओं ह्रौं ह्रीं सो दैत्यपूज्यो हृदयं परि-
रक्षतु । ओं शौं शौं सः पातु नाभिं मे ग्रहप्रेथं शनैश्चरः । ओं
ह्रौं ह्रां ह्रौं सः कण्ठदेशं श्रीराहुर्देवमर्दकः । ओं फौं फां फौं
सः शिखी पातु सर्वाङ्गमभितोऽवतु । ग्रहाश्चैते भोगदेहा नित्यास्तु
स्फुटितग्रहाः । एतदंशं शसम्भूताः पान्तु नित्यन्तु दुर्जनात् ।
अक्षयं कवचं पुण्यं सूर्यादिग्रहदेवतम् । पठेद्वा पाठयेद्वापि
धारयेद्यो जनः शुचिः । स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभां त्रिद-
शैस्तु याम् । तव स्नेहवशादुक्तं जगन्मङ्गलकारकम् । ऋषिः
श्रोक्तो भैरवोऽस्य कन्दोऽनुष्टुप्प्रकीर्तितम् । श्रीसूर्यादिग्रहा-
स्तत्र देवताः परिकीर्तिताः । सर्वकामार्थसंसिद्धेः विनियोगो
मयोदितः । ग्रहयन्त्रान्वितं कृत्वाभीष्टमक्षयमाप्नुयात् ॥

इति ग्रहजामले पार्वतीश्वरसंवादे जगद्गुर्लभाक्षय नाम

कवचं समाप्तम् ॥

अथ तिथिपूजा ॥ गायत्रीतन्त्रे । श्रीमहादेव उवाच ॥ तिथे-
र्ध्यानं विना देवि ! तिथेर्मन्त्रं तथैव च । अज्ञात्वा परमेशानि !
दिनकृत्यं करोति यः । तस्य सर्वं भवेद्दार्थं दिनकृत्यं वरानने ! ।
या तिथिः सा महामाया आद्यामूर्तिर्जगन्मयी । कृष्णपक्षे
कृष्णवर्णा शुक्ले चन्द्र समप्रभा । द्विभुजां शुक्लरूपाञ्च खेलत्-
खञ्जनगामिनीम् । द्विलोचनां शशिकलां सिन्दूरतिलको-
ञ्जलाम् । तप्तहाटकनिर्माणनानालङ्कारभूषिताम् । दाडि-
मीवीजसदृशदशनद्युतिशोभनाम् । ध्यायेत् प्रतिपदं देवीं जप-
पूजाविशुद्धये ॥ मन्त्रो यथा । श्रीं प्रतिपद्भ्यः स्वाहा ॥ १ ॥ एवं
द्विलोचनां शशिकलां शुद्धस्फटिकशोभनाम् । शुद्धाभरणशोभाञ्चां
शुक्लवस्त्रपरिच्छदाम् । नानाकटाक्षसंयुक्ताभ्रूलतापरिशोभिताम् ।
सिन्दूरतिलकोद्गीप्तां खञ्जनाञ्चितलोचनाम् । द्विभुजां सुन्दरा-

झीञ्च किशोरीं नवयौवनाम् । ध्यात्वा द्वितीयां चार्चङ्गि !
जपेन्मन्त्रं यथा शृणु । ऐं द्वितीयायै स्वाहा ॥ २ ॥ शुक्ल-
पद्मप्रतीकाशां शुक्लवस्त्रपरिच्छिदाम् । शुक्लाभरणशोभाढ्यां पुण्ड-
रीकोपरिस्थिताम् । द्विलोचनां शशिकलां सिन्दूरतिलको-
ज्ज्वलाम् । कटाक्षविशिखोपेतां द्विभुजां तृतीयां भजेत् । ओं
ऐं तृतीयायै स्वाहा ॥ ३ ॥ चतुर्थीं शुक्लचार्चङ्गीं यज्ज्ञात्वा
सिद्धिदां व्रजेत् । कुन्दपुष्पसमाभासां द्विभुजां लोललोचनाम् ।
शुक्लवस्त्रपरीधानां शुक्लाभरणभूषिताम् । सिन्दूरतिलकोद्दीप्तां
खञ्जनाञ्चितलोचनाम् ॥ ऐं हुं चतुर्थ्यै स्वाहा ॥ ४ ॥ पञ्चमीं
शृणु चार्चङ्गि ! सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् । यज्ज्ञात्वा परमेशानि !
तियेः फलमवाप्नुयात् ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशां श्वेतपद्मोपरिस्थि-
ताम् । हास्ययुक्तां प्रसन्नास्यां कटाक्षविशिखोज्ज्वलाम् । कन्द-
र्पधनुराकारभूलतापरिशोभिताम् । द्विभुजां श्वेतवर्णाञ्च श्वेता-
लङ्कारभूषिताम् ॥ लोचनद्वयसंयुक्तां सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाम् ।
मृणालसदृशाकारबाहुवल्लीविराजिताम् । खेलत्खञ्जनगामीञ्च
चारुचूडाविराजिताम् ॥ ह्रीं ऐं ह्रीं पञ्चम्यै स्वाहा । ह्रीं ऐं ह्रीं
विशेषः । श्रीपञ्चमीदिने कर्त्तव्यं पूजनं महत् । निरीक्ष्य दक्षिण-
नाथे यद्दधानपूजादिकञ्चरेत् । ध्यायेत् परमयत्नेन पञ्चमीति-
थिरूपिणीम् । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा प्रजपेद्दशधा मनुम् ।
ततस्तु पूजयेद्देवीं शारदां वाग्विलासिनीम् ॥ ५ ॥ कुन्दपुष्पसमा-
भासां द्विभुजां लोललोचनाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तां सिन्दूर-
तिलकोज्ज्वलाम् । दाडिमीबीजसदृशदशनद्युतिमुज्ज्वलाम् ।
शुक्तालङ्कारसुभगां शुक्लासननिवासिनीम् । शुक्लवस्त्रपरिच्छिन्नां
शुक्लहारविनोदिनीम् । द्विभुजां चन्द्रवदनां ध्यायेदात्मविभूतये ।
ओं ह्रीं षष्ठ्यै स्वाहा ॥ ६ ॥ शरच्चन्द्रप्रतीकाशां द्विभुजां शशि-
शेखराम् । लोचनद्वयसंयुक्तां खेलत्खञ्जनगामिनीम् । सिन्दू-

रतिलकोद्दीप्तमञ्जनाञ्चितलोचनाम् । कटाक्षविशिखीपेतां
 भ्रूलतापरिशोभिताम् । शुक्तासनसमासीनां शुक्ताभरणभूषि-
 ताम् । शुक्लवस्त्रपरीधानां ध्यावेदात्मविभूतये । ह्रीं श्रीं सप्तम्यै
 स्वाहा श्रीं ह्रीं ॥ ७ ॥ राकाचन्द्रप्रतीकाशां द्विभुजां चन्द्रशेख-
 राम् । पूर्णचन्द्रमुखश्रेणीं कुटिलालकशोभिताम् । हास्ययुक्तां
 प्रसन्नास्यां श्वेतवस्त्रपरिच्छदाम् । श्वेताभरणशोभाढ्यां किशोरीं
 नवयौवनाम् । मालाकटाक्षसंयुक्तां भ्रूलतापरिशोभिताम् ।
 सिन्दूरतिलकोद्दीप्तमञ्जनाञ्चितलोचनाम् । क्रीं हुं ऐं अष्टम्यै
 स्वाहा ऐं हुं क्रीं ॥ ८ ॥ श्वेतपद्मप्रतीकाशां द्विभुजां लोललोचनाम् ।
 दाडिमीवीजसदृशदन्तपंक्तिपरिच्छदाम् । शुक्लपट्टाश्वरधरां
 शुक्लवस्त्रोत्तरीयिणीम् । ललाटे पट्टिकां शुभां सिन्दूरतिलको-
 ज्ज्वलाम् । नानाभरणदीप्ताङ्गीं पीतगन्धप्रलेपिताम् । मुक्ता-
 वर्तुलहारिण कम्बुकण्ठसुशोभिताम् । नानामाल्यपरिच्छिन्नां
 चित्रराजविराजिताम् । श्रीं हुं नवम्यै स्वाहा हुं श्रीं ॥ ९ ॥
 मल्लिकापुष्पसङ्काशां द्विभुजां लोललोचनाम् । श्वेतासनोपवि-
 ष्ठाञ्च श्वेतांशुकपरिच्छदाम् । श्वेताभरणसंयुक्तां श्वेतगन्धवि-
 लेपनीम् । सिन्दूरतिलकोद्दीप्तमञ्जनाञ्चितलोचनाम् ॥ ऐं
 श्रीं दशम्यै स्वाहा श्रीं ऐं ॥ १० ॥ केतकीपुष्पसङ्काशां भ्रूलता-
 परिभूषिताम् । नानाकटाक्षसंयुक्तां सत्तद्विरदगामिनीम् । नाना-
 लङ्कारसुभगां पीतवस्त्रपरिच्छदाम् । पीतगन्धप्रलेप्ताङ्गीं सिन्दूर-
 तिलकोज्ज्वलाम् । दाडिमीवीजसदृशदन्तपंक्तिमनुत्तमां ।
 द्विभुजां सुन्दरीं देवी नमाम्यात्मविभूतये ॥ ॐ क्रीं ॐ एकादश्यै
 स्वाहा ॐ क्रीं ॐ ॥ ११ ॥ पीतपद्मसमाभासां शुक्लवस्त्रपरिच्छदाम् ।
 शुक्लचन्दनसिक्ताङ्गीं द्विभुजां लोललोचनाम् । शुक्ताभरणशो-
 भाढ्यां शुक्तासनसमाश्रयाम् । दाडिमीवीजसदृशदशनद्युतिशो-
 भनाम् । सिन्दूरतिलकोद्दीप्तां ललाटपट्टिकां शुभाम् । ह्रीं श्रीं

ह्रीं हादश्यै स्वाहा ह्रीं ओं ह्रीं ॥ १२ ॥ रक्तचन्द्रप्रतीकाशां कि-
 शोरीं नवयौवनाम् । रक्तवस्त्रपरीधानां कुटिलालकमण्डिताम् ।
 द्विभुजां सुन्दरीं शुद्धां पूर्णचन्द्रमुखप्रभाम् । द्विलोचनां चन्द्रेखां
 विष्णुपूज्यां वृहत्कटीम् । सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलो-
 चनाम् । नानाकटाक्षसंयुक्तां नानाशृङ्गारशोभनाम् । ध्यात्वा
 त्रयोदशीं देवीं प्रजपेन्नन्तमुत्तमम् ॥ ओं ऐं त्रयोदश्यै स्वाहा
 ऐं ओं ॥ १३ ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशां हरिद्वस्त्रविनोदिनीम् ।
 नानालङ्कारसुभगां पीतमाख्यपरिच्छदाम् । श्वेतपद्मसमासीनां
 द्विभुजां लोललोचनाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तां सिन्दूरतिलको-
 ज्ज्वलाम् । दाडिमौवीजसदृशदशनद्युतिमुज्ज्वलाम् । कदम्ब-
 कोरकाकारस्तनद्वयमनोहराम् । हास्ययुक्तां प्रसन्नास्यां किशोरीं
 नवयौवनाम् ॥ क्रीं ओं ह्रीं चतुर्दश्यै स्वाहा ह्रीं ओं क्रीं ॥ १४ ॥
 सप्तमपटले ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ पूर्णिमां शृणु चार्वङ्गि !
 यथा सिद्धिमयो भवेत् । कोटिविद्युलताकारां चतुर्बाहुसम-
 न्विताम् । पीतांशुकपरीधानां रत्नहारविराजिताम् । शङ्ककङ्कण-
 केयूरनानाशृङ्गारभूषिताम् । रत्नकुण्डलसंयुक्तास्फुरद्गण्डमनो-
 हराम् । त्रिभङ्गललिताकारां सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाम् । कटाक्ष-
 लक्षसंयुक्तां भूलतापरिशोभिताम् ॥ ह्रीं ओं क्रीं ओं पूर्णिमायै
 स्वाहा ओं क्रीं ओं ह्रीं ॥ १५ ॥ एतत्ते कथितं देवि ! पूर्णमन्त्रं
 परात्परम् । एतास्तु तिथयो देवि ! शुक्लपक्षे वरानने ! । कृष्ण-
 पक्षे महेशानि ! तिथयस्तु सुशोभनाः । नीलाञ्जनचयप्रस्थाः
 किशोर्यो नवयौवनाः । तासां ध्यानं प्रवक्ष्यामि सावधानावधा-
 रय ॥ दलिताञ्जनसङ्काशां पीतांशुकपरिच्छदाम् । पीतगन्ध-
 प्रलिप्ताङ्गीं पीताभरणभूषिताम् । पीतपद्मसमासीनां किशोरीं
 नवयौवनाम् । द्विलोचनां चन्द्रेखां द्विभुजां कोरकस्तनीम् ॥
 ललाटपट्टिकाशुद्धां सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाम् । खेलत्खञ्जन-

गामीञ्च त्रिभङ्गिललिताकृतिम् । दाडिमबीजसदृशदशनज्योति-
 रुज्ज्वलाम् । कृष्णपक्षे महेशानि ! एतद्व्यानं प्रशस्यते । सर्वासां
 परमेशानि ! एकेन भवति प्रिये ! । सर्वासां पूर्ववन्मन्त्रममा-
 वास्यां विना शिवे ! । अमावास्यामनुं देवि ! शृणुष्व वरवर्णिनि ! ॥
 ओं ह्रीं ह्रीं ओं अमावास्यायै स्वाहा ओं ह्रीं ह्रीं ओं ॥ अथ
 वक्ष्यामि सफलं पक्षध्यानं वरानने ! ॥ शङ्खकुन्दसमाभासां नव-
 यौवनसंयुताम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां मत्तद्विरदगामिनीम् ।
 ललाटपट्टिकामध्ये सिन्दूरतिलकस्थितिम् । भ्रमदभ्रमरनी-
 लाभामञ्जनाञ्चितलोचनाम् । पीतांशुकपरीधानां कृष्णवस्त्रो-
 त्तरीयिणीम् । नानालङ्कारसुभगां नीलपद्मोपरिस्थिताम् । घूर्णाय-
 माननयनां नीलपद्मविधारिणीम् । सदा षोडशवर्षीयां कद-
 म्बकोरकस्तनीम् । हीरकद्युतिसङ्काशदशनज्योतिरुज्ज्वलाम् ।
 नानापुष्पमयैर्हारैर्नानागन्धमयीं पराम् । प्रत्यहं भावयेद्देवीं
 शुक्लपक्षस्वरूपिणीम् ॥ ऐं ऐं क्रीं क्रीं शुक्लपक्षाय स्वाहा ऐं ऐं
 क्रीं क्रीं ॥ कृष्णपक्षे महेशानि ! अधुना निगदामि ते । महासर-
 कतश्चामां चतुर्बाहुसमन्विताम् । पीनोत्तुङ्गकुचां रम्यां चित्र-
 वस्त्रविलासिनीम् । नानाशृङ्गारवेशाढ्यां स्फुरच्चकितलोच-
 नाम् । सिन्दूरतिलकोद्गीतामञ्जनाञ्चितलोचनाम् । कन्दर्पधनु-
 राकारभ्रूलतापरिशोभिताम् । रत्नहारैश्च सहितनागहार-
 विराजिताम् । पीतपद्मसमासीनां चित्रचूडाविराजिताम् ।
 पीतविद्युत्समाकान्तुत्तरीयवसनच्छविम् । पूर्णचन्द्रमुखीं देवीं
 कृष्णपक्षस्वरूपिणीम् ॥ ओं ओं कृष्णपक्षाय स्वाहा ओं ओं ॥
 श्रीशिव उवाच ॥ तिथेर्ध्यानं तिथेर्मन्त्रं पक्षध्यानं तथैव च ॥
 पक्षमन्त्रं तथा देवि ! दिवसे दिवसे सुधीः । प्रत्यहं कुरुते यस्तु
 तस्य सिद्धिरदूरतः । एतास्तु तिथयो देवि ! सूर्यमण्डलसंस्थिताः ।
 पक्षध्यानं प्रथमतस्तथिध्यानं ततः प्रिये ! । पक्षमन्त्रं ततो

जम्बा तिथिमन्त्रं ततो जपेत् । ततः सिद्धिमवाप्नोति जपपूजा-
दिका च या । दिनकृत्वं महेशानि ! यः करोति दिने दिने ।
पक्षपूजां प्रथमतः कृत्वा सिद्धिमवाप्नुयात् । तिथिपूजां विना
देवि ! जपयज्ञादिका क्रिया । सर्वं निष्फलतां याति आमपात्र-
मिवाभ्रसि । दिवसे दिवसे देवि ! तिथिमासाद्य यत्नतः । प्रातः-
काले ततो धौमान् तिथिध्यानं समाचरेत् । दशधा प्रजपेन्मन्त्रं
सूर्यं दृष्ट्वा प्रयत्नतः । तदा तिथिफलं प्राप्य सर्वं पूजाफलं लभेत् ।
एतत्तत्त्वमविज्ञाय आयुर्याति दिने दिने । तिथिरूपा महादेवी
महामाया जगन्मयी । ध्यानमन्त्रं विना देवि ! सर्वेषां सिद्धि-
नाशिनी । प्रत्यहं कुरुते यस्तु जपध्यानं तिथेः प्रिये ! । गङ्गा-
स्नानफलं सोऽपि लभते नात्र संशयः । अश्वमेधमहायज्ञे व्यासो
होता यदि प्रिये ! । विफलमश्वमेधं हि तिथिध्यानं विना भ-
वेत् । अमृतनामृतं कृष्णे प्रीयन्ते देवताः क्रमात् । प्रथमां
पिबते वज्रिर्द्वितीयां तपनः कलाम् । विश्वदेवास्तृतीयान्तु चतु-
र्थीन्तु प्रजापतिः । पञ्चमीं वरुणश्चापि षष्ठीं पिबति वासवः ।
सप्तमीमृषयो दिव्या वसवोऽष्टौ तथाष्टमीम् । नवमीं कृष्ण-
पक्षस्य पिबतीन्द्रः कलामपि । दशमीं मरुतश्चापि रुद्र एका-
दशीं कलाम् । द्वादशीन्तु कलां विष्णुर्धनदश्च त्रयोदशीम् ।
चतुर्दशीं पशुपतिः कलां पिबति नित्यशः । ततः पञ्चदशीञ्चापि
पिबन्ति पितरः कलाम् ॥

अथ तिथिकवचम् । अस्य तिथीनां कवचस्य अश्वत्थाम-
बलिव्यासहर्षनर्मदिभीषणकृपपरशुरामा ऋषयो गायत्रीच्छन्दः
श्रीमृत्पुञ्जयशिवो देवता धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः । पूर्वं
पातु सदा नित्या क्रीडारो प्रतिपत्तिथिः । क्रीडारो पातु मे
नित्यं द्वितीया ब्रह्मपूजिता । ऐडारो पातु मे नित्यं तृतीया
पश्चिमे परा । वृडारो पातु मे नित्या चतुर्थी विष्णुपूजिता ।

व्लुङ्कारी पातु मे नित्यमूर्ध्वदेहमहर्निशम् । ह्रीङ्कारी पातु मे
 नित्यं पञ्चमी सुखमण्डलम् । औङ्कारी पातु मे नित्यं षष्ठी-
 रूपा च पार्वती । स्त्रीङ्कारी सप्तमी पातु नित्यं मे नाभिमण्ड-
 लम् । हुङ्कारी चाष्टमी नित्यं कण्ठं मे पातु सर्वदा । श्रीङ्कारी
 नवमी नित्यं स्वाधिष्ठानं सदावतु । दशमी पातु मे नित्यं हस्त-
 युग्मं यथा तथा । एकादशी सदा पातु चाक्षियुग्ममहर्निशम् ।
 द्वादशी पातु मे नित्यं हस्तयुग्मं यथा तथा । त्रयोदशी महा-
 लक्ष्मीः चैत्रस्थाननिवासिनी । त्रयोदशी पातु नित्यं हंस
 इत्यक्षरात्मिका । हङ्कारः पातु मे नित्यं पादयुग्ममहर्निशम् ।
 सःकारः पातु मे नित्यं पादाग्रात् केशमण्डलम् । चतुर्दशी
 महामाया सर्वत्र परिरक्षतु । स्वाकारश्चतुर्दशी नित्या नित्यं मे
 धनसम्पदम् । हाकारः पूर्णिमा नित्यं देहि मे आयुर्वर्धनम् ।
 श्रीं हुं ह्रीं स्वाहा सर्वरूपा देवी तिथिरूपा च मां परिरक्षतु
 सर्वदा । हुं ह्रीं अमावास्या सदा पातु दारान् पुत्रपरिच्छेदम् ।
 ह्रीं हुं ह्रीं स्वाहा कथितं कवचं देवि ! तैलोक्येषु च दुर्लभम् ।
 इदं कवचमन्नात्वा कवचान्यं पठेत्तु यः । अन्येषां कवचानाञ्च
 तेजांसि हरते तिथिः । तस्माद्यत्नेन हे देवि ! तिथीनां कवचं
 पठेत् । ध्यानं मन्त्रं तथा स्तोत्रं कवचञ्च तथा प्रिये ! । कलि-
 कालमतं देवि ! परतत्त्वं विनिर्गतम् । इति ते कथितं देवि ।
 सारात्कारं परात्परम् ॥

इति श्रीवर्णविलासतन्त्रे गणेशजतुकर्णसुभगासंवादे

तिथिकवचं समाप्तम् ॥

मासादीनां ध्यानन्तु कामधेनुतन्त्रादावनुसन्धेयमत्र ग्रन्थ-
 गौरवभिया न लिखितम् ॥ अथ वर्णानां ध्यानादिकं वर्णोद्धार-
 तन्त्रोक्तम् । प्रणाममन्त्रस्तु सर्वत्र कामधेनुतन्त्रोक्त इति । तद्-
 यथा ॥ केतकौपुष्यगर्भाभां त्रिभुजां हंसलोचनाम् । शक्त-

पद्मास्वरधरां पद्ममाख्यविभूषिताम् । चतुर्वर्गप्रदां नित्यं नित्या-
नन्दमयीं पराम् । वराभयकरां देवीं नागपाशसमन्विताम् ।
एवं ध्यात्वा अकारान्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ अ ॥ ध्यानमस्याः
प्रवक्ष्यामि षड्भुजां रक्तलोचनाम् । रत्नकङ्कणकेयूरहारोज्ज्वल-
कलेवराम् । सिद्धां सिद्धिप्रदां सौम्यां सिद्धिगन्धर्वसेविताम् । एवं
ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ आ ॥ धूम्रवर्णां महा-
रौद्रीं पीताम्बरयुतां पराम् । कामदां सिद्धिदां सौम्यां नित्यो-
क्ताहविवर्दिनीम् । चतुर्भुजान्तु वरदां हरिचन्दनभूषिताम् । एवं
ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ इ ॥ चतुर्भुजां रक्तवर्णां
रक्तपुष्पोपशोभिताम् । चारुचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपङ्कजलो-
चनाम् । रक्तचीरपरीधानां धर्मकामार्थमोक्षदाम् । एवं ध्यात्वा
सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ ई ॥ पीतवर्णां त्रिनयनां
पीताम्बरधरां पराम् । द्विभुजां जटिलां भीमां सर्वसिद्धिप्रदा-
यिनीम् । एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ उ ॥
द्विभुजां शुक्लवर्णाञ्च जटामुकुटशोभिताम् । शुक्लमाख्यास्वरधरां
चारुचन्दनभूषिताम् । चतुर्वर्गप्रदां नित्यां रक्तपङ्कजलोचनाम् ।
एवं ध्यात्वा तु तन्मन्त्रं दशधा जपमाचरेत् ॥ ऊ ॥ षड्भुजां
नीलवर्णाञ्च नीलास्वरधरां पराम् । नानालङ्कारभूषाढ्यां सर्वा-
लङ्कृतमस्तुकाम् । भक्तिप्रदां भगवतीं भोगमोक्षप्रदायिनीम् । एवं
ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । पञ्चप्राणमयं वर्णं
चतुर्ज्ञानमयं तथा । रक्तविद्युल्लताकारं ऋकारं प्रणमाम्यहम् ॥
ऋ ॥ ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि द्विभुजां पद्मलोचनाम् । सन्तप्त-
स्वर्णवर्णाभां सर्वालङ्कारभूषिताम् । रक्तपद्मेक्षणां देवीं रत्नहार-
विभूषिताम् । एवं ध्यात्वा सुरश्रेष्ठां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
चतुर्ज्ञानमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । त्रिशक्तिसहितं वर्णं
प्रणमामि सदा प्रिये ! ॥ ऋ ॥ स्वर्णचम्पकवर्णाञ्च स्वर्णालङ्कार-

विग्रहाम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां रक्तचन्दनचर्चिताम् । प्रण-
मामि सदा देवीं धर्मकामार्थमोक्षदाम् । एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ लृ ॥ ध्यानमस्थाः प्रवक्ष्यामि पीतवर्णां
चतुर्भुजाम् । पीताम्बरपरीधानां नानालङ्कारमस्तकाम् । विचित्र-
माभ्याभरणां देवदानवसेविताम् । चतुर्वर्गप्रदां नित्यां नित्यो-
त्साहविवर्द्धिनीम् । एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा
जपेत् ॥ लृ ॥ रक्ताम्बरपरीधानां षड्भुजां रक्तलोचनाम् ।
विचित्राभरणां नित्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीम् । ईषडास्यमुखीं
सौम्यां देवगन्धर्वसेविताम् । एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं
दशधा जपेत् ॥ ए ॥ विचित्ररूपिणीं देवीं विचित्राम्बरधारिणीम् ।
विचित्रमाभ्याभरणां चतुर्बाहुसमन्विताम् ॥ नानालङ्कारसंयुक्तां
चतुर्वर्गफलप्रदाम् । देवदानवगन्धर्वैः सेवितां मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ ऐ ॥ रत्नालङ्कार-
संयुक्तां पद्मरागप्रभां शुभाम् । शरत्पूर्णेन्दुवदनां विचित्रवसना-
न्विताम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां स्मेरास्यां नीलकुन्तलाम् । विद्यु-
हामसमानाङ्गीं मुक्तापंक्तिस्त्रजं भजे । एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ ओ ॥ चतुर्भुजां त्रिनयनां जटामकुट-
मण्डिताम् । खेतरोहितपौतादिपुष्पहारोपशोभिताम् । सदा
स्मेरमुखीं सौम्यां चतुर्वर्गप्रदायिनीम् । एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ औ ॥ जवादाडिमपुष्पाभां द्विभुजां
रक्तलोचनाम् । रक्ताम्बरपरीधानां रत्नालङ्कारभूषिताम् । चतु-
र्वर्गप्रदां सौम्यां वरदां नागशिखराम् । एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ अं ॥ सन्तप्तहेमवर्णाभां सर्वालङ्कार-
भूषिताम् । रत्नयज्ञोपवीताञ्च रत्नाकङ्कणराजिताम् । पूर्णेन्दु-
वदनां सौम्यां तुरीयकरसंयुताम् । चन्द्रसूर्याग्निरूपेण नयन-
वितयान्विताम् । साधकाभीष्टदां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदाम् ।

एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ अः ॥ जवायावका-
सिन्दूरसट्श्रीं कामिनीं पराम् । चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च बाहुवल्ली-
विराजिताम् । कदम्बकोरकाकारस्तनयुग्मविराजिताम् । रत्न-
कङ्कणकेयूरहारनूपुरभूषिताम् । एवं ककारं ध्यात्वा तु तन्मन्त्रं
दशधा जपेत् ॥ क ॥ बन्धूकपुष्पसङ्काशां रत्नालङ्कारभूषिताम् ।
वराभयकरां नित्यामीषङ्गास्यमुखीं पराम् । एवं ध्यात्वा खका-
रन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । गुणत्रययुतं देवि ! पञ्चदेवमयं
सदा । त्रिशक्तिसंयुतं वर्णं खकारं प्रणमाम्यहम् ॥ ख ॥ दाडिमी-
पुष्पसङ्काशां चतुर्बाहुसमन्विताम् । रक्ताम्बरधरां नित्यां रक्ता-
लङ्कारभूषिताम् । एवं ध्यात्वा गकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा
जपेत् । पञ्चप्राणमयं वर्णं सर्वशक्त्यात्मकं प्रिये ! । तरुणादित्य-
सङ्काशां कुण्डलीं प्रणमाम्यहम् ॥ ग ॥ मालतीपुष्पवर्णाभां षड्-
भुजां रक्तलोचनाम् । शुक्ताम्बरपरीधानां शुक्लमाख्यविभूषिताम् ।
तदा स्मरमुखीं रम्यां लोचनत्रयराजिताम् । एवं ध्यात्वा
घकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । निर्गुणं त्रिगुणीपेतं सदा
त्रिगोलसंयुतम् । सर्वगं सर्वदा शान्तं घकारं प्रणमाम्यहम् ॥
घ ॥ धूम्रवर्णां महाघोरां ललज्जिह्वां चतुर्भुजाम् । पीता-
म्बरपरीधानां साधकामौष्टसिद्धिदाम् । एवं ध्यात्वा ब्रह्म-
रूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । सर्वदेवमयं वर्णं त्रिगुणं लोल-
लोचने ! । पञ्चप्राणमयं वर्णं ङकारं प्रणमाम्यहम् ॥ ङ ॥
तुषारकुन्दपुष्पाभां नानालङ्कारभूषिताम् । सदा षोडशव-
र्षीयां वराभयकरां पराम् । शुक्लवस्त्रावृतकटिं शुक्लवस्त्रो-
त्तरीयिणीम् । वरदां शोभनां रम्यामष्टबाहुसमन्विताम् ।
एवं ध्यात्वा चकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ च ॥ ध्यान-
मस्याः प्रवक्ष्यामि विभुजान्तु त्रिलोचनाम् । पीताम्बरधरां
नित्यां वरदां भक्तवत्सलाम् । एवं ध्यात्वा छकारन्तु तन्मन्त्रं

दशधा जपेत् । चिविन्दुसहितं वर्णं सदैवैश्वरसंयुतम् । पीत-
विद्युल्लताकारं ककारं प्रणमाम्यहम् ॥ क ॥ नानालङ्कारसंयुक्ता-
र्भुजैर्दशभिर्युताम् । रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं चित्ताम्बरविधारिणीम् ।
त्रिलोचनां जगद्धात्रीं वरदां भक्तवत्सलाम् । एवं ध्यात्वा जकार-
रन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ ज ॥ सन्तप्तहेमवर्णाभां रक्ताम्बर-
विभूषिताम् । रक्तचन्दनलिताङ्गीं रक्तमाल्यविभूषिताम् । चतु-
र्दशभुजां देवीं रत्नहारोज्ज्वलां पराम् । एवं ध्यात्वा झकारन्तु
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ झ ॥ चतुर्भुजां धूम्रवर्णां कृष्णाम्बरविभू-
षिताम् । नानालङ्कारसंयुक्तां जटामुकुटराजिताम् । ईषडास्य-
मुखीं नित्यां वरदां भक्तवत्सलाम् । एवं ध्यात्वा जकारन्तु त-
न्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ जं ॥ मालतीकुन्दपुष्पाभां पूर्णचन्द्रनिभे-
क्षणाम् । दशबाहुसमायुक्तां सर्वालङ्कारभूषिताम् । परमोक्ष-
प्रदां नित्यां सदा स्मेरमुखीं पराम् । एवं ध्यात्वा टकारन्तु
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ ट ॥ पूर्णचन्द्रनिभां देवीं विकसत्पङ्कज-
क्षणाम् । सुन्दरीं षोडशभुजां धर्मकामार्थमोक्षदाम् । एवं ध्यात्वा
ठकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ ठ ॥ जवासिन्दूरसङ्काशां वरा-
भयकरां पराम् । त्रिनेत्रां वरदां नित्यां परमोक्षप्रदायिनीम् ।
एवं ध्यात्वा डकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । चतुर्ज्ञानमयं वर्ण-
मात्मादितत्त्वसंयुताम् । पीतविद्युल्लताकारां डकारं प्रणमाम्यह-
म् ॥ ड ॥ रक्तोत्पलनिभां रम्यां रक्तपङ्कजलीचनाम् । अष्टादश-
भुजां भीमां महामोक्षप्रदायिनीम् । एवं ध्यात्वा ढकारन्तु त-
न्मन्त्रं दशधा जपेत् । सदा त्रिगुणसंयुक्तादितत्त्वमयं सदा ।
रक्तविद्युल्लताकारं ढकारं प्रणमाम्यहम् ॥ ढ ॥ द्विभुजां वरदां
वन्द्यां भक्ताभीष्टप्रदायिनीम् । राजीवलोचनां नित्यां धर्म-
कामार्थमोक्षदाम् । एवं ध्यात्वा णकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा ज-
पेत् ॥ ण ॥ चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीम् । सदा

घोडश्वर्षीणां रक्ताम्बरधरां पराम् । नानालङ्कारभूषां वा सर्व-
सिद्धिप्रदायिनीम् । एवं ध्यात्वा तकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्
॥ त ॥ नीलवर्णां त्रिनयनां षड्भुजां वरदां पराम् । पीतवस्त्र-
परीधानां सदा सिद्धिप्रदायिनीम् । एवं ध्यात्वा थकारन्तु तन्मन्त्रं
दशधा जपेत् । पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं सदा । तरुणादित्य-
सङ्काशं थकारं प्रणमाम्यहम् ॥ थ ॥ चतुर्भुजां पीतवस्त्रां नवयौव-
नसंस्थिताम् । अनेकरत्नघटितहारनूपुरशोभिताम् । एवं ध्यात्वा
दकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । त्रिशक्तिसहितं देवि ! त्रिविन्दु-
सहितं सदा । आत्मादितस्त्वसंयुक्तं दकारं प्रणमाम्यहम् ॥ द ॥
षड्भुजां मेघवर्णाञ्च रक्ताम्बरधरां पराम् । वरदां शुभदां रम्यां
चतुर्वर्गप्रदायिनीम् । एवं ध्यात्वा धकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्
॥ ध ॥ दलिताञ्जनवर्णाभां ललज्जिह्वां सुलोजनाम् । चतुर्भुजां
चक्रोराक्षीं चारुचन्दनचर्चिताम् । कृष्णाम्बरपरीधानामीषडा-
स्यमुखीं सदा । एवं ध्यात्वा नकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ न ॥
विचित्रवसनां देवीं द्विभुजां पङ्कजेक्षणाम् । रक्तचन्दनलिप्ताङ्गीं
पद्ममालाविभूषिताम् । मणिरत्नादिकेयूरहारकेयूरविग्रहाम् ।
चतुर्वर्गप्रदां नित्यां नित्यानन्दमयीं पराम् । एवं ध्यात्वा पकारन्तु
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ प ॥ प्रलयाम्बुदवर्णाभां ललज्जिह्वां
चतुर्भुजाम् । भक्ताभयप्रदां नित्यां नानालङ्कारभूषिताम् । एवं
ध्यात्वा फकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ फ ॥ नीलवर्णां त्रिन-
यनां नीलाम्बरधरां पराम् ॥ नागहारोज्ज्वलां देवीं द्विभुजां
पद्मलोचनाम् । एवं ध्यात्वा बकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं विविधामृतलेपिताम् । स्वयं कुण्डलिनीं
देवीं सततं प्रणमाम्यहम् ॥ ब ॥ तडित्प्रभां महादेवीं नागकङ्कण-
शोभिताम् । चतुर्वर्गप्रदां देवीं साधकामीष्टसिद्धिदाम् । एवं
ध्यात्वा भकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । त्रिशक्तिसहितं वर्णं

त्रिविन्दुसहितं प्रिये ।। आत्मादितत्त्वसंयुक्तं भकारं प्रणमाम्य-
हम् ॥ भ ॥ कृष्णं दशभुजां भीमां पीतलोहितलोचनाम् ।
कृष्णास्वरधरां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदाम् । एवं ध्यात्वा भ-
कारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दु-
सहितं सदा । आत्मादितत्त्वसंयुक्तं हृदि स्थं प्रणमाम्यहम् ॥ म ॥
धूस्रवर्णां महारौद्रीं षड्भुजां रक्तलोचनाम् । रक्तास्वरपरीधानां
नानालङ्कारभूषिताम् । महामोक्षप्रदां नित्यामष्टसिद्धिप्रदायि-
नीम् । एवं ध्यात्वा यकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । त्रिशक्ति-
सहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा । प्रणमामि सदा वर्णं शक्तिमामोक्ष-
मव्ययम् ॥ य ॥ ललज्जिह्वां महारौद्रीं रक्तास्यां रक्तलोचनाम् ।
रक्तवर्णामष्टभुजां रक्तपुष्पोपशोभिताम् । रक्तमाख्यास्वरधरां
रक्तालङ्कारभूषिताम् । महामोक्षप्रदां नित्यामष्टसिद्धिप्रदायि-
काम् । एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । त्रिशक्ति-
सहितं देवि । आत्मादितत्त्वसंयुतम् । सर्वतेजोमयं वर्णं सततं
प्रणमाम्यहम् ॥ र ॥ चतुर्भुजां पीतवस्त्रां रक्तपङ्कजलोचनाम् ।
सर्वदा वरदां भीमां सर्वालङ्कारभूषिताम् । योगीन्द्रसेवितां
नित्यां योगिनीं योगरूपिणीम् । चतुर्वर्गप्रदां देवीं नागहारो-
पशोभिताम् । एवं ध्यात्वा लकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥
ल ॥ कुन्दपुष्पप्रभां देवीं द्विभुजां पङ्कजचक्षुषाम् । शुक्लमाख्या-
स्वरधरां रत्नहारोज्ज्वलां पराम् । साधकाभीष्टदां सिद्धां सिद्धिदां
सिद्धसेविताम् । एवं ध्यात्वा वकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्
॥ व ॥ चतुर्भुजां चकोराक्षीं चारुचन्दनचर्चिताम् । शुक्लवर्णां
विनयनां वरदाञ्च शुचिस्मिताम् । रत्नालङ्कारभूषाख्यां श्वेत-
माख्योपशोभिताम् । देवहृन्दैरभिवन्द्यां सेवितां मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
एवं ध्यात्वा शकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ श ॥ शुक्लास्वरां शुक्ल-
वर्णां द्विभुजां रक्तलोचनाम् । श्वेतचन्दनलिमाङ्गीं मुक्ताहारोप-

शोभिताम् । गन्धर्वगीयमानाञ्च सदानन्दमयीं पराम् । अष्ट-
सिद्धिप्रदां नित्यां भक्तानन्दविवर्द्धिनीम् । एवं ध्यात्वा पकारन्तु
तन्मन्त्रं दशधा जपेत् । त्रिशक्तिसहितं वर्णमात्मादितत्त्व-
संयुतम् । प्रणम्य सततं देवि ! हृदि भावय सुन्दरि ! ॥ ष ॥
करोषभूषिताङ्गीञ्च सादृहासां दिगम्बरौम् । अस्थिमात्स्यमष्ट-
भुजां वरदामम्बुजक्षणां । नागेन्द्रहारभूषाढ्यां जटासुकुट-
मण्डिताम् । सर्वसिद्धिप्रदां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदाम् । एवं
ध्यात्वा सकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥ स ॥ चतुर्भुजां रक्त-
वर्णां शुक्ताम्बरविभूषिताम् । रक्तालङ्कारसंयुक्तां वरदां पद्म-
लोचनाम् । ईषडास्यमुखीं लोलां रक्तचन्दनचर्चिताम् । स्याहा-
चीञ्च चतुर्वर्गप्रदां सौम्यां मनोहराम् । गन्धर्वसिद्धदेवाद्यैर्ध्याता-
माद्यां सुरेश्वरीम् । एवं ध्यात्वा हकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा
जपेत् ॥ ह ॥ तन्मन्त्रपुटितं कृत्वा मूलमन्त्रं ततो जपेत् ॥
इति सर्ववर्णेषु ज्ञेयम् । अन्यथा निष्फलं ज्ञेयं जपपूजादि-
साधनम् । दीक्षा च निष्फला ज्ञेया तस्मात् कुर्यात् प्रयत्नतः ।
कृत्वा जपं प्रकुर्वीत यथोक्तफलमाप्नुयात् । शैवे शाक्ते वैष्णवे च
सर्वतन्त्रेष्वयं विधिः । तन्मन्त्रपुटितं मन्त्रं दशधा दशधा जपेत् ।
दीक्षादौ गुरुणा साङ्गं कर्तव्यं मन्त्रशोधनम् । अन्यथा निष्फला
दीक्षा जपपूजादिकञ्च यत् । सद्गुरुः संयतो नित्यं ध्यात्वा-
भ्यर्च्य जपादिकम् । गुरुचैतन्यमात्रेण चैतन्यं जनयेत्ततः । संस्का-
रञ्च शोधनञ्च सागमेन विशेषतः । तन्मन्त्रपुटितं कृत्वा शत-
मष्टोत्तरं जपेत् । दीक्षादौ गुरुणा पूर्वं कर्तव्योऽयं क्रमः सदा ।
पञ्चाशद्वर्णमनुना पुटिता मनवः प्रिये ! । चतुर्वर्गप्रदाः शान्ता
यथोक्तफलदाः सदा । अन्यथा निष्फला दीक्षा जपपूजादिसाध-
नम् । विधिनानेन हीना या सा दीक्षा निष्फला भवेत् । इह
दारिद्र्यमनुलमन्त्रे च निरयं व्रजेत् । दीक्षादौ गुरुकर्तव्यक्रम

एव प्रयत्नतः । आद्यावसाने वर्षेन पुटितं प्रजपेन्मनुम् । शिष्यः
प्रयत्नतो नित्यं कुर्यादेतं क्लृप्तं प्रिये ।। पूजादौ वा जपादौ
वा अन्यथा विफलं भवेत् ॥ इति वर्षानां ध्यानम् ॥

एतेषां मन्त्रस्तु ॐ अकाराय नम इत्यादि द्रष्टव्यम् ॥ पञ्चदे-
वादिवर्णान्तपूजानां सर्वत्रोपयोगित्वेनादौ लिखितं सामान्यार्घ्य-
स्थापनमन्तरमेव कर्तव्यम् । शारदायां चतुर्थपटले ॥ आचम्य
विधिना तत्र सामान्यार्घ्यं विधाय च । द्वारमन्त्राभ्युभिः प्रोक्ष्य
द्वारपूजां समाचरेत् । सामान्यार्घ्यस्थापनस्तु मण्डपद्वार्येव ।
द्वारपूजा तु अर्थकाण्डेऽनुसन्धेया ॥ सूद्रजामले पूर्वखण्डे द्वितीय-
पटले ॥ मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द उच्यते । कूर्मा देवता-
सनयोगे विनियोगः प्रकीर्तितः । मायावीजं समुच्चार्य कूर्मा-
सनाय ते नमः । पार्श्वघातत्रयेणैव वारयेद्भूमिविघ्नकान् । ताल-
त्रयेणान्तरीक्षान् तथा विघ्नान्नवारयेत् ॥ पिच्छिलातन्त्रे पञ्चम-
पटले ॥ सौरे मासौल्यादि प्रागुक्तम् ॥ विश्वसारं ॥ क्षेत्राधिपं
क्षेत्रपालं गृहदेवीं ततः परम् । गन्धपुष्पी धूपदीपौ नैवेद्यञ्च
निवेदयेत् । एषां पूजां विलङ्घ्याथ नाचयेद्देवतान्तरम् ॥ शार-
दायाम् ॥ पञ्चगव्याध्यं तोयाभ्यां प्रोक्षयेद्युगमण्डपम् । चतु-
ष्पथान्तं तच्छुद्धिं विदध्याद्दीक्षणादिभिः । वीक्षणं मूलमन्त्रेण
शरेण प्रोक्षणं मतम् । तेनैव ताडनं दर्भवर्मणाभ्युक्षणं मतम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरैर्धूपयेदन्तरं सुधीः । विकिरान् विकिरेत्तत्र
सप्तजप्ताच्छराणुना । लाजचन्दनसिद्धार्थमस्मदूर्वाकुशाक्षताः ।
विकिरा इति सन्दिष्टाः सर्वे विघ्नौघनाशनाः । सोमशम्भोस्तु
विशेषो राघवभट्टवृत्तो यथा । विकिरान् शुद्धलाजान् वा सप्त-
मन्त्राभिमन्त्रितान् । अस्त्राङ्गिः प्रोक्षितानेतान् कवचेनावगु-
ण्ठितान् । नानाप्रहरणाकारान् विघ्नौघविनिवारकान् । अस्त्र-
जप्तेन दर्भाणां मुष्टिमामार्जयेच्च तत् । ईशस्य दिशि बन्धन्या

आसनाय प्रकल्पयेत् । पुण्याहं वाचयित्वा तु ब्राह्मणानुपवेश्य
च । उक्तेषु मण्डलैश्वेकं वेदिकायां समालिखेत् । विशेष्टासने
मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः । बद्धपद्मासनो मौनी समाहितो
जितेन्द्रियः । ऋजुकायो जितेन्द्रिय इति मेरुतन्त्रे पाठः ॥ मङ्ग-
लाङ्गुरपात्राणि स्थापयेद्दिक्षु देशिकः । मङ्गलरूपाणि यान्यङ्गुर-
पात्राणि उक्तास्तथा उक्तानि तानि दिक्षु स्थापयेदित्यर्थः । कृता-
ञ्जलिपुटी भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः । नत्वा गुरुं गणेशानं
भूतशुद्धिं समाचरेत् । करशुद्धिं समापाद्य कुर्यात्तालत्रयं ततः ।
ऊर्ध्वोर्ध्वमन्त्रमन्त्रेण दिग्बन्धमपि देशिकः । तेन सोऽञ्जलितस्तेजो-
रक्षां कुर्यात् समन्ततः । ऋषिश्छन्दो दैवतानि न्यसेग्मन्त्रस्य
मन्त्रवित् । आत्मनो मूर्ध्नि वदने हृदये च यथाक्रमम् ॥ प्रपञ्च-
सारेऽष्टमपटले ॥ ऋषिर्गुरत्वाच्छिरसैव धार्यश्छन्दोऽक्षरत्वादस-
नागतं स्यात् । धियावगन्तव्यतया सदैव हृदि प्रविष्टा मनुदेवता
च । विधाय मूलमन्त्रेण प्राणायामं यथाविधि । विदध्यान्मा-
तृकान्यासं मन्त्रन्यासमतः परम् । अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु न्यसेदङ्गैः
सजातिभिः । अस्त्रं तत्तालयोर्न्यस्य कुर्यात्तालत्रयादिकम् ।
दिशस्तेनैव बध्नीयाच्छोटीकाभिः समाहितः । हृदादिषु च
विन्यसेदङ्गमन्त्रैस्ततः सुधीः । हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वङ्गि-
वल्गभा । शिखायै वषडित्युक्ता कवचाय हुमौरितम् । नेत्रत्रयाय
वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात् । षडङ्गमन्त्रानित्युक्तान् षड-
ङ्गेषु नियोजयेत् । अंशोरुगुग्मयोर्विद्वान् प्रादक्षिण्येन देशिकः ।
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यं न्यस्य तु क्रमात् । मुखपार्श्वनाभि-
पार्श्वेष्वधर्मादीन् प्रकल्पयेत् । धर्मादयः स्मृताः पादाः पीठ-
गात्राणि चापरे । अनन्तं हृदये पद्ममस्मिन् सूर्येन्दुपावकान् ।
एषु स्वस्वकला न्यसेन्नामाद्याक्षरपूर्वकान् । सत्त्वादींस्त्रीन् गुणान्
न्यसेत्तथैवाह गुरुत्तमः । आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमव

तु । ज्ञानात्मानं प्रविच्य न्यसेत् पीठमनु ततः एवं देहमये
 पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम् । मुद्रां प्रदर्श्य विधिवदर्थं स्थापनमा-
 चरेत् । शङ्खमन्त्रांशुना प्रोक्ष्य वामतो वज्रिमण्डले । साधारं
 स्थापयेद्विद्वान् विन्दुसुतसुधामयैः । तोयैः सुगन्धिपुष्पाद्यैः
 पूजयेत्तं यथाविधि । आधारं पावकं शङ्खं सूर्यं तोयं निशाक-
 रम् । स्मरेद्गङ्गाकचन्द्राणां कलास्तास्तेष्वनुक्रमात् । कलास्तु
 प्रथमकाण्डे निरूपिताः । मूलमन्त्रं जपेत् स्पृष्ट्वा न्यासे त-
 स्थाङ्गमन्त्रवित् । हृन्मन्त्रेणाभिसम्पृष्य हस्ताभ्यां हृदयक्षपः ।
 जपेद्विद्वान् यथान्यायं देशिको देवताधिया । अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य
 कवचेनावगुण्ठय च । धेनुमुद्रां समापाद्य बोधयेत् स्वस्वमु-
 द्रया । दक्षिणे प्रोक्षणीपात्रमाधायान्निः प्रपूरयेत् । किञ्चि-
 दर्थ्यांशु संगृह्य प्रोक्ष्यन्मसि योजयेत् । अर्घ्यं स्योत्तरतः
 कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् । आत्मानं यागवस्तूनि मण्डलं
 प्रोक्षयेद्गुरुः । प्रोक्षणीपात्रतोयेन मनुनान्यदपि क्रमात् ।
 न्यासक्रमेण देहे स्वे धर्मादीन् पूजयेत्ततः । पुष्पाद्यैः पीठमन्त्रन्तं
 तस्मिंश्च परदेवताम् । पञ्चकृत्वः पुनः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिमन-
 न्यधीः । उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गके क्रमात् । विना नैवेद्यं
 गन्धाद्यैरुपचारैः समर्चयेत् । गुरुपदिष्टविधिना शेषमन्यत्
 समापयेत् । सर्वमेतत् प्रयुञ्जीत प्रोक्षणीस्थेन वारिणा । विमृज्य
 तोयं प्रोक्षणाः पूरयेत्तत् यथापुरा । ततस्तन्मण्डलं मन्त्री
 गन्धाद्यैः साधु पूजयेत् । शालिभिः कर्णिकामध्यमापूर्य्योपरि
 तण्डुलैः । अलङ्कृत्य पुनस्तेषु दर्भानास्तीर्थं मन्त्रवित् । कूर्च-
 मक्षतसंयुक्तं न्यसेत्तेषामथोपरि ॥ मेरुतन्त्रे चतुर्थप्रकाशेऽपि ॥
 पूरयेत् कर्णिकां पूर्वं शालिभिस्तण्डुलैस्ततः । दर्भान्यसेदुपस्थितां
 साक्षतं कूर्चकं ततः । छिन्नमूलाः कुशा दीर्घाः सप्तविंशति-
 शङ्खकाः । ब्रह्मग्रन्थियुतास्त्वग्रदेशे कूर्चं दहोच्यते । आधार-

शक्तिमारभ्य पीठमन्त्रमयं यजेत् । अधः कूर्चशिलारुढं शर-
च्चन्द्रनिभप्रभाम् । आधारशक्तिं प्रयजेत् पङ्कजद्वयधारिणीम् ।
सूर्ध्वं तस्याः समासीनं कूर्मं नीलाभमर्चयेत् । ऊर्ध्वं ब्रह्म शिला-
सीनमनन्तं कुन्दसन्निभम् । यजेच्चक्रधरं सूर्ध्वं धारयन्तं वसु-
न्धराम् । तमालश्यामलां तत्र नीलेन्द्रीवरधारिणीम् । सम-
र्चयेद्वसुमतीं स्फुरत्सागरमेखलाम् । तस्यां रत्नमयं द्वीपं
तस्मिंश्च मणिमण्डपम् । यजेत् कल्पतरुं तस्मिन् साधकाभीष्ट-
सिद्धिदम् । अधस्तात् पूजयेत्तस्य वेदिकां मण्डलोज्ज्वलाम् ।
पश्चादभ्यर्चयेत्तस्यां पीठं धर्मादिभिः पुनः । रक्तश्यामहरिदेन्द्री-
लाभान् पादरूपिणः । वृषकीशविभूतेन्द्ररूपान् धर्मादिकान्
यजेत् । गात्रेषु पूजयेत्तांस्तु वज्रपूर्वानुक्तलक्षणान् । आग्ने-
यादिषु कोणेषु दिक्षु मध्येऽम्बुजं यजेत् । आनन्दकन्दं प्रथमं
संविन्नालमनन्तरम् । सर्वतत्त्वात्मकं पद्ममभ्यर्च्य तदनन्तरम् ।
मन्त्री प्रकृतिपत्राणि विकारमयकेशरान् । पञ्चाशद्वर्णवैजात्य-
कर्णिकां पूजयेत्ततः । कलाभिः पूजयेत् सार्द्धं तस्यां सूर्येन्दु-
पावकान् । प्रणवस्य त्रिभिर्भागैश्च सत्त्वादिकान् गुणान् । आत्मा-
नमन्तरात्मानं परमात्मानमर्चयेत् । ज्ञानात्मानञ्च विधिवत्
पीठमन्त्रावसानकम् । पीठशक्तीः केशरेषु मध्ये च सवराभयाः ।
ह्रिमादिरचितं कुम्भं मन्त्राङ्गिः क्षालितान्तरम् ॥ चन्दनागुरु-
कर्पूरधूपितं शोभनाकृतिम् । आवेष्टिताङ्गं नीरन्ध्रं तन्तुना
त्रिगुणात्मना । अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैः कूर्चाक्षतसमन्वितम् । नव-
रत्नोदरं मन्त्री स्थापयेत्तारमुच्चरन् । ऐक्यं सङ्कल्प्य कुम्भस्य
पीठस्य च विधानवित् । क्षीरद्रुमकषायेण पलाशत्वग्भवेन वा ।
तीर्थोदकैर्वा कर्पूरगन्धपुष्पसुवासितैः । आत्मभेदेन विधिवत्
मातृकां प्रतिलोमतः । जपेन्मूलमनुं तद्वत् पूजयेद्देवताधिदा ।
शङ्खे काथाम्बुसम्पूर्णं गन्धाष्टकमभीष्टदम् । विलोच्य पूजयेत्तस्मि-

द्वावाह्य सकलाः कलाः । दश वङ्गेः कलाः पूर्वं द्वादश द्वादशा-
 त्मनः । षोडशापि च सोमस्य पञ्चात्यञ्चशतं कलाः । जपित्वा
 प्रतिलोमेन मूलमन्त्रञ्च मन्त्रवित् । समाहितेन मनसा ध्यायन्
 मन्त्रस्य देवताम् । प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तत्र तत्र विचक्षणः ।
 कलात्मकं शङ्खसंख्यं क्वाथं कुम्भे विनिक्षिपेत् । पाशादित्तरक्ष-
 रात्मान्ते स्यादमुष्य पदं पुनः । क्रमात् प्राणा इह प्राणास्तथा
 जीव इह स्थितः । अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि भूयोऽमुष्य पदं वदेत् ।
 वाङ्मनोनयनश्चोत्रघ्राणप्राणपदान्यथ । पश्चादिहागत्य सुखं चिरं
 तिष्ठन्तु ठदयम् । अयं प्राणमनुः प्रोक्तः सर्वजीवप्रदायकः । पश्चा-
 दश्चत्यपनसचूतकोमलपल्लवैः । इन्द्रवल्लीसमावद्धैः सुरद्रुमधिया
 गुरुः । कुम्भवक्त्रं पिधायास्त्रिंश्वपकं सकलीकृतम् । संस्थापयेत्
 फलधिया विधिवत् कल्पशाखिनाम् । ततः कुम्भं निर्मलेन
 क्षौमयुग्मेन वेष्टयेत् । मूलमन्त्रं समुच्चार्य सुषुम्नावर्त्मना सुधीः ।
 संस्थापनं सन्निधानं सन्निबोधमनन्तरम् । सकलीकरणं पश्चादि-
 दध्यादवगुण्ठनम् । अमृतीकरणं कृत्वा कुर्वीत परमौकतिम् ।
 क्रमादेतानि कुर्वीत स्वमुद्राभिः समाहितः । अथोपचारान् कु-
 र्वीत मन्त्रवित् स्वागतादिकान् । स्वागतं कुशलप्रश्नं निगदेद-
 यतो गुरुः । पाथं पादाम्बुजे दद्याद्देवस्य हृदयात्मना । हृद-
 यात्मना नम इति मन्त्रेण । अर्घ्यं दिशेत्ततो मूर्ध्नि शिरोमन्त्रेण
 देशिकः । स्वधामन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् । स्वधात्मना
 ततः कुर्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे । तेनैव मनुना दद्यादङ्गिराचम-
 नीयकम् । गन्धाङ्गिः कारयेत् स्नानं वाससी परिधापयेत् ।
 दद्याद्यज्ञोपवीतञ्च हाराद्याभरणैः सह । न्यासक्रमेण मनुना
 मुटितैर्मातृकाक्षरैः । अभ्यर्च्य देवं गन्धाद्यैरङ्गादीन् पूजयेत्ततः ।
 तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरा । अङ्गानि लोकपालान्तं
 यजेदावरणान्यपि । केशरत्नग्निकोणादि हृदयादीनि पूज-

येत् । षडङ्गपूजादिक्रमस्तु गन्धर्वतन्त्रे चतुर्थपटले ॥ अग्नी-
 शासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च पार्वति ।। षडङ्गयुवतीः पश्चात्
 पूजयित्वा विधानतः । नेत्रमग्रे दिशं वस्त्रं ध्यातव्यान्वद्देवताः ।
 तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणाश्चिषः । वरदाभयधारिण्यः
 प्रधानतो वरस्त्रियः । पश्चादभ्यर्चनीयाः स्युः कल्पोक्तावृषयः
 क्रमात् । अन्ते यजेन्नोक्तपालान् मूलपारिषदान्वितान् । हेति-
 जात्यधिपोषेतान् दिक्षु पूर्वादितः क्रमात् । एवं सम्पूज्य विधि-
 वन्नैवेद्यान्तं ततो गुरुः । दक्षिणे स्थण्डिलं कृत्वा तन्नाधाय हुता-
 शनम् । संस्तुत्य विधिवद्विद्वान् वैश्वदेवमखं चरेत् । तत्र स-
 म्पूज्य गन्धार्द्यैर्देवतामुक्तविग्रहाम् । तारस्य व्याहृतिं हत्वा मूल-
 मन्त्रेण मन्त्रवित् । सर्पिष्मता पायसेन पञ्चविंशतिसंख्यया ।
 हुत्वा व्याहृतिभिर्मूयो गन्धार्द्यैः पुनरर्चयेत् । संयोजयित्वा पीठस्थ-
 मूर्तौ वक्त्रं विसर्जयेत् । अवशिष्टेन हविषा विकिरेत् परितो
 बलिम् । देवतायाः पार्श्वेभ्यो गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् । ततो
 निवेद्यमुद्धृत्य शोधयित्वा स्थलं पुनः । पञ्चोपचारैः सम्पूज्य दर्श-
 येच्छत्रचामरे । कर्पूरशकलौष्मिञ्च ताम्बूलञ्च निवेदयेत् । सह-
 स्रावृत्य सञ्जप्य मूलमन्त्रमनन्वधीः । तज्जप्तं सर्वसम्पत्तये देवतायै
 निवेदयेत् । ततः शम्भोर्दिशि गुरुविकिरेत् पूर्वसञ्चिते । हेम-
 वस्त्रादिमंयुक्तां घर्घरीं तोयपूरिताम् । संस्थाप्य तस्यां सिंहस्यां
 खड्गखेटकधारिणीम् । घोररूपां पञ्चिमास्यां पूजयेदस्त्रदेवताम् ।
 चलासनेन सम्पूज्य तामादाय गुरुः पुनः । रक्षेति लोकापालानां
 नालमुक्तेन वारिणा । देवान्नां श्रावयन्नन्तः परिहृत्ते प्रदक्षिणम् ।
 अस्त्रमन्त्रं समुच्चार्य यथापूर्वं निवेशयेत् । विलोक्य दिव्यदृष्ट्या तं
 तच्चैतन्यं हृदयजुजात् । गुरुरालनि संयोज्य कुर्यादध्वविशोधनम् ।
 तं शिष्यम् । उक्तं कलाध्वा तत्त्वाध्वा भुवनाध्वेति च त्रयम् ।
 वर्णाध्वा च पदाध्वा च मन्त्राध्वेत्यपरत्रयम् । निवृत्त्याद्याः कलाः

पञ्च कलाध्वेति प्रकीर्तितम् । तत्त्वाध्वा बहुधा भिन्नः शैवाद्या-
 गमभेदतः । षट्त्रिंशच्छैवतत्त्वानि द्वात्रिंशद्वैष्णवानि तु । चतु-
 र्विंशतितत्त्वानि मैत्राणि प्रकृतेः पुनः । उक्तानि दश तत्त्वानि सप्त
 च त्रिपदात्मनः । तत्त्वानि शैवान्युच्यन्ते शिवः शक्तिः सदा-
 शिवः । ईश्वरो विद्यया साङ्गं पञ्च शुद्धान्यमूनि तु । माया
 कालश्च नियतिः कालविद्या पुनः स्मृता । रागः पुरुष एतानि
 शुद्धाशुद्धानि सप्त च । प्रकृतिर्बुद्धाहङ्कारौ मनो ज्ञानेन्द्रिया-
 ण्यथ । कर्मेन्द्रियाणि तन्मात्राः पञ्च भूतानि देशिकाः । एता-
 न्याहुरशुद्धानि चतुर्विंशतिमागमे । शैवानामिति तत्त्वानां
 विभागोऽत्र प्रदर्शितः । जौवः प्राणो धियश्चित्तं ज्ञानकर्मेन्द्रिया-
 ण्यथ । तन्मात्राः पञ्च भूतानि हृत्पद्मं तेजसां त्रयम् । वासु-
 देवादयश्चेति तत्त्वान्येतानि शार्ङ्गिणः । पञ्च भूतानि तन्मात्रा
 इन्द्रियाणि मनस्तथा । गर्वो बुद्धिः प्रधानञ्च मैत्राणीति विदुर्बुधाः ।
 निवृत्ताद्याः कलाः पञ्च ततो विन्दुः कलाः पुनः । नादः शक्तिः
 सदापूर्वः शिवश्च प्रकृतिर्विदुः । आत्मविद्या शिवः पञ्चाच्छिवो
 विद्यात्मना पुनः । सर्वतत्त्वञ्च तत्त्वानि प्रोक्तानि त्रिपदात्मनः ।
 तत्त्वाध्वा कथितो ह्येवं तत्तदागमवेदिभिः । ईरितो भुवनाध्वेति
 भुवनानि मनीषिभिः । वर्णाध्वेति वदन्यवर्णानादीचान्तात्मनी-
 षिणः । वर्णसङ्घः पदाध्वा स्थान्यन्त्राध्वा मन्त्रराशयः । क्रमा-
 देतानध्वनः षट् शोधयेद्गुरुसत्तमः । पदान्युनाभ्युहञ्जालमूर्ध्व-
 स्वपि शिशोः स्मरेत् ॥ अभ्युर्गुदस्थानम् ॥ तत्र कृच्छ्रेण विधि-
 वत्तत् सृशन् जुहुयाद्गुरुः । आचार्य्यकुण्डे संशुद्धैस्त्रिलैराज्य-
 परिप्लुतैः । शोधयाम्यमुमध्वानं स्वाहेति पृथगध्वनाम् । ताराद्या-
 माहुतीरष्टौ क्रमात्तान् विलयं नयेत् । शिवे शिवात्तान्
 संलीनान् जनयेत् सृष्टिमार्गतः । विलोकयन् दिव्यदृष्ट्या । तत्
 स्थितं तच्च चैतन्यं पुनः शिष्ये नियोजयेत् । सुचा पूर्णाहुतिं

॥ १ ॥

दत्त्वा मूलमन्त्रेण देशिकः । नेत्रे शिष्यस्य बध्नीयान्नेत्रमन्त्रेण
वाससा । करे गृहीत्वा तत् शिष्यं कुण्डतो मण्डलं नयेत् ।
तस्याञ्जलिं पुनः पुष्पैः पूरयित्वा यथाविधि । कलसे देवता-
प्रौढ्ये क्षेपयेन्मूलमुच्चरन् । व्यपोह्य तं नेत्रबन्धमासीनं दर्भसं-
स्तरे । आत्मयागक्रमाद्वयः संहृत्योत्पाद्य देशिकः । तत्त-
न्मन्त्रोदिताद्यासान् कुर्याद्देहे शिशोस्तदा । पञ्चोपचारैः
कुम्भस्थां पूजयित्वेष्टदेवताम् । तस्य तन्त्रोक्तमार्गेण विदध्यात्
सकलीकृतिम् । मण्डलेऽलङ्कृते शिष्यमन्यस्मिन्नुपवेशयेत् ।
नदत्सु पञ्चवाद्येषु सार्धं विप्राशिषा गुरुः । विधिवत् कुम्भ-
मुद्धृत्य तन्मुखस्थान् सुरदुमान् । शिशोः शिरसि विन्यस्य मातृकां
मनसा जपन् । मूलेन साधितैस्तोयैः सिञ्चेदक्षार्थमञ्जसा ॥

अथाभिषेकविधिः ॥ वामकेश्वरतन्त्रे पञ्चाशत्पटले ॥ अभि-
षेकस्तु द्विविधः शाक्ताश्च पूर्ण एव च । अवधूतेन गुरुणा शाक्ता-
भिषेकमाचरेत् । किञ्चिज्जलञ्च कुम्भानां ब्रह्मकुम्भे निवेशयेत् ।
आनीय ब्रह्मकलसं सम्मुखे स्थापयेद्बुधः । निरुत्तरतन्त्रे सप्तम-
पटले ॥ श्रीशिव उवाच ॥ अभिषेकश्च द्विविधो राज्ञो वा ज्ञा-
निनामपि । राजाभिषेके देवेशि ! वैदिकीञ्च क्रियाञ्चरेत् । ज्ञा-
निनामभिषेकस्तु सर्वतन्त्रेषु गोपितम् । सर्वशान्तिकरं पुण्यं
सर्वरोगनिवारणम् । धनदं कीर्त्तिदञ्चैव आयुर्वृद्धिकरं नृणाम् ।
सर्वसौभाग्यजननं महापातकनाशनम् । सर्वाशापूरकं सर्वमन्त्र-
दोषनिवारणम् । सर्वार्थसाधकं देवि ! सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
अभिचारहरं सर्वग्रहदोषविनाशकम् । भूताविशादिशमनं
डाकिनीनां भयापहम् । तेजोवृद्धिकरं देवि ! बलवृद्धिकरं
परम् । तत्तत्केणापि दष्टस्य विषपीडाविनाशकम् । तेजोह्रासे
बलह्रासे बुद्धिह्रासे धनक्षये । स्त्रीकृतेष्वपि दोषेषु शरीरे मानसे
तथा । विकारे देशिकः कुर्यादभिषेकं विचक्षणः । असीभाग्ये

च नारीणामभिषेकः प्रवर्तते । गुरुत्वञ्च लभेद्देवि ! कर्मणा-
 भिषेकवर्त्मना । वैष्णवो ज्ञानसम्पन्नः शैवश्चैव कुलेश्वरि ! ।
 अभिषेकं प्रकुर्वीत शाक्तश्च कुलभूषणः । मन्त्रतन्त्रञ्च सर्वेषामभि-
 षेकेण सिध्यति । अभिषेकेण सर्वेषामधिकारो भवेद्भुवम् ।
 अभिषेककृतो विप्रो ब्रह्मत्वं लभते भुवम् । अभिषेककृतः क्षत्री
 विप्रधर्मत्वमागतः । वैश्यः क्षत्रियतां याति शूद्रो वैश्यत्वमागतः ।
 अभिषेकेण सर्वेषां चतुर्णां वर्णतां त्यजेत् । ब्राह्मणस्य सुरापाने
 ब्राह्मण्यं त्यजते क्षणात् । अभिषेककृते विप्रे सुरापानं विधीयते ।
 आगमः पञ्चमो वेदः कौलश्च पञ्चमाश्रमः । शिवोऽपि पञ्चमो
 वर्णो महाविद्यां जपेदयतः । स्वस्ववर्णं परित्यज्य शिवत्वञ्च
 प्रजायते । अभिषेकं विना नैव ब्राह्मणः प्रपिबेत् सुराम् ।
 प्रगृह्य सिद्धविद्याञ्च सङ्केतज्ञस्ततो भवेत् । सङ्केतज्ञः कुला-
 चारे त्वभिषेकं समाचरेत् । अभिषेककृतो मन्त्री कुलपूजां
 समाचरेत् । कुलपूजाकृतो मन्त्री पिढभूमिं ततो व्रजेत् ।
 पिढभूमिस्ततः स्थानमेकाकी विहरेत्तदा । एकाकी विहरेद्दीरः
 प्रान्ते रात्रिप्रान्तरे । तत्र सिद्धिं लभेद्देवि ! देवानामपि दुर्लभम् ।
 कुलाचारं विना देवि ! मन्त्रतन्त्रं न सिध्यति । सिद्धविद्या
 कुलाचारे द्रव्यं सिध्यति निश्चितम् । अभिषेकसुरां दद्याद्
 कुलकर्म युगे युगे । सुरां पीत्वा जपेद्द्विद्यां कालाधिपविशेषतः ।
 विजयाञ्चानुकल्पञ्च सुराभावे निवेदयेत् । आनन्देन विना मंशो
 न च दृष्यन्ति देवताः । पञ्चमेनाचयेत् कालीं कामाख्यायां
 विशेषतः । कामाख्यायां विशेषेण कालिका सिद्धिदा भवेत् ।
 कुलाचारं विना नैव कालीमन्त्रश्च सिध्यति । अभिषेकं विना
 देवि ! कुलकर्म करोति यः । तस्य पूजादिकं कर्म अभिचाराय
 कल्पते । अभिषेकं विना देवि ! सिद्धविद्यां ददाति यः ।
 तावत्कालं वसेद्दीरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ब्रह्मत्वञ्च हरित्वञ्च

शिवत्वञ्च कुलेश्वरि ! । सर्वसिद्धीश्वरत्वञ्च अभिषेकेण जायते ।
 दिव्यो वीरश्च देवेशि ! कुलभक्तिपरायणः । अभिषेकञ्चरेद्देवि !
 अधिवासपुरःसरम् । वृद्धिश्चाहं ततः कृत्वा शिवशक्तीः प्रपूजयेत् ।
 गुरुं सम्पूज्य विधिवत् स्वर्णालङ्कारभूषणैः । ततः सङ्कल्प्य वि-
 धिना गुरुणा वरणं चरेत् । ततः पूजां चरेद्देव्याः पञ्चमैश्च
 पृथक् पृथक् । प्रणम्य सदगुरुं देवं देवीञ्च साधकेश्वरः । गुरु-
 पूजां विधायाथ देव्या ध्यानपरायणः । अभिषेकं विधायाथ
 शुचौ देशे च साधकः । शून्यागारे नदीतीरे वित्त्वमूले त्रिपा-
 न्तरे । महात्रिपान्तरे वापि निर्जने पितृकानने । ग्रामे पला-
 तके वापि पर्वते तटिनीतटे । देवतायतने वापि स्थानञ्च परि-
 चिन्तयेत् ॥ अष्टमपटले ॥ शिवशक्तिं पूजयित्वा स्थापयेद्वट-
 मुत्तमम् । नातिदृक् न नातिदीर्घं स्वर्णरौप्यविनिर्मितम् । विशे-
 षार्घ्यं स्वयन्त्रे वा त्रिकोणे वापि विन्यसेत् । गङ्गाद्याः सरितः
 सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च । सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा
 नदाः । ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वःपातालमहीगताः । सर्व-
 तीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्ति सन्निधिम् । श्रीवीजेन प्रजप्तेन
 पञ्चवं प्रतिपादयेत् । कूर्चेन फलदानं स्यात् स्त्रीवीजेन स्थिरा-
 कृतिः । सिन्दूरं वङ्गिवीजेन पुष्पं प्रेतेन विन्यसेत् । मूलेन
 दूर्वां प्रणवैः कुर्यादभ्युक्षणं ततः । हुं फट् स्वाहंति मन्त्रेण
 कुर्याद्दर्भेण ताडनम् । विचिन्त्य देवि ! पीठन्तु तत्रावाह्य प्रपू-
 जयेत् । अनेनैव विधानेन सर्वकर्मसु सुन्दरि ! । घटं संस्थाप-
 येद्देवि ! षट्कर्मसु विशेषतः । महापूजाञ्चरेद्देवि ! षोडशै-
 रुपचारकैः । गुरुणाञ्च महापूजां शक्तीनाञ्च ततः परम् । तत्-
 पश्चात् साधकानाञ्च कुमारीणाञ्च पूजनम् । कुमारीभ्यो वलिं
 दत्त्वा कुलजाभ्यो विशेषतः । अभिषेकं ततो देवि ! कुर्यात्
 स्वगुरुमार्गतः । स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्रप्रोच्चारणेन च । चाल-

येत्तं घटं मन्त्री मन्त्रेणानेन देशिकः । ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मकलस !
 देवताभौष्टसिद्धिदः । सर्वतीर्थास्तु पूरणेन पूरयास्य मनोरथम् ।
 ईशानेन्दुस्मरन्नीषी तदन्ते भुवनेश्वरी । मन्त्रेणानेन वादित-
 निर्घोषैश्चालयेद्वटम् । अभिषिञ्चेद्गुरुः शिष्यं यजमानं पुरो-
 हितः । सिञ्चेदश्वत्थवृक्षोत्थैः पल्लवैर्मृतसङ्गमे । सिञ्चेद्दीडुम्बरै-
 र्मन्त्रदोषे च करवीरजैः । यशोधनायुस्त्रेजः श्रीफलकामेन चू-
 तजैः । तुलसीमञ्जरीभिश्च सर्वपापक्षयार्थिभिः । सर्वतीर्थ-
 फलावाप्त्यै शाक्तानां विल्वपल्लवैः । अभिचारं नारसिंहैरभिषेकः
 प्रवर्तते ॥ नारसिंहं चुनियाहागडा इति यस्य प्रसिद्धिः ॥ कुर्या-
 द्दर्भैरगर्भैश्च दोषेषु स्त्रीकृतैश्चपि । असौभाग्ये च नारोणां दूर्वा-
 भिरभिषेचनम् । सर्वकार्येषु मन्त्राणां सिद्ध्यर्थं चूतपल्लवैः ।
 तस्याभिषेकमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्नृत्तिर्नृत्तिरनुष्टुप्कन्दः शक्तिर्देवता
 सङ्कल्पसिद्धिप्राप्तये विनियोगः ॥ ॐ राजराजेश्वरी देवी भैरवी
 कालभैरवी । श्मशानभैरवी देवी त्रिपुरानन्दभैरवी । त्रिकूटा
 त्रिपुरा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी । त्रिपुरेशी महादेवी तथा त्रि-
 पुरकारिका । त्रिपुरानन्दिनी देवी तथैव त्रिपुरातनी । एता-
 स्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ १ ॥ छिन्नमस्ता महा-
 देवी तथा चैकजटेश्वरी । तारा च जयदुर्गा च शूलिनी भुवने-
 श्वरी । त्वरितास्या महादेवी तथैव च त्रिखण्डिका । नित्या
 च नित्यरूपा च वज्रप्रस्तरिणी तथा । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु
 मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ २ ॥ अश्वारूढा महेशानी तथा महिष-
 मर्दिनी । दुर्गा च वनदुर्गा च श्रीदुर्गा भगमालिनी । तथा
 भगन्दरी देवी भगल्लिङ्गा तथापरा । सर्वचक्रेश्वरी देवी तथा
 नीलसरस्वती । सर्वसिद्धिकरी देवी सर्वगन्धर्वसविता । उग्र-
 तारा महादेवी तथा दक्षिणकालिका ॥ एतास्त्वामित्यादि ॥ ३ ॥
 क्षेमङ्करी महाकाली चानिरुद्धसरस्वती । मातङ्गिनी चान्नपर्णा

राजराजेश्वरी तथा ॥ एतास्त्वामित्यादि ॥ ४ ॥ उग्रचण्डा प्र-
चण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका । चण्डा चण्डवती चैव चण्ड-
रूपातिचण्डिका । एतास्त्वामित्यादि ॥ ५ ॥ उग्रदंष्ट्रा महादंष्ट्रा
शुभदंष्ट्रा कपालिनी । भीमनेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया
जया ॥ एतास्त्वामित्यादि ॥ ६ ॥ मङ्गला नन्दिनी भद्रा कीर्त्तिर्ल-
क्ष्मीर्यशस्विनी । पुष्टिर्मेधा शिवा साध्वी यशः शोभा जया धृतिः ।
श्रीनन्दा च सुनन्दा च नन्दिन्या नन्दपूजिता ॥ एतास्त्वामि-
त्यादि ॥ ७ ॥ विजया नन्दिनी भद्रा स्मृतिः शान्तिर्धृतिः क्षमा ।
सिद्धिस्तुष्टीरमा पुष्टिः श्रीर्हृद्विष्य रतिस्तथा । दीप्तिः कान्तिर्यशो
लक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च । शक्रा मायावती ब्राह्मी जयन्ती
चापराजिता । अजिता मानवी श्वेता दितिश्चादितिरेव
च । माया चैव महामाया मोहिनी क्षोभिणी तथा । कमला
धिमला गौरी शरण्याम्बुधिसुन्दरी । दुर्गा क्रियारम्भती च
घण्टाकर्णा कपालिनी । रौद्री काली च मायूरी त्रिनेत्रा
चापराजिता । स्वरूपा बहुरूपा च तथैव विग्रहात्मिका ।
चर्चिका चापरा ज्येष्ठा तथैव सुरपूजिता । वैवस्वती च
कौमारी तारा माहेश्वरी परा । वैष्णवी च महालक्ष्मीः
कार्तिकी कौषिकी तथा । शिवदूती च चासुख्ता सुख-
मालाविभूषिता ॥ एतास्त्वामित्यादि ॥ ८ ॥ इन्द्रो वज्रिर्मध्वैव
नैऋतो वरुणस्तथा । पवनो धनदेशानौ ब्रह्मानन्ती दिगो-
श्वराः । एते त्वामित्यादि ॥ ९ ॥ संवत्सरश्चायनौ च आसाः पक्षौ
दिनानि च । तिथयश्चाभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ १० ॥
रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः । राहुः केतुश्च सत-
तमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥ ११ ॥ नक्षत्रं करणं योगः अमृतं
सिद्धिरेव च । दग्धं पापं तथा भद्रा योगा वाराः क्षयास्तथा ।
वारवेला कालवेला दण्डा वृद्धादयस्तथा । अभिषिञ्चन्तु सततं

मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ १२ ॥ असिताङ्गो रुक्मण्डः क्रोध उन्मत्त-
 संज्ञकः । कपाली भीषणश्चैव संहारोऽष्टौ च भैरवाः । अभि-
 पिञ्चन्तु इत्यादि ॥ १३ ॥ डाकिनीपुत्रकाश्चैव राकिणीपुत्रका-
 स्तथा ॥ लाकिनीपुत्रकाश्चान्ये काकिनीपुत्रकाः परे । शाकिनी-
 पुत्रका भूयो हाकिनीपुत्रकास्तथा । ततश्च यक्षिणीपुत्रा देवी-
 पुत्रास्ततः परम् । मातृणाञ्च तथा पुत्रा ऊर्ध्वमुख्याः सुताश्च
 ये । अधोमुख्याः सुता ये च उन्मुख्याश्च सुताः परे ॥ एते त्वामि-
 त्यादि ॥ १४ ॥ ब्रह्मा विश्वश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । एते
 त्वामित्यादि ॥ १५ ॥ पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडश ।
 आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मानः प्रकीर्त्तिताः । आत्मनश्च गुणा
 ये तु स्थूलाः सूक्ष्मास्तथा परे ॥ एते त्वामित्यादि ॥ १६ ॥ वेदादि-
 वीजं हुं वीजं स्त्रीवीजं मीनकेतनम् । शक्तिवीजं रमावीजं
 मायावीजं सुधाकरम् । चिन्तारत्नं महावीजं नारसिंहश्च
 शङ्करम् । मार्त्तण्डभैरवं दौर्गं वीजं श्रीपुरुषोत्तमम् । गाण-
 पत्यञ्च वाराहं कालीवीजं भयापहम् । एते त्वामित्यादि ॥
 १७ ॥ गङ्गा गोदावरी रेवा यमुना च सरस्वती । आत्रेयी भारती
 चैव सरयूर्गण्डकी तथा । करतोया चन्द्रभागा श्वेतगङ्गा च
 कौशिकी । भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ॥
 एतास्त्वामित्यादि ॥ १८ ॥ भैरवो भीमरूपश्च शोणो घर्घर एव
 च । सिन्धुतोयह्रदाः पान्तु तथा पातालसम्भवाः । यानि कानि
 च तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । तानि त्वामभिषिञ्चन्ति-
 त्यादि ॥ १९ ॥ जम्बुद्वीपादयो द्वीपाः सागरा लवणादयः ।
 अनन्ताद्यास्तथा नागाः सर्पा ये तत्तत्कादयः । एते त्वामित्यादि
 ॥ २० ॥ रतिश्च वल्लभा वज्रैर्वषट्कूर्चभतः परम् । वीषट्कारस्तु
 षट्कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥ २१ ॥ नश्यन्तु प्रेतकुष्माण्डा
 राक्षसा दानवाश्च ये । पिशाचा गुह्यका भूता अभिषेकेण ता-

डिताः ॥ २२ ॥ अलक्ष्मीः कालकर्णी च पापानि सुमहान्ति च ।
 नश्यन्तु चाभिषेकेण तारावीजेन ताडिताः ॥ २३ ॥ रोगाः
 शोकाश्च दीर्घं दारिद्र्यं चित्तविक्रिया । नश्यन्तु चाभिषेकेण
 वाग्बीजेनैव ताडिताः ॥ २४ ॥ लोकानुरागत्यागश्च दीर्भाग्यमपि
 दुर्यशः । नश्यन्तु चाभिषेकेण मन्मथेनैव ताडिताः ॥ २५ ॥ तेजो-
 क्कासो बलक्कासो बुद्धिक्कासस्तथैव च । नश्यन्तु चाभिषेकेण
 शक्तिवीजेन ताडिताः ॥ २६ ॥ विषापमृत्युरोगश्च डाकिन्यादि-
 भयं तथा । घोराभिचाराः क्रूराश्च ग्रहा नागास्तथा परे । नश्यन्तु
 चाभिषेकेण कालीवीजेन ताडिताः ॥ २७ ॥ नश्यन्तु चापदः
 सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः । अभिषेकेण शाक्तेन पूर्णाः सन्तु
 मनोरथाः ॥ २८ ॥ शारदायाम् ॥ अवशिष्टेन तोयेन शिथ्यमाचा-
 मयेद्गुरुः । ततस्तत् सकलीकुर्याद्देवतात्मानमात्मवित् ।
 आचम्य वाग्यतो भूत्वा निषीदेत् सन्निधौ गुरोः । देवतामात्मनः
 शिष्ये संक्रान्तां देशिकोत्तमः । पूजयेन्न्यपुष्पाद्यैरेक्यं सन्भावयं-
 स्तयोः ॥ निरुत्तरतन्त्रे ॥ एवं संसिध्य शिष्यन्तु पुनः पूजां समा-
 चरेत् । मेरुतन्त्रे तृतीयप्रकाशेऽपि ॥ अथ शिष्यश्चाभिषिञ्चेदाशु
 सम्पदवासये । कुम्भास्यस्थसुरद्वयं मूर्ध्न्यस्थ शिशोर्गुरुः । अथ
 पञ्चनिनादेशं विप्राशीर्वचनैः सह । गृहीत्वाभ्यर्चितं पूर्वं करकं
 ह्यसंख्यं । ततोयैरभिषिञ्चेत्तं रक्षायै देशिकोत्तमः । शिष्यो-
 ऽपि तत्र सम्पूज्य गुरवे दक्षिणां ददेत् । गोभूमिशिष्यसत्त्वश्च
 रौप्यरत्नानि पार्वति ! सर्वस्वं वा तदङ्गं वा तदङ्गं वापि दक्षि-
 णाम् ॥ दक्षिणैषा तु मन्त्रग्रहणानन्तरं यदि अभिषेकः क्रियते
 तदा कर्त्तव्या । अभिषेकानन्तरं चेन्नन्त्रग्रहणं तदा तद्वृत्तिणायै
 वा अङ्गौभूताभिषेकादिदक्षिणा सिद्धेति ॥ वामकेश्वरतन्त्रे त्रि-
 पञ्चाशत्पटले ॥ अभिषिक्तः साधकेन्द्रः क्रियादक्षो भवेत् प्रिये ! ।
 शरीरशोधनं देवि ! न प्रसिध्येत् क्रियां विना ॥ शारदायाम् ॥

दद्याद्विद्यान्तरं तस्मै विनीतायाम्बु पूर्वकम् । गुरोर्लब्धां पुन-
र्विद्यामष्टकत्वं जपेत् सुधीः । गुरुविद्यादेवतानामैक्यं सम्भा-
वयन् धिया । प्रणमेद्गण्डवद्भूमौ गुरुं तं देवतात्मकम् । तस्य
पादाम्बुजद्वन्द्वं निजमूर्धनि योजयेत् । शरीरमर्थं प्राणञ्च सर्वं
तस्मै निवेदयेत् । ततः प्रभृति कुर्वीत गुरोः प्रियमनन्यधीः ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात् समयां प्रीतमानसः । ब्राह्मण-
स्तरपयेत् पश्चात् भक्ष्यभोज्यसदक्षिणान् । एषा क्रियावती दीक्षा
प्रोक्ता सर्वसमृद्धिदा ॥ बृहद्गीततन्त्रे तृतीयपटले ॥ तस्य कथा-
नुसारी स्थानिकटे त्रिदिनं वसेत् । नोचेत् सञ्चारिणी शक्ति-
गुरुमेति न संशयः ॥ इति क्रियावती दीक्षा ॥

आणवी दीक्षा तु दशविधा । तद्यथा ॥ आणवी बहुधा
दीक्षा नादेयी शास्त्रीयौ पुनः । एकधैवेति विद्वद्भिः पठ्यते शास्त्र-
कोविदैः ॥ राघवभट्टकृतं वचनम् ॥ आणवी बहुधेत्युक्ता तद्दे-
मधुनोच्यते । स्मार्त्तो मानसिकी योगी चाक्षुषी स्पर्शिकी
तथा । वाचिकी मान्त्रिकी हौत्री शास्त्री चेत्यभिप्रेतिका ।
विदेशस्थं गुरुं स्मृत्वा शिष्यं पापत्रयं क्रमात् । विश्लेष्य लय-
भागाङ्गविधानेन परे शिवे । सम्यग्योजनरूपैर्या स्मार्त्ती दी-
क्षेति कथ्यते । स्वसन्निधौ समासीनमालोक्य मनसा शुचिः ।
मलत्रयादुपायैर्या विज्ञेया सा तु मानसी ॥ योगोक्तक्रमतो योगी
शिष्यदेहं प्रविश्य तु । गृहीत्वा तस्य चात्मानं स्वदेहयोजना-
त्मिका । योगदीक्षेति सा प्रोक्ता मलत्रयविनाशिनी ॥ ३ ॥
शिवोऽहमिति निश्चित्य वीक्षणं करुणार्द्रया । दृशा सा चाक्षुषी
दीक्षा सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ४ ॥ स्वयं परशिवो भूत्वा निःसन्दि-
ग्धमना गुरुः । शिष्यहस्तेन शिष्यस्य स्वमन्त्रं मूर्ध्नि संस्पृशेत् ।
स्पर्शदीक्षेति सा प्रोक्ता शिवाभिव्यक्तिकारिणी ॥ ५ ॥ शिवहस्त-
लक्षणं यथा सोमशम्भौ ॥ गन्धैर्मण्डलकं स्त्रीयैर्विदध्यादक्षिणे करे ।

विधिना त्वच्चैवेहवमित्यं स्याच्छिवहस्तकमिति । स्त्रीयैर्गन्धैः
स्वस्वगन्धाष्टकैरित्यर्थः ॥ गुरुवक्त्रं निजं वक्त्रं विभाव्य गुरुराद-
रात् । गुरुवक्त्रप्रयोगेण दिव्यमन्त्रादिकं शिशोः । मन्त्रन्यासा-
दिभिः सार्द्धं दद्यात् सेयञ्च वाचिको ॥ ६ ॥ दीपवातो यथा मन्त्र-
न्याससंयुक्तविग्रहः । स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा संक्रमं मन्त्रमादरात् ।
दद्यात् शिष्याय सा दीक्षा भान्नी मलविघातिनी ॥ ७ ॥ कुण्डे
वा स्थण्डिले वापि निक्षिप्याग्निं विधानतः । लयभागक्रमेणैव
प्रत्यध्वानं यथाक्रमम् । मन्त्रवर्णकला तत्र पदविष्टपमेव च ।
संशोध्य होमरूपैर्यां हौत्रो दीक्षा समीरिता ॥ ८ ॥ योग्यशिष्याय
भक्ताय शुश्रूषार्चापराय च । सार्द्धं शास्त्रपदा द्रव्या शास्त्री दी-
क्षेति सोच्यते ॥ ९ ॥ शिवञ्च शिवपत्नीञ्च कुम्भे सम्पूज्य सादरम् ।
शिवकुम्भाभिषेकात्मा दीक्षा स्यादभिषेचिका ॥ १० ॥ शारदा-
याम् ॥ अथ वर्णात्मिकां वक्ष्ये दीक्षामागमचोदितात् । पुं प्रक-
त्यात्मका वर्णाः शरीरमपि तादृशम् । यतस्तस्मात्तनौ न्यस्येद-
वर्णान् शिष्यस्य देशिकः । तत्तत्स्थानयुतान् वर्णान् प्रतिलोमेन
संहरत् । आज्ञया देवताभावाद्विविधा देशिकोत्तमः । तदा
विनीय तत्तोयं शिष्यो दिव्यतनुर्भवेत् । परमात्मनि संयोज्य तच्चै-
तन्यं गुरुत्तमः । तस्मादुत्पादितान् वर्णाव्यस्येच्छिष्यतनौ पुनः ।
सृष्टिक्रमेण विधिवच्चैतन्यञ्च नियोजयेत् । जायते देवताभावः
परानन्दमयः शिशोः । एषा वर्णमयी दीक्षा प्रोक्ता ज्ञानप्रदा-
यिनो ॥ कलावती दीक्षा तु अस्मद्गोष्ठीगरिष्ठकृष्णानन्दागम-
वागीशेन स्वकृततन्त्रसारग्रन्थे लिखिता । संक्षेपदीक्षापीत्यतो
नैतयोरत्र प्रयोजनम् ॥ वैधमयी दीक्षाप्यप्रचरद्रूपतया न लि-
खिता ॥ अन्वेषकैः शारदायां पञ्चमपटले अन्वेष्येति ॥

अथ क्रमदीक्षा ॥ कामाख्यातन्त्रे द्वाविंशत्यपटले ॥ देव्यु-
वाच ॥ क्रमदीक्षां ब्रूहि नाथ ! यदि तेऽस्ति कृपा मयि । कथं

वा कुरुते दीक्षां क्रमेण जगदीश्वर ! ॥ शिव उवाच ॥ श्रुता
 दीक्षा बहुविधा देवानां प्रीतिदायिका । इदानीं कथयिष्यामि
 यदि कस्मै न वक्ष्यसि । प्रकाशाद्ब्रह्मो दोषाः सर्वत्र गोपिता
 मया । कलौ पापसमाचारे सिद्धिर्न स्यात् कदाचन । सिद्धिर्न
 स्यात् सिद्धिर्न स्यात् कलौ नान्यविधानतः । क्रमदीक्षाविहीनस्य
 कलौ न स्यात् कथञ्चन । इति ज्ञात्वा महेशानि ! क्रमदीक्षां
 समाचरेत् । रसैर्मन्त्रैर्यथा विद्वमयः सौवर्णतां व्रजेत् । क्रम-
 दीक्षाप्रभावेण तथात्मा शिवतां लभेत् । जपो देवाङ्घ्रौ न विधिः
 कार्यो दीक्षाक्रमेण वै । उपचारसहस्रैस्तु योजितां भक्तिसं-
 श्रुताम् । क्रमदीक्षां विना देवि ! न गृह्णन्ति कदाचन । आदौ
 काली ततस्तारा सुन्दरी तदनन्तरम् । क्रमदीक्षेति विख्याता
 सर्वदा सिद्धिकामतः । राज्यं देयं शिरो देयं न देयं क्रमयो-
 गतः । विधानं क्रमतः सिद्धिरभिधेकाच्च पार्वति ! । विशुद्ध-
 मातापिठको जितेन्द्रियः सर्वाङ्गमग्नः परदुःखकातरः । एवंवि-
 धानो गुरुरेव शान्तः कुलीनशिष्यः क्रमतो विधानम् । नात्र
 शुद्धायपेक्षास्ति न वा सिद्धादिचिन्तनम् । न चाधिकारिचिन्ता
 च ग्रहणे क्रमयोगतः । एकाहे वा वत्सरे वा वत्सरान्तेऽपि पा-
 र्वति ! । तस्मात् शिष्यः प्रयत्नेन गृह्णीयात् क्रमयोगतः । गृ-
 हीत्वा गुरुवक्ताच्च क्रमेण पूजयेच्च ताः । क्रमेण च यजेद्देवि !
 पुरश्चर्याक्रमेण च । प्रथमे दिवसे शिष्यः संयतात्मा जितेन्द्रियः ।
 द्वितीये चोपवासश्च त्रिदिने दीक्षयेद्गुरुः । कुलीनत्वस्य स्वी-
 कारं कारयित्वा मनून् वदेत् । एकाक्षरं त्र्यक्षरं वा द्वाविंशत्य-
 क्षरं तथा । द्वितीयायास्तथा प्रोक्तं तृतीयायास्त्रिकूटतः । क्रमेण
 दिवसे वापि क्रमेण वत्सरेण च । वत्सरान्ते तथा देवि ! क्रमेण
 दीक्षयेद्गुरुः । ग्रामान् दासांश्च दासींश्च सुवर्णञ्च यथाक्रमम् ।
 गुरवे दक्षिणां दद्याद् विभवं स्यानुसारतः । यदि भाग्यवशाद्

देवि ! क्रमदीक्षा च जायते । तदा सिद्धिर्भवेत्तस्य नात्र कार्या
विचारणा । क्रमदीक्षाविहीनस्य कथं सिद्धिः कलौ भवेत् ।
सर्वाश्रमेषु भूतेषु सर्वदेवेषु सुव्रते ! । क्रमं विना महेशानि !
सर्वं तेषां वृथा भवेत् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो
भवेत् । क्रममूलं जगत् सर्वं क्रममूलं परं तपः । अदीक्षिता
यदि ज्ञाता किञ्चिदादाय भोजयेत् । वृथा दानं भवेत्तस्य त-
स्मात् सर्वं विवर्जयेत् । सद्गुरोराहिता दीक्षा सर्वकर्माणि
कारयेत् ॥ इति क्रमदीक्षा ॥

शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतगुप्तदीक्षातन्त्रे ॥ मृतमप्यनुगच्छेत
विद्यामन्त्रो विशेषतः । मन एव मनुष्यस्य पूर्वकर्माणि शंसति ।
यदि न स्थान्महेशानि ! मनुष्यस्य कथं भवेत् । दीक्षायाश्च कथं
तस्य मनो भवति पार्वति ! । तस्मात्तु यत्नतो देवि ! पूर्वविद्यां
समुद्धरेत् । वकुलाश्वत्थवटकं पत्तनं शृणु प्रिये ! । वटपत्रे महेश-
ानि ! शक्तिमन्त्रं लिखेत् प्रिये ! । अश्वत्थे विष्णुमन्त्रश्च वकुले
शिवमन्त्रकम् । रक्तचन्दनेन देवेशि ! काश्मीरेण महेश्वरि ! ।
शक्तिमन्त्रं लिखेद्देवि ! चन्दने विष्णुमन्त्रकम् । भस्मना शिव-
मन्त्रश्च विलिखेत् परमेश्वरि ! । सप्तसप्तकपत्रेषु तत्तद्देवताया
मन्त्रं लिखेदित्यर्थः ॥ प्राणप्रतिष्ठां तन्मन्त्रे कारयेद्यत्नतः
सुधीः । तत्तद्देवतायाः प्राणप्रतिष्ठां कारयेत् । यथाशक्त्युपचा-
रेण सम्पूज्य परमेश्वरि ! । ततः शिष्योऽर्घ्यपात्रञ्च हस्तौ
कृत्वा महेश्वरि ! । अनेन मनुना मन्त्री भास्कराय निवे-
दयेत् ॥ अर्घ्यद्रव्यमाह ॥ आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं दधि
तथा मधु । रक्तानि करवीराणि तथैव रक्तचन्दनम् । अष्टाङ्ग
एषोऽर्घ्यो वै भानवे परिकीर्तितः । ओं भो देव ! पृथिवीपाल !
सर्वशक्तिसमन्वितः । ममार्घ्यं च गृहाण त्वं पूर्वविद्यां प्रकाशय ।
अर्घ्यं दत्त्वा नमस्कृत्य कृताञ्जलिः पठेत्ततः ॥ गान्धर्व ॥ न दद्या-

ज्ञास्करायार्घ्यं शङ्खतोयैर्महेश्वरि ।। ओं सूर्यः सोमो यमः कालो
 महाभूतानि पञ्च वै । एते शुभाशुभस्येह कर्मणि नव साक्षिणः ।
 सर्वदेवाः शरीरस्था मम मन्त्रस्य साक्षिणः । पूर्वजन्मार्जितां विद्यां
 मम हस्ते प्रदापय । पठित्वेदं महेशानि ! सत्वरं पत्रमुद्धरेत् ।
 उद्धृत्य पत्रमेकन्तु गुरोर्हस्ते प्रदापयेत् । गुरुस्तु अक्षरश्रेणी-
 मुद्धृत्य परमेश्वरि !। सेतुं दत्त्वा महेशानि ! तत्पाष्टशतकं
 जपेत् । शिष्यस्य मस्तके हस्तं दत्त्वा चाष्टशतं जपेत् । गुरुस्तु
 प्राङ्मुखो भूत्वा शिष्यः प्रत्यङ्मुखः स्थितः ॥ अन्यत्र । प्राङ्मुखो गुरु-
 रासीनः शिष्यः प्रत्यङ्मुखः स्थितः । त्रिवारं दक्षिणे कर्णे वामकर्णे
 तथा सक्तत् । स्त्रीशूद्रविषये कुर्याद्वैपरीत्येन चिन्तनम् । आ-
 चम्य संयतो भूत्वा प्राणायामं विधाय च । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा
 ऋथादिकसमन्वितम् । अष्टकत्वं जपेन्नन्त्रं वामकर्णे सुरे-
 श्वरि ।। इयं दीक्षा सर्वतन्त्रे शक्त्या परिकीर्तिता । गुरो-
 र्लब्ध्वा महाविद्यामष्टोत्तरशतं जपेत् । गुरवे दक्षिणां दद्या-
 दित्तशाब्धं न कारयेत् । गुरवे गुरुपुत्राय तत्पत्न्यै वा प्रदाप-
 येत् ॥ कुलार्णवे ॥ गुरुप्रीतिसमुत्पन्ने देवता प्रीतिमाप्नुयात् ।
 देवताप्रीतिमापन्ने मन्त्रसिद्धिर्मवेदध्रुवम् । पत्ररत्नं प्रधानेन
 दीक्षां कुर्यात् कलौ युगे । ततः सिद्धो भवेन्नन्वी नात्र कार्या
 विचारणा । एतज्ज्ञानं विना देवि ! दीक्षां कुर्याच्च यो नरः ।
 दीक्षा तु विफला तस्य अन्ते तु नरकं व्रजेत् । ततः शिष्यो महेश-
 शानि ! प्रणमेदृण्डवद्भुवि ॥ ततो गुरुर्वदेत् ॥ उत्तिष्ठ वक्त्र !
 मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव । कीर्त्तिः श्रीकान्तिमेधायु-
 र्वलारोग्यं सदास्तु ते ॥ योगिनीहृदये ॥ मन्त्रं दत्त्वा गुरुश्चैव
 उपवासं समाचरेत् । महान्धकारनरके क्लमिर्मवति नान्यथा ॥
 रुद्रजामले ॥ श्यामाभया भैरवी ताराच्छिन्नमस्तासु भैरवे !।
 मञ्जुवीषे तथा रौद्रे पञ्चाङ्गं न्यस्यते बुधैः ॥ तत्रापि गुह्यकाली-

विषये पञ्चायतनदीक्षा तत् पुरैवोक्तम् ॥ कलौ तान्त्रिकसंस्कारः
पवरद्वदीक्षादिकञ्चोक्तम् ॥ प्रासावसरेणोदानीं प्रबलकलिलक्षण-
मुच्यते ॥ यथा महानिर्वाणतन्त्रे चतुर्थोक्तासी ॥ यदा तु वैदिकी
दीक्षा दीक्षा पौराणिकी तथा । न स्यास्यति वरारोहे ! तदैव
प्रबलः कलिः । यदा तु पुण्यपापानां परीक्षा वेदसम्भवा । न
स्यास्यति शिवे ! शान्ते ! तदैव प्रबलः कलिः । क्वचिच्छिन्ना क्व-
चिद्धिन्ना यदा सुरतङ्गिणी । भविष्यति कुलेशानि ! तदैव प्रबलः
कलिः । यदा स्त्रियोऽतिदुर्दान्ताः कर्कशाः कलहे रताः । यदा
तु स्नेच्छजातीया राजानो धनलोलुपाः । भविष्यन्ति महाप्राज्ञे !
तदैव प्रबलः कलिः । यदा तु मानवा भूमौ स्त्रौजिताः काम-
किङ्कराः । दुहन्ति गुरुमित्रादीन् तदैव प्रबलः कलिः । यदा
क्षीणी स्वल्पफला न मेघास्तोयवर्षिणः । असम्यक्फलिनो वृक्षा-
स्तदैव प्रबलः कलिः । भ्रातरः स्वजनामात्या यदा धनफले-
च्छया । मित्रः सम्प्रहरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः । प्रकटे
मद्यमांसादौ निन्दारम्भविवर्जिते । गूढघानं प्रकुर्वन्ति तदैव
प्रबलः कलिः । सत्यव्रताद्वापरे च यथा मद्यादिसेवनम् । कला-
वपि तथा कुर्यात् कुलवर्त्मानुसारतः ॥ इति प्रबलकलिलक्षणम् ॥

कलेरुपशमप्रकारोऽपि तत्रैव ॥ ये कुर्वन्ति कुलाचारं सत्य-
पूता जितेन्द्रियाः । व्यक्ताचारदयाशीला न हि तान् बाधते
कलिः ॥ गुरुशुश्रूषणे युक्ता भक्ता मातृपदाखुजे । अनुरक्ताः
स्वदारेषु न हि तान् बाधते कलिः । सत्यव्रताः सत्यनिष्ठाः सत्य-
धर्मपरायणाः । कुलसाधनसत्या ये न हि तान् बाधते कलिः ।
कुलमार्गेण तत्त्वानि शोधितानि च योगिने । ये ददुः सत्य-
वचसे न हि तान् बाधते कलिः । हिंसामात्सर्यरहिता दम्भदेष-
विवर्जिताः । कुलधर्मेषु निष्ठा ये न हि तान् बाधते कलिः ।
लौकिकैः सह संसर्गं वसितं कुलसाधुषु । कुर्वन्ति कौलसेवां ये

न हि तान् बाधते कलिः । नानावेशधराः कौलाः कुलाचारेषु
निश्चलाः । सेवन्ते त्वां कुलाचारैर्न हि तान् बाधते कलिः ।
वीजसेकादिसंस्कारान् पितृश्राद्धादिकाः क्रियाः । ये कुर्वन्ति
कुलाचारैर्न हि तान् बाधते कलिः । कुलतत्त्वं कुलद्रव्यं कुलयो-
गिनमेव च । नमस्कुर्वन्ति ये भक्त्या न हि तान् बाधते कलिः ।
कौटिल्यानृतहीनानां स्वच्छानां कुलमार्गिणाम् । परोपकार-
व्रतिनां साधूनां किङ्करः कलिः ॥

✓ अथ कलेर्गुणः ॥ कलेर्दोषसमूहस्य महानेको गुणः प्रिये ! ।
सत्यप्रतिज्ञा कौलानां श्रेयः सङ्कल्पमावतः । अपरे तु युगे देवि !
पुण्यपापञ्च मानसम् । नृणामासीत् कलौ पुण्यं मानसं न तु
दुष्कृतम् । कुलाचारविहीना ये सततं सत्यभाषिणः । परद्रोह-
परा ये च ते नराः कलिकिङ्कराः । कुलधर्मैश्चभक्ता ये परयो-
षित्सु कामुकाः । द्वेष्टारः कुलनिष्ठानां ते ज्ञेयाः कलिकिङ्कराः ।
प्रकटेऽत्र कलौ देवि ! सर्वे धर्माश्च दुर्बलाः । स्यास्यत्येकं सत्य-
मात्रं तस्मात् सत्यमयो भवेत् । सत्यधर्मं समाश्रित्य यत्कर्म
कुरुते नरः । तदेव सफलं कर्म सत्यं जानीहि सुव्रते ! । न हि
सत्यात् परो धर्मो न पापमनृतात्परम् । तस्मात् सर्वात्मना मर्त्यः
सत्यमेकं समाश्रयेत् । सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा
जपः । सत्यमूलाः क्रियाः सर्वाः सत्यात् परतरं न हि । अत-
एव मया प्रोक्तं दुष्कृते प्रबले कलौ । कुलाचारोऽपि सत्येन
कर्तव्यो व्यक्तभावतः । गोपनाद्दीयते सत्यं न गुप्तिरनृतं विना ।
तस्मात् प्रकाशतः कुर्यात् कौलिकः कुलसाधनम् । कुलधर्मस्य
गुप्त्यर्थं नानृत्यं स्याज्जुगुप्सितम् । यदुक्तं कुलतन्त्रेषु न शस्तं प्रबले
कलौ । कृते धर्मश्चतुष्पादस्त्रेतायां पादहीनकः । द्विपादो हा-
परे देवि ! पादमात्रं कलौ युगे । तत्रापि सत्यं बलवत्तपः
खण्डं दयापि च । सत्यपादे कृते लोपे धर्मलोपः प्रजायते ।

तस्मात् सत्यं समाश्रित्य सर्वकर्माणि साधयेत् । कुलाचारं विना
यत्र नास्त्युपायः कुलेश्वरि ! । तत्रानृतप्रवेशः स्यात् कुतो निः-
श्रेयसं भवेत् । सर्वथा सत्यपूतात्मा मन्मुखेरितवर्त्मना । सर्वं
कर्म नरः कुर्यात् स्वस्ववर्णाश्रमोदितम् । दीक्षां पूजां जपं
होमं पुरश्चरणतर्पणम् । व्रतोद्वाहौ पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।
जातकर्म तथा नाम चूडाकरणमेव च । यात्रां गृहप्रवेशञ्च नव-
वस्त्रादिधारणम् । वापोक्षूपतडागानां संस्कारं तिथिकर्म च ।
गृहारम्भं प्रतिष्ठाञ्च देवतास्थापनं तथा । मयोक्तेन विधानेन
तत्सर्वं साधयेन्नरः । यदि मन्मतमुत्सृज्य महेशि ! प्रबले कलौ ।
तदा यत् क्षियन्तं कर्म विपरीताय तद्भवेत् ॥ अष्टमोक्तासे ॥
अतोऽत्र कथितं देवि ! द्विजानां प्रबले कलौ ॥ गायत्र्यामधि-
कारोऽस्ति नान्यमन्त्रेषु कर्हिचित् । द्विजातीनां प्रभेदार्थं शू-
रेभ्यः परमेश्वरि ! । सन्ध्येथं वैदिकी प्रोक्ता प्रागेवाङ्गिककर्मणः ॥

विश्वासो रामहर्थाह्वय इह सुकृती पुण्यकौर्त्तिर्वरिष्ठः सा-
क्षाद्दर्शो महात्मा ह्य जनयति नरः श्रीलनारायणाभौ । शान्तौ
दान्तौ सदान्तःकृतिमिलितजगन्बोहनप्राणकृष्णौ श्रीवाणीशौ
प्रतापानलकलितमहारातिवंशाटवीकौ ॥ श्रीप्राणकृष्णविश्वासः
सुतान् सप्त महोदयान् । अजीजनद्देवविप्रभक्ताब्जानागुणान्वि-
तान् ॥ श्रीलानन्दमयज्येष्ठः सदानन्दमयः कृती । श्रीरामचन्द्र-
स्तदनु दयाधर्मप्रतापवान् । श्रीविष्णुनाथो विश्वात्मा तदनु ज्ञान-
दानवान् । श्रीशङ्खनाथस्तदनु स्निग्धमूर्त्तिर्दयामयः । श्रीकाशी-
नाथविश्वासो विश्वासकुलपावनः । श्रीचन्द्रनाथस्तदनु चन्द्रदृक्षो
गुणाकरः । एतेऽप्युदयोगिनो ग्रन्थकारणायै यतः सदा । अतो
नामान्यत्र तेषां निबध्नाम्यतियत्नतः ॥ धीमान् श्रीमान् भुवन-
विदितस्तन्वसारस्य कर्त्ता कृष्णानन्दोऽजनि भुवि नवद्वीपदेशप्र-
दीपः । काशीनाथोऽभवद्दिह सुतस्तस्य सारावलीकृत् विद्वान्

मान्योऽजनि तदनुजो विश्वनाथाह्वयोऽतः ॥ गोपालो निर्णय-
 क्तियश्चसौ मधोः सूदनाच्चाभूतां पुत्री मधुसुत इतः कालिदासः
 प्रसिद्धः । तत्पुत्रोऽभूद्रघुवरपरो नाथ एकान्तबुद्धिस्तत्सनुश्चाभ-
 वदिह सुधीमङ्गलः कृष्णपूर्वः ॥ श्रीकृष्णमङ्गलसुतो नववलि-
 कायाः श्रीरामतोषण इदं कृतवान् द्वितीयम् । काण्डन्तु संस्कृ-
 तियुतं फलपुष्पशोभं धर्माभिधं कृतिमतां सकलेष्टसिद्धयै ॥
 इति श्रीप्राणकृष्णविश्वासानुमतायां श्रीरामतोषणविद्यालङ्कार-
 भट्टार्यचाविरचितायां श्रीप्राणतोषिण्यां दीक्षारूपफल-
 कथनात्मकषष्ठपरिच्छेदान्तधर्मकाण्डं

समाप्तम् ॥

नवशशधरखण्डं विभ्रती चन्द्रकान्तद्युतिरमरनराद्यैरर्चिता
 भारती नः । अतु विशदपद्मे सन्निषष्ठा प्रसन्ना नवरसरु-
 चिरा सङ्गीतविद्याद्यधीशा ॥ श्रीप्राणकृष्णकृतिरस्य निदेशवर्त्ती
 मैत्रेयवंशजकुलाश्रितचक्रवर्त्ती । श्रीरामतोषण इदं विदधे
 निजेष्टदेवीप्रसादजनितं रुचिरार्थकाण्डम् ॥ तृतीयस्यार्थका-
 ण्डस्य निर्वण्टः क्रियते मया । केषाञ्चिदन्यन्निर्दिष्टं यथास्थानं
 विलोक्यताम् । आचारसप्तकं तत्र वेदाचारक्रमस्तथा । उत्थाय
 भूतशुद्धादिकार्यं ध्यानं गुरोस्ततः । पञ्चभूतात्मकैः पञ्चोप-
 चारैर्मानसार्चनम् । ततश्च सद्गुरुध्यानं कुलवृत्तनतिस्ततः ।
 पादुकामन्त्रकथनं तस्य माहात्म्यकीर्तनम् । गुरुतत्स्वीपूज-
 नस्य मन्त्रस्तु तदनन्तरम् । जपमन्त्रो गुरुस्तोत्रकवचानि
 गुरोर्नतिः । सद्गुरोश्च नमस्कारो ब्राह्मणादिनमस्कृतिः ।
 स्त्रीगुरुध्यानस्तवनकवचानि ततः परम् । तद्वाता गुरुपूजा
 च गुरुपङ्क्तिनिरूपणम् । इति ग्रन्थस्वरूपाद्यपरिच्छेद-
 समापनम् । ततः कुण्डलिनीध्यानं तत्स्तोत्रकवचे ततः ।
 सौरगणेशमन्त्राद्यजपसमर्पणं ततः । हंसध्यानाजपासंख्या-

अपामेदनिरूपणम् । आलम्ब्यानादिकं तस्माद्विहितिक्रम-
स्तथा । मैत्रं दन्तधावनञ्च नासाशुद्धाङ्गने तथा । देवालयो-
पलेपादिक्रमस्तोत्रं ततः परम् । परिच्छेदो द्वितीयश्च समाप्त-
स्तदनन्तरम् । स्नानफलं स्नानभेदाभ्यन्तरस्नाननिर्णयः । नित्य-
स्नान स्नानविधिर्यस्तत् सदिति भाषणम् । सङ्कल्पश्च
तन्निषिद्धपात्रं तत्पात्रनिर्णयम् । तीर्थावाहनाङ्गष्टकन्यासौ
मूलजपस्तथा । सृत्तिकालम्भनादिश्च शङ्कतोयाभिषेचनम् ।
सङ्क्षेपतर्पणं पश्चात् परखातेतिकार्यता । तेन स्नाननिषेधश्च
गात्रमार्जनवस्तुकम् । गात्रमार्जननिषेधस्तत्कारणनिरूपणम् ।
गङ्गाध्यानमन्त्रफलं क्षेत्रमाहात्म्यमेव च । गङ्गानामादिमाहात्म्यं
गङ्गासृत्युफलं ततः ॥ तदयात्रिकस्याध्वसृत्युतत्तौरसृत्युज-
फलम् । गङ्गाजलाच्चतुर्हस्तमध्ये पिण्डप्रदानजम् । फलं गङ्गा-
तर्पणजं कालाकालविचारणम् । तत्र नास्ति च गङ्गायां
चौथ्यादिदोषनिर्णयः । अभिषेकासृतकृतमानसस्नानमेव च ।
परिधेयवस्त्रमानं कर्मभेदेऽंशुकं ततः । गीलांशुकादेश्च ततो
निषेधश्चोत्तरीयकम् । त्रिधा योगपदं यज्ञोपवीतमार्जनं ततः ।
तिलकं स्नानभेदे तु तदाकारनिरूपणम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रं तत्फलञ्च
तद्वृत्ते कर्मनिन्दनम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रस्य निषेधस्तदनन्तरम् ।
वैष्णवानामूर्ध्वपुण्ड्रं ब्राह्मणादेस्त्रिपुण्ड्रकम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य
निर्माणविधिस्त्रेधोत्तमादिकः । तस्य वर्णभेदफलं निन्द्यपुण्ड्रं
ततः परम् । ऊर्ध्वपुण्ड्राकृतिस्त्रेधा हरिमन्दिरलक्षणम् । पुण्ड्र-
कृत्येऽङ्गुलीभेदफलं पुण्ड्रस्य सृत्तिका । गोपीवन्दनमाहात्म्यं
तद्दानस्य फलं ततः । तुलसीमूलसृत्ताया माहात्म्यं तदन-
न्तरम् । विष्णुनिर्मात्यानुलेपतिलकञ्च ततः परम् । द्वादश-
तिलकविधिवद्दाने चोपक्रमस्ततः । त्रिपुण्ड्रधारणस्नाननिरू-
पणमतः परम् । भस्मान्तरं त्रिपुण्ड्रस्य पञ्चब्रह्मकचस्ततः ।

कालाग्निरुद्रोपनिषत्त्रिपुण्ड्रस्य फलं ततः । त्रिपुण्ड्राकरणी
 निन्दाशक्तितिलकनिर्णयः । इतिच्छेदतृतीयस्य समापनमयो-
 च्यते । सन्ध्यावेदोदिता कार्या तान्त्रिकी तदनन्तरम् । सन्ध्या-
 विहीननिन्दा च द्वादश्यादौ च तत्क्रिया । ततः परं योगि-
 सन्ध्यायोगिनां तर्पणं ततः । तेषामादित्यपूजापि कौलसन्ध्या
 ततः परम् । मार्जनस्य वैदिकस्य प्रकारस्तदनन्तरम् । गाय-
 त्रीव्याहृतेरर्थो गायत्र्यर्थस्ततः परम् । सन्ध्यासर्वण्यरूपस्तु सर्वण्य-
 दैवततन्त्रा । सर्वण्यध्यानफलकन्तस्या यन्त्रं ततः परम् ।
 ऋषयः प्रणवस्यापि गायत्र्याश्च ततः परम् । पदन्यासः शिरो-
 न्यासः षडङ्गन्यास एव च । ध्यानं तस्यास्ततो ध्यानान्तरे ऋष्या-
 दिरेव च । निन्दाजपस्य न्यासेन विना न्यासस्य मुद्रिका ।
 गायत्रीपूजनं पीठपूजनं तदनन्तरम् । दशावरणपूजा च
 द्रव्याभावे जलादिना । पुनर्जन्तु जपफलं विशेषो जपनक्रमः ।
 अशौचेऽपि च गायत्र्या मानसो जप ईरितः । तस्यै जपार्पणं
 तस्याः कवचं तत्पुरस्क्रिया । तत्काम्यकर्म तान्त्रिक्या गायत्र्याः
 फलनिर्णयः । तज्जपस्य फलं तस्याः पुरश्चरणमेव च । तस्या
 ऋष्यादिविवन्यासस्त्रिसन्ध्यध्यानमेव च । यागस्थानागतिः पाद-
 प्रक्षालनमतः परम् । द्वारपूजा वैष्णवादिमतभेदेन तत्परम् ।
 पूजागृहप्रवेशश्चासनञ्च तदनन्तरम् । फलभेदे त्वासनस्य भेदश्च
 गृहमेधिनाम् । कृष्णाजिनविशेषश्चासनानाञ्च फलं ततः । काष्ठा-
 सनविशेषश्च शृङ्गाद्यासनमेव च । परिमाणमासनस्य कर्मभेदा-
 सनं ततः । श्वासनादि च ततः सलोमासननिन्दनम् । आसनस्य
 च ऋष्यादि यतौनामासनाकृतिः । यतिभिन्नासनं ज्ञेयं चतुरस्रं
 समन्ततः । प्रौढपादनिषेधश्च प्रौढपादस्य लक्षणम् । सिद्धासनं
 ततः पद्मासनं योगोपयोगि च । द्रव्यस्थापनदेशश्च त्रिविधं
 धातुमेव च । पाद्यप्राशनं ततः प्राद्याधारपादस्य लक्षणम् ।

चर्मपात्रलक्षणञ्च चासपात्रस्य लक्षणम् । पानीयपात्रताम्बूलपात्रस्य लक्षणं ततः । इति पञ्चविविच्छेदचतुर्थस्य समापनम् । भूतशुद्धिर्भूतशुद्धौ पापदेहविनाशनम् । पापपुरुषध्यानन्तु पृथिव्यादिविलापनम् । आवश्यकं भूतशुद्धेः स्वप्राणानां प्रतिष्ठितिः । प्राणायामस्तु तत्पूजाधारो मन्त्रशिलार्चने । न यन्त्रकरणं मूर्तिनिकटेऽपि कदाचन । पूजाद्वयं कृते यन्त्रे पार्थिवैर्दर्शानिषेधनम् । विद्याविशेषे तत्रापि पूजासाधकसिद्धये । ब्रह्मणो मूर्तिराख्याता श्वेतकृष्णादिरूपिणी । कालिकाया रूपनेत्रादिवीजं तदनन्तरम् । आविर्भावो देवतायाः प्रतिमादौ निरूपितः । कृष्णादिमूर्तेर्नित्यत्वं मन्त्रः प्राणप्रतिष्ठितः । तस्य ऋष्यादिविन्यासः षडङ्गन्यास एव च । मन्त्रन्यासस्ततो ध्यानं पूजा तस्य पुरस्क्रिया । प्राणदूत्यः प्रयोगश्च तदयन्त्रकरणं ततः । आसनं पाद्यमर्घ्यञ्चाचमनीयं ततः परम् । मधुपर्कः पुनराचमनीयं तदनन्तरम् । गन्धशब्दस्य व्युत्पत्तिर्गन्धस्तद्दानजं फलम् । गन्धाष्टकं पञ्चविधं पुष्पव्युत्पत्तिरेव च । पुष्पञ्च करवीरस्य फलं तदनु कीर्तितम् । करवीरादिमूलैः तु प्राणत्यागफलं ततः । श्वेतादिकरवीराणां माहात्म्यं तदनन्तरम् । अपराजितादिमाहात्म्यं विशेषपुष्पदानजम् । फलं पुष्पफलं कृष्णापराजिताफलं ततः । रसालमञ्जरीत्यादिफलं श्रीचक्रपूजने । कृते पुष्पविशेषेण प्रायश्चित्तं ततः परम् । हस्तस्थपुष्पदानस्य निषेधकारणं ततः । मध्याह्नस्नानमर्घ्यस्य पुष्पाह्वरणनिन्दनम् । पुष्पमालायाश्चमालाभेदनिषेधनम् । वर्ज्यपुष्पं कालभेदे देवभेदेऽपि तत्परम् । धूपशब्दस्य व्युत्पत्तिर्धूपस्तद्दानजं फलम् । दीपशब्दस्य व्युत्पत्तिर्दीपो वस्त्रं ततः परम् । अलङ्कारश्च नैवेद्यं ताम्बूलं तदनन्तरम् । निषिद्धञ्चैव ताम्बूलं नतिभेदस्ततः परम् । निर्मात्यकालविज्ञानं देवतायै निवेद्यकम् । सन्देशादि-

नारिकेलशस्यं मिष्टसमन्वितम् । इङ्गुद्यादिफलं शस्तं शाकी
 मूलादिसम्भवः । तिन्त्रिङ्गीगिरिकुम्भाखण्डे निषिद्धे वनजं तथा ।
 बीजपूर्णं रुद्राद्यादि चाकालपनसस्तथा । शस्यानि यानि देयानि
 निषिद्धानि ततः परम् । निषिद्धं लवणं क्षारं प्राचीभृतादिकं
 तथा । मार्गादिमांसं दातव्यं निषिद्धं माहिषं तथा । क्षीरं
 दधि घृतञ्चैव पक्षिणां हरितादयः । देया मत्स्याश्चित्तकाद्या
 निषिद्धा च विडालिका । अभक्ष्या जानपादाद्याः शकुना ये तथा-
 भिधाः । अभक्ष्याश्च तथा प्रोक्ताः शाकाः कौसुम्भकादयः । निषिद्धं
 रामरन्भादि धान्यं आवणिकादि च । नारिकेलं सुवर्णाभं कर्कन्धुः
 शर्करान्विता । न देयस्तित्तकमठो मत्स्या गोमीनकादयः । भक्ष्या-
 भक्ष्ये देशभेदे तान्त्रिकैर्वर्ज्यमेव च । मृतमांसं त्रिरात्रावस्थितं
 मांसं तथैव च । मांसत्यागफलञ्चैव कार्तिकादौ विशेषतः ।
 पक्षी भक्ष्योऽप्यभक्ष्योऽप्यभक्ष्या नृवानरादयः । कुकुरादिमांस-
 भोगे प्रायश्चित्तं ततः परम् । मांसत्यागे तुलादौ तु फलं नाना-
 विधं तथा । यावज्जीवनमांसादित्यागस्य फलमेव च । हवि-
 श्यान्नं ततोऽन्यानि ह्येयानीति यथास्थलम् । नित्यातन्त्रे प्रथम-
 पटले ॥ चत्वारो देवि ! वेदाद्या पशुभावप्रतिष्ठिताः । वामाद्या-
 स्त्रय आचारा दिव्ये वीरे प्रतिष्ठिताः । एतान् सप्ताचारान् स्पष्ट-
 यति कुलार्णवे पञ्चमखण्डे ॥ सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो
 वैष्णवं महत् । वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम् । दक्षिणा-
 दुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् । सिद्धान्तादुत्तमं कौलं
 कौलात्परतरं न ह्येति ॥ नित्यातन्त्रे ॥ (वेदाचारं प्रवक्ष्यामि
 शृणु सर्वाङ्गसुन्दरि ! । ब्राह्मणे मुहूर्ते उत्थाय गुरुं नत्वा
 स्वनामभिः । आनन्दनाथशब्दान्ते प्रजयेदथ साधकः । सह-
 स्राराख्यजे ध्यात्वा उपचारैस्तु पञ्चभिः । प्रजप्य वाग्भवं बीजं
 धित्तयेत् परमां कलाम् ॥) रुद्रजामले उत्तरखण्डे द्वितीय-

पटले ॥ प्रभाते च समुत्थाय अरुणोदयकालतः । प्रातःकृत्वा-
दिकं कृत्वा पुनः शय्यास्थितो नरः । गुरुं सञ्चिन्तयेत् शीर्षा-
भोजे सहस्रके दले । अत्र पूर्वोक्तवचनेनैकवाक्यतया प्रभाते
ब्राह्ममुहूर्त्ते एवं वक्ष्यमाणपश्चिमयामेत्यादावपि ॥ तत्र रुद्र-
जामल प्रथमखण्डे प्रथमपटले । ब्राह्मेण मुहूर्त्ते उत्थाय वदपद्मा-
सनः सुधौः । विधाय भूतशुद्ध्यादीन् गुरुं प्रातः स्मरेन्नरः । आदि-
शब्दादिष्टदेवताध्यानादिकमेव च ॥ तथाच नीलतन्त्रे प्रथम-
पटले ॥ उत्थाय पश्चिमे यामे चिन्तयेदुग्रतारिणीम् । आम्बूला-
ङ्गह्वरन्ध्रान्तं विप्रतन्तुस्वरूपिणीम् । मूलमन्त्रमयीं साक्षाद-
मृतानन्दरूपिणीम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशी-
तलाम् । तडिल्काटिसमप्रेक्षां कामानलशिखोपरि । तव्यभा-
पटलव्याप्तपाटलीकृतदेहवान् । सहस्रदलपद्मजे सकलशीतर-
श्मिप्रभं वराभयकरास्त्रजं विमलगन्धपुष्पोद्भितम् । प्रसन्नवदने-
क्षणं सकलदेवतारूपिणम् । स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं
गुरुम् ॥ रुद्रजामले पूर्वखण्डेऽपि एतत् किन्तु द्वितीयचरणान्ते
पुष्पसजमिति पाठः ॥ विश्वसारे द्वितीयपटलेऽपि ॥ प्रातः
शिरसि शुक्लेऽङ्गे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् । वराभयकरं शान्तं
स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ॥ कङ्कालमालिनौतन्त्रे प्रथमपटले च ।
सहस्रदलपद्मस्थं अन्तरात्मानमुज्ज्वलम् । तस्योपरि नादविन्दो-
र्मध्ये सिंहासनोज्ज्वले । तत्र निजगुरुं नित्यं रजताचल-
सन्निभम् । वीरासनसमासीनं सर्वाभरणभूषितम् । शुक्लमात्या-
म्बरधरं वरदाभयपाणिनम् । वामोरुशक्तिसहितं कास्तुण्येना-
वलोकितम् । प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् । वामे-
नोत्पलधारिण्या रक्ताभरणभूषया । ज्ञानानन्दसमायुक्तं स्मरे-
त्तन्नामपूर्वकम् ॥ पूर्वखण्डेऽपि ॥ वामोरुन्यस्तशक्तिश्च स्वपा-
श्यालिङ्गितप्रभम् । वामहस्तोत्पलां रक्तां ध्यायेत्परमदृष्यतीन् ॥

यत्तु रुद्रजामले उत्तरखण्डे द्वितीयपटले ॥ तरुणादित्य-
 सङ्काशं तेजोविम्बं महागुरुम् । अनन्तानन्तमहिमासागरं
 शशिशेखरम् । महासूक्ष्मभास्वराङ्गं तेजोविम्बं महागुरुम् ।
 महाशुक्ताम्बराजस्थं दिनेत्रं द्विभुजं गुरुम् । आत्मोपलब्धिविषयं
 तेजसा शुक्लवाससम् । आज्ञाचक्रोद्भिनिकरं कारणञ्च सतां
 सुखम् । धर्मार्थकाममोक्षाङ्गं वराभयकरं विभुम् । प्रफुल्ल-
 कमलारूढं सर्वज्ञं जगदीश्वरम् । अन्तःप्रकाशचपलं वनमाला-
 विभूषितम् । रत्नालङ्कारभूषाढ्यं देवदेवं सदा भजेत् ॥ इति
 रक्तवर्णगुरुध्यानमुक्तम् । तद्वाजसगुरुपरम् । राघवभट्टमते तु
 शक्तिमात्रविषये रक्तवर्णस्यैव गुरोर्ध्यानम् । न तु शुक्तस्य तदित-
 रविषये शुक्तवर्णमेव ध्यायेदिति तत्र समीचीनम् । शक्तिविष-
 येऽपि नीलतन्त्रादौ शुक्तवर्णध्यानदर्शनात् । गुरुत्ववचेऽपि ।
 सहस्रारे महापद्मे कर्पूरधवलौ गुरुरित्यस्य वक्ष्यमाणत्वाच्च ।
 अर्वाचीनैस्तु कर्पूरैर्धवल इति तृतीयासमासाङ्गीकारेण धवलत्व-
 मुक्तं वस्तुतो रक्तवर्णध्यानमिति वदति तदनुशासनविरुद्धं
 कर्पूरलेपनस्य कुत्रापि प्रमाणं नास्ति इति । रक्तवर्णशक्ति-
 प्रभापटलेन रक्तं वा । एतत्तु सितरक्तप्रभमिति वक्ष्यमाणे
 व्यक्तौभविष्यति । अत्र तु जवास्फाटिकन्यायेन शक्तिप्रभाधिक्य-
 द्योतनाय रक्तमात्रमित्युक्तम् । कश्चित्तु व्यत्ययो बहुलमिति
 पाणिनीयसूत्रबलात्त्रिव्यत्ययेन स्त्रीगुरुध्यानमिदमाह । राजसे
 रक्तवर्णध्यानत्वग्रे प्रतिपादयिष्ये ॥ नीलतन्त्रे ॥ ततो मानस-
 गन्धायैरर्चयेत् स्रस्वमुदया । कनिष्ठा पृथिवी तत्त्वं तदयोगाद्-
 गन्धयोजनम् । अङ्गुष्ठो गगनं तत्त्वं तेनैव पुष्पयोजनम् ।
 तर्जनी वायुतत्त्वं स्याद्भूपं तेनैव योजयेत् । तेजस्तत्त्वं मध्यमा
 स्याद्दीपं तेनैव योजयेत् । अनामा जलतत्त्वं स्यात्तेनैव योज-
 येद्दक्ष कम् । ततस्तु बाह्ववं जप्यादष्टोत्तरशतं सुधीः । जपं

समर्प्य भक्त्या च प्रणमैर्दण्डवद्भुवि ॥ अन्नदाकल्पेऽपि ॥ मिथुनं
चिन्तयित्वा तु मानसैरुपचारकैः । भौतिकैः पूजयेद्द्विद्वान् मुद्रा-
मन्त्रसमन्वितैः । भूम्याकाशमरुद्वह्निवारिमन्त्रैः सविन्दुकैः ।
कनिष्ठाङ्गुलितर्ज्जनी मध्यमानामिके तथा । अङ्गुष्ठेन समा-
योगान्मुद्राः पञ्चप्रकीर्त्तिताः । पृथिव्यात्मकगन्धः स्यादाका-
शात्मकपुष्पकम् । धूपो वाय्वात्मकः प्रोक्तो दीपो वज्रात्मकः
परः । रसात्मकञ्च नैवेद्यं पूजा पञ्चोपचारिका । ततस्तु वाग्भवं
जप्यादष्टोत्तरशतं सुधीः ॥ कङ्कालमालिनीतन्त्रे प्रथमपटले च ॥
मानसैरुपचारैश्च सम्पूज्याकल्पयेन्मुदा । गन्धं भूम्यात्मकं
दद्याद्भावपुष्पं ततः परम् । धूपं वाय्वात्मकं देयं तेजसा दीपमेव
च । नैवेद्यममृतं दद्यात् पानीयं वरुणात्मकम् । अम्बरं
मुकुरं दद्याच्चामरं हृत्तमेव च । तत्तन्मुद्राविधानेन सम्पू-
ज्यात्मगुरुं जपेत् । यथाशक्ति जपं कृत्वा समाप्य कवचं पठेत् ॥
पूजाक्रमस्तु कुलमूलावतारकल्पसूत्रटीकायां तृतीयकाण्डे ।
निजगुरुं ध्यात्वा मुकानन्दनाथामुकशक्त्यम्बा श्रीपादुकां पूजया-
मौति मानसैर्गन्धाक्षतकुसुमैरर्चयेत् ॥ कनिष्ठाभ्यां लं पृथिव्या-
त्मकं गन्धं समर्पयामि नमः । अङ्गुष्ठाभ्यां हं आकाशात्मकं पुष्पं
समर्पयामि नमः । तर्जनीभ्यां यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि
नमः । मध्यमाभ्यां रं वज्रात्मकं दीपं समर्पयामि नमः । अनामि-
काभ्यां वं अमृतात्मकं नैवेद्यकं समर्पयामि नमः ॥ ध्यानान्तरन्तु
गुरुगीतायाम् ॥ हृदम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थं सिंहासने संस्थित-
दिव्यमूर्तिम् । ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकलाप्रकाशं सञ्चितसुखाभीष्ट-
वरप्रदानम् । मुक्तामलाभूषितदिव्यमूर्तिं वामाङ्गपीठस्थितदि-
व्यशक्तिम् । श्वेताम्बरं श्वेतविलेपयुक्तं मन्दस्मितं पूर्णकलाविधा-
नम् ॥ अथ शिरःपद्मं गुरुस्थानमुक्तम् । तत्कथं हृदम्बुजे ध्या-
मिति चेन्न कदाचित् हृदयाभोजे कदाचिद्विष्टिगोचरे । इति

पूर्वलिखितरुद्रजामलवचनेनैव तत्सन्देहनिरासः कृतः ॥ अथ
 सदगुरुध्यानम् गुरुगीतायाम् ॥ ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं
 ज्ञानमूर्तिं इन्द्रातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् । एकं
 नित्यं विमलमचलं सर्वदा साक्षिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं
 सद्गुरुं तं नमामि ॥ इति सद्गुरुध्यानम् ॥ रुद्रजामले पूर्वखण्डे
 तु कुलवृक्षप्रणामानन्तरं गुरुध्यानमुक्तम् ॥ कुलवृक्षाश्च रेवती-
 तन्त्रे चतुर्थपटले उक्ताः ॥ यथा । हरीतकी तथा धात्री निम्बा-
 श्वत्यकादम्बकाः । दुम्बस्वर्णविल्वौ च तिलिङ्गी नवमः स्मृतः ।
 ✓ कुलकाष्ठादिकं देवि ! होमार्थञ्च समाहरेत् ॥ एतेन तिलिङ्गी-
 प्रभृतिकाष्ठेनापि होमार्थवर्जिप्रज्वालनम् । समिद्धोमस्तूतकाष्ठा-
 दिभिः कार्यं इत्यायातम् ॥ रुद्रजामले ॥ ब्राह्मणे मुहूर्त्ते उत्थाय
 कुलवृक्षं प्रणम्य च । शिरःपद्मे सहस्रारे चन्द्रमण्डलमध्यके ।
 अकथादिद्विरेखीये हंसमन्त्रसुपीठके । ध्यायेन्निजगुरुं वीरो
 रजताचलसन्निभम् । पद्मासीनं स्मितमुखं वराभयकराम्बुजम् ।
 शुक्लमाभ्याम्बरधरं शुक्लगन्धानुलेपनम् । वामोत्स्थितया रक्त-
 शक्त्यालिङ्गितविग्रहम् । तथा खदञ्जहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ।
 वामेनोत्पलधारिण्या सुरक्तवसनस्रजा । सितरक्तप्रभां बिम्ब-
 च्छिवदुर्गास्वरूपिणम् ॥ परानन्दरसापूर्णं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ।
 तारत्रयं समुच्चार्य हसखप्प्रे ततः परम् । हसत्तमलवरयूँ हसखप्प्रे
 हसौ ततः । अमुकानन्दनाथान्ते अमुकीदेव्यनन्तरम् । अम्बाश्री-
 पादुकां दत्त्वा पूजयामि नमोऽन्तकः । अयं श्रीपादुकामन्त्रः
 सर्वसितफलप्रदः । मिथुनं चिन्तयित्वा तु इत्यादि । ततस्तु
 वाग्भवं जप्यादष्टोत्तरशतं सुधीरित्यन्तमन्नदाकल्पेन समान-
 मिति ॥ पादुकामाहात्म्यन्तु कुलमूलावतारकल्पसूत्रटीकाधृत-
 पद्मवाहिन्याम् ॥ पादुकाज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्ता भवन्ति हि ॥
 कुलार्णवे ॥ वागुरामूलबलयमुद्राद्याः कवलाः कृताः । एवं

कुलार्णवज्ञानां पादुकायां प्रतिष्ठितम् । कोटिकोटिमहादानात्
कोटिकोटिमहाव्रतात् । कोटिकोटिमहायज्ञात् परा श्रीपा-
दुकास्मृतिः । कोटिकोटिमहातन्त्रात् कोटितीर्थावगाहनात् ।
कोटिदेवार्चनादेवि ! परा श्रीपादुकास्मृतिः । महारोगे महो-
त्पाते महादोषे महाभये । महापदि महापापे स्मृता च गुरुपा-
दुका ॥ रुद्रजामले पूर्वखण्डे प्रथमपटले ॥ मायां लक्ष्मीं पुरो-
दत्त्वा सर्वत्र पूजने विधिः । पृथिव्यां भूमिवीजञ्च गन्धं समर्प-
येति च । आकाशात्मकं शम्भुवीजं नादविन्दुसमाहृतम् । पुष्पं
समर्पयामौति वायुवीजं ततः परम् ॥ पुरश्चरणरसोद्भासे षष्ठ-
पटले । गुरुपूजां विधायादौ स्रक्चन्दनविभूषणैः । अलङ्कारै-
र्विचित्रैश्च सुवर्णादिविनिर्मितैः । वसनैरतिसूक्ष्मैश्च शुक्लरत्नै-
स्तथापरैः । पीतैः कृष्णैश्च चार्वङ्गि ! पूजयेद् गुरुमुत्तमम् ।
चतुर्विधैर्भोजनैश्च स्वर्णपात्रैर्मनोहरैः । षोडशैरुपचारैश्च स्वर्णरा-
जतनिर्मितैः । पानपात्रैर्महेशानि ! शुद्धस्वर्णविनिर्मितैः । ताम्बू-
लैश्च सकर्पूरैर्नानागन्धसमन्वितैः । स्वर्णपात्रयुतैर्देवि ! शिवसिंहं
प्रपूजयेत् ॥ शिवसिंहं गुरुम् । अनेन विधिना देवि ! पूजयेज्ज-
गदीश्वरम् । अतः परं वरारोहे ! गुरुदारान् प्रपूजयेत् । षोडशै-
रुपचारैश्च इष्टदेवीं सुभक्तिभिः । आदौ गुरुं ततो देवीं सम्पूर्णं
पूजयेत् प्रिये ! ॥ एवं गुरुं ध्यात्वा अन्तर्यामिणैव पद्मपुष्पैः
समर्चयेदितिवचनाम्भानसोपचारैः सम्पूजयेत् । पूजामन्त्रस्तु
मातृकामेदतन्त्रे सप्तमपटले ॥ वाग्वीजञ्च महाभायां विष्णु-
शक्तिं समुचरेत् । हसखफ्फे तथानन्दभैरवस्य मनुं ततः । तस्य
शक्तेर्मनुं पश्चात्ततश्चैव सेहौ सेहौ । श्रीगुरोश्च तथा शक्तेर्मन्त्र-
मेतत् सुरेश्वरि ! । गुरुरानन्दनाथान्तश्चास्मान्ता शक्तिरीरिता ।
पूजयामौति देवेशि ! पूजाविधिरिति प्रिये ! ॥ अन्नदाकल्पेऽपि ॥
तारत्रयं समुच्चार्य हसखफ्फे ततः परम् । हसत्तमलवरयूः

हसखप्ते सेहौ ततः । अमुकानन्दनाथान्ते अमुकोद्देश्यनन्तरम् ।
 अस्वा श्रीपादकां दत्त्वा चिन्तयामि नमोऽन्तकः । अयं श्रीपा-
 दुकामन्त्रः सर्वोप्सितफलप्रदः । रुद्रजामलै पूर्वखण्डे प्रथम-
 पटले ॥ वितारच्च पुरो दत्त्वा शिवशक्तिक्रमकारकम् ॥ फाम्बिरे-
 कारविन्दुश्च शिवशक्तिक्रमेति च । भूमीन्दूवक्लिवायू च उका-
 रान्तं सुरेश्वरि ! । आनन्दनाथशक्तिश्च शिवश्च भुवनेश्वरः । स-
 विसर्गो महत्येव प्रकाशिनी परेत्यपि । वक्त्रेः कारलक्ष्मीर्माया
 सरस्वती श्रीपादुकां पूजयामीति स्मृत्वा पादुकाम् । जपमन्त्रस्तु
 रुद्रजामलै पूर्वखण्डे पञ्चदशपटले ॥ आनन्दनाथशब्दान्ते गुरुं
 डेऽन्तं समुद्धरेत् । नमः पदं ततो ब्रूयात् प्रणवं सवसिद्धिदम् ।
 महागुरोर्मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । वाक्सिद्धिर्वदना-
 भोजे गुरुमन्त्रप्रसादतः । शतमष्टोत्तरं नित्यं सहस्रं वा तथा-
 ष्टकम् । प्रजप्यार्पणमाकृत्य प्राणायामत्रयञ्चरेत् । वाग्भवेन ततः
 कुर्यात् प्राणायामविधिं मुदा । पूर्वोक्तान्नदाकल्पोक्तनीलतन्त्रो-
 क्तवचनाभ्यां वाग्भवोऽपि जपमन्त्र इति । सम्प्रदायक्रमेणा-
 ष्टोत्तरशतं सहस्रं वा गुरुमन्त्रं जप्त्वा वाग्भवेन प्राणायामत्रयं
 कृत्वा गुह्यातीत्यादिना जपं समर्थं स्तवकवचादिकं पठेत् ॥ स्तवी
 यथा ॥ शिरःस्थितसुपङ्कजे तरुणकोटिचन्द्रप्रभं वराभयकरा-
 म्बुजं सकलदेवतारूपिणम् । भजामि वरदं गुरुं किरणचारु-
 शोभोज्ज्वलं प्रकाशितपदद्वयाम्बुजमलक्तकोटिप्रभम् ॥ १ ॥ जग-
 ज्जयनिवारणं भुवनभोगमोक्षप्रदं गुरोः पदयुगाम्बुजं भजति
 यत्र योगे जयम् । भजामि परमं गुरुं नयनपद्ममध्यस्थितं भवा-
 न्निभयनाशनं शमनरोगकालक्षयम् ॥ २ ॥ प्रकाशितसुपङ्कजे
 सुदलषोडशाख्ये प्रभुं परापरगुरुं भजे सकलराज्यभोगप्रदम् ।
 विशालनयनद्वयाम्बुजतडिग्रभाभगण्डलं कङ्कारमणिपाटलद्युति-
 मदिन्दुविन्दिन्दुकम् ॥ ३ ॥ महौजसमुमापतेर्विगतदक्षभागे

हृदि प्रभाकरशतोज्ज्वलं सुविमलेन्दुकोऽननम् । भजामि
परमेष्ठिनं गुग्गुभीररावोत्वनं चलाचलकलेवरं प्रचपले दले
द्वादशे ॥ ४ ॥ गुर्वङ्गुप्रज्ञं शुभं मादनगणदहनं हेममञ्जीर-
सारं नानाशब्दाद्भुताक्लादितपरिचरणाचारुचक्रं त्रिभङ्गम् । नित्यं
ध्यायेत् प्रभाते अरुणशतघटाशोभनं योगगम्यं नाभौ पद्मे ति
कान्ते दशदलमणिमे भाव्यते योगिभिर्यत् ॥ ५ ॥ या माता मय-
दानवादिमुभुजा त्रिर्माणसीमा पुरे स्वाधिष्ठाननिकेतने रसदले
वैकुण्ठमूले मया । जम्बोद्वारविकारभावलहरी वेदप्रभा भा-
व्यते कन्दर्पापिर्पितशान्तियोनिजननी विष्णुप्रिया शाङ्करी ॥ ६ ॥
या भासानलकुण्डलीकुलपथोद्गमाभशोभाकरी मूले पद्मचतु-
र्दले कुलवती निष्वासदेशाश्रिता । साक्षात्काङ्क्षितकल्पवृक्ष-
लतिका सुप्ता स्वयम्भूप्रिया नित्या योगिभयापह्ना विषहरा गुर्व-
स्त्रिका भाव्यते ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वाभोरुहनिःसृतामृतघटामोदाज्जला-
प्लाविता गुर्वाद्या परिपातु सूक्ष्मपथगा तेजोमयी भास्वती ।
सूक्ष्मा साधनगोचरामृतमयी मूलादिशीर्षांस्त्र्यंशे पूज्या चेतसि
भाव्यते भुवि कदा साता सदोर्द्धोत्तमा ॥ ८ ॥ स्थितिपालनयोगेन
ध्यानेन पूजनेन वा । यः पठेत् प्रत्यहं व्याप्य स देवी न तु
मानुषः । कल्याणं धनदञ्चैव कीर्त्तिमायुर्यशः श्रियम् । सायाङ्गे
च प्रभाते च पठेद्यदि सुबुद्धिमान् । स भवेत् साधकश्चेष्टः
कल्पद्रुमकलेवरः । स्तवस्यास्य प्रभावेण वागीशत्वमवाप्नुयात् ॥
इति रुद्रजामले स्वशक्तिकगुरुस्तोत्रं समाप्तम् ॥

कुलमूलावतारकल्पसूचटीकायाम् ॥ प्रादुकापञ्चकस्तोत्र
स्याधिकश्लोको वर्त्तते । सोऽप्यत्र लिखितः । आदि कादि किल
खादि तारकं वर्णमण्डलमखण्डसिद्धिदम् । अन्तरुक्तसितहृत्चला-
क्षरं लक्षयन्ति पशवः कथं शिवे ! ॥ १ ॥ ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे
नित्यलम्बमवदातमङ्गुतम् । कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितं द्वाद-

शार्णसरसीरुहं भजे ॥ २ ॥ तस्य कन्दलितकर्णिकापुटे क्लृप्त-
 रेश्वमकथादिरेषया । कोणललितहलक्ष्मण्डलीभावलक्ष्मव-
 लामयं भजे ॥ ३ ॥ तत्पुटे पटुतङ्कितङ्गारिमस्यर्द्धमानमणिपाट-
 लप्रभम् । चिन्तयामि हृदि विन्मयं वपुर्विन्दुनादमणिपौठमण्ड-
 लम् ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वमस्य हुतमुक्शिखासखं तद्विलासपरिवृंहणास्यदं
 विश्वधस्मरमहोक्तवोक्तं व्यामृषामि युगमादिहंसयोः ॥ ५ ॥
 तत्र नाथचरणारविन्दयोः कुङ्कुमासवभरीभरन्दयोः । इन्द्रमिन्दु-
 मकरन्दशीतलं मानसं स्मरति मङ्गलास्यदम् ॥ ६ ॥ निषक्तम-
 णिपादुकानियमिताघकोलाहलस्फुरात्कशलयाकणं गन्धसमुल्ल-
 सच्चन्द्रकम् । परामृतसरोवरोदितसरोजसद्रोचिषं भजामि
 शिरसि स्थितं गुरुपदारविन्दद्वयम् ॥ ७ ॥ पादुकापञ्चकस्तोत्रं
 वञ्चवक्त्रादिनिर्गतम् । षडान्नायफलं प्राप्तं प्रपञ्चे चाति-
 दुर्लभम् ॥ इति शिवपञ्चवक्त्रादिनिर्गतं पादुकापञ्चकस्तोत्रं
 समाप्तम् ॥

कुजिकातन्त्रे ॥ अथ गुरुस्तोत्रम् ॥ श्रीं नमस्तुभ्यं महामन्त्र-
 दायिने शिवरूपिणे । ब्रह्मज्ञानप्रकाशाय संसारदुःखतारिणे ।
 अतिसौम्याय दिव्याय वीराय ज्ञानहारिणे । नमस्ते कुलना-
 थाय कुलकौलिन्यदायिने । शिवतत्त्वप्रबोधाय ब्रह्मतत्त्वप्रका-
 शिने । नमस्ते गुरवे तुभ्यं साधकाभयदायिने । अनाचारा-
 चारभावबोधाय भावहेतवे । भावाभावविनिर्मुक्तमुक्तिदात्रे
 नमो नमः । नमस्ते शम्भवे तुभ्यं दिव्यभावप्रकाशिने । ज्ञाना-
 नन्दस्वरूपाय विभवाय नमो नमः । शिवाय शक्तिनाथाय
 सच्चिदानन्दरूपिणे । कामरूपाय कामाय कामकेलिकलात्मने ।
 कुलपूजोपदेशाय कुलाचारस्वरूपिणे । आरक्तनिजतच्छक्ति-
 समभागविभूतये । नमस्तेऽस्तु महेशाय नमस्तेऽस्तु नमो नमः ।
 इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं साधको गुरुदिभुखः । प्रातरुत्थाय

देवेशि ! ततो विद्या प्रसीदति ॥ इति कुञ्जिकातन्त्रोक्तं गुरु-
स्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ गुरुकवचं कङ्कालमालिनीतन्त्रे ॥ देव्युवाच ॥ भूतनाथ !
महादेव ! कवचं तस्य मे वद । गुरुदेवस्य देवेश ! साक्षाद्ब्रह्म-
स्वरूपिणः ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथातः कथयामीशे ! कवचं मोक्ष-
दायकम् । यस्य ज्ञानं विना देवि ! न सिद्धिर्न च सद्गतिः ॥
ब्रह्मादयोऽपि गिरिजे ! सर्वत्र याजिनः स्मृताः । अस्य प्रसादात्
सकला वेदागमपुरःसराः । कवचस्यास्य देवेशि ! ऋषिर्विष्णु-
रुदाहृतः । छन्दो विराड् देवता च गुरुदेवः स्वयं शिवः ।
चतुर्वर्गज्ञानमार्गं विनियोगः प्रकीर्तितः । सहस्रारे महापद्मे
कर्पूरधवलो गुरुः । वामोऽस्थितशक्तिर्यः सर्वत्र परिरचतु ।
परमाख्यो गुरुः पातु शिरसं मम वल्लभे ! । परापराख्यो नासां
मे परमेष्ठी मुखं सदा । कण्ठं मम सदा पातु प्रह्लादानन्द-
नाथकः । बाह्वौ सनकानन्दः कुमारानन्द एव च । वशिष्ठा-
नन्दनाथश्च हृदयं पातु सर्वदा । क्रोधानन्दः कटिं पातु सुखा-
नन्दः पदं मम । ध्यानानन्दश्च सर्वाङ्गं बोधानन्दश्च कानने ।
सर्वत्र गुरवः पातु सर्वे ईश्वररूपिणः । इति ते कथितं भद्रे !
कवचं परमं शिवे ! । भक्तिहीने दुराचारे दत्त्वैतन्मृत्युमाप्नुयात् ।
अस्यैव पठनाद्देवि ! धारणात् श्रवणात् प्रिये ! । जायते मन्त्र-
सिद्धिश्च किमन्यत् कथयामि ते । कण्ठे वा दक्षिणे वाह्वी
शिखायां वीरवन्दिते ! । धारणान्नाशयेत् पापं गङ्गायां कल्मषं
यथा । इदं कवचमज्ज्ञात्वा यदि मन्त्रं जपेत् प्रिये ! । तत् सर्वं
निष्फलं कृत्वा गुरुर्याति सुनिश्चितम् । शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता
गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥ इति कङ्कालमालिनीतन्त्रे गुरुकवचं
समाप्तम् ॥

पुरश्चरणरसोक्तासि द्वितीयप्रश्ने दशमपटले ॥ ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् । लोकीपकारकं
 प्रश्नं न केनापि कृतं पुरा । अद्यप्रभृति कस्यापि नाख्यातं कवचं
 मया । देशिका बहवः सन्ति मन्त्रसाधनतत्पराः । न तेषां
 जायते सिद्धिर्मन्त्रैर्वा चक्रपूजनैः । गुरोर्विधानं कवचमज्ञात्वा
 क्रियते जपः । वृथा श्रमो भवेत्तस्य न सिद्धिर्मन्त्रपूजनैः । गुरु-
 पादं पुरस्कृत्य प्राप्यते कवचं शुभम् । तदा मन्त्रस्य यन्त्रस्य
 सिद्धिर्भवति तत्तत्तत्प्राप्तात् । सुगोप्यन्तु प्रजसव्यं न वक्तव्यं वरा-
 बने ! ॥ ॐ नमोऽस्य श्रीगुरुकवचनाममन्त्रस्य परमब्रह्मर्षिः
 सर्ववेदानुज्ञो देवदेव श्रीआदिशिषो देवता नमो हेसौं हंसः
 हसच्चमलवरयू वीजं सोऽहं हंसः हसच्चमलवरयू शक्तिः हंसः
 सोऽहं कीलकं श्रीसमस्तगुरुमण्डलप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।
 अथ ध्यानम् । श्रीसिद्धिमानवसुखा गुरवः स्वरूपं संसारदाहशमनं
 द्विभुजं त्रिनेत्रम् । वामाङ्गशक्तिसकलाभरणैर्विभूषं ध्यायिज्जपेत्
 सकलसिद्धिफलप्रदञ्च । इति मनसा प्रणम्य ॥ हसां हृदयाय नमः ।
 हसौं शिरसे स्वाहा । हसू शिखायै वषट् । हूं कवचाय हुं ।
 हेसौं नेत्रत्रयाय वीषट् । हसः श्रस्त्राय फट् । एवं कराङ्गन्यासं
 कृत्वा उपचारैः सम्पन्त्य । ॐ नमः प्रकाशानन्दनाथश्च शिखायां
 पातु मे सदा । परशिवानन्दनाथश्च शिरो मे रक्षयेत् सदा ।
 परशक्तिदिव्यानन्दनाथो भाले च रक्षतु । कामेश्वरानन्द-
 नाथो मुखं रक्षतु सर्वधृक् । दिव्यौघो मस्तकं देवि ! पातु
 सर्वं शिरः सदा । कण्ठादिनाभिपर्यन्तं सिद्धौघा गुरवः प्रिये ! ।
 भोगानन्दनाथगुरुः पातु दक्षिणबाहुकम् । समग्रानन्दनाथश्च
 सन्ततं हृदयेऽवतु । सहजानन्दनाथश्च कटिं नाभिश्च रक्षतु ।
 एषु स्थानेषु सिद्धौघा रक्षन्तु गुरवः सदा । अधरे मानवौघाश्च
 गुरवः कुलनायिके ! । गगनानन्दनाथश्च गुल्फयोः पातु सर्वदा ।
 नीलौघानन्दनाथश्च रक्षयेत्प्रादप्रहृतः । स्वात्मानन्दनाथगुरुः

पौदाङ्गुलीश्च रक्षतु । कन्दोलानन्दनाथश्च रक्षेत्पादतले सदा ।
इत्येवं मानवीघाश्च न्यसेन्नाभ्यादिपादयोः । गुरुर्मे रक्षयेदुर्व्यां
सलिले परमो गुरुः । परापरगुरुर्वङ्गी रक्षयेत् शिववल्गवे ॥
परमेष्ठौ गुरुश्चैव रक्षयेदायुमण्डले । शिवादिगुरवः साक्षादा-
काशे रक्षयेत् सदा । इन्द्री गुरुः पातु पूर्वं आग्नेय्यां गुरुरग्नयः ।
दक्षे यमो गुरुः पातु नैऋत्यां निऋतिर्गुरुः । वरुणो गुरुः पश्चिमे
च वायव्यां मारुतो गुरुः ॥ उत्तरे धनदः पातु ऐशान्यामीश्वरो
गुरुः । जङ्घां पातु गुरुर्ब्रह्मा अनन्तो गुरुरप्यधः । एवं दश दिशः
पान्तु इन्द्राद्या गुरवः क्रमात् । शिरसः पादपर्यन्तं पान्तु दिव्यौघ-
सिद्धयः । मानवीघाश्च गुरवो व्यापकं पान्तु सर्वदा । सर्वत्र
गुरुरूपेण संरक्षेत् साधकोत्तमम् । आत्मानं गुरुरूपञ्च ध्याये-
न्मन्त्रं सदा बुधः । इत्येवं गुरुकवचं ब्रह्मलोकेऽपि दुर्लभम् ।
तव प्रीत्या मयाख्यातं न कस्य कथितं प्रिये ॥ पूजाकाले पठेद्
यस्तु जपकाले विशेषतः । त्रैलोक्यदुर्लभं देवि ! भुक्तिसुक्ति-
फलप्रदम् । सर्वमन्त्रफलं तस्य सर्वयन्त्रफलं तथा । सर्वतीर्थ-
फलं देवि ! यः पठेत् कवचं गुरोः । अष्टगन्धेन भूर्जं च लिख्यते
चक्रसंयुतम् । कवचं गुरुपङ्क्तेस्तु भक्त्या च शुभवासरे । पूजये-
द्भूपदीपाद्यैः सुधाभिः सितसंयुतैः । तर्पयेद्गुरुमन्त्रेण साधकः
शुद्धचेतसा । धारयेत् कवचं देवि ! इह भूतभयापहम् । पठे-
न्मन्त्रो त्रिकालं हि स मुक्तो भवबन्धनात् । एवं कवचं परात्परं
दिव्यौघसिद्धौघकालवान् ॥ इति गुरुकवचं समाप्तम् ॥

शक्तश्चेत्तदा योगसारोक्तं गुरुसहस्रनामस्तोत्रमपि पठेत् ॥
इह तु ग्रन्थगौरवमिया तन्न लिखितम् ॥ रुद्रजामले ॥ एकान्त-
भक्त्या प्रणमेदायुरारोग्यवृद्धये । अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं
येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं

येन तस्मै श्रीगुरवे नमः । देवताया दर्शनञ्च करुणावरुणा-
लयम् । सर्वसिद्धिप्रदातारं श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् । वराभयकरं
नित्यं श्वेतपद्मनिवासिनम् । महाभयनिहन्तारं गुरुदेवं नमा-
म्यहम् । महाज्ञानाच्छादिताङ्गं मराकारं वरप्रदम् । चतु-
र्वर्गप्रदातारं स्थूलसूक्ष्मदयान्वितम् । सदानन्दमयं देवं नित्या-
ञ्जननिरञ्जनम् । शुद्धसत्त्वमयं देवं नित्यकालं कुलेश्वरम् ।
ब्रह्मरन्ध्रे महापद्मे तेजोविम्बे निराकुले । योगिभिर्योग-
गम्ये च चारुशुक्रविराजिते । सहस्रदलसङ्काशे कर्णिकामध्य-
मध्यके । महाशुक्तभास्वरार्ककोटिकोटीमहौजसम् । सर्व-
पौठस्थममलं परहंसं परात्परम् । वेदोद्धारकरं नित्यं काम्य-
कर्मफलप्रदम् । सदा मनःशक्तिमयलयस्थानपदाम्बुजम् ।
शरज्ज्योत्स्नाज्वलन्मालाशोभेन्दुकोटिवन्मुखम् । वाञ्छातिरिक्त-
दातारं सर्वसिद्धीश्वरं गुरुम् । भजामि तन्मयो भूत्वा तं हंस-
मण्डलोपरि । आत्मानं सुनिराकारं साकारब्रह्मरूपिणम् ।
विद्यामन्त्रप्रदातारं श्रीगुरुं परमेश्वरम् । सर्वसिद्धिप्रदातारं गुरु-
देवं नमाम्यहम् । कायेन मनसा वाचा ये नमन्ति निरन्तरम् ।
अवश्यं श्रीगुरोः पादाश्वोरुहे ते वसन्ति हि । प्रभाते कोटि-
पुण्यञ्च प्राप्नोति साधकोत्तमः । मध्याह्ने दशलक्षञ्च सायाह्ने-
ऽनन्तपुण्यदम् ॥ इति रुद्रजामले उत्तरखण्डे गुरुप्रणामस्तुति-
कथनम् ॥

नित्यं शुद्धं निरामासं निरकारं निरञ्जनम् । नित्यबोध-
चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् । आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम् । योगीन्द्रमीढं भवरोगवैद्यं
श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥ इति गुरुगीतोक्तसङ्गुरुप्रणामः ॥
निर्वाणतन्त्रे तृतीयपटले ॥ तुरीयधाम ! महादेव ! परमात्माशये
स्थितः । शिरःपद्मे स्थिते वाह्ये नमस्कारः कथं भवेत् ॥ शिव

उवाच ॥ शिरःपद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः । तत्समो
न तु देवेशि ! पूज्योऽस्ति भुवनत्रये । तद्रूपं चिन्तयेन्मन्त्री वाह्ये
गुरुचतुष्टयम् । तदंशभावसम्भूता ये चान्ये गुरवो जनाः । तथैव
ब्राह्मणाः सर्वे चांशावतारसंस्थिताः । यदैव वाह्ये चैतांश्च प्रत्यक्षे
भावयेत्तदा । सहस्रारि महापद्मे सदा चित्तं विवर्जयेत् । प्रत्य-
क्षदर्शने देवि ! साक्षात्तं ब्रह्म चिन्तयेत् । नमस्कारादिकं देवि !
कुर्यात् साधकसत्तमः । ब्राह्मणादीन् समालोक्य ब्रह्मचारि-
यतित्रयम् । दृष्टिमात्रेण गिरिजे ! प्रणमेद्दण्डवद्भुवि । महापातक-
युक्तोऽपि मुक्तो भवति नान्यथा । न कुर्याद् यदि मोहेन महा-
पातकवान् भवेत् । रक्तवस्त्रं समालोक्य तथा भस्माङ्गभूषणम् ।
दण्डहस्तं त्रिशूलञ्च दृष्ट्वा प्रदक्षिणत्रयम् । प्रकुर्यात् साधक-
श्रेष्ठश्चान्यथा पातकी भवेत् । इति वाह्यगुर्वादित्दर्शने जाते
तदानीं सहस्रारि गुरुचिन्तानिवेधः ॥ अथ स्त्रीगुरुध्यानं गुप्त-
साधनतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ पार्वत्युवाच ॥ गुरुध्यानं श्रुतं नाथ !
सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥ स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता सर्वकामफल-
प्रदा ॥ बहुजन्मार्जितात् पुण्यात् बहुभाग्यवशाद् यदि । स्त्रीगुरु-
र्लभ्यते नाथ ! तस्या ध्यानन्तु कौटुम्भम् । कुत्र वा सा गुरुर्ध्या-
योतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ कथयस्व महादेव ! यद्यहं तव
वत्सभा । शिव उवाच ॥ शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि तव स्नेहपरिप्लुतः ।
रहस्यं स्त्रीगुरोर्ध्यानं यथा ध्येया च सा गुरुः । सहस्रारि महा-
पद्मे किञ्चलकणशोभिते । प्रफुल्लपद्मपत्राक्षी घनपीनपयो-
धरा । प्रसन्नवदना क्षीणमध्या ध्यायेच्छिवां गुरुम् । पद्म-
रागसमाभासां रक्तवस्त्रसुशोभनाम् । रक्तकङ्कणपाणिञ्च रक्त-
नूपुरशोभिताम् । शरदिन्दुप्रतीकाशां रक्तोद्भासितकुण्डलान् ।
स्वनाथवामभागस्थां वराभयकरास्त्रुजाम् । इति ते कथितं
देवि ! स्त्रीगुरोर्ध्यानमुत्तमम् । गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाशं ।

कदाचन ॥ अथ स्तुतिः ॥ मातृकाभेदतन्त्रे सप्तमपटले ॥ देव्यु-
वाच ॥ स्तुतिञ्च कवचं नाथ ! श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
श्रीगुरोः कवचं प्रोक्तं त्वया नाथ ! पुरा प्रभो ! । इदानीं स्त्रीगुरोः
स्तोत्रं कवचं मयि कथ्यताम् । यस्य विज्ञानमात्रेण पुनर्जन्म न
जायते ॥ श्रीशिव उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं परम-
गोपनम् । यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः । नमस्ते
देवदेवेशि ! नमस्ते हरपूजिते ! । ब्रह्मविद्यास्वरूपायै तस्यै नित्यं
नमो नमः ॥ १ ॥ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
यया चक्षुरुन्मीलितं तस्यै नित्यं नमो नमः ॥ २ ॥ भवबन्धन-
पारस्य तारिणी जननी परा । ज्ञानदा मोक्षदा नित्यं तस्यै
नित्यं नमो नमः ॥ ३ ॥ श्रीनाथवामभागस्या सद्यः सुर-
पूजिता । सदा विज्ञानदात्री च तस्यै नित्यं नमो नमः ॥ ४ ॥
सहस्रारं महापद्मे सदानन्दस्वरूपिणी । महामोक्षप्रदा देवी
तस्यै नित्यं नमो नमः ॥ ५ ॥ ब्रह्मविष्णुस्वरूपा च महारुद्र-
स्वरूपिणी । त्रिगुणात्मस्वरूपा च तस्यै नित्यं नमो नमः ॥ ६ ॥
चन्द्रसूर्याग्निरूपा च भद्राधूर्णितलोचना । स्वनाथञ्च समा-
लिङ्ग्य तस्यै नित्यं नमो नमः ॥ ७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवत्वादिवीव-
न्मुक्तिप्रदायिनी । ज्ञानविज्ञानयोर्दात्री तस्यै श्रीगुरवे नमः
॥ ८ ॥ इदं स्तोत्रं महेशानि ! यः पठेन्नृत्तिसंयुतः । स सिद्धिं
लभते नित्यं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ प्रातःकाले पठेद् यस्तु
गुरुपूजापुरःसरम् । स एव धन्यो लोकेशो देवीपुत्र इव क्षिती ।
इति मातृकाभेदतन्त्रे स्त्रीगुरोः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

स्तोत्रं समाप्तं देवेशि ! कवचं शृणु सादरम् । यस्य स्मरण-
मात्रेण वागीशसमतां व्रजेत् । स्त्रीगुरोः कवचस्यास्य सदाशिव
ऋषिः स्मृतः । ताराख्या देवता ख्याता चतुर्वर्गफलप्रदा । लीं
वीजं चक्षुषोर्मध्ये सर्वाङ्गं मे सदावतु । ऐं वीजं मे मुखं

पातु ह्रीं जिह्वां परिरक्षतु । श्रीं वीजं स्कन्धदेशं मे हस्तप्रो-
 भुजद्वयम् । हकारः कण्ठदेशं मे सकारः षोडशं दलम् । क्षवर्ण-
 स्तदधः पातु लकारो हृदयं मम । वकारः पृष्ठदेशञ्च रकारो
 दक्षपार्श्वकम् । यूङ्कारो वामपार्श्वञ्च सकारो मेरुमेव च । ह-
 कारो मे दक्षभुजं क्षकारो वामहस्तकम् । मकारश्चाङ्गुलीं पातु
 लकारो मे नखं वतु । वकारो मे नितम्बञ्च रकारो जठरं वतु ।
 षोङ्कारः पादयुगलं हेसौः सर्वाङ्गं मेऽवतु । हेसौर्लिङ्गञ्च लोमानि
 केशञ्च परिरक्षतु । ऐं वीजं पातु पूर्वे मे ह्रीं वीजं दक्षिणे-
 ऽवतु । श्रीं वीजं पश्चिमे पातु उत्तरे भूतसम्भवम् । श्रीं पातु
 चाग्निकोणे च वेदाख्या नैऋतेऽवतु । देवास्त्रा पातु वायव्यां
 शम्भौ श्रीपादुकां तथा । पूजयामि तथा चोङ्गं नमश्चाधः सदा-
 ऽवतु । इति ते कथितं कान्ते ! कवचं परमाद्भुतम् । गुरुमन्त्रं
 जपित्वा तु कवचं प्रपठेद्यदि । ससिद्धः सगणः सोऽपि शिव एव
 न संशयः । पूजाकाले पठेद् यस्तु कवचं मन्त्रविग्रहम् । पूजा-
 फलं भवेत्तस्य सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ! । त्रिसन्ध्यं यः पठेद्देवि !
 स सिद्धो नात्र संशयः । भूर्जं विलिख्य गुलिकां स्पर्शस्त्रां धार-
 येद् यदि । तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः । विवादे
 जयमाप्नोति रणे च निऋतेः समः । सभायां जयमाप्नोति मम
 तुल्यो न संशयः । सहस्रारं भावयन् यस्त्रिसन्ध्यं प्रपठेद् यदि ।
 स एव सिद्धो लोकेशो निर्वाणपदमीयते । समस्तमङ्गलं नाम
 कवचं परमाद्भुतम् । यस्यै कस्यै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ।
 देयं शिष्याय शान्ताय चान्यथा पतनं भवेत् । अभक्तेभ्यश्च देवेशि !
 पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् । इदं कवचमज्ञात्वा दशविद्याश्च यो जपेत् ।
 स नाप्नोति फलं तस्य चान्ते च नरकं व्रजेत् । समाप्तं कवचं
 देवि ! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि । तव स्नेहातुबन्धेन किं मया
 न प्रकाशितम् ॥ इति साढकामिदतन्त्रे स्त्रीगुरुकवचं समाप्तम् ॥

अथ स्त्रीगुरुगीता ॥ कङ्कालमालिनीतन्त्रे द्वितीयपटले ॥
 पार्वत्युवाच ॥ लोकेश ! कथ्यतां देव ! गुरुगीता मयि प्रभो ! ।
 श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तारिणि ! वक्ष्यामि गीतां ब्रह्ममयीं
 पराम् । गुरुस्त्वं सर्वशास्त्राणामहमेव प्रकाशकः । त्वमेव गुरु-
 रूपेण लोकानां त्राणकारिणी । गया गङ्गा काशिका च त्वमेव
 सकलं जगत् । कावेरी यमुना रेवा करतोया सरस्वती ।
 गोमती चन्द्रभागा च त्वमेव कुलपालिके ! । ब्रह्माण्डं सकलं
 देवि ! कोटिब्रह्माण्डमेव च । न हि ते वक्तुमर्हामि क्रियाजालं
 महेश्वरि ! । उक्ता चोक्ता भावयित्वा भिक्षुकोऽहं नगात्मजे ! । कथं
 त्वं जननी भूत्वा बधूस्त्वं मम देहिनाम् । तव चक्रं महेशानि !
 अतीतं परमात्मनि । इति ते कथिता गीता गुरुदेवस्य ब्रह्मणः ।
 सङ्क्षेपेण महेशानि ! प्रभुरेव गुरुः स्वयम् । जगत् समस्तमास्थाय
 गुरुस्त्वेको हि केवलम् । इति तं तोषयित्वा च नुतिभिः स्तुति-
 भिस्तथा । नानाविधद्रव्यदानैः सिद्धः स्यात् साधकोत्तमः ॥ इति
 स्त्रीगुरुगीता समाप्ता ॥

अत्र प्रसङ्गप्राप्तगुरुपूजनमपि लिख्यते । बृहन्नौलतन्त्रे द्वि-
 तीयपटले ॥ गुरुपूजाविधानञ्च कथयामि वरानने ! । आदौ
 भद्रासनं दद्यात् पाद्यं दद्यात्ततः परम् । अर्घ्यं दद्याद्विशेषेण
 तथा चाचमनीयकम् । स्नानीयं वसनं दद्याद्बन्धुं पुष्पञ्च शो-
 भनम् । धूपञ्च गुग्गुलुं दद्याद्दीपं दद्यात् सुशोभनम् । चर्यं
 चोष्यं तथा लेह्यं पेयं दद्यान्मनोहरम् । नानाविधं फलं दद्या-
 न्नानारससमन्वितम् । भक्ष्यं भोज्यं विशेषेण दद्याच्चैव वरा-
 नने ! । पुष्पाणामञ्जलिं दद्याच्चन्दनेन समन्वितम् । शय्यां
 दद्यान्महेशानि ! विचित्रां सर्वमोहिनीम् । खट्वां दद्यान्महे-
 शानि ! विचित्राम्बरधारिणीम् । पादसेवां गुरोः कुर्यादति-
 यत्नेन सुन्दरि ! । गुरुवत् गुरुपुत्रेषु गुरुवत्तत्सुतादिषु ॥

अथ सपत्नीकगुरुपूजनम् ॥ पुरश्चरणरसीलासे दशमपटले ।
 आनीय स्वगुरुं देवि ! सपत्नीकं प्रयत्नतः । नानागन्धैर्युतैस्त्रै-
 रञ्जयेदङ्गयष्टिकाम् । स्नापयेद्विविधैः शुद्धैरुदकैः सुरपूजितैः ।
 दिव्यवस्त्रेण तद्गतात् सम्मान्यं वरवर्णिनि ! । पूजयेद्विविधैः
 पुष्पैर्गन्धैश्च विविधैस्तथा । धूपदीपैस्तथा पेयैस्ताम्बूलाद्यैः सुवा-
 सितैः । प्रकृत्या सह चार्वङ्गि ! पूजयेद्गुरुदेवतम् । गुरोरङ्गं
 महेशानि ! चन्दनैः परिलेपयेत् । गुरोः कण्ठे महेशानि ! मालां
 दद्याद्विलक्षणाम् । नानालङ्कारसुभगैः पूजयेद् गुरुदेवतम् । पट-
 वस्त्रादिभिर्देवि ! स्वर्णरत्नादिभूषणैः । तत्पत्नीं तोषयेद्भक्त्या
 साक्षात्तां जगदीश्वरीम् । शङ्खकङ्कणकैयूरनूपुरादिविलक्षणैः ।
 हारैरत्नमयैर्देवि ! तत्पत्नीं पूजयेत् प्रिये ! । तस्यास्तु वामतस्ति-
 छेद् भक्त्यापि च शुभिस्रिते ! । तुल्यं निष्कं प्रदद्याद्भै भक्त्या
 रत्नानि पार्वति ! । तन्मन्त्रं शृणु चार्वङ्गि ! अतिगुह्यं परात्य-
 रम् । कामवीजं समुद्धृत्य तस्याश्चाख्यानमुद्धरेत् । पुनः कामं
 समुद्धृत्य मन्त्रमेतदुदीरितम् । सपत्नीकं गुरुं देवि ! पूजयेद् यस्तु
 साधकः । अनेन विधिना देवि ! सम्पूज्य गुरुपादयोः । सह-
 स्रारं महेशानि ! तत्र कोषोपरि प्रिये ! । भावयेत्तु सपत्नीकं
 पूजयेद्गुरुराज्ञया । गुरोराज्ञां मूर्द्ध्नि धृत्वा एकधा पूजयेद्
 यदि । तदैव सहस्रा सिद्धिर्जायते वीरवन्दिते ! । अयुतं प्रजपेद्
 यस्तु किं तस्य शतकोटिभिः । एवन्तु प्रत्यहं कुर्याद् यावत्तत्तं
 समाप्यते । दिवालक्षं महेशानि ! पशुवत् साधकाग्रणीः । रात्रौ
 लक्षं जपित्वा तु दिव्यवीरमतैः प्रिये ! । समाप्य विधिवद्भक्त्या
 गुरुवे दक्षिणां ततः । दत्त्वा सिद्धिमवाप्नोति चन्द्रसूर्यग्रहेण
 किम् ॥

अथ सिद्धीधगुरुपंक्तिचिन्तनम् ॥ बृहन्नौलतन्त्रे द्वितीय-
 पटले ॥ सिद्धीधो गुरवो देवि ! दिव्यौघा गुरवस्तथा । मान-

वीधाः समासेन कथ्यन्ते गुरवस्तथा । ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो
नीलकण्ठो वृषध्वजः ॥ कुलचूडामणौ ॥ मूलादिब्रह्मरन्थान्तं
कुलं ध्यात्वा गुरुं स्मरेत् । प्रज्ञादानन्दनाथाख्यं सनकानन्दमेव
च । कुमाराणन्दनाथञ्च वशिष्ठानन्दनाथकम् । ओधानन्दमुखा-
नन्दौ ध्यानानन्दं ततः परम् । बोधानन्दं ततश्चैव ध्यायेत् कुल-
मुखोपरि । कुलमुखोपरि सहस्रारास्थितचन्द्रमण्डले इत्यर्थः ।
महारसरसोष्णसहृदया पूर्णलोचनाः । कुलालिङ्गमसंयुक्ताक्षूर्णि-
ताशेषतामसाः । कुलशिष्यैः परिवृताः पूर्णान्तःकरणोद्यताः । वरा-
भययुताः सर्वे कुलतन्त्रार्थवेदिनः । कुलमूलावतारकल्पसूत्रटी-
कायां तृतीयकाण्डे ॥ प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादिप्रातरन्ततः ।
यत् करोमि जगत्पथं तदस्तु तव पूजनम् ॥

इति प्राणतोषिण्यां तृतीयेऽर्थकाण्डे आचारसप्तकादि-
गुरुपंक्तिनिरूपणान्तरूपग्रन्थिकथनं नाम

प्रथमः परिच्छेदः ।

इति सर्वे गुरवै निवेद्य मनसा गुरोराज्ञां गृहीत्वा मूला-
धारकर्णिकान्तःस्थत्रिकोणान्तर्गताधोमुखस्वयंभूलिङ्गवेष्टिनीं प्र-
सुप्तभुजगाकारां सार्धत्रिबलयां विद्युत्पुच्छप्रभां नीवारशूकव-
त्तन्वीं कुलकुण्डलिनीं निजैष्टदेवतारूपां हृद्गारेण मनुना हंस
इति मनुना वा त्रिकोणमण्डलाग्निना पवनदहनयोगाच्चैतन्यं
विधाय ब्रह्मवर्त्मना सहस्रारं नीत्वा तत्रत्यं परशिवे संयोज्य तयोः
सामञ्जस्यं विभाव्यात्यन्तं श्यामारहस्योक्तम् । तद्यस्मात् तद्भुत-
कालिकाश्रुतिर्यथा ॥ मूलाधारे स्मरेन्नित्यं त्रिकोणं तेजसां
निधिम् । तस्याग्निरेखामानीय अथ ऊर्ध्वं व्यवस्थिताम् । नील-
तोयदमथस्थतडिङ्गेष्वेव भास्वराम् । नीवारशूकवत्तन्वीं पीतां
भास्वदनुपसाम् । नीवारशूकवदिति उडिधान्यसुज्ञा इति प्र-
सिद्धिः । तस्याः शिखाया मध्ये च परमोर्ध्वं व्यवस्थिताम् । स

ब्रह्मा स शिवः सूर्यः शङ्करः परमस्वराट् । स एव विष्णुः स
 प्राणः स कालाग्निः स चन्द्रमाः । इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्व-
 पापैः प्रमुच्यते । इति गुरोराज्ञां गृहीत्वेति प्रमाणशून्यलिख-
 नम् । कुण्डलीध्यानानन्तरं योगसारे ॥ मूलाधारे कुण्डलिनीं
 ध्यात्वा सम्पूजयेन्नरः । ध्यानं तथा प्रवक्ष्यामि येन योगी प्रजा-
 यते । ॐ प्रसुप्तभुजगाकारां स्वयम्भूलिङ्गमाश्रिताम् । विदु-
 त्कोटिप्रभां देवीं विचित्रवसनान्विताम् । शृङ्गारादिरसोक्तासां
 सर्वदा कारणप्रियाम् । एवं ध्यात्वा कुण्डलिनीं ततो यजेत्
 समाहितः । मनसा गन्धपुष्पाद्यैः सम्पूज्य वाग्भवं जपेत् ।
 ततो वै तपोपवेत्ताञ्च स्तुवेनानेन साधकः । रुद्रजामले ः अथ
 प्रातः समुत्थाय पशुरुत्तमपण्डितः । गुरुणां चरणाम्भोजमङ्गलं
 शीर्षपङ्कजे । विभाव्य पुनरेवं हि श्रीपदं भावयेद् यदि । पूज-
 यित्वा च विविधैरुपचारैर्नमेत् स्तुवैः ॥ त्रैलोक्यं तेजसा व्याप्तं
 मण्डलस्थां महोत्सवाम् । तडित्कोटिप्रभादीप्तिं चन्द्रकोटिसुशीत-
 लाम् । सार्धद्विबलयाकारस्त्रयम्भूलिङ्गवेष्टिताम् । उल्थापये-
 न्महादेवीं महावक्त्रां मनोन्मनीम् । श्वासोच्छ्वासादुदगच्छन्तीं
 द्वादशाङ्गलरूपिणीम् । योगिनीं खेचरीं वायुरूपां मूलास्त्रुज-
 स्थिताम् । चतुर्वर्णस्वरूपां तां पकारादिसमान्तकाम् । कोटि-
 कोटिसहस्रार्ककिरणोक्त्रलमोहिनौम् । महासूक्ष्मपथप्रान्तरा-
 न्तरान्तरगामिनीम् । त्रैलोक्यरक्षितां वाक्पदेवतां शब्दरूपि-
 णीम् । महाबुद्धिप्रदां देवीं सहस्रदलगामिनीम् । महासूक्ष्म-
 पथे तेजोमयीं सत्यस्वरूपिणीम् । कालरूपां ब्रह्मरूपां सर्वत्र
 सर्वचिन्मयीम् । ध्यात्वा पुनः पुनः शीर्षं सुधाब्धौ विनिवेष्टिताम् ।
 सुधापानं कारयित्वा पुनः स्थाने समानयेत् । समानयनकाले तु
 सुषुम्नामध्यमध्यके । अमृताभिप्लुतं कृत्वा पुनः स्थानेषु पूजयेत् ।
 ऊर्ध्वादुगमनकाले तु महातेजोमयीं स्मरेत् । प्रतिप्रयाणकाले तु

सुधाधाराभिराप्नुताम् । महाकुण्डलिनीं देवीममृतानन्दविग्र-
हाम् । ध्यात्वा ध्यात्वा पुनर्ध्यात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । तस्मिन्
स्थाने महादेवीं विभाव्य किरणोज्ज्वलाम् । अमृतानन्दमूर्तिं तां
पूजयित्वा शुभां मुदा । मानसोच्चारवीजेन मायां वा कामवीज-
कम् । पञ्चाशद्वर्णमालाभिर्जघ्नानुलोमतस्तथा । विलोमेन पुन-
र्जघ्ना सर्वत्र शुभदं स्तवम् । पठित्वा सिद्धिमाप्नोति तत् स्तोत्रं
शृणु भैरव ! ॥

अथ कुण्डलिनौस्तोत्रम् ॥ जन्मोद्धारिणि ! रक्षिणीह तस्मिन्
वेदादिवीजादिमा नित्यं चेतसि भाव्यते भुवि कदा महाक्यसञ्चा-
रिणी । मां सा तु प्रियदा सदा सविपदं सङ्घातय श्रौधरे धात्री
त्वं स्वयमादिदेववनिता दीनातिदौनं परम् ॥ १ ॥ रक्ताभामृत-
चन्द्रिका लिपिमयो सर्पाङ्गतिर्निद्रिता जाग्रद्वर्मसमाश्रिता भग-
वतौ त्वं सांशलोकाश्रयः । सांसोदुग्धकगन्धदोषजडितं वेदादि-
कार्यान्वितं सम्पात्त्यामलचन्द्रकोटिकिरणे नित्यं शरीरं कुरु
॥ २ ॥ सिद्धार्थो निजदोषवित् खलगतिर्व्याधोयते विद्यया कु-
ण्डल्याकुलमार्गयुक्तनगरी सायाङ्गमाज्ञाश्रया । यद्येवं भजति
प्रभातसमये मध्याह्नकालेऽथवा नित्यं यः कुलकुण्डलीनिज-
पदाम्भोजं स सिद्धो भवेत् ॥ ३ ॥ ये वाकाशचतुर्दलेऽतिविमले
वाष्काफलोन्मूलके नित्यं सम्प्रति नित्यदेशवटिता सङ्केतिता
भाविता । विद्याकुण्डलमालिनी स्वजननी सारक्रिया भाव्यते
यैस्तैः सिद्धिकुलोद्भवैः प्रणतिभिः कीर्त्या परं शम्भुभिः ॥ ४ ॥ वाचा
शङ्करमोहिनी त्रिपलयाच्छायापटोदगामिनीं साराभादिमहा-
सुखप्रहरणी नेत्रस्थिता योगिनी । सर्वग्रन्थिविभेदिनी सुभुजगा
सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा ब्रह्मज्ञानविनोदिनी कुलकुठाराघातिनी
भाव्यते ॥ ५ ॥ वन्दे श्रीकुलकुण्डलीं त्रिवलिभिः साङ्गं स्वयम्भू-
प्रियां प्रावेष्ट्यासुरसारचित्तचपलां बालाबलां निष्कलाम् । या देवी

परिभाति वेदवदना सन्भाषना भावना तामिष्टां शिरसि स्वय-
 भुवनितां सन्भावयामि क्रियाम् ॥६॥ वाणीकोटिमृदङ्गनादमदना
 निःश्रेणिकोटिध्वनिः प्राणेशैवशवाममूलकमलोत्तासैकपूर्णनना ।
 आषाढोद्भवमेघराजनियुतध्वान्तान्तरस्थायिनी माता सा परि-
 पातु सूक्ष्मपथगे । मां योगिनं संस्कुर्व ॥ ७ ॥ त्वामाश्रित्य नरा
 व्रजन्ति सहसा वैकुण्ठकैलासयोरानन्दैकविलासिनीं शशिगता-
 नन्दाननां कारणम् । मातः ! श्रीकुलकुण्डलिप्रियकले ! काली-
 कुलोद्दीपने ! भूयस्त्वां प्रणमामि रुद्रवनिते ! मामुद्धर त्वं पथि
 ॥ ८ ॥ कुण्डलीशक्तिमार्गस्थं स्तोत्राष्टकं महाफलम् । यः पठेत्
 प्रातरुत्थाय स योगी भवति ध्रुवम् । क्षणादेव हि पाठेन कवि-
 नाथो भवेदिह । परत्र कुण्डलीयोगाद्ब्रह्मलौको भवेन्नहान् ।
 इति ते कथितं नाथ ! कुण्डलीकोमलस्तवम् । एतत्स्तोत्रप्रसा-
 देन देवेषु गुरुगीष्यतिः । सर्वे देवाः सिद्धियुक्ता अस्याः स्तोत्र-
 प्रसादतः । द्वापराईचिरञ्जीवी ब्रह्मा सर्वसुरेश्वरः । त्वच्चापि
 मम निकटे स्थितो भगवतीपतिः । मां विद्धि परमां शक्तिं
 स्थूलसूक्ष्मस्वरूपिणीम् । सर्वप्रकाशकरणीं विन्ध्यपर्वतवासि-
 नीम् । हिमालयस्रुतां सिद्धां सिद्धमन्त्रस्वरूपिणीम् । वेदान्त-
 शक्तितन्त्रस्थां कुलतन्त्रार्थगामिनीम् । रुद्रजामलमभ्यस्थां स्थिति-
 स्थापकभावनाम् । पञ्चमुद्रास्वरूपाञ्च शक्तिजामलमालिनीम् ।
 रत्नमालाबलाकाब्जां चन्द्रसूर्यप्रकाशिनीम् । सर्वभूतमहाबुद्धि-
 दायिनीं दानवापह्वाम् । स्थित्युत्पत्तिलयकरीं कर्णसागर-
 स्थिताम् । महामोहनिवासाब्जां दामोदरशरीरगाम् । कृत्वा-
 चामररत्नाब्जां महाशूलकरां पराम् । ज्ञानदां बुद्धिदां विद्यां
 रत्नमालाकलापदाम् । सर्वतेजःस्वरूपां मामनन्तकोटिविष-
 हाम् । दरिद्रधनदां लक्ष्मीं नारायणमनोरमाम् । सदा भावय

शम्भो ! त्वं योगनायक ! पण्डित ! ॥ इति रुद्रजामले उत्तरखण्डे
कुण्डलीस्तोत्रं समाप्तम् ।

कुण्डलिन्यां स्तोत्रान्तरं योगसारे तृतीयपटले ॥ ओं नमस्ते
देवदेवेशि ! योगीशप्राणब्रह्मे ! सिद्धिदे ! वरदे ! मातः ! स्वयम्भू-
लिङ्गवैष्टिते ॥ १ ॥ ओं प्रसुप्तभुजगाकारे ! सर्वदा कारणप्रिये ! ।
कामकलान्विते ! देवि ! ममाभौष्टं कुरुष्व च ॥ २ ॥ असारे घोर-
संसारे भवरोगात् कुलेश्वरि ! । सर्वदा रक्ष मां देवि ! जन्म-
संसारसागरात् ॥ ३ ॥ इति कुण्डलिनोस्तोत्रं ध्यात्वा यः प्रप-
ठेत् सुधीः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो भवसंसाररूपके ॥ इति कुण्ड-
लिनोस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ कुण्डलिनीकवचम् ॥ रुद्रजामले उत्तरखण्डे पञ्चत्रिंश-
त्यटले ॥ श्री आनन्दभैरव्युवाच ॥ अथ वक्ष्ये महादेव ! कुण्डली-
कवचं शुभम् । परमानन्दं सिद्धं सिद्धवृन्दनिषेवितम् । यद्वत्वा
योगिनः सर्वे धर्माधर्मप्रदर्शकाः । ज्ञानिनो मानिनो धीरा
विचरन्ति यथा नराः । सिद्धयोऽप्यणिमाद्याश्च करस्थाः सर्व-
देवताः । एतत्कवचपाठेन देवेन्द्रो योगिराड्भवेत् । ऋषयो
योगिनः सर्वे जटिलाः कुलभैरवाः । प्रातःकाले त्रिवारक्ष
मध्याह्ने वारयुग्मकम् । सायाह्ने वारमेकस्तु पठेत् कवचमेव च ।
पाठादेव महायोगी कुण्डलीदर्शनं लभेत् । कुण्डलीकवचस्य
ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः कुण्डलीदेवता सर्वाभौष्टसिद्ध्यर्थे
विनियोगः । ओमीश्वरी जगद्धात्री ललिता सुन्दरी परा ।
कुण्डली कुलरूपा तु पातु मां कुलचण्डिका । शिरो मे ललिता
देवी पातूपाख्या कपोलकम् । ब्रह्मरन्ध्रेण पुटितं म्रूमध्यं पातु
मे सदा । नेत्रत्रयं महाकाली कालाग्निभक्षिका शिखाम् । दन्ता-
वलीं विशालाक्षी ओष्ठमिष्टान्नवासिनी । कामवीजाक्षिका
विद्या अधरं पातु मे सदा । इत्यण्डस्या चाण्डयुग्मं मायावीजा

रसप्रिया । भुवनेशौ कर्णयुग्मं चिवुकं क्रोधकालिका । कपिला
मे गलं पातु सर्वबीजस्वरूपिणी । मातृकावर्णपुटिता कुण्डली
कल्पमेव च । हृदयं कालपुत्री च कङ्काली पातु मे सुखम् । भुज-
युग्मं चण्डदुर्गा चण्डदोर्दण्डखण्डिनी । स्कन्धयुग्मं पातु देवी
चिवुकं क्रोधकालिका । अङ्गुल्यग्रं कुलानन्दा श्रीविद्या नख-
मण्डलम् । कालिका भुवनेशानी पृष्ठदेशं सदाऽवतु । पार्श्वयुग्मं
महावीरा वीरासनधराऽभया । मातु मां कुलदर्भस्था नाभिमुदर-
मल्लिका । कटिदेशं पृष्ठसंस्था महामहिषघातिनी । लिङ्गस्थानं
महामुद्रा भगमाला मनुप्रिया । भगीरथप्रिया धूम्रा मूलाधारं
गणेश्वरी । चतुर्दलं कामविद्या दलाग्रं मे वसुन्धरा । धीर्धरा
धारणाख्या च ब्रह्माणी पातु मे सुखम् । भेदिनी पातु कमला
वाग्देवी पूर्णगं दलम् । छेदिनी दक्षिणे पार्श्वे पातु चण्डा
महातपाः । चण्डवण्टा सदा पातु योगिनी वासुणं दलम् ।
उत्तरस्थं दलं पातु पृथिवीमिन्द्रलालिताम् । चतुष्कोणं काम-
विद्या ब्रह्मविद्याष्टकोणकम् । अष्टदलं सदा पातु सर्ववाहन-
वाहना । चतुर्भुजा सदा पातु डाकिनी कुलचञ्चला । मेदस्थ-
मदनाधारा पातु मे चारुपङ्कजम् । स्वयम्भूलिङ्गं चार्वङ्गी कोट-
राक्षी ममासनम् । कदम्बवनगा पातु कदम्बवनवासिनी ।
वैष्णवी परमा माया पातु मे वैष्णवं पदम् । षड्दलं राकिणी
पातु रङ्गिनी कामवासिनी । कामेश्वरी कामरूपा क्षणं मे
पीतवाससम् । धनुः सा वनदुर्गा मे शङ्खं मे शङ्खिनी शिवा ।
चक्रं चक्रेश्वरी पातु कमलाक्षी गदां मम । पद्मं मे पद्मगन्धा
च पद्ममालामनोहरा । वादिसान्ताक्षरं पातु लाकिनी लोक-
पावनी । षड्दलस्थितदेवांश्च पातु कैलासवासिनी । अग्निवर्णां
सदा पातु गलं मे परमेश्वरी । मणिपूरं सदा पातु मणिमाला-
विभूषणा । दशपत्रं दशवर्णं कादिफान्तं त्रिविक्रमा । पातु

नीला महाकाली भद्रा भीमा सरस्वती । अयोध्यावासिनी देवी
महापौठनिवासिनी । वाग्भवाद्या महाविद्या कुण्डली काल-
रूपिणी । दशच्छदशतं पातु रुद्रं रुद्रात्मकं मम । सूक्ष्मा सूक्ष्म-
तरा पातु सूक्ष्मस्थाननिवासिनी । लाकिनी लोकजननी पातु
कूटाक्षरान्विता । तेजसं पातु नियतं रजकी राजपूजिता ।
विजया कुलवौजस्था तवर्गं तिमिरापहा । चन्द्रात्मिका मणिग्रन्थिं
भेदिनी पातु सर्वदा । भगमाला भृगुसुता पातु मां नाभिवा-
सिनी । नन्दिनी पातु सकलं कुण्डली कालकल्पिता । हृत्पद्मं
पातु कालाख्या धूम्रवर्णा मनोहरा । दलदादशवर्णञ्च भास्करी
भावसिद्धिदा । पातु मे परमा विद्या कवर्गं कामचारिणी ।
चवर्गं चारुरसना व्याघ्राख्या टङ्गधारिणी । ठकारं पातु कृ-
ष्णाख्या काकिनीं पातु कालिका । ठङ्कुराङ्गी ठकारं मे वीज-
भाषा महोदया । ईश्वरं पातु विमला मम हृत्पद्मवासिनी ।
कालिकां कालसन्दर्भा योगिनी योगमातरम् । इन्द्राणी वारुणी
पातु कुलमाला कुलान्तरम् । तारिणी शक्तिमाता च कण्ठवाक्मं
सदाऽवतु । विप्रचित्ता महोद्योया प्रभादीप्ता घनामला । वाक्-
स्तम्भिनी वज्रदेहा वैदेही वृषवाहिनी । उन्मत्ता नन्दचित्ता च
कुलेशी सा भगतुरा । मम षोडश पदाणि पातु मातृतया स्थिता ।
सुरान् रक्षतु वेदज्ञा सर्वभाषा च कालिकाम् । ईश्वराङ्गीसज-
गता प्रपायान्मे सदाश्रिवा । शाकम्भरी महामाया शाकिनी
पातु सर्वदा । भवानी भवमाता च पयोदुमध्यपङ्कजम् । द्विदलं
व्रतकामाख्या अष्टाङ्गसिद्धिदायिनी । पातु मामखिलानन्दा
मनोरूपा जपप्रिया । लकारं लक्ष्मणाक्रान्ता सर्वलक्षणलक्षणा ।
क्षणाजिनधरा देवी क्षकारं पातु सर्वदा । द्विदलस्थं सर्वदेवं
सदा पातु वरानना । बहुरूपा विश्वरूपा ह्यकिनी पातु
चण्डिका । हरा परशिवं पातु मानसं पातु पद्ममी । षट्चक्रस्था

सदा पातु षट्चक्रकुलवासिनी । अकारादिचकारान्ता विन्दु-
सर्गसमन्विता । मातृकार्णा सदा पातु कुण्डली ज्ञानकुण्डली ।
पूर्णकाली गतिप्रेता पूर्णगिरितटं शिवा । उड्डीयानेश्वरी
देवी सकलं पातु सर्वदा । कैलासपर्वतं पातु कैलासगिरिवा-
सिनी । डाकिनी राकिणी शक्तिर्लाकिनी काकिनी कला ।
साकिनी हाकिनी देवी षट्चक्रादीन् प्रपातु मे । कैलासाख्यं
सदा पातु पञ्चाननतनूद्भवा । हिरण्यवर्णा रजनी चन्द्रसूर्याग्नि-
भक्षिणी । सहस्रदलपद्मं मे सदा पातु कुलाकुला । सहस्रदल-
पद्मस्था दैवतं पातु भैरवी । काली तारा षोडशाख्या मातङ्गी
पद्मवासिनी । शशिकोटिगलद्रूपा पातु मे सकलां तनुम् । रणे
घोरे जले दोषे बुद्धे वादे श्मशानके । सर्वत्र गमने ज्ञाने सदा
मां पातु शैलजा । पर्वते विविधावासे विनाशे पातु कुण्डली ।
पदादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सर्वाकाशा सुरेश्वरी । सदा पातु सर्वविद्या
सर्वज्ञानं सदा मम । नवलक्ष्महाविद्या दशदिक्षु प्रपातु माम् ।
इत्येतत् कवचं देवि ! कुण्डलिन्याः प्रसिद्धिदम् । ये पठन्ति
ध्यानयोगे योगमार्गव्यवस्थिताः । ते यान्ति मोक्षपदवीमैहिके-
नात्र संशयः । मूलपद्मे मनोयोगं कृत्वा दृढासनस्थितः ।
मन्त्री ध्यायेत् कुण्डलिनीं सूक्ष्मपद्मप्रकाशिनीम् । धर्मोदया
दयारूढासाकाशस्थानवासिनीम् । अमृतानन्दरसिकां विकलां
सकलां सिताम् । असितां रक्तरहितां विरक्तां रक्तविग्रहाम् ।
रक्तनेत्रां कुलक्षिप्तां ज्ञानाकुलजलोज्ज्वलाम् । विप्रकारां मनो-
रूपां मूले ध्यात्वा प्रपूजयेत् । यो योगी कुरुते एवं स सिद्धो
नात्र संशयः । रोगी रोगात् प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
वस्तु प्रियमवाप्नोति वस्तुहीनः पठेद् यदि । पुत्रहीनो लभेत्
पुत्रं योगहीनो भवेद्दृशौ । कवचं धारयेद्यस्तु शिखायां दक्षिणे
भुजे । वामा वामकरे धृत्वा सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् । स्वर्णं रौप्ये

तथा ताम्रं स्थापयित्वा प्रपूजयेत् । सर्वदेशे सर्वकाले पठित्वा
सिद्धिमाप्नुयात् । स भूयात् कुण्डलीपुत्रो नात्र कार्या विचार-
णा ॥ इति रुद्रजामले उत्तरखण्डे कन्दवासिनीकवचं समा-
प्तम् ॥

तत आचारात् खेष्टदेवताप्रणाममन्त्रेण कुण्डलिनीं मत्वा
दशसु द्वारेषु चौरगणेशमन्त्रं कवाटवन् न्यसेत् तदुक्तं गणेशविम-
र्षिण्याम् ॥ चक्षुर्द्वयं तथा कर्णद्वयं नासापुटद्वयम् । मुखं नाभिं
लिङ्गमूलं गुदस्थानं तथैव च । मनोद्वारं भ्रुवोर्मध्ये दशैव द्वार-
संज्ञिताः । अङ्गुशं प्रथमं बीजं हृदये दशधा जपेत् । प्रजपान्ते
ततो मातः ! कवाटं निक्षिपेत्ततः । कर्णयोश्च तथा कूर्चं कालीं
नासापुटे ततः । मुखे स्त्रीं द्विविधं बीजं नाभौ वाणीं ततो
जपेत् । हेसौः बीजं लिङ्गमूले व्लुं मूले परिकीर्तितम् । ॐ-
कारश्च भ्रुवोर्मध्ये मनःस्थाने तथैव च । एतदेकादशं बीजं प्रति-
द्वारे कवाटवत् ॥ चौरगणेशमन्त्रं न जप्त्वा कर्ममात्रं न
कुर्यात् । यदि कुर्यात्तदा दोष उक्तो वर्णविलासतन्त्रे ॥ गणेश
उवाच । अधुनाहं प्रवक्ष्यामि चौरमन्त्रमतः शृणु । चौरमन्त्र-
परिज्ञानं विना हे ब्राह्मणीश्वरि ! । पुराणं प्रपठेद्यस्तु स एव
मूर्त्तिमान् कलिः । परजन्तानि प्रापिष्ठः स भवेच्चौरकुङ्कुरः ।
शिवपूजा विष्णुपूजा शक्तिपूजा तथैव च । सर्वपूजासु यत्तेजो
हरति गणपः स्वयम् । पञ्चाशदगणदेवानां ज्योतींषि मुनि-
पुङ्गवाः । प्रतिद्वारपथे गत्वा प्रतिपद्मेषु जृम्भते । हरन्ति जप-
तेजासि प्रतिपद्मेषु संस्थिताः । जपपूजासु यत्तेजस्तत्र चौर-
गणाधिपः । तस्माच्चौरप्रबोधार्थं चौरमन्त्रान् जपेद्दश । ततस्तु
पूजयेद्बीजान् यस्य या इष्टदेवताः । ततः फलमवाप्नोति ब्रह्मादि-
त्रिदिवीकसः । चौरमन्त्रं महामन्त्रं पञ्चाशदगणतोषणम् । चौर-
मन्त्रं विना भद्रे ! शान्तिस्त्रस्थयनं कुतः । कर्णद्वयं तथा चक्षुर्द्वयं

नासामुखं ततः । नाभिस्थाने लिङ्गमूले गुदस्थाने तथैव च । मनोद्वारे भ्रुवोर्मध्ये दशैकं द्वारमौरितम् । प्रतिद्वारे न्यसेन्मन्त्रं चौराख्यं ब्राह्मणीश्वरि । । चौरमन्त्रश्चाह भद्रे ! प्रतिद्वारे कवाट-
वत् । रहस्यं ते प्रवक्ष्यामि पञ्चाशद्वर्णतोषणम् । अङ्गुशं पञ्चमं वीजं प्रथमे दशधा जपेत् । प्रजप्य सुभगे ! मातः ! कवाटं निश्चि-
पेत्ततः । अन्यथा अङ्गुशैर्वीजैः कवाटं भेदिरे गणाः । चन्द्रिकान्त-
र्गता नित्यं शङ्करं वरसुन्दरम् । चन्द्रिका सुषमा सीता शिञ्जिनी
अणिमागुणा । चन्द्रविन्दात्मिका नित्या गणेशपरिपूजिता । क्लीं क्लीं
वीजद्वयमिति विन्यसेन्नयनद्वये । कर्णयोश्च तथा क्लीं क्लीं हुं हुं
नासाद्वये तथा । मुखे स्त्रीं द्विविधं वीजं नाभौ क्लीं सुभगेश्वरि । ।
हेसौर्वीजं लिङ्गमूले गुदे व्युं परिकीर्तितम् । इङ्गारश्च भ्रुवो-
र्मध्ये मनःस्थाने तथैव च । एतदेकादशद्वारे चौरमन्त्राणि
विन्यसेत् । दशधा चौरमन्त्रश्च एकधा वापि वीजकम् । अनेनैव
जपेनापि प्रतिद्वारे कवाटकम् ॥ जपकालोऽपि तत्रैव ॥ शृणु
चापि प्रवक्ष्यामि मन्त्रस्य जपनिर्णयम् । प्रातःकाले च शय्यायां
मुक्तस्त्रापः स्वदेहके । पूर्ववन्धाटकान्यासं विन्यसेन्धाटकाख्ये ।
तथा एकादशद्वारे चौरमन्त्राणि विन्यसेत् । दशधा चौरमन्त्रश्च
एकधा वापि सञ्जपेत् । चौरमन्त्रजपात् तुष्टिर्गणेशस्य तदा भवेत् ।
यमस्य नाधिकारोऽपि चौरमन्त्रजपात् प्रिये ! । सर्वमन्त्रजपा-
त्तेजः सर्वस्मात् समुपस्थितम् । तत्तेजोहरणे शक्तिर्गणेशस्य न
चैव हि ॥ इति ॥

अथ प्रयोगः ॥ हृदि क्रोमिति दशधा जपेत् दक्षिणचक्षुषि
क्लीं क्लीमिति ॥ १० ॥ वामचक्षुषि क्लीं क्लीमिति ॥ १० ॥ दक्षकर्णे
क्लीं क्लीमिति ॥ १० ॥ वामकर्णे ह्रीं ह्रीमिति ॥ १० ॥ दक्षिणनासायां
हुं हुं इति ॥ १० ॥ वामनासायां हुं हुं इति ॥ १० ॥ मुखे
क्लीं क्लीं क्लीं ह्रीं ह्रीमिति ॥ १० ॥ नाभौ ऐं लीमिति ॥ १० ॥

लिङ्गे ह्रीः इति ॥ १० ॥ गुह्ये व्लुमिति ॥ १० ॥ भ्रूमध्ये
 ह्रमिति ॥ १० ॥ सर्वत्र दशधा जपेत् ॥ ततः स्थाने स्थानेऽजपा-
 मन्त्रसमर्पणं कुर्यात् ॥ कुलमूलावतारकल्पसूचटीकायां तृतीय-
 काण्डे अस्याजपागायत्रीमन्त्रस्य शिरसि हंस ऋषये नमः ॥
 मुखे अक्षयगायत्रीच्छन्दसे नमः ॥ हृदि परमहंसदेवतायै
 नमः । लिङ्गे हं वीजाय नमः ॥ आधारे सः शक्तये नमः । पर-
 मात्मप्रीतये उच्छ्वासनिश्वासाभ्यां षट्शताधिकैकविंशतिसहस्र-
 जपेन पूर्वभूतेभ्यो निवेदयामि । मूलाधारमण्डपे स्वर्णवर्णचतु-
 र्दलपद्मे वादिसान्तचतुर्वर्णान्विते गायत्रीसहिताय गणनाथाय
 षट्शतसंख्यजपमहर्निशं समर्पयामि नमः । स्वाधिष्ठानमण्डपे
 अनेकविद्युन्निभे वादिलान्तषड्वर्णान्विते षड्दलपद्मे सावित्री-
 सहिताय ब्रह्मणे अजपासन्तषट्सहस्रं निवेदयामि नमः ।
 मणिपूरमण्डपे नीलोत्पलमेघनिभे डादिकान्तदशवर्णान्विते
 दशदलपद्मे लक्ष्मीसहिताय विष्णवे षट्सहस्रजपं समर्पयामि
 नमः । अनाहतमण्डपे तरुणरविनिभे द्वादशवर्णयुते द्वादश-
 दलपद्मे गौरीसहिताय शिवाय अजपाषट्सहस्रजपं समर्प-
 यामि नमः । विशुद्धमण्डपे षोडशदलकर्णिकामध्ये जीवात्मने
 अकारादिअकारान्ते अजपासहस्रसंख्यजपं निवेदयामि नमः ।
 आज्ञामण्डपे श्रीचन्द्रप्रभे द्विदलपद्मे हृत्तवर्णान्विते मायासहित-
 गुरुमूर्तये एकसहस्रजपं निवेदयामि नमः । ब्रह्मरन्ध्रमण्डपे
 नानावर्णोज्ज्वले सहस्रशब्दोऽसंख्यपर इति बोध्यम् । उक्तञ्च
 पद्मं कोटिसमन्वितमिति । सहस्रपद्मस्थिताय परमात्मने
 अकारादिक्षकारान्तसहिताय एकसहस्रजपं निवेदयामि नमः ।
 इति जपं समर्थं अष्टोत्तरशतसंख्यमजपाजपं कुर्यात् । अका-
 रादिक्षकारान्ता वर्णा हंस इति शिवशक्तिविन्दुना ब्रह्माणं अ
 इति विसर्गरूपविन्दुभ्यां हरिहरयोरभेदः । सोऽहमित्यभेद-

भावनया ब्रह्मरूपता स्वं स्वं परिभाव्य उक्तः । षट्शताधिकैक-
विंशतिसहस्रजपेन परदेवतारूपः श्रीपरमेश्वरः प्रीयतामित्येक-
वारं सङ्कल्प्य हंसस्य ध्यानं यथा ॥ आराधयामि मणिमन्त्रिभ-
मात्मलिङ्गं मायापुरीहृदयपङ्कजसन्निविष्टम् । अद्भानदीविमल-
चित्तजलावगाहं नित्यं समाधिकुसुमैरपुनर्भवाय ॥ प्रसङ्गाज्ज-
परहस्यं लिख्यते । पञ्चाशद्वर्णसम्पृष्टत्वेनानुलोम्यप्रातिलोम्येन
ब्रह्मरूपं मेरुं चकारं परिकल्प्य तया सह जपं कुर्यादिति
दोषलेशैर्न बाध्यते । एतेन विश्वमेव हंसमात्मकयोरेकाकारेण
कालात्मना लोके चिदात्मा उच्यते । अजपाविधानं विना श्रीविद्या-
दिसकलविद्याया अनधिकारी भवेत् । तदुक्तम् । हंसज्ञानविमु-
ग्धेन कृतमप्यकृतं भवेत् । इति । तद्वृत्तपङ्ककोषराघवमदृष्टत-
न्वान्तरदक्षिणामूर्तिसंहितासप्तमपटलेषु । अजपाधारणं देवि !
कथयामि तवानघे ! । यस्य विज्ञानमात्रेण परं ब्रह्मैव देशिकः ।
हंसः पदं परेशानि ! प्रत्यहं प्रजपेन्नरः । मोहरन् न जानाति
मोक्षस्तस्य न विद्यते । श्रीगुरोः कृपया देवि ! ज्ञायते जप्यते
यदा । उच्छ्वासनिश्वासातया तदा बन्धक्षयो भवेत् । उच्छ्वासे
चैव निश्वासे हंस इत्यक्षरद्वयम् । तस्मात् प्राणस्तु हंसात्मा
आत्माकारेण संस्थितः । नाभेरुच्छ्वासनिश्वासात् हृदयाग्नेर्व्यव-
स्थितिः ॥ अहोरात्रमध्ये ऽजपाजपसंख्यापि तत्रैव । षष्टिश्वासै-
र्भवेत् प्राणः षट् प्राणा नाडिका मता । षष्टिनाद्या अहोरात्रं
जपसंख्याक्रमो मतः । एकविंशतिसाहस्रं षट्शताधिकमौश्वरि ! ।
जपते प्रत्यहं प्राणी सान्द्रानन्दमयीं पराम् । उत्पत्तिश्च जपा-
रम्भो मृत्युस्तस्य निवेदनम् । अजपानामकारणमपि तत्रैव ।
विना जपेन देवेशि ! जपो भवति मन्त्रिणः । अजपयं ततः
प्रोक्ता भवपाशनिक्षन्तनी । एवं जपं महेशानि ! प्रत्यहं विनि-
वेदयेत् । गणेशब्रह्मविष्णुभ्यो हराय परमेश्वरि ! । जीवा-

त्मने क्रमेणैव तथैव परमात्मने । षट् शतानि सहस्राणि सहस्रञ्च
 तदेव हि । पुनः सहस्रं गुरवे क्रमेण च निवेदयेत् । एवं यथा
 स्थानावस्थितेभ्यो गणेशादिभ्यस्तज्जपसमर्पणमुक्त्वा तत्तत्-
 स्थानानां तत्तदवस्थितमाढकार्णानाञ्च रूपमाह तत्रैव ॥ आधारे
 स्पर्णवर्णंऽस्मिन् वादिसान्तानि संस्मरेत् । द्रुतसौवर्णानि तथा
 वर्णानि परमेश्वरि ! । स्वाधिष्ठाने विद्रुमामे वादिलान्तानि च
 स्मरेत् । विद्युत्पुञ्जप्रभाभाणि सुनीले मणिपूरके । उफान्तानि
 महानीलप्रभाणि च विचिन्तयेत् । पिङ्गवर्णं महावक्त्रिकलिका-
 भानि चिन्तयेत् । कादिठान्तासिवर्णानि चतुर्थेऽनाहते प्रिये !
 विशुद्धौ धूम्रवर्णं च रक्तवर्णान् स्वरान् यजेत् । आच्चायां विद्यु-
 दाभायां शुभ्रौ ह्रस्वौ विचिन्तयेत् । कर्पूरद्युतिसंराजत्सहस्र-
 दलनीरजे । नादात्मकं ब्रह्मरन्ध्रं जानीहि परमेश्वरि ! ।
 एतेषु सप्तचक्रेषु स्थितेभ्यः परमेश्वरि ! । जपं निवेदयित्वा तु
 अहोरात्रभवं प्रिये ! । सहजं परमेशानि ! न्यासं कुर्याद्विचक्षणः ।
 ऋषिर्हंसो व्यक्तरूपो गायत्रीच्छन्द उच्यते । देवता परमादिस्तु
 हंसोऽहं बीजमुच्यते । सः शक्तिः कौलिकं सोऽहं प्रणवस्तु त्वमेव
 हि । नेत्रस्थलं भवेत् श्वेतं वर्णञ्च परमेश्वरि ! । तदा तत् सह
 इत्येवं मनोरस्य प्रकीर्तितः । मोक्षार्थं विनियोगः स्यादेवं जानी-
 हि पार्वति ! । ततः षडङ्गविन्यासं कुर्याद्देहस्य सिद्धये ।
 सूर्यं सोमं महेशानि ! निरञ्जनमतः परम् । निराभासं चतुर्थ्यन्तं
 स्वाहान्ते क्रमतो न्यसेत् । कवचान्तं प्रविन्यस्य ततोऽनन्तपदं
 स्मरेत् ॥ अजपाया द्वैविध्यमुक्तं यथा निरुत्तरतन्त्रे चतुर्थपटले-
 ऽपि ॥ हंसेति प्रकृतिर्ज्ञेया ॐकारः प्रकृतेर्गुणः । हङ्कारेण
 वह्निर्याति सकारेण विशेत् पुनः । हंसेति परमं मन्त्रं जीवो
 जपति सर्वदा । षट् शतानि दिवारात्रौ सहस्राख्येकविंशतिः ।
 अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी । अजपा द्विविधा

देवि ! व्यक्ता गुप्ता क्रमेण च । व्यक्ता च द्विविधा प्रोक्ता शब्द-
ज्योतिःस्वरूपिणी । ज्योतीरूपा च सा देवी हृदि स्थाने प्रति-
ष्ठिता । ठकाररूपा गुप्ता च शिवशक्तिः प्रकीर्तिता । चन्द्रबीजं
ठकारस्तु वीक्षितः स्वर उच्यते । अजपार्थमयी गुप्ता वङ्गजाया
प्रकीर्तिता । अस्याः सङ्कल्पमात्रेण पुरश्चरणमुच्यते । इति
स्वेष्टदेवतागुरुकुण्डलिनीध्यानन परिपूतमनःकायश्चिन्त्येद्
यथा । राघवभट्टश्रुतम् ॥ अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं
न शोकभाक् । सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् । गुरु-
देवात्मनामैक्यं भावयित्वा तु प्रार्थयेत् ॥ भावनाप्रकारस्तु धर्म-
काण्डे दर्शितः । त्रैलोक्यचैतन्यमयाधिदेव ! श्रीनाथ ! विष्णो !
भवदाज्ञयेव । प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनु-
वर्तयिष्ये । जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे
निवृत्तिः । केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथानियुक्तोऽस्मि तथा
करोमि ॥ अत्र श्रीनाथविष्णो इति श्रैवादावूहः कार्यः । अतएव
शाक्तानन्दतरङ्गिणां पञ्चमोक्तासे । त्रैलोक्यचैतन्यमयेश्वरेशि !
श्रीपार्वति ! त्वच्चरणाञ्जयेव । इति शक्तिविषये अर्द्धमुक्तम् इति
प्रार्थनामन्त्रः ॥ तत उत्थाय भूमिनतिं कृत्वा वामपदपुरःसरं
मूत्रपुरीषे कुर्यात्तदुक्तं तत्रैव । एवं सच्चिन्त्य मनसा गृह्णा-
न्निर्गत्य संयतः । आचम्य प्रयतो मन्त्री दन्तधावनमाचरेत् ।
प्रयत इत्यनेन मूत्रपुरीषोत्सर्गान्तशुद्ध इति सूचितम् । तथाच ।
महानिर्वाणतन्त्रे पञ्चमोक्तासे ॥ नमस्कृत्य वह्निर्गच्छेद्दामपाद-
पुरःसरम् । त्यक्त्वा मूत्रपुरीषञ्च दन्तधावनमाचरेत् । गन्धर्व-
तन्त्रे पञ्चमपटले ॥ सर्वमङ्गलसम्पन्नो वह्निर्निर्गत्य साधकः । त्यक्त्वा
मूत्रपुरीषे तु दन्तधावनमाचरेत् । दन्तकाष्ठमखादित्वा पूजयेद्
यस्तु देवताम् । सा पूजा विफला देवि ! मृते तु नरकं व्रजेत् ।
दक्षिणामूर्त्तौ ॥ क्लीमात्मकं कामदेवं सर्वजनमथालिखेत् ।

प्रियाय हृदयान्तोऽयं मनुदन्तविशुद्धये । चतुर्दशाक्षरैर्वक्त्रं
 चालयेत् सिद्धिहेतवे ॥ मन्त्रतन्त्रप्रकाशि ॥ विधायवश्यकं शौच-
 माचमं दन्तधावनम् । मुखप्रचालनादीनि कृत्वा स्नानं समा-
 चरेत् ॥ पदार्थदर्शने ॥ ब्राह्मेण सुहृत्ते उल्लाय करपादौ विशो-
 धयेत् । मुखं प्रखाल्य देवेशि ! नासारन्मुद्गयं तथा । नेत्राञ्जनं
 विधायैव शुद्धस्थानं समाश्रयेत् । नेत्राञ्जनमकृत्वा तु यः पश्येत्
 सौरमण्डलम् । जन्मार्जितफलं नश्येत् का कथा तस्य दुर्मतेः ।
 इति निन्दार्थवादो हरिहारादावावश्यकत्वप्रतिपादको यस्मिन्
 देशे इत्याद्युक्तवचनादन्यत्र काम्यत्वज्ञापक इति । स्मृत्युक्तविधा-
 नेन शौचादिकं देहशुद्धिं विधाय रात्रिवासः परित्यज्य वासो-
 ऽन्तरं परिधाय मन्त्रस्नानं कृत्वा देवगृहमागत्य सम्यार्जनोप-
 लेपादिं कृत्वा द्वेष्य निर्मात्यमपस्तार्थ्यं पूर्वदिनावशिष्टपञ्चादि-
 नाभ्यर्च्य नमस्कुर्यात् । अन्यथा दोषः । यदाहुः ॥ तृषार्त्तान्तः
 पशुर्वहः कन्यक्रा च रजस्वला । देवता च सनिर्मात्या हन्ति
 पुण्यं पुराकृतम् । मन्त्रतन्त्रप्रकाशि ॥ स्मृत्युक्तेन विधानेन
 सम्यक् शौचं विधाय च । प्रचाल्य पादावाचम्य कृत्वा न्यासं
 यथात्मवान् । प्रविश्य देवतास्थानं निर्मात्यमपस्तार्थ्यं च । दद्याद्
 पुष्पाञ्जलिं विद्वानर्घ्यपाद्ये तथैव च । मुखप्रचालनं दद्याद्
 दद्यादै दन्तधावनम् । दद्यादाचमनीयञ्च दद्याद्वासोऽमलं
 शुभम् ॥ सम्यार्जनन्तु योगिनीतन्त्रे तृतीयभागे नवमपटले ॥
 सम्यार्जनं प्रवक्ष्यामि तत् शृणुष्व वरानने ! । यां गतिं पुरुषा
 यान्ति स्त्रियो वा कर्मनिश्चिताः । यावद्बूलिनिःसृताश्च भूमि-
 सम्यार्जने प्रिये ! । तावद्वर्षसहस्राणि सप्तद्वीपे महेश्वर इति ।
 विधिनिषेधद्रव्यमपि तत्रैव ॥ न काष्ठेन न पत्रेण न कुशेन
 कदाचन । वस्त्रेण तण्डुलेन वीरणेन नलेन च । मार्जये-
 द्बर्जयेद् गुच्छं कुशकाशांश्च वर्जयेत् । इति देवगृहसम्यार्जनम् ।

उपलेपनमपि तत्रैव ॥ मृत्नीमयेन वै भूमिः क्रियते लेपनं
प्रिये ! । एकेनैवोपलेपेन स योन्यां नैव जायते । स्नात्वावलेपने
देवि ! सलिलं यो ददाति च । तस्य पुण्यं महाभागे ! मृणु
तत्त्वेन सुन्दरि ! । यावन्ति जलविन्दूनि लिप्यमानस्य सुन्दरि ! ।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । मृत्तोयैः प्रोक्ष्यं कुर्या-
द्देवस्य च विलेपनम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो वारुणं लोकमश्नुते ।
इत्युपलेपनम् । ततः स्तवनमात्रेण नमस्कुर्याद् यथा विप्र-
सारतन्त्रे तृतीयपटले ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रातरिव समुत्थाय
हस्तपादौ विशुध्य च । उत्तराभिमुखीभूय कुर्याद्भक्त्या गुरो-
र्नतिम् । मनसा वचसा वापि कायेन च विशेषतः । क्षेत्रेशं
वास्तुराजञ्च विघ्नराजं ततः परम् । दुर्गां विनायकं शम्भुं
धैरवं वटुकान्वितम् । ब्रह्माणं नैर्ऋतिञ्चैव चक्रपाणिं नमैत्
सदा । विघ्नेभ्यो विघ्ननाथेभ्य ऋषिभ्योऽपि नमैत्ततः । देवेभ्यो
वेदशास्त्रेभ्यो वेदार्थेभ्यश्च वै नमः । रामायणेभ्यो भागवतेभ्यः
पुराणेभ्यः सदा प्रिये ! । ब्राह्मणेभ्यो गुह्येभ्यश्च योगिनौभ्यो
विशेषतः । यतिभ्यो मनुवंशेभ्यो मनुष्येभ्यो नमैत् सदा । वृक्षेभ्य
श्रीषधिभ्यश्च लतागुल्मेभ्य एव च । कुलाचलेभ्यो दिव्याश्च
दिक्पालेभ्यो नमो नमः । संहिताभ्यः शिवेभ्यश्च रुद्रेभ्योऽपि
नमो नमः । योगेभ्यः करणेभ्यश्च तिथिभ्यस्तेभ्य एव च ।
दिवसेभ्यश्च पक्षेभ्यः सर्वकालेभ्य एव च । योगिनौभ्योऽपि
कालेभ्यः प्रणमैत् सर्वकालतः । क्षणेभ्यो निमिषेभ्यश्च कर्मभ्यः
कारणेभ्यश्च । पीठेभ्यः सागरेभ्यश्च तीर्थेभ्योऽपि नमो नमः ।
नदीभ्यः कर्मयोगेभ्यो मन्त्रेभ्यः प्रणमैत् पुरा । वृक्षेभ्य श्रीषधि-
भ्यश्च लतागुल्मेभ्य एव च । कृत्रिमाह्वितेभ्यश्च हृदेभ्यः
प्रणमैत् सदा । जीवेभ्यः सर्वभावेभ्यो रसेभ्योऽपि विशेषतः ।
पुष्पेभ्यश्च प्रणम्याथ चागमेभ्यो नमैत्ततः । भाष्येभ्यश्चार्थशास्त्रेभ्य

आख्यानैभ्यो नमेत् सदा । अस्त्रेभ्यः सर्वशास्त्रेभ्यो मातृका-
 भ्यश्च पार्वति ! । पुरुषेभ्यश्च शक्तिभ्यो धर्मशास्त्रेभ्य एव च ।
 भूतेभ्यः पञ्चभूतेभ्यो महाभूतेभ्य एव च । ज्योतिर्भ्यो ज्योतिषे-
 भ्यश्च आचार्येभ्यश्च पार्वति ! । श्रुतिभ्यश्च प्रणम्याथ ऋतुभ्यः
 प्रणमेत् सदा । वर्णभ्यो वर्णशक्तिभ्यः कलाभ्यः प्रणमेत् सदा ।
 सन्नद्धविष्णुरुद्रेभ्यो मुद्राभ्यः प्रणमेत् सदा । स्थानेभ्यः स्थान-
 देवेभ्यः सर्वकालात्मने नमः । विघ्नेभ्यः कालपीठेभ्यो योगिनी-
 गणपालिके ! । भैरवेभ्यस्तत्पत्नीभ्यो मातृमण्डलचक्रके । रत्ने-
 भ्यश्च स्वरेभ्यश्च देवीप्रौतिकरेष्वपि । एवं प्रणम्य देवेशि ! ध्याये-
 ह्येवीं विचक्षणः । प्रान्तरे वा श्मशने वा शून्यावासे तथा गृहे ।
 अद्वैतभावनां कुर्याद् ब्रह्माण्डसदृशीं तनुम् । आधारशक्तिं
 सञ्चिन्त्य पङ्कजद्वयधारिणीम् । तन्मूर्द्धि चिन्तयेद्देवि ! कर्म-
 रूपं जनार्दनम् । नीलमेघनिभं देवं सर्वतत्त्वसमन्वितम् ।
 तस्य पृष्ठे स्थितं देवमनन्तं चिन्तयेद्द्विया । सहस्रफलसंयुक्तं
 शुद्धस्फटिकसन्निभम् । ककुदंशे हलं ध्यायेन्मुद्गरं वामपार्श्वके ।
 एककुण्डलरत्नेन भूषणेनातिभूषितम् । एकचक्रस्य उपरि
 पृथिवीं चिन्तयेद्द्विया । यथा पृथिव्याः सिद्धयर्थं तथेमां चिन्तयेत्
 सुधीः । कृष्णवर्णां शुकव्रीहिभुजयुग्मेन भूषिताम् । तत्रापि
 मण्डपं ध्यायेन्ननसा मणिभूषितम् । तत्र कल्पतरुं ध्यायेत्
 सर्ववाञ्छाफलप्रदम् । तदधःस्थं चिन्तयेच्च स्वर्णसिंहासनं महत् ।
 तत्र सञ्चिन्तयेद्देवीं हृत्पद्मस्थां सुरेश्वरीम् ॥ इति छिन्नमस्ताया
 विशेषः । यद्यपि सुरौकमस्तव एव फलमुक्तं न तु छिन्न-
 मस्तादीनां तथाप्येकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थो बाधकमन्तरेणान्य-
 त्वापि तथेति न्यायात् सर्वत्र क्रमस्तवे तत्फलमुन्नेयम् । अन्यथा
 क्रमस्तवस्थानित्यत्वप्रसङ्गः स्यादिष्टाप्रतिरिति चेन्न । प्राचीन-
 निबन्धुभिरलिखितस्य तच्छङ्केति । दक्षिणकाव्यास्तु ॥ ब्राह्मे

मुहूर्ते उल्लाय हस्तपादौ विशुध्य च । पूर्वोक्तञ्च गुरुध्यानं
 कुर्यात् साधकसत्तमः । प्रणम्य विधिवद्देवीं ध्यायेत्तां वै सना-
 तनीम् । अष्टोत्तरसहस्रं हि जपित्वा विधिनामुना । क्रमस्तवं
 पठेन्नित्यं विधिनानेन देशिकः । ॐ नमो गुरुभ्यो देवेभ्यस्तथा
 परतराय च ॥ परापरिभ्यस्तद्वच्च तथा परात्पराय च । क्षेत्र-
 पालं नमस्कृत्य द्वारदेवान् विधानतः । लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां
 गङ्गां गोदावरीं तथा । भोगवतीं नमस्कृत्य वास्तुदेवान्नमेत्तदा ।
 विघ्नराजञ्च वास्तवीशं क्षेत्रेशं प्रणमाम्यहम् । नैऋतं तच्चैव ब्रह्माणं
 ब्रह्मकर्मात्मकं प्रिये । विघ्नान् प्रणम्य विधिना तान् देवांश्च
 नमेत्ततः । आधारशक्तिं तां नत्वा पङ्कजहृदयधारिणीम् । नील-
 वर्णां महामायां द्वादशाक्षररूपिणीम् । ततो धर्मगणैः सेव्यां
 तां देवीं शक्तिरूपिणीम् । नीलवर्णं महाकायं कूर्मं हिमाद्रि-
 संस्थितम् । सर्वशक्तितनुं विष्णुं कूर्माकारं नमाम्यहम् । तस्य
 पृष्ठे स्थितं देवमनन्तं तं नमाम्यहम् । सहस्रफणसंयुक्तं सर्पा-
 कारं हरिं नमः । हिमाद्रिसदृशं विष्णुं एकदण्डधरं विभुम् ।
 फणासहस्रेर्मणिभिर्भूषितं तं नमाम्यहम् । तस्य कुक्षगतं ध्याये-
 त्त्वाङ्गलञ्चाशुभावहम् । मुद्गरं वामभागे च तत्रैकादशसंयुतम् ।
 तस्य मूर्द्ध्नि स्थितं ध्यायेद्दराहं विष्णुमव्ययम् । एकदन्तं महा-
 कायं कालमेघसमप्रभम् । तस्य दन्ते सदा ध्यायेत् पृथिवीं
 पद्मपायिनीम् । नीलवर्णां महादेवीं शालिशूकविभूषिताम् ।
 अणिमादिगुणैर्युक्तां सर्वतत्त्वविभूषिताम् । तस्या मूर्द्ध्नि सदा
 ध्यायेत् समुद्रान् रत्नसंयुतान् । नानापर्वतसंयुक्तां पृथिवीं
 चिन्तयेद्द्विधा । पर्वतांश्चिन्तयेत्तस्यां सर्वं च कुलभूषितान् । दिग्ग-
 जेभ्यो नमस्कृत्य योगेभ्यः प्रणमेत् सदा । सुनीन्द्रेभ्य ऋषिभ्यश्च
 योगशास्त्रधराय च । शक्तेभ्यो वैष्णवेभ्यश्च शैवेभ्यः प्रणमेत्
 सदा । यन्त्रेभ्यो मन्त्रदेवेभ्यः सर्वशास्त्रपराय च । चन्द्राय

चन्द्रवंशेभ्यः सूर्यवंशेभ्य एव च । मनुवंशमनुष्येभ्यः पञ्चभूतेभ्य
एव च । महाभूतेभ्यो भूतेभ्यः कलाभ्यः प्रणमेत् सदा । रसेभ्यो-
ऽपि नमस्कृत्य गन्धेभ्यः प्रणमेत् सदा । पुष्पेभ्यः पुष्पहासेभ्यो
गन्धर्वेभ्यो नमो नमः । यक्षेभ्यो भूतवर्गेभ्यः प्रेत्यः सर्वकर्मसु ।
शब्दब्रह्मस्वरूपेभ्यः प्रणमामि सदा प्रिये ! । रुद्रेभ्यो रुद्रवंशेभ्यो
भैरवेभ्यो नमो नमः । लिङ्गेभ्यो लिङ्गदेवेभ्यो वेदशास्त्रेभ्य एव
च । वेदेभ्योऽपि च शास्त्रेभ्यस्तेभ्यो नित्यं नमो नमः । स्थाव-
रेभ्यो नमस्कृत्य ऋषिभ्यः प्रणमेत् सदा । प्रणमामि सदैर्येभ्यो
वेशेभ्योऽपि नमो नमः । मन्त्रेभ्योऽपि नमस्कृत्य मन्त्रार्थेभ्यो
नमो नमः । पूजोपकरणेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यो नमो नमः । योगि-
नीभ्यो नमस्कृत्य शक्तिभ्योऽपि नमो नमः । रत्नेभ्योऽपि नम-
स्कृत्य नदीभ्यः प्रणमेत् सदा । पीठेभ्योऽपि नमस्कृत्य मातृभ्यः
प्रणमेत् सदा । अग्नेभ्योऽपि नमस्कृत्य इन्द्रेभ्योऽपि नमो
नमः । क्षेत्रेभ्योऽपि नमस्कृत्य क्षेत्रपालेभ्य एव च । कुला-
चलेभ्यो नत्वा तु प्रादुर्भावेभ्य एव च । उक्तानुक्तञ्च यत्
किञ्चित्तेभ्यो नित्यं नमो नमः । ॐ नमामि कालिकां देवीं
कलिकल्मषनाशिनीम् । नमामि शम्भुपत्नीञ्च नमामि भव-
सुन्दरीम् । आद्यां देवीं नमस्कृत्य नमस्कृत्यैलीक्यमोहिनीम् ।
नमामि सत्यसङ्गल्यां सर्वपर्वतवासिनीम् । पार्वतीञ्च नमस्कृत्य
नमो नित्यं नगात्मजे ! । मातृस्वदीयचरणं शरणं सुराणां
ध्यानास्यदैर्दिशति वाञ्छितवाञ्छनीयम् । येषां हृदि स्फुरति
तच्चरणारविन्दं धन्यास्त एव नियतं सुरलोकपूज्याः । गन्धैः
शुभैः कुङ्कुमपङ्कलेपैर्मातृस्वदीयं चरणं हि भक्ताः । स्मरन्ति
शृण्वन्ति लुठन्ति धीरास्तेषां जरा नैव भवेद्भवानि ! । तवाङ्घ्रि-
पद्मं शरणं सुराणां परापरा त्वं परमा प्रकृष्टिः । दिने दिने देवि !
भवेत् कारस्थः किमन्यमुच्चैः कथयन्ति सन्तः । कवीन्द्राणां दर्पं

करकमलशोभापरिचितं विधुन्वज्जङ्घा मे सकलगणमेतद्भिरि-
सुते । अतस्त्वत्पादाब्जं जननि ! सततं चेतसि मम हितं नारी-
भूतं प्रणिहितपदं शाङ्करमपि । ये ते दरिद्राः सततं हि मात-
स्त्वदीयपादं मनसा नमन्ति । देवासुराः सिद्धवराश्च सर्वे तव
प्रसादात् सततं लुठन्ति ॥ हरिस्त्वत्पादाब्जं निखिलजगतां भूति-
रभवत् शिवो ध्यात्वा ध्यात्वा किमपि परमं तत्परतरम् । प्रजानां
नाथोऽयं तदनु जगतां सृष्टिविहितं किमन्यत्ते मातस्त्वव चरण-
युग्मस्य फलता ॥ इन्द्रः सुराणां शरणं शरण्ये ! प्रजापतिः काश्यप
एव नान्यः । वरः पतिर्विष्णुर्भवः परेशि ! त्वदीयपादाब्जफलं
समस्तम् ॥ त्वदीयनाभीनवपल्लवे वा नवाङ्गुरैर्लोमवरैः प्रफुल्लम् ।
सदा वरेण्ये ! शरणं विधेहि किंवापरं चित्तवरैर्विभाव्यम् ।
त्वदीयपादार्चितवस्तुसम्भवः सुरासुरैः पूज्यमवाप शम्भुः । त्वदीय-
पादार्चनतत्परो हरिः सुदर्शनाधौश्वरतामुपालभत् । धरित्री
गन्धरूपेण रसेन च जलं धृतम् । तेजो वङ्गिस्वरूपेण प्रणवे
ब्रह्मरूपधृक् । मुखं चन्द्राकारं त्रिभुवनपदे यामसहितं त्रिनेत्रं
मे मातः ! परिहरति यः स्यात् स तु पशुः । न सिद्धिस्तस्य स्यात्
सुरतसततं विश्वमखिलं कटाक्षैस्ते मातः ! सफलपदपद्मं स
लभते ॥ क्रतुस्त्वं हविस्त्वं स्वधा त्वं सुरारिः पुरा त्वं परा त्वं सदा-
शीर्मुरारिः । हरस्त्वं हरिस्त्वं शिवस्त्वं शिवानां गतिस्त्वं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं भवानि ! ॥ नवाहं नवा त्वं नवा वा क्रियाया
वरस्त्वं चरुस्त्वं शरण्यं धरायाः । नदस्त्वं नदी त्वं गतिस्त्वं
निधौनां सुतस्त्वं सुता त्वं पिता त्वं गृहिणाम् ॥ त्वदीयमुण्डाख्य
भवानि ! मालां विधाय चित्ते भवपद्मजादयः । सुराधिपत्वं लभते
मुनीन्द्रः शरण्यमेतत् किमपीह चान्यत् । नरस्य मुण्डश्च तथा
हि खड्गं भुजद्वये ये मनसा जपन्ति । सत्येतरं देवि ! वराभयश्च
भवन्ति ते सिद्धजना मुनीन्द्राः । शिवोपरि त्वां हृदये निधाय

जपन्ति विद्यां हृदये कदाचित् । सदा भवेत् काव्यरसस्य वक्ता
 अन्ते पदद्वन्द्वमुपाश्रयेत् ॥ दिगम्बरीं त्वां मनसा विचिन्त्य
 जपेत् पराख्यां जगतां जनीति । जपेत्पराख्यां जगतां मतिश्च
 किंवा पराख्याशरणं भवामः । शिवाविरावैः परिवेष्टितां
 त्वां निधाय चित्ते सततं जपन्ति । भवेय देवेशि ! परा-
 परादिनिरीक्षतां देवि ! परा वदन्ति ॥ त्वदीयशृङ्गाररसं
 निधाय जपन्ति मन्त्रं यदि वेदमुख्याः । भवन्ति ते देवि ! जना-
 पवादं कविः कवौनामपि चाग्रजन्मा ॥ विकीर्णवेशां मनसा
 निधाय जपन्ति विद्यां चकितं कदाचित् । सुधाधिपत्यं लभते
 नरः स किमस्ति भूम्यां शृणु कालकालि ! ॥ त्वदीयवीजत्रयमा-
 तरेतज्जपन्ति सिद्धास्तु विमुक्तिहेतोः । तदेव मातस्त्व पादप-
 च्चगा भवन्ति सिद्धिश्च दिनत्रयेऽपि ॥ त्वदीयकूर्चद्वयजापकत्वात्
 सुरासुरेभ्योऽपि भवेच्च वर्णः । धनित्वपाण्डित्यमयन्ति सर्वे किं
 वा परां देवि ! परापराख्या ॥ त्वदीयलज्जाद्वयजापकत्वाद्भवेन्महि-
 शानि ! चतुर्थसिद्धिः । त्वदीयसत्सिद्धिद्वयप्रसादात्तवाधिपत्यं
 लभते नरेशः ॥ ततः स्वनाम्नः शृणु मातरेतत् प्रलं चतुर्वर्गं वदन्ति
 सन्तः । वीजत्रयं वै पुनरप्युपास्य सुराधिपत्यं लभते मुनीन्द्रः ॥
 पुनस्तथा कूर्चं युगं जपन्ति नमन्ति सिद्धा नरसिंहरूपाः । ततो-
 ऽपि लज्जाद्वयजापकत्वात्तज्जपन्ति सिद्धिं मनसो जनास्ते । अन्ते
 पदं क्षिप्य विभा विभावलोख्यमन्त्रमुद्धारमिदं वदन्ति ॥ त्रिप-
 क्षारं चक्रे जननि ! सततं सिद्धिसहितां विचिन्वन् सच्चिन्वन्
 परमममृतं दक्षिणपदम् । सदा कालीं ध्यात्वा विधिविहित-
 पूजापरिकरा विशेषाख्यानं ते न खलु भवभङ्गाभयपदः ॥ त्वं
 श्रीस्वामीश्वरी काली त्वं द्वीस्वस्व करालिका । लज्जा लक्ष्मीः
 सती गौरी नित्याचिन्त्या चितिः क्रिया ॥ परा आद्या पराख्या
 च परमा परमा वसुः । अक्षुष्याद्येचित्ते प्रचयपदपद्यैः पदयुतैः

सदा जप्त्वा स्तुत्वा जपति हृदि मन्त्रं मनुविदा । न तेषां संसारे
विभवपरिभङ्गप्रमथने क्षणं चित्तं देवि ! प्रभवति विरुद्धे
परिकरम् ॥ त्रयस्त्रिंशैः श्लोकैर्यदि जपति मन्त्रं स्तुवति च नमस्त्रै-
तानेतान् परममृतकल्पं सुरवरम् । भवेत् सिद्धिः शुद्धौ जगति
शिरसा त्वत्पदयुगं प्रणम्य प्राकाम्यं वरसुरजनैः पूज्यविततिम् ॥
इति विश्वसारतन्त्रे दक्षिणकालिकाक्रमस्तोत्रं नाम चतुर्थः
पटलः ॥

यासां यासां क्रमस्तोत्रं तासां तासां दक्षिणाप्रकृतिकत्वेनाप-
वादविषयम् परित्यज्योत्सर्गस्य प्रवृत्तित्वात् दक्षिणकालिका-
क्रमस्तोत्रपाठेनैव तत्फलनिर्वाहः । सम्प्रति गुह्यकात्वा अपि
विशेष उक्तस्तत्रैव षष्ठपटले तत्त्ववचात् परम् ॥ क्रमस्तवं प्रव-
क्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ! । ब्राह्मेण मुहूर्ते उत्थाय गुरुदेवान्न-
मेत् सदा । वारुणीमुखमाश्रित्य नमस्कुर्यादुपर्यधः । गुरुभ्यो-
ऽपि नमो नित्यं नमस्तत्पादुकाय च । परं परेभ्यश्च परापरिभ्यः
परात्परेभ्योऽपि नमोऽस्तु ते च । आधारशक्तिं नमस्कृत्य कुलाच-
लान्नमस्कुर्यात् । धर्मकर्षणे नमस्कृत्य कूर्मराजाय वै नमः ।
अनन्ताय नमो नित्यं वराहाय नमो नमः । पृथिव्यै च नमो
नित्यं कुलाचलेभ्यो नमो नमः । समुद्रेभ्यो नमो नित्यं सरत्नै-
रमृतैर्जलैः । कुलवृक्षेभ्यो नमो नित्यं कल्पवृक्षेभ्यो नमो नमः ।
स्वर्णसिंहासनेभ्यश्च मणिवेद्यै नमो नमः । चतुर्दिशि नमस्कुर्यात्
सर्वदेवान् नमस्ततः । वेदेभ्योऽपि नमो नित्यं वेदार्थेभ्यो नमो
नमः । शास्त्राभ्यस्तस्य वै नित्यं तत्पादेभ्यो नमो नमः । तद्द-
र्शनेभ्यो नमो नित्यं वर्णार्थेभ्यो नमो नमः । असंस्कारपदेभ्यश्च
नमो वै परमात्मने । विद्याभ्योऽपि नमो नित्यमविद्याभ्यो
नमो नमः । शास्त्रेभ्योऽपि नमो नित्यमशास्त्रेभ्यो नमो नमः ।
धर्मेभ्योऽपि नमो नित्यमधर्मेभ्यो नमो नमः । भागवतेभ्यो नमो

नित्यं विद्याभ्योऽपि नमो नमः । श्रुतिभ्योऽपि नमो नित्यं श्रुत्य-
 र्थेभ्यो नमो नमः । श्रीरामभागवतेश्च दण्डवत् प्रणमेत्
 सदा । भागवतेश्च नमो नित्यं भागवतार्थेभ्यो नमो नमः ।
 तत्त्वार्थेभ्यो नमो नित्यं तत्त्वेभ्योऽपि नमो नमः । योगेश्चो-
 ऽपि नमो नित्यं योगार्थेभ्यो नमो नमः । संहिताभ्यो नमो
 नित्यं तदर्थेभ्यो नमो नमः । मातृकाभ्यो नमो नित्यं तदर्थेभ्यो
 नमो नमः । कलाभ्योऽपि नमो नित्यं शक्तिभ्योऽपि नमो
 नमः । स्वरेश्चोऽपि नमो नित्यं रागेश्चोऽपि नमो नमः । रागि-
 णीभ्यो नमो नित्यं तदर्थेभ्यो नमो नमः । अस्त्रेश्चोऽपि नमो
 नित्यं शस्त्रेश्चोऽपि नमो नमः । जीवेश्चोऽपि नमो नित्यं वीजे-
 श्चोऽपि नमो नमः । भूचरेश्चो नमो नित्यं खेचरेश्चो नमो
 नमः । योगेश्चोऽपि नमो नित्यं करणेश्चो नमो नमः । मुह-
 र्त्तेश्चो नमो नित्यं यामेश्चोऽपि नमो नमः । ऋतुभ्योऽपि नमो
 नित्यं वत्सरेश्चो नमो नमः । डाकिनीभ्यो नमो नित्यं रुद्रे-
 श्चोऽपि नमो नमः । भूतेश्चोऽपि नमो नित्यं प्रेतेश्चोऽपि नमो
 नमः । यक्षेश्चोऽपि नमो नित्यं विघ्नेभ्योऽपि नमो नमः ।
 भूतेश्चोऽपि नमो नित्यं महाभूतेश्चो नमो नमः । आचार्येश्चो
 नमो नित्यं शङ्करेश्चो नमो नमः । वैष्णवेश्चो नमो नित्यं ये च
 मायाविमोहिताः । मायायै प्रणमन्नित्यं तत्त्वेभ्योऽपि नमो
 नमः । शरीरेश्चो नमो नित्यं व्यापकेश्चो नमो नमः । मन्त्रेश्चो-
 ऽपि नमो नित्यं यन्त्रार्थेश्चो नमो नमः । नमो वर्णाश्रमा-
 श्च देवताभ्यो नमो नमः । तत्पदेषु नमो नित्यं सत्पदेषु
 नमो नमः । भावनाभ्यो नमो नित्यं भावशास्त्रेभ्य एव च ।
 स्तवेषु कवचेभ्यश्च नामभ्योऽपि नमो नमः । आगमेश्चो नमो
 नित्यं तदर्थेभ्यो नमो नमः । तत्क्रियाभ्यो नमो नित्यं श्रेष्ठ-
 शास्त्रेति कीर्त्तते । रसेभ्योऽपि नमो नित्यं गन्त्रेश्चोऽपि नमो

नमः । पौठेभ्योऽपि नमो नित्यं तत्स्थेभ्योऽपि नमो नमः ।
 सत्त्वेभ्योऽपि नमो नित्यं राजसेभ्यो नमो नमः । तामसेभ्यो
 नमो नित्यं गुणेभ्योऽपि नमो नमः । सर्वविद्यावतारेभ्यः सिद्धे-
 भ्योऽपि नमो नमः । आनन्दकन्दाय नमस्कृत्य कन्दनाय नमो
 नमः । सर्वतत्त्वात्मकमलाय प्रकृतिपत्रेभ्य एव च । सिद्धपीठाय
 सत्त्वस्य श्वरूपशिवाय च । त्रिपञ्चाराय चक्राय नमो नित्यं
 नमो नमः । तत्रस्थायै कालिकायै गुह्यायै कामरूपिण्यै । गुरु-
 कुलादिशक्तिभ्यः कालिकायै नमो नमः । नमो नमो नमस्ते-
 ऽस्तु परापराभ्यो नमो नमः । विशालनेत्रां सुरसङ्घवन्दितां सुरा-
 सुराभ्यर्चितापदपद्मां । नृमुण्डमालाकलिताशताङ्गैः परावरे
 ते प्रभवन्ति सिद्धाः ॥ स्थूलेति केचित् प्रवदन्ति सिद्धाः सूक्ष्मेति
 केचिन्मुनयो वदन्ति । तामम्बिकां नौमि विशालनेत्रसुमङ्गलं
 धेहि मदीयदेहे ॥ त्वदीयपादाब्जमेवमेतत् निषेव्य सिद्धाः
 प्रभवं प्रयान्ति । मातस्तवायं पापात् सर्वशोकदुःखाज्जगज्जन-
 रम्ये । ये त्वा ध्यायेयुर्मनसि विधानाः सर्वे ते सकलफलाः ॥
 इति विश्वसारतन्त्रे गुह्यकाव्याः क्रमस्तवो नाम षष्ठपटले ॥

अथ त्रिपुरासुन्दर्याः क्रमस्तवः सप्तमपटले ॥ क्रमस्तव
 प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कम्पलानने । ॐ गुरुभ्यो नमो नित्यं परा-
 त्परतराय च । परापरेभ्यः परेभ्यश्च नमो नित्यं नमो नमः ।
 गोभ्यो नमो ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मपुत्रेभ्यो वै नमः । मुनिभ्यो मुनि-
 पत्नीभ्यो मुनिपुत्रेभ्यो वै नमः । दिग्भ्यो नमो दिक्पतिभ्यो
 दिगम्बरेभ्यश्च वै नमः । भ्रमणेभ्यो नमो नित्यं रसनाभ्यश्च वै
 नमः । वेदेभ्यो वेदशास्त्रेभ्यो वेदार्थेभ्यो नमो नमः । भागवतेभ्यो
 नमो नित्यं श्रीभागवतेभ्यो नमो नमः । श्रीरामभागवतेभ्यो
 नमो नित्यं भागवतेभ्यो नमो नमः । तीर्थेभ्यः पर्वतेभ्यश्च पौठेभ्यः
 सततं नमः । योगिभ्यो योगिनीभ्यश्च योगादिभ्यश्च वै नमः ।

ध्यानैभ्यो मन्त्रवर्णैभ्यो मातृकाभ्यो नमो नमः । आचार्यैभ्यो
 नमो नित्यं भैरवैभ्यो नमो नमः । रुद्रैभ्यो रुद्रपत्नीभ्यो गन्धर्वैभ्यो
 नमो नमः । किन्नरैभ्यः पिशाचैभ्यः कुशाण्डैभ्यो नमो नमः ।
 अवतारैभ्यो मूर्तिभ्य आदित्यैभ्यो नमो नमः । नमः संवत्सर-
 भ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः । नक्षत्रग्रहयोगिभ्यः करणेभ्यश्च वै
 नमः । तिथिभ्यः सर्वकालेभ्य ऋतुभ्योऽपि नमो नमः ।
 ककाराद्यैर्महादेव्यै कालिकायै नमो नमः । एकारस्थां महादेवीं
 सर्वाधारस्वरूपिणीम् । ईकारस्थां महादेवीं रतिं कामाङ्गसुन्द-
 रीम् । लकारस्थमहादेव्यै इन्द्राण्यै सर्वसिद्धये । हकारस्थ-
 महादेव्यै शिवायै सर्वतो नमः । एतैर्वर्णैर्महामाया पातु मां
 सुन्दरी शुभा । सकारस्था महामाया सावित्री पातु मां सदा ।
 शिवा मां पातु देवेशी हकाराद्या सुरेश्वरी । शिवानी सर्वदा
 पातु हकारस्था महोदया । वकारस्था महादेवी पातु मां काम-
 दायिनी । लकारस्था मङ्गादेवी इन्द्राणी पातु सर्वदा । सर्वाङ्गं
 पातु मां देवी सर्वाणी सर्वसुन्दरी । एतैर्वर्णैर्महामाया पातु मां
 सुन्दरी सदा । ककारस्था महामाया ब्रह्माणी पातु मां सदा ।
 हकारस्था शिवा पातु सर्वत्र शिवदूतिका । ककारस्था शिवा
 पातु हकारस्था सुरेश्वरी । सकारस्था सदा पातु सावित्री शर्म-
 दायिनी । लकारस्था महादेवी लक्ष्मीमां सर्वदावतु । भुव-
 नेशी सदा पातु सर्वाङ्गे भवसुन्दरी । अनन्ता सर्वदा पातु
 अकारस्था सुरेश्वरी । अकाराद्या सदा पातु शिवदूती सुरे-
 श्वरी । सकारस्था सदा पातु कामिनी कामदायिनी । लकारे
 पातु मां सर्वत्रे त्रिभुवनेश्वरी । लकारस्था सदा पातु इन्द्राणी
 सर्वदा मम । मकारस्था सदा पातु सर्वत्र मां सुरेश्वरी ।
 एभिर्वर्णैः स्थिता देवी पातु मां भुवनेश्वरी । शिवानी मां सदा
 पातु सर्वत्र हरसुन्दरी । चन्द्रवौजस्थिता विद्या सावित्री शम्भु-

रूपिणी । पातु मां सर्वदेवेषु देवता भुवनेश्वरी । एतैर्वर्णै-
र्महामाया पञ्चविंशतिवर्णिका । भुवनेशी सदा पातु सर्वाङ्गे
त्रिपुराश्विका । सर्वबीजेषु सर्वत्र योजयेद्भुवनेश्वरीम् । सर्वाङ्गे
मां सदा पातु देवी त्रिभुवनेश्वरी । शिखायां भ्रूयुगे चाक्षोरो-
ष्ठयोर्गण्डयोर्नसि । तथा च चिबुके दन्ते जिह्वायां तालुमूलके ।
हृदये पार्श्वयुगले पृष्ठे नाभौ तथोदरे । नितम्बे च तथोपस्थे
गुह्ये च जालुयुग्मके । जानुचक्रे च जङ्घायां कटिके पादके
पुनः । सर्वाङ्गे पातु मां देवी श्रीमक्षिपुरसुन्दरी । शास्त्रे वादे
च संग्रामे राजद्वारे सुरार्चने । प्रान्तरे गिरिदुर्गे च शत्रु-
मध्ये तथापरे । चौरे व्याघ्रे च सिंहे च विषमादिभयादिषु ।
अत्यन्तरोगयुक्तेषु पातु मां त्रिपुराश्विका । सुन्दरी पातु सर्वत्र
सुन्दरी परिरक्षतु । इदं त्रिपुरसुन्दर्याः क्रमस्तोत्रमुदाहृतम् ।
यत्र तत्र न वक्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितम् । शठाय भक्तिशून्याय
निन्दकाय महेश्वरि ! । न्यूनाङ्गे चातिरिक्ताङ्गे दर्शयेन्न कदाचन ।
शूद्राय न च दद्याच्च स्तवराजं महेश्वरि ! । वदेद्वा दर्शयेद्वापि
शङ्करेण च भाषितम् । श्लोकं वा स्तवमेकं वा पूजयेद्वा पठन्नपि ।
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । सर्वमाशु तरत्येव स्तव-
स्यास्य प्रसादतः । अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो लभते धनम् ।
अरोगी बलवांश्चैव जायते स्पर्शनादपि । किमन्यद्वह्नुना देवि !
यद्यद्वाञ्छितमात्मनः । तत्सर्वं लभते देवि ! स्तवस्यास्य प्रसा-
दतः ॥ इति विश्वसारतन्त्रे त्रिपुरासुन्दरीक्रमस्तवः समाप्तः ।

इति श्रीप्राणतोषिण्यां तृतीयेऽर्थकाण्डे प्रातःकृत्यविधि-
रूपशाखाकथनं नाम द्वितीयः परिच्छेदः ।

जामले ॥ स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम् ।
तस्मात् स्नानं निषेधितं श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्धनम् । एतद्वचनं मत्स्य-
सूक्ते दशमपटलेऽपि ॥ स्नानाकरणे दोष उक्तो राघवभट्टेन ॥

यतश्चाशुचिवस्त्रमस्नानमनलङ्कारं पुरुषं देवता नाधितिष्ठन्तीति ॥
 स्नानभेदमाह रुद्रजामले उत्तरखण्डे एकविंशतिपटले ॥
 स्नानन्तु द्विविधं प्रोक्तं मज्जनं गात्रमार्जनम् । मन्त्रजलादिभिः
 स्नानमुत्तमं परिकीर्तितम् ॥ तत्प्रकारं शृणु प्राणवल्लभ ! प्रिय-
 कारणम् ॥ विश्वसारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ मान्त्रं भीमं तथा-
 ग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणं मानसञ्चैव सप्तस्नानं प्रकी-
 र्तितम् । एवं स्नात्वा विधानेन शुचिर्भवति नान्यथा ॥ तत्र
 मान्त्रस्नानादिकं विशेषयति तत्रैव ॥ आपो हिष्ठादिभिर्मान्त्रं
 भीमं देहप्रमार्जनम् । आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः
 स्मृतम् । यत्तदातपवर्षेण स्नानं दिव्यमिहोच्यते । वारुणञ्चाव-
 गाहः स्यान्मानसं विष्णुचिन्तनम् । तत्र मन्त्रस्नानं द्विविधमा-
 न्तरं बाह्यञ्च । तत्र वैष्णवस्नानमान्तरमुक्तम् वशिष्ठसंहितायाम् ।
 अनन्तादित्यसङ्काशं वासुदेवं चतुर्भुजम् । शङ्खचक्रगदापद्ममुकुटं
 वनमालिनम् । द्वादशार्णव्भुजगतं ध्यायेन्नारायणं विभुम् ॥
 विश्वसारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ खस्थितं पुण्डरीकाक्षं मूर्त्तिमन्तं
 प्रभुं स्मरन् । तत्पादोदकजां धारां निपतन्तीं स्मरन् ।
 चिन्तयेद्ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्तं स्वकां तनुम् । तया संक्षालयेत् सर्व-
 मेतद्देहगतं मलम् । तत्क्षणाद्विरजो मन्त्री जायते स्फटिको-
 पमः । इदं स्नानवरं मान्त्रात् सहस्रमधिकं स्मृतमिति ॥ इति
 वैष्णवान्तरस्नानम् ॥ शाक्तमभ्यन्तरस्नानमुक्तं श्रीपञ्चमीमते ॥
 स्नानप्रकारो द्विविधो बाह्याभ्यन्तरभेदतः । आन्तरं स्नानमत्यन्तं
 रहस्यमपि सादरात् । कथयामि भवध्वस्त्यै चतुर्वर्गफलाप्तये ।
 संविन्नयमनुस्मृत्य चरणत्रयमध्यतः । स्रवन्तं सच्चिदानन्दप्रवाहं
 भावगोचरम् । विमुक्तिसाधनं पुंसां स्मरणादेव योगिनाम् । तेन
 प्लावितमात्मानं भावयेद्भवशान्तये ॥ इति शाक्ते आन्तरस्नानम् ।
 शैवा न्तरस्नानं शैवागमे उक्तम् । मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरः-

सरम् । कुर्वीत मानसस्नानं सर्वत्र विहितञ्च यत् ॥ गन्धर्वतन्त्रे
षष्ठपटले ॥ स्नानञ्च त्रिविधं प्रोक्तं सन्ध्या च त्रिविधा स्मृता ।
आन्तरञ्च भवेदेवि ! वाह्यं मानसमेव च । मानसं वै भवेत्
स्नानं यः सदा शुद्धमानसः । स्पर्शलेपादिके वापि निर्विकल्पः
सदैव हि । वाह्यमन्त्रैश्च सम्प्रोक्तमान्तरं शृणु साम्प्रतम् ।
प्रागुक्तक्रमयोगेन प्राणायामपरो बुधः । शक्तिं परशिवेनैव
सङ्गमय्य विधानतः । तदुद्भवाभूते शश्वन्निमज्जा पुनरेवहीति ॥
अथ नित्यस्नानफलम् मत्स्यसूक्ते दशमपटले ॥ यास्यं हि
यातनादुःखं नित्यस्नायी न पश्यति । नित्यस्नानेन पूज्यन्ते
येऽपि पापकृतो जनाः । अगम्यागमनात् पापात् पापिभ्यश्च
प्रतिग्रहात् । रहस्याचरितात् पापान्मुच्यते स्नानमाचरन् ॥ अथ
वाह्यस्नानम् ॥ रुद्रजामले पूर्वखण्डे द्वितीयपटले ॥ नदी-
सरस्तङ्गागेषु कूपवापीषु वा पुनः । प्रातर्मध्याह्नायाह्ने नरः
स्नायाद् यथाविधि ॥ विश्वसारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ विधिना
स्नानमुद्दिश्य कुर्यात् पूर्वाह्निकीं क्रियाम् । नदीं वा देवस्नातं
वा दौर्धिकां सागरं तथा ॥ एतान् प्राप्य स्नानमुद्दिश्य पौर्वा-
ह्निकीं क्रियां कुर्यादित्यन्वयः । नद्यादीनामुद्धृतजलापेक्षया
स्थानस्थजलस्य प्राशस्त्यमुक्तम् तत्रैव ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः
शस्यन्ते स्थानतो बुधैः । काश्यादिसर्वतीर्थानि भारते यानि
सन्ति वै । तानि स्थाने प्रशस्यन्ते सर्वपापहराणि वै ॥ इति वक्ष्य-
माणवचने योजनपर्यन्तदेशस्य गङ्गात्वात् कैमुतिकन्यायसिद्धं
गङ्गाजलस्योद्धृतस्यापि प्राशस्त्यमिति । एवञ्च गङ्गाद्या इत्यत्र
तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिणा गङ्गाभिन्ना इति ज्ञेयम् ॥ नीलतन्त्रे
द्वितीयपटले ॥ सृत्कुशानपि संगृह्य गत्वा जलान्तिकं ततः ।
मलापकर्षणं स्नात्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत् ॥ शक्ते कुशान्
विशेषयति श्यामारहस्यधृतम् ॥ तर्ज्ज्या रजतं धार्यं स्वर्णं

धार्यमनामया । एष एव कुशः शाक्ते न दर्भो वनसम्भवः ॥ इति
 शाक्तकुशः । महानिर्वाणतन्त्रे पञ्चमोऽंशः ॥ आदावपि उप-
 स्थस्य प्रविशेत् सलिले ततः । नाभिमात्रजले स्थित्वा मलानाम-
 पनुत्तये । सकृत् स्नात्वा तथोन्मज्ज्य मन्त्रस्नानमथाचरेत् ॥ एतेन
 मलापकर्षणं विना सङ्कल्पपूर्वकस्नानमात्रमनुशासनविरुद्धम् ।
 केचित्तु प्रागुक्तविश्वसारवचने पौर्वाहिकक्रियानन्तरस्नानदर्शना-
 दकृततत्क्रियास्तैलाभ्यक्ता अपि स्नानात् पूर्वं पौर्वाहिककृत्य-
 माचरन्ति । तन्न मनोरमम् । प्रागुक्तजामलवचनेन क्रियामात्रस्य
 स्नानमूलकत्वादत एव राघवभट्टेन मन्त्रस्नानं कृत्वा देवगृह-
 मागत्य सम्राज्जनादीत्याद्युक्तम् ॥ नौलतन्त्रे ॥ विद्यया त्रिनिर्म-
 ज्जैवमाचरेत् पाथसा तथा । पुनर्निर्मज्ज्य पयसि सङ्कल्पञ्च समा-
 पयेत् । इष्टदेव्याः पूजनार्थं कुर्यात् स्नानं जलाशये ॥ मन्त्र-
 तन्त्रप्रकाशे ॥ अरुणेऽनुदिते मन्त्रौ तीर्थं वा विमले जले ।
 वैदिकं स्नानमाचर्य तान्दिकं स्नानमाचरेत् । इति वैदिकस्नाना-
 नन्तरं तान्दिकस्नानम् ॥ गन्धर्वतन्त्रे प्रथमपटले ॥ प्रणवं पूर्व-
 मुद्धृत्य तदिति परतस्ततः । सदिति तु समाभास्य कर्म कुर्या-
 द्विचक्षणः । स्मरणात् कर्मणामाद्ये ब्रह्मभूयाय कल्पते । इति
 तत्सदिति निर्देशफलम् । तोडलतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ अद्यो-
 त्यादि समुच्चार्य सौरमासं समुच्चरेत् । देवताप्रीतये पश्चात्
 स्नायाच्च शुङ्गवारिणा ॥ कुलचूडामणौ ॥ कृष्णरक्तहरित्रीला
 विविधा मम मूर्तयः । तत्र यः कुलगः शिष्यः स तद्रूपं परा-
 मृषन् । दिवं सर्वामयोर्वीञ्च पातालं रूतसम्भवम् । आचान्तः
 कुलदर्भेण सदभंकुलपुण्ड्रकः । कुलपात्रं सदूर्वञ्च सतिलं सजलं
 ततः । गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत् । कृतसङ्कल्प
 एवादौ कुलचक्रं जले न्यसेत् ॥ कुलपात्रं ताम्रपात्रम् । कुल-
 चक्रं त्रिकोणकमिति सङ्कल्पविधिः ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ नित्ये

नैमित्तिके काव्ये पितृदेवतकर्मणि । सङ्कल्पपूर्वकं कर्म अन्यथा
न फलं स्मृतम् ॥ इति सङ्कल्पाकरणे दोषः ॥ सङ्कल्पाद्यं
निषिद्धविहितपात्रमपि तत्रैव ॥ शुक्तिशङ्खाश्महस्तैश्च कांस्थ-
रौप्यादिभिस्तथा । सङ्कल्पो नैव कर्त्तव्यो मृगस्यैश्च कदाचन ॥
इति सङ्कल्पे निषिद्धपात्रम् ॥ गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं सौवर्णञ्च
विशेषतः । सङ्कल्पन्तु बुधः कुर्यान्मेध्यपत्रपुटेन वा ॥ इति
सङ्कल्पे विहितपात्रं तत्रैव ॥ स्नानकाले तु हस्तेन ताम्रपात्रेण
वा ततः । पैठके आङ्गपात्रेण देवे शङ्खः प्रशस्यते ॥ इति कर्म-
विशेषे पात्रविशेषः ॥ मज्जनप्रकारमाह तत्रैव ॥ स्रोतसोऽभि-
मुखो मज्जेत् सूर्याभिमुखतोऽथ वा । स्मरन्नारायणं गङ्गामिष्ट-
देवं ततः परम् । मज्जनं मुक्तकेशेन वस्त्रेणाञ्च शिखां पुनः ।
ततः कृताञ्जलिर्मूत्वा तीर्थान्यावाहयेत्ततः । ॐ गङ्गे च यमुने
चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्
सन्निधिं कुरु । ब्रह्माण्डे देवतीर्थानि करैः स्मृतानि ते रवेः ।
तेन सत्येन मे देव ! तीर्थं देहि दिवाकर ! । प्रियव्रतानि तीर्थानि
सूर्यरश्मिस्थितानि च । आगत्यार्घ्यं गृहीत्वा च सर्वसिद्धिं
प्रयच्छ मे । चतुरस्रं विनिर्माय तत्र स्नानं दिशेत् सुधीः ॥
राघवमदृष्टतम् । आवाहयामि त्वां देवि ! स्नानार्थमिह सुन्दरि ! ।
एहि गङ्गे ! नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विता । इति मन्त्रैरङ्गुश-
मुद्रया आदित्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य वमित्यश्वसि संयोज्य सोम-
सूर्याग्निमण्डलानि तत्र सच्चिन्ध वमित्यमृतबीजेन द्वादशधा
अभिमन्त्र्य कवचेनावगुण्ठा अस्त्रेण संरक्ष्य मूलमन्त्रेणैकादशधा
अभिमन्त्रयेत् । तत्प्रमाणं वशिष्ठसंहितायाम् ॥ हृन्मन्त्रोऽङ्गुश-
मुद्राभ्यां तीर्थमाकथ्य मण्डलात् । आवाह्याश्वसि संयोज्य सोम-
सूर्याग्निमण्डलम् । सच्चिन्ध मन्त्रो तन्मध्ये निमज्जेत् सुसमा-
हितः । मूलमन्त्रं समावर्त्य मनसोऽस्मिन् मूचाकृति ॥ ज्ञानार्णवे ॥

विन्यस्याङ्गे षडङ्गानि प्राणायामपुरःसरम् । श्रीसूर्यमण्डला-
 तीर्थमाकृत्याङ्गुशमुद्रया । वमित्यनेन चाप्लाव्य कवचेनावगुण्ट-
 येत् । संरक्ष्यास्त्रेण मूलेन मन्त्रयेत् रुद्रसंख्यया । निमज्जा
 तस्मिन् श्रीदेवं ध्यायेच्छक्त्या जपेन्मनुम् । मत्स्यसूक्तेऽपि । रुद्र-
 संख्यं जपेन्मन्त्रमाच्छाद्य मीनमुद्रया । सूर्यायामभिमुखं तोयं
 निक्षिप्य रविसंख्यया । रविसंख्यया द्वादशसंख्याया । मूलमन्त्रं
 समुच्चार्य चालयेच्च करद्वयम् । चरणान्निःसृते तोये त्रिर्निमज्जा
 जपेन्मनुम् । अथ सृदालम्भनं विश्वसारतन्त्रे ॥ सृदोदकाच्च
 गङ्गायां स्रक्षयित्वा विधानतः । स्नानं कुर्वीत विधिना महा-
 कालवचो यथा ॥ सृत्तिकालम्भनप्रकारस्तु मन्त्रतन्त्रप्रकाशे ॥
 मूलेनानीय सृत्स्नान्त्रिभागं तत्र कारयेत् । भागमेकं जलेनैव
 क्षिपेन्मन्त्रं समुच्चरन् । एवं सूर्वादिनाभ्यन्तं तथैव परिलेपयेत् ।
 तथैव भागान्तरेण परिलेपयेदधोभागमिति शेषः ॥ लेपनप्रकारो
 मत्स्यसूक्ते ॥ नासाभाले च गण्डे च चिबुके पार्श्वयोः पदे ।
 पृष्ठे नाभ्युज्जङ्घासु निरग्नेसृत्तिकाविधिः ॥ क्षेपणमन्त्रस्तु तत्रैव ॥
 इदं विष्णुरिति मन्त्रस्य मेधातिथिर्ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो विष्णु-
 देवता तोये सृत्तिकालम्भने विनियोगः । ॐ इदं विष्णुर्विच-
 क्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांशुले ॥ गात्रलेपनमन्त्रस्तु
 विश्वसारे ॥ श्रीं अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ! ।
 सृत्तिके ! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् । श्रीं उद्धृतासि
 वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वदेवानां प्रभवारुणि !
 सुव्रते ! । ततः । श्रीं आधारं सर्वरूपस्य विष्णुरतुलतेजसः । तद्रू-
 पाच्च ततो जाता अग्रे ताः प्रणमाम्यहम् । इत्युपदिश्यामसि च
 त्रिर्निमज्जेत् ततो बुधः ॥ वशिष्ठसंहितायाम् ॥ उत्थायाचस्य
 तत्पश्चात् षडङ्गन्याससंयुतः । आत्मानं मूलमन्त्रेण मुद्रया कल-
 साख्यया । सप्तकत्वोऽभिषिञ्च्य मूलेनामन्त्रितैर्जलैः ॥ कलस-

मुद्रा यथा ज्ञानार्णवे ॥ वामहस्ते कृता मुष्टिर्दक्षहस्तस्य पार्वति ! ।
 कलसाख्या भवेन्मुद्रा सर्वपापहरा शुभा ॥ वशिष्ठसंहितायाम् ॥
 उन्मज्ज कुम्भमुद्रान्तु बद्धा स्नायादपट् ततः । शालग्रामशिला-
 तोयं तुलसीगन्धमिश्रितम् । कृत्वा शङ्खं भ्रामयन् त्रिः प्रक्षि-
 पेन्निजमूर्धनि । ततः संचेपतो विप्रान् मनुष्यान् तर्पयेत् पितॄन् ।
 पौडयित्वा स्वकं चोरुं प्रक्षाल्याचम्य यत्नतः ॥ इति संचेपतर्प-
 णम् ॥ परस्नाते तु विशेषोऽस्ति विश्वसारे द्वितीयपटले ॥ पर-
 स्नाते तु कर्त्तव्यः पङ्कपिण्डोद्भरः सदा । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ पङ्क ! त्वं
 त्यज पुण्यं परस्य च । पापानि विनाश्य मे शान्तिं देहि सदा
 मम ॥ इति परस्नातेतिकर्त्तव्यता ॥ अथ अयनादौ तैलस्नान-
 निषेधः ॥ योगिनीतन्त्रे उत्तरखण्डे नवमपटले ॥ अयने विषुवे
 चैव भौमवारे दिनक्षये । द्वादश्यां राहुग्रस्ते च तैलस्नानं न
 कारयेत् ॥ अथ गात्रमार्जनं तत्रैव ॥ वस्त्रेण मार्जयेद्देवि ! कार्पा-
 सेनाथ वाल्कलैः । रक्तवस्त्रैर्भवेत् कुष्ठी पाण्डुरैर्व्याधिमाप्नुयात् ।
 न कुर्यात् कुसुमैश्चैव कृत्वा नाशमवाप्नुयात् । पटैश्चक्षुः समा-
 प्रोति नीलैरक्तक्षयं व्रजेत् । मध्याह्नस्नाने तु गात्रमार्जननिषेधो
 मत्स्यसूक्ते दशमपटले ॥ मध्याह्नस्नानं देवेशि ! वस्त्रेण वाथ
 पाणिना । न च प्रमार्जयेद्गात्रं प्रातर्भोग्यं न दुष्यति । प्रेतस्नाने
 च तीर्थे च गङ्गायां सार्वकालिकम् । न तूलिकस्य वीजेन गात्रं
 नैव प्रमार्जयेत् । एषु गात्रं नैव मार्जयेत् । अधिकदोषदर्शनार्थं
 न तूलिकस्य वीजेनैत्युक्तम् । मध्याह्ने गात्रमार्जननिषेधकारणमपि
 तत्रैव ॥ देवाः पिबन्ति शिरसो मुखस्य पितरस्तथा । उरसः
 पितृगन्धर्वा अधरे सर्वजन्तवः । तस्मान्न मार्जयेद् गात्रं मध्याह्ने
 तु विशेषतः । पुरश्चरणरसोन्नासे ॥ गङ्गास्नानं विना देवि !
 पूजयेद् यस्तु कालिकाम् । दशविद्या महेशानि ! पूजयेद् यस्तु
 भक्तितः । सर्वं तस्य वृथा देवि ! गङ्गास्नानं विना प्रिये ! ।

गङ्गामन्त्रं समुच्चार्य चेत्रे नद्यान्तु पार्वति ! । आपवेद् यस्तु
 पापात्मा सर्वपापैः प्रमुच्यते । ध्यानञ्चेव तथा मन्त्रं गङ्गायाः
 शृणु सुन्दरि ! । तन्वोक्तं ध्यानमन्त्रञ्च प्रशस्तं भारते कलौ ॥
 अथ ध्यानम् ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशां शुक्लास्वरविभूषिताम् ।
 शुक्लसुक्तावलीमालां हृदयोपरिशोभिताम् । श्वेतमालाधरां
 देवीं श्वेताभरणभूषिताम् । सदा षोडशवर्षीयां ब्रह्मादिपरि-
 षेविताम् । एवं ध्यात्वा जपेद्विद्यां गङ्गायाः शृणु शङ्करि ! ।
 प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मायावीजं समुद्धरेत् । गङ्गायै परमेशानि !
 ततः परमुदीरयेत् । पूर्ववीजद्वयञ्चोक्ता वज्रिजायां समुद्धरेत् ।
 एषा नवाक्षरी विद्या सुषुम्नामार्गसंस्थिता ॥ १ ॥ अपरैकं
 प्रवक्ष्यामि मन्त्रं परमगोपनम् । प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य गङ्गायै तद-
 नन्तरम् । पुनः प्रणवमुद्धृत्य मन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥ २ ॥ अपरैकं
 प्रवक्ष्यामि सुषुम्नामार्गसंस्थितम् । मायावीजं समुद्धृत्य पुनः
 प्रणवमुद्धरेत् । ततो गङ्गापदं देवि ! चतुर्थ्यन्तं कुरु प्रिये ! ।
 पूर्ववीजद्वयं प्रोक्त्वा मन्त्रमेतं जपं कुरु । एषा सप्ताक्षरी विद्या
 सदा मे शिरसि स्थिता ॥ ३ ॥ अपरैकं प्रवक्ष्यामि मन्त्रं परम-
 दुर्लभम् । मायावीजं समुद्धृत्य गङ्गायै तदनन्तरम् । पुनर्मायां
 समुद्धृत्य मन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥ ४ ॥ अनेन ध्यानमार्गेण मन्त्र-
 मार्गेण पार्वति ! । पूजयेत् सततं गङ्गां तस्य सिद्धिरदूरतः ।
 दिने दिने च जप्त्वा वै गङ्गास्नानफलं लभेत् । तथा । तस्मादादौ
 जपेद्विद्यां गङ्गायाः सुरपूजिते ! । गङ्गापि स्वयमायाति पूतार्थं
 साधकस्य च ॥ इति गङ्गामन्त्रफलम् ॥ या गङ्गा महती माया
 कुण्डली परकुण्डली । सा गङ्गा परमेशानि ! ब्रह्माण्डं व्याप्य
 तिष्ठति । महानदनदीरूपा सर्वं व्याप्य हि तिष्ठति ॥ गङ्गा-
 स्नेहमाहात्म्यमपि तत्रैव ॥ यत्र चेत्रे नदी देवि ! आयामे
 योजनात् प्रिये ! । सा गङ्गा चञ्चलापाङ्गि ! किञ्चिन्नास्वत्र

संशयः । न हि गङ्गासमं पुण्यं मम ज्ञाने हि विद्यते । योगिनी-
तन्त्रे पूर्वखण्डे अष्टादशपटले ॥ माहात्म्यं किमु वक्ष्यामि
गङ्गायाश्च सुरेश्वरि ! । यन्नामस्मरणादेव पापिनो मुक्तिमा-
गिनः । गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् पापिनामपि पातकी । तेषाञ्च
पातकं हित्वा तैर्गच्छेद्दैर्घवीं पुरीम् ॥ इति गङ्गानाममाहात्म्यम् ।
यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि ते महेश्वरि ! । प्रायश्चित्त-
विहीनानि प्रायश्चित्तपराण्यपि । तानि सर्वाणि नश्यन्ति गङ्गा-
नीराभिषेकतः ॥ इति गङ्गाजलमाहात्म्यम् ॥ नगरी घर्घरा-
द्यम्बु पतेद्गङ्गा प्रवाहयेत् । सर्वं गङ्गा भवत्येव मन्त्रमाहात्म्यतः
शिवे ! । यत्र देशे वहेद् गङ्गा स देशः पुण्यभाजनः । पुण्यक्षेत्रं
समुद्दिष्टं पवित्रं योजनद्वयम् । तत्र यत् क्रियते कर्म गङ्गायां
नात्र संशयः । गङ्गायां यत् कृतं देवि ! तदक्षयफलं लभेत् ।
सङ्गमं वा विहीनं वा कथितं शम्भुवल्लभे ! । तत्रस्थाः प्राणिनः
सर्वे देवलोकविनिःसृताः । भुक्ता च विविधान् भोगान् कृत्वा
च सुकृतं सदा । अनायासेन यास्यन्ति स्थानं परमदुर्लभम् ।
इति सङ्गदेशफलम् ॥ यत्र गङ्गा न शोचन्ति देवर्षिगणसंस्तुताः ।
गङ्गायां त्यजते प्राणान् यस्तु पुण्यप्रभावतः । ज्ञानतो मोक्षमा-
प्नोति वैकुण्ठं तदभावतः । स्वर्लोकाद्यामहेशानि ! गङ्गा पाप-
विवर्जितः ॥ इति गङ्गायां प्राणत्यागफलम् ॥ गङ्गामुद्दिश्य व्रजतः
पथि प्राणान् विमुञ्चति । विष्णुलोकं बहुगुणं पापी चेत्सोऽपि
गच्छति ॥ इति गङ्गायात्रिकस्य पथि मृत्युफलम् । तत्तीरे
यस्यजेत् प्राणान् न्यायतोऽन्यायतोऽपि वा । सोऽपि स्वर्गम-
वाप्नोति सर्वसम्भारसंयुतम् । इति गङ्गातीरमृत्युफलम् । याव-
दस्थीनि गङ्गायां निक्षिप्यन्ते मृतस्य च । तावदब्दसहस्राणि
स्वर्गलोके महीयते । इति गङ्गायां मृतास्थिनिक्षेपफलम् ॥ गङ्गा-
जलसमायोगान् म्रियते यत्र कुत्रचित् । सर्वपापविनिर्मुक्तो

विष्णुलोके महीयते । इत्यन्यत्र गङ्गाजलसमायोगमरणफलम् ॥
 गङ्गातीरे चतुर्हस्ते पिण्डं दद्यात् समाहितः । पितॄणां निष्कृतिं
 कृत्वा विष्णुलोके महीयते ॥ इति चतुर्हस्तमध्ये पिण्डदान-
 फलम् ॥ गङ्गायां तर्पणं देवि ! पुण्यवान् यः समाचरेत् ।
 महादृष्टिर्भवेत् सत्यं पितॄणाञ्च शताब्दिकी । ऋषीणां देवता-
 नाञ्च तथैव समुदाहृतम् । इति गङ्गायां तर्पणफलम् ॥ दिवा
 वा यदि वा रात्रौ सन्ध्यायां वा महानिशि । स्नानं दानं तपो
 होमस्तर्पणं पूजनं शिवे ! । सर्वं कुर्यात्तु गङ्गायां कालभेदं न
 चाचरेत् । इति गङ्गायां पर्युदस्तकालाभावः । कालभेदं
 समाचर्य यदि कार्यं त्यजेत् शिवे ! । ततस्तु स्थावरो भूया-
 दरण्ये तदनन्तरम् । दावाग्निना शिखा तस्य दग्धाशु भस्मनै-
 कधा । तदन्ते परमेशानि ! चाण्डालो नित्यदुःखितः । जायते
 सप्तजन्मानि तदन्ते रजको भवेत् । जन्मत्रयं महेशानि !
 तदन्ते शूद्रयोनिषु । दशजन्म महेशानि ! ततो वैश्यत्वमाप्नु-
 यात् । चतुर्जन्मव्यतीते तु क्षत्रियत्वं विजन्मतः । ब्राह्मणत्वं
 ततः प्राप्य लभेत् पुण्यगतिं नरः । इति गङ्गायां कालाकाल-
 विचारनिन्दा ॥ गङ्गायां हरते यो हि यत्किञ्चित् परमेश्वरि ! ।
 तस्य मोहान्धतमसो रौरवान्नास्ति निष्कृतिः । आभूतसंप्लवं
 देवि ! कथितं ते सुरेश्वरि ! । इति गङ्गायां किञ्चिद्हरण-
 दोषः ॥ गङ्गातीरे च गङ्गायां प्रतिगृह्णाति यो नरः । स्वपत्नी
 जायते नित्यं दशजन्मानि कामिनि ! । ततो दारिद्र्यदोषेण
 परिभ्रमति मेदिनीम् । सप्तजन्म महादेवि ! तदन्ते निष्कृतिं
 लभेत् ॥ इति गङ्गादौ प्रतिग्रहणदोषः ॥ एवन्ते कथितं तस्य
 मन्त्रमाहात्म्यमुत्तमम् । कालिकाया महेशानि ! गङ्गामाहात्म्य-
 कारणम् ॥ इति योगिनीतन्त्रे गङ्गामाहात्म्यम् ॥

ॐ सिद्धीर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजायते । मातरः

सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् । तारवासृणवीजेन पुटितं
तत् समुच्चरेत् । अलक्ष्मीं मलरूपां यां सर्वभूतेषु संस्थिताम् ।
क्षालयन्ति निजस्पर्शादापो नित्यं पुनन्तु माम् । इति मन्त्राभ्यां
राघवभट्टदृष्टाभ्यामात्मानमभिषिच्य । ॐ यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं
सीमन्ते यच्च मूर्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तत्त्वं तु वो
नमः । आयुरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयं सुखम् । सन्तोष-
क्षान्तिरास्तिक्त्वं विद्या भवतु वो नमः । इत्यनेन राघवभट्ट-
दृष्टेन जलं नमेत् ॥ अथ मानसस्नानम् ॥ तत्र प्रथमं बन्ध-
मोक्षादौ मनसः कारणत्वं दर्शयति ॥ योगिनीतन्त्रे द्वितीय-
भागे अष्टमपटले ॥ मन एव तु वै नित्यं मन एव तु कारणम् ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । तस्य नियन्त्रणा-
देव संसारो न भवेत् क्वचित् । वदत्यन्यं करोत्यन्यं यत्तु वाङ्म-
नसि स्थितम् । दर्शयति तथा चान्यं वृथा तस्य क्रिया भवेत् ।
इत्यधिकं मत्स्यसूक्ते षड्विंशतिपटले ॥ चिन्तयेद् यः कृतं दुष्टं
तीर्थस्नानेन तस्य किम् । शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवा-
शुचिरित्यपि मत्स्यसूक्ते ॥ योगिनीतन्त्रे ॥ तन्नेष्टं तत्परं जातं
तन्मूल्यं दुःखकारणम् । चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नाने निषि-
ध्यते । सर्वदापि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः । यदि वसति
गुह्यायां पर्वताग्रे चिरं वा यदि वसति विखण्डं तस्य पिण्डं
पठं वा । यदि पठति पुराणं वेदसिद्धान्ततत्त्वं यदि हृदयम-
शुद्धं सर्वमेतद्विसृज्यम् । न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न
चाश्रमाः । दुष्टाशयं दुष्टमतिं पावयन्ति कदाचन । इति
दुष्टमनसो दोषकथनम् ॥ तथैव ॥ इति चेतो वशीकृत्य यत्र
तत्र वसेन्नरः । तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं गया ॥ इति
शुद्धचेतसः फलकथनम् । ज्ञानसङ्कल्पात् ॥ इदं तीर्थमिदं तीर्थं
भ्रमन्ति तामसा जनाः । आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मुक्ता

वरानने ! ॥ रुद्रजामले उत्तरखण्डे एकविंशतिपटले ॥ ज्ञान-
मात्रेण मुक्तः स्यात् पापशैलादनन्तगः । ज्ञायाच्च विमले तीर्थं
हृदयाश्वोजपुष्करे । विन्दुतीर्थेऽथवा ज्ञायात् सर्वजन्माघ-
मुक्तये । इडासुषुम्ने शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाश्वपूर्णे वहतः
शरीरे । ब्रह्माश्वभिः ज्ञाति तयोः सदा यः किं तस्य गाङ्गैरपि
पुष्करैर्वा ॥ एतद्वचनद्वयं कल्पसूत्रटीकायामुदयाकरपद्धत्या-
मिति कृत्वा लिखितम् ॥ ज्ञानसङ्ख्याम् ॥ इडा भागौरथी
गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी । तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्नाख्या
सरस्वती । त्रिवेणीसङ्गमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते । तत्र
ज्ञानं प्रकुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति मानसप्रयोगः ॥ रुद्र-
जामले ॥ इडा मलस्थाननिवासिनी या सूर्यात्मिका या यमुना
प्रवाहिका । तथा सुषुम्ना मलदेशगामिनी सरस्वती रक्षति
मज्जनान्मकम् । मनोगतज्ञानपरो मनुष्यो मन्त्रक्रियायोग-
विशिष्टतत्त्ववित् । महीस्थतीर्थे विमले जले मुदा मूलाश्वजे
ज्ञाति सुमुक्तिभाग भवेत् । सर्वाणि तीर्थं सुरतीर्थपावनी गङ्गा
महासत्त्वविनिर्गता सती । करोति पापक्षयमेव मुक्तिं ददाति
साक्षादमलार्थपुण्यदा । इति मूलाधारस्थतीर्थम् ॥ स्वर्गस्थं
यावता तीर्थं स्वाधिष्ठाने सुपङ्कजे ॥ मनो निधाय योगीन्द्रः ज्ञाति
गङ्गाजले यथा । इति स्वाधिष्ठानस्थतीर्थम् । मणिपूरे देवतीर्थं
पञ्चकुण्डं सरोवरम् । तत्र श्रीकामनातीर्थं ज्ञाति यो मुक्ति-
मिच्छति । इति मणिपूरतीर्थम् ॥ अनाहते सर्वतीर्थं सूर्य-
मण्डलमध्यगम् । विभाव्य सर्वतीर्थानि ज्ञाति यो मुक्तिमिच्छति ।
इत्यनाहृततीर्थम् ॥ विशुद्धाख्ये महापद्मे अष्टतीर्थसमुद्भवः ।
कैवल्यमुक्तिदं ध्यात्वा ज्ञाति वीरो विमुक्तये । इति विशुद्धस्थ-
तीर्थम् । मानसं विन्दुतीर्थं च कालीकुण्डं कलाधरम् । आज्ञाचक्रे
सदा ध्यात्वा ज्ञाति निर्वाणसिद्धये । इत्याज्ञास्थतीर्थम् ॥ एतत्

कुलप्रियस्नानं कुर्वन्ति योगिनो मुदा । अतो वीराः सत्त्वयुक्ताः
 सर्वसिद्धियुताः सुराः । नानापापं सदा कृत्वा ब्रह्महत्याविनि-
 र्गतम् । कृत्वा स्नानं महातीर्थं सिद्धाः सूरणिमादिगाः । स्नान-
 मात्रेण निष्पापोऽशक्तः स्याद्वायुसंग्रहे । तीर्थानां दर्शनादेषां
 मुक्तो योगी भवेद् ध्रुवम् ॥ इति मानसस्नानफलम् ॥ मत्स्य-
 सूक्ते दशमपटले ॥ जलादुत्थाय कर्त्तव्यं जले चैवोपविश्य यत् ।
 अनयोर्विपरीतेन यत्करोति न तत्कृतम् । यज्जले शुष्कवस्त्रेण
 स्थले चैवार्द्रवाससा । न कुर्यादाङ्गिकं कर्म जले चापि स्थलेषु
 च । इति जले शुष्कवाससा स्थले चार्द्रवाससा कर्मनिषेधः ॥ गौत-
 मीये ॥ पीडयित्वाम्बरं चोर् प्रक्षाल्याचम्य वाग्यतः । धार-
 येद्वाससौ शुद्धे परिधानोत्तरोयके । अच्छिन्ने सदृशे शुक्ले
 आचामेत् पीठसंस्थितः ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ उत्तीर्य वाससौ धीते
 परिधाय विचक्षणः । न रक्तं मलिनञ्चैव न नीलञ्च प्रशस्यते ।
 अष्टौ सप्त तथा षष्ठं चतुर्हस्तान्यनुक्रमात् । ब्राह्मणादिक्रमे-
 णैव पिधानाम्बरमौरितम् । इति परिधेयवस्त्रपरिमाणम् ॥
 मात्स्ये ॥ श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णञ्चेत्यनुपूर्वशः । अनु-
 पूर्वश इति ब्राह्मणाद्यनुक्रमेण । वस्त्रमन्यधृतञ्चैव सदैव
 परिवर्जयेत् । वस्त्रमूलं समुद्धृत्य पृष्ठवंशे षडङ्गुलम् । दशायां
 त्र्यङ्गुलं त्यक्त्वा नाभिमात्रे विनिर्दिशेत् । दशाहीनं न
 कर्त्तव्यं परिवर्त्तं न कारयेत् । इति वस्त्रपरिधानप्रकारः ॥
 अथ कर्मविशेषे वस्त्रविशेषः ॥ उदयभानुनाथकृतकृष्णार्चन-
 चन्द्रिकायाम् ॥ श्यामारहस्यधृतस्वतन्त्रतन्त्रे ॥ मोक्षार्थी रक्त-
 वस्त्रे द्वे भोगार्थी श्वेतवाससी । मारणे कृष्णवासस्तु वश्ये
 रक्तं सदा गृही । एवञ्च पूर्वोक्तमत्स्यसूक्तवचने यद्वक्त-
 वस्त्रस्याप्रशस्तत्वमुक्तं तन्मोक्षादिविशेषकर्मतिरिक्तकर्मपरं
 सामान्यविशेषन्यायात् । अतएव अन्नदाकल्पोक्तवक्ष्यमाणवच

रक्तवस्त्रपरिधानं वक्ष्यते । उच्चाटे व्याघ्रचर्माणि वृक्षत्वक् स्नाभ-
 कर्मणि । परिधाय ततो मन्त्री यागभूमिमथाविशेत् । मत्स्य-
 सूक्ते ॥ न चैवं धुनयेद्वस्त्रं न केशान् धुनयेत् क्वचित् ॥ नीली-
 रक्तेन वस्त्रेण यत्कर्म्यं कुरुते द्विजः । स्नानं दानं जपं होमं
 तत्सर्वं विफलं भवेत् ॥ इति नीलादिवस्त्रेण कर्मकरणनिषेधः ॥
 कलौ कार्पासवस्त्रञ्च पट्टं क्षीमं प्रशस्यते । नित्यं कार्पाचितं
 कुर्यादशुद्धं शुद्धतानियात् । केन जलेनापचितं प्रक्षालितमि-
 त्यर्थः । इति कलौ कार्पासादिवस्त्रप्रशंसा ॥ सूचीविद्धेन वस्त्रेण
 आसुदष्टेन वा द्विजः । कटिशून्येन देवेशि ! सर्वं स्नानफलं
 हरेत् ॥ इति सूचीविद्धादिवस्त्रनिषेधः । वस्त्रान्तरेण यद्वस्त्रं
 कृमिजं वा प्रदृश्यते । न देयं देवे पैत्रे च कोष्ठजञ्च प्रशस्यते ॥
 इति विजातीयवस्त्रनिषेधः । कृमिजेन तु वस्त्रेण यः स्नानं
 कुरुते नरः । सर्वकालकृतं पुण्यं स्नानमात्रेण नश्यति ॥ इति
 कृमिजवस्त्रेण स्नाननिषेधः । एतदेव श्वेतजातवृक्षजाते न
 दुष्यति । श्वेतकृमेण सभूतं प्रशस्तं देवपैत्रयोः ॥ इति कृमिज-
 श्वेतवस्त्रप्रशंसा ॥ अथोत्तरीयम् ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ शतद्वयेन सूत्रेण
 उत्तरीयस्य मानकम् ॥ तदर्द्धनाथ वा कार्यमभावे सर्वतः
 स्वयम् । योगपदादीनां पूजादावुपयोगात्तत्तत्क्षणं वीरमित्रोदय-
 धृतसिद्धान्तशेखरे ॥ त्रिविधं योगपदकमाद्यं व्याघ्राजिनोद्भ-
 वम् । द्वितीयं मृगचर्मार्द्धं तृतीयं तन्तुनिर्मितम् । चतुर्मात्र-
 प्रविस्तारं दैर्घ्येण यन्नसूत्रवत् । चतुर्मात्रं चतुरङ्गुलमात्रम् ॥
 यन्नोपवीतमार्जनस्य स्नानात् परतः कर्तव्यत्वं तदत्र लिख्यते ॥
 गायत्रीतन्त्रे चतुर्थब्राह्मणपटले ॥ सम्राज्यं दधिदुग्धेन घृतेन
 बहुयत्नतः । घृताद्यभावे चार्वाङ्गि ! मार्जयेत्तण्डुलपिष्टकैः । तद-
 भावे सार्षपेण तिलतैलं परित्यजेत् । विष्वस्य फलनिर्यासैर्मा-
 र्जयेत् द्विजसत्तमः । शुद्धसत्त्वात्मकं सूत्रं तदा भवति प्रत्यहम् ।

इति यज्ञोपवीतमार्जनद्रव्याणि ॥ यज्ञोपवीतमार्जनप्रकारस्तु
तत्रैव ॥ वामस्कन्धात् समुत्तार्य वामाङ्गुष्ठे नियोजयेत् । वामा-
ङ्गुष्ठं वामस्कन्धमेवमेव न चान्यथा । वामाङ्गुष्ठयुतं सूत्रं कृत्वा
सम्मार्जयेद् द्विजः ॥ इति यज्ञोपवीतमार्जनप्रकारः । कण्ठादौ
यज्ञोपवीतकरणदोषश्च तत्रैव ॥ कण्ठे शिरसि दक्षकरे कृत्वा
शूद्रत्वमर्हति । गायत्र्या अयुतं जप्त्वा तस्मात् पापात् प्रमुच्यते ।
तथा । वर्षविप्रे तथा भट्टे मार्जनं न हितं सदा । धारणं यज्ञ-
सूत्रस्य जातिभेदे पृथक् पृथक् । रक्तचन्दनतोयेन मार्जयेत् चक्र-
जातयः । हारिद्वैर्मार्जयेद्द्वैश्वर्य इति शास्त्रस्य निर्णयः ॥

अथ तिलकं मत्स्यसूक्ते दशमपटले ॥ अथोपविश्य पूर्वांशा-
मुखो भूत्वा सुसंयुतः । प्रकुर्यात्तिलकं मन्त्री उत्तराशामुखेन
वा । गोपीचन्दनकेनाथ रोचनाकुङ्कुमेन वा । मृत्तिकाया मल-
यजेन तुलसीविष्ण्वजेन वा ॥ योगिनीतन्त्रे तृतीयभागे नवम-
पटले ॥ मलयजेन गन्धेन गोपीचन्दनकेन वा । विष्ण्वकाष्ठो-
द्भवेनाथ तुलसीकाष्ठकेन वा । पद्मकेन तमालेन तथा रोच-
नयाथवा । पिधाय तिलकं श्रेष्ठमेषामेकतमेन वा ॥ विष्ण्वका-
ष्ठोद्भवेनेत्युदासीनपरम् । तत्काष्ठचन्दनं भाले यो धारयति
सम्भ्रमादित्यादि योगिनीतन्त्रीयपूर्वखण्डे पञ्चमपटलोक्तवच-
नात् ॥ मृदादिफलं मत्स्यसूक्ते ॥ मृदा तु मुक्तिमाप्नोति आयुष्यं
चन्दनेन तु । कुङ्कुमेन भवेत्कार्यं रोचना वश्यमीरितम् । जलस्था
मृत्तिका वर्ज्या तीरस्थं पुण्यदायकम् । तस्मात्तीरोद्भवं ग्राह्य-
मश्वक्रान्तेति सम्पठन् । नोल्याय तिलकं कुर्यान्मृदा स्त्रीसरितो
बुधः । शस्तञ्च जाङ्गवीतीरोद्भवैर्वा गोपिचन्दनैः ॥ इति तिल-
कस्य मृत्तिकाविधिनिषेधौ । तिलककरणमन्त्रस्तु मत्स्यसूक्ते ।
केशवानन्त ! गोविन्द ! वराह ! पुरुषोत्तम ! । पुण्यं यश्चस्यमायुष्यं
तिलकं मे प्रसीदतु ॥ चन्दनधारणमन्त्रोऽपि तत्रैव ॥ कान्ति

लक्ष्मीं धृतिं सौख्यं सौभाग्यमतुलं मम । ददातु चन्दनं नित्यं
 सततं धारयाम्यहम् । इत्यनेन च मन्त्रेण प्रदध्यान्मन्त्रवित्तमः ॥
 तिलकधारणस्थानानि मत्स्यसूक्ते ॥ ललाटे प्रथमं दद्यान्मूर्ध्नि
 दद्यात्ततो हृदि । कण्ठे च श्रोत्रयोर्बाह्वोर्बाहुमूलद्वयेऽपि च ।
 नाभी पृष्ठे च सन्दध्यात् पार्श्वयोश्च युगं युगम् । तिलकानि
 लिखेच्चैव मुच्यते सर्वपातकैः । भाले दीपशिखाकारं बाहुभ्यां
 त्रिल्वपत्रवत् । हृदये कमलाकारं शीवायां चन्द्रमुद्दिशेत् ॥
 वैष्णवतिलके तु विशेषः ॥ ललाटे तु गदा कार्या मूर्ध्नि चापं शरं
 तथा । नन्दकच्चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये । शङ्खचक्राङ्कितो
 विप्रः श्मशाने स्त्रियते यदि । प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गति-
 स्तस्य नारद ! । श्यामाप्रदीपे द्वितीयपरिच्छेदे । यज्ञपाश्वं मा
 तिलकी कर्म्म कुर्वीतति । तस्मान्मृदा जलेनापि कर्त्तव्यं तिलकं
 बुधैः । अन्यथा निष्फलं ज्ञेयं वीजोप्तिरूपरे यथा । तिलका-
 करणनिन्दापि तत्रैव मत्स्यसूक्ते ॥ अकृत्वा तिलकं भाले
 चण्डालं यस्तु पश्यति । पुनः स्नानन्तु कर्त्तव्यं विष्णुव्रीह्यारणे
 तथा । जले च घटे च छायायां संवीक्ष्य तिलकं चरेत् । दर्पणे
 वीक्ष्येदयन्नादमावास्यां विवर्जयेत् ॥ इत्यमावास्यायां तिलक-
 निषेधः । तथा । तिलके निजदेवास्त्रं विलिखेद्दक्षिणादितः ।
 वीजं बाह्वदरोत्सङ्गे भाले वा प्रणवादिकम् । उत्सङ्गे क्रोडे ॥
 राघवमष्टधृतब्रह्माण्डपुराणे ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रं सौम्यं ललाटे
 यस्य दृश्यते । स चण्डालोऽपि शङ्कात्मा पूज्य एव न संशयः ।
 ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा सौम्येति पद्मपुराणे प्रथमचरणे पाठः ।
 अशुचिश्चाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत् । शुचिरेव भवेन्नित्य-
 मूर्ध्वपुण्ड्रान्वितो नरः । मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतु-
 शाननः । मङ्गलो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रमतन्द्रितः । मत्पूजा-
 होमकाले च सायं प्रातः समाहितः । मङ्गलो धारयेन्नित्यमूर्ध्व-

पुण्ड्रं भवापहम् । इति भगवन्नक्तिविलासधृतपद्मपुराणे अधिकम् ।
तद्वृतस्कन्दपुराणे कार्तिकप्रसङ्गे ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रो मृदा शुभ्रो ललाटे
यस्य दृश्यते । चण्डालोऽपि विशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थिता लक्ष्मीः ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थितं यशः । ऊर्ध्वपुण्ड्रे
स्थिता मुक्तिरूर्ध्वपुण्ड्रे स्थितो हरिः । उत्तरखण्डे शिवपार्वती-
संवादे ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे । लक्ष्म्या साङ्गं
समासीनो देवदेवो जनार्दनः । तस्माद् यस्य शरीरे तु ऊर्ध्व-
पुण्ड्रं धृतं भवेत् । तस्य देहं भगवतो विमलं मन्दिरं स्मृतम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधृतो विप्रः सर्वलोकेषु पूजितः । विमानवरमारुह्य
याति विष्णोः परं पदम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं दृष्ट्वा पापैः
प्रमुच्यते । नामस्मृत्या तथा भक्त्या सर्वदानफलं लभेत् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति । आकल्पकोटि-
पितरस्तस्य तृप्ता न संशयः । ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु कुर्यात्
श्राद्धं शुभानने । कल्पकोटिसहस्राणि वैकुण्ठे वासमा-
प्नुयात् । यज्ञदानतपश्चर्याजपहोमादिकञ्चरेत् । ऊर्ध्वपुण्ड्र-
धरः कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे विष्णु-
वाक्यम् ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् । श्वपाको-
ऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते । ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो
गृहे यस्यान्नमश्रुते । तदा विंशत्कुलं तस्य नरकादुद्धराम्यहम् ॥
इत्यूर्ध्वपुण्ड्रमाहात्म्यम् ॥ पद्मपुराणे नारदोक्तौ ॥ यज्ञो दानं
तपो होमः स्नाध्यायः पिष्टतर्पणम् । व्यर्थं भवति तत् सर्वमूर्ध्व-
पुण्ड्रं विना कृतम् ॥ उत्तरखण्डे ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु
किञ्चित् कर्म करोति यः । इष्टापूर्त्तादिकं सर्वं निष्फलं स्यान्न
चान्यथा । ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मादिकञ्चरेत् । तत्सर्वं
राक्षसं ज्ञेयं नरकश्चाधिगच्छति । यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्व-
पुण्ड्रं विना कृतम् । द्रष्टव्यं नैव तत्तावच्चाण्डालसदृशं भवेत् ॥

स्कान्दे ॥ यस्योर्द्ध्वपुण्ड्रं दृश्येत ललाटे न नरस्य हि । तद्दर्शनं
 न कर्तव्यं दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षयेत् ॥ इत्यूर्द्ध्वपुण्ड्राकरणे दोषः ॥
 उत्तरखण्डे ॥ ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं धरेद्विप्रो मृदा शुभ्रेण वैदिकः ।
 न तिर्यग्धारयेद्विद्वानापद्यपि कदाचन । भगवद्भक्तिविलास-
 धृतम् ॥ ऊर्द्ध्वपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रं यः कुरुते स नराधमः । भुङ्क्त्वा
 विष्णुगृहं पुण्यं स याति नरकं ध्रुवम् ॥ स्कन्दपुराणे ॥ तिर्यक्
 पुण्ड्रं न कुर्वीत सम्प्राप्ते मरणेऽपि च । नैवान्यनाम च ब्रूयात्
 पुमान्बारायणादृते ॥ इत्यूर्द्ध्वपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रकरणनिषेधः ॥
 शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतम् ॥ ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा कृत्वा
 सन्ध्यां समाचरेत् । तदेव व्यवस्थापितम् स्कन्दपुराणे ॥
 वैष्णवानां ब्राह्मणानामूर्द्ध्वपुण्ड्रं विधीयते । अन्येषान्तु त्रिपुण्ड्रं
 स्यादिति ब्रह्मविदो विदुः ॥ पद्मपुराणे ॥ त्रिपुण्ड्रं यस्य
 विप्रस्य ऊर्द्ध्वपुण्ड्रे न दृश्यते । तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा सचेलः
 स्नानमाचरेत् ॥ ऊर्द्ध्वपुण्ड्रे न कुर्वीत वैष्णवानां त्रिपुण्ड्रकम् ।
 कृतत्रिपुण्ड्रमर्त्यस्य क्रिया न प्रीतये हरिः ॥ अथोर्द्ध्वपुण्ड्र-
 निर्माणविधिः ब्रह्माण्डपुराणे ॥ वीक्ष्य देशे जले वापि यो
 विदध्यात् प्रयत्नतः । ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं महाभाग ! स याति परमां
 गतिम् । दशाङ्गुलप्रमाणन्तु उत्तमोत्तममुच्यते । नवाङ्गुलं
 मध्यमं स्यादष्टाङ्गुलमतः परम् । एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः
 स्पृशेत् ॥ ऊर्द्ध्वपुण्ड्रलक्षणन्तु मत्स्यसूक्ते ॥ नासिकाकेशपर्यन्त-
 मूर्द्ध्वपुण्ड्रं विधीयते । मध्ये छिद्रन्तु कर्तव्यं तच्छिद्रं हरि-
 मन्दिरम् ॥ पद्मपुराणे उत्तरखण्डे ॥ एकान्ते न महा-
 भागाः सर्वभूतहिते रताः । सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरि-
 पदाकृतिम् । श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा ।
 श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षप्रदं शुभम् ॥ इति कर्मविशेषे
 वर्णविशेषत्रिपुण्ड्रम् । वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं ऋक्षं दीर्घतरं तनुम् ॥

धर्मं विरूपं बह्वर्गं भिन्नमूलं पदच्युतम् । अशुभं रुक्षमासक्तं
 तथा नाङ्गुलिकल्पितम् । विगन्धमपसव्यञ्च पुण्ड्रमाहुरनर्थकम् ॥
 इति निन्दितपुण्ड्रम् ॥ नाङ्गुलिकल्पितमिति विहितकाष्ठिका-
 भिन्नोपलक्षणम् ॥ अन्यथा मत्स्यसूक्ते दशमपटलोक्तवचनमन-
 र्थकं स्यात् । तद्वचनन्तु ॥ कुशेनैव सुवर्णेन न काष्ठेनायसेन च ।
 न शङ्गेन न ताम्रेण न कांक्षेन कदाचन ॥ तुलस्या विस्वकाष्ठेन
 रजतेन समुल्लिखेत् ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्राकारस्तु उत्तरखण्डे ॥ अश्वत्थ-
 पत्रसङ्काशो वेणुपत्राकृतिस्तथा । पञ्चकुङ्कुलसङ्काशो मोहनं
 वितयं स्मृतम् । आरभ्य नासिकासूलं ललाटान्तं लिखेच्चुदा ।
 ललाटान्तमिति न्यूनत्वव्यवच्छेदकमन्यथा दशाङ्गुलस्योत्तमत्व-
 कीर्त्तनं व्यर्थं स्यात् । दशाङ्गुलपरिमाणन्तु नासिकाद्वितीयभागा-
 वधि ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तमेव । सृदेति विहितद्रव्योपलक्षणम् । सृद-
 मिति पाठे व्यत्ययो बहुलमिति सूत्रादिभक्तियत्ययेन स एवार्थः ॥
 नासिकायास्तयो भागा नासिकासूलं प्रचक्षते । समारभ्य म्रुवो-
 र्मध्यमन्तरालं प्रकल्पयेत् ॥ तयो भागा इति निर्देशबलात्
 पूरणप्रत्ययार्थावगतेस्तृतीयो भागो लभ्यते । स च भागो यत्र
 मस्तकावस्थितो नासिका निर्गता तत्रैव ॥ तस्माच्छिद्रान्वितं
 पुण्ड्रं दण्डाकारं सुशोभनम् । विप्राणां सततं कार्यं स्त्रीणाञ्च
 शुभदर्शने । नासिकाकेशपर्यन्तं ऊर्ध्वपुण्ड्रं सुशोभनम् ।
 मध्ये छिद्रसमायुक्तं तद्विद्याहरिमन्दिरम् ॥ इति हरिमन्दिर-
 लक्षणम् ॥ वामभागे स्थितो ब्रह्मा दक्षभागे सदाशिवः । मध्ये
 विष्णुं विजानीयात् तस्मान्मध्यं न लेपयेत् ॥ यजुर्वेदीयस्य
 हिरण्यकेशीयशाखायाम् ॥ हरेः पदाक्रान्तिम् आत्मनो निधाय
 यन्मध्ये छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स
 पुण्यवान् भवति स सुक्तिभाग्यवतीति । तिलकरचनायामङ्गु-
 लिनियममाह भगवद्भक्तिविलासधृता स्मृतिः ॥ अनासिका

कामदोक्ता मध्यमायुष्करी भवेत् । अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्त-
 स्तर्जनी मोक्षसाधनी ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मृत्तिका तु पद्मपुराणे ॥
 पर्वताग्रे नदीतीरे विष्णुमूले जलाशये । सिन्धुतीरे च वल्मीकि
 हरिश्चित्रे विशेषतः ॥ विष्णोः स्नानोदकं यत्र प्रवाहयति
 नित्यशः । पुण्ड्राणां धारणार्थाय गृह्णीयात्तस्य मृत्तिकाम् ।
 श्रीरङ्गे वेङ्कटाद्रौ च श्रीकूर्मद्वारके शुभे । प्रयागे नारसिंहाद्री
 वाराहे तुलसीवने । गृहीत्वा मृत्तिकां भक्त्या विष्णुपाद-
 जलैः सह । धृत्वा पुण्ड्राणि चाङ्गेषु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥
 पर्वताग्रे इत्यादौ षष्ठीसप्तम्योरर्थं प्रति भेदाभाव इति न्यायात्
 पर्वताग्रस्येत्यादि लभ्यते । गृहीत्वा मृत्तिकामिति परेणा-
 न्वयः । व्यत्ययो बहुलमिति षष्ठ्यर्थं सप्तमी वा । नदी-
 तीर इति गङ्गातीरस्येति ज्ञेयम् । प्रागुक्तमव्यसृक्तवचनेन स्त्री-
 सरितो मृत्तिकामग्रहणनिषेधादिति । श्रीरङ्गः काबिरीमध्यस्थः
 क्षेत्रविशेषो दक्षिणदेशेषु प्रसिद्धः । वेङ्कटाद्रिः शेषाचलनाम्ना
 तैलङ्गदेशे प्रसिद्धः । श्रीकूर्मः कलिङ्गदेशे प्रसिद्धः क्षेत्रविशेषः ॥
 गोपीचन्दनमाहात्म्यान्तु मध्यसृक्ते ॥ दुर्लभं चन्दनं लोके गोपीनां
 विष्णुनिर्मितम् । यत् कृत्वा तिलकं सद्यो ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥
 स्थितस्येत्यध्याहारादेककर्तृकता । पद्मपुराणे नारदवाक्येऽपि ॥
 ब्रह्मघ्नो वाय गोघ्नो वा हेतुकः सर्वपापक्षत् । गोपीचन्दनसम्प-
 र्कात् पूतो भवति तत्क्षणात् । गोपीचन्दनखण्डान्तु यो ददा-
 तीह वैष्णवे । कुलमेकोत्तरं तेन स्वं भवेत्तारितं शतम् ॥ इति
 वैष्णवे गोपीचन्दनदानफलम् ॥ स्कन्दपुराणे ध्रुववाक्यम् ॥ शङ्ख-
 चक्राङ्किततनुः शिरसा मञ्जरीधरः । गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्ट-
 श्वेत्तदधः कुतः । गोपीमृत्तुलसी शङ्खः शालग्रामः सचक्रकः ।
 गृहेऽपि यस्य पञ्चैते तस्य पापभयं कुतः ॥ सचक्रकं सश्री-
 चक्रकमित्यर्थः । काशीखण्डे ॥ श्रीखण्डे क्तं स आमोदः स्वर्णं

वर्णः क्व तादृशः । तत्पवित्रं क्व वै तीर्थं श्रीगोपीचन्दने यथा ॥
 गरुडपुराणे श्रीनारदवाक्यम् । यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां
 करे समादाय ललाटपट्टे । करोति नित्यन्वयं चोर्ध्वपुण्ड्रं
 क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भवेत् । क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं
 श्रद्धाविहीनं यदि कालवर्जितम् । कृत्वा ललाटे यदि गोपि-
 चन्दनं प्राप्नोति तत्कर्मफलं सदाक्षयम् । गोपीचन्दनसम्भवं
 सुरुचिरं पुण्ड्रं ललाटे द्विजो नित्यं धारयते यदि द्विजपते ! रात्रौ
 दिवा सर्वदा । यत् पुण्ड्रं कुरुजाङ्गले रविगृहे माध्यां प्रयागे
 तथा तथाप्नोति खगेन्द्र ! विष्णुसदने सन्तिष्ठते देववत् ॥
 यस्मिन् गृहे तिष्ठति गोपिचन्दनं भक्त्या ललाटे मनुजो विभर्त्ति ।
 तस्मिन् गृहे तिष्ठति सर्वदा हरिः श्रद्धान्वितः कंसनिहा विह-
 ङ्गम् ॥ यो धारयेत् कृष्णपुरीसमुद्भवां सदा पवित्रां कलि-
 कल्मषापहाम् । नित्यं ललाटे यदि मन्त्रसंयुतां यमं न पश्येद्
 यदि पापसंघतः । यस्यान्तकाले खग ! गोपिचन्दनं बाह्योर्ललाटे
 हृदि मस्तके च । प्रयाति लोकं कमलालयाप्रभोर्गोबालघाती
 यदि ब्रह्महा भवेत् ॥ अहा न पीडन्ति न रक्षसां गणो यक्षाः
 पिशाचोरगभूतदानवाः । ललाटपट्टे खग ! गोपिचन्दनम्
 सन्तिष्ठते यस्य हरिः प्रसादतः ॥ पद्मपुराणे ॥ अम्बरीष ! महा-
 घस्य क्षयार्थं कुरु वीक्षणम् । ललाटे यैः कृतं नित्यं गोपी-
 चन्दनपुण्ड्रकम् । काशीखण्डे यमोक्तिः । दूताः ! शृणुत यद्वाक्यं
 गोपीचन्दनलाञ्छितम् । ज्वलदिम्बनवत् सोऽपि दूरे त्याज्यः
 प्रयत्नतः ॥ इति गोपीचन्दनमाहात्म्यम् ॥

भगवद्भक्तिविलासष्टतकाशीखण्डे ॥ अथ तस्योपरि श्रीम-
 त्तुलसीमूलमृत्सूया । तथैव वैष्णवैः कार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं मनोरमम् ।
 स्कन्दपुराणे तुलसीमूलमृत्तिकामुपक्रम्य ॥ तन्मृदं गृह्य यैः
 पुण्ड्रं ललाटे धारितं नरैः । प्रयाणकं कृतं तैस्तु मोक्षाय गमनं

प्रति ॥ तुलसीमृत्तिकापुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते । देहं न
 मृशते पापं क्रियमाणन्तु नारद ! ॥ गरुडपुराणे ॥ तुलसीमृत्ति-
 कापुण्ड्रं यः करोति दिने दिने । तस्यावलोकनात् पापं याति
 वर्षकृतं नृणाम् ॥ तुलसीमूलमृत्तिकामाहात्म्यम् गारुडे । तस्यो-
 परिष्ठाद्भवगन्निर्मात्यमनुलेपनम् । तथैव धार्यमेवं हि त्रिविधं
 तिलकं स्मृतमिति ॥ पूर्वोक्त्या अथ तस्योपरि गोपीचन्दनतिल-
 कोपरि । तत्र तु तस्योपरिष्ठात्तुलसीमूलमृत्तिका तिलकोपरि-
 ष्ठादित्यर्थः ॥ तेन प्रथमं गोपीचन्दनतिलकं कृत्वा तदुपरि तुलसी-
 मूलमृत्तिकातिलकं करणीयम् ॥ तदुपरि च विष्णुनिर्मात्यानु-
 लेपने तिलकं कार्यमिति त्रिविधं तिलकम् ॥ अथ द्वादश-
 तिलकविधिः ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ ततो द्वादशभिः कुर्यान्नामभिः
 केशवादिभिः । द्वादशाङ्गेषु विधिवदूर्ध्वपुण्ड्राणि वैष्णवः ॥ पद्म-
 पुराणे उत्तरखण्डे ॥ ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरं ।
 वक्षःस्थले माधवन्तु गोविन्दं कण्ठकूपके । विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ
 बाहौ च मधुसूदनम् । त्रिविक्रमं स्कन्धदेशे वामनं वामपार्श्वके ।
 ओधरं वामबाहौ तु हृषीकेशन्तु कम्बरे । पृष्ठे तु पद्मनाभञ्च
 कट्यां दामोदरं न्यसेत् । तत्प्रक्षालनतोयन्तु वासुदेवेति मूर्धनि ।
 योगिनीतन्त्रे ॥ पिधाय तिलकं श्रेष्ठमेषामेकतमेन वा । चतुः-
 समञ्च त्रिसमं द्विसमञ्च सुरेश्वरि ! । अथालिप्य ततो देहमयने
 तु विवर्जयेत् । चतुःसममित्यादिपूर्वोक्तमलयजगोपीचन्दनविल्व-
 तुलसीकाष्ठपद्मकृतमालगोरोचनानाम् । शीते रात्रौ पुनः स्नाने
 नानुलिप्य सुगन्धिभिः । ललाटे तु विशेषेण वराङ्गे न कदाचन ॥
 मत्स्यसूक्ते ॥ न रात्रौ तिलकं कुर्याद् भुक्त्वा नैव च नैव च । महा-
 गुरुनिपाते च तिलकं हृदयेन्नरः । बह्वृचपरिशिष्टम् । तत्रा-
 दावनुलेपेन भगवच्चरणाब्जयोः । निर्मात्येन प्रसादेन सर्वाण्य-
 ङ्गानि मार्जयेत् ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ शालग्रामशिलालग्नं चन्दनं

धारयेत् सदा । सर्वाङ्गेषु महाशुद्धिसिद्धये कमलासनम् ॥ इत्यु-
र्ध्वं पुण्ड्रप्रकरणम् ।

अथ त्रिपुण्ड्रधारणविधिः ॥ राघवभट्टकृतम् ॥ भस्माग्नि-
होत्रसम्भूतमानयेच्छोधिनां बुधः । यद्वा धरामसंस्पृष्टं सत्ये-
नानीय गोमयम् ॥ सत्येन प्रणवेन ॥ वामेन पात्रे संशोध्य अघो-
रेण विनिर्दहेत् ॥ तत्पुरुषेण समुद्धृत्य ईशानेन विशोधयेत् ।
इत्यन्तु संस्कृतं भस्म अग्निरित्यादिमन्त्रतः । विमृज्याङ्गानि
संस्पृश्य पुनरादाय मन्त्रतः । तस्मादुब्रजेति यजुषा मन्त्रयेद्बुध-
संख्यया । प्रणवाद्यैश्चतुर्थीं हृदन्तैस्त्रयोः ईशकैः । पञ्चवर्णा-
क्षराद्यैश्च भालांशोदरहृत्सु च । त्रिपुण्ड्रधारणं कुर्यान्मूर्ध्नि
पञ्चाक्षरेण च । त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नन्वी साक्षाच्छिव इवापरः ॥
वायवीसंहितायाम् भस्मग्रहणमन्यदप्युक्तम् ॥ यथा । शिवा-
ग्नेर्भस्म संग्राह्यमग्निहोत्रोद्भवन्तु वा । वैवाह्याग्न्युद्भवं वापि
पक्वं शुचि सुगन्धि च । कपिलायाः शक्नुष्वं गृहीतं गगने
पतत् । न क्लिन्नं नापि कठिनं न दुर्गन्धि न चोषितम् ।
उषितं पर्युषितमित्यर्थः ॥ उपर्यधः परित्यज्य गृहीयात्
पतितं यदि । पिण्डौकत्य शिवाग्नी तु प्रक्षिपेन्मूलमन्त्रतः ।
अपक्वमतिपक्वञ्च सन्त्यज्य भसितं सितम् । आदाय यस्माच्छुद्धं
तद् यथा भस्म प्रजायत इति कालाग्निरुद्रोपनिषदा वृषगोमय-
स्याप्येवम्प्रकारः प्रदर्शितः ॥ वामेनेति ॥ ॐ वामदेवाय नमो
ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः । कालाय नमः कलविकरणाय
नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय
नमो मनोन्मनाय नमः ॥ अघोरेणेति मन्त्रस्तु ॐ अघोरेभ्यो-
ऽथ घोरेभ्यो घोरोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्र-
रूपेभ्यः ॥ तत्पुरुषेणेति मन्त्रस्तु ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महा-
देवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ईशानेनेति मन्त्रस्तु ।

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणी-
 ऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवौम् । अग्निरित्यादिमन्त्रस्तु ।
 अग्निरिति भस्मवायुरिति भस्मजलमिति भस्मस्थलमिति भस्म-
 व्योमेति भस्मसर्वहरा इदम् । भस्ममन एतानि चक्षूंषि तस्माद्-
 व्रतमेतत् पाशुपतं यत् । भस्मनाङ्गानि संसृशेत् । तस्माद्ब्रह्म तदे-
 तत् पाशुपतं पशुपतं पशुपाशविमोक्षाय । यजुषा यजुर्मन्त्रेण
 पञ्चाक्षरेण नमः शिवायेति मन्त्रेण वा कुलम्बूलावतारकल्पसूत्र-
 तृतीयकाण्डटीकाधृता श्रुतिः ॥ शुद्धद्रव्यं तदाग्नेयभस्मत्रिपुण्ड्रकं
 त्रिरेखात्मकमर्द्धचन्द्ररूपात्मकमर्द्धचन्द्ररूपम् ॥ अथ सनत्कुमार-
 प्रमाणस्य त्रिधा ललाटादाचक्षुः पश्चाद् भ्रूवोर्मध्यतः । यस्येह
 प्रथमा रेखा सा आहवनीयोऽर्कं ऋग्वेदः । प्रातः सवनं महे-
 श्वरः । यस्येह द्वितीया रेखा सावसथ्य उकारो यजुर्वेदः सदा-
 शिवः । यस्येह तृतीया रेखा सा गार्हपत्यः परमात्मज्ञानशक्ति-
 र्मकाराद्यैरिति ॥ अथ कालाग्निरुद्रोपनिषत् ॥ संवर्त्तीऽग्नि-
 र्दृष्टिर्विराड्विश्वरूपी रुद्रो देवता अनुष्टुप्कृन्दः श्रीविश्वरूप-
 प्रीत्यर्थे विनियोगः । अथ कालाग्निरुद्रं भगवन्तं सनत्कुमारः
 पप्रच्छ अधीहि भोस्त्रिपुण्ड्रविधिं सतत्त्वं किं द्रव्यं किञ्च स्थानं
 कति प्रमाणं का रेखाः के मन्त्राः किं दैवतं कः कर्त्ता किं फल-
 मिति तं होवाच भगवान् कालाग्निरुद्रः । सत्यमुक्तं यद्द्रव्यं
 यदाग्नेयं यद्भस्म सद्योजातादि पञ्चरुद्रब्रह्ममन्त्रैः परिगृह्य अग्नि-
 रिति भस्म अनेनाभिमन्त्र्य मानस्तोक इति संक्षुभ्य त्रायुषमि-
 त्यादिना शिरोललाटस्कन्धकण्ठहृद्बाहुद्वयेषु त्रिभिरायुषैस्त्रय-
 स्रकैस्त्रित्यक् तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत एतदेव तच्छाश्वतं सर्ववेदेषु
 वेदविज्ञिरुक्तम् । तत् समाचरन् मुमुक्षुर्न पुनर्भवाय । भेदमा-
 ललाटादाचक्षुषोराभ्रवोर्मध्यतः । कर्णादाकर्णपर्यन्तं त्रित्यक्
 तिस्रो रेखाः प्रकुर्वीत । या स्यात् प्रथमा रेखा सा गार्हपत्याग्नि-

आकारा भूर्लोक आत्मक्रियाशक्तिश्च ऋग्वेदः । प्रथमं सवनं
महेश्वरः या स्याद् द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकारः ।
सत्यमन्तरीक्षमन्तरात्मा चेच्छाशक्तिर्यजुर्वेदः । मध्यन्दिनं द्वितीय-
सवनं सदाशिवदेवेति । या स्यात् तृतीया रेखा सा आह-
वनीयोऽग्निर्मकारस्तमो यौः परमात्मा ज्ञानशक्तिः सामवेद-
स्तृतीयसवनं शिवदेवेति । त्रिपुण्ड्रकं भस्मना करोति यो विद्वान्
ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो यतिर्वा स समस्तमहापातकोपपात-
केभ्यः पूतो भवति सर्वान् वेदान् पठिता भवति सर्वतीर्थेषु स्नातो
भवति स सन्ततं सर्वमन्त्रजापी भवति । सकलभोगभुग्देहं
त्यक्त्वा शिवसायुज्यमेति न पुनरावर्तते । स वैष्णवः शिवः
सोऽपि स च ब्रह्मा प्रजापतिः । स मुक्तः सर्वपापेभ्यो न पुन-
र्भवमिष्यते । इत्यस्ति भगवान् कालाग्निरुद्रः पुनराह । अग्नि-
रिति भस्मजलमिति भस्मवायुमिति भस्मस्थलमिति भस्मसर्वं
विश्वं तदाग्नेयं याज्ञं वृषपुत्रीषभस्म तेन त्रिपुण्ड्रकं तेन
तद्विद्वान् किञ्चिदयाज्ञिकं कर्म इत्याह भगवान् भवः ॥ इति
कालाग्निरुद्रोपनिषत् समाप्ता ॥

घायवीयसंहितायां त्रयोदशसु स्थानेषु त्रिपुण्ड्रधारणमुक्तम् ॥
यथा राघवभट्टकृतम् ॥ ललाटे ब्रह्म विज्ञेयं हृदये हव्यवाहनः ।
नाभौ स्कन्धे गले पूषा रुद्रो दक्षिणबाहुके । आदित्यो बाहु-
मध्ये च शशी च मणिवन्धके । वामदेवो वामबाहौ बाहुमध्ये
प्रभञ्जनः । मणिवन्धे च वसवः पृष्ठदेशे हरः स्मृतः । शम्भुः
ककुदि सम्भोजः परमात्मा शिवः स्मृतः । तस्मात् कालाग्निरुद्रोप-
निषदायवीयसंहितोक्तस्थानानामिच्छाविकल्पः ॥ पुरश्चरणलह-
रीतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसंश्रवम् ।
शीघ्रं प्रदत्तरैर्मन्त्रैर्वेदमन्त्रविवर्जितैः । शिरोदेशे ललाटे च
स्कन्धे च भूपदेशके । मध्यमानामिकाङ्गुल्यङ्गुलेन तिलकं ततः ।

तिलकस्त्रिंशो रेखा स्याद्रेखाणां नव देवताः । पृथिव्यग्निस्तथा
 आत्मा क्रियाशक्तिर्महेश्वरः । देवता आद्यरेखाया भक्त्या ते
 परिकीर्त्तिताः । लभस्व त्वच्च सुभमे ! द्वितीयायाश्च देवताः ।
 परमात्मा शिवो देवस्तृतीयायास्तु देवते । एतान्नित्यं नमस्कृत्य
 त्रिपुण्ड्रं धारयेद् यदि । महेश्वरव्रतमिदं कृत्वा सिद्धीश्वरो
 भवेत् । ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो यतिरेव वा । महा-
 पातकसङ्घातैर्मुच्यते सर्वपातकात् । तथान्ये क्षत्रविट्शूद्रस्त्री-
 हत्यादिकपातकैः । वीरब्राह्मणहत्याभ्यां मुच्यते सुभगीश्वरि ! ।
 अमन्त्रेणापि यत् कुर्यात् कृत्वा चैव महोन्नतिम् । त्रिपुण्ड्र-
 भालतिलको मुच्यते सर्वपातकैः । परद्रव्यापहरणं परदारभि-
 मर्षणम् । परनिन्दा परक्षेत्रहरणं परपीडनम् । असत्यवाक्यं
 पैशुन्यं पारुष्यं देवविक्रयम् । कूटसाध्यं व्रतत्यागं कैतवं नीच-
 सेवनम् । गोभूहिरण्यमहिषीतिलकस्त्रिलवाससाम् । अन्न-
 धान्यजलादीनां नीचेभ्यश्च प्रतिग्रहः । दासीवेश्यासु कष्टासु
 वृषलीषु नटीषु च । रजःस्त्रलासु कन्यासु विधवासु च सङ्गमः ।
 मांसचर्मवसादीनां लवणस्य च विक्रयः । एवंप्राण्यसंख्यानि
 पापानि विविधानि च । सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च
 धारणात् । शिवद्रव्यापहरणात्तन्निन्दायाश्च कुत्रचित् । निन्दा-
 याः शिवभक्तानां प्रायश्चित्तेन शुध्यति । देवद्रव्यापहरणे ब्रह्मस्त्र-
 हरणेन च । कुलान्याशु विनश्यन्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ।
 रुद्राक्षा यस्य देहेषु ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् । यदि स्यात् स च
 चाण्डालः सर्ववर्णोत्तमोत्तमः । यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन्
 गङ्गाद्याः सरितश्च याः । स्नातो भवति सर्वत्र यस्त्रलाटे त्रिपु-
 ण्ड्रकम् । सप्तकोटिर्महामन्त्रा उपमन्त्रास्तथैव च । श्रीविष्णोः
 कोटिमन्त्राश्च कोटिमन्त्राः शिवस्य च । ते सर्वे तेन जप्ताः
 स्युर्यो विभर्त्ति त्रिपुण्ड्रकम् । सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं जनि-

यताम् । स्ववंशजानां मर्त्यानामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् । अष्टै-
श्वर्यगुणोपेतः प्राप्य दिव्यत्रिपुण्ड्रतः । दिव्यं विमानमारुह्य
दिव्यस्त्रीशतसेवितः । विद्याधराणां सिद्धानां गन्धर्वाणां मही-
जसाम् । इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् । भुक्त्वा
भोगान् सुविपुलान् प्राक्तनानां पुरेषु च । ब्रह्मणः पदमासाद्य
तत्र कल्यायुतावधि । विष्णोर्लोके च रमते आब्रह्मणः शतायु-
षम् । शिवलोकं ततः प्राप्य रमते कालमक्षयम् । शिवसायुज्य-
माप्नोति न स भूयो विजायते ॥ इति त्रिपुण्ड्रधारणफलम् ॥

शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतभविष्यपुराणे ॥ त्रिपुण्ड्रेण विना
कुर्याद् यां काञ्चिद्देदिकीं क्रियाम् । सा निष्फला भवेद्देवि !
ब्रह्मणापि कृता यदि ॥ श्यामाप्रदीपे तु स्कन्दपुराणीयमिति
कृत्वा लिखितम् ॥ कूर्मपुराणे ॥ वैष्णवो वायु शैवो वा शाक्तो
वा सौर एव वा । त्रिपुण्ड्रेण विना पूजां कुर्वाणो यात्यधो-
गतिम् ॥ शिवधर्मे । सितेन भस्मना कुर्यात् ललाटे च त्रिपु-
ण्ड्रकम् । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ भस्मेत्युप-
लक्षणं द्रव्यान्तरेणापि त्रिपुण्ड्रं कार्यम् ॥ सर्वस्त्रिपुण्ड्रकं
कुर्यात् सर्वदा यज्ञभस्मना । तदभावे चन्दनेन सृदा वा वारि-
णापि वा । इति भविष्यपुराणवचनात् । यत्किञ्चित् कुरुते कर्म
विना विप्रस्त्रिपुण्ड्रकम् । व्यर्थमेव भवेत् सर्वं बन्ध्यास्त्रीसङ्गमो
यथा । सच्छिद्रं कुरुते यस्त्रिपुण्ड्रं पशुमतिर्द्विजः । धर्मार्थकाम-
मोक्षेषु तस्य किद्रं प्रजायते । इति सच्छिद्रत्रिपुण्ड्रवारणनिन्दा ।
ननूर्ध्वपुण्ड्रे त्रिपुण्ड्रकरणमुक्तवचनजातात् निषिद्धं पूर्वोक्तकूर्म-
पुराणवचनेन वैष्णवादीनां त्रिपुण्ड्रेण विना पूजाकरणे दोष-
श्रुतिश्चेति लम्बोदरस्य रतिकाले प्रियामुखजुष्वनभिवैकं
सन्धित्ततोऽन्यत् प्रच्यवत इति चेत् नैवम् । ऊर्ध्वपुण्ड्रत्रिपुण्ड्रयोः
सच्छिद्रकरणनिषेधो वैधेतरपर इत्यवेहि । सर्वत्रैव निषेधस्य

वैधभिन्नपरत्वाद् यथा विशिखनिन्दा प्रायश्चित्ताद्यनाघ्रातपरा ।
 अतएव शैवेस्तूर्ध्वपुण्ड्रधारणानन्तरमेव भस्मना त्रिपुण्ड्रधारण-
 मपि कार्यं यतो द्विजानामूर्ध्वपुण्ड्रस्यावश्यकत्वमिति राघव-
 भट्टः ॥ अथ शक्तितिलकम् ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतगौतमीये ॥
 तिलकं रक्तगन्धेन चन्दनेनाथ वा प्रिये ।। देव्यस्त्रं विलिखे-
 ज्जाले तारावीजं ततो हृदि । शक्तिमध्यगतां कुर्यादित्ये-
 तच्छक्तितिलकम् ॥ तिलके निजदेवास्त्रमिति प्रागुक्तेनैकवाक्य-
 तथा देव्यस्त्रं स्वीयष्टदेवतावीजमिति ॥ अन्नदाकल्पे पञ्चम-
 पटले ॥ प्रक्षाल्य पाणिपादौ च रक्तवस्त्रयुगं ततः । परिधा-
 यार्धचन्द्राभं सविन्दुं तिलकं चरेत् । चन्दनेन सुरक्तेन कुङ्कुमे-
 नाथ वा पुनः । सिन्दूरविन्दुसंयुक्तं रेखात्रयविराजितम् । देवी-
 पादाम्बुजरजो ध्यात्वा मूलेन साधकः । पूजाधिकारौ दुर्गाया
 यथासौ चन्द्रशेखरः ॥ कृष्णार्चनचन्द्रिकाधृतमालिनीविजये-
 ऽपि ॥ भाले चन्द्रार्धरेखा त्रितयविरचितं विद्युदाभाविलासं
 तस्याधश्चान्तरालेऽरुणकिरणनिभं भूयुगस्याथ विन्दुम् । हृत्मध्ये
 पद्मरूपं शशधरविशदं दीर्युगी वीरणाभं स्थानेष्वन्येषु विन्दून्
 रचयति तिलकं सो हि विश्वेशरूपः ॥ मूयुगस्यान्तराले मध्ये
 रक्तवर्णं विन्दुं रचयतीत्यन्वयः । हृत्मध्ये श्वेतपद्मरूपमित्यर्थः ।
 दीर्युगी बाहुद्वये । वीरणाभं वीरणपत्राकारम् । अन्येषु स्थानेषु
 पुरोक्तेषु इति एतच्छब्दस्य प्रयोगस्तच्छब्दार्थमभिधत्ते । उक्तञ्च
 सर्वनामसूत्रटोकायां त्यक्तदावेकार्थौ यदि निर्दिष्टार्थौ । इतरे-
 त्रयः साभिनयप्रत्यक्षे साभिनयो हस्तभङ्गिमादिरिति कुलचन्द्रः ।
 अन्यथा विसर्गलोपे सतीत्यनेन छन्दोभङ्गः स्यात् । प्रक्रान्तवाचि-
 नस्तस्य न यच्छब्दापेक्षा । उक्तञ्च काव्यप्रकाशे ॥ एवं प्रक्रान्त-
 प्रसिद्धानुभूतार्थविषयकस्तच्छब्दोऽपि यच्छब्दस्योपादनं नापे-
 क्षते । ऋजवस्तु तन्त्रोपशब्दविचारनिषेधात् सो हीति प्रठन्ति ।

जले यदि सन्ध्यादि क्रियते तदा यागमण्डपं गत्वा उपविश्य
तिलकं कार्यम् ॥ अन्नदाकल्पे तथोक्तत्वात् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां तृतीये अर्थकाण्डे स्नानादितिल-
कान्तप्रशाखाकथनरूपस्तृतीयः परिच्छेदः ॥

अथ सन्ध्या ॥ वैदिकसन्ध्यानन्तरं तान्त्रिकी सन्ध्या कार्या ॥
तथाच पुरश्चरणरसोल्लासे प्रथमपटले । प्रातःस्नानं समासाद्य
सन्ध्यां परमदुर्लभाम् । उपास्य चञ्चलापाङ्गि ! गायत्रीं प्रजपे-
त्ततः । ततस्तु तान्त्रिकीं सन्ध्यां गायत्रीं तान्त्रिकीं तथा ।
सूर्यार्घ्यं च ततो दत्त्वा पूजार्थं गृहमाविशेत् ॥ बृहन्नीलतन्त्रे
प्रथमपटलेऽपि ॥ आदौ च वैदिकीं सन्ध्यां कृत्वा चागम-
सम्पत्ताम् । सन्ध्यां कृत्वा ततो वीरः कुलकोटीः समुद्धरेत् ।
तथा । एतत्सन्ध्यात्रयेणैव दिवारात्री च वन्दनेति ॥ गन्धर्व-
तन्त्रे षष्ठपटले ॥ अपरां कथयाम्यत्र सर्वपापविनाशिनीम् ।
उपविश्य शुचौ देशे त्रितत्त्वेन त्रिधाचमेत् । प्राणायामत्रयं कृत्वा
त्रिधावीजैस्त्रिधाविधम् । वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदक-
विन्दुभिः । सप्तधा प्रोक्षणं कुर्यान्मूर्ध्नि मन्त्रमनुस्मरन् । अव-
शिष्टोदकं दक्षहस्ते संगृह्य साधकः । नासामाश्लिष्य तोयेन
ततस्तेनाधमर्षणम् । इडयाकृष्य देहान्तः क्षालितैः पापसञ्चयैः ।
कृष्णवर्णं ततोदकं वामनाद्या विरेचितम् । दक्षहस्ते तु
तन्मन्त्रो पापरूपं विचिन्त्य च । पुरतो वज्रपाषाणे निक्षिपे-
दस्त्रमन्त्रतः । इत्यधमर्षणं कृत्वा पुनराचमनं तथा । अभि-
षिञ्चेत्ततो मूर्ध्नि विधिना साधकोत्तमः । ॐ आपो देवी रसो-
ऽमृतं पूतं ब्रह्म पुनीमहे । जलाञ्जलित्रयं भूमौ मार्त्तण्डभैरवाय
च । ऊर्ध्वबाहुस्ततो मन्त्रो मार्त्तण्डं समुपाश्रयेत् । ॐ उदुत्यं
जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् । मार्त्तण्ड-
शेषे देवेशि ! भैरवं पदमीरयेत् । एतादृक् सन्ध्या तु गौड-

देशे न प्रचरद्रूपा । गौडदेशीया तु तोडलतन्त्रे तृतीय-
 पटले ॥ आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचामेत् पाथसा तथा । वङ्गि-
 जायान्विता मन्त्रा विज्ञेयाः प्रणवादिकाः । गङ्गे चेत्यादिना
 देवि ! तीर्थावाहनमाचरेत् । मूलेन मनुना भूमौ त्रिवारं
 निक्षितेत् सुधीः । तज्जलेन सप्तवारमात्माभिषेकमाचरेत् ।
 अङ्गन्यासे ततः कृत्वा वामहस्ते सुरेश्वरि ! । गगनं वायुवीजञ्च
 वरुणं भूमिवीजकम् । वङ्गिवीजं विन्दुयुतं त्रिवारं जपमाचरेत् ।
 अनेन मनुना देवि ! तज्जलञ्चाभिमन्त्रितम् । मूलमन्त्रं समु-
 च्चार्य सप्तधा तत्त्वमुद्रया । आत्माभिषेकमात्रेण मुच्यते सर्वपा-
 तकैः । शेषं जलं महेशानि ! दक्षहस्ते समानयेत् । इडया पूर-
 येत्तोयं क्षालयेद्देहमध्यगम् । ततः पिङ्गलया देवि ! ततोयन्तु
 विरेचयेत् । कृष्णवर्णं तदुदकं पापरूपं विचिन्तयेत् । पुरतो
 वज्रपाषाणे फट्कारेण विनिक्षिपेत् । हस्तं प्रक्षाल्य चाचम्य
 सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् । देवतार्घ्यं ततः पश्चात् गायत्रीं परमा-
 चरीम् । प्रपठेत्तु ततो धीमान् त्रिवारं जलमुत्क्षिपेत् । ततो
 जपेन्महामन्त्रं गायत्रीं परमाचरीम् । अङ्गन्यासे ततः कृत्वा आचम्य
 परमेश्वरि ! । इष्टदेवीं महेशानि ! ध्यात्वा तु रविमण्डले । प्राणा-
 यामादिकं कृत्वा चाष्टोत्तरशतं जपेत् ॥ कल्पसूत्रटीकातृतीय-
 काण्डधृतलक्ष्मीकुलार्णवे ॥ सन्ध्याया तु विहीनो यो न दीक्षा-
 फलमाप्नुयात् । मन्त्रसन्ध्यापूर्विका सन्ध्या कार्या तदुक्तं नव-
 रत्नेश्वरे ॥ वैदिकी तान्त्रिकी सन्ध्या यथानुक्रमयोगत इति ॥
 महानिर्वाणतन्त्रे पञ्चमोक्तासिऽपि ॥ सन्ध्यां समाचरेन्नन्तौ ता-
 न्त्रिकीं शृणु कथ्यते । आचम्य पूर्ववत्तोये तीर्थान्यवाहयेच्छिवे ! ।
 गङ्गे चेत्यादिमन्त्रेण मुद्रयाङ्गुशसंज्ञया । आवाह्य तीर्थं सलिलं
 मूलं द्वादशधा जपेत् । ततस्ततोयतो विन्दून् त्रिधा भूमौ
 विनिक्षिपेत् । अङ्गुष्ठानामिकाद्योमाभ्युलोच्चारणपूर्वकम् । सप्त-

वैरं स्वमूर्ध्नि नमभिषिच्य ततो जलम् । वामहस्ते समादाय
 क्वादयेद्दक्षपाणिना । ईशानवायुवरुणवज्रीन्द्रवीजपञ्चकम् ।
 प्रजप्य वेदधा तीर्थं दक्षहस्ते समानयेत् । वीच्य तेजोमयं ध्यात्वा
 चेडयाक्षय्य साधकः । देहान्तः कलुषं तेन रेचयेत् पिङ्गला-
 ख्यया । निष्कृष्य पुरतो वज्रशिलायां वज्रमुच्चरन् । त्रिवारं
 ताडयेन्मन्त्री हस्तौ प्रक्षालयेत्ततः । आचम्योक्तेन मन्त्रेण सूर्या-
 यार्घ्यं निवेदयेत् । तारमाया हंस इति घृणिसूर्यस्ततः परम् ।
 इदमर्घ्यं तुभ्यमुक्त्वा दद्यात् स्वाहेत्युदीरयन् । ततो ध्यायेन्महा-
 देवीं गायत्रीं परदेवताम् । प्रातर्मध्याह्नासायाह्ने त्रिरूपं गुण-
 भेदतः । प्रातर्वज्रिस्तवर्णां हिभुजाञ्च कुमारिकाम् । कमण्डलुं
 तीर्थपूर्णमक्षमालाञ्च बिभ्रतीम् । कृष्णाजिनाम्बरधरां हंसारूढां
 शुचिस्निताम् ॥ १ ॥ श्यामवर्णां वैष्णवीञ्च चतुर्भुजां महेश्वरि ! ।
 शङ्खचक्रगदापद्मधारिणीं गरुडासनाम् । पीनतुङ्गकुचदन्दां
 वनमालाविभूषिताम् । युवतीं सततं ध्यायेन्मध्ये मार्त्तण्ड-
 मण्डले ॥ २ ॥ सायाह्ने वरदां देवीं गायत्रीं संस्मरेद्यतिः । शुक्लां
 शुक्लाम्बरधरां वृषासनकृताश्रयाम् । त्रिनेत्रां वरदां पाशं शूलञ्च
 नृकरोटिकाम् । बिभ्रतीं करपद्मैश्च वृद्धां गलितयौवनाम् ॥ ३ ॥
 एवं ध्यात्वा महादेव्यै जलानामञ्जलिद्वयम् । दत्त्वा जपेत्तु
 गायत्रीं दशधा शतधापि वा । त्रिसन्ध्यमेतां प्रजपन् सन्ध्यायाः
 फलमाप्नुयात् । ततस्तु तर्पयेद्देवि ! देवर्षिपितृदेवताः । प्रणवः
 स द्वितीयाख्यस्तर्पयामि नमः पदम् । शक्तौ तु प्रणवो मायां
 नमः स्थाने द्विदं वदेत् । ततश्चार्घ्यं महादेव्यै दत्त्वा तुलं जपेत्
 सुधीः । यथाशक्ति जपं कृत्वा देव्या वामकरेऽर्पयेत् । प्रणम्य
 देवीपूजार्थं जलमादाय साधकः । नत्वा तीर्थं पठन् स्तोत्रं देवता-
 ध्यानतत्परः । यागमण्डपमागत्य पाणिपादौ विशोधयेत् ॥
 बृहन्नीलतन्त्रे प्रथमपटले ॥ सन्ध्यां सायन्तनीं कुर्याद् द्वादश्या-

निर्वाणतन्त्रे तृतीयब्राह्मणपटले ॥ गायत्रीं शृणु चार्वाङ्गि ! चतु-
 वेदप्रपूजिताम् । वेदमातेति विख्यातां त्रिवर्गफलदायिनीम् ।
 हालाहलं समुद्धृत्य इत्यादि गायत्री ज्ञेया ॥ इति जम्बा महेश-
 शानि ! मुक्तो भवति नान्यथा । अन्ययकारयोः स्थाने य इति
 च यः पठेत् । स चण्डाल इति ख्यातो ब्रह्महत्या दिने दिने ।
 अतएव महेशानि ! तव स्नेहात् प्रकाशितम् । सावित्री परमा
 विद्या त्रैलोक्ये च सुदुर्लभा । अस्या ग्रहण मात्रेणाभूद्ब्रह्मा नात्र
 संशयः ॥ यत्तु गायत्रीतन्त्रस्य प्रथमब्राह्मणपटले ॥ प्रणव-
 त्रयसंयुक्तं ब्राह्मणेषु प्रकीर्तितम् । ज्ञेयादौ परमेशानि ! शस्यते
 प्रणवद्वयम् ॥ द्वितीयब्राह्मणपटलेऽपि ॥ प्रणवत्रयसंयुक्तां गायत्रीं
 प्रजपेत्तु यः । गायत्र्याः फलमाप्नोति अन्यथारश्मिरोदनमिति ।
 प्रणवत्रययुक्ता गायत्री कथनम् । तत्प्रबलकलौ तत्पुटितत्वाभि-
 प्रायेण तथाच तत्रैव ॥ विद्या वा उपविद्या वा प्रणवैः पुटितं
 कलौ । जम्बा सिद्धिमवाप्नोति तद्वत्ते विफलं भवेत् ॥ अस्यार्थः ।
 राघवमदृष्टम् ॥ तत्र प्रणवेन ब्रह्म प्रतिपाद्यते व्याहृतिभिरपि
 तदेव प्रतिपाद्यते । भूरिति सन्मात्रमुच्यते सर्वं भावयति
 प्रकाशयति इति व्युत्पत्त्या भुवमिति चिद्रूपमुच्यते । सर्वप्रेरणात्
 स्वरिति तेजोरूपत्वात् पूजनीयत्वात् मह इति । सर्वजनन-
 त्वाज्जन इति । ज्ञानस्वरूपतया सर्वतापनतया वा तप इति ।
 परत्वात् सर्वात्मकत्वात् अनन्तज्ञानत्वात् सत्यमिति सप्तव्याहृ-
 तिभिः परं ब्रह्मैवोच्यते । प्रणवेन सह आसामान्तरः सम्बन्धो
 यथा । प्रणवस्य अकारादिसप्तमात्राः सप्तव्याहृतय इति यद्वा
 भूरादिसप्तलोकाः प्रणववाच्यब्रह्मात्मकास्तदतिरिक्तं न किञ्चिद-
 स्तीत्यर्थः । तत्पदेन ब्रह्मोच्यते । ॐ तत् सदिति निर्देशो
 ब्रह्मणस्त्रिविधो मत इति वचनात् । सुज् प्राणिप्रसव इति धातो-
 जातत्वात् सर्वप्रपञ्चोपदेशकत्वेन सवितुरिति । निरतिशया-

नन्दरूपत्वात् सर्ववरणीयत्वात् सर्वसेवनीयमिति वरेण्यम् । पाप-
तर्जनाङ्गत्तवर्त्मनाऽभयाङ्गः । सर्वप्रकाशकत्वेन देवस्येति सवितुर्दे-
वस्येत्यत्र षष्ठीप्रयोगो राहोः शिरवदौपचारिकत्रयं भूतम् । ब्रह्म
धौमहि ध्यायेमहि नोऽस्माकं धियो बुद्धीर्यः प्रचोदयात् प्रेरयेत् ।
अत्र य इति लिङ्गव्यत्ययः छान्दसत्वात् । तेन सर्वान्तःकरण-
प्रकाशकः सर्वसाक्षी परमात्मोक्तः । व्याप्नोतीत्यापः सर्वप्रकाशक-
मिति ज्योतिः सर्वातिशायित्वात् ऋक्षः । यद्वा । आपोज्योती-
रस इति सोमान्योस्तेज उच्यते । यतस्तदात्मकं जगत् ।
अनाशित्वादमृतं बृहत्त्वाद् बृहणत्वाद् ब्रह्म सत्यज्ञानानन्दलक्षणम् ।
भूर्भुवःस्वःपदवाच्यं सोऽहमित्यास्यदवाच्यमिति । एवं सर्वा-
त्मकब्रह्मबोधको गायत्रीमन्त्रः । प्रणवाद्या इति व्याहृतिः
सम्बध्यते । तत्पदादिकेत्यग्रिमेण सम्बध्यते ॥ अत्र सप्त व्या-
हृतयः ॥ ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः
ओं सत्यम् । एतदग्रे तत् सवितुरिति ऋक् तदन्ते ओं आपो-
ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोमिदं शिवः । अस्यास्तन्वान्तरोक्तं
वीजादिर्यथा । रे इत्येतत्तु वीजं स्याद् यवर्णं शक्तिरुच्यते ।
नीत्येतत् कीलकं प्रोक्तं गायत्र्यास्त्रिपदात्मन इति । पक्ष्मन्धि-
ष्विति पादद्वयसन्धिचतुष्के अक्षरचतुष्कं तदुक्तं पदद्वयसन्धि-
चतुष्कमिति । एवं भुजद्वयसन्धिचतुष्के अक्षरचतुष्कम् । अन्य-
त्रैकैकमक्षरम् एवं चतुर्विंशत्यक्षराणि न्यसनीयानि । नीयेत्यस्य
पृथक् तेन चतुर्विंशत्यक्षरात्मकं प्रत्येकमक्षराणाम् ऋषिच्छन्दो-
देवताध्यानमुच्यते । अक्षराणाञ्च सर्वेषां प्रजापतिर्ऋषिस्तथा ।
विनियोगोऽङ्गविन्यासे गायत्रीच्छन्द उच्यते । अक्षराणान्तु
सर्वेषां वक्ष्यन्ते देवताः क्रमात् । अग्निवायुसूर्यविद्युदयमा वरुण
एव च । बृहस्पतिश्च पर्जन्य इन्द्रो गन्धर्व एव च । पूषा शिवश्च
त्वष्टा च वासवश्च मरुतथा । सोमोऽङ्गिरा विश्वेदेवा अश्विनी च

प्रजापतिः । सर्वदेवश्च रुद्रश्च ब्रह्मा विष्णुस्तु देवताः । जपकाले
 चिन्तनीयास्तासां सायुज्यमाप्नुयात् । तत्कारं चम्पकापीतं
 ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । शतपत्रासनारूढं ध्यायेत् सुस्था-
 सनस्थितम् । सकारं चिन्तयेदेवमतसौपुष्पसन्निभम् । पञ्च-
 मध्यस्थितं सौम्यमुपपातकनाशनम् । अतसौकुसुमाभा तेजोतीति
 यस्य भाषा नखतसौ शोणपुष्पं वक्ष्यमाणगायत्रीतन्त्रीक्तवचने
 श्यामवर्णदर्शनात् ॥ विकारं कपिलं नित्यं कमलासनसंस्थितम् ।
 ध्यायेच्छान्तः द्विजश्रेष्ठो महापातकनाशनम् । तुकारं चिन्तयेत्
 प्राज्ञ इन्द्रनीलसमप्रभम् । निर्दहेत् सर्वपापाणि ग्रहरोगसमु-
 द्भवम् । र्वकारं वह्निदीप्ताभं चिन्तयेच्च विचक्षणः । भ्रूणहत्या-
 कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । रेकारं विमलं ध्यायेत् शुद्ध-
 स्फटिकसन्निभम् । पापं नश्यति तत् क्षिप्रमगम्यागमनोद्भवम् ।
 णोकारं चिन्तयेद् योगी शुद्धस्फटिकसन्निभम् । अभक्ष्यभक्षणं
 पापं तत्क्षणादेव नश्यति । यकारं तारकावर्णमिन्दुशेषविभू-
 षितम् । योगिनां वरदं ध्यायेद् ब्रह्महत्याविनाशनम् । भकारं
 कृष्णवर्णन्तु नीलमेघसमप्रभम् । ध्यात्वा पुरुष इत्यादि पापं
 नाशयति द्विजः । र्गोकारं रक्तवर्णञ्च कमलासनसंस्थितम् ।
 गोहत्यादिकृतं पापं ध्यात्वा नश्यति तत्क्षणात् । देकारं रक्त-
 सङ्काशं कमलासनसंस्थितम् । चिन्तयेत् सततं योगी स्त्रीहत्या-
 दहनं परम् । वकारं चिन्तयेच्छुद्धं जातीपुष्पसमप्रभम् ।
 गुरुहत्याकृतं पापं ध्यात्वा नश्यति तत्क्षणात् । स्यकारन्तु
 तथा पीतं सुवर्णसदृशप्रभम् । मनसा चिन्तितं पापं ध्यात्वा
 नुदति चानघः । धीकारं चिन्तयेच्छुक्लं कुन्दपुष्पसमप्रभम् ।
 पितृमातृवधात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः । मकारं पद्मरागाभं
 चिन्तयेद्दीप्ततेजसम् । पूर्वजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव
 नश्यति । द्विकारं शङ्खवर्णन्तु पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । अशेषपाप-

दहनं ध्यायेन्नित्यं विचक्षणः । धिकारं पाण्डवं ध्यायेत् पद्मस्यो-
परिसंस्थितम् । प्रतिग्रहकृतं पापं स्मरणादेव नश्यति ।
योकारं रक्तवर्णन्तु इन्द्रगोपसमप्रभम् । ध्यात्वा प्राणिवधे पापं
निर्दहेन्मुनिपुङ्गवः । द्वितीयश्चैव यः प्रोक्तो योकारो रक्तसन्निभः ।
निर्दहेत् सर्वपापाणि नान्यैः पापैः प्रलिप्यते । नकारन्तु सुखं पूर्व-
मादित्योदयसन्निभम् । सकृद्व्यात्वा द्विजश्रेष्ठः स गच्छेत् परमं
पदम् । नीलोत्पलदलश्यामं प्रकारं दक्षिणायनम् । सकृद्व्यात्वा
द्विजश्रेष्ठः स गच्छेद्वैश्वरं पदम् । सौम्यं गीरोचनापीतं चोकारं
चतुराननम् । सकृद्व्यात्वा द्विजश्रेष्ठः स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।
शुक्लवर्णेन्दुसङ्काशं दकारं पश्चिमाननम् । सकृद्व्यात्वा द्विजश्रेष्ठः
स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । यात्कारन्तु शिवं प्रोक्तं चतुर्वदनसमप्रभम् ।
प्रत्यक्षफलदो ब्रह्मविष्णुसुहृ इति स्मृतिः । एतद्व्यात्वा तु मेधावी
जपं ह्रीं करोति यः । न भवेत् सूतकं तस्य सूतकञ्च न
विद्यते । यस्त्वेवं न विजानाति गायत्रीञ्च तथाविधाम् । कथितं
सूतकं तस्य सूतकञ्च मयानघ ! । नैव दानफलं तस्य न च यज्ञ-
फलं भवेत् । न च तीर्थफलं प्रोक्तं तस्यैव सूतके सतीति ॥
अथ वर्णकल्पः । तथा गायत्रीतन्त्रे ॥ तकारं चम्पकापीतं
ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । त्सकारं चिन्तयेत् श्यामं विकारं कपिलं
तथा । तुकारमिन्द्रनीलाभं वकारं वज्रसन्निभम् । रेकारं वज्र-
सङ्काशं णिकारं रक्तवर्णकम् । यङ्कारं धूम्रसङ्काशं भकारं लण-
मेव च । गीकारं रक्तवर्णञ्च देकारं श्यामलं तथा । वकारं
शुक्लसङ्काशं स्यकारं नीलशोभितम् । धीकारं कुन्दपुष्पाभं मकारं
शुक्लमेव च । हिकारं चन्द्रसङ्काशं धिकारं पीतमेव च । यो-
कारं तडिदाकारं योकारं धूम्रवर्णकम् । अशेषं शोषयेत् पापं
वायुवीजं यथा तथा । नकारन्तु सुखं प्रोक्तं प्रतप्तकनकप्रभम् ।
जकारस्य समीपे तु विन्दुद्वयं विशेषतः । ऊर्ध्वविन्दुरक्तवर्णसम्बन्धः

श्यामं प्रकीर्तितम् । नोलोत्पलदलश्यामं प्रकारं दक्षिणामुखम् ।
 सौम्यं गीरोचनापीतं चोकारं पश्चिमासुखम् । शुक्लशङ्खसमा-
 कारं दकारं चतुरामुखम् । यात्कारं मूर्ध्नि विज्ञेयं ऊर्ध्वास्यं
 ब्रह्ममन्दिरम् ॥ पूर्वोक्तगायत्रीवर्णध्यानोक्तवर्णेन यत्र यत्र
 विशेषस्तत्र तत्राम्नायभेदेन ज्ञेयः ॥ अथ गायत्रीयन्त्रम् ॥ आदौ
 त्रिकोणं विन्यस्य षट्कोणं तद्वहिन्यसेत् । वृत्तञ्चाष्टदलं पद्मं
 तद्वहिश्वतुरस्रकम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं सावित्रीयन्त्रमौरितम् ॥
 शारदायाम् ॥ विधाय मण्डलं विद्वान् त्रिकोणोज्ज्वलकर्णिकम् ।
 मण्डलमिति सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥ त्रिकोणोज्ज्वलमिति तत्क-
 र्णिकायां त्रिकोणं लिखेत् ॥

अथ गायत्र्या ऋष्यादिन्यासः ॥ शारदातिलके एकविंशति-
 पटले ॥ ऋष्याद्याः प्रणवस्यैते मुनिभिः परिकीर्तिताः । जम-
 दग्निभरद्वाजभृगुगौतमकाश्यपान् । विश्वामित्रवशिष्ठाख्यौ
 व्याहृतीनाम्बरीन् विदुः । गायत्र्याणि गथानुष्टुप्बृहतीपङ्क्तयः
 पुनः । त्रिष्टुप्जगत्यौ छन्दांसि कथितानि मनीषिभिः । सप्तार्चि-
 र्वलिनः सूर्यो वाक्पतिर्वरुणो वृषा । विश्वेदेवाः क्रमादासां
 देवताः परिकीर्तिताः । गायत्र्या मुनिराख्यातो विश्वामित्रो
 महाद्युतिः । गायत्रीच्छन्द इत्युक्तं देवता सविता स्मृता । शिर-
 सोऽस्य मुनिर्ब्रह्मा छन्दोदेव्यादिका स्मृता । गायत्री परमात्मा
 स्याद्देवता कथिता बुधैः । व्याहृतीः सप्त ताराद्या ह्रस्वमुखांसोरु-
 युग्मके । जठरे न्यस्य मन्त्रज्ञो गायत्र्यर्णान् तनौ न्यसेत् ।
 पक्षन्धिषु ध्वजे नाभौ हृत्कण्ठभुजसन्धिषु । आस्यनासाकपो-
 लाक्षिकर्णभ्रूमस्तके पुनः । पाश्चात्योत्तरयाभ्यग्रामूर्ध्ववक्त्रेषु
 साधकः । पदानि दश विन्यसेदेषु स्थानेषु मन्त्रवित् । शिरो-
 भ्रूमध्यहृत्कण्ठकण्ठह्रन्नाभिगुह्यके । जानुनोः पादयोर्युग्मे तच्छिरः
 शिरसि न्यसेत् ॥

अथ षडङ्गन्यासः ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥ षडङ्गन्यासमन्त्रं यत् तत्
 शृणुष्व प्रियंवदे ! । प्रणवद्वयं हृत्पद्मे भूःकारं शीर्षदेशके । भुवः
 शिखायां स्वःकारं कवचे विन्यसेत् सुधीः । नेत्रत्रये भूर्भुवःस्वः
 स्वःकारं करयुग्मके । नमः स्वाहा वषट् कूर्चं वौषट् फट् क्रा-
 मतो न्यसेत् ॥ शारदायान्तु ॥ ब्रह्मणे हृदयं प्रोक्तं विष्णवे शिर-
 ईरितम् । शिखा रुद्राय कवचमौश्वराय समीरितम् । नेत्रं
 सदाशिवायोक्तमस्त्रं सर्वात्मने स्मृतम् । षडङ्गान्येवमुक्तानि
 यथास्थानं प्रविन्यसेत् ॥ अथ ध्यानम् ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥
 ध्यानं शृणु वरारोहे ! यथा ध्यात्वा जपेन्नरः । श्वेतवर्णा
 समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा । श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलङ्कारैश्च
 भूषिता । आदित्यमण्डलान्तःस्था ब्रह्मलोकगताथ वा । अक्ष-
 र्ब्रधरा देवी पद्मासनगता तथा । ॐ तेजोऽसि शुक्लमस्य-
 स्मृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनामृष्टं देवयजनमसि ।
 गायत्रीसि एकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदपदसि न हि
 पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शिताय पराय परोरजते । शार-
 दोक्तध्यानं यथा । सुक्ताविद्गुह्यमनीलधवलच्छायैर्गुह्यैस्त्रीक्ष्ण-
 र्यैर्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्णववर्णात्मिकाम् । गायत्रीं
 वरदाभयाङ्गुशकरां शुभ्रं कपालं गुणं शङ्खं चक्रमथारविन्द-
 युगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥ गायत्रीतन्त्रप्रथमब्राह्मणपटले ॥
 चतुर्भुजां शशिकलां जटाजूटसमन्विताम् । ऋक्सामयजुषां
 नाथां प्रफुल्लकमलेक्षणां । पञ्चाशद्वर्णग्रथितमालाद्योतित-
 हृत्स्थलाम् । अनेकरत्ननिर्माणकण्ठदेशविराजिताम् । दिव्य-
 गन्धप्रलिसाङ्गीं शुक्लवस्त्रपरिष्कृताम् । शुक्लपद्मसमासीनां शुक्ल-
 वस्त्रोत्तरीयिणीम् । ब्रह्मादिदेवताहृदयैः संस्तुतां नित्यनूत-
 नाम् । एवं ध्यात्वा न्यसेद्वर्णं पठित्वा हृन्द उत्तमम् । अस्याग्नि-
 मुखीगायत्र्याः परंब्रह्म ऋषिर्ऋग्यजुःसामाथर्वच्छन्दः सपिता

देवता परंब्रह्मातुर्यासे' विनियोगः । पादादिमस्तकान्तञ्च
 न्यासं कुर्याद्विशालधीः । विना न्यासं जपेद् यस्तु गायत्री विफला
 भवेत् । विना मुद्रां न्यसेद् यस्तु न्यासो भवति निष्फलः ।
 यतिस्तु पञ्चमुद्राभिर्न्यासं कुर्यात् प्रयत्नतः । गृही च यत्नतः
 कुर्यात् त्रिसन्ध्यं तत्त्वमुद्रया । कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठा अङ्गुष्ठा
 तर्जनी तथा । अङ्गुष्ठमध्यमाभ्याञ्च अङ्गुष्ठानामिका तथा ।
 कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयोगात् पञ्चमुद्राः प्रकीर्त्तिताः । पादादिमस्तकान्तञ्च
 भूर्भुवः स्वर्न्यसेत् सुधीः । सप्तधा विन्यसेद्विद्वान् गायत्रीं क्रम-
 योगतः । पादाङ्गुष्ठे न्यसेद्योगी तकारं भावयेत् परम् । लकारं
 गुल्फयोर्मध्ये विकारं जङ्घयोस्तथा । तुकारं जानुनोर्मध्ये वकार-
 मूर्तमध्यतः । रेकारं गुह्यदेशे च णिकारं वृषणे न्यसेत् । यङ्कारं
 कटिदेशे च भकारं नाभिमण्डले । गौकारं जठरे न्यसेद्दकारं
 स्तनयोर्न्यसेत् । वकारं हृदि मध्ये च स्यकारं कण्ठतो न्यसेत् ।
 धौकारं वदने भद्रे मकारं तालुनि न्यसेत् । हिकारं नासि-
 काग्रे च धिकारं चक्षुषोर्न्यसेत् । योकारं प्रथमं योगी भ्रुवो-
 र्मध्ये च विन्यसेत् । द्वितीयञ्च ततो ज्ञेयं ललाटे च न संशयः ।
 नःकारन्तु मुखे ज्ञेयं प्रकारं दक्षिणामुखम् । चोकारं पश्चिमे
 तदङ्गकारं चोत्तरे तथा । यात्कारं मूर्ध्नि विज्ञेयं सर्वं व्याप्य
 स्थितं सदा ॥ गायत्रीतन्त्रे दशमब्राह्मणपटले ॥ अधुना
 सम्प्रवक्ष्यामि गायत्र्याः पूजनं प्रिये ॥ उपासितस्य मन्त्रस्य यथा
 पूजा विधेयते । गायत्र्याः पूजनं भद्रे ! तथैव कथयामि ते ।
 शिवपूजा शक्तिपूजा विष्णुपूजादिका च या । सर्वा पूजा इया
 भद्रे ! गायत्रीपूजनं विना । पूजामण्डपमागत्य गायत्र्याचमनं
 चरेत् । गायत्र्याः प्रथमं वीजं पूजास्थाने न्यसेत् सुधीः । कुशा-
 सने चोपविश्य प्राणायामं समाचरेत् । पूरकादिक्रमेणैव गा-
 यत्र्याः प्राणधारणम् । सामान्यार्थं ततः कुर्यात् पूर्वोक्तक्रम-

वर्त्मना । गायत्रीं सकृदुच्चार्य ताम्रपात्रे जलं क्षिपेत् । तीर्थ-
 मावाह्य यत्नेन गायत्रीं प्रजपेत्ततः । ततो धेन्वाष्टतीकृत्य प्रथ-
 माष्टाक्षरेण वै । द्वितीयाष्टाक्षरे विप्रो जलं वीक्ष्य प्रशान्तये ।
 तृतीयाष्टाक्षरे देवि ! जलैरात्मविशोधनम् । अनेनैव विधानेन
 षष्टिस्थितिलयात्मकम् । पूजनं परमेशानि ! तदैव फलदाय-
 कम् । यन्मन्यासध्यानादिकन्तु पूर्वमेव लिखितम् ॥ सौर' पीठ'
 यजेत्तत्र दीप्तादिनवशक्तिभिः । तत्र सर्वतोभद्रमण्डले दीप्ता-
 दयस्तु चतुर्दशपटले ॥ यथा ॥ दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभू-
 तिर्विमला पुनः । अघोरा विद्युता सर्वतोमुखी पीठशक्तयः ।
 सौरपीठं सूर्यप्रकरणेऽनुसन्धेयम् ॥ मूलमन्त्रेण कृतायां मूर्त्तौ
 देवीं प्रपूजयेत् ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥ जीवन्त्यासादिकं कृत्वा पूजयेत्तां
 त्रिवर्गदाम् । हालाहलादिकं मन्त्रं समस्तं परमेश्वरि । । समु-
 च्चार्य वदेत् पाद्यं सावित्रीं डेयुतां ततः । त्यागात्मकमनु' पश्चाद्
 यथा विभवविस्तरैः । पूजयेद्बहुयत्नेन चान्यथा ब्राह्मणः स्मृतः ।
 शारदायाम् ॥ कोणेषु त्रिषु सम्पूज्याः ब्राह्मगाद्याः शक्तयो वहिः ।
 आदित्याद्यास्ततः पूज्या ऊषादिसहिताः क्रमात् । आदित्या-
 द्याष्टोषादयश्च सूर्यप्रकरणे वेदितव्याः । ततः षडङ्गान्यभ्यर्च्य
 केशरेषु यथाविधि । प्रह्लादिनीं प्रभां पश्चान्नित्यां विश्वम्भरां
 पुनः । विलासिनीप्रभावत्यावूषां शान्तां यजेत् पुनः । कान्ति
 दुर्गासरस्वत्यौ विद्यारूपास्ततः परम् । विशालासहितामीशां
 व्यापिनीं विमलां जपेत् । ततोऽपहारिणीं सूक्ष्मां विश्वयोनिं
 जयावहाम् । पद्मालयां परां शोभां पद्मरूपां ततोऽर्चयेत् ।
 ब्राह्मगाद्याः सारुणा वाह्ये पूजयेत् प्रोक्तलक्षणाः । ततोऽभ्यर्च्येद्
 ग्रहान् वाह्ये शक्रादीनायुधैः सह । इत्यमावरणैर्देवीं दशभिः
 परिपूजयेत् । धर्मार्थकाममोक्षाणां भोक्ता स्याद्विजसत्तमः ॥
 निर्वाणतन्त्रे ॥ द्रव्याभावे वरारोहे ! पाद्याद्यैरुदकात्मकैः । पूज-

यित्वा जपेद्देवीं गायत्रीं परमाचरीम् । एतेन द्रव्याभावे जला-
दिना पूजायां कर्त्तव्यायामपि एतत्पाद्यमित्यादिवक्तव्यमतएव
स्मृतिः । तैलं प्रतिनिधिं कुर्याद् यन्नार्थं याज्ञिको यदि । प्रक-
त्यैव तदा हेतोर्ब्रूयाद् घृतवतीमिति । तेनैतत्पाद्यार्थं जलमिति
वाक्यमनुशासनविरुद्धमिति । जपफलमपि तत्रैव ॥ दशभिर्जन्म-
जनितं शतेनापि पुराकृतम् । त्रिजन्मजं सहस्रेण गायत्रीं हन्ति
पातकम् । जपे तु विशेष उक्तो गायत्रीतन्त्रे ॥ गायत्र्या पुटितं
कृत्वा दृष्टमन्त्रं जपेच्छतम् । दृष्टमन्त्रेण पुटितं गायत्रीं प्रजपे-
च्छतम् । एतज्जपं महेशानि ! आधाराधेयमुत्तमम् । विनाधारं
महेशानि ! आधेयेन विना तथा । नाधारं सिध्यते भद्रे ! आधे-
यञ्च न सिध्यति । सर्वेषु विष्णुमन्त्रेषु सौरगाणपती तथा ॥
आधाराधेयभावस्तु सर्वत्र वरवर्णिनि ! । साङ्गनास्रोचनाद्
यस्तु भटिति प्रविशेद् गृहम् । न पश्येच्चक्षुषा किञ्चिद् गृह-
मध्येषु यत् स्थितम् । एवमाधारमाधेयं यः करोति द्विजातिकाः ।
अङ्गुरो जायते भद्रे ! लक्षजापान्नसंशयः । नच जीवात्मनोर्भिन्ना
गायत्री ब्रह्मरूपिणी । गायत्री न हि भिन्ना स्याज्जीवात्मा तत्स्व-
रूपिणी । सर्वदा उभयोरेकं नगरिकेले यथोदकम् । द्विजातिः
कथ्यते देवभाव एव हि ब्राह्मणः । यथा स्पर्शमणिस्पर्शात्
ताम्रोऽपि काञ्चनं सदा । गायत्रीसहित आत्मा द्विजात्मा तेन
ईरितः ॥ गायत्रीतन्त्रे ॥ जपेत् सूर्यमुखो विप्रो नास्ति दिङ्द्वयमः
क्वचित् । गायत्रीं प्रजपेन्नित्यं त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः । अशौचे
तु महेशानि ! गायत्रीं मनसा स्मरेत् । गायत्री बहुरूपा च
त्रिसन्ध्या ध्यानमेव ॥ तत्रैव ॥ ॐ महेश्वरवदनोत्पन्ना विष्णो-
र्हृदयसंस्थिता । ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि ! यथेच्छया ।
इति मन्त्रं समुच्चार्य देव्या वामकरे बुधः । समर्पयेज्जपफलं
ततः स्तोत्रादिकं पठेत् ॥ अथ गायत्रीकवचम् ॥ श्रीदेव्युवाच ॥

देवदेव ! महादेव ! संसारार्णवतारक ! । गायत्रीकवचं देव ! क-
 पया कथय प्रभो ! ॥ श्रीदेवदेव उवाच ॥ मूलाधारेषु या नित्या
 कुण्डली तत्त्वरूपिणी । सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परमा विसतन्तुस्वरू-
 पिणी । विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशा कुण्डलाकृतिरूपिणी । परम-
 ब्रह्मगृहिणी पञ्चाशद्वर्णरूपिणी । शिवस्य नर्त्तकी नित्या परं-
 ब्रह्मप्रपूजिता । ब्रह्मणः सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी । तद-
 भ्रमावर्त्तवातोऽयं प्राणात्मा नित्यनूतनः । नित्यं तिष्ठतु सानन्दा
 कुण्डली भवविग्रहे । अतिगोप्यं महत् पुण्यं त्रिकोटीतीर्थ-
 संयुतम् । सर्वयज्ञमयं देवि ! सर्वदानमयं सदा । सर्वज्ञानमयं
 देवि ! परंब्रह्ममयं सदा । कवचं कथयाम्यद्य पार्वति ! प्राण-
 वल्लभे ! । ओं ओं भूः ओं ओं ओं ओं भुवः ओं ओं ओं ओं स्वः
 ओं ओं ओं ओं त ओं ओं ल ओं ओं वि ओं ओं तु ओं ओं व
 ओं ओं रे ओं ओं णि ओं ओं यं ओं ओं भ ओं ओं गीं ओं ओं
 दे ओं ओं व ओं ओं स् ओं ओं धी ओं ओं म ओं ओं हि ओं
 ओं धि ओं ओं यो ओं ओं यो ओं ओं नः ओं ओं प्र ओं ओं
 चो ओं ओं द ओं ओं यात् ओं ओं आं ओं । ओंः भूः ओं
 पातु मे मूलं चतुर्दलसमन्वितम् । ओं भुवः ओं पातु मे लिङ्ग
 षड्दलसमन्वितम् । ओं स्वः ओं पातु मे कण्ठं साक्षात्
 दलषोडशम् । ओं त ओं पातु मे रूपं ब्रह्मण्यकारणं परम् ।
 ओं ल ओं वदनं पातु रसनासंयुतं मम । ओं वि ओं पातु मे
 गन्धं सदा शरीरसंयुतम् । ओं तु ओं पातु मे स्पर्शं शरीरस्य च
 कारणम् । ओं वं ओं पातु मे शब्दं शब्दविग्रहकारणम् ।
 ओं रे ओं पातु मे नित्यं त्वचं शरीररक्षकम् । ओं णि ओं पातु
 मे अन्नं सर्वतत्त्वैककारणम् । ओं यं ओं पातु मे श्रोत्रं श्रव-
 णस्य च कारणम् । ओं भ ओं पातु मे घ्राणं गन्धोपादानका-
 रणम् । ओं गीं ओं पातु मे वाक् सभायां शब्दरूपिणी ।

ओं दे ओं पातु मे वाहुयुगलं ब्रह्मकारणम् । ओं व ओं पातु
 मे पादयुगलं ब्रह्मकारणम् । ओं स्थ ओं पातु मे लिङ्गं सजलं
 षड्दलैर्युतम् । ओं धी ओं पातु मे नित्यं प्रकृतिं शब्दकार-
 णम् । ओं म ओं पातु मे नित्यं मनोब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
 ओं हि ओं पातु मे बुद्धिं परंब्रह्ममयं सदा । ओं धि
 ओं पातु मे नित्यमहङ्कारं यथा तथा । ओं यो ओं पातु मे
 नित्यं पृथिवीं पार्थिवं वपुः । ओं यो ओं पातु मे नित्यं जलं
 सर्वत्र सर्वदा । ओं नः ओं पातु मे नित्यं तेजःपुच्छं यथा तथा ।
 ओं प्र ओं पातु मे नित्यमनिलं शरीरकारणम् । ओं चो ॐ पातु
 मे नित्यमाकाशं शशिसन्निभम् । ॐ द ओं पातु मे जिह्वां
 जपयन्त्रस्य कारणम् । ओं यात् ओं पातु मे चित्तं शिवज्ञान-
 मयं सदा । ओं तत्त्वानि पातु मे नित्यं गायत्री परदेवता ।
 ओं भूर्भुवःस्वः पातु मे नित्यं ब्रह्माणी जठरं क्षुधा । त्वष्टा मे
 सततं पातु ब्रह्माणी भूर्भुवःस्वरः । अस्याः श्रीगायत्रीयाः परं
 ब्रह्म ऋषिर्ऋग्यजुःसामायर्वाङ्मन्त्रांसि श्रीगायत्रीब्राह्मणी
 देवता धर्मार्थकाममोक्षार्थं विनिगोगः ॥ ततो गायत्रीं पठेत् ।
 कामक्रोधादिकं सर्वं स्मरणाद् याति साम्यताम् । इदं कवच-
 मज्ञात्वा गायत्रीं प्रजपेद् यदि । शतकोटिजपेनैव न सिद्धि-
 जायते प्रिये ! । गायत्रीवाचनात् सर्वं स्मरणं सिध्यति ध्रुवम् ।
 पठित्वा कवचं विप्रो गायत्रीं सकृदुच्चरेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो
 जीवन्मुक्तो भवेद्भिजः । इदं कवचमज्ञात्वा कवचान्यं पठेत्तु
 यः । सर्वं तस्य वृथा देवि ! त्रैलोक्यमङ्गलादिकम् । गायत्री-
 कवचं यस्य जिह्वायां विद्यते सदा । तदाश्च्युतमयी जिह्वा
 पवित्रा जपपूजने । इदं कवचमज्ञात्वा ब्रह्मविद्यां जपेद् यदि ।
 व्यर्थं भवति चार्वाङ्गि ! तज्जपं वनरोदनम् । ब्रह्महत्या सुरा-
 ग्रानं स्त्रियं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्देव स्मरणा-

त्राशमाप्नुयुः । त्वगृह्णांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रविनिर्मितम् । वात-
पित्तकफैर्युक्तं स्थूलदेहं तदुच्यते । सूक्ष्मं ज्योतिर्मयं देहं पञ्च-
भूतात्मकं विदुः । महापद्मवनान्तःस्थं सर्वावयवसंयुतम् ।
आधाराधेयसम्बन्धाद् गायत्री ब्राह्मणः स्वयम् । अतएव परं
ब्रह्म कथ्यते चोभयात्मकम् । ब्राह्मणस्यैव जीवात्मा गायत्री-
सहितं वपुः । आत्मनो हृदयान्भोजे प्रदीपकलिकोपमम् ।
निर्धूमञ्च यथा ज्योतिस्तैलाग्निवर्त्तियोगतः । तज्जगोतिः परमं
ब्रह्म स एव परमः शिवः । गायत्रीकवचन्यासं मातृकास्थान-
सन्धिषु । यः कृत्वा ब्राह्मणः श्रेष्ठो ह्यन्यन्यासं समाचरेत् ।
नान्यन्यासस्तदा सिद्धो ह्यन्यथारण्यरोदनम् । गायत्रीन्यास-
मात्रेण परंब्रह्ममयो द्विजः । इदं कवचमज्ञात्वा ब्रह्मचर्यं
करोति यः । ब्रह्मचर्यं भवेद्वर्यं गायत्रीकवचं विना । कव-
चस्य प्रसादेन ब्राह्मणो ज्वलदग्निवत् । कवचं परमेशानि !
सृष्टिस्थितिलयात्मकम् । कवचस्य प्रसादेन ब्रह्मा सृष्टिं करोति
हि । स्थितिञ्च कुरुते विष्णुस्त्रोऽहं लयकारणः । अन्यद्वि क-
वचं देवि ! सृष्टिस्थितिलयं विना । इदमेव ब्रह्ममयं सृष्टि-
स्थितिलयात्मकम् । कवचं ब्राह्मणो नाम प्रातस्तथाय यः
पठेत् । गायत्रीञ्च सकृत् स्मृत्वा जपलक्षफलं लभेत् । गायत्रीं
दशधा जप्त्वा शतलक्षफलं लभेत् । एवं क्रमेण गायत्रीं शतधा
प्रजपेद् यदि । शतलक्षफलं प्राप्य विहरेद्देववद्भुवि । ग्रहणे
चन्द्रसूर्यस्य पठित्वा कवचं द्विजः । सकृद् यदि जपेद्द्विद्वान्
गायत्रीं परमाचरीम् । तत्क्षणात् स भवेत् सिद्धो ब्रह्मसा-
युज्यमाप्नुयात् । इदं कवचमज्ञात्वा गायत्रीं प्रजपेत्तु यः । जप
एव स एव स्यान्निस्तेजा न च सिद्धिदः । यः पठेत् कवचं देवि !
सततं शिवसन्निधौ । सन्निधौ विष्णुदेवस्य कवचं शक्तिसन्निधौ ।
तेजःपुञ्जमयो विप्रस्तत्क्षणाज्जायते ध्रुवम् ॥

इत्यागमसन्दर्भे ज्ञानदर्पणे गायत्रीब्राह्मणसर्वस्वे देवदेवी-

संवादे गायत्रीकवचं समाप्तम् ॥

अथास्याः पुरश्चरणम् ॥ शारदायाम् ॥ लक्षं तत्त्वविधानेन
भिन्नाशी विजितेन्द्रियः । क्षीरौदनं तिलान् दूर्वाः क्षीरद्रुम-
समिद्वरान् । पृथक् सहस्रत्रितयं जुहुयान्मन्त्रसिद्धये । लक्षं
तत्त्वविधानेनेत्यनेन चतुर्विंशतिलक्षं पुरश्चरणमुक्तम् । विधानेन
पुरश्चरणोक्तविधानेन । क्षीरौदनमिति क्षीरमोदनम् । तिलान्
दूर्वाश्चेति द्रव्यचतुष्टयम् । क्षीरद्रुमेति अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षवटा इति
द्रव्यचतुष्टयम् । पृथक् सहस्रत्रितयमित्यनेन चतुर्विंशतिसहस्र-
होमः ॥ १ निर्वाणतन्त्रे तु ॥ विधिवत्तज्जपापेन पुरश्चरणप्री-
रितम् । तद्दशांशं हुमेत् पश्चात् पुरश्चरणसिद्धये । होमस्य
तु दशांशेन तर्पणं समुद्रीरितम् । तर्पणस्य दशांशेन चाभिषेकं
ततः परम् । अभिषेकदशांशेन कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । ततः
सिद्धी भवेद्देवि ! त्रिवर्गफलसाधकः । माहात्म्यं चास्य मन्त्रस्य
चतुर्वेदेन भाषितम् ॥ अथ काम्यकर्माणि शारदायाम् । तत्त्व-
संख्यसहस्राणि मन्त्रविज्जुहुयात्तिलैः । सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घ-
मायुः स विन्दति । आयुषे साज्यहविषा केवलेनाथ सर्पिषा ।
दूर्वात्रिकैस्त्रिलैर्मन्त्रो जुहुयात् त्रिसहस्रकम् । अरुणजैस्त्रि-
मध्वजैर्जुहुयादयुतं ततः । महालक्ष्मीर्भवेत्तस्य षण्मासान्नात्र
संशयः । ब्रह्मश्रिये प्रजुहुयात् प्रसूनैर्ब्रह्महृत्क्षजैः । बहुना
किमिहोक्तेन यथावत् साधुसाधिता । द्विजन्मनामियं विद्या
सिद्धिकामदुष्वा मता ॥ अथ तान्त्रिकगायत्री अन्नदाकल्पे
पञ्चमपटले ॥ मोचनी सर्वपापानां शोषणी सकलापदाम् ।
दारिद्र्यदमनी नित्यं सुखमोक्षप्रदायिनी । एकोच्चारणं सकलं
ब्रह्महत्यादिपातकम् । नाशमायाति नियतं जन्मान्तरसमुद्भवम् ।
दशभिर्दशजन्मोत्थं शतेन शतजन्मजम् । सहस्रेण सहस्रोत्थ-

मित्यं पातकनाशिनी । सर्वांगमाणां साङ्गानां सारभूता सना-
तनी । चित्कलेयं समाख्याता सहस्रेण पुरस्क्रिया ॥ इति
पुरश्चरणम् ॥ ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्रीच्छन्दो देवी प्रकीर्तितम् ।
देवतान्नप्रदा देवी चतुर्वर्गप्रदायिनी ॥ अन्नप्रदेति स्वीयेष्टदेवतो-
पलक्षणम् ॥ मायावीजं नमः शक्तिः कीलकं स्यात् प्रचोदयात् ।
ध्यायेत् कालत्रये देवीं त्रिगुणां गुणभेदतः । प्रातः ब्राह्मी रक्त-
वर्णा द्विभुजा च कुमारिका । कमण्डलुं तीर्थपूर्णमक्षमालाञ्च
विभ्रती । कृष्णाजिनाम्बरधरा हंसारुढा शुचिस्मिता । मध्याह्ने
सा श्यामवर्णा वैष्णवी च चतुर्भुजा । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी
गरुडासना । पौनोन्नतकुचद्वन्दा वनमालाविभूषिता । युवती
च सदा ध्येया मध्ये मार्त्तण्डमण्डले । सायं सरस्वतीरूपा
चन्द्रार्द्धवत्शेखरा । अर्द्धास्तमितमार्त्तण्डे ध्येया सतत-
यौवना । गायत्रीं तु तन्त्रसारे सर्वासां देवतानां प्रायेण
द्रष्टव्या ॥ अन्नदाकल्पे ॥ पूजार्थं जलमानीय तीर्थं नत्वा यथा-
विधि । देवीं ध्यायन् पठन् स्तोत्रं यागमण्डपमाविशेत् ॥ मत्स्य-
सूक्ते पञ्चदशपटले च । देशिको विधिवत् स्नात्वा कृत्वा पूर्वा-
ह्निकीः क्रियाः । यायादलङ्घतो मन्त्री यागार्थं यागमण्डपम् ॥
रुद्रजामले पूर्वखण्डे द्वितीयपटलेऽपि ॥ पूजामण्डपमागत्य
प्रक्षाल्याङ्घ्रिकरीं ततः । अस्त्रेण द्वारमभ्युक्ष्य वामदक्षिण-
शाखयोः । गङ्गायै यमुनायै च नम उच्चार्य पूजयेत् । ऊर्ध्व-
द्वारे श्रियै अधोदेहल्यै च नमस्ततः ॥ यागमण्डपमित्यत्र
लक्षणया यागमण्डपसमीपमिति लक्ष्यमन्यथा अङ्गं सङ्कोचय-
न्नन्तः प्रविशेदक्षिणाङ्घ्रिणा इति न सङ्गच्छते ॥ मत्स्य-
सूक्ते ॥ आचम्य विधिवत्तत्र सूर्यार्घ्यं नु विधाय च । पश्चिम-
द्वारमासाद्य प्रविशेदक्षिणाङ्घ्रिणा । द्वारानस्ताम्बुना प्रोक्ष्य द्वार-
पूजां समाचरेत् । ऊर्ध्वार्धःक्रमभावेण गणेशं विघ्ननाशनम् ।

महालक्ष्मीं महामायां तथा देवीं सरस्वतीम् । चैत्रेशञ्च तथा
गङ्गां यमुनां पुष्पवारिभिः । अस्त्रमन्त्रेण देवेशि ! देहलीञ्च
समर्चयेत् ॥ अस्त्रमन्त्रेण अस्त्राय फडिति मन्त्रमुच्चार्य द्वार-
मभ्युच्चेत्यर्थः ॥ शारदायाम् ॥ ऊर्ध्वोऽङ्गुस्वरके विघ्नं महालक्ष्मीं
सरस्वतीम् । ततो दक्षिणशाखायां विघ्नं चैत्रेशमन्यतः ॥ ऊर्ध्वो-
ऽङ्गुस्वरके देहल्यां गृहदक्षिणद्वारि देहल्यां कोणद्वये विघ्नं
सरस्वतीं मध्ये महालक्ष्मीं पूजयेदिति तात्पर्यम् । दक्षिण-
शाखायां विघ्नम् अन्यतः वामशाखायां चैत्रेशमर्चयेदित्यर्थः ।
तयोः पार्श्वगते गङ्गायमुने पुष्पवारिभिः । देहल्यामर्चयेदस्त्रं
प्रतिद्वारमिति क्रमात् ॥ तयोः पार्श्व इति विघ्नचैत्रेशयोः पार्श्वे ।
दुर्गापूजनमप्युक्तं राघवभट्टवृत्तेन ॥ कौण्डेषु विघ्नं दुर्गाञ्च वाणीं
चैत्रेशमर्चयेत् ॥ एतेषां मन्त्रस्तु ॥ तारं सविन्दुमानाद्यक्षरं
चतुर्थ्यन्तं नाम नमोऽन्वितम् । तदुक्तमुडामरेश्वरे ॥ ओङ्कारं
विन्दुसंयुक्तं नामधेयाद्यमक्षरम् । ड्युतं नाम सर्वेषां मन्त्रो
देवि ! नमोऽन्वितः ॥ वैष्णवमते द्वारपूजा तु राघवभट्टे नोक्ता
यथा ॥ वैष्णवादिप्रभेदेन द्वारपालान् समर्चयेत् । प्रतिद्वारं पार्श्व-
योस्तु द्वौ द्वावष्टाविति क्रमात् । नन्दः सुनन्दश्चण्डाख्यः प्रचण्ड-
श्चण्डनायकः । प्रबलो भद्रनामा च सुभद्रो वैष्णवा मताः ॥ शैव-
द्वारपालास्तु ॥ अथ नन्दिमहाकालौ गणेशवृषभौ पुनः । ततो
भङ्गरिटिः स्कन्दः पार्वतीशश्च सप्तमः । चण्डेश्वरोऽष्टमः शैवा
द्वारपालाः क्रमादमौ ॥ गणेशस्य तु ॥ वक्रतुण्डिकदंष्ट्रौ च महो-
दरगजाननौ । लम्बोदराख्यश्च कठो विघ्नराजश्च सप्तमः । धूम्र-
राजोऽष्टमो ज्ञेया गाणपत्या इति क्रमात् । ब्राह्मणाद्या मातरः
प्रोक्ताः शाक्तेया द्वारपालकाः ॥ शारदायाम् ॥ अनन्तरं साध-
केन्द्रो दिव्यदृष्ट्यावलोकनात् । दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्राङ्गिष्वा-
न्तरीक्षगान् । पार्श्विधातैस्त्रिभिर्भौमानिति विघ्नान् निवारयेत् ।

किञ्चित् स्पृशन् वामशाखां देहलीं लङ्घयेत्ततः । अङ्गं सङ्कोच-
यन्नन्तः प्रविशेद्वृत्तिणाङ्घ्रिणा । मत्स्यसूक्तेऽपि ॥ अवलोक्य दिव्य-
दृष्ट्या विघ्नानुत्सारयेत्ततः । त्रिः कृत्वा च पदाघातं दत्त्वा ताल-
त्रयं ततः । अङ्गं सङ्कोचयन्नन्तः प्रविशेत् साधकोत्तमः ॥ अथा-
सनम् । शाक्तानन्दतरङ्गिणीधृतगौरीजामले ॥ सलिले यदि
कुर्वीत देवतानां प्रपूजनम् । तथाप्यासनमासीनो नोत्थितस्तु
तथाचरेत् । आसनं कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेज्जले ॥ आस-
नस्यो जपेत् सम्यङ्गन्धार्थगतमानसः ॥ सम्मोहनतन्त्रे ॥ रक्ता-
सनोपविष्टस्तु लाक्षागुरुगृहे स्थितः । नमःकल्पितरत्नो वा
साधकः स्थिरसानसः । तूलकम्बलवस्त्राणां सिंहव्याघ्रसृगाजि-
नम् । कल्पयेदासनं धीमान् सौभाग्यज्ञानवर्द्धनम् । कौशेयं
वाय वा चर्म तैलतैलमथापि वा । शरपत्रं तालपत्रं कम्बलं
दारवासनम् ॥ कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मुक्तिः स्याद्व्याघ्रचर्मणि ।
कृष्णाजिने गृहस्थानां नाधिकारः कथञ्चन । नादीक्षितो विशे-
ज्जातु कृष्णसाराजिने गृहौ । विशेद्यतिर्वनस्थश्च ब्रह्मचारी च
भिक्षुकः । वस्त्रासने व्याधिनाशः कम्बलं दुःखमोचनम् । जप-
ध्यानतपोहानि वस्त्रासनं करोति हि ॥ अत्र वस्त्रनिषेधः केवल-
वस्त्रपरः अन्यथा विरोधापत्तेः । कुशासने भवेदायुर्मोक्षः स्याद-
व्याघ्रचर्मणि । अजिने तु भवेत् पुत्री कम्बले सिद्धिरुत्तमा ।
शान्तिके ध्रुवलः प्रोक्तः सर्वार्थं चित्रकम्बले । स्यात् पौष्टिके
तु कौशेयं कम्बले दुःखमोचनम् । त्रिपुरापूजने देवि ! प्रशस्तं
रक्तकम्बलम् । नैतद्दिहस्थतो दीर्घं सार्द्धहस्तान्न विस्तृतम् ।
न त्रपङ्गुलात् समुच्छायं पूजाकर्मणि संग्रहम् । आसनञ्च ततः
कुर्व्यान्नातिनीचं न चोच्छ्रितम् ॥ गन्धर्वतन्त्रे ॥ धरण्यां दुःख-
सम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने । आम्बनिम्बकदम्बानामासनं
वंशनाशनम् । वकुले किंशुके चैव प्रनसेषु हतश्रियः । वंशेष्टका

च धरणीं तृणपल्लवनिर्मितम् । वर्जयेदासनं मन्त्री दारिद्र्य-
 व्याधिदुःखदम् ॥ एतेषां फलान्तरमुक्तम् ॥ धरणां दुःखसम्भूति-
 दौर्भाग्यं दारुजासने । वंशासने दारिद्र्यः स्यात् पाषाणे व्याधि-
 पीडनम् । तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः । जप-
 ध्यानतपोहानिर्वस्त्रासने विधीयते । मृदासने यदा मन्त्री
 चेलाजिनकुशोत्तरे । नादीक्षितो विशेषज्ञातु कृष्णाजिनासने
 गृही । विशेष्यतिर्वनस्थो वा ब्रह्मचारी च भिक्षुकः । इत्यु-
 क्तम् ॥ दारुजासनं विशेषयति मन्थर्वतन्त्रे ॥ गाभारीनिर्मितं
 शस्तं नानादारुमयं शुभम् । चतुर्विंशत्यङ्गुलं हि दीर्घं काष्ठा-
 सनं प्रिये ।। षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्राये चतुरङ्गुलम् । कम्बलं
 चार्मणं शैलं महाभायाप्रघूजने । प्रशस्तमासनं देवि ! कथितं
 वरवर्णिनि ।। मुखमालातन्त्रे तृतीयपटले ॥ व्याघ्राजिनं
 सर्वसिद्धौ ज्ञानसिद्धौ मृगाजिनम् । वस्त्रासनं रोगहरं वेदजं
 प्रीतिवर्द्धनम् । कौशेयं पुष्टिदं प्रोक्तं कम्बलं सर्वसिद्धिदम् ।
 शुक्लं वा यदि वा कृष्णं विशेषादुक्तकम्बलम् । उत्तरान्नायास-
 नन्तु तत्रैव ॥ मृदु कोमलमास्तीर्णं संग्रामपतितं हि यत् । जन्तु-
 व्यापादितं वापि मृतं वानरमासनम् । गर्भच्युतां त्वचं वापि
 नारीणां योनिजां त्वचम् । सर्वसिद्धिप्रदं देवि ! सर्वतोऽति-
 सद्बुद्धिदम् । त्वचं वा यौवनस्थानां कुर्याद्दीरतरासनम् । श्मशान-
 नकाष्ठघटितं पीठं वा दारुजं शुभम् । नादीक्षितो विशेषज्ञातु
 कृष्णसाराजिने गृही । उदासीनवदासीनः स्नातकब्रह्मचारि-
 णाम् । कुशाजिनाम्बरेणाढ्यं चतुरस्रं समन्ततः । एकहस्तं
 द्विहस्तं वा चतुरस्रं समाचरेत् । कर्मविशेषे आसनविशेषस्तु
 समयाचारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ भेषासनन्तु वशार्थमाकाटौ
 व्याघ्रचर्म च । शान्तौ मृगाजिनं शस्तं मोक्षार्थं व्याघ्रचर्म च ।
 गोचर्म स्तम्भने देवि ! सन्धवे वाजिचर्म च । चर्मोद्भूतं तु

घोच्चाटे विद्वेषे खानचर्म च । मारणे माहिषं चर्म कर्मोद्दिष्टं
समाचरेत् । सर्वकामार्थदं देवि ! वस्त्रपट्टासनं तथा । कर्णा-
सनं कम्बलं वा सर्वकर्मसु पूजितम् । दुःखदारिद्र्यकरणं काष्ठ-
पाषाणजासनम् । स्वर्णादिरत्नजं देवि ! मन्त्रासीभाग्यवर्द्धनम् ।
शृणु देवि ! विशेषेण उत्तरान्नायस्य चासनम् । येनाशु लभते
पुण्यं फलं देवस्य दुर्लभम् । श्वासनन्तु सुभगे ! मृतमुण्डासनं
तथा । श्मशानमासनं देवि ! भगस्य दर्शनं तथा । भगदर्शा-
सनञ्चैव मैथुनासनकं तथा । कृतमैथुनकं वापि वाञ्छितार्थ-
फलप्रदम् ॥ मास्ये पञ्चदशे ॥ रुरुचर्मणि सत्कामः श्रीमोक्षी
व्याघ्रचर्मणि । शक्तेः शस्तं कृष्णचर्मं कृष्णव्याघ्रस्य भाविनि ! ।
प्रस्तारमृच्छिले चैव रक्ते पीते च वाससी । कम्बले द्रुतसिद्धिः
स्याद्भद्रदंष्ट्रारुमयेऽपि च । तथा । योगासनञ्च कूर्मञ्च विशेत्
क्षीणीमनुस्मरन् ॥ योगसारे द्वितीयपरिच्छेदे ॥ कम्बलं कोमल-
ञ्चैव कौशञ्च दारवं तथा । एतेषामासनं प्रोक्तं चर्मासनं तथैव
च । लोम्नि चैव यदासीनस्तदा सर्वं विनश्यति । लोमदर्शन-
मात्रेण सिद्धिहानिः प्रजायते । काम्यार्थं कम्बलं प्रोक्तं श्रेष्ठं
स्याद्रक्तकम्बलम् । कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिः श्रीमोक्षी व्याघ्र-
चर्मणि । कुशासने मन्दसिद्धिर्नात्र कार्य्या विचारणा ॥ समया-
चारतन्त्रे ॥ पृथ्वीमन्त्रस्य च ऋषिर्मेरुपृष्ठ उदाहृतः । सुतलञ्च
तथा कन्दः कूर्मी देवोऽस्य सुन्दरि ! । आसने विनियोगः स्याद्ब-
ह्वपञ्चासने विशेत् । बह्वपञ्चासन इत्युपलक्षणम् ॥ पञ्चस्त्रिकवी-
रादिष्वेकासनसमास्थितः । जपार्चनादिकं कुर्यादन्यथा निष्फलं
भवेत् । इति राघवभट्टवचनात् ॥ आसनन्तु यतीनां कूर्मा-
कारमन्येषां चतुष्कोणम् । यथा राघवभट्टवृत्तम् ॥ यतीनामा-
सनं शृङ्गं कूर्माकारन्तु कारयेत् । अन्येषान्तु चतुष्पादं चतु-
रसन्तु कारयेत् ॥ तथा ॥ दानमाचमनं होमं भोजनं देवता-

चनम् । प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायश्चैव तर्पणम् ॥ प्रौढपाद-
 लक्षणमपि तत्रैव । आसनारूढपादस्तु जानुनोर्वाथ जङ्घयोः ।
 कृतावसक्तकोपस्तु प्रौढपादः स उच्यते ॥ इति राघवदृष्टतप्रौढ-
 पादलक्षणम् ॥ गोरक्षसंहितायाम् ॥ आसनानि च तावन्ति
 यावन्तो जीवजन्तवः । एतेषामखिलान् भेदान् विजानाति
 महेश्वरः । चतुरशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम् । तथा
 शिवेन पीठानां प्रोङ्गशानां शतं कृतम् । आसनेषु समस्तेषु
 द्वयमेतदुदाहृतम् । एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम् ।
 योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत् मेढ्रे पाद-
 मयैकमेव हृदयं कृत्वा समं विग्रहम् । स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽ-
 न्यनदृशा पश्यन् स्तुवोरन्तरम् एतन्मोक्षकपाठभेदनकरं सिद्धा-
 सनं प्रोच्यते ॥ इति सिद्धासनम् ॥ १ ॥ वामोरूपरि दक्षिणं
 नियमतः संस्थाप्य वामं तथा दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना
 धृत्वा कराभ्यां धृतम् । अङ्गुष्ठं हृदये निधाय त्रिवुक्कं नासाग्र-
 मालोकयेत् एतदग्राधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥
 अन्यदत्रापि ॥ वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा-
 प्यन्योरूपरि तस्य बन्धनविधौ धृत्वा कराभ्यां दृढम् । अङ्गुष्ठौ
 हृदये निधाय त्रिवुक्कं नासाग्रमालोकयेदेतदग्राधिविनाशकारि
 यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥ २ ॥ इति पद्मासनम् ॥ इत्याद्या-
 सनानि योगोपयोगीन्वेव । पूजायां नैवेद्यां प्रयोजनम् ॥ मत्स्य-
 सूक्ते ॥ पञ्चगव्येन संशोध्य मण्डपं यागभूमिकम् । शरेण
 प्रोक्षणं कुर्यान्मूलमन्त्रेण व्रीक्षणम् । विक्रिरान् विक्रिरेत्तत्र
 सप्तजप्तान् शराणुना । धूपयेदन्तरे पञ्चाच्चन्दनागुरुभिस्तथा ॥
 तथा ॥ आत्मनो दक्षिणे भागे पूजाद्रव्याणि स्थापयेत् । सव्ये
 सुवासितं कुम्भं तीर्थतोयेन पूरितम् । वस्त्रपूतं ततः कार्यं रात्रि-
 तोयं विवेर्जयेत् ॥ शारदायाम् ॥ प्रचालनाय करयोः पत्त्रा

पात्रं निर्वेशयेत् । घृतप्रज्वलितान् दीपान् स्थापयेत् परितः
 शुभान् ॥ पाद्यार्घ्याचमनमधुपर्काचमनपात्राण्यधुनैव स्थाप-
 येत् ॥ देवीपुराणे ॥ हैमराजतताम्राणि सृच्छिलाशैलजानि
 च । बलिदानादिपात्राणि शुभरेखोत्कराणि च । अर्घ्य-
 नैवेद्यपूजायं बलिदाने प्रकल्पयेदिति । शिवरहस्ये शेषार्घम् ॥
 हैमपात्राणि सर्वाणि विहितानि भवन्तु मे । अर्घ्यं दत्त्वा तु
 रीत्येण आयूराज्यसुतांलभेत् । ताम्रपात्रेण सौभाग्यं धर्मं
 सृण्मयसम्भवे । सर्वाभावे तु माह्वयं स्वहस्तघटितं यदि ।
 माह्वयं सृण्मयम् ॥ आसनं चार्घ्यपात्रञ्च भग्नमासादयेत्ततः ।
 सर्वत्र स्वर्णकं ताम्रमन्यमात्रे ततोऽधिकम् । पात्राणामादरः
 कार्यः पात्राण्येवोत्तमादरः । बलिहोमक्रियार्थं हि विना पीठन्तु
 सिध्यति । षट्त्रिंशदङ्गुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्तितम् । मध्यमं
 तत्त्रिभागोनं कनिष्ठं द्वादशाङ्गुलम् ॥ चतुर्विंशाङ्गुलं मध्यं
 कनिष्ठं द्वादशाङ्गुलमिति क्वचित् पाठः । वस्त्रङ्गुलविहीनन्तु
 न पात्रं कारयेद्बुध इति पाठान्तरम् ॥ सर्वाभावे त्यजेत् पात्रं
 स्रवते यत्र वारि तत् । यत्रोदकं न स्रवते तत् कर्माहमिति
 कार्येक्षमोपलभ्यकमिति । नाभीविवररूपाणि पुण्डरीकाक्ष-
 तीनि च । शङ्खशुक्तिवृक्षजानि पात्राणि परिकल्पयेत् ॥ अथ पाद्य-
 पात्रलक्षणम् । वैखानसग्रन्थे ॥ पादावनेजनजलग्रहणं पात्र-
 मङ्गुतम् । लौहजं वा सरोजातं हैमं राजतमेव वा । ताम्रं
 सचरणमपि वायवे न सतामिति ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ षडङ्गुल-
 प्रविस्तारमुत्सेधं चतुरङ्गुलम् । ओष्ठमेकाङ्गुलं कुर्यान्नासिकां
 चतुराङ्गुलाम् । पृष्ठे पादसमायुक्तं चतुरङ्गुलमानतः । पाद्य-
 पात्रमिति ख्यातं सर्वदेवप्रपूजने ॥ इति पाद्यपात्रलक्षणम् ॥
 अथ पाद्यप्रक्षेपणीयपात्रलक्षणम् ॥ तत्रैव ॥ अष्टाङ्गुलसमुत्-
 सेधं विस्तारं षोडशाङ्गुलम् । ओष्ठमेकाङ्गुलं कुर्याच्छरावा-

कृतिपात्रकम् । पात्रयोरुभयोः कुर्याद्वृत्तकं कण्ठके समे । पृष्ठे
 पादसमायुक्तं षडङ्गुलमुविस्तृतम् । पादोत्सेधं चतुर्मात्रं
 पाद्याधारं प्रकीर्तितम् । इति पाद्यप्रक्षेपणौयपात्रलक्षणम् ।
 अथार्घ्यपात्रलक्षणम् ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ अर्घ्यस्य लक्षणं
 वक्ष्ये पलद्रव्यादिभेदतः । सामान्यार्घ्यं तिरोधाय विशेषार्घ्य-
 पराङ्मुखम् । अर्घ्यपात्राणि चत्वारि स्वर्णदूर्वाक्षतानि च ॥
 दुर्बलं राजतं ज्ञेयमधमानि ततः परम् । ताम्रशुक्तिशिलादारु-
 कर्मसृत्पात्रजानि च । उत्तमं पलविंशत्या मध्यमं दशभिः
 पलैः । ह्रीनं पञ्चपलं कुर्यादेवमाचम्य पाद्ययोः । चतुःपवाणि
 तानि स्युः निःसृतान्यष्टपर्वभिः । पृष्ठेनाङ्गशुभाङ्गानि कृता-
 काराणि वा पुनः । चतुरस्राणि कुर्वीत चतुष्पात्राणि चार्घ्यके ।
 कर्पूरं कुङ्कुमं दूर्वां सिद्धार्थं विल्वपत्रकम् । यवदर्भान् कुशांश्चेति
 सामान्यार्घ्यं विनिक्षिपेत् । तिलप्रसूनसिद्धार्थदर्भदूर्वायवाक्ष-
 तान् । द्रव्याख्येतानि सप्तैव तिरोधाय विनिक्षिपेत् । तिल-
 तण्डुलसिद्धार्थदूर्वामुद्गयवानपि । पराङ्मुखार्घ्यदाने च द्रव्य-
 शुद्धिं प्रकल्पयेत् ॥ इत्यर्घ्यपात्रलक्षणम् ॥ अथाचमनपात्र-
 लक्षणं वैखानसग्रन्थे ॥ आचम्य वारिग्रहणपात्रमुत्तम-
 लौहजम् । सरोजकर्णिकाकारं कुर्यादद्भुतदर्शनम् ॥ कार्त्त-
 स्वरमयं स्थूलं राजतं वाद्य पावनम् ॥ कार्त्तस्वरं सुवर्ण-
 मिति ॥ उत्तमलौहमपि तथा ॥ सर्वन्तु तैजसं लौहमिति
 स्वरसात् रजतं ताम्रं वा ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ द्वादशाङ्गुल-
 विस्तारं कुक्षिमध्यं सप्ततकम् । षडङ्गुलं तदलान्तमोष्ठं कुर्या-
 त्त्रयाङ्गुलम् ॥ अस्य तारं त्रिमात्रं स्यात् पार्श्वे नासागुणा-
 ङ्गुलम् । रन्ध्रं कनिष्ठकातुल्यमग्रे तद्विगुणं त्वधः । पृष्ठे पादं
 चतुः कुर्यादुत्सेधं द्वाङ्गुलं ततः । षडङ्गुलप्रविस्तारं पात्रमाच-
 मनार्थकम् ॥ इति आचमनपात्रलक्षणम् ॥ अथ गन्धपात्र-

लक्षणम् ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ अर्घ्यवद्गन्धपात्रं स्यादिति । अत्र
 अर्घ्यपात्रवदित्यनेन सम्पूर्णार्घ्यपात्रलक्षणातिदेशः । यथा अर्घ्य-
 पात्रं क्रियते तथैव गन्धपात्रं कर्तव्यमित्यर्थः ॥ इति गन्धपात्र-
 लक्षणम् ॥ अथ धूपपात्रलक्षणं वैखानसग्रन्थे ॥ धूपपात्रं सरो-
 जातं सुवर्णादिविनिर्मितम् । पादयोरपि तस्य स्यादुत्सेधं चतु-
 रङ्गुलम् । अनेकशुषिरं तस्य पिधानं सदृशं भवेत् । शुषिरं
 छिद्रम् ॥ पिधानमाच्छादनम् । सिद्धान्तशेखरे ॥ धूपपात्रविधिं
 वक्ष्ये पलद्रव्यादिपूर्ववत् । चतुःपञ्चरसांश्चैवं पात्रविस्तारम-
 ङ्गुलैः । रसाः षट् अग्नाः सप्त । पात्रोत्सेधतो दैर्घ्यं स्यादोष्ठ-
 मर्द्धान्तकं मतम् । पद्मानं परितः पात्रं द्वाङ्गुलीऽधोगली भवेत् ।
 पादमेकाङ्गुलोत्सेधं विस्तृतं द्वाङ्गुलं ततः । षट्पर्वदीर्घनाभं
 स्यादुन्नतं द्वाङ्गुलं मतम् । पूर्वकोत्सेधमयुक्तं वृत्तञ्च चक्रचाप-
 वत् । पिधानं द्वाङ्गुलोत्सेधं नानाच्छिद्रसमन्वितम् । एकच्छिद्र-
 युतं कुर्यात् कलसाकारमूर्द्धतः ॥ इति धूपपात्रलक्षणम् ॥ वैखा-
 नसग्रन्थे ॥ दीपपात्रं तता नालमध्ये कुमुदकोज्ज्वलम् । वर्त्या-
 धारैः शतेनापि युक्तमष्टाभिरिव च । त्रिसप्तकाष्टमिष्टैव द्वाभ्यां
 वा दशभिश्च वा । पञ्चभिर्वा यथाशक्ति कल्पयेच्चिह्नवित्तमः ।
 सिद्धान्तशेखरे ॥ दीपपात्रविधिं वक्ष्ये पलद्रव्यादिरर्घ्यवत् ।
 पदेन नागलायां हि धूपपात्रवदुच्यते । एकपत्रं चतुष्पत्रं षड्-
 दलं वाष्टपत्रकम् । तत्रैकपत्रं मध्ये स्यान्निम्नाश्रयदलाङ्गति ।
 चतुष्पत्रं चतुर्दिक्षु मध्यमा निम्नकर्णिका । षड्दले तु स्मृतं
 तद्वदुपपन्नसमन्वितम् ॥ इति दीपपात्रलक्षणम् ॥ अथ दीपमाला-
 लक्षणम् ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ दार्वयस्ताम्बसम्भूता दीपमालाऽधमा
 मता । मध्यमा च तथा श्रेष्ठा स्वर्णा वा रौप्यजा क्रमात् । यद्या
 तु द्वारवत् कुर्यात् लिङ्गपृष्ठे प्रभाङ्गतिम् । द्वाराभामन्यदेशे तु
 दीपमालां सुशोभनाम् । चतुर्भिरङ्गुलैर्दीर्घं स्कन्धमङ्गुलविस्तृ-

तम् । एवं कृत्वा विभागेकं दण्डमध्ये नियोजयेत् । स्कन्धात्
स्कन्धं समं कुर्यादन्तरं भूतमात्रकम् । दीपमालेति कथिता
सर्वदेवाद्विपूजने । इति दीपमालालक्षणम् ॥ अथ दीपाधारलक्ष-
णम् ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ हेमताम्रादिसम्भूतं विदध्यादुत्तमादि-
कम् । द्वादशाङ्गुलमारभ्य द्विद्वाङ्गुलविद्वद्धितः । अष्टादशो-
दितोत्प्रेधा दीपाधारस्य चोच्छ्रिता । स्नेहाधारस्य पादे तून्नाहं
दैर्घ्यसमं मतम् । पादनावशरावांशः स्नेहाधारोऽपि तत्समः ।
तदूर्ध्वं मुकुलं कुर्यात् प्रादिकादिसमन्वितम् । नानापरीसमा-
युक्तं नानाकुभांशमालिकम् । दीपाधार इति प्रोक्तो लौह-
जान् दीपकांस्तु तान् । नानावर्णान् तथा रम्यान् चतुर्हस्तप्रमा-
णकान् । त्रिहस्तानेकहस्तान् वा द्विहस्तान् वा यथाबलम् ।
ताम्रजान् राजतीयान् वा युग्मैस्तैः स्नेहाधारकैः ॥ इति दीपा-
धारलक्षणम् ॥ वैखानसग्रन्थे ॥ नीराजनक्रियापात्रौ हेमादि-
द्रव्यनिर्मिता । त्रितालोपेतविस्तीर्णष्टतमध्या मनोहरा ॥
सिद्धान्तशेखरे ॥ हिरण्यतारताम्रादिनिर्मितं ह्युत्तमादिकम् ।
षट्त्रिंशताङ्गुलैः श्रेष्ठं मध्यमं त्रिंशताङ्गुलैः । चतुर्विंशतिमात्रैः
स्यादधमं विस्तृतौ क्रमात् । अग्निभागेकभागेन कुर्यान्मध्ये च
कर्णिकाम् । उत्तरकासमुत्सेधं कर्णिकायाः प्रमाणतः ।
पौठिकं परितः कुर्यात् यवयुग्मेन विस्तृतम् । तत्समानोन्नता-
नीह परितोऽष्टदलानि च । परितोऽर्द्धप्रमाणेन काष्ठानामष्टकं
समम् । श्रोष्ठमेकाङ्गुलं कुर्याद्विस्तारात् कर्णिकोन्नते । समानं
पूर्णचन्द्रामं दीपाधारस्य कुश्वत् ॥ उन्नतादिचतुर्मात्रैर्विस्तृतै-
श्चाङ्गुलद्वयम् । तत्र रन्ध्रद्वयं कुर्यात् कर्णिकामध्यमं समम् ॥
इति नीराजनपात्रलक्षणम् ॥ अथ घण्टालक्षणम् ॥ वैखानसग्रन्थे ।
शब्दब्रह्ममयी घण्टा हस्तोत्सेधप्रमाणिका । ब्रह्माण्डगोलका-
कारा सुराद्यात्मतमा भवेत् । अधोमुखतालमानविस्तारोत्सेधनं

ततः । नानाविधाश्चतस्रो वा घण्टाः प्रतिदिशः कृताः । चक्राङ्गा
पङ्कजाङ्गा वा सा घण्टा परिकीर्तिता । एवंविधा भवेद्घण्टा
यद्वा चित्तानुसारतः ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ पञ्चाङ्गुलान्नता घण्टा
तद्विस्तारसंयुता । घण्टायास्तु परोणाहो विस्ताराद्धेन की-
र्तितः । अङ्गुलस्तु भवेद्दण्डो दैर्घ्यं वृत्तसमं मतम् । दण्डाग्रे
वृषभं शूलं नलिनं वापि कारयेत् । शुद्धकांक्षेन कर्त्तव्यं घण्टा-
लक्षणमीरितम् ॥ इति घण्टालक्षणम् ॥

अथ नैवेद्यपात्रलक्षणम् ॥ वीरभिलोदये ॥ नैवेद्यपात्रं
वक्ष्यामि केशवाय महात्मने । हैरण्यं राजतं ताम्रं कांस्यं
स्यम्भयमेव वा । पालासं मध्यमं प्लाक्षपात्रं विष्णोरतिप्रियम् ।
हविर्द्रव्यप्रमाणानि पात्राणि परिकल्पयेदिति ॥ सिद्धान्तशे-
खरे ॥ सुवर्णरूप्यताम्रभ्यः स्थालिकां ह्युत्तमादिकाम् । शुद्ध-
कांक्षेन वा कुर्याद्देवनैवेद्यपात्रके । एकपात्रं समारभ्य चा-
समात्तु ततः क्रमात् । कुर्यान्नैवेद्यपात्राणि हीननैवेद्यकादिषु ।
पात्रं शतं पलं श्रेष्ठं तद्वर्द्धं मध्यमं मतम् । तद्वर्द्धं मध्यमं ज्ञेयं
पात्रसंख्येति कीर्त्तिता । स्थालिका नवधा कार्या भावाः षट्-
त्रिंशदङ्गुलम् । अङ्गुलार्द्धमितैर्मूर्लैरष्टधाङ्गुलकैः क्रमात् । इति
विस्तारमाख्यातं स्थालिकानवके क्रमात् । उत्तमत्रयमग्रे
स्थान्मध्यमे मध्यमत्रयम् । पुनस्त्रयमधस्तात् स्यात् स्थालिकानां
यथाक्रमम् ॥ इति नैवेद्यपात्रलक्षणम् ॥ अथ पानीयपात्रलक्ष-
णम् ॥ वैश्वानरसंहितायाम् ॥ पानीयपात्रं सौवर्णं राजतं
ताम्रमेव वा । वृक्षायतसुवृत्तं वा भवेदायतमेव वा । प्रस्थमान-
प्रमाणान्धः पुरयोग्यान्तरं शुभम् ॥ इति पानीयपात्रलक्षणम् ॥
अल ताम्बूलपात्रलक्षणम् ॥ वैश्वानरसग्रन्थे ॥ कल्पयेद्वागलतिका
दलपत्रसमन्विता । अरन्निमानविस्तीर्णं कारयेद्वा यथाबलम् ।
इति ताम्बूलपात्रलक्षणम् ॥

इति प्राणतोषिण्यां तृतीयेऽर्थकाण्डे गन्धादिपात्र-
स्थापनान्तरूपपक्षवक्तव्यं नाम चतुर्थः

परिच्छेदः ।

शारदायाम् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः ।
नत्वा गुहं गणेशानं भूतशुद्धिमयाचरेत् ॥ करशुद्धिं समा-
पाद्य कुर्यात्तालव्रयं ततः । ऊर्ध्वोर्द्धमस्त्रमन्त्रेण दिग्बन्ध-
मपि देशिकः । तेन संज्वलितं तेजो रक्षां कुर्यात् सम-
न्ततः । चतुर्थपटले ॥ सुषुम्नावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत् ।
योगयुक्तेन विधिना चिन्मन्त्रेण समाहितः । आत्मानं हृदय-
कमलस्थितं सुषुम्नावर्त्मना कुण्डलिन्या सह योगयुक्तेन
विधिना चिन्मन्त्रेण हंस इति मन्त्रेण परमात्मनि योजयेदि-
त्यन्वयः । सुषुम्ना वर्त्म यस्याः सा तथा । हृदयकमलस्थ आत्मा
तु । हृदम्बुजे ब्रह्मरन्ध्रसम्भूते ज्ञाननालके । ताराग्रमग्रे जीवस्तु
चिन्तनीयो मनोधिभिरिति राघवभट्टधृतवचनेन ज्ञातव्यः ।
योगयुक्तेन विधिना इत्यस्यायमर्थः । गुरुपदिष्टमार्गेण हङ्कारेण
कुण्डलिनीमुत्थाप्येतां हृदयकमलगतां विभाव्य ततो जीवं मुखे
गृहीत्वा सहस्रारगतां विभावयेत् । तेन व्यो हंसमन्त्रेण द्वाद-
शार्णोषिते परे । इतिवचनेनैकवाक्यतया चिन्मन्त्रो हंस इति ।
शारदायाम् ॥ कारणे सर्वभूतानां तत्त्वान्यपि विचिन्तयेत् ।
बीजभावेन लीनानि व्युत्क्रमात् परमात्मनि । सर्वभूतानां
कारणे परमात्मनि बीजभावेन लीनानि तत्त्वानि चिन्तयेदि-
त्यर्थः ॥ व्युत्क्रमादिति सृष्टिक्रमापेक्षया । अपि शब्दाद्वर्णा-
नपि । तदुक्तं पिङ्गलामते ॥ सङ्कल्पैर्गवं ततो न्यासस्थाना-
द्वर्णांश्च संहरेत् । प्रतिलोमेन क्षलयो लकारस्य हकारके ।
हलस्य सकारेऽथ सलस्य यकारके । क्रमेणैवमपर्यन्तं लयमु-
त्पाद्य यत्नतः । अकारं ब्रह्मरन्ध्रे च सहस्रारे नियोजयेदिति ॥

शारदायाम् ॥ ततः संशोषयेद्देहं वायुबीजेन वायुना । वज्र-
बीजेन तेनैव सन्दहेत् सकलां तनुम् । वायुबीजेन यकारेण
वायुना तदुत्थवायुना । वज्रबीजेन रेफेण तेनैवाग्निबीजोत्थ-
वज्रिना सकलामिति कलं पापं पापपुरुषसहितां तनुं निदहे-
दित्यर्थः । सविशेषणविधितया न प्रकृतशरीरनाशः । तत्-
कारणन्तु सविशेषणे विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति
विशेषे बाधे इति न्यायः । बाधस्त्वन्वयानुपपत्तिः । तात्पर्य-
विषयीभूते अर्थे अन्वयानुपपत्तौ । यत्र तु विशिष्टे तात्पर्यं तत्र
विशिष्टमप्युपगच्छतो विधिनिषेधौ न विशेष्यमात्रम् । तथाच
भट्टहरिः ॥ नीलं पटं विधेहीति लोकेऽपि द्वयमीक्षते । इचि-
नीलगुणस्यैव विशिष्टस्य विधिः क्वचित् ॥ अतएव गुप्तसाधन-
तन्त्रे षष्ठपटले ॥ भूतशुद्धौ महादेव ! यदि देहन्तु नाशयेत् ।
कुत्र स्थाने भवेत् सृष्टिरमृतं कुत्र सञ्चयेदिति देवीसन्देहप्रश्न-
स्योत्तरम् ॥ महादेव उवाच ॥ वामकुक्षौ स्थितं पापपुरुषं
कज्जलप्रभम् । तस्य संहरणार्थाय मङ्गती प्रकटीकता । लिङ्ग-
देहो महेशानि ! तस्य देहो न संशयः । पापदेहं भवेद्दग्धं
स्वदेहं नैव नाशयेत् ॥ इति शिववचनम् ॥ पापपुरुषध्यानन्तु
राघवमदृष्टतम् ॥ ब्रह्महत्याशिरस्कन्तु स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् । तत्संसर्गिपदद्वन्द्व-
मङ्गप्रत्यङ्गपातकम् । उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।
खड्गचर्मधरं पापमङ्गुष्ठपरिमाणकम् । अधोमुखं कृष्णवर्णं
वामकुक्षौ विचिन्तयेत् ॥ शारदायाम् ॥ विश्लेषयंस्तदा दोषा-
नमृतेनामृताभसा । आपाद्य ज्ञावयेद्देहमापादतलमस्तकम् ।
दोषस्वरूपपापपुरुषभस्मविश्लेषोऽपि वायुबीजेनैव । तथाच
गणेशविमर्शिण्याम् ॥ तद्भस्मकूटमखिलं वायुबीजोत्थवायुना ।
विकीर्यामृतबीजेन स्वदेहं ज्ञावयेत्ततः । अमृतमेति अमृत-

वीजेन वमित्यनेन । अमृताम्भसा तदुत्थेनामृतेनापादतलमस्तकं
 देहमापाद्याप्लाववेदित्यन्वयः ॥ शारदायाम् ॥ आत्मलीनानि
 तत्त्वानि स्वस्थानं प्रापयेत्तदा । आत्मानं हृदयाभोजमानयेत्
 परमात्मनः । मनुना हंसदेवस्य कुर्याद्वासादिकं ततः । परं-
 मात्मनः सकाशात् हंसदेवस्य मनुना आत्मानं हृदयाभोज-
 मानयेदित्यन्वयः ॥ हंसस्य वीजस्य देवः परमात्मा उपास्य-
 त्वात् तन्मन्त्रेण सोऽहमित्यनेन । तदुक्तं वशिष्ठसंहितायाम् ॥
 सोऽहं मन्त्रेण तां मन्त्री नादान्ते सिद्धिभार्विताम् । ध्यात्वैवं
 ब्रह्मरन्ध्राच्च हृदि जीवं न्यसेदिति ॥ तत्र गुरुपदेशतः प्रकारो
 लिख्यते । ओमद्येत्यादि श्रीदेवपूजाद्यधिकारसिद्धये भूतशुद्ध्या-
 द्यहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य मूलाधारादुत्थितां विद्युत्सहस्रप्रभा-
 भास्वरां विसतन्तुरूपां सुषुम्नामार्गेण हृदयकमलगतां कुण्ड-
 लिनीं विभाव्य हृदयकमलाज्जीवं प्रदीपकलिकाकारं मुखे
 गृहीत्वा द्वादशार्णाम्बुजं सहस्रदलगतं विभाव्य तत्र जीवात्मानं
 हंसमन्त्रेण परमात्मनि योजयेत् । ततः पादादिजानुपर्यन्तं
 चतुरस्रं पृथिवीमण्डलं विभाव्य तत्र पादगमनक्रियागन्तव्य-
 गन्धघ्राणपृथिवौब्रह्मनिवृत्ति समानवायुं संस्मृत्य ॐ ह्रीं
 ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा इत्यमुं
 मन्त्रमुच्चार्य तान् कुण्डलिनीद्वारा अमुं प्रविलापयेदित्यप्-
 स्थाने संहरत् । जान्वादिनाभिपर्यन्तं शुक्लमईचन्द्राकारं जल-
 मण्डलं विभाव्य तत्र हस्तादानदातव्यरसरसनाजलविष्णुं प्रति-
 ष्ठेदनिलस्य ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं
 फट् स्वाहा इत्यमुं मन्त्रमुच्चार्य तान् सर्वान् कुण्डलिनीद्वारा
 अग्नौ प्रविलापयामोत्यग्निस्थाने संहरत् । नाभ्यादिहृदय-
 पर्यन्तं त्रिकोणं वज्रिमण्डलं रक्तवर्णं विभाव्य तत्र पायुविस-
 र्जनीयरूपचक्षुस्तेजोरद्रविद्याव्यानानिलं संस्मृत्य ओं हुं रुद्राय

सैजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा इत्यमुं मन्त्र-
मुच्चार्य तान् सर्वान् कुण्डलिनीद्वारा वायौ प्रविलापयामीति
वायुस्थाने संहरेत् । ततो हृदयादिभूपर्यन्तं कृष्णवर्तुलं
षड्विन्दुलाञ्छितं वायुमण्डलं विभाव्य तत्रापस्थानतद्विषयस्पर्श-
स्पर्शव्यवायवीयशान्त्यपानान् संस्मृत्य ओं हौं ईशानाय वायुधि-
पतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा इत्यमुं मन्त्रमुच्चार्य तान्
सर्वान् कुण्डलिनीद्वारा आकाशे प्रविलापयामीत्याकाशस्थाने
संहरेत् । ततो भ्रूमध्यादिब्रह्मरन्थान्तपर्यन्तं शुक्लवर्तुलमा-
काशमण्डलं विभाव्य तत्र वारुणदनवक्तव्यशब्दोवाकाशसदा-
शिवशान्त्यतीतप्राणान् संस्मृत्य ओं हौं सदाशिवाय आकाशाधि-
पतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा इत्यमुं मन्त्रमुच्चार्य
तान् सर्वान् कुलकुण्डलिनीद्वारा अहङ्कारे प्रविलापयामीत्यह-
ङ्कारे प्रविलाप्य महत्तत्त्वं मातृकासंज्ञकशब्दब्रह्मस्वरूपायां हृत्ते-
खानुभूतायां प्रकृती प्रविलापयामीति प्रविलाप्य तां तथाविधां
नित्यशुद्धस्वभावे परमब्रह्मणि प्रविलापयामीति प्रविलापयेत् ॥
तदुक्तं मन्त्रतन्त्रप्रकाशे ॥ गन्धादिग्राणसंयुक्तां पृथिवीमप्सु संह-
रेत् । रसादिजिह्वया साहं जलमग्नी विलापयेत् । रूपादिचक्षुषा
साहंमग्निं वायौ विलापयेत् । समीरमौश्वरे विद्वान् स्पर्शादि-
त्वक्समन्वितम् । अहङ्कारे हरेद्गोम सशब्दं तन्महत्यपि ।
महच्च सर्वशक्तानामव्यक्ते कारणे परे । सच्चिदानन्दरूपं यद्
त्रैलोक्यं परमं पदम् ॥ पृथिव्यादिक्रमात् सर्वं तन्न लीनं विचि-
न्तयेत् । ततः शरीरस्थान्तर्यामी ऋषिः सत्यं देवता प्रकृति-
पुरुषं छन्दः शोधनेन विनियोगः । इत्युक्त्वा वामकुक्षिषु सुक्ता-
रूपं पापपुरुषं विचिन्त्य यमिति वायुवौजस्य क्षिप्त्वा ऋषि-
वायुर्देतता जगतीच्छन्दः शरीरपापपुरुषशोधने विनियोगः ।
इत्युक्त्वा नाभिमूले विन्दुद्वयलाञ्छितमण्डले यं विचिन्तयेत् ।

तदायुवीजं धूमं चञ्चलञ्चजसंयुक्तं धूँ धूँ शब्दयुतं सर्वशोषणं
 हंसदैवतमिति ध्यात्वा पूरकप्रयोगेण षोडशवारं बीजमुच्चार्य
 तद्बीजोत्पत्त्यायुना स्वशरीरस्थं पापपुरुषं शोषितं विभावयेत् ।
 ततो रमित्यग्निबीजस्य कश्यप ऋषिरग्निदेवता त्रिष्टुप्छन्दः
 तदाहे विनियोगः । इत्युक्त्वा हृदये रक्तं त्रिकोणं वज्रमण्डलं
 विद्याकलायुतं रुद्रदैवतमिति ध्यात्वा प्रयोगेण चतुःषष्टिवारं
 बीजमावर्त्त्य तद्बीजोत्पत्त्याग्निना तद्भस्मीभूतं विभावयेत् । ततो
 रेचकेण द्वात्रिंशन्मात्रया पूर्वोक्तरूपं वायुबीजमावर्त्त्य पापपुरुष-
 भस्म रेचयेत् । ततो वमिति वरुणबीजस्य हिरण्यगर्भं ऋषिर्हंसो
 देवता त्रिष्टुप्छन्दः भ्रावने विनियोगः । इत्युक्त्वा । वारुणं
 मण्डलं मूर्ध्नि शुभ्रं चन्द्रार्द्धसन्निभम् । सितपङ्कजयुग्माभयकारं
 स्याद्वरुणदैवतम् ॥ इति ध्यात्वा तद्बीजोत्पत्त्यासुतामृतेन तच्छरीर-
 भस्म पिण्डीभूतं विभावयेत् । ततो लमिति पृथिवीबीजस्य ब्रह्म-
 ऋषिरिन्द्रो देवता गायत्रीछन्दः कठिनीकरणे विनियोगः ।
 इत्युक्त्वा । आधारमण्डले पृथ्वीमण्डलं वज्रलाञ्छितम् । चतु-
 ष्कोणञ्च कठिनं पीतवर्णेन्द्रदैवतम् । लंबीजिनं समायुक्तं ध्यायन्
 मनसि पूर्ववत् ॥ इति ध्यात्वा तद्बीजोत्पत्त्याकठिन्येन तनुं दृढं
 भावयेत् । ततो हमित्याकाशबीजस्य ब्रह्म ऋषिराकाशं देवता
 पङ्क्तिछन्दः व्यूहने विनियोग इत्युक्त्वा । आकाशमण्डलं वृत्तं
 द्वादशान्ते ह्यनुज्ज्वलम् । शान्त्यतीताकलायुक्तं विचिन्त्याकाश-
 दैवतम् । इति ध्यात्वा तदुत्पत्त्याकाशेनाकाशं विभावयेत् । तद्वत्
 हमिति बीजनावायुीकरणं भवेदिति । एवं स्वशरीरं विचिन्त्य
 परमात्मनः सकाशात् सृष्टिक्रमेण तत्त्वानि स्वस्थानं प्रापये-
 दिति ॥ ततः परमात्मनः सकाशात् सोऽहं मन्त्रेण जीवं हृत्य-
 क्षमानयेदिति संक्षेपः । इयञ्च भूतशुद्धिरावश्यकी ॥ पञ्चशुद्धि-
 विहीनेन कृता पूजाभिचारवत् । विपरीतफलं दद्यादभक्त्या

पूजनं यथा । निऋतिर्विधिहीनानां फलं हन्ति हि कर्मणाम् ।
 निशाचराधिपत्यञ्च कुरुते शङ्कराज्ञया ॥ इति शैवागमोक्तेः ।
 अन्यथापि । देहकारणभूतानां भूतानां यद्विशोधनम् । अवयवः
 ब्रह्मसंयोगाद् भूतशुद्धिरियं मता । भूतशुद्धिं विना कर्म जप-
 होमार्चनादिकम् । भवेत्तु निष्फलं सर्वं प्रकारेणाप्यनुष्ठितम् ॥
 इति मत्स्यसूक्ते पञ्चदशपटले ॥ नत्वा गुरुं गणेशानं भूतशुद्धिं
 समाचरेत् । उभाभ्यामपि पाणिभ्यां तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगतः । गृही-
 त्वा यं क्षमं देवि ! यमित्यात्राय निक्षिपेत् ॥ महानिर्वाणतन्त्रे
 पञ्चमोक्तासे च ॥ स्वाङ्गे निधाय च करावुत्तानौ साधकोत्तमः ।
 मनो निवेश्य मूले च हुङ्कारे शैवकुण्डलीम् । उल्लास्य हंसमन्त्रेण
 पृथिव्या सहितान्तु ताम् । स्वाधिष्ठानं समानीय ततस्तत्त्वे
 नियोजयेत् । घ्राणादिघ्राणसंयुक्तां पृथिवीमस्यु संहरेत् । रसादि
 जिह्वया सार्द्धं जलमग्नौ विलापयेत् । रूपादि चक्षुषा सार्द्ध-
 मग्निं वायौ विलाप्य च । स्पर्शादि त्वग्युतं वायुमाकाशे विप्रला-
 पयेत् । अहङ्कारे तरेदगोम सशब्दं तन्महत्यपि । महत्तत्त्वञ्च
 प्रकृतौ तां ब्रह्मणि विलापयेत् । एवं विलाप्य मतिमान् वाम-
 कुक्षौ विचिन्तयेत् । पुरुषं कृष्णवर्णञ्च रक्तशङ्खविलोचनम् ।
 खड्गचर्मधरं क्रुद्धमङ्गुष्ठपरिमाणकम् । सर्वपापस्वरूपञ्च सर्व-
 दाघोमुखस्थितम् । ततस्तु वामनासायां यं वीजं धूस्रवर्णकम् ।
 सञ्चिन्त्य पूरयेत्तेन वायुं षोडशमात्रया । तेन पापात्मकं देहं
 शोधयेत् साधकाग्रणीः । नाभौ रं रक्तवर्णञ्च ध्यात्वा तज्जात-
 वह्निना । चतुःषष्ट्या कुम्भकेन दहेत् पापवतीं तनुम् । ललाटे
 वर्णं वीजं शुक्लवर्णं विचिन्त्य च । द्वाविंशता रेचकेन ह्वायेद-
 न्तान्मसा । आपादशीर्षपर्यन्तमाप्लाव्य तदनन्तरम् । उत्पन्नं
 भावयेद्देहं नवीनं देवतामयम् । पृथ्वीवीजं पीतवर्णं मूलाधारे
 विचिन्तयन् । तेन दिव्यावलीकेन दृढीकुर्यान्निजां तनुम् ।

हृदये हस्तमादाय आं क्रीं क्रीं हं स उच्चरन् । सोऽहं मन्त्रेण
तद्देहे देव्याः प्राणान् प्रतिष्ठयेत् । भूतशुद्धिं विधायेत्यं देवो-
भावपरायणः ॥ नीलतन्त्रे चतुर्थपटलेऽपि ॥ भूतशुद्धिं ततो
वक्ष्ये शृणुष्व अवहितानघे ।। अपानमूर्ध्वगं कृत्वा दिव्यतत्त्वैः
प्रपूर्य च । हंसमन्त्रेण चाधाराच्छक्तिं कुण्डलिनीं पराम् ।
क्रमाच्चक्राणि निर्भिद्य जीवात्मानं ततोऽम्बुजम् । सहस्रारं
ततो नीत्वा परे ब्रह्मणि योजयेत् । इन्द्रियाणि दशैकञ्च मह-
त्तत्त्वानि तद्गुणान् । शुद्धं करोति चित्तानि तत्त्वानि प्रकते-
र्वपुः । चतुर्विंशतितत्त्वानि बीजभावेन योजयेत् । ततः शून्ये
शरीरे च वामभागे विचिन्तयेत् । निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं
तारिणीमयम् । अन्तरीक्षे ततो ध्यायेदाः काराद्रक्तपङ्कजम् ।
भूयस्तस्योपरि ध्यायेत् टाङ्कारेच्छेतपङ्कजम् । पुनस्तस्योपरि
ध्यायेद् हुङ्कारं नीलसन्निभम् । ततो हुङ्कारबीजे तु कर्तृका
बीजभूषितम् । कर्तुः परिगतां ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् ।
तथा । वश्यादौ रक्तवर्णं तमाकृष्टौ पीतरूपिणम् । मारणोच्चा-
टनैर्धूम्रं कृष्णं तत्तदपेक्षया । एवम्भूतं स्वमात्मानं ध्यायेच्च
तारिणीमयम् ॥ विश्वसारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ यमिति वायु-
बीजेन षोडशेन तु पूरयेत् । चतुः षष्ठ्या च तेनैव पापदेहं
प्रशोधयेत् । तेन बीजेन विधिना पिङ्गलायाञ्च रेचयेत् । द्वात्रिं-
शन्मात्रया भस्म श्वासमार्गेण वै शनैः । एवं वारत्रयं कृत्वा भूतानां
शोधनं स्मृतम् । पूरयेत् प्रतिलोमेन वज्रबीजेन देशिकः ।
षोडशेन चतुःषष्ठ्या कुम्भयेद्वेचयेत्ततः । द्वात्रिंशन्मात्रया चैव
दहनं परिकीर्तितम् । चतुर्धा च प्रजप्याथ तद्वर्णं प्रजपेत्
क्रमात् । शोषणं दहनञ्चैव स्नावनं परिकीर्तितम् । किस्किन्धः
कश्यपश्चैव हिरण्यगर्भस्ततः परम् । बीजानां ऋषयः प्रोक्ताः
शृणुष्व कमलेक्षणे ।। प्राणायामं ततः कुर्यात् क्रमेण देशिकोः

त्तमः । सहस्रारं महापद्मे चिन्तयेदिष्टदेवताम् । यथा ध्यानं
यथोक्तेन गुप्तमार्गेण देशिकः । तदा भूतानि तज्ज्ञानि सगु-
णानि विधानतः । सकलाशक्तियुक्तानि वर्णमात्रक्रमेण च ।
प्रतिलोमेन संहृत्य सतत्त्वधातुसंयुतैः । मूलाधारं सहस्रारं
षट्चक्रक्रमयोगतः । व्युत्क्रमेण विचिन्त्याथ सहस्रारं ततो-
ऽवधि । ॐ मन्त्रे चालयेद्बीजं षट्चक्रक्रमयोगतः । ऐक्यं
विभाव्य तत्स्थाने मन्त्रमेकं समभ्यसेत् । सोऽहं मन्त्रं समु-
च्चार्य सूक्ष्मब्रह्म विचिन्तयेत् । तत्क्षणाद्विर्मलं देहं निर्बन्धं
निष्परिश्रमम् । अद्वैतं चिन्तयेत्तत्र मनसा वज्रियोगतः । अका-
रादिक्षकारान्तवर्णमालाक्रमेण च । चिन्तयेत् श्वासरोधेन
पूरकुम्भकरेचकैः । एवं विचिन्त्य तान् वर्णान् ततश्चन्द्रमनु-
स्मरेत् । टान्तं विन्दुसमायुक्तमर्द्धचन्द्रविभूषितम् । चतुर्धा प्रजपे-
न्मन्त्रं मनसा वायुना सुधीः । इन्द्रबीजं जपेद्देवि । तत्त्वबीजं
ततः परम् । दूरीकृत्य विधानेन धारया सुधया पुनः । ततः
सञ्चिन्तयेद्देवि । पूर्वोक्तं मातृकामयम् । सकलानादसंयुक्तं
स्वशक्तिसहितं ततः । पञ्चाशद्वर्णसंयुक्तं महाभूतसमन्वितम् ।
पञ्चभूतात्मकं देहमनुलोमेन चिन्तयेत् । अन्तर्यामी ऋषिस्तस्य
प्राणायामस्य देवता । वक्षःस्थले दक्षहस्तं दत्त्वा साधकसत्तमः ।
पूर्वोक्तप्राणमनुना ऋषिश्छन्दःसमन्वितम् । हंसमन्त्रेण तं
प्राणमावाहनमुदाहृतम् । सधातूनि सतत्त्वानि इहागत्य
चिरं सुखम् । तिष्ठन्तु वज्रिजायान्तं मन्त्रमेनं समुदरेत् । अका-
रादिक्षकारान्तं पञ्चाशद्वर्णसंयुतम् । विचिन्त्य मनसा देहं
तदा देवो भवेन्नरः । प्राणायामं त्रिराहत्य बलं प्राणिषु निक्षिपेत् ।
अकारादिक्षकारान्तं पूरकुम्भकरेचकैः । प्रतिलोमानुलोमेन
विचिन्त्य प्राणमावहन् । तत्क्षणाद्विरजो मन्त्रो भवेत् साक्षात्
सदाशिवः । नृसिंहेनैव मन्त्रेण देहे बीजं विनिक्षिपेत् ।

मूलाधारं ततः प्राप्य जीवात्मानं विचिन्तयेत् । कुण्डलीरूप-
सम्भूता विद्युदग्निसमप्रभा । निर्मला निर्विकारस्था सर्वसिद्धि-
समन्विता । तदन्ते विन्ध्यसेहेहे मातृकां वर्णरूपिणीम् । मन्त्रे-
णानेन तां ध्यात्वा विन्ध्यसेत् सकलां तनुम् ॥

अथ प्राणायामः ॥ दक्षिणामूर्तितन्त्रे सप्तपटले ॥ मूल-
मन्त्रेण देवेशि ! वामेनापूर्य्य चोदरम् । कुम्भकेन त्रिरात्राद्या
दक्षिणेन च रेचयेत् । कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्त्रासापुटधारणम् ।
प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ॥ प्राणायामे विशेषः
पञ्चाद्वच्यते ॥ ततो दीक्षापद्युक्तं तन्त्रसारधृततत्तत्कल्पोक्तञ्च
न्यासादिकं कुर्यात् ॥ अथ पूजाधारनिरूपणम् । मातृकाभेदे-
तन्त्रे द्वादशपटले ॥ शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमायां घटे जले ।
पुस्तिकायाञ्च गङ्गायां शिवलिङ्गे प्रसूतके । आधारभेदे फल-
विशेषस्तत्रैव । शालग्रामे शतगुणं मणौ तद्वत् फलं लभेत् ।
यन्त्रे लक्षगुणं पुण्यं मूर्तौ लक्षं सुलोचने ! । घटे चैकगुणं
पुण्यं जले चैकगुणं प्रिये ! । पुस्तिकायां सहस्रन्तु गङ्गाया-
स्तत्समं फलम् । शिवलिङ्गे ह्यनन्तं हि विना पार्थिवलिङ्गकम् ।
पुष्पयन्त्रे महेशानि ! पूजनात् सर्वसिद्धिभाक् । शालग्रामादि-
निकटे यन्त्रकरणनिषेधोऽपि । शालग्रामे च पूजायां न लिखेद्
यन्त्रमुत्तमम् । मणौ स्थिते महेशानि ! न लिखेद्यन्त्रमुत्तमम् ।
प्रतिमायाञ्च पुरतो घटं संस्थाप्य यत्नतः । परिवारान् यजेत्तत्र
घटे तु परमेश्वरि ! । यन्त्राधिष्ठातृदेवाञ्च घटवक्त्रे प्रपूजयेत् ॥
सप्तस्तदेवतारूपं घटञ्च परिचिन्तयेत् । सुरद्रुमस्वरूपो हि
घटोऽयं परमेश्वरि ! ॥ प्रतिमानिकटे यन्त्रकरणनिषेधोऽपि
तत्रैव । जन्मस्थानं महायन्त्रं यदि कुर्यात् साधकः । तत्र मूर्तिं
न कुर्यात् यदि यन्त्रञ्च कारयेत् । यदि कुर्यात्सु मोहेन यजिहार-
इयं प्रिये ! । द्विगुणं पूजनं तत्र द्विगुणं बलिदानकम् । द्विगुणं

प्रजपेन्नन्त्रं द्विगुणं होममाचरेत् । अन्यथा विफला पूजा विफलं
 बलिदानकम् । सर्वं हि विफलं यस्मात्तस्माद् यन्त्रं न कारयेत् ।
 गुप्तसाधनतन्त्रे अष्टमपटले । सामान्ये च जले देवि ! पूजा
 दोषादिशान्तये । तथा । न कुर्यात् पार्थिवे लिङ्गे देवीपूजादिकाः
 क्रियाः । पार्थिवे पूजनाद्देवि ! सिद्धिहानिः प्रजायते । यदि दैवा-
 न्महेशानि ! सृत्तिकाखलनं भवेत् । तावद्वर्षसहस्राणि नरके
 पूयशोणिते । कुम्भोपाके महाघोरे पिष्टभिः सह पच्यते । अत
 एव महेशानि ! पार्थिवे न हि पूजयेत् । स्फाटिकादीन् समा-
 नीय लिङ्गं निर्माय यत्नतः । तत्र लिङ्गे पूजनाद्भिः सर्वसिद्धि-
 युतो भवेत् ॥ तन्त्रान्तरे ॥ कालिकां तारिणीञ्चैव त्रिपुरां भुवने-
 श्वरीम् । योऽर्चयेत् पार्थिवे लिङ्गे स याति परमां गतिम् ।
 तारिण्याः कालिकायाश्च सुन्दर्याः परमेश्वरि ! । पार्थिवे पूज-
 नाद्देवि ! चतुर्वर्गफलं लभेत् । एवञ्च गुप्तसाधनोक्तवचनं कालि-
 कादिविशेषेतरपरम् सामान्यविशेषन्यायात् । यद्यपि देवताया
 निराकारत्वेन ध्यानादिकमसम्भवं तथापि साकारतया ध्यानं
 सर्वसमञ्जसं तस्याः साकारत्वकारणन्तूक्तम् मुण्डमालातन्त्रे
 सप्तमपटले ॥ शिव उवाच ॥ निर्गुणा प्रकृतिः सत्यमहमेव च
 निर्गुणः । यदैव सगुणा त्वं हि सगुणोऽहं सदाशिवः । सत्यं हि
 सगुणा देवी सत्यं हि निर्गुणः शिवः । उपासकानां सिद्धयर्थं
 सगुणा सगुणो मतः ॥ महानिर्वाणतन्त्रे पञ्चमोक्तासे ॥ ध्यानन्तु
 द्विविधं प्रोक्तं स्वरूपारूपभेदतः । अरूपं तव यद्विज्ञानमवाङ्मनस-
 गोचरम् । अव्यक्तं सर्वतो व्याप्तमिदमित्यं विवर्जितम् । अगम्यं
 योगिभिर्गम्यं कृतस्त्वैवंहुसमाधिभिः । मनसो धारणार्थाय शीघ्रं
 स्वाभीष्टसिद्धये । सूक्ष्मध्यानं पुरोधाय स्थूलध्यानं वदामि ते ।
 त्रयोदशोक्तासे ॥ देव्युवाच ॥ महादेवेशादिशक्तेर्महाकाव्या महा-
 द्युतेः । सूक्ष्मातिसूक्ष्मभूतायाः कथं रूपनिरूपणम् ॥ रूपं

प्रकृतिकार्याणां सातु साक्षात् परात्परा । एतन्मे संशयं देव !
 विशेषाच्छेतुमर्हसि ॥ इति देवीप्रश्नानन्तरं श्रीसदाशिव उवाच ॥
 उपासकानां कार्याय पुरैव कथितं प्रिये ! । गुणक्रियातुसारण
 रूपं देव्याः प्रकल्पितम् ॥ इत्युक्तम् ॥ श्वेतपीतादिको वर्णो
 यथा कृष्णे विलीयते । प्रविशन्ति तथा कात्यां सर्वभूतानि
 शैलजे ! । अथ तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणाया निराकृतेः । हितायाः
 प्राप्तमूर्तेस्तु वर्णः कृष्णो निरूपितः । नित्यायाः कालरूपाया
 अरूपायाः शिवात्मनः । अमृतत्वान्नलाटेऽस्याः शशिचिह्नं
 निरूपितम् । शशिसूर्याग्निभिर्नैत्रैरखिलं कालिका जगत् ।
 सम्पश्यति यतस्तस्मात् कल्पितं नयनत्रयम् । असनात् सर्व-
 सत्त्वानां कालदण्डेन चर्वणात् । तद्रक्तवासोरूपेण भासितं
 सकलं जगत् । समये समये जीवरक्षणं विपदः शिवे ! ।
 प्रेरणं स्वस्वकार्येषु वरञ्चाभयमीरितम् । रजोजनितविश्वानि
 विष्टभ्य परतिष्ठति । अतो हि कथितं भद्रे ! रक्तपद्मासन-
 स्थिताम् ॥ कुलार्णवे पञ्चमुखण्डे षष्ठोल्लासेऽपि ॥ चिन्मयस्या-
 प्रमेयस्य निष्कलस्याशरीरिणः । साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो
 रूपकल्पना । लिङ्गस्थण्डिलवङ्गाम्बुयन्त्रकुड्यपटेषु च । मण्डले
 फलके मूर्ध्नि हृदि वा दश कीर्त्तिताः । एषु स्थानेषु देवेशि !
 यजन्ति परमां शिवाम् । अरूपां रूपिणीं कृत्वा कर्मकाण्डरता
 नराः । गवां सर्वाङ्गजक्षीरं सवेत् स्तनमुखाद् यथा । तथा
 सर्वगतो देवः प्रतिमादिषु राजते । आभिरूप्याश्च विम्बस्य पूजा-
 याश्च विशेषतः । साधकस्य च विश्वासाद्देवतासन्निधिर्भवेत् ।
 नारदपञ्चरात्रे द्वितीयरात्रे च ॥ नारद उवाच ॥ भक्तिज्ञानञ्च
 भक्तानां योगज्ञानञ्च योगिनाम् । केषां वर्त्म प्रशस्तञ्च तन्मां
 कथितुमर्हसि ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ध्यायन्ति योगिनः सर्वे
 ज्योतीरूपं सनातनम् । निर्गुणस्य शरीरञ्च न मन्यन्ते च योगिनः ।

शरीरं प्राक्तनं सर्वं निर्गुणं प्रकृतेः परम् । गुणेन सञ्जातदेहो
निर्गुणस्य कुतो भवेत् । इति सर्वं योगशास्त्रं योगविद्भिः प्रकी-
र्तितम् । वैष्णवास्तं न मन्यन्ते कुमाराद्या वयं हि ज ! । वदन्ति
वैष्णवाः सर्वं तेजस्तेजस्विनां विना । कृष्णो नित्यशरीरी
च तस्य तेजो हि वर्तते । तेजोऽभ्यन्तर एवाहुः कृष्णमूर्तिः
सनातनी । ध्यायन्ते योगिनः सर्वं तत्तेजो भक्तिपूर्वकम् । सुपक्व-
भक्त्या कामेन स योगी वैष्णवो भवेत् । तेजोऽभ्यन्तररूपञ्च
ध्यायन्ते योगिनः सदा । दासानाञ्च कुतो दास्यं विना देहेन
नारद ! । वैष्णवानां मतं शस्तं सर्वेभ्योऽपि च नारद ! । न वैष्ण-
वात् परो ज्ञानी ब्रह्माण्डेषु च ब्रह्मणाम् ॥ एवं देवतायाः साका-
रत्वे सिद्धे स्वस्वकल्पोक्तं तन्त्रसाराद्युक्तं देवताध्यानं कृत्वा मानसैः
सम्पूज्य शङ्खस्थापनाद्यावरणपूजान्तं तन्त्रसारोक्तं कर्म कुर्यात् ।
मानसपूजान्तु अग्रे उपपादयिष्ये । सम्प्रति प्राणप्रतिष्ठायां विशेषो
लिख्यते ॥ शारदातिलके त्रयोविंशतिपटले ॥ प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य
विधानमभिधीयते । येन प्रागीरिता मन्त्राः प्राणवन्तो भवन्ति
ते । यद्यपि मन्त्राणां प्राणप्रतिष्ठा नास्ति तेषां स्वत एव समर्थ-
त्वात् तथापि यन्त्रादौ लिखितानां प्राणप्रतिष्ठा क्रियते तद्वारेण
प्राणवन्त इत्युक्तिः । प्राणप्रतिष्ठया समस्तयन्त्रविहितयन्त्रप्रयोग-
पुत्तल्यादि सर्वं प्रतिष्ठितप्राणं क्रियते इत्यर्थः ॥ पाशाङ्कुशपुटा
शक्तिर्वाणीविन्दुविभूषितः । याद्याः सप्त कलावन्तो व्योम सार्द्धेन्दु-
संयुतम् । प्रथमं पाशवीजं ततः शक्तिवीजं ततोऽङ्कुशवीजं
वाणीयः विन्दुभूषित इत्यनेन यं याद्या इति उद्धृत्यकारानुवादेन
सप्तमन्तु तद्यमिति भिन्नवीजम् । पूर्वं पृथगुद्धारस्तु सप्ताना-
मपि सविन्दुताख्यापनाय । तथा च राघवभट्टधृतम् ॥ पाशा-
ङ्कुशान्तरितः शक्तिमनोः परस्तादुच्चार्य यदि वसुवर्णगुणं सहस्र-
मिति व्योम हकारः सार्द्धेन्दुसंयुतं हं । क्वचित्तु सनेन्दुसंयुतमिति

पाठस्तदा होमिति । तदन्ते हंसमन्त्रः स्यात्ततोऽमुष्य पदं वदेत् । प्राणा इति वदेत् पश्चादिह प्राणास्ततः परम् । अमुष्य जीव इहतः स्थितोऽमुष्य पदं वदेत् । सर्वेन्द्रियाण्यमुष्यान्ते वाङ्मनश्चक्षुरन्ततः । श्रोत्रघ्राणपदे प्राणा इहागत्य सुखं चिरम् । तिष्ठन्वग्निबधूरन्ते प्राणमन्त्रोऽयमौरितः । प्रत्यमुष्य पदं पूर्वं पाशादीनि प्रयोजयेत् । षडधिकषष्ट्यक्षरोऽयं मन्त्रः । प्रयोगेषु समाख्यातः प्राणमन्त्रो मनीषिभिः । केवलमेतन्माधनार्थं जपव्यतिरेकेण सर्वत्रान्यत्र प्रयोग एव । तेनात्मनि यत्र पुत्तल्यादावपि प्राणप्रतिष्ठासमये प्रत्यमुष्य पदं पाशादीनि संयोज्य अमुष्य पदस्थाने षष्ठ्यन्तं साध्यनाम संयोज्य मन्त्रमुच्चरेदिति ज्ञेयम् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाः प्रोक्ता मुनयस्तन्त्रवेदिभिः । उक्तमृग्यजुषांसामच्छन्दश्छन्दोविशारदैः । चैतन्यरूपाः प्राणा मे देवताशक्तिरौरिता । कवर्गेण वियत्पूर्वं भूते हृदयमौरितम् । शिवश्च वर्गसम्बाधैरौरितं तदनन्तरम् । ज्ञानेन्द्रियेऽष्टवर्गाद्यैस्तच्छिखा परिकीर्त्तिता । कर्मेन्द्रियैस्तवर्गाद्यैः कवचं परिकीर्त्तितम् । वचनाद्यैः पवर्गाद्यैर्विलोचनमुदीरितम् । बुद्ध्याद्यैर्यादिसंयुक्तरस्त्रस्य न्यासमौरितम् । आत्मनेऽन्ताः समाख्याता अङ्गमन्त्राः सजातिभिः ॥

प्रयोगो यथा ॥ डं कं खं घं गं आकाशवायुवह्निसलिलभू-
म्यात्मने हृदयाय नमः । जं चं छं भं जं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने
शिरसे स्वाहा । णं टं ठं डं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने
शिखायै वषट् । नं तं थं धं दं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने कव-
चाय हुं । मं पं फं भं बं वचनादानविहरणविसर्गान्दात्मने नेत्र-
त्रयाय वीषट् । हं यं रं वं लं चं शं षं लं सं बुद्धिमनोऽहङ्कारचित्त-
ज्ञानात्मने अस्त्राय फट् ॥ नाभेश्वरणपर्यन्तं पाशबीजं प्रविन्यसेत् ।
हृदयान्नाभिपर्यन्तं शक्तिबीजं ततः परम् । मूर्द्धादिहृदयं याव-

दङ्कुशं विन्यसेत्ततः । हृदये धातुषु न्यस्येदतिदीप्तं यथाक्रमम् ।
 प्राणे जीवे ततो न्यस्येद्वंसवर्णद्वयं पृथक् ॥ प्राणजीवयोरपि हृदये
 एव न्यासः । पृथगिति प्रत्येकम् ॥ कुर्याद्वापकमेतेन समस्तेन
 विधानवित् ॥ समस्तेन मूलेनैत्यर्थः ॥ ततो विचिन्तयेद्देवीं
 जीवभूतां जगन्मयीम् । रक्ताब्धिपीतारुणपद्मसंस्थां पाशाङ्कुशा-
 विक्षुशरासवाणान् । शूलं कपालं दधतीं कराब्जे रक्तां त्रिनेत्रां
 प्रणमामि देवीम् । एवं ध्यात्वा जगद्वातीं लक्ष्मेकं जपेन्ननुम् ।
 जुहुयात्तद्दशंशेन चरुभिर्हृतसंयुतः । सपाशाब्धिशक्तिपीठे विधि-
 नानेन पूजयेत् । अर्चयेत् षट्सु कोणेषु ब्रह्माणं विष्णुमीश्व-
 रम् । वार्णां लक्ष्मीमुमां पश्चात् षडङ्गानि प्रपूजयेत् । पूजा-
 क्रमस्तु ॥ आग्नेयवारुणेशेषु ब्रह्मविष्णुशेन ऐन्द्रनैऋतवायव्येषु
 वाणीलक्ष्मणमाः पूज्याः । प्रमाणन्तु प्रागुक्तम् ॥ दक्षिणमातरः
 पूज्यास्तद्वाह्ने लोकनायकाः । एवं सम्पूजयेद्देवीं सुगन्धिकुसु-
 मादिभिः । इति संसाधितो मन्त्रः षट्कर्मफलदो भवेत् ।
 स्थापयेन्ननुनानेन प्राणान् सर्वत्र देशिकः । वीजान्तेऽमुष्यशब्दा-
 नामादौ दूतीः प्रयोजयेत् ॥ सर्वत्र सर्वकर्मसु पुत्तल्यादौ च
 प्राणप्रतिष्ठास्थापनप्रकारोऽनेन दर्शितः । वीजान्ते पाशादिहंस-
 मन्त्रान्ते । अमुष्यशब्दानामादाविति साध्यनाम्न आदौ । तदुक्तं
 राघवभट्टधृतेन । गत्वा बद्धा पाशवीजेन साध्यं शक्त्या गृह्णन्
 शक्तिवीजेन भूयः । प्राणानाक्त्याङ्कुशेनाथ यादौ दूतीश्चोक्ता
 साध्यनामाथ मन्त्री ॥ मृतवैवस्वता भूयो जीवहा प्राणहा ततः ।
 आक्त्याग्रहणा पश्चात् प्रमदा विस्फुलिङ्गिनी । क्षेत्रज्ञा प्रतिहा
 ह्येताः प्राणदूत्यो नव स्मृताः । पाशेन बद्धचेष्टस्य शक्त्या स्वीकृत-
 चेतसः । अङ्कुशेनाहृतस्याग्निः सार्द्धस्याशु समाहरेत् । हादशा-
 ङ्गुलमानेन कृत्वा साध्यस्य पुत्तलीम् । तस्यां प्राणात्मकं मन्त्रं
 सकौटं हृदये न्यसेत् । निशोथसमये साध्ये सुप्तेऽस्य हृदया-

स्वजे । दंलेषु वायुवज्रोन्द्रवरुणानामतः परम् । ईशराक्षस-
 शीतांशुयमानां कर्णिकान्तरे । यादीन् हंससमायुक्तान् भृङ्गा-
 काराननुष्मरेत् । शिवो विन्दुसमुद्भूतं तन्तुसम्बद्धविग्रहान् ।
 एवमात्महृदम्भोजे भृङ्गीरूपा सवर्त्मना । एकैकां साध्यहंपद्मां
 भृङ्गमेकैकमानयेत् । पुत्तल्यां स्थापयेन्मन्त्री सचित्ते वा विधान-
 वित् ॥ अत्र प्रथमवत् द्वितीयादीनामपि साध्यनान्नामैकैक-
 स्यादौ पाशादिहंसमन्त्रान्तानि वीजान्युच्चार्य सम्बुद्धान्तं प्रथम-
 दूतीनाम एवं चतुर्थं स्थानेषु प्रथमं प्रयुज्यते । एवं दूत्यन्तरे-
 श्वपि । नवकृत्वो मन्त्रावृत्तिः । मन्त्रोऽयमित्यमुदितो ग्रह-
 संख्ययैवेति राघवभट्टवचनात् । अत्रैकैकस्यामावृत्तौ
 एकैकभृङ्गानयनमिति ज्ञेयम् । प्रथमदूतीनामप्रयोगे प्रथम-
 भृङ्गानयनं द्वितीयदूतीनामप्रयोगे द्वितीयभृङ्गानयनमिति नवा-
 न्तमयमेव क्रमः । तन्तुच्छेदं प्रकुर्वीत वज्रिवीजेन संयुतः ।
 आकृष्टा साध्यहृदभृङ्गांस्ततः संज्ञश्चमेद्भवा । एवमेकादशावृत्तौः
 कुर्यात् सर्वेषु कर्मसु । वशाकर्षणयोर्यादीन् वरुणान् संस्मरेत्
 सुधीः । मोहविद्वेषयोर्धूमान् क्षणान् मारणकर्मणि । पीतान्
 संस्तवने ध्यायेत् प्राणाकर्षणकर्मवित् । आकृष्टान् साध्यहृत्-
 प्राणान् स्थापयेदात्मनो हृदि । क्रूरकर्मसु पुत्तल्यां तेषां स्थापन-
 मीरितम् । प्राणान् साध्यस्य मण्डूकानात्मानन्तु भुजङ्गमान् ।
 संस्मरेत्तत्र निपुणः सदा क्रूरेषु कर्मसु । वायुग्निशक्रवरुणेश्वर-
 राक्षसेन्दुप्रेतेशपत्रलिखितैरथ यादिवर्णैः । विन्दन्तिकैः क्षगत्
 हंससमेतसाध्यं प्राणात्मयन्त्रमथ वर्णवृत्तं धरास्थम् । इत्थं प्रयोग-
 कुशलो मनुनानेन मन्त्रवित् । वशयेत् सकलान् देवान् किं
 पुनः पार्थिवान् जनान् ॥ आवाहनादिमुद्रा तु तन्त्रसार-
 कारणं धृता न त्वत्र प्रयोजनं तासामिति । अथासनं मातृका-
 मेदतन्त्रे पञ्चमपटले । चतुरङ्गुलविस्तारमित्यदि ॥ अथ पाद्यम् ॥

प्रपञ्चसारे षष्ठपटले ॥ पाद्यं श्यामाकदूर्वाजविष्णुकान्ता-
 भिरुच्यते इति पाद्यम् ॥ अथार्घ्यम् ॥ गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्र-
 तिलसर्षपाः । दूर्वा चेति क्रमादर्थ्यद्रव्याष्टकमुदीरितम् ।
 शाक्त्यार्घ्यं विशेषो योगिनीतन्त्रे सप्तमपटले ॥ वक्रधान्योद्भवं
 यच्च सूक्ष्मधान्योद्भवं तथा । तत्तु तण्डुलमक्षुण्णं सप्ताष्टनव-
 संख्यया । दूर्वाङ्गुरसमेतञ्च भगवत्यै निवेदयेत् । अष्टम्यां वा
 नवम्यां वा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ इत्यर्घ्यम् ॥ अथाच-
 मन्रीयम् ॥ जातोलवङ्गककौलैर्निर्मिताचमनीयकम् ॥ इत्याच-
 मनीयम् । अथ मधुपर्कम् ॥ मधुपर्कञ्च सचौद्रं दधि प्रोक्तं
 मनौषिभिः ॥ शारदायाम् ॥ आज्यं दधि मधून्मिश्रमेतदुक्तं मनी-
 षिभिरिति मधुपर्कम् ॥ अथ पुनराचमनीयम् ॥ शुद्धाभि-
 रङ्गिर्विहितं पुनराचमनीयकम् ॥ इति पुनराचमनीयम् । अथ
 गन्धः । गन्धश्चन्द्रव्युत्पत्तिस्तु कुलार्णवे पञ्चमखण्डे सप्तदशो-
 क्तासि ॥ गन्धीरापारदीर्भाग्यक्ते शनाशनकारणात् । धर्मज्ञान-
 प्रदानाच्च गन्ध इत्यभिधीयते ॥ प्रपञ्चसारे ॥ चन्दनागुरु-
 कर्पूरपङ्कं गन्धमिहोच्यते ॥ तद्दानफलन्तु योगिनीतन्त्रे ॥
 गन्धानुलेपनं दत्त्वा ज्योतिष्टोमफलं लभेत् । कुङ्कुमेन विलि-
 प्यार्थां गोसहस्रफलं लभेत् । चन्दनागुरुकर्पूरैः शक्तपुष्पैः स-
 कुङ्कुमैः । विलिप्तां पूजयेद्दूर्गां वज्रिष्टोमफलं लभेत् । अथ
 गन्धाष्टकम् ॥ मेरुतन्त्रे चतुर्थप्रकाशे ॥ गन्धाष्टकं तस्य तस्य
 देवस्याथ प्रकीर्त्यते । चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कुमं मदम् ।
 रक्तचन्दनजावासगणपत्यमुदाहृतमिति गणेशगन्धाष्टकम् ॥
 ज्जीवेरं चन्दनं कुष्ठमगुरुं चन्दनं मुरा । सेव्यकञ्च जटामांसी
 वैष्णवं तदुदाहृतमिति विष्णुगन्धाष्टकम् ॥ चन्दनागुरुकर्पूरजल-
 कुङ्कुमरोचना । जटामांसी कपियुतं शाक्तं गन्धाष्टकं विदुरिति
 शक्तिगन्धाष्टकम् ॥ जलकाश्मीरकुष्ठैस्तु रक्तचन्दनचन्दनैः ।

उशीरागुरुकर्पूरैः सौरं गन्धाष्टकं विदुरिति सूर्यगन्धाष्टकम् ॥
 गोरोचना च कुष्ठञ्च कर्पूरागुरुकुङ्कुमैः । चन्दनेन सदास्यञ्च
 वरदेन च पत्रकम् ॥ शारदायाम् ॥ चन्दनागुरुकर्पूरतमालजल-
 कुङ्कुमम् । कुशीतकुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं स्मृतमिति शैव-
 गन्धाष्टकम् ॥ अथ पुष्पम् ॥ पुष्पशब्दव्युत्पत्तिस्तु कुलार्णवे ॥
 पुष्पसंवर्द्धनाच्चापि पापौघपरिहारतः । पुष्कलार्थप्रदानाच्च
 पुष्पमित्यभिधीयते ॥ प्रपञ्चसारि ॥ तुलस्यौ पङ्कजे जात्यौ
 केतक्यौ करवीरकौ । शस्तानि दश पुष्पाणि तथा रक्तोत्पलानि
 च । उत्पलानि च नीलानि कङ्कारकुसुदानि च । विश्वसार-
 तन्त्रे द्वितीयपटले शेषचरणे बहूनि कुसुमानि चेति पाठः ॥
 मालतीं कुन्दमन्दारं नन्द्यावृत्त्यादिकानि च । पलाशपाटला-
 पार्श्वपरन्त्यावर्त्मकानि च । चम्पकानि स नागानि रक्तमन्दार-
 काणि च । अशोकोद्भवविल्वात्यकार्णिकारोद्भवानि च ॥ विश्व-
 सारतन्त्रे शक्तिविषये विशेष उक्तो यथा ॥ अथ देव्या मते वक्ष्ये
 पुष्पाणि शृणु पार्वति ॥ इत्युक्त्वा तुलस्यौ पङ्कजे इत्याद्युक्तम् ॥
 तदनन्तरम् । एतान्यन्यानि तन्त्रेऽस्मिन् पुष्पाणि सन्ति वै प्रिये ॥
 नानादेशोद्भवानि स्युः सर्वकालोद्भवानि च । कुलानि चैव
 पुष्पाणि दद्याद्देव्यै विशेषतः । अथ पुष्पं प्रवक्ष्यामि कर्मयोगे
 महेश्वरि ॥ शृणुष्व परया भक्त्या यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा । कमले
 करवीरे द्वे कुसुमे तुलसीद्वयम् । जात्यशोके केतके द्वे कुमारौ-
 चम्पकोत्पलम् । कुन्दमन्दारपुन्नागपाटलानागचम्पकम् । आर-
 ग्वधं कार्णिकारं पावन्ती नवमल्लिका । सौगन्धिकं सकोरण्डं
 पलाशशोकसर्जकाः । सिन्धुवार अपामार्गं वापुलीकञ्च काम-
 जम् । व्याघ्रचेलं द्रुमनकं मरुवकञ्च ततः परम् । लवङ्गं जलकर्पूरं
 तगरञ्च जवा तथा । शिवपुष्पं द्रोणपुष्पं कामराजं सुकेतकम् ।
 अन्यानि वनपुष्पाणि जलजस्थलजानि च । गिरिजानि देशजानि

नानापुष्पाख्यतः परम् ॥ शारदायामपि ॥ कमले करवीरे हे
कुमदे तुलसीद्वयम् । जातीद्वयं केतके हे कङ्कारं चम्पकोत्पले ।
कुन्दमन्दारपुन्नागपाटला नागचम्पकम् । आरग्वधं कर्णिकारं
पावन्ती नवमल्लिका । सौगन्धिकं सकोरणं पलाशाशोकम-
ल्लिकाः । धुस्तूरं सर्जकं विल्वमर्जुनं मुनिपुष्पकम् । अन्यान्यपि
सुगन्धौनि पत्रपुष्पाणि देशिकैः । उपदिष्टानि पूजायामाददीत
विचक्षणः ॥ योगिनीतन्त्रे तृतीयभागे सप्तमपटलेऽपि ॥ शृणु
देवि ! प्रवक्ष्यामि पुष्पाध्यायं समासतः । ऋतुकालोद्भवैः पुष्पै-
र्मल्लिकाजातिकुङ्कुमैः । सितरक्तैस्तथा पुष्पैर्नीलपद्मैश्च पाण्डुरैः ।
किंशुकैस्तगरैश्चैव जवाकनकचम्पकैः । वङ्गलैश्चैव मन्दारैः कुन्द-
पुष्पैः कुरण्डकैः । धुस्तूरकादियुक्तैश्च बन्धूकागस्त्यसम्भवैः ।
मदनैः सिन्धुवारैश्च दूर्वाङ्कुरसुकोमलैः । मञ्जरीभिः कुशानाञ्च
विल्वपत्रैः सुकोमलैः ॥ नवमपटलेऽपि ॥ तुलसी हे मालती
तमालामलकी तथा । पुन्नागं मुनिपुष्पञ्च मल्लिकाञ्च निवेद-
येत् । करवीरस्य कुसुमैर्यैश्च यन्ति जनार्दनम् । दर्शनात्तस्य
देवेशि ! नरकाग्निः प्रणश्यति ॥ अथ करवीरादिमाहात्म्यम् ।
पुरश्चरणरसोज्जासे दशमपटले ॥ करवीरं जवा देवि ! स्वयं
काली न चान्यथा । तारा च अपरा चैव स्वयं त्रिपुरसुन्दरी ।
तथा । करवीरजवामूले तुलस्या नगनन्दिनि ! । यदि प्राणां-
स्त्यजेद्देवि ! माहात्म्यं तस्य सुन्दरि ! । वल्लकोटिशतेनापि
जिह्वाकोटिशतेन च । वर्णितुं तस्य माहात्म्यं न शक्नोमि
कदाचन ॥ इति करवीरजवामूले प्राणत्यागफलम् । शुक्लवर्णं
तथा पीतं हरितं लोहितं तथा । करवीरं महेशानि ! जवा-
पुष्पं तथैव च । स्वयं काली ! महाभाया स्वयं त्रिपुरसु-
न्दरी । अनादरो न कर्तव्यः कृत्वा च नरकं व्रजेत् ॥ दशम-
पटले ॥ कृष्णापराजिता साक्षाद्भद्रकाली न संशयः ॥ करवीरञ्च

भुवना द्रोणं भुवनसुन्दरी । जवा साक्षाद्भगवती सर्वविद्यास्वरू-
 पिणी । ये साधका जगन्मातरश्चरन्ति शिवप्रियाम् । एतैश्च
 कुसुमैश्चण्डि ! स शिवो नात्र संशयः । किं जपैः किं तपोभिर्वा
 किं दानैर्वा किमध्वरैः । येनार्चिता जगद्धात्री द्रोणकृष्णाजवा-
 दिभिः । राजसूयाश्वमेधाद्यैर्वाजपेयाग्निहोत्रकैः । फलं यज्जा-
 यते चण्डि ! तत्सर्वं कुसुमार्चनात् । जवा द्रोणं तथा कृष्णा
 मालूरं करवीरकम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपञ्च महादेव्यै निवेदयेत् ।
 श्वेतचन्दनसंयुक्तं रक्तचन्दनलेपितम् । यो दद्याद्भक्तिभावेन स वि-
 श्वेशो न संशयः ॥ अथ सकामस्य पुष्पविशेषस्तत्रैव ॥ करवीरस्य
 साव्यस्य सहस्राणि ददाति यः । स कामान् प्राप्य चाभीष्टान्
 देवीलोके महीयते । तत्रैककरवीरेण पद्मानां द्वे सहस्रके ।
 महाघोरे महोत्पाते महापदि च सङ्कटे । महादुःखे महारोगे
 महाशोके महाभये । पूजयेत् कालिकां तारां भुवनां षोडशीं
 शिवाम् । बालां छिन्नाञ्च वगलां धूमां भीमां करालिनीम् ।
 कमलामन्नपूर्णाञ्च दुर्गां दुःखविनाशिनीम् । सर्वविद्या जवाद्रोण-
 करवीरैर्मनोहरैः । मालूरपत्रैः कृष्णाभिः कृष्णां सम्यज्य भूतले ।
 साधकेन्द्रो महेशानि ! भवेन्मुक्तो न संशयः ॥ मुण्डमालायां दश-
 मपटले ॥ जवापुष्पैर्द्रोणपुष्पैः करवीरैर्मनोहरैः । कृष्णापराजिता-
 पुष्पैरजैश्च मुनिपुष्पकैः । पूजयेत् परया भक्त्या चण्डिकां परमे-
 स्वराम् ॥ योगिनीतन्त्रमन्त्रसूक्तयोः ॥ येऽर्चयन्ति जनाध्यक्षं
 करवीरैः सितासितैः । चतुर्युगाणि देवेशि ! प्रीतो भवति मा-
 धवः । सितासितैरिति श्वेतकृष्णमित्याद्युक्तवचनेनैकवाक्यतया
 असितशब्देन रक्तपीतादिकमवगम्यते न तु कृष्णमात्रम् ।
 योगिनीहृदये ॥ वक्रपुष्पं जातिपुष्पं तथा रुद्रजटस्य च । वाज-
 पेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा । सर्वेषामेव पुष्पाणां प्रवरं
 नीलमुत्पलम् । नीलोत्पलसहस्रेण यस्तु मालां प्रयच्छति ।

दुर्गायै विधिवद्देवि ! तस्य पुण्यफलं शृणु । वर्षकोटिसह-
स्राणि वर्षकोटिशतानि च । देव्या अनुचरो भूत्वा रुद्रलोके
महोयते । मुण्डमालायाम् ॥ लक्षाणां महिषैर्महैरजैर्दानै-
र्मखैः शुभैः । पूजिता सा जगद्धात्री यद्येषा कुसुमार्चिता ।
माहात्म्यञ्चैव कृष्णायः कृष्णा जानाति कृतस्त्रयः । तदर्द्धञ्चा-
प्यहं देवि ! तदर्द्धं श्रीपतिः सदा । तदर्द्धमजजन्मा वै तदर्द्धं
वेदसाधकः । अन्य पुष्पस्य माहात्म्यं संज्ञेपादवत्सि शङ्करि ! ।
पृथिव्या मण्डले स्वर्गो वैकुण्ठे कालिकापुरे । जवादिकरवी-
रैश्च दलेः किं किं फलं लभेत् । न जानाति जगद्धात्रि ! को वेद
पार्वतीं विना । करवीरैः श्वेतरक्तै रक्तचन्दनमिश्रितैः । पूज-
येत् स्नातले यस्तु स विश्वेशो भवेद्ब्रुवम् । कृष्णापराजिता-
पुष्पैर्यस्तु देवीं प्रपूजयेत् । सोऽश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्य शिवां
व्रजेत् । महाविपत्तौ यो दद्याज्जवां कृष्णापराजिताम् । द्रोणं
वा करवीरं वा स गच्छेत् कालिकापुरम् ॥ इति महाविपत्ति-
निवृत्तिकारणजवादिदानेनापि कालीपुरगमनम् ॥ तत्रैव ॥
किञ्च पादौः किञ्च वाद्यैर्नैवेद्यैः किञ्च पूजनैः । मधुदानैर्मधुपर्कैः
कुम्भकैः किञ्च रेचकैः । पूरकैः किञ्च वा ध्यानैः प्राणायामैश्च
किञ्च वा । किं जपैः किं तपोभिर्वा मत्स्यैर्मसैश्च पञ्चमैः । कि-
मन्यमन्त्रैः किं तन्त्रैः किं यन्त्रैः किञ्च साधनैः । किं वेदैरासवैः
किं वा श्मशानैर्मन्त्रसाधनैः । किमध्वरैर्मन्त्रपूतैर्मन्त्रार्थैर्मन्त्रजी-
वनैः । किं योनिमुद्रया किं वा तीर्थैः किं ब्रह्मसाधनैः । किं
मातृकान्यासगणैः किं कटैः किं घटैः पटैः । किं काकचक्षुभिः
षोढान्यासैः किं धर्मसाधनैः । येनार्चिता महादेवी करवीरै-
र्जवादिभिः । कृष्णापराजितापुष्पैः करवीरैर्मनोहरैः । द्रोणैस्तु
केतकोपुष्पैर्जवामालूरपत्रकैः । पूजिता यैर्भगवती तेषां किं
कर्मसाधनैः ॥ नित्यातन्त्रे एकादशपटले ॥ न तुलस्या यजेत्

कालीं नाक्षतैर्विष्णुमर्चयेत् । अपराजिताया दानेन साक्षात्पुष्टा भवेच्छिवा । कालिकायाश्च तारायाः करवीरमतिप्रियम् । जवा-
 पुष्पं महेशानि ! दद्यान् धारयेत् क्वचित् । रक्तोत्पलेन देवेशि !
 कालिकां पूजयेत् सकृत् । शतवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमा-
 भूयात् ॥ तथा । दूर्वापि गर्भसंयुक्ता देवौतुष्टिकरी भवेत् ।
 पुरश्चरणरसोह्लासे ॥ मञ्जरीं सहकारस्य केशवाय निवेदयेत् ।
 जम्बुतिन्दुकयोरेव तथा वै केशवस्य च । शिफालिकाश्च तगरं
 बन्धूकश्च निवेदयेत् । रुद्रजटां शिरीषश्च दाडिमं काञ्चनं तथा ।
 नीलकण्ठं मयूरश्च योन्याकारश्च वर्जयेत् । पुष्पदाने काम्यफलं
 नित्यातन्त्रे तत्रैव ॥ ईश्वर उवाच ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां
 प्रायश्चित्तं सुरेश्वरि ! । रक्तपुष्पैर्महादेवि ! चक्रराजं प्रपूजयेत् ।
 कुलाचारक्रमेणैव कर्पूरक्षोदमण्डितम् । महापातककोटीश्च
 जन्मान्तरकृता अपि । मासमात्रेण हन्यन्ते सत्यं सत्यं न
 संशयः । लङ्घ्नीस्तस्य भवेद्देहे सुस्थिरा वीरवन्दिते ! । जवापुष्पै-
 र्महेशानि ! पूर्ववदयदि पूजयेत् । मासमात्रेण नश्यन्ति सप्त-
 जन्मकृतान्यपि । ब्रह्महत्यादिपापानि धनवान् जायते कविः ।
 पूर्ववत् केतकीपुष्पैः पत्रैर्वा यदि पूजयेत् । मासमात्रेण देवेशि !
 उपपातककोटयः ॥ नश्यन्तीति पूर्वोक्तेनान्वयः । लभते राज-
 सौभाग्यं साधको नात्र संशयः । शतपत्रैर्महेशानि ! पूर्ववत्
 पूजयेच्छिवाम् । मासमात्रेण देवेशि ! सर्वपापं विनाशयेत् ।
 चम्पकैः पूजयेद्देवीं पूर्ववन्मासमात्रकम् । निहत्य परमेशानि !
 पातकं शतजन्मजम् । सौभाग्यं लभते मन्त्री त्रिषु लोकेषु
 पार्वति ! । श्वेतपद्मैर्महेशानि ! मासमात्रं प्रपूजयेत् । त्रिशङ्ख-
 कृतान् पापान्नाशयेन्नात्र संशयः । बन्धूकैः पूर्ववद्देवि ! मासमात्रं
 प्रपूजयेत् । निहत्य सर्वपापानि त्रैलोक्यं वशमानयेत् । मालती-
 मङ्गिकाजातीकुन्दैः श्वेतोत्पलैः सह । सुमिथैः पूर्ववद्देवि !

मासमात्रं प्रपूजयेत् । ब्रह्महत्यादिपापानि शतजन्मकृतान्यपि ।
 नाशयेत् परमेशानि ! मुक्तिस्तस्य करे स्थिता । रक्तोत्पलजवा-
 वल्लिवन्धूकागस्थकैः शिवाम् । पूर्ववत् परमेशानि ! मासमात्रं
 प्रपूजयेत् । पातकं नाशयित्वासौ मम तुल्यो भवेन्नरः । नाग-
 केशरकङ्कारवकुलैः सिन्धुवारकैः । पाटलैः पूजयेद्देवि ! श्री-
 पीठान्तर्निवासिनीम् । पूर्ववत् पूजयेद्देवि ! मासमात्रं प्रस-
 न्नाधीः । सहस्रजन्मजं पापं नाशयेन्नात्र संशयः । सौभाग्यमतुलं
 तस्य भवेद्देवोपसादतः ॥ योगिनीतन्त्रे ॥ नीलसृज्य दद्यात्
 पुष्पाणि वनस्थानि कदाचन । न शक्नुवन्ति वै देवाः समाकर्षि-
 तुमुद्यताः । एकैकं कुसुमं यत्ना रक्षन्ति दश वै यतः । तथा यत्ना-
 ज्ञनाः पञ्च सर्वतः कुसुमावृताः । तस्मादाहृत्य कुसुमं यजेद्देवान्
 पितॄनपि ॥ इति वृक्षपुष्पदाननिषेधः ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ स्नात्वा
 मध्याह्नसमये यच्छिन्द्यात् कुसुमं नरः । तत्पुष्पैरर्चने देवि !
 रौरवे प्रतिपद्यते ॥ मध्याह्न इत्युपादानात् प्रातःस्नातस्य पुष्पा-
 हरणे न दोषः ॥ अथ पुष्पमाला ॥ विश्वसारतन्त्रे ॥ नीलो-
 त्पलसहस्रेण यस्तु मालां प्रयच्छति । दुर्गायै विधिवद्देवि ! तस्य
 पुण्यफलं शृणु । वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । देव्या
 अनुचरो भूत्वा रुद्रलोके महीयते ॥ योगिनीतन्त्रे नवमपटले ॥
 मालतीमालया विष्णुरर्चिता येन कार्तिके । पापाक्षरक्षत-
 माला नाशिता तस्य विष्णुना । पट्टे सौरि प्रमार्जिता इति
 मत्स्यसूक्ते चतुर्दशपटले शेषचरणे पाठः ॥ तथा ॥ करवीरकृतां
 मालां माधवाय प्रयच्छति । देवेन्द्रोऽपि महेशानि ! करोति
 करसम्पुटम् ॥ अथ मासविशेषे धात्रीफलादिदानफलं तत्रैव ॥
 धात्रीफलेन पत्रेण योऽर्चयेन्मेषगे रवौ । दशानामश्वमेधानां
 फलन्तु लभते प्रिये ! । मञ्जरीं सहकारस्य केशवाय निवेदयेत् ।
 जम्बूतिन्दुकयोरेव तथा वै केशवस्य च ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ करवीर-

कृतां मालां यो दद्यान्माधवाय च । देवेन्द्रोऽपि महेशानि !
 करोति करसम्पुटम् ॥ चकारादन्यस्यै देवतायै च ॥ तत्रैव ॥
 न भेदयेद् यज्ञसूत्रं मालाञ्चैव न भेदयेत् । विशेषे मालतीमाला
 व्याघ्रचर्मं तथैव च ॥ बृहन्नीलतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ कोकनदञ्च
 बभ्रूकं कर्णिकादयमेव । वकमन्दाररक्तानि करवीराणि शस्यते ।
 मल्लिकाव्रितयं जाती चौमपुष्पं जयन्तिका । विल्वपत्रं कुरु-
 वकं मुनिपुष्पञ्च केशरम् । वासन्तीञ्चैव सौगन्धं कालपुष्पं मनो-
 हरम् । आमलकञ्च कादम्बं वकुलं यूथिकां तथा । विल्वैर्मरु-
 वकाद्यैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः । ओद्गुपुष्पैर्विशेषेण वज्रपुष्पेण
 शोभितम् । सर्वं पुष्पं प्रदद्याच्च भक्तियुक्तेन चेतसा । जवापुष्पं
 महेशानि ! दद्याद्देव्यै विशेषतः । पद्मं प्रियतरं देव्याः शफाली
 वकुलं तथा । रक्तोत्पलेन देवेशि ! पूजयेत् परमां शिवाम् ।
 लक्षवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् । शिरीषं परमं देव्याः
 प्रीतिदं तगरं तथा । स्थलपद्मं सुष्ठुतरं लक्षसंख्यक्रमेण तु ।
 यदि दद्यान्महेशानि ! सर्वसिद्धिः सुरेश्वरि ! । तदैव मन्त्रसिद्धिः
 स्यान्नात्र कार्या विचारणा । विजातीं तुलसीं रम्यां तस्यां
 प्रीतिकरां पराम् । काञ्चनं रक्तवर्णञ्च आदिप्रियतरं महत् ।
 भक्तियुक्तो महेशानि ! सर्वं पुष्पं निवेदयेत् ॥ बृहन्नीलतन्त्रे ॥
 चातुर्मास्ये तु लक्षैकमालत्या योऽर्चयेद्धरिम् । शतजन्मकृतं पापं
 तत्क्षणादेव नश्यति । करवीरस्य कुसुमैर्योऽर्चयन्ति हरैर्दिने ।
 दर्शनात्तस्य देवेशि ! नरकाग्निः प्रणश्यति ॥ अथ वर्ज्यपुष्पाणि ॥
 नार्चयेत् भिक्षिपुष्पेण पीतैश्च तगरैस्तथा । श्वेतनोद्ग्रेण
 क्षण्णेन विजयेन न चार्चयेत् ॥ प्रपञ्चसारे षष्ठपटले ॥ अङ्गुने पति-
 तैर्माख्यैः शीर्षैर्वा जन्तुदूषितैः । आघ्रातैरङ्गसंस्पृष्टैरुपितैर्नापि
 चार्चयेत् ॥ शारदायाम् ॥ मलिनं भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेशादिदूषि-
 तम् अङ्गुस्थं समान्नातं त्यजेत् पर्युषितं गुरुः ॥ मत्स्यसूक्ते

चतुर्दशपटले ॥ शेषालिकान्तु कङ्गारं शरत्काले प्रशस्यते ।
 अन्यत्र न स्पृशेदेवि ! प्रायश्चित्तन्तु पूजनात् । नार्चयेद्रक्तकण्ठेन
 तथोग्रगन्धिकेन च । करवीरस्य माध्यस्य बन्धूजीवस्य चैव हि ।
 केशरस्य च वज्रस्य रक्तं देवि ! प्रशस्यते ॥ योगिनीतन्त्रे ॥
 विल्वपत्रं शमीपत्रं तमालामलकौदलम् । अपाङ्गमृङ्गपत्रञ्च
 कुशं दूर्वां तथैव च । पुष्पाणामप्यभावे तु फलान्यपि निवेदयेत् ।
 फलानामप्यभावे तु तत्पत्रैः पूजयेद्भरिम् ॥ इति पुष्पाद्यभावे
 पत्रेणापि पूजनम् ॥ गुप्तपूजापुष्पञ्च तत्रैव ॥ सिंहास्यञ्चैव मासूरं
 धुसूरञ्च चतुर्विधम् । तथा सद्गजटे हे च गुह्यपुष्पञ्च शङ्करि ! ॥
 पद्मे नीलोत्पले देवि ! वक्त्रमन्दारकाञ्चने । माधवी हे तमालञ्च
 गुप्तमेतद्वरार्चनम् ॥ दिवारात्रिभेदेन पुष्पविशेषेण पूजनमुक्तं तत्रैव ॥
 कनकानि सुगन्धीनि रात्री देयानि शङ्करि ! । दिवा चान्यानि
 पुष्पाणि दिवा रात्री च मल्लिका ॥ देवालयस्य पुष्पेण यो देवं
 प्रतिपूजयेत् । अन्धत्वं प्राप्नुयात् सोऽपि दश वर्षाणि पञ्च च ॥ देव-
 ताविशेषे पुष्पविशेषवर्जनमपि तत्रैव ॥ शिवे विवर्जयेत् कुन्दं
 माघे माघ्यं प्रशस्यते । गणेशे वर्जयेन्माघ्यमशोकं तगरं तथा ।
 सूर्ये माघ्यञ्च मन्दारं कनकञ्च तथैव च । महालक्ष्म्यै च तुलसीं
 भ्रिण्टिकां काञ्चनं तथा । अत्र भ्रिण्टिकावर्जनमधिकदोषार्थम् ॥
 बन्धूजीवञ्च द्रोणञ्च सरस्वत्यै न दापयेत् । ग्रहाणां विल्वपत्रञ्च
 शमीपत्रं तथैव च । ब्रह्मणे वर्जयेत् काशं कौसुम्यं शमिपुष्पकम् ।
 धात्रीपुष्पं कुरुण्डञ्च जलपुष्पं तथैव च । दुर्गायै न प्रदद्याच्च
 सोमपुष्पं तथैव च । त्रिपुरायै काञ्चनञ्च कनकं वासकं तथा ।
 किंशुकं क्षणकान्ताञ्च इन्द्राक्षीं वस्त्रनां तथा ॥ योगिनीतन्त्रे ॥
 विल्वपत्रञ्च माघ्यञ्च तमालामलकौदलम् । कङ्गारं तुलसी-
 चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम् । एतत् पर्युषितं न स्यात् यच्चान्यत्
 कलिकात्मकम् । न दुष्टेच्छिन्नभिन्नञ्च जातीपुष्पञ्च शङ्करि ! ॥

✓ धूपशब्दव्युत्पत्तिस्तु कुलार्णवे ॥ धूताशेषमहादोषपूतिगन्धप्रभा-
 वतः । परमानन्दजननाडूप इत्यभिधीयते ॥ प्रपञ्चसारे ॥ स-
 गुगुलुगुरुशीरसिताज्यमधुचन्दनैः । साराङ्गारे विनिक्षिप्तै-
 र्मन्त्री पीठैः प्रधूपयेत् ॥ योगिनीतन्त्रे ॥ कृष्णागुरुसकर्पूरं
 चन्दनं सिद्धकं तथा । भगवत्यै नरो यस्तु इदं दत्त्वा महे-
 श्वरि ! । इह कामसवाप्नोति दुर्गालोके महीयते ॥ इति धूपः ॥
 दीपव्युत्पत्तिस्तु कुलार्णवे ॥ मोहध्वान्तप्रशमनात् क्षयजन्म-
 निवारणात् । दिव्यरूपप्रदानाच्च परतत्त्वप्रकाशनात् । मोक्ष-
 दीप इति ख्यातो मोक्षमार्गैकसाधनम् ॥ प्रपञ्चसारे ॥ गो-
 सर्पिषा वा तैलेन वर्त्या च लघुगर्भया । दीपितं सुरभिं दुग्धं
 ✓ दीपमुच्चैः प्रदीपयेत् ॥ इति दीपः ॥ वस्त्रदानन्तु वरदातन्त्रे
 चतुर्थपटले ॥ षट्त्रिंशदङ्गुलान्नायामं वस्त्रं न चार्पयेत् ।
 विभवे सति देवेशि ! काम्ये कामणि कुत्रचित् ॥ अलङ्कारस्तु
 तत्रैव ॥ अष्टवर्षकन्यकाया नोपयुक्तं भवेत्तु यत् । अलङ्कारं न
 दद्याच्च वित्तशायं विवर्जयेत् ॥ हीनोत्तमयोः फलन्तु सर्वोप-
 चाराणां तत्रैव ॥ हीने हीनफलं देवि ! श्रेष्ठे श्रेष्ठफलं लभेत् ॥
 ✓ नैवेद्यशब्दव्युत्पत्तिस्तु कुलार्णवे ॥ चतुर्विधं कुलेशानि द्रव्यं ते
 षड्रसान्वितम् । निवेदनाद्भवेत्तृप्तिर्नैवेद्यं तदुदाहृतम् ॥ प्रपञ्च-
 सारे ॥ सुसितेन सुशुद्धेन पायसेन ससर्पिषा । सितौदनं सक-
 दलीदध्याद्यैश्च निवेदयेत् । इति नैवेद्यम् ॥ ताम्बूलं मत्स्यसूत्रे
 षड्विंशतिपटले ॥ अथ वास्तुगुवाकञ्च कृत्वा पर्णसमन्वितम् ।
 ✓ शङ्खशम्बूकचूर्णेन विलिप्तेन निवेदयेत् । तथा । कर्पूरवासितं
 देवि ! मृगदर्पसमन्वितम् । धन्याकमधुरीकाद्यैः साधितन्तु
 निवेदयेत् । एलाचम्पकमुस्ताद्यैर्मुखवासः प्रशस्यते ॥ निषिद्ध-
 चूर्णपर्णे अपि तत्रैव ॥ कपर्दकस्य वृक्षस्य पलाशस्य च शङ्करि ! ।
 तच्चूर्णं वर्जयेद्देवि ! वृक्षपर्णं न दापयेत् । कलिवृक्षस्थितं पर्णं

यनसस्यं न दापयेत् । अशोकशाल्मलिस्थं वा सदैव परिवर्ज-
येत् ॥ कलिवृक्षो भूतावासः गौडे वयडा इति यस्य प्रसिद्धिः ।
शस्त्रमपि तत्रैव ॥ आम्बनिम्बगतञ्चैव शस्त्रं पर्णं मम प्रिये ! ।
इति ताम्बूलम् ॥ ततः प्राणायामादिकं कृत्वा अष्टोत्तरसहस्रं
शतं वा मूलमन्त्रं जप्त्वा जपं समर्थं स्तवकवचादिकं पठित्वा
प्रणमेत् ॥ तदुक्तं गन्धर्वतन्त्रे पञ्चदशपटले ॥ स्तुवन्नानाविधैः
स्तोत्रैर्भक्तिभावसमन्वितः । प्रणमेत् परमेशानीं विधिना साधको-
त्तमः । देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । नमस्कारेण तुथन्ति
महात्मानः समन्ततः । नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महोदयम् ।
सर्वत्र सर्वसिद्धार्थं नतिरेका प्रवर्त्तते । नत्या विजयते लोकान्
नत्या धर्मः प्रवर्त्तते । नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजाः ।
चतुर्वर्गं लभेद्भक्तो न चिरादेव साधकः । नमस्कारो महायज्ञः
प्रीतिदः सर्वतः सदा । नमस्कुरु महादेवीं प्रदक्षिणञ्च भक्तितः ॥
योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डेऽष्टमपटले ॥ प्रदक्षिणत्रयं कुर्यात् पद्मा-
कारं नमेत्ततः । दक्षिणादुत्तरं गत्वा देवस्य च महेश्वरि ! ॥
प्रदक्षिणत्रयमित्यादि मध्यावसाने ज्ञेयम् । तथा च कुमारी-
पूजामधिल्लव्य रुद्रजामले उत्तरखण्डे षष्ठपटले ॥ प्रदक्षिणत्रयं
कुर्यादादौ मध्ये तथान्ततः । पश्चात्तु दक्षिणां कुर्याद्रजतैः
स्वर्णमौक्तिकैः । कृताञ्जलिं ततो बद्धा भ्रामयित्वा नमेत्ततः ।
प्रत्येकभ्रमणे देवि ! दण्डवत् प्रणिपातयेत् । यो नो नमेद्भूमित्वा
तु अपराधो भवेत्तदा । अबद्धाञ्जलिना यस्तु नमस्कारं करोति
सः । मोहान्धकारनरके पचते नात्र संशयः । पातान्तरे च
प्रणमेन्मूर्ध्ना न च क्षितिं स्पृशेत् । शपन्ति देवतास्तस्य विफलं
तत् प्रकीर्तितम् । प्रणामे देवदेवस्य यावत्यो मृत्तिकाः प्रिये ! ।
शरीरे वा महेशानि ! तस्य पुण्यफलं शृणु । यावन्तो रण-
वस्तस्य यावत्कालञ्च तिष्ठति । तावद्दर्पसहस्राणि ब्रह्मलोके

महीयते ॥ गन्धर्वतन्त्रे ॥ कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः
 स्मृतः । नमस्काराश्च विज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः । कायिकैस्तु
 नमस्कारैर्देवास्तुथन्ति सर्वदा । नमस्कारेषु सर्वेषु कायिकः
 प्रथमः स्मृतः । जानुभ्यामवनीं गत्वा संसृष्ट शिरसा क्षितिम् ।
 क्रियते यो नमस्कारः प्रोच्यते कायिकस्तु सः । पुटीकृत्य करौ
 शीर्षे सर्वधर्मार्थसाधनम् । प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः
 पुनः । दर्शयन् दक्षिणं पार्श्वं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । सकृत्
 प्रदक्षिणं कृत्वा वर्तुलाकृति साधकः । स तु प्रदक्षिणो ज्ञेयः
 सर्वदेवैकतुष्टिदः । अष्टोत्तरशतं यस्तु देव्याः कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
 स सर्वकाममासाद्य पञ्चान्मोक्षमवाप्नुयात् । त्रिकोणमथ षट्-
 कोणमर्द्धचन्द्रं प्रदक्षिणम् । दण्डमष्टाङ्गमुग्रञ्च सप्तधा नति-
 लक्षणम् । दक्षिणाद्वायवीं गत्वा तस्माद्ग्राह्य दक्षिणम् । गत्वा
 योऽसौ नमस्कारः सोऽर्द्धचन्द्रो मम प्रियः । नमस्कारेषु जानी-
 यादासां प्राकृतमद्रिजि ! । त्यक्त्वा स्वमासनं स्थानं पश्चाद्गत्वा नम-
 स्कृतः । निपत्य दण्डवद्भूमौ दण्ड इत्युच्यते बुधैः । तथैव दण्ड-
 वङ्गमौ निपत्य हृदयेन च । चिवुकेन मुखेनाथ नासया हनुकेन
 च । चक्षुषा चाथ कर्णाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रेण चैव हि । तदष्टाङ्ग-
 मिति प्रोक्तं यङ्गुलिं स्पृशते क्रमात् ॥ मेरुतन्त्रे ॥ हस्ताभ्यां
 चरणाभ्याञ्च जानुभ्यां वक्षसा तथा । मूर्ध्ना दृष्ट्या तथा वाचा
 चित्ते चाष्टाङ्ग ईरितः । हस्तजानुशिरोवाक्बधीभिः पञ्चाङ्ग
 ईरितः ॥ गन्धर्वतन्त्रे ॥ ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः क्षितेर्यस्या नम-
 स्कृतेः । स उग्र इति विज्ञेयो विष्णोस्तुष्टिप्रदायकः । या स्वयं
 गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्कृतिः । क्रियते भक्तियुक्तेन वाचि-
 कस्तुत्तमः स्मृतः । पौराणिकैर्वैदिकैर्वा तान्त्रिकैः क्रियते नतिः ।
 स मध्यमो नमस्कारो भवेदाचारतः सदा । परेषां गद्यपद्याभ्यां
 नमस्कारो यदा भवेत् । स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु

सर्वतः । इष्टमध्यानिष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविधं भवेत् । नमनं मानसं
प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् । त्रिविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः
स्मृतः ॥ ततो देवतां विस्तृत्य नैवेद्यावशेषेण तत्तत्कल्पोक्तां देवतां
सम्पूज्य स्थानमार्ज्जनादिकं कुर्यात् ॥

अथ निर्मात्यकालनिरूपणम् योगिनीतन्त्रे तृतीयभागे
सप्तमपटलीयवचनन्तु तन्त्रसारकारणैव धृतं न त्वत्त प्रयोजनम् ।
मत्स्यसूक्ते षोडशपटले ॥ मणिमुक्ताप्रवालानि देवदत्तानि यानि
च । न निर्मात्यं द्वादशाब्दं तैजसानि तथैव च । तूलिका चैव
षण्मासमविजं पञ्चवत्सरम् । पटनिर्माणकश्चैव कार्पासं वस्त्र-
मेव च । वत्सरञ्च तदर्धञ्च ऋदुवस्त्रं तदर्धकम् । नैवेद्यं दर्शनादेव
महापूजावसानके । यावदुष्णं भवेदन्नं यज्ञसूत्रं ततः स्मृतम् ।
सोदकं कशेरुश्चैव यामार्ज्ज्वनं महेश्वरि ! । करवोरस्रजो देवि !
तथा पद्मोत्पलानि च । यामार्ज्ज्वनं महेशानि ! तथा विष्णु-
मयस्य च । मस्तकं रुधिरश्चैव अहोरात्रेण सुन्दरि ! तुलसी द्वे
मालती द्वे तमालामलकौ तथा । पुन्नागमुनिपुष्पञ्च मल्लिका
त्रिविधानि च । जाती द्वे केतकी द्वे च कुसुमे पद्मकद्वयम् ।
वासुदेवाय यो दद्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥ अथ देवतासम्प्रदा-
नकविहितनिषिद्धद्रव्याणि ॥ बृहन्नीलतन्त्रे षष्ठपटले ॥ सन्देशं
परमं दद्याद्देव्यै द्रव्येण संयुतम् । गुडं क्षीरं मधु द्राक्षाभिस्तुदण्डं
पुरातनम् । रश्माफलं वीजपूरं तथा च नारिकेलकम् । मधु-
युक्तं नारिकेलशस्यं दद्यान्महेश्वरि ! । मधुयुक्तं मिष्टयुक्तं व्यव-
हारोऽपि च तथा ॥ योगिनीतन्त्रोत्तरखण्डीयाष्टमपटले ॥
ब्रह्मदीपलविल्लानि वदरामलकानि च । खर्जूरं पनसश्चैव
मातुलुङ्गं मधूनि च । आम्रातोडुम्बरश्चैव तथा तालफलानि च ।
दाडिमं कदलश्चैव प्रयत्नेन नियोजयेत् । लकुचं मधुकं युक्तं तथा
पूगफलानि च । वीजपूरञ्च मधुरं कर्कभूञ्च निवेदयेत् । मूल-

कस्य च शाकञ्च अन्यञ्च विविधं तथा । सर्पपस्य च शाकञ्च
 राजीवस्य तथैव च । यस्य मूलं विशालञ्च शाकं तस्य प्ररोह-
 कम् । वास्तुकस्य शाकञ्च पालङ्कस्य मम प्रिये ! । देयानि
 वर्जनीयानि तथा च तिन्त्रिङ्गीफलम् । कुष्माण्डं पर्वतीयञ्च
 यथा चारण्यसम्भवम् । कदलं वीजपूरञ्च वामकं पीण्ड्रकं तथा ।
 अकालपनसञ्चैव तथान्यदपि वर्जयेत् ॥ इति विहितनिषिद्ध-
 फलकथनम् । त्रीहीणाञ्च प्रवक्ष्यामि उपयोग्यानि शङ्करि ! ।
 एकचित्तं समाधाय प्रापणं शृणु शङ्करि ! । सोमधान्यं बृह-
 द्धान्यं रक्तशालिकमेव च । महद्धान्यं, यवञ्चैव तिलमाषञ्च
 मुद्गकम् । कलायं वर्तुलञ्चैव सिद्धार्थं कुङ्कुमानि च । लुद्र-
 जीरञ्च मधुरीमेतान्यपि नियोजयेत् ॥ वर्ज्यशस्यान्यपि
 तत्रैव ॥ कालशाकं कलायञ्च जीवकीयं तथैव च । चणकं
 कोद्रवञ्चैव वर्जयेन्मम सुन्दरि ! ॥ अत्र कलायं त्रिकोणम्
 चिपिटं वा । वर्तुलस्य विहितत्वात्तेनातसीमसूरादीनि वर्जये-
 दित्यर्थः ॥ क्षीरञ्च क्षणाक्षीरञ्च लवणं मृत्तिकोद्भवम् । लवणं
 प्राचीसम्भूतं तथोत्तरसमुद्भवम् ॥ क्षीरं क्षणगव्यादिक्षीरम् ॥ पशु-
 नाञ्च प्रवक्ष्यामि वन्यानां ग्रामवासिनाम् । येन चाप्युपयोज्यानि
 गर्व्यं देवि ! पयो घृतम् । मार्गं मांसं तथा क्वागं शालभं शाशक-
 न्तथा । एतैस्तु प्रापणं दद्याद्विष्णोश्चैव प्रियावहम् । माहिषं
 वर्जयेन्मांसं क्षीरं दधि घृतं ततः । पक्षिणाञ्च प्रवक्ष्यामि ये
 प्रयोज्या मम प्रिये । यांश्चैव विष्णुयागेषु उपयुञ्जन्ति नित्यशः ।
 हरितञ्च मयूरञ्च लावकं वर्तकं तथा । कपिलञ्चैव चासञ्च काक-
 कुक्कुटकी शिरः । वन्यकुक्कुटकञ्चैव शरारिञ्च कपोतकम् ।
 वैल्लकः कुलिकञ्चैव रक्तपुच्छञ्च टिट्ठिभः । क्षणा मत्स्याशिनाञ्चैव
 पतन्त्रीणां विशिष्यते । अभक्ष्यञ्चैव मांसञ्च यदा पञ्चनखस्य च ।
 यदा यदिवार्ये । मांसमभक्ष्यं यदि वा भक्ष्यं तदा पञ्चनखस्य

चकारादेश्च इत्यन्वयः ॥ चित्रमत्स्यं रोहितञ्च पाठीनं नलमीन-
कम् । महाशालञ्च शालञ्च राजीवं सिंहतुण्डकम् । मत्स्या-
न्येतानि देयानि वडालीञ्च विवर्जयेत् । चित्रमत्स्यश्चित्तल इति ।
नलमीनश्चिड्डीति प्रसिद्धः । सिंहतुण्डः रिठा इति प्रसिद्धः ।
वडाली भेदा इति प्रसिद्धः ॥ जानपादांश्च शकुनान् सुद्रवारा-
हकं तथा । कौसुम्भशकपिन्नाकं रक्तपादांश्च वर्जयेत् । खर्जूरं
पनसं द्राक्षां मातुलङ्गञ्च शीरकम् । कदलीं नागरङ्गञ्च तथा
जम्बूफलानि च । शालुकं मधुकञ्चैव प्रयत्नेन निवेदयेत् ।
कदलं वीजपूरञ्च दुग्धपक्कं निवेदयेत् । कन्दुपक्कं कशेरुञ्च
जम्बूं बालप्रियं भवेत् । आर्द्रकं लवणञ्चैव जीरकं पिप्पलीय-
कम् । जातीकोषं तिन्दुकञ्च देव्याः प्रियतरं भवेत् । वर्ज-
नीयफलमाह तत्रैव ॥ रामरन्भाफलं पक्कं कदलं धूम्रतापितम् ।
न योजयेन्महादेव्यै उत्पलस्य च वीजकम् । धान्यं आवणिकं
मत्स्यं द्विःस्त्रिञ्च विवर्जयेत् । नारिकेलं सुवर्णाभं नारिकेलञ्च
रामकम् । निवेदयेन्महादेव्यै तोयं तस्य विशेषतः । नारिके-
लञ्च भाण्डीरं दैवे आद्रे विवर्जयेत् । वकुलस्य फलं पक्कं पद्मस्य
च फलं तथा । नियोजयेन्महादेव्यै चान्द्रायणफलं लभेत् ॥
निषिद्धमाह तत्रैव ॥ कर्कन्धू शर्करायुक्तं दण्डशाकं तथैव च ।
कुष्माण्डं पर्वतीयञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ मत्स्यसूक्तं षड्विंशति-
पटले ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मांसभेदान्निबोध मे । न देयं
तिक्तकमठं पशुशृङ्गिणमेव च । गोमीनं चक्रशकुलं वडालं
राघवं तथा । वामीनं चनवर्णञ्च सचक्रं चेङ्गमेव च । भूविलं
चानिरुद्धञ्च गाङ्गेयानि विवर्जयेत् । आतोषिणीहिरण्यानि चक्र-
विम्बानि वर्जयेत् । अजञ्च बृहदाजञ्च पर्वतीयं तथैव च । भेषञ्च
द्विविधञ्चैव एणं चैव चतुर्विधम् । अकलौ तु गवां मांसं गोधा-
मांसञ्च शाशकम् । लुलापञ्चैव नेपाले वाराहं वारारूपके ।

खड्गं चतुर्मुखं भक्ष्यं चाहारे परमेश्वरि ! । गवयं गन्धमृगञ्चैव
 महिषन्तु विशिष्यते । सर्वत्र क्षुद्रवाराहं नीलहयं तथैव च ।
 मलयैः सगुणैः चैव तथा जालन्धरेषु च । अभक्ष्यं मत्स्यमांसञ्च
 वडालं सर्वपीठके । अत्र देशविशेषे मत्स्यमांसभोजननिषेधाद्
 देशान्तरे गौडनेपालादौ मत्स्यमांसभोजनमनुमतं भवति । वडाली
 तु अभक्ष्या सर्वदेश इत्यर्थः ॥ सान्त्विको वर्ज्येन्नित्यं पार्वतं
 मृङ्गवेरकम् । कुष्माण्डं पर्वतीयञ्च स्वर्णरोहितकं त्यजेत् ।
 स्वर्णाभां गोधिकाञ्चैव वाराहं श्वेतमेव च । चक्राङ्कितञ्च कमठं
 राजहंसं न भक्षयेत् । आभ्यं जलचरं चैव भक्ष्यं तस्य विवर्ज्य-
 येत् । कपोतं कुक्कुटं चैव मयूरं क्रीञ्चमेव च । वह्निनं वभु-
 बालञ्च दाल्यूहं कोकिलं तथा । गृध्रोलूकञ्च कङ्कञ्च विस्ता-
 राक्षं न भक्षयेत् । अलावुं वार्ताकुं चैव तित्तिरञ्च मयं तथा ।
 भारद्वाजं मत्स्यचक्रं दशवतारमेव । अकामेन द्विजो भुक्त्वा
 प्राणायामेन शुध्यति । तिरावावस्थितं मांसं तत्सर्वं परिवर्ज्य-
 येत् । मुक्तस्य पर्वतीयस्य सिंहतुण्डस्य पार्वति ! । न हि स्वेदा-
 तपे शुद्धं वह्निशुद्धं तथैव च । संस्कृतं गन्धपुक्तेन पल्लवं परमे-
 श्वरि ! । तन्मांसमक्षणाद्देवि ! भूयश्च तत्र विद्यते । यो मांसं
 वर्ज्येद्देवि ! मांसमात्रं विशेषतः । सर्वयज्ञफलं सम्यक् लभते
 नात्र संशयः । संवत्सरे दशगुणं षण्मासे च चतुर्गुणम् । पर्व-
 काले त्वशके तु पितृमेधफलं लभेत् । विष्णोः शयनकाले च
 चातुर्मास्ये च यत्नतः । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य लभते फलमुत्त-
 मम् । अशक्तः कार्तिके देवि ! मत्स्यमांसौ विवर्ज्येत् । का-
 र्तिके शौकरं मांसं गोमीनं मत्स्यमेव च । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन
 कार्तिके परिवर्ज्येत् । भक्षयेत्प्रावक्तं वत्तं हरिश्चिचकरं तथा ।
 चासं चित्रकपोतञ्च तृणाक्षञ्च मयूरकम् । कामञ्च कलभञ्चैव
 त्रोलिकालकमेव । एतान्येव च भक्ष्याणि प्रवदन्ति मनोषिणः ॥

निषिद्धमपि तत्रैव ॥ भृङ्गराजद्वयञ्चैव पिकं कदलमेव च ।
 सारङ्गं दीर्घतुण्डञ्च दीर्घग्रीवं हिरण्मयम् । नत्तञ्चलं रक्तकण्ठं
 रक्तपक्षिणमेव च । चिल्लं कीलालकञ्चैव गङ्गाचिल्लकमेव च ।
 एतान्येव द्विजातीनामभक्ष्याणीति शब्दितम् । रक्तपुच्छं तथारण्यं
 कुक्कुटं शोणतुण्डकम् । श्वेतग्रीवो नीलकण्ठो रक्तकण्ठस्तथैव
 च । शशकः पत्रवाहश्च पीङ्गको जीवकस्तथा । एतानि शस्त-
 मांसानि काले प्राप्तानि भक्षयेत् ॥ अभक्ष्यमांसमाह तत्रैव ॥
 नरवानरऋक्षाश्च व्याघ्रमार्जारकच्छपान् । विड्वराहञ्च शरलं
 हयमांसं तथैव च । न भक्षयेत् शुनो मांसं भुक्त्वा चान्द्रायण-
 चरेत् । सकामो गवयञ्चैव गवां मांसं तथैव च । हस्तिमांसं
 प्रमादेन भुक्त्वा चान्द्रायणद्वयम् । शूकरस्य च खड्गस्य स्थूलमांसं
 तथाशयम् । स्थूलं द्वाभ्यां त्रिभिर्वर्षेभ्यस्तुभिः षड्भिरेव च । अति-
 स्थूलमिति प्रोक्तं तन्न भवेत् कदाचन । एणस्य शशकस्यैव अजस्य
 वृषभस्य च । तथाश्वस्य मृगस्यैव वराहमहिषस्य च । अति-
 स्थूलानि मांसानि भक्ष्यं मांसं कलौ युगे । अकलौ तु गवां मांसं
 देशाचारेण शौकरम् । न भक्षयेन्मृतं मांसं द्विविधं मूषिकस्य
 च । मेकस्य क्षुद्राटकस्य शम्बूककर्कटस्य च । अकामेन हिजो
 भुक्त्वा प्राणायामेन शुध्यति । अनुक्तमस्यमांसस्य भोक्ता स्नानेन
 शुध्यति । गोमांसं मांसकामेन भुक्त्वा चान्द्रायणचरेत् । फेर-
 वस्य तथा भुक्त्वा ऋषिचान्द्रायणचरेत् । पूतिगन्धसक्रीटानि
 भुक्त्वा चान्द्रायणचरेत् । रौद्रशृङ्गाणि भुक्त्वा वै प्राणायामेन
 शुध्यति । त्रिरात्रावस्थितं मांसं तत्सर्वं परिवर्जयेत् । शल्लस्य
 पर्वतीयस्य सिंहतुण्डस्य पार्वतिः । न दुष्येदातपे शुद्धं वज्रि-
 शुद्धं तथैव च । संस्नातं गन्धपुक्तेन यन्नवं परमेश्वरि ! । तन्मांस-
 भक्षणाद्देवि ! प्रायश्चित्तं न विद्यते । अत्र भक्षणनिषेधादनि-
 वेद्य भक्षणदोषदर्शनेन सुतरां देवतासम्प्रदानकत्वम् । मांसत्याग-

फलमपि तद्वैव ॥ तुलामकरमेषेषु यो मांसं परिवर्ज्येत् । हय-
 मेधस्य यज्ञस्य तदेव फलमाप्नुयात् । यावज्जीवं त्यजेद्वापि राज-
 स्यफलं लभेत् । एकस्य वर्जनाद्देवि ! मत्स्यमांसस्य वर्जनम् ।
 गृहमेधी महेशानि ! पितृश्राद्धं विना त्यजेत् । प्रमादाद्वा तथा-
 ज्ञानात् सङ्कल्पं वा समाचरेत् । चान्द्रायणं ततः कृत्वा पौर्ण-
 मास्यां समाचरेत् । पितृश्राद्धं ततः कृत्वा कृत्वा यस्तु निरा-
 मिषम् । सत्यत्वं वर्जयेद्वापि पितृहत्याव्रतचरेत् । सर्वव्रताधि-
 कतरं सर्वयज्ञाधिकं परम् । पितृमेधं महेशानि ! सर्वस्वेनापि
 कारयेत् । तस्याधिकतरं वापि स्वभार्यार्त्तवलङ्घने । षोडशे
 दिवसे पूर्णं भर्ता प्रोषित आगतः । हरिवासरकञ्चान्यमथवा
 श्राद्धवासरम् । ऋतुं न लङ्घयेत्तत्र तदेव व्रतमेव हि । ऋतुहा
 परमेशानि ! ब्रह्महत्याव्रतचरेत् । व्रते विनष्टे देवेशि ! प्राय-
 श्चित्तं भवेदनु । तस्मात् पुण्यतमं ज्ञेयं स्वभार्यापरितोषणम् ॥
 अथ हविस्थादौ भक्ष्याभक्ष्यविधिः ॥ विश्वसारे द्वितीयपटले ॥
 अथ भक्ष्यं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ! । अन्नं दुग्धं तथा
 तक्रं पायसं पूषस्पकम् । नवनीतं फलान्येव गुडपायससंयुतम् ।
 सर्वाणि फलपुष्पाणि विविधानि विधानवित् । न मूलं गृह्णन्
 लक्ष्म मसूरं लसुनं तथा । जम्बीरं लकुचं कांस्यमलावुञ्चान्त-
 मेव च । राजमाषं तथा माषं शाकञ्चैव पलाण्डुकम् । आमिषं
 रक्तशाकादीन् ताम्बूलञ्चाथ तैलकम् । तालखर्जूरमुषितं दुग्ध-
 वुष्टादिकञ्च यत् । कुचेलञ्च तथा तैलं माध्वीञ्च नखलोमकान् ।
 अभ्यङ्गमसदालापं हविस्थाशी विवर्जयेत् । हरिष्येषु सुधा
 मुख्या तदनु ब्रीहयो मताः । अक्षारलवणञ्चैव शङ्करस्य मतेन
 च । यवगोधूममुद्गाञ्च दुग्धं शर्करासंयुतम् । फलमूलादिकं
 हृद्यमक्षारलवणं वृत्तम् । रक्तवस्त्रं तथा क्षीरं हविष्येषु विव-
 र्जयेत् ॥ शारदायां द्वितीयपटले ॥ भैक्ष्यं हविष्यं शाकानि

विहितानि फलं पयः । मूलं शक्त्युद्योत्यन्नो भक्ष्याख्येतानि
 भन्विणाम् । भैक्ष्यमिति ब्रह्मचारियतिपरम् । भिक्षास्वरूपमुक्तं
 राघवभट्टतवचने ॥ वैदिकाचारयुक्तानां शुचीनां श्रीमतां गृहे ।
 सत्कुलस्थानजातानां भिक्षा स्यादग्रजन्मनाम् । हविष्यमुक्तं
 स्मृतौ ॥ हैमन्तिकं सितास्त्रिन्नं धान्यं मुक्तास्तिला यवाः । कला-
 यकङ्गुनीवारा वास्तूकं हिलमोचिका । पष्टिका कालशाकञ्च
 मूलकं केमुकेतरत् । कन्दं सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिणी ।
 पयोऽनुद्धृतसारञ्च पनसाम्नी हरीतकी । तिलिङ्गीजीरकञ्चैव
 नागरङ्गञ्च पिप्पली । कदली लवली धात्रीफलान्यगुरुमैक्षवम् ।
 अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते । फलं पयो मूलं विहित-
 मित्यनुषज्यते ॥ अथामह्यं मत्स्ययुक्ते ॥ नारिकेलोदकं कांश्ये
 अजाक्षीरञ्च काचके । पाषाणे महिषीक्षीरममह्यं परिकीर्त्ति-
 तम् ॥ पञ्चदशपटले ॥ वराहपूजको यस्तु कोलं कूर्मं न भक्षयेत् ।
 ब्रह्माणं पूजयेद् यस्तु माहिषं चामरं चरुम् । गणेशयाजी
 मधुकं पनसं कोरदूषणम् । आदित्यभक्तो देवेशि ! मयूरं कुण्ड-
 साहकम् । शिवयाजी तिलपिष्टं चिञ्चाञ्च चक्रपूजकः । तथा च
 मदगुरं मत्स्यं शक्तिचिञ्चां वडालकम् । कुसुमशकं देवेशि !
 लशुनं शुङ्गिणं तथा । त्रैपुरे तु निम्बतिक्तं त्वरितार्थी तथास्त्र-
 कम् । गोपालार्थी तु पालङ्कमाममह्यं न भक्षयेत् । पारावतं
 वामनार्थी चक्रशकं वडालकम् । निम्बं सारस्वतैर्वर्ज्यं लक्ष्मार्थी
 च करञ्जकम् । कालान्नं कोद्रवञ्चैव चन्द्रमह्यं तथैव च ।
 सर्वमन्त्रे वडालञ्च सर्वयज्ञेषु शङ्करि ! । श्वेतपूतीञ्च वार्त्ताकीं
 कुष्माण्डं पर्वतीयकम् ॥ चिञ्चाञ्चैव परान्नञ्च यत्नेन परिवर्जयेत् ।
 वैष्णवैः पत्रशाकञ्च मूलं कन्दं प्ररोहकम् । शुष्कं राजीव-
 वास्तूकं पालङ्गीञ्च तथैव च । यदा सङ्कल्पपूर्वेण यस्त्यजैश्चैवः
 क्वचित् । तथापि न त्यजेद्देवि ! प्रायश्चित्तं समाचरेत् । सौर-

व्रते घृतं वर्ज्यं ताम्बूलं वैष्णवेषु च । गन्धत्यागी महापापी
 मधुत्यागी श्रियं हरेत् । सप्तविंशतिपटले ॥ जम्बूखर्जूर-
 दाडिम्बनारिकेलञ्च पूगकम् । जलविम्बा त्रपूषा तु उर्वारं
 पीनकन्तथा । वदरीलवलीधात्रीपनसाम्बहरीतकी । शालूकं
 पद्मपण्डञ्च कशेरु करमर्दकम् । नागरङ्गञ्च मधुकं मधुरं तेन्दु-
 कानि च । आनाडञ्चैव कुष्माण्डं वासन्त्याः फलमेव च ।
 तिलकान्नं कलायञ्च माषञ्च राजमाषकम् । तण्डुलं यवधान्यञ्च
 नीवारं कुङ्कुमं तथा । जीरकञ्च लवङ्गञ्च धन्याकं जातिकोष-
 कम् । एलकञ्चैव कर्पूरं चन्दनागुरुमुस्तकम् । सरलं देवदा-
 रुञ्च कृष्णभस्मातकानि च । शृङ्गवेरः कटुद्रव्यं मरिचं लवणं
 कणा । फलं यच्च शिवायाश्च स्वच्चास्त्रं पनसस्य च । कृष्णकोषं
 अश्विपर्णं स्वर्गादेवाङ्गुराणि च । द्राक्षाञ्च वज्रुलं कच्चीफलञ्चैव च
 खण्डितम् । एतान्याचमनीयानि सुरभिः पाचकान्यपि । तथा ।
 पर्वतीयं तथा वर्तुं तथा कैतवजानि च । लक्ष्मीलकुचकञ्चैव
 तिलकं क्षुद्रतिलकम् । हिन्तालं पनसाम्बञ्च पीवरं बज्जगीर-
 कम् । बृहच्छोटा च वदरी पर्वतीयं विवर्जयेत् । क्षुद्र उर्वा-
 रुकञ्चैव जीवन्त्याः क्षुद्रमेव च । मधुकं मधुरीं द्राक्षां कलायं
 यन्न वर्तुलम् । श्वेतमुद्गं तथा कृष्णं फलं तस्य विवर्जयेत् । नारि-
 केलफलञ्चैव स्वर्णाभं नागरङ्गकम् । नारिकेलञ्च स्वर्णाभं दुग्ध-
 शयं तथैव च । सोमधान्यं नीवारञ्च कलम्बं षष्टिकानि
 च । बृहद्धान्यं क्षुद्रधान्यं वाल्कलिकमुपासुकम् । एतानि व्रीहि-
 मुख्यानि हविष्याख्येव भोजने । मौक्तिकं रक्तशाकञ्च उत्तमीधैः
 प्रचक्ष्यते । इक्षुञ्च श्वेतवपुषं तथा मृगफलानि च । मद्यकुम्भ-
 प्ररोपञ्च जम्बान्नं तटसम्भवम् । तथा आवणिकं देवि ! हवि-
 ष्यान्ने विवर्जयेत् । व्रतेषु आमिषं देवि ! ताम्बूलं पर्णचूर्णके ।
 निरामिषं चातुरे च आमिषं लक्षुचानि च । अभक्ष्यं वर्तुलं

तस्य हस्तभग्नस्तथैव । वार्त्ताकुं श्वेतरक्तञ्च श्वेतपूतिकमेव च ।
 व्रते तु वर्जयेद्देवि ! फलाहारविधिं शृणु । नमस्कारं फलाहारं
 सगन्धं वा विशिष्यते । त्रिभागपूरणं कृत्वा जलाहारं कलौ
 त्यजेत् । फलाहारं महेशानि ! गृहस्थानां कलौ युगे ।
 शतं तिलं तदङ्गं वा, तिलाहारे महेश्वरि ! । क्षीराहारे च चणकं
 पञ्चगव्ये फलं भवेत् । आज्याहारे तु तोलैकं हविष्यस्य विधिं
 शृणु । पक्कमन्नं स्वयं वाय भाव्यया सोदरेण तु । मातापितु-
 र्गुरोर्वापि न भुक्त्वा यदि वा पचेत् । लघ्वाहारो जितक्रोधो
 हविष्यव्रतभोजने । तथा । वेत्ताङ्कुरं तथा सुस्तां सैन्यवं सिन्धुसम्भ-
 वम् । तथा पर्वतसम्भूतं हविर्द्रव्यादि कीर्तितम् । विष्णुमल-
 तिलस्यैव वदर्याः पत्रमेव च । हविष्यभोजने प्राप्ते हविष्यान्नं
 प्रचक्षते । सुन्दार्यपात्रे पत्रे वा पलाशस्य च पत्रके । कदल्याश्च
 त्वचे पत्रे हविष्यव्रतभोजने । सौरव्रते कटुद्रव्यं शैवे चान्नं विव-
 र्जयेत् । वैष्णवे कोरदूषञ्च शाक्ते शालिं विवर्जयेत् । पूगं सर्वव्रते
 त्याज्यं आरनालकमेव च । न भक्षयेत्क्षीहृच्छिन्नं हस्तभग्नं न भक्ष-
 येत् । कलिकासु स्थितं द्रव्यं तथा पनसपत्रके ॥ विख्यातस्त्रीय-
 कीर्त्याऽजनि जगति दयारामविश्वासनामा धर्मात्मा तस्य सन्तुः
 सकलगुणयुतो रामहर्षाख्य एव । जातौ तस्यात्मजौ श्रीसुकृति-
 युतजगन्मोहनप्राणकृष्णौ ज्येष्ठः श्रीप्राणकृष्णो गुणिगणकुसुदश्रे-
 णिपूष्णैर्षधीशः ॥ तदादिष्टः शिष्टविद्वन्मनःसन्तुष्टिकारिणीम् ।
 श्रीप्राणतोषिणीं वल्लीं निर्ममे रामतोषणः ॥ आदेष्टुसत्वरतया
 गुरुताभिः च ग्रन्थस्य सर्वरचनं न समाचक्षते । धीराः ! कृता-
 क्लृप्तिरहं विनिवेदयामि युष्माभिरेव सकलन्तु विचरणीयम् ॥

इति श्रीप्राणकृष्णविश्वासानुमतायां श्रीरामतोषण-

विद्यालङ्कारभट्टाचार्यविरचितयां श्रीप्राण-

तोषिण्यां तृतीयमर्थकाण्डाङ्गं समाप्तम् ॥

नित्यानन्दमयी नितान्तनिपुणा भक्तेष्टसिद्धैर्निराकारा नूतन-
 नूतनोत्तिष्ठितकृत् प्रज्ञास्वरूपा कवेः । शब्दार्थोभयरूपिणी
 शतसुधांशूद्गीमशीचिः सदा ध्याता चेतसि मे चकास्तु रुचिरा वा-
 गीश्वरी निर्मला ॥ श्रीयुक्तः प्राणकृष्णो गुरुचरणसरोजातसंलीन-
 चेता दाता ख्यातः प्रमाता सुविहितकृतिको ब्रह्मसंस्थापकः
 स्तात् । भोगाढ्यो दीर्घजीवी यदनुमतिवशादुन्नतेयं विपश्चिद्वृन्दं
 श्रीप्राणतोषिण्यतिमृदुललता ह्लादयत्वद्विकाण्डैः । आदङ्ग-
 त्यन्तशीघ्रत्वहेतुना दोषराशयः । अत्र जाता बुधैः शोद्धा इति
 भूयो निवेदनम् ॥ काम्यकाण्डस्य निर्घण्ट आदौ चैतन्यमेव च ।
 सर्वसामेव विद्यानां मन्त्रार्थस्तदनन्तरम् । कुक्कुका च तथा सेतु-
 र्महासेतुस्ततः परम् । निर्वाणं मुखशुद्धिश्च प्राणयोगस्ततः परम् ।
 दीपनीसूतकोन्मुक्तिजपक्रमनिरूपणम् । कुक्कुकादेस्तथा स्थानं
 पुरश्चर्या ततः परम् । वारमासपुरश्चर्यारहस्यादिपुरस्क्रिया ।
 ग्रहकालपुरश्चर्या तत्र सङ्कल्पवारणम् । मालाप्रकरणमिति
 प्रथमच्छेद उच्यते ॥ १ ॥ साधनस्थाननिर्णीतिमहापौठनिरू-
 पणम् । महापौठानि पौठानि तथैव पौठदेवताः । पूजाकाल-
 स्तद्विशेषस्तथा देवार्चनाविधिः । एकाह्यादिक्रमाद्वाघे कर्तव्य-
 निर्णयस्ततः । प्रायश्चित्तमितिच्छेदद्वितीयस्य समापनम् ॥ २ ॥
 कलसासाखुमार्जारशृगालश्वादिसाधनम् । इष्टसाधनभेदाश्च
 त्रिवाटादेश्च साधनम् । कार्त्तवीर्यप्रयोगस्तत्कवचं तदन-
 न्तरम् । परिच्छेदद्वितीयस्य समापनमतः परम् ॥ ३ ॥ कुक्कु-
 टस्य प्रयोगश्चोच्छिष्टचाण्डालिनी ततः । धूमावती ततः कृत्या
 परिमालात्मिका ततः । जयदुर्गादिरिति वै तुर्यच्छेदसमा-
 पनम् ॥ ४ ॥ दुर्गोत्सवस्य षष्ठ्यादिकल्पतत्कालनिर्णयः । पूजा-
 धारश्च सृग्मय्या निषेधविधिकीर्तनम् । ब्राह्मणादिवर्णभेदे विल्व-
 युग्मस्य निर्णयः । पूर्वादिदिश्यमालूरयुग्मस्य फलकीर्तनम् ।

विल्वयुग्मस्य सृग्मयाश्चात्र दीपश्च्युतौ तथा । तत्प्रायश्चित्त-
 कथनमुखवादिनिरूपणम् । तवान्यकर्मत्यागश्च पूजाकर्म ततः
 परम् । देशभेदे मूर्त्तिभेदो मण्डपन्तु ततः परम् । षष्ठीकृत्यञ्च
 दिक्पालास्त्रन्त्रपूजाविधिरेव च । बलिदानादि च ततो विल्व-
 वृक्षनिमन्त्रणम् । ततश्च सप्तमीकृत्यं कार्तिकादेः प्रपूजनम् ।
 पत्रिकापूजनं स्तोत्रमष्टमीकृत्यमेव च । निशीथकृत्यं नवमीकृ-
 त्यञ्च दशमीक्रिया । परिच्छेदपञ्चमस्य समाप्तिरिति कीर्त्तितम्
 ॥ ५ ॥ दुर्गामन्त्रस्तस्य ऋषिः पुरश्चर्या च यन्त्रकम् । ध्यानं
 स्तुतिस्ततो दुर्गानाममहात्म्यकीर्त्तनम् । दुर्गायाः शतनामाख्य-
 स्तोत्रं गीतावलिस्ततः । होमप्रकरणं तस्य द्रव्यस्य परिमा-
 णकम् । मानाध्याय इदं षष्ठपरिच्छेदसमापनम् ॥ ६ ॥ मास-
 कृत्यं ततः* खञ्जरीटदृष्टिश्च तत्फलम् । कोजागराख्यकृत्यञ्च
 कृत्यं कार्तिकमासिकम् । अग्रहायणकृत्यानि पौषकृत्यं ततः
 परम् । माघकृत्यं फाल्गुनस्य कृत्यानि तदनन्तरम् । वर्षकृत्यं
 हतराज्यराज्याप्तिसाधनं ततः । देवीषोडशयात्रा च मासि-
 मासि यथादितः । वैशाखे मञ्जुयात्रा च प्रथमा परिकीर्त्तिता ।
 ज्यैष्ठे महास्नानयात्रा रथयात्रादिका शुची । श्रावणे जलयात्रा
 च भाद्रे च धूननं तथा । आश्विने च महापूजा कार्तिके दीप-
 यात्रिका । मार्गे नवान्नयात्रा च पौषेऽङ्गरागरूपिणी । मार्घे
 यात्रा रटन्त्याख्या फाल्गुने दोलयात्रिका । दूतीयात्रा रास-
 यात्रा वासन्तीनीलयात्रिका । एताश्चतस्रश्चैत्रे तु षोडशी-
 यात्रिका मता । दिग्दर्शनार्थं सङ्केतान्निर्घण्टो विहितो मया ।
 अन्योन्यपि यथास्थानं वेदितव्यानि पण्डितैः ॥ इदं ग्रन्थिशाखा-
 प्रशाखासुप्तैस्तथा तारकैः सुप्रसूनैः फलैश्च । सदाशां जनानां
 बुधोपासकानां प्रपूर्णां विधाता द्रुतं काम्यकाण्डम् ॥ कालि हृदजे
 शङ्करि ! नित्यम् । राजतु देवाधीश्वरपूज्ये ! । अथ चैतन्यम् ॥

कुजिकायन्त्रे पञ्चमपटले ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ भगवन् ! सर्वदेवेश !
 लोकानां हितकारक ! । चतुर्वर्गप्रदं देव ! चैतन्यं मे प्रकाशय ॥
 शङ्कर उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि, चैतन्यं परमाहुतम् ।
 रहस्यं परमं पुण्यं गोपनीयं त्वया पुनः । चिच्छक्त्या ध्वनितं
 देवि ! परिणामक्रमेण तु । वर्णभावं समाल्यज्य निर्मलं विमला-
 लकम् । षट्चक्रञ्च तथा भित्त्वा शब्दरूपं सनातनम् । नाद-
 विन्दुसमायुक्तं चैतन्यं परिकीर्त्तितम् । अथ वान्यप्रकारेण
 श्रूयतां पद्मलोचने ! । विना येन न सिध्येत्तु जपपूजादि किञ्चन ।
 अनाहतस्य मध्ये तु ग्रथितं वर्णमुत्तमम् । सुषुम्नावर्त्मना देवि !
 कण्ठदेशं विनिर्गतम् । चैतन्यञ्च महेशानि ! योगिनां योग-
 रूपकम् । सहस्रारं वर्णरूपं परिणामक्रमेण तु । कर्णिका-
 मध्यसंस्थे तु नादविन्दुसमन्वितम् । एवं सञ्चिन्तयेद्देवीं चैत-
 न्यञ्च पुनः पुनः । मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ ग्रथितानि महे-
 श्वरि ! । तानि सञ्चिन्तयेद्देवि ! सहस्रारदले तथा । चैतन्य-
 मन्त्ररूपा च चैतन्यानन्ददायिनी । चैतन्यनादशक्तिश्च चैतन्य-
 वर्णरूपकम् । मणिपूरे सदा चिन्त्यं मन्त्राणां प्राणरूपकम् ।
 अथवान्यप्रकारेण श्रूयतां वरवर्णिनि ! । कामबीजं रमाबीजं
 शक्तिबीजं सुरेश्वरि ! । एतानि पूर्वमुच्चार्य मातृकां तदनन्त-
 रम् । पुटितं मूलमन्त्रञ्च शतमष्टोत्तरं जपेत् । कोटिकोटि-
 गुणञ्चैव लभते नात्र संशयः । अथवान्यप्रकारेण चैतन्यं शृणु
 पार्वति ! । येन विज्ञानमात्रेण परमं पश्यति ध्रुवम् । सूर्य-
 मण्डलमध्यस्थं चिन्तयेन्मूलमन्त्रकम् । अष्टोत्तरशतं जाप्यं
 मूलविद्यास्वरूपकम् । गुरुं सञ्चिन्तयेत्तत्र शिवरूपं सनात-
 नम् । शक्तिञ्च चिन्तयेत्तत्र ब्रह्मरूपां सनातनीम् । एवं सञ्चि-
 न्तयेद्यस्तु जपेद्वा सुरसुन्दरि ! । नासाध्यं तस्य लोकेऽस्मिन्
 मुक्तिर्देवि ! करे स्थिता । तथा प्रथमपटले ॥ मन्त्रार्थं मन्त्र-

चैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः । न सिध्यति वरारोहे ! कल्पको-
टिशतैरपि । शतकोटिजपेनापि तस्य विद्या न सिध्यतीति
सरस्वतीतन्त्रे पाठः ॥ कथयामि महामन्त्रं मन्त्रार्थञ्च महेश्वरि ! । येन विज्ञानमात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । केवलं भाव-
बुद्ध्या च मन्त्रार्थं प्राणवल्लभे ! । केवलं ज्ञानयोगिन जीवन्मुक्तो
भवेद्भुवम् । कालीतारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी । भैरवी
स्त्रियमस्ता च विद्या धूमावती प्रिये ! । वगला चैव मातङ्गी
कमला च प्रकीर्तिता । ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैश्चतुर्वेदेन मस्कृता ।
भोगदा मोक्षदा देवि ! कोटिब्रह्माण्डगोपिता । अस्या ग्रहण-
मात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधकः ॥ वरदातन्त्रे षष्ठपटले । शिव
उवाच ॥ मन्त्रार्थं कथयाम्यद्य शृणुष्व परमेश्वरि ! । विना येन
न सिध्येत् साधनैः कोटिशः शिवे ! । आदौ प्रासादबीजस्य
मन्त्रार्थं शृणु पार्वति ! । शिववाची हकारस्तु औकारः स्यात्
सदाशिवः । शून्यं दुःखहरार्थं तु तस्मात्तेन शिवं यजेत् ॥ हौं ॥
द दुर्गावाचकं देवि ! । उकारश्चापि रक्षणे । विश्वमाता नाद-
रूपः कुर्वशी विन्दुरूपकः । तस्मात्तेनैव बीजेन दुर्गामाराधये-
च्छिवे ! ॥ हूं ॥ क काली ब्रह्म र प्रोक्तं महामायायार्थकश्च ईं । विश्व-
मातार्थको नादो विन्दुर्दुःखहरार्थकः । तेनैव कालिकादेवीं
पूजयेद्दुःखशान्तये ॥ क्रीं ॥ हकारः शिववाची स्यात् रेफः
प्रकृतिरुच्यते । महामायायार्थं ईशब्दो नादो विश्वप्रसूः स्मृतः ।
दुःखहरार्थको विन्दुर्भुवनां तेन पूजयेत् ॥ ज्रीं ॥ महालक्ष्मणार्थकः
शः स्याद्वनार्थो रेफ उच्यते । ईस्तुष्ट्यर्थोऽपरो नादो विन्दुर्दुःख-
हरार्थकः । लक्ष्मीदेव्या बीजमेतत्तेन देवीं प्रपूजयेत् ॥ श्रीं ॥
सरस्वत्यर्थं ऐशब्दो विन्दुर्दुःखहरार्थकः । सरस्वत्या बीजमेत-
त्तेन वाणीं प्रपूजयेत् ॥ ऐं ॥ क कामदेव उदिष्टोऽप्यथवा कृष्ण
उच्यते । ल इन्द्र ईं तुष्टिवाची सुखदुःखप्रदञ्च अं । कामबीजार्थं

उक्तस्ते तव स्नेहान्महेश्वरि ! । स्त्रीं ॥ ह शिवः कथितो देवि !
 उ भैरव इहोच्यते । परार्थी नादशब्दस्तु विन्दुर्दुःखहरार्थकः ।
 वर्मवीजतयो ह्यत्र कथितस्तव यत्नतः ॥ इह ॥ गणेशार्थो ग उक्तस्ते
 विन्दुर्दुःखहरार्थकः । गं वीजार्थन्तु कथितं तव स्नेहान्महेश्वरि ! । गं ॥ ग गणेशव्यापकार्यो लकारस्तेज श्री मतः । दुःख-
 हरार्थको विन्दुर्मणेशं तेन पूजयेत् ॥ ग्लौ ॥ क्षणसिंहो ब्रह्म रश्मि
 ऊर्ध्वदन्तार्थकश्च श्री । दुःखहरार्थको विन्दुर्दुःखसिंहं तेन पूजयेत् ।
 क्षौ ॥ नामादिवर्णः सर्वेषां नाम उक्तं स्वयम्भुवा । तेनैवार्थन्तु
 जानीयादर्थलभ्यन्तु चिन्तयेत् । यथायथं विभक्त्यन्तं मन्त्रार्थं
 चिन्तयेच्छिवे ! । तत्तद्वर्णादियोगेन संक्षेपात् कथितं त्वयि ।
 दुर्गात्तारणवाच्यः स तारकार्यस्तकारकः । सुक्त्यर्थो रेफ उक्तोऽत्र
 महामायाार्थकश्च ई । विप्रवमातार्थको नादो विन्दुर्दुःखहरार्थकः ॥
 बधूवीजार्थं उक्तोऽत्र तव स्नेहान्महेश्वरि ! ॥ स्त्रीं ॥ यत्र विन्दु-
 द्वयं मन्त्रे एकं दुःखहरार्थकम् । अन्यत् सुखप्रदं देवि ! ज्ञात्वा
 चार्थं विचिन्तयेत् । यत्र विन्दुद्वयं मन्त्रे अन्यत् पूर्णार्थकं मतम् ।
 स्वाहामातार्थका देवि ! परार्था वां प्रकीर्तिता । शक्रमाता
 वषट् प्रोक्ता हरिप्रियार्थका गिरा । सुरार्था फट् हयग्रीवि वित्रिं
 वीजं विनिर्दिशेत् । ग्रं वीजं वायुवाची स्यात् लमैन्द्रं परि-
 कीर्तितम् । अनेकाक्षरवीजं च स्वस्ववीजं स्वनामकम् । एवं
 ज्ञात्वा महेशानि ! मन्त्रार्थं परिचिन्तयेत् । एकवीजद्वयं यत्र
 पृथगर्थं प्रकल्पयेत् । वीष्मार्थं वा महेशानि ! ज्ञात्वा मन्त्रं
 जपेद्विया । इति ते कथितो देवि ! मन्त्रार्थः परमेश्वरि ! ।
 ईं वीजेनैव पुटितं मूलमन्त्रं जपेद् यदि । तदेव मन्त्रचैतन्यं
 भवत्येव सुनिश्चितम् ॥ सरस्वतीतन्त्रे प्रथमपटले ॥ ईश्वर
 उवाच ॥ मन्त्रार्थं परमेशानि ! सावधानावधारय । मूला-
 धारे मूलविद्यां भावयेदिष्टदेवताम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशां भाव-

येत् परमेश्वरीम् । धारयेदक्षरश्रेणीमिष्टविद्यां सनातनीम् ।
 मुहूर्ताद्विं विभाव्यैतां पञ्चाङ्गानपरो भवेत् । ध्यानं कृत्वा
 महेशानि ! मुहूर्ताद्विं ततः परम् । ततो जीवो महेशानि !
 मनसा कमलेश्वरी । स्वाधिष्ठानं ततो गत्वा भावयेदिष्टदेवताम् ।
 बन्धूकारुणसङ्काशां जवासिन्दूरसन्निभाम् । विभाव्य अक्षरश्रेणीं
 पद्ममध्यगतां पराम् । ततो जीवः प्रसन्नात्मा पक्षिणा सह-
 सुन्दरि ! । मणिपूरं ततो गत्वा भावयेदिष्टदेवताम् । विभाव्य
 अक्षरश्रेणीं पद्ममध्यगतां पराम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशां शिरःपद्मो-
 परिस्थिताम् । ततो जीवो महेशानि ! पक्षिणा सह पार्वति ! ।
 हृत्पद्मं प्रययौ शीघ्रं नीरजायतलोचने । इष्टविद्यां महेशानि !
 भावयेत् कमलोपरि । विभाव्य अक्षरश्रेणीं महामरकत-
 प्रभाम् । ततो जीवो वरारोहे ! विशुद्धं प्रययौ प्रिये ! । हृत्प-
 द्मगहनं गत्वा पक्षिणा सह पार्वति ! । इष्टविद्यां महेश-
 शानि ! आज्ञांशे परिचिन्तयेत् । पक्षिणा सह देवेशि !
 खञ्जनाक्षि ! शुचिस्मिते ! । इष्टविद्यां महेशानि ! साक्षा-
 द्ब्रह्मस्वरूपिणीम् । विभाव्य अक्षरश्रेणीं हरिद्वर्णां वरानने ! ।
 आज्ञाचक्रे महेशानि ! षट्चक्रे ध्यानमाचरेत् । षट्चक्रे
 परमेशानि ! ध्यानं कृत्वा शुचिस्मिते ! । ध्यानेन परमेशानि !
 यद्वृत्तं समुपस्थितम् । तदेव परमेशानि ! मन्त्रार्थं विद्धि
 पार्वति ! ॥

अथ कुलुकादि । सरस्वतीतन्त्रे तृतीयपटले ॥ तारायाः
 कुलुका देवि ! महानीलसरस्वती । पञ्चाक्षरी कालिकायाः कु-
 लुका परिकीर्तिता । काली कूर्चं बधूर्माया फट्कारान्ता महेश-
 खरि ! । छिन्नायास्तु महेशानि ! कुलुकाष्टाक्षरी भवेत् ।
 वज्रवैरोचनीये च अन्ते वर्मं प्रपूजयेत् । सम्पददायाः प्रथमं
 भैरव्याः कुलुका भवेत् । श्रीमक्षिपुरसुन्दर्याः कुलुका द्वादशा-

क्षरी । वाग्भवं प्रथमं वीजं कामबीजमनन्तरम् । लज्जाबीजं
ततः पश्चात्त्रिपुरेति ततः परम् । भगवतीति तत्पश्चादन्ते ठडय-
मुद्धरेत् । अथवा कामबीजञ्च कुङ्कुका परिकीर्त्तिता । प्रासाद-
बीजं शम्भोश्च मञ्जुघोषे षडक्षरम् । एकार्णा भुवनेश्वर्या विष्णोः
स्यादष्टवर्णकम् । नमो नारायणायेति प्रणवाद्यञ्च कुङ्कुका ।
मातङ्गाः प्रथमं वीजं माया धूमावतीं प्रति । बालायाञ्च बधू-
बीजं लक्ष्म्याञ्च निजबीजकम् । सरस्वत्या वाग्भवञ्च अन्नदाया
अनङ्गका । अपरेषाञ्च देवानां मन्त्रमात्रं प्रकीर्त्तितम् । इयं ते
कथिता देवि ! सङ्क्षेपात् कुङ्कुका मया । अज्ञात्वा कुङ्कुकाभेतां
यो जपेदधमः प्रिये ! । पञ्चत्वमाशु लभते सिद्धिहानिस्तु जायते ।
तथा जपादिकं सर्वं निष्फलं नात्र संशयः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन
धारयेन्मूर्ध्नि कुङ्कुकाम् ॥ तथा । विप्राणां प्रणवः सेतुः क्षत्रि-
याणां तथैव च । वैश्यानाञ्चैव फट्कारो माया शूद्रस्य कथ्यते ।
अजम्बा हृदि देवेश ! यो वै मन्त्रं समुद्धरेत् । सर्वेषामेव मन्त्रा-
णामधिकारो न तस्य हि । महासेतुञ्च देवेशि ! सुन्दर्या भुवने-
श्वरी । कालिकायाः स्वबीजञ्च तारायाः कूर्चबीजकम् । अन्या-
सान्तु बधूबीजं महासेतुर्वरानने ! । आदौ जम्बा महासेतुं
जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । धने धनेशतुल्योऽसौ वाण्या वाणीश्वरो-
पमः । युद्धे कृतान्तसदृशी नारीणां मदनोपमः । जपकालो
भवेत्तस्य सर्वकालो न संशयः । अथ वक्ष्यामि निर्वाणं शृणु-
ष्वावहितानघे ! । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य मातृकाद्यं समुद्धरेत् ।
ततो मूलं महेशानि ! ततो वाग्भवमुद्धरेत् । मातृकास्तु
समस्तास्तु पुनः प्रणवमुद्धरेत् । एवं पुष्टितमूलस्तु प्रजपेन्म-
णिपूरके । एवं निर्वाणं महेशानि ! यो न जानाति पामरः ।
कृत्स्नकोटिसहस्रेण तस्य सिद्धिर्न जायते ॥

अथ मुखशोधनम् ॥ पञ्चमपटले ॥ ईश्वर उवाच ॥ अप-

रैकं प्रवक्ष्यामि मुखशोधनमुत्तमम् । यन्न कृत्वा महादेवि !
जपपूजा वृथा भवेत् । अशुद्धजिह्वाया देवि ! यो जपेत् स तु
पापकृत् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जिह्वाशोधनमाचरेत् । महा-
त्रिपुरसुन्दर्या मुखस्य शोधनं शुभे ! । श्रीबीजं प्रणवो लक्ष्मी-
स्तारः श्रीप्रणवस्तथा । इमं षडक्षरं मन्त्रं सुन्दर्या दशधा
जपेत् । शृणु सुन्दरि ! श्यामाया मुखशोधनमुत्तमम् । निज-
बीजत्रयं देवि ! प्रणवत्रितयं पुनः । कामत्रयं वल्लिविन्दुरति-
चन्द्रयुतं पृथक् । एषा नवाक्षरी विद्या मुखशोधनकारिणी ।
तारायाः शृणु चार्वङ्गि ! अपूर्वमुखशोधनम् । जीवनं मध्यमं
लज्जां भुवनेशीं ततः प्रिये ! । त्र्यक्षरीयं महाविद्या विज्ञेयाऽमृ-
तवर्षिणी । दुर्गायाः शृणु चार्वङ्गि ! मुखशोधनमुत्तमम् । द्वादश-
स्वरमुद्धृत्य विन्दुयुक्तं त्रयं तथा । अपरैकं प्रवक्ष्यामि वगलामुख-
शोधनम् । वाग्भवं भुवनेशीञ्च वाग्बीजं सुरवन्दिते ! । मातङ्गाः
शोधनं देवि ! अङ्कुशं वाग्भवं तथा । बीजञ्चाङ्कुशमेतद्वि विज्ञेयं
त्र्यक्षरीयकम् । लक्ष्म्याश्च शोधनं देवि ! श्रीबीजं कमलानने ! ।
दुर्गायाः शोधनं माया वाग्बीजपुटिता भवेत् । दुर्गे ! स्वाहा-
पुनर्माया वाग्बीजञ्च पुनश्च वाक् । प्रणवं दान्तमुद्धृत्य वामकर्ण-
विभूषितम् । पुनः प्रणवमुद्धृत्य धनदामुखशोधनम् । एवं मन्त्रं
महेशानि ! धूमावल्या भवेदपि ॥ प्रणवो विन्दुमान् देवि !
पञ्चान्तको गणेशितुः । वेदादिगगनं वल्लिमनुयुग्मन्तु चन्द्रवत् ।
द्वादशं परमेशानि ! विष्णोश्च मुखशोधनम् । अन्यासां प्रणवं
देवि ! बालादीनां प्रकीर्तितम् । स्त्रीणाञ्च शूद्रतुल्यं हि मुख-
शोधनमीरितम् । मुखशोधनमात्रेण जिह्वाऽमृतमयी भवेत् ।
अन्यथा मुखविड्युक्ता जिह्वा भवति सर्वदा । भक्षणेदूषिता
जिह्वा मिथ्यावाक्येन दूषिता । कलहैदूषिता जिह्वा तत्कथं
प्रजपेन्ननुम् । तच्छोधनमनाचर्य न जपेत् पामरः क्वचित् ।

शैवशाक्तवैष्णवादेः सर्वस्यावश्यमेव वा । अन्यथा प्रजपेन्मन्त्रं
 मोहेन यदि भाविनि ।। सर्वं तस्य वृथा देवि ! मन्त्रसिद्धिर्न
 जायते । अन्ते नरकवासी च भवेत् सोऽपि न चान्यथा ।
 देवो यदि जपेन्मन्त्रमकृत्वा मुखशोधनम् । पतनं तस्य देवेशि !
 किं पुनर्मन्त्रं वासिनाम् ॥ षष्ठपटले ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथ
 वक्ष्यामि देवेशि ! प्राणयोगं शृणुष्व मे । विना प्राणं यथा देहः
 सर्वकर्मसु न क्षमः । विना प्राणं तथा मन्त्रः पुरश्चर्याशतैरपि ।
 मायया पुटितो मन्त्रः सप्तधा जपतः पुनः । सप्राणो जायते
 देवि ! सर्वत्रायं विधिः स्मृतः । तथैवं दीपनं वक्ष्ये सर्वमन्त्रे च
 भाविनि ।। अन्यकारे गृहे यद्वन्न किञ्चित् प्रतिभासते । दीपनी-
 रहितो मन्त्रस्तथैव परिकीर्तितः । वेदादिपुटितं मन्त्रं सप्तवारं
 जपेत् पुनः । दीपनीयं समाख्याता सर्वत्र परमेश्वरि ।। वेदा-
 दिपुटितं कृत्वा प्रयत्नेन सुरेश्वरि ।। दशधा प्रजपेन्मन्त्रं सूतक-
 ह्वयमुक्तये । अथोच्यते जपस्याच क्रमश्च परमाद्भुतः । यं कृत्वा
 सिद्धसङ्खानामधिपो जायते नरः । नतिर्गुर्वादिनामादौ ततो
 मन्त्रशिखां भजेत् । ततोऽपि मन्त्रचैतन्यं मन्त्रार्थभावना ततः ।
 गुरुध्यानं शिरःपद्मे हृदीष्टध्यानमाह्वरन् । कुक्षुकाञ्च ततः सेतुं
 महासेतुमनन्तरम् । निर्वाणञ्च ततो देवि ! योनिमुद्राविभावना ।
 अङ्गन्यासं प्राणायामं जिह्वाशोधनमेव च । प्राणयोगं दीपनीञ्च
 अशौचभङ्गमेव च । भ्रूमध्ये वा नसोरग्रे द्रष्टिसेतुं जपं पुनः ।
 सेतुमशौचभङ्गञ्च प्राणायाममिति क्रमाः ॥ चतुर्थपटले ॥ कुक्षुकां
 मूर्ध्नि सञ्चय्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत् । महासेतुं विशुद्धौ च
 कण्ठदेशे समुद्धरेत् । मणिपूरे तु निर्वाणं महाकुण्डलिनीमधः ।
 स्वाधिष्ठाने कामवौजं राकिणीमूर्ध्नि संस्थितम् । विचिन्त्य विधि-
 वद्देवि ! मूलाधारान्तिकां शिवे ।। विशुद्धान्तं स्मरेद्देवि !
 विसतन्तुतनीयसीम् । वेदिस्थानं हि जीवात्तं मूलमन्त्रादृतं

मुहुः ॥ अन्यस्तु वीजचिन्तामण्यादावनुसन्धेयोऽत्र ग्रन्थगौरव-
भिया न लिखितः ॥

पुरश्चरणन्तु तन्त्रसारकारणैव धृतम् । पुरश्चरणविशेषो
लिख्यते । कङ्कालमालिनीतन्त्रे ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरण-
मुच्यते । अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां वीरवन्दिते ! ।
सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योदयान्तरम् । तावज्जप्त्वा निरा-
तङ्गः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पञ्चयोरुभयोरपि । अस्तमारभ्य सूर्यस्य
यावत् सूर्यास्तमं भवेत् । तावज्जप्त्वा निरातङ्गः सर्वसिद्धीश्वरो
भवेत् ॥ अथवा विजनस्थश्च अस्थिशय्यासमश्च वा । उदयास्तं
दिवा जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । तेनासने च वा देवि ! अस्त-
मारभ्य भास्वतः । जपित्वोदयपर्यन्तं सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते । सूर्योदयात् समारभ्य षट्-
कादशकं क्रमात् । ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने ।
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्वे मन्तशैशिराः । वसन्तश्चापि पूर्वाह्णे
ग्रीष्मो मध्याह्ने उच्यते । अपराह्णः प्राविषः स्युः प्रदोषः शरदः
स्मृतः । अर्द्धरात्रे च हेमन्तः शेषे च शिशिरं स्मृतम् । सूर्योदयात्
समारभ्य वसन्तान्तं समाहितः । तावज्जपेन्महेशानि ! पुरश्चर्या
हि सिध्यति । ततः पूजादिकं कृत्वा शक्तियुक्तश्च साधकः ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । अथवान्यप्रकारेण
पुरश्चरणमुच्यते । ग्रीष्मादिषु महेशानि षडृतुषु च साधकः ।
पृथग्जप्त्वा वरारोहे ! पुरश्चर्या हि सिध्यति । पूर्वोक्तविधिना सर्वं
कर्त्तव्यं वीरवन्दिते ! । ऋतौ जप्त्वा तु ऋत्वन्ते शक्तिः पूज-
येच्छिवाम् । एवमाचर्य कृत्वा वै धनानामौश्वरो भवेत् ॥

अथ वारपुरश्चरणं स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ रविवारादिसर्वेषु वार-
संख्यसहस्रकम् । जप्त्वा मन्त्रं सदा देवि ! साधकः सिद्धिभाग-

वेत् । पुरश्चरणमेतद्वि नात्र कार्या विचारणा । एवंविधं समा-
चर्य दशांशन्तु तदाचरेत् । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा सर्वकाममवा-
प्नुयात् ॥ अथ तिथिपुरश्चरणं तत्रैव ॥ प्रतिपत्तिथिमारभ्य कुङ्कु-
र्यावद्भवेत् प्रिये ! । तिथिसंख्याक्रमेणैव वर्द्धयेच्च सहस्रकम् । एवं
जह्या तदा मन्त्रौ सर्वकाममवाप्नुयात् । पुरश्चरणमेतद्वि कथि-
तञ्च वरानने ! । प्रतिपत्तिथिमारभ्य राका यावद्भवेत् प्रिये ! ।
तावन्मन्त्रं प्रजपत्तिथिसंख्याक्रमेण तु । सर्वभावसमायुक्तो
जायते भुवि साधकः । एतेनैव सन्तुष्टिः स्थाज्ञात्र कार्या विचा-
रणा ॥

अथ मासनियतकार्यम् ॥ अद्येत्यादिवैशाखे कार्तिके माघे
वा मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकपक्षेऽमुकतिथिावारभ्य
अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धि-
कामोऽमुकसंक्रान्त्यामारभ्य मेषतुलामकरस्वरविं यावत् प्रत्यहं
अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसहस्रसंख्यकजपमेषादावनन्तरतद्दशां-
शहोम-तद्दशांशतर्पणतद्दशांशाभिषेकतद्दशांश-ब्राह्मणभोजनरूप-
पुरश्चरणमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य मासं व्याप्य हविष्यान्नभुक्
नियमस्थः प्रत्यहं सहस्रकृत्वो जपेत् ॥ ततः सौरज्यैष्ठसौर-
मार्गशीर्षसौरफाल्गुनप्रथमदिनेषु होमादिकं कृत्वा दक्षिणां
कुर्यात् यथा । अद्येत्यादि कृतैतत् अमुके मासि अमुकराशिस्थे
भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा
अमुकराशिस्वरविकालौनामुकदेवताया अमुकमन्त्र इत्यत्संख्य-
कजपतद्दशांशहोमतद्दशांशतर्पणतद्दशांशाभिषेकतद्दशांश-ब्राह्मण-
भोजनरूपपुरश्चरणकर्मणः साङ्गताय दक्षिणामिदं काञ्चनं
वह्निदेवतम् अमुकगोत्राय श्रीअमुकदेवशर्मणे गुरवे तुभ्यमहं
सम्यददे । ततोऽच्छिद्राववारणं कुर्यात् ॥

अथ वारादिपुरश्चरणसङ्कल्पमाह ॥ अद्येत्यादि अमुके मासि

अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथावारभ्य अमुक-
गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिकामः
रविवारादिसर्ववारिषु अमुकदेवताया अमुकमन्त्रस्य वारसंख्य-
कसहस्रजपरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये । इति सङ्कल्पयेत् । ततः
शेषदिने तत्परदिने वा अद्येत्यादि कृतैतत् अमुकदेवताया
अमुकमन्त्रस्य रविवाराद्यधिकरणकवारसंख्यकसहस्रजपतद्दशां-
शहोमतद्दशांशतर्पणतद्दशांशाभिषेकतद्दशांशब्राह्मणभोजनकर्मा-
ख्यहं करिष्ये । ततो दक्षिणा । अद्येत्यादि कृतैतत् रविवारा-
द्यधिकरणकवारसंख्यक-सहस्रजपतद्दशांशहोमतद्दशांशतर्पणतद्द-
शांशाभिषेकतद्दशांशब्राह्मणभोजनरूपपुरश्चरणकर्मणः साङ्गतार्थं
दक्षिणामिदमित्यादि ॥

तिथिपुरश्चरणे सर्वमेवं सर्वत्र वारशब्दस्थाने तिथिशब्द-
प्रयोगः । अथ ऋतुपुरश्चरणसङ्कल्पः ॥ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः
श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिकामः सूर्यो-
दयं समारभ्य वसन्तान्तं यावत् अमुकदेवताया अमुकमन्त्रस्य
जपरूपपुरश्चरणमहं करिष्ये ॥ अन्यत्र श्रीऋतुव्यापकजपरूप-
पुरश्चरणमहं करिष्ये एवं सर्वत्र ॥ जपान्ते पूजां कृत्वा दक्षिणां
क्षुर्याद यथा । अद्येत्यादि अमुकदेवताया अमुकमन्त्रस्य
वसन्तऋतुव्यापकजपरूपपुरश्चरणकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणा-
मिदमित्यादि । एवं सर्वत्र ॥ तर्पणाभिषेकप्रयोगो यथा । आ-
चम्य सामान्यार्घ्यं कृत्वा आसनशुद्धिं कृत्वा प्राणायामं ऋष्यादि-
न्यासकराङ्गन्यासौ च कृत्वा ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा
जले देवं समावाह्य इदमुदकात्मकं पाद्यम् अमुकदेवतायै
नमः । इदमुदकात्मकमर्घ्यम् । इत्यनेन उदकात्मकैरुपचारैः
सम्पूज्य सन्ध्योक्तविधिना परिवारान् सन्तर्प्य मूलमुच्चार्य अमुक-
देवतां तर्पयामि नमः । इत्यनेन सन्तर्प्य आत्मानं देवतारूपं

ध्यात्वा नमोऽन्तमूलमुच्चार्य अमुकदेवतामहमभिषिञ्चामि
इति कुम्भमुद्रया मूर्धानमभिषिच्य संहारमुद्रया देवतां विस-
र्जयेत् ॥

अथ श्रीदुर्गाया रहस्यपुरश्चरणं स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ श्रीपार्वत्यु-
वाच ॥ कथयस्व महादेव ! सिद्धिकारणमुत्तमम् । येन सिद्धिं
समायान्ति सर्वे मन्त्राश्च सिद्धिदाः । येषु येषु च कालेषु पुर-
श्चरणं भवेद्ध्रुवम् ॥ शिव उवाच ॥ कथयामि समासेन श्रूयतां
पर्वतात्मजे ! मेघे दशसहस्रञ्च प्रजपेन्नन्त्रमुत्तमम् । पुरश्चरण-
मेतद्धि जायते हरवल्लभे ! वृषराशी यदा मन्त्रमयुतं प्रजपेत्
सुधीः । तेन तत्र सुसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा । मिथुने
च तथा मन्त्री अयुतं मन्त्रमुत्तमम् । प्रजपेत् प्रयतो नित्यं पुर-
श्चरणमुच्यते । कर्कटे च यदा मन्त्री सहस्रं प्रत्यहं जपेत् । तेन
सर्वार्थसिद्धिः स्यात् पुरश्चरणकृद्भवेत् । सिंहे च सर्वमन्त्राणा-
मयुतानां द्वयं जपेत् । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलभाग् भवति
ध्रुवम् । कन्यायाञ्च यदा मन्त्री मन्त्रं मन्त्रपरायणः । सहस्र-
द्वादशञ्चैव जपेन्नियतमानसः । पुरश्चरणमेतद्धि सर्वकामार्थसाध-
नम् । इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते देवीपुरं व्रजेत् । तुलायां
प्रत्यहं मन्त्री सहस्रं साधको जपेत् । अनेन विधिना देवि !
पुरश्चरणकृद्भवेत् । वृश्चिके चायुतं मन्त्रं शय्यायां प्रजपेत् सुधीः ।
तेन सर्वार्थसिद्धिः स्यात् पुरश्चर्याफलं लभेत् । धनुषि च यदा
मन्त्रं जपेदयुतमादरात् । इहैव कन्दर्पसमो धनवान् बलवान्
सुखी । मकरे च यदा मन्त्रं जपेत् साधकसत्तमः । अयुतानि
च चत्वारि प्रत्यहं यतमानसः । धर्मार्थं भावयेन्नित्यं पुरश्चरण-
मुच्यते । कुम्भे चैव यदा मन्त्रं जपेदयुतमादरात् । तेन सर्वार्थ-
सिद्धिः स्यात् पुरश्चरणकृद्भवेत् । मीने चैव यदा देवि ! प्रजपे-
दयुतद्वयम् । पुरश्चरणमित्याहुः सर्वागमविशारदाः । सर्वत्र

जपनं कार्यं रात्रौ वा मैथुनेऽपि वा । शय्यायाञ्च विशेषेण पर-
योषित्समागमे । हविष्याशी तदा देवि ! जपेन्नियतमानसः ।
एवंविधं जपं कृत्वा दशांशञ्च तदाचरेत् । दक्षिणां गुरवे दत्त्वा
सिद्धिभाग्भवति ध्रुवम् । येषु येषु नक्षत्रेषु जायते सिद्धिरुत्तमा ।
कथयामि समासेन श्रूयतां पर्वतात्मजे ! । अश्विन्यां प्रजपेन्नन्त्रं
साधकश्च सहस्रकम् । तेनास्मिन् सिद्धिमाप्नोति साधको नात्र
संशयः । द्विसहस्रं यदा मन्त्रं भरण्याञ्च जपेत् सुधीः । यम-
लोकं परित्यज्य धनेन च धनाधिपः । कृत्तिकायां जपेन्नन्त्रं
द्विसहस्रञ्च साधकः । रोहिण्याञ्च यदा मन्त्रं जपेत् साधक-
सत्तमः । सहस्रं वा शतं वापि सर्वकाममवाप्नुयात् । मृगशीर्षे
यदा मन्त्रं नियतं प्रजपेत् सुधीः । सहस्रपञ्चकञ्चैव बृहस्पति-
समो भवेत् । आर्द्रायां जप्यते मन्त्रं साधकैः सुसमाहितैः ।
षट्सहस्रं यदा देवि ! सर्वकामार्थसिद्धये । पुनर्वसुसमायोगे
सहस्रं मन्त्रमुत्तमम् । जपनात् साधको नित्यं लभते च सुरो-
त्तमम् । पुष्यायाञ्च जपेन्नन्त्रं सप्तानाञ्च सहस्रकम् । तेन सर्व-
सुसिद्धिः स्यात् पुरश्चर्याधिको विधिः । अश्लेषायां यदा मन्त्रं
मन्त्री देवि ! समाहितः । सहस्रषट्ककञ्चैव जपेत् सर्वार्थसि-
द्धये । दशसहस्रं मघायाञ्च जप्त्वा मन्त्रं समाहितः । पुरन्दर-
समो भूत्वा साधको विचरेद्भुवि । एकादशसहस्रन्तु पूर्वात्रये
जपेत् सुधीः । कुवेर इव वित्ताढ्यो जायते साधको भुवि ।
उत्तरात्रितये देवि ! सहस्रद्वादशं तथा । जप्यते साधकैर्नित्यं
सर्वकामार्थसिद्धये । हस्तायाञ्च जपेद्देवि ! त्रयोदशसहस्रकम् ।
सूर्यस्येव समो भूत्वा विचारेद्भुवि साधकः । चित्रायाञ्च जपे-
न्नन्त्रं द्विसहस्रञ्च साधकः । नानाभोगसमायुक्तो भवेद्भुवि पुर-
न्दरः । स्वात्यां सर्वार्थसिद्धिः स्याद्विसहस्रस्य जापनात् । साध-
कोऽव्याहतगतिर्जायते नात्र संशयः । विशाखायां यदा मन्त्रं

चतुःसाहस्रकं प्रिये ! । जपेच्च साधको नित्यं सोमवत् प्रिय-
दर्शनः । अतुराधायां यदा देवि ! मन्त्री मन्त्रं सदा जपेत् ।
पुत्रपौत्रसमायुक्तः खेचरो जायते ध्रुवम् । ज्येष्ठायाञ्च यदा मन्त्रं
द्विसहस्रं विचक्षणः । जपनात्कृते सिद्धिं नात्र कार्या विचा-
रणा । मूलायाञ्च जपेन्मन्त्रं सहस्रपञ्चकं प्रिये ! । नानासिद्धि-
मवाप्नोति साधको नात्र संशयः । श्रवणायां यदा मन्त्रं द्विस-
हस्रं जपेत् सुधीः । अष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य नात्र वै संशयः प्रिये ! ।
धनिष्ठायां जपेन्मन्त्रं द्विसहस्रं समाहितः । वरुणेन समो भूत्वा
जायते साधको भुवि । शतभिषायां यदा मन्त्रं द्विसहस्रं जपेत्
सुधीः । स महापातकान्मुच्येत् फलभाग्भवति ध्रुवम् । रेवत्याञ्च
महामन्त्रं चतुःसाहस्रकं तथा । जम्बा स्तुत्वा सदा देवि ! सोम-
लोकमाप्नुयात् । रात्रौ वा मैथुने वापि शय्यायाञ्च व्यवस्थितः ।
प्रजपेत् साधको नित्यं साधयेदात्मनो हितम् । सर्वदा प्रजपे-
न्मन्त्रं हविस्थाशी दिवा शुचिः । दक्षिणां गुरवे दद्यादुग्रथा-
विभवविस्तरम् । अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते । ववादि-
करणेनैव पुरश्चरणमुच्यते । विष्कुम्भादिषु योगेषु यो जपेद्योग-
संख्यया । सहस्रं साधको नित्यं सर्वसिद्धिपरायणः । पुरश्चरण-
मेतद्धि तन्त्रे तन्त्रे निरूपितम् । संक्रान्तिषु च सर्वासु विषुवा-
दिषु पार्वति ! । संक्रान्तेरनुसारेण वर्धयेच्च सहस्रकम् । पूर्व-
मुखो जपेन्मन्त्रं धनार्थी सर्वदा प्रिये ! । शत्रुनाशाय सततं
प्रजपेत् पश्चिमामुखः । लोकानां वश्यहेत्वर्थं मुक्त्यर्थं वा यदा
प्रिये ! । उत्तराभिमुखो भूत्वा जपेन्मन्त्रं समाहितः । शत्रु-
नाशाय सततं दक्षिणाभिमुखो जपेत् ॥ इति हरगौरीसंवादे
रहस्यपुरश्चरणम् ॥

अथ ग्रहणपुरश्चरणम् ॥ ग्रहणन्तु चक्षुषा राहोर्दर्शनम् । स
तु चण्डालस्वरूप इति किंवदन्ती । तस्य दर्शनं कथं पुण्यजनक-

मिति सन्देहे मातृकाभेदतन्त्रे षष्ठपटले ॥ चण्डिकोवाच ॥
 राहुश्चाण्डालविख्यातः सर्वत्र परमेश्वर ! । पुण्यं कालं कथं
 देव ! तस्य स्पर्शं दिवाकरे । निशाकरे तथा नाथ ! चेति मे
 संशयो हृदि । कथयस्व परानन्द ! पञ्चादन्यं प्रकाशय ॥ श्रीशङ्कर
 उवाच ॥ शृणु सर्वाङ्गसुभगे ! ग्रहणञ्चोत्तमोत्तमम् । ग्रहणं
 त्रिविधं देवि ! चन्द्रसूर्याग्निसंयुतम् । शक्तेर्ललाटे नेत्रे च
 वक्त्रिस्तिष्ठति सर्वदा । वामनेत्रे तथा चन्द्रो दक्षे सूर्यः प्रति-
 ष्ठितः । शम्भुनाथेन देवेशि ! रमणं क्रियते यदि । तदैव
 ग्रहणं देवि ! शक्तियुक्तः सदाशिवः । वामनेत्रे चुम्बिते च शशा-
 ङ्कग्रहणं तदा । दक्षनेत्रे चुम्बिते च भास्करग्रहणं तथा ।
 ललाटे चुम्बिते चाग्निग्रहणं परमेश्वरि ! । शिववीर्यं यतो
 वक्त्रिरतो दृश्यः सुरेश्वरि ! । राहुः शिवः समाख्यातस्त्रिगुणः
 शक्तिरोरिता । शिवशक्त्योः समायोगाद् ग्रहणं परमेश्वरि ! ।
 शिवशक्त्योः समायोगकालो ब्रह्ममयः प्रिये ! । अतएव महे-
 शानि ! राश्यादीन् न विचारयेत् । तिथिनक्षत्रयोगे तु यद्युयोगं
 परमेश्वरि ! । तदैव परमेशानि ! राश्यादिगणनं चरेत् । शिव-
 शक्तिसमायोगात् सर्वं ब्रह्ममयं जगत् । मासपक्षतिथीनाञ्च
 नोच्चार्य परमेश्वरि ! । दृष्टिमात्रेण जप्तव्यं तदा सिद्धो भवेद्
 ध्रुवम् । तत्कालं परमं कालं विज्ञेयं वीरवन्दिते ! । तत्र यद्-
 यत् कृतं सर्वं बहु किं कथ्यतेऽधुना । एतत् सुगुप्तभेदं हि तव
 स्नेहात् प्रकाशितम् । न वक्तव्यं पशीरग्रे प्राणान्तेऽपि सुरे-
 श्वरि ! । अत्रानन्तफलकीर्तनात् जपदशांशहोमादिकमपि
 न कर्त्तव्यम् ॥ तदुक्तं गायत्रीतन्त्रे प्रथमब्राह्मणपरिच्छेदे ॥ चन्द्र-
 सूर्योपरागे च जप्त्वा ब्रह्ममयो भवेत् । मन्त्रस्य परमेशानि !
 न च होमादिकञ्चरेत् । कृते होमादिके भद्रे ! तज्जपं विफलं
 भवेत् । जपमात्रे महेशानि ! अनन्ततन्मनुर्यथा । अनन्तस्य

महेशानि ! दशांशं केन जायते ॥ शाक्तानन्दतरङ्गिणीवाद्-
 शोक्तासष्टतवीजार्णवतन्त्रीयषोडशपटले ॥ एकदा परमेशानि !
 कामाख्यायां महेश्वरि ! । दृष्टोपरागं यत्कार्यं तच्छृणुष्व वरा-
 नने ! । कुतः स्नानं कुतः सन्ध्या प्राणायामः कुतः प्रिये ! ।
 भूतशुद्धिः कुतो भद्रे ! कुतः पूजा वरानने ! । कालातीतमया-
 हेवि ! सर्वं सन्त्यज्य कामिनि ! । सङ्कल्पं मानसं कृत्वा जपं
 कृत्वा वरानने ! । पञ्चाङ्गैस्तु विहीनोऽपि सिद्धो भवति नान्यथा ।
 मन्त्रं विद्या महेशानि ! कवचं स्तवमेव वा । ध्यानं वा पर-
 मेशानि । न्यासं वा कमलेक्षणे ! । एकोच्चारणे गिरिजि ! तद्ग-
 वेद्दशकोटयः । असंख्यं तज्जपं देवि ! ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
 तत्कथं परमेशानि ! क्रियते जपसंख्यकम् । अतएव महेशानि !
 होमो नास्ति शुचिस्मिते ! । अभिषेकश्च देवेशि ! तथा तर्पणमेव
 च । भोजनञ्च महेशानि ! नास्त्यत्र कमलानने ! । चन्द्रसूर्य-
 ग्रहे देवि ! पञ्चाङ्गं नास्ति कामिनि ! । पञ्चाङ्गेन विहीनोऽपि
 सिद्धो भवति नान्यथा । सङ्कल्पं विधिवद्देवि ! मानसं यदुप-
 स्थितम् । तत्सङ्कल्पं विजानीयाद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । तस्मात्तु
 चपलापाङ्गि ! सङ्कल्पं नैव कारयेत् । सङ्कल्पं मानसं देवि !
 चतुर्वर्गफलप्रदम् । ततो हि मानसं देवि ! मुख्यं सङ्कल्पमौ-
 रितम् । व्यर्थं हि स्थूलसङ्कल्पं ग्रहणे परिकीर्तितम् । सङ्कल्पेन
 विना देवि ! यत्किञ्चित् कुरुते नरः । व्यर्थमेव हि तत् सर्वं
 तस्मात्तन्मानसं परम् । प्रथमे प्रहरे देवि ! चन्द्रयासं यदा
 भवेत् ॥ तदैव दिवसे भुक्त्वा सत्वरं नरकं व्रजेत् । निशीथे तु
 यदा देवि ! असेचन्द्रं यदा तमः । तदैव दिवसे भुक्त्वा पीत्वा-
 नन्दमयो भवेत् । चन्द्रग्रहणकाले तु जपयज्ञादिकञ्चरेत् ।
 रात्रौ भुक्त्वा च पीत्वा च जपयज्ञादिकं चरेत् । सर्वेषु विष्णु-
 मन्त्रेषु सौरि गाणपते तथा । शक्तिमन्त्रे महेशानि ! प्रशस्तं

सततं जपम् । इति वीजार्णवे तन्त्रे शिवेन परिकीर्तितम् ।
एतत् कल्पं ज्ञानिनान्वज्ञानिनामपि चोच्यते ॥ गान्धर्वं ॥
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते । ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः
पूर्वमुपोषितः । नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमाचोदके स्थितः ।
ग्रहणादिविमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः । दृष्ट्वा स्नात्वा
सुसङ्ख्यो विमोक्षान्तं जपश्चरेत् ॥ जपस्य तु दशांशेन होमं
कुर्याद् यथाविधि । होमार्थं तद् द्विगुणं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥
होमस्य तु दशांशश्च तर्पणं समुपाचरेत् । अभिषेकदशांशेन
ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः । तदन्ते महतीं पूजां कुर्यात् साधक-
सत्तमः । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा भक्त्या विप्रांश्च तर्पयेत् ॥ काली-
तन्त्रे ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । चन्द्रसूर्यग्रहे चैव
ग्रासावधिविमुक्तिः । यावत्संख्यं मनुं जप्त्वा तावद्दोमादिकं
चरेत् । जामले ॥ अपि शुद्धोदके स्नात्वा शुची देशे समाहितः ।
ग्रासादिमुक्तिपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । एवं जप्त्वाप्यसन्दिग्धो
जपस्य फलभागभवेत् ॥ ग्रहणपूर्वाहे उपवासाशक्तस्य फल-
दुग्धादिभोजनाप्रामाण्यात् वरं हरिश्चाचरणं शास्त्रं निमित्ता-
निश्चये तस्याङ्गत्वाभावादुपवासं विनैव पुरश्चरणमिति गुरवः ।
अत्र आद्विमकुर्वाणः पङ्के गौरवसीदतीति निन्दाश्रवणमुपदिष्ट-
विषयम् । उपदिष्टस्य तु जपस्यावश्यकत्वं वैधर्हिंसावदिति
मान्याः । सनत्कुमारीये । आद्यादेरनुरोधेन यदि जापं त्यजे-
न्नरः । स भवेद्देवताद्रोही पितृन् सप्त नयत्यथ इत्यारब्धपुर-
श्चरणविषयम् । त्यजेदिति श्रवणात् ॥

अथ मालाप्रकरणम् ॥ नित्यातन्त्रे नवमपटले ॥ ईश्वर
उवाच । अक्षमालां समाश्रित्य मातृकावर्णरूपिणीम् । अथ
मुक्ताफलमयी भोगमोक्षप्रदायिनी । राजवश्यकरी सर्वसिद्धिदा
न्नात्र संशयः । यथा मुक्ताफलमयी तथा स्फटिकनिर्मिता ।

रुद्राक्षमाला गिरिजे ! मोक्षदा च समृद्धिदा । प्रबालघटिता
माला वश्यदा कर्मसाधिनी । माणिक्यरचिता माला साम्राज्य-
फलदायिनी । पुत्रक्षीवकमाला तु विद्यालक्ष्मीप्रदायिनी ।
पद्मवीजाक्षमाला तु महालक्ष्मीप्रदायिनी । रक्तचन्दनवीजाक्ष-
माला वश्यफलप्रदा ॥ मुण्डमालातन्त्रे द्वितीयपटले । स्फाटिकै-
र्भोजलाभः स्यात् रुद्राक्षैर्वहुपुत्रदा । जीवपुत्रेश्व धनदा पाषाणै-
र्भोगमोक्षदा । शुद्धस्फटिकमाला तु महासम्पत्प्रदा प्रिये ! ।
श्मशानधूसुरैर्माला एका धूमावतीविधौ । तथा । मणिरत्नप्रवा-
लेश्व हेमराजतसम्भवा । माला कार्या कुशग्रन्था सर्वभोगफल-
प्रदा । समयाचारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ पूर्वाम्नायादि सर्वेषां मालां
शृणु यथाक्रमम् । जप्त्वा येनाशु लभते फलं देवैश्च दुर्लभम् । अक्ष-
माला प्रथमतो मातृकार्णस्वरूपिणी । अथ सुक्तामयी माला
रतिमोक्षफलप्रदा । सर्वसिद्धिकरी माला सर्वराजवशङ्करी ।
प्रबालमाला वश्यार्थं सर्वकार्यफलप्रदा । माणिक्यरचिता माला
साम्राज्यफलदायिनी । पुत्रक्षीवकमाला सा लक्ष्मीविद्याप्रदा-
यिनी । पद्माक्षरचिता माला यशोलक्ष्मीप्रदा सदा । सुवर्ण-
रचिता माला स्फाटिकी सर्वकामदा । रक्तचन्दनमाला च
भोगदा मोक्षदा भवेत् । रुद्राक्षरचिता माला सर्वकामफल-
प्रदा । सर्वमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन विलेपिताम् । समाश्रित्य
जपेन्नित्यं यथोक्तफलमाप्नुयात् । एता मालाश्च सुभगे ! पद्मा-
म्नायेषु पूजिताः ॥ मुण्डमालातन्त्रे ॥ देव्युवाच ॥ अक्षमाला तु
कथिता यत्नतो न प्रकाशिता । अक्षमालेति किं नाम फलं वा
किं वदस्व मे ॥ ईश्वर उवाच ॥ अक्षमाला तु देवेशि ! काम्य-
भेदादनेकधा । भवन्ति शृणु तत्पान्ने ! विस्तारादुच्यते मया ।
अतुलोमविलोमेन क्लृप्तया वर्णमालया । आदिलान्तलादि आन्त-
क्रमेण परमेश्वरि ! । क्षकारं मेरुरूपञ्च लङ्घयेन्न कदाचन । मेरु-

लङ्घनदोषस्तु तत्रैव ॥ मेरुहीना च या माला मेरुजङ्घा च या
 भवेत् । अशुद्धा प्रतिकाशा च सा माला निष्फला भवेत् ।
 चित्रिणी विसतन्वाभा ब्रह्मनाडीगतान्तरा । तथा संग्रथिता
 माला सर्वकामफलप्रदा । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा आदिल्लीवं समा-
 चरेत् । ऋऋलृऋद्वयं यत्तु तद्धि ल्लीवं प्रचक्षते । वर्गाणामष्ट-
 भिर्वापि काम्यभेदात् क्रमेण तु । अकचटतपयशा अष्टौ वर्गाः
 प्रकीर्त्तिताः ॥ मालया जपविशेषेण फलविशेषस्तु नित्यातन्त्रे ॥
 अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन सुलोचने ! । समाश्रित्य जपेद्विद्वान्
 लक्षमात्रमनन्यधीः । योषितः सकला वश्याः सप्तद्वीपस्य पा-
 र्वति ! । ततो द्वितीयलक्षं प्रजपेद्वीरवन्दिते ! । पातालतल-
 नागेन्द्रकन्या वश्या भवन्ति हि । ततो लक्षत्रयं भद्रे ! प्रज-
 पेत् साधकोत्तमः । देवाङ्गना भवन्त्येव वश्यास्तस्य महेश्वरि ! ।
 महापातककोटिश्च नाशयेत् कमलेक्षणे ! । अभिमानेन सौभाग्यं
 सौख्यं सौन्दर्यमाप्नुयात् । चतुर्लक्षं प्रजप्याथ महायोगीश्वरो
 भवेत् । पञ्चलक्षजपाद्देवि ! कुबेरपदवीं व्रजेत् । षड्लक्ष-
 जपमात्रेण सर्वविद्यासु कीविदः । सप्तलक्षजपाद्देवि ! खेचरो
 भवति ध्रुवम् । अष्टलक्षं प्रजप्याथ देवपूज्यो भवेन्नरः । अणिमा-
 यष्टसिद्धीनां नायको नात्र संशयः । राजानो वशगास्तस्य योषि-
 तश्च विशेषतः । नवलक्षं महादेवि ! यो जपेत् साधकोत्तमः ।
 रुद्रमूर्तिः स्वयं साक्षात् कर्त्ता हर्त्ता न संशयः ॥ समयाचार-
 तन्त्रे ॥ उत्तरान्तायेषु या माला भूयः शृणु वदामि ते । अथ
 वर्णमयी माला सर्वोत्कृष्टा च सा मता । महाशङ्खमयी माला
 वाञ्छितार्थफलप्रदा । उडुस्वरफलस्याथ सूक्ष्मस्याथ कृता मता ॥
 योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे द्वितीयपटले ॥ ईश्वर उवाच ॥ वर्ण-
 माला शुभा प्रोक्ता सर्वमन्त्रप्रदीपनी । तस्याः प्रतिनिधिर्देवि !
 महाशङ्खमयी शुभा । महाशङ्खः करे यस्य तस्य सिद्धिरदूरतः ।

तदभावे वीरवन्द्ये ! स्फाटिकी सर्वसिद्धिदा ॥ मणिभेदेन फल-
भेदमाह मुण्डमालातन्त्रे ॥ त्रिंशतैश्वर्यफलदा पञ्चविंशेस्तु
मोक्षदा । चतुर्दशमयी मोक्षदायिनी भोगवर्द्धिनी । दशपञ्चा-
लिका देवि ! मारणोच्चाटने स्थिता । स्तम्भने मोहने वश्ये बोधने
अञ्जने तनोः । पादुकासिद्धिसङ्घे च शतसंख्या प्रकीर्तिता ।
अष्टोत्तरशतं कुर्यादयं वा सर्वकामदम् । योगिनीतन्त्रे ॥ मणि-
संख्यां महादेवि ! मालायाः कथयामि ते । पञ्चविंशतिभिर्मोक्षं
पुष्ट्यै तु सप्तविंशतिः । त्रिंशद्भिर्धनसिद्धिः स्यात् पञ्चाशन्मन्त्र-
सिद्धये । अष्टोत्तरशतैः सर्वसिद्धिरेव महेश्वरि ! । एतस्माधारणं
प्रोक्तं विशेषं कामिनां वद ॥ श्रीशिव उवाच ॥ दन्तमाला जपे
कार्या गले धार्या नृणां शुभे ! । दशनैर्यदि कर्त्तव्या संख्या दन्तस्य
ते प्रिये ! । सर्वसिद्धिप्रदा माला राजदन्तेन मेरुणा । अन्यत्रापि
महेशानि ! मेरुत्वेनैवमादिशेत् । नित्यं जपं करे कुर्यान्न
काम्यमवरोधनात् । काम्यमपि करे कुर्यान्मालाभावे प्रियंवदे ! ।
अत्राङ्गुल्या जपं कुर्यात् साङ्गुष्ठाङ्गुलिभिर्जपेत् । अङ्गुलेन विना
कर्म कृतं तन्निष्फलं भवेत् ॥ उत्पत्तितन्त्रे प्रथमपटले ॥ नित्यं
नैमित्तिकं काम्यं करे कुर्याद्विचक्षणः । करमाला महादेवि !
सर्वदोषविवर्जिता । छिन्नभिन्नादिदोषोऽपि करे नास्ति कदा-
चन । अक्षयस्तु करो देवि ! माला भवति तादृशी । ग्रन्थिः
सा कुण्डलीशक्तिः पञ्चाशद्वर्णरूपिणी । अतएव महेशानि !
करमाला महाफला ॥ योगिनीतन्त्रे ॥ तथा तथातो ग्रथनं मा-
लानां तत्र बोधनम् । पूजां विधाय भक्त्या तु शुचिः पूर्वमुपो-
षितः । विजने ग्रथयेन्मौनी स्वयं मालाञ्च साधकः । कृतनित्य-
क्रियः शुद्धः शुद्धोऽक्षेषु च मन्त्रवित् । यथाकालं यथाकाममच्चा-
खानीय यत्नतः । अन्योन्यसमरूपाणि नातिस्थूलकाशानि च ।
कौटादिभिरदंष्ट्रानि न जीर्णानि नवानि च । गव्यैस्तु पञ्चभि-

स्तानि प्रक्षाल्य च पृथक् पृथक् । पृथ्वी देवेन्द्रपुण्यस्त्रीनिर्मितं
ग्रन्थिवर्जितम् । त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य पट्टसूत्रमथापि वा । शुक्लं
रक्तं तथा पीतं शान्तिवश्याविचारके । सूत्रं सम्पातयेद्विद्वान्
तत् प्रक्षाल्य च पूर्ववत् । मालामेकैकमादाय सूत्रे सम्पातयेत्
सुधीः । मुखे मुखन्तु संयोज्य पुच्छे पुच्छन्तु योजयेत् । गो-
पुच्छसदृशी कार्य्याथवा सर्पाकृतिर्भवेत् । तल्लजातीयमेकाक्षं
मेतत्वेनाग्रतो न्यसेत् । एकैकमालामध्ये तु ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्प-
येत् ॥ उत्पत्तितन्त्रे षष्टिपटले ॥ क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या पञ्चा-
शद्वर्णमालया । यो जपः स तु विज्ञेय उत्तमः परिकीर्तितः ।
इति श्रीप्राणतोषिण्यां चतुर्थे काव्यकाण्डे ग्रन्थिकथनरूपः

प्रथमः परिच्छेदः ।

अथ साधनस्थानम् ॥ शारदायां द्वितीयपटले ॥ पुण्यक्षेत्रं
नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम् । तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः
पावनं महत् । उद्यानानि विविक्तानि विष्वमूलं तटं गिरिः ।
देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम् । साधनेषु प्रशस्यन्ते
स्थानान्येतानि मन्त्रिणाम् । नदीतीरं पुण्यनदीतीरं सामान्य-
नदीतीरस्य निषिद्धत्वात् । विविक्तानि विजनानि ॥ राघवभट्ट-
धृतम् । प्रत्यङ्मुखः शिवस्थाने वृषभादिविवर्जिते । अश्वत्थ-
विष्वतुलसीवने पुष्पान्तरावृते । गवां गोष्ठेऽश्वत्थमूले पुण्यक्षेत्रेषु
शस्यते ॥ गोष्ठ इत्यनेनैव गोस्थाने लब्धे गवामिति यदुक्तं
तत् तात्कालिकगोसम्बन्धज्ञापनाय तेन गोसमीपे जपादि-
कर्म प्रशस्तमतएव गवां समीप इत्युक्तम् ॥ वायवीयसंहि-
तायाम् । यथा । सूर्यस्याग्रे गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य
च । विप्राणाञ्च गवाञ्चैव सन्निधौ शस्यते जपः । अथवा निवसे-
त्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति । मुण्डमालातन्त्रे तृतीयपटले
च ॥ नदीतीरे विष्वमूले श्मशाने शून्यवेश्मनि । एकलिङ्गे

पर्वते वा देवागारे चतुष्पथे । शवस्योपरि मुण्डे वा जले वा
 कण्ठपूरिते । संग्रामभूमौ योनौ वा स्थाने वा विजने वने ।
 यत्र कुच स्थले रम्ये यत्र वा स्यान्मनोलयः ॥ बृहन्नौलतन्त्रे
 द्वितीयपटले ॥ एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ।
 हर्म्ये वा साधयेद्देवीं सर्वाभौष्टप्रदायिनीम् । एकलिङ्गलक्षण-
 माह ॥ पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते । तदेकलिङ्ग-
 माख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा । इति श्यामारहस्यधृतनैकलिङ्ग-
 ज्ञातव्यम् ॥ तथा । उज्जटे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे ।
 देवागारे देवशून्ये विल्वमूले नदीतटे । खगृहे निर्जनेऽरण्ये
 तथा चाश्वत्यसन्निधौ । इत्यपि श्यामारहस्ये नित्यातन्त्रे
 प्रथमपटले च ॥ एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे नदीतटे ।
 पातालभवने वापि गिरौ वा दौर्घिकातटे । शक्तिक्षेत्रे महापीठे
 विल्वमूले शिवालये । धात्रीवृक्षतलेऽश्वत्यमूले चैव तरोस्तले ॥
 पातालभवने भूमिमध्ये ॥ समयाचरतन्त्रे द्वितीयपटलेऽपि ॥
 जपस्थानानि देवेशि ! सिद्धपीठानि यानि च । सिद्धपीठे
 च शय्यायां खट्वाशय्याविशेषतः । चतुष्पथे सिद्धलिङ्गे गुरु-
 देवालये तथा । वटाश्वत्यविल्वमूले रक्षाया विपिने तथा ।
 नदीतीरे शिवागरे गुह्यापर्वतमस्तके । जपस्थानानि देवेशि !
 कथितानि नगात्मजे ! । शृणु देवि ! विशेषेण उत्तराम्नाय-
 हेतवे । वेश्यागृहे श्मशाने वा गत्वा मैथुनमाचरेत् । ततो
 जपादिकं देवि ! कृत्वा च लभते फलम् । अथवा खगृहे
 रात्रौ भक्तिमान् सुसमाचरेत् । स प्राप्नोति फलं सर्वं चिन्तादि-
 भयवर्जितः ॥ पुरश्चरणरसोक्तासतन्त्रे चतुर्थपटले ॥ गोष्ठं
 चतुष्पथञ्चैव त्रिपथञ्च वरानने ! । निर्जनञ्च तथारण्यं शून्यगृहं
 तथैव च । पर्वतञ्च नदीतीरं तथैव दौर्घिकातटम् । अश्वत्य-
 वृक्षमूले च वटवृक्षतले तथा । धात्रीवृक्षतले देवि ! तथैव

वकुलस्य च । यत्र पञ्चवनं भट्टे ! शुक्लं रक्तं वरानने ! । द्रोण-
पुष्पस्य चार्वङ्गि ! यदि भाग्येन लभ्यते । अरुणादित्यसङ्काशं
जपकालं परात्परम् । स्थानविशेषे अन्नदाकल्पे द्वितीय-
पटले ॥ गोशालायां पुण्यभूमौ गुरोर्गेहे विशेषतः । विष्णुमूले
नदीतीरे पर्वते शिवसन्निधौ । स्वगृहे पुण्यनिलये तथा साधक-
मन्दिरम् । श्रीदुर्गाप्रतिमास्थाने युवतीनाञ्च सन्निधौ । एव-
मादिषु देशेषु दीक्षाकर्म प्रशस्यते ॥ फलविशेषस्तु राघवभट्टे-
नोक्तो यथा ॥ गृहे जपः समः प्रोक्तो गोष्ठे शतगुणस्तु सः ।
आरामे च तथारण्ये सहस्रगुण उच्यते । अयुतः पर्वते पुण्ये
नद्यां लक्षगुणस्तु सः । कोटिर्देवालये प्राहुरनन्तं शिव-
सन्निधौ ॥

अथ सिद्धपीठम् ॥ कुञ्जिकातन्त्रे सप्तमपटले ॥ शिव
उवाच ॥ श्रूयतां सावधानेन सिद्धपीठं पतिव्रते ! । यस्मिन् साधन-
मात्रेण सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । मायावती मधुपुरी काशी गोरक्ष-
कारिणी । हिङ्गुला च महापीठं तथा जालाम्बरं पुनः ।
ज्वालामुखी महापीठं पीठं नगरसम्भवम् । रामगिरिर्महापीठं
तथा गोदावरी प्रिये ! । नेपालं कर्णसूत्रञ्च महाकर्णं तथा
प्रिये ! । अयोध्याञ्च कुरुक्षेत्रं सिंहनादं मनोरमम् । मणिपूरं
हृषीकेशं प्रयागञ्च तपोवनम् । वदरीञ्च महापीठं अम्बिका
अर्धनालकम् । त्रिवेणी च महापीठं गङ्गासागरसङ्गमम् ।
नारिकेलञ्च विरजा उड्डीयानं महेश्वरि ! । कमला विमला
चैव तथा साहिष्णवीपुरी । वाराही त्रिपुरा चैव वाग्मती
नीलवाहिनी । गोवर्द्धनं विन्ध्यगिरिः कामरूपं कलौ युगे ।
घण्टाकर्णो ह्यग्रीवो साधवश्च सुरेश्वरि ! । क्षीरघामं वैद्यनाथं
जानीयादामलोचने ! । कामरूपं महापीठं सर्वकामफलप्रदम् ।
कलौ शौन्रफलो देवि ! कामरूपे जपः स्मृतः । अन्यत्र जपे-

ऽलिकामाख्यावस्तयोगिन फलमुक्तं तत्रैव ॥ कामाख्यावस्त-
मादाय जपपूजां समाचरेत् । पूर्णकामं लभेद्देवि ! सत्यं सत्यं
न संशयः ॥ तन्वचूडामणौ महापीठनिरूपणं यथा । ईश्वर
उवाच ॥ मातः ! परात्परे ! देवि ! सर्वज्ञानमयीश्वरि ! कथ्यतां
मे सर्वपीठं शक्तिभैरवदेवता ॥ देव्युवाच ॥ शृणु वत्स ! प्रव-
क्ष्यामि दयालो ! भक्तवत्सल ! । याभिर्विना न सिध्यन्ति
जपसाधनतत्क्रियाः । एकपञ्चाशत् पीठं शक्तिभैरवदेवता ।
अङ्गप्रत्यङ्गपातेन विष्णुचक्रक्षतेन च । ममास्य वपुषो देव-
हिताय त्वयि कथ्यते । ब्रह्मरन्ध्रं हिङ्गुलायां भैरवो भीम-
लोचनः । कोट्टरीशो महादेवस्त्रिगुणा या दिगम्बरी ॥ १ ॥
करवोरि त्रिनेत्रं मे देवी महिषमर्दिनी । क्रोधीशो भैरवस्तत्र
। २ । सुगन्धायाञ्च नासिका । देवस्यम्बकनामा च सुनन्दा
तत्र देवता ॥ ३ ॥ काश्मीरे कण्ठदेशश्च त्रिसन्ध्येश्वरभैरवः ।
महामाया भगवती गुणातीता वरप्रदा ॥ ४ ॥ ज्वालामुख्यां
महाजिह्वा देव उन्मत्तभैरवः । अश्विका सिद्धिदानाङ्गी । ५ ।
स्तनं जालान्धरे मम । भीषणो भैरवस्तत्र देवी त्रिपुरमालिनी
॥ ६ ॥ हृद्यपीठं वैद्यनाथे वैद्यनाथस्तु भैरवः । देवता जयदुर्गाख्या
। ७ । नेपाले जानु मे शिव ! । कपाली भैरवः श्रीमान् महामाया
च देवता ॥ ८ ॥ मानवे दक्षहस्तं मे देवी दाक्षायणी हर ! ।
अमरो भैरवस्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ९ ॥ उल्लले नाभिदेशस्तु
विरजाक्षेत्रमुच्यते । विमला सा महद्देवी जगन्नाथस्तु भैरवः ॥ १० ॥
गण्डकां गण्डपातश्च तत्र सिद्धिर्न संशयः । तत्र सा गण्डकी
चण्डी चक्रपाणिस्तु भैरवः ॥ ११ ॥ बहुलायां वामबाहुर्बहु-
लाख्या च देवता । भीरुको भैरवस्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ १२ ॥
उज्जयिन्यां कूर्परञ्च माङ्गल्यकपिलाम्बरः । भैरवः सिद्धिदः
साक्षाद्देवी मङ्गलचण्डिका ॥ १३ ॥ चटले दक्षबाहुर्मे भैरवश्चन्द्र-

शेखरः । व्यक्तरूपा भगवती भवानो तत्र देवता । विशेषतः
 कलियुगे वसामि चन्द्रशेखरे ॥ १४ ॥ त्रिपुरायां दक्षपादो देवो
 त्रिपुरसुन्दरी । भैरवस्त्रिपुरेश्वरः सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥ १५ ॥
 त्रिस्रोतायां वामपदो भ्रामरो भैरवेश्वरः ॥ १६ ॥ योनिपीठं
 कामगिरौ कामाख्या तत्र देवता । यत्रास्ते त्रिगुणातीता
 रक्तपाषाणरूपिणी । यत्रास्ते माधवः साक्षादुमानन्दोऽथ
 भैरवः । सर्वदा विहरेद्देवो तत्र मुक्तिर्न संशयः । तत्र श्रीभै-
 रवी देवी तत्र न क्षेत्रदेवता । प्रचण्डचण्डिका तत्र मातङ्गी
 त्रिपुरात्मिका । वगला कमला तत्र भुवनेशी सधूमिनी । एतानि
 नव पीठानि शंसन्ति वरभैरवाः ॥ १७ ॥ अङ्गुलीवृन्दं हस्तस्य
 प्रयागे ललिता भव ! ॥ १८ ॥ जयन्त्यां वामजङ्घा च जयन्ती क्रम-
 दीश्वरः । सर्वत्र विरला चाहं कामरूपे गृहे गृहे । गौरीशिवश्च-
 मारुह्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १९ ॥ भूतधात्री महामाया भैरवः
 क्षीरकण्ठकः । युगाद्या सा महामाया दक्षाङ्गुष्ठः पदो मम ।
 नकुलीशः कालीपीठे दक्षपादाङ्गुलीषु च ॥ २० ॥ करतोयां
 समारभ्य यावद्विह्वरवासिनी । शतयोजनविस्तारं त्रिकोणं सर्व-
 सिद्धिदम् । देवा मरणमिच्छन्ति किं पुनर्मानवादयः ॥ इति
 कापरूपमाहात्म्यम् ॥ भुवनेशी सिद्धिरूपा किरीटस्था किरी-
 टतः । देवता विमलानाम्नी संवर्तो भैरवस्तथा ॥ २१ ॥ वारा-
 णस्यां विशालाक्षो देवता कालभैरवः । मणिकर्णीतिविख्याता
 कुण्डलञ्च मम श्रुतेः ॥ २२ ॥ कात्यायने च मे पृष्ठं निमिषो
 भैरवस्तथा । सर्वाणि देवता तत्र ॥ २३ ॥ कुरुक्षेत्रे च गुरुप्रतः ।
 स्थाणुनाम्नी च सावित्री अश्वनाथस्तु भैरवः ॥ २४ ॥ मणिवन्द्ये
 च गायत्री सर्वानन्दस्तु भैरवः ॥ २५ ॥ श्रीशैले च मम श्रीवा
 महालक्ष्मीस्तु देवता । भैरवः संवरानन्दो देशे देशे व्यव-
 स्थितः ॥ २६ ॥ काञ्चीदेशे च कङ्कालो भैरवो रुक्मनामकः ।

देवता देवगर्भाख्या । २७ । नितम्बः कालमाधवे । भैरवश्चा-
 सिताङ्गश्च देवी काली सुसिद्धिदा ॥ २८ ॥ दृष्ट्वा दृष्ट्वा नमस्कृत्य
 मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् । शोणाख्ये भद्रसेनस्तु नर्मदाख्या नित-
 म्बके ॥ २९ ॥ रामगिरौ तथा नाला शिवानो चण्डभैरवः ।
 ३० ॥ वृन्दावने केशजाल उमानाक्षी च देवता । भूतेशो भैरव-
 स्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ३१ ॥ संहाराख्य ऊर्ध्वदन्ते देवी
 नारायणी शुची ॥ ३२ ॥ अधोदन्ते महारुद्रो वाराही पञ्चसा-
 गरे ॥ ३३ ॥ करतोयातटे तल्पं वामे वामनभैरवः । अपर्णा
 देवता तत्र ब्रह्मरूपा करोद्भवा ॥ ३४ ॥ श्योपर्वते दक्षगुल्फं तत्र
 श्योसुन्दरी परा । सर्वसिद्धीश्वरो सर्वा सुनन्दानन्दभैरवः ॥ ३५ ॥
 कपालिनी भीमरूपा वामगुल्फं विभाषके । भैरवश्च महादेवः
 सर्वानन्दः शुभप्रदः ॥ ३६ ॥ उदरञ्च प्रभासे मे चन्द्रभागा यश-
 स्विनी । वक्रतुण्डो भैरवश्च ॥ ३७ ॥ ऊर्ध्वेष्टे भैरवपर्वते । अवन्त्याञ्च
 महादेवी लम्बकर्णस्तु भैरवः ॥ ३८ ॥ चित्रके भ्रामरी देवी किङ्कु-
 भाख्या जले स्थले । भैरवः सर्वसिद्धीशस्तत्र सिद्धिरनुत्तमा ॥ ३९ ॥
 गण्डो गोदावरीतीरे विश्वेशो विश्वमातृका । दण्डपाणिर्भैर-
 वस्तु । ४० । वामगण्डे तु राकिणी । भैरवो वत्सनाभस्तु तत्र
 सिद्धिर्न संशयः ॥ ४१ ॥ रत्नावल्यां दक्षस्कन्धे कुमारीभैरवः शिवः
 ॥ ४२ ॥ मिथिलायां महादेवी वामस्कन्धे महोदरः । ४३ ।
 नलाहाव्यां नलापातो योगीशो भैरवस्तथा । तत्र सा कालिका
 देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका ॥ ४४ ॥ कालीघाटे मुण्डपातः क्रो-
 धोशो भैरवस्तथा । देवता जयदुर्गाख्या नानाभोगप्रदायिनी
 ॥ ४५ ॥ वक्रेश्वरे मनःपातो वक्रनाथस्तु भैरवः । नदी पाप-
 हरा तत्र देवी महिषमर्दिनी ॥ ४६ ॥ यशोहरे पाणिपद्मं देवी
 यशोहरेश्वरी । चण्डश्च भैरवस्तत्र यत्र सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
 अट्टहासे चौष्टपातो देवी सा फुल्लरा स्मृता । विश्वेशो भैरवस्तत्र

सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥ ४८ ॥ हारपातो नन्दिपुरे भैरवो नन्दिके-
श्वरः । नन्दिनी सा महादेवी तत्र सिद्धिर्न संशयः ॥ ४९ ॥
लङ्कायां नूपुरञ्चैव भैरवो राक्षसेश्वरः । इन्द्राक्षी देवता तत्र
इन्द्रेणोपासिता पुरा ॥ ५० ॥ विराटदेशमध्ये तु पादाङ्गुलि-
निपातनम् । भैरवश्चासृताख्यश्च देवी तत्रास्त्रिका स्मृता ॥ ५१ ॥
तत्रास्ते कथिताः पुत्र ! पीठनाथाधिदेवताः । क्षेत्राधीशं विना
देवं पूजयेच्चाप्यदेवताम् । भैरवैर्द्ध्यते सर्वं जपपूजादिसाध-
नम् । अज्ञात्वा भैरवं पीठं पीठशक्तिञ्च शङ्कर ! । प्राणनाथ ! न
सिध्येत्तु कल्पकोटिजपादिभिः । न देयं परशिष्येभ्यो निन्दकाय
दुरात्मने । शठाय क्रूरकार्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् । दद्या-
च्छान्ताय शिष्याय मन्त्री मन्त्रार्थसिद्धये । महानीलतन्त्रे पञ्चम-
पटले ॥ पीठार्चनं महादेवि ! यत्र सिद्धिरनुत्तमा । पीठानां
परमं पीठं कामरूपं महाफलम् । तत्र या क्रियते पूजा सङ्क-
हापि महेश्वरि ! । विहाय सर्वपीठानि तस्य देहे वसाम्यहम् ।
तस्माच्छतगुणं प्रोक्तं कामाख्यायोनिमण्डलम् । तेषां फलं महेश-
ानि ! वक्तुं किं शक्यते मया । तत्र कोटिगुणैः सार्द्धमाद्या
वसति तारिणी । यत्पीठं ब्रह्मणा गुप्तं वक्तुं सर्वसुखावहम् ।
यतो देवाश्च विदाश्च मुनयश्चैव भावजाः । सर्वेऽप्याविर्भवन्त्येते
तेन गुप्तं सदा कुरु । द्विविधञ्चैव यत्पीठं गोप्तव्यं तन्महेश्वरि ! ।
वक्ताद्गुप्तं महापुण्यं दुरापं साधकाधमैः । व्यक्तं सर्वत्र देवेशि !
लभ्यते कुलसुन्दरि ! । पीठप्रसङ्गाद्देवेशि ! पीठानि शृणु भैरवि ! ।
शृणु तानि महाप्राज्ञे ! श्रेष्ठस्थानानि यानि च । सिद्धिप्रदानि
साधूनां महद्भिः सेवितानि च । पुष्करञ्च गयाक्षेत्रमक्षयाख्यवट-
स्तथा । वराहपर्वतञ्चैव तीर्थञ्चामरकण्ठकम् । नर्मदा यमुना
पिङ्गी गङ्गाद्वारं तथा प्रिये ! । गङ्गासागरसङ्गञ्च कुशीवर्त्तञ्च विष्ण-
कम् । श्रीनीलपर्वतञ्चैव कलम्बकुञ्जके तथा । भृगुतुङ्गञ्च केदारं

सर्वप्रियं महाबलम् । ललिता च सुगन्धा च शाकम्भरी पुर-
 प्रियम् । कर्णतीर्थं महागङ्गा तण्डुलिकाश्रम एव च । कुमा-
 राख्यप्रभासौ च तथा धन्या सरस्वती । अगस्त्याश्रममिष्टं मे
 कर्णाश्रममतः परम् । कौशिकीसरयूशोणज्योतिःसरपुरः-
 सरम् । कालोदकं प्रियं श्रीमत् प्रियमुत्तममानसम् । पतङ्ग-
 वापी सप्तार्चिर्महाविष्णुपदं महत् । वैद्यनाथं महातीर्थं प्रियः
 कालञ्जरो गिरिः । रामोच्छेदं गर्गोच्छेदं हरोच्छेदं महा-
 ननम् । भद्रेश्वरं महातीर्थं लक्ष्मणच्छेदमेव च । जानीहि
 प्रियथेष्ठा च कावेरी कपिलोदका । सोमेश्वरं शुक्लतीर्थं कृष्ण-
 वेल्वाप्रभेदकम् । पाठला च महाबोधिर्नगतीर्थं मदन्तिके ।।
 पुण्यं रामेश्वरं देवि ! तथा मेघवनं हरेः । ऐलमवनकञ्चैव
 गोवर्द्धनमजप्रियम् । हरिश्चन्द्रं पुरश्चन्द्रं पृथूदकमतिप्रियम् ।
 इन्द्रनीलं महानादं तथैव प्रियमैनकम् । पञ्चासरं पञ्चवटी
 वटी पर्वटिका तथा । गङ्गाविल्वप्रसङ्गश्च प्रियनादवटं तथा ।
 गङ्गारामाचलञ्चैव तथैव ऋणमोचनम् । गौतमेश्वरतीर्थञ्च वशिष्ठ-
 तीर्थमेव च । हारीतञ्च तथा देवि ! ब्रह्मावर्त्तं शिवप्रियम् । कुशा-
 वर्त्तमतिश्रेष्ठं हंसतीर्थं तथैव च । पिण्डारकवनं ख्यातं हरिद्वारं
 तथैव च । तथैव वदरीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च । जयन्ती-
 विजयन्तञ्च सर्वकल्याणदं प्रिये ।। विजया शारदातीर्थं भद्र-
 कालेश्वरं तथा । अश्वतीर्थं सुविख्यातं तथा देवशिवप्रियम् ।
 ओघवती नदी चैव तीर्थमश्वप्रदं तथा । कागलिङ्गमाढगणं
 करवीरपुरं तथा । सप्तगोदावरं तीर्थं लिङ्गाख्यं सर्वमोहनम् ।
 किरौटमुत्तरे तीर्थं दक्षिणे तीर्थमुत्तमम् । विशालतीर्थं काल्याश्च
 वनं हन्दावनं तथा । ज्वालामुखी हिङ्गुला च महातीर्थं गण-
 ेश्वरम् । जानीहि सर्वतीर्थानां हेतुस्थानानि सुन्दरि ।।
 अत्र सन्निहिता नित्यं सर्वे देवा महर्षयः । पितरो योगिनश्चैव

ये ये सिद्धिपरायणाः । आशु सिध्यन्ति कर्माणि अद्वाभक्ति-
मतां प्रिये ।। पुण्यकाले पठेद् यस्तु तत्पुण्यमक्षयं भवेत् ।
आश्वकाले पठेत् यस्तु जुहुयाद्वापि भक्तितः । अक्षयं तद्ववेत्
कथं पितृणां परमं सुखम् । अस्मिन् स्थाने पठेद् यस्तु सिद्धि-
र्भवति तत्क्षणात् ॥ अथ वक्ष्ये महेशानि ! यत्र या देवता
शृणु । यत्र ते यानि नामानि कथयिष्यामि तत् शृणु । मङ्गो-
ऽहं परमानन्दे तत्त्वयामृतवारिधौ । पुष्करे कमलाक्षौ च गया-
याञ्च गयेश्वरी । अक्षया अक्षयवटेऽमरेशोऽमरकण्ठके ।
वराहपर्वते च त्वं वराहो धरणीप्रिया । नर्मदा नर्मदायाञ्च
कालिन्दी यमुनाजले । शिवाश्रुता च गङ्गायां अश्वा देहलिका-
श्रमे । शारदा सरयूतीरे शोणे च कनकेश्वरी । अप्रकाशा
यदा देवी ज्योतिर्मय्यध्विसङ्गमे । श्रीरहं श्रीगिरी चैव काली
कालोदके तथा । महोदरी महातीर्थं नीला चोत्तरमानसे ।
मातङ्गिन्यां सतङ्गे च गुप्तार्चिविष्णुपादुके । स्वर्गदा स्वर्गमार्गे
च गोदावर्यां गवेष्वरी । विमुक्तिश्चैव गोमत्यां पिपाशायां
महाबला । शतद्रुं शतरूपा च चन्द्रभागा च तत्र वै । ऐरा-
वत्याञ्च ईर्नाम सिद्धिदा सिद्धितोरके । दक्षपञ्चनदे चैव दक्षि-
णाहं प्रकीर्तिता । श्रीजसे वीर्यदा च त्वं सङ्गमा तीर्थसङ्गमे ।
बाहुदायामनन्ताहं कुन्देने रणेक्षणा । तपस्विनी पुण्यतमा
भारती भारताश्रमे । सुकथा नैमिषारण्ये पाण्डौ च पाण्डुरा-
नना । विशालायां विशालाक्षी मुण्डपृष्ठे शिवात्मिका । अद्वा
कनखले तीर्थं शुद्धबुद्धिर्मनीश्वरी । सुवेशा सुमना गौरी मानसे
च सरोवरे । नन्दापुरे महानन्दा ललिता ललितापुरे । ब्रह्माणी
ब्रह्मशिरसि महापातकनाशिनी । पूर्णिमा चेन्दुमत्याञ्च काञ्चरा-
मतिप्रिया सदा । जाङ्गवीसङ्गमे वृत्तिः स्वधा च पितृतुष्टदा ।
पुण्याहं बहुसित्याञ्च प्रपायां पापनाशिनी । शङ्खसंहारिणी

चैव घोररूपा महोदरी । स्वर्गोच्छेदे महावारिः प्रबला च
 महावने । भद्रा च भद्रकाली च भद्रेश्वरी शिवप्रिया । भद्रे-
 श्वरे रमा विष्णुप्रिया विष्णुपदे तथा । दारुणा नर्मदाच्छेदे
 कावेर्यां कपिलेश्वरी । मेदिनी कृष्णवेत्तायां सन्भेदे शुभ-
 वासिनी । अज्ञा च शुक्रतीर्थं च प्रभासे चेश्वरी तथा । महा-
 बोधी महाबुद्धिः पटले पाटलेश्वरी । सुबला नागतीर्थं च
 नागेशी नागवन्दिता । मदन्ती च मदन्ती च प्रमदा च मद-
 न्तिका । मेघस्वना मेघवामे विद्युत् सौदामिनीच्छदा । रामे-
 श्वरे महाबुद्धिर्वीरा चेलापुरे सती । प्रिया च मार्गजे दुर्गा सुरेशा
 सुरसुन्दरी । कात्यायनी महादेवी गोवर्द्धनेऽखिलात्मिका ।
 शुभेश्वरी हरिश्चन्द्रे पुरचन्द्रे पुरेश्वरी । वृधूदके महाविद्या मैनाके-
 ऽखिलवर्द्धिनी । इन्द्रनीले महाकान्ता रत्नवेशा सुशोभना ।
 माहेश्वरी महानादे महातेजा महाबले । पत्यपासरसि सारङ्गा
 पञ्चकक्षां तपस्विनी । वटीशावटिकायाञ्च सर्ववर्णा सुरङ्गिणी ।
 सङ्गमे विन्ध्यगङ्गायां विन्ध्ये श्रीविन्ध्यवासिनी । महानन्दा नन्द-
 तटे गङ्गबालाचले शिवा । आर्यावर्त्तं महाय्या त्वं विमुक्ति-
 कर्त्तृणमोचने । अट्टहासे च चामुण्डा तन्त्रे श्रीगौतमेश्वरी ।
 वेदमयी ब्रह्मविद्या वशिष्ठे त्वमरुन्धती । हरिते हरिणाची च
 ब्रह्मावर्त्तं ब्रजेश्वरी । गायत्री चैव सावित्री कुशावर्त्तं कुश-
 प्रिया । हंशेश्वरी महातीर्थं परहंसेश्वरेश्वरी । पिण्डारकवले
 धन्या सुरसा सुखदायिनी । नारायणी वैष्णवी च गङ्गाहारे
 विमुक्तिदा । श्रीविद्या वदरीतीर्थं रामतीर्थं महाधृतिः । जयन्ती
 च जयन्ते त्वं विजयन्तेऽपराजिता । विजया च महाशुद्धिः
 शारदायाञ्च शारदा । सुभदे भद्रदा भव्या भद्रकालेश्वरे तथा ।
 महाभद्रा महाकाली हयतीर्थं गवौश्वरी । वेददा वेदमाता च
 विदेशे वेदमस्तके । युवत्याञ्च महाविद्या महानद्यां महोदया ।

चण्डा च त्रिपदे चैव कागलिङ्गे बलिप्रिया । मातङ्गेशे जग-
न्नाता करवीरपुरे सती । मलिनी रङ्गिणी रामा परमा परमे-
श्वरी । सप्तगोदावरे तीर्थे देवर्षिरखिलेश्वरी । अयोध्यायां
भवानी च जयदा जयमङ्गला । माधवी मथुरायाञ्च देवकी
यादवेश्वरी । वृन्दा गोपेश्वरी राधा रासवृन्दावने रमे । कात्या-
यनी महामाया भद्रकाली कलावती । चन्द्रमाला महायोगा
महायोगिन्यधीश्वरी । वज्रेश्वरी यशोदेति वज्रश्रीगोकुलेश्वरी ।
काञ्चा कनककाञ्ची स्यादवन्त्यामतिपावनी । विद्या विद्या-
पुरे चैव विमला नीलपर्वते । रामेश्वरी सेतुबन्धे विमला
पुरुषोत्तमे । विरजा यागपुर्याञ्च भद्रेऽपि भद्रकर्णिका ।
तमोलिप्ते तमोघ्नी च स्वाहा सागरसङ्गमे । कुलश्रीर्विशृङ्खलेश्वरी
साधवी माधवप्रिया । मङ्गला मङ्गले कोटे राढ़े मङ्गल-
चण्डिका । ज्वालामुखी शिवापीठे मन्दरे भुवनेश्वरी । कालि-
घट्टे गुह्यकाली किरीटे च महेश्वरी । किरीटेश्वरी महादेवी
लिङ्गाख्ये लिङ्गवाहिनी । साक्षी सर्वत्र भक्तानामभक्तानां
कुतोऽपि न ॥ अथान्यत् सम्भवन्त्यामि सिद्धस्थानानि सुन्दरि ! ।
सर्वपापविनाशार्थं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् । निर्मितानि शिवेनेह
सिद्धस्थानानि यानि च । श्रुत्वा मनसि भाव्यानि प्रकाश्यान्-
धिकारिषु । अमरेशमहापीठे कुशतुङ्गारसञ्चकः । तत्र दुर्गा-
द्वयं नाम चण्डिका च महेश्वरी । प्रभासे सोमनाथोऽसौ देवी
च पुष्करेक्षणा । देवदेवाधिपः शम्भुर्नैमिषे च महेश्वरः ।
तत्र प्रज्ञा च देवी च शिवानी लिङ्गधारिणी । पुष्करे च राज-
गन्धिः पुरङ्गता महेश्वरी । श्रीपर्वते त्रियो नाम शङ्करस्त्रिपुरा-
न्तकः । मायावी शङ्करी तत्र भक्तानामखिलार्थदा । जम्बे-
श्वरे महास्थाने शङ्करी च त्रिशूलिनी । त्रिशूली शङ्करस्तत्र
सर्वपापविमोचकः । आम्नातकेश्वरे सूक्ष्मा सूक्ष्माख्या परमेश्वरी ।

गणक्षेत्रे मङ्गलाख्या शिवो यः प्रपितामहः । कुरुक्षेत्रे शिव-
 स्थाणुः शिवास्थाणुः श्रिया परा । इष्टलामे स्वयम्भूश्च देवी स्वाय-
 भ्रुवा मता । उग्रः कनखले प्रोक्तः शिवोऽग्रे शिववत्सभा । विमले-
 श्वरे विश्वशम्भुर्विश्वाविश्वप्रिया सदा । अट्टहासे महानन्दो महा-
 नन्दा महेश्वरी । महान्तको महेन्द्रश्च पार्वती च महान्तका ।
 भीमेश्वरो भीमपीठे शिवा भीमेश्वरी तथा । वस्त्रपादे भवो
 नाम भवान्भी भुवनेश्वरी । अद्रिकूटे महायोगी रुद्राणी परमे-
 श्वरी । अविमुक्ते महादेवो विशालाक्षी शिवा परा । महामाये
 हरो रुद्रो महाभागा शिवा तथा । महाबलश्च गोकर्णे शिव-
 भद्रा च चण्डिका । भद्रकर्णे महादेवो भद्रा च कर्णिका तथा ।
 सुपर्णाख्ये सहस्राख्य उत्पला परमेश्वरी । स्थाणुसंज्ञे शिवस्था
 श्रीस्वरस्था श्रीधरा शिवा । कनकालये महास्थाने कमलाख्यो
 महेश्वरः । कमलाक्षी महेशानि । सकलार्थप्रदायिनी ।
 कागला तु कपर्दी च प्रसभा च महेश्वरी । ऊर्ध्वरेता वरेण्ये च
 सन्ध्याख्यपरमेश्वरी । साकोटाख्यमहाकोटा शिवा च मुखके-
 श्वरी । मातुलेश्वरपीठे च करवीरा च शेखरा । श्रीमद्वाग्नपुरे
 साक्षाद्भरनामा सभापतिः । शिवः सभापतिर्नाम यत्र नृत्यति
 शङ्करः । आत्मानन्दमहानादपूर्णानन्दमहार्णवम् । नृत्यन्तं यत्र
 देवेशं देवेशी परिपश्यति । यत्र आशु महादेवो भक्तानां
 वरदो भवेत् । नृत्यन्तं यत्र सर्वेशं वीक्ष्य लोको विमुच्यते ।
 पुण्यस्थानेषु सर्वेषु स्थानमेतच्चहोत्तमम् । यद् यत्कर्माणि
 सर्वाणि अक्षयाणि भवन्ति वै । तस्मिन् महोत्तमे स्थाने शिव-
 गङ्गाख्यमद्भुतम् । तडागमस्ति तत्तीरे दक्षिणे नृत्यतीश्वरः ।
 तडागेऽस्मिन् वसन् स्नात्वा सभानाथं समीक्षते । अष्टोत्तर-
 सहस्रान्तु जपेच्छुद्धो मुदान्वितः ॥ यानि ते कथितान्यत्र सदा
 तिष्ठन्ति देवताः । पितरः सिद्धगन्धर्वाः सिद्धयः सर्वसिद्धिदाः ।

अत्र दत्तं हुतं जप्तं स्नानमक्षयपुण्यदम् । यद् यत् प्रकीर्तितं नाम
भैरवं परिपूज्य च । प्रणवादि हृदन्ते च लभतेऽभीष्टसुत्तमम् ।
भोजयेद् ब्राह्मणान् योऽत्र अक्षयं फलमश्नुते । इह नानासुखं
भुक्त्वा हरगौरौपुरं व्रजेत् । शोकदुःखविनाशोऽयं करुणा-
निधिरीश्वरः । निर्ममे सर्वसम्पत्तयै पुण्यक्षेत्राणि भूतले । अकाले
पुण्यशुद्धानामनेकैः पुण्यसाधनैः । आस्तिकानां भवेदत्र निवासः
साधनं प्रति । तस्माद् यत्नेन कर्तव्यमत्र साधनसुत्तमैः ।
इदानीं शृणु चार्वङ्गि ! पीठं सर्वाङ्गसुन्दरम् । अक्षमालामयं
पीठं ब्रूहि मे परमेश्वरि ! । यत्र सिध्यन्ति कार्याणि स्थितिस्ते
शङ्करस्य च । विष्णोरगाधबोधस्य तत्प्रियाया महेश्वरि ! ।
अन्येषाञ्चैव देवानां युग्मं पदनिवासिनाम् । प्रसादो हि भव-
त्याशु तत्र च प्रीतिरुत्तमा ॥

अथ पूजाकालः समयाचारतन्त्रे प्रथमपटले ॥ पूज-
नादिषु यः कालो देवानाञ्च पृथक् पृथक् । स कालः समयो
नाम यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ तथा । प्रातर्मध्याह्नकः कालः प्रदो-
षश्च तृतीयकः । रात्रिप्रथमयामश्च चतुर्थः परिकीर्तितः ।
पञ्चमस्वर्द्धरात्रश्च पञ्च कालाः प्रकीर्तिताः । दिनस्य प्रथम-
स्यादौ कालः प्रथम ईरितः । दिनमध्ये तु यः कालो द्वितीयः
परिकीर्तितः । सूर्यास्तरजनीकादौ प्रदोषो यस्तृतीयकः ।
ब्राह्मणमुहूर्त्तावधिकमर्द्धरात्रादनन्तरम् । कालः षष्ठात्मको ज्ञेयो
देवानामपि दुर्लभः । शान्तिकर्म तथा वश्यं स्तम्भदेषण-
मोहनम् । उच्चाटनं मारणञ्च कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
शान्त्यर्थं प्रथमः कालो मध्याह्नस्तदनन्तरम् । सायं सूर्यास्त-
समयस्त्रिकालानामयं क्रमः ॥ मत्स्यसूक्ते पञ्चमपटले ॥ अनुक्त-
काले सर्वत्र दिवसादौ शुभेऽहनि । भागानुक्ते समं कुर्याद्
वारानुक्ते गुरोर्दिने । तिथ्यनुक्तेऽष्टमी ग्राह्या नक्षत्रे रोहिणी

मता । योगेऽनुक्ते ध्रुवो योगः सर्वत्रैष विधिः स्मृतः । योगिनी-
तन्त्रे पूर्वखण्डे द्वितीयपटले ॥ गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरा-
वधि । कालो नक्तं जपस्योक्तं पूजाकालमिति शृणु । सार्धं
यामगते नक्ते सार्धयामः स्थितो यदा । पूजाकालो भवेद् याम-
श्चतुर्वर्गप्रदः सदा । श्लिष्टे द्वे घटिके ये तु रात्रेर्मध्यमयामयोः ।
सा महारात्रिस्त्रिष्टा तत्कृतं त्वक्षयं फलम् । यद् यज्जप्तं हृतं
यद् यत् यत् कृतं मोक्षसाधनम् । सर्वं तदक्षयं याति तथा-
नन्थाय कल्पते ॥

गुप्तसाधनतन्त्रे षष्ठपटले ॥ निशा तु परमेशानि ! सूर्यं
✓ चाक्षुमुपागते । प्रहरं च गते रात्रौ घटिके द्वे परे च ये ।
महानिशा समाख्याता ततश्चातिमहानिशा । तन्वान्तरे घटिका-
द्वयमेव चेति पाठः । अतिमहानिशान्तमुक्ता तु । तत्र न
पूजयेद्देवीं पशुभावः कदाचन । दशदण्डे तु या पूजा तत्सर्व-
मक्षयं भवेत् । षष्ठक्रोशे महेशानि ! तत् सर्वममृतं प्रिये ! ।
सप्तमक्रोशके देवि ! सर्वं क्षीरोपमं भवेत् । अष्टमक्रोशक
इत्यादि समानम् । अर्द्धरात्रे गते देवि ! सर्वं क्षीरोपमं स्मृतम् ।
अष्टमक्रोशके देवि ! द्रव्यतुल्यं न संशयः । अतः परं महेशानि !
विषतुल्यं न संशयः । एतत् सर्वं महेशानि ! पशुभावे मयो-
दितम् । दिव्यवीरमते देवि ! तत्त्वज्ञाने प्रपूजयेत् । पञ्चतत्त्वं
✓ समानीय यदि पूजापरो भवेत् । कालाकालविचारान्तु देवि !
तत्र विवर्जयेत् । अर्द्धरात्रे गते देवि ! कूलपूजा प्रकीर्तिता ।
तत्तत्तन्वानुसारेण सर्वपूजादिकञ्चरेत् ॥

बृहन्मुण्डमालातन्त्रे ॥ आगमप्रकाशधृते ॥ शरत्कालेऽथवा
✓ चैत्रे सूर्येन्दुसङ्गमेऽसिता । अर्द्धरात्रेऽर्चिता देवी भोगस्वर्गप-
वर्गदा । सूर्येन्दुसङ्गमेऽमावस्यायाम् । असिता श्यामा कालि-
केति यावत् ॥ आगमसारे ॥ तुलामकरमेषु कुहं प्राप्य सुरे-

श्वरि ! । पूजयेत् कालिकां देवीं चतुर्वर्गफलाप्तये ॥ नन्दिकेश्वर-
तन्त्रे ॥ निशोथे कार्तिके कुह्वां यजेद्दीपान्वितादिने । कालिकां
कालिका तस्य सर्वाभीष्टप्रदायिका । प्रतिसंवत्सरं कुर्यात्
कालिकाया महोत्सवम् । कार्तिके तु विशेषेण अमावस्यां
निशार्द्धके । तस्यां सम्पूजयेद्देवीं भोगमोक्षप्रदायिनीम् । तुलायां
कुजवारोऽपि कुहुरेव यदा भवेत् । प्रगल्भान्तु जगद्धात्रीं पूज-
येद्दीपतमङ्गलैः । मुण्डमालातन्त्रे ॥ तुलादित्यनिशार्द्धे तु पञ्च-
दश्यां नगात्मजे । पूजयेत् कालिकां तत्र प्रचण्डां मुण्डमा-
लिनीम् ॥ षष्ठपटले ॥ दिवापूजा विधातव्या निशापूजा महे-
श्वरि ! । सन्ध्यापूजा विधातव्या तदा सिद्धिमवाप्नुयात् । न दिवा
न निशाभागे न सन्ध्यायां कदाचन । पूजयेन्न जगद्धात्रीं हलायां
परिपूजयेत् । दिवा न पूजयेद्देवीं रात्रौ नैव च नैव च ।
सर्वदा पूजयेद् देवीं दिवा रात्रौ न पूजयेत् । वचनत्रयाणां
इति दिव्यवीरविषयत्वेन समाधानमतो न कश्चिदोषः । तथा च
निरुत्तरतन्त्रे प्रथमपटले ॥ न दिवा पूजयेद्दीरः पशूरात्रौ न
पूजयेत् । विपरीतं महेशानि ! अभिचाराय कल्पते ॥ ननु
प्रागुक्तगुप्तसाधनतन्त्रोक्तवचनेन पशूनां षोडशदण्डात्मक-
रात्रिमध्ये पूजाश्रवणात् रात्रौ पशुकर्तृकपूजननिषेधः कथं
सङ्गच्छत इति चेत् सत्यम् । नन्दिकेश्वरमुण्डमालातन्त्रयोर्वच-
नैरागमप्रकाशष्टतैः सहैकवाक्यतया गुप्तसाधनतन्त्रोक्तवचनं
दीपान्वितादिनिमित्तकर्तृव्यश्यामादिपूजाविषयकम् । निरुत्तर-
तन्त्रन्तु नित्यपूजाविषयमिति सर्वं समञ्जसम् । दिवावीरपूजा-
निषेधोऽपि पञ्चतत्त्वहीनपूजाविषयत्वेन बोद्धव्यः । अन्यथा पूर्वोक्त-
कालाकालेतिवचनमनर्थकं स्यात् । अतिनिशायां पूजानिषेधस्तु
अप्रशस्तकालार्थः । अन्यथा द्रव्यस्यासृत्तत्वादिकीर्तनस्य वैयर्थ्यं
स्यात् । सार्द्धयामेत्याद वस्तुतस्तु कुलपूजाविषयम् । महानि-

र्वाणतन्त्रे चतुर्दशोक्तासि ॥ देव्युवाच ॥ यद्यकस्माद्देवतानां पूजा-
 बाधो भवेद्दिभो ! । विधेयं तत्र किं भक्तैस्तु न्मे कथय तत्त्वतः ।
 अपूजनीयाः कैर्दोषैर्भवेयुर्देवमूर्त्तयः । त्याज्या वा केन दोषेण
 तदुपायश्च भण्यताम् ॥ श्रीसदाशिव उवाच ॥ एकाहमर्चना-
 बाधात् द्विगुणं देवपूजनम् । दिनद्वये भवेद्द्विगुणं तद्वैगुण्यं दिन-
 त्रये । ततः षण्मासपर्यन्तं यदि पूजा न सम्भवेत् । तदाष्ट-
 कलसैर्देवं स्नापयित्वा यजेत् सुधीः । षण्मासात् परतो देवं
 प्राक् संस्कारविधानतः । पुनः सुसंस्कृतं कृत्वा पूजयेत् साधका-
 ग्रणीः । खण्डितं स्फुटितं व्यङ्ग्यं संस्पृष्टं कुष्ठरोगिणा । पतितं
 दुष्टभूस्यादौ न देवं पूजयेद्बुधः । ह्येनाङ्गं स्फुटितं भग्नं देवं
 तोये विसर्जयेत् । स्पर्शादिदोषदुष्टान्तु संस्कृत्य पुनरर्चयेत् । मन्त्रा-
 पीठैः नादिलिङ्गैः सर्वदोषविवर्जिते । सर्वदा पूजयेत्तत्र स्वस्वमिष्टं
 सुखाप्तये ॥ अथ प्रायश्चित्तम् ॥ श्यामारहस्यधृतलिङ्गागमे ॥
 शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तमनुत्तमम् । तद्विशुद्धिश्च विधि-
 बद्धैरवेण सुभाषितम् । गुरुत्यागकरः शिष्यः प्रायश्चित्ती भवेद्-
 ध्रुवम् । लक्षं श्रीपादुकां जप्त्वा तस्मात् पापाद्दिशुध्यति । मन्त्र-
 त्यागकरः शिष्यस्तत्सङ्गं नैव कारयेत् । लक्षमेकं जपेन्नन्तं होम-
 तर्पणतः शुचिः ॥ एतत्तु दिव्यवीरगुस्त्यागे बोद्धव्यम् । कुलशि-
 ष्येण पशुगुरुत्यागः कर्त्तव्य एव । इति श्यामारहस्योक्तं तत्र
 समीचीनम् कौलिकानां प्रायश्चित्ताभावात् ॥ तदुक्तं कुलार्णवे
 पञ्चमखण्डे ॥ प्रायश्चित्तं भृगोः पातं सव्यासं व्रतधारणम् । तीर्थ-
 यात्राभिगमनं कौलः पञ्च विवर्जयेत् ॥ तेन प्रायश्चित्तं पशु-
 शिष्यविषयम् । पशुगुरुत्यागस्य शास्त्रोक्तत्वान्न तत्र प्रायश्चित्तम् ।
 तद्वचनन्तु रुद्रजामलकुलार्णवयोः । मधुलुब्धो यथा भङ्गः पुष्पात्
 पुष्पान्तरं व्रजेत् । ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ।
 मन्त्रान्मन्त्रान्तरमिति पाठान्तरम् । तस्मै च रिपुमन्त्रः साध्य-

मन्त्रो जीवहीनः सन्दिग्धो वा यथा स्यात्तथा तं हित्वा अन्यम-
 न्त्रग्रहणं कुर्यात् । तथा विद्यां विहाय महाविद्याग्रहणं
 कुर्यात् ॥ तदुक्तं तत्रैव ॥ सकलो जीवहीनश्च सन्दिग्धो निद्रित-
 स्तथा । मनवस्ते न सिध्यन्ति गुरुः स्याद् ब्रह्मघातकः । तदा तं
 सहसा ज्ञात्वा मन्त्रदेवं गुरुं त्यजेत् । बहुज्ञोऽपि गुरुस्थायो
 ज्ञात्वा सारं वरानने । । अल्पज्ञोऽपि गुरुः पूज्यो यो जानाति
 कुलाकुलम् । एकत्र गुरुणा साहै' स्वपितृपविशेच्च यः । स
 याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश । गुरुवाक्यं हतं कृत्वा
 आत्मावाक्यन्तु रोपयेत् । गुरुं जेतुं मनो यस्य स पतिन्नरका-
 र्णवे । अनेकधा पशोरन्नं भुञ्जते ये च कौलिकाः । तेभ्यः प्रकु-
 प्यते देवी तत्सङ्गं नैव कारयेत् । कौलिकः पशुसंसर्गो पशुशक्तिं
 रमेद्वलात् । गोष्ठीमध्ये च यत्नेन दर्शं तस्य न कारयेत् ।
 एकपात्रे पिबेद्वयं वीरो माहेश्वरो यदि । शुनो विष्ठा भवेत्
 पानं प्रायश्चित्ती स कौलिकः । गायत्रीभिः सहस्रेण तत्पापं
 शमयेदथ । होमयेद्विष्ठाज्येन निष्पापः स भवेद्भुवम् । लक्षत्रयं
 जपेत्क्षीपां लक्षं वाप्यजपां जपेत् । सम्यक् शोधितचित्तस्तु सुवर्णं
 गुरवे ददेत् । चक्रं कृत्वा तु देवैश्च ! पूजयेत्तर्पणं विना ।
 चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् । अभिषेके विना-
 भूते आचार्यत्वं करोति यः । योनिकोटिशतं याति रौरवं
 नरकं व्रजेत् । मादरूपां परित्यज्य स्त्रीरूपां शक्तिमाचरेत् ।
 स याति नरकं घोरं जन्मकोटिशतानि च । मूलं लक्षत्रयं जप्त्वा
 अजपां लक्षमेव च । कूर्चबीजं पञ्चलक्षं ततः शुद्धिमवाप्नुयात् ।
 मन्त्रमाता च पुत्री च भगिनी च कुलाङ्गना । न रमेत् कौलिको
 नित्यमेताः सम्यक् समर्चयेत् । श्रीपादग्रहणं कृत्वा चक्रमु-
 त्थापयेदुयदि । पशुपानं भवेत्तस्य प्रायश्चित्तं प्रजायते ॥ अथ
 मन्त्रमादगमने प्राणान्तिकप्रायश्चित्तम् । तदुक्तं तन्त्रान्तरे ॥

बलाहा स्वेच्छया वापि यो रमेन्नन्वमातरम् । दशलक्षं मनुं
जम्बा तुषानलं समाचरेत् । पुच्छीकुलाङ्गनाभगिनीगमने मूल-
मन्त्रलक्षजपात् शुद्धिस्तदुक्तं तत्रैव ॥ मन्त्रपुच्छी स्वपुच्छी च भ-
गिनी च कुलाङ्गना । रमणाक्षजपापेन शुद्धो भवेति कौलिकः ॥
तन्वान्तरे ॥ पर्वण्यपूज्य देवेशीं गुरुमग्निञ्च शक्तिः । अदत्त्वा
च वलिं तत्र शतमष्टोत्तरं जपेत् । पत्रं पुष्पं फलं मूलमन्त्र-
✓ पानादिभीषधम् । अनिविद्य न भुञ्जीत यदाहाराय कल्पते ।
अनिविद्यन्तु भुञ्जानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः । देव्याद्याष्टशतं
मन्त्रं जम्बा पूतो भवेन्नरः । अनस्थिप्राणिसङ्घातं हत्वा च दशकं
जपेत् । हत्वा च पक्षिणः सर्वान् त्रिभिरिकादशं जपेत् । सर्प-
✓ मार्जारनकुलं श्वानमुष्ट्रं खरं हयम् । गजाद्याश्च सृगान् सर्वान्
हत्वा चाष्टशतं जपेत् । जपेदष्टसहस्रन्तु क्षत्रवैश्यवर्धे बुधः ।
हत्वा पशुं स्त्रियं बालं मन्त्रं पञ्चशतं जपेत् । जपेदष्टसहस्रन्तु
सच्छूद्रविनिपातने । त्रयोदशसहस्रन्तु दिव्यवीरवधे जपेत् ।
वीरस्त्रीगमनेनापि वृथापाने तथैव च । गुरुक्षुषामन्त्रपुच्छीगमने
चापि कौलिकः ॥ इति तु अज्ञानकृते बोध्यं ज्ञानकृते तु लक्षज-
पात् शुद्धिः ॥ तदुक्तं ब्रह्मजामले ॥ कृत्वा वीरवधं मन्त्री वृथापानं
गुरुक्षुषाम् । वीरपत्नीं मन्त्रपुच्छीं रमित्वा दिग्युतं जपेत् ॥ इति ।
महापातकप्रायश्चित्तजपस्तु लतासम्बन्धेन कार्यः । तदुक्तं काली-
तन्त्रे ॥ लतारतेन जप्तव्यं महापातकमुक्तये । रुद्रजामले उत्तर-
खण्डे द्वितीयपटले ॥ पशूनां व्रतभङ्गादौ विधिं प्रथमतः शृणु ।
व्रतभङ्गे नित्यभङ्गे नित्यपूजादिकर्मणि । सहस्रं प्रजपेन्नन्वी व्रत-
दोषोपशान्तये ॥ गायत्रीतन्त्रे पञ्चमब्राह्मणपटले । शालग्राम-
शिलाद्यग्रे कृत्वा दिव्यं करोति यः । शालग्रामादिकं स्पृष्ट्वा
यदि दिव्यं करोति च । तथा गङ्गाजलादींश्च ताम्रञ्च गोमयं
तथा । तुलसीञ्च मन्त्रादेवि । सुवर्णं गोरजस्तथा । वेदादी-

न्यपि पुण्यानि द्रव्याण्यन्यानि यान्यपि । तीर्थपौठादिनामानि
 स्पृष्ट्वा दिव्यं करोत्यपि । दिव्यकर्तुः कारयितुर्नरकान्न च
 निष्कृतिः ॥ पूर्वोक्तं यन्महेशानि ! तत्पापस्य विशुद्धये । यदि
 ब्रह्मबधप्रोक्तप्रायश्चित्तं करिष्यति ॥ तस्मात् पापात् तदा
 शुद्धो नान्यथा कल्पकोटिभिः । अपरञ्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व
 कमलानने । गङ्गास्नानं हि नन्दादौ सर्वपापप्रणाशनम् ।
 गङ्गातोये कृतं दिव्यं तत्पापं नगनन्दिनि । महापातकोपपापं
 गङ्गास्नानाद्दिनश्यति । गङ्गायां भौषलं स्नानं महापातक-
 नाशनम् ॥ प्रायश्चित्तात्मकगङ्गास्नानसङ्कल्पः ॥ अद्येत्यादि-
 शालग्रामसन्निधिदिव्यकरणशालग्रामगङ्गाजलताम्रगोमयगोरज-
 स्तुलसोसुवर्णरजततीर्थमहापौठवेदादिशास्त्रस्पर्शपूर्वकदिव्यकर-
 णदेवादिनामोच्चारणपूर्वकदिव्यकरणकारणाज्ञानकृतब्रह्महत्या-
 दिजनितपापक्षयकामो नन्दायां गङ्गास्नानमहं करिष्ये । इति
 तु समुचितपापक्षयसङ्कल्पः । अद्येत्यादिगङ्गाजलस्पर्शपूर्वक-
 दिव्यकरणदिव्यकरणजनितपापक्षयकामो गङ्गायां स्नानमहं
 करिष्ये । इति गङ्गाजलस्पर्शपूर्वकदिव्यकरणपापक्षयसङ्कल्पः ।
 अद्येत्यादिज्ञानाज्ञानकृत ब्रह्महत्यादिपापक्षयकामो गङ्गायां
 स्नानमहं करिष्ये ॥ इति ब्रह्महत्यादिपापक्षयसङ्कल्पः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां चतुर्थे काण्डे शाखाकथनं

नाम द्वितीयः परिच्छेदः ।

अथ विशेषसाधनानि । ककलासदीपिकायां प्रथमपटले ॥
 श्रीनीलावाण्युवाच ॥ इदानीं ककलासोऽपि पशुरुपधरे-
 ऽव्ययः । पशुवाक्यप्रबोधाय उपायं वद शङ्कर ! ॥ ईश्वर उवाच ॥
 साधु पृष्टं त्वया देवि ! पशुवाक्यप्रबोधनम् । आदौ तु कथ-
 यिष्यामि पश्चात् साधनमुत्तमम् । कार्तिके फाल्गुने मासि
 द्वितीयायां महानिशि । एकाकी निर्भयो गत्वा चितायां वर-

वर्णिनि ।। शुद्धासनं समासाद्य देवीं ध्यात्वा तु चर्चिकाम् ।
 शुष्ककण्ठीमुग्रवागं शुनां घोरतरंक्षिणीम् । युवतीं द्विभुजां
 तालजङ्घां मुक्तकचां भजे । एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन जपेन्मन्त्र-
 मनन्यधीः । तारां मायां तथा चर्चिचर्चिके ककलासकम् ।
 बोधयद्वितयं वज्रिकान्तामन्त्रः परात्परः । एवं सहस्रं प्रजपेत्
 ततः सिद्धिरनुत्तमा । ककलासरवं ज्ञात्वा साधको गतशोक-
 भाक् । तत्प्रसादान्महेशानि ! साफल्यं तस्य जायते । स ब्रूते
 सकलां वार्त्तां साधकाय यद्वा तदा । राजानं वश्येत् क्षिप्रं
 कामिनीञ्च न संशयः ॥ १ ॥ अथवा गोष्ठमासाद्य निशीथे
 साधकोत्तमः । उग्रचण्डां प्रयत्नेन धूपदीपैर्मनोरमैः । भक्तितः
 प्ररमेशानि ! पूजयेत्तारमायया । निजमन्त्रसहस्रन्तु तदैव प्रजपे-
 क्षतः । ततः सिध्यति देवेशि ! नात्र कार्या विचारणा ॥ २ ॥
 अथवा कामिनीपुष्पमकरन्देन सुन्दरि ।। तिलकं कारये-
 न्मूर्द्ध्नि जपेदेतं मनुः ततः । तत्क्षणात् सिद्धिमाप्नोति सत्यं
 सत्यं न संशयः ॥ ३ ॥ इति ककलाससिद्धिः ॥

अथ वल्लीसिद्धिः ॥ तत्रैव । वल्लिकायां साधयेद्विद्वान्नदी-
 त्तोरे महानिधि । उग्रकेशीं प्रयत्नेन पूजयित्वा विशेषतः ।
 तारं हृदयकेशीञ्च चतुर्थ्यन्तां द्विठावधि । जपेदेतत् सहस्रन्तु
 सिध्यत्येव न संशयः । अथवा मुक्तकेशस्तु क्षितायां प्ररमेश्वरि ! ।
 वगलां पूजयेद् यत्नादुपचारैर्यथोचितैः । ॐ नमो वगले ! माया
 स्वाहान्तोऽयं महामनुः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु जपेदनन्त्यमानसः ।
 ततो देवि ! समानीय गोधिकां गृहसम्भ्रवाम् । पूजयेत्तां प्रय-
 त्नेन पुनर्जापं समाचरेत् । ततः प्रभृति देवेशि ! वल्लिका-
 शब्दविद्भवेत् । अतीतानागतां वार्त्तां लीलया वक्ति सर्वदा ॥ १ ॥
 अथवा निशि मांसाद्यैः पूजयेत् कृष्णपिङ्गलाम् । जपेन्मायात्रयं
 लक्ष्मीं डेयुतं नामसंयुतम् । जपेदयुतमानन्तु ततः सिद्धी भवे-

अनुः । तदेव फलमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः । प्रातःकालं
समासाद्य जपेदेनं दिनावधि । सन्ध्यायां परमेशानि ! ज्यैष्ठिका-
शब्दविद्भवेत् ॥

अथ मूषिकसाधनं तत्रैव ॥ अथ वक्ष्ये महेशानि ! मूषि-
काशब्दसाधनम् । उपोष्य पूर्वेऽहनि शुद्धमानसः प्रातः शुचिः
सुन्दरवेशधारी । गत्वा नदीतीरमुषीं सतारां डेऽन्तां नमोऽन्तां
प्रजपेच्च यत्नात् । सिद्धावधि श्रीगिरिराजकन्याप्रसादतो मूषिक-
शब्दविद्भवेत् ॥ १ ॥ किंवा रमायुग्ममुषीं च डेऽन्तां द्विठावधि
प्रोक्तमवीतिमन्यत् । जपेत् सहस्रं शतं निशान्ते ततो महे-
शानि ! भवेत्तदेव ॥ २ ॥ वाणीं रमाञ्च प्रददासि विद्यां
लज्जाञ्च तारञ्च पुनश्च लज्जाम् । तारं पुनर्मूषिकशब्दपूर्वं विच-
र्चिके वङ्गिवधूसमेतम् । शय्यामुपेत्याशु जपेच्च विद्याम् स्वका-
न्त्या वा परकान्त्या वा । ततो महेशानि ! स राजगोष्ठी ब्रूते
रहो मूषिकशब्दवृन्दम् । दुर्मिच्छं वा सुभिच्छं वा बन्धञ्चापि
शुभाशुभम् । देशनाञ्च महेशानि ! शीघ्रं ब्रूते शुभाशुभम् ॥

अथ मार्जारसाधनं तत्रैव ॥ अथ वक्ष्ये महेशानि ! मार्जार-
शब्दमुत्तमम् । पौषे वा श्रावणे वापि हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
धूपदीपैश्च नैवेद्यै रक्तचन्दनपुष्पकैः । पूजयित्वा प्रयत्नेन विक-
टाक्षां महोत्कटाम् । बिभ्रतीं कङ्किटीं ध्यायेन्मार्जारोपरि-
संस्थिताम् । तारं मायां कङ्कटाञ्च चतुर्थ्यन्तामुदीरयेत् ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या जपेत्तामशुतत्रयम् । एवं सप्तदिनं
रात्रौ श्मशाने साधकोत्तमः । कुर्यात् सिद्धोऽथ मार्जारशब्दं
बुध्यति नान्यथा । अतीतानागतां वार्त्तां स ब्रूते परमेश्वरि ! ॥

शृगालसाधनमपि तत्रैव ॥ अथ वक्ष्ये महेशानि ! फेरुणां
शब्दमुत्तमम् । अमावास्यादिने फेरु एकघातप्रहारिणः ।
गतप्राणोऽथ संस्थाप्य भूतले दर्भसञ्चये । तमारुह्य महेशानि !

पूजयेत् फेरुकां सुधीः । चतुर्भुजां विशालास्यां विवस्त्रामुन्नत-
 स्थानीम् । तप्तकाञ्चनसङ्काशां पद्मं शङ्खं गदामसिम् । विभ्रतीं
 मुक्तकेशीञ्च सर्वभीतिहरां पराम् । इति ध्यात्वा प्रयत्नेनैव गन्ध-
 पुष्पैर्मनोरमैः । सामिषैः सुरसैश्चैव नैवेद्यैश्च मनोरमैः । पूज-
 यित्वा वरारोहे ! जपेत् प्रणवसम्पुटाम् । काली माया तथा
 काली वङ्गिकान्तावधि प्रिये ! । प्रजपेदूर्ध्वरात्री च लक्ष्मणं
 शुचिः पुमान् । फेरुः स जीवति ततो दिव्यमुत्पद्यते तदा ।
 वरं वरय भो वत्स ! यत्ते मनसि वर्तते । ततः स साधकश्चेष्टो
 देवदेवं मनोरमे ! । वशीभूत्वा सहस्राब्दान् त्वं मां पालय
 सर्वदा । एवं प्रार्थ्य वरं देवि ! पूजयेत्तां प्रयत्नतः । रक्तशकान्न-
 पिष्टेन भोजनञ्च यथोचितम् । ततः स तिष्ठति सदा यावदायुर्न
 संशयः । तच्छ्रयनञ्च लक्ष्मणञ्च हन्यात् स वीक्षण्येन तु । यद्-
 यत् सम्यार्थयेन्नन्वी सर्वमानीय यच्छति । सहस्रं वा शतं
 वापि धनं दद्याद्दिने दिने । इच्छाभोज्यं महेशानि ! तथैव
 वरसुन्दरीम् । आनीय क्रोशलक्ष्णां जपे यच्छति पार्वति ! ।
 अनागतां तथा वार्त्तां ब्रूते षाण्माषिकीमपि । अतीतां शत-
 वर्षीयां ब्रूते नित्यं महेश्वरि ! । शिवानां सर्ववार्त्ताञ्च स्वयं
 बोधयति ध्रुवम् । प्रत्यहं प्रजपेत्तञ्च यत्नेन सामिषान्नकैः । स
 श्रुत्वा फेरुकाणाञ्च शब्दं प्रणतिमाचरेत् ॥

अथ श्वशब्दसाधनम् तत्रैव । निम्बमूलं समासाद्य पूज-
 येद्भोजनेऽसताम् । धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिः परमोत्तमैः । पूज-
 यित्वा निशाभागे जपेदष्टायुतं बुधः । स्मिं स्मिं कालि ! वङ्गि-
 क्रान्ता विद्येयं परमोत्तमा । ततः सिद्धो महेशानि ! सर्वं कुक्कुर-
 भाषितम् । बुध्येद्देवि ! तदा सर्वं तदर्थञ्च यथातथम् ॥ इति श्व-
 शब्दज्ञानम् ।

भेकसाधनं तत्रैव । नदीतीरं समासाद्य स्नातो निर्मलवस्त्र-

धृक् । प्रजापतिं वल्लिसंस्थमनुस्वारसमन्वितम् । त्रितयं तत्त्वती
भे भे मन्त्रमेतदुदीरितम् । जपेद्देवि ! सहस्रान्तु प्रत्यहं सप्तवास-
रान् । ततो भक्तवरे देवि ! सर्वतत्त्वार्थविद्भवेत् । अतीताना-
गतां वार्त्तां ब्रूते चापि यथोचिताम् ॥

अथ गोधासाधनम् । गोधया हतया वापि अथवा विल्वमू-
लके । गोधिकां खड्गहस्ताञ्च दंष्ट्रां शान्तिमुखीं शिवाम् । रक्त-
गन्धौरनयनां रक्तवर्णशिरोरुहाम् । जपेत्तत्त्वप्रमाणन्तु गोधिका-
सिद्धिहेतवे । सिद्धायां गोधिकायाञ्च किं न सिध्यति पार्वति ! ।
इच्छारूपं ददात्यन्नं ददाति विपुलं धनम् । अतीतानागतां
वार्त्तां वर्त्तमानां तथा प्रिये ! । रक्तिशक्ती यथा स्यातां यदयत्
पृच्छति सर्वदा ॥

अथ गोशब्दज्ञानम् । गवां मूत्रेण देवेशि ! । यावत्कं पाच-
येद्बुधः । तस्माद्दिनत्रयं वापि शुद्धवासोधरः पुमान् । धरावीज-
ह्वयं देवि ! जपेत्तत्त्वप्रमाणतः । पूजयेदेनां सतीं देवीं नीलवर्णां
मनोरमाम् । द्विभुजां सर्वभूषाढ्यां नानालक्षणलक्षिताम् ।
एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन पश्येदेनां न संशयः । तस्य गेहे सदा देवि !
गवां वृद्धिर्भवेद्भ्रुवम् । गवाञ्च सर्ववार्त्ताञ्च सम्प्रबुध्यन् संशयः ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः ।

अथ मृगशब्दज्ञानम् तत्रैव । विल्वमूलं समासाद्य देवि !
गन्धादिभिः शुभैः । पूजयेत् कमलां देवीं नीलवस्त्राङ्गरागिणीम् ।
द्विभुजामम्बुजदन्धारिणीं परमेश्वरीम् । एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन
शुद्धासनगतः पुमान् । कमलां कमलां मायां मायां वल्लिवधू-
न्तथा । जपेदष्टायुतं देवि ! कमलासिद्धिहेतवे । सिद्धायां
कमलायान्तु मृगशब्दं सुबुध्यते । धनञ्च विपुलं देवि ! भवेत्तस्य
गृहे भ्रुवम् । रिपुर्न जायते तस्य जायन्ते सर्वसम्पदः । कामिनी
वशमायाति यदि रक्षासमा भवेत् ॥

अथ मेषशब्दज्ञानम् तत्रैव । महागण्डारकं देवि ! तस्य चर्मणि चार्द्रके । उपविश्य जपेद्विद्यां कोङ्कालां कनकप्रभाम् । रक्तवस्त्रपरीधानां नानामण्डनमण्डिताम् । द्विभुजां सुन्दरीं देवीं ध्यात्वा प्रयतमानसः ॥ धराबीजद्वयं देवि ! कामबीजद्वयं तथा । स्वाहान्ता कथिता विद्या जपेदष्टायुतं बुधः । ततः सिध्यति देवेशि ! कोङ्कणा परमेश्वरि ! शब्दं बुध्यति देवेशि ! मेषाणां तत्प्रसादतः ॥

अथ क्वागलशब्दज्ञानम् । केवलं क्वागदुर्ग्वेन परमान्तनु पाचयेत् । तदेव भक्षयेद्देवि । जपेदेनामनन्यधोः । जपेच्च कोङ्कणां विद्यां सप्तायुतमतन्द्रितः । तत्प्रसादान्महेशानि ! क्वागानां शब्दविद्भवेत् ॥

अथ वनविडालशब्दज्ञानम् । हविष्ठाशी निशाभागे जपेदेनां हि साधकः । षट्सहस्रप्रमाणेन षड्दिनं यावदेव हि । ततश्च शशकानां वै शब्दं बुध्यति नान्यथा । अनेनैव विधानेन ऋतुमूललतां स्पृशन् । अयुतैकप्रमाणेन सन्ध्यायां प्रजपेन्मनुम् । ततस्तस्याः प्रसादेन कपीनां शब्दविद्भवेत् । अनेनैव विधानेन जपेद् यदि दिनावधि । ततो वनविडालानां शब्दं बुध्यति नान्यथा ।

अथ ऋक्षशब्दज्ञानम् । तारं माया रमायुग्मं विशालां ड्युतां तथा । अस्त्रान्त्ये महाविद्या स्वाहान्तामपि सुव्रते ! । विशालां घोरवदनां मुक्तकेशीं दिगम्बरीम् । यौवनोद्भिन्नवच्चोजां सरोजालीं हसन्मुखीम् । खड्गखट्वाङ्गपद्मासीन् बिभ्रतीं परमेश्वरीम् । एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं मुच्यते नात्र संशयः । निशाभागे हविष्ठाशी जपेन्मन्त्रं जितेन्द्रियः । पूजयित्वा प्रयत्नेन रक्तचन्दनपुष्पकैः । दशांशं जुहुयादङ्गी निम्बकाष्ठैर्वरानने ! । ततः सिध्यति देवेशि ! ऋक्षाणां शब्दविद्भवेत् । विषादे सङ्कटे युद्धे जयो भवति नान्यथा । केवलं स्मृतिमात्रेण ऋक्ष आयाति

तत्पुरः । युद्धे वापि विवादे वा रिपुं हन्याच्छतायुतम् । विपुलञ्च
बलं दद्यात् सत्यं सत्यं न संशयः । गजेन्द्रमदसम्भूतद्रवेण
तिलकं यदि । तदाज्ञावशतो हन्यात् रिपुसैन्यं शतायुतम् । विपु-
लञ्च बलं दद्यात् सत्यं सत्यं न संशयः । अनेनैव विधानेन
शमशाने यदि साधकः । जपेक्ष्मप्रमाणेन व्याघ्राणां शब्दविज्ञ-
वेत् । श्वापदस्मृतिमात्रेण समयाचारतत्परः । अनेनैव विधा-
नेन जपेदष्टायुतं बुधः । जुहुयात्तदशांशेन हस्तिसिद्धिर्भविष्यति ।
अष्टभिः सहायुतमिति सहायै तृतीया समाप्तोऽपि क्वचिद-
गमकत्वात्तेनाष्टाधिकमयुतमित्यायातम् । करिशब्दश्च स ब्रूते
सभायां परमेश्वरि ! । हस्तिनान्तु प्रसादेन स जयौ सर्वविज्ञ-
वेत् । करिञ्जतशब्दमभिप्रेत्य सभायां स ब्रूते इत्यर्थः । हस्ति-
कर्णे तदा तेन कथ्यते यन्महेश्वरि ! । तदेव कुरुते हस्तौ द्रुमा-
दीनान्तु भञ्जनम् । अनेनैव विधानेन यदि पुष्पवतीगृहे ।
निशाभागे जपेक्ष्मं पूजयेद्बलिभिः शुभैः । पुष्पवतीगृहे रजः-
स्त्रलायोनिमण्डले । जुहुयादयुतं पद्मैर्लोहितैः परमेश्वरि ! ।
ॐ नमो देवदेवाय पञ्चास्याय महात्मने । त्वत्प्रसादान्महादेव !
मम सिद्धिर्भविष्यति । इति स्तुत्वा महेशानि ! मृगेन्द्रशब्दविज्ञ-
वेत् । मृगेन्द्रस्य प्रसादेन तस्यासाध्यं न विद्यते । युद्धे वापि
विवादे वा स भवेद्भिजयी नरः । मृगेन्द्रस्मृतिमात्रेण सिंहो
गच्छति तत्पुरः । तदाज्ञावशतो नित्यं कार्यं साधयति ध्रुवम् ।
इति ते कथितं सर्वं दुर्लभं भुवनत्रये । तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीः
पुत्रपौत्रावधि स्थिता । एतन्मन्त्रं महेशानि ! यदि पर्वतमस्तके ।
हविष्याशौ जपेद्देवि ! सदा सर्वत्र सिद्धिदः ॥

अथ शूकरशब्दज्ञानम् ॥ पङ्कभूमिं समासाद्य तारं वृत्तवृ-
द्धयम् । घृत् घृत् स्वाहान्तमन्त्रोऽयं जपेत् सप्तायुतं बुधः ।
घोणिरापूर्येद् यज्ञात्ततः सिध्यति नान्यथा ॥

अथ कङ्कालसिद्धिः ॥ नदीतीरं समासाद्य कृतस्नानो दिवा शुचिः । कौलिकीं पूजयेद् यन्नान्नानापुष्पैर्मनोरमैः । मद्यैर्मसैर्लोहितैश्च नृत्यगीतादिभिः स्वयम् । पीत्वा कुलरसं यन्नात् कुलं गत्वा प्रयत्नतः । काली मायाबालिके च कङ्काली वङ्गि-
वल्लभा । एतन्मन्त्रं महेशानि ! जपेद्दिंशसहस्रकम् । तदायाति महादेवि ! कङ्काली तत्र सोद्यमा । साधकाय वरं दत्त्वा वाह-
नञ्च वरानने ! । याति वा वाहनं तस्य वाह्यं वहति सर्वदा । हन्ति शत्रुसहस्राणि पृथ्वीं भ्रमति तत्क्षणात् । बलञ्च विपुलं दद्यात् सत्यं सत्यं न संशयः । तारं माया रमावीजं पशुनामा-
ग्निवल्लभा । कालिकापूजनं यस्तु पशुनान्ना जपेन्मनुम् । सहस्रं परमेशानि ! तस्य शब्दं प्रबुध्यति ॥

अथ काकशब्दज्ञानम् ॥ द्वितीयपटले ॥ काकपुच्छं महेशानि ! मूर्ध्नि सन्धार्य यत्नतः । कालीवीजं तथा काका काली-
मन्त्रोऽयमुत्तमः । चितायां षट् सहस्राणि होमपूजाविवर्जितम् । जपेन्निशैथ देवेशि ! ततः सिद्धो भवेन्नरः । ततः प्रभृति देवेशि ! सर्वज्ञं तस्य जायते । काकशब्दप्रबोधेन सर्वं वक्ति यथातथम् । चिरजीवी भवेन्मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ॥१॥

अथ खञ्जनसिद्धिः ॥ तारं तिमिरनाशये च मायावीजं महेश्वरि ! । पूजयेत् परमेशानि ! यन्नात्तिमिरनाशिनीम् । ततः खञ्जनसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा । खञ्जनानां ततस्तस्य दर्शनञ्च भवेत् सदा । मूर्ध्नि नीते च तत्पक्षे देवेऽपि स न दृश्यते । जानीयात् खाञ्जनं शब्दं सर्वेषां प्रियतामि-
यात् ।

अथ जलचरपक्षिसिद्धिः । एतन्मन्त्रं महेशानि ! श्मशाने यदि वा जपेत् । षट्सहस्रप्रमाणेन पूजयेदम्बुवासिनीम् । तदा वारिचराणाञ्च पक्षिणां शब्दविज्ञवेत् । एतन्मन्त्रं खञ्जनसाध-

नोक्तं मन्त्रम् ॥ स्मृतिमात्रेण देवेशि ! पक्षिणः शतशः क्षणात् ।
तदाज्ञावशगाः सर्वे पक्षिणः पूर्ववर्तिनः ॥ २ ॥

अथ मयूरसिद्धिः ॥ वटमूलं समासाद्य निशीथे पूजयेच्छिवाम् ।
परां चण्डो सहाय्यां विपुलकुचयुगां मुक्तकेशीं विवस्त्रां नाना-
लङ्कारपूरां शशधरशकलं बिभ्रतीं भीमकान्ताम् । जघ्यन्ती-
मद्रिकाणं वरजघनभरात् क्षौण्णिकं समग्रं न्यक्कुर्वन्तीं सम-
न्तादवनिरिपुगणं चर्वयन्तीं भजामि । एवं ध्यात्वा ततो देवीं
गन्धपुष्पैर्मनोहरैः । मद्यैर्मांसैर्महाभोगैः पूजयित्वा यथाविधि ।
कालीबीजं समुच्चार्य पुनः काली वरानने ! । ततो मयूरशब्दस्य
मन्त्रोऽयं बहुसिद्धिदः । अष्टायुतं जपेत् पश्चात् हुमेत्तावत्
सहस्रकम् । निम्बकाष्ठैर्हरिद्राक्तैर्विल्वपत्रैर्मनोहरैः । समायाति
ततो देवी मयूरगणमण्डिता । वरं दत्त्वा साधकाय प्रयाति
परमेश्वरी । मयूरशब्दविज्ञूत्वा सार्वज्ञं लभते ध्रुवम् । यथे-
च्छति तथा क्षते विषं जारयितुं क्षमः । रिपूणां जयमाप्नोति
सत्यं देवि ! वदामि ते । अनेनैव विधानेन बलिं दत्त्वा स्वदेह-
जाम् । दक्षिणां शब्दमात्रेण मम तुल्यो न संशयः । पूजयेत्
कालिकां देवीं मद्यैर्मांसैर्मनोहरैः । ततः सिध्यति देवेशि !
कुलसिद्धिः सदा भवेत् । कुलानां शब्दविज्ञूत्वा सार्वज्ञं लभते
ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अथ विद्याधरपक्षिविशेषसिद्धिः । मायां तारं गौं गौं चैव
पातयेत्तदनन्तरम् । एतन्मन्त्रं महेशानि ! निशीथे तु जपेत्
सुधीः । अयुतञ्च जपेद्देवि ! ततः सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् । गन्धर्वश-
ब्दविज्ञूत्वा बलवान् पुत्रवान् भवेत् ॥ ४ ॥

अथ कङ्कशब्दज्ञानम् । कामं केलिकेलि हन्त्रं काममन्त्रेण
उत्तमः । जप्त्वा सप्तसहस्रान्तु कङ्कशब्दप्रबोधनम् । कङ्कालशब्द-
विज्ञूत्वा सर्वज्ञो भवति ध्रुवम् ॥ ५ ॥

कोलकाल वरारोहे ! वङ्गिकान्ता ततः परम् । विव्वमूले
महेशानि । जपेदयुतमानतः । पूजयेत् कालिकां देवीं ततः
सिद्धिर्भवेदध्रुवम् । वकानां शब्दविङ्गत्वा सर्वज्ञो जायते नरः ॥ ६ ॥

अथ चटकशब्दज्ञानम् ॥ चाटु चाटु महेशानि ! स्तं
पूर्वं परमेश्वरि ! । सप्तायुतं जपेद् यन्नात् कालिकामपि पूज-
येत् । ततो बुध्यति देवेशि ! चटकाशब्दमुत्तमम् ॥ ७ ॥

अथ शुकशब्दज्ञानम् ॥ मायावीजं शुकहन्त्रं बोधयदित्यं
तथा । वङ्गिकान्तावधिर्मन्त्रो जपेदयुतमानतः । ततः शुकस्य
शब्दज्ञो नरो भवति नान्यथा । शुकस्यापि प्रसादेन महासम्प-
त्तिमान् भवेत् । एतन्मन्त्रं महेशानि ! निशीथे त्यक्तभोजनः ।
जपेदष्टसहस्रान्तु शारिकापददानतः । शारिकाशब्दविङ्गत्वा
सर्वज्ञो जायते नरः ॥ ८ ॥

अथ सारससिद्धिः ॥ धरावीजं समुद्धृत्य भै भै वीजं समु-
द्धरेत् । एतन्मन्त्रं महेशानि ! सप्तायुतमतन्द्रितः । जपेत्
कमलमध्ये तु हविष्याशी जितेन्द्रियः । ततः सिध्यति देवेशि ।
नात्र कार्या विचारणा । सारसाणां रवं बुद्ध्वा सर्वज्ञो जायते
नरः ॥ ९ ॥

अथ कपोतसिद्धिः ॥ स्तं द्वारं पूर्वमुद्धृत्य हुङ्कारद्वयमुद्धरेत् ॥
स्वाहान्ता कथिता विद्या जपेदयुतमानतः । शास्त्रालीमूल-
मासाद्य पूजयेत् सिद्धिकालिकाम् । ततः सिध्यति देवेशि ।
नात्र कार्या विचारणा । कपोतस्य रवं देवि ! स बुध्यति न
संशयः ॥ १० ॥

कौरवेरशब्दमुच्चार्य कूर्चवीजं समुद्धरेत् । सिद्धिकालीं
प्रपूज्याथ जपेदयुतपञ्चकम् । ततः सिध्यति देवेशि ! नात्र
कार्या विचारणा । कपोतस्य रवं देवि ! स बुध्यति न संशयः
॥ ११ ॥

कपोतविष्ठया मूध्रि तिलकेऽपि कृते बुधः । मृतं भावि
वर्त्तमानं सर्वं वक्ति यथातथम् ॥ १२ ॥

अथ कुक्कुटशब्दज्ञानम् । कं कङ्कारं समुच्चार्य कूर्चवीजमयो-
द्धरेत् । जपेदष्टायुतं देवि ! कालिकाञ्च प्रपूजयेत् । मद्यैर्मा-
सैर्लतागिहे सिद्धो भवति नान्यथा । सिद्धे मन्त्रे तथा मन्त्रो
भवेद्भूमिपुरन्दरः । शब्दं बुध्यति तेषां वै सर्वज्ञो भवति ध्रुवम् ।
यावत्तिष्ठति तद्विष्ठा तस्य मूध्रिं वरानने ।। कवित्वं कुरुते
तावत् वादिनं जयति ध्रुवम् ॥ १३ ॥

अथ शरालुसिद्धिः ॥ हं हङ्कारं समुच्चार्य स्फे स्फेङ्कारं समु-
च्चरेत् । हंस हंस ततो ब्रूयात् जपेत्तत्त्वं वरानने ।। गुह्यकालीं
प्रपूज्याय मद्यैर्मासैर्वरानने । ततः सिध्यति देवेशि ! हंसशब्दो
हि सुव्रते !। तद्विष्ठातिलकं कृत्वा महासर्वज्ञतामियात् ॥ १४ ॥

अथ जेमङ्करीसिद्धिः ॥ मायावीजं समुद्धृत्य धरावीजं समु-
द्धरेत् । जेमङ्करीपदं पश्चात्तदन्ते वज्रिवल्लभा । वटमूलं नदी-
तीरं गत्वा लक्षं जपेन्नरः । पूजयेत् कालिकां देवीं मद्यमासै-
र्मनोरमैः । रक्तपद्मै रक्तमाख्यैर्नानालङ्कारसंगतैः ॥ ततः
सिध्यति देवेशि ! निशीथे स भवेत् प्रिये !। जेमङ्करीणां
शब्दज्ञो जायते नात्र संशयः । परस्त्रीनिरतो देवि ! मनोवा-
क्कामवाप्रयात् ॥ १५ ॥

अथ टिट्ठिभसिद्धिः । टिट्ठिभायास्तु स्वं वीजं वज्रिकान्ता
ततः परम् । कालीं सम्पूजयेद्यत्नात् टिट्ठिभ शब्दविद्भवेत् ॥ १६ ॥

अथ कोकसिद्धिः । कोकयुग्मं वज्रिकान्ता जपेत् समायुतं
बुधः । कालिकां पूजयेद्यत्नात् कोकानां शब्दविद्भवेत् ॥ १७ ॥

अथ चकोरशब्दज्ञानम् । कालीवीजं चकोराय जपेदष्टायुतं
बुधः । वटमूलं समासाद्य कालिकां पूजयेत्ततः । चकोरशब्द-
विद्भूत्वा सर्वज्ञो जायते नरः ॥ १८ ॥

तारं काली चकोराय जपेदष्टायुतं नरः । महाकाली ततो
देवि ! अस्त्रं वज्रिबधूं ततः । एतन्मन्त्रं महेशानि ! जपेन्नृत्तं
महेश्वरि ! । मयैर्मामसै रक्तपुष्पैर्महाकालीं प्रपूजयेत् । एवं
कृत्वा विधानेन तत्पुच्छं मूर्ध्नि धारयेत् । तत्पक्षिणः शब्दवैत्ता
जायते नात्र संशयः ॥ १६ ॥

अथ कीटशब्दज्ञानम् । अथ वक्ष्ये महेशानि ! कीटसाध-
नमुत्तमम् । वटमूलं समासाद्य स्नातः शुक्ताम्बरः शुचिः । व्याघ्र-
चर्मैः समासाद्य मयैर्मामैर्मनोहरैः । धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्वलिभिः
परमोत्तमैः । लताभिर्विष्टितो भूत्वा कीटकञ्च समर्पयेत् ।
तुङ्गवक्षोजयुगलां चकोरनेत्रां हसन्मुखीम् । पिबन्तीं रुधिर
धारां सुक्तकेशीं दिगम्बराम् । बिभ्रन्तीं खड्गमुण्डञ्च ततो विकट-
सन्निभाम् । एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन जपेन्मन्त्रं मनन्यधीः । काली-
वोजं कीटकाली निवसेत्तत्र साऽसिता । एतन्मन्त्रं महेशानि !
जपेदेकाग्रमानसः । सहस्रं पद्मपत्राणां जुहुयात् संस्मृतेऽनले ।
कीटकाली समायाति ततो नात्रास्ति संशयः । साधकाय वरं
दत्त्वा प्रभाते याति कालिका । ततः प्रभृति देवेशि ! कीटशब्दस्य
साधकः । लीलया साधकः सर्वं बुद्ध्वा सर्वज्ञतामियात् । पिपी-
लिकादिकीटानां शब्दं बोद्धुं क्षमो भवेत् । स्वर्गं मर्त्यं च
पाताले धरायां या कथा भवेत् । भूतं भव्यं वर्त्तमानं साधके-
न्द्राय सर्वदा । कीटाः शंसन्ति देवेशि ! नात्र कार्या विचा-
रणा । कीटकालीप्रसादेन गृहे लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् । धनवान्
पुत्रवान् भूत्वा स्वर्गमोक्षमवाप्नुवात् ॥ २० ॥

अथ प्रकृतसाधनम् । मुण्डमालातन्त्रे चतुर्थपटले ॥ निशा-
भागे चतुर्दश्याममायां हरवल्लभे ! । जपेदयुतसंख्यञ्च स सिद्धः
सर्वकर्म्मसु । स योगीन्द्रः स भावज्ञः स धीरः सर्वकर्म्मसु ॥ १ ॥
तथा । प्रभातेऽश्वत्थमूले च गत्वा परमकोविदः । पूजयेत्

परया भक्त्या सामिषैर्लोहितैरपि । विल्वैर्विल्वदलैर्वापि विल्व-
पुष्पैर्वरानने ।। जपेत्तच्च चतुर्दश्यामारभ्य नगनन्दिनि ।।
पञ्चमेन यजेद्देवीं विल्वमूले दिवानिशम् । तदा वाक्सिद्धि-
माप्नोति स्फुटं वाचस्यतिर्भवेत् ॥ २ ॥ तथा । वामभागे स्त्रियं
स्थाप्य धूपामोदसुगन्धिभिः । ताम्बूलचर्वणाद्यैश्च पूजयेद्भव-
गेहिनीम् । भवानीं तारिणीं विद्यां ब्रह्मविद्यां मनोहराम् ।
शुद्धां सिद्धिमवाप्नोति तत्क्षणादेव शङ्करि ।। विश्वमातर्जया-
धारे ! विश्वेश्वरि ! नमोऽस्तु ते । करालवदने ! घोरे ! चन्द्रशे-
खरवल्लभे !। मां तारय महाभागे ! देहि सिद्धिमनुत्तमाम् ।
कामकल्पलतारूपे ! कामेश्वरि ! कलामते !। कामरूपे ! च
विजये ! निस्तारे ! शववाहिनि ! ॥ ३ ॥ गृहीत्वा शवचाण्डालं धृत्वा
भालं मुखं शिरः । नासां कर्णौ च हृत्पद्मं नाभिं लिङ्गं गुदं
तथा । बाहुपृष्ठञ्च जठरं धृत्वा धृत्वा मुहुर्मुहुः । आदौ मायां
पुनर्मायां पुनर्मायां नियोजयेत् । बधूवीजं तथा लज्जां सर्वाङ्गे
निक्षिपेन्मनुम् । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा कृत्वा च शववत्स्ननम् । पुनः
स्वमन्त्रवीजेन नीलद्रवेण चक्षुषा । सत्त्वेन रजसा देवि ! तमसा
नगनन्दिनि ।। हरवीजेन सम्मार्ज्यं स सिद्धेश्वरतामियात् ।
वायुस्तम्भं जलस्तम्भं वह्निस्तम्भं नगात्मजे ।। तत्क्षणादेव
देवेशि ! जायते नात्र संशयः ॥ ४ ॥ शून्यागारे महेशानि ! भवे-
न्नददिङ्मुखः । शङ्कमाला ग्रहीतव्या स्फाटिकी वाद्य राजती ।
चामीकरमयी माला प्रबालघटिता तथा । मूर्ध्नि देशे कुलु-
क्ताञ्च जप्त्वा शतमनुत्तमाम् । तदा मन्त्रं जपेन्मन्त्रौ महेशो नात्र
संशयः । स शक्तः शिवभक्तश्च भैरवश्च सदाशिवः ॥ ५ ॥ तथा ।
अश्वत्थे विल्वमूले वा खजायामन्दिरेऽथ वा । देवीं वा कामिनीं
त्रापि ध्यायेत् परमदेवताम् । आद्यां ज्योतिर्मयीं विद्यामभयां
वरदां शिवाम् । प्रणमेत् स्तुतिभिश्चण्ड्रीं सर्वदोषनिहन्तनीम् ।

श्मशानस्थः शवस्थोऽपि प्रपठेत् कवचोत्तमम् । तथा श्मशाने
 देवेशि ! शवे वा वरवर्णिनि ! । सिद्धिर्भविष्यति तदा प्रतिपत्ता
 न भैरवाः । उन्मत्तः क्रोधनश्चैव भैरवो वटुकात्मकः । संहारो
 भीषणश्चैव तथा च कालभैरवः । महाकालभैरवश्च भैरवा वसु-
 संख्यकाः । दृष्ट्वा श्मशानं देवेशि ! शवसाधनमेव च । नृत्यन्ति
 भैरवाः सर्वे गर्जन्ति रक्तलोचनाः । अद्य मत्सदृशो वापि अद्यैव
 वातुलोऽपि वा । शवश्मशानयोर्मध्ये न जानामि कथञ्चन ।
 माभैषीर्भैरवाः सर्वे वदिष्यन्ति च रक्षणात् । सिंहव्याघ्रवराहा-
 द्याकारा गर्जन्ति सर्वतः । माभैषीश्चैव माभैषीर्माभैषीश्चैव साध-
 कम् । यो वदिष्यति पुरतः स गुस्स्तत्त्वकोविदः ॥ ६ ॥ पञ्चम-
 पटले ॥ कृष्णाष्टम्यां नवम्यां वा प्रजपेद्युतं निशि । तदा सिद्धि-
 मवाप्नोति मन्त्रध्यानपुरःसरम् ॥ ७ ॥ तथा । महापीठाश्रमं
 याति महापीठस्य दर्शनम् । महापीठे यजेद्देवीं भक्त्या परमया
 युतः । पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च रक्तगन्धानुलेपनैः । महिषैश्च यजेद्देवीं
 भेषजैः क्षतजैरपि । ह्यागलैर्लोहितैर्देवीं गात्रजैर्ब्राह्मणैरपि ।
 तदा सिद्धेश्वरो भूत्वा गाणपत्यं लभेत्तु सः ॥ तथा । स्तुतिपा-
 ठादृष्टदृष्टानात् पूजनाच्छिवसुन्दरि ! । सुप्रसन्ना महाविद्या
 जपात् सिद्धिर्भविष्यति ॥ ८ ॥ षष्ठपटले ॥ कुलवारे महेशानि !
 सहस्रमयुतं जपेत् । शनैश्चरे चतुर्दश्याममायां कुजवासरे । स्थित्वा
 कुशासने ज्ञानी मन्त्रसिद्धिपरायणः । अयुतं भक्तिभावेन सहस्रं
 च वरानने ! । अन्तर्यागं ततः कृत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ९ ॥
 अश्वत्थवटमूले वा विल्वमूलेऽथ वा प्रिये ! । पूजयेत् परया
 बुद्ध्या मन्त्रसिद्धिं जनो लभेत् ॥ १० ॥ तथा । सुषुम्नान्तः स्थितां
 देवीं पद्मकिञ्चल्कवासिनीम् । ध्यायेन्नाडीविशुद्धेन मन्त्रसिद्धि-
 रनुत्तमा ॥ तथा । श्मशानेऽश्वत्थमूले वा शवे वा शून्यमन्दिरे ।
 प्रजपेत् कालिकां तारां महाविद्यां प्रसीदति । जपेन तपसा

स्त्रीतैरन्तर्यागैर्मनोहरैः । पूजनैः कवचैर्देवि ! महाविद्या प्रसी-
दति ॥ ११ ॥ वामे सुरायां देवेशि ! नानालङ्कारभूषिताम् ।
कुलचक्रे च देवेशि ! प्रजपेत्तु समः शिवः । निशि चक्रे करा-
लास्ये मुक्तकेशो दिगम्बरः । सहस्रं वायुतं वापि जपेन्मदन-
मन्दिरे । श्वेतं वा लोहितं वापि कुसुमं पञ्चमान्वितम् । एवं-
विधविधानेन महाकाल्यै निवेदत् । दिवापूजा विधातव्या निशा-
पूजा महेश्वरि ! । सन्ध्यापूजा विधातव्या तदा सिद्धिमवाप्नु-
यात् ॥ तथा । श्वे विल्वं करे दक्षे मालां संगृह्य साधकः ।
प्रजपेत् पार्वतीमन्त्रं सर्वकार्यार्थसिद्धये । प्रणम्य भक्त्या देवेशि !
जपेच्चिन्तामणिं मनुम् । चिन्तामणिप्रसादेन किं न सिध्यति
भूतले । चिन्तामणिं कल्पलतां गृहीत्वा परमां शिवाम् । जप्त्वा
महामनुं चण्डि ! देवदेवेश्वरो भवेत् । योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे
पञ्चममण्डले ॥ देव्युवाच ॥ भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! लोकानुग्रहका-
रक ! । साधनं सर्वमन्त्रस्य सर्वाशापरिपूरकम् । साधनं सिद्धि-
मन्त्रस्य वद मे कुरुणामय ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रव-
क्ष्यामि साधनं परमाद्भुतम् । साद्वयामगतायान्तु निशायां साध-
कोत्तमः । भूत्वा दिगम्बरः सम्यगाचस्य विधिवत्तथा । अभ्युच्च
मूलमन्त्रेण शय्यायां तत्र संविशेत् । गुरुं परमगुरुञ्च परापर-
गुरुं तथा । परमेष्ठिगुरुञ्चैव वामेऽभ्यर्च्य गणेश्वरम् । दक्षिणे
च ध्रुवाख्यन्तु श्मशानवासिन्यै नमः । ततो माया आसनाय
नम इत्युच्चरेच्छिवे ! । शय्या शय्यातले देवि ! प्रणवान्ते ध्रुवञ्च
फट् । लिखित्वाचस्य यज्ञेन स्वतन्त्रोक्तविधानतः । प्रणवं मणि-
धरी चैव वज्रिणी च महापदम् । प्रतिसरे रत्न रत्न मां हुं फट्
स्वाहया युतः । अनेन मनुना देवे ! शिखां बद्धा विधानतः ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ मातृकान्यासमेव च । भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा
ततश्च परमां शिवाम् । ध्यात्वा भक्त्या समभ्यर्च्य मानसे साध-

क्रीत्तमः । शय्यातले महेशानि ! मन्त्रोऽपि च वरानने ! । प्रण-
 वच्च ततो देवि । वटुकेभ्यो नमस्तथा । इति मन्त्रेण मनसा वटुकं
 पाद्यादिभिर्यजेत् । ततस्तु वङ्गिवीजेन समन्ताज्जलधारया ।
 वङ्गिप्राचीरमाचिन्य सङ्कल्प्य च समादरात् । जपं कृत्वा सम-
 र्प्याय विधिना परमेश्वरि ! । पुनः सङ्कल्प्य देवेशि ! कुर्यात्
 स क्रमतः शिवे ! । होमञ्च तर्पणञ्चैव अभिषेकं ततः परम् ।
 विप्रस्य भोजनञ्चैव अभावे द्विगुणं जपेत् । काञ्चनं दक्षिणं
 दत्त्वाऽच्छिद्रावधारणं चरेत् । सम्प्रोच्य वटुकं देवि ! क्षमस्वेति
 विसर्जयेत् । एवमुक्तं महेशानि ! शय्यासाधनमुत्तमम् । मन्त्र-
 सिद्धिकारं शीघ्रमस्मत्सायुज्यदायकम् ॥ विशेषशय्यासाधनन्तु
 निर्गुणकाण्डे वक्ष्यते ॥ तत्रैव ॥ इतः शृणु त्रिवाटस्य चतुर्वाटस्य
 साधनम् । गत्वा तु त्रिपथं वापि चतुष्पथं वरानने ! । प्राग्व-
 द्देवीं समभ्यर्च्य मणिधरीति मन्त्रतः । बद्ध्वा ग्रथ्यन्तु वस्त्रान्ते
 निर्भेद्यं साधकोत्तमः । श्मशानवासिनो ये ये देवा देव्यश्च भैरवाः ।
 कृपां कुर्वन्तु ते सर्वे सिद्धिदाश्च भवन्तु मे । प्रणमेत् प्रणवाद्येन
 मनुनानेन भक्तितः । ततः पूर्वमुखो वापि उत्तराशामुखोऽपि
 वा । उपविश्य समाचम्य स्वस्ति वाच्य महेश्वरि ! । स्थानं
 सम्राज्यं तत्रैव प्रेतबीजं लिखेत् सुधौ । बीजोपरि महादेवि !
 विहितासनमास्त्ररेत् । तत्रोपविश्य देवेशि ! हृदीष्टदेवतां स्म-
 रेत् । यथेष्टं मनसाराध्य अष्टाशासु बलिं हरेत् । कात्यादिभ्यो
 विशेषेण पूजयित्वा महेश्वरि ! । काली कपालिनी कुक्का कुरु-
 कुक्का विरोधिनी । विप्रचित्ता तथा नीला बलाका च घना-
 द्विषः । प्रणवाद्या डेयुतान्ता पूज्या बल्या विना स्मृता । सङ्क-
 ल्पग्राष्टोत्तरयुतं जप्त्वाऽच्छिद्रावधारणम् । कृत्वा स्थानं परिष्कृत्य
 देवीं स्मरन् गृहं व्रजेत् । अतः परमहं वक्ष्ये विल्वमूलस्य साध-
 नम् । विल्वमूलं महेशानि ! समन्तात् षोडशं करम् । अतस्त-

स्नाधनं देवि ! सर्वेषां प्रियकारकम् । तत्र गत्वा विल्वमूलं
प्राग्बद्गुस्चतुष्टयम् । अभ्यर्च्य यत्नतो देवि ! क्षैत्रपालं प्रपूज्य च ।
क्षैत्रपाल ! महाभाग ! श्मशानाधिप ! सुव्रत ! । सिद्धिं देहि
जगत्कर्ता देहि स्थानं नमोऽस्तु ते । अनेन प्रणवाद्येन मनुना
प्रणमेच्च तम् । ततः स्थानन्तु सम्पूज्य लिखित्वा वरानने ! ।
वाम्भवं प्रेतवीजञ्च पुनर्वाग्भवमेव च । तदन्ते मूलमन्त्रञ्च लिखित्
साधकसत्तमः । पूजयित्वा च कात्यादिं पूर्ववत् परमेश्वरि ! ।
सङ्कल्पशष्टोत्तरशतं जप्त्वाऽच्छिद्रावधारयेत् । परिष्कृत्य ततः स्थानं
गुरुं स्मरन् गृहं व्रजेत् । इत्येवं कथितं तुभ्यं सारात्सारं परा-
त्परम् । गोपनीयं सदा भद्रे ! विशेषात् पशुसङ्कुले ॥

अथ कार्तवीर्यार्जुनप्रयोगः ॥ मन्त्रमहोदधौ ॥ यथा प्रौं
त्रीं क्लौं क्लं क्लीं क्लौं स्त्रीं हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः ॥
वज्रितारयुतो वाद्यो लक्ष्मीरग्नीन्दुशक्तियुक् । वेधाधरेन्दुशा-
न्याढ्यो निद्राधीशान्गिरिन्दुयुक् । मायाङ्कुशं बधूर्वर्मास्त्रे ततः
कार्तवी पदम् । रेफवायवानलो वज्रिजौ दक्षकर्णसंस्थितौ ।
मेघः सदीर्घः पवनो मनुवक्त्रो हृदन्तकः । ऊनविंशतिवर्णोऽयं
तारादिमखवर्षकः ॥ इति प्रमाणम् ॥ ओं कार्तवीर्यार्जुनाय
नमः ॥

अथास्य न्यासः ॥ यथा । ओं नमो भगवते भो भोः का-
र्त्तवीर्यार्जुन ओं ओं ओं मम हृदये दुष्टं दारय दुरितं हनहन
पापं मथमथ आरोग्यं कुरुकुरु हां हां हुं द्विषः ॥१॥ ओं प्रौं त्रीं
हुं आं क्लीं क्लौं स्त्रीं हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः । अयं
विंशत्यर्णः ॥ द्वितीयन्यासः ॥ ओं नमो भगवते भो भोः कार्त-
वीर्यार्जुन ओं प्रौं ओं मम उदरे दुष्टं दारय दुरितं हनहन
पापं मथमथ आरोग्यं कुरुकुरु हां हां हूं हूं फट् फट् द्विषः ॥
२॥ ओं नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुन ओं त्रीं ओं मम नाभौ दुष्टं

दारय दुरितं हनहन पापं मथमय आरोग्यं कुरुकुरु हं हं
हुं हुं फट् फट् द्विषः ॥ ३ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं ह्रीं मम
जठरं दुष्टं दारयेत्यादि ॥ ४ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं ह्रूं मम गुह्य-
मण्डले दुष्टमित्यादि ॥ ५ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं आं ओं मम
जरयुग्जानुपादेषु दुष्टमित्यादि ॥ ६ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं क्रीं
ओं मम मूर्ध्नि दुष्टमित्यादि ॥ ७ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं कौं
ओं मम भ्रूयुगले दुष्टमित्यादि ॥ ८ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं
ओं ओं मम कर्णाक्षिनासिकाजिह्वावक्त्रेषु दुष्टमित्यादि ॥ ९ ॥
ओं इत्यादि १५ ओं हुं ओं मम कण्ठबाहुयुगेषु दुष्टमित्यादि ॥
१० ॥ ओं इत्यादि १५ ओं कां ओं मम सर्वाङ्गेषु दुष्टमित्यादि ।
ओं इत्यादि १५ ओं फट् ओं मम सर्वाङ्गेषु दुष्टमित्यादि ॥ ११ ॥
ओं इत्यादि १५ ओं ओं ओं मम सर्वाङ्गेषु दुष्टं दारयेत्यादि
॥ १२ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं वीं ओं मम सर्वाङ्गेषु दुष्टमित्या-
दि ॥ १३ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं व्यीं ओं मम सर्वाङ्गेषु दुष्ट-
मित्यादि ॥ १४ ॥ ओं इत्यादि १५ ऊं ओं मम सर्वाङ्गेषु दुष्ट-
मित्यादि ॥ १५ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं नां ओं मम सर्वाङ्गेषु
दुष्टमित्यादि ॥ १६ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं यं ओं मम सर्वाङ्गेषु
दुष्टमित्यादि ॥ १७ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं नं ओं मम सर्वाङ्गेषु
दुष्टमित्यादि ॥ १८ ॥ ओं इत्यादि १५ ओं म ओं मम सर्वाङ्गेषु
दुष्टमित्यादि ॥ १९ ॥

अथ गायत्री ॥ ओं कार्त्तवीर्याय विद्महे महावीर्याय
धीमहि तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात् । गायत्रेष्वा समाख्याता प्रयो-
गादौ जपेत्तु ताम् ॥ इति मन्त्रमहोदध्युक्तप्रयोगः ॥

अथास्य कवचम् ॥ औदेव्युवाच ॥ देवाधिदेव ! सर्वज्ञ !
सर्वलोकहिते रत ! । केन रक्षा भवेन्नृणां भीतानां विविधापदि ।
राजचीरादिपीडासु शस्त्राग्निविषपातने । मारौदुःस्वप्नपीडासु

अहरीगभयेऽपि च । ज्वरापस्मारपीडासु सिंहव्याघ्रनिपातने ।
 राक्षसासुरवेतालपिशाचप्रेतपातने । महाभये महानाशे महा-
 कारागारगतेऽर्णवे । महामृत्युभये घोरे महाकलहपातने ।
 केनोपायेन शान्तिः स्यात् साधकानां महेश्वर ! । अनष्टद्रव्यता
 चैव नष्टस्य पुनरागमः । सर्वाकर्षणसंचोभः सर्वसंहननं तथा ।
 भवत्यभीष्टं जन्तूनां केवलं वद मे शिव ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु
 गुह्यतमं देवि ! गोपनीयं प्रयत्नतः । अवाच्यमपि वक्ष्यामि तव
 लोकहिताय वै । कवचं कार्त्तवीर्यस्य साङ्गावरणकं क्रमात् ।
 स्वमूर्तिशक्तिमन्त्रौघं सजपध्यानपूर्वकम् । सहस्रादित्यसङ्काशे
 नानारत्नसमुज्ज्वले । भास्वदुध्रजपताङ्गाब्धे तुरगायुधभूषणे ।
 महासंवर्तकाश्वोजभोमरावविराविणि । समुद्रुतमहाच्छत्र-
 वितानितवियत्पथे । निर्माणकिङ्किणीजालचलच्चामरशोभिते ।
 महारथवरे दीप्ते नानायुधविराजिते । सुस्थितं विपुलोदार-
 सहस्रभुजमण्डितम् । वामोरुकुण्डकोदण्डान् दधानमपरैः
 शरान् । किरीटहारमुकुटकेयूरबलयाङ्गदैः । सुदिकोदर-
 गन्धाढ्यैर्मौञ्जीनूपुरकादिभिः । भूषितं विविधकल्पैर्भास्वरैः
 सुमहाधनैः । आवड्कवचं वीरं सुप्रसन्नाननाम्बुजम् । धनुर्ज्या-
 सिंहनादेन कम्पयन्तं जगत्त्रयम् । सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वव्याधि-
 विनाशनम् । सर्वसम्पत्प्रदातारं विजयश्रीनिधेवितम् । सर्व-
 सौभाग्यदं भद्रं भक्तानां भयनाशनम् । दिव्यमालानुलेपाढ्यं
 सर्वलक्षणसंयुतम् । रथनागाश्वपादातिवृन्दमध्यगमीश्वरम् ।
 वरदं चक्रवर्त्तीनां महीलोकैकपालकम् । समानोदितसाहसं
 दिवाकरसमत्विषम् । महायोगबलैश्वर्यं कीर्त्याक्लान्तजगत्त्र-
 यम् । श्रीमन्नक्रहरं रंशादवलीर्णं महाबलम् । सम्यगात्मविभेदेन
 ध्यात्वा रक्षासुदीरयेत् । दत्तात्रेय ऋषिः प्रीतोऽनुष्टुप्कन्दः
 प्रकीर्तितम् । कार्त्तवीर्यार्जुनो विष्णुश्चक्रवर्त्ती च देवता ।

विनियोगश्च रक्षायै सर्वतः परिकीर्तितः । सर्वदुष्टविनाशाय
 सर्वार्थस्य च सिद्धये । अस्याङ्गमूर्त्तयः पञ्च पान्तु मां स्फटिको-
 ज्ज्वलाः । अग्नीशासुरवायव्यकोणेषु हृदयादिकाः । सर्वतस्तू-
 ज्ज्वलरूपवीरचर्मासिपाणयः । अव्याहतबलैश्वर्यशक्तिसामर्थ्य-
 विग्रहः । जेमङ्करीशक्तियुतश्चौराणां मदभञ्जनः । प्राचीदिशं
 रक्षतु मे वाणवाणाशयायुधः । श्रीकराशक्तिसहितो मारीमद-
 विभञ्जनः । शरचापधरः श्रीमान् दिशं मे पातु दक्षिणाम् । महा-
 वश्यकरीयुक्तः शत्रूणां मदभञ्जनः । कोदण्डेषु धरः सौर्यां दिशं
 मे परिरक्षतु । प्रजाकरीयुतश्चापवाणदुष्टप्रणाशनः । परिरक्षतु
 मे सम्यक् विदिशं चैत्रभागवौम् । विद्याकरीसमायुक्तः सुम-
 हान् दुष्टनाशनः । पातु मे नैऋतीं चाप वाणवान् दिशमीश्व-
 रः । धनकर्त्र्या समायुक्तो महादुरितनाशनः । इष्वासर्गपुष्टक
 पातु विदिशं मम वायवौम् । आयुष्कर्त्र्या सनायुक्तः श्रीमान्
 भयविनाशनः । चापेपुधारी शैवीं मे विदिशं परिरक्षतु ।
 विजयश्रीयुतः साक्षात् सहस्रारधरो विभुः । दिशमूर्द्धामवतु
 मे महाभयविनाशनः । शङ्खभृत् सुमहाशक्तिसंयुतोऽप्यधरां
 दिशम् । परिरक्षतु मे दुःखध्वान्तसम्भेदभास्करः । महायोग-
 समायुक्तः सर्वदिक्चक्रमण्डलम् । महायोगीश्वरः पातु सर्वतो
 मम पद्मभृत् । एता दिङ्भूर्त्तयो रक्ता रक्तमात्र्यांशुकैर्वृताः । प्रधा-
 नदेवतारूपाः पृथक् रथवरे स्थिताः । शक्तयः पद्महस्ताश्च नीले-
 न्दीवरसन्निभाः । सुशुक्लमाख्यवसनाः सुलसतिलकीज्ज्वलाः ।
 तत्पार्श्वदेवताः स्वस्ववाहनायुधभूषणाः । स्वसदिक्षु स्थिताः
 पान्तु मामिन्द्राद्या महाबलाः । एतास्त्वस्य सनाख्याताः सर्वाधर-
 णदेवताः । सर्वतो मां सदा पान्तु सर्वशक्तिसमन्विताः । हृदये
 चोदरे नाभौ जठरे गुह्यमण्डले । ऊरुयुग्जातुपादेषु मूर्ध्नि
 भ्रूयुगलेषु च । कर्णाक्षिनासिकाजिह्वाकण्ठवाङ्मयुगेषु च । दश-

वीजात्मका मन्त्राः सम्यक् सम्पत्तिदायकाः । तेजोरूपाः स्थिताः
 पान्तु वाञ्छासुरद्रुमाः सदा । दश चान्ये महावर्णा मन्त्ररूपा
 महोज्ज्वलाः । व्यापकत्वेन पान्त्वस्मानापादतलमस्तकम् । कार्त-
 वीर्यैः शिरः पातु ललाटं हैहयेश्वरः । सुमुखो मे मुखं पातु
 कर्णौ व्यासजगन्मयः । सुकमारो हनू पातु भ्रूयुगं मे धनुर्धरः ।
 नयने पुण्डरीकाक्षो नासिकां मे गुणाकरः । अधरोष्ठौ सदा पातु
 ब्रह्मगेयो द्विजान् कविः । सर्वशास्त्रकलाधारो जिह्वां चिवुक-
 मव्ययः । दत्तात्रेयप्रियः कण्ठं स्कन्धौ राजकुलेश्वरः । भुजौ
 दशास्त्रदर्पघ्नो हृदयं मे महाबलः । करौ सर्वार्थदः पातु करा-
 ग्रणि जगत्प्रियः । कुक्षिं रक्षतु मे विद्वान् वक्षः परपुरञ्जयः ।
 रेवास्त्रलीलासन्तुष्टो जठरं परिरक्षतु । वीरशूरस्तु मे नाभिं
 पार्श्वौ मे सर्वदुष्टहा । सहस्रभुजश्चतुष्टयं सप्तद्वीपाधिपः कटिम् ।
 ऊरुमाहिष्मतीनाथो जातुनी वल्लभो विभुः । जङ्घे वीराधिपः
 पातु पातु पादौ मनोजवः । पातु सर्वायुधधरः सर्वाङ्गं सर्व-
 मर्मसु । सर्वदुष्टान्तकः पातु धात्वष्टककलेवरम् । प्राणादिदश-
 जीवेशान् सर्वशिष्टेष्टदोऽवतु । वशीकृतेन्द्रियग्रामः पातु सर्व-
 न्द्रियाणि मे । अनुक्तमपि यत् स्थानं शरीरेऽन्तर्वह्निश्च यत् ।
 तत्सर्वं पातु मे सर्वलोकनाथेश्वरेश्वरः । वज्रात् सारतरङ्गेदं शरीरं
 कवचावृतम् । बाधाशतविनिर्मुक्तमस्ति मे भयवर्जितम् । बहुदे-
 कवचं दिव्यं न भेद्यं हैहयेशितुः । विचरामि दिवारात्रौ निर्भये-
 णान्तरात्मना । राजमार्गे महादुर्गे मार्गे चौरादिसङ्कुले ।
 विषमे विपिने घोरे दावाग्नी गिरिकन्दरे । संग्रामे शस्त्रसङ्घाते
 सिंहव्याघ्रनिषेविते । गह्वरे सर्पसङ्कीर्णे सन्ध्याकाले नृपालये ।
 विवादे विपुलावर्त्ते समुद्रे च नदीतटे । परिपन्थिजनाकीर्णे
 देशे दस्युगणैर्वृते । सर्वस्वहरणे प्राप्ते प्राप्ते प्राणस्य सङ्कटे ।
 नानारोगजराविशे विषादप्राप्तभूतले । मारीदुःखप्रपीडासु

क्लिष्टे विश्वासघातकैः । शरीरे च महादुःखैर्मानसे च महा-
 ज्वरे । आधिव्याधिभये विघ्ने ज्वालोपद्रवकेऽपि च । न भवेत्तु
 भयं किञ्चित् कवचेनाहतस्य मे । आगन्तुकामानखिलान् सुर-
 दस्युविलुम्पकान् । विनाशयेत्तद्दोर्दण्डसहस्रेण महारथः ।
 स्वकरोद्धृतनिर्भिन्नान् सहस्रशरखण्डितान् । राजचूडामणिः
 क्षिप्रं करोत्वस्मद्दिरोधकान् । खड्गसाहस्रदलितान् सहस्रमूष-
 लार्दितान् । चौरादिदुष्टसत्त्वौघान् सहस्रारसहस्रभृत् । कृत-
 वीर्यसुतो राजा सहस्रभुजमण्डितः । अवतारो हरेः सान्नात्
 पालयेत् सकलं मम । कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्र-
 वान् । तस्य स्मरणमात्रेण कृतं नष्टञ्च लभ्यते । यो भवेत्लोक-
 रक्षार्थमंशाच्चक्रं हरेर्भुवि । तं नमामि महावीर्यमर्जुनं कृत-
 वीर्यकम् । सहस्रबाहुं सशरं सचापं रक्ताम्बरम् रक्तकिरीट-
 कुण्डलम् । चौरादिदुष्टभयनाशनमिष्टदं तं वन्दे महाबलविजृ-
 ष्णितकार्तवीर्यम् । कार्तवीर्य ! महावीर्य ! सर्वदुष्टविनाशन ! ।
 सर्वत्र सर्वदा तिष्ठ दुष्टान्नाशय पाहि माम् । दत्ते पञ्चशतं वाणा
 वामे पञ्चशतं धनुः । यो विभर्ति स पात्वस्मान् विषव्यालशता-
 कुलान् । उत्तिष्ठ दुष्टदमन ! सप्तद्वीपैकपालक ! । त्वमेव शरणं
 प्राप्तं सर्वतो रक्ष रक्ष माम् । उत्तिष्ठ किं त्वं स्वपिषि किं तिष्ठसि
 चिराय हि । पाहि नः सर्वदा सर्वभयेभ्यः स्वसुतानिव । ये चौरा
 वसुहर्तारो विदिषो ये च हिंसकाः । अन्तरायकरा दुष्टाः पा-
 पका ये दुराशयाः । दुर्हृदो दुष्टभूपाला दुष्टा मान्याश्च पापकाः ।
 ये च कार्यविलोभारो ये खलाः परिपन्थिनः । सर्वस्वहारिणो
 ये च ये च मायाविनोऽपरे । महाक्लेशकरा स्नेच्छा दस्यवो
 वृषलाश्च ये । ये महाशरदातारो वञ्चकाः शस्त्रपाणयः । ये पापा
 दुष्टकर्माणो दुःखदा दुष्टबुद्धयः । व्याजकाः कुपथासक्ता ये च
 नानाभयप्रदाः । शिद्रान्वेषरता नित्यं येऽस्मान् बाधितुमुद्यताः ।

ते सर्वे कार्त्तवोर्थस्य महाशङ्खवराहताः । सहसा विलयं यान्तु
दूरादेव विमोहिताः । ये दानवा महादैत्या ये यक्षा ये च रा-
क्षसाः । पिशाचा ये महासत्त्वा ये भूता ब्रह्मराक्षसाः । अपस्मार-
ग्रहा ये च ये ग्रहाः पिशताशनाः । महालोहितभोक्तारो वेताला
ये च गुह्यकाः । मनोबुद्धीन्द्रियजवाः स्फोटकाश्च महाज्वराः ।
महाशना बलिभुजो महाकुण्ठपभोजनाः । गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा ये
च देवादियोनयः । डाकिन्यो घोनसाः प्रेताः क्षेत्रपाला विना-
यकाः । महाव्याघ्रमहामिषमहातुरगरूपकाः । महापूजा महा-
सिंहा महामहिषसन्निभाः । ऋतवाराहशुनकरूपा बोलुक-
मूर्तयः । महोद्भ्रष्टरमा रारिर्सर्पाणां विषमस्तकाः । नानारूपा
महासत्त्वा नानाक्लेशसहसदाः । नानारोगकराः क्षुद्रा महावीर्या
महाबलाः । वातिकाः पैत्तिका घोराः श्लैष्मिकाः सान्निपातिकाः ।
माहेश्चरा वैष्णवाश्च वैरिवंश्या महाग्रहाः । स्कान्दा वैनायकाः
क्रूरा ये च प्रमथसम्भवाः । महाशत्रुग्रहा रौद्रा महामारीमसू-
रिकाः । ऐकाहिका द्वाहिका त्र्याहिकाश्च महाज्वराः ।
चातिर्थकाः पाक्षिकाश्च मासाः पाण्डासिकाश्च ये । सांवत्सरा
दुर्निवार्या ज्वराः परमदारुणाः । स्वाप्निकाश्च महोत्पाता ये च
दुःस्वप्निका ग्रहाः । कुष्माण्डा जृम्भका भीमा घोनासा निधिव-
ञ्चकाः । भ्रामकाः प्राणहर्त्तारो ये च बालग्रहादयः । दिवाचरा
रात्रिचरा ये च सन्ध्यासु दारुणाः । प्रमत्ता अप्रमत्ता वा येऽस्मान्
बाधितमुद्यताः । ते सर्वे हैहयेशस्य धनुर्मुक्तशरादिताः । सह-
स्रधा प्रणश्यन्तु भग्नसत्त्वबलोद्यमाः । ये सर्पा ये महानागा
महागिरिगुहाशयाः । कालव्याला महादंष्ट्रा महाजगरसंज्ञकाः ।
अनन्तकुलिकाद्याश्च दंष्ट्राविषमहाभयाः । अनेन शतशीर्षाश्च
खण्डपुच्छाश्च दारुणाः । महाविषजलीकाश्च वृश्चिका रक्तपु-
च्छकाः । आशौविषाः कालकूटा महाहालाहलाह्वयाः । जल-

सर्पा जलव्याला जलग्रहाश्च कच्छपाः । मासिका विषपुच्छाश्च
 ये चान्ये जलवासिनः । जलजाः स्थलजाश्चैव नानाभेदशतो-
 ज्जवाः । ये च षड्विन्दवो लूता भ्रामराः शुक्रपुच्छिकाः । स्थावरा
 जङ्गमाश्चैव कृचिमाश्च महाविषाः । गुप्तरूपा गुप्तविषा मूषिका
 गृहगोधिकाः । अपस्मारविषा घोरा महोग्रविषसंज्ञकाः । ये-
 ऽस्मान् बाधितुमिच्छन्ति शरीरप्राणनाशनाः । ते सर्वे कार्त्त-
 वीर्यस्य खड्गसाहस्रखण्डिताः । दूरादेव विनश्यन्तु प्रनष्टेन्द्रिय-
 साहसाः । मनुष्याः पशवो वृक्षा वानरा वनगोचराः । सिंह-
 व्याघ्रवराहाश्च महिषा ये महामृगाः । गजास्तुरङ्गा गवया रा-
 सभाः शरभा वृकाः । शुनकाः पिशुनाः शूद्रा मार्जारा विलयोनयः ।
 शृगालाः शशकाः श्येना गरुत्मन्तो विहङ्गमाः । मेरुण्डा वायसा
 गृध्रा हंसाद्याः पक्षिजातयः । उड्भिज्जाश्चाण्डजाश्चैव खेदजाश्च
 जरायुजाः । नानाभेदकुले जाता नानाभावपृथग्विधाः । येऽस्मान्
 बाधितुमिच्छन्ति सन्ध्यासु च दिवा निशि । ते क्षिप्रं कार्त्तवी-
 र्यस्य गदासाहस्रचूर्णिताः । दूरादेव विनश्यन्तु विनष्टगतिपौ-
 र्षाः । ये चाक्षेपप्रदातारो हेशारो ये विदूषकाः । कार्त्त-
 यन्त्रप्रकर्तारः कूटामायाविनोऽपरे । मारणोच्चाटनोन्मूलहेष-
 मोहनकारकाः । विश्वासघातका दुष्टा ये च स्वामिद्रुहो नराः ।
 ये चाततायिनो दुष्टा ये पापा गोप्रहारिणः । दाहोपघातगरल-
 शस्त्रपातातिदुःखदाः । क्षेत्रवित्तापहरणबन्धनादिभयप्रदाः ।
 एते ये विविधाकारा ये चान्ये दुष्टजातयः । पीडाकराश्च सततं
 छिद्रमिच्छन्ति बाधितुम् । ते सर्वे कार्त्तवीर्यस्य चक्रसाहस्र-
 दारिताः । दूरादेव विनाश्यन्तु क्षयं यान्तु सहस्रधा । ये मेघा
 ये महावर्षा ये वाता याश्च विद्युताः । ये महाशनयो दीप्ता
 निर्घाताद्याश्च दारुणाः । उल्कापाताश्च ये घोरा ये महेन्द्रायुधा-
 दयः । सूर्येन्दुकुजसौम्याश्च गुरुकाव्यशनैश्चराः । राहुश्च केतवो

घोरा नक्षत्राणि च राशयः । तिथयः संक्रमा मासा हायना युग-
नायकाः । मन्वन्तराधिपाः सिद्धा ऋषयो योगसिद्धयः । श्रुतय
ऋग्यजुःसामाथर्वणाद्याश्च वङ्गयः । ऋतवो लोकपालाश्च पितरौ
देवसंहतिः । विद्याश्चैव चतुःषष्टिभेदोत्था भुवनत्रय । एते वै
कीर्तिताः सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिताः । ते सन्तु नः सदा सौम्या
सर्वकालं सुखावहाः । आत्रया कार्तवीर्यस्य योगीन्द्रस्यामित-
द्युतेः । कार्तवीर्यार्जुनो धन्वी राजेन्द्रो हैहयेश्वरः । दत्तात्रेय-
प्रियतमः सहस्रभुजमण्डितः । चापी खड्गी रथी वाणी तूणी
चर्मी महाबलः । सुभगः सुमुखः शान्तश्चक्रवर्ती गुणाकरः ।
दशस्यदर्पहारो वा लीलाढ्यः सुदुर्जयः । दुष्टहा चौरदमनो
राजराजेश्वरः प्रभुः । सर्वज्ञः सर्वदः श्रोमान् सर्वशिष्टेष्टदः कृती ।
राजचूडामणिर्योगी सप्तद्वीपाधिनायकः । विजयी विश्वतो राज्ञां
महामतिरलोलुपः । देवविप्रप्रियो विद्वान् ब्रह्मगेयः सनातनः ।
माहिष्मतीपतिर्योद्धा महाकीर्तिर्महामुजः । सुकुमारो महा-
वीरो मारीचो मदिरेक्षणः ॥ शत्रुघ्नः शाश्वतः शूरः शङ्खभृद्गोपि-
वल्लभः । महाभागवतो धीमान् महाभयविनाशनः । असाध्य-
विग्रहो दिव्यभावो व्याप्तजगत्त्रयः । सर्वशास्त्रकलाधारो विरजो
लोकवन्दितः । वीरो विमलसत्त्वाढ्यो महाबलपराक्रमः । विजय-
श्रीमयो नान्यो जितारिर्मन्त्रनायकः । चक्रभृत् कामदः कान्तः
कामघ्नः कमलेक्षणः । भद्रवादप्रियो वैद्यो विबुधो वरदो वशी ।
जितेन्द्रियो जितारातिः महान् योऽनन्तविक्रमः । चक्रभृत् पर-
चक्रघ्नः संध्यामविधिपूजितः । महाधनो निधिपतिर्महायोगी
गुप्तप्रियः । योगाढ्यः सर्वरोगघ्नो राजिताखिलभूतलः । दिव्यास्त्र-
भृदमेयात्मा सर्वगोप्ता महोज्ज्वलः । सर्वयुधधरोऽभीष्टप्रदः पर-
पुरञ्जयः । योगसिद्धो महाकायो महावृन्दशताधिपः । सर्व-
ज्ञाननिधिः सर्वसिद्धदानकृतोद्यमः । इत्यष्टशतनामोत्था मूर्त्तयो

दशदिकपतेः । सम्यक् दश दिशो व्याप्य पालयन्तु च मां सदा ।
मनःसौख्यमसम्बाधमारोग्यमपराजयः । दुःखहानिररिघ्नश्च
प्रजावृद्धिः सुखोदयः । वाञ्छाप्तिरिति कल्याणमवैषम्यमनामयम् ।
अनालस्यमभीष्टञ्च सृत्युहानिर्बलान्नतिः । भयहानिर्यशः का-
न्तिर्विद्याबुद्धिमहोच्छ्रितः । अनष्टद्रव्यता चैव नष्टस्य पुनरागमः ।
दीर्घायुष्टं मनोलाभः सौकुमार्यमभीप्सितम् । अप्रष्टमन-
ल्पत्वं महासामर्थ्यमेव च । सन्तु मे कार्त्तवीर्यस्य हैहयेन्द्रस्य
कीर्त्तनात् । य इदं कार्त्तवीर्यस्य कवचं पुण्यवर्द्धनम् । सर्व-
पापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् । सर्वशान्तिकरं गुह्यं समस्तभय-
नाशनम् । विजयार्थप्रदं नृणां सर्वसम्पत्प्रदं शुभम् । शृणुयाद्वा
पठेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् । नित्यं शिरसि यो धत्ते सर्वान्
कामानवाप्नुयात् । मुच्यते सर्वदुःखैस्तु सर्वत्र विजयो भवेत् ।
मारोचौरादि पीडाद्यैर्न कदाचित् प्रबाध्यते । पठतः प्रातरुत्थाय
दुःस्वप्नादि विनश्यति । लभते वाञ्छितानर्थान् पूज्यते त्रिदशैरपि ।
शय्यातलगतो रात्रौ य इदं कवचं पठेत् । न तस्य तस्कराराति-
दुःस्वप्नादिकृतं भयम् । चौरैर्यदा हृतं पश्येत् पश्वादिघनमात्मनः ।
सप्तवारं तदा जप्त्वा निशि पश्चिमदिक्षु खः । सप्तरात्रेण लभते
नष्टद्रव्यं न संशयः । सप्तविंशतिधा जप्यात् प्राचीदिग्वदनो
यदि । तदा देवासुरनिभं परचक्रं निवारयेत् । विवादे कलह-
घोरे पञ्चधा यः पठेद्दिदम् । विजयो जायते तस्य न कदाचित्
पराजयः । सम्यक् द्वादशधा रात्रौ प्रजपेद्बन्धमुक्तये । त्रिदिना-
न्निगङ्गप्रस्तो मुच्यते नात्र संशयः । अनेनैव विधानेन सर्वसाधन-
कर्मणि । असाध्यमपि सप्ताहात् साधयेन्नन्तवित्तमः । यात्रा-
काले पठित्वेदं मार्गं गच्छति यः पुमान् । न तस्य चौरव्याघ्राद्यै-
र्मयं स्यात् परिपन्थिभिः । नित्यं गृहगतो जप्त्वा कल्याणैः परि-
पूर्यते । न भयं जायते तस्य दुष्टसत्त्वादिभिः क्वचित् । सर्व-

रोगप्रपीडासु विधा वा पञ्चधा पठेत् । स रोगमृत्युवेतालभूत-
प्रेतेन बाध्यते । जगन्नासेचनं कुर्याज्जलेनाञ्जलिना तनौ । न
चासौ विषकृत्यादिरोगस्फोटैः प्रबाध्यते । त्रिसन्ध्यं यः पठेदेतत्
षण्मासं विजितेन्द्रियः । कालमृत्युमपि प्राप्तं जीयान्नास्थित-
संशयः । पठतः कवचच्छेदं विषं नाक्रमते तनौ । न जाड्यान्ध-
त्वमूकत्वं नोपसर्गभयं क्वचित् । विंशत्या चोक्तविधिना ध्यात्वा
देवं तदात्मकम् । मन्त्री गुरुप्रसादात् मन्त्रराजं जपेत् पुनः ।
कवचेनावृतो भूयो मन्त्रध्यानं समाचरेत् । आदौ सम्बोधनं
कुर्यात्तन्नामध्यानपूर्वकम् । चतुरश्रक्रमन्त्राणामुच्चरेद्बीजपूर्वकान् ।
कृतवान्ते चैव मन्त्राणामुच्चरेद्बीजपूर्वकान् । शरीरे न्यासमेवं हि
यः करोति समाहितः । स यथोक्तं लभेत् सद्यः फलं वञ्चतनु-
र्भवेत् । यथातथेदं कवचं कस्यचिन्न प्रकाशयेत् । गोपनीयं
प्रयत्नेन शिवस्य वचनं यथा । सुभक्ताय सुशिष्याय दद्यात् सर्व-
स्वदायिने । साधकानां हितार्थाय यदुक्तं चन्द्रमौलिना । कार्त-
वीर्यस्य कवचं यदुक्तं वै मया तव । तेन संवीक्षितो देवि !
कालेनापि न जीर्यते । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कवचं धारयेत्
सुधीः । कार्तवीर्यः खल्वेष्टी कृतवीर्यसुतो बली । सहस्रबाहुः
शत्रुघ्नो रक्तवासा धनुर्धरः । रक्तगन्धो रक्तमान्यो राजा स्मर्तु-
रभौष्टदः । द्वादशैतानि नामानि कार्तवीर्यस्य यः पठेत् ।
सम्पदस्तस्य जायन्ते जनास्तस्य वशे सदा । इति श्रीउज्जामरे-
श्वरतन्त्रे कार्तवीर्यार्जुनकल्पे उमामहेश्वरसंवादे कार्तवीर्या-
र्जुनकवचं नामाष्टाशीतिपटलः समाप्तः ।

इति श्रीप्राणतोषिण्यां चतुर्थे काम्यकाण्डे प्रशाखाकथनं

नाम तृतीयः परिच्छेदः ।

अथ कुक्कुटप्रयोगः । फेल्कारिणीतन्त्रे द्वितीयपटले । अथ
वक्ष्ये संयुतः कुक्कुटमन्त्रमहं मनुसारम् । जगतामुपकारपरैः

क्षपणकगुरुभिर्यथा पुरा प्रोक्तम् । नान्तं षष्ठस्वरपरिगतं विन्दु-
 मत् कुक्कुटाख्यं वीक्ष्यै तत्त्वां पुनरपि पदं वीक्षितं पूर्वकं तत् ।
 नान्तं भूतस्वरपरिगतं वेति मन्त्रोऽयमुक्तः स्थादायुः श्रीविभव-
 सुखसौभाग्यसम्पत्प्रदायी । प्रोक्तः पञ्चदशार्णोऽयं मन्त्रः कुक्कुट-
 दैवतः । स सर्वदेवतातेजःशक्तिवृंहितविग्रहः । क्षीरोदधिमध्यगते
 क्षीपवरे कनकरत्नमयभूमौ । अनवरतसिकतामुक्तामणिमृदु-
 पवनसुशीतले रम्ये । तत्र समुत्थितममलं विपुलतरं कलितवरर-
 त्नफलजातम् । हैमं तालमहीजं बहुमणिविलसद्विचित्रपत्रवरम् ।
 तं पुनरधितिष्ठन्तं ध्यायेदखिलोज्ज्वलनाङ्गम् । अतिशोभाचूडा-
 शोभितवक्त्रम् कुक्कुटमतितीक्ष्णसखचरणम् । वक्त्रं यस्य षडानन्ते
 गिरिसुता यस्योदरं कालहा पृष्ठं यस्य च वह्निर्कुक्कुटमुखौ पादौ
 च वज्रोदरौ । पक्षौ यस्य सुरद्रुमौ मणिमयौ या शृङ्खलावन्धनी
 कामाकर्षकरीकरोतु स तु नः सर्वानाम्नी कुक्कुटः । गौरीहस्ता-
 रविन्दे त्वनिशमधिवसन् षण्मुखारूढकामः सर्वालङ्कारदीप्तः
 प्रचलितचरणः पञ्चविधपदक्षः । हेमाभो रत्नचञ्चूमणिमय-
 विलसद्वक्त्रकण्ठः स्वरूपः पायात्रस्तान्मचूडः सकलजनरतः सर्व-
 सिद्धिप्रदाता ॥ १ ॥ अथवा । सर्वप्रियः सागरमध्यरत्नक्षीपस्य
 तालागनिवासिकुक्कुटः । विद्याभिरामोऽखिलभूषणाढ्यो वशी-
 करोत्याशु सुसेवितो नरैः । अमुष्य पूर्वसेवार्थमेकलिङ्गे शिवा-
 लये । देवस्य महतीं पूजां कृत्वा आसीदुदञ्चुखः । पर्वताग्रे
 नदीतीरे वृषशून्यशिवालये । पश्चिमद्वारसंयुक्ते क्षुर्यान्मन्त्रपुर-
 ङ्खियाम् । गुरुं प्रणम्य शिरसा आसनं परिकल्पयेत् । कर-
 शुद्धिं देहशुद्धिं तालत्रयमथाचरेत् । दिग्वन्धनं कारयेत् पश्चाद्
 विद्यामन्त्रेण तत्परः । प्राणायामत्रयं पश्चात् प्रणवेन तु कल्प-
 येत् । मातृकां विन्यसेत् पूर्वं पश्चात्त्रासं समाचरेत् । पञ्च-
 मन्त्रस्य प्रथमं ह्रन्मन्त्रं तं विनिर्दिशेत् । द्वितीयपदमुच्चार्य

शिरसैव तु योजयेत् । वां शिखायाञ्च विन्यस्य वर्धपक्षितती-
यकम् । तुरीयपदमुच्चार्य नेत्रे च विनियोजयेत् । पुराभ्या-
ञ्चास्त्रसंयुक्तमङ्गषट्कं विधीयते । नमः स्वाहा वषट् हुञ्च वौषट्
फट् च क्रमाव्यसेत् । पुमादिवान्तवर्णांश्च क्रमशो विन्यसेत्
सुधीः । ललाटे विन्दुमध्ये च चक्षुःश्रवणयोरपि । नासाविवर-
योश्चैव आस्ये कण्ठे तथा हृदि । जठरे नाभिदेशे च लिङ्गे गुह्ये
च विन्यसेत् । नमोऽन्तेन तु मन्त्रेण मूर्ध्नादिव्यापकं न्यसेत् ।
एवं विन्यस्तदेहस्तु ध्यायेद्ब्रह्मशिवात्मकम् । मनसा देवमभ्यर्च्य
षोडशैरुपचारकैः । विज्ञाप्यावाह्य यागेन देवं सन्तोष्य यत्नतः ।
ध्यात्वा कुक्कुटदेवञ्च जपेद्भानुसहस्रकम् । तावच्छतं तर्पयित्वा
पुरश्चर्याद्विती भवेत् । वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटनादिकम् ।
कर्माणि कुर्यादिष्टानि मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् । आलिख्य मन्त्रेण
विदर्भितं तत्साध्याह्वयं तालवरस्य पत्रे । प्राणान् प्रतिष्ठाप्य शतं
यथाष्टौ जप्त्वा धृतञ्चेत् शरणं प्रयाति । ताम्बूलं यद्यष्टोत्तरसहस्रं
जप्त्वा दत्तं भुज्यै यस्याः । वश्या नित्यं प्रत्युपदेशाहास्यत्यर्थान्
प्रार्थितभोगान् । मन्त्रं जपन्नथ पञ्चकमलं यः कनकाह्वयमङ्गपञ्च-
युक्तम् । भक्ष्यभोज्यविधिषु प्रतियोज्यं सास्य याति वशगा मर-
णान्तम् । मूलं तस्य च मूलकेन सहितं चिताह्वयस्य त्वचं पुष्पं
वीजसवीर्ग्रहस्त्रिकुसुमं स्वर्णासिकान्तर्जलम् । पत्रं रोहिणमङ्ग-
पञ्चकमलं तद्भाण्डयुक्तं मिथो दत्तं वा पुरुषस्य तद्भृतमिदं वश्या-
ङ्गना मन्त्रयैः । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा हयमारप्रसूनकम् । सप्तरात्रौ
क्षिपेद् यस्य मूर्ध्नि सास्य वशीभवेत् । हयमारं करवीरम् ॥ भूर्जे
साध्यविदर्भितं मनुमिसं संलिख्य कौलालसृत्स्नाकाकल्पितपुत्त-
लोहृदि कृतं प्राणान् प्रतिष्ठाप्य च । जप्त्वा सप्तदिनं त्रिसन्ध्यमथ
तामालोद्य भाण्डीरसैर्लिम्पेद्वश्यमवश्यमेव भविता चान्येषु जन्म-
स्वपि । भाण्डी भार्गी ॥ अष्टोत्तरशतं जप्त्वा समूलकाण्डां

कृताञ्जलिं शिरसा । धारयति सर्वलोकप्रियो भवेन्नियतमेव मन्त्रि-
वरः । कृताञ्जलिर्लज्जावती । तच्छतमखवल्लीलक्ष्मौपुष्याणि
धारयेदेवं समुदाभद्रकविष्णुप्रियाश्च मूषली स मन्त्रजापेन ।
मधुकं दूर्वां सहाच्चैव यथाघृतम् शिरसा । सा तथैवैकं स्वर्ग-
लोककल्याणनयनसमर्थकम् । का कथा मनुष्यलोकेषु दशरवि-
वसुहृदमनुषु । अष्टवाक्षिविष्वद्वोगभागे अञ्जल्यादि क्रमशः ।
संयोज्यादशकमखिलवश्यकरम् । प्रत्येकं शतमष्टौ जप्त्वा संयोज्य
दशकमपिष्टा गुटिकौकृत्य सहसाष्टकं जप्त्वा गुटिकया रचिता
तिलकक्रिया सुरनारीनरलोकरञ्जनादिकं कपिलाघृतदीपितया
तत्तच्चूर्णगर्भया वर्त्त्या कज्जलमुद्धृतमिव तत्कर्पूरयुतं सहस्रं परि-
जप्तम् । दिनमनुदिननयनयुतं कुर्यादखिललोकमवश्यवश्य-
करम् ॥ एते वक्ष्याप्रयोगाः ।

आत्मानं कुकुटं ध्यात्वा स्वकीयगणशक्त्या । साध्यां शृङ्खलया
कण्ठे बद्धा किप्रमनुव्रजेत् । सहस्रमर्द्धरात्रे तु रात्रित्रयमतन्द्रितः ।
तुरीयकुकुटस्थान्ते साध्यानाम स्वकर्म च । जपेत् संयोज्यवश्यादि-
कार्येषु सकलेष्वपि । यामारभ्य जपेदेनं पेक्षितं सा मदालसा ।
विभ्रत् सदाद्रवसना मदनाकुलचेतना । उत्फुल्लगुह्यजघना
शिथिलांशुकभूषणा । चलत्पादपरिन्धासा स्फुरद्रोमाञ्चकञ्चुका ।
कामानलोष्णनिश्वासा शोभिताधरपल्लवा । विकीर्णकेशपाशासौ
वेपिता वृण्णितेक्षणा । रचिताञ्जलिरायाति स्वयमस्यालयं
निशि । साध्याह्वानविदर्भितं मनुमिमं ताञ्जूलपत्रोदरे लेखन्या
प्रतिलिख्य कर्मसहितं प्राणान् प्रतिष्ठाप्य च । जप्त्वाष्टौ शतमर्क-
दुग्धजनिता दीपे चिराच्चान्तरे । गुप्तं दीपशिखाग्निना स्वय-
ममुं वश्योर्वशी चाश्रयेत् । भूर्जे मन्त्रममुं विलिख्य सकलं
साध्याह्वयासम्पुटं प्राप्तप्राणमथाष्टकोत्तरशतं जप्तं तिरातं
पुनः । चौद्वचौरष्टतेष्विदं पृथगपि प्रक्षिप्य मन्त्रं जपन्नाकर्षत्य-

चिरादभीष्टवनितां नागादिलोकादपि । आलिख्यैव शरावके
मनुमिमं तन्नामकर्मान्वितम् । रात्रौ रोचनया प्रणीतपवनं जज्ञा
च साष्टौ शतम् । तस्या नाभिमुखाङ्गजन्मभवनं सन्तापयन्
खादिरे वङ्गी चैतमनङ्गवेगविवशा या वा समयाति च ।
नाभिमात्रजले स्थित्वा साध्यनामविदर्भितम् । जपेत् सहस्रं
त्रिदिनमिष्टामाकर्षयेद् ध्रुवम् ॥ इत्याकर्षणम् ।

कपिरोमहिङ्गुदार्दीखरचर्माणि चूर्णयेत् । तच्चूर्णं मन्त्रसञ्ज्ञं
नामकर्मविदर्भितम् । त्रिसहस्रं पुनस्तेन स्निग्धयोरन्तरा-
त्मनोः । धूपैरतीव विद्विष्टौ स्निग्धावपि भविष्यति । तालपत्रे
लिखेन्नन्त्रं नामकर्मविदर्भितम् । कृतप्राणप्रतिष्ठान्तं प्रजप्तं
त्रिसहस्रकम् । विषालिप्तं द्विधा कृत्वा निखनेत् सिन्धुतीरयोः ।
स्निग्धयोराशु विद्वेषः स्यादुमेशानयोरपि । सिन्धुतीरयोः नद्यु-
भयतीरे । उलूककाकयोः पक्षौ गृहीत्वा मन्त्रवित्तमः । मन्त्रे
आलिख्य वैशरावे निशयाच्च साध्याजरसमुटितं मन्त्रं स्थापित-
पवनं सहस्रजप्तं चतुष्पथे निखनेत् । स्तम्भनमेतदवश्यं भविता
जगताञ्च नात्र सन्देहः । स्थापितपवनं कृतप्राणप्रतिष्ठम् ॥
कृत्वा प्रतिकृतिमथवा श्मशानाङ्गारकेशशववसनजां सपदि सस्य-
गधिष्ठितपवनां हृद्गतनाम्नीं समन्त्रललाटां वसनाधिष्ठितपवनां
सहस्रजप्तां प्रतिष्ठितप्राणाम् । बन्धनं प्रति तीक्ष्णतरं स्तम्भनमति-
तीक्ष्णान्बुनिक्षिप्तम् । लिखितमन्त्रचितामयकीलकां सहित-
कर्म सनाम समाकृतम् । कृतजपं त्रिसहस्रकसंख्यायाः पश्चि-
खनेदथ याननिवारणम् । विहितनिखन्तरी, रिपुनामयुतं मनु-
मिमं निशया कृतनामकम् । नवसहस्रजपादिषु साधितं पश्चि-
खनेत् परसैन्यनिरोधनम् ॥ इति स्तम्भनम् ॥

अङ्गारकं पितृभुवो रिपुनैधनर्त्ते जज्ञा विनिर्मितमिदं पितृ-
भूगताम्नौ । दन्धा च तद्भसितमिश्रितमात्रशलोरालिख्य नाम

मनुकर्मयुतं स्वमूर्द्धि । क्षिप्रं स चालयति चाष्टसहस्रजतं जम्बा
शिवे कुजदिने सचतुर्दशीके । कर्माह्वयमानम्पुटं मनुम् ।
सहस्रजतं निखनेद् द्विषां गृहे द्वारे तदुच्चाटनमाशु जायते ।
निरस्य काकनिलयं पितृभूगताम्नौ दग्ध्वा च तद्भस्मितमिश्रित-
मन्त्रिशतोः । आलिख्य नाम मनुमर्मयुगस्य मूर्द्धि प्रोच्चाटये-
च्चाष्टसहस्रजतम् । जम्बा शिवे कुजदिने सचतुर्दशीके कर्मा-
ह्वयाव्यमनुना त्रिसहस्रजतम् । दत्तं विधाय रिपुमूर्द्धि विनि-
क्षिपेच्च प्रोच्चाटयेद्रिपुमसौ द्रुतमाशु चैतत् । श्मशानजे चेले वा
रिपुनामकर्मासंयुक्तं मन्त्रपञ्चसहस्रजतम् । द्वारि क्षिपेदमुका-
मुक्तस्य शत्रोस्चाटयेत् सप्तदिनान्तराले । कीलं चिताकाष्ठ
मयञ्च मन्त्री कर्मान्वितं चाष्टसहस्रजतम् । मन्त्रेण जतं निख-
नेदरातिगेहे तमुच्चाटयति क्षणेन । उन्मत्तरसालोचिता-
मसौसकारूपक्षणविधिना । कारस्कारफलकान्तमनुं लिखेत्
कर्मानामसम्पुटितम् । स्थाप्य प्राणानक्षिन् द्विषतोऽष्टविषानु-
लिप्तसंसिद्धम् । तत्रैव सहस्रजतं श्मशानदेशे चतुष्पथे वापि ।
निखनेदरिभवने तदष्टमर्क्षे रिपोः क्षिप्रं देशान्तरमथवासी ।
मस्येति तेनोद्दिजितलोकान्तरं सदा रोगी ॥ इत्युच्चाटनम् ॥

मन्त्रं साध्यस्य नाम प्रतिपुटितमथालिख्य तालस्य पत्रे
पुत्तल्यां तन्निधायार्पितपवनमथो जप्तमष्टौ सहस्रम् । रात्रा-
वुन्मत्तदीप्ते पितृवनजनिते तीक्ष्णतैलेन लिप्तं छित्वा छित्वा
निशङ्गे त्रिदिनपरिमिते मोहयेन्मारयेद् वा । मध्याह्नवक्षत-
रूपमधिष्ठितेऽनुजतं सहस्रमपि कीलयति श्मशाने । मन्त्रेण
दारयति साधितमन्त्रमङ्गं यद्यद्विषोरपि विनश्यति तत्तदङ्गम् ।
वैरिप्रसवमृत्तिकापदरजःसंयुक्तचक्रीमृदा कृत्वा पुत्तलिकाञ्च
नाम हृदये शीर्षे पदे वा लिखेत् । अङ्गारैः पितृभूगतैर्मनु-
मिमं तन्नामकर्मान्वितम् । तस्य न्यस्य हृदीदमाशु पवनं संयुक्त-

चक्रोत्पदा । कृत्वा पुत्तलिकाच्च नाम हृदये शीर्षे पदे वा
लिखेत् । अङ्गारैः पिटभूगतैर्मनुमिमं तन्नामकर्मान्वितं तस्य
न्यस्य हृदीदमाशु पवनं जप्यात् सहस्रत्रयम् । सञ्चित्वैवमख-
ण्डितेन शतधा शस्त्रेण तां पुत्तलीं यास्याशाभिमुखो दिनानि
दशभिर्दीप्ते श्मशानानले । तैलं तीक्ष्णतरं निषिञ्च जुहुयात् नैध-
न्यऋत्वेऽथवा मन्वी प्रेतपतेः पुरं द्रुतमसौ यास्यत्यरातिर्ध्रुवम् ।
नैधन्यऋत्वे शत्रोर्वधतारायाम् । अङ्गारवारे कुलिकोदयेरिपो-
रालिख्य पत्रे प्रतिमां प्रतिष्ठिताम् । प्राणान् प्रतिष्ठाप्य विषानु-
लिमां श्मशानभूमौ जुहुयाद्दिनस्येत् । रिपोः प्रतिष्ठातिं कृत्वा
गोमयेन च तद्भृदि । तालपत्रे समालिख्य मनुमाख्याविद-
र्मितम् । विन्यस्य तत्प्रतिकृतेः स्थाप्योपरि च राजतम् । सृग्मयं
वा घटं सम्यग् गोमयेन च पूरितम् । तत्रापि निक्षिपेन्मन्त्रं
लिखिताख्यपुटं बुधः । वैरिप्राणान् प्रतिष्ठाप्य तस्मिन् गोमय-
वारिणि । त्रिसन्ध्यं प्रजपेत्तस्मिन् छायायामाङ्गविश्रति । दृष्ट्वा
तां गोमयजले रिपुच्छायां समाहितः । अस्त्रेण हृदयेदङ्गं यस्य
यदयदभौषितम् । तत्तद्दिनस्यति रिपोः सप्ताहान्नात्र संशयः ।
हृदयोदरकण्ठेषु छिन्नेषु भविता मृतिः । शिरोरोगो भवेत्तस्य व्रणे
शस्त्रेण मस्तके । शुण्ठी हिङ्गु च चित्रकं मरीचं रोहिपिप्पली ।
मन्दीबधूमयूरकल्पं प्रोक्तमेतद्विषं बुधैः । कारस्करमामलकी-
मौडुस्वरजम्बूखदिरकणा च । वंशपिप्पलनागी रोहिणमलिना-
सनभ्रुमालिकाः । अरिष्टविल्वविकङ्कतकदम्बवकुलत्वक्संज्ञाः ।
वञ्जुलपनसार्कशमीकदम्बनिम्बप्रकाशमूलञ्च । ततः सहस्र-
मनुमादरात् जपति यः स रमाभवनं भवेज्जपविधौ कपीसी-
कुसुमैः । सिद्धजपे तु कुक्कुटमन्त्रहम् अष्टोत्तरं मनुमिमं
प्रजपेत् सहस्रं ध्यायेन्महेशमनुकुक्कुटरूपकण्ठम् । पञ्चार्चितो-
ऽस्य भवनञ्च मनोरथाद्यैरापूर्यते बहुविधैरपि वस्त्रेण । नित्यं

प्र त्युषसि प्रतीतमनसा पादेन भूधारिणा रत्नान्येव समन्ततः
 स्वपुरतः पर्याच्छिपन्तं मुहुः । ध्यात्वा कुक्कुटमौशरूपमथवा
 भूलैव माया स्वयम् । भक्त्या यः प्रजपेदुपेन्द्रमितरं प्राप्येन्दिरा
 लक्षयेत् । तत्त्वेन खण्डीकृततालवृत्तां क्ष्मां ह्लादयेत्तां फल-
 रत्नखण्डैः । ध्यात्वा मनुं स्वं नयने जपेद् यो विद्विष्टमाखण्डल-
 वत् समेति । दोधूयमानो निजपक्षपत्रवत् पराङ्मरत्नं किरण-
 कनकरागपुष्पम् । ध्यात्वा मुनिर्नियतमेव मनुं प्रजप्य प्रौढां
 श्रियं भृशमवाप्स्यति रत्नपूर्णाम् । भूमौ काञ्चनमृत्तिकापद-
 रजोराजीं किरन्तं मुदा कूजन्तं चरणेन धान्यनिचयानाकीर्थं
 चञ्चादिना । सञ्चिन्त्योज्ज्वलतामृचूडमरुणं किञ्चित् समा-
 कुञ्चितग्रीवं यः प्रजपेदसुखं भवनं धान्यादिभिः पूर्यते । दशौ-
 षधदग्धभसितमनुनामुना कृतजपं निशि वसाधृतम् । दुरितरोग-
 विषभूतभयापहं भजतां वशीकरणसतीव रमाकरम् ॥ स्थलजे-
 न्धनचर्मभसितं द्विधा विधिवत् सहस्रजप्तमभिरक्षति चाखिलम् ।
 मूर्जपत्रमभिलिखितनाममात्रकं नरमाशु रक्षति धृतं जपा-
 न्वितम् । मनुना तण्डुलमनुना । सहस्रजप्तं तद्वत् कुक्कुटं यो
 वेत्ति सोऽसौ । कुक्कुटसङ्गान् स्वकीयान् युद्धे जेष्यति क्षिप्रम् ।
 स्मृत्वा सहस्रमपि सञ्चिन्त्य कुक्कुटं जपेत् । जेष्यति सपदि रणे
 स्वभटे चरणायुधैः समायातः । बहुना किमत्र मनुना लिखितं
 परिवाञ्छितं सपदि साध्यतरम् । अचिरेण तस्य भवने जपतो
 वसतिं प्रयाति कमला विमला । इति जपनिरतानां कुक्कुटं
 लक्षयित्वा क्षपणकमनिवाहक्षिप्तभूतारिपक्षः । त्वरितनिवह-
 पक्षक्षेपकः सर्वभक्ष्यः प्रणतसुजनरक्षी वीक्षितानां स्वपक्षः ।
 निखिलमभिमतानामर्थिनां कल्पवृक्षः सुरवरनरनारीरञ्जना-
 कष्टिदक्षः । अनन्तं विन्दुसंयुक्तं पुङ्गोलिहितयं ततः । वां शक्ति-
 शाय पुङ्गोलियुगलं विलिखेत्ततः । वुकारं वरुणारूढमनन्तं

वासविन्दुकम् । क्रोशन्तमुद्धरेन्मन्त्रं कुक्कुटं सुमनोहरम् ॥ इति
कुक्कुटप्रयोगः ॥

अथोच्छिष्टाचाण्डालीप्रयोगः ॥ तत्रैव षष्ठपटले ॥ श्रीपार्वत्यु-
वाच ॥ सूचिता मे पुरा शम्भो ! मन्त्रा नैकविधास्त्वया । इदानीं
श्रोतुमिच्छामि देवीमुच्छिष्टपूर्विकाम् ॥ शम्भुरुवाच ॥ शृणु
देवि ! वरारोहे ! देवीं तां कथयाम्यहम् । यया विज्ञातमात्रेण
अभूद्वियामयो नरः ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कीं विधिः किं फलं
चास्या मयि विद्यास्वरूपतः । कथ्यतां देव ! यत्नेन रहस्येन निवे-
दितम् ॥ शम्भुरुवाच ॥ शृणु देवि ! विधिं वक्ष्ये फलञ्चोच्चाट-
नादिकम् । विषञ्च स्थावरं देवि ! विद्याभावान्निहन्ति च ।
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि देवीं गुह्यतमां प्रिये ! । उच्छिष्टपूर्विकां
देवीं मातङ्गीं सर्वसिद्धिदाम् । सर्वपापहरां देवीं सर्वदोषविव-
र्जिताम् । यया विज्ञातया एकाः क्षयं गच्छन्ति चापदः । स्थावरं
जङ्गमञ्चैव क्षत्रिमं जङ्गमं तथा । विषं जयति देवेशि ! स्थाव-
राङ्गसमाश्रितम् । इयं विद्या पराविद्या सर्वपापविनाशिनी ।
स्वर्गदा मोक्षदा चैव राज्यसौख्यफलप्रदा । इयं देवी मया
पूर्वं साधिता विषवर्जिता । सकृदुच्चारिता विद्या ब्रह्महत्या-
विशोधनी । सर्वपापविहन्त्रीयं सर्वसौभाग्यदायिनी । यद्यु-
च्छिष्टमुखो भूत्वा स्मरेद्देवीं कदाचन । तदाचान्तो भवेद्देवि !
विनैवाचमने कृते । दुर्भगा सुभगा नूनं दुःखिता सुखिता
भवेत् । बन्ध्यापि लभते पुत्रं शतहायनजीवितम् । निर्धनो
धनमाप्नोति मूर्खो विद्यामवाप्नुयात् । यां यां प्रार्थयते सिद्धिं
हठात्तां तामवाप्नुयात् । विधानं ह्यत्र वक्ष्यामि शृणु देवि !
मनोरमे ! । भोजनानन्तरं देवि ! विनैवाचमने कृते । बलिं
दत्त्वा प्रथमतो मूलमन्त्रेण साधकः । ततो मन्त्रं जपेद्वात्वा
देवीं तामिष्टसिद्धये । मन्त्रं शृणु महादेवि ! यथावत् कथ-

यामि ते । नम उच्छिष्टपूर्वन्तु तथा चाण्डालिनीति च ।
 सुमुखी च ततो देवी कौर्त्तयेत्तदनन्तरम् । महापिशाचिनी
 तस्मात्तज्जावीर्जमतः परम् । नादविन्दुसमायुक्तं ठकारद्वि-
 तयं पुनः । सविसर्गं महादेवि ! सर्वसिद्धिप्रदायकम् । न
 तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते । नाङ्गन्यासकरन्यासी
 न वर्णन्यास ईरितः । न विदेशो न वा विघ्नो नाशौचं नियमो
 न च । यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयं न स विघ्नैरवाप्यते । ध्यान-
 मस्याः प्रवक्ष्यामि यथावज्जगदीश्वरि ! । श्वोपरि समासीनां
 रक्ताम्बरपरिच्छदाम् । रक्तालङ्कारसंयुक्तां गुञ्जाहारविभूषिताम् ।
 षोडशाब्दाच्च युवतीं पीनोन्नतपयोधराम् । कपालकृतकाहस्तां
 परमज्योतिरूपिणीम् । बालदक्षिणयोगेन ध्यायेन्मन्त्रविदु-
 क्षमः । उच्छिष्टेन बलिं दत्त्वा जपेत्तद्व्रतमानसः । उच्छिष्टे-
 नैव कर्त्तव्यो जपोऽस्याः सिद्धिमिच्छता । उच्छिष्टजपमानस्य
 जायन्ते सर्वसिद्धयः । अपरञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि ! फलप्रदम् ।
 होमं सन्तर्पणञ्चास्याः सहसा कार्यसिद्धये । स्थण्डिले मण्डलं
 कृत्वा चतुरस्रं समाहितः । पूजयेन्मण्डलं देवि ! मूलमन्त्रेण
 मन्त्रवित् । ततो देवीं समाधाय वङ्गिरूपां व्यवस्थिताम् ।
 देवीं ध्यात्वा चरेद्दोमं दधिसिद्धान्नतण्डुलैः । सहस्रैकं विधानेन
 राजा भवति वश्यगः । मंजारीरस्य तु मांसेन यो देव्यै होममा-
 चरेत् । स प्राप्नोति परां विद्यां शस्त्रशास्त्रवह्निष्कताम् । कुर्यात्तु
 कागमांसेन होमं मधुसमन्वितम् । सहस्रैकं विधानेन भवन्ति
 धनसिद्धयः । विद्याकामश्चरेद्दोमं शर्करामधुपायसैः । पुनस्तस्य
 भवत्येक सिद्धिविद्याश्चतुर्दश । रजस्रलाया वस्त्रेण मधुना
 धायसेन च । होमं कृत्वा महादेवि ! त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
 नागवह्ना चरेद्दोमं मधुना सह सर्पिषा । अयुतैकं विधानेन
 सिद्धिविद्या भवेद् ध्रुवम् । सद्यो मंजारीमांसेन घृतेन मधुना

सह । चाण्डालकेशयुक्तेन भवेदाकर्षणं ध्रुवम् । शशकस्य तु
मांसेन मधुनालोडितेन तु । कृत्वा होममवाप्नोति विद्यां वित्तं
वराः स्त्रियः । धुस्तूरार्कस्य योगेन चितावह्नी तु मन्त्रवित् ।
कोकिलाकाकपक्षैश्च होमः शत्रून् विनाशयेत् । उच्चाटनाय
शत्रूणां होमं कुर्याच्च मन्त्रवित् । पूर्वोक्तेन विधानेन चिता-
काष्ठहुताग्ने । उलूककाकपक्षाभ्यां कृत्वा होमं निर-
न्तरम् । वेधयेच्छत्रुमन्योन्यं कलहाकुलमुद्धृतम् । उलूक-
पक्षहोमेन गर्भपातो वरस्त्रियः । सहस्रैकं विधानेन कुर्याद्धोमं
समाहितः । विस्वपक्षेण साज्येन मासमेकं निरन्तरम् । अग्नि
बन्ध्या लभेत् पुत्रं चिरजीविनमुत्तमम् । बन्धूककुसुमं हत्वा
रक्तं मधुसितान्वितम् । दुर्भगाया हठाद्देवि ! सौभाग्यसुख-
दायकम् । प्रातरुत्थाय यः कश्चित् कुर्याद्धोमं दिने दिने ।
जवापुष्पेण साज्येन शतमष्टोत्तरं प्रिये ! । यण्मासस्य प्रयोगेण
भवेदाकर्षणं ध्रुवम् । देवगन्धर्वमर्त्यानां कन्या नागाङ्गना द्विजाः ।
हठादागत्य कामार्त्ता बलादालिङ्गयन्ति तम् । विद्यायाः क्रियते
होमस्तिलपायसमिश्रितैः । स प्राप्नोति महाविद्यां शास्त्रीष-
पदशालिनीम् । मधुना रुरुमांसेन होमं कुर्यात् प्रयत्नतः ।
विद्यावान् धनवान् बुद्धिं शस्त्रशास्त्रवशीकृताम् । इयं देवी
महादेवि ! वामाचारफलप्रदा । दक्षिणाचारयोगेण न भवेत्
फलदायिनी । सभाजनान्तरङ्गाख्या बलिं दत्त्वा दिने दिने ।
उच्छिष्टेन जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं प्रिये ! । उज्जटे वा श्मशाने
वा शून्यागारे चतुष्पथे । बलिप्रदानतो देवी प्रत्यक्षा भवति
ध्रुवम् । एषा देवी मया स्थाता भैरवाकारमिच्छता । इत्येषा
कथिता देवी सर्वपापप्रहारिणी । मन्त्रस्योच्चारणाद्देवि ! सर्व-
पापविवर्जितः । उच्छिष्टदूषणं त्यक्त्वा स पवित्रो भवेद् ध्रुवम् ।
इत्युच्छिष्टचाण्डालिनी देवी भुवनविभ्रुता । नानाप्रवर्तने काञ्चि-

द्विधां शृणु वरानने ! ॥ श्रीशिव उवाच ॥ शृणु देवि ! महा-
 विद्यां समयाकारधारिणीं । न तिथिर्न च नक्षत्रं न साध्यादिं
 विचारयेत् । महादेवीति विख्याता शिवदीक्षान्तगामिनी ।
 यज्ञोपवीतं देवेशि ! धार्यते साधकेन वै । उच्छिष्टेनार्चयेद्देवीं
 महादेवेन साधिताम् । नान्यमवगतस्तिष्ठेत् सर्वग्रन्थं सुवि-
 स्तरम् । बहुनोक्तेन किं देवि ! त्रैलोक्यमपि साधयेत् । सदा
 कालन्तु मन्त्रोऽयं स्मर्तव्यस्तिपुरारिणा । पयोगुडेन भक्तेन
 मांसेन जुहुयाद्भरः । आयुर्धनञ्च पुत्रांश्च विद्यामष्टादशीं लभेत् ।
 गोमयेयं प्रयत्नेन कथितव्या न कस्यचित् । गुरुभक्तिः प्रदातव्या
 कायेन च धनेन च । लोकापवादो न च देवि ! पापं नैवा-
 परा तिष्ठति मर्त्यलोके । मर्त्यलोके सुखं भुक्त्वा परे देवीपुरं
 व्रजेत् । मोक्षैकसारां धनदैकसारां विद्यैकसारां शृणु देवि !
 विद्याम् । सर्वोपकारां परमार्थसारां महानुभावां भुवि कामधेनुम् ॥
 इत्युच्छिष्टचाण्डालिनीप्रयोगः ॥

मन्त्रसूक्ते अष्टपञ्चाशत्पटले । ग्राममेधं प्रवक्ष्यामि कृते रोगैर्न
 बाध्यते । अकृते मरणं ग्रामे तस्मात् कुर्यात् प्रयत्नतः । तत्र
 सम्पूजयेद्देवीं शिवं विष्णुं प्रजापतिम् । भद्रकालीञ्चैत्रेशं
 घण्टाकर्णं विशेषतः ॥

अथ धूमावतीप्रयोगः ॥ फेत्पारिणीतन्त्रे ॥ धूमावतीप्रयोगो-
 ऽयमधुना कथ्यते मया । दान्तौ सार्धशिविन्दन्तौ वीजे धूमा-
 वतीद्वितः । धूमावतीमनुः प्रोक्तो वैरिनिग्रहकारकः । पङ्कजं
 जातिसंयुक्तं कल्पयेत्तेन मन्त्रवित् । पिप्पलादो मुनिश्छन्दी
 नोद्वेष्टा च देवता । विवर्णा चञ्चला कृष्णा दीर्घा च मलिना-
 स्मरा । विमुक्तकुन्तला रूक्षा विधवा विरसद्विजा । काकध्वजरथा-
 रूढा विलम्बितपयोधरा । सूर्यहस्तातिरूक्षाचा धृतहस्ता वरा-
 न्विता । प्रवृद्धघोषा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा । क्षुत्पिपासा-

दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा । एवंविधां समाध्यायेत्ततः कर्म
समारमेत् । चतुर्थेन तु वर्णेन षष्ठस्वरयुतेन च । षड्दीर्घजातियुक्तेन
कुर्थादङ्गानि मन्त्रवित् । जपेत् कृष्णचतुर्दश्यां पुरश्चरणसिद्धये ।
उपवासरतो मन्त्री शून्यागारे दिवानिशम् । श्मशाने विपिने वापि
जपेत्तन्नु वाग्यतः । सोष्णीषः सार्द्धवासाश्च पुरश्चरणकर्मणि ।
साध्योपरि मन्त्रमालिख्य तस्मिन् स्थाप्य शिवं व्रजेत् । अवष्टभ्य
शिवं शत्रुनाम्नाथ प्रजपेन्ननुम् । सहस्रादूर्ध्वतः शत्रुर्चरेण परि-
गृह्यते । पञ्चमव्येन शान्तिः स्थाञ्ज्यस्य प्रयसापि वा । मन्त्राद्य-
क्षरमालिख्य शत्रुनाम ततः परम् । द्वितीयन्तु मनोः शत्रोर्नामैकं
मनुमालिखेत् । वनेऽयुतं जपेत् शत्रोर्निश्चितं मरणं भवेत् ।
कृत्वा मन्त्रे रिपोराख्यां मारणे यामिनीदले । उत्सादो जायते
शत्रोर्मनोरयुतजापतः । दध्वा काकं श्मशानाग्नौ तद्गन्मादाय
मन्त्रितम् । विरोधिनामाष्टाशासु सद्य उच्चाटनं रिपोः । श्मशान-
भस्मना कृत्वा शिवं तस्योपरि न्यसेत् । विरोधिनामसंरुद्धं कृष्ण-
पत्रे समुच्चरेत् । महिषीक्षीरधूपञ्च दद्यात् शत्रुविपत्करम् ।
महिषीरूपमास्थाय शत्रुं सा विनिपातयेत् । मन्त्रेणानेन निखने-
त्तद्गन्म रिपुमन्दिरे । शत्रुमुच्चाटयेत्तूर्णं नात्र कार्या विचारणा ।
न्यस्य पाणितले शत्रोराख्यानं चित्तिभस्मना । वज्रावधो मुखं
क्रुद्धः स्थापयन्नयुतं जपन् । धूमावतीमनुं मन्त्री शत्रुक्षयपरं
नयेत् । प्राग्वत् करतले न्यस्य त्वर्द्धयोर्ध्वं रिपोर्न्यसेत् । जलस्थः
प्रजपेत् मन्त्री हुङ्कारान्नाशयेदरीन् । श्मशानाङ्गारमादाय
कृत्वा पुष्पादिनार्चयेत् । भगलिङ्गं समाभाष्य मनसा कर्म
चिन्तयन् । निम्बकाकच्छदानेकीकृत्य चाष्टशतं जपेत् । दद्या-
द्भूपं साध्यनाम्ना सद्यो विधेययेदरीन् । चिताकाष्ठानले क्षीर-
होमाच्छान्तिः प्रजायते । रजोधूपप्रदानेन गृध्ररूपेण कालिका ।
मारयत्यरिमागम्य शान्तिनिर्मात्यधूपतः । वराहबालधूपेन हन्या-

द्वाराहरूपिणी । अश्वत्थपत्रधूपेन शान्तिर्भवति नान्यथा । शान्तिः
 सर्वाभिचारस्य पञ्चगव्येन जायते । क्षीरेणापि च देवेशि !
 मधुरञ्जितयेन च । कीले जेडतरोर्विदर्भ्य विलिखेन्मन्त्रेण नामा-
 क्षरं जप्त्वा लेख्यपदद्वये तु निखनेदुच्चाटनं विद्दिषाम् । त्वत्पाद-
 द्वयधूलिकीर्णहविषा दत्त्वा द्विजेभ्यो बलिं तस्मिन्ना चितिभस्म-
 कीर्तितमरेगेहे च तद्गृहेत् । वायव्ये विलिखेच्च पर्णसहितं
 जप्तं सहस्राधिकम् । जप्त्वा वायुसुरा शिवाच्चदक्षशत्वे वा न तद्गो-
 धकम् । [चूर्णं तस्य च पल्लवे विनिहितं जप्तं सहस्राक्षरं
 कान्तं शतगृहेषु तच्छिरसि वा तेषां कुलोच्चाटनम् । जप्त्वा-
 रामे श्मशाने च निर्माल्ये पदगोचरे । गर्दभावासभूमौ च
 भूतस्थाने चतुष्पथे । ऊषरे मेघनाभूमौ पुष्पितावासमे-
 घयोः । आनीय शर्करां मन्त्री दिग्वासा दक्षिणामुखः ।
 श्मशानलोद्रे निक्षिप्य तत्राग्नौ भर्जयेत्तथा । चूर्णं तत्तु जपे-
 क्षत्तं प्रक्षिपेच्छतुर्वेस्मनि । सेनामध्ये च सर्वेषां पक्षादुच्चा-
 टनं भवेत् । गर्त्ते पिपीलिकानान्तु पादधूली षडाननान् ।
 घृतान्नं समरात्रन्तु जुहुयान्मन्त्रविनिशि । भ्रमते काकवत् सर्वां
 महीमामारणाद्रिपुः । कृत्वा प्रतिहतिं शत्रोर्जन्मऋक्षेण मन्त्र-
 वित् । कृत्वा प्रतिष्ठां प्राणस्य विद्धा मर्मसु कण्ठकैः । आयसै-
 र्मन्त्रमावर्त्य भौमवारोदयादिषु । धुस्तरससम्पिष्टचिताङ्गा-
 रेण मन्त्रिणा । नित्यस्य पृष्ठतो बहुकेशपाशेन तं जपेत् ।
 श्मशाने शतुमाह्वय तद्गृहे निखनेन्निशि । विद्वेषणं भवेत्
 सद्यो गौरीशङ्करयोरपि । अश्वत्थत्वचि मन्त्रार्णैर्दर्मितं साध्यमा-
 लिखेत् । अन्यद्विषतरोस्तद्वज्जप्त्वा तत्कृत्यया न्यसेत् । पूर्वोक्त-
 कण्ठकैर्विद्वान् जपेत् पिष्ट्वा शतं शतम् । विद्विष्टौ भवतस्तौ तु
 तान्नामपि च तत्क्षणात् । वर्णांस्तान् विलिखेद्विषाख्यमभितः
 कोणेषु मन्त्राक्षरैः संरुद्धान् परितः प्रभञ्जनगृहं मध्ये च साध्यं

दृष्टंक् । अङ्गारैः कनकोद्भवैरपि पदैर्मन्त्रं जपंस्ताडयेत् । कार्पासेन
रणे कुजार्कदिवसे भूलोकविशेषणम् । आपाद्य पूर्वां मूर्तिञ्च शत्रो-
रालिख्य शोधयेत् । आतपे निशि तां जप्त्वा वङ्गेरुपरि लम्बयेत् ।
एवं सप्तदिनं द्रव्यैराजप्यालिख्य शोधयेत् । व्योमाग्निलशुलो-
न्मत्तहिङ्गुसिद्धार्थशूरणैः । पिण्डैर्लवणसम्भूतैरुन्मत्तद्रवसङ्गतैः ।
पेषयित्वा तेन सम्यग् लिखेन्मन्त्री मनुं जपेत् । बलिमध्ये
खनेत् कौलं युक्तरूपं तथोपरि । वङ्गिं प्रज्वाल्य तद्गुच्चैर्गव्ययुक्तं
हुमेज्जपेत् । निक्षिप्य प्रतिमां तत्र जपेन्नित्यं महामनुम् । सप्त-
विंशं ततः कुण्डं शून्यागारे च वा हुमेत् । त्रिकोणशूलदीप्ताद्य-
मेखलात्रितयान्वितम् । तत्रापि निखनेत् कौलं वङ्गिं प्रज्वाल्य
पूर्ववत् । ततः प्रतिमिति मन्त्री वङ्गेरुपरि लम्बयेत् । उक्त-
द्रव्येण संलिप्त्वा ऊर्ध्वपादामधोमुखीम् । रक्तद्रव्यैः समाराध्य
प्रज्वाल्य विषवृक्षजैः । इत्यनेन प्रतिमायाञ्च समित्प्रज्वलितानां
हुमेत् । आवरणादिभिरामृत्यो लयं याति न संशयः ॥ इति
धूमावतीप्रकरणम् ॥

अथ कृत्यापरिमलप्रयोगः । त्रयोदशपटले ॥ अथातः सं-
प्रवक्ष्यामि मन्त्रं परिमलात्मकम् । येन विज्ञानमात्रेण नासाध्यं
भुवनत्रये । रुद्रजाया महायोगी नतो गौरीपदं वदेत् । भुवन-
भयङ्करीति पदं वर्मान्तमुच्चरेन्ननुम् । अथवा प्रथमादन्यमथातो
ब्रह्मणः पदम् । परिमल इत्यादि ब्रह्माद्यखण्डपरिमलः ।
षड्दीर्घयुक्तवीजेन मन्त्रार्द्धेनास्त्रयोगिणा । हृदयञ्च ततोऽर्द्धेन
वर्मास्त्रेण शिरः क्रमात् । शिखाकवचनेत्रास्त्रमेवं न्यासक्रमः
स्मृतः । अङ्गिरा च ऋषिर्देवी गायत्रीच्छन्द ईरितम् । सिंह-
वक्त्रा च भूतानां भयङ्करिण्यतः परम् । महाकृत्या देवता चेत्युक्त्वा
न्यासं समाचरेत् । सिंहाननां कृष्णमुखीं लम्बमानपयोधराम् ।
दंष्ट्राकरालवदनां त्रिनेत्रां सर्वतोऽङ्गलाम् । कृष्णकञ्चुकासं-

वीतां विधूमाग्निसमप्रभाम् । त्रिशूलचक्रमुषलखट्टाङ्गकर-
 पङ्कजाम् । लेलिहानां महज्जिह्वां विद्युत्प्रेक्षसभीषणाम् ।
 ध्यात्वा कृत्यां विधानेन पूजयेन्नन्तवित्तमः । ध्यात्वा कृत्यामर्च-
 यति रक्तैः पुष्पैश्च वश्यके । कृष्णा मारणकृत्येषु मांसरक्तासवै-
 स्तथा । कृत्याञ्च मदनां सर्वकुल्यां स्वच्छादिनीं तथा । भीषणां
 श्रीमतीं चैव प्रतिष्ठाञ्च ततः परम् । विद्यामभ्यर्चयेदष्टपत्रेषु
 क्रमशः सुधीः । पूर्वं तु शाङ्करीनाम शुक्लवर्णां वरान्विताम् ।
 द्विभुजां सौम्यवदनां पाशाङ्कुशधरां शिवाम् । दक्षिणे भीषका-
 नाम लम्बजिह्वां सुधामुखीम् । कृष्णवर्णां रक्तमुखीं रक्तमाल्या-
 नुलेपनाम् । चतुर्भुजां सिंहनादाह्लादकाञ्च कपालिनीम् ।
 खड्गहस्तां शिरोमालां सर्वाभरणभूषिताम् । पश्चिमे वारुणी-
 नाम स्वर्णवर्णां हसन्मुखीम् । सुरद्रमालिकां शुभ्रदंष्ट्रामभयदां
 सदा । उत्तरे भीमिकानाम चतुर्वर्णभयङ्करीम् । पूजयित्वा
 जपेन्नन्तं नित्यमष्टोत्तरं शतम् । अवाप्य विनियोगस्तु कर्त्तव्यी
 मन्त्रिणा सदा । कालं विदित्वा प्रतिमां मधूच्छिष्टेन कारयेत् ।
 द्वादशाङ्गुलं तत् शत्रोर्नखलोमसमन्वितम् । हृदये नामधेयञ्च
 फट्कारं सर्ववर्म्भके । अमुष्य प्राणं इह चामुष्य जीव इह स्थितः ।
 अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि तथा चामुष्य वाङ्मनः । चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा-
 निहानयत्वग्निवक्त्रभा । इति प्राणं प्रतिष्ठाप्य मरिचैर्लेपयेत्ततः ।
 ऋतब्राह्मणचाण्डालकेशाभ्यां पादयोः पृथक् । बद्धा कारस्करमये
 तोरणे चाप्ययोमुखीम् । तस्याधो मेखलायुक्तं त्रिकोणं तत्र
 कुण्डकम् । तत्र शावं विधायाग्निं परिस्तौर्ध्यं शरैस्तृणैः । विभी-
 तकपरिध्या च कल्पयेद् यस्य मारणम् । जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः
 काकोलुकस्य पिच्छकैः । दारयैनं शोधयैनं मारयेत्यभिधाय च ।
 अष्टोत्तरशतेनैव मनुना विधिना बुधः । होमान्ते विधिवत् कृत्या-
 माराध्याग्नेश्च सन्निधी । यो मे एकस्वगृहोऽतिदूरस्थो वान्तिके-

ऽपि च । पिवं कृत्येऽसृक् तस्य हुमित्युक्ता निवेदयेत् । संरक्षाग्निं
विधानेन नवरात्रं समाचरेत् ॥ हुमेद् यावत्तावदस्य भवेदेव रिपो-
मृतिः । अर्कक्षीरेण मरिचं पिष्ट्वा सिद्धार्थमेव च । जले संलोढ्य
मन्त्रेण रिपुं ध्यात्वा निरुद्धकम् । कृष्णाब्जरोत्तरीयाग्रं पादेनाक्रम्य
तद्विषुम् । वज्रं शूलमिति ध्यात्वा तस्योपरि विनिक्षिपेत् । नव-
रात्रान्तरे शत्रुस्त्रियते नाम संशयः । दूरसिद्धे चितावङ्गौ तैला-
सक्तैर्विभीतकैः । सुहृतो स्त्रियते शत्रुः सत्यमीशनसोदितम् ।
रिपोः प्रतिक्षतिं कृत्वा साध्यैर्फलकेऽमले । अर्कक्षीरेण मरिचं
पिष्ट्वा तत्रैव लेपयेत् । फट्कारं हृदये कृत्वा शिवं निर्माय
धूपकैः । क्षिपेत् कृष्णचतुर्दश्यां जप्त्वा मन्त्रं सहस्रशः । सद्यो-
ऽवगाहनं कृत्वा कुर्याद् यथात्मरक्षणम् । मन्त्रं जप्त्वा विधा-
नेन भेदयेत् सह सुद्रया । जप्त्वासात् स्त्रियते शत्रुः सन्ध्ययोरु-
भयोरपि । वायुना चोद्धृतं पर्यं शुष्कं वैभीतकं ततः । शृङ्गीत्या
च लिखेन्मन्त्री कृष्णवर्णस्य शोणितैः । नामधेयं रिपोरन्ते
वायुबीजं प्रयोजयेत् । निखनेतज्ज गेहे तु काकवक्त्राभये
ध्रुवम् । वातोद्धूतैः शुष्कपर्णैः काष्ठैरग्ननिपातितैः । उद्रास्थि
च नवाङ्गारैः शत्रोरुच्चाटनं हुमेत् । दूर्वागुडूचीं मन्त्रेण सर्पिषा
तिलतण्डुलैः । शन्नः सन्निद्रिः प्राज्ञाग्रैः शान्तिं कुर्याद्विचक्षणः ।
लक्ष्मीं विव्यक्तलैः पलैर्नन्द्यावर्तैः स्त्रिये तथा । वज्रपत्नैरपामार्गै-
रङ्गरैश्च शुभद्रकैः । मधुरजयसंयुक्तैरेभिः कुर्यात्तु वश्यकम् ।
उत्तमे पक्षे तन्त्रे वासवस्यापि काप्यते । शान्तिं कृत्वा विधानेन
जपेत् परिमलं त्विदम् । महाव्याधिप्रशमनं नित्यमष्टाधिकं
शतम् । जपेदेकाग्रचित्तस्तु लोकावश्यकरं शुभम् । मनसा
चिन्तयेदेतां गजारुढां वियत्स्थिताम् ॥ तस्य वश्या भवेत्
क्षिप्रमखारुढा तथा भवेत् । चौरव्याघ्रष्टगादीनां सलिलादि-
भयापहान् । सज्जतु श्रवणमात्रेण सर्वपापविनाशनम् । समा-

भिमन्वितं तोयं पीत्वा नित्यं समाहितः । मेधावी च भवे-
 द्वाग्मी तावज्जन्माभिषेकतः । सप्ताभिमन्वितं कृत्वा विषमप्य-
 मृतं भवेत् । मासं पक्षं द्विमासञ्च षण्मासं वत्सरन्तु वा । एवं
 यः कुरुते मर्त्यः स पुण्यां गतिमाप्नुयात् । अथ वक्ष्ये विशेषेण
 महाशान्तिविधिक्रमम् । सर्वसिद्धिकरं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् ।
 सर्वमुद्रापहरणं सर्वारिष्टविनाशनम् । महाव्याधिप्रशमनमप-
 स्मारविनाशनम् । योगिनीभूतवेतालाः प्रेतकुष्माण्डपन्नगाः ।
 तत्र स्थाने न तिष्ठन्ति डाकिन्याद्या विशेषतः । कृत्यामभ्यर्चये-
 द्बल ! यथाविधिपुरःसरम् । षोडशारं लिखेत् पद्मं योनियुग्मं
 सविन्दुकम् । तन्मध्येऽष्टदलं लिख्य यकारादीन् न्यसेत् क्रमात् ।
 तन्मध्ये रसकोणन्तु लिखेन्मूलमनु स्मरन् । चन्द्रविम्बं लिखे-
 न्मध्ये तस्योर्ध्वं प्रतिमां लिखेत् । तस्य मध्ये न्यसेत् कुम्भं
 वने स्रग्दामभूषिताम् । तस्य मध्ये न्यसेत् कृत्वां सर्वलक्षण-
 संयुताम् । पूजयेच्च यथान्यायं पायसन्तु निवेदयेत् । परि-
 तोष्य घटे न्यस्य चासिताङ्गादिभैरवान् । असिताङ्गो रुद्रश्चण्डः
 क्रोधीशोन्नतभैरवः । कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः ।
 गन्धपुष्पादिनाभ्यर्च्य तद्वाङ्मे क्षेत्रपालकान् । लोकपालं यजेद्देवीं
 तदग्रे होममाचरेत् । जुहुयादाज्यापामार्गावक्षताभिरमर्षणः ।
 दूर्वाग्रखदिराश्वत्थं प्रत्येकन्तु शताधिकम् । कुण्डे वा स्थण्डिले
 वापि होमकर्मा समाचरेत् । तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लक्ष्मीं ध्यायेद्
 यथाविधि । कुण्डमध्ये न्यसेद्देवीं दक्षिणे तु श्रियं स्मरेत् ।
 वामपार्श्वे स्मरेद्देवीं हृल्लेखां परमेश्वरीम् । तस्यैव वामपार्श्वे
 तु पूजयेद्दश नायकान् । अयुतं मूलमन्त्रञ्च जपेन्मृत्युविनाशनम् ।
 अयुतं मूणहत्यायां जपेत् परिमलं विदुः । महाव्याधिप्रशमनं
 तावज्जन्माभिषेकतः । एवं यः कुरुते मर्त्यः पुण्यां गतिमाप्नु-
 यात् । येन ज्ञातं परिमलं यस्य वक्त्रे स्थितं सदा । तस्यावश्यं

निवेद्येत व्याधिभ्योऽपि भयं न हि । इत्यादिविधिना चन्द्रे ज्ञेयः
परिमलो विधिः । महाशान्तिकरः पुंसां दुःखादिविघ्ननाशनः ॥
इति कल्याणपरिमलः ॥

अथ जयदुर्गा । चतुर्दशपटले ॥ दुर्गे दुर्गे पदं चोक्ता रक्षणीति
पदं ततः । तारादिवह्निजायान्तो जयदुर्गामहामनुः ॥ जाति-
मध्यगतं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रपदं बुधः । रक्षाकरीयं कथिता
जयदुर्गा वर्मसंयुता । श्यामां त्रिलोचनां दुर्गां ध्यात्वा त्वेनां चतु-
र्भुजाम् । शङ्खं चक्रं शरं शूलं वहन्तीं रौद्ररूपिणीम् । युद्धे च
व्यवहारादौ जयेदेतज्जपान्नरः । जयां श्रीं पूजयेन्नित्यां शङ्खञ्च
कुरिकां तथा । जयदुर्गामनुः प्रोक्तः कथ्यते चापरो मनुः ।
नमो भगवतीत्युक्त्वा ज्वालामालिन्यतः परम् । गृध्रगणपरि-
वृते द्विष्ठारादिरीरितः । श्रीं नमो हृदयं प्रोक्तं भगवति
शिरस्तथा । ज्वालामालिनीं शिखा गृध्रगणपरिवृते ततः ।
कवचं स्वाहास्त्रमित्येतत् जातियुक्तं न्यसेत्तनौ । अयुतं नियु-
तञ्चैतज्जयमन्त्रं यजेज्जयी । रुद्राङ्गनाग्निजायाभ्यां रुद्रा ज्वाला-
मुखीत्यपि । मन्त्रान्तरं समाख्यातं ज्वालामुख्यामनुत्तमम् ।
दौपतैलाक्तपादोऽर्द्धरात्रे गुरुदिनादितः । जपेदष्टसहस्रन्तु
त्रयोविंशतिवासरान् । प्रत्यहं सा रौप्यषट्कं ददातीति न
संशयः । नारायणीयं कथितमगस्त्यैर्नवधा पुनः । दुर्गा नव-
प्रकाराख्या नवदुर्गा विशेषतः । सुसिद्धिमिच्छता गोप्यो मान-
वेन समीरयेत् । पुरोऽपि नृपतेऽद्यापि धार्मिकस्य न्यशेषतः ।
नवदुर्गाविधानन्तु दर्शयेत् कर्मगौरवात् ॥ नृपश्च सम्यगाराध्य
मन्त्रञ्च विविधैर्धनैः । भक्त्या सन्निहितं कुर्याद्रक्षार्थं नित्यमा-
दरात् । आपत्स्वयं प्रयोक्तव्यो मारणादौ विशेषतः । ततो
मन्त्री प्रयत्नेन प्रकुर्यान्मारणक्रियाम् । परैर्दुर्द्विषितो मन्त्री
रात्रे सर्वं निवेदयेत् । निवेद्य विधिवत् पश्चात् मन्त्रवर्षेण निर्द-

हेत् । स्मृतिमात्रेण वै मन्त्री रिपून् सर्वान् विनाशयेत् । प्रदद्याद्-
दम्बिकां तस्मै सहस्रं शतमेव वा । गवां सुवर्णनिष्काणां भूमिं
वा शस्यशालिनीम् । सर्वशान्तिमवाप्नोति सर्वरक्षाकृतिर्भवेत् ॥
इति फेत्कारिणीतन्त्रे जयदुर्गाष्टभ्रगणपरिवृताज्वालमुखी-
प्रयोगः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां चतुर्थे काम्यकाण्डे कुक्कुटोच्छिष्ट-
चाण्डालिनीधूमावतीकृत्यापरिमलजयदुर्गाष्टभ्रगण-
परिवृतज्वालमुखीप्रयोगरूपपल्लवकथनं नाम
चतुर्थः परिच्छेदः ॥

अथ दुर्गोत्सवः ॥ मत्स्यसूक्ते महामन्त्रे उपरिभागे एक-
चत्वारिंशत्पटले ॥ भगवानुवाच ॥ अथ चाश्वयुजे शुक्लपक्ष-
मासाद्य नन्दिकाम् । समाराध्य ततो दुर्गां हविष्याशी जिते-
न्द्रियः । हत्वा स्रोतोजले स्नात्वा तस्यास्तीरे समर्चयेत् ।
तस्या इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशान्नद्यास्तीरे समर्चयेदित्यर्थः ॥ पूजा-
प्रकारोऽपि तत्रैव ॥ नन्दायां पूजयेत् कुम्भे द्वितीयायाञ्च
पुस्तके । तृतीयायां तथा खड्गे चतुर्थ्यां केशशोधनम् । पञ्चम्यां
सूर्यविम्बे च षष्ठ्यां विल्वस्य मूलके । सप्तम्यां पत्रिकायान्तु
अष्टम्यां प्रतिमासु च । ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां विल्वाभि-
मन्त्रणम् । मूलाद्यपादे सप्तम्यां पत्रिकायाः प्रवेशनम् । पूर्वा-
षाढाद्युताष्टम्यां देवी पूज्या महोत्सवैः । उत्तरेण नवम्यान्तु
बलिभिः पूजयेच्छिवाम् । श्रवणान्तो दशम्यान्तु प्रणिपत्य विस-
र्जयेत् । एतेन देवीपुराणोक्तस्य कन्यासंख्ये रवौ शक्रशुक्लामारभ्य
नन्दिकामिति वचनस्य षष्ठौतः प्रभृति नवमीपर्यन्तं पूजयमि-
त्येकत्वेनोक्तमिति स्मार्त्तमहाचार्यव्याख्यानम् । नन्दिकाप्रति-
पदिति दुर्गाभक्तितरङ्गिण्युक्तं युक्तमिति वाच्यम् । महानवमी-
विहितषष्ठ्यतिक्रमे मानाभावादिति वचनादेवं प्रतिपदिति

दुर्गाभक्तितरङ्गिण्युक्तमेव भद्रमुत्पश्यामः । केशशोधनमिति सप्त-
म्यर्थे प्रथमा । केशशोधनकङ्कतिकायां पूजयेदित्यर्थः ॥ नक्ष-
त्राणामभावे कृत्यलोपः स्यादित्याह तत्रैव ॥ नक्षत्राणाम-
भावेऽपि षष्ठ्यादिक्रमस्तथा । सर्वमेव विधिं कुर्यात्तारालाभे
फलोदयः ॥ फलोदयः विशिष्टफलोदय इत्यर्थः । अन्यथा
नक्षत्राभावे फलाभावप्रसङ्गः स्यात् । इति प्रतिपदादिकल्प-
कथनम् ।

अथ पूजादिकालस्तत्रैव ॥ ज्येष्ठा वाप्यथवा षष्ठी सायं-
काले न चेद्भवेत् । सायमेव तथापि स्यादित्वशाखाभि-
मन्वणम् । पूर्वा षष्ठीं सनक्षत्रां सायं प्राप्तामपि त्यजेत् । यदा
तु पत्रिकापूजा न परेद्युर्भविष्यति । सन्निकृष्टन्तु यत् पूर्वं पतितं
दिवसस्य च । तद्दिने वरणं कृत्वा परे शाखां प्रवेशयेत् । सप्त-
म्यान्तु यदा षष्ठी निःसृता वा न निःसृता । वर्द्धते सप्तमी किन्तु
दण्डमात्रं परे यदि । परेऽहनीति शेषः । मुहूर्तमधिका वाधि
नवम्यामष्टमी भवेत् । वर्द्धते दशमी चैव तदा कार्यं यथा शृणु ।
न केवलं नवमी दशमी चेति चार्थः । सप्तम्यां विल्ववरणमष्ट-
म्यान्तु प्रवेशनम् । पूजाष्टका नवम्यान्तु दशम्यां प्रेषयेच्छिवाम् ।
अत्र केचित् सामान्यविधिप्राप्ततिथिबाधभिया सप्तम्यां बहुका-
लीनसप्तमीयुतषष्ठ्यामिति व्याख्यान्ति । तत्र षष्ठी न निःसृतेति
वचनमनाकुलं वेति प्रतिभाति । यदा षष्ठी च सप्तम्यां अष्टम्या-
च्चापि वर्द्धयेत् ॥ स्वार्थ इण् पाणिनिविदान्तु णिच् वर्द्धेत । अर्थात्
सप्तमीति शेषः । अष्टमी परगा चैव तद्दिने च दिनचयः । तदा
षष्ठ्यां पूर्वदिने विल्वस्य वन्दनं मतम् । षष्ठीसंयुक्तसप्तम्यां पत्रि-
कायाः प्रवेशनम् । अतिकल्पे तथाष्टम्यां मृण्मयीञ्च प्रवेशयेत् ।
अतिकल्पे अतिप्रत्यूषे ॥ सप्तम्या संयुताष्टम्यां महापूजोत्सव-
क्रिया । नवम्यान्तु बलिं दद्याद्दशम्यां प्रेषयेच्छिवाम् । नवम्या-

मष्टमी यत्र नवमी परतो नचेत् । भवेद् वा दशमीविद्वा नवमी
 च परेऽहनि । तदाष्टमीनवम्योश्च द्वयोः पूजाद्वयं किल । एक-
 स्मिन्नेव दिवसे कर्त्तव्यं बलिभिः सह । अष्टकां नवमीपूजां
 त्रिसन्ध्यव्यापिनीं परा । तदा तदा नवम्युक्तं बलिदानं परे-
 ऽहनि । त्रिसन्ध्यव्यापिनीं चेत् स्याद् यदा पूर्वदिनेऽष्टमी ।
 दशमीविद्वन्नवम्यान्तु कुर्यात् पूजां न संशयः । अष्टकानवमी-
 योगो रात्रियोगो विशिष्यते । अर्द्धरात्रौ शतगुणं सन्ध्यायां
 द्विगुणं स्मृतम् । सप्तम्यादिषु पूर्वाह्णे तारायोगो न चेद्भवेत् ।
 तदाप्यारभ्य पूर्वाह्णे नक्षत्रांशे समापयेत् । दशम्यां श्रवणो
 व्यापी तथोक्त्या कृतक्रियः । प्रातः सम्पूज्य विधिवत् नृत्य-
 गीतपुरःसरैः । प्रतीक्ष्य श्रावणं कालं प्राप्ते सम्प्रपद्येच्छ्वाम् ।
 यदि नक्षत्रमाश्रित्य सप्तम्यादि त्रिकं स्थितम् । तदैव श्रवणा-
 पेक्षा दशम्यां केचिदब्रुवन् । श्रवणान्ते गते रात्रौ तदन्ते नवमी
 दिने । स्वस्वस्थानोचितं कर्म दक्षिणान्तं समापयेत् । दशम्यान्तु
 तदप्राप्तौ धनिष्ठायां यथाविधि । प्रेषयेद्भगवतीं दुर्गामशेषैः शार-
 दोत्सवैः । नवमी दशमीयुक्ता श्रवणा तु गता निशि । तदा
 सम्प्रपद्यद्देवीं नवम्यां दशमीक्षणे । अष्टमीदिनपर्यन्ता रात्रौ
 चेन्नवमी भवेत् । नवम्यामपि कुर्वीत महापूजां महानिशि ।
 चन्द्रोदिते निशायान्तु या भवेदष्टमीतिथिः । महाष्टमीति सा
 प्रोक्ता देव्याः प्रीतिकरी परा । ततोऽनु नवमी या स्यात् सा
 महानवमीतिथिः ।

पूजाधारमाह तत्रैव ॥ चित्रं च प्रतिमायाञ्च मृण्मयां
 श्रीफलेऽपि च । महायोनौ चन्द्रविम्बे शिलायां योनिमण्डले ।
 पुस्तके पादुके खड्गे महाविम्बे तथैव च । पुण्यक्षेत्रे च
 गङ्गायां देवीमावाह्य पूजयेत् ॥ प्रतिमाकरणविधिनिषेधावपि
 तत्रैव । न गृही मृण्मयीं कुर्यान्न वै तालमयीं क्वचित् ।

त्रिहस्तां तृणगर्भाञ्च विव्वयुग्मे समर्चयेत् ॥ न गृही मृण्मयीं
केवलमृत्तिकया प्रतिमां न कुर्यात्तथा तालमयीं सार्धत्रिहस्त-
परिमितां गृही न कुर्यात् । विधिमाह त्रिहस्तामिति । त्रिहस्तां
प्रतिमामित्यधिकपरिमाणव्यवच्छेदार्थमुक्तम् । तेन तथून-
प्रतिमाकरणे न दोषः । मृण्मय्याः प्रतिप्रसवमाह तृणगर्भा-
मिति । तेन तृणगर्भमृण्मयीपूजने दोषः । चकारो भिन्नक्रमे
तृणगर्भां समर्चयेत् विव्वयुग्मे चेति । ब्राह्मणादिभेदेन
विव्वयुग्मस्य विशेषमाह । माहेन्द्रस्य च ईशस्य ब्राह्मणस्य
प्रशस्यते ॥ ऊर्ध्वस्थमुत्तरस्थञ्च क्षत्रियस्य वरानने । वायव्य-
स्थञ्च वैश्यस्य शूद्रस्य च वरानने । माहेन्द्रस्य तथेशस्य सर्वेषा-
मथवा प्रिये । पूर्वादिस्थविव्वयुग्मफलमाह ॥ माहेन्द्रस्य
ज्ञानवृद्धिरीशस्य सर्वज्ञानदम् । वायुस्य च धनावाप्तिरैश्वर्य-
मुत्तरास्थिते । याम्यस्य शत्रुवृद्धिः स्यात् कोणगे मरणं भवेत् ।
वायुशानकोणस्थस्य विशेषफलाभिधानादत्र कोणपदमग्नि-
नैऋतकोणपरं पारिशिष्टादिति । विव्वयुगस्य शुभलक्षणमग्राह्य-
त्वञ्चाह तत्रैव ॥ समं वृत्तं समं स्थूलं शूलं कीटादिदूषितम् ।
न ग्राह्यं परमेशानि ! कदाचिदूर्ध्वमध्यगम् । ऊर्ध्वगतिक्षत्रिय-
भिन्नस्याग्राह्यत्वम् । सममिति सर्वस्य । यद्वा कदाचिदुक्तस्थानस्थ-
स्याप्राप्तादूर्ध्वमध्यगमपि ग्राह्यं निन्द्यफलाश्रुतेरिति तात्पर्यम् ।
विव्वयुग्मादेशुरतिदोषोऽपि तत्रैव ॥ स्नानस्थाने नीयमाने च्युते
युग्मे महेश्वरि । मृण्मय्याश्च च्युतिर्यत्र जायते मरणं ध्रुवम् ।
तद्दोषप्रशमनार्थञ्चायुतं जुहुयाद् दृष्टैः । धेनुञ्च दक्षिणां दद्यात्
श्वेताश्वं शेतच्छागलम् ॥ इति विव्वयुगप्रतिमाच्युतिप्रायश्चित्तम् ।

नन्दामारभ्य दशमौपर्यन्तमुत्सवं विदुः । महामहोत्सवं ज्ञेयं
त्रिदिनं तत् प्रकीर्तितम् । तदन्यदेवतायागं यः करोति महे-
श्वरि । न तस्य फलमाप्नोति सोऽन्ते नरकमाप्नुयात् । देव्या

भागशतं सर्वं तस्मान्नान्यं समर्चयेत् । पुनरष्टम्यां प्रतिमासु
 चेत्यन्तमभिधाय । प्रहरे प्रहरे स्नानं प्रहरे प्रहरे बलिः । प्रहरे
 प्रहरे होममन्त्रचामिषसंयुतम् । प्रभूतबलिदानञ्च नवम्याञ्च
 प्रशस्थते । नवम्या पूजिता देवी ददात्यनन्तकं फलम् ॥ देशविशेषे
 मूर्तिविशेषोऽपि तत्रैव ॥ ओड्रदेशे कलिङ्गे च मध्यदेशे तथैव
 च । देवी चाष्टभुजा पूज्या अयोध्यायां सुराङ्गके । चोहारे चैव
 श्रीहृष्टे कोशले शववत्सके । अष्टादशभुजा कार्या महेन्द्रे च हिमा-
 लये । कौरवे मथुरायाञ्च केदारि रामठेऽपि च । पूजयेद् द्वादश-
 भुजां मकरन्दे विराटके । कौमारे चैव गौडं च पारिपात्रे च
 दक्षिणे । देवी दशभुजा कार्या मरहृष्टे गजाङ्गये । पूर्णे चैव तु
 नेपाले कच्छमेष्टे च कङ्कणे । चतुर्भुजा भवेद्देवी द्विभुजा सागरा-
 न्तिके । दीपस्थानन्तु कूर्मचक्रशिरःस्थानम् । तत्तु तन्वसारकारे-
 णैव धृतम् । दीपस्थानविवर्जितेनेष्टकारचितस्थानेन कदाचन
 देवीमर्चयेदित्यनेन दीपस्थाने तृणकाष्ठादिमयगृहे न दोषः ।
 तथा दीपस्थानभिन्ने इष्टकामयगृहेऽपि दीपस्थानभिन्नस्य प्रति-
 प्रसवमाह ॥ ऐशान्याञ्च महेन्द्रे वा उत्तरे भवनस्य च । कारये-
 द्भवनं दिव्यं धनैश्वर्यप्रसादतः । एकत्रिंशच्च दैर्घ्येण पञ्चत्रिंश-
 दथापि वा । वर्तुलं नवहस्तं वा तूर्यहस्तमथापि वा । विभिन्न
 पार्श्वयोर्भागं कृत्वा मध्यं सुशोभनम् । चतुर्दिक्षु प्रमाणेन देवीं
 तत्रैव कारयेत् । अथ सिंहासनादिलक्षणम् । हस्तमात्रं समुत्सेधं
 लोम तत्र समन्वितम् । सिंहासनं महाचक्रं सर्वतोभद्रमेव च ।
 रजसा मण्डलं कुर्यात् पीठं तत्र निवेशयेत् । क्षीरं श्रीपति-
 कोद्भूतं सहकारमथापि वा । सुष्टिबाहुप्रमाणेन प्रादेशोक्त्या-
 मेव च । प्राप्तेऽष्टधा च कुटिलं चतुष्कोणं समं शुभम् । भद्रासन-
 मिदं प्रोक्तं कूर्मासनमथापि वा । विवाहे सौरयागे च सहकारं
 विवर्जयेत् । वारुणं वा महेशानि । पद्मकं देवदारुकम् ।

प्रशस्तं सर्ववेदीषु तथा शालमयानि च । ततोऽरुणेन गन्धेन
कुङ्कुमेन गजेन वा । महायोनिं लिखित्वा तु वह्निः पद्मद्वया-
न्वितम् । गजेन सृगमदेन ॥ तत्र संस्थापयेद्देवीं सर्वकामार्थ-
दायिनीम् ।

षष्ठीकर्त्तव्यकर्माह । नित्यं निर्वर्त्तय विधिवत् सायं षष्ठ्यां
ततो गृही । याथादलङ्कृतो मौनी विल्वमूलं समाहितः ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु पञ्चाङ्गेन प्रणम्य च । उत्तराशा-
मुखो भूत्वा पीठं निर्माय साधकः । पञ्च देवान्नमस्कृत्य ततः
सङ्कल्पयेत् सुधीः । त्र्यम्बकेणैव मन्त्रेण वृत्तं तोयेन स्नाप-
येत् । क्षीरेण पञ्चमव्येन तथा पञ्चामृतेन च । स्नात्वा कुम्भ-
त्रयेणापि सूत्रमाणेति वै ऋचा । निषिक्तेन तु सूत्रेण त्रिगुणेन
च पञ्चधा । वेष्टयेद्दक्षिणावर्त्ते पञ्च व्रीहींश्च वापयेत् । अद्यामुके
मास्यमुके पक्षे एतस्मिन् पुण्यभूप्रदेशे भवन्तमम्बिकाशिवयोः
प्रियतरं शाण्डिल्यगोत्रं विल्ववृक्षम् अमुकगोत्रोऽमुकदेव-
शर्मा अमुककामनया अभिन्नवृन्तफलयुगलयुक्तां शाखां दुर्गा-
स्वरूपतः पूजार्थं नेतुं नक्तमेभिरभ्यर्च्य वृणे । हस्तं दत्त्वा वृक्ष-
मूले फलैर्माल्यैः समन्वितम् । संवाह्य तैः समभ्यर्च्य स्थण्डिले पूज-
येत्ततः । गणेशमुत्तरद्वारि पूर्वे चण्डश्च दक्षिणे । प्रचण्डं पश्चिमे
चैव वेतालश्च ततः परम् । मध्ये आधारशक्त्यादीन् साङ्गो-
पाङ्गांस्तथैव च । महारजतसङ्काशां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
नानारत्नसमाकीर्णां कङ्कणैः कटकैरपि । विभ्राजमानां दश-
भिर्बाहुभिः सुमनोहरैः । शरदभोजसङ्काशविकाशिमुखप-
ङ्कजाम् । इन्द्रीवरामैर्विषमैर्लोचनैस्त्रिभिरुत्तमैः । विद्योत-
यन्तीं नयनैरुद्दामद्युतिदामभिः । त्रिशूलं करबालश्च चक्रं
वाणश्च शक्त्यपि । चिन्तयेद् वामभागे तु खेटकं पूर्णचापकम् ।
पाशाङ्कुशश्च परशुं ज्वालामालोपशोभितम् । ऊर्ध्वपादं वाम-

पादं महिषोपरिसंस्थितम् । माहिषं क्षिप्रशिरसमधस्तात्
परिचिन्तयेत् । खड्गचर्मधरं तत्र समुद्भूतं महासुरम् । विल्व-
वृक्षस्थितां ध्यायेत् सर्वकामार्थदायिनीम् । एवं ध्यात्वा महे-
शानि । आसनं प्रतिपूज्य च । मूलेनावाहनं कुर्यात् प्रद-
द्यादासनं ततः । पाद्यादिकं ततो दत्त्वा अङ्गपूजां विधाय च ।
पूर्वादिपत्रमूलेषु जयन्त्यादीन् समर्चयेत् । पत्राग्रे चैव ब्रह्मादीन्
भैरवान् पत्रमध्यतः । तत्रागत्य वृक्षमूले वृक्षाग्रे च समर्चयेत् ।
वेतालं मणिभद्रञ्च यक्षकञ्च तथैव च । त्रिपुरान्तकं समाख्यातं
कणं हेतुकमेव च । अग्निजिह्वरसञ्चैव गन्धपुष्पैः समर्चयेत् । ततो
ग्रहान् दिगीशांश्च तदस्त्राणि च तद्वह्निः ॥ अत्र दिक्पालतदस्त्र-
पूजायां विशेष उक्तः शारदातिलके चतुर्थपटले महाप्रामाणिकै-
र्लक्षणाचार्यैः । यथा । अन्ते यजेन्नीलपालान्मूलपारिषदान्वितान् ।
हेतिजात्यधिपोषितान् दिक्षु पूर्वोदितः क्रमात् ॥ मूलपारिषदा-
न्वितानिति अत्रायमर्थः । यदा शक्त्यावरणे इन्द्रादिपूजा तदा
प्रत्येकं शक्तिपारिषदायेति एवं गणपतिपूजायां प्रत्येकं गणेश-
पारिषदायेति एवं सूर्यपूजायां प्रत्येकं सूर्यपारिषदायेति । एवं
विष्णुपूजायां विष्णुपारिषदायेति । हेतीति प्रतियोगे जात्यधि-
पानां पूर्वमुद्धरणं पञ्चाहेतीनां मूले हेतिशब्दस्य पूर्वनिपातः । शस्त्र-
जातयः स्वरतेजःप्रेतरक्षोजववातक्षेत्रभूतजागलोकान् सवाहनान्
सपरिवारानित्यपि ज्ञेयम् ॥ दिक्पालानाह तत्रैव ॥ इन्द्रमग्निं
यमं रक्षो वरुणं पवनं विधुम् । ईशानं पन्नगाधीशमध ऊर्ध्वं पिता-
महम् । पीतो रक्तोऽसितो धूम्रः शुक्लो धूम्रः सितावुभौ ।
गौरोऽरुणः क्रमादेते वर्णतः परिकीर्त्तिताः । तेषां वाहनानि
राघवमष्टद्वयानि । यथा । ऐरावताजमहिषनरमकरहरिणाश्व-
वृषभरथहंसाः । एतेषां बीजानि कपिलपञ्चरात्रे ॥ यान्यु-
लामद्यतीयन्तु द्वितीयं लविलोमतः । चतुर्थकं विलोमेन वानु-

लौमेन चाष्टमम् । तृतीयञ्चानुलोमेन न विलोमात् तृतीयकम् ।
चतुर्थं सप्तमं वर्णं वानुलोमेन संस्थितम् । चतुर्थं खविलोमेन
तृतीयं गविलोमतः । सुरान्तेषु सुनादाभ्यां भेदितं सर्वमेव तत् ।
आनुपूर्वोद्धृतं वीजं ब्रह्माण्डं वासवादिकमिति । एतानि
वीजानि दीर्घाणीति सम्प्रदायविदः । अनन्तब्रह्मणोर्माया पाशवी
इति केचित् । पृथ्वाग्निपवनाद्यन्ता वरुणानिलसेन्दुकैः । अनन्त-
विन्दुमंयुक्तैरर्चाः पाशेन माययेति । प्रयोगो यथा । ओं लां
इन्द्राय पीतवर्णाय सुराधिपतये वज्रहस्ताय ऐरावतवाहनाय
सपरिवाराय दुर्गापारिषदाय नमः । एवं रां अग्नये पिङ्गल-
वर्णाय तेजोऽधिपतये शक्तिहस्ताय अजवाहनाय सपरिवाराय
दुर्गापारिषदाय नमः । इत्यादि ऊह्यम् । तदुक्तं राघवभट्ट-
धृतेन ॥ प्रयजेत् खदिच्छमलधीः खजात्यधीरहेतिपरिवारसंयुता-
निति ग्रन्थकदपि ॥ नित्यातन्त्रे ॥ लोकपालान् यजेदन्ते
वाहनायुधसंहतान् । इत्येषां पूजानन्तरमायुधान् पूजयेत् ॥
शारदायाम् ॥ वज्रं शक्तिं दण्डमसिं पाशमङ्कुशकं गदाम् ।
शूलं चक्रं पद्ममेषामायुधानि क्रमाद्विदुः ॥ मेरुतन्त्रे चतुर्थ-
प्रकाशेऽपि ॥ वज्रं शक्तिं दण्डखड्गपाशाङ्कुशगदाः पुनः । पूर्व-
तस्तु तथैशान्यां शूलचक्राखुजान्वितमिति । आयुधानां रूप-
सुक्तम् शारदायाम् ॥ पीतशुक्लासिताकाशविद्युद्रक्तसिता-
सिताः । कुरुविन्दपाटलाभा वज्राद्याः परिकीर्तिताः । कुरु-
विन्दः पद्मरागः ॥ तत्र प्रयोगो यथा ॥ ओं वज्राय वज्रहस्ताय
पीतवर्णाय वज्रलाञ्छितमौलये सवाहनाय सपरिवाराय
दुर्गापारिषदाय नमः । इत्याद्यूह्यम् । तदुक्तं राघवभट्टधृतेन ।
अर्चां वह्निर्निजमलक्षितमौलियुक्ता स्वस्वायुधाभयसमुद्यतपाणि-
पद्मा इति ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ बलिं दद्याद्विधानेन होमं कुर्व्याद्विधा-
नतः । यवं क्षीरञ्च शाल्यन्नं शान्त्यर्थञ्च निवेदयेत् । यक्षेभ्यो

यावकान्नञ्च माषभक्तमथापि वा । कृताञ्जलिस्ततो भूत्वा
 जानुभ्यामवनीं गतः । ततो बोधनमन्त्रांश्च पाठयेत् सुरपूजिते ।
 ऐं रावणस्य बधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा
 बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा । अहमप्याश्विने मासि ततस्त्वां
 बोधयामि ते । षष्ठ्यां नक्षत्रयुक्तायां सायाह्ने बोधयामि ते ।
 एतदर्थं आर्द्रानक्षत्रालाभेन पाठ्यं तात्पर्यार्थस्यासमत्वतत्त्वा-
 दिति । श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः । नेतव्यो-
 ऽसि मया गच्छ पूज्यो दुर्गास्वरूपतः । अशेषसुखलाभाय नारी-
 विभवहेतवे । नेतव्यः खोदिते गेहे सर्वकामप्रदो भव । मेरु-
 मन्दरकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ । जातः श्रीफलवृक्षः । त्वमम्बि-
 काशङ्करप्रियः । नमस्ते विष्वक्क्षाय सर्वकामप्रदाय च । दातव्यं
 खोदिते हस्तं पूजनीयं फलद्वयम् । महादेवप्रियोऽसि त्वं श्रीवृक्षः ।
 सर्वकामदः । दुर्गायज्ञनिमित्तार्थं शाखामेकां प्रयच्छ मे । तच्च
 आरोहयेत् पञ्चादुत्तराशामुखेन च । किञ्चिदुष्णेन तीयेन
 कुशपुष्पफलाक्षतम् । शङ्के कृत्वा ददेदर्थं विष्वक्क्षोद्वेन च ।
 दन्तकाष्ठं ततो दद्यादरिष्टञ्चानुमार्जयेत् । दूर्वाक्षतेन सिद्ध्यर्थं
 वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ इति विष्वक्क्षनिमन्त्रणरूपपञ्ची-
 कृत्यम् ।

अथ सप्तमीकृत्यं तत्रैव ॥ मूलयुक्तेन सप्तम्यां भास्करे
 खोदिते प्रिये । विष्वक्मूलं ततो गत्वा गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ।
 गृहीत्वा चैव कटारं सुतीक्ष्णं मुष्टिसंयुतम् । द्वादशाङ्गुलकं मानं
 मुष्टिः षडङ्गुलं स्मृतम् । क्षिप्वि क्षिप्वि युगं दद्यात्तारयुग्मं
 तथैव च । अस्त्राय हृदयान्तोऽयं क्षिन्नमन्त्र उदाहृतः । युग-
 मिति सप्तम्यर्थे प्रथमा युगे अर्थाद्विष्वकयुगान्वितशाखाविशेषे ।
 दद्यादर्पयेत् पूर्वोक्तकटारकमिति शेषः । रजकस्य वस्त्रं
 ददातीतिवदन् दाधातोरर्पणार्थकता । अर्पणमन्त्रमाह । क्षिप्वि

छिन्वीति न तु छिन्धि छिन्वीत्यनेन युगशब्दात् त्रयच्छिन्वी-
 त्यस्य चतुष्कत्वापत्तेः । केदनमन्त्रस्तु तारयुग्ममित्यादि । छिन्ने
 केदने मन्त्रश्चिन्मन्त्र इत्यर्थः । चालनमन्त्रस्तु । चामुण्डे !
 चलयुग्मन्तु चालयद्वितयं तथा । शीघ्रञ्च मन्दिरञ्चैव प्रविश
 पूजालयं पदम् । ताराद्यो वङ्गजायान्तो मनुनानेन चालयेत् ॥
 केदनकाले स्त्रीप्रभृतीनां दृष्टिर्निषिद्धा यथा तत्रैव । स्त्रीणां
 दृष्टिः पशोर्दृष्टिर्यथा नैव तु केदने । तथा कुर्यात् प्रयत्नेन
 शिविकायां प्रवेशयेत् । पूजादिषु प्रणयेत् तदाह ॥ उभ्रतं
 पतितं क्लीवं वामनं छिद्रसंयुतम् । न योजयेद्हरिद्रञ्च मन्त्रकुण्ठं
 न वेशयेत् । केदने नयने काले स्थापने च विशेषतः । भग्ने
 तु मरणं विद्यात् प्रायश्चित्तं तदाचरेत् । पार्श्वे दौपयुगं दद्या-
 दिक्षुदण्डाश्रयं द्वयम् । गृहप्रवेशकाले च घटयुग्मञ्च स्थापयेत् ।
 घटं सम्भार्जनीयुक्तं रक्तसूत्रेण गुम्फितम् । चूतपत्रसमायुक्तां दर्भ-
 च्छेदनभूषिताम् । द्वारि द्वारि न्यसेत् सक्तां सपुष्पां शोभनां
 शुभाम् । समूलां छिन्नरहितां तोरणेन विभूषिताम् । जनतेति
 वत् सकृद्वत् समूहार्थं ताप्रत्ययः । सक्तां मालासमूहं द्वारि
 न्यसेदित्यर्थः । प्राप्ते प्रतोलिकां द्वारि गृहिणी लक्षणां न्विता ।
 साध्वोभिर्नवनारीभिः कृतमङ्गलपूर्वकम् । वीजयेद्वाजनेनापि
 वामदक्षिणपार्श्वयोः । कटुत्रयं सलवणं मुखे कृत्वा महेश्वरि ।।
 देव्याः प्रचुम्बनं कुर्यात्ततः कुर्याद् गृहाङ्गने । पत्रिकां स्नान-
 पीठे च वस्त्रादीन् मध्यदेशके । देशविशेषे नवपत्रिकाक्रम-
 माह । माण्णदीक्षैव श्रीशैले ध्यान्यादिं मलये गिरौ । क्रमु-
 कादिं सागरान्ते कचू चैकाम्बकादिके । रम्भादिं गौडं वङ्गे च
 कौमारे कालरूपके । प्रतिपीठे यजेद्वापि लक्ष्मीकामेन सुन्दरि ।।
 रम्भा कचू हरिद्रा च जयन्ती विल्वदाडिमौ । अशोको माणक-
 चैव धान्यादिर्नवपत्रिका । समूला पत्रिका आह्वा हरिद्राधान्यकं

विना । समूला एव रक्षा स्याद्रामरक्षां विवर्जयेत् । खेतरक्षा
 राज्यरक्षा तथा चैव सुगन्धिनी । एषामेकतमं ग्राह्यं वीजरक्षां
 विवर्जयेत् । शर्करास्वादयुक्तायाः फलं वृक्षञ्च सन्धयेत् । त्रिपुत्र-
 चैकपुत्रञ्च मृतवत्सञ्च वर्जयेत् । द्विजातिरोपितं ग्राह्यमथवा
 गिरिसम्भवम् । ब्राह्मणस्य गृहे जातं तीर्थेभ्योऽन्यसमुद्भवम् ।
 अन्यजस्यालये जातं श्मशाननिलयञ्च वा । शाखोटमूर्ध्वजं शुष्कं
 त्याज्यं स्याददूरधुत्तकम् । एवमेव च मृगमय्यामानीय शुभजै-
 र्जलैः । स्नापयेत् शङ्खतोयेन प्रतिमायाञ्च दर्पणे । दन्तकाष्ठं
 ततो दद्यान्मन्त्रेण च विशेषतः । दशाक्षरेण देवेशि ! पञ्च-
 गव्येन चान्तरम् । प्रत्येकेन ततः पश्चात् तथा पञ्चामृतेन च ।
 त्रिशीतेन चिरक्तेन तथा तीर्थोदकेन च । वेश्यामीशानतो वायु
 पत्रिकायाश्च स्थापनम् । मध्ये विष्णुं विजानीयादथवा एक-
 भूलकम् । रक्षावृत्ते निवर्त्तनीयादिशुक्रान्तालतात्रिभिः । वेष्ट-
 यित्वा तु रक्षायां हस्तोच्छ्राये तु युग्मकम् । पीतसूत्रेण वस्त्रेण
 वेष्टयेन्मुकुटान्वितम् । कुसुम्भरत्नं क्षीमं वा दुक्षलं कौटुकानि
 च । वर्जयेत् प्रथमं देवि ! ह्यलक्ताक्तं विशेषतः । महोत्सवे
 ततः कुर्याद् वेदघोषपुरःसरम् । कुमारीणाञ्च साध्वीनां श्राव-
 येच्च तथा ध्वनिम् । बलिकर्मणि यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः ।
 महोत्सवे च माङ्गल्ये तत्र स्त्रीणां ध्वनिः शुभः । निर्मञ्चनं तथा
 कुर्याद्भाजजम्बूफलादिभिः । स्वागतं कुशलप्रश्नमासनञ्च निवे-
 दयेत् । जानुभ्यामवनीं प्रेत्य पठेन्मन्त्रं कृताञ्जलिः । श्रीं शार-
 दीयामिमां पूजां गृहाण त्वमिहागता । स्वागतन्ते महादेवि !
 विश्वेश्वरि ! नमोऽस्तु ते । धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवि-
 तञ्च नः । आगतासि यतो दुर्गं ! माहेश्वरि ! ममाश्रमम् । अर्घ्य-
 मन्नं फलं पादं मालां मलयवासिनि ! । गृहाण वरदे ! देवि !
 कल्याणञ्च प्रदेहि मे । चण्डिके ! चण्डरूपे ! त्वं सर्वकामप्रदे !

शुभे ।। गृहाणार्घ्यमिदं भद्रे । आगच्छ मम मन्दिरम् । गृहीत्वा
 शारदीं पूजां मर्त्यमण्डलमागता । चण्डिके ! त्वां नमाम्यद्य पुष्प-
 मर्घ्यं प्रगृह्यताम् । चण्डि ! त्वं चण्डरूपासि सुरतेजोमहाबले ।।
 प्रविश्य तिष्ठ मन्त्रे हे यावत् पूजां करोम्यहम् । सामान्यार्घ्यं विधा-
 याथ आसनं प्रतिगृह्य च । विकिरान् विकिरेत्तत्र प्राणायामं
 ततश्चरेत् । गणेशग्रहदिकपालान् कलसे पूजयेत्ततः । स्नाप-
 येच्च स्वमन्त्रेण वरयेदर्घ्यपात्रकम् । दिनेशार्घ्यं ततो दद्या-
 द्भूतशुद्धिमथाचरेत् । दशाक्षरेण मन्त्रेण भावयेदक्तबुहुदम् ।
 तन्मध्ये रुक्मब्रह्माण्डं पुनरेव तु भेदयेत् । तन्मध्ये चिन्तये-
 ह्वीं सर्वकामप्रदायिनीम् । जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृत-
 शेखराम् । नवयौवनसंयुक्तां सर्वाभरणभूषिताम् । त्रिनेत्रां
 पूर्णवदनां महिषासुरमर्दिनीम् । त्रिशूलञ्च तथा चक्रं खड्गं
 वाणं तथैव च । दक्षिणे च तथा शक्तिं वामतः खेटकं धनुः ।
 पाशाङ्कुशञ्च घण्टाञ्च नागहारगरीयसीम् । अधस्तान्महिषं
 तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् । शिरश्छेदोद्भवं तद्वहानवं खड्गपा-
 णिनम् । हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम् । देव्यास्तु
 दक्षिणं पादं समं सिंहोपरिस्थितम् । किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाम-
 मङ्गुष्ठं महिषोपरि । एवं सञ्चिन्त्य मनसा प्रतिमां कृत्य सज्यसेत् ।
 आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमर्चयेत् । साढकान्यासपूर्वेण
 कलान्यासमथाचरेत् । मन्त्रन्यासं ततः कृत्वा तारेणार्घ्यं विशो-
 धयेत् । अर्घ्यं स्योत्तरतः कार्यं पादमाचमनीयकम् । मधुपर्कं
 ततः पार्श्वे प्रोक्षणाञ्च जपेन्मतम् । अष्टकलो जपेन्मन्त्री गायत्र्या
 रक्षयेत्ततः । ओं दुर्गायै विद्महे नारायण्यै धीमहि । धियो
 यो नः प्रचोदयादितोरयेत् । तेन तोयेन देवेशि ! यागवस्तूनि
 सेचयेत् । गणेशमथ चैशान्यां गणपं गुरुपादुकाम् । गुरुभ्यः
 परमं ह्येवं परमेष्ठिगुरोः परम् । गुरुं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्व-

र्थञ्च यथा क्रमात् । रक्तं श्यामञ्च हारितं नीलामञ्चैव
 पूजयेत् । धूम्राभं कनकावियुद्धूपान् धर्मादिकान् प्रिये ! ।
 अधर्मादीनि पत्राग्रे अग्न्यादौ च यथाविधि । अधर्माञ्च तथा-
 ज्ञानमवैराग्यं तथैव च । अनैख्यं कृष्णवर्णं पीतरक्तं विभा-
 वयेत् । अजमेघहंसवर्णरूपान् धर्मादिकानपि । द्वारपाख्यं
 महाकालं कपिलं कृष्णलोचनम् । नन्दिनं रक्तपीतञ्च शूल-
 खट्वाङ्गधारिणम् । भुजङ्गखेतसङ्काशं द्विभुजं पङ्कजाननम् ।
 चण्डेशञ्च करालास्यं पिङ्गीर्घ्नं नयनं यजेत् । अधः कूर्मशिखारूढां
 शरच्चन्द्रनिभाननाम् । आधारशक्तिं प्रयजेत् पङ्कजद्वयधारिणीम् ।
 मूर्ध्नि तस्याः समासीनं कूर्मासनं समर्चयेत् । ऊर्ध्वं ब्रह्मशिला-
 सीनमनन्तं कुन्दसन्निभम् । अधश्चक्रधरं मूर्ध्नि धारयन्तं वसु-
 न्वराम् । तमालश्यामलाङ्गीञ्च नीलेन्द्रीवरलोचनाम् । अश्व-
 र्चयेदसुमतीं स्फुरत्सागरमेखलाम् । तत्र सञ्चिन्तयेत् पद्मं
 विकारनवकेशरम् । मन्त्री प्रकृतिपत्राणि भावयेद्दशकर्णिकम् ।
 मूलस्तत्त्वञ्च भुवस्तत्त्वं स्वस्तत्त्वञ्च तथैव च । सत्त्वं रजस्तम इति
 सूर्यादीनां त्रिमण्डलम् । पुनरानन्तरं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय च ।
 महासिंहाय वर्मास्त्रमहासिंहमनुर्मतः । दद्यादासनमेतेन मूर्तिं
 मूलेन कल्पयेत् । गृहीत्वा रक्तकुसुमं प्रकुर्त्यात् पाणिक-
 च्छपम् । कृत्वा सम्पूर्णपात्रञ्च गन्धपुष्पाक्षतानि च । हृदये
 स्थापयेद्भक्त्या ध्यात्वा पूर्वोक्तवर्त्मना । पूजयेदुपचाराद्यैर्मण्डले
 स्थापयेत्ततः । आसनं स्वागतं पृच्छेद् दद्यात्पाद्यादिकं त्रिकम् ।
 मधुपर्कं ततो दद्यादङ्गपूजां विधाय च । दर्शयेदष्टमुद्राश्च ततः
 आवाहनं पठेत् । श्रीं आवाहितासि दुर्गे ! त्वं सृष्टमया श्रीफले-
 ऽपि च । स्थिरा त्वं गृहिणी भूत्वा गृहे कामप्रदा भव । एहि
 दुर्गे ! महाभागे ! पत्रिका गृह्यतामियम् । तव स्थानमिदं भद्रं
 शरणं त्वां नमाम्यहम् । त्वं देवि जगतां मातः ! सृष्टिसंहार-

कारिणि ! । पत्रिकासु समस्तासु सान्निध्यमिह कल्पय । आयु-
 देहि धनं देहि यशो राज्यञ्च देहि मे । सन्तुष्टा चात्र मर्ते हे मनो-
 ऽभीष्टं प्रसाधय । ततः पूर्वादिपत्रेषु रुद्रचण्डादिकान् यजेत् ।
 रुद्रचण्डां प्रचण्डाञ्च चण्डोपां चण्डनायिकाम् । चण्डां चण्ड-
 वतीं चण्डरूपाञ्चैवातिचण्डिकाम् । अग्निवर्णां ततो मध्ये
 उग्रचण्डां समर्चयेत् । सर्वा युवत्यो दीप्ताङ्गा वराभयकराः शुभाः ।
 रक्ताः प्रीताम्बरधरा नानाभरणभूषिताः । त्र्यक्षरेण च मन्त्रेण
 वागाद्येन महेश्वरि ! । पूजयेदष्टपत्रेषु दलाग्रेषु विशेषतः ।
 ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही च
 तथेन्द्राणी चामुण्डा चण्डिका तथा । दण्डं कमण्डलुं पञ्च-
 दक्षसूत्रमथाभयम् । विभ्रती कनकच्छायां ब्राह्मी कृष्णाजिना-
 म्बरा ॥ १ ॥ शूलं परश्वधं क्षुरं दुन्दुभिं चन्द्रशोभितम् ।
 वहन्ती हिमसङ्काशा ध्येया माहेश्वरी सदा ॥ २ ॥ अङ्गुशं दण्ड-
 खट्वाङ्गं पाशञ्च दधती करैः । ध्येया बभ्रुकसङ्काशा कौमारी
 कामदायिनी ॥ ३ ॥ चक्रं घण्टां कपालञ्च शङ्खञ्च दधती करैः ।
 तमालश्चामला ध्येया वैष्णवी विद्युतोज्ज्वला ॥ ४ ॥ मुषलं
 करवालञ्च खेटकं दधती हलम् । करैश्चतुर्भिर्वाराही ध्येया
 कालानलच्छविः ॥ ५ ॥ अङ्गुशं तोमरं विद्यां कुलिशं विभ्रती
 करैः । इन्द्रनीलनिभेन्द्राणी ध्येया सर्वसमृद्धिदा ॥ ६ ॥ शूलं
 कपालं नृशिरः कपाणं दधती करैः । मुण्डसङ्गमण्डिता ध्येया
 चामुण्डा रक्तविग्रहा ॥ ७ ॥ अक्षस्रजं रक्तस्रवं कपालं नील-
 नीरजम् । वहन्ती हेमसङ्काशा व्याघ्रस्य चर्मणोज्ज्वला ॥ ८ ॥
 रक्ताक्षीं दण्डिकाञ्चैव नृसिंहीं शिवदूतिकाम् । नारायणीं
 कालिकाख्यां मायाञ्चैव तु भामरीम् । अरविन्दां विशालाक्षीं
 भीमाञ्चैव सरस्वतीम् । अपराजितां सोमलतां अनन्ताञ्च कपा-
 लिनीम् । भद्रकालीञ्च पुरत एताः षोडश नायिकाः । चतुर्भुजा

युवत्यश्च शङ्खचक्रगदाङ्कुशाः । सर्वाभरणसन्दीपाः सिंहस्थाः
शशिशेखराः । कालाद्यास्त्यक्षरेणैव सम्पूज्या रक्तविग्रहाः । काली-
विलासतन्त्रे विंशतिपटले ॥ आदौ दशभुजा पूज्या घटस्थापन-
पूर्विका । पञ्च देवान् प्रपूज्यादौ पश्चान्नहिषमर्दिनीम् । ततश्च
कार्तिकादीनां पूजाञ्च यत्नतश्चरेत् । ततश्च पत्रिकापूजा देवी-
पुराणसम्भता । इति वचनात् पत्रिकापूजनात् पूर्वं कार्तिके-
यादीन् पूजयेत् ॥ देव्याः कस्मिन् देशे कः पूज्य इत्याह तत्रैव ॥
जया वामे स्थिता विद्या विजया चापि दक्षिणे । वामे च कार्तिकं
देवं दक्षिणे गणपतिं तथा ।

अथ कार्तिकेयध्यानमष्टादशपटले ॥ सुतप्तकनकप्रेक्षं
खड्गपट्टीधरं वरम् । सोष्णीषमस्तकं देवं मयूरवरवाहनम् ।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे वीरं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । ध्यात्वा पाद्यादिकं
दत्त्वा दशधा प्रजपेन्ननुम् । शृणु मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कार्तिकेयं
यथोचितम् । ह्रीं गुहाय कार्तिकेयाय सेनान्ये स्वाहयान्विता ।
चतुर्दशाक्षरी विद्या कार्तिकेयस्य कीर्तिता । प्रतिमायां हृदि
स्थाने दत्त्वाङ्गुष्ठं सुलोचने । दशधा मन्त्रमुच्चार्य प्राणन्यासस्ततो
भवेत् ।

अथ जयाध्यानम् ॥ तप्तकाञ्चनसङ्काशां द्विभुजां लोल-
लोचनाम् । कटाक्षविशिखोपेतां दिगम्बरपरिच्छेदाम् । दिव्या-
भरणसंयुक्तां ध्यायेत् सिद्धिप्रदायिनीम् । ध्यात्वा पाद्यादिकं
दत्त्वा सम्पूज्य प्रजपेन्ननुम् । मन्त्रस्तु ह्रीं ह्रीं जयायै ह्रीं ह्रीं ।
सप्ताक्षरी महाविद्या जयायाः परिकीर्तिता । मायाइयजया
ऊँऽन्ता पुनर्मायाइयं प्रिये ! । सप्ताक्षरी महाविद्या कथिता
सुरपूजिता । जयाया हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा मन्त्रं जपेद्दश । प्राण-
सिद्धिस्तदा देवि ! जायते नात्र संशयः ।

अधुनाहं प्रवक्ष्यामि विजयाध्यानमुत्तमम् । दलिताञ्जन-

सङ्काशां हिभुजां खञ्जनेक्षणाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तमञ्ज-
नाञ्चितलोचनाम् । दिव्याम्बरपरीधानां नानारत्नविभूषिताम् ।
ध्यायेत्तां विजयां नित्यां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् । ध्यात्वा पाद्या-
दिकं दत्त्वा दशधा प्रजपेन्ननुम् । मन्त्रस्तु । वाग्भव शम्भुव-
निता नाम सम्बोधनं ततः । माया च वाग्भवश्चैव मनुः सप्ता-
क्षरः प्रिये । । विजयाहृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा मन्त्रं जपेद् यदि ।
प्राणसिद्धिस्तदा देवि ! जायते नात्र संशयः ।

अथ मयूरध्यानम् ॥ नानाचित्रविचित्राङ्ग ! गरुडाञ्ज-
ननं तव । अनन्तशक्तिसंयुक्त ! कालाहिभक्षणं तव । गरुडस्त्वं
महाभाग ! अतस्त्वां प्रणमाम्यहम् । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा
एकधा मन्त्रमुच्चरेत् । माया भगो नादविन्दू डेऽन्तनाम सुलो-
चना । सप्ताक्षरं महामन्त्रं हृदये प्रजपेद् यदि । प्राणसिद्धि-
स्तदा देवि ! मयूरस्य भवेद्भुवम् ॥ .

अथ मूषिकध्यानम् ॥ वृषाकार ! महाभाग ! वृषरूप !
महाबल ! । कर्मरूप ! वृषस्त्वं हि गणेशस्य च वाहनम् । नम-
स्करोम्यहं देव ! पूजासिद्धिं प्रयच्छ मे । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा
क्षिपेत् पुष्पाञ्जलित्रयम् । मायाद्वयं समुच्चार्य वदेच्च मूषिकं
ततः । डेऽन्तच्च वनितां शम्भोर्मूषिकस्य मनुः प्रिये ! । प्राण-
प्रतिष्ठा पूर्ववत् ॥

सिंहध्यानम् ॥ सिंहस्त्वं हरिरूपोऽसि स्वयं विष्णुर्न
संशयः । पार्वत्या वाहनस्त्वं हि अतः पूजामि त्वामहम् ॥ सिंह-
मन्त्रः ॥ मायाद्वयं समुच्चार्य सिंहाय महाबलाय च । पुन-
र्मायाद्वयं देवि ! मनुरेष प्रकीर्तितः । द्वादशाक्षरी महाविद्या
सिंहस्य परिकीर्तिता । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा एकधा
मन्त्रमुच्चरेत् ॥

जनविंशतिपटले ॥ महिषध्यानम् ॥ महिषस्त्वं महा-

वीर ! शिवरूप ! सदाशिव ! । अतस्त्वां पूजयिष्यामि क्षमस्व
महिषासुर ! । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा एकधा प्रजपेन्मनुम् ।
मायाद्वयञ्च नकुलं नादविन्दुविभूषितम् । महिषञ्च तथा डेऽन्तं
कूर्चं मायाद्वयं तथा । एकादशाक्षरी विद्या भक्त्या ते परिकी-
र्त्तता ।

अथ गणेशध्यानम् ॥ लक्ष्मीदरं महाकायं गजवक्त्रं त्रिलो-
चनम् । सर्वदेवमयं देवं पार्वतीनन्दनं भजे । ध्यात्वा पाद्या-
दिकं दत्त्वा एकधा मन्त्रमुच्चरेत् । मायां कवर्गद्वतीयं
नादविन्दुसमन्वितम् । तथा गणपतिं डेऽन्तं त्रिलोचिन
पुनर्लभ्यम् ॥

लक्ष्मीध्यानम् । तप्तकाञ्चनसङ्काशां द्विभुजां लोललो-
चनाम् । कटाक्षविशिखोद्गीतामञ्जनाञ्चितलोचनाम् । शुक्ला-
म्बरपरीधानां सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाम् । शुक्लपद्मासनगतां
ध्यायेन्मारायणप्रियाम् । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा दशधा
प्रजपेन्मनुम् ॥ मन्त्रस्तु ॥ मायां कामञ्च देवेश ! कम-
लान्तरवासिनी । डेऽन्तं कामं ततो मायां लक्ष्मीदेव्या
दशाक्षरम् ॥

अथ सरस्वतीध्यानम् । शङ्खेन्दुकुन्दसङ्काशां द्विभुजां पद्मलो-
चनाम् । कटाक्षविशिखोद्गीतां दिव्याम्बरपरिच्छदाम् । दिव्या-
भरणवेशाढ्यां वायूपां परमां भजे ॥ सरस्वतीमन्त्रो यथा ॥
मायाञ्च वामकर्णञ्च विन्दुनादसमन्वितम् । सरस्वत्यै पुनर्वीज-
द्वयञ्चाष्टाक्षरी मता ॥

ब्रह्मध्यानम् ॥ तरुणादित्यसङ्काशां चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम् ।
चतुर्वेदमयं वक्त्रं धर्मकामार्थभोक्षदम् । ब्रह्ममन्त्रः ॥ मायां
कवर्गस्याद्यन्तु नादविन्दुसमन्वितम् । ब्रह्मणे नमश्चवर्गाद्यन्तु नाद-
विन्दुसमन्वितम् ॥ मायां सप्ताक्षरं मन्त्रं ब्रह्मणः परिकीर्त्तितम् ।

सावित्रीपूजनं भद्रे ! शृणुष्व कथयामि ते ॥ सावित्री-
ध्यानम् ॥ तप्तकाञ्चनवर्णाभां द्विभुजां लोललोचनाम् । दिव्या-
भरणवेशाढ्यां दिव्याम्बरपरिच्छदाम् । सिन्दूरतिलकोद्दीप्ता-
मञ्जनाञ्जितलोचनाम् । सावित्रीमन्त्रस्तु ॥ मायां सां सावित्रैः
ततः पुरः सां मायां ततः परम् । सप्ताक्षरमिदं देवि ! सावित्र्याः
परिकीर्तितम् ॥

अथ नवपत्रिकापूजा मन्त्रसूक्ते ॥ रश्माञ्च द्विभुजां पीतां
शूलपुस्तकधारिणीम् । पूजयेत् कामवीजेन मन्त्रेणानेन शङ्करि ।।
दुर्गे ! देवि ! समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । रश्मारूपेण मे
देवि ! शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥ खड्गशूलाङ्कुशधरमभयं
दधती करैः । महिषासुरयुगे त्वं कवीरूपासि सुव्रते ! । शक्र-
स्यानुग्रहार्थाय आगच्छ मम मन्दिरम् ॥ २ ॥ मायावीजेन सा
पूज्या हरिद्रामय चिन्तयेत् । द्विभुजां पीतवस्त्रां त्रिनेत्रां
खड्गधारिणीम् । महिषस्यां विशालार्चीं अम्बरं वामहस्तके ।
हरिद्रे ! वरदे ! देवि ! उमारूपासि सुव्रते ! । मम विघ्न-
विनाशाय पूजां गृह्ण सुरेश्वरि ! ॥ ३ ॥ जयन्तीं रक्तवस्त्रां
पीताञ्च चण्डमालिनीम् । शूलचक्रधरां चैव सर्वालङ्कार-
भूषिताम् । निशुन्ममथने चैव सेन्द्रैर्देवगणैरपि । पूजितासि
जयन्ति ! त्वमस्माकं वरदा भव ॥ ४ ॥ विपद्घन्त्रीञ्च द्विभुजां
महावृषभवाहिनीम् । श्वेतामभीतिवरदां गगने तु समर्चयेत् ।
महादेवप्रियकरः सर्वदेवरतः सदा । उमाप्रीतिकरो यस्मात्
तस्मात् त्वां प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥ दाडिमीपत्रिकां रक्तां रक्षा-
भरणभूषिताम् । रक्तवस्त्रधरां सौम्यामर्धेन्दुव्रतशेखराम् । चतु-
र्भुजां त्रिनयनां महिषोपरिसंस्थिताम् । खड्गचर्मधरां स्कन्धे
वामेनोत्पलपुस्तिकाम् । मन्दरेणैव वीजेन बालाद्येन समर्चयेत् ।
सिद्धमन्त्रं पुरा जातं रक्तवीजस्य समुखे । उमाप्रीतिकरं

यस्मात्तस्मात्त्वां प्रणमाम्यहम् ॥६॥ अशोकपत्रिकां रक्तां सिन्दूरा-
 क्णविग्रहाम् । वाणचापधरां सौम्यां पद्मस्थां नागवाहनाम् ।
 हरप्रीतिकरो हृत्तो ह्यशोकः प्रापनाशनः । उमाप्रीतिकरस्व-
 हि मामशोकं सदा कुरु ॥७॥ श्यामाङ्गीं माणपत्नीञ्च नीलनीरज-
 धारिणीम् । महिषस्थां त्रिनेत्राञ्च कन्यावीजेन चार्चयेत् । पत्रे
 वससि कौमारि ! माणवृक्षे शचीप्रिये ! । मम वानुग्रहार्थाय
 पूजां गृह्य यथासुखम् ॥८॥ धान्यवृक्षे निमग्नाञ्च द्विभुजां श्वेत-
 विग्रहाम् । श्वेतपद्मोपविष्टाञ्च वराभयकरां शुभाम् । श्रीवीजेन
 सतारेण पूजयेत् कमलाननाम् । जगद्व्याणहितार्थाय ब्रह्मणा
 निर्मितं पुरा । उमाप्रीतिकरं धान्यं शान्तिं कुरु नमो-
 ऽस्तु ते ॥९॥ वह्निः पीठे जयन्त्याख्यां दिक्पतीन् सायुधांस्तथा ।
 उपचारैः समभ्यर्च्य हृष्टपुष्टिकरान् पुनः । कुमुदोत्पलपद्मानि
 कुन्दशेफालिकाजवाः । वज्रकुलं तगरक्षैव पुष्पाष्टकुमुदाहृतम् ।
 मन्त्रं जपेदष्टशतं होमं कुर्याद् यथाविधि । बलिदानान्तरं चैव
 पादं संश्रपयेच्चरम् । कृताञ्जलिस्ततः कृत्वा जानुस्तुष्टमही-
 तलः । पठेत् स्तोत्रं यथान्यायं वाग्वीजाद्यन्तसंयुतम् ॥

अथ स्तोत्रम् । दुर्गां शिवां शान्तिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः
 प्रियाम् । सर्वलोकप्रणेचीञ्च प्रणमामि सदाश्विकाम् । मङ्गलां
 शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम् । विश्वेश्वरीं विश्वमातां
 चण्डिकां प्रणमाम्यहम् । ईशानमातरं देवीं सर्वलोकभया-
 पहाम् । ब्रह्मेणविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमाम् । विश्वस्थां
 विश्वनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम् । योगिनीं योगमाताञ्च
 चण्डिकां प्रणमाम्यहम् । ईशानमातरं देवीमौश्वरीमौश्वर-
 प्रियाम् । प्रणतोऽस्मि सदा दुर्गां संसारार्णवतारिणीम् । य इदं
 पठति स्तोत्रं शृणुयाद्वापि भक्तितः । स मुक्तः सर्वपापेभ्यो मोदते
 दुर्गया सह । पञ्चघोषेण भैर्यादिगौतवाद्यादिनिस्त्रनैः ।

नयेच्च दिवसं पश्चात् संहिताश्रवणेन तु ॥ दिवावसाने स्नात्वा
तु सायंसन्ध्यां समाप्य च । पश्चिमाशामुखो भूत्वा गन्धमाल्यै-
रलङ्कितम् । ध्यायेत् पूर्वं देवीरूपं हंसमन्त्रेण वाग्यतः । दद्या-
दर्थं नमस्कुर्यात्ततो देवीगृहं व्रजेत् । पञ्चोपचारैर्विधिवत्
पूजयेत् परमेश्वरीम् । हविस्थानं ततो भुक्त्वा दन्तकाष्ठञ्च भक्ष-
येत् ॥ इति सप्तमीकृत्यम् ॥

अथाष्टमीकृत्यम् ॥ ततः कर्त्तव्यं समुत्थाय अष्टम्यां प्रातरेव
च । नदीतीरं ततो गत्वा स्नानं कुर्यात् समाहितः । अभावे
स्रोतस्तोयेन यत्र सूर्यस्य दर्शनम् । स्वस्ति ततो वाचयित्वा
पञ्च देवान्नमस्य च । स्नानं होमं समुद्दिश्य बलिनिर्देशनं नुतिम् ।
यथा प्रहरपूजा च अर्द्धरात्रे विशेषतः । नवम्याञ्च तथा पूजां
दशम्याञ्च विसर्जनम् । तर्पणं ब्राह्मणानाञ्च गोत्रोद्देशं स्वसंज्ञकम् ।
एवं सङ्कल्प्य मतिमान् देव्याः स्नानं समाचरेत् । ताराकंवचनं
डेऽन्तं चण्डिकाहृदयं ततः । पानीयस्य च कथितं क्षीरस्य
शृणु सुन्दरि ! । मायां गां गौर्ध्वं हृदयं पञ्चगव्यस्य च शृणु ।
तारां वाणीञ्च नेत्राभ्यां सर्वतो हृदयान्तकम् । मायान्तनुवुदा-
च्चैव हृदयार्णञ्च शर्कराम् । तारां मायाञ्च गिरिशे ! मधुमन्त्र
इतीरितः । मायां शिखायै नम इति पुनः पानीयकेन तु ।
तारं चक्रं भद्रकालीं कवचायेति दधिमन्त्र उदाहृतः । वाग्भव-
द्यञ्च तैलस्य मायां गौर्ध्वं नमः स्थितम् । उष्णोदकस्य देवेशि !
तथा गुडवृत्तस्य च । वाङ्मन्त्रेण महेशानि ! तथैवेक्षुरसेन च ।
अनुक्ते चण्डिकाशान्तं यच्चान्तेन महेश्वरि ! । दशाक्षरेण
मन्त्रेण नानागन्धोदकेन च । त्रिरक्तेन त्रिगन्धेन त्रिशीतेन
महेश्वरि ! । फलोदकैस्तीर्थतोयैः पुष्पतोयैः कुशोदकैः । घट-
स्थापनं ततः कृत्वा पीठपूजां समाप्य च । पूर्ववद्ग्रानं ध्यात्वा
च मन्त्रेणारोपयेत्ततः । आगतां स्वागतां पृच्छेद्दद्यात् पाद्या-

दिकं ततः । गायत्र्या स्नापयेद्देवीमङ्गपूजां विधाय च । मधु-
 पकं ततो दद्यात् पुनराचमनीयकम् । पूर्वादिपत्रे सम्पूज्या
 जयन्त्याद्याश्च सातरः । जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपा-
 लिनी । दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा ततः परम् । तत्रैव
 च दलाग्रेषु रुद्रचण्डादिकां अपि । रोचनाभां रुद्रचण्डां प्रच-
 ण्डामरुणप्रभाम् । चण्डोग्रां कृष्णवर्णाञ्च श्यामाञ्च चण्डना-
 यिकाम् । शक्ताभां चण्डरूपाञ्च धूम्रां चण्डवतीमपि । अति-
 चण्डां पाण्डुराभां पीतवर्णान्तु चण्डिकाम् । वागाद्येन तु
 मन्त्रेण तारादिहृदयान्तकम् । अग्निवर्णामुग्रचण्डां मध्ये तु
 परिपूजयेत् । पूर्वादिष्वष्टपीठेषु चतुःषष्टीः समर्चयेत् । ब्राह्मी
 माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । पञ्चोपचारैर्विधिवज्जय-
 न्त्यादि ततः परम् । जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपा-
 लिनी । दुर्गा शिवा क्षमा धात्री पूजनोयाः प्रयत्नतः । दक्षिण-
 प्रान्तेषु देव्याः स्वाहाञ्चैव स्वधां ततः । अम्बिकां चर्चिकाञ्चैव
 तथा कात्यायनीमपि । रक्तदन्तिकाञ्च सर्वादिमङ्गलाञ्च ततः
 परम् । शाकम्भरीं भ्रामरीञ्च शिवदूतीं ततः परम् । महा-
 कालीञ्च गौरीञ्च तर्जनीं भाविनीं तथा । महामोहाञ्च प्रयजेत्
 तथा चैव भयङ्करीम् । ततः पश्चिमप्रान्तेषु भीमां पद्मां शचीं
 तथा । मेधाञ्चैव महामायां सावित्रीं विजयां जयाम् । देवसेनां
 धृतिञ्चैव पुष्टिं धृतिञ्च भ्रामरीम् । महामायां महादेवीं महा-
 मेधां तथैव च । कामेश्वरीमुत्तरस्यां कामदामपि चार्चयेत् ।
 भ्रामरीं कालरात्रिञ्च महारात्रिं तथैव च । चक्रेश्वरीं ततश्चैव
 पूजयेद्भगमालिनीम् । धूम्रां भीमाञ्च शान्ताञ्च विदारौञ्च महा-
 स्त्रिकाम् । लक्ष्मीञ्चैव सुपर्णाञ्च महोग्रोमां तथादरात् । कुल-
 देवीं चत्वरिण मन्त्रेण च समर्चयेत् । वटुकान् पूजयेद् द्वारि-
 णी द्वौ कृत्वा विभागतः । सिद्धाख्यञ्चैव सन्देहं कालपुत्राख्य-

मेव च । क्रियाकुलनिभश्चैव मन्त्राङ्गं देवि ! पुत्तकम् । मन्दरे-
णैव वीजेन सतारेण प्रपूजयेत् । भैरवानसिताङ्गादीन् चेतेशांश्च
यजेत् क्रमात् । हेतुकं त्रिपुराङ्गञ्च अग्निजिह्वं तथैव च ।
कालास्यञ्च करालास्यमेकपादञ्च भीमकम् । अतुग्रहञ्चोर्ध्वभागे
अधश्च नासिकेश्वरम् । नारसिंहेन वीजेन सतारं हृदया-
न्तकम् । वह्निः पीठे चार्चयेद्दे तेन वीजेन साधकः । जम्भकं
मणिभद्रञ्च पूर्णभद्रं तथैव च । विरूपञ्च विरूपाक्षं चित्रकुण्डल-
मित्यपि । चित्राक्षं चित्ररूपञ्च केलिमालिनमेव च । वरेन्द्रं
नन्दिनं सिंहं ग्रहान् लोकपतीन् यजेत् । आदित्यादिग्रहा ये च
ये ग्रहाः क्रूरकर्मणः । तिथयो वासराः सर्वे तेषां हि सन्निधौ
स्थिताः । ते पूजार्थमिच्छायान्तु पूजयिष्यामि तानहम् । क्रूर-
कर्मण इति छान्दसत्वात् ह्रस्वः ।

अथास्त्रपूजा ॥ दक्षिणादिक्रमेणैव देव्यस्त्राणि प्रपूजयेत् ।
प्रतिमन्त्रैः स्ववीजैश्च गन्धचन्दनपुष्पकैः । इयं येन धृता
क्षौणी हतश्च महिषासुरः । त्रिधाराय च शूलाय तस्मै शुद्धा-
त्मने नमः । असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल । नमोऽस्तु ते । इत्यष्टावेव प्रय-
जन्तीक्ष्णधाराभिरालिकम् । चक्रेश्वरीतिमन्त्रेण लौहदण्डं
तथैव च । सुदर्शन ! महाचक्र ! दैत्यराजभयङ्कर ! । त्रिपुरा-
न्तकरः श्रीमान् चक्रवर्त्य ! नमोऽस्तु ते । चार्वङ्गणसम्पत् !
चक्राय च नमो नमः । सतारश्चक्रमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
नमोऽस्तु पञ्चवाणाय निर्मलाय महात्मने । पञ्चतत्त्वस्वरूपाय
पञ्चवाणाय वै नमः । शक्तिस्त्वं सर्वभूतानां व्यापकानाञ्च
व्यापकम् । कालाकालमवष्टभ्य शक्तिवर्त्य ! नमोऽस्तु ते । रमावीजं
सतारञ्च सजयं मन्त्रभीरितम् । वामादिवासतः पूज्याः पञ्चा-
न्मन्त्रैर्यथाविधि । धर्मप्रदस्त्वं समरे धर्मायामायुधोऽप्यसि ।

रक्षणीयस्त्वया यत्नात्वरानघ ! नमोऽस्तु ते । धृतं कृष्णेन रक्षार्थं
 संहारार्थं हरेण च । त्रयीमूर्तिञ्च सगरं धनुरस्त्रं नमाम्यहम् ।
 अत्यन्तं रामकृष्णाभ्यां धनुषे वज्रिवल्लभा । विजयादिशरान्तञ्च
 धनुर्मन्त्र उदाहृतः । नागराज ! महापाश ! अनन्तवरणाय च ।
 निर्मितो विष्णुना यत्नादतः पाहि नमः स्वधा । चण्डिकायाः
 प्रदत्तासि सर्वानुबालवर्हिणी । कुरिके ! रक्ष मां नित्यं शान्तिं कुरु
 नमोऽस्तु ते । कुरिकायै च उदयम् ।

घण्टायाः शृणु मन्त्रञ्च कोणान्तेन च सुन्दरि ! । परितः
 पूजयेन्मन्त्रान् देवांश्चैव ऋषीन्पि । पीठेशांश्चैव जीवेशानुप-
 चारैरनन्तरम् । तत्रैव च शिवं विष्णुं वनितारञ्च पूजयेत् ।
 वेदोक्तैरागमोक्तैश्च तथा पौराणिकैरपि । मन्त्रैर्यथा विभागेन
 स्वतन्त्रोक्तैः प्रयत्नतः । शुभ्रेण दधिपूक्तेन गायत्र्या तदन-
 न्तरम् । मन्त्रं जप्त्वा स्तुतिं कुर्याद्गोमं कुर्याद्दिशांशकम् । प्रसा-
 दनं ततः कुर्यादिमं मन्त्रं पठेत्ततः । यन्मयोपहृतं किञ्चित्
 पुष्पगन्धानुलेपनैः । तत् सर्वमुपपुञ्जीत प्रसीद वरदा भव ।
 पुष्टिं प्रज्ञां धृतिं मिधामारोग्यं भूतिमेव च ॥

✓ अथ घोडशोपचारमन्त्राः ॥ प्रसीद जगतां मातः ! संसारार्ण-
 वतारिणि ! । मया निवेदितं भक्त्या आसनं सफलं कुरु ॥ १ ॥
 आसनपरिमाणन्तु मातृकासिद्धतन्त्रे पञ्चमपटले ॥ चतुरङ्गुल-
 विस्तारं रौप्यनिर्माणपीठकम् । अलङ्कारं यथायोग्यं पुरुषस्तु
 निवेदयेत् । मूलप्रज्ञतिरूपेण स्रूयते सचराचरम् । पूजामर्हं
 विधास्यामि स्नातन्ते महेश्वरि ! ॥ २ ॥ दुर्गन्धि परमानन्दं
 परं वागोश्वरेश्वरी । पादमेतन्मया दत्तं प्रसीद भुवनेश्वरि ! ॥ ३ ॥
 दूर्वातण्डुलसन्मिश्रं कर्पूरागुरुपूरितम् । अर्घ्यं दत्तमिदं गृह्ण
 मत्तस्त्रिभुवनार्चिते ! ॥ ४ ॥ आपो नारायणः साक्षादस्मै सर्वं
 चराचरम् । निवेदयामि ते देवि ! अङ्गिराचमनीयकम् ॥ ५ ॥

वाजिमेधफलावाधे मया दत्तं वरानने ।। मधुपर्कं प्रतीच्छस्व
मातर्मे भुवनेश्वरि ! ॥६॥ पुनराचमनीयमप्याचमनीयमन्त्रेण वा
दद्यात् ॥ ७ ॥ शङ्खस्यमुदकं पुष्पं सुगन्धिं सुमनोहरम् । निवे-
दितं मया देवि ! स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ८ ॥ त्वं देवि !
परमेशानि ! परंब्रह्मस्वरूपिणि ! गृह्ण वस्त्रमिदं देवि ! यन्त्र-
सूत्रमिदं शुभे ! ॥ ९ ॥ ज्योतिषां ज्योतिरेकस्त्वमनादिनिधनं
न ते । मया दत्तमलङ्कारमलङ्कुरु नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥ सुगन्धिं
दुर्गमं नान्यं कुमुदोत्पलमालिनम् । सितपीतारुणादानं गृह्ण
पुष्पं वरानने ! ॥ ११ ॥ धूपं गुग्गुलुसंयुक्तं चन्दनागुरुचर्चितम् ।
दशाष्टाङ्गसमुद्भूतं गृहाण परमेश्वरि ! ॥ १२ ॥ परं ज्योतिः परं
ब्रह्म जगदेकं सनातनि ! भूतये मन देवेशि ! दीपोऽयं प्रति-
गृह्यताम् ॥ १३ ॥ यद्वत्तं परया भक्त्या फलमूलादिकं मया ।
गृहाण परमेशानि ! नैवेद्यं सुमनोहरम् ॥ १४ ॥ मातृका-
भेदतन्त्रे ॥ नैवेद्यं विविधं रत्नं नानाफलसमन्वितम् । शर्करा-
संयुतं कृत्वा पायसञ्च निवेदयेत् । मत्स्यसूक्ते ॥ अग्निषजगदा-
धारभूते ! त्रैलोक्यवन्दिते ! । प्रदक्षिणमहं वन्दे विद्वत्सु पाद-
पङ्कजम् ॥ १५ ॥ धान्यमुद्भक्तलायस्य रजोवस्य तिलस्य च ।
प्रकटानेकफलयुग्मचतानां विनिवेदयेत् ॥ १६ ॥ प्राणान् रक्ष यशो
रक्ष पुत्रदारधनानि च । सर्वरक्षाकरी यन्मात्स्वं देवि ! भुवन-
त्रये । अत्र बलिदानोक्तस्मार्तभट्टाचार्यलिखिताभिलाषवाक्य-
वद् द्रव्यविशेषेऽपि कामनाविशेषेणाभिलाष उक्तस्तत्रैव ॥

द्रव्यदानोचितं वाक्यं शृणु वक्ष्ये समासतः । यादृशं कल्प-
सम्पूर्णं तत् प्रयच्छ वरानने ।। ततो यथाभिमतविजयकामो
गन्धमहं ददामीति गन्धं दद्यात् । कल्पकोटिस्वर्गनिवासकाम-
श्चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमैरनुलेपनमहं ददामीति मिश्रितानुलेपनं
दद्यात् । ततः पुष्पं दशसुवर्णदानफलप्राप्तिकामो नानाविधयुक्त-

पुष्पमहं ददामीति उद्दिश्य जातीयुक्तविमुक्तचम्पकविल्वपत्रोत्प-
लकुमुद-मल्लिकाकाञ्चनशेफालिकाकङ्कारकरवीरजयन्तीबन्धूक-
यथाकालप्राप्तजलजारण्यजपर्वतसम्भूतोक्तानुक्तपुष्पाणि दद्यात् ।
अथ राजसूययज्ञफलप्राप्तिकामो विल्वपत्रमालाहयं दद्यात् ।
ततः पुष्पदानत्रिगुणफलप्राप्तिकामः करवीरमाख्यमहं ददा-
मीति उक्त्वा नानाकर्मविरचितकृत्यं वकुलमाख्यं दद्यात् । अथ
गोसहस्रदानफलप्राप्तिकामो मालतीमालाहयं रक्तोत्पलञ्च
दद्यात् ॥ ततो वाजपेयफलप्राप्तिकामो धूपमहं ददामीति
बहुविधधूपं दद्यात् । अश्वमेधफलप्राप्तिकामो घृतप्रदीपमहं
ददामीत्युद्दिश्य घृतेन दीपमालायां दीपोल्काञ्च दद्यात् । ततो
गोमेधशतयज्ञप्राप्तिकामो ह्यनानाफलान्वितपत्रपुष्पोपेतबहु-
विधान्नपानताम्बूलादीनि मेध्यान्धसूनि दद्यात् । ततः पुष्क-
राधिकरणकदशसुवर्णतारदानफलप्राप्तिकामः स्वकादिफलप-
ञ्चशस्यप्ररुद्धधान्यशालूकपद्मवृणालानि यथासम्भवमेध्यमति-
रूपाणि दद्यात् । एतद्वस्त्रतन्तुसंख्यवर्षसहस्रावच्छिन्नशिवदुर्गा-
लयमोदनकामो नेत्रक्षीमादियथासम्भववस्त्राण्यहं ददामीति
उक्त्वा सूक्ष्ममृदुरूपाणि वस्त्राणि दद्यात् । ततो गङ्गाधिकरण-
कदशगोदानफलप्राप्तिकामः सोत्तरीययज्ञसूत्रं ददामीत्युद्दिश्य
दद्यात् । ततो गोसहस्रदानफलप्राप्तिकामः सुवर्णमहं
ददामीत्युक्त्वा दद्यात् । ततः स्वर्गाधिकरणकदीप्यमानकाम-
श्चित्रमहं ददामीति छत्रम् । अग्निष्टोमयज्ञफलप्राप्तिकाम-
श्चामरमहं ददामीति चामरं दद्यात् । अथ दीर्घायुरारोग्य-
विजयावच्छिन्नविपुलभोगप्राप्तिकामः अथ चन्द्रांशुजन्मणि-
समः अतिसौभाग्यकामः रूपधान्यकन्यायुतसहस्रावच्छिन्न-
दुर्गालोकप्राप्तिकामः सोपधानशय्यापादुकादीनि दद्यात् । दत्त्वा
बलिं ततः कुर्यात् क्षणच्छामं परात्परम् ॥ बलिदानस्य विशेषो-

ऽग्रे वक्ष्यते ॥ जप्त्वा प्रदक्षिणं कुर्यात् स्तुतिपाठं सदाचरित् ॥

अथ स्तुतिः ॥ नारद उवाच ॥ ओं भगवति ! भयोच्छेदे !
काल्यायनि ! च कामदे ! । कौशिकि ! त्वं महेशानि ! कालिके !
त्वां नमाम्यहम् ॥ १ ॥ प्रचण्डे ! पुच्छदे ! देवि ! सूप्रीते ! सुरनायिके ! ।
कुलद्योतिकरे ! चोग्रे ! पार्वति ! त्वं प्रसीद मे ॥ २ ॥ दुर्गोत्तारिणि !
दुर्गे ! त्वं सर्वाशुभनिवारिणि ! । सर्वे ! सर्वार्थदे ! देवि ! भव त्वं
वरदा मम ॥ ३ ॥ चण्डोग्रे ! वरदे ! देवि ! प्रचण्डे ! विजयप्रदे ! ॥
धर्मार्थकामदे ! देवि ! काल्यायनि ! नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥ जन्मान्तर-
सहस्रेषु तिर्यग्योनिगतस्य च । अघं संहर मे देवि ! ज्ञानतो-
ऽज्ञानतः कृतम् ॥ ५ ॥ शान्तिपुष्टिप्रदे ! देवि ! मातस्त्रैलोक्य-
तारिणि ! । नमस्यामि जगद्भानि ! त्वामहं विल्वभाविनि ॥ ६ ॥
नमस्तेऽस्तु शिवे ! देवि ! सर्वव्यापिनि ! शाङ्करि ! । निजधर्मा-
दिकं काम्यं कल्याणञ्च प्रदेहि मे ॥ ७ ॥ सर्वेषां नाथभूतासि
त्वमेवैकाकिनी यतः । तस्मान्नमामि देवेशि ! प्रसन्ना वरदा
भव ॥ ८ ॥ इयं सर्वेश्वरीपूजा यन्मया देवि ! ते कृता । पूर्णा
भक्तु सा सर्वा त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ! ॥ ९ ॥ जातस्य यज-
मानस्य गर्भस्थस्य च देहि नः । मा भूत्तत्र कुले जन्म यत्र देवी
न चण्डिका ॥ १० ॥ इत्यष्टमीकृत्यम् ॥

अथ निशीथकृत्यम् ॥ अर्द्धरात्रौ ततः कुर्याद् दिवसे वा
समाहितः । सन्ध्यायां वा महेशानि ! शरणाम्भसि पूर्वकम् ।
अष्टम्याञ्च नवम्याञ्च शिविकायां यथेच्छया । निशायाचां प्रकु-
र्वीत सन्ध्यायां रजनीमुखे । ततः सम्भूजयेद्भक्त्या बलिभिः
पायसादिना । नृत्यगीतविचित्तैश्च वाद्यैरुच्चावचैरपि । रक्त-
पुष्पस्य कुसुममष्टम्याञ्च निवेदयेत् । सहस्रसंख्यकैर्देवि ! वकुलै-
र्वा मनोरमैः । पुण्डरीकन्तु यो दद्यादर्द्धरात्रौ विशेषतः । सर्वान्
कामानवाप्नोति शतमष्टोत्तरं तथा ॥

अथ नवमीकृत्यम् तत्रैव ॥ नवम्यां पूर्ववत् पूजा कर्त्तव्या
भूतिमिच्छता । देव्यै नवम्यां सन्ध्यायां पिशितान्नं सश-
र्करम् । दद्याद् यदि तदा मद्यवर्जितं तदरान्वितम् । अरं
काञ्चिकम् ॥ शान्तिं कृत्वा ददेद्देनुं दक्षिणां विधिवद् यथा ।
दक्षिणां वस्त्रयुग्मञ्च आचार्याय निवेदयेत् । परितोषं पुनर्दानं
विधिज्ञाय च काञ्चनम् । धान्यं वासस्तथा ताम्रं ब्रह्मणै
धान्यकाञ्चनम् । ऋत्विजेऽपि तथा धान्यं सतिलं काञ्चनं तथा ।
ब्राह्मणांश्च कुमारींश्च अन्यानपि च पूजयेत् । दीनान्ब्रह्मण-
नाञ्च भक्तितः पूजनं चरेत् । दद्यादुक्तमर्कभोज्यं दिनभोज्यं
विशेषतः ॥ पतिरन्यं यदा दोर्मिर्बलिदानाद्यशान्तये । शिव-
भक्तान् पूजयेच्च शिवाभक्तान् विशेषतः । शिवभक्ताश्च ये केचिद्
विष्णुभक्ताश्च पार्वति ।। गृहं प्रविश्य च पुनर्गीतवाद्यपुरःसरम् ।
गृहं सम्पूजयेद्ब्रह्म्या भुञ्जीत बान्धवैः सह ॥ इति नवमीकृत्यम् ॥

तत्रैव । प्रातरैव दशम्यान्तु नित्यं निर्वर्त्य साष्टतः । जानुभ्या-
मवनीं गत्वा इदं संश्रावयेत्ततः । ओं कालि ! कालि ! महाकालि !
कालिके ! पापनाशिनि !। कालि ! करालनिष्क्रान्ते ! कालिके !
त्वं नमोऽस्तु ते । सिंहवाहिनि ! चामुण्डे ! पिनाकधनुवल्गवे ! ।
उपहारं गृहीत्वैवं प्रसीद परमेश्वरि !। ओं उत्तिष्ठ देवि !
चामुण्डे ! शुभां पूजां प्रगृह्य च । व्रज त्वं स्नीतसि जले वृद्धौ च
स्थीयतामिह । निर्माल्यधारिणी पूज्या चाण्डाली गन्धचन्दनैः ।
समर्पयित्वा मन्त्रेण मन्त्रमेतदुदीरयेत् । निमज्ज्याम्भसि सम्पूज्या
परिकालार्चिते जले । पुत्तायुर्धनवृद्ध्यर्थं स्थापितासि जले
मया । यजमानः स्वयञ्चैव चण्डिकां प्रेषयेच्छिवाम् । न वीक्षेत
महेशानीं न नग्नां प्रेषयेज्जले । दशम्यां श्रवणाप्राप्ते अम्बु
निक्षिप्य दारकः । अलाभे केवलायान्तु न निशायां कथञ्चन ।
पूजोपहारद्रव्याणि आचार्याय निवेदयेत् । तदर्धञ्च विधिज्ञाय

तदर्द्धैव ब्रह्मणे । तच्छेषं ऋत्विजे दद्यात् परितोषं तथैव
च । पूजालयं न वीक्षेत गृहस्थः स्वं कदाचन । अप्सु निक्षिप्य
देवीं ब्राह्मणायोपपादयेत् । देवीस्थितगृहेणापि यो गृहं
कारयेत् सुधीः । तस्य लक्ष्मीर्बलञ्चायुः सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ।
इति दशमीकृत्यम् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां चतुर्थे काम्यकाण्डे दुर्गोत्सवप्रकरणे

प्रतिपदादिकृत्यरूपस्त्वकथनं नाम

पञ्चमः परिच्छेदः ।

एकपञ्चाशत्पटले ॥ भगवानुवाच ॥ अथ दुर्गामनुं वक्ष्ये
सर्वतन्त्रानुसारतः । शारदीयप्रयोगे तु तद्विशेषं यथा शृणु ।
वाक्शक्तिकमलास्याश्च त्र्यक्षरं परिकीर्तितम् । नित्ये नैमि-
त्तिके काम्ये मोक्षेषु च नियोजयेत् । ऋषिः स्यान्नारदश्चास्य
छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् । शम्भुश्च देवता देवी चतुर्वर्गेषु
योजयेत् । कामलक्ष्मं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशेन तर्पणम् । तत्त्व-
न्यासं बलिञ्चैव होमं दशदशांशके । षट्पुरञ्चाष्टपत्रञ्च कला-
पत्रं धरापुरम् । चतुर्वारं वीजयुक्तं पीठयुक्तं समर्चयेत् । ब्राह्मण-
दीनथ पत्रे च जयन्त्यादींश्च षट् पुरे । शेषशेषं तथा मध्ये अम्बु-
ताद्याः कलाच्छेदे ।

ध्यानम् ॥ जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुवृत्तशेखराम् । लोचन-
त्रयसंयुक्तां पूर्णन्दुसदृशाननाम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभां सुप्रतिष्ठां
सुलोचनाम् । नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् । सुचारुदशनानां
तद्वत् पीनोद्धतपयोधराम् । त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दि-
नीम् । त्रिशूलं दक्षिणे हस्ते खड्गं चक्रं तथैव च । तीक्ष्णवाणं
तथा शक्तिं दक्षिणेऽपि निबोधत । खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमङ्कुश-
मेव च । घण्टां वा परशुं वापि देव्या वामे विचिन्तयेत् । अध-
स्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् । शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं

खड्गपाणिनम् । हृदि शूलैर्न निर्भिन्नं निर्यदन्तविभूषितम् । रक्त-
 रक्तीकताङ्गञ्च रक्तविस्फुरितेक्षणम् । विष्टितं नागपाशेन भृकुटी-
 भीषणाननम् । पिबन्तश्चैव रक्तञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।
 देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरिस्थितम् । किञ्चिद्दूढं तथा
 वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि । ध्यात्वानेन जपेन्मन्त्रं बलिं दत्त्वा
 स्तुतिं पठेत् । ऋषिः स्थानारदश्छन्दोऽप्यनुष्टुप् शम्भुरिव च ।
 देवता च समाख्याता चण्डिका परमेश्वरि । । श्रीं परंब्रह्म-
 स्वरूपाञ्च विदग्मां जगन्मयीम् । शरण्ये ! त्वामहं वन्दे दुर्गां
 दुर्गतिनाशिनीम् ॥ १ ॥ कामाख्यां कामदां श्यामां कामरूपां
 मनोरमां । ईश्वरीं त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ २ ॥
 त्रिनेत्रां हास्यसंयुक्तां सर्वालङ्कारभूषिताम् । विजयां त्वामहं
 वन्दे दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमानां सिद्ध-
 गन्धर्वसेविताम् । भवानीं त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्
 ॥ ४ ॥ निशुम्भशुम्भमथनीं महिषासुरघातिनीम् । दिव्यरूपा-
 महं वन्दे दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ ५ ॥ विशालर्षभुजां देवीं
 शुद्धकाञ्चनसन्निभाम् । गौरीरूपामहं वन्दे दुर्गां दुर्गतिना-
 शिनीम् ॥ ६ ॥ त्रिशूलं खड्गचक्रञ्च वाणशक्तिं परशुधम् । दधानां
 त्वामहं वन्दे दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ ७ ॥ जगन्मयीं महा-
 विद्यां सृष्टिसंहारकारिणीम् । सर्वदैवमहं वन्दे दुर्गां दुर्गति-
 नाशिनीम् ॥ ८ ॥ इदन्तु कवचं दिव्यं महामन्त्रं महाफलम् ।
 यः पठेन्मानवो नित्यमखड्गतिरुमन्वितः । धनं धान्यं प्रयच्छामि
 सङ्गदावर्त्तनेन तु । इति मन्त्रस्तुते दुर्गास्तीव्रं समाप्तम् ।
 तत्रैव । दुर्गन्त्यारक्तशुद्धलम् । निगमाद्यं वङ्गिजायां दशार्थं
 परिकीर्तितम् । एषा विद्या महाविद्या जयदुर्गां प्रकीर्तिता ।
 ऋषिः स्थानारदश्छन्दो गायत्री परिकीर्तिता । देवता च
 भवेद्दुर्गा सर्वार्थं विनियोजयेत् । मन्त्रं लक्षं जपेन्मन्त्री तत्त्व-

न्यास उदाहृतः । तद्दशांशं जुहुयाच्च तर्पणं ऋतुसंख्यकम् ।
 दद्यान्महिषमन्त्रेण आसनं परिकीर्तयेत् । मूलेन कल्पयेन्मूर्तिं
 शृणु ध्यानं वरानने । ततो जलनिधेस्तीरे वनराजिविराजि-
 तम् । तमालतालहिन्तालपाटलामलकैर्हृतम् । कुन्दमन्दार-
 दाडोमकदम्बकुसुमैर्युतम् । चम्पकाशोकरन्माख्यं चन्दना-
 गुरुभूषितम् । सुगन्धिकुसुमामोदगन्धामोदितदिङ्मुखम् ।
 पशुपत्तिगणाकीर्णं विष्वनोपसरोवरम् । कुमुदोत्पलकङ्कण-
 पुण्डरीकोपशोभितम् । तस्मिन्नमृतदं चारुपारिजातचतु-
 श्रयम् । पादपद्मवमामोदि मञ्जरीपुञ्जधारितम् । तस्मिन्मणि-
 मयं कुण्डं मण्डपं मणिकुट्टिमम् । तडिल्कोटिप्रतीकाशं बा-
 लादित्यसमप्रभम् । मण्डितं पाण्डुरच्छत्रैर्विमानेन विराजि-
 तम् । शोभितं शतसाहस्रैर्ध्वजैः पाण्डुरचामरैः । तत्र सिंहा-
 सनं रम्यं रत्नदामविराजितम् । ततो भावयेद्भास्वरं सिंहमाजं
 चतुर्वेदपादं चतुर्विंशतचक्रम् । वह्निर्लोलजिह्वं चलत्पिङ्गलाक्षं
 तुषारप्रभं दुर्निरौक्षं समस्तैः ॥ महत्ताप्रभवारक्तपङ्कजं षट्पुरा-
 न्वितम् । विभ्राजमानं विस्तीर्णं नृगराजोपरिस्थितम् । ध्या-
 येत्तस्मिन् तप्तजाम्बूनदाभां दिव्यैर्भयैर्भासयन्तीं त्रिनेत्रैः ।
 चन्द्रादित्यौ कुण्डले द्वे दधानामूर्ध्वं चन्द्रं धारयन्तीं मुदा
 हि । स छिन्नबलवोर्यौघो निर्गतो महिषासुरः । सप्राप्तेन
 त्रिशूलेन भुकुटीकुटिलाननाम् । गृहीतनागतत्केशसृगेन्द्रा-
 कृष्टवाहकम् । लोहितास्यैर्महाघोरैः शार्दूलैरपि भक्षितम् ।
 नियुक्तं रक्तपं सिंहं वीक्षयन्ती मुहुर्मुहुः । सिद्धगन्धर्वरत्नोभि-
 र्यक्षविद्याधरोरगैः । गीतवादित्रनिर्घोषैः स्तूयमाना महेश्वरी ।
 महीक्षवे महारात्री उद्याने शयनेऽपि च । महामखे महा-
 योगे ध्यानं तत्र नियोजयेत् । नित्यां नीलोत्पलाभां तां त्रिनेत्रां
 शशिशेखराम् । चतुर्भिः स्वकरैर्वत्ते शङ्खचक्रकपाणकम् । त्रिशि-

खञ्ज जटाजूटं सिंहस्थामपि चिन्तयेत् । पीठसिंहे महेशानि !
 यजेत् शक्तिसमन्विताम् । प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा न-
 न्दिनी तथा । सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नवशक्तयः । षट्पुरे
 भैरवीञ्चैव शेषमध्ये समापयेत् । पूर्वाद्यग्रे च ब्रह्मादीन् यच्छेषं
 पूर्ववत् प्रिये ! । अष्टादशभुजायाश्च वक्ष्ये मन्त्रं शिवप्रदम् ।
 भावस्थानि समुन्नीय तत्तदुष्टे उदाहृतः । ध्यानं देव्याः प्रवक्ष्यामि
 सर्वपापप्रणाशनम् । सूर्यमण्डलमध्यस्थां दावाग्निसदृशप्रभाम् ।
 जटाजूटसमायुक्तां त्रिनेत्रां शशिशेखराम् । अष्टादशान्दिकां
 देवीं रक्ताम्बरविभूषिताम् । निघ्नन्तीं महिषञ्चैव सिंहासनी-
 परिस्थिताम् । शक्तिञ्च दुर्जरं शूलं वज्रं खड्गं तथाङ्गुशम् ।
 शरं चक्रं शलाकञ्च वामदक्षिणतः शृणु । सिद्धास्यवटुकञ्चैव
 सन्देहवटुकं पुनः । समयाद्यं तथाङ्गानि पत्राद्यञ्च क्रिया तथा ।
 पुत्रं तेषामनन्तन्तु वटुकं शक्तिवामतः । तारिण भावयुक्तेन
 नमसान्तेन चार्चयेत् । अजितापराजिता चैव जया च विजया
 पुनः । काली चैव तथा श्यामा मङ्गला सिद्धिरेव च । कात्या-
 यन्याः प्रवक्ष्यामि मन्त्रं सर्वार्थसाधनम् । वागाद्या जयदुर्गाया-
 स्सारमूले महेश्वरि ! । ततश्चार्कभुजायाश्च कमलाद्यं समुद्-
 रित् । मायान्यासञ्च सर्वत्र द्विभुजायाश्च वाग्भवम् । सिन्दूराकं-
 प्रसङ्काशं पीनोन्नतपयोधराम् । त्रिनेत्रां महिषघ्नीञ्च चन्द्र-
 लेखांशुभिर्युताम् । करैश्चतुर्भिः खड्गञ्च शूलं चक्रं गदां तथा ।
 वामे चर्माङ्गुशं घण्टां मुण्डपञ्चकमेव च । यवाद्याः पूजयेत्
 पत्रे श्रीकण्ठादीञ्च तद्वहिः । अथ चाष्टभुजायाश्च ध्यानं वक्ष्ये
 समाहितः । सूर्यकोटिप्रतीकाशं त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ।
 सृगचर्मोत्तरासङ्गां सिंहस्कन्धनिवासिनीम् । अष्टभिर्बाहुभिः
 खड्गं चक्रं दक्षिणबाहुभिः । वज्राशनिं कपालञ्च वामे चर्म धनुः
 शरम् । घण्टाञ्च परशुञ्चैव क्रमादस्त्राणि वै प्रिये ! । पुष्ट्यादि-

मातरः पत्रे श्रीकण्ठादींश्च तद्वहिः । चतुर्भुजायाः श्रीवल्लभ्यानां
वैष्णवचोदितम् । सिंहारूढां महाभीमां शूलं चक्रं धनुस्तथा ।
शङ्खं पद्मञ्च महिषं निघ्नन्तीं परिचिन्तयेत् । इति दुर्गाविशेष-
पूजा ।

अथ दुर्गानाममाहात्म्यम् । तत्र स्वरूपं दर्शयति रुद्रजामले ।
तवर्गद्वितीयो वर्णः पञ्चमस्वरसंयुतः । कवर्गस्य तृतीयश्च रेफं
तस्योपरि प्रिये । । द्वितीयस्वरसंयुक्तं नामैदं परिकीर्तितम् ।

अथ नाममाहात्म्यम् । मुण्डमालातन्त्रे द्वितीयपटले ।
न हि दुर्गासमा पूजा न हि दुर्गासमो जपः । न हि दुर्गासमं
ज्ञानं न हि दुर्गासमं तपः । दुर्गायाश्चरितं यत्र तत्र कैलास-
मन्दिरम् । तृतीयपटले । दुर्गास्मरणजं देवि ! दुर्गास्मरणजं
फलम् । दुर्गायाः स्मरणेनैव किं न सिध्यति भूतले । शैवो
वा वैष्णवो वापि शाक्तो वा गिरिनन्दिनि । । भजेद्दुर्गां स्म-
रेद्दुर्गां यजेद्दुर्गां शिवप्रियाम् । तत्क्षणाद्देवदेवेशि ! सुच्यते
भवबन्धनात् । तथा । दुर्गाया मन्त्रमाकारं नानातन्त्रे श्रुतं
त्वया । दुर्गे दुर्गेति दुर्गाया दुर्गे नामपरं मनुम् । यो भजेत्
सततं चण्डि ! जीवन्मुक्तः स मानवः । हे दुर्गे ! दुर्गे घोरसङ्कटे
दुर्गायाः परं मनुं दुर्गे इति नामशतं यो भजेज्जपेत् स जीव-
न्नपि मुक्तो भवेदित्यन्वयः ।

फलान्तरमाह तत्रैव । महोत्पाते महारोगे महाविप-
दसङ्कटे । महादुःखे महाशोके महाभये समुत्थिते । यः
सदा संस्मरेद्दुर्गां यो जपेत् परमं मनुम् । स जीवलोके
देवेशि ! नीलकण्ठत्वमाप्नुयात् । महोत्पातादिषु दुर्गां यः
स्मरेत् स्मृतिविषयताशालिनीं कुर्याद्यश्च जपन् मानसप्रत्य-
क्षविषयतावतीं कुर्यात् स नीलकण्ठत्वमाप्नुयात् कालकूट-
स्थेव महोत्पातादेः पादत्वे लभेत् । उत्तरत्र तु नीलकण्ठत्वं

शिवत्वमिति सर्वं समञ्जसमिति । तदेव स्पष्टयति चतुर्थ-
पटले । श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि यः कश्चिन्मानवः स्मरेत् । दुर्गां
दुर्गंशतं तीर्थं स याति परमां गतिम् । सप्तमपटले । नाना-
तन्त्रमतं देवि ! नानारत्नं प्रकाशितम् । ब्रह्मस्वरूपं विज्ञातुं
कः समर्थो महीतले । नानामार्गं प्रधावन्ति पशवो हृतबुद्धयः ।
श्रीदुर्गाचरणाभोजं हित्वा यान्ति रसातलम् । सत्यं वच्मि
हितं वच्मि पथं वच्मि पुनः पुनः । न भुक्तिश्च न मुक्तिश्च
विना दुर्गान्निषेवणात् । अष्टमपटले । भक्त्या भगवतीं दुर्गां
दुःखदारिद्र्यानाशिनौम् । संस्मरेत् प्रजपेद्वायेत् स मुक्तो
नात्र संशयः । जीवन्मुक्तः स विज्ञेयस्तन्वभक्तिपरायणः । स सा-
धको महाज्ञानी यश्च दुर्गापदानुगः । न च भुक्तिर्न वा मुक्तिर्न
गतिर्नगनन्दिनि ! । विना दुर्गां जगद्वाप्ति । निष्कलं जीवनं
भवेत् । शक्तिमार्गरतो भूत्वा योऽन्यमार्गं प्रधावति । न च
शाक्तास्तस्य वक्तुं परिपश्यन्ति शङ्करि ! । विना दुर्गां जग-
द्वाप्ति । वाग्जालशास्त्रमोहिताः । अन्यदेवं भजन्ते ते चान्य-
शास्त्रेषु घूर्णिताः । पिच्छिलातन्त्रे पूर्वखण्डे तृतीयपटले ।
न दुर्गानामसदृशं नामास्ति जगतीतले । यस्य स्मरणमात्रेण
पलायन्ते महापदः ।

दुर्गानामस्मरणेन सर्वविद्यास्मरणमाह । तारिणी सुन्दरी
काली दुर्गा च भैरवी तथा । भुवनेश्वी महाजन्मोस्तासां
दुर्गेति नाम वै । तासामिति बहुवचनाद्गणो लभ्यते । प्रागु-
क्तान्त्रो मन्त्रत्वमत्र स्पष्टयति । दुर्गानाममहामन्त्रः सर्व-
मन्त्रोत्तमोत्तमः । लक्षसंख्याजपेनैव पुरश्चर्या विधीयते ।
राजादिभयमापन्ने दुर्गानाम परा गतिः । महापदि मह-
त्वासे महादारिद्र्यसङ्कटे । लक्षसंख्याजपेनैव पलायन्ते महा-
पदः ॥ जामले । शिव उवाच । आरोग्यस्य च सम्पत्तेर्ज्ञा-

नस्य च महोदयः । नानेदं परमो हेतुर्मुक्तये भवसङ्गिनाम् ।
 कलिकाले विशेषेण महापातकिनामपि । निस्तारवीजं वि-
 ज्ञेयं नामसंस्मरणं प्रिये ।। परदाररतोऽपि स्यात् परद्रव्याप-
 हारकः । सोऽपि पापात् प्रमुच्येत यो वा स्यादतिपातकी ।
 ब्रह्महत्या सुरापानं स्त्रेयं गुर्वङ्गनागमः । तस्मादपि प्रमुच्येत
 यदि नाम स्मरेत् सुधीः । विष्णुनामसहस्रेभ्यो ह्यधिकं परमे-
 श्वरि ।। दुर्गानाम समाख्यातं चतुर्वेदविदां मतम् । दुर्गानाम-
 जपात् पापं सर्वं याति हि तत्क्षणात् । वेदेष्वागमतन्त्रेषु पुरा-
 णेषु सुनिश्चितम् । हरिनाम्नः परं नास्ति वैष्णवानामिदं
 स्मृतम् । तादृशाच्च मते ज्ञेयं दुर्गानाम ततोऽधिकम् । न तस्य
 दुर्लभं किञ्चित् परत्रेह च सुन्दरि ।। यः स्मरेत् सततं दुर्गां
 स एव श्रीसदाशिवः । शौचाचारविहीनोऽपि संस्मरेत् परमे-
 श्वरोम् । स एव परमं स्थानं कथितं वीरवन्दिते ।। वैष्णवानाञ्च
 शैवानां शुद्धानां यादृशी गतिः । नामसंस्मरणादयस्य तथा
 शाक्तजनस्य च । कर्मणानेन देवेशि ! नाधिकारी यमो मम ।
 दुर्गानामजपो यस्य किं तस्य कथयामि ते । अहं पञ्चाननः
 कान्ते ! वर्षकोटिशतैरपि । यावद्भूर्वायुकाकाशं जलं वह्निः
 शशी ब्रह्माः । तावत्तिष्ठन्ति ते स्वर्गे दुर्गानामपरायणाः । धनी
 पुत्री सुखी सोऽपि चिरजीवी भवेद्भुवि । प्रत्यहं यो जपेद्दु-
 भक्त्या शतमष्टोत्तरं शुचिः । अष्टोत्तरसहस्रन्तु यो जपेद्भक्ति-
 मान् नरः । प्रत्यहं परमेशानि । तस्य पुण्यफलं शृणु । धनार्थी
 धनमाप्नोति ज्ञानार्थो ज्ञानमेव च । रोगार्तो मुच्यते रोगात्
 बद्धो मुच्येत बन्धनात् । भीतो भयात् प्रमुच्येत पापान्मुच्येत
 पातकी । पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति देवि ! सत्यं न संशयः । अयुतं
 यो जपेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरि ।। निग्रहानुग्रहे शक्तः स
 भवेत् कल्पपादपः । तस्य क्रोधाद्भवेन्मृत्युः प्रसादे परिपूर्णता ।

एवञ्च तं विजानीयात् समर्थं सर्वकर्मणि । मासि मासि च
 यो लल्लं जपं कुर्याद्विरानने ।। न तस्य ग्रहपीडा स्यान्नापि
 बन्धुवियोजनम् । न चैख्यं क्षयं याति न च सर्पक्षतं क्वचित् ।
 नाग्निचौरभयं वापि न चारण्ये जले भयम् । पर्वतारोहणे
 देवि ! सिंहश्याम्रभयादिके । भूतप्रेतपिशाचानां भयं वा कुल-
 चिद्वेत् । न च वैरिभयं कान्ते । न च दस्युभयं पथि । ज्वरा-
 दीनाञ्च रोगाणां न शरीरे स्थितिः क्वचित् । परलोके भवेत्
 स्वर्गं कथितं वीरवन्दिते ।। चन्द्रसूर्यसमो भूत्वा वसेत् कल्पा-
 युतं दिवि । वाजपेयसहस्रस्य यत् फलं स्याद्विरानने ।। प्रत्यहं
 तत् फलं दुर्गानामजापाद्विरानने ।। पूजाकाले जपेद्यस्तु
 गङ्गातीरे च मानवः । शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सा-
 धकः । प्राजापत्यव्रते यादृक् तथा चान्द्रायणेऽपि वा । एका-
 दस्युपवासेन कोटिलक्ष्येन यादृशम् । चन्द्रसूर्यग्रहे गत्वा
 गङ्गायाञ्च सुरेश्वरि ।। कुरुक्षेत्रे च सर्वस्वदाने यत् फलमी-
 रितम् । प्रयागादिषु तीर्थेषु माघक्षाने च यत् फलम् । शिव-
 रात्रिचतुर्दश्यां शश्वीष्टैव प्रपूजनात् । रथस्थं वामनं दृष्ट्वा क्षेत्रे
 श्रीपुरुषोत्तमे । कामरूपे महामायां कामाख्यायोनिसङ्गले ।
 पूजयित्वा फलं यादृक् दुर्गानाम ततोऽधिकम् । अष्टम्याञ्च
 चतुर्दश्यां नवम्याञ्च महानिशि । श्मशाने च जपं कुर्याच्चा-
 ङ्गालहृदयोपरि । दिगम्बरो निरातङ्गो मुक्तकेशो भवेद्यदि ।
 स सिद्धिं समवाप्नोति देवानामपि दुर्लभाम् । शनिभीमदिने
 देवि ! भवेदिन्दुक्षयो यदि । तत्रायुतं जपेद्यस्तु निरातङ्गो
 महानिशि । स वन्द्यो देवतानाञ्च मुनीन्द्राणाञ्च सुन्दरि ।।
 भीमवारे महादेवि ; यदि स्यादष्टमीतिथिः । विष्वपत्रसह-
 स्रेस्तु तत्र सम्पूज्य पार्वतीम् । बलिं दद्याद्विधानेन जप्त्वा नाम-
 सहस्रकम् । यद्यदिष्टतमं लोके तत्तदाप्नोति निश्चितम् ।

कृष्णाष्टमीसमायुक्तनिशायां स गणो भवेत् । तत्र गत्वा
श्मशाने वै शनिवारे वरानने । पशूनां घातनं कृत्वा योनि-
मुद्रां विधाय च । सर्वपापविनिर्मुक्तः साधकः साधयेच्छिवाम् ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्चैव पार्वति । शतमष्टोत्तरं यस्तु
दुर्गानामजपं चरेत् । स लभेद्वाञ्छितं सर्वमिह लोके परत्र च ।
गङ्गागोदावरोरिवायमुनाजलसन्निधौ । यो जपेत् साधको
भक्त्या सहस्रञ्च तिथिचये । परस्त्रीहरणात् पापं परद्रव्याप-
हारणात् । सर्वं तत् क्षयमाप्नोति महारौरवकारणम् । काम-
रूपे महातीर्थे कामाख्यायोनिमन्निधौ । ह्रस्वमेकं जपेद्यस्तु
निशायां वीरवन्दिते । स च वागीश्वरो भूत्वा परत्र शिवतां
ब्रजेत् । भवानोसन्निधौ यस्तु वाराणस्यां जपं चरेत् । दरिद्रो-
ऽपि धनी भूत्वा शिवलोके महीयते । इति दुर्गानामफलम् ।

अथ दुर्गाशतनामस्तोत्रम् । मुण्डमालातन्त्रे हितं यपटले ।
दुर्गायाः शतनामानि शृणु त्वं भवगेहिनि । दुर्गा भवानी
देवेशी विश्वनाथप्रिया शिवा । घोरदंष्ट्रा करालास्या मुण्ड-
मालाविभूषणा । रुद्राणी तारिणी तारा माहेशी भववल्लभा ।
नारायणी जगद्धात्री महादेवप्रिया जया । विजया च जयाराध्या
शर्वाणी हरवल्लभा । असिता चाणिमा देवी लघिमा गरिमा
तथा । महेशशक्तिर्विश्वेशी गौरी पर्वतनन्दिनी । नित्या च
निष्कलङ्का च निरीहा नित्यनूतना । रक्ता रक्तमुखो वाणी वसु-
युक्ता वसुप्रदा । रामप्रिया रामरता रघुनाथवरप्रदा । राज्ये-
श्वरी राज्यरता कृष्णा कृष्णवरप्रदा । यशोदा राधिका चण्डी
द्रौपदी रुक्मिणी तथा । गुहप्रिया गुहरता गुहवंशविलासिनौ ।
गणेशजननी माता विश्वरूपा च जाङ्गवी । गङ्गा काली च
काशी च भैरवी भुवनेश्वरी । निर्मला च सुगन्धा च दैवकी
देवपूजिता । दक्षजा दक्षिणा दक्षा दक्षयज्ञविनाशिनौ । सु-

शोला सुन्दरी सौम्या मातङ्गी कमला कला । निशुभनाशिनी
 शुभनाशिनी चण्डनाशिनी । धूम्रलोचनसंहर्त्री महिषासुर-
 मर्दिनी । उमा गौरी कराला च कामिनी विश्वमोहिनी ।
 इत्येवं शतनामानि कथितानि वरानने ! । नामस्मरणमात्रेण
 जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यः पठेत् प्रातरुत्थाय स्मृत्वा दुर्गापद-
 द्वयम् । सुच्यते जन्मवन्धेभ्यो नात्र कार्या विचारणा । सन्ध्या-
 काले दिवाभागे निशायां वा निशामुखे । पठित्वा शतनामानि
 मन्त्रसिद्धिं लभेद्भुवम् । अज्ञात्वा स्ववराजञ्च दश विद्या भजेद्
 यदि । तथापि नैव सिद्धिः स्यात् सत्यं सत्यं महेश्वरि ! ।

इति मुण्डमालातन्त्रे दुर्गाशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ दुर्गागीता । तथा सप्तमपटले । नानातन्त्रमतं देवि !
 नानारत्नं प्रकाशितम् । ब्रह्मस्वरूपं विज्ञातुं कः समर्थो मही-
 तले । नानामार्गे प्रधावन्ति पशवो हतबुद्धयः । श्रीदुर्गाचरणा-
 श्लोचं हित्वा यान्ति रसातलम् । सत्यं वच्मि हितं वच्मि
 प्रथं वच्मि पुनः पुनः । न भुक्तिञ्च न मुक्तिञ्च विना दुर्गानिषे-
 वणात् । पार्वत्युवाच । गोलके चैव राधाहं वैकुण्ठे कमला-
 त्तिका । ब्रह्मलोके च सावित्री भारती वाक्स्वरूपिणी ।
 कौलासे पार्वती देवी मिथिलायाञ्च जानकी । द्वारकायां रु-
 क्मिणी च द्रौपदी नागसाह्वये । गायत्री वेदजननी सन्ध्याहञ्च
 द्विजन्मनाम् । योगमध्ये पूषाहञ्च पुष्पे कृष्णाऽपराजिता ।
 पत्रे मालूरपत्रञ्च पीठे योनिस्वरूपिणी । हरिहरात्मिका
 विद्या ब्रह्मविष्णुशिवार्चिता । विश्वालुग्रहेणैव विज्ञेया शङ्कर !
 प्रभो ॥ यत्र कुत्र स्थले नाथ । शक्तिस्तिष्ठति शङ्कर ! । तत्रै-
 वाहं महादेव ! निश्चितं मतमुत्तमम् । शक्तिमार्गं परित्यज्य
 योऽन्यमार्गे हि धावति । करस्यं स मणिं त्यक्त्वा भूतिभारं
 प्रधावति । भूतिभारं भस्मभारम् ॥ इति दुर्गागीता समाप्ता ॥

अथ बलिः ॥ समयाचारतन्त्रे ॥ सर्वासां देवतानाञ्च
बलिदानं शृणुष्व मे । येन कृत्वाशु लभते यथोक्तफलमुत्त-
मम् । नित्यन्तु भोजने काले मूलमन्त्रेण साधकः । कार-
येद्बलिदानञ्च भोजनात् प्रथमं प्रिये । ततश्चानन्तरं
कुर्याद्भोजनं स्थिरमानसः । भोजनानन्तरं देवि ! शुचिस्थः
कृतवान् भवेत् । बलिं समुद्धरेद् यन्नादेकान्ते स्थापयेत्तदा ।
स्थापयित्वा बलिं तत्र विहरेच्च यथासुखम् । उत्तराम्नायेषु
देवेशि ! मातङ्गी या प्रकीर्तिता । तस्या बलिं भोजनान्ते
विनैवाचमने कृते । मूलमन्त्रेण सुभगे । बलिं दद्याद्दिने दिने ।
ततः किञ्चिज्जपं कृत्वा ततश्चाचमनादिकम् । पुनश्च रात्रौ
सर्वेषां बलिं कृत्वा प्रयत्नतः । यथोक्तविधिना कुर्याद् यथोक्त-
फलमाप्नुयात् । बलिश्च द्विविधो देवि ! सात्त्विको राजस-
स्तया । सात्त्विको बलिराख्यातो मांसरक्तादिवर्जितः । राजसी
मांसरक्तादियुक्तः स प्रोच्यते प्रिये ! । गायत्रीतन्त्रे पञ्चमब्रा-
ह्मणपटले । त्रिविधा बलयः प्रोक्ता उत्तमाधममध्यमाः ।
उत्तमश्चोत्तमं दद्यान्मध्यमो मध्यमं तथा । अधमः कथ्यते देवि !
अधमेऽप्यधमा गतिः । दशसंख्यबलिर्यत्र मध्यमस्तेन कथ्यते ।
सात्त्विको उत्तमा पूजा यदि दद्यान्महाबलिम् । अष्टमो-
नवमोसन्धौ दद्याद्यन्नाह्महाबलिम् । शतं सहस्रं लक्षं वा
अयुतं कोटिकोटिशः । शस्यते नृपतिश्रेष्ठः सात्त्विकोपूजने
बलिः । एकेन बलिदानेन चतुर्वर्गमवाप्नुयात् । बहुभिर्बलि-
दानैस्तु परब्रह्ममयो भवेत् । बहुभिर्बलिदानैस्तु जपयन्त्रैस्तु
भूपते । क्रियते सात्त्विकी पूजा सात्त्विकी तेन कथ्यते । दशभिः
पशुभिः पूजा जपयन्त्रैस्तथैव च । या कृता शारदौ पूजा रा-
जसी तेन कीर्तिता । बलिभिः पञ्चभिः पूजा तामसो तेन
कीर्तिता । मत्स्यसूत्रे ॥ साधकास्त्रिविधाः प्रोक्ताः सात्त्विका

राजसास्तथा । तामसाश्च तथा देवि । तेषां वक्ष्यामि लक्ष-
 णम् । सात्त्विकः सात्त्विकैर्युक्तो लक्षणेनैव सुन्दरि । सात्त्विकं
 बलिदानादि नित्यं कुर्यात् प्रयत्नतः । राजसो राजसगुणैर्युक्तः
 सत्यं वरानने । राजसं बलिदानादि सुरेशे । राजसैर्युतः ।
 तामसस्तामसगुणे राजसाद्यैर्युतः प्रिये । न श्रद्धा बलिदानेषु
 पूजनादिषु सुन्दरि । न स्तोत्रपाठहोमेषु नाममात्रेण सा-
 धकः । योगिनीतन्त्रे उत्तरखण्डे सप्तमपटले ॥ विप्राणां क्षीर-
 बलयः शाल्यन्नं वाथ पायसम् । घृतप्लुतं चरुफलं पुष्पं तस्य
 घृतान्वितम् । प्रदद्याच्च गवां क्षीरं दुग्धाभ्यान्तान् निवेदयेत् ।
 शाल्यन्नं वाथ समधु ससरं खण्डमोदकम् । राज्ञां हि पशवः
 शस्ता वैश्यानां व्रीहयस्तथा । क्षौद्रं वृषलजातीनां सर्वेषां
 पशवोऽथवा । निवेदयेत् शोणगण्डं मानुषं वा लुलापकम् ।
 वराहं वाथ कृगलं चामरं वारुणं तथा । मेषञ्चाथ वराहञ्च
 गोधिकाञ्च निवेदयेत् ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ लुलापञ्च तथा खड्गं चा-
 मरञ्च वराहकम् । कच्छपं शलकीं गोधां मानुषं तदनन्तरम् ।
 न दद्याद्वाह्मणो मय्यं मानुषञ्च तथा रुक्म् । त्रैपक्षिकाल
 विवर्णान् मानुषान्न कृशानपि । संवत्सरात् परं छागं यावत्
 स्यात् त्रिहायणम् । वराहदन्तसदृशविषाणाभ्यां सुशोभनम् ।
 मदगन्धसमायुक्तं रोमराजिविराजितम् । कृष्णं तारणकञ्चैव
 हस्तौ हादशवार्षिकम् ॥ जातिभेदे वर्णविशेषमाह तत्रैव ॥ खे-
 तञ्च कृगलञ्चैव ब्राह्मणस्य विशिष्यते । रक्तं खेतं क्षत्रियस्य
 वैश्यस्य गौरमेव च । नानावर्णं हि शूद्रस्य सर्वेषामञ्जनप्रभम् ।
 योगिनीतन्त्रे ॥ पशूनाञ्चैव षष्ठासात् परतश्च बलिर्भवेत् ।
 कृगलः कृष्णः खेतो वा द्विवर्षात्परतो यदि । तथा चाश्वं
 शृगञ्चैव कृगञ्च पर्वतीयकम् । मूषिकञ्च करालञ्च क्षुद्रमा-
 र्जारमेव च ॥ वर्च्यमपि तत्रैव ॥ काकोलं कलविङ्गञ्च राज-

हंसञ्च शारिकम् । शुक्रं गृध्रञ्च काकोलं मयूरं चित्रकं
तथा । अश्वञ्च वेणुपृष्ठञ्च कृष्णपारावतञ्च यत् । वृहत्कपोतक-
ञ्चैव खञ्जरीटं तथैव च । वक्त्रैव बलाकञ्च प्रयत्नेन विवर्ज-
येत् ॥ बल्यन्तरमाह तत्रैव ॥ रश्मा जाती वीजपूरं सुगन्धि-
परिमिश्रितम् । मिश्रीकृत्य बलिं दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः ।
प्रयोगे बलिमन्त्रोऽयं प्रयोगान् धारयेद् यदि । अर्द्धरात्रे बलिं
दद्यान्नित्यं देवि ! चतुष्पथे । परसैन्यग्रहाविष्टरोगकृत्यानिवा-
रणम् । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य उग्रतारे ततः परम् । विकटदंष्ट्रं पर-
पक्षं मोहयद्वयमुच्चरेत् । खादयद्वन्मुच्चार्य पचद्वन् वदेत् पुनः ।
ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनीचक्रे तान् दारयद् फट् स्वाहा ।
सर्वविद्यामाकर्षयाकर्षय छेदय छेदय हन हन कपाले गृह्ण
गृह्ण स्वाहेति ॥ अनेनैव च देवेशि ! बलिं दद्यान्महेश्वरि ! ।
वृहन्नोलतन्त्रे षष्ठपटले ॥ ततः शत्रुबलिं राजा दद्यात् क्षीरेण
निर्मितम् । इयं छिन्द्यात् क्रोधदृष्ट्या प्रहारजनकेन च । क्रो-
धेन च सक्तदेवि ! सत्यं सत्यं महेश्वरि ! । प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा
वै शत्रुनाम्ना महेश्वरि ! । शत्रुक्षयो महेशानि ! भवत्येव न
संशयः । शत्रुमधिकृत्य विशेषस्तु मत्स्यसूक्ते ॥ मन्त्रेणानेन
देवेशि ! प्रकुर्यात् पूर्वनिर्मितम् । कात्यायन्यम्बिके ! तारं
हनयुग्मं दहद्वयम् । पचद्वन् मथद्वन् प्रथमद्वन्मेव च । माया
इयं वशञ्चैव चण्डि ! चण्डि ! च तारकम् । नारसिंहद्वयं पश्चात्
मन्दरञ्च सतारकम् । चामुण्डे ! प्रणवञ्चैव भक्षयेति दहद्वयम् ।
मथद्वयं पचद्वन् छिन्धियुग्मं ततो न्यसेत् । ॐ जयद्वितयञ्चैव
स्फोटयद्वितयं तथा । कर्त्तयद्वितयस्यान्ते ततो दह समीरयेत् ।
मम शत्रुं समुत्तार्य ततो वीजं समुच्चरेत् । दाहयदाहयद्वन्
ततश्छेदय मोहय । छेदयद्वितयस्यान्ते विज्ञेय ततः परम् ।
मम शत्रुपदस्यान्ते मन्त्रमुच्चारयेत्ततः । तारं हनयुगस्यान्ते

भक्ष्यद्वितयं तथा । चासयनाशयद्वन्द्वमाविश्य ततः परम् ।
 आरोहयस्फोटयान्ते उच्चाटयशुगं ततः । उन्मत्तययुगस्यान्ते
 द्वयं मन्त्रमुदीरयेत् । कृष्णपुष्पं समादाय कुर्यान्निर्मञ्चनं स्व-
 यम् । कलत्राणाञ्च देवेशि ! मन्त्रेणानेन दापयेत् । विलयं
 यान्तु ते सर्वे ये मां हिंसन्ति जन्तवः । मृत्युरोगभयक्षेपाः
 पतन्तु शत्रुमस्तके । विमुखं क्रोधदृष्टिञ्च पातयेच्छत्रुमस्तके ।
 कवचद्वन्द्वमुच्चार्य स्वाहाद्वन्द्वमुदीरयेत् ।

छागादीनामुत्तरोत्तरं प्राशस्यमुक्तं मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे ॥
 चामराणाञ्च दशकैश्छागलैकं विशिष्यते । दशभिश्छागलैर्देव !
 कूर्म एकः प्रशस्यते । कूर्मस्य च शतेनापि शशकैको विशि-
 ष्यते । शशकस्य शतेनापि खगात्ररुधिरं श्रुतम् । यावत्
 पद्मदलं पूर्णं तावन्मात्रं महेश्वरि ! । ततः शतपुटानाञ्च
 शललैको विशिष्यते । शललस्य सहस्रेण वराहस्तु विशि-
 ष्यते । हे सहस्रे वराहस्य महिषः श्रेष्ठ उच्यते । हे सहस्रे
 लुलापस्य खड्ग एको विशिष्यते । खड्गानान्तु सहस्रेण मानुषे
 चातुलं फलम् । हे सहस्रे मनुष्यस्य शोणतुण्डः प्रशस्यते ।
 हे शते शोणतुण्डस्य श्वेतग्रीवः प्रशस्यते । श्वेतग्रीवशतेनापि
 गोधिका तूत्तमा मता । गोधिकानां शतेनापि नरस्य च
 कुमारकः । दशैणस्य सप्ता गोधा गोधाया दशपार्षतम् ।
 पार्षतस्य दशानान्तु मेष एको विशिष्यते । मेषस्य दशमध्ये तु
 छागलश्च विशिष्यते । दशानां छागलानाञ्च कृष्णवर्णो विशि-
 ष्यते । तिलाक्षतेन पुष्पेण चाष्टाष्टौ च विशिष्यते । छागस्य
 कृष्णवर्णस्य श्वेत एको विशिष्यते । श्वेतवर्णस्य दशकं मुकुटं
 यदि मस्तके । प्रशस्तं तं विजानीयादक्षतञ्च विचारयेत् । शतं
 तस्मान्मुलापैकं तच्छतं खड्गमेव च । शतानामथ खड्गानां
 मानुषश्च विशिष्यते । दशकञ्च नराणाञ्च वराहैको विशिष्यते ।

वराहस्य फलं देवि ! सैरिभैस्तोषयेच्छिवाम् । सैरिभस्य शता-
नाञ्च गोधाह्वयी विशिष्यते । मोधिकानां शतानाञ्च स्वगात्र-
रुधिरं तथा । तत्समं शोणतुण्डञ्च श्वेतग्रीवं तथैव च । अर्द्ध-
रात्री तु कुष्माण्डं पर्वतीयं विना प्रिये ! । लुलापदाने यत्
प्रीक्तं कृत्वा दत्त्वा च यत् फलम् । खड्गञ्च दशवर्षीयं लुलापं
वत्सरात्परम् । प्रशस्तं श्वेतवर्णन्तु खड्गं श्वेतं विवर्जयेत् । सैरि-
भञ्च श्वेतकृष्णं मनुष्यं श्यामसुन्दरम् । द्वादशाब्दात् परञ्चैव
यावदयावत् स पुष्कलम् । तावदेव महेशानि ! किञ्चिन्नाद्या-
न्महामुनिः । पत्त्रिणः कच्छपा ग्राहाः स्थलजा जलजा अपि ॥
कामना तु ॥ अथ दीर्घायुरारोग्यविजयावच्छिन्नविपुलभोग-
प्राप्तिपूर्वक-ध्वजमालाकुलविमानवरारोहणावच्छिन्नब्रह्मलोक-
प्राप्तिकामो भगवत्यै ऋगलदशकं दद्यात् ॥ खड्गाभिमन्त्रणं
कुर्यात्तेन खड्गेन क्लेदयेत् । पूजयेद्भक्तपुष्पेण गन्धेन चन्दनेन
च । तारं मायायुगं कालियुग्मं स्थाद्विकटं न्यसेत् । दंष्ट्रा-
करालि नियोषफेत्कारिणि च खादय । अश्वजं पिव पिव तूर्णं
रुधिरं नारसिंहके । द्वितीयं किरिकिरिदन्धं कालियुग्मं
ततः परम् । व्रजेस्वरिपदं डेऽन्तं वसखड्गधनुः स्मृतम् । रुधिरे
शर्करां दद्यात् पानीयञ्च ससैन्यवम् । गन्धं सुकुसुमं दद्या-
द्दर्भयुग्मन्तु निलिपेत् ॥ त्रिपदं त्रिशूलम् ॥ ओं कालि ! कालि !
महाकालि ! कालिके ! पापनाशिनि ! । शोणितञ्च बलिं गृह्ण
वरदे ! वामलोचने ! । तारं तारं ततो मायां ह्रां ह्रै ह्रीञ्च
ठह्वयम् । तारं स्थाणुयुगं दद्यात् शेषाङ्गञ्च समुद्धरेत् । खट्वाङ्गं
नृमुण्डञ्चेति त्रिशूलधारिणीत्यपि । विकटदंष्ट्रे करालास्ये
कपालमालिनि तत्परं ह्रां ह्रां गृह्ण गृह्ण साष्टहासिनिपदस्थान्ते
मन्त्रञ्च विकटह्वयम् । शिवं कान्तं ततो वान्तं कं कं काव्यै
नमः स्थितिः । एष मातृवलिः स्वाहा अनेनामन्त्र्य दापयेत् ।

तारं मायास्फुरद्वन्द्वं हनयुगञ्च ठद्वयम् । इन्धनमगुरुद्वन्द्वं गृह्ण
गृह्ण च ठद्वयम् । धराभिमन्त्रणं कृत्वा त्रिवर्गं परिकल्पयेत् ।
पूतनां कौशिकीञ्चैत्र कालिकाञ्च यथाक्रमात् ॥

योगिनीतन्त्रे खड्गपूजादौ विशेषो यथा ॥ मायावीजं
समुच्चार्य कालिकालौति सुन्दरि ।। व्रजेश्वरिपदं पश्चात्
लौहदण्डाय ते नरः । इति सम्पूज्य देवेशि ! शक्तिं
सम्पूजयेत्ततः । हुं हुं वागोश्वरीब्रह्माभ्यां नमः । हुं लक्ष्मी-
नारायणाभ्याञ्च पदं ब्रूयाद्देवि ! चण्डे ! महेश्वरि !। नम
उमामहेश्वराभ्यां नम इत्यादिनार्चयेत् । प्रणवञ्च ततः पश्चात्
कार्तिकेश्वराभ्यां नमः । इत्यनेनैव मन्त्रेण शक्तिं प्रयोजये-
न्नरः । इति खड्गं प्रपूज्यैव विशेषेण प्रपूजयेत् । खड्गाय खर-
नाशाय शक्तिकार्यार्थितत्परः ।। पशुच्छेद्यस्त्वया शीघ्रं खड्ग-
नाथ । नमोऽस्तु ते । अनेनैव च मन्त्रेण प्रणमेत् खड्गमुत्तमम् ।
गृहीत्वा तान्त्रपात्रञ्च जलपूर्णमुदङ्मुखः । हर्षकामो महादेव्यै
पशोश्च प्रोक्षणञ्चरेत् । प्रोक्षणञ्च पशोः कृत्वा चीत्सृजेद्देवता-
धिया । यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ॥ मत्स्य-
सूक्ते ॥ चन्द्रहासेन खड्गेन केदयेदुत्तमं बलिम् । चन्द्रहास-
श्चतुस्तालः करवोरदलाकृतिः ॥ मध्यमम् ॥ पञ्चविंशाङ्गुलं मानं
प्रस्तारं सार्धैत्राङ्गुलम् । एकधारेण खड्गेन यः प्राणी बध्यते
किल । न तत् फलमवाप्नोति छेत्ता च नरकं व्रजेत् ॥ एकधार-
प्रतिप्रसवस्तु तत्रैव ॥ पद्मपत्रदलाकारमेकधारं प्रशस्यते ।
दण्डखड्गस्त्रिवक्त्रस्तु प्रशस्तो बलिकर्मणि । सक्तत् प्रहारमात्रेण
बलिः स्यादुत्तरामुखः । स्वयं पूर्वमुखो भूत्वा केदयेदप्रमादतः ।
बलिं पूर्वमुखं कृत्वा स्वयं स्यादुत्तरामुखः । केदयेत् तीक्ष्ण-
खड्गेन प्रहारेण सक्तदूषुधः ॥ योगिनीतन्त्रे ॥ छिन्ने च पतिते
तस्मिन् वामभागे च निन्दितम् । दैन्यं मध्ये च पतितं देवी-

च्छेदं स्मरेद्बुधः ॥ तत्रायश्चित्तमपि तत्रैव ॥ ततः कुण्डान्तिके
गत्वा आहुतिर्दशपञ्चभिः । तेनैवमुत्सृजेद्दोषं बलिं लक्षेत् स-
लक्षणम् ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ शिरश्छित्त्वा बलिं दद्यादजस्रस्य रक्त-
मेव च । मन्त्रेणानेन देवेशि ! प्रकुर्यात् पूर्वनिर्मितम् ॥ अथ
रुधिरपात्रम् ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ राजतं मृगमयं कांस्यं रैत्यं काष्ठ-
मयं तथा । प्रशस्तं रुधिरालोके दारुलौहमयं त्यजेत् । शङ्ख-
च्चाश्मयञ्चैव अर्पवित्तं विवर्जयेत् । स्वस्तिकायाः सुप्रशस्तं
तथा पद्मदलस्य च । अर्घ्यतोयप्रदानेन नरदानफलं लभेत् ।
कण्ठरक्तं न दद्यात् कृगलस्य विशिष्यते । पद्मपुष्पदलस्यान्ते
तथा मध्यगतस्य च । तावद्दलप्रमाणं स्थान्मातृवदनुपूर्वकम् ॥
अथ रुधिरग्रहणप्रकारस्तत्रैव ॥ कियन्मांसं सरुधिरं तथा
खड्गगतस्य च । रुधिरं मस्तकञ्चैव पशोश्चापि विशेषतः ।
विपरीतं पशोर्मस्ते पक्षिमस्ते च दापयेत् । कच्छपे चामरे
भासे यः प्रदीपन्तु ज्वालयेत् । स दुर्गतिमवाप्नोति न चिरं
महेश्वरि ! । दर्भेणापि द्विधा कृत्वा पञ्चधा रुधिरस्य । पूर्व-
भागाद्वितीयां दद्यान्मध्ये च तदनन्तरम् । वामहस्ततले कृत्वा
मन्त्रेणानेन मन्त्रयेत् । कालि ! कालि ! महाकालि ! कालिके !
पापनाशिनि ! । शोणितं तप्तकं देवदेवि ! गृह्ण नमोऽस्तु ते ।
कालि कालीति मन्त्रेण चण्डिकायै निवेदयेत् । चरकीञ्च
विदारौञ्च पूतनां पापराक्षसीम् । कौशिकीं पुरतः कृत्वा
देव्यै रक्तं प्रदापयेत् । कौशिक्याद्यामनुं वक्ष्ये धर्मकामार्थ-
सिद्धिदम् । तारं वा कमला माया कमला कमलामिति ।
कामकला स्फे स्फे खिरञ्चैव द्विदन्तं समुदाहृतम् । तेषामा-
द्यन्तरेणैव विन्दुयुक्तेन वा पुनः । एतत् सर्वप्रयत्नेन मन्त्रं वक्ष्यामि
शङ्करि ! । तारं व्योम ततो मायां यश्च पद्ममिदं पठेत् । ओं
स्विनेत्रे ! विकरालास्ये ! अस्त्रमालाविभूषिते ! । सर्वासुर-

कृतान्ते ! त्वं खड्गखट्वाङ्गशूलधृक् । वक्ष्ये महामनुं देवि !
 तारं क्रौं क्रौमुदीरयेत् । कौशिकाय गृह्ण गृह्ण एषान्ते च
 बलिद्वयम् । अपरं तारमाया च प्रस्फुरद्वितयं दह । चलद्वयं
 कुडुच्चैव कुडुच्चैव गुलुद्वयम् । पुनश्च मारय द्बन्धं बुधैर्यत्परिको-
 र्त्तितम् । विशाखाद्यमनुं वक्ष्य येन उत्पद्यते शुभम् । तारं
 ततो विकटदंष्ट्रे डेऽन्तं हन हन द्वयम् । वै विशिखाय स्वाहेति
 बलिमन्त्र उदाहृतः ॥ योगिनौतन्त्रे ॥ ततो रुधिरमादाय वटु-
 कादोन् समर्चयेत् । नैऋत्याञ्च महेशानि ! क्रूरं वटुकभैरवम् ।
 वायव्यां हुं यां योगिनीभ्यो नम इत्यादिनार्चयेत् । ऐशान्याञ्च
 महेशानि ! हुं ह्रौं क्षेत्रपालाय नम इत्यादिना देवि ! गन्ध-
 पुष्पैः समर्चयेत् । आग्नेय्यां हुं गौं गणेशाय नम इत्यादिना-
 र्चयेत् । गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य बलिदानं समर्पयेत् ॥ मत्स्यसूक्ते ॥
 भूगतं रुधिरं यत्तु भुञ्जन्ति परिचारिकाः । यावच्च तावदेवेशि !
 लेपनं परिवर्जयेत् ॥ इति बलिदानविधिः ॥

अथ होमः ॥ शारदातिलके पञ्चमपटले ॥ वीक्षणं मूल-
 मन्त्रेण शरेण प्रोक्षणं मतम् । तेनैव ताडनं दर्भैर्वर्ष्मणाभ्युक्षणं
 स्मृतम् । अस्त्रेण खननोद्धारौ हृन्मन्त्रेण प्रपूरणम् । समौक-
 रणमन्त्रेण सेचनं वर्ष्मणा मतम् । कुट्टनं हेतिमन्त्रेण मर्म-
 मन्त्रेण मार्जनम् । विलेपनं कलारूपकल्पनं तदनन्तरम् ।
 त्रिसूत्रीकरणं पश्चात् हृदयेनार्चनं मतम् । अस्त्रेण वज्रीकरणं
 हृन्मन्त्रेण कुशैः शुभैः । चतुष्पथं तन्मन्त्रेण तनुयादक्षपाटनम् ।
 यागे कुण्डानि संस्कुर्व्यात् संस्कारैरेभिरीरितैः । शरेण फड़िति
 मन्त्रेण उत्तानेन तु हस्तेन प्रोक्षयेदिति सूत्रदर्शनाद्वस्तात्रेण
 प्रोक्षणं तेनैव फड़ितिमन्त्रेणैव । वर्ष्मणा हुमितिमन्त्रेण मुष्टि-
 बध्नेन हस्तेन सेचनाभ्युक्षणमिति । हेतिमन्त्रेणास्त्रमन्त्रेण
 वर्ष्ममन्त्रेणेति चतुर्षु सम्बध्यते । तदुक्तं सोमशन्भुना । सम्भा-

जैनं समालेपं कलारूपप्रकल्पनम् । त्रिसूत्रीपरिधानञ्च वर्मणा-
भ्यर्चनं हृदयेति । कलारूपप्रकल्पनमिति चन्द्रसूर्याग्निकलाक-
ल्पनमिति त्रिसूत्रीकरणं इति सूत्रत्रयेण वेष्टनम् । वज्रीकरण-
मिति वज्रवददृढीकरणमिति । कुशैरिति प्रागुदग्रगैः । मध्ये
चतुष्पथरूपं भागं कृत्वा आवसथ्यादिकं भावयेत् । तदुक्तं राघ-
वभट्टहृतेन । आवसथ्यं मध्यभागे प्राच्यां सत्यन्तु पश्चिमे । आह-
वनौयस्ततोऽन्वाहाय्यं दक्षिणदेशतः । गार्हपत्यञ्च मन्त्रज्ञो भा-
वयेदुत्तरक्रमादिति । मन्त्रेण कवचमन्त्रेण हुमित्यनेन अक्षपा-
टनमन्त्रेणोद्घाटनम् । एभिः संस्कारैरौचितैर्मूलमन्त्रेण वीक्ष-
णमित्यादिकथितैः कुण्डानि संस्कार्यादित्यन्वयः । अशक्तान्
प्रत्याह । अथवा तानि संस्कार्याच्चतुर्भिर्वीक्षणैर्वादिभिः । वीक्ष-
णाभ्युक्षणात्तैश्च चतुर्भिरित्यर्थः । तिस्रस्तिस्रो लिखेद्रेखा हृदा
प्रागुदग्रग्राः । प्रागग्र्याणां स्मृता देवा मुकुन्देशपुरन्दराः ।
रेखानामुदग्रग्राणां ब्रह्मवैवस्वतेन्दवः ॥ तिस्रस्तिस्र इति वीक्षया
प्रागग्र्यास्तिस्र उदग्रग्रास्तिस्र इति लभ्यते । ततश्चादौ प्रागग्र्याणां
लिखनं पश्चादुदग्रग्राणां लिखनं सर्वास्तु प्रादेशप्रमाणा इति
साम्प्रदायिकाः । तदुक्तं राघवभट्टहृतसौत्रामणीतन्त्रे ॥ प्राची-
स्थमुत्तरस्थञ्च पश्चिमारम्भमालिखेत् । तिस्रस्तिस्रो लिखित्वैवं
प्रोक्षयेद्वाग्भवेन चेति । अथवा षट्कोणवृत्तं त्रिकोणं तत्र
संलिखेत् । सर्वाण्यभ्युक्ष्य तारिण योगपीठमथार्चयेत् । अत्र तु
आधारशक्तौल्यादिज्ञानात्मान्तं सम्पूज्य वागीश्वरयोर्योगपी-
ठाय नम इति योगपीठं पूजयेत् । वागीश्वरीमृतुस्नातां नैले-
न्दौवरसन्निभाम् । वागीश्वरेण संयुक्तामुपचारैः प्रपूजयेत् ।
शक्तिमन्त्रेण वागीशीं साध्यमन्त्रेण वागीशं पूजयेत् । तदुक्तं
गणेशविमर्षण्याम् ॥ शक्तिमन्त्रेण वागीशीं वागीशं साध्य-
मन्त्रत इति ॥ शारदायाम् ॥ सूर्यकान्तादिसम्भूतं यद्वा ओ-

त्रियगैहजम् । आनीय चाग्निं पात्रेण क्रव्यादांशं परित्यजेत् ।
 सूर्यकान्तादीत्यादिशब्दादरणिजन्य इति लभ्यते । तदुक्तं वशिष्ठ-
 संहितायाम् । जातं मार्तण्डकान्ताद्भुतवह्नमरणेः ओत्रियागारजं
 वा आहिताग्नेर्गृहादपीति । पात्रेण कांस्यपात्रेण पात्रान्तर-
 णापिहितेन । तदुक्तं राघवभट्टधृतेन यथा । पात्रान्तरेणापि-
 हिते तास्रपात्रादिके शुभे । अग्निप्रणयनं कुर्यात् शरावे ता-
 दृशेऽपि च । यत्तु स्मृतिसारि ॥ शरावे भिन्नपात्रे च कपाले
 चोन्मुखेऽपि वा । नाग्निप्रणयनं कुर्यात् व्याधिं हानिं भया-
 वहमिति । तस्य मुखमुख्यपात्रसम्भवे शरावी न ग्राह्य इति
 तात्पर्यम् । क्रव्यादांशं परित्यजेत् अस्त्रमन्त्रेणेति ज्ञेयम् । तदुक्तं
 राघवभट्टधृतेन ॥ अस्त्रेणुग्निं समाधाय कवचेन पिधाय
 तु । क्रव्यादांशन्तु चास्त्रेण नैर्ऋत्यां सन्त्यजेत् प्रिये ! । अन्यत्र
 तु वज्रिवीजेन क्रव्यादांशत्यागः । तदुक्तं वज्रिवीजेन मन्त्री क्र-
 व्यादांशं त्यजेत्तदनुच मनुना शोधयेदस्त्रकेण इति । मन्त्र-
 मुक्तावस्थान्तु विशेषः । आनीयास्त्रेण नैर्ऋत्ये क्रव्यादांशं
 परित्यजेत् । देवांशं मूलमन्त्रेण स्थापयेत् पुरतः सुधीरिति ।
 संस्क्रुत्यात्तं यथा न्यायं देशिको वोज्ञणादिभिः । औदर्य-
 वैन्दवाग्निभ्यां भीमस्यैकं स्मरन् वसोः । योजयेद्वज्रिवीजेन
 चैतन्यं पावके तदा । औदर्येति विन्दुः प्रसिद्धः परमात्म-
 स्वरूपस्तस्याग्नोषोमरूपत्वात्तयोर्वज्रिवैन्दव इति । अन्ये तु
 विन्दुर्भूमध्यं तद्भवो वैन्दवः । वसोरग्ने भीमस्य पार्थिवस्य
 एकमेकं स्मरन् देवांशं नियोजयेत् कुण्डादिषु निदध्यादि-
 त्यन्वयः । निधानप्रकारमाह ॥ तारिण मन्त्रित मन्त्री धेनु-
 मुद्रासृतीकृतम् । अस्त्रेण रक्षितं पश्चात्तनुत्रेणावगुण्ठनम् ।
 अर्चितं त्रिः परिभ्राम्य कुण्डस्योपरि देशिकः । प्रदक्षिणं
 तदा तारमन्त्रोच्चारणपूर्वकः । आत्मनोऽभिमुखं वज्रिः

जानुस्यष्टमहीतलः । शिवबीजधिया देव्या योनाविनं विनि-
क्षिपेत् । एनमग्निम् । पञ्चादेवस्य देव्याश्च दद्यादाचमनीय-
कम् । ज्वालयेन्मनुनानेन तमग्निमथ देशिकः । चित्पिङ्गल-
हनदहपचयुग्ममुदौर्यं च । सर्वाज्ञाज्ञापय स्वाहामन्त्रोऽयं
प्रागुदीरितः । ज्वालनेन विशेषो यथा राघवभट्टे । जुहुयुश्च
हुताग्निश्च पाणिसूर्पसुवादिभिः । न कुर्यादग्निधमनं न कु-
र्यादव्यजनादिना । मुखे नैव धमेदग्निं मुखदोषो हि जायते ।
नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तत् ॥ अग्निप्रणाम-
मन्त्रस्तु । अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् । सुवर्ण-
वर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् । उपतिष्ठेत् विधिवन्मनु-
नानेन पावकम् । विन्यसेदात्मनो देहे मन्त्रैर्जिह्वां हविर्भुजः ।
लिङ्गपायुशिरोवक्त्रघ्राणनेत्रेषु सर्वतः । वङ्गौराघींशसंयुक्ताः
सादियान्ताः सविन्दवः । वर्णमन्त्राः समुद्दिष्टा जिह्वानां सप्त
देशिकैः ॥ वङ्गोरेफः । इरो यकारः । अघींश उकारः । एतद्युक्ताः
सादियान्ताः सकारादियकारान्ताः वैपरीत्येनैते वर्णाः सविन्दवः
सप्त जिह्वानां सप्त विन्दवो मन्त्राः समुद्दिष्टाः कथिता देशिकै-
रित्यर्थः । सत्त्वादिगुणभेदेन सप्तजिह्वाभेदमाह । जिह्वास्ता-
स्त्रिविधाः प्रोक्ता गुणभेदेन कर्मसु । हिरण्या गगना रक्ता
कृष्णान्या सुप्रभा मता । बहुरूपातिरक्ता च सात्त्विक्यो योग-
कर्मसु । परागाभा सुवर्णान्या तृतीया भद्रलोहिता । लोहिता-
नन्तरं श्वेता धूमिनो च करालिका । राजस्यो रजसा वङ्गे-
विहिताः काम्यकर्मसु । विश्वभूर्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा
मनोजवा । लोहितान्या करालाख्या काली तामस्य ईरिताः ।
एताः सप्त नियुज्यन्ते क्रूरकर्मसु मन्त्रिभिः ॥ इति जिह्वाभेद-
कथनम् । जिह्वानां रूपतदधिष्ठातृदेवताञ्चाह । स्वस्वनाम
समाभाः स्युर्जिह्वाः कल्याणरेतसः । अमर्त्यपितृगन्धर्वयक्ष-

नागपिशाचकाः । राक्षसः सप्तजिह्वानामीरिताश्चाधिदेवताः ।
 अमर्त्यो देवः । जिह्वाविशेषे द्रव्यविशेषहोमो राघवभट्टादावनु-
 सन्धेयः । वङ्गेरुमनुं न्यस्येत्तनावुक्तेन वर्त्मना । सहस्रार्चिः
 स्वस्तिपूर्णं उत्तिष्ठ पुरुषः पुनः । धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर-
 इति क्रमात् । षडङ्गमनवः प्रोक्ता जातिभिः सह संयुताः ।
 सहस्रार्चिरादीनां चतुर्थ्यन्तत्वं सम्प्रदानात् । प्रयोगस्तु । ओं
 सहस्रार्चिषे हृदयाय नम इत्यादि ज्ञेयम् । मूर्त्तीरष्टौ तनौ
 न्यस्येद्देशिको जातवेदसः । मूर्ध्नां पार्श्वकव्यन्मुकटिपार्श्वसंके-
 पुनः । प्रदक्षिणवशाच्चस्येदुच्यन्ते ता यथाक्रमात् । जातवेदाः
 सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः । अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वान-
 नरादयः । कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः । तारा-
 ग्नये पदाद्याः स्युर्न्यन्ता वङ्गिमूर्त्तयः । तारः प्रणवः । अग्नये
 इति स्वरूपं तेनान्यन्तेन ओं अग्नये इति पदमादौ येषामिति
 विग्रहः । प्रयोगे तु मूर्द्ध्नि ओं अग्नये जातवेदसे नम इत्या-
 द्यूहम् । आसनं कल्पयित्वाग्नेर्मूर्त्तिं तस्य विचिन्तयेत् । इष्ट-
 शक्तिं स्वस्तिकाभौतिमुच्चेद्वेदीर्घेर्दोभिर्धारयन्तं जवाभम् । हेम-
 कल्पं पद्मरागं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वङ्गिं बद्धमौलिं जटाभिः । परि-
 पिञ्चेत्तस्तोयैर्विशुद्धैर्मैखलोपरि । दर्भैरगर्भैर्मध्यस्थमेखलायां
 परिस्तरेत् । निक्षिपेद्विष्णुं परिधीन् प्राचीवर्जं गुरुत्तमः ।
 प्राचीवर्जं दिक्षु गुरुत्तमः परिधीन्निक्षिपेदित्यन्वयः । परि-
 धयस्तु कात्यायनेनोक्ता यथा । परिधीन् परिदधत्यार्द्रान् एक-
 वृक्षौयान् बाहुमात्रान् पलाशवैकङ्कतवैल्बानिति । प्रादक्षिण्येन
 सम्पूज्यास्तेषु ब्रह्मादिमूर्त्तयः । ध्यायन् वङ्गिं यजेन्मध्ये गन्धा-
 द्यैर्मनुनामुना । वैश्वानरजातवेदः पदे पश्चादिहावह । लोहि-
 ताक्षपदस्थान्ते सर्वकर्माणि साधय । वङ्गिजायावधिः प्रोक्तो
 मन्त्रः पावकवल्लभः । एतत् पूजनमष्टमूर्त्तिसप्तजिह्वापूजनान्तरं

कार्यम् । यदाह मत्स्यसूक्ते दशमपटले । अथाग्नियजनं वक्ष्ये
 सर्वयज्ञेषु भूतिदम् । आदौ समीरणं कृत्वा पश्चात् पूजां समा-
 चरेत् । आसनं पूजयित्वा तु गृहीत्वा रक्तपुष्पकम् । पात्रान्तरस्थं
 कुसुमं ध्यायेद्देवं हुताशनम् ॥ ध्यानन्तु शारदीयसमानम् ।
 यजेत् पूर्वादिपत्रेषु । हं जातवेदसे नमः, हं हुताशनाय नमः ।
 हं सुवर्णवर्णाय नमः । हं हिरण्याख्याय नमः । हं सुसिद्धाय नमः ।
 हं हिरण्याय नमः । हं सर्वतोमुखाय नमः । पूर्वादिपत्रेषु ।
 हिरण्यवर्णं प्रथमं वक्त्रेर्जिह्वां महाद्युतिम् । वराभयकरां वन्दे
 हिरण्याख्यां सुसिद्धये । ओं ह्यां हिरण्यायै नमः । कनकां
 द्विभुजां शुक्लां हस्ताभ्यां दर्भसञ्चयान् । कमण्डलुञ्च विभ्राणां
 नमः साधकसिद्धिदाम् । ओं ह्यां कनकायै नमः स्वाहा । उद्य-
 दिन्दुनिभं वर्णान् चतुर्भिर्भुजपल्लवैः । शङ्खचक्राभयवरान् दधतीं
 प्रणमाम्यहम् । ओं रक्तायै नमः स्वाहा । सुप्रभा पाण्डरा
 श्वेतकराभ्याञ्च कृताञ्जलिः । पद्मासनस्था नौ शेषरसना मां
 प्रसीदतु । सुप्रभायै नमः स्वाहा । ओं बहुरूपायै नमः
 स्वाहा । नीलोत्पलनिभे ! देवि ! वक्त्रिवर्णे ! सुरार्चिते ! ।
 जवारूपधरे ! नित्यमितिरूपे प्रसीद माम् ॥ ओं ह्यं ह्यं अभि-
 रूपायै नमः स्वाहा । यद्वा । विरेफावन्तिमौ वर्गौ रेफः षष्ठः
 स्वरस्थितौ । इन्दुविन्दुशिखायुक्तौ जिह्वावीजान्यनुक्रमात् । ७ ।
 ओं चित्पिङ्गलहनहनदहदहपचपचसर्वाज्ञाज्ञापय स्वाहा ।
 इति मन्त्रेण च पुनरग्निं सम्पूजयेत् सुधौः । शापचारे नम-
 स्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन ! । गवान्तक ! सुरश्रेष्ठ ! शान्तिं
 कुरु नमोऽस्तु ते ॥ इति स्वागतम् ॥ १ ॥ नमस्ते भगवन् देव !
 आपो नारायणात्मक ! । सर्वलोकहितार्थाय पाद्यञ्च प्रतिगृह्य
 ताम् ॥ इति पाद्यम् ॥ २ ॥ नारायणपरं नाम ज्योतीरूप !
 सनातन ! । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं विश्वरूप ! नमोऽस्तु ते ॥

इत्यर्थम् ॥ ३ ॥ जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा ।
 तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ॥ इत्याचमनीयम् ॥ ४ ॥
 धनञ्जय । नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन ! । मधुपर्कं प्रयच्छामि
 गृहाण परमेश्वर ! ॥ इति मधुपर्कः ॥ ५ ॥ त्रैगुण्यविषयाधान
 विधारूप परात्पर ! । त्रैलोक्यस्थितिसंहते वीतिहोत्राय ते
 नमः ॥ इति पुनराचमनीयम् ॥ ६ ॥ जवासिन्दूरमङ्गाशं सर्व-
 पापप्रणाशनम् । स्नानीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये ॥
 इति स्नानीयम् ॥ ७ ॥ हुताशन ! महाबाहो ! देवदेव सनातन ! ।
 वसनन्ते प्रयच्छामि देहि मे परमं पदम् ॥ इति वस्त्रम् ॥ ८ ॥
 ज्योतिषां ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत ! । मया दत्तमलङ्का-
 रमङ्गरु नमोऽस्तु ते ॥ इत्यलङ्कारः ॥ ९ ॥ देवौ देवा मुदं यान्ति
 यस्य सत्यक् समागमात् । सर्वदोषोपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रति-
 गृह्यताम् ॥ इति गन्धः ॥ १० ॥ त्वं विष्णुस्त्वं हि ब्रह्मा च
 ज्योतिषां पतिरीश्वरः । गृहाण पुष्पं देवेश ! मानुरूपं जगद्-
 गुरो ! ॥ इति पुष्पम् ॥ ११ ॥ देवतानां पितृणाञ्च सुखमेकं सना-
 तनम् । धूपोऽयं देवदेवेश ! गृह्यतां श्रीधनञ्जय ! ॥ इति धूपः ॥
 १२ ॥ त्वामेकं सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । परमाहुः पराकारः
 प्रदीपः प्रतिगृह्यताम् ॥ १३ ॥ इति दीपः ॥ नमोऽस्तु यज्ञपतये
 प्रभवे जातवेदसे । सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
 इति नैवेद्यम् ॥ १४ ॥ हुताशन ! नमस्तुभ्यं नमस्ते सुरबाहवे ! ।
 लोकनाथ ! नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ॥ इति वन्दनम् ॥ १५ ॥

जिह्वापूजास्थानमाह शारदायाम् । मध्ये ईश्वरकोणेषु
 जिह्वा ज्वालारुचो यजेत् । केशरोक्तेन मार्गेण पूजयेदङ्गदेवताः ।
 पञ्चादादाय पाणिभ्यां सुक्स्तुवौ तावधोमुखौ । त्रिः सम्प्रता-
 पयेद्ब्रह्मा दर्भानादाय देशिकः । तदयमूलमध्यानि शोषये-
 त्तेयं याक्रमात् । गृहीत्वा वामहस्तेन प्रोक्षयेद्दक्षिणे तनी ।

पुनः प्रताप्य तौ मन्त्री दर्भान्ग्नौ विनिक्षिपेत् । आत्मनो
दक्षिणे भागे स्थापयितौ कुशान्तरे । आज्यस्थालीमथादाय
प्रोक्षयेद्वस्त्रवारिणा । तस्यामाज्यं विनिक्षिप्य संस्कृतं वीक्षण-
दिभिः । निरुद्धं वायव्येऽङ्गारान् हृदा तेषु निवेशयेत् । इदं
तापनमुद्दिष्टं देशिकैस्तन्त्रवेदिभिः । सन्दीप्य दर्भयुगलमाज्ये
क्षिप्तानले क्षिपेत् । गुरुर्हृदयमन्त्रेण पवित्रीकरणं त्विदम् ।
दीप्तेन दर्भयुग्मेन नौराज्याज्यात् स वर्मणा । अग्नी विसर्जये-
द्दर्भमभिव्योतनमौरितम् । घृतेषु ज्वलितान् दर्भान् प्रदर्श्या-
स्त्राणुना गुरुः । जातवेदसि ताश्रास्येदाज्योत्पवनमौरितम् ।
गृहीत्वा घृतमङ्गारान् प्रत्युह्याग्नी जलं स्पृशेत् । अङ्गुष्ठोपक-
निष्ठाभ्यां दर्भौ प्रादेशसम्प्रितौ । कृत्वोपनौयादस्त्रेण घृतमुत्प-
वनन्त्विदम् । तद्वद् हृदयमन्त्रेण कुशाभ्यामात्मसंमुखम् । घृते
संप्रवर्तं कुर्यात् संस्काराः षडुदीरिताः । प्रादेशमात्रं सप्रत्य
दर्भयुग्मं घृतान्तरे । निक्षिप्य भागौ द्वौ कृत्वा पक्षे शुक्ले तरे
स्मरेत् । वामे नाडौमिडां भागे दक्षिणे पिङ्गलां पुनः । सुषुम्नां
मध्यतो ध्यात्वा कुर्याद्भोमं यथाविधि ।

अत्र स्थानविशेषे होमनिन्दा मत्स्यसूक्ते चतुर्दशपटले ॥
यथा ॥ कर्णहोमे भवेद् व्याधिर्नेत्रेऽन्धत्वमुदीरितम् । नासि-
कायां मनःपौडा मस्तके च धनक्षयः । एतेषु प्रधाना-
हुतिपरमन्यथा शारदोक्तो दोषः स्यात् । तद्यथा । सुवेण
दक्षिणाङ्गागादादायाज्यं सदा गुरुः । जुहुयादग्नये स्वाहे-
त्यग्नेर्दक्षिणलोचने । वामतस्तद्वदादाय वामे वक्त्रिविलो-
चने । जुहुयादग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति हृदयाणुना । हन्म-
न्त्रेण सुवेणाज्यं भागादादाय दक्षिणात् । जुहुयादग्नये
खिष्टिकृते स्वाहेति तन्मुखे । हेतिं सम्पादयेद्भागे स्वाज्यस्थाना-
हुतिक्रमात् । इत्यग्निनेत्रवक्त्राणां कुर्यादुद्घाटनं गुरुः ।

पुनः प्रताप्य तौ मन्त्री दर्भान्ग्नौ विनिक्षिपेत् । आत्मनो दक्षिणे भागे स्थापयितौ कुशान्तरे । आज्यस्थालीमथादाय प्रोक्षयेद्वस्त्रवारिणा । तस्यामाज्यं विनिक्षिप्य संस्कृतं वीक्षण- दिभिः । निरुद्धं वायव्येऽङ्गारान् हृदा तेषु निवेशयेत् । इदं तापनमुद्दिष्टं देशिकैस्तन्त्रवेदिभिः । सन्दीप्य दर्भयुगलमाज्ये क्षिप्तानले क्षिपेत् । गुरुर्हृदयमन्त्रेण पवित्रीकरणं त्विदम् । दीप्तेन दर्भयुग्मेन नौराज्याज्यात् स वर्मणा । अग्नी विसर्जये- द्दर्भमभिव्योतनमौरितम् । घृतेषु ज्वलितान् दर्भान् प्रदर्श्या- स्त्राणुना गुरुः । जातवेदसि ताश्रास्येदाज्योत्पवनमौरितम् । गृहीत्वा घृतमङ्गारान् प्रत्युह्याग्नी जलं स्पृशेत् । अङ्गुष्ठोपक- निष्ठाभ्यां दर्भौ प्रादेशसम्प्रितौ । कृत्वोपनौयादस्त्रेण घृतमुत्प- वनन्त्विदम् । तद्वद् हृदयमन्त्रेण कुशाभ्यामात्मसंमुखम् । घृते संप्रवर्तं कुर्यात् संस्काराः षडुदीरिताः । प्रादेशमात्रं सप्रत्य दर्भयुग्मं घृतान्तरे । निक्षिप्य भागौ द्वौ कृत्वा पक्षे शुक्ले तरे स्मरेत् । वामे नाडौमिडां भागे दक्षिणे पिङ्गलां पुनः । सुषुम्नां मध्यतो ध्यात्वा कुर्याद्भोमं यथाविधि । अत्र स्थानविशेषे होमनिन्दा मत्स्यसूक्ते चतुर्दशपटले ॥ यथा ॥ कर्णहोमे भवेद् व्याधिर्नेत्रेऽन्धत्वमुदीरितम् । नासि- कायां मनःपौडा मस्तके च धनक्षयः । एतेषु प्रधाना- हुतिपरमन्यथा शारदोक्तो दोषः स्यात् । तद्यथा । सुवेण दक्षिणाङ्गागादादायाज्यं सदा गुरुः । जुहुयादग्नये स्वाहे- त्यग्नेर्दक्षिणलोचने । वामतस्तद्वदादाय वामे वक्त्रिविलो- चने । जुहुयादग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति हृदयाणुना । हन्म- न्त्रेण सुवेणाज्यं भागादादाय दक्षिणात् । जुहुयादग्नये खिष्टिकृते स्वाहेति तन्मुखे । हेतिं सम्पादयेद्भागे स्वाज्यस्थाना- हुतिक्रमात् । इत्यग्निनेत्रवक्त्राणां कुर्यादुद्घाटनं गुरुः ।

सताराभिर्योद्धतिभिराज्येन जुहुयात् पुनः । जुहुयादग्नि-
मन्त्रेण त्रिवारं देशिकोत्तमः । कुण्डस्य रूपं जानीयात्
परमं प्रकृतैर्वपुः । प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहुं दक्षिण-
सौम्ययोः । जठरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ च पश्चिमे । गर्भा-
धानादिका वृद्धेः क्रिया निर्वर्तयेत् क्रमात् । अष्टाभिराज्या-
हुतिभिः प्रणवेन पृथक् पृथक् । गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो-
न्नयनं पुनः । अनन्तरं जातकर्म स्यान्नामकरणं तथा । उप-
निषक्रमणं पश्चादन्नप्राशनमेव च । चौड़ोपनयने भूयो महा-
नाम्नां महाव्रतम् । महानाम्नां वेदारम्भः ॥ तथोपनिषदं
पश्चान्नोदानोद्वाहकौ मृतिः । शुभेषु स्युर्विवाहान्ताः क्रियास्ताः
क्रूरकर्मसु । मरणान्ताः समुद्दिष्टा वृद्धे रागमवेदिभिः । ततश्च
पितरौ तस्य सम्युज्यात्मनि योजयेत् । समिधः पञ्च जुहुयात्
मूलाग्रष्टतसंस्तुताः । मन्त्रैर्जिह्वाङ्गमूर्त्तीनां क्रमादङ्गेर्यथा-
विधि । प्रत्येकं जुहुयादेकामाहुतिं मन्त्रवित्तमः । अवदाय
सुवेणाज्यं चतुःसृचि पिधाय ताम् । सुवेण तिष्ठन्नेवाग्नी दे-
शिको यतमानसः । जुहुयादङ्गिमन्त्रेण वौषडन्तेन सम्पदे ।
विघ्नं श्वरस्य मन्त्रेण जुहुयादाहुतौर्दश । सामान्यं सर्वतन्वा-
णामेतदग्निमखं मतम् । ततः पोठं समभ्यर्च्य देवतायै हुता-
शने । अर्चयेदङ्गिरूपां तां देवतामौष्टदायिनीम् । तन्मुखे
जुहुयाद्वन्त्री पञ्चविंशतिसंख्यया । आज्येन मूलमन्त्रेण वृक्षै-
कौकरणन्विदम् । वज्रदेवतयोरैक्यमात्मना सह भावयन् ।
मूलमन्त्रेण जुहुयादाज्येनैकादशाहुतौः । नाडीसन्धानमु-
द्दिष्टमेतदागमवेदिभिः । जुहुयादङ्गमुख्यानामावृतीनामनु-
क्रमात् । एकेकामाहुतिं सम्यक् सर्पिषा देशिकोत्तमः । ततो-
ऽन्येष्वपि कुण्डेषु संस्कृतेषु यथाविधि । आचार्यो विहरेदग्निं
पूर्वादिषु समाहितम् । ऋत्विजो गन्धपुष्पाद्यैरङ्गाद्यावरणा-

न्विताम् । तन्वोक्तामेतामिष्टा च पञ्चविंशतिसंख्यया । मूलेना-
ज्येन जुहुयुः साज्येन चरुणा तथा ।

आहुतिदानप्रकारश्च मत्स्यसूक्ते ॥ उत्तानेन तु हस्तेन अङ्गु-
ष्ठाग्रेण पोडितम् । संहताङ्गुलिपाणिस्तु जुहुयाद्देशिकोत्तमः ।
आहुतिस्तु घृतादीनां सुवेणाधोमुखेन तु । दद्यात्तिलाद्याहुतिं
तु दैवेनोत्तानपाणिना । समिद्धोमश्च तिलवन्मोदकाद्याहुति-
स्तथा । अङ्गुष्ठादित्त्रिचतुरैर्विस्वपत्र इति क्रमात् ॥ द्रव्यविशेष-
होमे जिह्वाविशेषोऽपि तत्रैव ॥ घृताहुतौ हिरण्याख्या कनका
शस्यहोमतः । रक्ता ख्याता समिद्धोमे कृष्णा सा आहुतौ तथा ।
सुप्रभा मोदकविधौ बहुरूपातिरूपका । पुष्पा पत्रविधौ वज्रे-
र्जिह्वाः सप्त प्रकीर्त्तिताः । द्रव्यालाम्भे प्रतिनिधिरपि तत्रैव ॥
उक्तं न लभ्यते तत्र प्रतिकृत्या च होमयेत् । अर्कस्योडुम्बरं
प्रोक्तं खदिरस्य शमीरिता । पिप्पलस्य पलाशः स्यात् पलाश
स्यापि पिप्पलः । उभयोरिवमेवं स्यादपामार्गे पलाशकम् ।
कुशाभावे भवेद्दूर्वा दूर्वाभावे कुशो भवेत् । इक्षोरभावे त्व-
ष्टताऽऽमृतायाश्च पलाशकम् । पद्माभावे हयारिः स्याज्जलजानां
विशेषतः । घृतं न लभ्यते यत्र शुद्धक्षीरेण होमयेत् ।
क्षीरस्य तु दधिज्ञेयं मधुनश्च गुडं भवेत् । शर्करायाश्च
ओखण्डं गुडखण्डमथापि वा । रसानाञ्च रसेनैव सर्व-
मिच्छुरसेन वा । मोदके पिष्टकं ज्ञेयं फलानाञ्च फलेन तु ।
काष्ठस्य चैव काष्ठेन पुष्पस्य कुसुमेन च । एवमन्योन्यतः सर्वं
सर्वद्रव्येषु सर्वदा ॥ अङ्गुतेषु तु सर्वेषु उत्तराभिमुखो भवेत् ।
समिधः प्रावरणं कुर्यादन्यत्र पूर्वदिग् भवेत् । यजमानः स्वयं
नैव समिधं प्रवयेत् क्वचित् । पुत्रशिष्यादिभिः कुर्यान्न पुत्रं
विनियोजयेत् ॥ तथा ॥ न कदाचिदसृग्दानं गृह्यज्ञो विच-
क्षणः । भूतिकामः क्वचित् कुर्यादेव तन्त्रविदां मतम् ।

आज्यादिकं भवेद्यत्र समिधः आवणे स्थितम् । शेषं न योज-
येन्मन्त्रो अन्यत्रैवं विचक्षणः । एकाङ्गं लग्नमेकत्र न पात्रे
स्थापयेत् क्वचित् । देशिकः प्राङ्मुखो भूत्वा ऐशान्यादिक्रमेण
तु । प्रदक्षिणेन कुर्वीत मन्त्रैः परिसमूहनम् । मन्त्रपूर्वं
साग्निकानां दृष्टिमेव निरग्निकम् । त्रिकुशेन महायागे विवा-
हादौ विपत्रकम् । वैश्वदेवे त्वेकपत्रं नित्यहोमे तथैव च ।
दिग्विदिक्षु परिस्तीर्य महायागेषु सर्वदा । दिक्षुमात्रे नित्य-
होमे वैश्वदेवे तथैव च । अकृत्वा कर्म नित्यन्तु वृथा नैमि-
त्तिकं चरेत् । तस्मात् पुष्पफलाद्येन कृत्वा नैमित्तिकं चरेत् ॥
तथा ॥ प्रजापतिं तथेन्द्रञ्च अग्निं सोमं तथैव च । एतान्नित्या-
हुतिं कृत्वा समिद्धोममनन्तरम् । हुत्वा व्याहृतिभिः पश्चात्
सर्वत्रैवं महेश्वरि ! । भूर्भुवः स्वः स्वाहा तन्न इत्यादिमन्त्रपञ्च-
कम् । अन्ते स्विष्टिकृतिं दद्याद्धोमद्रव्येण शङ्करि ! । दानमध्ये
यज्ञभेदे ग्रहयज्ञे शतान्तरे । सप्तभेदे त्विमे पूर्णाः पुनस्ते च
विधा क्रमात् । ऋत्विक्स्क्रन्वं सृशन्मन्त्रो दक्षिणं वा सृशन्
भुजम् । यजमानः सपत्नीको जुहुयाद्देशिकोत्तमः । उल्याय
दद्यात् पूर्णाञ्च नोपविश्य कदाचन । कनकायान्तु जिह्वायां
रक्तायां ग्रहयज्ञके । ग्रहहोमशतान्ते च पूर्णा एका विधीयते ।
सहस्रान्ते द्वयं कुर्यादयुतान्ते चतुर्थकम् । अन्नहोमे युगं दद्यात्
पद्महोमे चतुर्थकम् । आज्यलाजतिलादीनां होमे च दशल-
क्षके । पनसान्नफलैर्होमे द्वितीयं समुदाहृतम् । शताङ्गं वा
तदङ्गं वा गर्भाधानान्नप्राशने । सीमन्तोन्नयने चैव प्रायश्चित्ता-
हुतिषु च । दधिहोमे च नित्ये च एषु पूर्णां विवर्जयेत् ॥

अथ होमद्रव्यप्रमाणम् । मत्स्यसूक्ते चतुर्दशपटले ॥ कर्षकं
घृतहोमे तु द्वितोलञ्च पयः स्मृतम् । वाणतोलं पञ्चगव्यं तोलकै-
र्मधुदुग्धकम् । दधि प्रसृतिमात्रन्तु लाजाः स्युर्मृष्टिसन्निताः ।

पृथुकाष्टप्रमाणेन अथवा पूर्वपूरणम् । शक्तवो मुष्टिमात्रेण
शर्करा तोलकाङ्कम् । त्रितोलञ्च गुडं विद्याद्विचुपर्वावधि
स्मृतम् । मोदकं धात्रीमानञ्च मार्गं वदरमानतः । पिण्डकस्य
यथा मानं नारिकेलादिपर्वकम् । तालन्तु द्वाङ्गुलं चैव पनसं
वीजसंख्यया । मारणोच्चाटने चैव पनसं दशधा कृतम् । अष्टधा
नारिकेलन्तु मातुलुङ्गं त्रिधा मतम् । त्रिधा कृतं फलं वैल्व-
मन्यथा दशभागकम् । प्रादेशमात्रं समिधं दूर्वापत्रत्रयं स्मृ-
तम् । पत्रावसानहोमे च प्रादेशं परिकल्पयेत् ॥ समिद्विशेषो
यथा राघवभट्टे ॥ विशौर्णा विदला ऋक्षा वक्रा स्थूला कृशा
द्विधा । क्रिमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निस्त्वचः परिवर्जिताः । विशौ-
र्णयुःक्षयं कुर्याद्विदला व्याधिसम्भवा । ऋक्षायां व्याधि-
माप्नोति वक्रा विघ्नकरी सदा । स्थूलाभिहरते लक्ष्मीं कृशायां
याजकक्षयः । द्विधायां नेत्ररोगाः स्युः कीटदष्टार्थनाशिनी ।
दोषं प्रकुर्वते दीर्घाः प्राणघ्नो निस्त्वचः स्मृताः । न क्षीणा ना-
धिका न्यूनाः समिधः सर्वकामदाः । आर्द्रत्वचां समच्छदां
तर्जन्यङ्गुलिवर्तुलाम् । ईदृशीं होमयेत् प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां
श्रियम् । श्रौते स्मार्त्तं चतस्रोक्ताः समिधः परिकीर्तिताः ॥
मत्स्यसूक्ते ॥ चतुरङ्गता च गुडूवी ब्रीहयो मुष्टिसम्मिताः ।
सर्षपं सूक्तिमानेन सूक्तिः स्यात् पञ्चतोलकम् । मरिचे विंशकं
कृत्वा मारणे दशकं विदुः । दशधा च मृणालं स्यान्मूलकं
सप्तभागकम् । एकैकशः कशेरुश्च शृङ्गवेराङ्गुलेन तु । मातु-
लुङ्गं समं कुर्यादन्नं व्यञ्जनसंयुतम् । पूर्ववदेव मानं स्यात्तण्डुलं
चैव तत्समम् । चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादि च । नकुले
तु कुलं ज्ञात्वा कुले द्रव्यान्तरिण तु । यथा योगो न गन्धेन
राज्यक्रामे विशेषतः । तन्तिङ्गीवीजमानेन समुद्दिष्टानि
तान्त्वकैः ॥ योगिनीतन्त्रेऽपि ॥ कर्षमात्रं घृतं देयं सूक्ति-

३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९
४०
४१
४२
४३
४४
४५
४६
४७
४८
४९
५०
५१
५२
५३
५४
५५
५६
५७
५८
५९
६०
६१
६२
६३
६४
६५
६६
६७
६८
६९
७०
७१
७२
७३
७४
७५
७६
७७
७८
७९
८०
८१
८२
८३
८४
८५
८६
८७
८८
८९
९०
९१
९२
९३
९४
९५
९६
९७
९८
९९
१००

मात्रं पयः स्मृतम् । दधि प्रसृतिमानन्तु तदर्द्धं च मधुसृशम् ।
 एषां व्यापारकं वक्ष्ये यथावत् शृणु पार्वति ! । सुवर्णाष्टप्रमाणेन
 घृतं देयं विचक्षणः । पयो भवेत्तदर्द्धेन दधि पञ्चसुवर्णकम् ।
 दधि चैव तदर्द्धेन एवं मानविदो विदुः । एवं शतस्य मानन्तु
 प्रावक्ष्यं विभवे सति । पञ्चाशत्तत्र जानीयात् सर्वत्रैव विचक्षणः ।

अथ मानाध्यायः ॥ योगिनीतन्त्रे द्वितीयभागे ॥ गवाक्ष-
 मात्रे यदृश्या अर्करश्मेस्तु लेखिका । लेखिकाष्टौ भवेद्भूली
 धूलयोऽष्टौ च सर्षपः । सर्षपाणां चतुष्केण रत्तिकेत्यभिधी-
 यते । रत्तिकानां विंशतिश्चापादश्च परिकीर्तितम् । तोलिका
 तु चतुष्पादैश्चतुस्तोलैः ^{पुष्पा} तका । प्रसृती द्वे कर्षकश्च द्वे कर्षे
 तु पलं भवेत् । पल ^{द्रव्य} वेत् सूक्तिर्द्वे सूक्ती गुडकं मतम् ।
 वीरमित्रोदयघृतहस्ति ^{मनन्तर} वम्भे ॥ जालान्तरप्रविष्टायां
 सूर्यभासि यदीक्ष्यते । ^{भवे} जस्तत्परमाण्वाख्यं प्रमाणं प्रथमं
 मतम् । त्रसरेणुर्मतस्तैश्च परमाणुभिरष्टभिः । तैरष्टभिर्भवे-
 लिख्यो यूका लिख्येष्टाष्टभिः । यवो यूकाभिरष्टाभिर्यवैरष्ट-
 भिरङ्गुलम् । सुष्टिस्तानि च चत्वारि द्वे च सुष्टौ धनुर्ग्रहः । त्रि-
 सुष्टिको वितस्तिः स्यादरत्नो द्वे वितस्तिके । किष्कुर्द्वाभ्या-
 मरत्निभ्यां धनुः किष्कुद्वयेन च । सहस्रं धनुषां क्रोशो गव्यू-
 तिर्द्विगुणा ततः । गव्यूतयश्च चतस्रो योजनं कल्पितं कला ॥
 सतस्यसूक्ती षोडशपटले तु ॥ सर्षपाणां चतुष्केण माष इत्य-
 भिधीयते ॥ अत्र माषः शस्यवाचकः ॥ माषाणाञ्चैव तूर्थेण
 रत्तिकेत्यभिधीयते । रत्तिकानां विंशकश्च पादश्च परिकीर्ति-
 तम् । तोलिका च चतुष्पादैश्चतुस्तोलैः प्रसृतिका । प्रसृती
 द्वे कर्षकश्च द्वे कर्षे तु पलं भवेत् । पलद्वये तु सूक्तिः स्याद् द्वे
 सूक्ती दग्धकं मतम् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां चतुर्थे काम्यकाण्डे दुर्गामन्त्रेस्तुतिनाम-
 माहात्माशतनामबलिहोमहोमीयानुकल्पपरिमाणान्तक-
 दुर्गात्मवप्रकरणरूपपुण्यकथनं नाम षष्ठः परिच्छेदः ।

इष्टदेवीं नमस्कृत्य भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् । मासकृत्यमथो
वक्ष्ये विदुषां परितुष्टये ॥

अथ मासकृत्यम् । चान्द्र एवात्र मासस्थितिकृत्यनिमि-
त्तत्वादभिलापादिकन्तु सीरेणैव प्रागुक्तधर्मकाण्डधृतवचनात् ।
भक्त्यसूक्ते द्विपञ्चाशत्पटले ॥ आश्विने शुक्लपक्षे च अष्टम्याञ्च
निशागमे । सिद्धगौरीव्रतं कुर्याद् या साध्वी धर्मचारिणी ॥
इति सिद्धगौरीव्रतमस्मिन् देशे अप्रचरद्वृत्तत्वेन न लिखितम् ।
यस्यात्र प्रयोजनं विद्यते तेन तत्तु अन्वेष्यम् । शुक्लपक्षे दश-
म्यान्तु आश्विने परमेश्वरि । विजया नाम सा ख्याता सर्वत्र
निगमालयम् । रेवन्तं पूजयेत्तत्र ईश्वरीञ्च वरानने । इह लोके
सुखं प्राप्य यास्यन्ति शिवमन्दिरम् । तेजोऽसीति च दिभुजं
तुरङ्गासनसंस्थितम् । खड्गधर्मधरञ्चैव मन्त्रेणानेन पूजयेत् ।
नमस्ते सूर्यपुत्राय तुरङ्गानां हिताय च । शान्तिं कुरु तुरङ्गानां
रेवन्ताय नमो नमः । श्रीं गन्धर्वकुलजातस्त्वं भूपालाय च
केयव । ब्रह्मणस्त्वस्त्वशास्त्रेण सोमस्य वरुणस्य च । तेजसा चैव
सूर्यस्य खलोला ते पदा तथा । रुद्रस्य ब्रह्मचर्यस्य पवनस्य
बलेन च । धान्यकं पशुकं बीजं ध्यानं सिद्धार्थकानि च ।
पद्मपत्रं निशास्त्रे च सूत्रेण द्विगुणेन च । बध्नीयादक्षमालायां
गले चापि विशेषतः । अस्त्रशस्त्रादिकञ्चैव राज्याङ्गानि च
भाविनि । प्रतिजोजेन पुण्याद्यैः पूजयेदविचारयन् ॥

अथ खञ्जनदशैर्न तत्रैव ॥ दशम्याभपराह्णे तु भुक्तवत्सु
स्वयं प्रिये । शोभनं खञ्जनं पश्यन् नमस्कुर्याद्विभूतये । वासु-
देवत्वरूपेण सर्वकामरूपप्रदः । पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्ज-
रीट ! नमोऽस्तु ते । खञ्जनाय नमस्तुभ्यं सर्वाभीष्टप्रदाय च ।
नीलकण्ठाय भद्राय भद्ररूपाय ते नमः । भद्र ! त्वं देहि मे
भद्रमाशां पूरय पूरकः । खस्त्रिकोऽसि कुरु खस्त्रि खञ्जरीट !

रा-
ती
।।
र-
न-
वे-
ना-
सी-
ज-
ति-
ला-
मते
सू-
रि-
नि-
सक-
मन्व-
दाभ-
वलस-
इपल-
साह-
मानः ।
तवेद-

नमोऽस्तु ते । नारायणस्वरूपाय संवत्सरसुखप्रद ! । नीलकण्ठ !
महादेव ! खञ्जरीट ! नमोऽस्तु ते । देवदानवयक्षाणां नराणां
पुष्टिवर्द्धनम् । दर्शनं तव भद्रस्य विष्णुरूप । नमोऽस्तु ते ।

अथ दर्शनशुभाशुभफलम् ॥ जलप्रासादशिखरे पर्वते च
जलान्तिके । दृष्टे शुभं भवेत् कीर्त्तिर्गोष्ठेषु धनवर्द्धनम् । अजेषु
नृपतिर्भूयात्तथा देवालयेषु च । तडागतीरे धनवान् श्मशाने
मरणं भवेत् । कृष्णग्रीवो नीलकण्ठः श्वेतकण्ठो जनार्दनः ।
पीते तु पार्वती देवी धुन्वत्यक्षे तु वीक्षणम् । व्याधिर्भवति देवेशि !
स्थिरे सम्पत्तिकारकम् । भक्तं भुञ्जन् भवेद्रोगी श्रियं दृष्ट्वा च
वासवः । सुमानः कीर्त्तनादेव आयुषस्तु क्षयो भवेत् । तस्मात्तु
खञ्जनं नाम कीर्त्तयेदविचारयन् ॥ तत्रैव ॥ कौमुद्यां रात्रि-
योगे तु गृहिणी या पतिव्रता । इन्द्रं लक्ष्मीं समभ्यर्च्य सुगन्धि-
कुसुमादिभिः । पायसञ्च बलिं दद्यादन्नं व्यञ्जनसंयुतम् ।
नारिकेलफलैर्देवान् पितृनय समर्चयेत् । बन्धून् च पूजयेद्रात्रौ
प्रकुर्व्यात् क्रयविक्रयम् । न करोति महालक्ष्मीः शापं दत्त्वा
व्रजेत् पुरम् । निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्त्ति विभाषिणी ।
नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षैर्जागरणं निशि । तद्विभूतिं प्रय-
च्छामि को जागर्त्ति महीतले । सोमञ्च पूजयेत् कुम्भे पटे वा
पीठकेषु च ॥

अथ लक्ष्मीध्यानं तत्रैव ॥ नवयौवनलम्पन्नां तपकाञ्चनसन्नि-
भाम् । त्रिनेत्रां द्विभुजां रस्यां दिव्यकुण्डलधारिणीम् । श्रीफलं
दक्षिणे पाणी वामे पद्मञ्च बिभ्रतीम् । सर्वालङ्कारसम्पूर्णां सर्वा-
लङ्कारगर्विताम् । किन्नरामरगन्धर्वसिद्धचारणसेविताम् । वीजेन
दीर्घयुक्तेन षडङ्गमथ कल्पयेत् । पूजयेदुपचाराद्यैर्नानैवेद्य-
बन्दनैः ॥ पूजामन्त्रस्तु तत्रैव ॥ चोरोदार्णवसम्भूते । विष्णोरुसि
संस्थिते ॥ गृहाण पूजां देवेशि । कौमुद्याञ्च नमोऽस्तु ते । प्रणा-

ममन्तस्तु । विश्वरूपस्य भार्यासि पद्मे ! पद्मालये ! शुभे ! ।
महालक्ष्मि ! नमस्तुभ्यं कौमुदीञ्च कुरुस्व मे । नमस्ते सर्वजगतां
वरदासि हरिप्रिये ! । या गतिस्त्वग्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वद-
र्चनात् । लक्ष्मि ! देवि ! नमस्तुभ्यमचला भव सर्वदा । कमले !
वरदे ! देवि ! कुलोद्योतकरी मम । हिताय सर्वभूतानां यथा
नारायणे स्थिता । तथा त्वं पाहि मां देवि ! सर्वलक्षणसम्भवे ! ।
कृता पूजा मया भक्त्या कमले ! वरदे ! शुभे ! । पूजां गृह्य
सुरेशानि ! नमस्ते कमलालये ! । पूर्वादिपत्रे सम्पूज्य भूत्या-
दिनवशक्तिकाः । वासुदेवादिकं तत्र वामनादिकमर्चयेत् ।
तत्रैव कलसे चैव इन्द्रं ध्यात्वा समर्चयेत् । सर्वलक्षणसम्पूर्ण-
मिन्द्रमैरावतस्थितम् । शचीसमेतं वरदं ध्यानेन परिचिन्त-
येत् । पूजामन्त्रोऽपि ॥ वज्रहस्त ! महाबाहो ! बहुनेत्र !
पुरन्दर ! । रक्षार्थं सर्वभूतानां पूजयं प्रतिगृह्यताम् । दिक्-
पालांश्च ग्रहांश्चैव ब्राह्मणांश्चाग्रतोऽर्चयेत् । विष्णुं नारायण-
श्चैव भावभूतेश्वरं यजेत् । पूजयित्वा ह्यनेनापि विष्वमुद्रां
प्रदर्शयेत् । पद्ममुद्रां धेनुमुद्रां मन्त्रं जप्त्वा स्तुतिं पठेत् ॥
इत्याश्विनकृत्यम् ॥

त्रिपञ्चाशत्पटले ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तुलाराशिं गते
भानौ शुक्लपक्षे विशेषतः । प्रतिपद्येव गोशृङ्गे पूजयेत्
कमलालयाम् । उपोष्य यावकाहारं बलिं दद्याच्च पायसम् ।
कुन्दपुष्पैः समभ्यर्च्य सर्वपापहरो भवेत् । तत्रैव पूजयेद्देवीं
महिषेण मम प्रिये ! । दूर्वयाङ्कपुष्पाभ्यां पूजयेज्जगतां पतिम् ।
शाख्योदनं ततो भुक्त्वाचम्य गत्वा जलान्तिके । घृतञ्च द्विविधं
कुर्वात् पलं कृत्वा महेश्वरि ! । जयं संवत्सरं तस्य भङ्गे
भङ्गं समादिशेत् । विभीषणं बलिश्चैव सीसञ्च परमेश्वरम् ॥
पूजयेद्दन्तपुष्पाद्यैर्नानैवेद्यवन्दनैः । कृष्णपक्षे तथा कुर्याद्दन्त-

तीपूजनञ्चरेत् । मधुमांसाशनं कुर्यादेकभक्तेन वर्त्तयेत् । शुक्लपक्षे
 द्वितीयायां धर्मराजं समर्चयेत् । चरुं कृत्वा विधानेन सोद-
 रानथ भोजयेत् । ऐश्वर्यं लभते सौख्यं बहुभोगानवाप्नुयात् ।
 कृष्णपक्षे तथा लक्ष्मीं कुन्दपुष्पैः समर्चयेत् । कृष्णद्रव्यबलिं
 दद्यात्तस्मै वित्तं प्रयच्छति । तृतीयायां गणेशञ्च पूजयेत्
 पिष्टकादिना । वर्त्तयेदेकभक्तेन न शोको जायते भुवि । च-
 तुर्थ्यां मोदकैर्देवीं पूजयेत् कुशलार्थकम् । दधिखण्डबलिं दद्या-
 द्वाञ्छितं लभते ध्रुवम् । कृष्णपक्षे प्रतिपदि देवीं माहेश्वरीं
 यजेत् । सितपारावतैः पूजा भूतिदा जायते ध्रुवम् । पञ्चम्यां
 विष्वक्पक्षे च हरं गौरीं समर्चयेत् । बलिञ्च मोदकं दद्याद्विद्या-
 कामः सुरेश्वरि । क्षीरस्य प्राशनादेव पापात् पूतो न संशयः ।
 पञ्चम्यां कृष्णपक्षस्य देवं नारायणं हरम् । महायोनीं समभ्यर्च्य
 कुलानां तारयेद्दश ॥ महायोनीं कामाख्यायाम् ॥ षष्ठ्यां वै
 शुक्लपक्षस्य देवं धनपतिं यजेत् । यो जनः षोडशं दद्यात्सोदते
 नाकमण्डले । सप्तम्यां संयतो भूत्वा उभे पक्षे तु कार्तिके । देवं
 मत्स्यं तथा काममिन्द्रदेवं प्रपूजयेत् । ब्राह्मणान् दम्पतीं
 चैव भोजयेत् प्रातरेव च । फलमूलं तथा धान्यं प्रदद्यात्
 दक्षिणां शुभाम् । न च व्याधिः क्षुधा वापि कुले तस्य प्रजा-
 यते । अष्टम्याञ्चैव देवेशि । शुक्लपक्षे विशेषतः । दुर्गां सत्ता-
 निलीञ्चैव कृष्णपक्षे समर्चयेत् । त्रिकालं पूजयेद्भक्त्या यशस्वी
 तेजवान् भवेत् । कृष्णपक्षे शिवं दुर्गां कमलां कालिकां तथा ।
 सृष्टम्यां पूजयेद्देवीं मध्यरात्रे प्रयत्नतः । न च व्याधिभयं
 घोरं यावत्तु बलरावधि ॥ हहन्नीलतन्त्रे षष्ठपटले ॥ कार्तिके
 शुक्लपक्षस्य नवमी या शुभा भवेत् । तस्यां पूज्या महेशानि ।
 सुन्दरी परदेवता । सुन्दर्याः पटले सम्यक् पूजा च कथिता
 शुभे । ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ शुक्लपक्षे नवम्यान्तु तिलैर्हीमं समाच-

रेत् । देवमुद्दिश्य फलदमुपर्युपरि पञ्चमे । कृष्णे चैव यजे-
 देवीं सप्तम्यां सूर्यमर्चयेत् । धनधान्यलक्ष्मीकरं पुत्रपौत्रविव-
 र्धनम् । कार्तिकस्य तु शुक्लायां दशम्यां नियतः शुचिः । तैलेन
 शुद्धतैलेन अर्चयेन्मधुसूदनम् । कृष्णपक्षे तु क्षीरेण मधुना च
 विशिष्यते । रात्रौ फलाशनं कुर्यान्मोदते विष्णुमन्दिरे । कृष्ण-
 पक्षेऽर्चयेत् कृष्णं हृषीकेशं शतक्रतुम् । तोषयेत् परमान्नाद्यै-
 नरो न निरयं व्रजेत् । एकादश्यां कार्तिकस्य शुक्लपक्षे यश-
 स्विनि ! । स्नानं शुक्लतिलैः कुर्यान्निशुक्लैर्हरिमर्चयेत् । प्रातरेव
 तु द्वादश्यां नित्यकृत्यं समाहितः । सङ्कल्प्य च गणेशानं ब्रह्माणं
 दिक्पतीनपि । ग्रहांश्च प्रतिकुम्भेषु स्थण्डिले च हरिं यजेत् ।
 पञ्चासृतेन गन्धेन तीर्थतोयेन स्नापयेत् । पूजयेच्चतुपत्राद्यैः
 कुसुदैः पङ्कजैरपि । शारदोयेन पुष्पेण यथाविभवविस्तरेः ।
 त्रिकालं चार्चयेद्भक्त्या अग्निकार्यं ततो निशि । प्रबोधनं
 ततः कुर्यान्मध्याह्ने परमेश्वरि ! । दिवा स्नाने भवेद्धानिस्तथा
 रात्रौ प्रबोधने । आद्ये अष्टाक्षरं दद्यात् प्रतिमन्त्रे महेश्वरि ! ।
 कृताञ्जलिं ततो बद्ध्वा इमं मन्त्रमुदाहरेत् । ब्रह्मेन्द्ररुद्रैरभि-
 नूयमानो भवान् सुरौघैश्च विवन्दनोयः । प्राप्ता तवेयं द्वादशी
 कौमुद्याख्या त्वमेव जागृष्व हि लोकनाथ ! । ततः सृष्ट्वा पठे-
 न्मन्त्रौ शनैर्मन्त्रं पठेत्ततः । मेवागतैर्निर्मलचन्द्रतोयैरारण्य-
 पुष्पैरथ सौरभैः । अहं ददामीति च धर्महेतोः जागृष्व
 जागृष्व च लोकनाथ ! । जानुभ्यामवनीं गत्वा पठेन्मन्त्रं
 सतारकम् । प्रसीद नारायण । कृष्ण ! विष्णो ! सुकुन्द !
 लक्ष्मीश ! भवन्नमस्ते । सम्पश्य लक्ष्मीं तव भावभूति-
 माश्रित्य चाश्रित्य च लोकनाथ ! । नृत्यगौतैर्बहुविधैः पुराण-
 श्रवणेन च । नयेद्रात्रिं महेशानि ! पञ्चघोषपुरःसरम् ।
 प्रभाते पूजयेद्भक्त्या धेनुं दद्याच्च दक्षिणाम् । ब्राह्मणान् पूज-

येङ्गत्या दीनान्धकपणानपि । पार्श्वपरिवर्त्तने चैव मन्त्रमष्टा-
 क्षरान्तरे । पार्श्वी भव जगन्नाथ ! नमो नारायणाच्युत ! ।
 प्रसीद भगवन्नाथ ! भव संतारमोक्षण ! । परिवर्त्तय पार्श्वीऽपि
 गोविन्दाच्युत ! तद्वयम् । दिवाभागेन कर्त्तव्यं पूर्ववद् वि-
 धिना प्रिये ! । कृष्णपक्षस्य द्वादश्यां कुर्याद्वाङ्मणतर्पणम् ।
 शुक्लायाञ्च चतुर्दश्यां पार्वत्या सह शङ्करम् । विष्णुपत्नैः सम-
 भ्यर्च्य न शोको जायते भुवि । अथ कृष्णत्रयोदश्यां कार्तिके
 मासि शङ्करि ! । प्रातःस्नानं ततः कृत्वा स्रोतसि विधिवन्नरः ।
 उमां हरं रविं विष्णुं चन्दनेन विलिख्य च । पद्मपत्रैर्महे-
 शानि ! विष्णुपत्नैः समर्चयेत् । शाकेन तोषयेद्देवान् स्वयं
 शाकेन वर्त्तयेत् ॥ तथा । मध्याह्ने स्नापयेत् कुम्भं वसनं तत्र
 विचरेत् । अभिषिञ्चेत्ततः पञ्चादात्मानं बान्धवैः सह । अपा-
 मार्गस्य पुष्येण त्रिवारं शिरसोपरि । वामावर्त्तने देवेशि !
 अपामार्गस्य पत्रकम् । वक्ष्यमाणेन वा कुर्याद् गायत्र्या वा
 समाहितः । यत् कृतं दुष्कृतं कर्म मया जन्मशतान्यपि । व्या-
 ध्याद्य त्वत्प्रसादेन अपामार्ग ! हरस्व मे । संहिताख्याञ्च पु-
 ण्याख्यां प्रेताख्यानान्तरेण च । श्रुत्वा संख्यां द्विजातिभ्यो
 दानं दद्याद्विभूतये । चतुर्दशी तथा प्रेता पूज्या पूर्वेण संयुता ।
 यदा परदिने रात्रौ दर्शयुक्ता न सा भवेत् । एवमेतत् परं
 आह्वं तिथ्यन्ते दीपमुत्सृजेत् । देवैरपि निवृत्ते चेत् पूर्णिमा
 सचतुर्दशी । तदा पूर्वा ग्रहीतव्या सदा रात्रिगता अपि ।
 स्नाने प्रेतक्रयायाश्च श्रवणे यमतर्पणे । सूर्योदयगता आह्वा-
 नरैः प्रेतचतुर्दशी । एकादशीं समारभ्य यावत् पञ्चदशीं प्रति ।
 निरामिषेण भोक्तव्यमेकभक्तेन वर्त्तयेत् । भोक्षत्रतमिदं प्रोक्तं
 सावकाशेन सेवयेत् । पूर्णिमास्यां तुलादित्ये श्रीपतिं लोलया
 सह । चन्द्रेण पूजयेद्भक्त्या कुलच्छेदो भवेन्न हि । तुलागतं

समावाप्य लक्ष्मीर्निद्रां विमुञ्चति । तत्र सम्पूजनादेव लक्ष्मीः
 स्यादनपायिनी । श्वेतकुम्भेऽर्चयेत्तु लक्ष्मीं कुवेरं रक्तकुम्भके ।
 पीतकुम्भेऽर्चयेत्त्रिंशुं नानानैवेद्यवन्दनैः ॥ नारदपञ्चरात्रे
 द्वितीयरात्रे सप्तमाध्याये ॥ कार्तिकौ पूर्णिमायाञ्च राधाचार्या
 विष्णुपूजनम् । यत्र तत्र त्वनियमः परं निर्वाणकारणम् ॥
 मत्स्यसूक्ते ॥ कदाचित् कार्तिके मासि यदि दर्शद्वयं भवेत् ।
 तत्राद्या सुखरात्रिः स्यादपरस्तु मलिङ्गुचः । मलिङ्गुचे ह-
 स्त्रिके तु विष्णुत्यानादनन्तरम् । लक्ष्मीप्रबोधो भवति सा ज्ञेया
 सुखसुप्तिका । दण्डैकरजनीयोगो दर्शनं स्यात् परेऽहनि ।
 तदा विहाय पूर्वद्युः परतः सुखरात्रिका । तत्र आङ्गं कृतं
 येन अक्षयं भवति भ्रुवम् । शतग्रहणजं पुण्यं तीर्थं स्नानं महा
 फलम् । इष्टदेवं समुद्दिश्य पितृनुद्दिश्य यन्नतः । जीवितञ्चेत्
 समुद्दिश्य दीपं दद्यात् शिवालये । आयुष्कामो हि देवेशि !
 दीपं दद्याच्चतुष्पथे । द्वात्रिंशत्तु समुत्सृज्य पञ्चविंशतिकं
 प्रिये ! । आकाशदीपं दद्यात् नवपञ्चयुगेन वा । त्रिदीपं
 पञ्चदीपञ्च एकं वा दापयेद्बुधः । अर्घ्यञ्चैव वहन् जन्तून् जा-
 यते नात्र संशयः । त्रिहस्तं सार्द्धहस्तं वा हस्तमात्रमथापि
 वा । ऊर्ध्वं तु दापयेद्दीपान् लभते वाञ्छितं फलम् । शिरे वक्षः-
 स्थले चैव अङ्गे वा मणिबन्धके । यो दीपं दर्शयेद्देवि ! स्वर्ग-
 लोके महीयते । कमलां ह्लादिनीञ्चैव धरणीं विजयां तथा ।
 जयां लक्ष्मीं सुभद्राञ्च महाभायां दलेऽर्चयेत् । ब्रह्मादीन्
 पूजयेदग्रे वासुदेवादिकानपि । शङ्खं पद्मनिधिं पूजेत् कुवेरं
 वरुणं तथा । इन्द्राणीमथ सम्पूज्य मन्त्रेणानेन संयजेत् ।
 नमस्तो इत्यादि । विश्वरूपस्थेत्यादि । त्वं गतिः सर्वभूतानां
 वरदासि हरिप्रिये ! । सर्वानन्दकरे ! देवि ! सर्वशाखे ! नमो-
 ऽस्तु ते । लोले ! देवि ! नमस्तोऽस्तु नरकार्णवतारिणि ! । क्षी-

रा-
ती-
ति-
ला-
सते
मूल-
रिम्हः
निव्यं
सक-
पन्दत्
दाभ-
वलस-
रूपल-
स्याह-
वाना ।
तवेद-

रोदंमथनोद्भूते ! प्रसीद परमेश्वरि ! जय पद्मालये ! देवि ! जय
 लक्ष्मि ! हरिप्रिये ! । सर्वानन्दकरे ! देवि ! सर्वशाखे ! नमोऽस्तु
 ते । जय चोरोददुहितर्मन्त्रे हे सुखिरा भव । इयं सांवत्सरी
 पूजा नैवेद्यादिकमुत्तमम् । लोले ! गृहीत्वा तत्सर्वं गृहाण पर-
 मेश्वरि ! । दीपदानान्तरे चैव मन्त्रमेतमुदीरयेत् । दामो-
 दराय नमसि तुलायां लोलया सह । प्रदीपं ते प्रयच्छामि
 नमोऽनन्ताय वेधसे । ऊर्ध्वतः सप्त लोका ये ये चाधोवर्तिनः
 सदा । दत्ताकाशप्रदीपेन प्रकाशं विचरन्तु ते । ये च नार-
 किणी लोकाः पीडया बाधिताः सदा । भवस्थान्ते प्रकाशन्तु
 दत्ताकाशप्रदीपतः । अन्धकारे स्थिता ये च ये च लोकविव-
 र्जिताः । तेषां प्रकाशनार्थाय प्रदीपो दीयते मया । यमद्वारे
 महाघोरे सन्ति ये पुरुषा मम । तेषां प्रकल्पितार्थाय प्रदीपो
 दीयते मया । वातवर्षपतङ्गादिस्नेहवर्त्तिक्षयादिना । निर्वा-
 णस्य प्रदीपस्य न दोषो मम केशव ! । नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो
 नमो धर्माय विष्णवे । नमो धर्माय रुद्राय कान्तारपतये
 नमः । ईशकोणे प्रदद्यात्तु मालये विजनेऽपि च । उल्का निशि
 तथा देया दक्षिणाभिमुखेन तु । निक्षिपेत्तत्र प्रथमं मन्त्रेण-
 नेन शङ्करि ! । उल्कासुखाश्च ये केचिच्चरन्ति इह भूतले ।
 उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्तेषान्तु परमा गतिः । आपदो मम
 नश्यन्तु सुखरात्रिप्रसादतः । उल्कासन्दीपनेनैव वर्द्धन्तु मम
 पूरवाः । कार्तिकस्य अमायां वै समारभ्य यशस्विनि । काल-
 रात्रिव्रतं कुर्याद् यथाकार्यं तथा शृणु । व्रतविध्यादिस्तु त्रि-
 पञ्चाशत्पटलेऽनुसन्धेयः ॥ इति कार्तिककृत्यम् ॥

तत्रैव चतुःपञ्चाशत्पटले ॥ वृश्चिके शुक्लपक्षस्य प्रतिपत्तु महेश्व-
 रम् । दूर्वाङ्कुरैः समभ्यर्च्य गणनामीश्वरो भवेत् ॥१॥ द्वितीयायां
 जगद्धात्रीं जले सम्पूज्य यत्नतः । एकाहारं ततः कृत्वा तृतीयायां

जनार्दनम् । चतुर्थ्याञ्चैव श्रीकान्तमेकादश्यां जनार्दनम् ।
द्वादश्याञ्चैव ब्रह्माणं त्रयोदश्यां शतक्रतुम् । चतुर्दश्याञ्च गौरीशं
सितपद्मैः समर्चयेत् । श्वेताम्बरधरो भूत्वा त्रिकालं संयते-
न्द्रियः । मधुना तर्पयेद्देवान् ब्रह्मलोके महीयते । वृश्चिके
पौर्णमास्यान्तु कल्पमुखाय वाग्यतः । पूजयेत् क्षेत्रविघ्नेशं
षष्ठ्यां कमलां तथा । षष्ठ्यां वसुं समभ्यर्च्य सप्तम्याञ्च दिवा-
करम् । अष्टम्यां त्रिपुराञ्चैव नवम्यां सुरसुन्दरीम् । दुर्गां बालां
समुद्दिश्य एकभक्तेन वर्त्तयेत् । दशम्याञ्चैव तां देवीं दिक्पती-
ञ्चापि पूजयेत् । सवितारं स्नापयित्वा देवान् रात्रौ बलिं चरेत् ।
वृहन्नीलतन्त्रे षष्ठपटले ॥ आर्गे मासि सिते पक्षे सप्तमी रवि-
वल्लभा । अन्नदां पूजयेद्भक्त्या पुत्रपौत्रसमन्वितः । लक्ष्मीः
स्थिरायतेऽवश्यं यावच्च सचराचरम् । तावत्तस्य गृहे लक्ष्मी-
श्रीद्वयं परिवर्जयेत् । निश्चला च भवेद्देवि । सत्यं सत्यं गणे-
श्वरि ! । पूजा चास्या महेशानि । कथिता तव सन्निधौ । अन्न-
दाकल्पके सम्यग् जानौहि नगनन्दिनि । । मत्स्यसूक्ते ॥ वृश्चिके
पौर्णमासौ तु विज्ञेया क्षेत्रपूर्णमा । द्वापरे पूर्णिमा पौषे त्रेतायां
माघमासके । बलिभिर्गुण्डखण्डैश्च पूजयित्वा द्विजोत्तमम् ।
अलक्ष्मीं नाशयेद्वाता लक्ष्मीञ्च लभते पराम् । यावकैः शर्करा-
द्यैश्च मोदकैर्विविधैरपि । क्षेत्रपूर्णमामारभ्य त्रिरात्रं परमे-
श्वरि ! । कृत्वा नक्तं महेशानि ! विष्णुलोके महीयते । सुर-
यज्ञमिदं प्रोक्तं महाविभवदायकम् । धनधान्यलक्ष्मीकरं श्री-
सौभाग्यप्रदायकम् । कृष्णप्रतिपदि विष्णुं पूजयेत् पार्वती-
पतिम् । अग्निकार्यं त्रिकालञ्च लक्ष्मीवान् जायते कुले ।
द्वितीयायां गुडं प्राश्य पूजयेत् सुन्दरीमपि । तृतीयायाञ्च गो-
विन्दं तिलं प्राश्य ततो निशि । चतुर्थ्यां यावकाहारो मदनञ्च
निशापतिम् । दधि प्राश्य ततो रात्रौ शिवलोके महीयते । प-

स्रम्यां दिननाथञ्च विष्णुञ्च लोलया सह । पूजयेत् पीवरं कुम्भे
 क्षीरं प्राश्य लभेत् श्रियम् । पूजयेच्चैव गोविन्दं गवामप्यधिपो
 भवेत् । सप्तम्याञ्च तथाष्टम्यां नवम्यां विजितेन्द्रियः । धना-
 ध्यक्षं श्वेतकुम्भे त्रिकालं नियतः शुचिः । महाविभवमाप्नोति
 लक्ष्मीः स्यादनप्रायिनी । नादेयतोये देवेशि ! कृष्णपक्षे ज-
 गद्गुरुम् । चित्रपट्टे समभ्यर्च्य क्षीरं प्राश्य ततो निशि ।
 अग्निमादिगुणैः सिद्धिर्जायते नात्र संशयः । दशम्याञ्च महेश-
 शानि ! एकादश्यां शतक्रतुम् । द्वादश्यां केशवं मूले त्रयोद-
 श्याञ्च पार्वति । चतुर्दश्यामशोकेन कामं विष्णुं समर्चयेत् ।
 त्रिकालं स्नानमासाद्य एकभक्तेन वर्त्तयेत् । एवं कृत्वा सक-
 हैवि । ब्रह्मलोके महीयते । अमावस्यायां गोमुख्ये गले विप्र-
 मुखे गले । गोक्षीरेण चरुं कृत्वा पितृनुद्दिश्य शङ्करि । म-
 धुना गुडखण्डेन लवणेनोदकेन च । त्रिकालं तर्पयित्वा तु
 काममाप्नोत्यभीष्टितम् । ऐश्वर्यमतुलं प्राप्य पितृलोके मही-
 यते ॥ इत्याग्रहायणकृत्यम् ॥

तत्रैव ॥ धनुःस्थे च ततः सूर्ये शुक्लपक्षे वरानने ।।
 प्रतिपदि महेशानि ! प्रातःस्नायी जितेन्द्रियः । त्रिकालं
 पूजयेत् सूर्यं रोगान्मुच्येत नान्यथा । कृष्णपक्षे जगन्नाथं
 पूजयेत् पार्वतीपतिम् । अग्निकार्यं ततः कृत्वा ततो मुच्येत
 बन्धनात् । द्वितीयायां समारभ्य शुक्लपक्षे विशेषतः ।
 आदित्यमथ रुद्रांश्च पूजयेद्भक्तिभावतः । यावत् पञ्च-
 दशीञ्चैव तावदेव महेश्वरि । संसारान्मुच्यते देवि ! नात्र
 कार्या विचारणा । चतुर्थ्यां शुक्लपक्षे तु धनूराशिं गते रवी ।
 एकभक्तेन देवेशि ! रमेशं प्रति पूजयेत् । कृष्णं शचीपतिं
 विष्णुं पञ्चम्यां मधुसूदनम् । षष्ठ्यां स्कन्दं विशाखाञ्च रात्रौ
 तु क्षीरभोजनम् । सप्तम्याञ्च तथाष्टम्यां नवम्यां पञ्चयोर्दशोः ।

काल्यायनीं समभ्यर्च्य एकभक्तो न शङ्करि ! । दशभ्यां पार्वती-
नाथमेकादश्यां श्रियः पतिम् । पिष्टकैः पूजयेद्विष्णुं स्वयं नक्तं
समाचरेत् । यावच्चतुर्दशो प्राप्य अमावास्याञ्च प्रत्यषे । पौर्ण-
मास्यां ततः कल्मे पितृनुद्दिश्यं तर्पयेत् । पुरोडाशेन विधिना
कदाचिन्नावसौ दति ॥ इति पौषकृत्यम् ॥

तत्रैव पञ्चाशत्पटले ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मकरस्थे सह-
स्रांशो शुक्लपत्रे यश्चिनि । प्रतिपदि सरित्तोये स्नात्वा-
भ्यर्च्य जनार्दनम् । वर्त्तयेदेकभक्तेन अग्निकार्यपुरःसरम् ।
क्षीरेणाघ्यं विधातव्यं मुच्यते शोकसागरात् । द्वितीयाया
तथा शक्रं चन्दनेन विलिप्य च । पौठे वाऽगुरुपत्रे च पूज-
येद्भक्तितत्परः । हविस्थाशी भवेद्रात्रौ रूपवानभिजायते ।
तृतीयायासुमाकान्तं श्रीपतिं कमलालयाम् । समभ्यर्च्य
निशानाथं कुन्दपुष्पैः पृथग्विधैः । मुञ्चच्च प्राशनं कुर्या-
न्महापातकनाशनम् । चतुर्थ्यां शुक्लपत्रस्य पूजयेद्भगवन्नायकम् ।
ताम्रकुम्भे विशेषेण पञ्चरत्नेन शङ्करि । तिलान् सम्प्रा-
शयेद्रात्रौ तिलैर्होमं समाचरेत् । लक्ष्मीवान् सुतरां चापि
धनवान् स प्रजायते । पञ्चम्याञ्च जगद्धात्रीं प्रातरिव नदीजलैः ।
स्नापयित्वा सुलक्ष्मीं तां कुम्भैर्मारकतैरपि । वसन्तपञ्चमी
नाम सर्वपापप्रमोचनी । वसन्तञ्च समभ्यर्च्य कन्दर्पे सरति
प्रिये । वसन्तरागश्रवणात् श्रियमाप्नोत्यभीष्टिताम् । श्रीप-
ञ्चमीं तु केचित्तां मुनयः प्रवदन्ति वै । वर्त्तयेदेकभक्तेन श्रियो
न विच्युतिर्भवेत् । षष्ठ्यां प्रातः कृतस्नानः पूजयेच्च दिवाकरम् ।
क्षीरेणाघ्यं ततो दद्यान्मुच्यते व्याधिबन्धनात् । सूर्यग्रहण-
तुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी । अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं
महाफलम् । वदर्याश्चार्कपत्रस्य सप्त पत्राणि शालिजान् ।
रक्ताञ्च तण्डुलान् दूर्वाः कृत्वा शिरसि मज्जयेत् । ॐ यदयज्ज-

अकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु । तन्मै रोगञ्च शोकञ्च मा-
 करी हन्तु सप्तमी । सप्तार्कपत्रैरतैश्च तण्डुलैर्गन्धचन्दनैः । फले-
 दूर्वाजवापुष्पैरर्घ्यं दद्यात् कृतक्रियः । सप्तसप्तिप्रोतिवहे !
 सप्तलोकप्रदौपनि ! । सप्तव्याहृतिके ! देवि ! नमस्ते रविमण्डले ।
 जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके ! । सप्तव्याहृतिके ! देवि !
 नमस्ते रविमण्डले । दानं कोटिगुणं प्रोक्तं होमं जापं सुरा-
 र्चनम् । ब्राह्मणान् भोजयित्वा च हविष्यान्नं स्वयं ततः ।
 तीर्थे स्नानं दशगुणं गङ्गायां कोटिरेव च । रविवारे च स-
 म्प्राप्ते कोटिकोटिगुणं भवेत् । दद्यादर्घ्यं सहस्रञ्च शतं वापि
 तदर्शकम् । अयुतेन लभेद्दास्यं लक्षैः सायुज्यमेव च । अशक्तो
 द्वादशं दद्यात् पञ्चविंशमथापि वा । द्विगुणत्वान्नहेशानि ।
 व्रताङ्गे ऽर्घ्यमुदाहृतम् । भजेद्रविदिने प्राप्ते प्रवृत्ते चोत्तरायणे ।
 पुन्नामधेयनक्षत्रे गृह्णौयाद्दशमीव्रतम् । हस्तो मित्रस्तथा पुष्यो
 ज्येष्ठा भृगुपुनर्वसु । पुन्नामधेयनक्षत्राण्येतान्याहुर्मनीषिणः ।
 सप्तम्यां शुक्लपक्षे तु कृतकृत्यः समाहितः । पार्वतीशं गणेशञ्च
 पूजयेद्दयितया सह । त्रिकालं पूजयित्वा तु तिलपायसमो-
 दकैः । ततो नक्तं चरेन्नन्वी हविष्यान्नेन शङ्करि ! । यत् कृतं
 द्वादशाष्टम्यमेकेनैव तु तत् फलम् । भवेत्तस्मात् प्रयत्नेन स-
 र्वस्वेनापि भाविनि ! । पितृनुद्दिश्य यत् श्राद्धं यः करोति
 स्वभक्तितः । सर्वश्राद्धे यत् फलञ्च काङ्क्षन्तिस्म न संशयः ।
 पितृतर्पणतः शेषे सर्वे वर्णा द्विजातयः । तिलोदकान्तु भोक्ताय
 प्रदद्यादक्षलित्रयम् । वामोपवीतिना देवि ! दक्षिणाशा-
 सुखेन तु । दद्यादनेन मन्त्रेण शुचिः प्रयतमानसः । एहि
 भीम ! महाबाही ! शान्तनीः कुलनन्दन ! । गृहाण दत्त-
 मस्माभिः पानीयं वरदो भव । वैयाघ्रपद्यगोत्राय साङ्गति-
 प्रवराय च । अपुत्राय ददाम्येतत् सलिलं भीष्मवर्मणे ।

मध्याह्न्यापिनी ग्राह्या श्राद्धे भौष्माष्टमी सदा । स्नाने च
तर्पणे दाने ग्राह्या सूर्योदयात् परा । यथेकस्मिंस्तु वै मासि
यदि स्थान्माकरोदयम् । भौष्माष्टमी भवेद्वापि तदा ग्राह्या
परा तिथिः । नवम्यान्तु जगद्धात्रीं गौरीं कमलया सह । श्री-
वृक्षे पूजनादेव महतीं श्रियमाप्नुयात् । दशम्यामथ नक्ताशे
सप्तमीं सप्तकुम्भके । पूजयेन्नरपुत्रैश्च नानाविभवविस्तरैः ।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या ऋषिं सम्पूज्य वैष्णवम् । तोषयेद्भाव-
बुद्ध्या च तत्तुल्यो जायते प्रिये ।। एकादश्यां प्रातरेव ततः
सङ्कल्पयेद्व्रतो । त्रिकालं पूजयेद्विशुभ्नि कार्यसमन्वितम् ।
एकेनैवोपवासेन कृतेन परमेश्वरि ।। सर्वपापैर्विशुद्धात्मा हरि-
सायुज्यमाप्नुयात् । जागरं कारयेद्रात्रौ संहिताश्रवणादिभिः ।
न चात्र वारदोषोऽस्ति माघे चैव घटेषु च । उत्थाने शयने
विष्णोर्वासरन्तु न लङ्घयेत् । दिनक्षये दशाविधे सदैव परि-
वर्जयेत् । गृहस्थस्तु विशेषेण पुत्रवांश्चेद्विशेषतः । नक्तं पुण्य-
क्षयश्चैव पूर्वसङ्कल्पितं विना । द्वादश्यामप्युषःकाले स्नानं
कुर्यान्नदीजले । धात्रोस्नानं प्रकुर्यात् महापातकनाशनम् ।
गोविन्दं पूजयेद्भक्त्या धेनुं दद्यात्ततो व्रतो । दानञ्चैवाग्नि-
कार्यञ्च ब्राह्मणानथ भोजयेत् । शृणु देवि ! महागुह्यं श्री-
विष्णोर्व्रतपञ्चकम् । विभूतिद्वादशो नाम पञ्चैव परिकी-
र्तितः । कार्तिकस्य च मार्गस्य भाद्रस्य फाल्गुनस्य च । आ-
षाढस्य वरारोहे । द्वादश्यां शुक्लपक्षके । श्रावणस्य तु सिंहस्य
अशून्या नाम द्वादशी । जनादेनं समुद्दिश्य उपवासं करोति
यः । अशून्या च भवेत् शय्या जलजन्तानि शङ्करि ।। त्रयो-
दश्यान्तु शुक्लायां विभूत्याख्या त्रयोदशी । माधवं कलसे कृत्वा
भूतिमाप्नोति शाश्वतौम् । माघे मासि सिते पक्षे ख्याता राम-
चतुर्दशी । कामविद्वापि सा कार्या शिवरात्रिविधानतः ।

ष
 ष
 पः
 श्री
 ते ।
 तार-
 तेन-
 गार्ह-
 णा-
 णा-
 न ज-
 माति-
 माला-
 मासते
 न्य ब-
 नरेन्द्रः
 निव्यं
 सक-
 लन्यत
 इदाम-
 विलस-
 रूपल-
 तस्याह-
 इवानः ।
 इतपेद-

पौर्णमास्यामुषःकाले स्नानं कुर्याद्विधानतः । सम्पूज्य च
जगन्नाथं दानं दद्याद्विभूतये । धेनुं दद्याद्विजातिभ्यो विष्णु-
लोके महीयते । इन्धनञ्चैव पक्वान्नं हविष्यान्नेन वर्त्तयेत् ।
कृष्णपक्षे प्रतिपदि स्कन्दमुद्दिश्य यत्नतः । दानं दद्याद्विजा-
तेभ्यः पूजयित्वा विधानतः । द्वितीयायां जगन्नाथं समुद्दिश्य
प्रपूजयेत् । प्रदद्याच्चरुनैवेद्यं हविष्यान्नेन वर्त्तयेत् । तृतीयायां
तथा धर्मं चित्रगुप्तं समर्चयेत् । पिष्टकाशी भवेद्रात्रौ धर्म-
लोकाद्भवेच्च्युतिः । चतुर्थ्यां कृष्णपक्षे तु लक्ष्मीं कुम्भे समर्च-
येत् । पायसाशी भवेन्नित्यं रक्षाया न च्युतिर्भवेत् । पञ्चम्यां
मदनं देवं गोपालं रुक्मिणीमपि । चित्रे वाक्षतपुञ्जेषु नरो
न निरयं व्रजेत् । षष्ठ्यां धन्वन्तरिं शम्भुं कुमारं पूजयेन्नृशि ।
क्षीरकुम्भे महेशानि ! न शीको जायते भुवि । सप्तम्यां कम-
लानाथं दृढकुम्भे समर्चयेत् । वारिधारां ततो दद्याद्भार्यया
च व्रतस्य वै । कृष्णाष्टम्यां नवम्याञ्च विल्वपत्रेण शङ्करम् ।
द्विकालं पूजयेद्भक्त्या पार्वत्या सह गोमये । पिण्डेभ्योऽर्च्यं
हृषीकेशमेकभक्तेन वर्त्तयेत् । दशम्यां कृष्णपक्षस्य गङ्गां स-
म्पूजयेदुन्नती । एकादश्यां हविष्याशी माधवञ्च समर्चयेत् ।
त्रयोदश्यां तथा कामं चतुर्दश्याञ्च प्रत्युषे । अनर्काभ्युदिते काले
स्नानं कुर्यात् सरिज्जले । शतजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव न-
श्यति । रटन्तौ नाम विख्याता सर्वपापहरा शिवा ॥ बृह-
न्नीलतन्त्रे सप्तमपटले ॥ माघे मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या
चतुर्दशी । तस्यां सम्पूजयेत्तारां महाविभववित्तरैः । चक्रवर्ती
महाराजो भवत्येव न संशयः ॥ मतस्यसृक्ते ॥ अमावस्यां कृत-
स्नानस्तिलान्नेन महेश्वरि ! । आङ्गं कुर्याद्विधाशी पिष्ट-
लोके महीयते ॥ इति माघकृत्यम् ॥

मतस्यसृक्ते । श्रीभगवानुवाच ॥ कुम्भसंख्ये सहस्रांशौ

पूजामारभ्य देशिकः । तथा कृष्णे महेशानि । प्रतिपत्-
प्रभृति क्रमात् । ब्रह्माणच्चैव गायत्रीं सतीं गौरीं जय-
न्तिकाम् । कमलां पार्वतोच्चैव महामहिषमर्दिनीम् ।
सरस्वतीं महामायां महालक्ष्मीं रतिं तथा । कालरात्रिसुमा-
च्चैव यजैतैरुपचारकैः । कर्णेनाकर्णनो तूर्णो पूर्णो मदन-
प्रीतिदा । क्रीडयेयुश्च पूर्वाह्णे नराः सिन्दूरमण्डिताः । पूज-
येच्च महेशानि । गोपालं गोपिवल्लभम् । मन्दारैः किंशुकैश्चैव
तथा चूताङ्कुरैरपि । पूजयेद्विधिवद्देवं शिविकायां ततो न्य-
स्येत् । मुहूर्त्तेऽभिजिते पञ्चवाद्यैर्यात्रां समाचरेत् ॥ नारदपञ्च-
रात्रे द्वितीयरात्रे सप्तमाध्याये ॥ परं शिवचतुर्दश्यां शिवं सम्प्राप्य
पूजनम् । तद्दिनेऽनशनं विप्र ! परं निर्वाणकारणम् । मत्स्यसूक्ते ॥
शिवव्रतमथो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् । चन्द्राब्जे करणे देवि !
रुद्रसायुज्यमाप्नुयात् । चतुर्दश्यामभावास्यादिवसं यदि सं-
सृशेत् । यदा त्रयोदशी चन्द्रा त्रयोदश्यां शिवव्रतम् । प्राप्नो-
त्यतुलभोगन्तु, यस्य रात्रौ चतुर्दशी । शिवरात्रिव्रतं तच्च कर्त्तव्यं
तिथिपूजनम् । माघफाल्गुनयोर्मध्ये या च कृष्णा चतुर्दशी ।
शिवयोगेन संयुक्ता शिवरात्रिरुदाहृता । दिवास्पर्शं व्रतं विद्या-
द्रात्रौ वा पूर्णमेव तु । ह्येनेनैव व्रतं कुर्यात् शिवयोगस्य
शङ्करि । माघौतः परतो या स्यात् कृष्णा माघौ चतुर्दशी ।
तस्यां सम्पूजनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते । योगतिथ्यन्तरे चैव
प्रवेशञ्च समाचरेत् । न रात्रौ पारणं कुर्यान्न सन्ध्यायां कथ-
ञ्चन । स्नानमावाहनं कुर्याच्चतुर्दश्याः समागमे । आतुरे मा-
र्जनं ज्ञेयं स्नानात् कोटिगुणं फलम् । एकादशगुणं कुर्यान्नै-
वेद्यं परमेश्वरि । बलिञ्च त्रिविधं कुर्यात् शृणुष्व वरव-
र्णिनि । अष्टम्यां पञ्चदश्यां वा चतुर्दश्यामथापि वा । कृष्णा-
ष्टमी स्कन्दपठौ शिवरात्रिचतुर्दशौ । धनिष्ठा शिवयोगे च

१
२
३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९
४०
४१
४२
४३
४४
४५
४६
४७
४८
४९
५०
५१
५२
५३
५४
५५
५६
५७
५८
५९
६०
६१
६२
६३
६४
६५
६६
६७
६८
६९
७०
७१
७२
७३
७४
७५
७६
७७
७८
७९
८०
८१
८२
८३
८४
८५
८६
८७
८८
८९
९०
९१
९२
९३
९४
९५
९६
९७
९८
९९
१००

या च कृणां चतुर्दशी । रात्रियोगे तु सम्प्राप्ता सा तु पुण्यतमा
 मता । योगस्यर्गं पुण्यमात्रं रात्रियोगेऽधिकं फलम् । सर्वरात्रौ
 दशगुणं दिवास्पर्गं सहस्रकम् । स्नात्वा संस्थापयेत्क्षिप्रं स्थण्डिले
 यत्र पूजयेत् । तत्र वै दर्पणे कुर्यात् शालग्रामे मनो तथा ।
 वारिणा प्रथमे स्नानं पञ्चनद्येति वा पुनः । आप्यायस्वेति क्षीरेण
 दधिक्षावृत्तिं वै दधि । मधुवातेति मधुना गायत्र्या च गुडेन
 च । आपोहिष्ठेति मन्त्रेण तथा रत्नोदकैरपि । तोयेनानेन
 मन्त्रेण तथा पञ्चाशृतेन तु । मार्जयेद्विल्वपत्रेण घटस्थापनमा-
 रभेत् । सङ्कल्पान्ते पठेन्मन्त्रं कृताञ्जलिपुटेन तु । अद्य शैव-
 चतुर्दश्यां जागरयाम्यहं निशाम् । पूजां दानं जपं होमं कार-
 याम्यग्रशक्तितः । शिव ! शङ्कर ! सर्वज्ञ ! ब्रतानां फलदायक ! ।
 शिवरात्रिव्रतं देव ! करोमि त्वत्प्रसादतः । चतुर्दश्यां निरा-
 हारो भूत्वा चेवापरेऽहनि । भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे
 भवेत्पर ! । उत्तराभिमुखो भूत्वा प्राणायामं समाचरेत् ।
 गणेशं दिक्पतेश्चैव ग्रहाश्चैव मरुद्गणान् । ब्रह्माणं प्रतिकुम्भे
 च ततो देवासनं यजेत् । नन्दिनञ्च महाकालं पूर्वहारि
 यजेद्बुधः । भूतेशं चण्डपाणिञ्च दक्षिणहारि संयजेत् । उत्तरे
 चैव वेतालं वृषभञ्च ततो यजेत् । मध्ये आधारशक्त्यादौन्
 साङ्गोपाङ्गं समर्चयेत् । ध्यायेद्देवं महेशानं ध्यानं शृणु वरा-
 नने ! । वृषासनगतं पद्मं तत्र पद्मासने स्थितम् । शङ्खस्रष्टिक-
 सङ्काशमणिमादिगुणैर्युतम् । दशभिर्बाहुभिर्धत्ते शूलशक्तिवरा-
 भयम् । खट्वाङ्गं भुजगञ्चैव घण्टाङ्गुलं तथैव च । डमरुं वीज-
 पूरञ्च नोलोत्पलवरं तथा । द्वात्रिंशत्क्षणोपेतं पञ्चवक्त्रं त्रिलो-
 चनम् । इच्छादिशक्तिसहितं वीजिनारोपयेत्ततः । अङ्गपूजां
 विधायथ दद्यात् पाद्यादिकं शुभम् । ततः स्वशक्तिसंयुक्तान्
 पूर्वोदिदिग्दले यजेत् । श्रीकण्ठादींश्च तद्वाङ्मे मूर्तीरष्टौ च

संयजेत् । उपचारैः समभ्यर्च्य अङ्गपूजावसानके । अनेन विधिमन्त्रेण दद्यादर्थ्यं विभूतये । दधिदूर्वाक्षतञ्चैव गन्धपुष्प-समन्वितम् । जानुभ्यामवनीं गत्वा मन्त्रेणानेन साधकः । नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहाराय च । शिवरात्रौ ददा-म्यर्थ्यं प्रसीद उमया सह । त्रिमध्वत्तेन देवेशि ! प्रथमप्रहरणं तु । मोदकं पायसान्नं वा संयुक्तं वा विशिष्यते । द्वितीयप्रहरे चैव स्वयं स्थाहारुणेन तु । स्नानं कुर्यात्तु मन्त्रेण शृणु मन्त्रं वरानने । अज्ञानतिमिरान्धानां प्रणीतकल्मषात्मनाम् । स्नानं करोमि देवेश ! सर्वपापविशुद्धये । देवञ्च पूर्ववत् स्नात्वा पूर्ववच्चार्चनञ्चरेत् । रुद्रसूक्तेन कामेन रुद्रसूक्तेन चार्चयेत् । हरं महेशं विजयं यत्तेशं वरदं शिवम् । नारायणञ्च ब्रह्माणं पूजयेद्भक्तितत्परः । होमान्ते प्रदेदर्थ्यं मधुक्षीराज्यसंयुतम् । कुशपुष्पसमायुक्तं गुडशर्करयान्वितम् । नमः शिवाय शान्ताय भुक्तिमुक्तिप्रदाय च । शिवरात्रौ ददाम्यर्थ्यं सर्वाभिमत-साधनम् । तृतीयप्रहरे चैव स्नानं कुर्याद्विशुद्धये । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुशेनाभ्युक्ष्य वारिणा । विरूपाक्ष ! महादेव ! सुचिन्त्यो मे भवाधिप ! । शिवरात्रौ कृतस्नानाद्भुक्तिमुक्तिप्रदो भव । शिव ! शङ्कर ! देवेश ! प्रभो ! पशुपते ! हर ! । गृहाणार्घ्यं मिदं देव ! उमा-कान्त ! प्रसीद मे । दत्त्वाभ्यं विधिवद्देवि ! पूजयेन्मन्त्रं हरम् । योगेशं माधवं धर्मं विष्णुलोकं तथैव च । चतुर्थप्रहरे चैव स्नानं कुर्याद्विचक्षणः । मार्जनञ्च ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुन्दरि ! । यथाष्टकोटिलिङ्गानां यत् फलं पूजनादिभो ! । तदेतत् प्राप्यते नाथ ! शिवरात्रौ स्नानकर्मणा । पावकं भुवनं विष्णुं नरसिंहं शतक्रतुम् । जनार्दनं माधवञ्च मध्यपीठे समर्चयेत् । गौरीञ्च वीरभद्रञ्च चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् । सर्वपापविशुद्ध्यर्थमर्घ्यो मे प्रति-गृह्यताम् । संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर ! । गृहाणार्घ्यं

मया दत्तं शिवरात्रौ प्रसीद मे । प्रभाते च ततः कृत्वा नित्यं-
 कृत्यं समाहितः । देवं त्र्यम्बकमन्त्रेण स्नापयेत् पूजयेत्ततः ।
 दक्षिणां विधिवद्दद्यात् पारणं च समाचरेत् । नमः
 शिवायेति मन्त्रेण ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः । बृहन्नीलतन्त्रे
 सप्तमपटले । प्राङ्मुखे मध्यरात्रौ च फाल्गुने मासि
 सुन्दरि ।। चतुर्दिक्षु महेशानि ! कदलीखण्डमुत्तमम् ।
 अर्पायानि देवेशि ! मण्डपं कारय प्रियम् । चूताश्वत्थवटै-
 र्देवि ! कृन्नं कुर्याच्च मण्डपम् । कुमारीवेष्टितं कुर्या-
 न्मण्डपं सर्वमोहनम् । तारामूर्त्तिस्तथा कालीमूर्त्तिर्वा देव-
 राजक ।। सर्वकार्यप्रदां देव ! तां कुरुष्व महेश्वर !। अन्नदा-
 मूर्त्तिमेतां हि कुरु वा सुखन्दित !। पट्टवस्त्रैर्महादेव्यै बलिं
 यत्नेन दापयेत् । आसनं कम्बलं दद्यात् स्वागतं मधुनिर्मितम् ।
 पाद्यन्तु पयसा दद्यादर्घ्यं दद्यात् कुशेन च । मधुपर्कं घृतेनैव
 जलेनाचमनौघकम् । क्रमेण स्नानमाचर्य वसनं लोहितं
 स्नातम् । रजताभरणं दद्यात् सर्वदेवमनोरमम् । तण्डुलेन
 विना देव । नैवेद्यं दापयेत् प्रिय !। चर्यं चोष्यं तथा लेह्यं पेयं
 दद्यान्मनोरमम् । रक्तचन्दनवीजेन जपेदष्टसहस्रकम् । शुक्ल-
 प्रतिपदारभ्य नवम्याञ्च समापयेत् । बलिं दद्यान्महादेव्यै
 क्वाग्निं महिषेण वा । अन्नं मत्स्यं तथा मांसं घृतं परम-
 शोभनम् । पिष्टकं परमं दिव्यं दद्यादुदेव्यै मनोरमम् । होम-
 येद् देवदेवेश ! यथाशक्ति विधानतः । कुमारीं पूजयेद्यत्नैर्द्रव्यै-
 र्वहुविधैरपि । होमादिकन्तु सकलं कुमारीपूजनं विना ।
 परिपूर्णफलं नैव सफलं पूजनं भवेत् । ततः सकलसिद्धार्थं
 कुमारीं वा प्रपूजयेत् ॥ तथा । तारिणीं कालिकाञ्चैवान्नपूर्णं
 भैरवीं पराम् । सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति ।
 पूजाविधानं देवेश ! श्रोतुमर्हस्यसंशयः ॥ मत्स्यसूक्ते सप्तपञ्चाश-

त्पटले । श्रीभगवानुवाच । अथ मासाश्रितं कर्म वक्ष्ये देवि !
समासतः । यथाक्रमं यथाकालं यथाशक्ति विधानतः । व्रतस्थो
दापयेद्दानं यन्नं कुर्याद्भुतागमे । प्रतिग्रहं विनोदश्च स्त्रीणां
सम्प्रेक्षणादिकम् । भोजनं कांस्यलीहे च ताम्बूलस्य च भक्षणम् ।
क्षारञ्च कटुकञ्चैव वर्जयेन्मूलकं तथा । विष्वयावकमाषाञ्च
तिक्तान्नं माक्षिकं त्यजेत् । शाकं सर्वव्रते शस्तं सकृत्पक्वं
विशिष्यते । मूलपत्रकरौरादिफलकान्तादियोजनम् ॥ इति
फाल्गुनकृत्यम् ॥

रामार्चनचन्द्रिकायां पञ्चमपटले । मधौ शुक्लतृतीयायां
जानकीरमणं प्रभुम् । राजोपचारैः सम्पूज्य राममाम-
न्त्रयेत् कलौ । दोलारूढं प्रपश्यन्ति ये कृष्णं मधुमाधवे ।
अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते नात्र संशयः । दोलारूढस्य देवस्य
येऽप्ये कुर्वन्ति जागरम् । सम्यक् पुण्यफलावाप्तिर्निमिषे निमिषे
भवेत् । चैत्रशुक्लनवम्यान्तु कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम् । राम एव
परं ब्रह्म तद्दिनं रामतोषकम् । व्रतस्य विस्तारस्तत्रानु-
सन्धेयोऽत्र तु ग्रन्थगौरवभिया न लिखितः । तद्दिने उपवास-
स्यावश्यकत्वमपि तत्रैव । यस्तु रामनवम्यान्तु भुङ्क्ते मोहा-
दिमूढधौः । कुम्भीपाकेषु घोरैषु प्रच्यते नात्र संशयः । उप-
वासासमयस्य एकभक्तमप्युक्तं तत्रैव । नवम्यामेकभक्तेन अङ्ग-
भूतेन राघवः । इच्छाकुर्वंश्चतिलकः प्रीतो भवति नान्यथा ।
तथा । एकभक्तव्रतो तत्र सहाचार्यो जितेन्द्रियः । शृण्वन्
रामकथां दिव्यामहः शेषं नयेन्मुने ! अन्यत् सर्वं तिथितत्त्वा-
दावनुसन्धेयम् । तथा । द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनो-
त्सवः । बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्त्तव्यः प्रतिवत्सरम् । तत्र
स्यात् स्त्रोयतिथिषु वज्रादौ दमनार्पणम् । वज्रिविरिञ्चिर्गि-
रिजा गणेशः फणी विशाखो दिनकृष्णहेशः । दुर्गान्तकौ विघ्न-

हरिस्मराश्च सर्वेऽपि पीठेऽत्र तिथौ तु पूज्याः । दमनोत्सव-
यात्रा तत्रैवानुसन्धेया अत्र तु ग्रन्थगौरवमिया न लिखिता ।
तत्फलन्तु तत्रैव । स्वयं धृत्वाभ्यर्च्य वन्धून् विप्रान् सम्भोज्य
पारयेत् । स्वादश्चमेधजं पुण्यमित्याह भगवान् शिवः । पारणाहे
न लभ्येत द्वादशी घटिका न चेत् । तदा त्रयोदशी आद्या पवित्रा
दमनार्पणे । माधवे दमनारोपः स्यान्मधौ विस्मृतो यदि ।
वैशाख्यां आरण्ये भाद्रे कर्त्तव्यं वा तदर्पणम् ॥ इति चैतकृत्यम् ।

वैशाखे पौर्णमास्यान्तु जलस्थं जगदोत्तरम् । शुक्लामेकादशीं
यावत् पूजयेत्तं प्रहर्षितः । निक्षिप्य जलपात्रे तु मासे माधव-
संज्ञिते । माधवं येऽर्चयिष्यन्ति देवास्ते न नरा भुवि । स्वर्ण-
पात्रे तथा रौप्ये ताम्बे वा मृण्मयेऽपि वा । तोयस्थं योऽर्चयेद्-
देवं शालग्रामसमुद्भवम् । प्रतिमां वा महाभाग ! तस्य पुण्य-
मनन्तकम् । तस्मात् ज्येष्ठे सदा भूप ! तोयस्थं पूजयेद्भरिम् ।
वीतपापो नरस्तिष्ठेद् यावदाभूतसंभवम् । ज्ञेयः कालविकल्पो-
ऽयं मुक्तस्य हयमेव वा । गन्धोदकं वा तत्पात्रे नित्यपूजां
समाप्य च । अभिवाद्य दिवा रात्रौ देवं नीत्वा निजासनम् ।
प्रक्षोपचारैः सम्पूज्य तीर्थं प्राप्य विसर्जयेत् । आत्मानं गृह-
दारादीन् तेन तीर्थेन पावयेत् । द्वादश्यान्तु जले रात्रा-
वर्चयेद्गारुडोक्तिः । द्वादश्यां पूजयेद्रात्रौ जलस्थः जलशायि-
तम् ॥ इति वैशाखज्येष्ठयोः कृत्यम् ॥

तत्रैव ॥ आपादशुक्लद्वादश्यां क्षौराभिशयनोत्सवः । का-
र्याऽन्यथा त्वनाहृष्टिर्भवेत् पौराणवाक्यतः । मिथुनस्थे सह-
स्रांशौ स्नापयेन्मधुसूदनम् । तुलाच्चापि गते तस्मिन् पुनरुत्था-
पयेत् प्रभुम् । मिथुनस्थे सहस्रांशौ न स्नापयति यो हरिम् ।
वैष्णवेः सह सम्भूय ह्यनाहृष्टिस्तदान्वया । अस्मिंस्तिथौ वैष्ण-
वानां सुद्राङ्गधारणमुक्तं तत्रैव । शौनकोक्तप्रकारेण तप्तमुद्रा-

ङ्गधारणम् । कर्तव्यं वैष्णवैः सर्वैः सम्प्रदायानुरोधतः । साम-
वेदेऽपि । प्रतद्विष्णो अजचक्रे सुतप्ते जन्मान्मोधा उत्तरे कक्षे
शीन्द्राः । मूले बाह्वोर्दधति प्रणवानि लिङ्गान्यङ्गे तप्तायु-
धानि पर्यन्त इति । तत्फलमुक्तमथर्वणा । यथा । उरुक्रमस्य
चिह्नैरङ्गिता लोके उरुभागा भवन्तीति । ब्राह्मणस्यापि वैष्णव-
स्याङ्गधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायाम् । यथा । अग्निहोत्रं
तथा नित्यं वेदस्याध्ययनं तथा । ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तचक्रा-
ङ्गधारणम् । यद्यपि वैष्णवस्येति नोक्तं केवलं ब्राह्मणस्येति
तथाप्यत्र प्रागुक्तवचनेकवाक्यतया वैष्णवस्येति लभ्यते । धारणा-
क्रमस्तु तत्रैव । षोडशोपचारैर्भगवन्तमभ्यर्च्य चाक्षरे परमे
व्योम शन्नो मित्रसंवरुण इत्येताभ्यां चक्रं शङ्खं चाभ्यर्च्य द्वा-
दशाक्षरम् । न हि तज्जरायानेर्मथे प्रथमस्य प्रचेतसमित्या-
भ्याम् अग्नावादध्यात् । वैश्वदेवस्य स्यामित्यग्निष्वर्थयेत् ।
पुरुषसूक्तेन शतमाहुतीर्हुत्वा भगवन्तं पुरुषसूक्तेनोपस्तुत्य यो
ब्राह्मणमिति दण्डवत् पुरतो निपतेत् । ततः । सुदर्शन ! महा-
ज्वाल ! सूर्यकोटिसमप्रभम् । अज्ञातार्थस्य मे नित्यं विष्णो-
र्मार्गं प्रदर्शय ॥ इति गृहीत्वा श्रीं सुदर्शनाय विद्महे महा-
ज्वालाय धीमहि तन्नश्चक्रं प्रचोदयादिति चक्राधानम् । ततः ।
पाञ्चजन्य ! महाध्वान् ॥ ध्वस्तपातकसञ्चय ॥ पाहि मां पापिनं
घोरसंसारार्णवपातितम् ॥ इत्यादाय पाञ्चजन्याय विद्महे
पवमानाय धीमहि तन्नः शङ्खः प्रचोदयादिति शङ्खाधानम् ॥
मुद्राधारणफलमपि तत्रैव ॥ य एवं कुरुते विद्वान् ब्राह्मणः
श्रोत्रियः शुचिः । सर्वपापैः प्रमुच्येत विष्णुलोकञ्च गच्छति ।
अथवा उल्लानद्वादश्यामपि मुद्राङ्गधारणम् कार्यम् । शयन्या-
द्यैव बोधिन्यां चक्रतौर्थं तथैव च । शङ्खचक्रविधानेन वङ्गिपूतो
भवेन्नरः ॥ इति तद्भुतवचनादिति मुद्राधारणविधिः ॥

प्राण्यङ्गचूर्णं चर्माम्बुजम्बीरे बीजपूरकम् । अयन्नमिष्ट-
 मन्नाद्यं यद्विशोरनिवेदितम् । दग्धमन्नं मसूरञ्च माषञ्चेत्यष्ट-
 धामिषम् । रुच्यं तत्तद्देशलभ्यं फलमूलादि वर्जयेत् । निष्पा-
 वान् राजमाषांश्च मसूरसन्मितानि च । वृन्ताकुञ्च कलि-
 ङ्गञ्च सुप्ते देवे न भक्षयेत् । मत्स्यसूक्ते अष्टपञ्चाशत्पटले ॥
 धरण्यामृतमत्यान्तु तथा सप्त दिनानि च । वटे सोमवटे
 चैव न दत्तेऽपि मधूजके । पूजयेत् क्षैत्रपालञ्च जयपालं
 महाबलम् । नगरग्रामपीठाद्ये ह्यगस्त्ये चोत्तरेऽपि वा ।
 न कुर्याद्ग्राममध्ये तु न कोणेऽपि वरानने । उत्तराशां
 गते सूर्य्ये पुण्यर्त्ते तु शुभेऽहनि । स्नापयेत् प्रथमं वृद्धं
 स्थिरो भव इतीरयन् । स्नापयेत् पञ्चगव्येन त्रिः सूत्रेण च
 षेष्टयेत् । कृताकृतज्ञविप्रेण स्थितभार्य्येण सुन्दरि ! । वृषान्ते
 त्रिदिनञ्चैन मिथुनान्ते दिनत्रयम् । रविसंक्रमणे मध्ये भूमि-
 दाहः प्रकीर्तितः । कलौ दिनत्रयं वर्ज्यं वृषान्ते मिथुनादितः ।
 रविसंक्रमणे चैव भूमिदाहो दिनत्रयम् । भूमिदाहे त्यजेत्
 सर्वं दाहे दाहफलं लभेत् । व्यवहारे कोषहानिः पुत्रस्योत्पा-
 दनात् क्षयम् । प्रग्रहे दर्शने स्त्रीणामसौभाग्यं विजानीहि ।
 तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि कृत्स्नां चामीकरं फलम् । दद्याद्दोषो-
 पशान्त्यर्थं दद्याद्दा तिलकाञ्चनम् । काम्यं नैमित्तिकञ्चैव
 यात्रां मन्त्रं क्रियां तथा । ऋतुमत्यां न कुर्वीत पूर्वसङ्कल्पिता-
 दृते । न कुर्यात् खननं भूमेः सूच्यग्रेणापि शङ्करि ! । वीजानां
 वपनञ्चैव चतुर्विंशतियामकम् । प्रमादाद्वपनं कृत्वा गात्रं तत्र
 प्रचारयेत् । कच्छं कुर्याद्भक्षणञ्च खननात्तिलकाञ्चनम् ।
 दुर्गाद्या मातरः सर्वा ऋतुमत्यो भवन्ति षट् । जैमिनिश्च सुम-
 त्तुश्च वैशम्पायन एव च । पुलस्त्यः पुलहश्चैव प्रश्नैते वल्क्या-
 वृषाः । पठेद्वा धारयेद्देहे न वज्राग्निभयं तथा । मेषेऽवेषे च

मिथुने दद्याद्धारि सुशीतलम् । प्रतिमायां महालिङ्गे शाल-
ग्रामे तथैव च । यज्ञवृक्षस्य मूले वा पञ्च त्रिधारयान्वितम् ।
मुहूर्तमपि यी दद्यान्मम विष्णोः शिरोपरि । वाजपेयफलं
प्राप्य मोदते ब्रह्मणा सह । शालग्रामशिलायान्तु अश्वमेधफलं
लभेत् । विप्राय मोदकं दत्त्वा सोऽश्वमेधफलं लभेत् । तृपात्त-
स्थीऽपि जन्तुभ्यः स्वर्गलोकं महीयते । कुशाग्रनिःसृतं वारि यो
ददाति दिने दिने । देहेषु तरुमूलेषु विष्णुलोकं स गच्छति ।
गन्धोदकस्य यो धारां गुडचीरमथापि वा । एकैकं वारिणा
सिक्तं चन्दनोक्षितमेव वा । दिनैकं मधुधारापि परं ब्रह्माधि-
गच्छति । कर्पूरागुरुसन्मिश्रं यो दद्यात् शर्करान्वितम् । स
स्वर्गे विपुलान् भोगान् भुङ्क्ते च पित्रभिः सह ॥ इत्याषाढ-
कृत्यम् ॥

रामार्चनचन्द्रिकायाम् ॥ श्रावणस्य सिते पक्षे द्वादश्यां
शौनकादिभिः । उक्तस्तदा प्रकर्तव्यः पवित्रारोपणोत्सवः ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । हरिश्च प्रीतिमाप्नोति
यः पवित्रं समाचरेत् । विधिना शास्त्रदृष्टेन यो न कुर्यात्
पवित्रकम् । हरन्ति राजसास्तस्य सर्वं पूजादिकं फलम् ॥
इति श्रावणकृत्यम् ॥

तत्रैव ॥ अथ भाद्रपदे शुक्लद्वादश्यां कर्णिकोत्सवः । क-
र्त्तव्यो वैष्णवैः सार्द्धं शयनोत्सववहरेः । प्राप्ते भाद्रपदे मासि
एकादश्यां सितेऽहनि । कटदानं भवेद्विष्णोर्महापातकनाश-
नम् । शयनोत्सवरीत्या तु देवं नीत्वा जलाशयम् । कटदानो-
त्सवं कुर्वे इति सङ्कल्प्य पूजयेत् । देवदेव ! जगन्नाथ ! योग-
गम्य ! जनार्दन ! । कटदानं करोम्यद्य प्राप्ते भाद्रपदे शुभे ।
अनेन दक्षिणावृत्तं दक्षिणाङ्गे प्रकल्पयेत् । महापूजां ततः
कृत्वा पूर्ववत् स्वर्गं व्रजेत् ॥ इति भाद्रकृत्यम् ॥

१३
वि-
नि-
शा-
रूपः
गभी-
मी ।
हार-
विन-
त्वाह-
माला
खासो-
ख भ-
मलाति-
माला-
मासते
तस्मै
नरेन्द्रः
य नित्यं
विः सक-
पुत्रमन्वत्
म-

अथ वर्षकृत्यम् ॥ वरदातन्त्रे द्वितीयपटले ॥ आद्याया-
 स्तारक्षरौमधिकृत्य ॥ कर्म कुर्व्यात् फलावाप्त्यै चन्द्रादिशोभने
 बुधः । विना नैमित्तिकं देवि ! अन्यथा विफलं भवेत् । वा-
 र्षिकी कालिका पूजा राज्यदाऽन्यक्रियां विना । सा चापि तत्र
 कर्त्तव्या शृणुष्व परमेश्वरि ! । सा पूजा इति । राज्यदा धनदा
 पूजा जयदाऽशुभसङ्कुले । शत्रुकार्यक्षतिकरी निजकार्य-
 प्रसाधिनी । राजवश्यप्रदा सर्वं ग्रहदोषनिवारिका । प्रकाशे
 दोषदा शीघ्रफलदा कथ्यते मया । महाविष्णुवसंक्रान्त्यां सवस्त्रं
 घटमुत्सृजेत् । उपानहौ च कृत्वा कालीप्रीणनहेतवे । अक्षयायां
 द्वितीयायां तथैवमुत्सृजेद्घटम् । स्वर्णं वा राजतं वापि तैजसं
 मार्त्तिकं तथा । वैशाखे जलदानन्तु स्वर्णदानसमं प्रिये ॥ ज्येष्ठे
 पक्वान्नदानेन आपाढे पनसेन च । आवणे परमाद्रेन पूजयेत्
 परमेश्वरीम् । भाद्रे तु पिष्टकैः पूजा आश्विने शारदोत्सवः ।
 भगवत्यै रत्नवस्त्रं दत्त्वान्यद्रव्यमेव च । पश्चात् स्वयञ्च तदग्राह्यं
 कार्तिके शीतवाससा । नवान्नेन मार्गशीर्षे नवमुद्गेन पौषके ।
 माघे च फाल्गुने चैव दुग्धेन च हृत्तेन च । चैत्रे दध्ना महा-
 पूजा सर्वदुःखविनाशिनी । इयं ते वार्षिकी पूजा सर्वसा-
 म्राज्यदायिनी । आत्मप्रियं तथा वस्तु यथावद्भि निवेदयेत् ।
 वार्षिकीषु महेशानि ! सर्वाभीष्टानि साधयेत् । एतत्तु दक्षिणा-
 विद्याविषये साधकोत्तमः । कुर्व्याद् यः प्रतिवर्षन्तु स भवेद्-
 भूमिप्राण्णीः । पञ्चवर्षं भवेद्वाङ्गं साम्राज्यं दशवर्षके । विंश-
 वर्षं महेशानि ! महासाम्राज्यदायिनी । लक्षाधिपत्यं राज्यं
 स्यात् साम्राज्यं दशलक्षके । शतलक्षे महेशानि ! महासा-
 म्राज्यमाप्नुयात् । दासोऽपि भृत्यतां त्यक्त्वा अकस्माज्जायते
 महान् । मनसा न स्मृतं यत्तु वचसा कथितं न यत् । दक्षिणा-
 सेवकः सत्यं तथा राज्यमवाप्नुयात् ॥ पञ्चममटले । अति-

राज्यस्य राज्याप्तिसाधनं कथयामि ते । शुभे काले समारभ्य
अधमेकं समाचरेत् । चन्द्रतारानुकूलं हि दिनं ग्राह्यं महे-
श्वरि ।। प्रातः स्नात्वा शुद्धवासः परिधाय प्रसन्नधीः । सङ्कल्पं
हृतराज्यस्य लाभाय समुपाचरेत् । कालिका त्र्यक्षरीविद्या-
मधिगम्य गुरोर्मुखात् । साधनं विधिवत् कृत्वावश्यं राज्य-
मवाप्नुयात् । आद्येऽङ्गि पूजयेद्देवो जवाकुङ्कुमवर्वरैः । पूजान्ते
परमेशानि ! सहस्रं प्रजपेन्ननुम् । जनशून्यगृहे स्थित्वा समाप्य
जपमुत्तमम् । ततस्तु जुहुयात् साष्टशतं दूर्वाष्टतेन्दुकैः । मन्त्रे-
णानेन देवेशि ! कालागुरुष्टतेन वा । कालि ! कालि ! ततो
राजेश्वरि ! राज्यप्रदे ! पदम् । राज्यं देहि पदञ्चोक्ता दयामयि !
पदं ठठः । इदं हि परमं मूलमन्त्रं राज्याप्तये शिवे ! । जप-
होमौ तु कर्तव्यौ मन्त्रेणानेन देशिकः । स्वेच्छाचारोऽत्र
देवेशि ! स्थानादिशोधनं न च । ततः प्रतिदिनं यावद्वर्षमेकं
जपेन्ननुम् । अष्टोत्तरशतं मन्त्रं कदाचिन्न परित्यजेत् । न पूर-
स्वर्णापेक्षा मन्त्रेऽस्मिन् परमेश्वरि ! । भूमिलग्नैकपादस्तु
पौर्णमास्यां जपेन्ननुम् । कालागुरुद्रवेणैव तत्सख्ये तर्पयेच्छि-
वाम् । कृष्णाष्टम्यां विल्वहृत् चतुर्दश्यां जवातरुम् । अमा-
वस्यासु सर्वासु शेषालीतरुमुत्तमम् । स्पृष्ट्वा जपेद्दश दश वा-
रान् सूर्योदये व्रतो । कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पूजयेदतियत्नतः ।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा रात्रौ चापि जपेच्छतम् । एवं द्वादशमासेषु
कृत्वा राज्यमवाप्नुयात् । कृतेनैतेन देवेशि ! प्रयोगो नाति-
यत्नतः । इन्द्रतुल्येन रिपुणा हृतं राज्यमवाप्नुयात् । वर्षमध्ये
यदि रिपुर्बलवान् साधको भवेत् । तच्छक्तिनाशकामोऽत्र
चरेद् दयत् कथयामि ते । असुकं स्तम्भय स्वाहा कालिका त्र्य-
क्षरीपुष्टम् । ब्राह्मणे गुरुवारे तु क्षत्रिये शुक्रवासरे । वैश्ये
मङ्गलवारे च शूद्रे रविसुताहनि । पूर्वाह्णे प्रजपेन्नन्त्रसहस्रं

वि-
पि
रा-
रूपः
हासी
ग्री ।
हृदार-
नवीन-
सम्पाद-
माला
शास्त्रो-
वाच्य भ-
कलाति-
मा माला-
या मासते
वे तन्मूल-
यो नरेन्द्रः
स्य निव्यं
त्यैः सक-
पपन्नमन्त्र-
तडिदाभ-
प्रविलस-
हन्दुरूप-
तस्याह-
मादधानः ।
रो हृतपेद-

निर्जनस्थले । एवं पञ्चदिने कृत्वा पूजयेद्घोरदक्षिणाम् ।
 शत्रोर्नामाक्षरार्चं तु उन्नतमूलमुत्तमम् । उत्पाद्य परमेशानि !
 कुङ्कुमेन विवर्षयेत् । चन्द्रचन्दनकर्पूरजातीलवङ्गसंयुतम् ।
 कुचन्दनं जवां दूर्वाभिक्रीकृत्य बलिं दिशेत् । मन्त्रेणानेन
 देवेशि ! रामतत्त्वाख्यमुद्रया । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य कालिके !
 कालरात्रिके ! । महत्तं पदमुच्चार्य गृह्ण गृह्णपदद्वयम् । असु-
 कस्य रिपोः कार्यं विनाशय पदद्वयम् । किन्चि किन्चि मथ मथ
 मम राज्यं प्रदापय । ठहयेनैव मनुना अष्टम्यां बलिमादिशेत् ।
 बलिदानेन देवेशि ! क्षीणशक्तिर्भवेद्विपुः । आत्मोयराज्य-
 रक्षार्थमक्षमस्तत्क्षणाद्भवेत् । एवं कृते वर्षमध्ये ऽवश्यं राज्य-
 मवाप्नुयात् । ग्रामे राज्ये वरारोहे ! कालिकां घोरनिस्सनाम् ।
 पूजयेद्बहुजातोयैर्द्रव्यैश्च बलिभिः शुभैः । तोषयेद्ब्राह्मणा-
 क्षारीर्दीनान् धनगणैरपि । तदेव स्थिरराज्यः स्यान्नान्यथा
 विफलं भवेत् । न नारो निन्दयेद्वाचा कर्मणा मनसापि वा ।
 ब्राह्मणानपि देवेशि ! स्थिरराज्याय सर्वदा ॥

अथ देवोषोडशयात्राः ॥ वामकेश्वरतन्त्रे चतुःपञ्चाशत्पटले ॥
 भैरव उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यात्राविधिमनुत्तमम् ।
 तव यात्रा महेशानि ! षोडशौ परिकीर्त्तिता । द्वादशेष्वेव
 मासेषु अमावस्या प्रशस्यते । तस्यां पूजादिकर्माणि कुर्वाणो
 मोक्षमाप्नुयात् । कुलवारे कुलतिथौ पूजयेत् प्रजपेन्निशि ।
 कुलवारौ तु विज्ञेयौ कुजमन्दौ महेश्वरि ! । चतुर्दश्यष्टमी चैव
 अमावस्याय पूर्णिमा । नवमौ च महादेवि ! तिथयः कुल-
 संज्ञकाः । तत्र संक्रान्तियोगिन महायोगः प्रकीर्त्तितः । अस्मिन्
 दिने महेशानि ! देवीपूजा सुखप्रदा । वैशाखे मङ्गलायात्रा च
 चन्दनागुरुकल्पना । ज्यैष्ठ्ये महास्नानयात्रा अश्विवाचीदिन-
 त्वयम् । आपादे रथयात्रा च दिग्दिनव्यापिनी परा । श्रावणे

जलयात्रा च वस्त्रभूषणचामरेः । भाद्रे यात्रा धूननाख्या चण्डि-
काया दिनत्रयम् । आश्विने च महापूजा यात्रा यज्ञबलिप्रिया ।
कार्तिके दीपयात्रा च नवान्नमग्नहायणे । पीषे चाङ्गरागयात्रा
वस्त्रालङ्कारभूषणैः । माघे मासि महादेवि ! रटन्ती च चतुर्दशी ।
दीलाकेलिः फाल्गुने च चैत्रे यात्रा चतुष्टयी । दूतीयात्रा रास-
यात्रा वासन्ती नीलयात्रिका । एवं यात्रा मया प्रोक्ता षोडशी
भवमोचनी ॥

देव्युवाच ॥ संक्षेपात् कथिता देव ! यात्रा च षोडशी
प्रभो ! । केन वा क्रियते यात्रा विधानं ब्रूहि मे प्रभो ! ।
भैरव उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि सारात्सारतरं वचः ।
यत् कृत्वा साधकश्चेष्टः क्रियातीतो भवेत् प्रिये ! । गुर्वान्नया
क्रियातीतश्चाभिषिक्तो जितेन्द्रियः । कामक्रोधलोभमोहमद-
मात्सर्यवर्जितः । गुरुपदिष्टमार्गेण देवीमालम्ब्य यत्नतः ।
पूजयेद्द्विधिवद्भक्त्या वाङ्मनःकायकर्मभिः । आत्मवत् पूजयेद्देवीं
दिवारात्रिकमेण च । प्रातःकाले दन्तकाष्ठैर्मुग्धप्रक्षालनं चरेत् ।
धौतवस्त्रं परिधाय तैलाभ्यङ्गञ्च कारयेत् । सुगन्धिना जलेनैव
देव्याः स्नानं प्रकल्पयेत् । पूजयेद्द्विधिवद्भक्त्या यथावित्तानु-
सारतः । पूजावसाने देवेशि ! भावयेद्वाक्यसम्भवैः । वाक्यसम्भवैः
स्तवैरित्यर्थः । श्राययित्वा विचित्रायां शय्यायां सुखहेतवे । तत
उत्थाप्य सन्ध्यायां दीपैर्ब्रीराजनञ्चरेत् । रात्रौ तिथिविशेषे च
पूज्या त्वमसि साधकैः । अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तं दधि दुग्धं सशर्करम् ।
पनसाम्प्रफलञ्चैव दाडिमं नागरङ्गकम् । यदुत्कृष्टतमं लोके
दद्यात् साधकसत्तमः । मधु मांसं पिष्टकञ्च पायसं घृतसंयुतम् ।
मत्स्यं प्रवीणं मुद्राञ्च चन्द्रविम्बनिभां पराम् । नारिकेलं तर-
न्वञ्च खर्जूरं तालपिष्टकम् । पनसाम्प्रफलञ्चैव दाडिमं नागर-
ङ्गकम् । ध्याननिष्ठो जपाविष्टस्ततो धीरो जितेन्द्रियः । वार्षिकीं

३
४
५
६
७
८
९
१०
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२६
२७
२८
२९
३०
३१
३२
३३
३४
३५
३६
३७
३८
३९
४०
४१
४२
४३
४४
४५
४६
४७
४८
४९
५०
५१
५२
५३
५४
५५
५६
५७
५८
५९
६०
६१
६२
६३
६४
६५
६६
६७
६८
६९
७०
७१
७२
७३
७४
७५
७६
७७
७८
७९
८०
८१
८२
८३
८४
८५
८६
८७
८८
८९
९०
९१
९२
९३
९४
९५
९६
९७
९८
९९
१००

निर्जनस्थले । एवं पञ्चदिने कृत्वा पूजयेद्घोरदक्षिणाम् ।
 शत्रोर्नामाक्षरार्चं तु उन्नतमूलमुत्तमम् । उत्पाद्य परमेशानि !
 कुङ्कुमेन विघर्षयेत् । चन्द्रचन्दनकर्पूरजातीलवङ्गसंयुतम् ।
 कुचन्दनं जवां दूर्वाभिकीकृत्य बलिं दिशेत् । मन्त्रेणानेन
 देवेशि ! रामतत्त्वाख्यमुद्रया । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य कालिके !
 काक्षरात्रिके ! । महत्तं पदमुच्चार्य गृह्ण गृह्णपदद्वयम् । अमु-
 कस्य रिपोः कार्यं विनाशय पदद्वयम् । छिन्धि छिन्धि मथ मथ
 मम राज्यं प्रदापय । ठडयेनैव मनुना अष्टम्यां बलिमादिशेत् ।
 बलिदानेन देवेशि ! क्षीणशक्तिर्भवेद्रिपुः । आत्मोयराज्य-
 रक्षार्थमच्चमस्तत्क्षणाद्भवेत् । एवं कृते वर्षमध्ये ऽवश्यं राज्य-
 मवाप्नुयात् । ग्रामे राज्ये वरारोहे ! कालिकां घोरनिस्त्रनाम् ।
 पूजयेद्बहुजातीयैर्द्रव्यैश्च बलिभिः शुभैः । तोषयेद्ब्राह्मणा-
 न्नारीर्दीनान् धनगणैरपि । तदेव स्थिरराज्यः स्यान्नान्यथा
 विफलं भवेत् । न नारो निन्दयेद्वाचा कर्मणा मूनसापि वा ।
 ब्राह्मणानपि देवेशि ! स्थिरराज्याय सर्वदा ॥

अथ देवोषोडशयात्राः ॥ वामकेश्वरतन्त्रे चतुःपञ्चाशत्पटले ॥
 भैरव उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यात्राविधिमुत्तमम् ।
 तव यात्रा महेशानि ! षोडशी परिकीर्तिता । द्वादशेष्वेव
 मासेषु अमावस्या प्रशस्यते । तस्यां पूजादिकर्माणि कुर्वाणो
 मोक्षमाप्नुयात् । कुलवारे कुलतिथौ पूजयेत् प्रजपेन्निशि ।
 कुलवारी तु विज्ञेयौ कुजमन्दौ महेश्वरि ! । चतुर्दश्यष्टमी चैव
 अमावस्याथ पूर्णिमा । नवमौ च महादेवि ! तिथयः कुल-
 संज्ञकाः । तत्र संक्रान्तियोगेन महायोगः प्रकीर्तितः । अस्मिन्
 दिने महेशानि ! देवीपूजा सुखप्रदा । वैशाखे मञ्जुयात्रा च
 चन्दनागुरुकल्पना । ज्यैष्ठ्ये महास्नानयात्रा अम्बुवाचीदिन-
 वयम् । आषाढे रथयात्रा च दिग्दिनव्यापिनी परा । श्रावणे

जलयात्रा च वस्त्रभूषणचामरैः । भाद्रे यात्रा धूननाख्या चण्डि-
काया दिनत्रयम् । आश्विने च महापूजा यात्रा यज्ञबलिप्रिया ।
कार्तिके दीपयात्रा च नवान्नमग्रहायणे । पौषे चाङ्गरागयात्रा
वस्त्रालङ्कारभूषणैः । माघे मासि महादेवि ! रटन्ती च चतुर्दशी ।
दीलाकेलिः फाल्गुने च चैत्रे यात्रा चतुष्टयी । दूतीयात्रा रास-
यात्रा वासन्ती नीलयात्रिका । एवं यात्रा मया प्रोक्ता षोडशी
भवमोचनी ॥

देव्युवाच ॥ संचेपात् कथिता देव ! यात्रा च षोडशी
प्रभो ! । केन वा क्रियते यात्रा विधानं ब्रूहि मे प्रभो ! ।
भैरव उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि सारात्सारतरं वचः ।
यत् कृत्वा साधकश्चेष्टः क्रियातीतो भवेत् प्रिये ! । गुर्वाङ्गया
क्रियातीतश्चाभिषिक्तो जितेन्द्रियः । कामक्रोधलोभमोहमद-
मात्सर्यवर्जितः । गुरूपदिष्टमार्गेण देवीमालम्ब्य यत्नतः ।
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या वाङ्मनःकायकर्मभिः । आत्मवत् पूजयेद्देवीं
दिवारात्रिकमेण च । प्रातःकाले दन्तकाष्ठैर्मुखप्रक्षालनं चरेत् ।
धीतवस्त्रं परिधाप्य तैलाभ्यङ्गञ्च कारयेत् । सुगन्धिना जलेनैव
देव्याः स्नानं प्रकल्पयेत् । पूजयेद्विधिवद्भक्त्या यथावित्तानु-
सारतः । पूजावसाने देवेशि ! भावयेद्वाक्यसम्भवैः । वाक्यसम्भवैः
स्तवैरित्यर्थः । शाययित्वा विचित्रायां शय्यायां सुखहेतवे । तत
उत्थाप्य सन्ध्यायां दीपैर्नीराजनञ्चरेत् । रात्रौ तिथिविशेषे च
पूज्या त्वमसि साधकैः । अन्नं व्यञ्जनसंयुक्तं दधि दुग्धं सशर्करम् ।
पनसाम्भफलञ्चैव दाडिमं नागरङ्गकम् । यदुत्कृष्टतमं लोके
दद्यात् साधकसत्तमः । मधु मांसं पिष्टकञ्च पायसं घृतसंयुतम् ।
मत्स्यं प्रवीणं सुद्राञ्च चन्द्रविश्वनिभां पराम् । नारिकेलं तर-
न्ध्रञ्च खर्जूरं तालपिष्टकम् । पनसाम्भफलञ्चैव दाडिमं नागर-
ङ्गकम् । ध्याननिष्ठो जपाविष्टस्ततो धीरो जितेन्द्रियः । वार्षिकीं

१३
वि-
धि-
या-
पः
सी
ती ।
र-
न-
ह-
जा-
शु-
ज-
नि-
ला-
सते
ल-
दः
त्यं
क-
त-
भ-
इ-
न-
ह-
।

प्रारभेद् यात्रां शृणु तत् सावधानतः ॥ पञ्चपञ्चाशत्पटलैः ॥
 वैशाखे पूर्णिमायाञ्च मञ्चं हस्तचतुष्टयम् । दीर्घमायतमेवं तदुच्च-
 मानं प्रकीर्तितम् । तत्र संस्थाप्य देवेशीं गीतवाद्यादिमङ्गलैः ।
 चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमालङ्कसिन्दूरैः । मृगनाभिमाञ्जिकैश्च गा-
 त्रमार्जनमाचरेत् । स्नानञ्च कारयेद्देव्याः कर्पूरवासितैर्जलैः ।
 मन्दिरे च ततो नीत्वा पूजयित्वा यथाविधि । होमं कृत्वा
 बलिं दत्त्वा सन्तोष्य भोजनादिभिः । कुमारीं पूजयित्वा च
 ब्राह्मणानपि भोजयेत् । एवं विधिविधानञ्चो यात्रां कृत्वा
 विराजते । ज्यैष्ठ्ये मासि महास्नानं कर्पूरादिसुवासिभिः ।
 अष्टोत्तरशतैः पूर्णैः कलसैः स्नापयेत्ततः । वस्त्रैर्गात्रं मार्जयित्वा
 धूपयेद् घृतगुगुलैः । मञ्चाच्च मन्दिरे नीत्वा बलिं पूजाञ्च होम-
 येत् । गन्धाष्टकैरङ्गरागं कारयित्वा यथाविधि । विधिना कार-
 येद्देवि ! स्त्रीकुमारीद्विजार्चनम् । प्रसादं भक्षयेत् पश्चात्
 पुत्रदारस्त्वन्धुभिः । इत्यं यात्राविधिं कृत्वा विहरेद् भैरवो
 यथा । आषाढे प्रथमे देवि ! अश्वुवाचीदिनत्रयम् । सङ्गोपन-
 गृहे देवीं स्थापयेदस्त्रवेष्टनैः । रात्रौ महान्निशायोगे पञ्चाचारेण
 देशिकः । पूजयित्वा बलिं दत्त्वा होमयित्वा विहारयेत् । शुक्ल-
 पद्मे द्वितीयायां रथे संस्थाप्य चण्डिकाम् । चालयेन्नृत्यगीतैश्च
 स्नेच्छाचारेण साधकः । तस्मात् पूजागृहे नीत्वा बलिहोमा-
 दिनार्चयेत् । स्त्रीकुमारीद्विजान् सर्वान् भोजयेदन्नसम्भवेः ।
 वित्तशाठ्यं न कुर्वीत साधकः स्थिरमानसः । आवणे जलयात्रा
 च वस्त्रचामरभूषणैः । सज्जीकृत्य शुभां नौकां साधको वाहयेत्
 स्वयम् । देवीं संस्थाप्य विधिना भगलिङ्गानुकीर्तनैः । ततः
 पूजागृहे नीत्वा पूजयेद्विधिपूर्वकम् । भाद्रे मासि त्रयोदश्या-
 मारभ्य त्रिदिनं शुभम् । कुहौ वा पौर्णमास्यां वा धूननञ्च समा-
 चरेत् । प्रत्यहं पूजयेद्रात्रौ बलिहोमादिकीर्तनैः । नानाविधानि

द्रव्याणि मनोऽभिलषितानि च । दत्त्वा स्त्रियः कुमारीश्च विप्रान्
 सर्वान् प्रत्नेपयेत् । आश्विने च महापूजां नवम्यामारभेत् सुधीः ।
 प्रत्यहं पूजयेद्देवीं बलिहोमस्तवादिभिः । प्रत्यहं भोजयेद्दिप्रान्
 कुमारीश्च सुवासिकाः । दिवार्चा पशुवीरेण रात्रौ कौलानु-
 सारतः । एवञ्च साधकश्रेष्ठो निर्वाणं मोक्षमाप्नुयात् । तत्राप्य-
 शक्तो देवेशि ! त्रिदिनं पूजयेच्छिवाम् । कार्तिकेऽमातिथौ
 देवि ! दीपयात्रां समाचरेत् । रात्रौ महानिशायोगे दीपा-
 दिभिरलङ्कृतम् । कृत्वा देवौष्टहं पूजाबलिहोमादिनार्च-
 येत् । घृतप्रदीपाभावे तु तैलदीपं समाचरेत् । मार्गशीर्षे
 महादेवि ! नवान्नं विधिपूर्वकम् । मत्स्यं मांसं पायसञ्च
 दुग्धं दधि घृतं मधु । सूपं शाकं पिष्टकञ्च मिष्टान्नं ब्रीहि-
 संयुतम् । तिललङ्घुं नारिकेलं शर्करागुडमिश्रितम् । सर्वं
 नवं नवं दद्यात् पूजयेत् साधकोत्तमः । प्रसादं भक्षयेद्देव्याः
 पुत्रदारावित्तः सुधीः । पौषे नवानि वस्त्राणि नानालङ्कर-
 णानि च । अङ्गरागविधिं कृत्वा दत्त्वा पूजाविधिं चरेत् ।
 विना होमिन बलिना ब्राह्मणाराधनेन च । पूजा नैव महादेव्याः
 सत्यं सत्यं न संशयः । माघे मासि चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे सुर-
 श्वरि ! । रटन्तौ पापनाशार्थं पृथिव्यां पापिनं जनम् । तस्मिन्
 दिने महेशानि ! पूजयेद्भिभावधि । दानं कृत्वा ब्राह्मणेभ्य-
 ष्छण्डिकाप्रोतये ददेत् । शीतार्ताय क्षुधार्ताय दरिद्राय
 यतात्मने । अन्नं वस्त्रं सुवर्णञ्च देवीप्रोतिकरं परम् । फाल्गुने
 पूर्णिमायाञ्च मद्यं कृत्वा त्रिखण्डकम् । तत्र देव्या आसनञ्च
 भूषयेद्दस्त्रवेष्टनैः । चतुर्दिक्षु पताकाञ्च रश्माञ्च क्षुद्रघण्टिकाम् ।
 दीपयेत् फाल्गुने देवीं दिवारात्रिप्रभेदतः । पूजयेद्भोजयेद्दिप्रान्
 बभून् ज्ञातीन् सुतादिकान् । नृत्यगौतवाद्यभाण्डैस्तोषयेत्
 कालिकां सदा । चैत्रे कृष्णचतुर्दश्यां दूतीयागविधिं चरेत् ।

५८३
 वि-
 मधि
 शा-
 रूपः
 गसी
 पी ।
 द्वार-
 गीन-
 ताहं
 ला-
 सो-
 ज-
 ति-
 ला-
 सते
 ल-
 न्दः
 त्वं
 क-
 प्रत्
 भ-
 म-
 ल-
 ह-
 ॥

रात्रौ देवीं पूजयित्वा नव कन्याः प्रपूजयेत् । तदभावे विप्र-
कन्यां सुवेशां यौवनान्विताम् । नानालङ्कारवस्त्राद्यैर्गन्धमाल्या-
नुलेपनैः । भूषयित्वा भोजयित्वा स्वयं भोजनमाचरेत् । कौला-
चारेण देवेशि ! रात्रौ पूजाविधिं चरेत् । दूतीयागोक्तमन्त्रेण
सर्वे पूजादिकं नयेत् । वासन्ती त्रिदिनं यावत् बलिहोमादिना
यजेत् । पौर्णमास्यां रासयात्रां देव्याः कुर्यान्निशार्द्धके । पूर्व-
वक्त्रमास्थाय देवीं देव्यासेनं यजेत् । सञ्मुखे वाससंस्थानं
भैरवीभैरवान्वितम् । कृत्वा तान् पूजयित्वा च भ्रामयेत्
कुम्भचक्रवत् । कोलाहलं शृङ्गादिवाद्यैर्द्वन्द्वैः सुगीतकैः ।
कुर्यादानन्दहृदयः साधकः स्थिरमानसः । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत
देवीयात्रा सुखप्रदा । संक्रान्त्यामारभेन्नन्वी नीलयात्रां महे-
शितुः । धूपेन धूपयेद्देवि ! महाकालस्य तुष्टये । महाकालेन
च समं रात्रौ देवीं प्रपूजयेत् । संवित्प्रधाननैवेद्यं नानावस्तु-
समन्वितम् । दत्त्वा स्तुत्वा नतो भूत्वा गानं कुर्यात् सबान्धवः ।
आनन्दोद्विक्तहृदयो मन्त्रो नर्तनमाचरेत् । शिवावलिः प्रक-
र्तव्यो निशार्द्धे शिवतुष्टये । वैशाखे पूर्णिमाञ्चेत्याद्येतत्पर्यन्तं
कोलतन्त्रेण समानम् । एवं सांवत्सरीं यात्रां कृत्वा साधक-
सत्तमः । गुरोः प्रसादाद्देवेशि ! शिवतुल्यो न संशयः ॥ इति
देवीप्रोडशयात्राः ॥

पृथ्वीविख्यातकीर्त्तिगुणिगण हृदयाभोजसूर्यप्रकाशः
स्निग्धः सम्पूर्णचन्द्रप्रतिक्वतिरमराचार्यशुद्धोपलब्धिः । जी-
यात् श्रीप्राणकृष्णाद्वय इह विबुधद्रुः सदीपासकानां भूयांसो
मातृकाख्ये वपुषि समगमन् ब्राह्मणा यत्प्रसादात् ॥ श्रीराम-
तोषणकृती जगतां हिताय श्रीप्राणकृष्णपरितोषनिदेशवर्त्ती ।
नत्वा सुचारुचरणाम्बुजमिष्टदेव्याश्चक्रे चतुर्थमिदमुत्तमक्रो-
न्धकाण्डम् ॥ ग्रन्थिः शाखा प्रशाखा स्तवककिशलयै सत्-

फलञ्च प्रसूनं सर्वं तत्काम्यकाण्डे रुचिरमतिफलं धीमतां
दर्शनोद्यम् । विद्वांसः ! पश्यतेदं नयनमलहरं दिव्यदृष्टिप्रसादं
नानासन्देहनाशि प्रसुहितहृदयाः सर्वलोकोपकर्तृ ॥

इति प्राणक्षणविश्वासानुमतायां श्रीरामतोषणविद्याल-
ङ्कारभट्टाचार्यविरचितायां श्रीप्राणतोषिण्यां काम्या-

भिधानं चतुर्थकाण्डं समाप्तम् ॥

प्रणम्येष्टपदाम्भोजं चतुर्वर्गफलप्रदम् । पञ्चमं भक्तिका-
ण्डञ्च तनोति रामतोषणः । निर्घण्टो भक्तिकाण्डस्य पञ्च-
मस्याधुनोच्यते । प्रातःकृत्यं गणेशस्य स्नानादि तदनन्तरम् ।
तर्पणस्य विशेषस्तु फलं तस्य ततः परम् । श्रीगणेशभूतशुद्धि-
माहकान्यासनं विना । कर्तव्यकर्मनिन्दा च षडङ्गन्यास एव
च । माहकान्यासकृत्यस्य प्रकारस्तदन्तरम् । न्यासान्तरं ततो
ध्यानं यन्त्रस्य करणं ततः । पौठपूजादिकञ्चावाहनं पूजा-
क्रमस्ततः । गन्धाष्टकं गणेशस्य पुष्पञ्च तदन्तरम् । धूपदीपा-
दिभेदश्चावरणार्चनं ततः परम् । पुरश्चर्या गणेशस्य काम्यकर्म
ततः परम् । महालक्ष्म्यादिकानाञ्च साधनं तदनन्तरम् । गणेश-
मन्त्रो यन्त्रञ्च धारणार्हमतः परम् । आकर्षणादिकर्माणि ततो
ध्यानान्तरं ततः । कर्मभेदे वर्णभेदो वीजत्रयं गणेशितुः ।
ध्यानान्तरं ततो मुद्रा पुरश्चर्यान्तरं ततः । तीव्रादिशक्तिध्यानन्तु
पौठमन्त्रस्ततः परम् । पूजावरणपूजा चाष्टबाहुगणपार्चनम् ।
ततो मृषिकपूजा च हरिद्रागणपोद्भवः । गणेशोपनिषच्चैव
स्तोत्रं गणपतेस्ततः । कवचं गणनाथस्य लिपिलम्बोदरोद्भवः ।
अन्यान्यपि यथास्थानं दृष्ट्वा ज्ञेयानि पण्डितैः । इत्यादिमपरि-
च्छेदसमाप्तिरभिधीयते । वाणलिङ्गं तस्य भेदस्तच्चिह्नं तत्-
प्रतीक्षणम् । वाणशब्दस्य व्युत्पत्तिर्वाणलिङ्गप्रशंसनम् । तत्-
पूजनफलञ्चैव तत्स्वाप्तफलं ततः । रसलिङ्गफलञ्चैव निन्द्य-

५८८

पुर्वि-

मधि-

णा-

रूपः

गो-

पी ।

वार-

गोन-

गार्ध-

ला-

गो-

ज-

ति-

ला-

सते

स-

न्धः

तस्य

क-

यत्

भ-

स-

ल-

क-

॥

८

लिङ्गं ततः परम् । शुभलिङ्गं वाणलिङ्गमुद्भूतिकारणं ततः ।
 वाणलिङ्गस्थलं वाणलिङ्गं नैकप्रकारकम् । ध्यानं पूजा स्तवश्चैव
 रौद्रलिङ्गादिलक्षणम् । शिला न मृत्स्नादिसम्भूतलिङ्गार्चनफलं
 ततः । धात्वाद्यद्भूतलिङ्गस्य संस्कारस्तदनन्तरम् । सशक्ति-
 कलिङ्गपूजाफलं तत्तत्प्रमाणकम् । विप्रादिभेदे मृत्स्नायाः
 फलं स्थूलं शिलादिजम् । फलदं पञ्चसूत्रादिलिङ्गव्यत्यक्तिरेव
 च । लिङ्गमाहात्म्यपूजादिफले च तदनन्तरम् । रसलिङ्गस्य
 माहात्म्यं तल्लिङ्गनिर्मितिस्ततः । लिङ्गोत्पत्तिर्वैष्णवादेर्लिङ्गपूजा-
 धिकारिता । तदकरणनिन्दादौ शिवलिङ्गार्चनाविधिः । लि-
 ङ्गस्य स्थापनफलं काम्यपूजा ततः परम् । इति द्वेदो द्वितीयस्य
 समाप्तिरभिधीयते । तौर्थादिमृत्तिका ग्राह्या शिवनिर्माणक-
 र्मणि । नदी क्षुद्रलक्षणञ्च लिङ्गनिर्मितरेव च । मृत्तिकाह-
 रणे मन्त्रो मन्त्राज्ञाने च निन्दनम् । निर्माणमन्त्रस्तत्प्रमाणं
 प्रतिष्ठान्यास एव च । प्राणायामस्ततो ध्यानमावाहनमतः
 परम् । मन्त्रः षडक्षरः पूजाष्टमूर्त्तिपूजनं ततः । जपः समर्पणं
 तस्य मुखवाद्यं ततो नतिः । विसर्जनं ततः पूजा सूत्रञ्च तद-
 नन्तरम् । ततश्च पूजकस्थानं दोषा न्यूनाधिकेन च । सर्वाग्रतो
 लिङ्गपूजान्यथा दोषस्तदनन्तरम् । पुष्पदानञ्चैव ततः पुष्प-
 माहात्म्यमेव च । विजयापत्रमाहात्म्यं काम्यलिङ्गार्चनाक्रमः ।
 प्रत्यहं लिङ्गपूजा च लिङ्गार्पितफलं ततः । रिष्टशान्तिरेकदिन-
 क्षतलिङ्गार्चनाफलम् । सार्वकामिकपूजा चाग्राह्या लिङ्गार्पितं
 ततः । तत्कारणञ्च पात्रस्थं भक्ष्यं नैवेद्यमुत्तमम् । शिवस्व-
 ग्रहणे दोषस्तत्प्रायश्चित्तमेव च । वाणलिङ्गार्पितं ग्राह्यं स्वय-
 म्भाद्यर्पितं तथा । निर्मात्यद्रव्यनिर्णीतस्तथाधार्पादिष्वपि स्मृ-
 तम् । ततः पाशपतास्तञ्च लिङ्गस्तीव्रं ततः परम् । शिवस्व
 कर्त्तव्यं विष्णुश्चादिमहिमा ततः । रुद्राक्षमहिमा संवित्

प्रकरणं तदनन्तरम् । तृतीयच्छेदसमूर्तिरिति निर्णयिते
मया । शालग्रामशिलोत्पत्तिनिदानं चक्रकारणम् । अनुद्-
योगविष्णुशिलालाभोत्तमफलं ततः । स्निग्धादिगुणदोषाश्च
सकामे दोषनिर्णयः । शालग्रामार्चनफलं चक्रद्वादशकोद्धवम् ।
फलञ्च चक्रसंख्याभिः शालग्रामनिरूपणम् । शालग्रामस्थिति-
फलं तत्प्रभेदस्ततः परम् । विप्रादिभेदे चक्रस्य विशेषस्तद-
नन्तरम् । संस्पर्शाच्चांनिषेधस्तु राजन्यादेर्निरूपितः । भोजनस्य
च निन्दापि शालग्रामार्चनं विना । चक्रद्वयं तथा लिङ्गद्वयं
नार्थं गृहे क्वचित् । द्वादशादिचक्रपूजाफलं चक्रस्य विक्रये ।
दोषस्तु न स्यात् चक्रार्चाफलञ्च तदनन्तरम् । गण्डकौडारका-
चक्रसङ्गमस्य फलं ततः । शालग्रामे विष्णुपूजाफलं ज्ञेयं ततः
परम् । परिच्छेदचतुर्थस्य समाप्तिरीतिरीरिता । द्वारकाचक्र-
चिह्नं नित्याहात्म्यं ततः परम् । तस्य वर्णविशेषेण शुभा-
शुभफलं ततः । निन्दा शिलाचक्रभेदे नामभेदस्ततः परम् ।
जीर्णोद्धारादिकर्माणि शालग्रामशिलार्चनात् । ततश्च षट्-
पदीस्तोत्रं प्रणामः प्रार्थना ततः । चरणाभ्युत्थपानञ्च शिरसा
तस्य धारणम् । अपीत्वा मूर्द्धि धत्तुञ्च निन्दा विप्राङ्घ्रिवारिणः ।
प्रादं नैवेद्यदानस्य मन्त्रश्चार्चनसूत्रकम् । षोडशोपचारमन्त्राः
काम्यकर्म्म ततः परम् । श्रीविष्णुनाममाहात्म्यं शतनाम ततः
परम् । विष्णुपूजा काष्ठपात्रादिषु दोषावहा ततः । स्वर्णादि-
पात्रे पूजातिफलदा तदनन्तरम् । गुरुषुसूक्तमाहात्म्यं ज्ञान-
द्वयफलं ततः । उद्धर्तनज्ञानफलं फलं शङ्खे शुभाशुभम् । त्रिप-
दीलक्षणञ्चैव तुलसीमहिमादि च । मालाधारणमप्युक्तं वैष्ण-
वस्य प्रशंसनम् । दशावतारतिथ्यादिपरिच्छेदोऽत्र पञ्चमः ॥
महाविद्यानिर्णयश्च तासां माहात्म्यकीर्तनम् । महाविद्या-
प्रभृतीनां भैरवस्तदनन्तरम् । महारात्रादिनिर्णीतिर्विद्यो-

त्यत्तिस्ततः परम् । महाकालीस्वरूपञ्चालीढादिकीर्तनं ततः ।
 कालीमन्त्रप्रशंसा चाद्यानिन्दादोष एव च । कालीमन्त्रद्वयञ्चैव
 ताभ्यां शान्त्यादिरेव च । मन्त्रद्वयफलञ्चैव ऋष्यादिन्यास एव
 च । संयमादितन्त्रकर्म गुरुणा कृत्यमेव च । तत्पुत्राद्यैः स्वयं
 वापि नान्यद्वारा कदाचन । गुरुणा कृततन्त्रोक्तकर्मणः फल-
 निर्णयः । गुरुपत्न्या कृते कर्मस्तत्र होमो न विद्यते । पुरो-
 हितेन विहिते तस्मिन् कर्मणि निन्दनम् । जनस्य सन्निधौ
 पूजानिषेधः परिकीर्तितः । अथवा विश्णुतन्त्रोक्तपूजा तत्र
 विधीयते । इष्टदेवं विनान्यत्र भक्तिर्निन्दा तथैव च । पूजा
 च त्रिविधा बाह्यपूजाफलमतः परम् । पूजासूत्रं ततः
 सङ्क्षेपपूजासूत्रमेव च । नित्यपूजाविधानञ्च मन्त्रद्वयपुर-
 स्क्रिया । शतनामस्तुतिञ्चैव महाविद्यास्तवस्ततः । महाविद्या-
 कवचञ्च कालीकवचमेव च । शाक्तप्रशंसा विप्राणां शाक्त-
 त्वकारणं ततः । शक्त्युपासकमर्त्यस्यान्योपासननिषेधनम् ।
 अन्यान्यपि यथास्थानं ज्ञातव्यानि मनीषिभिः । इति षष्ठपरि-
 च्छेदसमाप्तिरभिधीयते । एकवर्षादिभेदेन कुमारीनाम-
 निर्णयः । विशेषस्तत्र तत्रापि नानातन्त्रानुसारतः । कुमारी-
 पूजनस्थानफलं तत्कालनिर्णयः । तस्याः पुष्पादिदानस्य भोज-
 नस्यापि यत्फलम् । पूजास्थानञ्च तत्पश्चात् कुमारीपूजने
 मनुः । पूजाक्रमः कुमारीणां प्रणामस्तदनन्तरम् । दर्शनादि-
 प्रदानञ्च कन्योद्वाहफलं ततः । विवाहनाफलञ्चैव तन्मन्त्रस्य
 पुरस्क्रिया । कुमारिकापूजनस्य प्रयोगस्तदनन्तरम् । कुमारी-
 स्तवराजञ्च कुमारीकवचं ततः । ब्राह्मणस्य प्रशंसा चाध्यापक-
 वृत्तिजं फलम् । ब्रह्मशापफलं तीर्थयात्रा च तदनन्तरम् ।
 दिग्विशेषे च यात्रायां निषिद्धमासनिर्णयः । योगिनोर्निर्णयञ्चैव
 तिथिग्रोगविशेषयोः । योगे ग्राह्यानिषेधश्च तिथ्यर्चयोगतत्तथा ।

निषेधो जन्ममासादेरूपादिनिर्णयस्ततः । दिग्विशेषे च यात्रा तु
दिग्विशेषमुखस्य च । तत्रापि यात्रिकद्रव्यविशेषनिर्णयस्ततः ।
गयाया निर्णयश्चैव प्रेतशिलानिरूपणम् । गोलादिलिङ्गनिर्णीतिः
स्वपिण्डदानमेव च । आगस्त्ये तत्फलञ्चैव स्वकृत्यकाल-
निर्णयः । तत्र नास्ति च कालस्य नियमः आङ्कर्मणि । विषुव-
आङ्कर्मणि निरामिषनिषेधनम् । आम्रआङ्गे त्वाममांसनिषेधश्च
ततः परम् । कृते च सामिषआङ्गे निन्दा निरामिषाशने । वर्ष-
आङ्गादिषु तथामिषदानविनिर्णयः । कृते निरामिषआङ्गे दोष-
स्वामिषभोजने । शुद्रनिमन्त्रणे विप्रभुक्तिनिन्दा ततः परम् ।
आङ्गे देयं तथा मांसं तत्फलञ्च ततः परम् । वर्ज्यं मांसं तथा
देया मत्स्या वर्ज्यास्तथैव च । धूपपक्ककदल्यादिनिषेधस्तदन-
न्तरम् । आङ्गे पाञ्चविंशैषाञ्चैस्तृप्तिकालनिरूपणम् । निमन्त्र-
णापक्रान्तौ च काशीमाहात्म्यमेष च । इति सप्तमविच्छेद-
समाप्तिः कथिता मया ॥ इदं सप्तभिर्विस्तृतं भक्तिकाण्डं परि-
च्छेदरूपैः फलैः संयुतञ्च । यदर्थं सुरा मानवाः किन्नराद्यास्तप-
श्चेरुह्यं गलत्पर्णभोगैः । आदेष्टृत्वरया न काण्डमतुलं मीमां-
सितं यन्मया धीरा ! नोपहसन्तु तेन परनिघ्नस्येष्टशो दुर्गतिः ।
पश्यन्त्वेकमनीहमीशमसकृन्मायागुणैर्दुस्त्वजैर्नारूपधरं विभुं
त्वमहमित्याविष्टचित्तं सदा ॥

अथ गणेशप्रकरणम् ॥ कुलमूलावतारकल्पसूत्रटीकाधृत-
द्वितीयकाण्डीयगणेशविमर्षिण्याम् ॥ ब्राह्मेण मुहूर्त्ते ऋत्याय
शिरसि श्वेतपद्मजे । श्वेतवर्णं सुखासीनं वरदाभयपाणि-
कम् । दिनेत्रं शान्तवदनं स्मृत्वा निजगुरुं पुनः । प्रणिपत्य
यथान्यायं वह्निर्निर्गत्य साधकः । विहितावश्यकं शौचमा-
चामं दन्तधावनम् । मुखप्रक्षालनादीनि कृत्वा स्नानं समा-
चरेत् । हृन्मन्त्राङ्कुशमन्त्राभ्यां तीर्थं सविष्टमण्डलात् । आवा-

५८३

पूर्वि-
मपि
पा-
रूपः
गसी
पी ।
हार-
मीन-
गर्ह-
ला-
मो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्धः
त्यं
क-
यत्
भ-
म-
ल-
ह-
।
ह-

द्याम्भसि संयोज्य सोमसूर्याग्निमण्डलम् । सञ्चिन्त्य मन्त्रीं
 तन्मध्ये निमज्ज्य सुसमाहितः । मूलमन्त्रं समारभ्य मनसा च
 त्रिवारकम् । समुत्थाय समाचान्तः षडङ्गीकृतविग्रहः । आत्मानं
 मूलमन्त्रेण मुद्रया कलसाख्यया । सप्तकत्वोऽभिषिञ्च्य मनुना-
 मन्त्रितं जलम् । पीत्वाचम्याथ विमले वाससी परिधाय च ।
 पुनराचम्य विन्ध्य षडङ्गमपि पूर्ववत् । वामहस्ते गृहीताधो-
 गलितोदकविन्दुभिः । सप्तधा प्रोक्षणं कुर्यान्मूलमन्त्रं समु-
 च्चरन् । अवशिष्टोदकं दक्षहस्ते कृत्वा तु मन्त्रितम् । दिनेश-
 योत्क्षिपेत्तिष्ठन् गायत्र्यार्घ्याञ्जलितयम् । तथा । सर्वाभीष्ट-
 प्रदं वक्ष्ये चतुरावृत्तितर्पणम् । एकान्ते विजनेऽरुध्ये सर्वोप-
 द्रववर्जिते । कृतस्नानादिको मन्त्री पूर्ववद्वाससंयुतः । तडाग-
 मध्ये सञ्चिन्त्य पुष्पितं नलिनीवनम् । तस्य मध्ये महापद्मं
 तरुणादित्यसन्निभम् । समुन्नतं सुगन्धाढ्यं रमणीयं मनोहरम् ।
 सद्यो विकसितं ध्यायेदथवा निर्मलौघवान् । यथावित्तानुसारेण
 सौवर्णादिशरावकम् । पृथुलं सुविशालास्यं नूतनं मृगमयन्तु
 वा । भद्रासनन्तु संस्थाप्य नदीनदतडागजैः । शुद्धोदकैः
 समापूर्य्य तत्र वा कमलं स्मरेत् । रौप्यसोपानपङ्क्त्या
 तु आत्मानं गणनायकम् । विनिश्चित्य समागम्य तदम्भो-
 रुहमध्यतः । उपविष्टं गणेशानं सर्वाभरणसंयुतम् ।
 प्रकरैर्गन्धकुसुमैः समभ्यर्च्य च पूर्ववत् । साध्यमूर्ध्नि नासाग्रे
 निधायामृतधारया । तच्छरीरं सुसञ्चिन्त्य ध्यात्वा गणपम-
 स्तके । चन्द्रचन्दनकाश्मीरकस्तूरीलोलितैर्जलैः । प्रथमं
 मूलमन्त्रेण चतुर्वारं प्रतर्प्य च । मिथुनं षड्गणेशञ्च शङ्खपद्मनिधौ
 अपि । स्वस्ववौजादिकैर्युग्मैः स्वाहान्तैश्च चतुस्ततः । मूलमन्त्रं
 चतुर्वारपूर्वकं तर्पयेत् सुधीः । सभूयाष्टोत्तरशतं कनिष्ठोर्ध्वं
 भक्तः क्रमः । यद्वाष्टवारं मूलेन तर्पयित्वा विशेषवित् । श्री-

ह्यादीनि युग्मानि निध्यन्तानि पृथक् पृथक् । विभज्य चतुरा-
वृत्त्या मूलपूर्वं प्रतर्पयेत् । एवं मध्यक्रमोऽयं स्याद् द्विशतं
षोडशोत्तरम् । अथवा मूलमन्त्रेण विंशद्वारं प्रतर्प्य च । पूर्वं
मन्त्राक्षरैर्व्यस्तैः स्वाहान्तैश्च चतुश्चतुः । मूलमन्त्रचतुर्वारं पूर्ववत्
सम्प्रतर्प्य च । मिथुनादीष्टतः पश्चात् पूर्ववत् सम्प्रतर्पयेत् ।
भवेत् सम्भूय सचतुश्चत्वारिंशच्चतुःशतम् । ज्येष्ठक्रमोऽयं सम्प्रो-
क्तस्तत्त्वत्रैस्तन्त्रवेदिभिः । इत्थं सुधामयजलैरभिषिच्य कले-
वरम् । देवं पुनश्च सन्तोष्य गन्धार्घ्यैर्देशकालवित् । सर्वाभी-
ष्टतमं प्रार्थ्य नमस्कृत्य समुदसेत् । एवं योऽनुदिनं मन्त्रो
दिनादौ सम्प्रतर्पयेत् । मण्डलात् सकलाभीष्टं निर्विघ्नं ल-
भते ध्रुवम् ॥ शारदातिलके त्रयोदशपटलेऽपि ॥ तर्पयेत्
सलिलैः शुद्धैर्दिनेशं गणनायकम् । चतुश्चत्वारिंशताव्यं चतुः-
शतमतन्द्रितः । प्राप्नुयान्मण्डलादर्वाक् अभीष्टमधिकं नरः ।
तर्पणे तु सर्वमन्त्राणामयं विशेषः । क्रीडन् हेममयोदयाद्रि-
शिखरे स्थित्वावतोर्णः क्षुधां सोपानेषु समेत्य रुक्मकलितेष्व-
ब्जादिभैक्ष्यं बहु । भुक्त्वा प्रीतमना यथापुरमसौ सम्पूजितो
विघ्नपः कुर्यादित्युषसि स्मृतः शशिकलाक्लामांस्तथा तर्पितः ।
तर्पणे तु गं गणेशं तर्पयासौति प्रयोगः । क्रमाच्चतुःशतमिति
प्रतितिथिद्रव्यचतुष्टयेन तावान् होमः । अनावृष्टौ भये घोरे
राजचौराद्युपद्रवे । महाहवे विवादे च महादारिद्र्यसङ्कटे ।
विवाहादिषु सर्वेषु कामेषु च विशेषतः । एवं प्रतर्पणं कुर्या-
न्मानसैश्च प्रसन्नधीः । श्रीगणेशप्रभावेण सर्वं सिध्यति लीलया ।
अनाकुलमना मन्त्रो भावयेदिच्छसागरम् । तन्मध्ये विद्वमद्भीषं
तरुणादित्यसन्निभम् । तस्य मध्ये महादिव्यजाम्बूनदमयं
स्थलम् । तस्योर्ध्वं कल्पक्रोधाने विशालमणिभूतलम् । समया-
निलसंसेव्यं ज्योत्स्नाकालातपाक्षयम् । तन्मध्ये मण्डपं दिव्यं

५६३

शुक्ति-
मणि
पा-
रूपः
गोपी
गी ॥

हार-
गोन-

गार्ह-

ला-

सो-

व-

ति-

ला-

सते

ल-

म्हः

त्वं

क-

यत्

भ-

म-

ल-

ह-

॥

३-

मणिस्तम्भविराजितम् । सान्द्रसिन्दूरपङ्केन समालिप्तं मनो-
हरम् । मुक्तामणिवितानाब्जं पुष्पमालाविराजितम् । घण्टा-
ध्वजपतकाभिरुज्ज्वलं सुमनोहरम् । इत्थं सञ्चिन्त्य तन्मध्ये
सुरसङ्घैः संपूजितम् । वसन्ताद्यृतुभिः षड्भिः सेवितं युगपत्
सदा । मणिरत्नप्रवालाब्जं फलप्रसवपल्लवैः । शोभितं सर्वफ-
लदं महाकल्पतरुं स्मरेत् । तत्र कल्पतरोर्मूले नवरत्नैः समं
महत् । सिंहासनञ्च तन्मध्ये लसत्षट्कोणकर्णिकम् । अश्वो-
रुहं लिपिरियं भावयेन्नन्ववित्तमः ॥

भूतशुद्धिप्रकरणम् ॥ अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भूतशुद्धिं
यथाविधि । ध्वजमूलगुदाधस्ताद् दक्षपादाङ्घ्रिपार्ष्णिना ।
ऋजुकायशिरोग्रीवः संयतेन्द्रियमानसः । अङ्गसंलग्नपा-
णिश्च नासाग्रन्यस्तलोचनः । पूर्णस्वदेहशुषिरमापादाङ्गुष्ठ-
मस्तकम् । सञ्चिन्त्य व्यापिनीं शक्तिं शरीरान्तरवाह्यतः ।
साहङ्गारमनोजीवप्राणान् संयम्य पूर्वकान् । गुरूपदिष्ट-
मार्गेण मूलाधारान्नयेत् सुधीः । उत्थाप्य कुण्डलीशक्ति-
मात्मानञ्च तथा सह । एकीकृत्यास्त्रमन्त्रेण शन्यविद्रा-
वणक्रमात् । हंसेन कुम्भकोद्घातपरानन्दोऽर्द्धमर्चयेत् । सौष-
म्नमध्यमार्गेण जीवात्मानमनन्यधीः । उत्तमाङ्गात्तमान्तीय
द्वादशान्तर्गते शिवे ।। नियोज्य तत्त्ववर्णांश्च विलौनान्
परिभाव्य च । नाभौ सविन्दुकं धूमं वह्निवीजं विचिन्त्य
च । कलेवरञ्च हंसेन शोषयेच्चण्डवायुना । उद्घातपञ्चकेनाथ
हृदयाम्बुसरोरुहे । षट्कोषे नरसिंहाण्ज्वालामालासमा-
कुलम् । सञ्चिन्त्योपघनं मूल्यमकल्मषमनामयम् । तद्बीज-
ज्वालाया दग्ध्वा भस्मीभूतं विभाव्य च । तद्भस्मकूटमखिलं
वह्निवीजोत्थवायुना । विकीर्य संयतः पश्चाद् द्वादशार्णं चिद-
न्तरे । शिवशक्तिसमुद्भूतैस्तत्त्वाद्यैः सृष्टिमार्गतः । कलेवरं

समुत्पाद्य तेजोरूपं महामयम् । चिच्चन्द्रबीजमध्यस्थं जल-
बीजमनुस्मरेत् । तदुद्भूतामृताम्बोधौ चिन्तयेद्बुद्बुदं महत् ।
ततो बुद्बुदमध्यस्थं ब्रह्माण्डं समनुस्मरेत् । तस्मिन् बिम्बं ततो
देवीं ध्यात्वा तद्ब्रुदयाम्बुजे । सोऽहं धियात्मचैतन्यं समानीय
चिदम्बरात् । ततः सुस्थिरमात्मानं भूबीजेन विचिन्तयेत् ।
स वाह्याभ्यन्तरं देहं संज्ञाय्य सुधया पुनः । स्वस्थानमागतां
शक्तिं भावयेन्ननसा सुधोः । एवं कृत्वा भूतशुद्धिं पुनर्न्यासं
समाचरेत् ॥

मातृकान्यासोऽपि तत्रैव ॥ जपादौ सर्वमन्त्राणां विन्या-
सेन लिपेर्विना । कृतन्तु निष्फलं विद्यात् तस्मात् पूर्वां
लिपिं न्यसेत् । प्रणवज्यैर्विसर्गाद्यैराद्यैर्द्वादशभिः स्वरैः । पुटितैः
कादिषड्वर्गैर्मन्त्रौ कुर्यात् षडङ्गकम् । केशान्ते सुखवृत्ते च
चक्षुषोः श्रवणद्वये । नासागण्डौष्ठदन्तानां द्वन्द्वे मूर्ध्निस्थयोः
स्वरान् । वर्णान् पञ्च चवर्गाणां बाह्योश्चरणसन्धिषु । पार्श्वयोः
पृष्ठतो नाभौ हृदये च क्रमाद्व्यसेत् । यादिवर्णान् धातुप्राण-
श्वात्मकेनात्मनः क्रमात् । न्यस्यैवं मातृकां पञ्चादित्येवं न्यास-
माचरेत् । न्यस्यैवं मातृकां पञ्चान्मूलमन्त्रेण पञ्चधा । स्था-
नेषु वक्ष्यमाणेषु विन्यसेत् प्रयतात्मवान् । मूर्ध्निस्थहृद्गुह्यपाद-
हृत्सु बीजानि षट् क्रमात् । विन्यस्य व्यापयेच्छिष्टान् मन्त्रा-
णान् सर्वविग्रहे । शिरोललाटद्वग्वक्त्रचूडाजिह्वासु विन्यसेत् ।
षड्वीजानि मुखे शिष्टैर्मन्त्रार्णैः सर्वविग्रहे । शिरोभ्रूमध्ययोः
श्रोत्रे नेत्रनासायुगेष्वपि । वक्त्रे करपदद्वन्द्वलसत्सन्धिचतु-
ष्टये । कूर्परे हृदयाभोजे मन्त्रार्णैर्व्यापकं तनौ । शिरोवक्त्र-
हृदभोजगुह्यपदेष्वपि पञ्चकम् । मिथुनानां न्यसेत् स्त्रीयैः
स्त्रीबीजैर्नामभिः पृथक् । अखिलागमतत्त्वत्रैरीशानशिवदे-
शिकैः । पञ्चमं मिथुनं प्रोक्तं षष्ठञ्च कमलात्मकम् । अथ मूल-

८६३

पूर्वि-

मपि

पा-

रूपः

पक्षी

यी ।

हार-

गोन-

गर्ह-

ला-

। सो-

ज-

ति-

ला-

सते

। ल-

न्द्रः

। त्वं

क-

यत्

भ-

स-

ल-

ह-

। ।

इ-

षडङ्गानि विन्यसेदुक्तमानतः । वीजषट्कैश्चागमाद्यैर्वज्रैर्जाद्वि-
 समन्वितैः । अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमुत्पत्तिर्ब्रह्मचारिणाम् । म-
 ध्यादितर्जन्यवधि गृहस्थानां स्थितिर्भवेत् । अङ्गुष्ठान्तं कनि-
 ष्ठादि यतीनां संहतिर्भवेत् । आश्रमानुगुणं मन्त्री करयोरु-
 भयोरपि । अङ्गुलीषु च साग्रेषु तलयोरपि पृष्ठयोः । न्यस्य
 हृदादिमुद्राभिर्हृदयादिषु विन्यसेत् । तथा । मूर्ध्नि नेत्रे च
 जिह्वायां हन्त्राभिश्चिरजानुषु । विनायकादिविघ्नेशान् चर-
 णाग्रे च विन्यसेत् । विनायको विरूपाक्षः क्रूरकर्मापरा-
 जितः । चण्डवेगो हयग्रीवः करालश्चण्डविक्रमः । तथा ।
 सकण्ठांशेषु तेष्वेव विन्यसेत् साधकोत्तमः । विघ्नो विना-
 यको वीरः शूरो वदन एव च । गजवक्त्रस्ततः पश्चादेक-
 दन्तस्ततः परम् । लम्बोदरः क्षिप्रसंज्ञो महागणप एव च ।
 ब्रह्माख्याद्यास्तथा मातृरसिताङ्गादिभैरवान् । शक्तिबीजादि-
 कांश्चाष्टौ निजस्थानेषु विन्यसेत् । भालदोःस्तनपार्श्वेषु जठरे
 दक्षपार्श्वके । दक्षकण्ठापरगले हृदयेषु यथाक्रमम् । एवं न्यासं
 विनिर्वर्त्य ध्यानं कुर्यात् समाहितः । सिद्धिलक्ष्मीसमाश्लिष्ट-
 पार्श्वमर्द्धेन्दुशेखरम् । आरक्तवर्णं मातुलुङ्गगदापुण्ड्रे क्षुकार्मुकम् ।
 शूलं सुदर्शनं शङ्खं नीलोत्पलं धान्यमञ्जरौम् । निजदन्ता रत्न-
 घण्टा परिन्द्रपाण्येकादशकम् । प्रभिन्नकटमानन्दपूर्णमशेषध्वं-
 सकरं विघ्नेश्वरं दशभुजं ध्यायेदिति केचित् । अथ ध्यानं प्रव-
 क्ष्यामि व्याप्तिसंसारदेहतः । क्षमापदं खतनुत्रये जठरं पवनान्त-
 रम् । रवीन्दुवह्निनयनं दशाशयवर्णद्वयम् । प्रधानशीर्षं भूतेशं
 बुद्धौन्द्रियविचेष्टितम् । अनादिनिधनं दिव्यं तेजोराशिमना-
 मयम् । ध्यायेद्देवं गणेशानं सच्चिदानन्दविग्रहम् । एवं व्याप्तिं
 समाख्याय साकारं ध्यानमुच्यते । अनाकुलमना मन्त्री भावये-
 दिक्षुसागरम् । ब्रह्म मध्ये समासीनं गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।

एकदन्तं दशभुजं कम्ब ग्रीवं महोदरम् । पद्मस्य दक्षचरणलम्बि-
मध्यपदास्त्रजम् । तरुणादित्यसङ्काशं पीताम्बरसमावृतम् ।
सन्धारुणकपदान्तसीवर्णाभरणान्वितम् । शशाङ्कादङ्गतोत्तंसं
नागयज्ञोपवीतिनम् । रत्नौषाहरोक्षसितविशालवरवक्षसम् ।
मणिमुक्ताप्रबालाद्यैः कटिसूत्रपरिष्कृतम् । किङ्किणीमालया
बद्धवामजङ्घाविराजितम् । दक्षाधो हस्तमारभ्य धारया लम्ब-
मानया । गदाशूलवर्त्तिकद्विविषाणान् दक्षिणैर्भुजे । शाल्यग्रपा-
शचक्रेक्षुचयसंयोजपूरकान् । वीजपूरगदामिक्षुचापशूलसुदर्श-
नान् । अजपाशोपलत्रीह्रिविषाणानपरे विदुः । वामेऽङ्गधर-
मञ्जोरविलसच्चरणास्त्रजम् । वामाङ्गसंस्थया शक्त्या सर्वाल-
ङ्कारयुक्त्या । अश्वोजकरयास्त्रिष्टं सर्वैश्वर्यसुखप्रदम् । लीलया
रत्नकलसं पुष्कराग्रे निधाय च । परितः साधकं शस्त्रद्वर्षन्तं
रत्नवर्षणैः । प्रोच्छलत्कर्णतालैर्न मदलोलुपघटपदान् । निर्वा-
सयन्तं सततं देवासुरनिषेवितम् । वीरनादोद्धतोद्गीतैः स्तोत्रैः
सम्पूर्णमानसः । देवं महागणेशानं ध्यात्वा साधकपुङ्गव इति ।
अस्य यन्त्रकरणमपि तत्रैव ॥ कुसोदेनास्त्रुकस्तूरीचन्द्रचन्दन-
कुङ्कुमैः । आलिख्य हेमसूच्या वा दूर्वाकाण्डेन वा लिखेत् ।
पद्मं संलिख्य मतिमान् समरेखं सुशोभनम् । स्थापयेत् कनके
पोठे तदभावे विचक्षणः । श्रीपर्णसम्भवे वायु चतुरस्रे सुनि-
र्मिते । पूर्वं स्वामेतरयोरिष्टा गुरुगणेश्वरौ । तयोरान्नां समा-
साद्य पौठपूजासुपक्रमेत् । आधारशक्तिं चानन्तं कूर्मवत्
पृथिवीं क्रमात् । उपर्युपरि सम्पूज्य पञ्चाद्विह्वन्तरादिभिः ।
सिंहासनन्तु मनुभिः पूजयेच्च यथाक्रमम् । आधारशक्तिरासीना
शुक्लाभरणभूषिता । ध्यातव्या धवलप्रेक्ष्या लोकान् धत्ते शिवा-
न्नया । तत्त्वैर्धरादिविद्यान्तैर्द्वात्रिंशत्संख्यकैरिह । पीठा-
कारैश्चानन्तः स्यादनन्तासनमीरितम् ॥ तथा । धर्मं ज्ञानञ्च

५८३

पूर्वि-
मपि
शा-
रूपः
ासी
पी ।
हार-
तीन-
गार्ध-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ख-
न्द्रः
त्वं
क-
धत्
भ-
म-
ल-
ह-
।
इ-

वैराग्यमैश्वर्यं चतुष्टयम् । एतत् सिंहासनपदे चतुष्टयमिति
 कल्पसूत्रटीकाव्याख्यानम् । पीठान्नेयादिपादेषु चतुर्ष्वपि
 यथाक्रमम् । अधर्मादिचतुष्कञ्च पूर्वाद्याशाचतुष्टये । धर्मं रत्नं
 वृषाकारं सिंहं ज्ञानञ्च मेचकम् । भूताकारन्तु वैराग्यमैश्वर्यं
 सितमेन्दवम् । ईशाः स्युः कनकमणिषोढे धर्मादयः क्रमात् ।
 तथा । सत्त्वं रजस्तमश्चैव तत्पीठकमलोपरि । मायाञ्च शूल-
 काकारां विद्यां प्रच्छेदरूपिणीम् । उपर्युपरि सम्पूज्यमानन्
 लिपिपङ्कजम् । तन्मध्ये पूजयेन्नन्वी तद्गङ्गां मण्डलत्रयम् ।
 दलेऽर्कमण्डलं पश्चात् केशरे सोममण्डलम् । कर्णिकायां ततः
 पश्चात् पूज्यं वक्रेश्वरमण्डलम् । प्रणवावयवार्णोद्यैरर्चयेन्नामभिः
 क्रमात् । ब्रह्मविष्णुशैवरां भाव्याः क्रमंशो मण्डलत्रये । आत्मा-
 नमन्तरात्मानमुपर्युपरि पूजयेत् । पीठशक्तीः केशरेषु मध्ये
 प्रागादितः क्रमात् । पाशाङ्कुशकरा ध्येया नवकुङ्कुमसन्निभाः ।
 तीव्राद्याः पूजनीयाः स्युः शक्तयो मणिभूषणाः । तीव्रा च
 ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामवर्द्धिनी । उग्रतेजोवती सत्या
 नवमी विघ्ननाशिनी । सर्वशक्तिपदं चोक्ता कमलापदमुच्चरेत् ।
 सनायेति नमोऽभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः । समाप्तिपीठं
 तन्मध्ये मन्त्रो पूर्वत्रयं क्षिपेत् । ततः पूरकयोगेण मूलं संयोज्य
 मानसम् । तत्रस्थजोवचैतन्यमुन्नीय हृदयाम्बुजम् । पूर्वोक्तविधि-
 नोपेतमिच्छया श्रीगणेश्वरम् । सर्वोपचारैराराध्य प्रसन्नं पुरुषं
 पुनः । स्वतेजोरूपतां नीत्वा तत्तेजः संयतेन्द्रियः । मन्त्रकारुण्डं
 समुन्नीय तत्र पाण्डुरपङ्कजम् । तेजस्तत्त्वं सुसञ्चिन्त्य मन्त्री निश्च-
 लमानसः । कोदण्डस्थानमानीय पुष्पपूर्णकराम्बुजम् । निःसार्य
 ग्रवहन्नाद्या पूजिते पीठपङ्कजे । मध्ये मूर्तिञ्च गायत्र्या विद्या-
 द्दिहं तदस्तरे । वीजेन परचैतन्यतन्मूर्तिं हृदयाम्बुजम् । महा-
 गाणपतील्लुक्ता मूर्तये नम इत्यर्थः । गणेशमावाहयामि विद्या-

देहञ्च मूलतः । तथैव परचैतन्यं मन्त्रज्ञः साधकोत्तमः । श्रीदे-
शिकोक्तमार्गेण सम्यगावाहयेत् सुधीः । तत्स्ववर्णाश्रयेन्मूर्तौ
विद्यादेहे ततः परम् । न्यासं सर्वं प्रविन्यस्य प्राग्बद्ध्यात्मा सम-
र्चयेत् । तत्र चैतन्यमापाद्य प्रञ्च मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ तदुपस्था ॥
स्थापनं सन्निधानञ्च सन्निरोधावगुण्ठने । अमृततीकरणं पञ्चादेता
मुद्राः प्रकीर्त्तिताः । सर्वज्ञता च हृदये ततस्तृप्तिः शिवे पुनः ।
अनादिबोधञ्च शिखा शस्त्रं चानन्तशक्तिः । एतैर्जातियुतैरङ्गै-
रुपदेशविधानतः । हृदयादिषु विन्यस्य मूलेन व्यापकं न्यसेत् ।
गणेशमुद्राः सन्दर्श्य परिपूर्णं गणेश्वरम् । ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं
कुर्वन् विज्ञाप्य स्वागतं पुनः । पाद्यादीनुपचारांश्च मन्त्रौ सम्यक्
समाचरेत् । आसनं स्वागतञ्चाध्यं पाद्यमाचमनीयकम् । मधु-
पर्काचमनस्नानवसनाभरणान्यपि । सुगन्धिसुमनोधूपदौपनैवे-
द्यवन्दनम् । प्रयोजयेद् गणेशाय उपचारांस्तु षोडश । पाद्या-
दयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् । गन्धादयो नैवेद्यान्ता
पूजा पञ्चोपचारिका । सपर्या त्रिविधा प्रोक्ता तासामेकां समा-
चरेत् । गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपाः । दूर्वा चेति क्रमा-
दध्यं द्रव्याष्टकमुदीरितम् । पाद्यं श्यामाकदूर्वाजविष्णुकान्ताभि-
रुच्यते । जातौलवङ्गकङ्कोलैर्युतमाचमनीयकम् । मधुपर्कञ्च
सक्षौद्रं घृतं दधि समीरितम् । शुद्धाभिरङ्गिर्विहितं पुनराच-
मनीयकम् । चन्दनागुरुकर्पूरकाश्मोरकपिरोचना । जटा-
मांसी च चोरश्च एतद् गन्धाष्टकं स्मृतम् । चन्दनागुरुकर्पूरपङ्क्तै-
र्मन्त्र इहोच्यते । करवीरोत्पलवन्दविजयाकुसुमानि च । पुत्राग-
नागचम्पानि कुन्दमन्दारकाणि च । बन्धुजीवजवानुश्रीरमा-
निस्त्रकुरण्टकैः । पाटलाशोकमदनजातिकुञ्जापराजितैः ।
नन्दावर्त्तादिपूर्वाणि ह्यद्यान्यन्यानि यानि च । आगमोक्ताञ्च
पुष्पाणि गणेशस्य प्रियाणि च । मुकुलैः परितो स्नानै जीर्णैर्वा क्रि-

५८३

पूर्वि-
मपि
णा-
रूपः
गसी
पी ।
हार-
गेन-
गार्ह-
ला-
गो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्दः
त्वं
क्व-
प्रत्
भ-
म-
ल-
क-
ः ।

मिदूषितैः । आघ्रातेरङ्गसंस्पृष्टैर्न च पर्युषितैरपि । सद्गुणगुल्फ-
 गुरुशीरसिताज्यमधुचन्दनैः । साराङ्गारविनिक्षिप्तैर्मन्त्री नीचैः
 धूपयेत् । गोसर्पिस्तिलतैलेन वर्त्त्या कर्पूरगर्भया । दीपितं
 सुरभिं शुद्धं दीपमुच्चैः प्रदर्शयेत् । असितेन सुगन्धेन ससर्पिषा
 सितीदनम् । समकदलमध्वान्धदुग्धादीनि निवेदयेत् । ततो
 देवस्य विज्ञाप्य स्नानं नम इतोरयेत् । केशप्रसाधनाभ्यङ्गोदत्त-
 नोष्णोदकानि च । महागणपते ! पाद्यं नम इत्येव पादयोः ।
 तद्वदाचमनीयञ्च स्वधेति त्रिमुखे ददेत् । अर्घ्यं स्वाहेति शिरसि
 मधुपर्कं स्वधा तथा । पुनराचमनं पुष्पं मौली परिशिखाणुना ।
 पञ्चगव्यं तथा षष्ठं गन्धोदत्तनमेव च । सुगन्धामलकीगन्ध-
 स्तीर्थोदकमनन्तरम् । दिव्यगन्धानुलेपञ्च मूलमन्त्राभिमन्त्रितैः ।
 सुगन्धलोहितैस्तीर्थतोयैरप्यभिषेचनम् । आदर्शदर्शनं चान्य-
 मङ्गलाचरणानि च । दिव्यांशुके ततः पद्मानुकुटानि च कल्पयेत् ।
 सम्बोध्य सुखमाकल्प्य कल्पयामीत्युदीरयेत् । सङ्कल्प्य पूर्व-
 वन्मन्त्री पाद्यादिविक्रमाचरेत् । सगन्धाक्षतपुष्पाणि धूपञ्च
 स्वस्वमुद्रया । हृदयादिकवचान्तैस्तु मनुभिः क्रमशोऽर्चयेत् ।
 कला लयञ्च पूजाञ्च मन्त्रञ्चाक्षरसंख्यया । जप्तावरणपूजान्तं
 देवं विज्ञाप्य तत् पुनः । अङ्गानीष्ट्वा ततो मन्त्री वाह्यावरण-
 मर्चयेत् । लोकपालास्ततः पूज्याः समस्तचतुरस्रकैः । पुरुहते-
 शयोर्मध्ये रक्षोवरुणयोस्तथा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनि सदा
 शय्या विधोर्मुखे । पुरन्दरादिलोकेशाः सजात्यधिगहेतवः ।
 सवाहपरिवारान्ताः प्रयोक्तव्या मनीषिभिः । गुर्वाद्या लोक-
 पालान्ता ये मन्त्रास्ते ध्रुवादिकाः । स्वस्वबीजान्विताः सर्वे
 सचतुर्थीनमोऽन्तिकाः । एवमावरणं पूज्य प्रसूनैः कुन्दः
 सन्धवैः । पुनर्देवञ्च मूलेन सय्यगन्धादिभिर्यजेत् । जयध्वनि !
 ततो मन्त्रमातः ! स्वाहेत्युदीर्य च । अम्यर्थं वादयन् घण्टां

महापञ्चमहारवैः । वनस्पतीति मन्त्रेण स्वाहान्तेन स्वमुद्रया ।
 सुप्रकाशेति मन्त्रेण नमोऽन्तेन स्वमुद्रया । स सर्वाङ्गमतीकृत्य
 गणेशमनुपूर्वकम् । सनैवेद्यं गृहाणान्ते स्वाहेत्युक्त्वा स्वमुद्रया ।
 मुद्रयोदकदानेन मन्त्री सर्वं निवेदयेत् । देवं सपरिवारञ्च
 परितप्तं विभाव्य च । तथा । अथ नित्यविधिं कुर्वन् पुरश्चर्यां
 समाचरेत् । गुरुणा दीक्षितो मन्त्री पूर्ववच्च सुसंयुतः । चतु-
 र्लक्षञ्च सचतुश्चत्वारिंशत्सहस्रकम् । मनुमेनं जपेत् प्राज्ञः
 पुरश्चरणसिद्धये । मौलिनिश्चलकण्ठीष्ठजिह्वाट्टगच्चयन्त्रितः ।
 नासातालुगलगज्जिह्वासृक्कण्ठीनां समालिहन् । किञ्चिदुन्नतक-
 ग्रौवः किञ्चित्सङ्कोचितेक्षणः । नासाग्रदत्तदृष्टिः सन् दन्तै-
 र्दन्तान्न संस्पृशेत् । तच्चित्तस्तदुगतप्राणस्तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
 वाचिकेनोपांशुना च मानसेनाथवा सुधीः । चतुःसहस्रं स-
 चतुश्चत्वारिंशत्तमं यथा । अष्टोत्तरसहस्रं वा हरिष्ठाशी जिते-
 न्द्रियः । यत्संख्यया समारब्धं तन्मानं पूर्णतां नयेत् । यदि न्यूना-
 धिकं कुर्याद्ब्रतभ्रष्टो भवेन्नरः । तस्मात्कमं जपेत्तावद् यावत्
 संख्या समाप्यते । दशांशं तर्पणं कुर्यात् साधकेन्द्रोऽनुशास-
 नम् । इत्थं जपेत्तु सम्पूर्णं होमं कुर्याद्दशांशतः । पूर्वोक्तै-
 स्तर्पणायैश्च सह भक्तिपरायणः । वक्ष्यमाणक्रमेणैव कर्मानु-
 शुष्यसंस्थकान् । साङ्गाय भोजयेदङ्गान् ब्राह्मणान् हृष्टमान-
 सान् । गुरवे दक्षिणां दद्याद् यथावित्तानुसारतः । सम्प्राप्त
 गुरुकारुण्यः पश्चान्नन्दविदां वरः । प्रजपेच्चतुरावृत्त्या यद्वा
 नित्यं स्वशक्तिः । कुर्याद्यथावत् पूजादि होमेनातिप्रय-
 त्ततः । वित्तशाठ्यं विना नित्यं मन्त्रौ विघ्नेश्वरं भजन् ।
 निर्विघ्नं वत्सरादर्वाक् महतीं श्रियमश्नुते । यद्यग्निकार्य-
 सम्पत्तिर्बलेः पूर्वं विधानतः । विधिना संस्कृते वङ्गौ कुर्यात्
 पूर्वक्रमेण च । पर्यन्तैश्च हुत्वा मन्त्रासनवानद्य त्रिवारं सन्त-

वि-
मपि
शा-
रुपः
ासी
पी ।
हार-
गोन-
ाई-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्द्रः
त्यं
क-
प्रत्
भ-
म-
ल-
ह-
।।
५१

र्थीति । योग्यैरिति तत्तन्मन्वानुष्ठानपरैः । प्रयोगा अपि तत्रैव ।
 इत्थं सिद्धमनुर्मन्त्री कास्यकर्माणि साधयेत् । वक्ष्यामि कास्य-
 कर्माणि साधकानां हिताय वै । शास्त्रोक्तैव मार्गेण संचेपात्
 न तु विस्तरात् । स्वहृत्पद्मे गणेशानं कुन्देन्दुधवलप्रभम् ।
 शुक्तालङ्कारसम्पन्नं भावयेद् यो निरन्तरम् । भारती तस्य
 वक्ताजे शास्त्रीघोडारसुन्दरी । नित्यं प्रकाशते सत्यं दिव्य-
 ज्ञानप्रदायिनी । न निरस्येदुगणेशानं सिन्दूरसदृशप्रभम् ।
 पाशाङ्कुशधरं ध्यात्वा यो जपेन्मन्त्रिसत्तमः । अनङ्गरससम्पन्ना
 तमभ्येति वराङ्गना । पाशाङ्कुशवराभीतं हिमकुन्देन्दुसन्नि-
 भम् । अनवद्यमदीनाभं स्फुरन्नाणिक्यमण्डनम् । यः स्मरेत्तस्य
 वशगा भवन्त्यपि वराङ्गनाः । विवादिषु गणेशानं ज्वलदग्नि-
 समप्रभम् । प्रतिवादिमुखे ध्यायन् प्रजपेन्मनसा मनुम् । तन्मुखं
 स्तम्भयेदाशु वादी दीनोऽपि नान्यथा । अङ्गुष्ठमानं हृत्पद्मे
 शुद्धस्फटिकसन्निभम् । चिन्तयित्वा गणेशानं चिदम्बरसुधा-
 रसम् । अभिषिच्य सुरश्रेष्ठं सततं धरणीतले । सर्वरोगविनिर्मु-
 क्तश्चिरकालं स जीवति । शुक्लवर्णं गणेशानं दशबाहुमदोत्कटम् ।
 शुक्लास्त्रधरं सौम्यं चिच्छृणुवाङ्मासृतप्लुतम् । भावयेद्बुद्धयाभोजे
 नित्यं निर्मलमानसः । मन्त्री गरुडवत् सद्यस्त्रिविधं हरते
 विषम् । स्वर्णार्थी मधुना नित्यं वश्यार्थी पायसैर्हुमेत् । घृतेन
 लक्ष्मीसम्प्राप्त्यै हुमेत् शर्करया तथा । आयुषे चार्थसम्पत्त्यै
 दध्ना च जुहुयात् सुधीः । अग्नेन चान्नसम्पत्तौ द्रव्यास्यै
 तिलतण्डुलैः । लवणैरप्यनावृष्ट्यै वृष्टिकामस्तु वेतसैः ।
 सौभाग्यार्थी तथा लाजैः कुसुमैश्चापि सूदनैः ।
 वशिने जुहुयात्पद्मैराजानं वशमानयेत् । तत्पत्नीं
 विपुलैर्यत्तैरमाद्यन् कौरवैः शमैः । अश्वत्थोडुम्बरप्लक्ष्मण्यो-
 धजसमिधुतात् । विप्रचन्निद्विदशूद्राः सद्यो वश्या भवन्ति

वै । स्त्रीणां प्रतिवृत्तिं कृत्वा पिष्टेन प्रतिवासरम् । साज्या-
हुत्या स्त्रियस्तस्य वशमायान्ति नान्यथा । जपित्वा तु मन्त्रराजं
लेयो विधिमनीहरम् । दशांशं जुहुयान्मन्त्रो राजिकालवर्णेन
च । तद्भस्म वामहस्तेन गृहीत्वा ताडयेत् स्त्रियम् । समाग-
च्छति सा नारी मन्दनालमितिच्छणा । तद्वच्च प्रयजेदेनं पीत-
धुष्यैश्च मन्त्रवित् । स्तम्भयेद्विपुसैन्यञ्च सामात्यबलवाहनम् ।
प्रतिवादी भवेन्मूको मन्त्रस्यास्य प्रभावतः । स्तम्भयेत् पञ्च दि-
व्यानि नात्र कार्या विचारणा । विभीतकसमिद्धिस्तु नियतं
जुहुयात् सुधीः । सम्यग्गुञ्जाटयेत् शत्रून् स्वस्थानात्तु न संशयः ।
मेरुमन्दरतुल्योऽसावुञ्जाटयति नान्यथा । ग्रामे युद्धे पुरे वापि
इमं स्तुत्वा तु हीमयेत् । उञ्जाटयति वैगेन मानुषेषु च का
कथा । निम्बपत्रे समालिख्य रिषीर्नाम प्रचलतः । गोऽश्व-
माहिषरक्तेन निम्बतैलेन संयुतम् । एकान्ते च कृते हीमे
विंशत्सहस्रासंख्यया । द्विष्टो भवति लोकेषु स साक्षान्मन्त्रो
यदि । मानुषाश्चिमयं कौलं सम्यग्गुञ्जलं मितम् । मृत-
केशैस्तु संवेष्ट्य सहस्राष्टाभिमन्त्रितम् । कुलिकोदयवेलायां
शतद्वारे खनेद्भुवि । सप्ताहान्तरणं तस्य भावयेन्नात्र संशयः ।

अथ वक्ष्यामि संक्षेपात् कुमार्यां वेशनक्रमम् । सुगुप्ते विजने
देशे गोमयेनोपलेपयेत् । आचार्यः प्रयतो भूत्वा सुस्नातो
विजितेन्द्रियः । नवकुम्भं समादाय शुद्धकुम्भेन पूरयेत् । नवं
शरावमानोय कपिलाष्टतपूरितम् । कुम्भोपरि समारोप्य दीपं
प्रज्वालयेत्ततः । शताष्टमन्त्रजापेन कुमारा वा कुमारिकाः ॥
अतोतानागतञ्चैव वर्त्तमानञ्च यज्ञवेत् । शुभाशुभानि सर्वाणि
पश्यन्ति नात्र संशयः । सम्यग्ध्यात्वा गणेशानं गते यामे जपे-
न्निशि । शुभाशुभानि कर्माणि कथयन्ति न संशयः । कन्य-
कार्थं शुचिर्भूत्वा मन्त्रराजं गणेशितुः । जप्त्वा दशसहस्राणि

८६३

गुर्वि-
मपि
णा-
रूपः
गसी
पी ।
हार-
तीन-
गह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सवे
ल-
न्द्रः
त्वं
क-
प्रतु
भ-
स-
ल-
ह-
॥

३-

जालरक्ताश्वमारजैः । पुष्पैर्दशांशहवनात्तां कन्यां लभते ध्रु-
वम् ।

वक्ष्यामि भूमिपालानां गजसम्पादनक्रमम् । मातङ्गाब्धि-
महीपालः कारयेत्तद्वनान्तरे । अवटं विपुलं ध्यात्वा तत-
स्तन्निकटे गुरुः । पूर्वोक्तलक्षणयुते मण्डपे सुमनोहरे । वेदि-
कोत्तरतः कुण्डं वेदासं कारयेच्छुभम् । वेदिकोर्ध्वं गणेशान-
मावाह्यात्यन्तमन्त्रवित् । सुपक्वफलतोयैश्च सिद्धान्नञ्च निवेद-
येत् । तस्या मया ततो मन्त्री वज्रिमाधाय पूर्ववत् । अष्ट-
द्रव्यैस्त्रिमध्वत्तैश्चत्वारिंशत्सहस्रकैः । चतुःसहस्रैः सचतुश्चत्वा-
रिंशच्चतुःशतम् । पृथग्द्रव्यं यथासंख्यं जुहुयात् पञ्चवासरम् ।
द्विजोत्तमैरनुजपं कारयेत्तन्त्रमन्त्रवित् । गणेश्वरप्रसादेन च-
त्वारिंशद्दिनान्तरे । पतन्ति कनकाभास्ते कलभीता महावटे ।
ब्राह्मणान् भोजयेन्नित्यं स्वादूक्तभोज्यवस्तुभिः । तद्ब्राह्मण-
कृताशीर्भिर्वर्द्धतेऽसौ महीपतिः । तेषाञ्च गुरवे दद्याद्गजपञ्चा-
शहक्षिणाम् । तत्रमाणाद्दशांशं वा तद्विक्रीतधनानि वा ।
मिथुनादिदिगीशान्तैर्मन्त्रैराज्येन देशिकः । स्नात्वा देवं
समभ्यर्च्य होमं सम्यक् समापयेत् । पुनर्निवेद्य मुहूर्त्ताशेषं
पूर्ववदाचरेत् । पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मन्त्री स्वहृदयाम्बुजे ।
गणेश्वरं समुद्गास्य वज्रमुद्गासयेद्गुरुः । होमोपकरणं सर्वं
गुरवे शृङ्गचेतसा । समर्पयित्वा भूपालो भूयोभूयः प्रणम्य च ।
अन्यैराभरणाद्यैश्च पट्टवस्त्रादिभिः शुभैः । गुरुं सन्तोषयेत् स-
म्यग् गजानामतिवृद्धये । अयं राजन्यवर्गैश्च राष्ट्रेण सह वर्द्धते ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महालक्ष्म्यादिसाधनम् । मनोज्ञे
विजने देशे सर्वबाधाविवर्जिते । शुक्लवस्त्रपरीधानः शुक्लमा-
ख्यानुलेपनः । कृतनित्यक्रियो मन्त्री वज्रिमाधाय पूर्ववत् ।
पुण्डरीकैस्त्रिमध्वत्तैरुत्पलं पञ्च पञ्चधा । श्रीफलैर्बल्लक्ष्म

मध्वाज्यक्षीरसंयुतैः । शुक्लप्रतिपदि प्रातर्हुमेदकाग्रमानसः ।
अन्नयां महतीं लक्ष्मीं सम्प्राप्नोति न संशयः । उक्तप्रतिपद-
मारभ्य मातृन्यासमुपास्य च । चतुर्थ्यां श्रीगणेशस्य महापूजां
विधाय च । पूर्वद्रव्यैस्त्रिमध्वकैः शुक्लपत्रस्य पत्रती । पत्रती
प्रतिपदि । अष्टोत्तरञ्च लक्षञ्च यावत्कालेन पूर्यते । ताव-
त्कालं हुमेदेवं साधकश्च प्रसन्नधीः । होमावसाने लक्ष्मीं स्वां
निधिं पश्यति स ध्रुवम् । आदित्याभिमुखस्त्रिष्टम्भं बाहुर्वह्नि-
मुखः । लक्षजापादसौ मन्त्रो महाधनमवाप्नुयात् । क्षीराज्येन
स दूर्वाभिः सहितञ्च दिने दिने । स्रजन्मदिवसे वापि प्रातःकाले
हुमेन्नरः । अरोगी जितमृत्युश्च दीर्घायुर्भुवि जीवति । ब्राह्मणे
काले विशुद्धात्मा पूर्णं चन्द्रे च पर्वणि । कापिलं गोमयं शुद्धं
पद्मपत्रेण च स्थले । मन्त्रेणायुतसंज्ञम् गृहीत्वा निखनेदभुवि ।
भयं न विद्यते तत्र भूतचोरादिपन्नगैः । पूर्वं महागणेशानं
प्रत्यहं जुहुयात् सुधीः । वेतालसिद्धकुलिकान् कुण्डमध्यात्
समुद्धृतान् । साधकेन्द्रो महाभागान् सर्वदा लभते भुवि ।
एवं सिद्धाञ्जनं खड्गः पादुकादिश्च दुर्लभः । कदाचित् साधके-
न्द्रस्य नास्त्यस्य भुवनत्रये ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रराजं गणेशितुः । सुसमे
भूतले शुद्धे गन्धाद्यैः सुपरिष्कृते । कामक्रोधविनिर्मुक्तः
पूर्ववक्ष्याससंयुतः । सम्पूज्य देवदेवेशं गणेशं शङ्करात्मजम् ।
भूर्जेऽक्षेमे तशपरैर्मन्त्रराजं समुद्धरेत् । कस्तूरी रोचना
चन्द्रः काश्मीरं चन्दनं रसः । गोशक्कद्रससंयुतैर्मातङ्गमद-
मिश्रितैः । सर्वैश्च सुसमैरेभिः प्राणमापूर्य्य संलिखेत् । लेखन्या
हेमसूच्या वा जातीकाष्ठेन दूर्वया । षट्त्रिंशत्कोणमष्टारं
द्वादशारं ततः परम् । कवर्गादोनि गायत्र्या वर्णान्यपि लिखे-
द्वहिः । महाभूमण्डलं कुर्यान्नजाष्टकविभूषितम् । तद्वाह्ये

८६३

पूर्वि-
मपि
शा-
रूपः
गसी
पी ।

हार-
गोन-
गई-
ला-
लो-
ज-
ति-
ला-
सते

ल-
न्द्रः

त्वं

क-

यत्

भ-

स-

ल-

ह-

। ।

॥

वारुणं कूर्चमण्डलं ननताशुभम् । कर्णिकायां लिखेन्मन्त्री
हृत्तो प्रणवेष्टितौ । अङ्गानि च षट्कोणेषु लक्ष्मीमनुं दले
लिखेत् । द्वादशारे लिखेच्छक्तिं विना नपुंसकस्वरम् । स्वर-
वर्गं कलापचे ततश्चाष्टदलाब्जजे । कादिमान्ताच्चरञ्चापि सर्वं
पूर्वादितो लिखेत् । पुनः पार्श्वकोणेषु वा समार्णं समालि-
खेत् । एतदुयन्त्रं समाख्यातं न देयं यस्य कस्यचित् । शिविन
कथितं पूर्वं सर्वविघ्नोपशान्तये । त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा प्राण-
स्थापनकर्म च । मन्त्रेणाप्यमृतं जप्तं यन्त्रं यो धारयेन्नरः ।
तस्य विघ्नाश्च रोगाश्च सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः । राजानो वशमा-
यान्ति संक्षुभ्यन्ते परस्त्रियः । सिंहादिदुष्टसत्त्वाश्च चौराहि-
मदहस्तिनः । द्विजादिसर्ववर्णाश्च बलवन्तोऽपि शत्रवः ।
तस्य दर्शनमात्रेण वशमायान्ति ते सदा । ततः प्रवर्त्तते
वाणी संस्कृतप्राकृतादिका । छत्तचामरकोटीरमाला-
यष्ट्यादिसङ्कुला । स्वयमेव महालक्ष्मीर्वलेन सेवते चिरम् ।
वर्णितुं यन्त्रवर्गस्य प्रभावः नैव शक्यते । अनेन मनुनाऽसाध्यं
नास्ति तद्भूतलेष्वपि ॥

आकर्षणं प्रवक्ष्यामि यन्त्रेणानेन योज्यताम् । पूर्वं यन्त्रं समा-
लिख्य रक्तद्रव्यैः सुशोभनैः । अनामारक्तसंमिश्रैः साध्यनाम च
संलिखेत् । रक्तैः पुष्पैः समभ्यर्च्य रक्तचन्दनमिश्रितैः । मधूच्छिष्ट-
प्रतिकृतैः कुक्षौ यन्त्रं निधाय च । समीरणं प्रतिष्ठाप्य यथा-
वन्मन्त्रवित्तमः । कपिलाष्टतदीपेन चतुष्कोणं प्रतापयेत् ।
यावत् स न विलीयेत तथैव दिवसत्रयम् । सप्ताहद्विवसे नारी
यदि साक्षात्तिलोत्तमा । जपद्वष्टशतं मन्त्रं तापयित्वा तु धार-
येत् । तस्यैषा प्राणपथ्यं वशी तिष्ठति दासवत् । शिलाग्रद्वे
लिखेद् यन्त्रं पीतद्रव्यैः समार्णितः । पार्श्वपत्रेषु संस्थाप्य पीत-
पुष्पैः समर्च्य च । संदेष्टुं पीतद्रव्येण स्तम्भयेदायुधान्यपि ।

न दानवग्रहांश्चौरान् सेनां संस्तम्भयेदपि । आनीय जीवयो-
रक्तमकारणविरोधिनोः । गणकः स्यादृषिश्चन्द्रो नीवृद्धिघ्नोऽस्य
देवता ॥ गकारो वीजं विन्दुः शक्तिः ॥ गणेशगायत्री । एक-
दंष्ट्राय विद्महे वक्तुण्डाय धीमहि तन्नो विघ्नः प्रचोदयात् ।
श्मशानाङ्गारसंयुक्तं कृत्वा तेन चितापुटे । काकपक्षेण संलिख्य
साध्याख्यां कर्मसंयुताम् । एकलिङ्गध्वजे क्षिप्तं यन्त्रमुच्चाटयेद्
ध्रुवम् । लोकादिद्वेषणञ्चापि कुरुते नात्र संशयः । श्मशान-
कपर्णे यन्त्रं मानुषास्त्रिशलाकया । विषवृक्षोद्भवेनापि चिता-
ङ्गारेण कर्मवित् । क्रोधो भूत्वा समालिख्य श्मशाने निखने-
द्भुवि । सप्ताहात् स्त्रियते शत्रुर्नात्र कार्या विचारणा । एतदुद्धृत्य
दुग्धेन क्षालितं सेवितं व्रती । सर्वार्थसाधनं चान्यद्भानं वक्ष्ये
गणेशितुः । नवजीमूतसङ्काशं भिक्षाञ्जनसमप्रभम् । अष्टादश-
भुजं देवं मेरुमन्दरसन्निभम् । भौसमुखं विरूपाक्षं मेघघोष-
समध्वनिम् । रक्ताम्बरपरीधानं नागयज्ञोपवीतिनम् । नाना-
रत्नसमुद्दीप्तं कीटोराभरणोज्ज्वलम् । शक्तिञ्च परशुं शक्त्या
धृततोमरतर्जनम् । दन्तपद्मगतं पाशरुद्धुगञ्चेक्षुकाम्बुकम् ।
स्वपुष्पवाणशाल्यग्रं पात्रं सोदकपूरितम् । कुण्डिकामल-
मालाञ्च साभयं वरदं शुभैः । स्वपुष्करेण कलसं दधानं हिर-
दाननम् । पद्मासनस्थं देवेशं सर्वदेवैर्नमस्कृतम् । इत्थं सञ्चिन्त-
येन्मन्त्री सर्वोपद्रवशान्तये । वश्याकृष्टिविधौ रक्तं पीतं स्तम्भन-
कर्मणि । धूमाभं द्वेषणोच्चाटे कृष्णाभं मारणे रिपोः । स्वर्णाभं
धनदं विद्याच्छुक्तं ज्ञानप्रदं भवेत् । इत्येवं चिन्तयेत् प्राञ्ज-
स्तत्तत्कर्मसमाप्तये ॥

शारदातिलके त्रयोदशपटले ॥ पञ्चान्तकं शशिवरं वीजं
गणपतेर्विदुः । पञ्चान्तको गकारः । शशी विन्दुस्तदयुक्तम् ।
अथवा शशी विसर्गः । शक्तिर्निशात्कर इत्युक्तेः । गोपनायैवमु-

८६३

पूर्वि-
मपि
षा-
रूपः
ासी
पी ।
हार-
मीन-
ाई-
ला-
।सो-
।ज-
।ति-
ला-
सते
।ल-
।न्द-
।त्यं
।क-
।यत्
।भ-
।स-
।ल-
।द-
।।
।-

द्वारः । इदं द्वयमुत्तरगार्थोक्तं पूजाप्रयोगादिकमुभयोः समा-
 नमिति राघवभट्टः । केचिदीकारयुक्तमाहुः । उक्तञ्च प्रयोग-
 सारः । वीजमिन्दुमदी युक्तं कटतीयं तथैव च । इति । षड्दीर्घ-
 भाजा वीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् । सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतर-
 जठरं हस्तपद्मैर्दधानं दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्बीज-
 पूराभिरामम् । अर्द्धेन्दुद्योतमौलिं करिवरवदनं वीजपूरार्द्रगण्डं
 भोगीन्द्रावबभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥ राघवभट्टस्तु
 ध्यानानन्तरं दर्शनैयमुद्रामाह यथा । सुखात् प्रलम्बितं हस्तं
 कृत्वा सङ्कुचिताङ्गुलिम् । मध्यमातर्जनौगताङ्गुष्ठं वाऽधस्तु
 मध्यमम् । कुर्यान्मुद्रा गणेशस्य प्रोक्तं सर्वसिद्धिदा । यद्वा ।
 तर्जनेमध्यमासन्धिनिर्गताङ्गुष्ठमुष्टिका । अधोमुखी दीर्घरूपा
 मध्यमा विघ्नमुद्रिका ॥ इति । यद्वा । कुञ्चिताग्रस्य हस्तस्य
 मूले नासानियोगतः । गणेश्वरो भवेन्मुद्रा सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।
 इति । इयं सर्वगणपतिमन्त्रसाधारणीति । शारदायाम् ॥ वेद-
 लक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः । मोदकैः पृथुकालाजैः
 शक्तुभिश्चेत्पुर्वभिः । नारिकेलैस्तिलैः शुद्धैः सुपक्वैः कदली-
 फलैः । अष्ट द्रव्याणि विघ्नस्य कथितानि मनीषिभिः ॥ अत्रार्द्ध-
 मर्दनयुतमेकैकेन द्रव्येण होतव्यमिति राघवभट्टः । केचित्तु
 अष्टद्रव्यमेलनेन होममाहुः । तत्तदाहुतिप्रमाणसन्देहापातात्
 मूले च प्रत्येकं पृथक् क्रियाद्वयाच्च विशिष्टस्य द्रव्यान्तरत्वे-
 नाष्टद्रव्यहोमकरणासम्भवाच्च । तदुक्तं भद्राचार्यैः । नैव ब्रीहि-
 भिरिष्टं स्याद्द्रव्यैर्न च यथाश्रुतैः । मिश्रैरिज्येत चेत्तदा मि-
 श्राणां विध्यदर्शनादिति । नत्वेवं त्रिमधुरहोमे त्रिमधुयुक्तमपि
 न कार्यमिति चेन्नैवम् । सर्वं त्रिमधुरोपेतं होमद्रव्यमुदाहृत-
 मिति वचनात् । मेलनस्य पशुपुरोडाशायवदानानामप्रस्ताव-
 प्रत्युपसाराज्यमेलनवदविरोधात् । तदुक्तं गणेशविमर्दिष्याम् ।

अष्टद्रव्यैस्त्रिमध्वत्तैर्जुहुयाच्च पृथक् पृथगिति शुद्धैरित्यनेनावकर्
द्रोक्तव्य प्रक्षाल्य शोधितैरित्युक्तम् । शारदायाम् । तीव्रादि-
शक्तियुक्ते च पीठे विघ्नेश्वरं यजेत् । तीव्राख्या ज्वालिनो नन्दा
भोगदा कामरूपिणी । उद्या तेजोवती सत्त्वा नवमी विघ्न-
नाशिनो ॥ आसां ध्यानं राघवभट्टे । पाशाङ्कुशाञ्जलिकरा
नवकुङ्कुमसन्निभाः । तीव्राद्याः पूजनीयाः स्युः शक्तयो मणि-
भूषणाः । शारदायाम् । सर्वादिशक्तिकमलासनाय हृदयावधि ।
पीठमन्त्रोऽयमेतेन प्रदद्यादासनं विभोः । मूर्त्तिं मूलैर्न
सङ्कल्प्य तस्यां विघ्नेशमर्चयेत् । कर्णिकायां चतुर्दिक्षु प्रथमं
पूजयेदिमान् । यथाक्रमं ततोऽभ्यर्चयेत् केशरेश्वरदेवताः । पद्म-
मध्ये तु विधिवदक्रतुण्डादिकान् यजेत् । विधिवदिति गण-
पतिवौजवदिति राघवभट्टः । वक्रतुण्डमेकदंष्ट्रं महादेवगजा-
ननी । लम्बोदराख्यं विकटं विघ्नराजमनन्तरम् । धूम्रवर्णं
दलापेषु ब्राह्मणाद्याः पूजयेत्ततः । लोकपालांस्तदस्त्राणि देव-
मित्यं समर्चयेत् । सिद्धमन्त्रः प्रकुर्वीत प्रयोगान् कल्पचोदि-
तान् । नारिकेलैः कृतो होमश्चतुर्थ्यां श्रीप्रदो भवेत् । शुक्लपद्म-
प्रतिपदमारभ्य विमलः सुधौः । चतुर्थ्यन्तं नारिकेलशुक्लजा-
तिलैः क्रमात् । चतुःशतं प्रजुहुयादश्याः स्युः सर्वजन्तवः ।
वश्यकर्मादौ तु विशेषः । प्रयोगसारनारायणीययोः । साध्यं
पाशाङ्कुशाभ्यामिह विधिवदुपानीय तस्योपरिस्थो वश्याकाङ्क्षी
जपेत्तं सपदि विधिरयं हन्ति रुष्टस्य रोषमिति । सतिलैस्तुण्ड-
लैर्होमो लक्ष्मीवश्यप्रदो भवेत् । अत्रापि शुक्लप्रतिपदमारभ्य
चतुर्थ्यन्तं चतुःशतं होमः । लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमः कन्यां
प्रयच्छति । अत्र प्रतिपदमारभ्य सप्तमीपर्यन्तं चतुःशतं होमः ।
तथा च राघवभट्टवृत्तं मधुरत्रयसिक्ताभिर्लाजाभिः सप्त वासरा-
निति । अनेन विधिना कन्यावरमाप्नोति वाञ्छितम् । आख्या-

८६३

पूर्वि-
मपि
णा-
रूपः
गसी
पी ।
हार-
गिन-
गह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्दः
त्व-
क-
पत्
भ-
म-
ल-
ह-

३८

क्षहविषा होमः साधवेदोषितं कृणाम् । दध्ना विलोडितै-
र्लालैर्होमी मुनिचतुर्दिनम् । प्रतिपदमारभ्य चतुर्थीपर्यन्तम् ।
सम्प्रातिं कुरुते तद्वद्वश्यं वितनुते सदा । श्वेताकैतरुमूलैर्न
रक्तचन्दनदारुणां । इभभग्नेन निम्बेन दन्तिदन्तेन वा कृतम् ।
विघ्नेश्वरं समभ्यर्च्य शीतांशुग्रहणे जपेत् । सृष्ट्वा मन्त्री निरा-
हारस्तं शिखायां समुद्वहन् । युद्धेषु व्यवहारादी विजयं
त्रिधमाप्नुयात् । जपस्तु ग्रासादिमुक्तिपर्यन्तम् । तथा । मन्त्रे-
णानेन सञ्चप्य रोचनामदसंयुता ॥ मदी गजमदः ॥ तिलक-
क्रिधया सर्वान् वशं नयति मानवान् । अनुलोमविलोमस्थ-
धोजे नाम समालिखेत् । नवनीते समभ्यर्च्य सृष्ट्वा प्राणमनुं
जपेत् । अष्टोत्तरशतं भूयो मूलमन्त्रं प्रजप्य तत् । भक्षयेत्क्षीह-
मास्थाय यामिन्यां सप्त वासरान् । स वश्यो जायते शीघ्रं
साधकस्य न संशयः । अनुलोमेत्यनेन वीजयोः पुटितत्वमात्र-
मुक्तं तेन वीजयोर्मध्ये साध्यनाम नवनीते लिखेदिति ता-
त्पर्यम् ॥

गायत्रीतन्त्रे प्रथमब्राह्मणपटले ॥ षोडशैरुपचारैश्च
गणेशं पूजयेद् द्विजः । अणिमादिमहामन्त्रैः पूजयेच्छिव-
नन्दनम् । ध्यात्वा पाद्यादिकं दत्त्वा अणिमादि जपेन्मनुम् ।
सिन्दूरवर्णसङ्काशं योगपट्टसमन्वितम् । लम्बोदरं महाकायं
मुखं करिकरोपमम् । अणिमादिगुणैर्युक्तं अष्टबाहुं त्रिलो-
चनम् । विजयाविष्टृतं लिङ्गं मोक्षकामाय पूजयेत् ॥ ओं अं
गणपतये स्वाहा । अनेनैव हि मन्त्रेण पूजयेद् गणनायकम् ।
अणिमाद्यष्टमन्त्रैश्च अष्टबाहुं प्रपूजयेत् ॥ ओं अणिमायै नमः
स्वाहा । प्रं प्राप्तायै नमः स्वाहा । मं महिमायै नमः स्वाहा ।
ईं ईशितायै नमः स्वाहा । वं वशितायै नमः स्वाहा । कं
कांभावसायितायै नमः स्वाहा । एवं सम्पूज्य विधिवत् मन्त्री-

कामान् प्रयोजयेत् भोजयित्वा विधानैः नानामिष्टफलादिभिः ।
परमान्नपिष्टकैरस्यैर्धदुग्धघृतादिभिः । दिव्यगन्धमयैः पुष्पैः
दिव्यगन्धप्रलेपनैः । मूषिकं पूजयामास नानामिष्टफलादिभिः ॥
श्रीं सं मूषिकाय गणाधिपवाहनाय धर्मराजाय स्वाहा । इत्य-
नेनैव मन्त्रेण मूषिकं पूजयेत् सदा ॥

अथ हरिद्रागणेशः ॥ तदुत्पत्तिस्तु नारदपञ्चरात्रे दशमाध्याये
नागद उवाच । लिपिलम्बोदरस्याथ सम्भवः कथितो मयि । अ-
न्येषां गणनाथानां मूर्त्तिनां सम्भवं वद ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकदा
पार्वती देवी पिष्ट्वा च रज्जुनीं पराम् । पुत्तलीं कारयामास तया
देवी हरिद्रया । शङ्करं प्राह सा साध्वी पुत्रं पालय शङ्करं ।
इत्युक्तः प्रियया शम्भुर्वर्द्धयामास तं सुतम् । उवाच परया प्रीत्या
शरीरस्य च शोधनम् । तपः कुरु महाभाग ! ततः सिद्धिमवा-
प्ससि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यं पितुः शीघ्रमुपविष्टः शिवेन
हि । जगाम तन्मुं कामाख्यां कामरूपे गिरौ ततः । पञ्चाक्षरी-
मुग्रतारामाराध्य नियतः शुचिः । प्रत्यक्षत्वमवाप्याशु तया
देव्या शिवस्ततः । उवाच प्रेमभावेन तं पुत्रं गिरिजापतिः ।
त्रुतुर्वर्गप्रदोऽसि त्वं साधकानां न संशयः । तथा ब्रह्मा च
विष्णुश्च रुद्रश्च परमेश्वरी । यथान्यदेवताः सर्वाश्चतुर्वर्गफलप्रदाः ।
तथा त्वमसि देवेश ! चतुर्वर्गफलप्रदः । हरिद्रागणनाथेति
ख्यातिः सर्वांगमादिषु । लिपिलम्बोदरो देवो हरिम्बोऽपि यथा
तथा । एतासामपि मूर्त्तिनां बाह्यावस्था च या स्मृता ।
उच्छिष्टगणनाथेति सा मूर्त्तिः शास्त्रगोचरे ॥

अथ महागणप्रत्युपनिषत् । ओं लं स्वाहा नाववतु स्वाहा ।
 लौ भुनक्तु स्वाहा वीरियं करवावहे । तेजस्विनावधौतमस्तु मा
 विद्विषावहे । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः । ओं लं नमस्ते गण-
 प्रत्ये त्वमेव प्रत्यक्षं त्वमसि । त्वमेव केवलं कर्त्तासि त्वमेव

43

पुर्वि-
मपि
षा-
रूपः
गसौ
पी ।
हार-
गोन-
गार्द्ध-
ला-
सो-
ज-
ति-
ता-
ति
ब-
इः
प्रं-
न-
न
-
-
-

5.

केवलं धर्तासि त्वमेव केवलं हर्तासि । त्वमेव सर्वं खल्विदं
 ब्रह्मासि । त्वं साक्षादात्मासि नित्यं ऋतं वच्मि सत्यं वच्मि
 अव त्वं मामव वक्तारं अव ओतारम् अव दातारम् अवालो
 ब्राचालमिति । अव शिष्यम् अव पञ्चात्तात् अव पुरस्तात् अवी-
 क्षरात्तात् अव दक्षिणात्तात् । अव चोर्द्धात्तात् अवाधराधरा-
 त्तात् । सर्वतो मां पाहि पाहि समन्तात् । त्वं वाङ्मयस्व-
 द्धिन्मयस्व' ब्रह्म त्वं ब्रह्ममयस्वमानन्दमयस्व' सच्चिदानन्दा-
 द्वितीयोऽसि । त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मा असि त्वं ज्ञानमयो विज्ञान-
 मयोऽसि । सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते । सर्वं जगदिदं त्वयि
 लयिष्यति । त्वं भूमिरनलोऽनिलो नभः । त्वं चत्वारि वाक्-
 पाणिपायुपादानि । त्वं गुणत्रयातीतः । त्वं देहत्रयातीतः ।
 त्वं कालत्रयातीतः । त्वं मूलाधारस्थितो नित्यं त्वं शक्ति-
 त्रयात्मिकस्त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम् । त्वं ब्रह्मा त्वं
 विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्र-
 मास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥

गणादीन् पूर्वमुच्चार्य वर्णादींस्तदनन्तरम् । अनुस्वा-
 रपरतरः अर्द्धन्दुलसितं तावदूह्यम् । एतत्तव मनुस्वरूपम् ।
 गकारः पूर्वरूपम् । अकारो मध्यमरूपम् । अनुस्वारश्चान्य-
 रूपम् । विन्दूत्तररूपम् । नादः सन्धानम् । संहिता सन्धिः ।
 स ईशानगणेशविद्या । गणकऋषिर्नीयूङ्गायत्रीच्छन्दः शं
 गणपतये नमः । एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ।
 तन्नो दन्ती प्रचोदयेत् । एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुश-
 धारिणम् । अभयं वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषिकध्वजम् । रक्तं
 लम्बोदरं सूर्पकर्णकं रक्तवाससम् । रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं
 रक्तपुष्पैः सुपूजितम् । भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्यु-
 तम् । आविर्भूतश्च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात् परम् । एवं

ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः ॥ ॐ नमो वराह-
पतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बो-
दराय । एकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय वरदमूर्तये
नमः । एतदेवाथ सर्वेश ! यो योऽधीते स ब्रह्मभूयाय
कल्पते । स पञ्चमहापापात् प्रमुच्यते । स सर्वतः सुखमेधते ।
सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो
रात्रिकृतं पापं नाशयति । तन्नायं प्रातरधीयानः पापोऽपापो
भवति । सर्वत्राधीयमानोऽपविघ्नो भवति । धर्मार्थकाममो-
क्षञ्च विन्दति इत्यथर्वशीर्षम् अशिष्याय न देयम् । यो यदि मोहाय
दास्यति स पापीयान् भवति । सहस्रावर्तनाद् यस्तु यं यं
काममधीवे तं तमवाप्नोति । अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वा-
ङ्मयो भवति । चतुर्थ्यामनश्नन् जपति स विद्यावान् भवति ।
इत्यथर्वणवाक्यं ब्रह्माद्याचरन् विद्या न विभेति कदाचनेति ।
यो दूर्वाङ्गुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति । यो लाजैर्यजति स
यशवान् भवति । स मेधावान् भवति । यो मोदकसहस्रेण
यजति स वाञ्छितमवाप्नोति । यश्चाज्यसमिद्धिर्यजति स सर्वं
लभते । अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी
भवति । सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासन्निधौ वा जप्त्वा स सिद्ध-
मन्त्रो भवति । महापापात् प्रमुच्यते स सर्वविद्भवति । य एनं
वेद इत्युपनिषत्स्नाह नाववतु । ओं शान्तिः शान्तिः
शान्तिः ॥ इति महागणपत्युपनिषत् ॥

अथ गणपतिस्तोत्रम् ॥ नारदपञ्चरात्रे प्रथमरात्रे सप्तमा-
ध्याये ॥ श्रीनारद उवाच ॥ हे गणेश ! सुरन्ध्र ! लम्बोदर !
परात्पर ! । हेरम्ब ! मङ्गलारम्भ ! गजवक्त्र ! त्रिलोचन ! ।
त्रिलोचनसुत ! श्रीद ! श्रीधरस्मरणेऽस्मिन् ! । परमानन्द ! पर-
मपार्वतीनन्दन ! स्वयम् । सर्वत्र पूज्य ! सर्वेण जगत्पूज्य ! जग-

हुरी ! । जगदीश ! जगद्बीज ! जगन्नाथ ! नमोऽस्तु ते ।
 यत्पूजा सर्वपुरतो यः स्तुतः सर्वयोगिभिः । यः पूजितः
 सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैस्तं नमाम्यहम् । परमाराधनेनैव कृष्णस्य
 परमात्मनः । पुण्यकेन व्रतेनैव यं प्राप्य पार्वतीं सती । तं
 नमामि सुरश्रेष्ठं सर्वश्रेष्ठं गरिष्ठकम् । जनश्रेष्ठं वरिष्ठञ्च तं
 नमामि गणेश्वरम् । इदं लम्बोदरस्तोत्रं नारदेन पुरा कृतम् ।
 पूजाकाले पठेन्नित्यं जयस्तस्य पदे पदे । सङ्कल्पतः पठेद् यो
 हि वर्षमेकं सुसंयुतः । विशिष्टपुत्रं लभते परं कृष्णपरायणम् ।
 यशस्विनञ्च विद्वांसं धनिनं चिरजीविनम् । विघ्ननाशो भवे-
 तस्य महैश्वर्यं यशोऽमलम् । इहैव च सुखं भुक्त्वा अन्ते
 याति हरेः पदम् ॥ इति ज्ञानामृतसारे गणेशस्तोत्रं समा-
 प्तम् ॥

अथ वाणलिङ्गलक्षणम् । वीरमितोदयदृढकालोत्तरे ॥
 वाणलिङ्गं तथा ज्ञेयं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । उत्पत्तिं वाणलिङ्गस्य
 लक्षणं शेषतः शृणु । नर्मदादेविकायाश्च गङ्गायमुनयोस्तथा ।
 सन्ति पुण्यनदीनाञ्च वाणलिङ्गानि षण्मुखे । इन्द्रादिपूजिता-
 न्यत्र तच्चिह्नैर्विहितानि च । सदा सन्निहितस्तत्र शिवः सर्वार्थ-
 दायकः । इन्द्रलिङ्गानि तान्याहुः साम्राज्यार्थप्रदानि च ॥१॥
 इतीन्द्रलिङ्गलक्षणम् ॥

अरुणं नित्यकीलालमुष्णञ्च शं करोत्यलम् । आग्नेयं तच्छ-
 क्तिनिभमथवा शक्तिलाञ्छितम् । इदं लिङ्गवरं स्थाप्य तेजसा-
 धिपतिर्भवेत् ॥ इत्याग्नेयलिङ्गलक्षणम् ॥ २ ॥

दण्डाकारं भवेद् याम्यमथवा रसनाकृति । यद्यदुक्तं
 सद्यैर्न निर्णितं ज्ञायते तदा । निषिक्तं निधनं तेन क्रियते
 स्थापितेन तु ॥ ३ ॥ इति याम्यलिङ्गलक्षणम् ।

राक्षसं खड्गसदृशं ज्ञानयोगफलप्रदम् । कर्करादिप्रलिसन्तु

कुण्डं कुक्षियुतं तथा । राक्षसं निष्कृतेलिङ्गं गार्हस्थ्ये न सुख-
प्रदम् ॥ इति नैर्ऋतलिङ्गलक्षणम् ॥ ४ ॥

वारुणं वर्तुलाकारं पाशाङ्गं चालिवर्चसम् । वृद्धिसुखादेः
स्वत्वन्तु सभोगासन्तु मध्यगे ॥ इति वारुणलिङ्गलक्षणम् ॥ ५ ॥

कृष्णं धूम्रं नवा रुच्यं ध्वजाभं ध्वजमूपलम् । मस्तके
स्थापितं तस्य न्यूनन्यूनमितस्ततः ॥ इति वायुलिङ्गलक्षणम् ॥ ६ ॥

तूलकार्पासगदाकारमध्यगुरुकीवेरशषसस्य मध्यगम् ॥ इति
कुवेरलिङ्गलक्षणम् ॥ ७ ॥

दिनं वाप्यथवा रात्रिं शस्यानां वृद्धिरैर्वलम् । अस्थिशूला-
ङ्कितं रौद्रं हिमकुण्डलवर्चसम् ॥ इति रौद्रलिङ्गलक्षणम् ॥ ८ ॥

चतुर्वर्णमयं वापि वैष्णवं ज्ञायतेऽग्रतः । वैष्णवं शङ्खचक्राङ्ग-
गदाबादिविभूषितम् । श्रीवत्सं कौस्तुभाङ्गञ्च सर्वसिंहासना-
ङ्कितम् । वैनतेयसमाङ्गं वा तथा विष्णुपदाङ्कितम् । वैष्णवं
नाम तत् प्रोक्तं सर्वैश्वर्यफलप्रदम् ॥ इति वैष्णवल्लिङ्गलक्ष-
णम् ॥ ९ ॥

शालग्रामादिसंस्थन्तु शशाङ्गं श्रीविवर्द्धनम् । पद्माङ्गं
स्वस्तिकाङ्गं वा श्रीवत्साङ्गं विभूतये ॥ इत्यपि वैष्णवल्लिङ्गलक्ष-
णम् ॥ १० ॥

हेमाद्रिपृथतलक्षणकाण्डे ॥ नारद उवाच ॥ अथ वक्ष्यामि ते
विप्र! चिह्नमेकादशं परम् । श्रवणादयस्य पापानि नाशमा-
यान्ति तत्क्षणात् । मधुपिङ्गलवर्णाभं कृष्णकुण्डलिकायुतम् ।
स्वयम्भूलिङ्गमाख्यातं सर्वसिद्धिनिर्षिवितम् ॥ १ ॥ नानावर्णसमा-
कीर्णं जटाशूलसमन्वितम् । मृत्युञ्जयाह्वयं लिङ्गं सुरासुरनमस्कृ-
तम् ॥ २ ॥ दीर्घाकारं शुभ्रवर्णं कृष्णविन्दुसमन्वितम् । नीलकण्ठं
समाख्यातं लिङ्गं पूज्यं सुरासुरैः ॥ ३ ॥ शुक्लाभं शुक्लकेशञ्च
नेत्रत्रयसमन्वितम् । त्रिलोचनं महादेवं सर्वपापप्रणोदनम् ॥

४ ॥ ज्वलन्निङ्गं जटाजूटं कृष्णभं स्थूलविग्रहम् । कालाग्नि-
रुद्रमाख्यातं सर्वसत्त्वेर्निषेवितम् ॥ ५ ॥ मधुपिङ्गलवर्णाभं
श्वेतयज्ञोपवीतिनम् । श्वेतपद्मसमासीनं चन्द्रेखाविभूषितम् ।
प्रलयास्त्रसमायुक्तं त्रिपुरारिसमाह्वयम् ॥ ६ ॥ शूभ्राभं पिङ्गल-
जटं मुण्डमालाधरं परम् । त्रिशूलधरमीशानं लिङ्गं सर्वार्थ-
साधनम् ॥ ७ ॥ त्रिशूलउमरुधरं शुभ्ररक्तार्द्धभागतः । अर्द्धनारौ-
श्चराह्वानं सर्वदेवैरभीष्टदम् ॥ ८ ॥ ईषद्रक्तमयं कान्तं स्थूलं
दीर्घं समुज्ज्वलम् । महाकालं समाख्यातं धर्मकामार्थमोक्ष-
दम् ॥ ९ ॥ एतत्तु कथितं तुभ्यं लिङ्गचिह्नं महेशितुः । एकैनेव
कृतार्थः स्याद् बहुभिः किमु सुव्रत ! ॥ इति वाणलिङ्गचिह्नानि ॥

वीरमित्रोदयधृतकालोत्तरे ॥ उक्ताङ्गं त्रेयसे योज्यं शीर्ष-
मन्त्रं विवर्जयेत् । यमवर्णन्तु यस्मिङ्गं यमाङ्गं वा कमण्डलुम् ।
दण्डाङ्गं सूत्रचिह्नं वा ब्रह्मज्ञानान्वितं मतम् । शशिवर्णं
महाकालं नन्दोशं पद्मरागवत् । पद्मरागनिभं सर्वं महाभं
सिद्धिपूजितम् । मौक्तिकाभं नीलनिभं रुद्रादित्यैः प्रपूजितम् ।
वसुदैः सेन्द्रयज्ञैर्गुह्यैर्कौर्यातुधानकैः । नानावर्णमयं नीलं
शशाङ्गमण्डलप्रभम् ॥ इति वाणलिङ्गलक्षणम् ॥

वीरमित्रोदयधृतम् ॥ इत्येतत्क्षणं प्रोक्तं परीक्षातत्त्वको-
विदैः । त्रिः सप्तपञ्चवारं वा तुलासाम्यं न जायते । तदा वाणं
समाख्यातं शेषं पाषाणसम्भवम् । तुलाकारणन्तु तण्डुलेन ।
अपरतुलादिषु तण्डुला यद्यधिकाः स्युस्तदा तस्मिङ्गं गृहिणां
पूज्यमवधार्यं लिङ्गश्चेदधिकं तदोदासीनपूज्यं तदिति किं-
वदन्तीति हेमाद्रिधृतलक्षणकाण्डे ॥ सूत्रसंहितायान्तु ॥ सप्त-
स्रत्त्वस्तुलारूढं वृद्धिमिति न हीयते । वाणलिङ्गमिति ध्यातं
शेषं नार्मदमुच्यते । त्रिः पञ्चवारं यस्यैव तुलासाम्यं न जायते ।
तदा वाणं समाख्यातं शेषं पाषाणसम्भवम् ॥ वीरमित्रोदये ॥

नद्यां वा प्रक्षिपेद्भूयो यदा तदुपलभ्यते । वाणलिङ्गं तदा
विद्धि न्यूनं सुखविवर्द्धनम् ॥ इति वाणलिङ्गपरीक्षा ॥

वाणशब्दव्युत्पत्तिरपि तत्रैव ॥ अथ वाणं समाख्यातं यथा
वक्ष्ये तथादितः । वाणः सदाशिवो देवो वाणो वाणान्तरोऽपि
च । तेन यस्मै कृतं तस्माद्वाणलिङ्गमुदाहृतम् । सदा सन्नि-
हितस्तत्र शिवः सर्वार्थदायकः । कृतप्रतिष्ठं तल्लिङ्गं वाणाख्येन
शिवेन च । पङ्कजस्य फलाकारं कुण्डलस्य समाकृतिः । पङ्कजफलं
पद्मवोजम् । पङ्कजम्बूफलाकारं कुकुटाख्यसमाकृतिः । इति
हेमाद्रिदृष्टतलक्षणकाण्डे पाठः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदञ्चैव वाणलिङ्ग-
मुदाहृतम् ॥ याज्ञवल्क्यसंहितायाम् । देवीं प्रति शिववाक्यम् ॥
प्रशस्तं नार्भदं लिङ्गं पङ्कजम्बूफलाकृतिः । मधुवर्णं तथा शुक्लं
नीलं मरकतप्रभम् । हंसडिब्बाकृतिः पुनः स्थापनायां प्रश-
स्यते । स्वयं संस्मरते लिङ्गं गिरितो नर्मदाजले । पुरा वाणा-
सुरेणाहं प्रार्थितो नर्मदातटे । अधिवासं गिरौ तत्र लिङ्गरूपी
महेश्वरः । वाणलिङ्गमपि स्थातमतीर्थाञ्जगतीतले । अन्येषां
कोटिलिङ्गानां पूजने यत् फलं लभेत् । तत् फलं लभते मर्त्या
वाणलिङ्गैकपूजनात् ॥ तथा ॥ ताम्बी वा स्फाटिकी स्वार्णी
पाषाणी राजतो तथा । वेदिका च प्रकर्त्तव्या तत्र संस्थाप्य
पूजयेत् । प्रत्यहं योऽर्चयेत्लिङ्गं नार्भदं भक्तिभावतः । ऐहिकं
किं फलं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥ इति प्रत्यहवाणलिङ्ग-
पूजाफलम् ॥

सूतसंहितायाम् ॥ संस्थाप्य श्रीवाणलिङ्गं रत्नकोटिगुणं
भवेत् । रसलिङ्गे ततो वाणात् फलं कोटिगुणं स्मृतम् । गुणांस्तु
रसलिङ्गस्य वक्तुं शक्नोति शङ्करी । सिद्धयो रसलिङ्गे स्मुरणि-
माद्याः सुसंस्थिताः ॥ केदारखण्डे ॥ रत्नधातुमयान्येव लिङ्गानि
कथितान्यपि । पवित्राख्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च ।

८६३

पूर्वि-
मपि
वा-
रूपः
गोपी
पी ।
हार-
गोन-
गार्ह-
ला-
भो-
ज-
नि-
ला-
सते
ल-
नदः
त्यं
क-
यत्
म-
म-
ल-
क-
॥

एतेषामपि सर्वेषां काश्मीरं हि विशिष्यते । काश्मीरादपि
लिङ्गाच्च वाणलिङ्गं विशिष्यते । वाणलिङ्गात् परं नान्यत् पवित्र-
मिह दृश्यते । ऐहिकामुष्मिकं सर्वं पूजाकर्तुः प्रयच्छति ॥ इति
वाणलिङ्गप्रशंसा ॥

नित्यलिङ्गमाह तत्रैव ॥ कर्कशे वाणलिङ्गे तु पुत्रदा-
रक्षयो भवेत् । चिपिटे पूजिते तस्मिन् गृहभङ्गो भवेद् भुवम् ।
एकपाश्वर्श्रिते धेनुपुत्रदारधनक्षयः । शिरसि स्फुटिते वाणे
व्याधिर्मरणमेव च । छिद्रलिङ्गेऽर्चिते वाणे विदेशगमनं भवेत् ।
लिङ्गे च कर्णिकां दृष्ट्वा व्याधिमान् जायते पुमान् । अत्युन्नति-
विलासे तु गोधनानां क्षयो भवेत् ॥ हेमाद्रिधृतम् ॥ तौक्ष्णाग्रं
वक्रशीर्षञ्च त्रस्रलिङ्गं विवर्जयेत् । अतिस्थूलं चातिक्रशं स्तूयं
वा भूषणान्वितम् । गृही विवर्जयेत्तादृक् तद्वि मोक्षार्थिनो
हितम् ॥ इति दुष्टवाणलिङ्गलक्षणम् ॥

शुभलिङ्गमाह वीरमित्रोदये ॥ अर्थदं कपिलं लिङ्गं घनाभं
मोक्षकाङ्क्षिणाम् । लघु वा कपिलं स्थूलं गृही नैवार्चयेत्
क्वचित् । पूजितव्यं गृहस्थेन वर्णेन भ्रमरोपमम् । तस्य पीठम-
पीठं वा मन्त्रसंस्कारवर्जितम् । सिद्धिसुक्तिप्रदं लिङ्गं सर्वप्रसा-
दपीठगम् ॥ इति शुभवाणलिङ्गलक्षणम् ॥

सूतसंहितायां भैरववाक्यम् ॥ वाणासुरः पुरा भद्रे ! शिव-
स्थातीव वल्लभः । जितक्रोधोऽनुरक्तश्च शिवपूजाविधौ रतः ।
वह्निज्ञो निपुणश्चैव शिल्पज्ञो लक्षणान्वितः । दिने दिने स्वयं
दत्त्वा लिङ्गं स्थाप्य प्रपूजयेत् । एवं वर्षशतं देवि ! दिव्यमानेन
पूजयेत् । तदा तद्भक्तिसुलभः प्रत्यक्षः शङ्करोऽभवत् ॥ शङ्कर
उवाच ॥ तुष्टोऽहं तव हे वाण ! वरं ब्रूहि किमिच्छसि । शङ्करस्य
वचः श्रुत्वा वाणो वचनमब्रवीत् । यदि तुष्टोऽसि होनाय मच्छं
त्वं मन्दभागिने । क्लिष्टोऽहं तव देवेश ! लिङ्गं कृत्वा दिने दिने ।

तत्तल्लक्षणसंसिद्धलक्षणं शास्त्रनिर्मितम् । शास्त्रार्थो दुर्लभो
देव ! सिद्धश्चार्थश्च दुर्लभः । तस्मात्त्वं यदि मे तुष्टो लिङ्गं देहि
सुलक्षणम् । सर्वकामकृतार्थञ्च सर्वसत्त्वानुकम्पनम् । सर्वेषाञ्च
हितार्थाय प्रसादं कुरु शङ्कर ! । इत्येवं वचनं तस्य शिवः
परमकारणम् । श्रुत्वा कैलासमूर्द्धानं शङ्करेण विनिर्मिताः ।
लिङ्गानां कोटिसंख्याश्च तथा चैव चतुर्दश । सिद्धलिङ्गं तदा
तत्तत् सर्वं सदोदयं स्वयम् । अयोज्यैव सुसम्पूर्णं वाणस्य च
समर्पितम् । अक्षयफलदं वाणं स्थाप्यमानञ्च नित्यशः । स-
म्पूज्य वाणः सद्भावं कृत्वा प्रणयनं तदा । तद्भावं स्वपुरं नीत्वा
न्यूनं चिन्तयते शुचिः । अक्षयं यदि संसिद्धं स्थाप्यमानं दिने
दिने । सत्त्वानां सिद्धिहेत्वर्थं वाणः स्थाने सुसंरये । लिङ्गानां
कालिकागर्ते सञ्चितास्तु त्रिकोटयः । श्रीशैलकोटयस्त्रिभिः
कोट्यैका कन्यकाश्रमे । माहेश्वरे च कोटिस्तु कन्यातीर्थं तु
कोटिका । महेंद्रे चैव नेपाले एकैका कोटिरिव च । वाणा-
र्चार्थं कृतं लिङ्गं वाणलिङ्गमतः स्मृतम् । वाणो वा शिव
इत्युक्तस्तत्कृतं वाणमुच्यते । तस्मात्तेषु प्रदेशेषु पुण्यस्थानेषु
तेषु वा । स्थितं तच्छिवसद्भावं शिवस्याकृतिविग्रहे । हेम्ना
तदाकृतिलक्षणं समुच्येऽपि । स्वयम्भू लिङ्गवद्वाणलिङ्गं भुक्त्यै
स्वमुक्तये । सहस्रफलमन्यस्माद् यथास्थानप्रपूजने । श्रीशैले
कालिकागर्ते लिङ्गाद्रौ कन्यकाश्रमे । कन्यातीर्थे वने यानि
महेंद्रे वा सुरेश्वरे । स्थितानि वाणलिङ्गानि शिवेनैव कृतानि
तु । सिद्धान्तशेखरे वाणलिङ्गान्यधिष्ठत्य ॥ तदा त्वेकप्रकारं
स्यादन्यवर्णमपीठकम् । लक्ष्ममूर्तिविहौनञ्च वाणं तत्पृथुला-
ग्रकमिति । वाणलिङ्गेष्ववाहनादि न कर्तव्यम् ॥ तदुक्तं भ-
विष्ये ॥ वाणलिङ्गानि राजेन्द्र । स्थितानि भुवनत्रये । न प्रतिष्ठा
न संस्कारस्तेषामावाहनं न चेति ॥ योगसारे पञ्चमपरिच्छेदे ॥

८६३

पूर्वि-
मपि
वा-
रूपः
गसी
पी ।
हार-
गेन-
।।हं-
ला-
।सो-
।ज-
।ति-
ला-
सते
।ल-
न्द्रः
।त्यं
क-
यत्
भ-
स-
ल-
ह-
।
६२

ब्राह्मणे मुहूर्तं चोत्थाय यः स्मरेद्वाणलिङ्गकम् । सर्वत्र जय-
माप्नोति सत्यं सत्यं महेश्वर ! ॥

अथ वाणलिङ्गध्यानं तत्रैव ॥ श्रीं प्रमत्तं शक्तिसंयुक्तं
वाणाख्यञ्च महाप्रभम् । कामवाणान्वितं देवं संसारदहन-
क्षमम् । शृङ्गारादिरसोक्तासं वाणाख्यं परमेश्वरम् । एवं ध्यात्वा
वाणलिङ्गं यजेत्तं परमं शिवम् । मनसा गन्धपुष्पाद्यैः स-
म्यज्यास्य मनुं स्मरेत् ॥ तथा । प्राणायामं ततः कृत्वा वाण-
लिङ्गन्तु तोषयेत् । तदिष्टदेवयोरैक्यं विभाव्य वाग्भवं जपेत् ।
ततो जपं समाप्याथ स्तुवेनानेन तोषयेत् ॥

अथ स्तवः ॥ श्रीं वाणलिङ्ग ! महाभाग ! संसारात्
त्वाहि मां प्रभो ! । नमस्ते चोद्यरूपाय नमस्ते व्यक्तयोनये ।
संसारकारिणे तुभ्यं नमस्ते सूक्ष्मरूपधृक् ! । प्रमत्ताय महेश-
्वराय कालरूपाय ! वै नमः । दहनाय नमस्तुभ्यं नमस्ते
योगकारिणे । भोगिनां भोगकर्त्रे च मोक्षदात्रे नमो
नमः । नमः कामाङ्गनाशाय नमः कल्पप्रहारिणे । नमो
विश्वप्रदात्रे च नमो विश्वस्वरूपिणे । वाणस्य वरदात्रे च
रावणस्य क्षयाय च । रामस्यानुग्रहार्थाय राज्याय भरतस्य
च । मुनीनां योगदात्रे च राक्षसानां क्षयाय च । नमस्तुभ्यं
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः । ऐं दाहिकाशक्तियुक्ताय
महामायाप्रियाय च । भगप्रियाय सर्वाय वैरिणां निग्रहाय
च । परिव्राणाय योगिनां कौलिकानां प्रियाय च । कुला-
ङ्गनानां भक्ताय कुलाचाररताय च । कुलभक्ताय योगाय
नमो नारायणाय च । मधुपानप्रमत्ताय योगेशाय नमो नमः ।
कुलनिन्दाप्रणाशाय कौलिकानां सुखाय च । कुलयोगाय
निष्ठाय शुद्धाय परमात्मने । परमात्मस्वरूपाय लिङ्गमूलात्मकाय
च । सर्वेश्वराय सर्वाय शिवाय निर्गुणाय च । इत्येतत् परमं

गुह्यं वाणलिङ्गस्य शङ्करः ।। यः पठेत् साधकश्रेष्ठो गाणपत्यं
लभेत् सः । स्तवस्यास्य प्रसादेन योगी योगित्वमाप्नुयात् । रा-
ज्यार्थिनां भवेद्राज्यं भोगिनां भोग एव च । साधूनां साधनं
देव ! कौलिकानां कुलं भवेत् । यं यं कामयते मन्त्रौ तं तमा-
प्नोति कौलया । वाणलिङ्गप्रसादेन सर्वमाप्नोति सत्वरम् । किम-
न्यत् कथयामोह सर्वं वेत्ति कुलेखरः । महाभये समुत्पन्ने राज-
हारे कुलेखरः । देशान्तरभये प्राप्ते दस्युचौरादिसङ्गुले । पठनात्
स्तवराजस्य न भयं लभते क्वचित् । वाणलिङ्गस्य माहात्म्यं
संक्षेपात् कथितं मया । तस्य श्रवणमात्रेण नरो मोक्षमवा-
प्नुयात् । वाणलिङ्गं सदाराध्यं योगिनां योगसाधने । कौलि-
कानां कुलाचारे पशूनां शत्रुविग्रहे । वेदज्ञानां वेदपाठे रौ-
गिणां रोगनाशने । यो यो नाराधयेदेनं सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥
इति श्रीयोगसारे सर्वांगमोत्तमे पार्वतीशिवसंवादे वाणलिङ्ग-
स्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ रौद्रलिङ्गलक्षणम् ॥ वीरमित्रोदयधृतम् ॥ नदीसमुद्भवं
रौद्रमन्योन्यस्य विघर्षणात् । नदीवेगात्समं स्निग्धं सञ्जातं
रौद्रमुच्यते ॥ समुच्चयेऽपि ॥ सरित्प्रवाहसंस्थानं वाणलिङ्गसमा-
कृति । तदन्यदपि बोद्धव्यं रौद्रलिङ्गं सुखावहम् । नदीसार-
नर्मदाया वाणलिङ्गसमाकृति । तदन्यदपि बोद्धव्यं लिङ्गं रौद्रं
भविष्यति । रौद्रलिङ्गं तथा ख्यातं वाणलिङ्गसमाकृति । श्वेतं
रक्तं तथा पीतं कृष्णं विप्रादिपूजितम् । स्वभावात् कृष्णवर्णं
वा सर्वजातिषु सिद्धिदम् । नर्मदासम्भवं रौद्रं वाणलिङ्ग-
वदीरितमिति ॥ इति रौद्रलिङ्गलक्षणम् ॥ १ ॥

अथ शिवनाभिलक्षणम् ॥ वीरमित्रोदयधृतशिवनारद-
संवादे शिवलिङ्गं प्रक्रम्य ॥ उत्तमं मध्यमधमं त्रिविधं लिङ्ग-
मीरितम् । चतुरङ्गुलमुत्तमे रस्यवेदिकमुत्तमम् । उत्तमं लिङ्ग-

८६३

पूर्वि-
मपि
या-
रूपः
गसी
पी ।
हार-
गैन-
गई-
ला-
गो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्द्रः
त्यं
क-
यत्
भ-
म-
ल-
क-
ः ।
८७

माख्यातं मुनिभिः शास्त्रकोविदैः । तदर्द्धं मध्यमं प्रोक्तं तदर्द्ध-
मधमं स्मृतम् ॥ तस्य महिमापि तत्रैव ॥ शिवनाभिमयं लिङ्गं
प्रतिपूज्य महर्षिभिः । श्रेष्ठञ्च सर्वलिङ्गेभ्यस्तस्मात् पूज्यं विधा-
नतः ॥ इति शिवनाभिलिङ्गलक्षणम् ॥ २ ॥

अथ दैवल्लिङ्गलक्षणम् ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥ करसम्पुटसंस्पर्शं
शूलटङ्गेन्दुभूषितम् । रेखाकोटरसंयुक्तं निम्नोन्नतसमन्वितम् ।
दीर्घाकारञ्च यस्मिङ्गं ब्रह्मभागादिवर्जितम् । लिङ्गं गोलमिति
प्रोक्तं गोलकं प्रोच्यतेऽधुना । कुभाण्डस्य फलाकारं नागरङ्ग-
फलोपमम् । काकडिम्बफलाकारं गोललिङ्गमितीरितम् ॥
इति गोललिङ्गलक्षणम् ॥ ४ ॥

अथार्पलिङ्गलक्षणम् ॥ तत्रैव ॥ नानावैल्वफलाकारं ब्रह्म-
सूत्रविवर्तनम् । मूले स्थूलञ्च यस्मिङ्गं कपित्थफलसन्निभम् ।
नालस्य वा फलाकारं मध्ये स्थूलञ्च यद्भवेत् । मध्ये स्थूलं वरं
लिङ्गमृषिवाणमुदाहृतम् ॥ इत्यार्पलिङ्गलक्षणम् ॥ ५ ॥

अथ लिङ्गलक्षणम् ॥ लिङ्गं हि द्विविधमकृत्रिमं कृत्रिमञ्च ॥
अकृत्रिमं स्वयम्भूतं स्वयम्भूवाणलिङ्गादि । कृत्रिमं निर्मितं
धातुलिङ्गादि । सिद्धान्तशेखरे । नत्वा नारदमार्थादीन् लिङ्गं
पिष्टाकारविन्दुरूपिणौ । ब्राह्मी शिलोक्ताकारूपा वक्ष्ये लिङ्गस्य
लक्षणम् । तस्मिङ्गं द्विविधं ज्ञेयमचलञ्च चलं तथा । प्रत्येकं
त्रिविधं ज्ञेयं लिङ्गं तदुभयात्मकम् । प्रासादे स्थापितं लिङ्ग-
मचलं तच्छिलादिजम् । स्थापितमचलं गेहे स्थिरं लिङ्गम-
योजितं । पञ्चधा तत् स्थितं लिङ्गं स्वयम्भूदैवपालकम् ।
आर्षञ्च मानसं लिङ्गं तेषां लक्षणमुच्यते ॥ दीपिकायाम् ।
आचार्यमुनये खैरं स्वयम्भूतो महेश्वरः । यत्र चैव स्वयं व्यक्तं
लिङ्गमस्तु स्वयम्भूतम् । धमनीयस्य संस्पर्शाद् दहति क्षिप्रमेव
तु । धमनी सुषुक्नेऽपिङ्गलाव्यतिरिक्ता ब्रह्मरन्ध्रं विनिर्भिय

लिङ्गं नाडी सैव । सिद्धान्तशेखरे ॥ नानाच्छिद्रसंयुक्तं नाना-
वर्णसमन्वितम् । अदृष्टमूलं यत्लिङ्गं कर्कशं भुवि दृश्यते । त-
त्त्रिङ्गन्तु स्वयम्भूतमपरं लक्षणच्युतम् । स्वयम्भूलिङ्गमित्युक्तं
तच्च नानाविधं मतम् । शङ्खाभमस्तकं लिङ्गं वैष्णवं तदुदा-
हृतम् । पद्माभमस्तकं ब्राह्मणं क्वाभं शाक्तमुच्यते । शिरोयुग्मं
तद्गान्धर्वं त्रिपदं याम्यमीरितम् । खड्गाभं नैर्ऋतं लिङ्गं वारुणं
कलसाक्षितम् । वायव्यं ध्वजवत्त्रिङ्गं कौवेरन्तु गदान्वितम् ।
ईशानस्य त्रिशूलाभं लोकपालादिनिःसृतम् । स्वयम्भूलिङ्ग-
माख्यातं सर्वशास्त्रविशारदैः ॥ इति स्वयम्भूलिङ्गलक्षणम् ॥

मत्स्यसूत्रे ॥ दृष्ट्वा लिङ्गं महेशस्य स्वयम्भूतस्य पार्वति ।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परे ब्रह्मणि लीयते ॥ एतेषां पूजाफलन्तु
तत्रैव ॥ विशेषाच्छैलजं मुक्त्यै भुक्तये चानुषङ्गतः । पार्थिवं
भुक्तये शस्तं मुक्तये चानुषङ्गतः । एवं वै दारुजं ज्ञेयं चिह्न-
लिङ्गं तथा पुनः । स्थिरलक्ष्मीप्रदं ज्ञेयं हैमं राज्यप्रदञ्च तत् ।
पुत्रवृद्धिकरं ताम्रं राज्ञमायुःप्रवर्द्धनम् ॥ पद्मपुराणम् ॥ पारदञ्च
महाभूत्यै सौभाग्याय च मौक्तिकम् । चन्द्रकान्तं सृज्यजित्
स्याद्वाटकं सर्वकामदम् ॥ वीरमितोदयधृतकल्योत्तरेऽपि ॥ सर्व-
फलप्रदा भूमिर्गणयस्तद्देव हि । अनन्ताद्याः स्मृता ह्यष्टौ
मणयो विद्युदुज्जलाः । रात्रौ प्रकाशकाः सर्वविषाद्याघात-
कारिणः । नानावर्णास्तु विज्ञेया रसेर्गन्धैश्च रूपतः । वज्राद्याः
स्फाटिकाद्याश्च गुडान्नादिविनिर्मितम् । सर्वकामप्रदं पुंसां
लिङ्गं तात्कालिकं मतम् ॥ लक्षणसमुच्चये ॥ गन्धं सौभाग्यदं लिङ्गं
पौष्पं मुक्तिप्रदायकम् ॥ तथा । नानासूत्रोद्भवं लिङ्गं नाना-
कामप्रदायकम् । सैकतं गुणदं लिङ्गं सौभाग्याय च लावणम् ।
उच्चाटने तु पाशाग्रं मौलं शत्रुक्षयावहम् । तात्कालिकं दरिद्रश्च
कुला भक्त्या समर्चयेत् ॥ गरुडपुराणे ॥ कस्तूरिकाया द्वौ

८६३

पुर्वि-
मपि
णा-
रूपः
गसी
पी ।
हार-
गैन-
गार्ह-
ला-
मो-
ज-
ति-
ला-
सवे
ल-
न्द्रः
त्यं
क-
मत्
भ-
प्र-
ल-
ङ्ग-
ः ।
६२

भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च । कुङ्कुमस्य त्रयश्चैव शशिना च चतुः-
समम् । एतद्दे गन्धलिङ्गन्तु कृत्वा सम्पूज्य भक्तितः । शिवसा-
गुज्यमाप्नोति बन्धुभिः सहितो नरः । कार्यं पुष्पमयं लिङ्गं
हृयगन्धसमन्वितम् । नवखण्डां धरां भुक्त्वा गणेशाधिपतिर्भवेत् ।
रजोभिर्निर्मितं लिङ्गं यः पूजयति भक्तितः । विद्याधरपदं
प्राप्य पश्चाच्छिवसमो भवेत् । श्रीकामो गोशक्लिङ्गं कृत्वा
भक्त्या प्रपूजयेत् । स्वच्छेन कापिलेनैव गोमयेन प्रकल्पयेत् ।
स्वच्छेन भूमिपतनरहितेन शून्योद्धृतेन इति यावत् । कार्यं
यष्टिकमं लिङ्गं यवगोधूमशालिजम् । श्रीकामः पुष्टिकामश्च
पुत्रकामस्तदर्थयेत् । सिताखण्डमयं लिङ्गं कार्यमारोग्य-
वर्धनम् । वश्ये खवणजं लिङ्गं तालत्रिकटुकान्वितम् । तालं
हरितालम् ॥ त्रिकटुकं शुण्ठीपिप्पलीमरिचमिति प्रसिद्धम् ।
गव्यघृतमयं लिङ्गं सम्पूज्य बुद्धिवर्धनम् ॥ तथा । लवणेन च
सौभाग्यं पार्थिवं सर्वकामदम् । कामदं तिलपिष्टोत्थं तुषोत्थं
मारणे स्मृतम् । भस्मोत्थं सर्वफलदं गुडोत्थं प्रीतिवर्धनम् ।
गन्धोत्थं गुणदं भूरि शर्करोत्थं सुखप्रदम् । वंशाङ्कुरोत्थं वंश-
करं गोमयं सर्वरोगदम् । केशास्थिसम्भवं लिङ्गं सर्वशत्रुविना-
शनम् । क्षोभणे मारणे पिष्टसम्भवं लिङ्गमुत्तमम् । दारिद्र्यादं
द्रुमोद्भूतं पिष्टं सारस्वतप्रदम् । दधिदुग्धोद्भवं लिङ्गं कीर्त्ति-
लक्ष्मीसुखप्रदम् । धान्यदं धान्यजं लिङ्गं फलोत्थं फलदं
भवेत् । पुष्पोत्थं दिव्यभोगायुर्मुक्त्यै धात्रीफलोद्भवम् । नवनी-
तोद्भवं लिङ्गं कीर्त्तिसौभाग्यवर्धनम् । दूर्वाकाण्डसमुद्भूतमप-
मृत्युनिवारणम् । कर्पूरसम्भवं लिङ्गं चला वै मुक्तिमुक्तिदाः ।
अयस्कान्तं चतुर्धा तु ज्ञेयं सामान्यसिद्धिषु ॥ सारसंग्रहे विशेषः ॥
सर्वं न च भवं श्रेष्ठं तत्र वज्रमरिच्छिदि । यमलिङ्गं सद्वा-
भूयै सौभाग्याय च मौक्तिकम् । पुष्टिमूलं महानीलं ज्योति-

स्त्रीरसमुद्भवम् । स्पर्शकं कुलसन्नत्यै तैजसं सूर्यकान्तजम् ।
चन्द्रापीडं सत्युजितं स्फाटिकं सर्वकामदम् ॥ चन्द्रापीडं
चन्द्रकान्तमित्यर्थः । शूलाख्यमणिजं शत्रुक्षयार्थं मौक्तिकं
तथा । यत्ननिधानात् शूलरोगनाशः स शूलमणिः । अपुत्रं
ह्यौष्कं ज्ञेयं रोगहन्मौक्तिकोद्भवम् । शुभकृत् पुष्कलं तीर्थं वैदूर्यं
शत्रुदर्पहृत् । नीलं लक्ष्मीप्रदं ज्ञेयं स्फाटिकं सर्वकामदम् ॥
कालोत्तरे ॥ महाभूतिप्रदं हैमं राजतं भूतिवर्द्धनम् । आरकूटं
तथा कांस्यं शृणु सामान्यमुक्तिदम् ॥ आरकूटं पित्तलम् ॥
वपुसीसायसं लिङ्गं शत्रूणां नाशने हितम् ॥ तथा । कीर्त्तिदं
कांस्यजं लिङ्गं राजतं पुत्रवर्द्धनम् । पैत्तलं भुक्तिमुक्त्यर्थं मिश्रजं
सर्वसिद्धिदम् ॥ मिश्रजमष्टधातुनिर्मितम् ॥ शिवनारदसंवादे ॥
पितृणां मुक्तये लिङ्गं पूज्यं रजतसम्भवम् । हैमजं सत्यलोकस्य
प्राप्तये पूजयेत् पुमान् । पूजयेत्ताम्रजं लिङ्गं पुष्टिकामो हि
मानवः । ताम्रादिलिङ्गपूजनन्तु कलौतरपरम् । तथाच मत्स्य-
सूक्ते ॥ ताम्रलिङ्गं कलौ नार्चत् रैत्यस्य सीसकस्य च । रक्त-
चन्दनलिङ्गञ्च शङ्खकांस्थायसं तथा । तुष्टिकामस्तु सततं लिङ्गं
पित्तलसम्भवम् । कीर्त्तिकामो यजेन्नित्यं लिङ्गं कांस्यसमु-
द्भवम् । शत्रुमारणकामस्तु लिङ्गं लौहमयं सदा । सदा सीस-
मयं लिङ्गमायुष्कामोऽर्चयेन्नरः ॥ लक्षणसमुच्चयेऽपि । स्थिर-
लक्ष्मीप्रदं हैमं राजतं चैव राज्यदम् । प्रजावृद्धिकरं राज्ञं
ताम्रमायुःप्रवर्द्धनम् । विद्वेषकारकं कांस्यं रौतिजं शत्रुनाश-
नम् ॥ रौतिजं पित्तलमयम् ॥ रोगघ्नं सैसकं लिङ्गमायसं शत्रु-
नाशनम् । अष्टलौहमयं लिङ्गं कुष्ठरोगक्षयावहम् । त्रिलौह-
सम्भवं लिङ्गं विज्ञानं प्रति सिद्धिदम् ॥ लिङ्गपुराणे ॥ श्रीप्रदं
वज्रजं लिङ्गं शिलाजं सर्वसिद्धिदम् । धातुजं धनदं साक्षा-
द्धारजं भोगसिद्धिदम् ॥ कालोत्तरे ॥ गन्धपुष्पमयं लिङ्गं तथा-

आदिविनिर्मितम् । कस्तूरीसम्भवं लिङ्गं धनाकाङ्क्षी प्रपूजयेत् ।
 लिङ्गं गोरुचनोत्पन्नं रूपकामस्तु पूजयेत् । कान्तिकामस्तु
 सततं लिङ्गं कुङ्कुमसम्भवं । खेतागुरुसमुद्भूतं महाबुद्धि-
 विवर्धनम् । धारणाशक्तिदं लिङ्गं क्षणागुरुसमुद्भवं ॥
 मातृकाभेदतन्त्रे द्वादशपटले च ॥ पार्थिवे शिवपूजायां
 सर्वसिद्धियुतो भवेत् । पाषाणे शिवपूजायां द्विगुणं फलमीरि-
 तम् । स्वर्णलिङ्गे च पूजायां शत्रूणां नाशनं मतम् । सर्व-
 सिद्धीश्वरो रौप्ये फलं तस्माच्चतुर्गुणम् । ताम्बे पुष्टिं विजा-
 नीयात् कांस्ये च धनसंचयः । गङ्गायाञ्च लक्षगुणं लाक्षायां
 रोगवान् भवेत् । स्फाटिके सर्वसिद्धिः स्यात्तथा मरकते प्रिये ।
 लौहलिङ्गे रिपोर्नाशः कामदं भस्मलिङ्गकम् । वालुकायां
 काम्यसिद्धिर्गोमये रिपुहिंसनम् । सर्वलिङ्गस्य माहात्म्यं धर्म-
 कामार्थमोक्षदम् ॥ षट्कर्म्मदीपिकाधृतशिवधर्मे ॥ ब्रह्मा सम्पू-
 जयेन्नित्यं लिङ्गं शैलमयं शुभम् । तस्य सम्पूजनात्तेन प्राप्तं
 ब्रह्मत्वमुत्तमम् । इन्द्रनीलमयं लिङ्गं विष्णुः समर्चयेत् सदा ।
 विष्णुत्वं प्राप्तवान् तेन सोऽभूद्भूतैकपालकः । स्फाटिकं निर्मलं
 लिङ्गं वरुणोऽभ्यर्चयेत् सदा । तेन तद्वरुणत्वं हि प्राप्तं तेजो-
 बलान्वितम् ॥ मातृकाभेदतन्त्रे सप्तमपटलेऽपि ॥ पूजयेत्
 पार्थिवे लिङ्गे पाषाणलिङ्गकेऽथवा । स्वर्णलिङ्गेऽथवा देवि !
 रौप्ये ताम्बे च कांस्यके । पारदे वाथ गङ्गायां स्फाटिके मरकते-
 ऽपि वा । कार्यभेदे लौहलिङ्गे भस्मनिर्मितलिङ्गके । वालुका-
 निर्मिते लिङ्गे गोमये वाथ पूजयेत् । संस्कारेण विना देवि !
 पाषाणद्वौ न पूजयेत् ॥ इति शिवलिङ्गनिर्माणद्रव्याणि ॥

अथ शिवलिङ्गसंस्कारः ॥ तत्रैव ॥ संस्कारश्च प्रवक्ष्यामि
 विधिषु इह यो भवेत् । रौप्यञ्च स्वर्णलिङ्गञ्च स्वर्णपात्रे निधाय
 च । तस्मादुत्तोल्य तल्लिङ्गं दुग्धमध्ये दिनत्रयम् । चाम्बकेण

स्नापयित्वा कालरुद्रं प्रपूजयेत् । षोडशेनोपचारेण वेद्यान्तु
पार्वतीं यजेत् । तस्मादुत्तोल्य तस्मिन् गङ्गातोये दिनत्रयम् ।
ततो वेदोक्तविधिना संस्कारमाचरेत् सुधीः । पूर्वोक्तवचनैः
फलविशेषकामनया नानाविधलिङ्गपूजोक्ता । सा च पूजा ।
लिङ्गं सुलक्षणं कुर्यात्त्यजेत्लिङ्गमलक्षणम् । दैर्घ्यहीने भवेद्
व्याधिरधिके शत्रुवर्द्धनम् । मानहीने विनाशः स्यादधिके च
शिश्नचयः । विस्तारे चाधिके हीने राष्ट्रनाशो भवेद् ध्रुवम् ।
पीठहीने तु दारिद्र्यं शिरोहीने कुलचयः । ब्रह्मसूत्रविहीने
च राज्ञां राष्ट्रञ्च नश्यति । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन लिङ्गं कुर्यात्
सुलक्षणम् । इत्यादिना सुलक्षणलिङ्गस्यैव फलदाढ्यत्वमुक्तम् ।

लिङ्गार्चनतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ देव्युवाच ॥ इन्द्रियैरहितो
देवः शुन्यरूपः सदाशिवः । आकारो नास्ति देवस्य किं तस्य
पूजने फलम् ॥ शिव उवाच ॥ प्रेते पूजा महेशानि ! कदाचि-
न्नास्ति पार्वति ! । रुद्रस्य परमेशानि ! रौद्री शक्तिरितीरिता ।
रौद्री तु परमेशानि ! आद्या कुण्डलिनी भवेत् । वर्तते परमे-
शानि ! ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका । सार्द्धत्रिवलयकारैः शिवं वेष्ट्य
सदा स्थिता । शक्तिं विना महेशानि ! प्रेतत्वं तस्य निश्चितम् ।
शक्तिसंयोगमात्रेण कर्मकर्त्ता सदाशिवः । अतएव महेशानि !
पूजयेच्छिवलिङ्गकम् ॥ इति सशक्तिकशिवलिङ्गपूजनफलम् ॥

माढकातन्त्रे सप्तमपटले ॥ देव्युवाच ॥ लिङ्गप्रमाणं देवेश !
कथयस्व मयि प्रभो ! । पार्थिवे च शिलादौ च विशेषो यत्र
यो भवेत् ॥ श्रीशिव उवाच ॥ मृत्तिकातोलकं ग्राह्यमथवा
तोलकद्वयम् । एतदन्यत्र कुर्वीत कदाचिदपि पार्वति ! ॥ षट्-
कर्मदौपिकाष्टतविश्वसारतन्त्रेऽपि ॥ मृत्तिकातोलकं ग्राह्यमथ-
वा तोलकद्वयम् । तिस्रस्तस्य प्रमाणेन घटनं कारयेद्बुधः ।
स्नाङ्गुष्ठप्रमाणान्तु कृत्वा लिङ्गं प्रपूजयेत् । मृदादिलिङ्गघटने

८६३

पूर्वि-
मपि
या-
रूपः
गसी
पी ।

हार-
गोन-

गार्ह-
ला-

शो-
ज-

ति-
ला-

सते
ल-

न्द-

त्वं
क-

यत्
भ-

प-
ल-

ङ्ग-
८ ।

८२

प्रमाणं परिकीर्तितम् । फलमुक्तमवाप्नोति अन्यथा चेत्तद-
 न्यथा । त्रिसूत्रीकरणमुक्तं कालोत्तरे ॥ लिङ्गे वेद्यां तथा पीठे
 समसूत्रनिपातनात् । समञ्चैव विजानीयात् त्रिसूत्रीकर-
 न्निदम् । तत्र मृत्तिकाभेदेन ब्राह्मणादीनां पूजाफलस्य प्रश-
 स्तत्वमुक्तम् ॥ लिङ्गार्चनतन्त्रे तृतीयपटले ॥ चतुर्धा पार्थिवं
 लिङ्गं मृत्स्नाभेदेन पार्वति ! । शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णञ्च
 परमेश्वरि ! । शुक्लन्तु ब्राह्मणे शस्तं क्षत्रिये रक्तमिष्यते । पीतन्तु
 वैश्यजातौ स्यात् कृष्णं शूद्रे प्रकीर्तितम् ॥ तथा ॥ शुक्लं हि
 पार्थिवं लिङ्गं निर्माय यस्तु पूजयेत् । स एव परमेशानि !
 त्रिवर्गफलभाग्भवेत् । क्षत्रियस्तु वरारोहे ! रक्तं निर्माय पार्थि-
 वम् । पूजयेत् सततं यस्तु त्रिवर्गफलमाप्नुयात् । हरितं
 पार्थिवं देवि ! निर्माय यस्तु पूजयेत् । स च वैश्यो महेशानि !
 त्रिवर्गफलभाग्भवेत् । कृष्णं हि पार्थिवं लिङ्गं निर्माय यस्तु
 पूजयेत् । स शूद्रः परमेशानि ! त्रिवर्गफलभाग्भवेत् ॥ मातृका-
 भेदतन्त्रे ॥ शिलादौ च महेशानि ! स्थूलञ्च फलदायकम् ।
 अद्भुतमानं देवेशि ! यद्वा हेमाद्रिमाणकम् । क्रमेण देवदे-
 वेशि ! फलं बहुविधं लभेत् । स्थूलात् स्थूलतरं लिङ्गं रुद्राक्षं
 परमेश्वरि ! । पूजनाद्वारणाद्देवि ! फलं बहुविधं स्मृतम् ।
 स्थूलात् स्थूलतरमिति पार्थिवलिङ्गे तरपरम् । मृत्तिकातोलक-
 मिति प्रागुक्तविशेषवचनादिति । शिलास्फटिकमरकतादीनां
 पञ्चसूत्रीकरणमुक्तम् लैङ्गे यथा ॥ शिवलिङ्गस्य यन्मानं तन्मानं
 दत्तसन्ध्योः । योन्यग्रमपि यन्मानं तदधोऽपि यथा भवेत् ॥
 तन्मान्तरे ॥ लिङ्गस्य यादृग् विस्तारः परिणामोऽपि तादृशः ।
 लिङ्गस्य द्विगुणा वेदी योनिस्तदर्धसम्मिता । कुर्वीताद्भुततो
 ऋत्वं न कदाचिदपि क्षचित् । रत्नादिशिवनिर्माणे मानमि-
 त्तवशाद्भवेत् ॥ लिङ्गशब्दव्युत्पत्तिस्तु स्कन्दपुराणे । आकाशं

लिङ्गमित्याहुः पृथिवी तस्य पीठिका । अलियः सर्वदेवानां
लयनास्त्रिङ्गमुच्यते ॥ लिङ्गमहिमा तु वीरमित्रोदयधृतस्कन्द-
पुराणे ॥ शिव उवाच ॥ न तुष्ट्याम्यर्चितोऽर्चायां पुष्पधूपनिवे-
दनैः । लिङ्गेऽर्चिते तथात्यर्थं परं तुष्ट्यामि पार्वति ! । एवं
देवि ! पुरा कृत्यै जितोऽहं सर्वदैवतैः । लिङ्गत्वास्त्रिङ्गमित्युक्तं
सदेवासुरकिन्नरैः । प्रयच्छामि दिवं देवि ! यो मस्त्रिङ्गार्चने
रतः । त्यक्त्वा सर्वाणि पापानि निर्गदो दग्धकल्मषः । मन्मना
मन्त्रमस्कारो मामेव प्रतिपद्यते । द्रव्यविशेषेण पूजादिफल-
मपि तत्रैव ॥ वस्त्रपूतजलैर्लिङ्गं स्नपित्वा मम मानवः ।
लक्षणाच्चाश्वमेधानां फलमाप्नोति सत्तमः । सुगन्धचन्दनरसै-
र्लिङ्गमालिप्य भक्तिः । आलिप्यते सुरस्त्रीभिः सुगन्धैर्यज्ञ-
कर्दमैः ॥ लिङ्गपूजाकरणदोषः तत्पूजाफलञ्च तत्रैव शिव-
नारदसंवादे ॥ विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः ।
महाहानिर्भवेत्तस्य दुर्गतस्य दुरात्मनः । एकतः सर्वदानानि
व्रतानि विविधानि च । तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गाराधन-
मेकतः । न लिङ्गाराधनादन्यत् पुरा वेदे चतुर्वर्षि । विद्यते
सर्वशास्त्राणामेष एव सुनिश्चितः । भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विवि-
धापन्निवारणम् । पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
सर्वमन्यत् परित्यज्य क्रियाजालमशेषतः । भक्त्या परमया विद्वान्
लिङ्गमेकः प्रपूजयेत् ॥ मत्स्यसूक्ते षोडशपटले ॥ अश्वमेधसह-
स्राणि वाजपेयशतानि च । महेशार्चनपुण्यस्य कलां नार्हन्ति
षोडशीम् ॥ लिङ्गपुराणे ॥ बहुनात्र किमुक्तेन चराचरमिदं
जगत् । शिवलिङ्गं समभ्यर्च्य स्थितमत्र न संशयः ॥ मातृका-
भेदतन्त्रे ॥ शिवस्य पूजनाद्देवि ! चतुर्वर्गाधिपो भवेत् । अष्टै-
श्वर्य्ययुतो मर्त्यः शम्भुनाथस्य पूजनात् । स्वयं नारायणः प्रोक्तो
यदि शम्भुं प्रपूजयेत् । स्वर्गं मर्त्यं च पातालं ये देवाः सं-

८६३

पुर्वि-
मपि
णा-
रूपः
ासी
पी ।
हार-
गेन-
ाई-
ला-
सो-
व-
ति-
ला-
सते
ल-
न्धः
त्यं
क-
यत्
भ-
प्र-
ल-
ह-
।
६२

स्थिताः सदा । तेषां पूजा भवेद्देवि ! शम्भुनायस्य पूजनात् ॥
 षट्कर्मदीपिकाष्टतकालोत्तरे नारदवाक्यम् ॥ असारे खलु
 संसारे सारमेतच्चतुष्टयम् । काश्यां वासः सतां सङ्गो गङ्गाम्भः
 शम्भुपूजनम् ॥ स्कन्दपुराणे ॥ अग्निहोत्रास्त्रिवेदाश्च यन्नाश्च
 बहुदक्षिणाः ॥ शिवलिङ्गार्चनस्यैते कोट्यंशेनापि ते समाः ।
 क्षित्वा भित्त्वा च भूतानि हित्वा सर्वमिदं जगत् । यजेद्देवं
 विरूपाक्षं न स पापेन लिप्यते । अनेकजन्मसाहस्रं भ्राम्यमाणश्च
 योनिषु । कः समाप्नोति वै मुक्तिं विना लिङ्गार्चनं नरः ॥
 वीरमित्रोदयष्टतस्कन्दपुराणे ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो
 वाप्यनुलोमजः । पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम् ।
 तत्तन्मन्त्रेणेति यथायोग्यं वैदिकतान्त्रिकनाममन्त्रेणेत्यर्थः ॥
 लिङ्गपुराणे ॥ मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः । रुद्रो-
 परि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः । लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं
 साक्षान्महेश्वरः । तयोः सम्पूजनान्नित्यं वेदी देवश्च पूजितौ ॥

अथ पारदशिवलिङ्गमाहात्म्यम् ॥ मातृकामेदतन्त्रे अष्टम-
 पटले ॥ ज्योतिर्मयं महालिङ्गं कैलासनगरे प्रिये ! । तस्यैव
 षोडशांशैकः काश्यां विश्वेश्वरः स्थितः । पूर्णलिङ्गं महेशानि !
 शिवबीजं न चान्यथा । शिलामध्ये यथाचक्रं लक्ष्मीनारा-
 यणः परम् । पारदस्य शतांशैको लक्ष्मीनारायणो न हि । पकारं
 विष्णुरूपञ्च आकारं कालिका स्वयम् । रेफं शिवं दकारञ्च
 ब्रह्मरूपं न चान्यथा । पारदं परमेशानि ! ब्रह्मविष्णुशिवा-
 त्मकम् । यो यजेत् पारदं लिङ्गं स एव शम्भुरव्ययः । आजन्म
 मध्ये यो देवि ! एकदा यदि पूजयेत् । स एव धन्यो देवेशि !
 स ज्ञानी स च तत्त्ववित् । स ब्रह्मवेत्ता स धनी स राजा सुवि-
 पूज्यते । अणिमादिविभूतीनामेश्वरः साधकोत्तमः ॥

अथ पारदशिवलिङ्गनिर्माणविधिः ॥ तत्रैव ॥ पारदे शिव-

निर्माणे नानाविधं यतः प्रिये ! । अतएव महेशानि ! शान्ति-
स्त्रस्थयनं चरेत् । पारदं शिवबीजं हि ताडनं न हि कारयेत् ।
ताडनादित्तनाशः स्यात्ताडनादित्तहीनता । ताडनाद्भोगयुक्तत्वं
ताडनाम्भरणं भवेत् । द्वादशं पार्थिवं लिङ्गमुपचारैश्च षोडशैः ।
पद्मादिसूत्रनिर्माणरचितं शुक्रमेव वा । पुरुषस्य यथायोग्यं
युग्मवस्त्रं निवेदयेत् । भोगयोग्यं प्रदातव्यं मधुपर्कं कुले-
स्वरि ! । अलङ्कारं यथाशक्ति दद्यात् कल्याणहेतवे । पूजयेद्
बहुयन्त्रे न विल्वपत्रेण पार्वति ! । तोडलोक्तेन विधिना प्रत्येके-
नायुतं जपेत् । आदौ पञ्चाक्षरं मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् । पूजान्ते
प्रजपेत् पञ्चात् प्रसादाख्यं महामनुम् । दक्षिणान्तं समाचर्य
हविष्याशो जितेन्द्रियः । ताम्बूलञ्च तथा मल्यं वर्जयेन्न क-
दाचन । अस्मिंस्तन्त्रे हविष्यान्नं ताम्बूलं मौनमुत्तमम् । होम-
येत् परमेशानि ! दशांशं वा शतांशकम् । होमस्य दक्षिणा
कार्या तदा विघ्नैर्न लिप्यते । ततः परस्मिन् दिवसे पारद-
मानयेत् सुधीः । तस्योपरि जपेन्नन्त्रं सर्वबन्धं नवात्मकम् ।
व्योमबीजं शिवार्णञ्च वर्णाद्यं विन्दुमस्तकम् । वायुबीजं
चेन्दुयुतं त्रितयं त्र्यम्बकं प्रिये ! । इमं मन्त्रं महेशानि !
प्रजपेदौषधोपरि । पारदे प्रजपेन्नन्त्रमष्टोत्तरशतं यदि । तदै-
वौषधयोगेन बद्धो भवति नान्यथा । ततः परस्मिन् दिवसे शृणु
वः प्राणवल्लभे ! । वरयेत् सर्वकर्तारं यथोक्तविभवावधि । सुवर्णं
चम्पकाकारं कर्णयुग्मे निवेशयेत् । चतुष्कोणयुतं स्वर्णं ग्रीवायां
सुमनोहरम् । हस्तद्वये महेशानि ! दद्याद्बलयुग्मकम् । बलयं
शुक्लवर्णञ्च अङ्गुरीयं तथैव च । ऊर्मीं दद्यात् पीतवर्णां क्षीम-
वस्त्रयुगं शिवे ! । ऊर्मीं अङ्गुरीयकम् । एवं कृत्वा महेशानि !
शिवरूपं विचिन्तयेत् ।

अथातः सम्भवच्यामि विधानं शृणु पार्वति ! । प्रस्तरे

८६३

पुर्वि-
मपि
पा-
रुपः
गभी
पी ।
हार-
गिन-
पार्द-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्दः
त्वं
क-
प्रत्
भ-
प-
ल-
ह-

चैव संस्थाप्य भिण्डीपत्ररसेन च । प्रणवेण समालोड्य कुर्यात्
 कर्दमवत् प्रिये ।। निर्माणयोग्यं तद्व्यं यदि स्यात् सुरसु-
 न्दरि ।। तदा निर्माय तल्लिङ्गं पुनर्दृढतरं चरेत् । खपुष्प-
 संयुते वस्त्रे अङ्गारे च करौषके । किञ्चिदुष्णं प्रकर्तव्यं
 यतो दृढतरं भवेत् । अवधूतेरुच्यते । मुण्डरिलिङ्गे सूतपर-
 ओचकोदिङ्गे मण्डलभरके खलकरिङ्गे । ओहो ययायकादे
 प्राय ओच्छे शिवनिर्माय । ओचमे दिङ्गे जड़के पाणि वज्र-
 समानकरके जानि ॥ इति पारदशिवलिङ्गनिर्माणविधिः ॥

शिवलिङ्गोत्पत्तिस्तु नारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे प्रथमाध्याये
 नारदब्रह्मसंवादे ॥ यथा ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुरा त्वं चञ्चलं ज्ञात्वा
 त्वदग्रे न प्रकाशितम् । इदानीं योगिनां ज्ञात्वा कथयामि न
 संशयः । अतिगुह्यमतिगुह्यमतिगुह्यं न संशयः । गोपितव्यं
 गोपितव्यं गोपितव्यं त्वयापि च । शम्भुना गोपितं तन्त्रे
 तन्त्रान्तरे प्रकाशितम् । शृणु तत्कथयाम्यद्य सावधानावधारय ।
 सर्गादौ विविधाः सर्गा मया सृष्टा हि नारद ! । देवदानव-
 दैत्याश्च गन्धर्वयक्षराक्षसाः । सर्वे स्त्रीवशगाः श्रेष्ठा मैथुनाज्जा-
 यन्ते प्रजा । केवलं हि शिवः शम्भुर्दारग्रहणकर्मणि । कदापि
 न मनश्चक्रे दृष्ट्वा चिन्तापराः सुराः । मामिव शरणं जग्मुः सैन्द्रा
 देवासुरादयः । प्रणिपत्य स्तुतिं कृत्वा उपतस्थुः समाहिताः ।
 प्रोक्षुः प्राञ्जलयः सर्वे भयाद्दृग्दमानसाः ॥ देवाद्या ऊचुः ॥
 उद्वाहिता वर्यं सर्वे भवानपि जनार्दनः । केवलं हि महादेवो
 देवदेवो जगत्पतिः । विवाहे न मनश्चक्रे कया वा मोह्यते
 शिवः । उपायं चिन्तय विभो ! सदारः कथमीश्वरः । येन
 स्याज्जगतां नाथस्तत् कुरुष्व दयानिधे ।। इति श्रुत्वा वचस्तेषां
 ततो ब्रह्मा प्रजापतिः । सह तैर्गरुडारूढं जगाम कमलासनः ।
 उवाच तं जगन्नाथं विष्णुं कमललोचनम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सृष्टा

मया सुरश्रेष्ठ ! मानुषा मैथुनोद्भवाः । सर्वे स्त्रैणा विना शम्भुं
यत् कर्त्तव्यं वदस्व मे ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एभिः सह महा-
बाहो ! गच्छामस्त्वमहं शिवम् । कर्त्तव्यं सूचितं तेन अनु-
ज्ञाते यथाविधि । किन्तु तद्योग्यनारीन्तु विवाहार्थं प्रकल्पय ॥
ब्रह्मोवाच ॥ दत्तं गच्छामहे सर्वे अनुज्ञापय तं हरे ! । आद्या-
शक्तिं महाभायां प्रसादयतु वै लघु । कन्या भूत्वा महाशम्भुं
मोहयिष्यति शङ्करम् । एवमुक्त्वा तु तैः सार्द्धं जग्मतुर्विधिक्षेपौ ।
यत्र दक्षो महातेजाः प्रोचतुः कार्यमात्मनः । उवाच दत्तं तद-
युक्तं तपस्तप्तुं प्रजापतिः । ब्रह्मा विष्णुश्च सर्वे ते तपसा तोष-
येच्छिवम् । आविर्बभूव सा देवी कालिका जगदीश्वरी । प्राह
मां वः किमर्थन्तु समुत्कण्ठाः सुरासुराः ॥ देव्युवाच ॥ शीघ्रं
रूपं यथाकामं भवतां प्रार्थने फलम् । अचिरात्तत् प्रदास्यामि
सत्त्वं सत्त्वं न संशयः ॥ देवाद्या ऊचुः ॥ भूत्वा तु दत्तकन्या त्वं
शङ्करं परिमोहय । अस्माकं वाञ्छितञ्चैतत् कुरु सिद्धिं सदा-
शिवे ! । एतत् श्रुत्वा वचस्तेषां निरीक्ष्य कमलासनम् । उवाच
वचमि याविष्टा कालिका जगदीश्वरी ॥ देव्युवाच ॥ शम्भुरद्य-
तनो बालः किं मां सन्तोषिष्यति । सम योग्यं पुमांस्त्वन्तु
अन्यं वै परिकल्पय ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शम्भुः सर्वगुरुर्देवो ह्यस्माकं
परमेश्वरः । महासत्त्वो महातेजाः स ते तोषं करिष्यति ।
शम्भुतुल्यः पुमान्नास्ति कदाचिदपि कुत्रचित् । इत्युक्त्वा ब्रह्मणा
देवी वाचमित्याह चेश्वरी । दत्ताय दर्शनं दत्त्वा उवाच उच्यतां
वरः । दक्षोऽपि दृष्ट्वा तां देवीं खड्गकर्तृधरां पराम् । खर्वां
लम्बोदरीं व्याघ्रचर्मोवृतकटिस्थलीम् । नीलोत्पलकपालाब्ध-
करयुग्मां वरप्रदाम् । कृतकृत्यमिवात्मानं मेने दत्तः प्रजापतिः ॥
दत्त उवाच ॥ यदि मे वरदासि त्वं देवानामपि वाञ्छितम् ।
सदीयतनया भूत्वा शङ्करं किल मोहय । तथेत्युक्त्वा जगद्वात्री

८६३

पूर्वि-
मपि
णा-
रूपः
ासी
पी ।

हार-
तीन-

ार्द्ध-

ला-

सो-

ज-

ति-

ला-

सने

ल-

न्दः

त्वं

क-

प्रत्

भ-

प्र-

ल-

द-

॥

॥

॥

अन्तर्ज्ञानं गता तदा । देवताश्च ततो नत्वा यत्र तेपे तपो हरः ।
 सस्त्रीकाः परमात्मानमुपतस्थुर्जगत्पतिम् । प्रणिमुस्तुष्टुर्भक्त्या
 प्राहुर्गद्गदभाषिणः ॥ देवाद्या ऊचुः ॥ भगवन् ! देवदेवेश !
 लोकनाथ ! महाशय ! । वयं सर्वे तु सस्त्रीकाः सृष्ट्यर्थं परमे-
 श्वर ! । अतस्त्वं कुरु चोद्वाहं सृष्टिरक्षा यथा भवेत् । दक्षगृहे
 महाकाली मायेति परिकीर्तिता । जाता ते प्रीतये शम्भो !
 सा ते योग्या न संशयः ॥ ईश्वर उवाच ॥ भवतां प्रीतये सम्यक्
 करिष्ये नात्र संशयः । उद्योगः क्रियतां क्षिप्रं विवाहाय
 ममैव हि । इत्युक्तास्तु सुराः सर्वे ईश्वरेण महात्मना । कृत-
 कृत्या गताः सर्वे भवनं सर्वसुन्दरम् । दक्षाय कथयामासुः
 शङ्करेणोदितं वचः । ततो विवाहं निर्वर्त्य कृतकृत्या यथा
 गताः । गताः सर्वे महेशोऽपि सत्या सह तदा गृहम् । जगाम
 रमे सत्या च चिरं निर्भरमानसः । अथ काले कदाचित्तु
 सत्या सह महेश्वरः । रमे न श्रेके तं सीदुं सती आन्ताभव-
 त्तदा । उवाच दीनया वाचा देवदेवं जगद्गुरुम् । भगवन्
 हि शक्नोमि तव भारं सुदुःसहम् । क्षमस्व मां महादेव !
 कृपां कुरु जगत्पते ! । निशम्य वचनं तस्या भगवान् हृषभ-
 ध्वजः । निर्भरं रमणं चक्रे गाढं निर्दयमानसः । कृत्वा स-
 म्पूर्णरमणं सती च त्यक्तमैथुना । उत्थानाय मनश्चक्रे उभयो-
 स्तेज उत्तमम् । पपात धरणीपृष्ठे तैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
 पाताले भूतले खर्गे शिवलिङ्गास्तदाभवन् । तेन भूता भवि-
 श्याश्च शिवलिङ्गाः सयोनयः । यत्र लिङ्गं तत्र योनिर्यत्र योनि-
 स्तत्र शिवः । उभयोश्चैव तेजोभिः शिवलिङ्गं व्यजायत ॥
 इति शिवलिङ्गोत्पत्तिकथनम् ॥

शिवलिङ्गपूजायां सर्वेषामधिकार उक्त उत्पत्तितत्त्वे सतुः
 षष्टिपटले ॥ शाक्तो वा वैष्णवो वापि सौरो वा शास्त्रोऽथवा ।

शिवार्चनविहीनस्य कुतः सिद्धिर्भवेत्प्रिये ।। अनाराध्य च मां
देवि ! योऽर्चयेद्देवतान्तरम् । न गृह्णाति महादेवि ! शापं
दत्त्वा ब्रजेत् पुरम् । पर्वताग्रसमं देवि ! मिष्टान्नादिक्रमेण हि ।
फलानि बहुलान्येव पुष्पाख्येव यथाविधि । सुमेरुसदृशं चार्द्रं
नानाविधं महेश्वरि !। सूपादिकं महेशानि ! यदि स्यात्
सागरोपमम् । यद्वत् पुष्पमैवेद्यं सर्वं विष्टामयं भवेत् । शिवा-
र्चनविहीनो यः पूजयेद्देवतान्तरम् । विशेषतः कलियुगे स नरः
पापभाग्भवेत् । लिङ्गार्चनतन्त्रे प्रथमपटलेऽपि ॥ सर्वपूजासु
देवेशि ! लिङ्गपूजा परं पदम् । लिङ्गपूजां विना देवि ! अन्य-
पूजां करोति यः । विफला तस्य पूजा स्यादन्ते नरकमाप्नु-
यात् तस्मात्लिङ्गं महेशानि ! प्रथमं परिपूजयेत् । यद्राज्यं
लिङ्गपूजायां रक्षितं सततं प्रिये !। तद्राज्यं पतितं मन्ये
विष्ठाभूमिसमं स्मृतम् । ब्रह्म विट् चतुर्यो देवि ! यदि
लिङ्गं न पूजयेत् । तत्क्षणात् परमेशानि ! त्रयश्चाण्डा-
लतामिश्रः । शूद्रश्च परमेशानि ! सदा शूकरवद्भवेत् । शिवा-
र्चनन्तु देवेशि ! यस्मिन् मेहे विवर्जितम् । विष्ठागर्तसमं
देवि ! तद्गृहं विद्धि पार्वति !। अन्नं विष्ठा प्रयो मूत्रं
तस्मिन् वेश्मनि पार्वति !। शाक्तो वा वैष्णवो वापि शैवो वा
परमेश्वरि !। आदौ लिङ्गं प्रपूज्याथ विल्वपत्रैर्वरानने !।
पश्चादन्यं महेशानि ! लिङ्गं प्रार्थ्यं प्रपूजयेत् । अन्यथा
मूत्रवत् सर्वं शिवपूजां विना प्रिये !। वीरमित्रोदयधृतस्कन्द-
पुराणे शिवलिङ्गमधिकृत्य ॥ दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य लभन्ते
निर्वृतिं नराः । तस्य पुण्यं मया वक्तुं सस्यग्युगशतैरपि ।
शक्यते नैव विधिवत्तस्मात् तं स्थापयेच्छिवम् । सर्वेषामेव व-
र्णानां विभोर्दिव्यं वपुः शुभम् । सुकृतं भावनायोग्यं यो-
गिनां निष्कलं तथा । शिवलिङ्गं समुल्लङ्घ्य योऽर्चयेदन्यदेवताः ।

६३३

पूर्वि-
मपि
णा-
रूपः
ासी
पी ।
वार-
गिन-
ाई-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्द्रः
त्यं
क-
यत्
भ-
पु-
ल-
ह-
ः ।

स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजत् । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे
 राजानः समहर्षिकाः । मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिङ्गं यजन्ति
 च । विष्णुर्नारायणो हत्वा ससैन्यं ब्रह्मणः सुतम् । स्थापितं
 विधिवद्भक्त्या लिङ्गं तौरे नदीपतेः । कृत्वा पापसहस्राणि
 हत्वा विप्रशतं तथा । पापात् समाश्रितो लिङ्गं मुच्यते नात्र
 संशयः । सर्वे लिङ्गमया लोकाः सर्वे लिङ्गे प्रतिष्ठिताः । तस्मा-
 दभ्यर्चयेत्लिङ्गं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम् । सर्वं लिङ्गमयं लोकं
 सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्थापयेत् पूज-
 येच्च तत् । ब्रह्मा हरश्च भगवान् विश्वे देवा उमा हरिः ।
 लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः प्रज्ञा विधिर्दुर्गा शची तथा । रुद्राश्च
 वसवः स्कन्दो विशाखः शाख एव च । नैमिशश्च भगवान्
 लोकपाला अहास्तथा । सर्वे नन्दिपुरोगाश्च गणा गणपतिः
 प्रभुः । पितरो मुनयः सर्वे कुबेराद्याश्च सत्तमाः । आदित्या
 वसवः साध्या अश्विनौ च भिषग्वरो । विश्वे देवाः सम-
 हतः पशवः पक्षिणो मृगाः । ब्रह्मादि स्थावरं यच्च सर्वं लिङ्गे
 प्रतिष्ठितम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्थापयेत्लिङ्गमैश्वरम् ।
 पलेन स्थापितं लिङ्गं पूजयेद्यदि मानवः ॥ अन्यथापि ॥ मूले
 ब्रह्मा वसति भगवान् मध्यभागे च विष्णुरग्रे शम्भुः पशुपतिरजो
 रुद्रमूर्तिर्वरेण्यः । तस्माल्लिङ्गं गुरुसुरतरं स्थापयेत् पूजयेद्वा
 यस्मात् पूज्यो गणपतिरसौ देवमुख्यैः समस्तैः । गन्धैः पुष्पैः
 सुगन्धैर्बहुतरबलिभिः स्तोत्रमन्त्रोपचारैर्नित्यञ्चाप्यर्चयन्ति
 त्रिदशवरान्तं लिङ्गमूर्तिं महेशम् । गर्भाधानादिनाशस्त्वथ
 भयराहिता देवगन्धर्वमुख्यैः सिद्धैर्वन्द्याश्च पूज्या गणवरनमितास्ते
 भजन्यप्रमेयाः ॥ तस्माद्भक्त्योपचारेण स्थापयेत् परमेश्वरम् ।
 पूजयेच्च विशेषेण लिङ्गं सर्वार्थसिद्धये ॥ तथा । तस्मात् सद्रा
 पूजनौघो लिङ्गमूर्तिर्महेश्वरः । यावत् पूजा सुरेशस्य तावदेह-

स्थितिर्दिवि । पूजनीयः शिवो नित्यमतः अद्वासमन्विते ।
सर्वं लिङ्गमयं लोकं सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम् । तस्मात् सम्पूजये-
ल्लिङ्गं यदौच्छेत् सिद्धिमात्मनः ॥ सर्वं लिङ्गार्चनादेव देवा
दैत्याश्च दानवाः । यच्चा विद्याधराः सिद्धा राक्षसाः पिशिता-
शिनः । अर्चयित्वा लिङ्गमूर्तिं संसिद्धा नात्र संशयः ।
तस्माल्लिङ्गं यजेन्नित्यं येन केनापि भोः । सुराः ॥ तथा । ये
वाञ्छन्ति महाभोगान् राज्यं वा त्रिदशालये । तेऽर्चयन्तु
सदाकालं लिङ्गरूपं महेश्वरम् । हित्वा भित्त्वा च भूतानि
हत्वा सर्वमिदं जगत् । यजेदेकं विरूपाक्षं न स पापैः
प्रलिप्यते ॥ एतानि वीरमितोदयष्टतानि ॥

अथ त्रैकालिकलिङ्गपूजाफलम् ॥ मध्यसूक्ते ॥ प्रातरुत्थाय
यो लिङ्गं भक्त्या सम्पूजयेत् क्वचित् । कपिलानां शतं दत्त्वा
यत् फलं तदवाप्नुयात् । मध्यन्दिनकरे प्राप्ते यो लिङ्गं
प्रतिपूजयेत् । सम्पूर्णं पृथिवीं दत्त्वा यत् फलं तदवाप्नुयात् ॥
तथा ॥ अष्टोत्तरसहस्रन्तु प्रत्यहं पूजयेच्छिवम् । एककालं
त्रिकालं वा स पुनाति कुलत्रयम् । अष्टाष्टकं वा देवेशि ।
शतं वापि तदर्द्धकम् । तदेव सकलं विन्यान्मकारस्थसहस्र-
कम् । द्रव्यमायुः स्त्रियं पुत्रान् यच्चान्यन्मनसेप्सितम् । स्फाटिकं
लिङ्गमासाद्य यजमानः समश्नुते । वरं प्राणपरित्यागः शिरसो
वापि कर्त्तनम् । न चैवापूज्य युञ्जीत शिवलिङ्गं महेश्वरम् ॥
षट्कर्म्मदीपिकाष्टतस्कन्दपुराणेषु ॥ प्रातरुत्थाय यो लिङ्गं
भक्त्या सम्पूजयेत् सदात् । कपिलालक्ष्मदानेन यत् फलं
तदवाप्नुयात् । मध्यन्दिनकरे प्राप्ते यो लिङ्गं परिपूजयेत् ।
सम्पूर्णं पृथिवीं दत्त्वा यत् फलं तदवाप्नुयात् । वारुणीमा-
श्रिते सूर्ये शिवं समर्चयेत्तु यः । गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य
फलमाप्नुयात् ॥

अथ कामनाभेदे पार्थिवशिवलिङ्गसङ्ख्या वीरमिवोदयधृता
 यथा ॥ संख्या पार्थिवलिङ्गस्य यथाकामं निगद्यते । सलिङ्गं
 पार्थिवं नाम भुक्तिमुक्तिकरं परम् । देशकालादिकं ज्ञात्वा
 कुर्यात्लिङ्गं फलप्रदम् । न करोति यदा ज्ञात्वा न कार्यं तस्य
 सिध्यति । विद्यार्थी शतसाहस्रं धनार्थी च तदर्थकम् । पुत्रार्थी
 सार्द्धसाहस्रं कन्यार्थी च शतत्रयम् । विद्वान् लिङ्गायुतं कुर्यात्
 सर्वपापहरं परम् । राज्यार्थी शतसाहस्रं कान्तार्थी शतपञ्चकम् ।
 मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूतिकामः सहस्रकम् । रूपार्थी त्रिसह-
 स्रन्तु तीर्थार्थी द्विसहस्रकम् । सुहृत्कामः सहस्रन्तु वस्त्रार्थं
 शतमष्टकम् । मारणार्थं सप्तशतं मोहनार्थं शताष्टकम् । उच्चा-
 टनवशश्चैव सहस्रन्तु यथोक्ततः । स्नाने च सहस्रन्तु मारणे च
 तदर्थकम् । महाराजभये पञ्चशतञ्चापदि सङ्कटे । सहस्रमयुतं
 सर्वकामदं परिकीर्तितम् । एकं पापहरं प्रोक्तं हिलिङ्गं चार्थ-
 सिद्धिदम् । त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमौरितम् ॥
 तथा ॥ लिङ्गानामयुतं कृत्वा पूजा राजभयं हरेत् । सहस्राणि
 च लिङ्गानां निगङ्गान्मोचयेद्भुवम् । कारागृहविसृज्यर्थ-
 मयुतं कारयेद्बुधः ॥ डाकिन्यादिभये पञ्चसहस्रं कारयेत्तदा ।
 सहस्राणाञ्च पञ्चाशदपुत्रो हि प्रकारयेत् । लिङ्गार्चनतन्त्रे
 नवमपटले ॥ अनेन च क्रमाद्देवि ! लक्षं यस्तु प्रपूजयेत् ।
 सर्वाभीष्टफलं देवि ! लभते नात्र संशयः ॥ तथा ॥ एकीकृत्य
 महेशानि ! युगलं न तु पूजयेत् । एकीकृत्य महेशानि ! दश-
 पञ्चशतानि च । प्रत्येकेनाथ वा देवि ! विल्वपत्रैः प्रपूजयेत् ।
 एकैकं पूजयेत्लिङ्गं युगलं न तु पूजयेत् । दरिद्रो जायते देवि !
 युगलस्य तु पूजनात् ॥०॥ इति लिङ्गयुग्मपूजानिषेधः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां पञ्चमे भक्तिकाण्डे शाखाकथनं नाम

द्वितीयः परिच्छेदः ॥

अथ शिवपूजा ॥ मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे पञ्चदशपटले ॥
 तीर्थसूक्तां समाहृत्य निर्माय लिङ्गमद्भुतम् । तीर्थाभावे
 महेशानि ! नदीसूक्तां शुचिस्मिते ! । नद्यभावे महेशानि !
 चुद्राया मृत्तिकां प्रिये ! ॥ नदीचुद्रयोर्लक्षणमपि ॥ पर्वतप्रभवा
 देवि ! नदीनाम्नीत्युदाहृतम् । एतद्भिन्ना महेशानि ! नदी
 चुद्रा इति प्रिये ! । निर्भरस्य च देवेशि ! मृत्स्ना सम्पत्प्रदा-
 यिनी । तथा चैव सरोत्पन्ना नानासुखप्रदायिनी । सर्वाभावे
 महेशानि ! गोष्पदस्थाञ्च मृत्तिकाम् । अथवा परमेशानि !
 यत्र चित्तं प्रसीदति । सुपीनं सुन्दरं रम्यं शर्करारहितं सदा ।
 निर्माय पार्थिवं लिङ्गं कुण्डलीसहितं प्रिये ! । यो लिङ्गं
 परमेशानि ! स रुद्रः परमेश्वरः । कुण्डली वेष्टनी तस्याः सा
 देवी परमेश्वरी । शिवस्य पूजनाद्देवि ! देवीदेवी च पूजितौ ।
 एकस्य पूजनाद्देवि ! द्वयोरेव प्रपूजनम् ॥ लिङ्गार्चनतन्त्रे
 द्वितीयपटले ॥ मृत्स्ना तु परमेशानि ! वर्षभेदेन सुन्दरि ! ।
 वर्षभेदेन ब्राह्मणादिवर्णभेदेन । वर्षभेदस्तु पूर्वमुक्तः । सम्मन्त्र
 मातृकामन्त्रैश्चानुलोमविलोमतः । जप्त्वा तु परमेशानि ! दशधा
 परमेश्वरि ! । इति मन्त्रं जपित्वा वै मृत्स्नां प्रार्थ्य वरानने ! ।
 सर्वशक्तिमये ! देवि ! मृत्तिके ! त्रिदशेश्वरि ! । निर्माय
 पार्थिवं लिङ्गं शिवपूजां करोम्यहम् । त्वयि कामश्च धर्मश्च
 तत्क्रमे सत्यपीश्वरि ! । चतुर्वर्गप्रदे ! देवि ! नानारत्नवि-
 भूषिते ! । त्वां विना परमेशानि ! कुतो मोक्षः कुतः सुखम् ।
 अर्थः कामश्च देवेशि ! त्वां विना न हि जायते । ओं ह्रीं
 मृत्तिके ! दुष्कृतिहरे ! ह्रीं ओं । इति मन्त्रं समुच्चार्य गृह्णीयात्
 मृत्तिकां प्रिये ! । ओं हराय नम इति गृह्णीयाद्वा शुचिस्मिते ! ।
 अज्ञानात् परमेशानि ! यो गृह्णीयात् मृत्तिकाम् । विफला
 तस्य सा पूजा पार्थिवस्य च लिङ्गके । निर्माणं मातृकाम-

६३९

पूर्वि-
मपि
णा-
रूपः
गो-
पी ।
हार-
गो-
प-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्दः
त्वं
क-
प्रत्
भ-
प्र-
ल-
ह-

त्वैरो महेश्वराय नम इति प्रिये ! उच्चार्य मातृकामन्त्रं शूल-
 प्राणि । ततः परम् । सुप्रतिष्ठितो भव इत्युच्चार्य मातृकां ततः ।
 प्राणं नियोजयेद्देवि ! पार्थिवे शिवलिङ्गके । प्राणप्रतिष्ठा-
 मन्त्रेण प्राणान्नियोजयेत्ततः ॥ तोडलतन्त्रे पञ्चमपटलेऽपि ॥
 शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि पार्थिवं शिवपूजनम् । तत्रादौ प्रीणये-
 द्देवि । गुरुदेवमनन्यधीः । ओं हराय नमस्कारं सृत्तिकामा-
 हरेत् सुधीः । महेश्वराय नमस्कारं निर्माय बहुयत्नतः ।
 शूलप्राणि ! इहोच्चार्य सुप्रतिष्ठितो भवेति च । अनेन मनुना
 देवि ! जीवन्मासं समाचरेत् । हकारं विन्दुसंयुक्तं दीर्घयुक्तं
 षडङ्गकम् ॥ लिङ्गार्चनतन्त्रे ॥ भूतशुद्धिं महेशानि ! प्रथमं परि-
 क्रीर्त्तितम् । ततस्तु मातृकान्यासं कुर्यात् परमयत्नतः । प्राणा-
 यमं ततः कृत्वा शिवं ध्यायेत् शुचिस्मिते ! ॥ ध्यानन्तु
 तोडलतन्त्रे ॥ तस्य ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहिते ॥ ओं
 ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पो-
 ज्ज्वालाङ्गं परशुमुखावराभीतिहस्तं प्रसन्नम् । पद्मासीनं
 सुमन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं
 तिखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं ॥ रत्नाकल्पोज्ज्वालाङ्गमिति
 रत्नस्थकल्पो वेशस्ते नोज्ज्वालाङ्गं यस्य तम् । व्याघ्रकृत्तिश्चर्म वस
 आच्छादने तद्वसानं तदाच्छादकमित्यर्थः ॥ पुष्पं शिरसि स-
 न्धार्य मानसैः पूजनं चरेत् । पुनर्ध्यात्वा महेशानि ! शिरे पुष्पं
 तिधाय च । पिनाकधृक् इति चोच्चार्य इहावह द्विधा वदेत् ।
 इह तिष्ठ ततो इह सन्निधेहि इयं इह । इह सन्निहतो
 रुद्र । स्वशब्दश्च ततो वदेत् । यावत्पूजां समुच्चार्य ततश्चैव करो-
 म्यहम् । स्नानीयश्च पशुपतिं डेयुतश्च नमश्चरेत् ॥ पूजामन्त्रं स्तु-
 वेदाद्यं योजयेद्देवि ! ब्राह्मणः साधकोत्तमः । वेदाद्यः प्रणवः ।
 प्रतप्याद्यं महेशानि ! षडक्षरमनु ततः । नमस्कारं समुच्चार्य

सर्व दद्याद्विचक्षणः ॥ षडक्षरप्रमाणन्तु तत्रैव ॥ नकुलीशं
समुद्भृत्य मनुस्वरविभूषितम् । विन्दुनादकलायुक्तं प्रसादाख्यं
महेश्वरम् । नकुलीहो हकारः । मनुस्वर औकारः । अक्ष
मन्त्रस्य माहात्म्यामूर्ध्वान्नाये मयोदितम् । नमस्कारं समुद्भृत्य
वान्तं नेत्रसमन्वितम् । वारुणं मुखवृत्तञ्च वायुं ललाटसंयु-
तम् । अमुं पञ्चाक्षरं मन्त्रं पञ्चान्नायफलप्रदम् । प्रण-
वादिर्व्यदा देवि ! तदा मन्त्रः षडक्षरः । नमस्कारो नम
इति स्वरूपः । वान्तः शकारः । नेत्रं प्रथमोपस्थितत्वाद्विष्णुं
तेन इकारः । वारुणो यकारः । मुखवृत्तमाकारः । आयुर्यकारो
ललाटमकारः । प्रसादख्यं समुद्भृत्य अर्धनारीश्वराय च । पुनः
प्रसादमुद्भृत्य मन्त्रं परमगोपनम् । एवं बहुविधाकारं विग्रहं
मे नगात्मजे ! । पूजयित्वा महेशानि ! चाष्टमूर्त्तिः प्रपूजयेत् ।
सर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः । महादेवश्च
ईशानो डेयुतं कुरु यत्नतः । क्षितिं जलं तथा चाग्निं वायुञ्चा-
काशमेव च । यजमानं तथा सोमं सूर्यञ्च मूर्त्तिना सह ।
सर्वत्र डेयुतं कृत्वा पूजयेत् साधकोत्तमः । प्रणवादिनमोऽन्तेन
वामावर्त्तेन पूजयेत् । मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रम-
योगतः । आग्नेयान्ताः प्रपूज्यास्ता वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा प्रजपेत्ततः । ओं गुह्यातिगुह्यगोप्ता
त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव । त्वय्यसादा-
त्त्वयि स्थिते । ततः स्तोत्रं समादाय जपञ्चैव समर्पयेत् । मुख-
वाद्यं ततः कृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः । संहारेण महादेव !
क्षमस्वेति विसर्जयेत् । अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सूत्रं परम-
गोपनम् । हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकाष्टकः । पशुपतिः
शिवश्चैव महादेव इति क्रमात् । अष्टमूर्त्तिस्ततो देवि !
पूजयेत् साधकोत्तमः । ततो जपेन्महेशानि । मुखवाद्यं ततः

५६३

वि-
मपि
भा-
रूपः
ासी
ती ।
हार-
गौन-
ाह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्त्रः
त्वं
क-
प्रत्
भ-
स-
ल-
ह-
ः ।

२५

परम् ॥ मन्त्रतन्त्रप्रकाशेऽपि ॥ रुद्राहरणसङ्कटः प्रतिष्ठा ध्यान-
मेव च । स्थापनं पूजनञ्चैव विसर्जनमिति क्रमात् । हरो
महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक् । पशुपतिः शिवश्चैव
महादेव इति क्रमात् । न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीचीं
शक्तिसंश्रिताम् । न प्रतीचीं यतः पृष्ठमतो दक्षं समाश्रयेत् ॥
तन्त्रान्तरे ॥ शर्वो भवश्च रुद्रश्च तथोग्रो भीम एव च ॥ पशु-
पतिः शिवश्चैव ईशानश्चेति कीर्तिताः । चित्तिर्जलं तथा
वह्निर्वायुराकाशमेव च । यजमानश्च सोमश्च सूर्यश्चेत्यष्ट-
मूर्त्ययः । वामावर्त्तेन वेद्याञ्च तं पूज्याष्टौ च मूर्त्ययः । यज-
मानः पूजक आत्मेति यावदत एव महिम्नः स्तुवे-त्वसु ! धरणि-
रात्मा त्वमिति च । इति पुष्पदन्तेनोक्तम् ॥ वामावर्त्तेन वेद्याञ्च
सम्पूज्याष्टौ च मूर्त्ययः ॥ तथा ॥ मूर्त्ययोऽष्टौ शिवस्यैताः
पूर्वादिक्रमयोगतः । आग्नेयान्ताः प्रपूज्यास्ता वेद्यां लिङ्गे
शिवं यजेत् ॥ तोडलमन्त्रे ॥ एतदन्यत्र कर्तव्यं शक्तिदीक्षा-
परो यदि । निषिद्धाचरणाद्देवि ! पापभाक् जायते नरः ।
न्यूनाधिकं महेशानि ! यदि पूजादिकं चरेत् । स गुरुश्चापि
शिष्यश्च शिवहत्यां प्रयच्छति । न्यूनाधिकं महेशानि ! यदि
चैकाक्षरं भवेत् । वर्णसंख्या महेशानि ! ब्रह्महत्या भविष्यति ।
अतएव स पापिष्ठः सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ! ॥ एवं पूजां विधायादौ
ततश्चान्यान् प्रपूजयेत् । आदौ शिवं पूजयित्वा शक्तिपूजा
ततः परं । नतु वा मूत्रवत् सर्वं गङ्गातोयं भवेदुद्यदि । अतएव
महेशानि ! आदौ लिङ्गं प्रपूजयेत् । लिङ्गार्चनतन्त्रे नवम-
पटले ॥ सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं गन्धपुष्पादिभिः प्रिये ! ।
ततः पञ्चमुखे देवि ! यद्दत्तं पुष्पचन्दनम् । नैवेद्यं विविधं रम्यं
सुगन्धं गन्धवर्जितम् । विलुपत्रश्च कङ्कारं तगरं मल्लिकां
तथा ॥ मालतीं यूथिकां देवि ! करवीरं मनोहरम् । पद्मञ्च

केतकीं कुन्दं तथा ह्यामलकीं प्रिये ! । कुसुदं कीकनदक्षैव
सर्वञ्च वनसम्भवम् । दूर्वाञ्च तुलसीञ्चैव दत्त्वा सम्पूज्य
पार्थिवम् । अन्यानि यानि पुष्पाणि धुस्तूरादीनि पार्वति ! ।
धुस्तूरसदृशं पुष्पं मम ज्ञाने न विद्यते । गोकोटिदाने देवेशि !
यत्फलं परमेश्वरि ! । धुस्तूरस्य प्रदानेन समतां याति
पार्वति ! । यानि यानि च पुष्पाणि ब्रह्माण्डे भावितानि च ।
तानि सर्वाणि ! देवेशि ! सत्रस्य पार्थिवोपरि ॥ यद्यप्यर्थकाण्डे
पुष्पाण्युक्तानि तथाप्यत्र निषिद्धपुष्पाणां प्रतिप्रसवदर्शनार्थं
पुनर्लिखितानीति न पौनरुक्त्यम् । यानि यानि च धूपानि
दीपानि विविधानि च । अन्यानि उपचाराणि यथोक्तविधिना
प्रिये ॥ दशमपटले ॥ तथा तु विजयापत्रं सत्रस्य पार्थि-
वोपरि । दत्त्वा तु विजयापत्रमश्वमेधफलं लभेत् ॥

लिङ्गस्य काम्यपूजा तु द्वादशपटले । पूर्वोक्तविधिना देवि !
सम्पूज्य पार्थिवं हरम् । आत्मगेहे महेशानि ! स्वशक्त्या च वि-
निर्मितम् । स्वशक्त्या स्वपत्न्या । चकारेणात्मगेहसम्बन्धिना अन्येन
च विनिर्मितमित्यर्थः ॥ षोडशैरुपचारैश्च सम्पूज्य पार्थिवं शिवम् ।
एवं वत्सरपर्यन्तं सुभक्त्या पूजयेच्छिवम् । रहस्यं हि ततः
पश्चात् मासि मासि शुचिस्मिते ! । सम्पूज्य दिवसे लिङ्गं
यावत्संख्यं वरानने ! । तत्रादौ परमेशानि ! तस्मिन्महेश्वरि ! ।
आदाय निशि मध्ये तु गत्वा विल्वतरुं प्रिये ! ।
अमावस्यां चतुर्दश्यां पौर्णमस्यां विशेषतः । कुजे वा शनिवारि वा
सोमवारिपि पार्वति ! । पूजितव्यं प्रयत्नेन ननो भूत्वा
महेश्वरि ! । विल्वपत्रैः प्रपूज्याथ सहस्रैः परमेश्वरि ! । विल्व-
पत्रं महादेवि ! कीटादिदोषवर्जितम् । कोमलं मधुरं पत्रं
पत्रत्रययुतं प्रिये ! । विल्वपत्रं विना देवि ! न हि पूजां समाचरेत् ।
पूजयेत् पूर्ववद्देवि ! यथानुष्ठानपूर्वकम् । ततः परं महेशानि ! ।

मन्त्रमुच्चार्य यत्नतः । विस्वपत्रं प्रदद्यात् एकैकेन पृथक् पृथक् ।
 संशोध्य विधिवद्देवि ! विल्वपत्रं वरानने ! । एवं वत्सर-
 पथ्यन्तं यः करोति प्रसन्नधीः । मनसा कार्यमुद्दिश्य एवं यस्तु
 प्रपूजयेत् । शीघ्रं काममवाप्नोति गणेशसदृशो भवेत् । अतः
 परं महेशानि ! गत्तं कृत्वा ततः स्थले । निक्षिप्य लिङ्गं
 तत्रैव जप्त्वा तु तत्र तत्र वै । नमस्कृत्य महेशानि ! क्षमस्वेति
 विसर्जयेत् । आत्मसमर्पणं कृत्वा रहस्यं परमेश्वरि ! । यः
 करोति प्रसन्नात्मा स एव श्रीसदाशिवः ॥ प्रत्यहं लिङ्गपूजनमपि
 तत्रैव ॥ प्रत्यहं परमेशानि ! यावज्जीवं धरातले । पूजयेत्
 परया भक्त्या लिङ्गं ब्रह्ममयं प्रिये ! ॥ मातृकामेदतन्त्रे
 द्वादशपटले ॥ शुद्धाशुद्धविचारो हि नास्ति तच्छिवपूजने ।
 येन तेन प्रकारेण विस्वपत्रैः प्रपूजयेत् । सर्वसिद्धियुतो भूत्वा
 स नरः शिव एव हि । ब्रह्माण्डमध्ये ये देवास्तद्वाह्ये यास्य
 देवताः । ताः सर्वास्तृप्तिमायान्ति केवलं शिवपूजनात् ॥

अथ शिवापितद्रव्यफलम् ॥ तत्रैव ॥ कुशायमाणं यत्तोयं
 ततोयेन यजेद्यदि । सत्यं सत्यं हि गिरिजे ! तज्जलं
 सागरोपमम् । पुष्पञ्च मेरुसदृशं लिङ्गोपरिनियोजनात् ।
 लिङ्गस्य मस्तके देवि ! यदन्नं परितिष्ठति । तदन्नस्य च दानेन
 क्षितिदानफलं लभेत् । एकया दूर्वया वापि योऽर्चयेच्छिव-
 लिङ्गकम् । सर्वदेवस्य शीर्षे तु चार्घ्यदानफलं लभेत् । सामान्य-
 तोयमानीय यदि स्नायान्महेश्वरम् । सार्धैत्रिकीटितीर्थस्य
 स्नानस्य फलभाग्भवेत् ॥

अथ रिष्टशान्तिः ॥ वीरमितोदयधृतपाराशरमाधवीययोः ॥
 सहस्रकलसैरङ्गिरभिषेकं करोति यः । शिवाय विधिवन्मन्त्रै-
 र्धिरजीवी भवेन्नरः ॥ एकाहशिवलिङ्गपूजाफलमपि तत्रैव ॥
 यः प्रदद्याद्गवां क्षत्तं दोम्ब्रीनां वेदपारगे । एकाहमर्चयेत्लिङ्गं

तस्मात् पुण्यं ततोऽधिकम् । तस्याश्वमेधादधिकं फलं भवति
नान्यथा ॥ लिङ्गस्य सार्वकालिकपूजाविशेषो मत्स्यसूक्ते ॥
वृतेन स्नापितं लिङ्गं चन्दनेनानुलेपयेत् । कुङ्कुमैः स्नापयित्वा
च पूजयेत्तदनन्तरम् । श्वेतेन वस्त्रयुग्मेन तथा मुक्ताफलैः
शुभैः । यत्नकदम्बधूपेन पयसा पायसेन च । पद्मसूत्रस्य कर्त्तव्यं
च वृत्तदीपेन वाप्यंथ । पूजयं सर्वशुक्ला स्यात् सर्वकामफल-
प्रदा ॥ निरग्नेरपि लिङ्गपूजनेन साग्निकत्वम् ॥ तदुक्तम्
माहकामेदतन्त्रे ॥ पुष्पं गन्धं जलं द्रव्यं लिङ्गोपरि नियोज-
येत् । शिवमध्ये महावाङ्मनः स तु रुद्रः प्रकीर्तितः । रुद्रोपरि
चिपेद्यद्यत्तदेव भस्मतां गतम् । साक्षाद्भोमो महेशानि !
शिवस्य पूजनाद्भवेत् । महायज्ञेश्वरो मर्त्यैः शिवस्य पूजनाद्भ-
वेत् ॥ लिङ्गोपर्यर्पितद्रव्यस्याग्राह्यत्वमाह लिङ्गार्चनतन्त्रे हा-
दशपटले ॥ यद्ययदत्तं महेशानि ! शिवाय परमात्मने ।
तत्सर्वं परमेशानि ! तत्क्षणात्तन्मयं भवेत् । यत्किञ्चिदुपचारं
हि लिङ्गोपरि निवेदयेत् । तन्निर्माणं महेशानि ! अग्राह्यं पर-
मेश्वरि ! ॥ तस्याग्राह्यत्वनिदानज्ञानञ्च त्रयोदशपटले ॥ तन्नि-
र्माणं महादेव ! ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् । अग्राह्यं तव निर्माणं
कथं वदसि योगभृत् ! ॥ इति देवोपश्रान्तान्तरमौख्यवचनम् ॥
मध्यस्थानस्थितं यत्तु तन्मुखं परमेश्वरि ! । श्यामलं तत्तु
ईशानं सदा ऊर्ध्वं शुचिस्मिते ! । तेजोमयं महेशानि ! मुख-
मूर्ध्वं वरानने ! । चौरादमथने देवि । उल्लिखितं गरलं महत् ॥
इत्यादि प्रस्तुत्य ॥ ततः करतलीकृत्य तद्विषं परमेश्वरि ! । ततः
श्याममुखे देरि ! निपौय तद्विषं प्रिये ! । ततः प्रभृति देवेशि !
मुखं ज्वालायते सदा । कण्ठे तु गरलं भूत्वा सदा तिष्ठति
कामिनि ! ॥ चतुर्दशपटले ॥ ईशानस्य महेशानि ! ज्ञानं
परमदुर्लभम् । यस्य श्रवणमात्रेण शिवपूजाफलं लभेत् ।

इंशानं तन्मुखं देवि ! परं ब्रह्म वरानने ! । पत्रं वा यदि वा
 पुष्पं जलं वा वरवर्णिनि ! । अन्यद्वि परमेशानि ! उपचारं
 मनोहरम् । यो दद्यात् परमेशानि ! तन्मुखोपरि पार्वति ! ।
 अग्राह्यं तत्तु निर्माल्यं साक्षाद्ब्रह्ममयं यतः । एतत्तु परमे-
 शानि ! निर्माल्यं यस्तु धारयेत् । स भ्रष्टो जायते देवि ! नि-
 ष्कृतिर्नास्ति तस्य वै । अग्राह्यं मम निर्माल्यमत एव वरानने ! ।
 तथा । उपचारं स्थापयित्वा पूतं पाचान्तरे प्रिये ! । कृत्वा
 तु मन्त्रपूतं हि उपचारं निवेदयेत् । वामदेवादिषु सदा सुखेषु
 वरवर्णिनि ! । भक्षणं मम देवेशि ! ब्रह्माण्डसिंकारकम् ।
 एतद्वि परमेशानि ! ब्रह्मादौनां सुदुर्लभम् । अशुचिर्वा शुचि-
 र्वापि उच्छिष्टं भक्षयेद्यदि । स एव परमाराध्यं साक्षाद्
 ब्रह्म शुचिस्मिते ! । निर्माल्यं दृढभक्तित्वात् गृह्णीयाद्यस्तु
 पार्वति ! । प्रथमं विष्णवे दद्याद्विष्णुमन्त्रेण सुन्दरि ! ।
 निर्माल्यं मम देवेशि ! विष्णोरग्राह्यं महेश्वरि ! । देवासुरमनु-
 श्याश्च गन्धर्वाः किन्नरादयः । ते सर्वे परमेशानि ! वराकाः
 सुद्रवुडयः । निर्माल्ये मम देवेशि ! अधिकारौ भवेत् कथम् ॥

मातृकाभेदतन्त्रे चतुर्थपटले ॥ चण्डिकोवाच ॥ कारणेन
 महामोक्षो निर्माल्येन शिवस्य च । श्रुतं वेदपुराणेषु तव वाक्ये
 महेश्वर ! । अग्राह्यं शिवनिर्माल्यमग्राह्यं कारणं विभो ! ।
 मृषावाक्यं महादेव ! कथं वदसि योगमृत ! ॥ श्रीशङ्कर उवाच ॥
 चतुरशीतिलक्षेषु सहस्रेषु तथैव हि । भ्रमणं कुरुते जीवस्त-
 तो मोक्षस्य भाजनम् । एतन्मध्ये महाज्ञानं यदि स्यात् सुरव-
 न्दिते ! । तदैव मोक्षमाप्नोति भ्रमणं कस्य वा भवेत् । यस्य
 जन्म अपूर्णन्तु स कथं मोक्षस्य भाजनम् । यस्य पापाधिकत्वञ्च स
 कथं स्वर्गभाजनम् । अतएव महादेवि ! गुप्तभावं मया कृतम् ।
 निर्माल्येन लभेत् स्वर्गं निर्वाणं सुधया भवेत् । पापयुक्तोऽपि

चण्डालो निर्माल्यं गृह्यते यदा । तदा मोक्षं लभेत् सत्यं
शिवरूपो न चान्यथा । महापातकयुक्तोऽपि कारणं पीयते
यदि । ज्ञानान्मुक्तिर्भवेत् सत्यं जातिभेदादिकं न हि । सर्व-
जातिषु निर्वाणं ज्ञानेन परमेश्वरि ! । अतएव महेशानि ! गुप्त-
भावं मया कृतम् ॥ पद्मपुराणे ॥ द्रव्यमन्नं फलं तोयं शिवस्य
न स्पृशेत् क्वचित् । न नयेच्छिवनिर्माल्यं कूपे सर्वं विनिक्षि-
पेत् । मक्षिकापादमात्रं यः शिवस्वसुपजीवति । लोभाच्चोहात्
पतत्येव कल्पान्तं नरके नरः ॥ पुराणसंग्रहे ॥ शिव उवाच ॥
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् । शालग्रामशिला-
लम्बं सर्वं याति पवित्रताम् । नैवेद्यञ्च नरो भुक्त्वा शुद्धौ चान्द्रा-
यणं चरेत् ॥ इति निर्माल्यभक्षणे प्रायश्चित्तञ्च ॥

वाणलिङ्गनिर्माल्यप्रतिप्रसवस्तु शिवनारदसंवादे ॥ वाण-
लिङ्गे न चाशौचं न च निर्माल्यकल्पना । सर्वं वाणार्पितं
ग्राह्यं भक्त्या भक्तैश्च नान्यथा । ग्राह्याग्राह्यविचारोऽयं वाण-
लिङ्गे न विद्यते । तदर्पितं जलं पत्रं ग्राह्यं प्रसादसंज्ञया ।
स्वयम्भूप्रभृतिनिर्माल्यस्य ग्राह्यत्वमपि तत्रैव ॥ वाणलिङ्गे स्वय-
म्भूते चन्द्रकान्तेन्द्रसंस्थिते । चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्य-
भक्षणैः । निर्माल्यकल्पना चोक्ता सिद्धान्तशेखरे । धराहिरण्य-
गोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकम् । विहाय शेषनिर्माल्यं चण्डेशाय
निवेदयेत् । एतेन लिङ्गार्पितवस्त्रादिग्रहणेन दोषं इत्यायातम् ।
चण्डेशाय निवेदयेदित्यनेन चण्डेशनिवेदितं यत्तन्न भोक्तव्यम् ।
शालग्रामोद्भवे लिङ्गे ज्योतिर्लिङ्गे स्वयम्भुवि । इन्द्रलिङ्गे तथा
ये चामराः सिद्धप्रतिष्ठिते । इन्द्रलिङ्गे इन्द्रनीलमणिविशेषलिङ्गे ॥
प्रागुक्तचन्द्रकान्तेन्द्रसंस्थिते इत्यत्रापीदृग् व्याख्येति ॥

हनूमन्तं प्रति शम्भुवाक्यम् ॥ वाणलिङ्गे स्वयम्भूते चन्द्रा-
क्षतिर्हृदि स्थिते । चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम् ।

लिङ्गे स्वयम्भुवे वाणे लिङ्गे च रसनिर्मिते । सिद्धप्रतिष्ठिते
 चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत् । यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति भोक्तव्यं
 तन्न मानवैः । चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्तु भक्तितः ।
 इति पञ्चपुरुषार्थप्रबोधे शिववचनाच्च । किं दीक्षया किं तपसा
 किं ध्यानेन किमिच्छया । शृणु देवि ! वरारोहे ! मङ्गलं यदि
 भुज्यते । मङ्गलं मन्त्रिवेदेतिमित्यर्थ इति । तदपि वाणादिलिङ्गा-
 नामपि नैवेद्यविषयमिति वाणलिङ्गादिषु शम्भोर्नैवेद्यभक्षणे
 न दोष इति वदता ततोऽर्थान्निर्मात्यधारणमभ्यनुज्ञातम् ।
 श्रीविश्वनाथतौर्थादिधारणन्तु कर्त्तव्यमेव । तथा स्कन्द-
 पुराणे काशीखण्डे । जलस्य धारणं मूर्द्धि विश्वेशास्तेऽन्य-
 क्षन्मनीत्युपक्रम्य । स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नानजोदकम् ।
 त्रिः पिवेत् त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति । लिङ्गवराञ्च-
 नाद्भिर्यः कुर्यान्मूर्द्धाभिषेचनम् । गङ्गास्नानफलं तस्य जायते
 कुम्भसम्भव ! । तथा वाणेश्वरोपाख्याने ॥ अद्वावतां स्वभ-
 ज्ञानामुपसर्गे महत्यपि । नोपायान्तरमस्यैव विनेशचरणो-
 दकम् । ये व्याधयोऽतिदुःसाध्या वहिरन्तः शरीरिणाम् ।
 शुद्धमौशोदकस्यर्शात् ते नश्यन्त्येव नान्यथा ॥

शान्तिकादौ शिवलिङ्गपूजा कुक्कुटेश्वरतन्त्रे ॥ पार्वत्यु-
 वाच ॥ देवदेव ! महादेव ! परमेश ! पुरातन ! । दिनास्त्रं
 परमास्त्रञ्च कृत्यास्त्रं परमेश्वर ! । त्वत्प्रसादान्महादेव ! श्रुतं
 ब्रह्मविधं मया । इदानीं श्रोतुमिच्छामि अस्त्रं पाशुपताह्वयम् ।
 कृपया कथय त्वं हि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥ सदाशिव
 उवाच ॥ साधु पृष्टं महादेवि ! जन्तूनां हितकारिणि ! । मम
 प्राणसमं योगं देवानामपि दुर्लभम् । तव स्नेहात् प्रवक्ष्यामि
 तदस्त्रं परमाद्भुतम् । गोपनीयं प्रयत्नेन शपथं मे पुनः पुनः ।
 लिङ्गमोज्ज्वलं द्रव्यमानमर्चनं जपपद्धतिः । तत्सर्वं सम्भवक्ष्यामि

शृणुष्व कमलानने ! । शततोलकमृत्स्नायाः कारयेत्लिङ्गमुत्त-
मम् । धृतेन मधुना वापि स्नापयेदृश्यकर्मणि । दुग्धेन
स्नापयेद्देवि ! शान्तौ मृत्युञ्जयेऽपि च । आकर्षणे तु मधुना
भस्मना क्रूरकर्मणि । शततोलकमानेन द्रव्यमेतत् प्रकीर्तितम् ।
तन्मानं संविदाचूर्णं नैवेद्यञ्च सुरेश्वरि ! । विल्वपत्रं तथा पुष्पं
दद्यादष्टोत्तरं शतम् । शान्तिकादौ द्रोणपुष्पं वर्वरा चाभि-
चारके । स्तम्भेन मोहने चैव धुस्तूरं कनकाह्वयम् । विद्मो-
च्चाटने देवि ! जवा वाय्वपराजिता । चतुर्दंशां समारभ्य
यावदन्या चतुर्दंशौ । एकैकं क्रमशो लिङ्गं पूजयेद्भक्तिभावतः ।
अष्टाधिकसहस्रान्तु जपं कुर्याद्दिने दिने । सप्ताहे सप्त लिङ्गानि
पञ्चाहे वाथ पञ्चकम् । चण्डोद्येण विधानेन जपपूजादिकं
स्मृतम् । वटुकेन तु मन्त्रेण मञ्जुघोषेण वा प्रिये ! । त्र्यम्बकेन
तु मन्त्रेण शान्तिके जपपूजनम् । तत्तत्कल्पविधानेन पूजाजपं
समाचरेत् । जातिध्वंसे कुलोच्छेदे आयुषो नाश आगते ।
महाभये समुत्पन्ने सर्वाभिचारसम्भवे । यत्नेन पूजयेद्देवि !
लिङ्गमष्टोत्तरं शतम् । दुग्धनिर्भरधाराभिः श्रोत्रान्तमभिषेचयेत् ।
अतिरुद्रप्रयोगादौ रुद्राध्यायेन वा पुनः । नीलकण्ठेन वा
देवि ! स्तवेन तोषयेच्छिवम् । वस्त्रालङ्कारभूषादि दद्याच्च
विभवावधि । सर्वकामप्रदं देवि ! सर्वसौभाग्यदायकम् ।
नातः परतरं देवि ! त्रिषु लोकेषु विद्यते । इति ते कथितं देवि !
अस्त्रं पाशपताह्वयम् । यस्मै कस्मै न वक्तव्यं न प्रकाश्यं
कदाचन ॥ ब्राह्मणान् भोजयेच्छ्रुत्या भक्तिनम्रः समाहितः ।
नीलकण्ठेनेति कलौतरपरम् । कालीविलासतन्त्रीयवचनेन
कलौ तन्निषेधात् ॥

अथ शिवस्तोत्रम् । श्रीं सर्वज्ञ ! ज्ञानविज्ञानप्रदायक ! महा-
त्मने । नमस्तो सर्वदेवेश ! सर्वभूतहिते रत ! । अनन्तकान्ति-

सम्पन्न ! अनन्तासनसंस्थित ! । अत्यन्तकान्तिसम्भोग ! परमेश !
नमोऽस्तु ते । परापरतरातीत ! उत्पत्तिस्थितिकारक ! । सर्वार्थ-
साधनोपाय ! विश्वेश्वर ! नमोऽस्तु ते । सर्वार्थनिर्मलाभोग !
सर्वव्याधिविनाशन ! । योगियोगिमहायोगियोगेश्वर ! नमो-
ऽस्तु ते । कृत्वा लिङ्गं प्रतिष्ठाञ्च ध्यात्वा देवं सदाशिवम् ।
पूजयित्वा विधानेन स्ववमेतमुदीरयेत् । लिङ्गस्तुतं महापुण्यं
यः शृणोति सदा नरः । नोत्पद्यते च संसारं स्थानं प्राप्नोति
शाश्वतम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शृणुयाच्च सुसंस्तवम् । पाप-
कञ्चुकिर्मुक्तः प्राप्नोति परमं पदम् ॥

इति भविष्यपुराणोक्तलिङ्गस्तवः समाप्तः ॥

अथ कवचम् ॥ रुद्रजामले ॥ भैरव उवाच ॥ दक्षामि देवि !
कवचं मङ्गलं प्राणरक्षणम् । अहोरात्रं महादेवरक्षार्थं
देवमण्डितम् । ओमस्य श्रीमहादेवकवचस्य वामदेव ऋषिः
पङ्क्तिच्छन्दो ह्रसी निधो देवता सर्वसाधने विनियोगः । रुद्रो
मामयतः पातु पृष्ठतः पातु शङ्करः । कपर्दी दक्षिणे पातु वाम-
पार्श्वं तथा हरः । शिवः शिरसि मे पातु ललाटं नौल-
लोहितः । नेत्रं नेत्राक्षरः पातु बाहुयुग्मं महेश्वरः । हृदये
च महादेव ईश्वरश्च तयोदरे । नाभौ कुक्षौ कटिस्थाने पादौ
पातु महेश्वरः । सर्वो रक्षतु भूतेशः सर्वगात्राणि मे हरः ।
पार्श्वं शूलञ्च दिव्यास्त्रं खड्गञ्च वज्रमेव च । नमस्करोमि भूतेशं
रक्ष मां जगदीश्वर ! पापेभ्यो नरकेभ्यश्च चाहि मां भक्तवत्सल ! ।
जन्ममृत्युजराव्याधिकामज्जोधादपि प्रभो ! । लोभमोहान्महा-
देव ! रक्ष मां त्रिदशेश्वर ! । त्वं गतिस्त्वं मतिश्चैव त्वं भूतिस्त्वं
परायणः । कायेन मनसा वाचा त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ।
इत्येतद्गुरुकवचं पठनात् पापनाशनम् । महादेवप्रसादेन
भैरवेन च कीर्तितम् । न तस्य पापं देहेषु न भयं तस्य विद्यते ।

प्रीप्नोति सुखमारोग्यं पुत्रमायुःप्रवर्द्धनम् । पुत्रार्थी लभते
पुत्रान् धनार्थो धनमाप्नुयात् । विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी
मोक्षमेव च । व्याधितो मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
ब्रह्महत्यादिपापञ्च पठनादेव नश्यति ॥

इति रुद्रजामले श्रीशिवकवचं समाप्तम् ॥

अथ विल्ववृक्षादिमाहात्म्यम् ॥ योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे
पञ्चमपटले ॥ विल्वमूलं महेशानि ! समन्तात् धोडशं करम् ।
मम जटास्वरूपं हि पर्णं जानीहि सूर्यरि ! । ऋग्यजुःसाम-
सदृशं दलत्रयं वरानने ! । शाखाश्च सर्वशास्त्राणि जानीहि
मीनलोचने ! । कल्पवृक्षसमो विल्वो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।
महालक्ष्मीविल्ववृक्षो जातः श्रीशैलपर्वते ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कथं
सा विष्णुवनिता विल्ववृक्षो बभूव ह । ज्योतीरूपं मदंशं
प्रार्थिता ब्रह्मादिभिः सदा । तत्र मेऽनुग्रहाद्वाणी सर्वेषां प्रियतां
मता । विष्णोरतिप्रिया नित्यं साभूत् सरस्वती सदा । तादृक्
प्रीतिर्न लक्ष्याच्च जायते केशवस्व च । इति चिन्तापरा लक्ष्मी-
र्ययौ श्रीशैलमन्दिरम् । प्राप्य मल्लिङ्गमेकान्तं तपस्तेपेऽतिदारु-
णम् । तथापि यदि नैवाभूत् कृपा मे परमेश्वरि ! । तदा सा वृक्ष-
रूपेण स्थिता लिङ्गप्रिया सती । पत्रैः पुष्पैः फलैः स्त्रीयैः पूजया-
मास सन्ततम् । कोटिवर्षं महादेवि ! ततो मेऽनुग्रहोऽभवत् । तेनै-
कानुग्रहेणैव विष्णोर्वक्षःस्थिताऽभवत् । सदैव परमेशानि ! विप्र-
वक्ष्सा सदैव हि । अतस्तु कारणाद्देवि ! तद्रूपेण हरिप्रिया । सदैव
पूजयेन्मां सा मङ्गला सातुला शिवे । अतस्तु वृक्षमाश्रित्य तिष्ठा-
मि च दिवानिशम् । सर्वतोर्ध्वमयो देवि ! सर्वदेवमयः सदा ।
श्रीवृक्षः परमेशानि ! अतएव न संशयः । तत्फलैस्तत्पत्तनैर्वा
तत्पत्रैर्यः प्रपूजयेत् । तत्काष्ठचन्दनैर्वापि स मे भक्तः स मे प्रियः ।
तत्काष्ठचन्दनं भाले यो धारयति सद्भूमात् । तत्तनुं शिव-

बुद्ध्या सा नमेद्देवी मुदान्विता । अतस्तच्चन्दनं देवि ! न धारयति
 कश्चन । तत्पत्रं तत्प्रसूनं वा कदापि धारयेन्न हि । विल्वमूले
 महेशानि ! प्राणांस्त्यजति यो नरः । रुद्रदेहो भवेत्तत्प्र-
 पापकोटियुतोऽपि सन् ॥ पुरश्चरणरसोक्तासे दशमपटले ॥ विल्व-
 वृक्षस्तथा देवि ! भगवान् शङ्करः स्वयम् । विल्ववृक्षतले स्थित्वा
 यदि प्राणांस्त्यजेत् सुधीः । तत्क्षणाच्चोक्षमाप्नोति किं तस्य
 तीर्थकोटिभिः । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तिष्ठन्ति शक्तिहेतवे ।
 विल्ववृक्षतले स्थानं यदि विष्ठादिपूरितम् । तदेव शाङ्करं क्षेत्रं
 सर्वतीर्थमयं सदा । सर्वपौठमयं तत्त्वं सर्वदेवमयं सदा ।
 न त्यजेच्छाङ्करं क्षेत्रं न च गङ्गां त्यजेत् प्रिये ! । समीपे स च
 चार्वङ्गि ! विल्ववृक्षो यदि प्रिये ! । काशीपुरसमं तत्तु तत्र
 प्राणांस्त्यजेद् यदि । किं तस्य कोटितीर्थेन काशीकासेन किं
 प्रिये ! ॥

अथ विल्वमूले वेदीकरणम् ॥ तत्रैव मध्यमखण्डे द्वादश-
 पटले ॥ वेदिकां रचयित्वा तु स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । ईशानाद-
 ग्निकोणान्तं ततोऽपि राक्षसं विशेत् । राक्षसाद्वायुकोणान्तं
 यावद्वायोर्महेशकम् । चतुर्दिक्षु समां भूमिं गृह्णीयाद्योगहेतवे ।
 अष्टहस्तं भवेद्द्वैर्घ्यं विस्तृतञ्च तथा प्रिये ! । ऊर्ध्वं वितस्तिमानां
 स्याद् वेदिकां परिशोभिताम् । तद्दृष्ट्वं तु महावेदीं समन्तात्
 षोडशं करम् । पूजास्थानन्तु तद्विद्धि सर्वत्रायं विधिः प्रिये ! ।
 सर्वत्रेति श्मशानादौ तत्प्रमाणमपि तत्रैव ॥ विल्वमूले श्म-
 शाने वा प्रान्तरेऽश्वत्थमूलके । नदीतीरे देवगर्भे गङ्गागर्भे च तु-
 ष्यथे । उज्जटे पर्वते वापि उद्याने पुष्पसंयुते । शिवालये
 शून्यगृहे अथवा निजमन्दिरे । वेश्यागृहे लतास्थाने गोष्ठे
 वान्यतमेऽपि वा ॥ इति । रुद्रजामलेऽपि वेदिकाप्रमाणमुक्तं
 यथा ॥ अश्वत्थविल्वमूले वा वेदीं कुर्याद्विधानवित् । उत्तराशा-

मुखो भूत्वा वेदिकां रचयेत् सुधीः । ईशाने सूत्रपातः स्यादग्नौ
च स्तम्भरोपणम् । नवधा सदनक्षेत्रं पूर्ववत् कारयेत्ततः । चतु-
स्रबोद्धतं तन्तु न्यूनाधिकं न कारयेत् । क्षेत्रस्य यावद्विस्तारः
प्रस्थश्च तावदेव हि । अष्टहस्तमितं कुर्यादायामं तत्तदेव हि ।
मूलायामं परित्यज्य अष्टहस्तमिहेत्यते । ऊर्ध्वं वितस्तिमानां
हि वेदीं कुर्यात् सुलक्षणाम् । चतुर्हस्तमितां वेदीं दैर्घ्यं मध्ये तु
तन्त्रवित् । तदेव पूर्ववत् सर्वं सूत्रञ्च स्तम्भरोपणम् । आयाम-
दैर्घ्यं तद्वदे कर्तुर्हस्तश्चतुश्चतुः । तद्वदेव हस्तमात्रं परित्यज्य
सुसाधकः ॥

अथ पञ्चवटीस्थापनविधिः प्रसङ्गाद्विहितः ॥ तथा च स्कन्द-
पुराणे ॥ अश्वत्थो विल्ववृक्षश्च वटो धात्री अशोककः । वटीपञ्च-
कमित्युक्तं स्थापयेत् पञ्चदिक्षु च । अश्वत्थं स्थापयेत् प्राचि
विल्वमुत्तरभागतः । वटं पश्चिमभागे तु धात्रीं दक्षिणतस्तथा ।
अशोकं वज्रदिक् स्थाप्य तपस्यार्थं सुरेश्वरि । मध्ये वेदीं चतु-
र्हस्तां सुन्दरीं सुमनोहराम् । प्रतिष्ठां कारयेत्तस्याः पञ्चवर्षो-
त्तरं शिवे । अनन्तफलदात्री सा तपस्या फलदायिनी ।
इयं पञ्चवटी प्रोक्ता बृहत्पञ्चवटीं शृणु । विल्ववृक्षं मध्यभागे
चतुर्दिक्षु चतुष्टयम् । वटवृक्षं चतुष्कोणे वेदसंख्यं प्ररोपयेत् ।
अशोकं वर्तुलाकारं पञ्चविंशतिसंमितम् । दिग्विदिक्षामलक-
क्षेत्रे एकैकं परमेश्वरि । अश्वत्थञ्च चतुर्दिक्षु बृहत्पञ्चवटी
भवेत् । यः करोति महेशानि । साक्षादिन्द्रसमो भवेत् ।
बृह लोके मन्त्रसिद्धिः परे च परमा गतिः ॥ इति हेमाद्रौयव्रत-
खण्डधृतवचनानि च ॥

अथ विल्वपत्रमाहात्म्यम् ॥ मत्स्यसूक्ते षोडशपटले ॥
तत्त्वं श्रीफलपत्रस्य परमं पदमव्ययम् । पत्रं मनोहरं दिव्यं
रुद्रविष्णुपितामहाः । पञ्चाशत्तत्त्वसंयुक्तं चतुर्वर्गमयं सदा ।

५६३
वि-
मपि
था-
रूपः
सी
पी ।
हार-
गोन-
गई-
ला-
शो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्द्रः
त्यं
क-
यत्
भ-
स-
ल-
ह-
॥

चतुर्वर्गमयं पत्रं धर्मार्थकाममोक्षदम् । विस्वपत्रञ्च देवेशि !
 वर्णितुं नैव शक्यते । जटात्रयसमं पत्रं विस्वपत्रस्य पार्वति ! ।
 जटात्रयं महेशानि ! सर्वतत्त्वमयं सदा । आत्मतत्त्वं महेशानि !
 विद्यातत्त्वं तथापरम् । परतत्त्वं महेशानि ! अतिगुह्यं मनो-
 हरम् ॥ तथा ॥ विस्वपत्रं महेशानि ! कर्बोरं तथा प्रिये ! ।
 तथापराजितापुष्पं दुर्लभं शिवपूजने । तथा च शक्तिपूजायां
 कोटिपूजाफलं लभेत् । एतत्पुष्पप्रदानेन यत् फलं लभते नरः ।
 माहात्म्यं तस्य देवेशि ! वर्णितुं नैव शक्यते । एषां मध्ये
 वसेद्ब्रह्मा एषां मूले जनार्दनः । एषां मध्ये वसेद्बुधः सर्व-
 देवाः स्थितास्तले । सर्वं ज्योतिर्मयं देवि ! विस्वपत्रञ्च
 पार्वति ! ॥ पञ्चमपटले ॥ विस्वपत्रं महेशानि ! ब्रह्मविष्णु-
 शिवात्मकम् । गुणत्रयात्मकं देवि । त्रिपत्रं सर्वकामदम् ॥
 योगिनीतन्त्रे ॥ विस्वपत्रस्य माहात्म्यं देवानामपि दुर्लभम् ।
 यो दद्याद्विस्वपत्रञ्च शिवायै शङ्कराय च । सदाशिवसमी भूत्वा
 स गच्छेद्ब्रह्ममन्दिरम् । शिवपूजायां विस्वपत्रदाने विशेषस्तु
 त्र्योतत्त्वचिन्तामणिष्टतत्रिविक्रमसंहितायाम् ॥ अक्षिन्नमूलं
 तत् पत्रं यो दद्याच्छङ्करार्चने । तस्य पूजा वृथा देवि ! मृतो
 नरकमाप्नुयात् ॥ इति ॥ मातृकाभेदतन्त्रे द्वादशपटले ॥ स्वर्ण-
 पुष्पसङ्क्षेपेण यत् फलं लभते नरः । तस्माद्ब्रह्मगुणं पुण्यं
 भग्नैकविस्वपत्रके । भग्नैकविस्वपत्रस्य सहस्रैकेन भागतः ।
 मेरुतुल्यसुवर्णेन तत् फलं न हि लभ्यते । एवञ्च लिङ्गार्चन-
 तन्त्रे द्वादशपटलोक्तपूर्वलिखितक्रीटादिदोषवर्जितकोमलमधुर-
 पत्रत्रययुतविस्वपत्रदानवचनं तत् फलातिशयार्थम् ॥ इति
 विस्वपत्रमाहात्म्यम् ॥

अथ रुद्राक्षमाहात्म्यम् ॥ योगसारे द्वितीयपरिच्छेदे ॥
 श्रीमहादेव उवाच ॥ इदानीं देवदेवेशि ! मालानां धारणं

शुभम् । रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं वद मे परमेश्वरि । ।
 श्रीदेव्युवाच ॥ शिखायां हस्तयोः कण्ठे कर्णयोश्चापि यो नरः ।
 रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या शिवलोकमवाप्नुयात् । नववक्त्रान्तु रुद्राक्षं
 धारयेद्दामबाहुना । दक्षबाहौ तथा वक्त्रे । धारयेद्यत-
 मानसः । शिखायां दशनं धार्यं कण्ठे च पञ्चविंशतिम् ॥
 कर्णयोः पञ्चमं कृत्वा हृदि चाष्टोत्तरं शतम् । नाभौ सप्त च रु-
 द्राक्षं धारणान्मोक्षभाग्भवेत् । रुद्राक्षधारणाद्देव ! नरो देव-
 त्वमाप्नुयात् ॥ शिखायां दशनं द्वात्रिंशत्परिमितम् ॥ तथा ॥
 रुद्राक्षं धारयेन्नित्यं भद्राक्षञ्च सुरेश्वर ! । रुद्राक्षस्य महाबाहो ।
 माहात्म्यं शृणु यत्नतः । एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपो-
 हति । श्रवणं तं प्रतिस्तीतो वक्त्रेः स्तम्भं करोति च । द्विवक्त्रो हरः
 गौरी च गोबधायघनाशकृत् । त्रिवक्त्रोऽग्निर्जगन्नाथः पापरा-
 श्विनाशकृत् । तूलराशिं यथा वल्किर्भस्मसात् कुरुते हरः । ।
 त्रिवक्त्रोऽपि च रुद्राक्षस्तथा दहति क्लिष्टिषम् । चतुर्वक्त्रस्तु
 धाता स्यात् नरहत्यां व्यपोहति । पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्या-
 गमपापनुत् । षड्वक्त्रो यो गुहः साक्षाद् गुरुहत्यां व्यपोहति ।
 सप्तवक्त्रो ह्यनन्तश्च स्वर्णस्तेयाघनुत् सदा । विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात्
 सर्वानृतविनाशकृत् । भैरवो नववक्त्रः स्यात् शिवसायुज्यदायकः ।
 दशवक्त्रः स्वयं विष्णुर्भूतप्रेतपिशाचहा । एकादशमुखो रुद्रो
 नानायज्ञफलप्रदः । द्वादशास्यो भवेदर्कः सर्वतौर्यफलप्रदः ।
 त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः । चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो
 वंशोज्जारकरः स्मृतः । यथोक्तं तेऽपि रुद्राक्षे तथेन्द्राक्षे प्रकी-
 र्त्तितम् । भद्राक्षेऽपि सुरश्रेष्ठ । तद्गुणं परिकीर्त्तितम् । एतेषां
 संस्कारस्वप्नोष्ठीगरिष्ठक्षणानन्दागमवागीशेन स्वकृततन्त्र-
 सारि लिखितमतोऽत्र न प्रयोजनम् । एकवक्त्रादिचतुर्दशवक्त्रप-
 र्यन्तानां प्रमाणं तेनापि लिखितम् । किन्तु तत् पौराणिकं

५६३

वि-
मपि
शा-
रूपः
सी

पी ।
वार-
तीन-
ार्ध-
ला-
मो-
ज-
ति-
ला-
सते

ल-
न्द्रः

त्यं

क-

यत्

भ-

म-

पद्मपुराणस्कन्दपुराणमिति कृत्वा लिखितं तेन रुद्राक्षस्य
प्रमाणं तन्त्रशास्त्रे नास्तीत्येकदेशदर्शिनः सन्दिहन्ति अतः
प्रमाणानि लिखितानीति ॥ इति रुद्राक्षमाहात्म्यम् ॥

अथ संविदाप्रकरणम् ॥ समयाचारतन्त्रे प्रथमपटले ॥
समया गोपनीयानां सदा गोप्या प्रकीर्तिता । विधिना समयां
देवि ! ये तु भुञ्जन्ति साधकाः । ते नराः स्वर्गता नित्यं भोगं
कृत्वा सदा भुवि । समयां गोपयेद्देवि ! शिष्येभ्योऽपि च
सुन्दरि ! विना च समयां देवि ! कथं कर्माणि साधयेत् ।
विनापि समयां पूजा न कुत्रापि शुभोदया ॥ आचारसारे
संविक्तव्ये सप्तमपटले ॥ योगिनां किं सदा सेव्यं कौलानां
बलपुष्टिदम् । मनश्चाञ्चल्यहरणं किं समाधिफलप्रदम् । इत्या-
दिदेवीप्रश्नानन्तरं बलनामासुरादिन्द्रादीनां पराजयमुक्त्वा
शक्रादीनां कैलासगमनानन्तरं स्तुतिकरणञ्च प्रस्तुत्य शिव-
वाक्यम् ॥ शृणु शक्र ! महाभाग ! सर्वमेतद्वदामि ते । त्रैलोक्य-
विजया ख्याता नामानि प्रथमं शृणु ॥ कथयामि तव स्नेहा-
दतिगोप्यानि सर्वतः । त्रैलोक्यविजया सिद्धा सिद्धिः सा सिद्धि-
मूलिका । ज्ञानं संवित् संविदा च श्यामा भङ्गा रसायना ।
योगदा योगिनी सेव्या योगमार्गप्रकाशिनी । ब्रह्माणी
ब्रह्मसम्भूता ब्रह्मानन्दप्रदायिनी । वाग्देवतावशकरी विजयू-
र्विजयप्रदा । समाधिवरदाऽज्ञाननाशिनीत्येकविंशतिः ।
श्वेतरक्तकृष्णपीतपुष्पभेदाश्चतुर्विधाः । श्वेतपुष्पा ब्राह्मणी सा
क्षत्रिया रक्तपुष्पिका । पीतपुष्पा तु वैश्या स्याच्छूद्रा तु रक्त-
पुष्पिका । आहृत्य पत्राख्येतासां सवीजानि प्रयत्नतः । भर्जि-
तानि घृतं नैव चूर्णितानि शिलातले । त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी
कुष्ठधन्याकसैन्धवम् । शठी तालीशपत्रञ्च कटुकं नागकेशरम् ।
यवान्नीहयमेथीञ्च जीरकद्वयमेव च । एतानि समभागानि

रौद्रशुक्लानि चूर्णयेत् । स्वर्णादिपात्रे पुरतः स्थापयित्वा ततः
क्रमात् । चतुर्भिर्मनुभिस्तस्याः शोधनं समुपाचरेत् । निवेश्य तत्र
पानोयं यथाविधि विशोधयेत् । ओं संविदेत्यादि । ओं ब्रह्माण्यै
नमः स्वाहा क्षत्रियां शोधयेत्ततः । ओं सिद्धिमूलक्रिये ! देवी-
त्यादि । ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा वैश्यां विशोधयेत्ततः । ओं
अन्नानेन्दुनेत्यादि । क्लीं वैश्यायै नमः स्वाहा शूद्रां विशोधये-
त्ततः । ओं नमस्यामोत्यादि । क्लीं शूद्रायै नमः स्वाहा शूद्रावि-
शोधने मनुः ॥ महानिर्वाणतन्त्रे पञ्चमोक्तासे ॥ बह्ववोरासेनो
मन्त्रो विजयां परिशोधयेत् ॥ मुण्डमालातन्त्रे ॥ अस्य श्रीवा-
ग्वादिनोमन्त्रस्य ब्रह्मर्षिर्गायत्रीच्छन्दो वाग्वादिनी देवता ऐं
वीजं क्लीं कीलकं सौः शक्तिर्वाग्वादिनी प्रौढ्यर्थं मम सिद्धये जपे
विनियोगः ॥ अङ्गन्यासकरन्यासी कृत्वा चैव यथाविधि । ततो
वै संविदाचूर्णं संस्तुत्य मन्त्रमुच्चरन् ॥ तथा ॥ गुरोर्मुखाब्जमन्त्रं
नित्यं जपति साधकः । तेनैव विधिना मन्त्रो समयामभिमन्त्र-
येत् । सप्तधामन्त्रितं कृत्वा गुरुं सर्वं विभावयेत् । गुरुं शिवं
तथा देवीं निवेद्य चैव भक्षयेत् ॥ महानिर्वाणतन्त्रे ॥ तारं
मायां समुच्चार्य अमृते ! अमृतोद्भवे ! । अमृतवर्षिणि ! ततोऽमृ-
तमाक्षयेद्विधा । सिद्धिं देहि ततो ब्रूयादमुकं मे ततः परम् ।
वशमानय ठडन्वं संविदाशोधने मनुः । मूलमन्त्रं सप्तवारं
प्रजप्य विजयोपरि । आवाहन्यादिमुद्राश्च धेनुयोनीः प्रदर्शयेत् ।
गुरुं पञ्चे सहस्रारि यथा सङ्केतमुद्रया । त्रिधैव तर्पयेद्देवीं हृदि
मूलं समुच्चरन् । वाग्भवं वदयुग्मञ्च वाग्वादिनि ! पदं ततः ।
मम जिह्वार्ये स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि ! । स्वाहान्तेनैव
मनुना जुहुयात् कुण्डलोमुखे । शक्रादिजयस्त्रा । ऐं वद
वद क्लीं वाग्वादिनि ! मम जिह्वार्ये स्थिरीभव सर्वसत्त्वव-
शङ्करि ! स्वाहा । सप्तधामन्त्रितं कृत्वा गुरुञ्चैव विभाव्य च ।

५६३
वि-
मपि
पा-
रूपः
परी
गी ।
सार-
तिन-
पद-
चा-
सो-
ज-
ति-
सा-
सवे
ल-
रः
व्यं
क-
वत्
भ-
म-
स-
र-
।

संविदं भक्षयेद्देवि ! साधकः स्थिरमानसः । अथवानेन
 मन्त्रेण कल्पयेत् परमेश्वरि ।। श्रीं जय जय विजय विजय
 परं ब्रह्मस्वरूपिणि ।। सर्वजनं मे वंशमानय हुं फट् स्वाहा ।
 इत्यनेन च पीत्वा तु भक्षयित्वा कुलेश्वरि ।। इष्टमन्त्रञ्च सञ्जप्य
 सप्तधा तत्त्वमुद्रया ॥ आचारसारे तु विशेषो यथा ॥ श्रीं
 अमृतं ! अमृतोद्भवे ! अमृतवर्षिणि ! पदं ततः । अमृतमाकर्षय
 दन्तं सिद्धिं देहि ततः परम् । अमुकं मे ततो ब्रूयाद्वंशमानय
 तत्परम् । द्विष्ठान्तोऽयं मनुः प्रोक्तश्चतुष्काणाञ्च मन्त्रेण ॥
 आनन्दभैरवानन्दभैरव्यै तत्र मन्त्रयेत् । शिवसोममाहकान्तं
 कालभूवरुणालयम् । वामकर्णसमायुक्तं वायुमर्द्धेन्दुसंयुतम् ।
 आनन्दभैरवायिति शिखामन्त्रं ततो वदेत् । आनन्दभैरवस्याय-
 मानन्दभैरवं शृणु । पूर्ववद्बीजमालिख्य धेनुयोनिस्ततः परम् ।
 दिग्बन्धनं छोटिकाभिस्तालद्वयपुरःसरम् । दिव्यदृष्ट्या ततः
 पाणिंघातैर्विघ्नान् विघातयेत् । सप्तधा तर्पयेद्ब्रह्मरन्ध्रे जप-
 क्षनुं गुरुम् । निजं पद्मे सहस्रारं तथा सङ्केतमुद्रया । त्रिवारं
 तर्पयेद्भक्त्या सकृदपि निजिच्छया । परमाख्यं गुरुं तत्र परा-
 परगुरुं ततः । तत्रैवानन्दभैरव्यै तर्पयेत्तु मनुः स्मरन् । हृदये
 तर्पयेद्देवो मूलेन तत्त्वमुद्रया । संविदया त्रिः सकृद्वै तिलमुद्ग-
 प्रमाणया । ऐं वद वद पदं ब्रूयाद्वाग्ववादिनि ! पदं ततः ।
 मम जिह्वाग्रे स्थिरोभव वदेत् सर्वपदं ततः । सत्त्ववशङ्करि !
 स्वाहा त्रिः प्रोच्य जुहुयामुखे । मुखामृतेन दिव्येन स्त्रीकु-
 र्यात् संविदां ततः ॥ समयाचारतन्त्रे प्रथमपटले ॥ अथा-
 तः सम्प्रवक्ष्यामि समयस्तोत्रमुत्तमम् । यत् श्रुत्वा सिद्धिमूली
 सा भक्षिता फलदा भवेत् । श्रीं संविदे ! ब्रह्मसम्भूते ! ब्रह्मपुत्रि !
 सदानवे ।। भैरवाणान्तु दृश्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा । नृणाञ्च
 जननो नाथा वेशालङ्कृतमण्डला । भवसन्तापनिर्वापः सुधियां

त्वं महानिधिः । ओं सिद्धिमूलोक्तिये ! देवि ! ह्रीन्बोध-
प्रबोधिनि ! । राजप्रजावशङ्करि ! शत्रुकण्ठविशूलिनि ! । ओं
अज्ञानेन्धनदीप्तान्नेर्ज्वालाग्नेर्ज्ञानरूपिणि ! । आनन्दस्या-
हुतिं मत्वा सम्यक् ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥

अथ आनन्दमयोध्यानम् ॥ दण्डाधिरूढपरिपूरितमोक्ष-
भोगार्तिमन्दुप्रसन्नवदनां जयदानशीलाम् । आराधयामि बहु-
शत्रुपराजयित्रीं विश्वेश्वरीं त्रिभुवने विजयेति देवौम् । ध्या-
त्वेवं विजयामेतामानन्दाख्यां स्तवं पठेत् । आनन्दनन्दनीं
वन्दे सदानन्दपदद्वये । । आनन्दकदलीं वन्दे स्वच्छन्दबोधरू-
पिणीम् । कलयति कवितां महतीं कुरुते स्वार्थदर्शनं पुंसाम् ।
अपहरति दुरितनिलयं किं किं न करोति संविदुल्लासः ॥
संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी । भक्षिता भवनाशाय
निर्गन्धा बोधरूपिणी । सुसंवित् शूलिनी देवी विजया
संविदाङ्गुरा । वैष्णवौ तुलसी तुङ्गा तेजोरश्मोरसेश्वरी ।
विमर्षा खेतवह्वैद्या लक्ष्मीदेवी महोदरी । सप्तया मोहिनी
चैव सिद्धमूलो महोदरी । मातुलानी सिद्धिरूपा सिद्धिधात्री
सरस्वती । वाग्वादिनौ सदा नित्या आनन्दपददायिनी ।
यानि चैतानि नामानि सेवयेत् सिद्धिमूलिकाम् । समाप्नोति
परां विद्यां भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दति । पाण्डित्यञ्च कवित्वञ्च
मन्त्रसिद्धिञ्च विन्दति ॥ इति विजयास्तोत्रम् ॥

अथ द्रव्यविशेषेण विजयाभक्षणफलम् ॥ आचारसारे ॥
दुग्धाभ्युद्यतमाध्वीकृतसैन्धवैर्लवणेन वा । सितया तु गुडैनापि
पक्वेन कदलेन वा । यद्यद्वा मधुरं द्रव्यं पक्वास्त्रपनसादिकम् ।
तेन सर्वेण विजया स्त्रीकार्य्या सर्वसाधकैः । दुग्धयोगेन विजया
केवलानन्दवर्जिनी । महातेजस्वरी चक्षुर्दोषादिबिनिवारिणी ।
सा पुनर्जलयोगेन सर्वाजीर्णविनाशिनी । घृतेन मेधामाधत्ते

वाग्देवोवशकारिणी । पतितामुत्तमां धत्ते धिषणाञ्जाति-
निर्मलाम् । कायदोषानशेषांश्च मधुना सह नाशयेत् । सैन्धवेन
महावज्जिं प्रदद्याल्लवणेन च । सितयाथ गुडेनापि शूलाम्ल-
पित्तनाशिनी । अतिसारोपशमनी श्वासकासप्रमर्दिनी । आम-
वातसमुद्भूतग्रहणोविनिवारिणी । सर्वे वा मधुसंयुक्ता सर्वाभय-
विनाशिनी । बलपुष्टिप्रदा चैव मधुरस्वरदायिनी । ज्ञान-
विज्ञानदाक्षिण्यशीलमार्गप्रकाशिनी । बहुना किमिहोक्तेन
केवला चित्स्वरूपिणी ॥ तथा । संविदासवयोर्मध्ये संविदेव
गरीयसी । संवित्प्रयोगस्तेनेह कर्त्तव्यः साधकोत्तमैः ॥

अथ संविदाभक्षणकालः ॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं
पञ्चकालकम् । तोलकं वा तदङ्गं वा तोलकद्वयमेव वा । तन्न्यूना-
धिकमात्रा वा यथा भवति नित्यशः । न्यूनाधिकायां मात्रायां
फलं तत्तत् प्रजायते । तस्मात् प्रमाणविदुषा कर्त्तव्या सिद्धिमि-
च्छता ॥ समयाचारतन्त्रे ॥ ब्राह्मेण मुहूर्त्ते उत्थाय भक्तितः पाप-
नाशिनी । तथा सूर्योदये जाते मध्याह्ने भक्षिता तथा ।
तथापराह्णसमये विधिवत् सर्वसाधिनी । अर्द्धरात्रे विशेषेण
वाञ्छितार्थफलप्रदा । विनापि समयां देवि ! जपपूजादिकं
कथम् । न च सिद्धिमवाप्नोति अभिचाराय कल्पते । अप-
मृत्युहरां नृणां रोगशोकविनाशिनीम् । दुष्टशत्रुप्रशमनीं सर्व-
लोकानुरञ्जिनीम् । सिद्धयो ह्यणिमाद्याश्च हस्ते तस्य व्यव-
स्थिताः । कायिकं वाचिकञ्चापि मानसं यच्च दुष्कृतम् । एतत्
सर्वं क्षयं याति ब्रह्महत्यादिकं तथा । स शिवः स च संयोगी
स संयुक्तो यती तथा । स एव मर्त्यः स्वर्गस्थः समया येन पालिता ।
समया भक्षिता येन समया येन धारिता । समया पालिता येन
रहितः स च पातकैः । भक्षयित्वा च समयां यं यं मन्त्रं जपे-
न्नरः । स सम्यक् फलमाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ! । विना च

समयां देवि । मन्त्रं जपति नित्यशः । अल्पायुः स भवेत् सद्यो
देवतां कोपयेद् ध्रुवम् ॥ कुञ्जिकातन्त्रे सप्तमपटले ॥ समयाच्च
विना देवि ! न सिद्धः स्यात् कदाचन । तस्माच्चैव प्रयत्नेन गृह्णी-
यान्नात्र संशयः ॥

अथ विजयाधूमपानं योगसारे प्रथमपरिच्छेदे ॥ अथ
वान्यप्रकारेण क्षुब्धवृत्तिर्विधीयते । प्रत्यहं विजयाधूमं ब्रह्म-
रन्ध्रेण मन्त्रवित् । पानं करोति योगेशः क्षुब्धाशी जायते ध्रुवम् ।
ब्रह्ममन्त्रमहं वक्ष्ये येन क्षुब्धाशनं भवेत् । संवर्त्तयुक् चन्द्र-
वह्निभौतिकी विन्दुसंयुतौ । एवं वीजत्रयं देव ! समुच्चार्य
कुलेश्वर ! । अन्यूनमनुनानेन विजयाधूमशोधनम् । शोधयित्वा
पिवेद्भूमं न दोषो विद्यते हर ! । मन्त्रस्तु क्षौं क्षौं क्षौं ॥ योग-
सारे ॥ अथवान्यप्रकारेण क्षुब्धवृत्तिर्विधीयते । हविस्थाशी
भवेदादौ पश्चाज्जपति मातृकाम् । पश्चादष्टतं प्रभोक्तव्यं
मनुनानेन शङ्कर ! । हसौर्वीजेन मनुना भक्षयेत् साधकोत्तमः ॥
इति विजयाधूमपानम् ॥ इति विजयाप्रकरणम् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां पञ्चमे भक्तिकाण्डे

शिवप्रकरणकथनरूपस्तुतीयः

परिच्छेदः ।

अथ शालग्रामोत्पत्तिप्रकारः ॥ वीरमित्त्रोदयधृतकार्तिक-
माहात्म्ये तूपाख्यानं श्रूयते यथा ॥ काञ्चिद्देशिरा नाम महा-
मुनिर्गङ्गातीरेऽत्यग्रं तपश्चकार । तत्तुस्तत्तपसा भीतः शक्रो-
मञ्जुवागित्यभिधानां काञ्चिद्देवकन्यां तत्तपोविघ्नार्थं प्रेरित-
वान् । ततः सा महेन्द्रप्रेषिता वेदशिरसस्तपोविघ्नं चकार ।
ततः क्रुद्धेन तेन मुनिना त्वं नदी भवेति सा शप्ता । ततस्तया
महता प्रणिपातेन विन्नापितो मुनिस्तामित्यबोधत् । नदी
भूत्वा जनार्दनं स्वीदरे धारयन्ती त्वं कृतकृत्यं जनं कुरु ।

शिलारूपी त्वयि जनार्दनो जनिष्यति । त्वद्यशः प्रसवस्त्वेको
 मुक्तिदाता नृणामिह । सैषा वै मञ्जुवाग्देवी गण्डकी
 सरितां वरा । तस्यां विष्णुः शिलारूपी मुनिशापादवभूव ह ॥
 स्कन्दपुराणे गण्डकीतपस्थानन्तरम् । ततः प्रसन्नो भगवान्
 चिन्तयामास गोपते । किं याचितं निम्नगया नित्यं मत्समक-
 क्षया । दास्यामि याचितं येन लोकानां भवमोक्षणम् । इत्येवं
 कृपया देवो निश्चित्य मनसा स्वयम् । गण्डकीमगमन्नातः ।
 शृणु देवि वचो मम । शालग्रामशिलारूपो तव गर्भगतः सदा ।
 स्थास्यामि तव पुत्रत्वे भक्तानुग्रहकारणात् । मत्सन्निध्या-
 त्तदानीं त्वमतिश्रेष्ठा भविष्यसि । दर्शनात् स्पर्शनात् स्नानात्
 पानाच्चैवावगाहनात् । हरिष्यसि महापापं वाङ्मनकायः-
 सन्धवम् । एवं दत्त्वा वरान् देव्यै तत्रैवान्तरधीयत । प्राति-
 तिष्ठामि क्षेत्रेऽस्मिन् शालग्रामः सलाञ्छनः । अहञ्च भगवान्
 विष्णुर्भक्तेच्छामात्रविग्रहः ॥ वराहपुराणे च ॥ वराह उवाच ॥
 शृणु तत्त्वेन मे देवि ! यन्मां त्वं परिपृच्छसि । कथयिष्यामि
 तं गुह्यं शालग्राममिति स्मृतमिति धरणिं प्रत्य पक्रम्य
 शालग्रामतीर्थस्य तत्र विषयाणां गण्डक्यादिनदीनां सोमेशादि-
 लिङ्गानाञ्च प्रशंसामुक्ता । सालङ्कायनकोऽप्याशु क्षेत्रे तस्मिन्
 परे मम । शालग्रामे महातीर्थे आस्थितः परमं तपः ॥ इति ॥
 विष्णुधर्मोत्तरादौ तु ॥ सालङ्कायनको नाम देवेश !
 भगवान् मुनिः । किं चक्रार तपः कुर्वन् तव क्षेत्रे विमुक्तिदे ।
 इति पुनर्धरणा पृष्टो वराह उवाच ॥ अथ दीर्घेण कालेन स
 ऋषिः संशितव्रतः । तप्यमानो यथान्यायं ददर्श शालमुत्तमम् ।
 अभिन्नमतुलच्छायं विशालं पुष्पितं तथा । ऋषिः क्षीणः परि-
 श्रान्तः सालङ्कायनकोऽङ्गुतम् । पश्यते च पुनः शालं शुभानां
 शुभदर्शनम् । ततो दृष्ट्वा महाशालं परिश्रान्तो यदा मुनिः ।

विश्रामं कुर्वते तत्र द्रष्टुकामोऽथ मां तदा । शालस्य तस्य
पूर्वेण स्थितः पञ्चाङ्मुखो मुनिः । नानापापविमूढात्मा शक्तो
द्रष्टुं न मामभूत् । ततः पूर्वेण पार्श्वेन तस्य शालस्य सुन्दरि ।।
वैशाखमासद्वादश्यां महर्षेणमुपागतः । दृष्ट्वा मां तत्र स मुनि-
स्तपस्वी संशितव्रतः । तुष्टाव वैदिकैः सूक्तैः प्रणम्य च पुनः
पुनः । ततोऽहं स्तूयमानो वै सूक्तमुख्येन सुन्दरि ।। प्राप्तश्च
शैलरूपेण गण्डकीमतिपुण्यदाम् । इत्यादिप्रमाणात् शाल-
ग्रामशब्दो दन्त्यादिस्तालव्यादिश्चेति ज्ञेयम् ॥

अथ शालग्रामशिला ॥ ब्रह्मवैवर्ते प्रकृतिखण्डे जनविंश-
त्यध्याये ॥ अहञ्च शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ । अधिष्ठानं
करिष्यामि भारते तव सुव्रत ।। वज्रकीटाश्च क्रमयो वज्रदंष्ट्राश्च
तत्र वै । तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ॥

इति शिलाचक्रोत्पत्तिप्रकारः ॥

गौतमीये ॥ बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि कृष्णशिलां लभेत् ।
गोप्यदेन च चिह्नेन जनुस्तेन समाप्यते ॥ कृष्णशिलेति
शालग्रामशिलोपलक्षणम् ॥ महान्तस्तु कृष्णमूर्त्तिशालग्राममा-
चक्षानुयोगलब्धेः फलमेतदित्याहुस्तत्र मनोरमम् । शालग्रामा-
न्तरस्यानुद्योगलाभे फलान्तरादर्शनात् सर्वत्रैवैतत् फलम् ।
लभेदित्यनेनानुद्योग इति लब्धम् । इत्यनुद्योगिन चक्रलाभ-
फलम् ॥ स्कन्दपुराणे ॥ स्निग्धा कृष्णा पाण्डुरा च पीता नीला
तथैव च । रक्ता रूक्षा च वक्रा च महास्थूला त्वलाञ्छिता ।
कपिला कर्कुरा भग्ना बहुचक्रैकचक्रिका । वृहन्मुखी वृहच्चक्रा
लम्बचक्रधरा पुनः । बहुचक्रायवा काचिद्भग्नचक्रा त्वधोमुखी ।
आसां वर्णादिभेदेन गुणदोषावपि तत्रैव ॥ स्निग्धा सिद्धिकरी
देवी कृष्णा कीर्त्तिं ददाति च । पाण्डुरा पापदहनी पीता पुत्र-
फलप्रदा । नीला सन्दिशते लक्ष्मीं रक्ता रोगप्रदायिनी । रूक्षा

चोद्वेगदा नित्यं वक्रा दारिद्र्यदायिका । स्थूला निहन्ति
 चैवायुर्निष्फला स्यादलाञ्छिता । कपिला कर्बुरा भग्ना भग्न-
 चक्रैकचक्रिका । बृहन्मुखी बृहच्चक्रा लग्नचक्राय वा पुनः ।
 बह्वचक्राय वा या स्याद्भग्नचक्रा त्वधीमुखी । पूजयेद् यः प्रमा-
 देन दुःखमेव लभेत्तु सः ॥ प्रकृतिखण्डे ॥ कृत्वाकारे भवेद्वाच्यं
 वर्तुले च महाश्रियः । दुःखञ्च शकटाकारे शूलाग्रं मरणं ध्रुवम् ।
 विक्षतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च । लग्नचक्रे भवे-
 द्वाधिर्विदौर्णं मरणं ध्रुवम् ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ त्रिकोणा विषमा
 चैव छिद्रा भग्ना तथैव च । अर्धचन्द्राकृतिर्या तु पूजार्हा न
 भवेत् प्रिये ॥ फलं नोत्पद्यते तत्र पूजितायां कदाचन । चक्र-
 मन्त्रेण सा पूज्या कृष्णमन्त्रेण वा पुनः ॥ अग्निपुराणेऽपि ॥
 तथा व्यालमुखी भग्ना विषमा बह्वचक्रिका । विकारावर्तना-
 भिर्या नारसिंही च वा शिला । कपिला विभ्रमावर्ता रेखा-
 वर्त्ता तथैव च । दुःखदा सा तु विज्ञेया सुखदा न कदाचन ।
 त्रिगुणा श्यामा तथा युक्ता अमया समचक्रिका । योनिमूर्त्ति-
 रनन्तास्या गम्भीरा सम्पुटा तथा । सूक्ष्ममूर्त्तिरमूर्त्तिश्च
 सम्मुखा सिद्धिदायिका । धात्रीफलप्रमाणा या करिणोभय-
 सम्पुटा । पूजनौया प्रयत्नेन शिला चैतादृशी शुभा । पूजया
 फलमाप्नोति इह लोके परत्र च ॥ इति । चक्रशुभाशुभफलम् ॥
 यत्तु ब्रह्मपुराणम् ॥ खण्डितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वं भिन्नं विभेदि-
 तम् । शालग्रामशिलाभूतं किञ्चिद्दोषावहं न हि ॥ इति वचनं
 तत् स्वीयेष्टचक्रस्तुतिपरम् । अतएव स्कन्दपुराणे ॥ खण्डितं
 स्फुटितं लग्नं शालग्रामे न दोषदम् । इष्टा तु यस्य या मूर्त्तिः
 स तां यत्नेन पूजयेत् ॥ इति रुद्रवाक्यम् ॥ दोषाश्चैते सकामार्च-
 नविषया इति तु भगवद्भक्तिविलासकृत् वीरमित्रोदयश्च । इष्ट-
 मूर्त्तिपूजायां दोषाभावः । पुनः स्कान्देऽप्युक्तं यथा । चक्रं वा

केवलं तत्र पद्मेन सह संयुतम् । केवला वनमाला वा हरि-
लक्ष्म्या सह स्थितः । मुख्याः स्निग्धादयस्तत्रामुख्या वक्रादय-
स्तथा । मुख्याभावे त्वमुख्यापि पूजनीया सदा बुधैः ॥ इति
शुभलक्षणशिलाभावे निन्द्यलक्षणशिलाग्रहणम् । पद्मपुराणे
माघमाहात्म्ये । यः पूजयेद्भरिं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे ।
राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् । यदा नमन्ति वेदान्ता
ब्रह्म निर्गुणमच्युतम् । तत्प्रसादो भवेन्नृणां शालग्रामशिलार्च-
नात् । अपि पापसमाचाराः कर्मस्थानधिकारिणः । शालग्रा-
मार्चका वैश्या नैव यान्ति यमालयम् । अग्निहोत्रं हृतं तेन
दत्ता पृथ्वी ससागरा । येनार्चितो हरिश्चक्रे शालग्रामशिलो-
द्भवे । विना तीर्थैर्विना दानैर्विना यज्ञैर्विना नतिम् । मुक्तिं
याति नरो वैश्यः शालग्रामशिलार्चनात् ॥ इति शालग्रामपूजा-
फलम् ॥

मत्स्यसूक्ते महातन्त्रे उपरिभागे प्रथमचरणे द्वादशपटले ॥
गण्डकी द्वादशं यत्र क्रोशमात्रं तपोवनम् । हरिश्चैत्रसमं क्षेत्र-
मेकैकं पुण्यमुच्यते । जीवन्मुक्तो भवेत्तस्माच्छक्राङ्कितशिलार्च-
नात् ॥ इति शालग्रामदेशफलम् ॥

आदौ सुदर्शनो मूर्तिर्लक्ष्मीनारायणः परः । द्विचक्रोऽसाव-
च्युतः स्याच्चतुश्चक्रश्चतुर्भुजः । पञ्चचक्रो वासुदेवाश्चतुश्चक्रो जना-
र्दनः । सुखदा सप्तचक्रा तु द्वादशी चोत्तमा शुभा । एकादशी-
ऽग्निरुद्धः स्याद्द्वादशी चार्क उच्यते । अत ऊर्ध्वमनन्तस्तु द्विचक्रे
पार्वती स्मृता । त्रिचक्रोऽग्निः समाख्यातः चतुश्चक्रश्चतुर्मुखः ।
पञ्चचक्रो महादेवः षट्चक्रे च षडाननः ॥ तथा ॥ गण्डक्यां या
सुमुद्भूता देवी षोडशसन्धवा । पश्चिमादिक्रमेणैव यावदभुवन-
पर्वतम् । प्रद्युम्नं वामनञ्चैव वराहं पुरुषोत्तमम् । नारायणञ्च
मृहरिमनन्तञ्च जनार्दनम् । वासुदेवं तथा मत्स्यं कूर्मं वीरञ्च

कल्किनम् । विश्वकेशं हयग्रीवं श्रीकरं हरिहरं तथा ॥
लक्ष्मो नारायणश्चैव सर्वचेतसमुद्भवम् । सर्वं सर्वेषु चेत्येषु युग-
स्यान्ते महेश्वरि ! ॥ इति शालग्रामोत्पत्तिस्थाननिर्णयः ॥

स्कन्दपुराणे ॥ स्तेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्को यत्र तिष्ठति ।
योजनानि तथा चीणि मम चेचं वसुन्धरे ! । तन्मध्ये स्त्रियते
यस्तु पूजकः सुसमाहितः । शतबाधाविनिर्मुक्तः पुनः सोऽपि न
जायते । चक्राङ्क इत्युपादानात् द्वारकाशिलाया अप्येतत्
फलमविशेषादिति चक्रसन्निधिमरणफलम् । तथा च चक्राङ्गि-
तस्य सान्निध्ये यत्कर्म क्रियते नरैः । ज्ञानं दानं तपो होमः
सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ इति चक्रनिकटे कर्ममात्रफलम् ॥

तथा । संवत्सरन्तु यत्पापं मनसा कर्मणा कृतम् । तत्सर्वं
नश्यते पुंसां सकृच्चक्राङ्कदानतः ॥ इति सकृच्चक्राङ्कदानफलम् ॥

ब्रह्मपुराणे ॥ दीर्घा काञ्चनवर्णा या विन्दुत्रयविभूषिता ।
मत्स्याख्या सा शिला प्रोक्ता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ १ ॥ तथा ॥
मत्स्यरूपन्तु देवेशं दीर्घाकारन्तु यद्भवेत् । विन्दुत्रयसमायुक्तं
काञ्चवर्णं सुशोभनम् ॥ २ ॥ वीरमित्रोदये हेमाद्रिदृतपद्म-
पुराणे ॥ त्रयो मत्स्यादयः श्यामा द्विचक्राः स्वाङ्गसंयुताः । तेषां
सन्दर्शनादेव सर्वकाममवाप्नुयात् । मत्स्यरूपन्तु देवस्य दीर्घा-
कारं सुपूजितम् । विन्दुत्रयसमायुक्तं काञ्चवर्णं सुशोभनम् ॥
३ ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ दीर्घा द्वारयुतं त्रेधा द्वारमध्ये च चक-
युक् । चक्रमेकं पुच्छभागे दक्षिणे शकटाकृति । वामे प्रदृश्यते
रेखा मत्स्यमूर्तिः शुभप्रदा ॥ ४ ॥ पुराणसंग्रहे ॥ विन्दुत्रयसमा-
युक्तं चक्राङ्गशङ्खलाञ्जितम् । दीर्घं दक्षिणमाख्यञ्च मत्स्यचक्रं
समीपम् ॥ ५ ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ मत्स्याकृतिर्भवेत्तस्यमूर्द्धि
चित्रं सदीर्घकम् ॥ इति मत्स्यचक्रम् ॥ ६ ॥

कूर्मं कूर्माकृतिशिलापूर्वभागोन्नतं यदि ॥ १ ॥ ब्रह्मपुराणे ॥

कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्तुलावर्त्तपूरितः । हरितं वर्णमाधत्त
कौस्तुभेन च चिह्नितः ॥२॥ पद्मपुराणे ॥ कूर्माकारा च चक्राङ्गा
शिला कूर्मः प्रकोर्त्तितः ॥३॥ ब्रह्मपुराणे ॥ तत्सङ्गच्छणसंयुक्तं भानो-
र्वलयपञ्चकम् । कूर्मचक्रमिदं प्रोक्तं दुर्लभं सर्वकामदम् ॥ ४ ॥
ब्रह्माण्डपुराणे तु विशेषः । चतुर्धा कूर्ममूर्त्तिः स्यात् पार्श्व-
भागे खुरान्विता । विख्याता दुर्लभा सर्वमनोरथफलप्रदा ।
विन्दुत्रयान्विता शङ्खचक्रध्वजयुतापि वा । विन्दुत्रयान्विता
सौवर्णविन्दुत्रययुक्ता यत्र कुत्रापि विन्दवः सौवर्णा ज्ञेया इति
वीरमित्रोदयः । दीर्घा दक्षिणवामास्या भानोर्वलयपञ्चकैः
भूषिता कूर्ममूर्त्तिः स्याद्दुर्लभा सर्वकामदा । वृत्तोपेता कूर्म-
मूर्त्तिः कनकच्छविसंयुता । स्नुहीपुष्पाकृतिर्वापि चक्रस्योभय-
पार्श्वतः । कूर्ममूर्त्तिः खगिशानि ! सर्वकामफलप्रदा ॥ २ ॥
वर्तुला सुबलाकारा दीर्घद्वारा तु वैश्यप ! । नाभिचक्रयुता
ताभ्यां कूर्माकारा तु पार्श्वतः । तथा चास्यासनावास्या उन्नता
नोललोहिता । कूर्ममूर्त्तिरिति स्याता पुत्रपौत्रादिवृद्धिदा ।
नाभिचक्रयुतेत्यत्र चक्रद्वयमेवानुसन्धेयम् । द्विचक्राः स्वाङ्ग-
संयुता इति पूर्वादाहृतपद्मपुराणवचनात् ॥ १२ ॥ इति कूर्म-
चक्रम् ॥

ब्रह्मपुराणे ॥ वराहः शक्तिलिङ्गस्तु चक्रे च विपक्षे स्थिते ।
इन्द्रनीलनिभः स्थूलस्त्रिखालाञ्छितः शुभः । तस्य सम्पूजना-
द्देही प्राप्नोति मनसिष्ठितम् ॥ १ ॥ वराहाकृतिरामग्नश्चक्ररेखा-
खलङ्कितः । वराह इति स प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः । पद्म-
पुराणे तु वराहः सोऽपि विज्ञेय इति प्रथमचरणे पाठः ॥ २ ॥
वराहमूर्तिर्द्विविधा भिन्नलक्षणयोगतः । दक्षपार्श्वगते चक्रे
समचक्रप्रदेशतः । वतमालान्वितो लक्ष्मिवराहः परिकीर्तितः ॥
३ ॥ इति वराहलक्षणम् ॥

अतीवविज्ञतास्यञ्च द्विचक्रं विकटं तथा । नरसिंहाभिधं
 ज्ञेयं सद्यो वैराग्यदायकम् ॥ १ ॥ मातस्ये ॥ यस्य दीर्घमुखं
 पूर्वं कथितैर्लक्षणैर्युतम् । रेखाश्च पुष्कराकारा नरसिंहो भतो हि
 सः ॥ २ ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ नरसिंहस्त्रिविन्दुः स्यात् कपिलः पञ्च-
 विन्दुकः । ब्रह्मचर्येण पूज्यः स्यादन्यथा सर्वविघ्नदः ॥ ३ ॥ क-
 पिलो नरसिंहस्तु पृथुचक्रः सुशोभनः । ब्रह्मचर्येण पूज्योऽ-
 सावन्यथा विघ्नदो भवेत् ॥ ४ ॥ स्थूलचक्रद्वयं मध्ये गुडलाक्षा-
 सुवर्णकः । द्वारोपरि तथा रेखा पुष्टाकारा सुशोभना । स्फुटितं
 विषमं चक्रं नारसिंहन्तु कपिलम् । सम्पूज्य सुक्तिमाप्नोति
 संग्रामे विजयी भवेत् ॥ पञ्चपुराणे ॥ नृसिंहः कपिलो ज्ञेयः
 स्थूलचक्रश्च दंष्ट्रया । त्रिविन्दुः पञ्चविन्दुर्वा ब्रह्मचर्येण पूजितः ।
 ददाति वाञ्छितफलमघौघञ्चाशु नश्यति । अन्यथा जायते
 लेशो नात्र कार्या विचारणा ॥ अग्निपुराणे ॥ नृसिंहः स्थूलवक्त्रः
 स्यात् कपिलः पञ्चविन्दुकः ॥ वीरमित्रोदयधृतवैश्वानरसं-
 तायाम् । कपिलो नरसिंहस्तु पृथुचक्रः सुशोभनः । ब्रह्मचर्या-
 धिकारोऽत्र नान्यथा पूजनं भवेत् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ विद्वतास्यं
 रामचक्रं वर्तुलं कपिलप्रभम् । नरसिंहं गृहस्थानामिष्टदं
 विन्दुभिर्युतम् ॥ इति कपिलनृसिंहलक्षणम् ॥

प्रकृतिखण्डे ॥ द्विचक्रं विज्ञतास्यञ्च वनमालाविभूषितम् ।
 लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा ॥ १ ॥ वीरमित्रोद-
 यधृतपुराणसंग्रहे ॥ वामपार्श्वस्थिते चक्रे कृष्णवर्णः सविन्दुकः ।
 लक्ष्मीनृसिंहो विख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः । समे चक्रे इति
 ब्रह्मपुराणे पाठः ॥ २ ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ नरसिंहस्त्रिविन्दुः स्यात्
 कपिलः पञ्चविन्दुकः । वामाश्रिते पुष्कले तु लक्ष्मीनरहरिः
 स्मृतः ॥ ३ ॥ इति लक्ष्मीनृसिंहलक्षणम् ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ विदारणाभिधानः स्यात् नृसिंहो दीर्घ-

कन्दरः । अन्तश्चक्रं बृहदारं दक्षिणोन्नतमस्तकम् । विदारण-
मिति ख्यातं दंष्ट्राभ्यामुपशोभितम् । ब्रह्मचर्याविरोधेन नर-
सिंहोऽर्चितो यदि । व्यादिशेत्तु भयं तस्य ध्वजिना दह्यते गृहम् ।
अत्रापि चक्रद्वयमेव यत्र कुत्राप्यनुक्तस्थले चक्रद्वयमेव ज्ञेय-
मिति सामान्येनालोकनादिति वीरमित्रोदयः । इति योग-
नृसिंहलक्षणमिति तेनोक्तम् । वस्तुतो विदारनृसिंहलक्षणमिदं
विदारणाभिधानः स्यादित्युक्तत्वादिति ॥

सप्तचक्रं बहुमुखं समन्तात् स्वर्णभूषितम् । सर्वतो मुखना-
मानं स्वर्णभं वर्णतो यदि ॥१॥ मम चक्रः समाख्यातो नृसिंहः
सर्वतो हरिरित्यत्रापि ॥ इति सर्वतोमुखनृसिंहलक्षणम् ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ बहुचक्रं बहुद्वारं बहुवर्णं महोदरम् ।
पातालनरसिंहाख्यं भिक्षूणाममृतप्रदम् ॥ तथा ॥ तृतीय-
चक्रादारभ्य पार्श्वतो दशचक्रकः । स पूर्वोक्तविहीनश्च बहु-
रूपधरो भवेत् ॥ पातालनरसिंहो वा बहुरूपधरोऽपि वा ॥
इति पातालनृसिंहलक्षणम् ॥

तत्रैव ॥ अत्युच्चचक्रं मध्यस्थं मम भावं महोदरम् ।
आकाशनरसिंहाख्यं वनवासिभिरर्चितम् ॥ इत्याकाशनृसिंह-
लक्षणम् ।

बहुच्छिद्रं भीमवक्त्रं सुवर्णकनकान्वितम् । चक्रान्तराक्षसं
ज्ञेयं नृसिंहं गृहदायकम् ॥ इति राक्षसनृसिंहलक्षणम् ॥

द्विचक्रं द्विमुखं स्थूलं द्वारद्वोर्द्विद्वतं शिरः । दारिद्र्यफ-
लदं ज्ञेयं तद्वि जिह्वानृसिंहकम् ॥ इति जिह्वानृसिंहलक्षणम् ॥

पुरः पार्श्वे च पृष्ठे च त्रिचक्रेणोपशोभितम् । अधोमुख-
मिति ख्यातमर्चकानां विमुक्तिदम् । अत्र चक्रद्वयमेकं पुरः
एकं पार्श्वे एकं पृष्ठे ॥ इति अधोमुखनृसिंहलक्षणम् ॥

वीरमित्रोदये ॥ अधोमुखनृसिंहश्च शिशुमारस्तथैव च ।

त्रिविक्रमो मत्स्यमूर्तिस्त्रिचक्रा परिकीर्त्तिता इति ॥ ब्रह्माण्ड-
पुराणे ॥ सूक्ष्मरन्ध्रं द्विचक्रञ्च वनमालाविभूषितम् ।
तज्ज्वालानरसिंहाख्यं नृणां संसारमोचनम् ॥ इति ज्वाला-
नृसिंहलक्षणमिति नृसिंहभेदाः ॥ ६ ॥

ब्रह्मपुराणे ॥ कदम्बकुसुमाकारो रेखापञ्चकभूषितः ।
वर्तुलश्चातिङ्गस्त्रय वामनः परिकीर्त्तितः ॥ १ ॥ अन्यत्रापि ॥
वामनाख्यो भवेद्देवो ऋषो यः स्यान्महाद्युतिः । ऊर्ध्वचक्रस्व-
धश्चक्रः सोऽभीष्टार्थप्रदोऽर्चितः ॥ २ ॥ वर्तुलाङ्गस्त्रिवृत्तस्तु चतु-
र्हीपुष्याक्षतिर्भवेत् । केशराभस्तु वै तार्क्ष्यं । दृश्यते चक्रपार्श्वतः ।
वामनो गृहिणां श्रेष्ठः सुखसौभाग्यदायकः । गृहपुत्रार्थ-
द्विच दत्त्वा सन्दिशति ध्रुवम् । मध्यचक्रं नाभिङ्गस्त्रयमिति त्रिग्वध-
कामदम् । स्यष्टचक्रं वामनञ्च नृणामीषितदायकम् ॥ अतसी-
कुसुमप्रख्यं किञ्चिदुन्नतमस्तकम् । तद्वामनं कामदं स्यात्
किञ्चिदस्यष्टचक्रकम् ॥ वर्तुलं नीलमेघाभं वनमालासमन्वितम् ।
सूक्ष्मरन्ध्रं बृहन्मूर्तिं वामनं भुवि दुर्लभम् ॥ ३ ॥ प्रकृतिखण्डे ॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रञ्च नवीननीरदोपमम् । दधिवामनाभिधं
त्रेयं गृहिणाञ्च सुखप्रदम् ॥ ४ ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ अतसीपुष्प-
सङ्काशो विन्दुना परिशीभितः । यो वामनाभिधो देवः स्वेद-
विन्दुयुतो मुखे । दधिवामनसंज्ञः स्यान्नधान्यसुखप्रदः ॥
मत्स्यसूक्ते ॥ श्रीकरं श्रीफलाकारं वामनं वदरस्य च ।
बीजेन सदृशं यद्वा फलेन दधिवामनम् ॥ इति वामनलक्षण-
मिति वामनभेदाः ॥ ६ ॥ ५ ॥

पीतः परशुकोदण्डलाङ्गलेन सुलक्षितः । रामो रामश्च
रामश्च त्रयो मृत्युहरः क्रमात् ॥ १ ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥
वामदम्यस्तु भगवान् द्विविधः परिकीर्त्तितः । तच्चिमूर्ति-
इलोपितं दीर्घाकारं बृहद्भि यत् । इति भागवतं चक्रं पर

स्वाकृतिकेन वा । वामे वा दक्षिणे वापि चक्रभागे भवेद्विदुः
पृष्ठे वा पार्श्वभागे वा रेखा दंष्ट्राकृतिर्भवेत् । जामदग्न्यस्तु
भगवान् शान्ताख्यः शान्तिदोऽर्चितः ॥ २ ॥ ६ ॥ इति परशु-
रामलक्षणम् ॥ ६ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ रामचन्द्रस्तथा स्निग्धो दूर्वाभश्चक्रशोभनः ।
पृष्ठे दण्डस्तथा पार्श्वे रेखाद्वयेन संयुतः ॥ मत्स्यसूक्ते ॥
श्यामं दूर्वादलाकारं रामं तदपि कीर्तितम् ॥ १ ॥ प्रकृति-
खण्डे ॥ मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रवाणविश्रुतम् । रणरामा-
भिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम् ॥ इति रणरामलक्षणम् ॥ २ ॥

मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं वाणविश्रुतम् । सप्तचक्रञ्च कृतञ्च
शरतूणसमन्वितम् । राजराजेश्वरं ज्ञेयं राज्यसम्पदायकम् ॥
इति राजराजेश्वरचक्रलक्षणम् ॥ ३ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ एकस्मिन्नेव वदने चतुश्चक्रोऽतिविश्रुतः ।
वामोन्नतो लसच्छत्रध्वजचामरसंयुतः । वनमालाधरो देवः
सीतारामः प्रकीर्तितः । सर्वत्र विजयप्रद इति पाठान्तरम् ॥ १ ॥
द्वारयोर्वा तु चक्रो वा वामतश्चैकचक्रवान् । वाणरूपो वरो रामः
सीतारामः प्रकीर्तितः । सर्वसौभाग्यदश्चक्रः सर्वत्र विजय-
प्रदः ॥ २ ॥ इति सीतारामलक्षणम् ॥ ४ ॥

कोदण्डि कुक्कुटाण्डाभं श्यामलं पृष्ठमुन्नतम् । रेखाद्वय-
समोपेतं द्वारयोश्च खगेश्वरः । धनुराकृतिका रेखा दृश्यते
पार्श्वतोऽपि वा । भवेद्रामो दशकण्ठकुलान्तक इतीरितः ॥
इति दशकण्ठकुलान्तकरामलक्षणम् ॥ ५ ॥

वाणरूपी च चापाढ्यः कुण्डली स्रक्समाहितः । सूक्ष्म-
केशरचक्राढ्यो वीररामः श्रिया हरः ॥ इति वीरराम-
लक्षणम् ॥ ६ ॥

दिव्यवाणेन संयुक्तश्चापरूपास्यसंयुतः । करालवदनोरस्को

विन्दुयुक् चक्रशोभितः ॥ स स्याद्विजयरामाख्यः केशरोपेत-
चक्रकः ॥ इति विजयरामलक्षणम् ॥ ७ ॥

एकचक्रस्तु वदने कृष्णवर्णः सुशोभनः । सा राममूर्तिर्वि-
ज्ञेया पूजकस्य कवित्वदा ॥ इति कवित्वदाद्वरामलक्षणम् ॥ ८ ॥

मूर्द्धि जानुधनुर्वाणः पार्श्वे खुरयुतस्तथा । दुष्टराम इति
ख्यातो नीलाम्बुदसमप्रभः ॥ इति दुष्टरामलक्षणम् ॥ ९ ॥

एतानि ब्रह्माण्डपुराणीयानीति वीरमित्रोदयः ॥ प्रकृति-
खण्डे । द्वे चक्रे एकलग्ने च पृष्ठदेशेऽतिपुष्कलम् । सङ्कर्षणन्तु
विज्ञेयं सुखदं गृहिणीं सदा ॥ १ ॥ पद्मपुराणे ॥ बलभद्रशिला
ज्ञेया सप्तचक्राङ्किता खग ! । पूजितस्तुष्यते देवः पुत्रपौत्रप्रदो
भवेत् ॥ २ ॥ ब्रह्माण्डपुराणे । पृष्ठभागे पञ्चरेखा चापवाणौ च
पार्श्वयोः । बलरामः स विज्ञेयो पुत्रदायी न संशयः ॥ ३ ॥ द्वे
चक्रे त्र्यगलग्ने तु पूर्वभागश्च पुष्कलः । स सङ्कर्षणाख्यो विज्ञेयो
रक्ताभश्चातिशोभनः ॥ इति सङ्कर्षणलक्षणम् ॥ १० ॥

तत्रैव । अतिगह्वरसंयुक्तं चक्रहीनं यथा भवेत् । प्रवीणो
बुद्धसंज्ञः स्यात् ददाति परमं पदम् ॥ इति ब्रह्ममूर्तिलक्ष-
णम् ॥ ११ ॥

अलिवर्णं सूक्ष्मबीजं षट्चक्रं सुस्थिरासनम् । कृपाणाकृतिका
रेखा द्वारस्थोपरि पृष्ठके । स्नेच्छनाशी भवेत् कल्किः कलि-
कल्मषनाशकः ॥ १ ॥ मत्स्यसूक्ते ॥ कल्किनन्तु हयाकारं त्रि-
चक्रेणैव लाञ्छितम् ॥ २ ॥ इति कल्किमूर्तिलक्षणम् ॥ १२ ॥

ब्रह्मपुराणे ॥ प्रदक्षिणावर्तकृता वनमालाविभूषिता । या
शिला कृष्णसंज्ञा सा धनधान्यसुखप्रदा ॥ १ ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥
सप्तचक्रं द्वारदेशे कृष्णवर्णः सुशोभनः । सा कृष्णमूर्तिर्विज्ञेया
पूजिता सौख्यदायिनी ॥ २ ॥ कृष्णपीतः कथतनुं विभत् पार्श्वे
सविन्दुयुक् । द्वारतुल्यो भवेन्नाभिः कूर्माकारस्तु पृष्ठतः । कृष्णो

स्तात् । सर्वेषां पापनाशनः । पीतः पीतचिह्नयुक्तः । चिह्नश्चात्र
पीताम्बरविन्दुरेखादि ज्ञेयमिति वीरमित्रोदये ॥३॥ काम-
मूर्तिस्तु कृष्णाभा निष्णाऽधस्तात् सविन्दुकः । स बालकृष्णो
विज्ञेयो दीर्घास्रः पुत्रभाग्यदः ॥ ४ ॥ कृष्णोऽतिकृष्णो न स्थूल-
श्चक्राभ्यामुपशोभितः । वनमालायुतः पृष्ठे श्रीवत्सशुभलाञ्जनः ।
दण्डशृङ्गयुतः पार्श्वे वरात्मा सर्वतोमुखः । स गोपाल इति
गोक्तो भूधान्यादिधनप्रदः ॥ इति गोपालमूर्तिलक्षणम् ॥५॥

यो गोपालः पार्श्वभागे दरपद्मविकाशिभाक् । स स्यान्म-
दनगोपालो मालाकुण्डलभूषितः । पुत्रपौत्रधनैश्वर्यसर्वलो-
कैकवश्यदः ॥ इति मदनगोपालमूर्तिलक्षणम् ॥६॥

अथ यत्र मूर्तिर्भेदे चक्रादि नोक्तं तत्र तद्व्यवहृतिभूतल-
क्षणोक्तं सामान्यं ग्राह्यमिति वीरमित्रोदये ॥ दीर्घाकारः
कृष्णवर्णः सार्द्धचन्द्रनिभाननः । स स्यात् सन्तानगोपालः
पुत्रपौत्रादिवृद्धिदः ॥ इति सन्तानगोपाललक्षणम् ॥ ७ ॥

वर्तुली मस्तके निम्नः पार्श्वे विततविन्दवः । गोवर्द्धनाख्यो
गोपालो दीर्घा रेखा तु दक्षिणे । सर्वकल्मषनाशी स्यान्नोधान्या-
दिधनप्रदः ॥ इति गोवर्द्धनगोपाललक्षणम् ॥ ८ ॥

धर्मसंहितायाम् ॥ कुक्कुटाण्डसमोपेतः श्रीधरो वन-
मालया । लाङ्गुलं वेणुचिह्नञ्च कुलञ्च परिवेष्टितम् । लक्ष्मी-
गोपालकः ख्यातो दुर्लभो भुवनत्रये । पुत्रदारादिसम्पत्ति-
मुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ इति लक्ष्मीगोपाललक्षणम् ॥ ९ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ रेखा सुवर्णवर्णा हि विन्दुत्रयविभूषितः ।
कालीयमर्दनः साक्षात् सर्वशत्रुनिहन्तनः । सव्यापसव्य-
रेखाभ्यां भूषितः सूक्ष्मवक्त्रकः । पार्श्वस्थूलयुतो देवो धनपद्म-
युतः शुभः ॥ इति कालीयमर्दनलक्षणम् ॥१०॥

असिवर्णश्चलः स्थूलश्चक्रभागोऽतिशोभनः । वनमालापरिवृतः

पृष्ठे श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ स्यमन्तहारौ विज्ञेयः पुत्रकीर्त्तिविव-
र्द्धनः ॥ इति स्यमन्तहारिलक्षणम् ॥ ११ ॥

चाणूरमर्दनलक्षणम् ॥ रक्तविन्दुद्वययुतः श्यामो दन्तिभृतो-
पमः । रेखा दक्षिणतो वामे मुष्टिवद्धविन्दुयुक् । चाणूर-
मर्दनाख्यः स्यात् सर्वशत्रुनिकृन्तनः । इति चाणूरमर्दन
लक्षणम् ॥ १२ ॥

अथ कंसमर्दनलक्षणम् ॥ पूर्वभागैकवर्णेन पार्श्ववर्णेन वा
भवेत् । कंसमर्द्दी भवेत् कृष्णो नीलाम्बुदनिभः शुभः ॥ इति
कृष्णसूक्तिभेदाः ॥ १३ ॥

पद्मब्रह्माण्डपुराणयोः ॥ सौभाग्यं केशवो दद्यात् चतु-
ष्कोणे भवेत् समः ॥ वैश्वानरसंहितायां ॥ नाभ्यधस्तु भवेत्
शङ्खशृङ्गान्तु तदनन्तरम् । केशवः स तु विज्ञेयः सर्वकामफल-
प्रदः । इति केशवलक्षणम् ॥ १४ ॥

पद्मपुराणे ॥ हयग्रीवोऽङ्कुशाकारो रेखा चक्रसमीपगा ।
बहुविन्दुसमायुक्तं पृष्ठे नीरदनीलकम् । हयग्रीवो हयाकार
इति ब्रह्माण्डपुराणे पाठः । पृष्ठे स्थानीलरूपकमिति वीर-
मितोदये पाठान्तरम् ॥ अन्यत्र च ॥ हयग्रीवोऽङ्कुशाकारे रेखाः
पञ्च भवन्ति हि । बहुविन्दुसमाकीर्णं दृश्यन्ते नीलरूपकाः ॥
अग्निपुराणे ॥ हयग्रीवश्च स ज्ञेयो योऽङ्कुशप्रतिरूपकः ।
चक्रध्वजसमायुक्तः पूजितः सौख्यदायकः ॥ हयग्रीवा यथा
लम्बा रेखाङ्गा या शिला भवेत् । तथा सौख्यो हयग्रीवः पूजितो
ज्ञानदो भवेत् ॥ पुराणसंग्रहे ॥ हयग्रीवोऽपि भगवान् रक्त-
पीतादिभिः श्रितः । अङ्कुशाकृतिकस्तार्क्ष्य ! चक्रद्वयसन्वितः ।
पद्माकृतिस्तथा पार्श्वे कुण्डलं मणिरिव वा । सुखदो मोक्षदो
नृणां भोगदो विनतासुत ! ॥ इति हयग्रीवलक्षणम् ॥

पद्मपुराणे ॥ हयग्रीवा यथा लम्बा रेखाङ्गा या शिलाऽ-

भवेत् । तथासौ स्याद्वयग्रीवः पूजितो ज्ञानदो भवेत् ॥
अन्यत्रापि । अश्वाकृति मुखं यस्य साक्षमालं शिरस्तथा ।
पद्माकृतिर्भवेद्वापि हयग्रीर्षा त्वसौ मतः ॥ मत्स्यसूक्ते
हाटशपटले ॥ हयग्रीवं चक्रचिह्नं वामोन्नतकपिञ्जलम् ।
श्यामं दूर्वादलाकारं रामं तदपि कीर्तितम् ॥ इति हयग्रीव-
लक्षणम् ॥ १५ ॥

अग्निपुराणे ॥ परमेष्ठी मालचक्रं पृष्ठे छिद्रञ्च विन्दुवान् ॥
ब्रह्मपुराणे ॥ परमेष्ठी तु शुक्लाभः पद्मचक्रसमन्वितः । चित्रा-
कृतिस्तथा पृष्ठे शुषिरश्चातिपुष्कलम् ॥ तथा । परमेष्ठी
लोहिताभश्चक्रमेकं तथा युतम् । विम्बाकृतिस्तथा रेखा शुषि-
रश्चातिपुष्कलम् ॥ पुराणसंग्रहे ॥ परमेष्ठी च शुक्लाभः पद्म-
चक्रसमन्वितः । चीराकृतिः कृमिमिता पृष्ठे शुषिरचिह्नितः ॥
परमेष्ठी च शुक्लाभश्चक्रपद्मसमन्वितः । स वर्तुलस्तथा पीतः
पृष्ठे च शुषिरं ध्रुवम् ॥ इति पाठान्तरम् ॥ वैश्वानरसंहि-
तायाम् ॥ परमेष्ठो तु रक्ताभश्चक्रपद्मसमन्वितः । द्विधाकृति-
स्तथा पृष्ठे शुषिरश्चापि वर्तुलम् । पीतवर्णयुतो वापि भुक्ति-
मुक्तिवरप्रदः ॥ इति परमेष्ठिलक्षणम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मपुराणे ॥ हिरण्यगर्भदेवञ्च मध्यपिङ्गलविग्रहम् । ईष-
दीर्घं मनोज्ञञ्च स्निग्धं सकलकामदम् ॥ तथा । चन्द्रा-
कृति हिरण्माख्यं रश्मिजालं विनिर्दिशेत् । सुवर्णरेखावह्वलं
स्फाटिकद्युतिशोभितम् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ हिरण्यगर्भो भगवान्
परितो भुवि दुर्लभः । अन्तर्ध्वनिसमायुक्तं कृष्णवर्णं सुवर्तुलम् ॥
वर्तुलन्तु सुवदनं चक्रमध्ये च कोमलम् । औवत्सं कोमला-
कारं लाञ्छनं पृष्ठपार्श्वके ॥ हिरण्यगर्भो विख्यातः पृथुनाभि-
समन्वितः । हिरण्येन विमिश्रस्तु औप्रदः कुलवर्द्धनः ॥
इति हिरण्यगर्भलक्षणम् ॥ १७ ॥

५१३
वि-
पि
पा-
पः
सी
ने ।
पर-
नि-
दि-
वा-
यो-
ज-
नि-
ना-
इति
व-
श-
य-
क-
त-
र-
र-
र-

ब्रह्मपुराणे ॥ चतुर्भुजं चतुश्चक्रं नवमेघसमद्युति । मण्ड-
लाकारचक्रं स्यात् सर्वेषामभयप्रदम् ॥ इति चतुर्भुजल-
क्षणम् ॥ १८ ॥

तथा । गदाधरस्त्रिरेखाभिर्लाङ्कितो मध्यदेशतः । ध्वज-
वज्राङ्गुशैः पीतो वामचक्रः सुवर्तुलः ॥ ब्रह्मवैवर्ते ॥ सुदर्शन-
चैकचक्रं सप्तचक्रं गदाधरम् । द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीव-
प्रकीर्तितम् ॥ इति गदाधरलक्षणम् ॥ १९ ॥

ब्रह्मपुराणे ॥ श्यामं नारायणं विद्यान्नाभिचक्रं तथोक्त-
तम् । दीर्घरेखासमोपेतं दक्षिणे शुषिरं पृथु ॥ ब्रह्माण्डराणे ॥
विरजे सुमुखे चक्रे मध्यवक्त्रस्तु शोभनः । ताडङ्गनानाभरण-
हारकेयूरलाङ्कनः । नारायणः समाख्यातः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥
मन्त्रसूक्ते द्वादशपटले ॥ नारायणं पार्श्वचक्रे चक्रमेव तु
पुष्कलम् । ऋचोऽथ वर्जयेन्मन्त्री गृहस्थो हि न चार्चयेत् ॥
इति नारायणलक्षणम् ॥ २० ॥

नारायणभेदास्तु ब्रह्मपुराणे ॥ द्वारमेकं चतुश्चक्रं ब्रह्मादी-
नान्तु दुर्लभम् । शोभितो वनमालयेति क्वचित् पाठः । लक्ष्मी-
नारायणो नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ पुराणसंग्रहे ॥ ध्वज-
वज्राङ्गुशं पीनं वामे वक्त्रे तु वर्तुलम् । लक्ष्मीनारायणं देव-
ममीघफलदं विदुः ॥ वामे अधः खण्डे चक्रद्वयोपरि चक्र-
द्वयमिति धीरमित्रोदये । ब्रह्माण्डपुराणे ॥ ध्वजवज्राङ्गुशैः पीतो
वामे चक्रे सुवर्तुलः । लक्ष्मीनारायणो देवश्चतुश्चक्रसमन्वितः ॥
पूजनीयः सदा सङ्निवैष्णवेर्मोक्षमिच्छुभिः ॥ पुनस्तत्रैव ॥ एक-
चक्रश्चतुश्चक्रो वर्तुलः श्यामवर्णकः । ध्वजवज्राङ्गुशोपेतो माला-
युक्तः सविन्दुकः । नातिह्रस्वो न च स्थूलो लक्ष्मीनारायणः
स्मृतः । तस्य दर्शनमात्रेण स्वाभौष्टफलमाप्नुयात् ॥ चतुश्चक्रः
सूक्ष्महारो वनमालासमन्वितः । लक्ष्मीनारायणः श्रीमान् भुक्ति-

मध्यतः ॥ पुराणसंग्रहे ॥ स कापिलः स्निग्धवर्णो विष्णुश्च
विषमो गदः ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ कृष्णवर्णस्तथा विष्णुः स्थूले चक्रे
सुशोभने । हारीपरि तथा रेखा दृश्यते मध्यदेशतः ॥ इति
विष्णुलक्षणम् ॥ २६ ॥

वैश्वानरसंहितायाम् ॥ नाभिदेशे शङ्खपद्मे यस्यां मुद्रा प्र-
दृश्यते । मधुसूदन आख्यातः शत्रुहा परिकीर्तितः ॥ पुरा-
णसंग्रहवैश्वानरसंहितयोः ॥ त्रिविक्रमस्तथा देवः श्यामवर्णो
महाद्युतिः । वामपार्श्वे स्थिते चक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ॥
अग्निपुराणे ॥ श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षे रेखा वामे सविन्दुकः ॥
ब्रह्माण्डपुराणे तु विशेषः । त्रिविक्रमस्त्रिकोणव्यञ्चकद्वय-
समन्वितः । प्रयत्नेन द्विजातीनां सदा पूज्यश्च तेन वै ॥ इति
त्रिविक्रमलक्षणम् ॥ २७ ॥

ब्रह्मपुराण-वैश्वानर-संहिता-विष्णुप्रोक्ताग्निपुराण—ब्रह्मा-
ण्डपुराणेषु ॥ श्रीधरस्तु तथा देवः श्रीयुतो वनमालया । कदम्ब-
कुसुमाकारो रेखापञ्चकसंयुतः । कदम्बकुसुमाकारो वर्तुला-
कार इत्यर्थः ॥ पुराणसंग्रहे ॥ श्रीधरस्तु तथा देवश्चिह्नितो
वनमालया । कदम्बकुसुमाकार ऊर्ध्वरेखाश्च पार्श्वयोः ॥
श्रीधरभेदा ब्रह्माण्डपुराणे ॥ चक्रे च मध्यदेशे तु पङ्कजेन सम-
न्वितः । सूक्ष्मनालः श्यामलाभासंयुतः श्रीधरः स्मृतः । निम्ना-
कृतिः शिरःपार्श्वे निम्नदन्तस्तु वर्तुलः । निम्नचक्रमतिद्वयं
श्रीधरं परिकीर्तितम् ॥ ब्रह्मवैवर्ते ॥ अतिक्षुद्रं द्विचक्रञ्च
वनमालाविभूषितम् । विज्ञेयं श्रीधरं देवि । श्रीप्रदं गृहिणां
सदा ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ वैकुण्ठं मणिवर्णाभं चक्रमेकं तथा
ध्वजम् । तथास्वजमिति वीरमिन्द्रोदयधृतपाठः ॥ हारीपरि
तथा रेखाङ्गुशाकारेति पाठान्तरम् ॥ चक्रचिह्नेन संयुता इति
वैश्वानरसंहितायां पाठः । हारीपरि तथा रेखा पुष्टाकारा

सुशोभना । श्रीधरस्तु तथा देवश्चिह्नितो वनमालया ॥ इति
श्रीधरलक्षणम् ॥ २८ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ अर्द्धचन्द्राकृतिर्देवी हृषीकेश उदाहृतः ॥
वैश्वानरसंहितायाम् ॥ शूकरस्य निभाकारा यस्य केशाः
सुवर्चसः । कर्मैकां दृश्यते यस्य हृषीकेशः स उच्यते ॥ ब्रह्म-
पुराणे ॥ आरक्तं पद्मनाभाख्यं सत्कृतं पद्मसंयुतम् । तुलस्या
पूजयेन्नित्यं दरिद्रस्त्वोश्वरो भवेत् ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥
निष्केशवद्विचक्रस्तु अर्द्धचक्रः स केशवः । पद्मनाभ इति प्रोक्तो
विपरीतो हलायुधः ॥ एतस्यैव बहुचक्रवर्णसम्भवे एतत्पू-
जने दुष्टफलमुक्तं पद्मपुराणे ॥ बहुभिस्तु गदाचक्रे शुक्लवर्णा-
दिशोभितम् । देत्यारिः कमलाशुभ्र गदापाणिरधोक्षजः । पद्म-
नाभश्च देवः स्यात् प्रत्यहं दुःखदायकः ॥ इति पद्मनाभ-
लक्षणम् ॥ २९ ॥

पद्मपुराणे ॥ स्थूलो दामोदरो ज्ञेयः सूक्ष्मचक्रो भवेत्तु सः ।
चक्रे तु मध्यदेशेऽस्य पूजितः सुखदः सदा ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥
दामोदरस्तथा स्थूलो मध्यचक्रः प्रतिष्ठितः । प्रकौर्त्तित इति
क्वचित् पाठः । दूर्वाभं द्वारसङ्कीर्णं पीतरिखायुतं शुभम् । पीत-
रेखा तथैव चेति ब्रह्मपुराणे पाठः ॥ १ ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ उपर्य-
धस्य चक्रे वे नातिदीर्घं मुखे विलम् । मध्ये च रेखा लम्बैका
स च दामोदरः स्मृतः । अन्यत्र । स्थूलो दामोदरो ज्ञेयः सूक्ष्म-
रन्ध्रो भवेत्तु यः । चक्रे तन्मध्यदेशस्थे पूजितः शुभदः सदा ॥
प्रकृतिखण्डे । द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥
मत्स्यसूक्ते । विश्वक्सेनमतिस्थूलं स तु दामोदरः स्मृतः ॥ इति
दामोदरलक्षणम् ॥ ३० ॥

ब्रह्मपुराणे । सुदर्शनस्तथा देवः श्यामवर्णो महाद्युतिः ।
वामपार्श्वे गदाचक्रे रेखा चैव तु दक्षिणे ॥ पद्माकारेण

पङ्क्तिः सा यत्र रेखामयी भवेत् । स सुदर्शन इत्येव ख्यातः
पूजाफलप्रदः ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ सुदर्शनं द्विधा ज्ञेयं लक्षणं
तारयोगतः । एकचक्रं शिरीदेशे कृष्णवर्णमुखस्तथा । सुदर्शनः
स विज्ञेयः सर्वपापप्रणाशनः ॥ पद्माकारं बृहद्द्वारं निम्ननाभि
सुदर्शनम् ॥ इति सुदर्शनलक्षणम् ॥ ३१ ॥

वैखानरसंहितापुराणसंग्रहमृसिंहपुराणब्रह्माण्डपुराणेषु ॥
द्वारदेशे समे चक्रे दृश्यते नान्तरीयके । वासुदेवः स विज्ञेयः
शुक्लाभश्च स्ततेजसा । शुक्लाभश्चातिशोभन इति क्वचित् पाठः ।
नान्तरीयके संलग्ने ॥ अग्निपुराणे । वासुदेवः सितो द्वारि
संलग्नश्च द्विचक्रकः ॥ प्रकृतिखण्डे ॥ द्वारदेशे द्विचक्रश्च
सयौकश्च समं स्फुटम् । वासुदेवश्च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम् ॥
ब्रह्मपुराणे ॥ शुक्लादिवर्णसंयुक्तो द्विचक्रः पद्मसम्भवः । वासु-
देवो जगज्ज्योतिः कृष्णः पीताम्बरोऽव्ययः ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ।
प्रद्युम्नः सूक्ष्मवक्त्रस्तु पीतवर्णस्तथैव च । मकराभाश्च वै रेखाः
पार्श्वतः पृष्ठतोऽपि च । अग्निपुराणे तु विशेषः ॥ सूक्ष्मवक्त्रे
बहुच्छिद्रः प्रद्युम्नो नीलदीर्घकः ॥ पद्मपुराणे ॥ प्रद्युम्नः
सूक्ष्मचक्रः स्यान्नीलाम्बुजनिभस्तथा । स ददाति श्रियं नृणां
भक्त्या चैव प्रपूजितः ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रश्च नवी-
ननौरदप्रभम् । शुषिरं छिद्रबहुलं गृहिणाञ्च सुखप्रदम् ॥
ब्रह्मवैवर्ते ॥ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतदीप्तिस्तथैव च । शुषिरं
छिद्रबहुलं दीर्घाकारन्तु तद्वेत् ॥ इति प्रद्युम्नलक्षणम् ॥ ३२ ॥

ब्रह्मपुराणब्रह्माण्डपुराणयोः । अनिरुद्धस्तु नीलाम्बो
वर्त्तुलश्चातिशोभनः । रेखात्रयपरिवृतो देवः पद्मेन लाञ्छितः ॥
ब्रह्माण्डपुराणे ॥ कृष्णवर्णः समद्वारः चक्रं नाभिसमीपगम् ।
सूक्ष्मचक्रं भवेद्दूर्ध्वं पार्श्वचक्रेण पुण्यकृत् । अनिरुद्ध इति प्रोक्तः
सर्वलोकैककारणम् ॥ ब्रह्मवैवर्ते । अनिरुद्धन्तु पीताभं वत्तु-

लङ्घातिशोभनम् । सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
ब्रह्मपुराणे ॥ अनिरुद्धस्तु नीलाभो वर्तुलङ्घातिशोभनः ।
रेखात्रयन्तु तद्धारि पृष्ठे पद्मन्तु लाञ्छितम् ॥ इत्यनिरुद्ध-
लक्षणम् ॥३१॥

ब्रह्माण्डपुराणे । मध्यचक्रः सुवर्णश्च मस्तके पृथुचक्रकः ।
पुरुषोत्तमो भवेद्देवः पूजकस्य शुभप्रदः ॥ पुराणसंग्रहे ॥ अत-
सौपुष्पसङ्काशो विन्दुना परिभूषितः । पुरुषोत्तम उक्तोऽसौ
सर्वसौभाग्यवर्धनः ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ विदिक्षु दिक्षु सर्वासु
यस्योर्ध्वं दृश्यते मुखम् । पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिफल-
प्रदः ॥ इति पुरुषोत्तमलक्षणम् ॥३४॥

ब्रह्मपुराणे ॥ अतिरूष्णो रक्तरैखावृतदेहः सचक्रकः ।
किञ्चित्कपिलसंयुक्तः सूक्ष्मो वा स्थूल एव च । अधोक्षज इति
ख्यातः पूजकस्य शुभप्रदः ॥ इति अधोक्षजलक्षणम् ॥३५॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ चतुर्भिश्चैव चक्रैस्तु वामे दक्षिणपार्श्वके ॥
अधिष्ठितो मुखे रक्तः कुण्डलद्वयशोभितः । शङ्खचक्रगदाशार्ङ्ग-
वाणकौमोदकोधरः । सुषलध्वजकश्चेतच्छत्ररक्ताङ्गुशैर्यतः ।
सोऽच्युतः कथितो नाम्ना दुर्लभस्तु सदा नृणाम् ॥ इत्य-
च्युतलक्षणम् ॥३६॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ उपेन्द्रो मणिवर्णश्च मोहचक्रोऽतिशोभनः ।
श्यामलः कोमलाभश्चपार्श्वचक्रः सुपूजितः ॥ इत्युपेन्द्रलक्षणम् ॥३७॥

ब्रह्मपुराणे ॥ द्वारद्वये चतुश्चक्रं जनार्दन इहोच्यते ।
चक्रद्वयं मध्यगतं चक्रद्वयञ्च पृष्ठतः ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ पूर्वभा-
गैकवदनः पश्चादेकाग्रसंयुतः । जनार्दनश्चतुश्चक्रः श्रीप्रदो
रिपुनाशनः ॥ ब्रह्मवैवर्ते प्रकृतिखण्डे ॥ एकद्वारे चतुश्चक्रं
नवीननारदोपमम् । लक्ष्मीजनार्दनं ज्ञेयं रक्षितं वनमालया ॥
इति जनार्दनलक्षणम् ॥३८॥

ब्रह्मपुराणे ॥ ऊर्ध्वमुखं विजानीयात् श्यामाभं वर्तुलं
शुभम् । अधोविन्दुसमायुक्तं सर्वकामार्थसाधकम् ॥ ब्रह्माण्ड-
पुराणे ॥ अन्यैर्द्वारसमोपेता हरिभूर्तिरुदाहृता ॥ इति
हरिलक्षणम् ॥ ३६ ॥

अग्निपुराणे ॥ अनन्तो नागभोगाङ्को नैकचक्राङ्कभूर्ति-
मान् ॥ पद्मपुराणे ॥ अनेकचक्रो बहुभिश्चिद्दैरघ्युपलक्षितः ।
अनन्तः स तु विज्ञेयः सर्वपूजाफलप्रदः ॥ पुराणसंग्रहे ॥
नानावर्णो ह्यनन्तः स्यान्नागभोगेन चिह्नितः । अनेकमुख-
संयुक्तः सर्वकामफलप्रदः ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ चतुर्दशद्वारप्रभ-
तिविंशत्या चक्रलोहितः । नानावर्णो ह्यनन्ताख्यो नागभोगेन
चिह्नितः ॥ ब्रह्मपुराणे ॥ अनन्तचक्रो बहुभिश्चिद्दैरघ्युपल-
क्षितः । अनन्तः स तु विज्ञेयः सर्वपूजाफलप्रदः ॥ प्रकृति-
खण्डे ॥ विमलचक्रं स्थूलञ्च नवीननीरदप्रभम् । अनन्ता-
ख्यञ्च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ इत्यनन्तलक्षणम् ॥ ४० ॥

दृश्यते शिखरे लिङ्गं शालग्रामसमुद्भवम् । अस्य योगेश्वरो
नाम ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ इति योगेश्वरलक्षणम् ॥ ४१ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ पार्श्वे वामे च पृष्ठे वा चामरद्वयसंयुता ।
पुण्डरीकाक्षभूर्तिः स्यात् सर्वलोकवशङ्करी । कमलद्वयसंयुतेति
पाठान्तरम् ॥ इति पुण्डरीकाक्षलक्षणम् ॥ ४२ ॥

पद्मपुराणसंग्रहब्रह्मपुराणेषु । चतस्रो यत्र दृश्यन्ते रेखाः
पार्श्वसमोपतः । द्वे चक्रे मध्यदेशे च सा शिला स्याच्चतुर्मुखः ॥
इति चतुर्मुखलक्षणम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ यज्ञमूर्तिस्तूभयथा पीतरक्तविमिश्रितः ।
द्वारं ह्रस्वमधश्चक्रं तूणं वा दक्षिणेष्वपि च ॥ इति यज्ञ-
मूर्तिलक्षणम् ॥ ४४ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ सितारुणासिताभश्च पृष्ठदेशे यदा भवेत् ।

अक्षमालाकृतिः पृष्ठे दत्तात्रेयः शुभप्रदः । कृष्णायतश्च पीतश्च
दत्तात्रेयाभिधो भवेदिति पाठान्तरम् ॥ इति दत्तात्रेय-
लक्षणम् ॥४५॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ शिशुमारो दीर्घकायो विलेशयोनि-
गह्वरः । पुरतः पृष्ठभागे तु चक्रेणैकेन संयुतः । पुरतश्चक्र-
द्वयं पृष्ठभागे एकं चक्रमिति चक्रत्रयमित्यर्थः । सर्वाधारः स
विज्ञेयः सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् ॥ इति शिशुमारलक्षणम् ॥४६॥

ब्रह्मपुराणे ॥ हंसस्तु धनुराकारो नीलश्वेतविमिश्रितः । चक्रप-
द्मसमोपेतः केवलो मोक्षदो भवत् ॥ इति हंसमूर्तिलक्षणम् ॥४७॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ परहंसः खगेशान ! मयूरगलसन्निभः ।
स्निग्धश्च पूतदन्तश्च वर्तुलद्वारसंयुतः । विलम्बे तथा चक्रे
दृश्यते त्वतिशोभने । चक्रस्य दक्षिणे पार्श्वे द्युमाने भास्करो
भवेत् । वराहरेखे दृश्येते तत्र वै विनतासुतः । मूर्तिः स्यात्
परहंसाख्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ इति परहंसलक्षणम् ॥४८॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ मुखे वा पार्श्वतो वापि मयूरगल-
सन्निभः । कृष्णवर्णः सूक्ष्मचक्रः पृथुलास्योऽसमप्रभः । लक्ष्मी-
पतिरिति ख्यातो लक्ष्मोसम्पत्तिदायकः ॥ इति लक्ष्मीपति-
मूर्तिलक्षणम् ॥४९॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ स्वर्णशृङ्गधरः सौम्यो वर्तुलः स्निग्धके-
शरः । चक्रे मध्ये मतः स्निग्धकृष्णरेखासमन्वितः । लक्ष्मीपति-
र्वैनतेय ! गरुडध्वजसंज्ञितः ॥ इति गरुडध्वजलक्ष्मी-
पतिलक्षणम् ॥ ५० ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ वटपत्रशायी भगवान् वर्तुलोपेतशोभनः ।
नलिनाक्षसमोपेतनीलश्वेतविमिश्रितः । चक्रस्य वामतः
शङ्खो दक्षिणे पद्ममेव च । वदनैके मध्यदेशे चतुश्चक्रस्त्रिवि-
न्दुकः ॥ इति वटपत्रशायिलक्षणम् ॥५१॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ चक्राणां विंशकतया शुक्लो विश्वम्भरः
शुभः ॥ इति विश्वम्भरलक्षणम् ॥ ५२ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ विश्वरूपोऽपि भगवान् द्विविधः परि-
कीर्तितः । विश्वरूपो हरिः साक्षाद्द्वारारतपरोत्तमः । बहु-
चक्राङ्कितोऽनेकमूर्तिरूपसन्वितः । पञ्चचक्रः स्थूलतरः पुरुषो
बहुचक्रकः । विश्वरूपो ह्यनन्तो वा पुच्छपौवादिकप्रदः ॥
इति विश्वरूपलक्षणम् ॥ ५३ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे । स्त्रिया गोस्तु स्तनाकारः सचक्रो वर्तुल-
स्तथा । पीताम्बरधरो देवः सौख्यदः फलदः सदा ॥
इति पीताम्बरलक्षणम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ सुवर्तुलो ऋष्वचक्रः सर्वाङ्गे हेमविन्दवः ।
सप्तवीरश्रवाः प्रोक्तः सर्वसौभाग्यवर्द्धनः ॥ इति सप्तवीरश्रवो-
लक्षणम् ॥ ५५ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ अमृताहरणो देवो लोलास्तनसमप्रभः ।
वर्तुलो बहुचिह्नश्च ऋष्वचक्रोऽतिकोमलः ॥ इति चक्र-
शणिलक्षणम् ॥ ५६ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ अभ्यन्तरे शङ्खचक्रे बहुलास्यसमन्वितः ।
बहुरूपी समाख्यातः पूजितो मोक्षदायकः ॥ इति
बहुरूपिलक्षणम् ॥ ५७ ॥

तत्रैव । द्वारचक्रो रक्तवर्णी जगद्योनिः शुभप्रदः ॥
इति जगद्योनिलक्षणम् ॥ ५८ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ चतुस्त्रयः समन्ताद्वा चक्रद्वययुतोऽपि वा ।
शिवनाभियुतो मूर्द्धि पृष्ठे वापि तथैव च । एतद्वरिहरं
विद्यात् सुखसौभाग्यदायकम् ॥ इति हरिहरमूर्ति-
लक्षणम् ॥ ५९ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ चतुश्चक्रो हरिहरो दिमुखो दिमुखोऽ-

प्राधः । विनश्यति गृहस्थानां धनं चैवं कुलं क्रमात् ॥
इति शिवनारायणलक्षणम् ॥ ६० ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ मूर्तिर्वर्तुलरेखाभिरावृतो नीलवर्णवान् ।
दीर्घास्थः पृथुवक्त्रस्तु स्वयम्भूरिति विश्रुतः । केवलं मोक्ष-
फलदो भक्तानान्तु न संशयः ॥ इति स्वयम्भूलक्षणम् ॥ ६१ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ शिवनाभियुतः पार्श्वे वामे वा
दक्षिणेऽपि वा ॥ स च शङ्करपूर्वाख्यो नारायण इतीरितः ॥
इति शङ्करनारायणलक्षणम् ॥ ६२ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ पितामहश्चतुर्वक्त्रश्चतुश्चक्रसमन्वितः ॥
इति पितामहलक्षणम् ॥ ६३ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ नरमूर्तिस्तु भगवान्तसीकुसुम-
प्रभः । एकनाभिसमोपेतो ब्रह्मसूत्रैकपार्श्वकः ॥ इति
नरमूर्तिलक्षणम् ॥ ६४ ॥

पद्मपुराणे ॥ नागवत् कुण्डलीभूत्वा रेखापङ्क्तिः स
शेषकः ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ अथवा कुण्डलीभूत उत्तमाङ्ग-
समन्वितः । शेषमूर्तिस्तु भगवान् रक्तवर्णसमन्वितः । प्रलम्बघ्न
इति ख्यातः पूजितो मृत्युदायकः । रक्तवर्णसमन्वितः प्रलम्बघ्न
इति सम्बन्धः । एतस्यैव पूजने दुष्टफलं न शेषमूर्तिरिति ॥
इति शेषमूर्तिलक्षणम् ॥ ६५ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ बाह्वो वाभ्यन्तरे वापि चक्रद्वादशसंयुता ।
सूर्यमूर्तिरिति ख्याता सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ इति सूर्य-
मूर्तिलक्षणम् ॥ ६६ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ अङ्गभोगावेकवक्त्रो द्वे समे दक्षिणा वह्निः ।
पद्मपत्राकृतिर्वापि हेमवर्णसमा कला । हैहयस्तु स विज्ञेयः
सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ इति हैहयमूर्तिलक्षणम् ॥ ६७ ॥

वज्रकीटोद्भवा रेखाः पङ्क्तीभूताश्च यत्र वै । शालग्राम-

शिलायां सा विष्णुपञ्जरसंज्ञिता ॥ इति विष्णुपञ्जर-
लक्षणम् ॥ ६८ ॥

पद्माकारे तु पङ्क्ती द्वे मध्यलम्बा च रेखिका । गरुडः स
तु विज्ञेयश्चतुश्चक्रो जनार्दनः ॥ ब्रह्माण्डपुराणे ॥ द्विपक्षाभ्या-
मशेषेण यद्भावं भुवि दुर्लभम् । विषमं चक्रदुर्लभं चक्रमेतत्
कलौ न हि । कल्मषौघविनाशि स्यादलम्बाकाररेखया ।
सुवर्णनिचया द्वित्रिचतुष्टयसमा च या । संयुक्ता शुभदा तु
स्यात् श्यामा नीला सितापि वा ॥ इति गरुडमूर्त्ति-
लक्षणम् ॥ ६९ ॥

पद्मपुराणे ॥ विष्णुरुवाच ॥ निवसामि सदा ब्रह्मन् !
शालग्रामस्य वैष्मनि । तत्रैव वर्णचक्रादिभेदे नामानि मे शृणु ।
शुक्लो रक्तस्तथा कृष्णो हिवर्णो बहुवर्णवान् । एकचक्रस्य चतथा
संज्ञाः पञ्च यथाक्रमम् । पुण्डरीकः प्रलम्बघ्नो रामो वैकुण्ठ-
एव च । विश्वक्सेन इति ब्रह्मन् ! फलमाद्येन मे शृणु । परमे-
ष्ठोति तत्रोक्तस्तथात्र वारुणान्तकः । अनन्तश्चेति विज्ञेयो नाना-
मूर्त्तिश्च यो भवेत् । राज्यं मृत्युं धनञ्चैव हानिञ्चैवास्थिता-
र्थकम् । ददाति पूजितो लोके तस्माज् ज्ञात्वाचयेन्नरः ।

एताश्चोक्तलक्षणलक्षिताः सर्वा अपि शालग्रामशिलामूर्त्तयो
द्विविधा ज्ञेयाः । तदुक्तं ब्रह्माण्डपुराणे ॥ मूर्त्तयो द्विविधा ज्ञेया
जलजाः स्थलजास्तथा । जलजाः क्रोमलाः स्निग्धाः स्थलजाः
पुरुषाः स्मृताः । पूर्वोक्तलक्षणलक्षितासु शालग्रामशिलामूर्त्तिषु
सूक्ष्मा एव मूर्त्तयः फलाधिक्यार्थं पूजनीयाः । शालग्रामशिलाल-
क्षणमुक्त्वा पद्मपुराणे तथोक्तत्वादयथा । एतन्नक्षणसंयुक्ताः शाल-
ग्रामशिलाः पुनः ॥ याश्च तास्यपि सूक्ष्माः स्थिताः प्रशस्ततराः
स्मृताः । यथा यथा शिला सूक्ष्मा महत्पुण्यं तथा तथा । तस्मात्तां
पूजयेन्नित्यं धर्मकामार्थसिद्धये । तत्राप्यामलकौतुल्या सूक्ष्मा

चातीव यां भवेत् । तस्यामेव सदा ब्रह्मन् ! श्रिया सह वसा-
भ्यहम् ॥ इति स्कन्दपुराणम् ॥ एवमेवात्र वर्णभेदेन पूजने
मूर्तिविशेष उच्यते । हेमाद्रौ विष्णुप्रोक्ते । ब्राह्मणैर्वासुदेवस्तु
नृपैः सङ्कर्षणस्तुष्टौ । प्रद्युम्नः पूजितो वैश्वैरनिरुद्धस्तु शूद्रजैः ।
चत्वारो ब्राह्मणैः पूज्यास्त्रयो राजन्यजातिभिः । वैश्यैर्द्विवैव
सम्पूज्यौ तथैकः शूद्रजातिभिः ॥ ब्रह्मगौतमेन तु विशेषोऽभि-
हितो यथा । लक्ष्मीनारायणानन्तनृसिंहरामकेशवाः । हिरण्य-
गर्भः प्रद्युम्नो गोपालो गरुडध्वजः । रामोऽनिरुद्धचक्रास्यदामो-
दरगदाधराः । चतुर्भुजो महानीलो सुकुन्दः पुरुषोत्तमः ।
पीताम्बरहरो ब्रह्माक्ष्णः श्रीधरमाधवौ । वासुदेवेति च ख्याता-
श्चतुर्विंशतयः शिलाः । चक्रास्येति चक्रं भग्नमास्यं यस्येति स
हयग्रीव इत्यर्थः । ब्रह्मेति हरिविशेषणम् । ब्रह्मक्षत्रिय-
विट्शूद्रपतिताभौष्टदोऽर्चितः । न च वर्णोऽधमानाञ्च न जातिर्न
च योषिताम् ।

ब्राह्मणानां पूजामूर्तिमाह । मुख्यैकद्विविंशदष्टादशपञ्चद-
शान्विता । ब्राह्मणानां विशेषेण पूजा होमश्च सर्वदा । गरुडकी-
सरिदुङ्गवा लक्ष्मीनारायणानन्तहिरण्यगर्भपुरुषोत्तमचतुःसंज्ञाः
शालग्रामशिलामूर्त्तयः । आद्यानां ब्राह्मणानां पूजने प्रशस्ताः ।
क्षत्रियाणां पूजने मूर्त्तिमाह । राज्ञां मुख्यैकद्विविंशत्येकादशन-
वाष्टमौ । दशद्विविंशतिमता सर्वदाभीष्टदायिका । लक्ष्मी-
नारायणानन्तलक्ष्णानिरुद्धगरुडध्वजगोपालरामश्रीधरसंज्ञामू-
र्त्तयः क्षत्रियाणां पूजने प्रशस्ताः । वैश्यानां पूज्यमूर्त्तिमाह ।
चतुर्विंशतिममैव त्रयोदशचतुर्दश । एकोनविंशका पूजा
योग्या नित्या शिला विशः । वासुदेवप्रद्युम्नदामोदरगदाधर-
पीताम्बरहरिलक्ष्मीनारायणसंज्ञा मूर्त्तयो वैश्यानां पूजने
प्रशस्ताः ।

सच्छूद्राणां पूज्यमूर्त्तिमाह ॥ त्रयोविंशैकविंशैकमुख्यैका
दशमी च या । पञ्चमैकोनविंशार्हा सच्छूद्राणामभौष्टदा । मा-
धवहरिलक्ष्मीनारायणाद्युतानिरुद्धकेशवपीताम्बरसंज्ञा मूर्त्तयः
सच्छूद्राणां पूजने प्रशस्ताः । चतुर्विंशतिषु मूर्त्तिषु अवशिष्टा
मूर्त्तयः नृसिंहचक्रास्यमहाजिनमुकुन्दसंज्ञा यतीनां पूजने
प्रशस्ता इत्यर्थः । स्कन्दपुराणे ॥ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यसच्छूद्राणां
यथाविधि । शालग्रामाधिकारोऽस्ति न चान्येषां कदाचन ।
स्त्रियो वा यदि वा शूद्रो ब्राह्मणक्षत्रियादयः । पूजयित्वा शि-
लाचक्रं लभन्ते शाश्वतं पदम् । ननु ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रि-
यादि न पूजयेत् ॥ इति विष्णुधर्मोत्तरवचनात् ॥ प्रणवोच्चार-
णाद्धोमात् शालग्रामशिलार्चनात् । ब्राह्मणीगमनाच्चापि
शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् । इति वचनाच्च क्षत्रियादीनां शाल-
ग्रामशिलामूर्त्तिपूजननिषेधात् । क्षत्रियादिभिः शालग्राम-
शिलामूर्त्तिपूजनं कर्त्तव्यं कथमिति चेन्न । ब्राह्मणक्षत्रिय-
विशां त्रयाणां मुनिसत्तम ! । अधिकारः स्मृतः सम्यक् शाल-
ग्रामशिलार्चने । स्त्रीशूद्रपतितानाञ्च पण्डानाञ्च विकर्म-
णाम् । नैवाधिकारो विज्ञेयः शालग्रामशिलार्चने । विष्णुभक्तै-
र्वैष्णवैश्च गोब्राह्मणहिते रतैः । शालग्रामशिलाचक्रं पूजनीयं
सदा मुने ! ॥ इत्यादिपद्मपुराणादिवचनैः पूर्वोदाहृतवचनैश्च
क्षत्रियादीनां शालग्रामपूजाश्रवणात् । ब्राह्मणस्यैव पूज्योऽहं
शुचैरप्यशुचैरपि । स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रपाताधिको मम ॥
इति लिङ्गपुराणवचने ब्राह्मणस्यैवेत्यत्रान्ययोगस्यवच्छेदपरिणैव-
कारेण ब्राह्मणमात्रस्यैव स्पर्शवत् पूजायामधिकारोऽवगम्यते ।
क्षत्रियादीनां स्पर्शमात्रं निषिद्धमिति । एवञ्च सति क्षत्रियादि-
पूजानिषेधकवचनानां स्पर्शमात्रनिषेधपरत्वात् । क्षत्रियादीनां
शालग्रामपूजाविधायकानि वचनानि स्पर्शहीनपूजाविषयत्वेन

योज्यानि । अतएव बृहदन्नारदीये ॥ स्त्रीणामनुपनीतानां
शूद्राणाञ्च महीश्वर ! । स्पर्शने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्क-
रस्य च । शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्री वापि पतितोऽपि वा । केशवं
वा शिवं वापि सृष्ट्वा नरकमाप्नुयात् । शूद्रैस्तु ब्राह्मणद्वारा
शालग्रामपूजनं कार्यम् । तदुक्तं पद्मपुराणे पुराणसंग्रहे च ॥
दोक्षायुक्तैस्तथा शूद्रैर्मन्दपानविवर्जितैः । कर्तव्यं ब्राह्मणद्वारा
शालग्रामशिलार्चनम् ॥ इति पद्मपुराणे ॥ शालग्रामशिलापूजां
विना योऽश्नाति मानवः । स चण्डालादिविष्टायामाकल्यं जा-
यते क्रिमिः ॥

अथ गृहे शालग्रामादिद्वयनिषेधः । वराहपुराणे ॥ गृहे
लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा । द्वे चक्रे द्वारकायान्तु नार्च्यं
सूर्यद्वयं तथा । शक्तिद्वयं तथा नार्च्यं गणेशद्वयमेव च । द्वौ
शङ्खौ नार्चयेत् क्वापि भग्ना च प्रतिमा तथा ॥ तथा । नार्चयेच्च
तथा शङ्खं मत्स्यादिदशनाङ्कितम् । गृहेऽग्निदग्धा भग्नाश्च
नार्च्वाः पूज्या वसुधारे ! । अर्च्चा प्रतिमा । एतासां पूजनाद्देवि !
न सुखं प्राप्नुयाद् गृही ॥ इति । शालग्रामाः समाः पूज्या
विषमा न कदाचन । समास्तु द्वितयं नार्च्यं विषमाष्वेकमेव हि ॥

अथ द्वादशशालग्रामपूजाफलम् ॥ पद्मपुराणे ॥ शिला द्वाद-
शतो वेश्य ! शालग्रामसमुद्भवाः । विधिवत् पूजिता येन तस्य
पुण्यं वदामि ते । कोटिद्वादशलङ्कैस्तु पूजितैः स्वर्णपद्मजैः ।
काशीवासो दिनान्यष्टौ दिवसैकेन तद्भवेत् । यः पुनः पूजये-
द्भक्त्या शालग्रामशिलाशतम् । उषित्वा स महर्लोके चक्रवर्तीह
जायते ॥

अथ शालग्रामविक्रयनिन्दा ॥ पद्मपुराणे ॥ शालग्रामशि-
लायां यो मूढ्यं गृह्णाति मानवः । विक्रेता चानुमन्ता च परौ-
क्षयानुमोदयेत् । सर्वेऽतिपापिनो ज्ञेया शखदःखस्य भागिनः ।

मुने ! किं बहुनोक्तेन नरकं याति दारुणम् । अन्यच्चक्राणि
मेकतन्त्राद्यनुसन्धेयानि ॥

अथ तुलसीदलैः शालग्रामपूजाफलम् ॥ काशीखण्डे ध्रुव-
वाक्यम् । शालग्रामशिला येन पूजिता तुलसीदलैः । स पारि-
जातमालाभिः पूज्यते रमणीयैः ॥

अथ शालग्रामद्वारकाचक्रयोरेकत्रावस्थानफलम् ॥ स्कन्द-
पुराणे ॥ शालग्रामोद्भवो देवो द्वावावतीसमुद्भवः । तयोश्च सङ्गमो
यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥

अथ शालग्रामाधिकरणकविष्णुपूजाफलम् ॥ शालग्राम-
शिलासंज्ञे यः करोति समार्चनम् । तेनार्चितं कार्तिकेषु युगा-
नामेकसप्ततिम् ॥

इति प्राणतोषिण्यां पञ्चमे भक्तिकाण्डे शालग्राम-

प्रकरणकथनरूपसप्ततुर्थपरिच्छेदः ।

अथ द्वारकाशिलालक्षणम् ॥ स्कन्दपुराणे ॥ चक्रे तु दृश्यते
लिङ्गं शिलायां नारद ! क्वचित् । श्रीधरः स तु विज्ञेयः सर्व-
कामफलप्रदः ॥ इति श्रीधरलक्षणम् ॥ १ ॥

पुराणसारे ॥ द्वारकाकार्तिकमाहात्म्ये ॥ चक्रमेकं मध्य-
भागे खेता भागे खुरान्विता । शिवनाभिरिति ख्याता भुक्ति-
मुक्तिफलप्रदा । खुरान्विता वीथियुता । ब्रह्माण्डपुराणे ॥
कूर्माकृतिरधोभागे लिङ्गभागे खुरान्वितः । शिवनाभिरिति
ख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ नृसिंहपुराणे ॥ कूर्मचक्रमधो-
भागे खेता भागे खुरान्विता । शिवनाभिरिति ख्याता भुक्ति-
मुक्तिफलप्रदा । यवमात्रन्तु गर्तं स्याद् यवाङ्गं लिङ्गमुच्यते ।
शिवनाभिरिति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ॥ इति शिव-
नाभिलक्षणम् ॥ २ ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ जटापाशो अघोरा सा गृहिभिर्यदि

पूजिता । हेमवर्णजटायुक्ता हेमबिन्दुसमन्विता । मस्तके गो-
खुरा तावदञ्जनाचलसन्निभा । सद्योजाताभिधा श्रेष्ठा पुत्र-
पौत्रधनप्रदा ॥ इति सद्योजातलक्षणम् ॥ ३ ॥

तत्रैव ॥ शिरोमध्ये रक्तवर्णा श्वेतचन्द्रजटायुता । वाम-
देवाभिधा श्रेष्ठा गृहिभिः पूजिता सदा ॥ इति वामदेव-
लक्षणम् ॥ ४ ॥

तत्रैव ॥ किञ्चित्कपिलसंयुक्ता क्षण्णीलजटायुता । पार्श्व-
रेखासमोपेता ईशानी मुक्तिदा भवेत् ॥ इति ईशानल-
क्षणम् ॥ ५ ॥

सूर्यवियुत्तमनिभा पार्श्वदेशे जटा शशी । तत्पुरुषाभि-
धाना स्याद् दुर्लभा सर्वकामदा ॥ इति तत्पुरुषलक्षणम् ॥ ६ ॥

द्विलिङ्गे वा त्रिलिङ्गे वा चतुःपञ्चादिलिङ्गवान् । तापिष्क-
कोरकाकारो देवदेवः सदाशिवः ॥ इति सदाशिवलक्षणम् ॥ ७ ॥
इत्यधोरादिपञ्चकलणम् ॥

प्रयोगपारिजाते ॥ द्विनाभिश्चक्ररूपा या भवेद्भरिहरात्मिका ।
नाभौ लिङ्गेन युक्ता वा श्वेताभा वै खुरान्विता । शिवनाभि-
रिति ख्याता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । वासुदेवमयं क्षेत्रं लिङ्गं
शिवमयं स्मृतम् । तस्माद्भरिहरक्षेत्रे पूजयेच्छङ्कराच्युतम् ।
भवेच्छिलाशतैः शस्ता चतुर्वर्गफलप्रदा ॥

अथ द्वारकाशिलामाहात्म्यम् ॥ स्कन्दपुराणे ॥ द्वाराचक्र-
शिला देवि ! भद्रा पाशसमुद्रिता । तत्पात्रसहितं तत् स्या-
त्तीर्थं द्वादशयोजनम् । स्नेच्छदेशे शुचौ वापि चक्राङ्गो यत्र
तिष्ठति । योजनानि तथा त्रीणि मम क्षेत्रं वसुन्धरे ! । तन्मध्ये
म्रियते यस्तु पूजकः सुसमाहितः । शतबाधाविनिर्मुक्तो न पुनः
मोऽपि जायते । चक्राङ्गितस्य सान्निध्ये यत्कर्म क्रियते नरैः ।
स्नानं दानं जपो होमः सर्वं भवति चाक्षयम् । संवत्सरान्तु यत्

पापं मनसा कर्मणा कृतम् । तत्सर्वं नश्यते पुंसां सकृच्चक्राङ्क-
दानतः । ज्वरदाहो विषञ्चैव अग्निश्चौरभयं तथा । सर्वे ते
प्रशमं यान्ति सकृच्चक्राङ्कमार्जनात् । भूतप्रेतपिशाचाश्च डाकि-
न्यश्च वसुधरे ! । सर्वे ते प्रलयं यान्ति पञ्चचक्रान्वितं न्यसेत् ।
भक्त्या वा यदि वाभक्त्या चक्राङ्कं पूजयेन्नरः । अपि चेत् स
दुराचारो मुच्यते नात्र संशयः । संवत्सरन्तु यः कुर्यात् पूजा-
स्पर्शनदर्शनम् । विनाशाख्येन योगेन मुच्यते नात्र संशयः ।

अथ द्वारकाशिलावर्णविशेषलक्षणम् ॥ पद्मपुराणे ॥ कृष्णा
मृत्युप्रदा नित्यं कपिला तु भयावहा । औन्नत्यं कर्तुरा
दद्यात् पीता धनविनाशिनी । धूम्राभा पुत्रनाशाय भग्ना
भार्याधनापहा । श्वेतास्तिलाः सुसम्पूर्णाः सर्वकामार्थ-
दायिकाः । अच्छिद्रचक्रा सा पूज्या दुःखदारिद्र्यनाशिनी ।
वर्तुला चतुरस्रा च पूजिता सिद्धिदायिका । सुखदा समचक्रा
च विषमा दुःखदा भवेत् ॥

निषिद्धशिलापि तत्रैव ॥ छिद्रा भग्ना विकोणा च तथा
विषमचक्रिका । अर्धचन्द्राकृतिर्या च पूज्यास्ता न भवन्ति हि ।
योगपारिजाते तु विशेषः ॥ भिन्नश्चैवार्थनाशाय स्थूलो बुद्धि-
विनाशकः । दीर्घश्चायुर्हरो ज्ञेयो रूक्ष ऋद्धिविनाशकः ।
शुक्लवर्णा शुभा ज्ञेया दन्तचक्रा तथैव च ॥

चक्रमेदे मूर्त्तिमेदोऽग्निपुराणे उक्तो यथा ॥ सुदर्शनस्त्रेक-
चक्रे लक्ष्मीनारायणो ह्येव । अच्युतः स्यात्तत्त्रिके च युतो देव-
स्त्रिविक्रमः । चकारो वार्थं त्रिचक्रोऽच्युतस्त्रिविक्रमो वेत्यर्थः ।
जनार्दनश्चतुश्चक्रो वासुदेवश्च पञ्चभिः । षट्चक्रश्चैव प्रद्युम्नः
सङ्कर्षणश्च सप्तभिः । पुरुषोत्तमश्चाष्टचक्रो नवव्यूहो नवात्मकः ।
दशावतारो दशभिर्दशैकेनानिरुद्धकः । द्वादशात्मा द्वादशभि-
रत ऊर्ध्वमनङ्गकः ॥ गरुडपुराणे तु चतुश्चक्रश्चतुर्भुज इति

विशेषः । चक्रभेदेन विशेषोऽपि तत्रैव ॥ एकचक्रशिला पूज्या
भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । द्विचक्रश्चाच्युतो देवो देवेन्द्रत्वफलप्रदः ।
त्रीप्रदो रिपुहन्ता च चतुश्चक्रो जनार्दनः । पूजयेद्भक्तिसंयुक्तः
सुगन्धैः कुसुमादिभिः । पञ्चभिर्वासुदेवः स्यात् प्रभुश्चक्रोः सदा-
र्चितः । जन्ममृत्युभयात्ताता भवेन्नैवात्र संशयः । षड्भिक्ष-
कैश्च प्रद्युम्नो लक्ष्मीकीर्त्तिप्रदो भवेत् । पूजितो भक्तिभावेन
चक्रतीर्थशिलोद्भवः । बलभद्रशिला ज्ञेया सप्तचक्राङ्गिता खगः ।
पूजितस्तुष्यते देवः पुत्रपौत्रप्रदो भवेत् । वाञ्छितं वसुभिश्चक्रै-
र्ददाति पुरुषोत्तमः । नवव्यूहो नवचक्रो दुर्लभं यत् सुरैरपि ।
पूजितः केशवस्तस्य ददाति स्थानमुत्तमम् । राज्यदो दशभि-
श्चक्रैर्दशवतारसंज्ञकः । दशवतारपूजा स्याच्चक्राङ्गस्यास्य पूज-
नात् । एकादशभिरैश्वर्यमधिकञ्च प्रयच्छति । पूजितो भक्ति-
भावेन चक्रतीर्थशिलोद्भवः । तत्रैव प्राप्यते देवश्चक्रैर्द्वादशभि-
श्चितः । पूजितः सर्वकामाणामनन्तफलदायकः । द्वादशात्मा
स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिप्रदोऽर्चितः । अत ऊर्ध्वं परात्मासौ सदा
प्रीतिविवर्द्धनः । पूजितः सर्वलोकात्मा विष्णुलोकप्रदायकः ।
इति चक्राङ्कितशिलाः कथिताः कुलनामतः ॥ एकचक्रविषये
विशेषस्तु ॥ प्रयोगपारिजाते ॥ एकचक्रविशेषोऽस्ति न विशेष-
स्तथोच्यते । शुक्लरक्तं रथा रक्तं द्विवर्णं बहुवर्णकम् । यद्येक-
चक्रिणः स्युश्च तेषां संज्ञा भवेत् क्रमात् । पुण्डरीकः प्रलम्बघ्नो
रामो वैकुण्ठ एव च । विश्वेश्वर इति ब्रह्मन् । तेषां पूजाफलं
शृणु । मोक्षं मृत्युं विवादञ्च दारिद्र्यं परतन्त्रताम् । ददाति
पूजकस्यासौ तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ इति द्वारकाशिला-
लक्षणम् ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ॥ सर्वत्र लोहिताकारा मूर्ध्नि रक्तप्रभा मता ।
अपीठे पीठमाविश्य कृत्वा सम्प्रोक्षणं विधम् । त्यजेत्तत्र शिवं

तेषां प्रतिष्ठा न च सीयते । दग्धं श्लक्ष्णं क्षताङ्गञ्च क्षिपेत्क्षिप्तं
जलाशये । सन्धानयोग्यं सन्धाय प्रतिष्ठादिकमाचरेत् । वराहा-
विकलं लिङ्गं देवं पूजापुरःसरम् । आदाय हृदि सन्धानं प्रा-
णश्चाप्युक्तमाचरेत् । पृष्ठे लिङ्गे चावरे वा शूद्रौघैरप्रतिष्ठिते ।
रुद्राभासे वर्तते धीमान् विशोऽर्थात् समर्चयेत् ॥ सिद्धान्तशेखरे ॥
लिङ्गादीनाञ्च बीजानां प्रोच्यते विधिरुद्धतः । सर्वरिष्टविना-
शार्थं सर्वप्राणिहितार्थकम् । लिङ्गस्य पण्डिकायाश्च प्रतिमा
मुखलिङ्गयोः । सर्वेषां परिवाराणां हर्म्यप्रासादयोस्तथा । उच्चा-
रश्चोद्वृतिः प्रोक्ता चोच्चारं हेतुरुच्यते । स्फुटितं खण्डितं भिन्नं
दग्धं वा सति चाग्निना । उन्मत्तैः शत्रुभिश्चौरैः करिणाभोज-
माहृते । लिङ्गे पीठादिकं वापि विशीर्णं कालपर्ययात् । देहे
जीर्णं यथा देही त्यक्तान्यमुपगच्छति । लिङ्गादीनि तु
जीर्णानि तेषां मुञ्चन्ति देवताः । ततः प्रैतांश्च वेताला जीर्णं
दृष्ट्वाश्रयन्ति च । लिङ्गादि सत्त्वशून्यत्वात्तथा च ब्रह्मराक्षसाः ।
कर्तुर्नृपाणां राष्ट्रस्य तद्ग्रामस्य विशेषतः । पीडां कुर्वन्ति
तेऽप्युग्रां दुर्भिक्षमरणादिकम् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुर्यादु-
च्चारणक्रियाम् ॥ इति लिङ्गाद्युच्चारविधिः ॥

तद्यतिप्रसवस्तु तत्रैव ॥ स्वयम्भुवे च पीठे च वाणलिङ्गे
तथैव च । ऋषिभिश्चासुरैर्देवैस्तत्त्वविद्भिः प्रतिष्ठिते । लिङ्गे जी-
र्णादिदुष्टेऽपि नोद्धारं तत्र कारयेत् । स्वयम्भुवादिलिङ्गानां
लिङ्गपीठे परित्यजेत् । उक्तैर्दोषादिभिर्दुष्टं मानुषेषु परित्य-
जेत् । चौराद्यैश्चालितं लिङ्गं स्थापयेन्निर्ब्रणं पुनः । यदि
पुनस्तस्मिन् निर्ब्रणं भवेत् तदा तदेव पुनः स्थापयेत् ॥ तथा ।
बाहुपादशिरोहीनां कर्णनासास्यहीनकाम् । तादृशीं परि-
वाराणां प्रतिमां परिवर्जयेत् । यद्द्रव्यं परिमाणञ्च लिङ्गं वा
प्रतिमापि वा । त्यक्तं तत्तेन मानेन तद्द्रव्येण प्रकल्पयेत् । कार-

येनान्यमानेन नान्यद्रव्येण तदबुधः । नान्याकारश्च नामन्त्रं
स्थापयेत् पुनरुत्तमाम् । स्रोतसापहृते लिङ्गे प्रासादे वा तद-
न्यतः । तत्समीपगते देशे स्थापयेद्वाधवर्जिते । प्राकारे पतिते
हर्म्ये गोपुरे मण्डपादिके । तदाकारश्च तद्रव्यं तन्मानं तत्र
कारयेत् । कथं योग्यशिला ग्राह्या अदुष्टाश्च तथाविधाः । हीन-
द्रव्यकृतं हर्म्यं श्रेष्ठैर्द्रव्यैः समाचरेत् । हीनं व्याप्यधिकं मान-
माकारं वा न कारयेत् । एवमुक्तेन मार्गेण दीपैरुक्तैर्विचारयेत् ।
लिङ्गपीठादिकं जीर्णं तदुद्धारं तदाचरेत् । तिथिनक्षत्रवारादीं-
स्तदर्थं न विचारयेत् । जीर्णं चोद्धारयेज्जीर्णमजीर्णं रक्षयेद्-
बुधः ॥ अग्निपुराणे ॥ सुस्थितं दुःस्थितं वापि शिवलिङ्गं न
चालयेत् । शतेन स्थापनं कुर्यात् सहस्रेण तु वाणजम् । सुस्थित-
दुःस्थितलक्षणमपि तत्रैव । पूजितादिभिश्च संयुक्तं जीर्णाद्यर्मापि
सुस्थितम् । पूजया रहितं यत्तददुष्टमपि दुःस्थितम् ॥

अथ शालग्रामपूजा ॥ ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः
सहस्रपात् । स भूमिं सर्वतो वृत्त्य अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ इत्यादि-
ना पुरुषसूक्तमन्त्रैरेकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्वा शङ्खजलेन जलान्तरेण
वा शालग्रामं स्नापयित्वा नववस्त्रेण कराभ्यां वा जलमपनीय
सचन्दनतुलसीपत्रोपरि निधाय तस्योपरि सचन्दनतुलसीपत्रं
दत्त्वा ताम्रादिपात्रे संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं संस्थाप्य गणेशादि-
त्यादिनवग्रहेन्द्रादिदशदिक्पालान् सम्पूज्य पुनरर्घ्यं स्थापनं
कृत्वा । नां हृदयाय नम इत्यादिना अङ्गन्यासं करन्यासश्च वि-
धाय शालग्रामस्य पूर्वार्धे शान्त्यन्तं कर्त्तुं हर्त्तुं धात्रे विधात्रे
सामवेदाय यजुर्वेदाय ऋग्वेदाय अथर्ववेदाय प्रणवादिनमोऽ-
न्तेन पूजयेत् । ततः पुष्पं गृहीत्वा ध्यायेद्यथा । ओं ध्येयः
सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
कीरवान् कनककुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्यवपुर्वृतशः

कृचक्रः ॥ इत्यनेन ध्यात्वास्त्रशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसोपचारेण
 सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा एतत्पाद्यं श्रीं नमो नारायणाय नमः ।
 एषोऽर्घं इति यजुर्वेदी । ऋग्वेदी तु एषोऽर्घ्यः । सामगद्येदिद-
 मर्घ्यं इति वदेत् । अर्घ्यः पुमान् यजुःष्वेव निर्यकारो विधीयते ।
 कृन्दोगानां क्लीबलिङ्गं पिण्डे लिङ्गविपर्ययः ॥ इति वचनात् ।
 तत एतदाचमनोयम् । एष गन्धः । एतत् पुष्पम् । एतत् तुलसी-
 पत्रम् । एष धूपः । एष दीपः । एतन्नैवेद्यम् । एतत्पानार्थ-
 जलम् । एतत् पुनराचमनोयम् । एतत्ताम्बूलम् । इत्यादि
 यथाशक्ति सम्पूज्याक्षरपूजां कुर्याद् यथा ॥ श्रीं श्रीं नमः । श्रीं
 न नमः । श्रीं सो नमः । श्रीं ना नमः । श्रीं रा नमः । श्रीं य
 नमः । श्रीं णा नमः । श्रीं य नमः । ततश्चक्रं पूजयेत् । चक्र-
 पूजाप्रमाणमग्रे वक्ष्यते । पूजाक्रमो यथा । श्रीं आचक्राय नमः ।
 एवं विचक्राय । सुचक्राय । त्रैलोक्यरक्षणचक्राय । सुदर्शन-
 चक्राय । दैत्यान्तकचक्राय । असुरान्तकचक्राय । जगच्चक्राय ।
 परमचक्राय । शालग्रामशिलाधिष्ठातृवासुदेवाय । प्रणवादि-
 त्तमोऽन्तेन पूजयित्वा यथाशक्ति जप्त्वा गुह्यादिना जपं समर्थ्य ।
 श्रीं अविनयमपन्नय विष्णो ! दमय मनः शमय विषयरसद-
 णाम् । भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥१॥ दिव्य-
 धुनीमकरन्दपरिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे । श्रीपतिपदारविन्दे
 भवखेदच्छिदेऽरविन्दे ॥२॥ सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं
 न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरङ्गः कचन समुद्रो न तारङ्गः
 ॥३॥ उद्धृतनगनगभिदनुजकुलामित्रशशिदृष्टे । दृष्टे प्रभवति
 न भवति भवतिरस्कारः ॥४॥ मत्स्यादिभिरवतारैरवतारय तां
 सुधाम् । परमेश्वर ! परिपाल्यो भवतापभौतोऽहम् ॥५॥ दामो-
 दर । गुणमन्दिर ! सुन्दरवदनारविन्द ! गोविन्द । भवजलधि-
 मयनमन्दर । परमंदरमपन्नय त्वं मे । नारायण ! कृष्णामय !

शरणं करवाणि तावकौ चरणी । इति षट्पदी मदौये वदन-
सरोजे सदा वसतु ॥ ६ ॥ इति यमेनोक्ता षट्पदी समाप्ता ॥
इत्यनेनार्घ्यपात्रं गृहीत्वा प्रदक्षिणत्रयं कुर्यात् । ततः शङ्खं
शिरसि भ्रामयित्वा त्रिभिरष्टाङ्गं पञ्चाङ्गं वा प्रणमेत् ॥ यथा ।
ध्येयं सदा परिभवन्नमभीष्टदोहं तीर्थास्यदं शिवविरिञ्चिनुतं
शरण्यम् । भृत्यार्त्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष !
ते चरणारविन्दम् ॥ १ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्वजसुरेक्षितराजलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् । मायासृगं दयितयेक्षित-
मन्वधावहन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम् ॥ २ ॥ ओं नमो
ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोवि-
न्दाय नमो नमः ॥ इति प्रणम्य प्रार्थयेद्यथा । नाथ ! योनि-
सहस्रेषु येषु येषु ब्रजाम्यहम् । तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु
सदा त्वयि ॥ या प्रौतिरतिरेकाणां विषयेष्वनपायिनी । त्वाम-
नुस्मरतः सा मे हृदयान्नापसर्पतु ॥ युवतीनां यथा यूनि यूनाश्च
युवती यथा । मनोऽभिरमते तद्वत्सलो मे रमतां त्वयि ॥ ततः
कृतार्थोऽस्मीत्युक्त्वा तथा विभाव्य च नृत्यगौतादिकं कृत्वा । ओं
कृष्ण ! कृष्ण ! महाबाहो ! भक्तानामार्त्तिनाशनम् ॥ सर्वपापप्रशमनं
पादोदकं प्रयच्छ मे । इत्यनेन चरणामृतं पीत्वा तच्छेषम् । ओं
अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् । विष्णुपादोदकं
पुण्यं शिरसा धारयाम्यहम् । इत्यनेन शिरसि धारयेत् । शि-
रसि धारणफलम् ॥ अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
शालग्रामशिलातोयं योऽभिषेकं समाचरेत् । स स्नातः सर्व-
तीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । पीत्वा शीर्षे धारयेद्यो विष्णुलोकं
स गच्छति ॥ वीरमित्रोदयष्टतवृहन्नारदौये ॥ हृदि रूपं
मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः । पादोदकञ्च निर्मात्र्यं मस्तके यस्य
सोऽच्युतः । मृत्युकाले तु यस्यास्य दीयते पादयोर्जलम् । अपि

पापसमाचारः स गच्छेद्विष्णुमव्ययम् इति मृत्युकाले विष्णु-
पादोदकमक्षणफलम् ॥ तोयञ्च तुलसीञ्चैव चन्दनं द्विजमञ्जकम् ।
घण्टा ऋचा शिला ताम्रं नवभिस्त्ररणादकम् । ऋचा पुरुषसूक्त-
मन्त्र इति चरणोदकलक्षणम् । वशिष्ठसंहितायाम् । शाल-
ग्रामशिलातोयमपोत्वा यस्तु मस्तके । प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा
स निगद्यते । विष्णोः पादोदकं पीतं कोटिजन्माचनाशनम् ।
तदैवाष्टगुणं पापं भूमौ विन्दुनिपातनात् । विष्णुपादोद-
कात्पूर्वं विप्रपादोदकं पिबेत् । विरुद्धमाचरन्बोहादात्महा स
निगद्यते । पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे । सागरे
यानि तीर्थानि पदे विप्रस्य दक्षिणे । इति विष्णुपादोदक-
माहात्म्यार्गभपानमन्त्रः । वल्ल ! तुभ्यं मया दत्तं पिब शिषं जरा-
मृतम् । सर्वदा सुखदं देव ! जयं देहि रिपुं दह ॥ इति पादो-
दकदानमन्त्र इति प्रसङ्गाह्निखतम् ॥ नैवेद्यमक्षणमन्त्रः ।
ओं उच्छिष्टभोजनं तस्य वयमुच्छिष्टकाङ्क्षिणः । येन नीलवरा-
हेण हिरण्याक्षो निपातितः दधिवामनादेमन्त्रविशेषादयस्तु
तन्ममारेऽनुसन्धेयाः ॥ इति प्राचीनपद्धतिधृतशालग्रामपूजा ॥

अथ विष्णुपूजा ॥ सनत्कुमारतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ ब्राह्मे मु-
हूर्त्ते उत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः । आसने उपविश्याथ गुरुं
नत्वा पुटाञ्जलिः । आत्मानं ब्रह्मणो रूपं चिन्तयेच्च मुहुर्मुहुः ।
जह्या मन्त्रञ्च सर्वेषां वादिनां विजयी भवेत् । ततः स्नात्वा
शुचिर्भूत्वा सन्ध्यादीन् वैदिकांस्तथा । कुर्याद् गुरुरपदेशेन
लौकिकानपि देशिकः । श्रीकृष्णं तर्पयामोति मूलमुच्चार्य
तर्पयेत् । पूजाद्वारे चोपविश्य पादप्रक्षालनं सुधीः । शिखाया
बन्धनञ्चैव चास्त्रमन्त्रेण मन्त्रवित् । आचम्य द्वारदेवांस्तु पूजयेत्
साधकोत्तमः । द्वारदेवतापूजा तु पूर्वमुक्ता । विघ्नानुच्चाटयित्वा
तु इत्तभूम्यार्विशोधनम् । गुरुं नत्वा गणेशञ्च वास्तुपूजां समा-

चरेत् । ब्रह्माणं पूजयित्वा तु आत्मानमनमतः परत् । भूत-
शुद्धिं विधायाथ देवोऽहं चिन्तयेद्बुधः । ऋष्यादीन् न्यस्य
सर्वत्र मातृकार्णान् ततः परम् । प्राणायामत्रयं कुर्यादङ्गन्या-
सञ्च मन्त्रवित् । आचक्रञ्च विचक्रञ्च सुचक्रञ्च द्विजोत्तमः ।
त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरान्तकमेव च सुदर्शनं जगच्चक्रं दैत्या-
न्तं परमं महत् । एकैकं पूर्वतः कृत्वा चक्रशब्दं नियोजयेत् ।
चतुर्थ्यन्तञ्च संसाध्य स्वाहाशब्दमनन्तरम् । तथा चाङ्गं समु-
च्चार्य प्रत्येकैकं नियोजयेत् । नमः स्वाहा वषट् कवचाय हुं
मन्त्रक्रमः । हृदि मूर्ध्नि शिखादेशे तनौ दिक्षु यथाक्रमम् ।
सशक्तिभिः कुशवाद्यैर्न्यासं कुर्याद् विचक्षणः । विभूतिपञ्चरं
न्यस्य न्यसेत्तु मूर्त्तिपञ्चरम् । तत्त्वन्यासं प्रकुर्वीत करन्यासं
तथा बुधः । मन्त्रन्यासं प्रकुर्वीत व्यापकञ्च त्रिधा न्यसेत् ।
विभूतिपञ्चरन्यासं यत्र यत्र दशाक्षरम् । एवं कस्योक्तकान्
न्यासान् क्रमेण परिकल्पयेत् ॥ न्यासस्तु तन्त्रसारकारिणैव धृत
इति ॥ तथा । शङ्खस्थापनकञ्चापि कुर्याद् गुरुपदेशतः ।
अर्घ्यञ्चापि तथा कृत्वा द्रव्यसम्युच्य यत्नतः । पीठं प्रकल्प्य
देहेषु धर्मादीन् पूजयेत्ततः । हृदि चैव अनन्तादीन् पूजयञ्च
यथाविधि । वाह्यं मुखं गृहस्थस्य वर्णिनोऽन्ते प्रपूजनम् ।
भास्करञ्च गणेशञ्च शिवं दुर्गां प्रपूजयेत् । यन्त्रं निर्माय ताम्बे
तु अनन्तादीन् प्रपूजयेत् । अस्य कोणेषु धर्मादीन् तत्पार्श्वेऽधर्म-
पूर्वकान् । मध्येऽपि पूजयेन्नित्यमनन्तादीन् चतुर्दश । केशरेषु
च पूज्या वै विमलाद्याश्च देवताः । आत्मानं देवतां भाव्य
स्वनासापुटकेन तु निःसार्य पूजयेद्देवं सदावाह्य प्रयत्नतः ।
अनन्ताद्यैश्च वोजैश्च प्राणस्थापनमाचरेत् । पद्मादींश्चैव
यत्नेन पूजयेदावृतीगणान् । धूपदीपौ समासाद्य नैवेद्यञ्च
निवेदयेत् । जप्त्वा मन्त्रञ्च तन्त्रोक्तं पूजयेद्देववत् स्वयम् ।

श्रीकृष्णं तर्पयामीति मूलमुच्चार्य यत्नतः । वारत्रयार्घ्यं तोयेन
तर्पयेन्मन्त्रमस्तके । प्राणायामत्रयं कृत्वा व्यापकञ्च त्रयं न्यसेत् ।
स्वतन्त्रोक्तेन विधिना प्रयोगं कुरुते सुधीः ॥ इति विष्णुपूजा-
सूत्रम् ॥

अथ विष्णोरुपचारमन्त्रः ॥ योगिनीपटले ॥ मीनरूपो
वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः । आयातु देवो वरदो मम नारा-
यणोऽग्रतः ॥ इत्यावाहनम् । सुरेशस्य पादपीठे पद्मकल्पित-
मासनम् । सर्वतत्त्वहितार्थाय तिष्ठस्व मधुसूदन ! ॥ इत्यासनम् ।
पादञ्च पादयोर्द्वेव ! पद्मनाभ ! सनातन ! । विष्णो ! कमल-
पत्राक्ष ! गृहाण मधुसूदन ! ॥ इति पादम् । त्रैलोक्यपतीनां
पतये देवदेवाय एव च । आर्याय हृषीकेशाय तस्मै श्रीविष्णवे
नमः । इत्यर्घ्यम् । मन्दाकिन्यास्तु ते वारि जय पापं हराशुभम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् । इत्याचमनीयम् ॥
त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वह्निरेव च । लोकसंवित्तिमा-
त्रे ण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥ इति स्नानम् । देव ! वस्त्रं समायुक्तं
यज्ञवर्णं विभूषितम् । स्वर्णवर्णं प्रभेदेन वाससी तव केशव ! ॥
इति वस्त्रम् । शरीरं ते लेपयामि चेष्टा सैव च केशव ! । मया
निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ॥ इति गन्धः । ऋग्वेदा-
दिषु मन्त्रेण शोधितं पद्मयोनिना । सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपबौत-
मथाक्षयम् ॥ इत्युपवीतम् । दिव्यवर्णसमायुक्ता वह्निमानुसम-
न्विताः गात्राणि शोभयन्त्येते अलङ्कारास्तु मानवाः ॥ इत्यल-
ङ्कारः । वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाब्धः सुरभिश्च भोः ! । मया
निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति धूपः । सूर्यसन्द-
विद्यञ्च त्वमेवाग्निस्तथैव च । त्वमेव ज्योतिषां देव ! दीपो-
ऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति दीपः । अन्नं पञ्चविधं देव !
रसैः षड्भिः समन्वितम् । मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं

तव केशव ! ॥ मत्स्यसूक्ते उपरिभागे अष्टचत्वारिंश-
त्पटले विशेषः । सुमेरोः पादपीठान्ते पद्मकल्पितमासनम् ।
सर्वसत्त्वहितार्थाय गृहाण मधुसूदन ! ॥ इत्यासनम् । सुपाद्यं
पादयोर्देव ! पद्मनाभ ! सनातन ! । विष्णो ! कमलपत्राक्ष !
गृहाण मधुसूदन ! ॥ इति पाद्यम् ॥ २ ॥ त्रैलोक्यपतीनां पते !
देवदेव ! जनार्दन ! । गृहाणार्घ्यं जगन्नाथ ! नानामलयजं
प्रभो ! ॥ इत्यर्घ्यम् । ३ । मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं
शुभम् । गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥
इत्याचमनीयम् ॥ ४ ॥ मधुपर्कं सहादेव ! ब्रह्माद्यैः परिकल्पि-
तम् । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण मधुसूदन ! ॥ इति मधुपर्कम्
॥ ५ ॥ दिव्यवस्त्रसमायुक्ते बहुतन्तुविनिर्मिते । सुवर्णप्रभवे देव !
वानसी तव केशव ! ॥ इति वस्त्रम् । ६ । ऋग्यजुःसाममन्त्रेण
निर्मितं पद्मयोनिना । सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतं तवा-
च्युत ! ॥ इत्युपवीतम् । ७ । वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यः
सुरसम्पत्तः । आग्नेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति
धूपः । ८ । सूर्याचन्द्रमसोज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव
ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति दीपः । ९ । अन्नं
चतुर्विधञ्चैव रसैः षड्भिः समन्वितम् । मया निवेदितं भक्त्या
नैवेद्यं तव केशव ! ॥ इति नैवेद्यम् । १० । दिव्यतन्तुसमायुक्ता
वज्रिभानुसमन्विताः । गात्राणि तव शोभन्तामलङ्काराः शुभा
इमे । इत्यलङ्काराः । ११ । नारदपञ्चरात्रं तृतीयरात्रे पञ्च-
दशाध्याये ॥ व्यास उवाच ॥ वक्ष्येऽल्लयधनावाप्त्यै प्रतिपत्तिं
श्रियः पतेः । सुगुप्तां धननाथाद्यैर्यद्देवैः श्रीयते सदा । हारा-
वत्यां सहस्रार्कभास्वरैर्भवनोत्तमैः । अग्न्यैः कल्पवृक्षैश्च
वाते तु मण्डपे तथा । गलद्रत्नमयस्तम्भद्वारतोरणकुण्डके ।
फुल्लसगुल्लपञ्चित्रवितानालम्बिमौक्तिके । पञ्चरागस्थगीराजद्रत्न-

नद्योश्च मध्यतः । अनाहतगलद्रवमणिकल्पतरोरधः । रत्नप्रदी-
 पावलिभिः प्रदीपितदिगन्तरे । उद्यदादित्यसङ्काशमानसिंहा-
 सनाम्बुजः । समासीनोऽच्युतो ध्येयो द्रुतहाटकसन्निभः । समा-
 नोदितचन्द्रार्कतडिल्लोटिसमद्युतिः । सर्वाङ्गसुन्दरः सौम्यः
 सर्वाभरणभूषितः । पीतवासाश्चक्रशङ्खगदापद्मोज्ज्वलङ्गुजः ।
 अनाहतोज्ज्वलद्रवधारो मुकुलसंस्थगन् । वामपादांश्च जायेण
 अच्युतां पल्लवच्छविम् । रुक्मिणौ सत्यभामास्य मूर्ध्नि रत्नौघ-
 धारया । सिञ्चन्त्यो दक्षवामस्ये स्वदोःस्थकलसोत्थया । लग्ने
 ज्योतिःसुनन्दा वा शान्त्योदकलसौ तयोः । ताभ्याश्च दक्षवामस्थे
 मित्रवन्द्यामुलक्षणे । रत्ननद्याः समुद्भूत्य रसपूर्णौ घटौ तयोः ।
 जाम्बूवतौ सुशीला च दिशन्त्यौ दश वामने । हरेः षोडश-
 साहस्रसंख्याताः परितः प्रियाः । ध्येयाः कनकरत्नौघधारायुक्-
 कलसोज्ज्वलाः । तद्वह्निश्चाष्टनिधयः पूरयन्तो धनैर्धराम् । तद्वह्नि-
 र्वृणयः सर्वे पुरोवच्च सुरादयः । ध्यात्वेव परमात्मानं विंशत्यन्तं
 मनुं जपेत् । चतुर्लक्षं हुमेदाज्यैर्वाविंशतिसहस्रकम् । शक्तिः
 श्रीपूर्वकोण्टादशाब्जो विंशतिरन्धकः । मन्त्रेण न सदृचोऽन्यो
 मनुर्न हि जगन्नये । ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री कन्दः कृष्णस्तु
 देवता । पूर्वप्रोक्तवदेवास्य वीजशक्त्यादिकल्पना । कल्पः सन-
 त्कुमारोक्तो मन्त्रस्यास्योच्यतेऽधुना । पीठन्वासान्तिकं कृत्वा
 पूर्वोक्तक्रमतः सुधीः । करद्वन्दाङ्गुलितलेष्वङ्गुष्ठकं प्रविन्यसेत् ।
 मन्त्रेण व्यापकं कृत्वा मातृकां मनुसम्पुटाम् । संहारसृष्टि-
 मार्गेण दश तत्त्वानि विन्यसेत् । पुनश्च व्यापकं कृत्वा मन्त्रवर्णा-
 स्तनी न्यसेत् । मूर्ध्नि भाले भ्रुवोर्मध्ये नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः ।
 अनेन चिवुके कण्ठे दोर्मूले हृदि तुन्दके । नाभौ लिङ्गे तथा-
 धारे कक्षां जान्वोश्च जङ्घयोः । गुल्फयोः पादयोर्न्यसेत् सृष्टिरेषा
 मेमरिता । स्थिति र्द्वादिनासान्ता संहतिश्चरणादिका । विधा-

यैव पञ्चकत्वः स्थित्यन्तं मूर्त्तिपञ्चरम् । सृष्टिस्थिती च विन्यस्य
 षडङ्गन्यासमाचरेत् । गुणाग्निवेदकरणाद्यक्षरैर्मध्यमाः स्मृताः ।
 मुद्रां बद्धा किरीटाख्यां दिग्बन्धं पूर्ववच्चरेत् । एवं ध्यात्वा-
 र्चयेद् गेहं मूर्त्तिपञ्चरपूर्वकम् । अथवाभ्यर्चयेद्विष्णुं तदर्थं मन्त्र-
 मुच्यते । गोमयेनोपलिप्यार्चां तत्र पौठं निधापयेत् । विलिप्य
 मन्त्रपङ्केन लिखेदष्टदलाम्बुजम् । कर्णिकायान्तु षट्कोणं
 स साध्यस्तत्र तन्मुखम् । शिष्टैस्तं सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत् स्वयम् ।
 प्रागक्षरादिकोणेषु श्रियं शिष्टे सुसंविदम् । षडक्षरं सन्धिषु च
 केशरेषु त्रिशस्त्रिंशः । विलिखेत् स्मरगायत्रीं मालामन्त्रं दला-
 ष्टके । षट्शः संलिख्य तद्वाह्ये वेष्टयेन्नाटकाक्षरैः । भूविम्बञ्च
 लिखेद्वाह्ये दिग्विदिक्षु समाहितः । एतन्मन्त्रं हाटकादिपात्रे-
 ष्वालिख्य पूर्ववत् । साधितं धारयेद्यो वै सोऽर्च्यते त्रिदशैरपि ।
 स्याद्वायवी कामदेवपुष्पवाणी च डेऽन्तकी । विज्ञहे धीमहि-
 युतैस्तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् । जम्बास्य पादौ गोपालं मनूनां
 जनरञ्जनम् । नृत्यं ते कामदेवाय डेऽन्तं सर्वजनप्रियम् ।
 उक्त्वा सर्वजनान्ते तु सन्मोहनपदं तथा । ज्वलज्वलप्रज्वलितं
 प्रोच्य सर्वजनस्य च । हृदयञ्च मम ब्रूयाद्वशं कुरु युगं शिव ! ।
 प्रोक्तो मदनमन्त्रोऽयं चत्वारिंशद्विरक्षरैः । अपादौ मारवीजा-
 यो जगत्त्रयवशीकरः । भ्रूगृहं चतुरस्रं स्यादष्टवज्रविभूषितम् ।
 पौठं पूर्ववदभ्यर्च्य मूर्त्तिं सङ्कल्प्य पौरुषीम् । तत्रावाद्याच्युतं
 भक्त्या सकलीकृत्य पूजयेत् । आसनादिविभूषणं न च न्यासं
 क्रमाश्रयेत् । सृष्टिस्थितिं षडङ्गञ्च किरीटं कुण्डलद्वयम् । शङ्खं
 चक्रं गदां पद्मं मालां श्रीवत्सकौस्तुभम् । गन्धाक्षतप्रसूनैश्च
 मूलेनाभ्यर्च्य पूर्ववत् । आदौ वज्रपुरहन्तृकोणेष्वङ्गानि पूज-
 येत् । सङ्कच्छिरःशिखावर्धनितमन्त्रमिति क्रमात् । वासुदेवः
 सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च । अग्न्यादिदलमूलेषु शान्ति-

लक्ष्मीः सरस्वती । रतिश्चादिश्च ते षष्ठास्ततोऽष्टौ महिषी र्यजेत् ।
तद्विहन्द्रवज्जाया आवृतौः सम्प्रपूजयेत् । इति समावृतिवृत्त-
मभ्यर्च्य तमादरात् । प्रीणयेद्दधिखण्डाज्यमिश्रेण तु पयो-
ऽभसा । राजोपचारं दत्त्वाथ स्तुत्वा नत्वा च केशवम् । उद्वा-
स्यास्य खट्वदये परिवारगणैः सह । नत्वात्मानं समभ्यर्च्य तन्मयः
प्रजपेन्ननुम् । रत्नाभिषेकध्याने द्वाविंशत्यन्तांश्रिये ततः । जप-
होमार्चनैर्ध्यानैर्योऽसुं प्रजपते मनुम् । तद्देशम् पूर्यते रत्नखर्ण-
धान्यैरनाहतम् । पृथ्वी करतले तस्य सर्वशस्यकुलाकुला ।
पुत्रैर्मित्रैः सुसम्पन्नः प्रयात्यन्ते परां गतिम् । वक्त्रावभ्यर्च्य
गोविन्दं सपुष्पैः सिततण्डुलैः । आज्याक्तैरयुतं हुत्वा भस्म
तन्मूर्द्ध्नि धापयेत् । तस्यान्नानां समृद्धिः स्यात्तदंशे सर्वं योषितः ।
आज्यैर्लक्षं हुमेद्रक्तपद्मैर्वा मधुराङ्गुतैः । श्रिया तस्यैन्द्र-
मैश्वर्यं कृपा नाशिक्षिते भ्रुवम् । शुक्लादिवस्त्रलाभाय सुशुक्ल-
कुसुमेर्हुमेत् । तवाकृतिं ब्रुवन्तो वा चक्रायङ्गाङ्गनां विना ।
विंशत्यन्तोक्तयज्जलधिया ध्यायेदथाच्य तम् । वरदाभयहस्ताभ्यां
श्लिष्यन्तं स्वाङ्गके प्रिये ! पद्मोत्पलकरे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रधरो-
ज्ज्वलम् । दशलक्षं जपेदाज्यैस्तावत् साहस्रहोमतः । सिद्धाविमौ
मनू सम्यक्सखसौभाग्यदौ नृणाम् । मारशक्तिवशापूर्वं शक्तिः
श्रीमान् मनुव्रयम् । एतेषां मनुवर्णानां नाम कुर्याद्-
दशान्तवत् । शङ्खचक्रधनुर्वाणपाशाङ्कुशधरोरगाः । वेणुधमनं
धृतं दोर्भां ध्येयः कृष्णो दिवाकरे । आद्यगणो ध्यानमेवं द्वितीये
विशतस्तु तत् । दशान्तरहृतीये स्यात् दिक्पादैश्च समर्चना ।
पञ्चलक्षं जपेत्तावदयुतं पायसैर्हुमेत् । ततः सिद्धास्तु मनवो
नृणां सम्पत्तिकान्तिदाः ॥

अथ विष्णुनाममाहात्म्यम् ॥ सत्यसूक्ते महातन्त्रे षोडश-
पटले ॥ विष्णुनामानि पुण्यानि कीर्तयन् प्रहरे प्रिये ! । कीटि-

कल्पसहस्राणि वैकुण्ठे वसते नरः । नामैकं वै द्वितीयञ्च तृतीयं
हि क्षणे क्षणे । कौर्त्तयन् भक्तिभावेन विष्णुलोकं व्रजेत् प्रिये ॥
कौर्त्तयन् हरिनामानि भक्त्या पुण्यानि वै शुभे ॥ महामयेषु
सर्वेषु न भयं विद्यते क्वचित् । कुर्वन् वा कारयेद्वापि अहो-
रात्रञ्च वै प्रिये ॥ नौत्वा कुलसहस्राणि मामाप्नोत्येव तत्त्वतः ।
नामाल्लरं गुणयुतं भावमन्त्रेण सम्मितम् । त्रिसन्ध्यं कौर्त्तयेद्-
यस्तु स गच्छेद्द्वैषाव' पुरम् । वैष्णवानां नराणाञ्च अर्चयन्ति
सदा प्रिये ! सर्वपापविनिर्मुक्ताः शिवलोकं प्रयान्ति ते । आ
नमो नारायणायिति धी वदन्ति मनीषिणः । किं कार्यं बहुभि-
र्मन्त्रैर्मनोविभ्रमकारकैः ॥

अथ श्रीकृष्णशतनामस्तोत्रम् ॥ नारदपञ्चरात्रे चतुर्थरात्रे
प्रथमाध्याये उमामाहेश्वरसंवादे ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ वसुन्धरे !
वरारोहे ! नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यमाणिमाद्य-
ष्टसिद्धिदम् । महापातककोटिघ्नं सर्वतीर्थफलप्रदम् । समस्त-
जपयज्ञानां फलदं पापनाशनम् । शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि
नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु
यत् फलम् । एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रय-
च्छति । तस्मात् पुण्यतमञ्चैतत् स्तोत्रं पापप्रणाशनम् ।
श्रीकृष्णस्याष्टोत्तरशतनाम्नां श्रीशेष ऋषिरनुष्टुप् छन्दः
श्रीकृष्णो देवता श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनाम्नः पाठे विनियोगः ।
ॐ श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः । वसुदेवात्मजः
पुण्यो लौलामानुषविग्रहः । श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो
हरिः । चतुर्भुजस्तु चक्रासिगदाशङ्खजुजायुधः । देवकौ-
नन्दनः श्रीशो मन्दगोपप्रियात्मजः । यमुनाकेलिसंहारी
मुचुकुन्दप्रसादकः । षोडशस्तोसहस्रेशस्त्रिभङ्गीमधुराकृतिः ।
शुकवागमृतावर्ची गोविन्दो गोविदां पतिः । वत्सपालन-

सञ्चारी धेनुकासुरभञ्जनः । उत्तानतालभेत्ता च तमालश्या-
मलाकृतिः । गोपगोपोश्वरो योगी सूर्यकोटिसमप्रभः । इला-
पतिः परं ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूहहः । वनमाली पीतवासाः
पारिजातापहारकः । गोवर्धनाचलोद्धर्ता गोपालः सर्वपालकः ।
अजो निरञ्जनः कामजनकः कञ्जलोचनः । मधुहा मथुरानाथो
द्वारकानायको बलो । वृन्दावनान्तमञ्चारी तुलामोदामभूषणः ।
स्वमन्तकमर्णहर्त्ता नरनारायणात्मकः । कुजाक्षणाश्वरधरो
मायो परमपूरुषः । सुष्टिकासुरचाणूरमहायज्ञविशारदः ।
संसारवैरी कंसारिर्मुंरारिनेरकान्तकः । अनादिर्ब्रह्मचारी च
क्षणाव्यसनकर्षकः । शिशुपालशिरश्चेत्ता दुर्योधनकुला-
न्तकृत् । विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः । वृषभासुरविध्वं-
सो वाणासुरबलान्तकृत् । युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता वह्निवर्हावतं-
सकः । जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुनाद्यविशारदः । पार्थसारथि-
रव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः । कालीयफणिमाणिक्यरञ्जित-
श्रीपदाब्जुजः । दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्रविनाशनः ।
नारायणः परं ब्रह्म पद्मगाशनवाहनः । जलक्रीडासमासक्तगोपी-
वस्त्रापहारकः । पण्यश्लोकस्तीर्थवेद्यो वेदवेद्यो दयानिधिः ।
सर्वतोर्यात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः ॥१०८॥ इत्येवं कृष्णदेवस्य
नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं
पुनः । स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया श्रुतम् । कृष्ण-
नामामृतं नाम परमानन्ददायकम् । अनुपद्रवदुःखघ्नं पर-
मायुष्यवर्धनम् । दानं श्रुतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ।
पठतां शृण्वतां चैव कोटिकोटिगुणं भवेत् । पुत्रप्रदमपुत्रा-
णामगतीनां गतिप्रदम् । धनावहं दरिद्राणां जघेच्छूणां जया-
वहम् । शिशूनां गोकुलानाञ्च पुष्टिदं पुण्यवर्धनम् । वातग्रह-
ज्वरादीनां शमनं शान्तिमुक्तिदम् । समस्तकामदं सद्यः

कोटिजन्मावनाशनम् । अन्ते तु कृष्णस्मरणं भवतापभयापहम् ।
कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञानशुद्धाय योगिने । नाथाय रुक्मिणी-
शाय नमो वेदान्तवेदिने । इमं मन्त्रं महादेवि ! जपेन्नरो
दिवानिशम् । सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् । पुत्र-
पौत्रैः परिवृतः सर्वासिद्धिसर्वाङ्गमान् । निवेश्य गोपानन्तेऽपि
कृष्णनायुज्यमाप्नुयात् ॥ इति नारदपञ्चरात्रे ज्ञानासृतसारे
चतुर्थरात्रे उमामाहेश्वरसंवादे श्रीकृष्णाष्टात्तरशतनामस्तात्र
समाप्तम् ॥

अथ काष्ठपात्रादौ विष्णुपूजानिषेधः ॥ मत्स्यसूक्ते षोडश-
पटले ॥ स्वयं देवस्य वह्ननं काष्ठपात्रे च पूजनम् । स्थापनं
मृत्तिकापात्रे त्रयं दारिद्र्यकारणम् । हस्ते च वदले कांस्ये
शङ्खे च रीतिरसम्भवे । लणे च नेत्रपात्रं च त्वचि रीप्ये न चार्च-
येत् ॥ इति काष्ठादिपात्रे विष्णुपूजादिनिषेधः ॥

स्वर्णपात्रे तथा ताम्रं शिलायां नारिकेलके । फले च वा
पद्मपात्रे किंशुकस्य कृदेऽथवा । चलदलस्य कृदे पूजा यज्ञायुत-
फलप्रदा ॥ किंशुकस्य पलाशस्य । चलदलोऽश्वत्थः ॥ इति स्वर्णा-
दिपात्रे विष्णुपूजाफलम्

पञ्चदशपटले ॥ दद्यात् पुरुषसूक्तेन यः पुण्याख्ये कमेव वा ।
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् । एकया वा ऋचा देवि !
ज्ञात्वा दत्त्वा जलाञ्जलिम् । पौरुषेण च सूक्तेन मुच्यते सर्व-
किल्बिषात् । अन्तर्जलगतो जप्त्वा तथा सूक्तञ्च पौरुषम् । सर्व-
कर्मविनिर्मुक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते । ज्ञातस्तु पौरुषं सूक्तं जपे-
न्नित्यमतन्द्रितः । संवत्सरेण देवेश वासुदेवं प्रपश्यति ॥ इति
पुरुषसूक्तमाहात्म्यम् ॥

षोडशपटले ॥ सुशीतलेन तीयेन स्नापयेज्जलशायिनम् ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश । कुम्भपुष्पोदकस्नानाद्

ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् । रत्नोदकेन सावित्रं कौवेरं हेमवारिणा ।
सर्वौषधिप्रदानेन वाजिमधफलं लभेत् ॥ इति द्रव्यविशेषेण
विष्णु स्नापनफलम् ॥

तथा ॥ कलायस्य तु चूर्णेन यवचूर्णेन वा पुनः । हरिद्रा-
माषचूर्णेन तथा तण्डुलजेन वा । एकेनोदत्तनं कुर्याद्विष्णु-
लोकमवाप्नुयात् ॥ इत्युदत्तनफलम् ॥

तथा ॥ यवगोधूमलेपेन तथा चोष्णेन वारिणा । प्रक्षाल्य
देवदेविशं वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥ इति द्रव्यविशेषेण देवगात्र-
प्रक्षालनफलम् ॥

तथा ॥ पादपीठन्तु यो दद्यान्मुखप्रक्षालनं तथा । वर्षयेद्-
विस्वपत्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अथ विष्णोर्महास्नानं तत्रैव ॥ तुलामकरमेषु महास्नानं
करोति यः । षष्टियुगसहस्राणि ब्रह्मलोके वसेच्चिरम् । पञ्चा-
मृतस्य प्रत्येकं पलानाञ्च शतं शतम् । तदद्वैच्च तदद्वै वा ततो
हीनं न कारयेत् । तथा तेलस्य देवेशि ! सहस्रेण घटेन च ।
शतेन च तदद्वैतं तथा च शतधारया । सहस्रधारया स्नानं
महापातकनाशनम् । तदद्वैतं महेशानि ! तदद्वैतं कलौ युगे ।
पञ्चविंशपलान्येव कषायस्य च संख्यया । उष्णोदकस्य च तथा
घटसंख्या महेश्वरि ! । एवं यः कुरुते स्नानं कारयेद्वा महेश्वरि ! ।
समजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । चतुस्तोलकमानेन
द्रव्याणाञ्च पृथक् पृथक् । चतुस्तोलकया वायु हीने स्नानं न
योजयेत् । तथा । शङ्खस्थितेन तोयेन यः स्नापयति केशवम् ।
विष्णुमन्त्रेण देवेशि ! कुलानां तारयेच्छतम् । कपिलाक्षीरमा-
दाय शङ्खे कृत्वा यशस्विनि ! । कन्यादानसहस्रस्य स्नापयित्वा
फलं लभेत् । तदद्वैच्चान्यगोक्षीरं द्विगुणं कुशवारिणा । महा-
पूजा त्रिलक्षेण पुष्पपत्रेण चार्चयेत् । कलौ लक्षेण देवेशि !

यथाप्त न विशेषतः । तदर्द्धे मध्यमं त्र्ययं तदर्द्धेन कनिष्ठकम् ॥
इति महासालादिमहापूजाकथनम् ।

अथ शङ्खमाहात्म्यम् ॥ पञ्चपुराणे ॥ त्रैलोके यानि
तीर्थानि वासुदेवस्य सेवया । पापं सङ्ख्याति विप्रेन्द्र ! तस्मा-
च्छङ्खं प्रपूजयेत् । शङ्खश्च सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ।
निर्मितः सर्वदेवेषु पाञ्चजन्य ! नमोऽस्तु ते । दर्शनादेव शङ्खस्य
किं पुनः स्वर्गं कृते । विलयं यान्ति पापानि हिमवद्भास्करो-
दये । पुरतो वासुदेवस्य पुण्यतज्जनलक्षणम् । शङ्खमभ्यर्चितं
तिष्ठेत्तस्य लक्ष्मीर्न दुर्लभा । शङ्खे कृत्वा तु पानीयं सपुष्पं
सजलाक्षतम् । अर्घ्यं ददाति देवस्य ससागरमहीफलम् ।
प्राप्नुयादिति शेषः । अर्घ्यं दत्त्वा तु शङ्खेन यः करोति प्रद-
क्षिणम् । प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा । तीर्थोदकं
हरिर्मुद्भिर्भ्रामयेत् शङ्खसंस्थितम् । भुक्तिं ददाति वै तस्य क्षीर-
सागरजा प्रिये । शङ्खलक्षणं तथा तीर्थं भ्रामितं केशवोपरि ।
वहते शिरसा गङ्गा गङ्गास्रोतेन तस्य किम् ॥

अथ शङ्खलक्षणं क्रियासारे ॥ प्रस्थानन्तु प्रतिस्थितः शङ्खः
श्रेष्ठतमो मतः । स्तनांशपूर्णको मध्यः कनिष्ठः क्रमशो भवेत् ।
सुश्रोणः पांशुशिखरः स्निग्धो दीर्घः सुपङ्कतिः । शङ्खः स्यादर्चना-
योग्यो योऽसावलिकचक्षुषः । अलिकचक्षुषस्त्रिपञ्चकः ॥ मलिनो
निम्नशिखरः सरक्तः क्रिमिदृष्टकः । ह्रस्वः प्राणालिकः शङ्खो न
स्यादयोग्यः सुरार्चने । गोक्षीरधवलः स्निग्धो दीर्घनालो वृहत्तरः ।
वृत्तो यो दक्षिणावर्त्तः स द्विजः शङ्खसंज्ञकः । पूर्वोक्तलक्षणोपेतो
वामावर्त्तोऽथवान्वितः । शङ्खोऽयं नातिसुलभः सोऽपि मुख्यः
सुरार्चने । दक्षिणावर्त्तं विशेषयति कस्यतरौ । दक्षिणावर्त्त-
शङ्खेन पात्रे श्रीडुम्बरे स्थितम् । उदकं यः प्रतीच्छेत्तु शिरसा
हृष्टमानसः । सप्तजन्माजितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

स्नान्दे ॥ दक्षिणावर्तशङ्खस्य तोषेन योऽर्चयेद्भरिम् । सप्तजम्भ-
 क्षतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ क्रियाभारे ॥ ताश्चस्फटिक-
 शङ्खेषु सुवर्णकलधोमयोः । न विद्यते भिन्नदोषो द्रव्येऽन्येषु
 विद्यते । शङ्खः शुद्धो भवेन्नत्र तुषाभिघषणेन च ॥ तुषो धान्य-
 त्वक् ॥ मत्स्यसूक्ते षोडशपटले ॥ नदीतडागसम्भूतं वापौकूप-
 उद्गोद्वयम् । शङ्खोदकं भवेत् सर्वं शङ्खे नैव समुद्धतम् । तैलौक्ये
 यानि तीर्थानि वासुदेवपूजने । शङ्खे तीर्थानि देवेशि ! तस्मात्
 शङ्खं समर्चयेत् । दर्शनादेव शङ्खस्य किं पुनः स्मरने कृते ।
 विलयं यान्ति पापानि भास्करेण हिमं यथा । पुरतो वासुदेवस्य
 सपुष्पं सज्जलकृतम् । शङ्खमभ्यर्चितं येन तस्य लक्ष्मीर्न दुर्लभा ।
 अर्घ्यं दत्त्वा तु शङ्खेन यः करोति प्रदक्षिणम् । प्रदक्षिणोक्तता
 तेन सप्तदोषा वन्धुरा । क्षिप्त्वा शङ्खोदकं शङ्खे यः स्नापयति
 केयवम् । अष्टाक्षरेण मन्त्रेण मुच्यते सोऽपि सङ्गटात् । न भूमौ
 स्थापयेत् शङ्खं स्नापिते क्षालयेत् पुनः । चन्दनोदकेन दुग्धेन
 सूदकेनापि शोधयेत् । श्रौं त्वं पुरा सागरोत्पन्नो दिष्णुना
 विद्वतः करे । निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य । नमोऽस्तु ते ॥

अथ त्रिपदीलक्षणम् ॥ वीरमित्रोदयधृतसिद्धान्तशेखरे ॥
 चतुःषष्टिभिर्भाविततना विहृता त्रिधा । उत्तमादिकर्मदेन
 यन्त्रिता त्रिपदी मता । त्रिचक्रपादसंयुक्तं पादार्धं सिंहचक्र-
 कम् । पादमध्येऽसंयुतं स्यात् सिंहास्यञ्च पदोऽप्यधः । शेषं
 कुर्याद् यथाशक्तं त्रिपदी परिकीर्तिता । अर्घ्यसंस्थादिदेवैद्य-
 पात्राधारा त्रिपादिका ॥ इति ॥

अथ तुलसीमाहात्म्यम् ॥ मत्स्यसूक्ते षोडशपटले ॥ सर्वेभ्यः
 पतपुत्रेभ्यो वरदा तुलसी प्रिये ।। सर्वकामप्रदा रक्षा देष्वावी
 विष्णुवक्त्रा । भुक्तिमुक्तिप्रदा देवि ! सर्वलोकहिता परा ।
 या मातृत्वगता स्वर्गमर्त्यं परमेश्वरि !। हितार्थं सर्वलोकानां

धृतिव्यां रोपिता पुरा । यथा विष्णुपिया लक्ष्मी रंथा त्वं हर-
 बलभा । तथेयं तुलसी देवी चतुर्थी नोपपद्यते । यथा गङ्गा
 पवित्रा हि सर्वलोकविमोक्षदा । तथेयं सर्वपापाणां तुलसी
 पापहारिणी । समञ्जरीदलैर्येन तुलस्या विष्णुर्गर्हितः । तस्य
 पुण्यफलं देवि ! कथितं नैव शक्यते । तुलस्याः कुसुमेनैव नार्च-
 येद्गङ्गध्वजम् । करपत्रममं यस्माद्दोष्ययुक्तं वरानने ! ॥ तथा ।
 त्रिषु लोकेषु विख्याता सर्वपापप्रणाशिनी । सर्वकामप्रदा देवी
 सर्वमङ्गलकारिणी । संसारसागरे घोरे तुलसी नौखरूपिणी ।
 देशानां शिवदुर्गायाः परं तुष्टिदायिणी । कल्मषीघातुराणाञ्च
 सेयमेका महौषधिः । तत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
 मरीचिरामसंवादं तच्छृणुष्व वरानने ! । पुरा रघुकुलाधौशो
 वेदेवेदाङ्गपारगम् । पूजयित्वा यथान्यायं मनश्चक्रे महामतिः ।
 एवं प्रतिदिनं तत्र यथाकालं समाचरेत् । अचिरेणैव कालेन
 तुष्टोऽभून्मुनिसत्तमः । स ददौ च स्रजं दिव्यां श्रीरामाय परा-
 त्पराम् । तुलसीवनजाताञ्च मञ्जरीपुष्पधारिणीम् । चतुर्दे-
 मयो दिव्यां ददौ रामस्य मूर्धनि । तामादाय ततस्तूर्णं मञ्जरी-
 पत्रशालिनोम् । दृष्ट्वा चुक्रोध भगवानुवाच मुनिपुङ्गवम् । अहो !
 किमवलेपायं ब्राह्मणस्य महात्मनः । वनस्पतेः पत्रजातं कथं
 दत्तं समोपरि । आशीर्वादो हिजातीनां श्रेष्ठो मतिमता-
 मिति । अतोऽहं मुनिशार्दूल ! अवलेपं वहामि ते । एतच्छ्रुत्वा
 तु वचनं रामस्याशु रूपांस्त्वत्तम् । शशाप तुलसी देवी राजानं
 रघुनन्दनम् । यस्मान्मदापलेपेन शिरसो मां विमुक्तवान् ।
 तस्माद्राजिह्व ! वदेह्या वियोगस्ते भविष्यति । शपन्तो तां ततो
 दृष्ट्वा सीता हृदयवत्प्रभम् । सक्रोधनयनं देवमिदमाह महा-
 मतिः । मरीचिरुवाच ॥ सुप्रसोद महाराज ! ब्रजामि
 शरणं तव । कथयामि पुरातनं विचित्रं मुनिभाषितम् ।

एषा हि तुलसीमाला मया दत्ता सुरेश्वर ! । अस्या विचित्र-
 माहात्म्यं मत्तः सर्वं निशमय । इयं हि वृक्षरूपेण महालक्ष्मीः
 प्रतिष्ठिता । ब्राह्मीयं परमा शक्तिर्ब्रह्मणो रोमसम्भवा । ऋग्-
 यजुःसामकेदाद्याः शास्त्राचरणसन्निताः । यथा गङ्गा यथा गौता
 गायत्री च यथा मता । पद्मयोनेः समुद्भूता तथेयं लोकपावनी ।
 यत्रैषा तिष्ठते सम्यक् तत्र लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता । इमां विना
 तथा लक्ष्मोर्विनाशायोपजायते । एवं दृष्ट्वा जगन्माता तुलसी
 ब्रह्मणा स्वयम् । लोकानां पालनार्थाय पृथिव्यामवतारिता ॥
 एनामाराध्य देवेशो महादेवो जपत्वतिः । असुरं घोरनामान-
 मजयद्रणसङ्कुले । घोरासुरसंग्रामोपाख्यानां ग्रन्थगौरवभिया न
 लिखितम् । तथा ॥ एवमेषा महादेवी तुलसी विश्वरूपिणी ।
 त्वमप्याराधयस्वैनां विजयं प्राप्स्यसि ध्रुवम् । एतच्छ्रुत्वा तु
 वचनं महर्षेर्मधुसूदनः । जयाय शिरसा मालां प्रणिपत्य च
 सादरम् । जग्राह विटपं तस्याः सर्वकामफलप्रदम् । ततस्तं
 धर्ममास्थाय जगाम स्वगृहं प्रति । रोपयित्वा यथान्यायं
 पूजयामास राघवः । ततस्तस्याः प्रभावेण भगवान् रघुनन्दनः ॥
 यातुधानं महावीर्यं जितवान् रावणं रणे । ये चार्चयन्ति
 मनुजा रोपयन्ति यथाविधि । कौर्त्तयन्ति च ये लोकास्तेषां
 सिद्धिर्भविष्यति । सजलं तुलसीपत्रं शिरसा धारयन्ति ये ।
 अर्थं दत्त्वा नमस्कृत्य मुक्तिस्तेषां करे स्थिता । नदीतीरे
 श्मशाने च ऊषरे स्नेच्छसन्निधौ । एषु वै रोपणं कृत्वा याति
 कर्त्ता यमालयम् ॥

अथ तुलसीरोपणविधिः । तत्रैव ॥ गृहस्थैश्चान्यपुरतः
 खनित्वा तालमात्रकम् । पञ्चगव्यमयूराण्डं क्षिप्त्वा तत्र दिना-
 गमे । रोपयित्वा निशाभागे सूत्रेणावेष्ट्य समधा । तन्मूले
 पिण्डिकां कृत्वा हस्तमात्रं सुवर्त्तलाम् । ततश्चतुष्कोणवेष्ट्यपि

काथ्या । वारिधाराञ्च निक्षिप्य पूजयेन्मतिमान्नरः । गन्धपुष्पै-
स्तथा धूपैः प्रदीपैश्च घृतप्लुतैः । पायसैर्दधिभक्तैश्च पूजयित्वा
यथाविधि । तुलस्यै नम इत्युक्त्वा दद्यादर्घ्यं विभूतये । शङ्ख-
स्थितं तोयपूर्णं दूर्वाक्षतसचन्दनम् । कुशाग्रञ्च सपुष्पञ्च एत-
दर्घ्यं सुदीरितम् ॥

अथ तुलसीध्यानं तत्रैव ॥ ध्यायेद्देवीं नवशशिमुखीं पद्म-
विम्बाधरीष्ठीं विद्योतन्तीं कुचयुगभरानम्रकल्याणयष्टिम् । ईष-
दास्योल्लसितवदनां चन्द्रसूर्याग्निनेत्रां श्वेताङ्गीं तामभयवरदां
श्वेतपद्मासनस्थाम् ॥

अथस्तुतिस्तत्रैव । ईश्वर उवाच ॥ इन्द्राद्यैः सकलेर्देवै-
रर्चितां सुरसुन्दरीम् । भक्तानां वरदां वन्दे तुलसीं सौम्यरूपि-
णीम् ॥१॥ नादविन्दुकलातीतां सुण्डमालां तपस्विनीं । वासु-
देवरतां वन्दे तुलसीं सौम्यरूपिणीम् ॥२॥ सर्वदेवमयीं देवीं
वेदगर्भा मनोरमां । योगगम्यामहं वन्दे तुलसीं सौम्यरूपि-
णीम् ॥३॥ सुरासुरविशेषज्ञां सर्वालङ्कारभूषिताम् । त्रिजग-
ज्जननीं वन्दे तुलसीं सौम्यरूपिणीम् ॥४॥ पद्महस्तां पद्ममुखीं
पद्मस्थां पद्मलोचनाम् । लक्ष्मीरूपामहं वन्दे तुलसीं सौम्य-
रूपिणीम् ॥५॥ संक्रान्त्याञ्चैव पक्षान्ते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
यः पठेत् संयतो भूत्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् । विना मन्त्रं
विना जप्यं विना यज्ञं विना क्रियाम् । विना ध्यानं विना तीर्थं
सर्वसिद्धिं भवेत् । इदं गुरुकृतं स्तोत्रं यः पठेत् शृणुया-
दपि । मुक्तिः करतले तस्य मुक्तश्चैव न संशयः ॥ इति मन्त्र-
सूक्ते षोडशपटले तुलसीस्तोत्रं समाप्तम् ॥

प्रणाममन्त्रस्तु ॥ त्रियं देहि यशो देहि कीर्तिं मायुस्तथा
सुखम् । बलं पुष्टिं तथा धर्मं तुलसि ! त्वं प्रयच्छ मे ॥ इत्यनेन
तु मन्त्रेण नतिं कुर्यात् समाहितः ॥

अथ मालादिधारणम् ॥ भगवद्भक्तिविलासधृतम् ॥ ततः
 कृष्णार्पिता माला धारयेत्तुलसीदलैः । पञ्चाक्षैस्तुलसीकाष्ठैः
 फलेर्धात्र्याश्च निर्मिताः । धारयेत्तुलसीकाष्ठभूषणानि च
 वैष्णवः । मस्तके कर्णयोर्वान्नोः करयोश्च यथारुचि ॥

अथ मालाधारणविधिः ॥ स्कान्दे ॥ सन्निवेद्यैव हरये
 तुलसीकाष्ठसम्भवाम् । मालां पश्चात् स्वयं धत्ते स वै भाग-
 वतोत्तमः ॥ कृष्णानर्पितमालाधारणानन्दापि तत्रैव ॥ हरये
 नार्पयेद् यस्तु तुलसीकाष्ठसम्भवाम् । मालां धत्ते स्वयं मूढः
 स याति नरकं ध्रुवम् । क्षालितां पञ्चगव्येन मूलमन्त्रेण मन्त्रि-
 ताम् । गायत्र्या चाष्टकृत्यो वै मन्त्रितां धूपयेच्च ताम् । विधि-
 वत् परया भक्त्या सद्योजातेन पूजयेत् । तुलसीकाष्ठसम्भूते
 माले ! कृष्णजनप्रिये ! । विभर्षि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्ण-
 वल्लभम् । यस्मात्तं वल्लभा विष्णोर्नित्यं विष्णुजनप्रिया । तथा
 मां कुरु देवेशि ! नित्यं विष्णुजनप्रियम् । माले ! नाधातु-
 र्दृष्टो नासि मां हरिवल्लभे ! । भक्त्यभ्यस्य समस्तेभ्यस्ते न माला-
 निगद्यते । एवं स प्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेर्पिताम् ।
 धारयेद्वैष्णवो यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥ मालाधारणस्य
 नित्यता ॥ तत्रैव कार्त्तिकप्रसङ्गे ॥ धात्रोफलकृतां मालां
 कण्ठस्थां यो वहेन्न हि । वैष्णवो न स मनुजो विष्णुपूजाकृतो
 यदि ॥ गारुडे ॥ धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ।
 नरकात्तन्निवर्त्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरिः ॥ अतएव स्कन्द-
 पुराणे ॥ तत्रैव ॥ न जह्यास्तुलसीमालां युक्तो दृष्ट्वा च ये ह-
 रिम् । यद्यत् करोति तत्सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ नारदीये ॥
 ये कण्ठसक्ततुलसीनलिनाश्चमाला ये बाहुमूलपरिचिह्नित-
 मञ्जुवक्त्राः । ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवा भुवन-
 माशु पवित्रयन्ति ॥ किञ्च ॥ भुजयुगमपि चिह्नैरङ्कितो यस्य

विष्णोः परमपुरुषनाम्नां कीर्तनं यस्य वाचि । ऋजुतममपि
पुण्ड्रं मस्तके यस्य कण्ठे सरतिजमणिमाला यस्य तस्यास्मि
दासः ॥ विष्णुधर्मोत्तरे श्रीभगवद्गुह्ये ॥ तुलसीकाष्ठमालाञ्च
कण्ठस्थां वहते तु यः । अप्यसौ चाप्यनाचारो मानवो वै न सं-
शयः ॥ स्कन्दपुराणे ॥ धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठ-
सम्भवा । दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतोत्तमः । तुलसीद-
लजां मालां कण्ठस्थां वहते तु यः । विष्णुवर्णाविशिषेण स
नमस्यो दिवोक्तसाम् । तुलसीदलजा माला धात्रीफलकृतापि
वा । ददाति पापिनां मुक्तिं किं पुनर्विष्णुमेविनाम् ॥ तत्रैव ॥
कार्तिकप्रसङ्गे ॥ यः पुनस्तुलसीमालां कृत्वा कण्ठे जना-
हर्नम् । पूजयेत् पुण्यमाप्नोति प्रतिपुष्पं शवायुतम् । याव-
ल्लुठति कण्ठस्था धात्रीमाला नरस्य हि । तावत्तस्य शरीरे तु
प्रोत्था लुठति केशवः । सृष्टेश्च यानि लोमानि धात्रीमाला
करे नृणाम् । तावद्वर्षसहस्राणि वसते केशवालये । यावहि-
नानि वहते धात्रीमालां कलौ नरः ॥ तावद्वयुगसहस्राणि
वैकुण्ठे वसतिर्भवेत् । मालायुग्मञ्च यो नित्यं तुलसीधात्री-
सम्भवम् । वहते कण्ठदेशे च कल्पकोटिं दिवं वसेत् ॥ गारुडे
च । मार्कण्डेयोक्तौ ॥ तुलसीदलजां मालां कृष्णोत्तीर्णां
वहेत्तु यः । पत्रे पत्रे ऽश्वमेधानां दशानां लभते फलम् । तुलसी-
काष्ठसम्भूतां यो मालां वहते नरः । फलं यच्छति दैत्यारिः
प्रत्यहं द्वारकोद्भवम् । वहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति
पातकम् । सदा प्रीतमनास्तस्य कृष्णो देवकिनन्दनः । तुलसी-
काष्ठसम्भूतां यो मालां वहते नरः । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति
नाशीचं तस्य विग्रहे । तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहते
नरः । तुलसीकाष्ठसम्भूतां शिरसो बहुभूषणम् । बाह्वोः
करे च मर्च्यस्य देहे तस्य सदा हरिः । तुलसीकाष्ठमालाभिः

भूषितः पुण्यमाचरेत् ॥ पितृणां देवतानाञ्च कृतं कोटिगुणं
कलो । तुलसीकाष्ठमालान्तु प्रेतराजस्य दूतकाः । दृष्ट्वा
नश्यन्ति दूरेण वातोद्धूतं यथा दलम् । तुलसीकाष्ठमालाभिर्भू-
षितो भ्रमते यदि । दुःस्वप्नं दुर्निमित्तञ्च न भयं शस्त्रजं
क्वचित् ॥

अथ वैष्णवप्रशंसा ॥ नारदपञ्चरात्रस्य प्रथमरात्रे नवमा-
ध्याये ॥ अहो ! अनन्तदासानां माहात्म्यं परमाद्भुतम् । कुर्वन्त्य-
हैतुकीं भक्तिं ये च शश्वद्वरेः पदे । पद्मनाभपादपद्मं पद्मे
पद्मे श्वराञ्जिते । दिवानिशं ये ध्यायन्ति शेषादिसुरवन्दिते ।
आलापं यत्र संस्पर्शं पादा वसुमतीक्षितम् । वाञ्छन्त्येव हिता-
र्थानि वसुवाचात्मशुद्धये । कृष्णमन्त्रोपासकानां शुद्धं पादोदकं
स्मृतम् । पुनाति सर्वतीर्थानि वसुधामपि पार्वति । । कृष्णमन्त्रो
द्विजमुखाद् यस्य कर्णं प्रयाति च । तं वैष्णवं जगत्पूतं प्रवदन्ति
पुराविदः । मन्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणात्मकः । पुनाति
लीलामात्रेण पुरुषाणां शतं शतम् । तज्जन्ममात्रात् पूतञ्च
तत्पितृणां शतं शतम् । प्रयाति सद्यो गोलोकं कर्मयोगात्
प्रमुच्यते । मातामहादिकान् सप्त जन्ममात्रं समुद्धरेत् । यत्कन्यां
प्रतिगृह्णाति तस्य सप्त च लीलया । मातरं तत्पुत्रं भार्यां
पुत्राञ्च सप्तपूरुषम् । भ्रातरं भगिनीं कन्यां कृष्णभक्तः समुद्ध-
रेत् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । फलं स लेभे
पूजानां व्रती सर्वव्रतेषु च । विष्णुमन्त्रं यो लेभेच्च वैष्णवाच्च
द्विजोत्तमात् । कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
कृष्णमन्त्रोपासकानां सद्यो दर्शनमात्रतः । शतजन्मार्जितात्
पापान्मुच्यते नात्र संशयः । वैष्णवानां दर्शनेन स्पर्शनेन च
पार्वति । । सद्यः पूतो जलं वह्निर्जगत्पूतः समीरणः । दर्शनं
वैष्णवानाञ्च देवा वाञ्छन्ति नित्यशः । न वैष्णवात् परः पूतो

विंशेषु निखिलेषु च ॥ दशमाध्याये ब्रह्मवचनम् ॥ अहो ! वेणव-
मङ्गश्च क्षणमेव सुदुर्लभः । भवाब्धिवोरतरणं भुक्तिमुक्तिफल-
प्रदम् ॥ इति वेणवप्रशंसा ॥

अथ दशावताराणामविर्भावकालमाह स्वतन्त्रतन्त्रे ॥
चैत्रशुक्लप्रतिपदि रेवत्यां सोमवासरे । द्वादशनाडिकामध्ये
हरिर्मत्स्योऽभवद्दिवा । ज्येष्ठशुक्लद्वितीयायां रोहिण्यां बुधवा-
सरे । दिवाघटीचतुष्केऽभूद्भरिः कूर्मस्वरूपवान् । शुक्लायां सप्तमी
माघे तत्राश्विन्याञ्च भास्करे । दिवाष्टघटिकामध्ये वराहोऽभू-
द्भरिः प्रभुः । रात्रि सितचतुर्दश्यां स्वात्याञ्च शनिवासरे । मध्याह्ने
षट्ततो जज्ञे नृहरिः कमलापतिः । भाद्रे च द्वादशी शुक्ला
श्रवणासंयुता भृगो । दशपञ्चघटीमध्ये दिवाभूद्भारुनी हरिः ।
तृतीया माघवे शुक्ला रोहिण्यां शनिवासरे । एकादशघटी-
मध्ये नक्तं रामोऽभवद्भरिः । चैत्रशुक्लनवम्यान्तु सोमवारे पुन-
र्वसौ । पूर्वाह्णे चामवद्रामः सूर्यं देवो जनादेनः । कृष्णाष्टम्यान्तु
भाद्रस्य रोहिण्यां बुधवासरे । मध्यरात्रेऽभवद्दिशुः कणस्तु
भगवान् इयम् । आषाढे शुक्लनवमी विशाखायाञ्च भास्करे ।
दिवानाडीषट्कमध्ये वीजोऽभूदंशजो हरिः । मार्गशुक्लतृती-
यायां पूर्वाषाढर्चके शनौ ॥ नक्तं त्रिघटिकामध्ये काल्किरूपो-
ऽभूद्भरिः ॥ विष्णुपूजायां विशेषस्तन्त्रसारे सर्वे द्रष्टव्यो ग्रन्थ-
मौरवभियां न लिखितः ॥

इति श्रोत्रप्राणतोषिण्यां पञ्चमं भक्तिकारणं विष्णुपूजादि-

कथनरूपः पञ्चमपरिच्छेदः ॥

अथ महाविद्यानिरूपणम् ॥ चामुण्डातन्त्रे ॥ कालीं तारां
महाविद्यां षोडशीं भुवनेश्वरीं ॥ भैरवीं द्विक्रमस्तां च विद्यां
धूमावतीं तथा । वगलां सिद्धविद्यां च मातङ्गीं कमलात्मिकां ।
एता दश महाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः । एता दशमहा-

विद्या इत्यनेन सर्वाणां महाविद्यात्वसिद्धौ कालो तारा महा-
विद्येति यन्महाविद्योपादानं तत् कालोतारयोर्महाविद्यात्वा-
यम् । अतएव महाविद्या महापूर्वेति विद्वन्मार्गेक्षम् । अथ
सिद्धविद्याः प्रकीर्तिता इत्यनेन सर्वाणां सिद्धविद्यात्वे वगला
सिद्धविद्या चेति कथमुक्तमिति चेत्तत्रापि भ्राष्टिर्ति सिद्धिप्रदा-
नार्थमिति ॥

अथ महाविद्यानां माहात्म्यम् ॥ कुलिङ्गातन्त्रे प्रथमपटले ।
कलो कृष्णवर्णमाद्यशुक्लापि नीलरूपिणी । लोलया वाक्प्रदा
चेति तेन नीलसरस्वती । तारकत्वात् सदा तारा तारिणी च
प्रकीर्तिता । भुवनानां पालकत्वाद्भुवनेशो प्रकीर्तिता । सृष्टि-
स्थितिकरी देवौ भुवनेशो प्रकीर्तिता । श्रीदात्री च सदा
विद्या आविद्या च प्रकीर्तिता । निर्गुणा च महादेवौ षोडशो
परिकीर्तिता । भैरवौ दुःखसंहन्त्री यमदुःखविनाशिनौ । काल-
भैरवभार्या च भैरवो परिकीर्तिता । त्रिशक्तिकालदा देवि !
हिन्वा चैव सुरेश्वरि ! । त्रिगुणा च महादेवि ! मोहिनौ मो-
क्षदा ध्रुवम् । धूमावतौ महामाया धूम्रः सुरनिसूदनौ । धूम-
रूपा महादेवो चतुर्वर्गप्रदायिणी । जगन्माता जगद्वाची जगता-
मुपकारिणी । वक्रारे वारुणी देवौ गकारे सिद्धिदा सृता ।
लकारे पृथिवी चैव चैतन्या या प्रकीर्तिता । मातङ्गो मदशो-
खत्वाद्यातङ्गासुरनाशिनो । सर्वापत्तारिणी देवौ मातङ्गो परि-
कीर्तिता । वक्रुण्ठवासिनी देवो कमला च प्रकीर्तिता । पाता-
लवासिनी देवो लक्ष्मीरूपा च सुन्दरी । एता दश महाविद्याः
सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः । धर्माथमोक्षदा नित्यं चतुर्वर्गफल-
प्रदाः । येन तेन प्रकारेण कलो पूर्णफलप्रदाः । निर्दने कृपणे
चैव विशेषात् पर्यायिण्यु । पाषण्डे च शठे चैव निन्दके चैव
निर्गुणे । अभक्तेषु च पुत्रेषु प्रास्थाहीने च सुन्दरि ! । न प्रका-

श्वमिदं भद्रे । शययं मे ध्रुवं सदा । सर्वलक्षणयुक्ताय दद्याच्चैव
महेश्वरि । । आसाच्चैव समाना हि नास्ति त्रिभुवने ध्रुवम् ।
एकोच्चारणमात्रेण सर्वपापात् प्रमुच्यते । स्मरणेनैव देवेशि ।
मुच्यते भववशनात् ॥

अथ महाविद्यादीनां भैरवगिरूपणम् ॥ तोडलतन्त्रे प्रथम-
पटले ॥ शिव उवाच ॥ शृणु चार्दङ्गि ! सुभगे ! कालिकायाश्च
भैरवम् । महाकालं दक्षिणाया दक्षभागे प्रपूजयेत् । महाकालेन
वै साङ्गं दक्षिणा रमते सदा । ताराया दक्षिणे भागे अक्षोभ्यं
परिपूजयेत् । समुद्रमथने देवि ! कालकूटं समुत्थितम् । सर्वं
देवाः सदाराश्च महाचोभमत्र भुवुः । क्षोभादिरहितं यस्मात्
पीतं च्छाह्वं विषम् । अतएव महेशानि ! अक्षोभ्यः परि-
कीर्तितः । तेन साङ्गं महामाया तारिणी रमते सदा । महात्रि-
पुरसुन्दर्या दक्षिणे पूजयेत् शिवम् । पञ्चवक्त्रं विनेत्रञ्च प्रतिवक्त्रे
सुरेश्वरः । । तेन साङ्गं महादेवी सदा कामकुतूहला । अतएव
महेशानि ! पञ्चपीति प्रकीर्तितः । श्रीमद्भुवनमुन्दर्या दक्षिणे
व्याघ्रक यजेत् । स्वर्गं मर्त्यं च पाताले या चाद्या भुवनेश्वरी ।
एतया रमते तेन व्याघ्रकस्तेन कथ्यते । सशक्तिश्च समाख्यातः
सर्वान्ध्रपूजितः । भैरव्या दक्षिणे भागे दक्षिणामूर्तिसंज्ञकम् ।
पूजयेत् परयत्नेन पञ्चवक्त्रं तमेव हि । शिवमस्तादक्षिणांशे
कबन्धं पूजयेच्छिवम् । कबन्धपूजनादेवि ! सर्वासङ्गीश्वरो भवेत् ।
धूमावती महाविद्या विधवारूपधारिणी । वगलाया दक्षभागे
एकवक्त्रं प्रपूजयेत् । महारुद्रेति विख्यातं जगत्संहारकारकम् ।
मातङ्गीदक्षिणांशे च सतङ्गं पूजयेच्छिवम् । तमेव दक्षिणा-
मूर्तिं जगदानन्दकारकम् । कमलाया दक्षिणांशे विष्णुरूपं
सदाशिवम् । पूजयेत् परमेशानि ! स सिद्धो नात्र संशयः । पूज-
येत् संपूर्णाया दक्षिणांशे च रुद्रकम् । महामोक्षप्रदं देवं दश-

वक्त्रं महेश्वरम् । दुर्गाया दक्षिणे देशे नारदं परिपूजयेत् ।
नकारः सृष्टिकर्त्ता च दकारः पालकः सदा । रेफः संहाररूप-
त्वान्नारदः परिकीर्तितः । अन्यासु सर्वविद्यासु ऋषियः परि-
कीर्तितः । स एव तस्य भर्ता च दक्षभागे प्रपूजयेत् ॥

महाविद्यादीनामाविर्भावकालनिरूपणाय महारात्रादि-
कृतः ॥ स्वतन्त्रतन्त्रे यथा ॥ फाल्गुने च महारात्रिः कृष्णै-
कादशिका तिथिः । ज्येष्ठे या दशमी शुक्ला देवि ! वारयुता
भृगोः । रात्रावैकादशी चैत् स्यात् दिव्यरात्रिः प्रकीर्तिता ।
अमा भौमे संक्रमश्च कुलार्चग्रहणं यदि । भावरात्रिस्तु सम्प्रोक्ता
भाग्यादेव तु लभ्यते । सिद्धरात्रिरष्टमी स्याच्चैत्रसंक्रमणा-
न्विता । तृतीया माधवे शुक्ला कुलार्चं दारुणा तिथिः ।
दोषोत्सवचतुर्दश्याममया योग एव च । कालरात्रिर्महेशानि !
तारा काली प्रियङ्गुरी । कृष्णजन्माष्टमी देवि ! मोहरात्रिः
प्रकीर्तिता । चैत्रशुक्लनवम्यान्तु क्रोधरात्रिः प्रकीर्तिता ।
वीररात्रिर्मार्गशीर्षे कृष्णाष्टम्यां महेश्वरि ! चतुर्दशी भौम-
युता मकारेण समन्विता । कुलऋक्षसमायुक्ता वीररात्रिः
प्रकीर्तिता । विद्योत्पत्तिस्तु नारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे तृती-
याध्याये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दक्षगेहे समुद्रूता या सती लोकवि-
युता । कुपित्वा दक्षराजर्षिं सती त्यक्त्वा कलेवरम् । अनु-
गृह्य च मेनायां जाता तस्यान्तु सा तदा । कालीनाम्नेति
विख्याता सर्वशास्त्रे प्रतिष्ठिता ॥ स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ महारात्रि-
दिनेऽन्यथा नगर्यां जातमेव तत् । कालीरूपं महेशानि !
साक्षात् कैवल्यदायकम् ॥ एतस्या माहात्म्यमुक्तं नारदपञ्च-
रात्रे ॥ विश्वामित्रो मुनिश्चेष्ट आराध्य कमलासनम् । नावाप
वाङ्मणवं हि ततो विष्णुं जगाम सः । तस्मादपि न चावाप
ब्रह्मत्वं क्षत्रियोत्तमः । एवं सर्वान्सुरान् गत्वा आराध्य च मुहु-

मुहुः । ब्रह्मस्तेरुपादेशादाराध्य हृषभध्वजम् । महेशदर्शनं
लब्ध्वा कृतकृत्योऽभवत्तदा । देवदेव ! महादेव ! भगवंस्त्वं
कृपामय ॥ ब्राह्मणत्वं देहि मच्छं यदि ज्ञातासि मे वरम् ॥
ईश्वर उवाच ॥ एकाक्षरी महाविद्या कालिकायाः सुदुर्लभा ।
जपं कुरु महाबाहो ! ततः प्राप्तासि विप्रताम् । एवमुक्त्वा
महादेवोऽप्यन्तर्धानं जगाम सः । विश्वामित्रोऽपि विधिना
आराध्य तां जगन्मयीम् । मन्त्रसिद्धिं न चावाप क्रोधेन च
शशाप ताम् । अनाराध्या भवेति त्वं आगम्य तु ततः शिवम् ।
निर्भर्त्य बहुधा तन्तु इदमाह महेश्वरः ॥ ईश्वर उवाच ॥ किमर्थं
शसवान् विद्यां शृणु यत्नेन पार्थिव ! । रेणारुढककारिण सिद्धि-
माप्तासि नान्यथा ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अन्तर्धानं गतः शम्भुर्विश्वा-
मित्रोऽपि नारद ! । तथा विधानं जप्त्वा तु यदुक्तं शम्भुना पुरा ।
साक्षाद्बभूव सा काली सह रुद्रेण तत्क्षणात् ॥ देव्युवाच ॥
वरं वरय राजेन्द्र ! ददामि ते वरं शिवम् । यदिच्छसि प्रदा-
स्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ आरा-
धिता मया सर्वं ब्रह्माद्या देवतागणाः । विप्रत्वं केन मे देवि !
न दत्तं त्वं प्रदेहि मे । श्रुत्वा वाक्यं नृपस्याशु सा देवी
स्वामिनो सुखम् । निरीक्षेद्विभवेन सङ्केतेन उवाच तम् ।
महादेवोऽपि तज्ज्ञात्वा प्रीतिभावेन शङ्करः । हस्ताभ्यामपि
चालिञ्च विप्रत्वं प्रददौ ततः । तत्क्षणादपि राजासौ विप्रत्वं
गतवान् ध्रुवम् । सर्वशास्त्रैकनिपुणः सर्वशास्त्रैकपारगः ॥
इति कालीमाहात्म्यम् ॥

नारदपञ्चरात्रस्य तृतीयरात्रं द्विविधं दृश्यते । तयोरिक-
स्मिन् विद्यात्पत्तिशिवलिङ्गाभिर्भावप्रभृति द्वाविंशत्यध्यायात्म-
के वृत्तते तस्माद्विद्योत्पत्त्याद्याहृत्य लिखितम् । अपरस्मिंस्तु पञ्चा-
दशाध्यायात्मके प्रातःकृत्यादिपूजाविध्यन्तकर्माणि सन्ति

किन्तु क्रमदीपिकावचनान्येव प्रायेणेति तत्र तत्र सन्देहः ॥
 नारदपञ्चरात्रे तृतीयरात्रे द्वितीयाध्याये ॥ यथा ॥ दक्षगृहे
 च योत्यन्ना सतीनाम्नेति कीर्तिता । कैवल्यदायिनी यस्मा-
 त्तस्मादेकजटा स्मृता । तारकत्वात् सदा तारा लीलया वाक्-
 प्रदा यतः । नीलसरस्वती प्रोक्ता उग्रत्वादुग्रतारिणी । उग्रा-
 पत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता ॥ स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ काल-
 रात्रिदिने प्राप्ते निशायां मध्यभागके । उग्रापत्तारणार्थन्तु
 उग्रतारा स्वयं कला । मेरोः पश्चिमकूले तु चोलनाख्यो ह्रदो
 महान् । तत्र जज्ञे स्वयं देवि ! माता नीलसरस्वती । तत्र
 जयन्तु प्रजपंस्त्रियुगं समवर्त्तत । ममोर्द्ध्वक्ताम्रिःस्रुत्य तेजो-
 राशिर्विनिर्गतः । ह्रदे चोले निपत्यैव नीलवर्णाभवत्तदा ।
 ह्रदस्य चोत्तरे भागे ऋषिरेको महोत्तमः । मदंशोऽक्षोभ्य-
 नामासौ तदाराधनतत्परः । कूर्चदीजस्वरूपा सा प्रत्यालीढ-
 पदाभवत् ॥ नारदपञ्चरात्रे ॥ सप्तकोटिर्महाविद्या उपविद्याश्च
 तादृश । तासां मूर्त्तिर्मुनिश्चेष्ट ! संख्यातुं नैव शक्यते । एकदा
 हरिरैशान्यां नैर्ऋत्यामागतः किल । नीलाचलशरीरे स आगतो
 गरुडध्वजः । तत्रस्थाश्च महात्मानः सिद्धाः परमतेजसः । ऊचु-
 र्देवं जगन्नाथं तं वारयितुमोश्वरम् । सर्वेषामादिभूतेयं विश्व-
 रूपा सनातनी । तस्या उपरिदेशेन गन्तुमर्हसि केशव ।
 त्वञ्च सर्वगुरुः साक्षी सर्वेषाञ्च सभापतिः । न हि गन्तासि
 भगवन् ! पथान्येन गतिं कुरु । न गृह्णन् तद्वचस्तेषां जगाम
 मधुसूदनः । जगाम गरुडस्तेन पथा तेनैव केशव । स्तम्भीभूत-
 स्तदा विष्णुर्गन्तुं तस्मान्न शक्नुवन् । ततो भूमिमुपागम्य
 त्वभूदष्टभुजो हरिः । अवष्टभ्य गिरिं नीलं सर्वप्राणेन विश्वभृत् ।
 तमुत्थातुमशक्तो वै भ्रान्तोऽभूज्जगदीश्वरः । भ्राम्यमाणे हृषी-
 कैश्वी सहस्रद्वयवत्सरम् । ततः कृद्धा भगवती वामहस्तेन चे-

श्वरी । मिहिसूत्रेण संवेद्य चिक्षेप लवणाश्रसि । अपश्यत् केशवं
तोयपतितं प्राह विस्मितः । किमिदं कथ्यतां शीघ्रं विस्मयं
मम नाशय । उवाच विष्णुरादौ मामुद्धादं कुरु सत्वरम् । अव-
ष्टभ्य तदा विष्णुमुद्धर्तुमुद्यतो विधिः । सोऽपि ब्रह्मा महातिजा
ब्रह्मा कमलसम्भवः । एवमिन्द्रादयः सर्वे ब्रह्मत्वं समुपागताः ।
अथ काले व्यतीति तु जीवो देवगुरुर्वरः । बभ्रां लोकांस्त्रौन्
सर्वान्नापश्यद्देवताः क्वचित् । शून्यां सर्वां पुरीं दृष्ट्वा जगाम
शङ्करालयम् । सम्पूर्णं वसतिं तत्र दृष्ट्वा हृष्टोऽभवद्गुरुः ।
स्तुतिभिर्नुतिभिर्दवं सम्प्रसाद्य भृगेश्वरम् । पपात दण्डवद्भूमौ
दृष्ट्वा देवं सनातनम् । उवाच देवदेवेशं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥
ब्रह्मस्यतिरुवाच ॥ क्व गतो भगवन् ! ब्रह्मा विष्णुश्चेन्द्रादयः सुराः ।
असुराणां भयेनैव सन्तस्तं मम मानसम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ अव-
मन्ये च कामाख्यां विष्णुब्रह्मादयः सुराः । दुःखमापुः सदोद्दिग्ना
लवणाश्रसि पीडिताः ॥ ब्रह्मस्यतिरुवाच ॥ तेषामेव प्रतीकारं
चिन्तय त्वं जगत्पति ! । क्षिप्रं प्रहारिणो दैत्याः शून्या देवपुरी
शिव ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ एष गच्छामि वै क्षिप्रं समुद्धर्तुं सुरान्
किल । एष गच्छ मया साङ्गं लवणाश्रसि मानद ! । इत्युक्त्वा
जग्मतुस्तौ तु लवणाश्रोनिधेस्तटम् । समर्थोऽपि शिवस्तेषा-
मुद्धर्तुं जगदीश्वरः । मर्यादार्थं हरेस्तेषां कामाख्याकवचं
शिवः । सुरसंख्यं वपुः कृत्वा धारयामास कण्ठतः । प्रसार्य
वामहस्तञ्च सुरान् संवेद्य शङ्करः । उत्थापयामास तदा देवान्
देवो जगत्पतिः । ततो देवगणाः सर्वे वेपमाना इव दुमाः ।
पितुर्भूमौ महादेवं प्रणिमुक्ते सुहृर्मुहुः । तत आश्वास्य भगवानु-
वाच तान् यथायथम् । प्रसादयत कामाख्यां जगन्मातरमम्बि-
काम् । गत्वा विष्णुमुखस्तत्र कामाख्यां परमेश्वरीम् । ननाम
तुष्टाव तदा नतिभिः स्तुतिभिः पराम् । साशुकण्ठी हृषीकेशो

वेपमानश्च भक्तिमान् । सा क्रुद्धा दूरतः प्राह जगद्योनिः सना-
तनी । दुर्बुद्धे ! मामवज्ञाय किं कृतं गौरवं त्वया । किमिच्छसि
वरं मत्तो व्रियतां यत्तवेप्सितम् ॥ विष्णु रुवाच ॥ तव क्षेत्रे महा-
पुण्ये अष्टदिक्षु सशक्तिकः । तिष्ठाम्यहर्निशं मातस्तवाज्ञावशगः
सदा । इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्जगन्माता जगन्मयी । तथेत्युक्त्वा
च वरदा चकारालुग्रहं हरौ । इति ते कथितं पुत्र ! किञ्चिन्मा-
हात्म्यमुत्तमम् । रहस्यं तारिणीदेव्या न समर्थोऽस्मि विस्तरात् ॥
इति तारामाहात्म्यम् ॥

तत्रैव पञ्चमाध्याये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूयः शृणु मुनिश्रेष्ठ !
रहस्यं परमाद्भुतम् । येन काली महामाया सुन्दरीत्वमुपा-
गता । कैलासशिखरे रम्ये वसमाने च शङ्करे । इन्द्रश्च प्रेषया-
मास सर्वाश्चाप्सरसो मुदा । आगतास्ता महादेवं तुष्टुवुस्तं महे-
श्वरम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्येवं वचनं श्रुत्वा तासां स वृषभध्वजः ।
आभाष्य श्रुण्वया वाचा करुणामृतया ततः ॥ ईश्वर उवाच ॥
पुरुषस्यातिथिर्ज्ञेयः पुरुषो नात्र संशयः । स्त्रीणां स्त्री
चातिथिर्ज्ञेया तस्मान्नक्त कालिकाम् । इत्युक्त्वा तत्पुत्रं रम्यं
विवेश परमेश्वरः । उवाच कालीं भगवानोश्वरीं परमेश्वरौम् ।
ता अप्यवापुः परमां प्रीतिं परमदुर्लभाम् ॥ षष्ठाध्याये ॥ ततो
देवो महाकालीं चिन्तयित्वा मुहुर्मुहुः । एतद्रूपमपाहाय शुद्ध-
गौरी भवाम्यहम् । यस्मात् कालोति कालोति महादेवः समाह्व-
येत् । इति सञ्चिन्त्य मनसा अन्तर्धानं गता परा । महादेवोऽपि
कालेन गतो ह्यस्तः पुरं शिवः । नापश्यच्च तदा कालीं तस्थौ
तस्मिन् पुरे हरः । अथ काले कदाचित्तु आगतस्तत्र नारदः ।
प्रणम्य शिरसा देवं महादेवं महेश्वरम् । कृताञ्जलिपुटस्तस्थौ ततो
देवायतो मुनिः । महादेवोऽपि वामेन पाणिना मुनिसत्तमम् ।
उपसृष्टश्च समाश्वास्य चक्रे पुण्यवतीं कथाम् । कालेन कियता

तत्र कथान्ते मुनिसत्तमः । उवाच सादरं वाक्यं प्रणम्य जग-
दीश्वरम् ॥ नारद उवाच ॥ कृगता त्वां परित्यज्य काली काल-
विनाशिनी । प्रत्युवाच महादेवस्तु मुनिं नारदं ततः । अन्त-
र्धानं गता देवी मां हित्वा मुनिसत्तम ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति
श्रुत्वा वचस्तस्य नारदो हर्षमागतः । विवादसमयश्चायं महा-
काल्याश्च शूलिनः । इति सञ्चिन्त्य मनसा ध्यानमाश्रित्य
नारदः । ददर्श तां महाकालीं ध्यानचक्षुःसमाश्रितः । सुमेरो-
रुत्तरे पार्श्वे स्थिता सा परमेश्वरी । प्रणम्य परया भक्त्या उप-
तस्थे जगन्मयीम् । नारदस्तुत्यनन्तरम् ॥ देव्युवाच ॥ विदूरेण
भदोयेन किं करोति महेश्वरः । तस्यैव कुशलं सर्वं कथयस्व
मुनोश्वर ॥ नारद उवाच ॥ उदुयोगं परमं चक्रं विवाहार्थं
महेश्वरः । देवदेवो गिरिसुते ! तं निवारय सुव्रते ॥ ब्रह्मो-
वाच ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य सक्रोधा परमेश्वरी । जाज्वल्य-
माना रक्ताक्षो रूपमन्यद्भौ परा । यन्नास्ति त्रिषु लोकेषु
सौन्दर्यमपि कुत्रचित् । दधौ तद्रूपमतुलं सर्वेषामधिकं परम् ।
यन्नास्ते भगवान् देवो देवदेवो महेश्वरः । समागता क्षणेनैव
ततः सा परमेश्वरी । ददर्श हृदये शम्भोः स्वच्छायां परमेश्वरी ।
उवाच सा महादेवं क्रोधेन मङ्गता वृता । कृतघ्नस्त्वं महादेव !
मया यः समयः कृतः । तत् त्वं लङ्घितवान् देव ! किमर्थं
परमेश्वर ॥ कृत्वा विवाहं हृदये स्थानं दत्तं मया शिव ! ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः प्रहस्य परमेश्वरः । उवाच स प्रियां साध्वीं
प्रेमगद्गदया गिरा ॥ ईश्वर उवाच ॥ नाहं कृतघ्नः कल्याणि !
नाहं समयलङ्घकः । हृदये मे त्वया दृष्टा स्वच्छाया नात्र
संशयः । ध्यानं कुरु महाभागे ! पश्य त्वं ज्ञानचक्षुषा ।
स्वच्छाया सैव देवेशि । ततः सुस्थाभवत् परा । उवाच परमेशानं
देवदेवं महेश्वरम् । परेण प्रेमभावेण जगदीशं जगन्मयम् ।

का छाया हृदि दृष्टा सा तन्मे ब्रूहि जगत्पते । ॥ ब्रह्मोवाच ॥
 इति श्रुत्वा महादेवः कालिकावचनं परम् । उवाच प्रेमभावेण
 देवदेवः सनातनः ॥ ईश्वर उवाच ॥ यस्मात्त्रिभुवने रूपं श्रेष्ठं
 कृतवती शिवे ! । तस्मात् स्वर्गे च मर्त्ये च पातालेऽन्यत्र
 पार्वति ! । सुन्दरौ पञ्चमी श्रीश्च ख्याता त्रिपुरसुन्दरौ । सदा
 षोडशवर्षीया विख्याता षोडशी ततः । यां छायां हृदये मेऽद्य
 दृष्ट्वा भौता सुरेश्वरि ! यस्मात् सा त्रिषु लोकेषु ख्याता त्रिपुर-
 भैरवी । यावस्था भगवत्याश्च सुखचित्ता कृपामयी । ततस्तां
 भुवनेशानो राजराजेश्वरीं विदुः । या चोग्रतारिणी प्रोक्ता या
 च दिक्करवासिनो । यैषा ललितकान्ताख्या ख्याता मङ्गल-
 चण्डिका । कौषिकी देवदूतो च याश्चान्या मूर्त्तयः स्मृताः ।
 या ख्याता भुवनेशानो तस्या भेदा ह्यनेकधा । त्रिपुटा जयदुर्गा
 च वनदुर्गा त्रिकण्टकी । कात्यायनो महिषघ्नो दुर्गा च वन-
 देवता । श्रीरामदेवता वज्रप्रस्तारिणी च शूलिनी । गृहदेवौ
 गृहारूढा मेधा राधा च कालिका । कथिताश्च समासेन तासां
 भेदाश्च नारद ! । विस्तारेण तु केनैव शक्यते गदितुं मुने ! ॥
 इति षोडशीमाहात्म्यं तद्भेदाश्च ॥

तथा ॥ सा काली जगतां माता पतिं प्राह सनातनी ।
 आज्ञापय महादेव ! रूपमन्यद्भरास्यहम् ॥ ईश्वर उवाच ॥
 अयुनैव जगद्वात्रि ! यद्रूपं कर्तुमिच्छसि । करिष्यामि च
 तत् सर्वं यत्र प्रीतिस्तवाचला ॥ देव्युवाच ॥ सर्वकर्त्तासि देवेश !
 तव शक्त्या जगत्पते ! । किन्तु वाक्यं तव विभो ! श्रूयतां पर-
 मेश्वर ! । मर्यादां स्थापयिष्यामि तपः कृत्वा सुदुष्करम् ।
 त्वत्प्रीतये महाभाग ! प्रीतस्तु कुरु तन्मयि । गौरं वा रक्त-
 गौरं वा श्यामं शुक्लमथापि वा । यदन्यद्वा स्वरूपं मे तत् कुरुष्व
 जगत्पते ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ तवेच्छा या महाभागे ! तां कुरुष्व

जगद्धिते । किन्तु ते विरहेणैव मम दुःखं सुदुष्करम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥
सान्त्वयित्वा निजं कान्तं नदीं मन्दाकिनीं ययौ । दिव्यं
वर्षशतं तत्र तपस्तेपे सुदुष्करम् । प्रत्यक्षं भगवान् तस्या देवेशो
वृषभध्वजः । वामेन पाणिना साध्वीमुत्थाप्य परमेश्वरः ।
मार्जयित्वा प्रियादेहं निर्मलं कृतवान् हरः । मन्दाकिन्या
जले रम्ये स्नापयामास पार्वतीम् । विद्युद्रूपाभवन्नौरो विद्यु-
न्नौरीति विद्युता । स्वाहागौरीति श्यामा च शुक्ला च रक्त-
गौरिका । अनन्तरूपिणी मूर्तिः कोटिकोटिस्वरूपिणी ।
शाकम्भर्यमला सूक्ष्मा षट्पदी भ्रामरी तथा । अनेकवर्णा
गन्तव्यानन्तरूपा सनातनी ॥ इति विद्युन्नैर्ध्याद्युत्पत्तिः ॥

दशमाध्यायि ॥ स्वच्छाया हृदये शम्भो दृष्ट्वा देवी सनातनी ।
उवाच प्रेम्भावेण देवदेवं निजं पतिम् । तवैव हृदये देव दृष्ट्वा
ह्यायां मुनिर्मलाम् । मदीयां देवदेवेश ! विकलास्मि जगत्-
पते ! । तद्देहे देहि मे स्थानं यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।
ईश्वर उवाच ॥ अधुनैव तदर्द्धाङ्गं हरिस्थामि वरानने ! । ममा-
पि प्रीतिरतुला अङ्गाहरणदानयोः । इत्युक्त्वात्मनश्चैव
द्विधा कृत्वा तनुं हरः । आत्मनश्चैव पार्वत्याः कृतवानेकतो
वपुः । ताभ्यां वै हरगौरीभ्यामर्द्धनारीश्वरो हरः । अवशिष्टौ
तु यौ भागौ एकौकृत्य महेश्वरः । हस्ताभ्यां पिण्डवत् कृत्वा
वैकुण्ठे क्षिप्रवान् पुरे । अद्यापि तेजोरूपञ्च मूर्तिमान् वा
महेश्वरः । वैकुण्ठवासिनः सर्वे ददृशुस्ते तपोगुणैः ॥ इति
अर्द्धनारीश्वराद्युत्पत्तिः ॥

तत्रैव ॥ एकदा पार्वती देवी स्नानार्थं गतवत्यपि । सार्धं
सहचरीभ्याञ्च मन्दाकिन्या जले मुदा । तत्र स्नात्वा कामवाण-
पौङ्गिता च जगन्मयी । बभूव कृष्णा सा देवी जगदानन्द-
कारिणी । अथ काले कदाचित्तु ताभ्यां पृष्ट्वा महेश्वरी । देहि

भक्ष्यं क्षुधात्ताभ्यामावाभ्यां परमेश्वरि । । अत्र ते च प्रदास्यामि
 कुरुतां मे प्रतीक्षणम् । क्षणादूर्ध्वं पुनः पृष्टा देहि भक्ष्यमथा-
 वयोः । प्रतीक्षणं प्रकुरुतां किञ्चित्कालं स्मरामि च । क्षणात्
 परमूचतुस्ते देहि भक्ष्यमथावयोः । माता त्वं सर्वजगतां मातरं
 प्रार्थयेच्छिशुम् । माता ददाति सर्वेषां भोजनाच्छादनादिकम् ।
 अतस्त्वां प्रार्थये भक्ष्यं भक्षार्थं करुणामयि । । इति श्रुत्वा
 महेशानो मधुरं वचनं तयोः । गृहे गत्वा प्रदास्यामि इत्येव
 वचनं तयोः । ऊचतुस्ते पुनस्तां वै डाकिनी वर्णिनी परे ।
 जया च विजया ये तु आवां क्षुत्परिपोडिते । देहि भक्ष्यं
 जगन्मात ! यथा त्वय्ये कृपामयि । । तथा कुरु जगन्मातर्वरदे !
 देवि ! वाञ्छितम् । इति श्रुत्वा वचः श्रुत्वा कृपामयी शुचि-
 स्मिता । नखाग्रैश्च चिच्छेद वामेन स्वशिरस्तदा । छिन्नमा-
 तस्तु तच्छेषं वामहस्ते प्रपात च । कण्ठादिनिःसृतं रक्तं
 त्रिधारेण तपोधन । । वामदक्षिणभेदेन ते धारे च विनिर्गते ।
 सखीमुखे तु संयोज्य मध्यधारा स्वकानने । एवं कृत्वा तु
 तास्तत्र गताः सर्वा यथागतम् । छिन्नं तस्या यतो मुण्डं
 छिन्नमस्ता ततः स्मृता ॥

स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ छिन्नोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि तारा सैव च
 कालिका । पुरा कृतयुगे चैव कैलासे पर्वतोत्तमे । महामाया
 मया साङ्गं महारतपरायणा । शक्रोत्सारणकाले तु चण्ड-
 मूर्तिरभूतदा । तदा स्वदेहसम्भूते द्वे शक्ती सम्बभूवतुः ।
 डाकिनी वर्णिनी नाम्ना सख्यौ ताभ्यां सहास्त्रिका । पुष्प-
 भद्रानदीकूलं जगाम चण्डनायिका । मध्याह्ने च क्षुधात्ते च
 चण्डिकां पृच्छतस्ततः । भक्षणं देहि तच्छ्रुत्वा विहस्य चण्डिका
 शुभा । चिच्छेद निजमूर्द्धानं निरौच्य सकला दिशः । वाम-
 नासागलद्रक्तैर्डाकिनी पर्यतोपयत् । दक्षिणा वर्णिनीं देवी-

मपार्थयत शोणितम् । श्रीवामूलाङ्गलद्रुक्तेर्मस्तकं पर्थतोषयत् ।
 एवं क्रौडां तदा कृत्वा संख्यायां गृहमागता । आधाय निज-
 मूर्धानं कबन्धोपरि पार्वती । निजमूर्त्तिं समासाद्य या पुरा
 परिकीर्त्तिता । विवर्णां तान्नु दृष्ट्वाहं सहसा क्रोधमागतः ।
 अन्यैः कृतमिदं मत्वा ततः शुश्राव तदयथा । तदाभूत् क्रोधजो
 देवि ! मदंशः क्रोधभैरवः । वीररात्रिदिने जाता दिनान्ते
 परमा कला । सखीभ्यां सह देवेशि ! नद्यां तस्यां प्रचण्डिका ॥
 इति छिन्नमस्ताद्युत्पत्तिः ॥

नारदपञ्चरात्रे द्वादशाध्याये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कैलासशिखरे
 रम्ये नानारत्नविभूषिते । उपविष्टा महादेवो शम्भोरङ्गे प्रिया
 सती । उवाच प्रेम्भावेण स्वपतिं परमेश्वरी ॥ देव्युवाच ॥ त्वयसा
 दाज्जगन्नाथ ! न किञ्चिदुल्लभं मम । यतस्त्वं सर्वदोऽपीति सर्वेष
 प्रियकारकः । किन्त्वहं गन्तुमिच्छामि मातापितृः शुभालये ॥
 ईश्वर उवाच ॥ प्रियं ममेतद्देवेशि ! ममापि गमनं शिवे !
 सन्देहः किन्तु मे देवि ! गन्तासि ह्यनिमन्त्रिता । इति श्रुत्वा
 वचः पत्युर्वाचमित्याह हृष्टवत् । गतायां मयि तत्रैव ततो
 गन्तासि शङ्कर ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ एतत्ते समयं भद्रे ! कृतवा-
 नस्महं शिवे ! । गतायां त्वयि गच्छामि तवानयनहेतुना ॥
 ब्रह्मोवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे मेना चकारोत्सवमुत्तमम् । क्रौञ्चमा-
 प्रेषयामास यत्र देवः सदाशिवः । वायुवेगरेथेनैव शीघ्रमाया-
 त्तरेः सुतः । यत्रास्ते भगवानौशः साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपपृक् । दूरा-
 देव स मैनाको रथोपस्थादवातरत् । आगत्य भूमौ स क्रौञ्चो
 दण्डवन्निपपात ह । प्रेमवाप्यप्रपूर्णाक्षः पुलकीक्षमविग्रहः । विप-
 मानो महाबाहुर्मैक्तिनस्त्रात्मकन्धरः । ततो दृष्ट्वा महादेवः क्रौञ्चं
 तं धरणीगतम् । वामेन पाणिनोत्थाप्य समालिङ्ग्य गिरिः सुतम् ।
 चुचुखे तस्य मूर्धानं नैत्राभः शिरसि क्षिपन् । स्वाङ्गे निवेश-

यामास पृष्ठा कुशलमव्ययम् । उवाच शृङ्गया वाचां किमर्थ-
मिह चागतः ॥ क्रौञ्च उवाच ॥ यदि तेऽस्ति कृपा नाथ ! मयि
दासे जगत्पते ! । हिमालयसुतां गौरीं तत्र नेतुं समुत्सहे ।
उषित्वा कतिचिन्मासानागमिष्यति निश्चितम् । तदाज्ञया जग-
न्नाथ ! समाधानं कुरु प्रभो ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ पार्वती या-
हि शीघ्रं त्वं तस्यै सर्वं निवेदय ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रुत्वेदं वचनं
क्रौञ्चस्तस्य देवस्य शूलिनः । अनुज्ञाप्य जगन्नाथं जगाम
यत्र पार्वती । दूरं दृष्ट्वा धरण्यां स पपात गिरिनन्दनः ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ स्तुत्वा च परमेश्वरीम् । स्पृष्ट्वा
पादौ महाबाहुस्तथौ प्रविनयान्वितः । गिरिजापि त-
मादाय वामेन पाणिना ततः । तच्चोपवेशयामास
साङ्गे पर्वतनन्दिनी । आशीर्भिस्तं समभ्यर्च्य पप्रच्छ कुशलं
गिरेः ॥ देव्युवाच ॥ किमर्थमागतो वक्ष ! कथयस्व ममा-
ग्रतः । चिरादृष्टोऽसि भद्रन्ते करिष्यामि यथोदितम् ॥ क्रौञ्च
उवाच ॥ त्वां द्रष्टुमपि वाञ्छन्ति प्रजाः सर्वा जगद्धिते । हिम-
वान् गिरिराजश्च मेना च परमेश्वरि ! । अनुज्ञाता महेशेन
शीघ्रमायाहि पार्वति ! । मया साङ्गं पितुर्गेहे गत्वा तान्
परिहर्षय । त्वद्दर्शनोत्सुकाः सर्वे कृपां कुरु जगद्धिते ॥ देव्यु-
वाच ॥ क्षणं प्रतीक्ष भद्रन्ते पत्न्यौ यावन्निवेदये । इत्युक्त्वा सा
जगामाश्रयतास्ते वृषभध्वजः । प्रणम्य शिरसा भक्त्या उपतस्थे
पतिव्रता । अनुज्ञां देहि मे नाथ ! कृपां कुरु सदाशिव ! ।
त्वत्प्रसादात् प्रपश्यामि पितृमातृमुखान् जनान् । त्वयानीता
जगन्नाथ ! आगमिष्यामि शङ्कर ! ॥ शङ्कर उवाच ॥ शीघ्रं गच्छ
वरारोहे ! क्रौञ्चेन सह पार्वति ! । न चेन्नच्छसि शप्तव्या
देवि ! ताभ्यां न संशयः । पुनः प्रणम्य सा देवी देवदेवं महै-
श्वरम् । कृच्छ्रेण रथमारुह्य सैनिकेन समं ययौ । क्षणात्

पितृगृहं प्राप्य उत्तीर्य च रथात्ततः । जगाम वायुवेगेन
 क्रौञ्चेन सह सत्वरः । यत्रास्ते हिमवान् राजा मेना च वर-
 वर्णिनी । पश्यंश्च तयोः पादौ तस्थौ मधुरभाषिणी । हिम-
 वानपि शैलेन्द्रः समभ्यर्च्य च तां पराम् । कुशलानामयं पृष्ट्वा
 समालिङ्ग्य महामतिः । चिरं तस्थौ महातेजा धनं प्राप्यैव
 दुर्गतः ॥ गिरिराज उवाच ॥ याहि शीघ्रं महाभागे ! मेनकां
 परितोषय । इत्युक्त्वा सा गता पित्रा जगाम मातुरन्तिकम् ।
 अभिवाद्य जगद्धात्री तस्थौ सा मातुरयतः । मेनका कुशलं
 पृष्ट्वा हर्षगद्गदभाषिणी । चिरेण दृष्ट्वा सुभगा मातृनन्दविव-
 र्जिनी । एवं सुखोषिता तत्र पार्वती पितृमन्दिरे । उवास
 कतिचिन्मासान् तेषां हर्षं प्रवर्द्ध च । एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः
 शङ्खमादाय देवराट् । सुलक्षणं सुलावण्यं चारुसुखं मनोह-
 रम् । शङ्खकारस्य वेशेन जगाम हिमवदगृहम् । विक्रेतु-
 कामः शङ्खानां क्लृप्तेन त्रिपुरान्तकः । नारीभ्यः प्रददौ शङ्खं
 पार्वत्यै न ददाति च । पार्वती प्रणयाविष्टा कृत्वा तस्य च सम्म-
 तिम् । दास्यामि ते महाभागे ! चारुशङ्खं महेश्वरि ! । मया
 यदुयाचितं भद्रे ! दातव्यं मूल्यमेव तत् ॥ वादमुक्त्वा जग-
 द्धात्री परिधाय सुनिर्मलम् । दिव्यं मनोहरं शङ्खं चारुरूपं
 सुशोभनम् । शङ्खकारस्तदा प्राह मूल्यं देहि पतिव्रते ! ॥
 देव्युवाच ॥ पिता मे हिमवानद्रिर्भर्ता शम्भुः कृपामयः ।
 पुत्रा मे गणनाथाद्या भ्राता मेनाक एव च । भ्रातृपुत्रः स्वयं
 क्रौञ्चो माता च मम मेनका । यत्प्रार्थयसि भद्रन्ते तद्दास्यामि
 न संशयः ॥ शङ्खकार उवाच ॥ पीडितः कामवाणेन त्वया
 सार्द्धं वरानने ! । शीघ्रं वरय मां भद्रे ! नान्यत् पुण्यं
 ममेप्सितम् । इति श्रुत्वा वचस्तस्य शङ्खकारस्य पार्वती ।
 भूमिं वचनं रूढं कः शक्नोति जगत्त्रये । शदितुं दुष्टभावोऽ-

सौ शम्भुं चक्रे मनस्ततः । ततो ध्यानं समाख्याय धैर्यमा-
 लम्बा पार्वती । ददर्श चेष्टितं शम्भोः प्रहस्य परमेश्वरी । उवाच
 शङ्करं तं स्मितपूर्वानना ततः । अधुना गच्छ भद्रन्ते पूरयामि
 मनोरथम् । दिनान्तरे महाबाहो ! विसृज्य सा जगद्धिता ! ।
 किरातवेशमाख्याय सखीभिः परिवारिता । जगाम यत्र देवेशः
 सन्ध्यां चक्रे महेश्वरः । नृत्यगीतैः कामवेशः पानभोजनविस्तारैः ।
 उवास तत्र रमणवेशेन परमेश्वरी । एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः सन्ध्यां
 कर्तुं जगाम सः । मानसाख्यसरस्तीरे गत्वा सन्ध्यां महेश्वरः ।
 ददर्श तां सखीभिश्च कामवेशोज्ज्वलां पराम् । रक्तवर्णां रक्तवस्त्र-
 परीधानां मुनिर्मलाम् । तन्वीं विशालनयनां पौनोन्नतघटस्त-
 नौम् । आगत्य सन्निधौ तस्याः प्राह देवः कृपामयः ॥ ईश्वर
 उवाच ॥ का त्वं सुभ ! वरारोहे ! किमर्थमिह वागता । मनोरथं
 ते दास्यामि सत्यं सत्यं कृपां कुरु ॥ चाण्डाल्युवाच ॥ चाण्डा-
 ल्यस्मि सुरश्रेष्ठ ! तपोऽर्थमिह चागता । देवत्वमभिलाषं मे
 मा विघ्नं कुरु पण्डित ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ शिवोऽहं देवदेवेशि !
 तवस्त्रिफलदायकः । अधुना पार्वतीतुल्यां करिष्ये नात्र
 संशयः । तदेव कामभावेन तत्कल्याणि ! भजस्व मां । कथं
 विलम्बसे देवि ! देवत्वं यदि वाञ्छसि ॥ चाण्डाल्युवाच ॥
 तपोऽर्थमागता अत्र देवदेव ! जगत्पते ! । देवतात्वमवाप्तं वै
 मा विघ्नं कुरु धर्म्मराट् ! ॥ ईश्वर उवाच ॥ भविष्यति न ते
 विघ्नं कायक्लेशेन किं तव । अधुना भव देवी त्वं महाकथं
 विफलं न हि । इत्युक्त्वा हस्तमादाय हस्तेन परमेश्वरः ।
 उपविष्टो महादेवस्तस्या आसनमुत्तमम् । तया सार्द्धं महादेवः
 समाश्लिष्य च तां शिवः । चुचुस्ते वदनं तस्या मैथुनायोप-
 चक्रमे । रममाणस्तया सार्द्धं कालेन कियता हरः । चाण्डाल-
 विगमगमत्ततः प्राह प्रिया सती । नाहं क्लययितुं शक्या केनो-

प्रायेन कुत्रचिद् । त्वं हि देवगुरुर्देव ! देवदेव ! जगत्पते ! । एवं
नानाप्रकारेण तयोस्तु रममाणयोः । अभवच्च तयोः प्रीतिर-
तुला मुनिसत्तम ! । रत्यन्ते चोपविष्टौ तु ततः प्राह परं सती ।
जपं कुरु जगन्नाथ ! देहि मे वाञ्छितं वरम् ॥ ईश्वर उवाच ॥
यस्माच्चण्डालवेशेन मामेवं समुपागता । तस्मात्सूक्तिरियं भद्रे !
भविष्यति न संशयः । उच्छिष्टचाण्डालौ ख्याता सर्वशास्त्रेषु
गोपिता । कृतायां तव पूजायां पूजान्ते परमेश्वरि ! । साक्षा
भविष्यति शिवे ! अन्यथा नैव पार्वति ! । मातङ्गी नाम मूर्त्तिस्ते
भविष्यति न संशयः । सिद्धविद्या महाविद्या तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रिपुरभैरवो देवो यथा च भुवनेश्वरौ । काशी तारा महाविद्या
यथा ते उत्तमा तनुः । भैरवो छिन्नमस्ता च तथा धूमावती तनुः ।
वगला सिद्धविद्या च मातङ्गी ते तनूरियम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इति
दत्त्वा वरं तस्यै पुनः प्राह प्रियां सतीम् । गच्छ त्वं हिमवद्गङ्गे
कैलासमहमौश्वरः । तत्र गत्वा महामायां समानय मदालयम् ।
इति श्रुत्वा वचः पत्युः प्रणिपत्य निजं पतिम् । अभिवाद्य ह्यनु-
ज्ज्ञाता गता सापि यथागतम् । मायया मोहितास्ते तु बुबुध-
नेहि किञ्चन ॥ इति उच्छिष्टचाण्डाल्या उत्पत्तिः ।

प्रकारान्तरन्तु स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ अथोच्छिष्टचाण्डालिनीं वक्ष्ये
शृणुष्व सावधानतः । नारदः पृष्टवान् विष्णुं गीतज्ञानं वद
प्रभो ! । तमुवाच हरिः पूर्वं गतोऽहं शङ्करं प्रति । तत्र दृष्टं
शिवं शान्तं मारीचगणसङ्कुलम् । अनेकरससंयुक्तं विविधा-
स्वादनेयुतम् । सामरस्यं तदा जातमुच्छिष्टं गलितं सुदृढं ।
अनेकगुणसम्पन्ना प्रत्युत्पन्ना कुमारिका । उच्छिष्टं देहि
देहोति पार्वती शङ्करेण च । उभाभ्यां दत्तमुच्छिष्टं प्रसादं
प्रीतिपूर्वकम् । शिवशक्ती ऊचतुस्तां कन्ये ! त्वां प्रभ-
जन्ति ये । जपहोमादिभिस्तेषां सिध्यन्ति च मनी

रथाः । तदा प्रभृति चोच्छिष्टमातङ्गीति निगद्यते ॥ इत्युच्छि-
ष्टचाण्डालिन्युत्पत्तिः ॥

नारदपञ्चरात्रे त्रयोदशाध्याये ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकदा वसु-
मानस्तु कैलासशिखरे हरः । अङ्गस्था गिरिजा तत्र पप्रच्छ वृष-
भध्वजम् । क्षुधया पीड्यमानास्मि देहि भोक्तुं यथोचितम् ॥
ईश्वर उवाच ॥ क्षणं प्रतीक्ष भद्रं ते दास्यामि भोजनं ततः ।
इत्युक्त्वा विररामाशु देवदेवो वृषध्वजः ॥ देव्युवाच ॥ देहि
भक्ष्यं महादेव ! क्षुधितास्मि जपत्पते ! । विलम्बितुं न शक्नोमि
पीडितास्मि महेश्वर ! । इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं पुनः प्राह
क्षपानिधिः । क्षणं प्रतीक्ष दास्यामि भक्षणं चाभिवाञ्छितम् ।
पुनः प्रतीक्ष्य सा देवी पुनः प्राह त्विदं वचः । देहि भक्ष्यं जग-
न्नाथ ! न शक्नोमि विलम्बितुम् । इत्युक्त्वा पतिमादाय मुखे
चिक्षेप सा तदा । क्षणेन तस्या देहात्तु धूमसङ्घो व्यजायत ।
ततो देहे समुत्पन्ने शम्भुस्तु निजमायया । उवाच परमेशानः
स्वां प्रियां शृणु शोभने ! । पश्य भद्रे ! महाभागे ! पुरुषो नास्ति
मां विना । त्वदन्या वनिता नास्ति पश्य त्वं ज्ञानचक्षुषा ।
विधवासि कुरु त्यागं शङ्खं सिन्दूरमेव च । साधक्यं लक्षणं देवि !
कुरु त्यागं पतिव्रते ! । एषा मूर्त्तिस्तव परा विख्याता वगला-
मुखी । धूमव्यापशरीरात्तु ततो धूमावती स्मृता । एते मूर्त्ती
तव परे सिद्धिविद्ये प्रकीर्त्तिते । यथोग्रतारिणी मूर्त्तिर्यथा
काली पुरा सती । यथा च भुवनेशानी यथा त्रिपुरभैरवी ।
क्षिप्रमस्ता यथा मूर्त्तिस्तथा त्वं परमेश्वरि ! । इति धूमाव-
त्युत्पत्तिः ॥

प्रकारान्तरेणोत्पत्तिस्तस्याः स्तुतस्तन्त्रे ॥ दक्षप्रजापतेर्यज्ञे
सर्वशरचक्षला । क्रुषा देहं विनिक्षिप्य ततो धूमोऽभवन्म-
हान् । तस्माद्भवती जाता सर्वशत्रुहिनाशिनी । काली काला

कालवक्त्रा भीमवारे निशामुखे । प्राप्तेऽक्षयद्वतीयायां जाता
धूमावती शिवा ॥ इति प्रकारान्तरधूमावत्युत्पत्तिः ॥

✓ स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ अथ वक्ष्यामि देवेशि ! वगलोत्पत्तिकार-
णम् । पुरा कृतयुगे देवि ! वातक्षोभ उपस्थिते । चराचरविनाशाय
विष्णुस्मितापरायणः । तपस्यया च सन्तुष्टा महाश्रीत्रिपुरा-
म्बिका । हरिद्राक्ष्यं सरो दृष्ट्वा जलक्रीडापरायणा । महापीत-
ङ्गदस्यान्ते सौराष्ट्रे वगलाम्बिका । श्रीविद्यासम्भवं तेजो
विजृम्भति इतस्ततः । अतुर्दंशो भीमयुता मकारेण समन्विता ।
कुलकृच्चसमायुक्ता वीरगात्रिः प्रकीर्त्तिता । तस्यामेवार्द्धरात्री तु
पीतङ्गदनिवासिनी । ब्रह्मास्त्रविद्या सञ्जाता त्रैलोक्यस्तम्भिनौ
परा । तत्तेजो विष्णुजं तेजो विद्यानुविद्ययोर्गतम् ॥ इति वग-
लामुत्पत्तिः ॥

✓ तत्रैव ॥ अथ मातङ्गिनीं वक्ष्ये क्रूरभूतभयङ्करीम् । पुरा
कदम्बविपिने नानावृक्षसमाकुले । वक्ष्यार्थं सर्वभूतानां मत-
ङ्गो नामतो मुनिः । शतवर्षसहस्राणि तपोऽतप्यत सन्ततम् ।
तत्र तेजः समुत्पन्नं सुन्दरीनेत्रतः शुभे ! । तेजोराशिरभूतत्र-
स्वयं श्रीकालिकाम्बिका । श्यामलं रूपमास्थाय राजमात-
ङ्गिनी भवेत् ॥ इति मातङ्गिन्युत्पत्तिः ॥

✓ स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ अथ श्रीभुवनां वक्ष्ये त्रैलोक्योत्पत्तिमाह-
कात् । पुरा ब्रह्मा जगत् स्रष्टुं तपोऽतप्यत दारुणम् । तपसा
तस्य सन्तुष्टा शक्तिः सा परमेश्वरी । चैत्रशुक्लनवम्यान्तु उत्-
पन्ना तारिणी स्वयम् । क्रोधरात्रिः समाख्याता सर्वशक्तिमयी
शिवा । क्षीरोदारण्वसम्भूता मथनादुदधेः पुरा । विष्णोर्वचः-
स्थलस्था च पद्मासनगता रमा । कृष्णाष्टम्यां भाद्रपदे कोला-
सुरनिक्षन्तनी । तस्यां तिथौ समुत्पन्ना महामातङ्गिनी कला ।
फाल्गुनैकादशायुक्ता भृगौ भीमे च या तिथिः । जाता तस्यां

महालक्ष्मीः सर्वसौभाग्यदायिनी ॥ इति महालक्ष्म्युत्पत्तिः ॥

✓ तत्रैव ॥ कृष्णाष्टम्यां मार्गशोर्ध्वे घोररात्रिः प्रकीर्तिता । महाकालः समुत्पन्नस्तस्याच्च भगवान् स्वयम् ॥ इति महाकालोत्पत्तिः ॥

✓ ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु वटुकोत्पत्तिरिति । मार्गशुक्लचतुर्दश्यां दन्तोत्पत्तिः प्रकीर्तिता । महामहिषमर्दिन्या महादुर्गाष्टमी स्मृता ॥

अथ कालोत्पत्तिप्रकरणम् ॥ महानिर्वाणतन्त्रे चतुर्थीक्षासे सदाशिववाक्यम् ॥ तव रूपं महाकाली जगत्संहारकारकः । महासंहारसमये कालः सर्वं ग्रसिष्यति । कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः । महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा । कालसङ्कलनात् काली सर्वेषामादिरूपिणी । कालत्वादादिभूतत्वादाद्या कालीति गीयते । पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृति । वाचातीतं मनोऽगम्यं त्वमेकैकावशिष्यसे । साकारापि निराकारा मायया बहुरूपिणी । त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका । अतस्ते कथितं भद्रे ! ब्रह्ममन्त्रेण दीक्षितः । यत् फलं समवाप्नोति तथैव फलसाधनात् ॥ गुप्तसाधनतन्त्रे षष्ठपटले ॥ आलीढं कौटुम्भाय ! प्रत्यालीढन्तु कौटुम्भम् । कथं सा दक्षिणाकाली श्मशानालयवासिनी ॥ इति देवीप्रश्नोत्तरम् ॥ आलीढं वामपादन्तु प्रत्यालीढन्तु दक्षिणम् । संहाररूपिणी काली जगन्मोहनकारिणी । वज्ररूपा महामाया सत्यं सत्यं न संशयः । अतएव महेशानि ! श्मशानालयवासिनी । आलीढपादा सा देवी प्रत्यालीढा क्षणे क्षणे । अनन्तरूपिणी श्यामा को वक्तुं शक्यते प्रिये । अनन्तरूपिणी श्यामा चतुर्वर्गप्रदायिणी ॥

पिच्छिलातन्त्रे द्वितीयपटले ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां शिरो-
रत्नपदाम्बुजा । कलौ कालौ कलौ काली नान्यदेवः कलौ
युगे । शान्खादावपि सा काली पूजनीया विशेषतः ।
कालिकापूजने श्रद्धा यदा सञ्जायते हृदि । न तदा ग्रहरो-
गाणां भयमस्ति कदाचन । सर्वेषां देवि । मन्त्राणां श्रेष्ठोऽत्र
कालिकामनुः । यस्य ग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तोऽधमोऽपि च ।
कुब्जिकातन्त्रे प्रथमपटले ॥ के मे गोत्रे समुत्पन्नाः कालीं
साधितुमुद्यताः । तच्छ्रुत्वा पितरः सर्वे नृत्यन्ति हृष्टमानसाः ।
तथा ॥ अदेया परमा विद्या कलौ पूर्णफलप्रदा । कालिका
मोक्षदा देवि ! कलौ शौघफलप्रदा । गुरोर्मुखान्महाविद्यां
गृह्णीयात् पापनाशिनोम् ॥ तथा ॥ धर्माधर्मादिकं यत्तु
कुरुते साधकोत्तमः । तत् सर्वमनुगृह्णाति कालिकापूजने ध्रुवम् ।
सम्प्रदायविधानेन कर्त्तव्यञ्च महेश्वरि ! । सम्प्रदायविहीनानां
फलं न स्यात् सुरेश्वरि ! ॥ इत्याद्याप्रशंसा ।

पिच्छिलातन्त्रे ॥ कालीनिन्दाकरा लोके भविष्यन्ति गता-
युषः । तेषां पुत्रकलत्राणां नाशोऽन्ते नरकं व्रजेत् ॥ इत्या-
द्यानिन्दादोषः ॥

तथा । एकादशपटले ॥ अथ कालीमनुं वक्ष्ये येन सर्वा-
र्थसाधकः । सर्वसिद्धीश्वरो वीरः सर्वलोकप्रपूजितः । यस्य
विज्ञानमात्रेण चतुर्वर्गफलं लभेत् । सर्वासु देवदेवीषु दक्षिणा
प्रकृतिः प्रिये ! । तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि दुर्लभं भुवनत्रये ।
यत्तत्स्कन्दं समुद्भूत्य वज्रिवामाक्षिसंयुतम् । इन्दुविन्दुसमायुक्तं
कालोवौजमिदं स्मृतम् । प्राप्यैतं परमं गुह्यं सारात्सारं परा-
त्परम् । चतुर्वर्गं लभेन्मन्त्री हेलया हरभाविनि ! । त्रिगुणं
चेन्नहेशानि ! वीजं सारतरं भवेत् । नैवास्याः सदृशो विद्या
काचिदस्ति महेश्वरि ! । शान्तिपुष्ट्यादिकमपि साधयेदनया-

चिरात् । महापदि महात्रासे महादारिद्र्यसङ्कटे । वैरिहृद्वी
 व्याधिहृद्वी महाघोरे भयङ्करे । राजादिभयमापन्ने राजचक्रो
 विशेषतः । उक्तं मन्त्रमिमं देवि ! लक्षमात्रं समभ्यसेत् । देव-
 क्रोधे भये भीमे गृहदोषे भयानके । प्रान्तरे भूमिसंस्थेषु दस्यु-
 भिरार्थ संवृते । शान्तिकार्येषु सर्वत्र धननाश उपस्थिते ।
 खजनानान्तु विद्वेषे अयुतं प्रजपेन्मनुम् । जापिनं पाति सा
 कालौ भयेभ्यः स्कन्दवत् सदा । तस्मात् परमयत्नेन कालिकां
 भज सुन्दरि ! । विना जपान्महाविद्या सिद्धिविद्यापि हानिदा ।
 विना होमैर्न चैश्वर्यं न सिद्धिर्जपनं विना । पूजां विना न
 पूजास्ति सर्वत्र परमेश्वरि ! ॥ तथा । एतन्मन्त्रद्वयं देवि ! न
 देयं प्राणसङ्कटे । स्नेहेन यदि तद्दद्यादयुतं जपमाचरेत् ।
 ज्ञात्वा मन्त्रं महेशानि ! सर्वशास्त्रार्थविद्ववेत् । कविर्वाग्मी
 भवेच्छूरः सर्वेषां प्रियदर्शनः । विख्यातिश्चापि लोकेषु प्राप्यान्ते
 मोक्षमाप्नुयात् ॥ गुप्तसाधनतन्त्रे षष्ठपटले ॥ शृणु देवि ।
 प्रवक्ष्यामि दक्षिणाकल्पमुत्तमम् । यस्याः प्रसादमात्रेण भवाश्चौ
 न निमज्जति । स्वरान्त्रं वज्रसंयुक्तं वामनेत्रविभूषितम् ।
 विन्दुनादकलायुक्तं मन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ स्वरान्तं क-
 कारः ॥ भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम् । दक्षिणा-
 कालिका प्रोक्ता देवता सर्वसिद्धिदा । मायावीजं बीजमस्याः
 कूर्चबीजन्तु शक्तिकम् । निजबीजं महेशानि ! कीलकं सर्व-
 मोहनम् । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ तथा ।
 पूजायाः पूर्वदिवसे आदौ शौरादिकं चरेत् । हविष्यान्नं महेशानि !
 भोजनं वा निरामिषम् । ततः परस्मिन् दिवसे प्रातः
 स्नात्वा तु साधकः । नित्यपूजां समाप्यादौ देववत् शुद्धसा-
 तसः । गुरुर्वा गुरुपुत्रो वा गुरुपत्नी च सुव्रते ! । सागमोक्त-
 पूजने तु अधिकारी गुरुः स्वयम् । गुरोरभावे देवेशि ! स्वयं

पूजादिकं चरेत् ॥ वरदातन्त्रे दशमपटले तु यत् ॥ तन्त्रो-
क्तानि स्वकल्पोक्तकर्माणि स्वयमाचरेत् । गुरुणा कारयेद्वापि
पुत्रवत्या स्त्रिया तथा । अन्यथानुष्ठितं सर्वं भवत्येव निरर्थकम् ॥
इत्यनेन विकल्पितं तदनेनैकवाक्यतया गुरोरभावे स्वयं करण-
मिति व्यवस्थितं मुख्यापेक्षया प्रतिनिधिः प्राधान्यं वचनव-
त्तात् ॥ स्वयमसामर्थ्यं तु पुत्रवत्या स्त्रिया कारयितव्यमित्यपि
सुतरामायातम् ॥

अन्यद्वारा तान्त्रिकपूजादिकरणे दोषनाह ॥ गुप्तसाधन-
तन्त्रे ॥ एभिर्विना महेशानि ! तान्त्रिकैर्देशिकैर्यदि । तस्य
पूजाफलं सर्वं ग्रस्यते यच्चराक्षसैः । अतएव महेशानि ! गुरुः
कर्त्ता विधीयते । ब्रह्मरूपो गुरुः साक्षाद् यदि पूजादिकं
चरेत् । तत्तत् सर्वं महेशानि ! शतकोटिगुणं भवेत् । अथ
वा परमेशानि ! स्वयं पूजादिकं चरेत् । स्वयं पूजादिकं कृत्वा
पूजाद्रव्यादिकञ्च यत् । तत् सर्वं परमेशानि ! गुरोरग्रे निवे-
दयेत् । गुरौ दत्तं महेशानि ! सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ गुरु-
पत्न्या पूजादिकरणे होमादि नास्ति तदुक्तं तत्रैव ॥ गुरुपत्नी
महेशानि ! यदि पूजादिकं चरेत् । बलिदानादिकं कार्यं
तत्र होमं विवर्जयेत् । होमौघद्रव्यमानीय देव्यग्रे स्थापयेद्-
बुधः । मूलमन्त्रं समुच्चार्य महादेव्यै निवेदयेत् । तेन होम-
फलं जातं न वज्जी होमयेद्बुधः ॥ तथा । गुरुणा यत् कृतं
देवि ! तत् सर्वमक्षयं भवेत् । ऋत्विक्पुत्रादयो देवि ! स्मृत्युक्ता
बहवः प्रिये ! । तन्त्रोक्ते परमेशानि ! पूजादौ नैव कारयेत् ।
पुरोहितं समानीय यदि पूजादि कारयेत् । तस्य सर्वार्थहानिः
स्यात् क्रुद्धा भवति कालिका । पूजाकाले महेशानि ! नान्य-
वक्तव्यं विलोकयेत् । इष्टपूजादिकं सर्वं यः कुर्याज्जनसन्निधौ ।
तस्य सर्वार्थहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति कालिका । वरं पूजा

न कर्त्तव्या न कुर्यादन्यसन्निधौ । अन्यसन्निहिते देवि ! यदि
 पूजापरो भवेत् । विष्णुतन्त्रोक्तपूजादि तत्तन्मुद्रां प्रदर्शयेत् ।
 तेन पूजादिकं जातं न च व्यक्तं कदाचन ॥ वरदातन्त्रे ॥
 विशेषकर्म गोप्तव्यं मन्त्रवत् परमेश्वरि ! ॥ दीपान्वितादिपूजासु
 परमोत्सवमाचरेत् । भवान्प्रीतये सर्वं कर्म कुर्यात् प्रसन्नधीः ॥
 तत्र भक्तिः सदा कार्या यस्य या इष्टदेवता । तत्राभक्तिर्महा-
 दुःखदायिनी कुष्ठकारिणी । निजदेवीं परित्यज्य तथैव च
 निजं गुरुम् । योऽन्यत्र भक्तिमान् देवि ! तस्य सर्वं विनश्यति ।
 नान्यनिन्दा प्रकर्त्तव्या कदाचिदपि साधकैः । एकं ब्रह्मैवा-
 द्वितीयं सर्वत्र कथितं मया । उपाधिभावभेदेन नानात्वं भजते
 सति ! । एकं पूजयते यस्तु सर्वानर्चयतिस्म सः ॥

अथ पूजा सा तु त्रिविधा मानसान्तर्यागात्मिका वाह्या च ।
 यथा सुण्डमालातन्त्रे पञ्चमपटले ॥ महासिद्धिकरी पूजा
 मानसी मुक्तिदायिनी । अन्तर्यागात्मिका सर्वजोवत्परि-
 णाशिनी । वाह्यपूजा राजसौ च सर्वसौभाग्यदायिनी । भुक्ति-
 मुक्तिप्रदा चैव सर्वापत्परिणाशिनी । सर्वदोषक्षयकरी सर्व-
 शत्रुनिपातिनी । सर्वरोगक्षयकरी सर्वबन्धनमोचनी । न
 वीराणां पशूनाञ्च वाह्यपूजाधमा प्रिये ! । केवलानाञ्च दिव्यानां
 वाह्यपूजाधमा स्मृता ॥ तोडलतन्त्रे तृतीयपटले ॥ सूत्रा-
 कारेण देवेशि ! पूजाविधिरिहोच्यते । स्वस्ति वाच्यं च सङ्ख्या
 षट् संस्थाप्य यत्नतः । मन्त्रेणाचमनं कार्यं सामान्यार्च्यं ततो
 न्यसेत् । तज्जलैर्हारमभ्युक्ष्य हारपूजां समाचरेत् । त्रिविधं
 विघ्नमुत्सार्य भूतापहरणं ततः । आसनञ्च समभ्यर्च्य गुरुदेवं
 नमैत् सुधीः । करशुद्धिञ्च तालञ्च त्रयं दिग्बन्धनं ततः । वज्रिना
 वैष्टनं कार्यं भूतशुद्धिमयाचरेत् । मातृकायाः षडङ्गञ्च
 कुर्यादन्तरमातृकाम् । मातृकाध्यानमाचर्य वाह्ये तु मातृकां

श्वसेत् । पीठन्यासं ततः कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् । ऋष्या-
दिकं कराङ्गञ्च वर्णन्यासं समाचरेत् । षोढा न्यासं ततो देवि ।
व्यापकं तदनन्तरम् । एवं समाहितमनास्तत्त्वन्यासं समाचरेत् ।
बीजन्यासं ततो देवि ! व्यापकं विन्यसेत् सुधीः । मूलेन सप्तधा
न्यासं मानसैः पूजनं चरेत् । विशेषार्घ्यं पीठपूजां पुनर्ध्यानं
सनेचकम् । मुद्रादिदर्शनं कार्यमावाहनषडङ्गकम् । धेन्यादिकं
ततः प्राणप्रतिष्ठां मूलपूजनम् । आज्ञाप्राथनमङ्गानि काव्यादींश्च
प्रपूजयेत् । ब्राह्मादीरसिताङ्गादीन् महाकालं प्रपूजयेत् । खड्गा-
दीन् गुरुपङ्क्तिञ्च पुनर्देवीं प्रपूजयेत् । बलिदानं ततो होमं
प्राणायामं ततो जपम् । जपं समर्पयेद्बोमान् प्राणायामं तत-
श्चरेत् । स्तुतिञ्च कवचं स्मृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः । शिवो-
ऽहमिति सञ्चिन्त्य संहारेण विसर्जयेत् । ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा
चाण्डाल्युच्छिष्टपूर्विका । अर्घ्यं सन्धार्य शिरसि चन्दनन्तु
ललाटके । नैवेद्यं किञ्चित् स्वीकृत्य विहरेच्च निजेच्छया ॥

महाकालध्यानं निरुत्तरतन्त्रे तृतीयपटले ॥ यथा । धूम्र-
वर्णं महाकालं जटाभारान्वितं यजेत् । त्रिनेत्रं शिवरूपञ्च
शक्तियुक्तं निरामयम् । दिगम्बरं घोररूपं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।
निर्गुणञ्च गुणाधारं कालीस्थानं पुनः पुनः ॥ खड्गादिपूजा-
क्रमस्तु निरुत्तरे । तथा ॥ खड्गं मुण्डं यजेहामि हस्ते च कुल-
सुन्दरि ! । पूजयेद्दक्षिणे हस्ते अभयञ्च वरं तथा ॥ एवमसिता-
ङ्गादिपूजाक्रमोऽपि तथैव ॥ चतुर्द्वारे यजेद्देवि । असिताङ्गादि-
भैरवान् । पूर्वादिक्रमतो देवि ! द्वारि द्वारि द्वयं द्वयमिति ॥

संचेपपूजास्तत्त्वन्तु तोडलतन्त्रे तृतीयपटले ॥ संचेपपूजा-
मथवा कुर्यान्मन्त्री समाहितः । आदावृष्यादि विन्यस्य कर-
शङ्खस्ततः परम् । अङ्गुलीव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ।
तालवयञ्च दिग्बन्धः प्राणायामस्ततः परम् । ध्यानं मानस-

यागञ्च अर्घ्यं स्थापनमेव च । पीठपूजां पुनर्ध्यानं ततश्चावाहनं चरेत् । जीवन्त्यासं ततः कृत्वा पूजयेत् परदेवताम् । अङ्गपूजाञ्च काष्ठादिं ब्राह्म्यादिच्चाष्टभैरवान् । महाकालं पूजयित्वा गुरुपङ्क्तिं यजेत्ततः । खड्गादीन् पूजयित्वा तु पुनर्देवीं प्रपूजयेत् । प्राणायामं ततः कृत्वा प्रजपेत् साधकाश्रणीः । देव्या हस्ते जपफलसमर्पणमथाचरेत् । प्राणायामं ततः कृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत् सुधीः । स्तुतिञ्च कवचं स्मृत्वा विशेषार्घ्यं प्रदापयेत् । आत्मसमर्पणं कृत्वा संहारेण विसर्जयेत् । ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा चाण्डाल्युच्छिष्टपूर्विका । नैवेद्यं किञ्चित् स्वीकृत्य विहरेच्च निजेच्छया ॥

पिच्छिलातन्त्रे द्वादशपटले ॥ नित्यपूजाविधिं वक्ष्ये शृणुष्व प्राणवल्लभे ! । यतः पूजादिकं देवि ! न ददाति फलं क्वचित् । पूजया लभते पूजां तस्मात् पूजापरो भवेत् । नित्यपूजाविहीनस्य न काम्यं सिध्यति क्वचित् ॥ तथा । आचम्य द्वारदेशे तु सामान्यार्घ्यं समाचरेत् । लिपिऋत्यादिविन्यासौ मूलैर्न करशोधनम् । करव्यापकविन्यासं कृत्वाङ्गानि न्यसेत् सुधीः । तालत्रयं दिशं बन्धः प्राणायामत्रयं तथा । ध्यानमिष्टयैव पूजा जपश्च कालिकार्चनम् । अयमेव विधिः प्रोक्तः सर्वेषां यजनक्रमः । उपचारैः षोडशैस्तु तद्भवेत् पूजनं महत् । नित्ये दशोपचारास्तु पञ्च वा विचरेत् शिवे ! । अभावे गन्धपुष्पाभ्यां पुष्पेण तदभावतः । तदभावे यजेत् पत्रैस्तण्डुलेन जलेन वा । मानसीं तदभावेऽपि पूजां न लङ्घयेत् क्वचित् । लङ्घने सर्वनाशः स्यादापदश्च पदे पदे । एतयोः पुरश्चरणं लक्षजपः ॥ कालीतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ आदौ पुरस्क्रियां कुर्यान्नियमेन यथास्थितः । लक्षमेकं जपेद्दियां हविश्चाशौ दिवा शुचिः । रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः । ततः सिद्धमनुमन्त्रौ प्रयोगार्हौ न

चान्यथा । एतद्वचनं तन्त्रसारोऽपि धृतमस्ति किन्तु अर्वाचीना
एतद्वचने लक्षद्वयदर्शनात् तन्त्रसारकारलिखितानिरुद्धसरस्वती-
प्रकरणीयलक्षद्वयजपदर्शनाच्चैतयोरपि लक्षद्वयजपेन दिवा-
रात्रिभेदकृतेन पुरश्चरणं वदन्ति । तन्न । तन्त्रसारकारिणापि
एतयोर्लक्षजपेन पुरश्चरणं स्पष्टमुक्तम् । तत्प्रमाणं तद्वृत्तसिद्धेश्व-
रीयवचनं द्रष्टव्यम् । वस्तुतस्तु एतयोरनिरुद्धसरस्वत्याश्च लक्षद्व-
येन यत् पुरश्चरणमुक्तं तत् पशुकल्पवीरकल्पभेदेन । तदुक्तं
श्यामारहस्यधृतस्वतन्त्रतन्त्रे ॥ यथा ॥ दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा
हविष्याशी जपेन्नरः । ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद्विषा प्रिये । ।
तर्पयेत्तीर्थतोयेन पयसा हविषा तथा । मधुना वा सितामिश्र-
तोयेन परमेश्वरि ! । देवीञ्चाभिषिचेत्तोयैस्तरुणस्य दशांशतः ।
तद्दशांशं हविष्यान्नैर्भोजयेद्भक्तितः प्रिये ! । कालीतन्त्रविदो
विप्रान् गुरवे दक्षिणां ददेत् । पाशवं कथितं कल्पं शृणु वैरं
ततः प्रिये ! ॥ इति ॥

निरुत्तरतन्त्रे चतुर्थपटलेऽपि ॥ दिवा लक्षं जपेद्विद्यां
हविष्याशी सदा शुचिः । दशांशं जुहुयादङ्गौ तद्दशांशश्च तर्प-
णम् । तद्दशांशाभिषेकश्च तीर्थतोयेन पार्वति ! । तद्दशांशं
हविष्यान्नैर्भक्तितो भोजयेद्द्विजान् । पाशवं कथितं कल्पं शृणु
वैरमतः परम् । नक्तं यामगते देवि ! स्वकुलं परिचिन्तयेत् ॥
इत्युपक्रम्य । तत्त्वचिन्तापरो मन्त्री जपेत्तच्च कुलाकुलम् ।
तद्दशांशं जुहुयादग्नावासवैः पललान्वितैः । तद्दशांशं तर्पणश्च
सुधापललसंयुतम् । अभिषेकं तद्दशांशं तीर्थतोयेन पार्वति ! ।
कुलद्रव्यैस्तद्दशांशं भक्तितो भोजयेद् द्विजान् । आदावन्ते च
मध्ये च शक्तीनां भोजयेत् कुलम् । तदभावे महेशानि ! शक्ति-
मात्रं प्रपूजयेत् । पुरश्चरणकाले हि यदि शक्तिं न पूजयेत् ।
तस्य पूजा जपो होमो ह्यभिचाराय कल्पते ॥ प्रथमपटलेऽपि ॥

दिवा च पाशवं कर्म रात्रिकर्म च कौलिकम् । पुरश्चर्यादिकं
कर्म द्विविधं भावमेदतः ॥ इति । तस्मात् पशुकल्पे पुरश्चरणं दिवा
लक्षजपः । वीरकल्पे तु रात्रौ लक्षजप इति सिद्धम् । यदि वा
कालीतन्त्रलिखनानुसारेण पशुकल्पेऽपि दिवारात्रिभेदेन लक्ष-
जयजपेन पुरश्चरणमङ्गीक्रियते तदा तत्तन्मोक्तम् । नानाचारं
न कर्त्तव्यं न चारणमितस्ततः । भूतहिंसा न कर्त्तव्या पशुहिंसा
विशेषतः । बलिदानं विना देवि ! हिंसा सर्वत्र गर्हितम् ॥
इति वचनेन नानाचारनिषेधस्य वैयर्थ्यापत्तिरतएव कपूर्वादि-
स्तुवे । वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो दिवा मातर्युष्म-
चरणयुगलध्याननिपुणः । परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन
च मनुं जपेत्तच्च सम्यक् स्मरहरसमानः क्षितितले ॥ इत्यत्र
परमित्यनेन निधुवनविनोदेनेत्यनेन च वीरकल्प एव रात्रि-
पुरश्चरणमुक्तम् । निधुवनविनोदेन रतिक्रीडानन्देन तेषां
मन्त्राणां यजनविधिस्तन्सारकारणैव बहुधा लिखितस्तत्र सर्वं
द्रष्टव्यम् ॥

अथ कालीशतनामस्तोत्रम् ॥ शिव उवाच ॥ करालवदना
काली कामिनौ कमला कला । क्रियावती कोटराक्षी कामाख्या
कामसुन्दरी । कपोला च कराला च काशी कात्यायनी कुङ्कुः ।
कङ्काली कालदमनी करुणा कमलार्चिता । कादम्बरी काल-
हरा कौतुका कारणप्रिया । कृष्णा कृष्णप्रिया कृष्णपूजिता
कृष्णवल्लभा । कृष्णापराजिता कृष्णप्रिया च कृष्णरूपिणी ।
कालिका कालरात्रिश्च कुलजा कुलपण्डिता । कुलधर्मप्रिया
कामा काम्यकर्मविभूषिता । कुलप्रिया कुलरता कुलीन-
परिपूजिता । कुलज्ञा कमला पूज्या कैलासनगभूषिता ।
कूटजा केशिनी कामा कामदा कामपण्डिता । करालास्या च
कन्दर्पकामिनौ रूपशोभिता । केलिम्बिका केलरता केलिनी

कैलभूषिता । केशवस्य प्रिया केशा काश्मीरा केशवार्चिता ।
 कामेश्वरी कामरूपा कामदानविभूषिता । कालहन्त्री
 कूर्ममांसप्रिया कूर्मादिपूजिता । केलिनी करकाकारा कट-
 कूर्मनिषेविणी । कटकेशरमध्यस्था कटकौ कटकार्चिता ।
 कटप्रिया कटरता कटकूर्मनिषेविणी । कुमारीपूजनरता
 कुमारीगणसेविता कुलाचारप्रिया कौलप्रिया कुलनिषेविणी ।
 कुलीना कुलधर्मज्ञा कुलभीतिविमर्दिनी । कामधर्मप्रिया
 काम्या नित्या कामस्वरूपिणी । कामरूपा कामहरा काम-
 मन्दिरपूजिता । कामागारस्वरूपा च कामाख्या कामभूषिता ।
 क्रियाभक्तिरता काम्या काञ्चनी चैव कामदा । कोलपुष्पा-
 म्बरा कोला निष्कोला कलहान्तका । कौषिकी केतकी कुन्ती
 कुन्तलादिविभूषिता ॥ इत्येवं शृणु चार्दङ्गि ! रहस्यं सर्व-
 मङ्गलम् । यः पठेत् परया भक्त्या स शिवो नात्र संशयः ।
 शतनामप्रसादेन किं न सिध्यति भूतले । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च
 वासवाद्या दिवौकसः । रहस्यपठनाद्देवि ! सर्वं च विगत-
 च्चराः । त्रिषु लोकेषु विश्वे शि ! सत्यं सत्यमतः परम् । नास्ति
 नास्ति महामाये ! तन्मध्ये कथञ्चन । क्रियया च विना देवि ।
 विना भक्त्या महेश्वरि ! । प्रसन्ना स्यात् करालास्या स्तवपा-
 ठाद्दिगम्बरा । सत्यं वच्मि महेशानि ! अतः परतरं न हि ।
 न गोलके न वैकुण्ठे न च कैलासमन्दिरे । अतः परतरा
 विद्या स्तोत्रं कवचमेव च । त्रिलोकेषु जगद्वात्रि ! नास्ति
 नास्ति कदाचन । रात्रावपि दिवाभागे सन्ध्यायां वा सुरे-
 श्वरि ! । प्रजपेद्भक्तिभावेन रहस्यं स्तवमुत्तमम् । शतनाम-
 प्रसादेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते । कुजवारे चतुर्दशां निशाभागे
 पठेत्तु यः । स ज्ञाती सर्वशास्त्रज्ञः स कुलीनः सदा शुचिः । स
 कुलज्ञः स कालज्ञः स धर्मज्ञो महौतले । रहस्यपठनात् कोटि-

पुरश्चरणजं फलम् । प्राप्नोति देवदेवेशि ! सत्यं परमसुन्दरि ! ।
 स्तवपाठाद्वारोहे ! किं न सिध्यति भूतले । अणिमाद्यष्ट-
 सिद्धीशो भवत्येव न संशयः । रात्रौ विख्यतलेऽख्यमूलेऽपरा-
 जितातले । प्रपठेत् कालिकास्तोत्रं यथाशक्त्या महेश्वरि ! ।
 अतवारप्रपठनान्मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥

इति मुण्डमालातन्त्रे अष्टमपटले कालीशतनाम-

स्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ महाविद्यास्तोत्रम् ॥ शिव उवाच ॥ दुर्लभं तारिणी-
 मार्गं दुर्लभं तारिणोपदम् । मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं दुर्लभं शव-
 साधनम् । श्मशानसाधनं योनिसाधनं ब्रह्मसाधनम् । क्रिया-
 साधनकं भक्तिसाधनं मुक्तिसाधनम् । स्तवप्रसादाद्देवेशि !
 सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः । नमस्ते चण्डिके ! चण्डि ! चण्ड-
 मुण्डविनाशिनि ! । नमस्ते कालिके ! कालमहाभयविना-
 शिनि ! । शिवे ! रक्ष जगद्वात्रि ! प्रसौद हरवल्लभे ! । प्रणमामि
 जगद्वात्रीं जगत्पावनकारिणीम् । जगत्क्षोभकरीं विद्यां
 जगत्सृष्टिविधायिनीम् । करालां विकटां घोरां मुण्डमाला-
 विभूषिताम् । हराचितां हराराध्यां नमामि हरवल्लभाम् ।
 गौरीं गुरुप्रियां गौरवर्णालङ्कारभूषिताम् । हरिप्रियां महा-
 मायां नमामि ब्रह्मपूजिताम् । सिद्धां सिद्धेश्वरीं सिद्धविद्याधर-
 गणैर्युताम् । मन्त्रसिद्धिप्रदां योनिसिद्धिदां लिङ्गशोभिताम् ।
 प्रणमामि महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । उग्रामुग्रमयी-
 मुग्रारामुग्रगणैर्युताम् । नीलां नीलघनश्यामां नमामि नील-
 सुन्दरीम् । श्यामाङ्गीं श्यामघटितां श्यामवर्णविभूषिताम् । प्रण-
 मामि जगद्वात्रीं गौरीं सर्वार्थसाधिनीम् । विश्वेश्वरीं महा-
 घोरां विकटां घोरनादिनीम् । आद्यामाद्यगुरोराद्यामाद्यनाथ-
 प्रपूजिताम् । औदुर्गां धनदामन्नपूर्णां पद्मां सुरेश्वरीम् । प्रण-

रती रुधिरप्रिया । कण्ठं पातु स्तनं पातु कपालं पातु चैव हि ।
 काली करालवदना विचित्रा चित्रघण्टिनी । वक्षोमूलं नाभिमूलं
 दुर्गा त्रिपुरसुन्दरी । समस्तं पातु मे तारा सर्वाङ्गी सर्वमेव च ।
 विश्वेश्वरी पृष्ठदेशं नेत्रं पातु महेश्वरी । हृत्पद्मं कालिका पातु
 कण्ठं पातु नभोगतम् । नारायणी गुह्यदेशं मेढ्रं मेढ्रे श्वरी तथा ।
 पादयुग्मं जया पातु नित्यं मां चण्डिकावतु । जीवं मां
 पार्वती पातु मातङ्गी पातु सर्वदा । छिन्ना धूमा च भीमा च
 भये पातु जले वने । कौमारी चैव वाराही नारसिंही यशो
 मम । पातु नित्यं भद्रकाली श्मशानालयवासिनी । उदरे
 सर्वदा पातु सर्वाणी सर्वमङ्गला । जगन्माता जयं पातु नित्यं
 कैलासवासिनी । शिवप्रिया सुतं पातु सुतं पर्वतनन्दिनी ।
 त्रैलोक्यं पातु वगला भुवनं भुवनुश्वरी । सर्वाङ्गं सर्वनिलया
 पातु नित्यञ्च पार्वती । चामुण्डा पातु मे रोमकूपं सर्वार्थ-
 साधिनी । ब्रह्माण्डं मे महाविद्या पातु नित्यं मनोहरा ।
 लिङ्गं लिङ्गेश्वरी पातु महापीठे महेश्वरी । सदाशिवप्रिया
 पातु नित्यं पातु सुरेश्वरी । गौरी मे सन्निदेशञ्च पातु वै
 त्रिपुरेश्वरी । सुरेश्वरी सदा पातु श्मशाने च शवेऽवतु । कुम्भके
 रेचके चैव पूरके कामसन्दिरे । कामाख्या कामनिलयं पातु
 दुर्गा महेश्वरो । डाकिनी काकिनी पातु नित्यं मे शाकिनी
 तथा । हाकिनी लाकिनी पातु राकिणी पातु सर्वदा । ज्वाला-
 मुखी सदा पातु मुखमध्ये शिवावतु । तारिणी विभवे पातु
 भवानो च भवेऽवतु । त्रैलोक्यमोहिनी पातु सर्वाङ्गं विजने-
 ऽवतु । राजकुले महाघाते संग्रामे शत्रुसङ्घटे । प्रचण्डा साधकं
 माञ्च पातु भैरवमोहिनी । श्रीराजमोहिना पातु राजहारे
 विपत्तिषु । सम्यक्पदा भैरवी च पातु बाला बलं मम । नित्यं
 मां शम्भुवनिता पातु मां त्रिपुरान्तका । इत्येवं कथितं

देवि ! रहस्यं सर्वकालिकम् । भुक्तिदं मुक्तिदं सौख्यसर्वसम्पत्-
दायकम् । यः पठेत् प्रातरुत्थाय साधकेन्द्रो भवेद्भुवि । कुज-
वारे चतुर्दश्याममायां मन्दवासरे । गुरौ गुरुं समभ्यर्च्य यः
पठेत् साधकोत्तमः । स याति भवनं देव्याः सत्यं सत्यं न
संशयः । एवं यदि वरारोहे ! पठेद्भक्तिपरायणः । मन्त्रसिद्धि-
र्भवेत्तस्य चाचिराज्ज्ञानं संशयः । सत्यं लक्षपुरश्चर्याफलं प्राप्य
शिवां व्रजेत् । शिवमार्गं राजमार्गं प्राप्य जीवः शिवो भवेत् ।
पठित्वा कवचं स्तोत्रं मुक्तिमाप्नोति निश्चितम् । पठित्वा क-
वचं स्तोत्रं दशविद्या यजेद् यदि । विद्यासिद्धिर्मन्त्रसिद्धिर्भव-
त्येव न संशयः । खरसिद्धिश्चितासिद्धिर्दुर्लभा धरणीतले । अ-
यत्नसुलभा सिद्धिस्ताम्बूलान्नात्र संशयः । निशामुखे निशायाञ्च
महाकाले निशान्तके । पठेद्भक्त्या महेशानि ! गाणपत्यं लभेत्तु
सः ॥ इति मुण्डमालातन्त्रे एकादशपटले महाविद्याकवचं
समाप्तम् ॥

श्मशानकालिकादीनां पूजादिकन्तु तन्त्रसारोऽनुसन्धेयम् ॥
अथ श्मशानकालिकाकवचम् ॥ कैलासशिखरारूढं शङ्करं
वरदं शिवम् । देवी पप्रच्छ सर्वज्ञं सर्वदेवमहेश्वरम् । भगवन् !
सर्वदेवेश ! देवानां भोगद ! प्रभो ! । प्रब्रूहि मे महादेव ! गोप्यं
यद्यपि च प्रभो ! । शत्रूणां येन नाशः स्थादात्मनो रक्षणं
भवेत् । परमैश्वर्यमतुलं लभेद् येन हि तद्वद ॥ श्रीभैरव
उवाच ॥ वक्ष्यामि ते महादेवि ! सर्वधर्मविदां वरे । अद्भुतं
कवचं देव्याः सर्वकामप्रसाधकम् । विशेषतः शत्रुनाशकरं
रक्षाकरं नृणाम् । सर्वानिष्टप्रशमनमभिचारविनाशकम् ।
सुखदं भोगदञ्चैव वशीकरणमुत्तमम् । शत्रुसङ्घाः क्षयं यान्ति
भवन्ति व्याधिपौडिताः । दुःखिनो ज्वरिणश्चैव सामीष्टप्रच्यु-
तास्तथा ॥ अस्य श्रीकालिकाकवचस्य भैरव ऋषिगीयत्री

पर
वि-
पि
णा-
इपः
सी
री ।
गार-
तेन-
हं
सा-
शो-
ज-
ति-
ग-
ते
ल-
इः
स-
स-
।

हृन्दः श्रीकालिका देवता शत्रुसङ्घनाशे विनियोगः । श्रीं ध्यायेत्
 कालीं महामायां त्रिनेत्रां बहुरूपिणीम् । चतुर्भुजां लोल-
 जिह्वां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् । नीलोत्पलदलप्रख्यां शत्रुसङ्घ-
 विदारिणीम् । नरमुण्डं तथा खड्गं कमलञ्च वरं तथा । विभ्राणां
 रक्तवदनां दंष्ट्रालीघोररूपिणीम् । अष्टाष्टहासनिरतां सर्वदा
 च दिगम्बरीम् । शवासनस्थितां देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।
 इति ध्यात्वा महादेवीं ततस्तु कवचं पठेत् । श्रीं कालिका
 घोररूपाया सर्वकामप्रदा शुभा । सर्वतः संस्तुता देवी शत्रु-
 नाशं करोतु मे । ह्रीं ह्रीं स्वरूपिणी चैव ह्रां ह्रां हुं रूपिणी
 तथा । ह्रीं हां ह्रीं ह्रीं स्वरूपा सा सदा शत्रून् प्रशस्तु मे ।
 श्रीं ह्रीं ऐं रूपिणी देवी भवबन्धविमोचनी । हसकलह्रीं-
 स्वरूपासौ रिपून् सा हन्तु सर्वदा । यया शम्भो हतो दैत्यो
 निशुभश्च महासुरः । वैरिनाशाय वन्दे तां कालिकां शङ्कर-
 प्रियाम् । ब्राह्मी शैवी वैष्णवी च वाराही नारसिंहिका ।
 कौमार्यैन्द्री च चामुण्डा खादयन्तु मम द्विषः । सुरेश्वरी
 घोररूपा चण्डमुण्डविनाशिनी । मुण्डमालावृताङ्गी च सर्वतः
 पातु मां सदा । ह्रीं ह्रीं कालिके ! घोरदंष्ट्रे ! रुधिरप्रिये ! रुधिर-
 रुचिरपूर्णवक्त्रे ! रुधिरावृतस्तनि ! । ममामुकशत्रून् खादय
 खादय च्छेदय च्छेदय हिंसय हिंसय मारय मारय भिन्द
 भिन्दि छिन्दि छिन्दि उच्चाटय उच्चाटय द्रावय द्रावय स्वाहा ।
 वां वीं कालिकायै मदीयशत्रून् समर्पयामि स्वाहा ।
 पीं जय जय किरि किरि किटि किटि कट कट मर्दय मर्दय
 मोहय मोहय हर हर ममामुकरिपून् ध्वंसय ध्वंसय भञ्ज
 भञ्ज बोटय बोटय यातुधानि ! चामुण्डे ! सर्वजनान्
 राज्ञो राजपुरुषान् स्त्रियो मम वश्याः कुरु कुरु तनु तनु धान्यं
 धनमश्वान् गजान् रत्नानि दिव्यकामिनीः पुत्रान् राजश्रियं

देहि देहि यच्छ यच्छ चां चीं चूं चैं चौं जः स्वाहा । इत्येतत्
 कवचं दिव्यं कथितं शम्भुना पुरा । ये पठन्ति सदा तेषां
 ध्रुवं नश्यन्ति शत्रवः । वैरिणः प्रलयं यान्ति व्याधिताश्च भवन्ति
 हि । धनहीनाः पुत्रहीनाः शत्रवस्तस्य सर्वदा । सहस्रपठनात्
 सिद्धिः कवचस्य भवेत्तदा । ततः कार्याणि सिद्ध्यन्ति तद्धि
 शङ्करभाषितम् । श्मशानाङ्गारमादाय चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः ।
 पादोदकेन पिष्ट्वा च लिखेल्लोहशलाकया । भूमौ शत्रून् हीन-
 रूपानुत्तराग्निरसस्तथा । हस्तं दत्त्वा तद्बृद्धे कवचन्तु स्वयं
 पठेत् । शत्रोः प्राणप्रतिष्ठान्तु कुर्यान्मन्त्रेण मन्त्रवित् । हन्या-
 दस्तप्रहारेण शत्रुर्गच्छेद् यमक्षयम् । ज्वलिताङ्गारतापेण
 ज्वरी भवति तादृशः । प्रोच्छनैर्वा मपादेन दरिद्रो भवति ध्रुवम् ।
 वैरिनाशकरं प्रोक्तं कवचं वश्यकारकम् । परमैश्वर्यदृष्टेव
 पुत्रपौत्रादिवृद्धिदम् । प्रभातसमये चैव पूजाकाले विशेषतः ।
 सायंकाले तथा पाठात् सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ शत्रुरुच्चाटनं
 याति देशाच्च विच्युतो भवेत् । पश्चात् किङ्करतामेति सत्यं
 सत्यं न संशयः ॥ शत्रुनाशकरे ! देवि ! सर्वसम्पत्करे ! शुभे ! ।
 सर्वदेवस्तुते ! देवि ! कालिके ! त्वां नमाम्यहम् ॥

इति रुद्रजामले वैरिहरणं नाम श्मशानकालिका-

कवचं समाप्तम् ॥

दक्षिणाचारस्यापि शाक्तविषयकत्वात् शाक्तप्रशंसा उच्यते ॥

अथ शाक्तप्रशंसा ॥ मुण्डमालातन्त्रे द्वितीयपटले ॥ स्वर्गे

मर्त्ये च पाताले नास्ति शाक्तात् परः प्रियः । सौराणां गान्ध-
 पत्यानां वैष्णवानां तथैव च । तदन्ते चैव शाक्ताः स्युः क्रमशः
 क्रमशः प्रिये ! । शृणु देवि ! वरारोहे ! नास्ति शाक्तात् परो
 जनः । शाक्तोऽपि शङ्करः साक्षात् परंब्रह्मस्वरूपभाक् । आराधिता
 येन काली तारा त्रिभुवनेश्वरो । षोडशौ चैव मातङ्गी द्विदा

पक्ष
वि-
वि-
पा-
रूपः
सौ-
री ।
शर-
पेन-
द्वि-
जा-
सो-
ज-
नि-
ना-
पति
ल-
द्वः
सं-
त-
त-
।

च वगलामुखी । आराधिता महेशानि ! स शिवो नात्र सं-
 शयः । अतिगोप्यं महेशानि ! शाक्तानां परमं पदम् । यो
 जानाति महीमध्ये स शिवो नात्र संशयः । ब्रह्माद्यर्चितपा-
 दाब्जं यो भजेत् सततं मुदा । स यात्यचिरकालेन मुक्तिमन्दिर-
 मेव हि ॥ तृतीयपटले ॥ पार्वतीचरणद्वन्द्वभजनात् किङ्करो
 भवेत् । स्वर्गभोगश्च मोक्षश्च शाक्तानां न भवेत् किमु । शाक्ता-
 नाञ्चैव निन्दां ये कुर्वन्ति हि नराधमाः । तेषां लोहितपानं वै
 कुर्वन्ति भैरवीगणाः । भैरवाश्चैव भैरव्यः सदा हिंसन्ति पाम-
 रान् । शाक्तान् हिंसन्ति गर्जन्ति निन्दन्ति बहुजल्पकाः ।
 छिनत्ति तेषां देवेशि ! शिरांसि हरवत्तभा । शाक्तानामुत्तमो
 नास्ति स्वर्गं मर्त्यं रसातले । शाक्तस्तु शङ्करो ज्ञेयस्त्रिनेत्रश्चन्द्र-
 शेखरः । स्वयं गङ्गाधरो भूत्वा विहरेत् क्षितिमण्डले ॥ चतुर्थ-
 पटले ॥ देवीं प्रति शिववाक्यम् ॥ मदंशाश्चैव ये भूतास्ते शैवा
 नात्र संशयः । त्वदंशाश्चैव शाक्ताश्च सत्यं वै गिरिनन्दिनि ।
 बहुवर्षसहस्रान्ते शैवाः शक्तिपरायणाः । शाक्ताश्च शङ्करा देवि !
 यस्य कस्य कुलोद्भवाः । चाण्डाला ब्राह्मणाः शूद्राः क्षत्रिया
 वैश्यसम्भवाः । एते शाक्ता जगद्वात्रि ! न मनुष्याः कदाचन ।
 पश्यन्ति मानुषान् लोके केवलं चर्मचक्षुषा ॥ तथा सप्तमपटले-
 ऽपि ॥ शिव उवाच ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरेव च जातिभिः ।
 वाममार्गप्रभावेण कर्तव्यं जपपूजनम् । ये शाक्ता ब्राह्मणा
 देवि ! क्षत्रिया ब्राह्मणाः स्मृताः । वैश्याश्च ब्राह्मणा देवि !
 सर्वे शूद्राश्च ब्राह्मणाः । ब्राह्मणाः शङ्कराश्चण्डि ! त्रिनेत्राश्चन्द्र-
 शेखराः ॥ निर्वाणतन्त्रे तृतीयपटले ॥ शाक्ता एव द्विजाः सर्वे
 न शैवा न च वैष्णवाः । उपासते यतो देवीं गायत्रीं परमाक्ष-
 रीम् ॥ गन्धर्वतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ शक्त्युपासनानन्तरमन्योपा-
 सननिषेधो यथा ॥ त्रिपुरामधिकृत्य । अस्याश्चारा धनं कृत्वा

नान्यस्याराधनं चरेत् । अन्यस्य स्मरणहेवि ! योगिनीशाप-
मालमेत् ॥ इति शाक्तप्रशंसा ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां पञ्चमे भक्तिकाण्डे महाविद्यादि-
कथनरूपः षष्ठः परिच्छेदः ।

कुमारीपूजनरतत्यादिना पूर्वलिखितं कुमारीपूजाविधिना
चाकाङ्क्षितं प्राप्तावसरणेदानं तदुच्यते मया । अथ कुमारी-
पूजा ॥ तत्र कुमारीनिरूपणं रुद्रजामलोत्तरखण्डीयषष्ठ-
पटले ॥ एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा च सरस्वती । त्रिवर्षा
च त्रिधा मूर्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका । सुभगा पञ्चवर्षा तु
षष्ठवर्षा भवेदुमा । सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा तु कुञ्जिका ।
नवभिः कालसन्दर्भा दशभिश्चापराजिता । एकादशे तु रुद्राणी
द्वादशाब्दे तु भैरवी । त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विसप्ता पौठना-
यिका । चैत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चाश्विका मता । एवं
क्रमेण संगृह्य यावत् पुष्पं न जायते । प्रतिपदादिपूर्णान्तं
वृद्धिभेदेन पूजयेत् ॥ एकवर्षेत्यादिसर्वे वृहन्नौलतन्त्रेऽपि केवलं
षड्वर्षा च उमा भवेत् । द्विसप्ता नायिका स्मृता । षोडशे च चै-
का मतेति पाठभेदो नामभेदश्चेति । कुञ्जिकातन्त्रे सप्तमपटले
तु विशेष उक्तो यथा ॥ पञ्चवर्षां समारभ्य यावद् द्वादश-
वार्षिकी । कुमारी सा भवेद्देवि ! निजरूपप्रकाशिनौ । षड्-
वर्षाञ्च समारभ्य यावत् सा नववार्षिकी । तावच्चैव महेशानि !
साधकाभीष्टसिद्धये । अष्टवर्षां समारभ्य यावत्तयोदशाब्दिकी ।
कुलजां तां विजानोयात्तत्र पूजां समाचरेत् । दशवर्षां समा-
रभ्य यावत् षोडशवार्षिकी । युवतीं तां विजानोयाद्देवतां तां
विचिन्तयेत् । अन्नं वस्त्रं तथा नीरं कुमार्यै यो ददाति हि ।
अन्नं मेरुसमं देवि ! जलञ्च सागरोपमम् । वस्त्रैः कोटिसह-
स्राब्दं शिवलोके महीयते । पूजोपकरणानिह कुमार्यै यो

ददाति हि । सन्तुष्टा देवता तस्य पुत्रत्वेनानुकल्पते ॥ विश्व-
 सारे तु ॥ अष्टवर्षा तु सा कन्या भवेद्गौरौ वरानने । नववर्षा
 रोहिणी सा दशवर्षा तु कन्यका । अत ऊर्ध्वं महामाया भवेत्
 सेव रजस्वला । आरभ्य द्वादशाब्दाच्च यावद्विंशतिसंख्यकम् ।
 सुकुमारा च सा प्रोक्ता सर्वतन्त्रसमन्विता । यानपाषाणधातूनां
 तेजोरूपेण संस्थिता । जीवजन्तुषु देवेशि । किं वक्तव्यमतः-
 परम् । यत्र नास्ति महामाया तत्र किञ्चिन्न विद्यते ॥ इत्युक्तम् ॥
 तत् पूजाफलं योगिनोतन्त्रे पूर्वखण्डे सप्तदशपटले ॥ कुमारी-
 पूजनफलं वक्तुं नार्हामि सुन्दरि । जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त-
 कोटिशतैरपि । तस्मात्तां पूजयेद्दालां सर्वजातिसमुद्भवाम् ।
 जातिभेदो न कर्तव्यः कुमारीपूजने शिवे । जातिभेदान्महे-
 शानि । नरकान्न निवर्तते । विचिकित्सापरो मन्त्री ध्रुवः स
 पातकी भवेत् । देवीबुद्ध्या महाभक्तस्तस्मात्तां परिपूजयेत् ।
 सर्वविद्यास्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः । यदि भाग्य-
 वशाद्देवि ! वैष्णुकुलसमुद्भवाम् । कुमारीं लभते कान्ते ।
 सर्वस्वेनापि साधकः । यत्रतः पूजयेत्तान्तु स्वर्णरौप्यादिभि-
 र्मुदा । तदा तस्य महासिद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥ कुमारी-
 पूजास्थानं फलमपि तत्रैव ॥ कुमारीपूज्यते यत्र स देशः चिति-
 पावनः । महापुण्यतमो भूयात् समन्तात् क्रोशपञ्चकम् ॥
 जामले तत्रैव ॥ महापर्वसु सर्वेषु विशेषाच्च पवित्रके । महा-
 नवम्यां देवेशि । कुमारीञ्च प्रपूजयेत् । तस्मात् षोडशपर्यन्तं
 युवतोति प्रचक्षते । तत्र भावप्रकाशः स्यात् स भावः परमो
 मतः । रक्षितव्याः प्रयत्नेन अक्षतास्ताः प्रचिन्तयेत् । महा-
 पूजादिकं कृत्वा वस्त्रालङ्कारभोजनेः । पूजयेन्मन्दभाग्योऽपि
 लभते जयमङ्गलम् । अन्येषां कथनेनाथ प्रयोजनमहाफलम् ।
 विघ्निना पूजयेद् यस्तु दिव्यवीरपशुस्थितः । भावत्रये महा-

सौख्यं दिव्यकर्मणि सत्फलम् ॥ तथा ॥ अशेषकुलसम्यक्तां
नानाजातिसमुद्भवाम् । नानादेशोद्भवां वापि सगुणागुण-
संयुताम् । द्वितीयवत्सरादूर्ध्वं यावत् स्यादष्टमाब्दकम् । ताव-
ज्जन्वा पूजयित्वा कन्यां सुन्दरमोहिनीम् । दिव्यभावस्थितः
साक्षात्तन्मन्त्रफलं लभेत् । कुमारी पूजनादेव कुमारीभोज-
नादिभिः । एकद्वित्रादिवीजानां फलदा नात्र संशयः ।
ताभ्यः पुष्पं फलं दत्त्वा अनुलेपादिकं तथा । बालप्रियञ्च
नैवेद्यं दत्त्वा तद्भावभावितः । मृदा तदङ्गमात्मानं बाल-
भावविशेषितः । अतिप्रियकथालापक्रीडाकौतूहलान्वितः ।
यथार्थं तत् प्रियं तत्र कृत्वा सिद्धीश्वरो भवेत् । कन्या सर्व-
समृद्धिः स्यात् कन्या सर्वं परं तपः । होमं मन्त्रार्चनं नित्य-
क्रियां कौलिकसत्क्रियाम् । नानाफलमहाधर्मं कुमारी-
पूजनं विना । तत्तत्कर्मफलं नाथ प्राप्नोति साधकोत्तमः ।
फलं कोटिगुणं वीरः कुमारी पूजया लभेत् । कुसुमाञ्जलिपू-
र्णञ्च कन्यायै कुलप्रण्डितः । ददाति यदि तत् पुष्पं कोटि-
मेरुहिरण्यवत् । तद्दानजं महापुण्यं क्षणादेव समालभेत् ।
कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ॥ कालीतन्त्रे
एकादशपटले ॥ कुमारीपूजनं कुर्यात् सर्वकर्मफलान्नये ॥
रुद्रजामले उत्तरखण्डे सप्तमपटले ॥ अथ पूजां प्रवक्ष्यामि
कुमार्था अतिदुर्लभम् ॥ इत्यभिधाय ॥ पूजास्थानं महापीठं
देवालयमथापि वा । नटीकन्यां हीनकन्यां तथा कापालि-
कन्यकाम् । रजकस्यापि कन्याञ्च तथा नापितकन्यकाम् ।
गोपालकन्यकाश्चैव ब्राह्मणस्यापि कन्यकाम् । शूद्रकन्यां वैद्य-
कन्यां तथा वणिक्कन्यकाम् । चण्डालकन्यकां वापि यत्र
कुत्राश्रमे स्थिताम् । सुहृद्गर्गस्य कन्याञ्च समानीय प्रयत्नतः ।
पूजयेत् परमानन्दैरात्मध्यानपरायणः । सम पूजां यः करोति

प्रत्यहं शुद्धभक्तितः । तस्या वश्यं कुमारीणां पूजनं भोजनं रवेः ।
 त्रिजोरूपं विधोद्याग्नेः सर्वभावे प्रकाशते । तत्पूजनात्तदालापात्
 भोजनादपि तच्छभात् । मम प्रीतिर्भवेत् साक्षाद्देवता
 गुप्तसंस्थिता । बालभैरवदेवस्य कामिनौ वटुकस्य च । मत्-
 पुत्रस्य सर्वलोकपूजितस्य महीजसः । पूजाभिविविधैर्द्रव्यैः
 कुमारी देवपूजिता । कुमारी देवता प्रोक्ता सर्वतो जगदी-
 श्वरी । पूजार्थं सर्वलोकस्य समानौघ सुरेश्वराः । पूजयन्ति
 महादेवीं गुप्तभावनिकासिनीम् । सदा भोजनवाञ्छाढ्या
 मान्या सन्तुष्टहासिनौ । इथा न रीति सा देवी कुमारी देव-
 नायिका । सरस्वतीस्वरूपा सा पूज्यते सर्वनायकैः । शिव-
 भक्तैर्विशुभक्तैस्तथान्यदेवपूजकैः । सर्वलोकैः पूजिता सा
 चावश्यं पूज्यते बुधैः । पूजया लभते पूजां पूजया लभते
 श्रियम् । पूजया घनमाप्नोति पूजया लभते महीम् । पूजया
 लभते लक्ष्मीं सरस्वतीं महीजसम् । महाविद्याः प्रसीदन्ति
 सर्वे देवा न संशयः । कालभैरवब्रह्मेन्द्रा ब्राह्मणा ब्रह्मवेदिनः ।
 रुद्राश्च देववर्गाश्च वैष्णवा ब्रह्मरूपिणः । अवताराश्च द्विभुजा
 वैष्णवाश्च चतुर्भुजाः । अन्ये दिक्पालदेवाश्च चराचरगुरु-
 स्तथा । नानाविद्यारताः सर्वे दानवाः कूटशालिनः । उप-
 सर्गस्थिता ये ये ते ते तुष्टा न संशयः । यद्यहं शुद्धिरूपा हि
 अन्यलोके च का कथा । कुमारीपूजनं कृत्वा त्रैलोक्यं वश-
 मानयेत् । महाशान्तिर्भवेत् क्षिप्रं सर्वपुण्यफलप्रदम् ॥ इह-
 क्रीलतन्त्रे ॥ महाभयानि दुर्भिक्षाद्युत्पातानि कुलेश्वरि ! ।
 दुःखप्रमपसृज्य यच्चान्यत् दुःखदं नृणाम् । कुमारीपूजनादेव
 न तानि प्रभवन्ति हि । नित्यं क्रमेण देवेशि ! पूजयेद्विधि-
 पूर्वकम् । घ्नन्ति विघ्नान् पूजिताश्च भयं शत्रून् महोत्कटान् ।
 ग्रहा रोगाः क्षयं यान्ति भूतवेतालपन्नगाः ॥ रुद्रजामले तथा ॥

तत्तन्मन्त्रसमुक्तेखात् क्षणात् पुण्यायुतं लभेत् । मन्त्रेण पुटितं
 क्षत्वा जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् । यद्यत् प्रकारमुद्दिश्य वदामि
 सुरसुन्दर ! । तत्तत् कार्यञ्च कर्त्तव्यं भिन्नबुद्धिं न कारयेत् ।
 तथा । शृणु नाथ ! कुलार्थं मे कुमारीपूजने मनुम् । महा-
 विद्यामहामन्त्रं सिद्धिमन्त्रं न संशयः । एतन्मन्त्रप्रभावेण
 जीवन्मुक्तो भवेत् सुधीः । अन्ते देवीपदं याति सत्यमान-
 न्दभैरव ! । ऐहिके सुखसम्पत्तिं मधुमत्याः प्रसादकम् ।
 अवश्यं प्राप्नुयान्मर्त्यो विश्वासं कुरु शङ्कर ! । वाग्भवेन वपुः-
 क्षोभं मायावीजे गुणाष्टकम् । श्रियो वीजे श्रियो लाभो माया-
 वीजे रिपोः क्षयः । भैरवेण तु वीजेन खेचरत्वं सुरादिभिः ।
 कुमारिकां ह्यहं नाथ ! सदा त्वं हि कुमारकः । शतमष्टोत्तरां
 वापि एकां वा परिपूजयेत् । पूजिताः प्रतिपूज्यन्ते निर्वहन्त्य-
 वमानिताः । कुमारी योगिनी साक्षात् कुमारी परदेवता ।
 असुरा दुष्टनागाश्च ये ये दुष्टग्रहा अपि । भूतवेतालगन्धर्वा
 डाकिनी यक्षराक्षसाः । याज्ञान्या देवताः सर्वा भूर्भुवः स्वश्च
 भैरवाः । पृथिव्यादीनि सर्वाणि ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः । ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च
 यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् । विधियुक्तां कुमारीं तु भोजयेच्चैव
 भैरव ! । पादार्घ्यञ्च तथा धूपं कुङ्कुमं चन्दनं शुभम् । भक्ति-
 भावेन सम्पूज्य कुमारीभ्यो निवेदयेत् ॥ कुमारीपूजाक्रमस्तु ॥
 तथा ॥ आनीय सुन्दरीं नारीं कुमारीं वरनायिकाम् । रत्ना
 लङ्कारसंयुक्तां शङ्खवस्त्रादिशोभिताम् । वाग्भवैन जलं नाथ
 तन्नाम्ना परिदापयेत् । देवीबुद्ध्या सदा ध्यात्वा पूजयेत् साध-
 कोत्तमः । मायावीजेन तन्नाम्ना पादं दद्यात्तथा प्रभो ! ।
 लक्ष्मीवीजेन चार्घ्यं नु कूर्चवीजेन चन्दनम् । मायावीजेन
 पुष्पाणि कुमार्यै दापयेत् सुधीः । सदाशिवेन मन्त्रेण धूप-

दीपौ महत्तमौ । दत्त्वा षडङ्गमन्त्रेण पूजयेद्देवनायकम् । तत्प्र-
कारं महादेव ! शृणुष्वानन्दरूपपृष्ठकम् । महातेजोमयं शुभ्रं
हृदयं हस्तदक्षिणेः । विभाव्यं प्रपठेद् नत्वा तन्मन्त्रं शृणु
शङ्कर ! । आदौ वाग्भवमुच्चार्य मायां लक्ष्मीञ्च कूर्चकम् । प्रेत-
बीजं ततो ब्रूयात् सविसर्गैन्दुकीलकम् । कुलग्रन्थं समुच्चार्य
कुमारिके ततो वदेत् । हृदयाय नमः प्रोच्य ततः शिरसि
भावयेत् । शुक्लवर्णं सर्वमयं बीजमुच्चार्य संन्यसेत् । हकारं
वाग्भवाद्यञ्च वकारं वाग्भवात्मकम् । मायां लक्ष्मीं वाग्भवञ्च
द्विष्टान्तं शिरसे घटम् । वज्रजायावधिर्मन्त्रो न्यसेत् शिरसि
साधकः । शिखामध्ये कृष्णवर्णं नीलाञ्जनचयप्रभम् । विभाव्य
सन्त्यसेन्मन्त्री कुमारीकुलसिद्धये । आदौ प्रणवमुद्धृत्य तदन्ते
विष्णुसुन्दरी । शिखायै पदमुद्धृत्य वषट्कारं ततो वदेत् ।
ततः कवचमध्ये च बलवन्तं सुतेजसम् । प्रथमारुणसङ्काशं
ध्यात्वा चारु कलेवरम् । वाग्भवञ्च समुच्चार्य कुलग्रन्थं ततो
वदेत् । वागीश्वरिपदं पश्चात् कवचाय ततो वदेत् । तारक-
ब्रह्मग्रन्थञ्च कवचन्यासजालकम् । ततो नेत्रत्रये ध्यात्वा महा-
बीजं महाप्रभम् । रक्तवर्णं कोटिकोटि जवामण्डलमण्डितम् ।
विराजितं कोटिपुष्पाजिततेजसि भास्करे । वाग्भवं हि समु-
च्चार्य कुलेश्वरिपदं ततः । नेत्रत्रयाय शब्दान्ते वीषड् लोचन-
मन्त्रकम् । ततः साधकमन्त्रो च वामहस्ततले तथा । मध्यमा-
तर्जनीभ्याञ्च तालद्वयमुपाचरेत् । तन्मन्त्रं कोटिसूर्याग्र-
ज्योत्स्नाजालसमप्रभम् । महाकाशोद्भवं शब्दमहोद्यपरि-
पीडनम् । मायाबीजं तथास्त्राय पदमुद्धृत्य यत्नतः । फट्ठन्ते
चान्तमुद्धृत्य महामन्त्रं प्रकीर्तितम् । ततस्तस्याः कुण्डविले
ध्यात्वा च परिवारकान् । पूजयेद् यत्नतो मन्त्री तेजसाऽमृत-
प्रारया । तर्पयेत् पूजयेद्भक्त्या भैरवं बालभैरवम् । देवताभिः

पूजयित्वा परिवारान् क्रमेण तु । ततो वाग्भवमुच्चार्य सिद्ध-
जयाय शब्दतः । पूर्वं पदं समुच्चार्य वक्त्राय नम ईरितम् ।
ततो वाग्भवमुच्चार्य जयाय शब्दमुच्चरेत् । उत्तरे वक्त्रमुद्धृत्य
चतुर्थ्यन्तं नमः पदम् । ततो वाग्भवमायाश्रीबीजमुच्चार्य
यत्नतः । कुजिके पश्चिमान्ते च वक्त्राय नम ईरितम् । ततो
वाग्भवमुच्चार्य कालिकेपदमुच्चरेत् । दक्षवक्त्राय शब्दान्ते
नमो मन्त्रः प्रकीर्तितः । एतन्मन्त्राचरान्नाथ ! समुच्चार्य कुले-
श्वर ! । पूजयित्वा क्रमेणैव भास्करं परिपूजयेत् । चण्डं दिक्-
पालदेवञ्च सन्ध्यादीन् परिपूजयेत् । वीरभद्रां महाकन्यां
कौलिनीं कुलगामिनीम् । अष्टादशभुजां कालीं चण्डदुर्गां
प्रपूजयेत् । नैवेद्यादीन् समानीय नानाभक्त्यानुराजितम् ।
दुग्धं घनावृतं क्षीरं पक्वान्नं पक्षसत्फलम् । यद्यत्कालोप-
योग्यञ्च सर्वदा मधुमिश्रितम् । पञ्चतत्त्वं कुलद्रव्यं निजकल्या-
णवर्धनम् । नानाद्रव्यञ्च नैवेद्यं स्वस्वकल्पोक्तसाधितम् । कुमा-
रीभ्यो निवेद्यैवं नानासौरभशोभितम् । शीतलं जलमानीय
दद्यात्ताभ्यो महासुधीः । ततो हितं महामन्त्रं कुमार्याश्चाति-
दुर्लभम् । अथ वाग्मी समूहञ्च जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत् । समर्थं
प्राणवायूनां धारणं कारयेत् स्वयम् । अष्टाङ्गादिप्रणामञ्च
कुर्वन् स्तोत्रं पठन्मेत् ॥ प्रणाममन्त्रोऽपि तत्रैव ॥ नमामि
कुलकामिनीं परमभाग्यसन्दायिनीम् । कुमाररतिचातुरीं
सकलसिद्धिमानन्दिनीम् । प्रवालगुटिकास्रजं रजतरागवस्त्रा-
न्विताम् । हिरण्यतुलभूषणां भुवनवाक् कुमारीं भजे । इति
मन्त्रेण सन्नम्य तारिणीं परिपूजयेत् । शिवं गणेशं सम्पूज्य
प्रणमेत् साधकोत्तमः । दक्षिणां विधिवद्देत्वा कुमारीभ्यः
क्रमेण तु । विवाहयेत् स्वयं कन्यां ब्रह्महत्या विनश्यति ।
यो यश्च पुण्यकाले तु कन्यादानं समापयेत् । भुक्तिमुक्तिफलं

पद-
वि-
पि-
पा-
पः
सी-
ने ।
पार-
पिन-
पदे-
ता-
सी-
ज-
ति-
ता-
ति-
ब-
प्रः
ब-
व-
त-
-
-
-

तस्य सौभाग्यं सर्वसम्पदः । रुद्रलोके वसेन्नित्यं द्विनेत्रो भग-
वान् हरः । तीर्थकोटिसङ्घस्राणि अश्वमेधशतानि च । तत्फलं
लभते मर्त्ये यस्तु कन्यां विवाहयेत् । बालुका सागरे यावत्
तावद्वन्द्वसङ्घस्रकम् । एकैकं कुलमुद्धृत्य रुद्रलोके मञ्जीयते ।
तत्तदिष्टदेवतायाः प्रीतये तुष्टये सुधौः । कन्यादानं समाहृत्य
मुक्तिमाप्नोति भैरव ! । तत्तद्वित्तोयकन्यायास्तत्तद्वुद्ध्या च
साधकः । विभाव्य शिवरूपत्वं सम्प्रदानोयकन्यके । पूर्णरूपं
शिवं ध्यात्वा वरं सर्वाङ्गसुन्दरम् । तेजोमयं यशःकान्तं
कालभैरवरूपिणम् । वटुकेशं महादेवं वरयेत् साधकाग्रणीः ।
बालरूपाञ्च त्रैलोक्यसुन्दरीं वरवर्णिनीम् । नानालङ्कार-
नन्मार्गीं भद्रविद्याप्रकाशिनीम् । चारुहास्यां महानन्दहृदयां
शुभदां शुभाम् । ध्यात्वा द्वादशपत्राब्जे पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
सम्प्रदानं समानोय तत्तन्मन्त्रेण दापयेत् ॥ इति कुमारीदान-
क्रमफलम् ॥

अथ कुमारीमन्त्रपुरस्करणम् ॥ अष्टमपटले ॥ अथ वक्ष्ये
महादेव्याः कुमार्या जपहोमकम् । लक्षसंख्यं जपं कृत्वा मायां
वा वाग्भवं मनुम् । कालीवौजं वापि नाथ ! अथवा काम-
वौजकम् । सदाशिवेन पुटितं विन्दुचन्द्रविभूषितम् । अथवा
प्रणवेनापि पुटितं त्रिदशेश्वर ! । लक्षसंख्यं क्रमेणैव जप्त्वा
सिद्धेश्वरो भवेत् । जपेत्तन्मन्त्रं देवेश ! लक्षसंख्याविधानतः ।
तद्दशशेन जुहुयाद् दृताक्तविल्वपत्रकैः । अथवा श्वेतपुष्पैश्च
कुन्दपुष्पैर्महाफलम् । एवं क्रमेण जुहुयात् करवोरप्रसन्नकैः ।
दृताक्तैः केवलेर्वापि चन्दनागुरुमिश्रितैः । हविष्याशी दिवाभागे
रात्रौ पूजापरो भवेत् । निजपूजामशेषैस्तु कुलद्रव्यैः प्रपूजयेत् ।
रविसंख्यं जपेत्तत्र परमानन्दरूपदृक् । जपान्ते जुहुयान्मन्त्री-
मद्वक्त्रसंयुतैः । ततः प्राणात्मकं वायुं शोधयित्वा पुनः

पुनः । प्राणायामत्रयं कृत्वा चाष्टाङ्गैः प्रणमेषुदा । प्रणामसमये
नाथ ! इदं स्तोत्रं पठेद् यदि । कवचञ्च तथा पाठ्यं कुमारी-
णामथापि वा । निजदेव्या महास्तोत्रं पीठाङ्गं कवचं ततः ।
कुमारीणामहं देव ! सहस्रं नाम साष्टकम् । पठित्वा सिद्धि-
माप्नोति नात्र कार्या विचारणा । तदशक्तौ निजदेव्याः सहस्र-
नाममङ्गलम् । अष्टोत्तरं पठेन्नाथ ! सिद्धिकाङ्क्षी न संशयः ।
तासां स्तोत्रं दिव्यनाथ ! शृणु सर्वत्र मङ्गलम् । अकस्मात् सिद्धि-
माप्नोति पठित्वा साधकोत्तमः । अथे संस्थाप्य ताः सर्वा रत्न-
कोटिसुशीतलाः । ततस्तोत्रं पठेद्दीमान् समाहितमना वशी ।
महादिव्याचाररतो वीरभावोत्पन्नोऽपि वा । एवं क्रमेण प्रपठे-
द्भक्तिभावपरायणः । महाविद्या महासेवा भक्तिश्रद्धापूर्वार्पितः ।
महाज्ञानी भवेत् क्षिप्रं वाञ्छासिद्धिमवाप्नुयात् ॥

अथ कुमारीपूजाप्रयोगः ॥ तत्र एकवर्षावधि षोडशवर्ष-
पर्यन्तमजातपुण्या कुमारीसंज्ञा तत्र वर्षक्रमेण नामानि यथा ॥
सन्ध्या ॥ १ ॥ सरस्वती ॥ २ ॥ त्रिधा मूर्तिः ॥ ३ ॥ कालिका ॥ ४ ॥
सुभगा ॥ ५ ॥ उमा ॥ ६ ॥ मालिनी ॥ ७ ॥ कुलिका ॥ ८ ॥
कालसन्दर्भा ॥ ९ ॥ अपराजिता ॥ १० ॥ रुद्राणी ॥ ११ ॥ भैरवी
॥ १२ ॥ महालक्ष्मीः ॥ १३ ॥ पीठनायिका ॥ १४ ॥ चैत्रज्ञा ॥
१५ ॥ अम्बिका ॥ १६ ॥ प्रतिपदादिपञ्चदश्यन्तं द्विद्विक्रमेण
पूजनीयाः । कुमारी तु सर्वजातीयैव प्रशस्या । नटौकन्या कापा-
लिककन्या रजककन्या नापितकन्या गोपालकन्या ब्राह्मण-
कन्या शूद्रकन्या वैद्यकन्या वणिक्कन्या चण्डालकन्या सुष्ट-
वर्गकन्या । कुमारीमासने समुपविश्य ध्यायेद् यथा ॥ बाल-
रूपाञ्च त्रैलोक्यसुन्दरीं वरवर्णिनीम् । नानालङ्कारनभ्राङ्गीं
भद्रविद्याप्रकाशिनीम् । चारुहास्यां महानन्दहृदयां शुभटां
शुभां । एवं ध्यात्वात्मशिरसि पुष्पं दत्त्वा मानसोपचारैश्च

सम्पूज्य पुनर्धात्वा कुमार्यङ्गे दत्त्वा इदमासनम् ऐं ह्रीं श्रीं
हुं ह्रसौः सन्ध्याये कुमार्यै नमः । एवं पूर्ववौजान्युच्चार्य सर-
स्वत्यै कुमार्यै नम इत्यादिवत्सरानुक्रमेण चतुर्थ्यन्तेन नाम्ना
आसनादिभिः षोडशैरुपचारैः सम्पूजयेत् । एतज्जलं ऐं सन्ध्याये
नमः । एतत्पाद्यं ह्रीं सन्ध्याये नमः । एवमाभरणम् । एष गन्धः
हुं सन्ध्याये नमः । एतानि पुष्पाणि ह्रीं सन्ध्याये वीषट् ।
एष धूपः ह्रसौः सन्ध्याये नमः । एवं दीपः । एतद्देवेद्यं
ऐं ह्रीं श्रीं हुं ह्रीः सन्ध्याये निवेदयामि । शङ्खमाख्यकञ्जल-
कुङ्कुमादिकमनेन नमोऽन्तेन मन्त्रेण देयम् । सर्वत्र चतुर्थ्य-
न्तनामान्ते कुमार्यै इति विशेषणं दातव्यम् । ततः षडङ्ग-
पूजा तत्कमस्तु कुमार्या हृदयं दक्षिणहस्तेन धृत्वा महा-
तेजोमयं शुक्लवर्णं विभाव्य ऐं ह्रीं श्रीं हुं ह्रसौः कुलकुमारिके
हृदयाय नमः । शिरः शुक्लवर्णं सर्वमयं विभाव्य है वै ह्रीं श्रीं
ऐं शिरसे स्वाहा । शिखां नीलाञ्जनचयप्रभां विभाव्य ॐ श्रीं
शिखायै वषट् । कवचं प्रथमारुणसङ्काशं सुतेजस्कं विभाव्य
ऐं कुलवागीश्वरि कवचाय हुं । ततो नेत्रत्रयं सर्ववोजमयं
महाप्रभं रक्तवर्णं कोटि कोटि जवापुष्पोज्ज्वलं विभाव्य ऐं
कुलेश्वरि नेत्रत्रयाय वीषट् । ह्रीं अस्त्राय फडिति वामहस्त-
तले तर्जनीमध्यमाभ्यां तालद्वयं दद्यात् । ततस्तस्याः कुण्ड-
विले सपरिवारं बालभैरवं ध्यात्वा एते गन्धपुष्पे ॐ सपरि-
वारबालभैरवाय नमः इति पूजयेत् । एते गन्धपुष्पे ऐं
सिद्धजयाय पूर्ववक्त्राय नमः । एवं जयायोत्तरवक्त्राय । ऐं ह्रीं
श्रीं कुञ्जिके पश्चिमवक्त्राय । ऐं कालिके दक्षिणवक्त्राय । श्रीं
भास्कराय प्रत्येकं दिक्पालेभ्यः वीरभद्रायै महाकन्यायै कौलि-
न्यै कलगामिन्यै अष्टादशभुजायै काल्यै चण्डदुर्गायै ओंकारादि-
नमोऽन्तेन पूजयेत् । ततः कुमारीमूलमन्त्रं स्वीयमन्त्रं वा

शिष्यस्थिता वन्दे पर्वतराजराजतनया कालाप्रिये त्वामहम् ॥ ७ ॥
 कौमारीं कुलमालिनीं रिपुमण्योभाग्निसन्दायिनीं रक्ताभा-
 नयनां शुभां परममार्गाभ्युक्तिसंज्ञाप्रदाम् । भार्या भोगवतीं
 पतिं त्रिभुवनेष्वामोदपञ्चाननां पञ्चास्यप्रियकामिनीं भयहरां
 सर्पादिहारां भजे ॥ ८ ॥ चन्द्रास्यां चरणद्वयाम्बुजमहाशो-
 भाविनोदीं नदीं मोहादिक्षयकारिणीं वरकरां श्रीकुञ्जिकां
 सुन्दरोम् । ये नित्यं परिपूजयन्ति सहसा राजेन्द्रचूडामणिं
 तेषां हि धनमायुषं त्रिजगतां व्याप्येश्वरत्वं जगुः ॥ ९ ॥ योगीशं
 भुवनेश्वरं प्रियकरं श्रीकालसन्दर्भदं शोभासागरगामिनं सुर-
 तरोर्वाञ्छाफलोद्दीपनम् । लोकानामवनाशनाय शिवया श्री-
 संज्ञया विद्याया धर्मप्राणसदैवतं प्रणमतां कल्पद्रुमं भावये ॥ १० ॥
 विद्यान्तामपराजितां मदनमोदमत्ताननां हृत्पद्मस्थितपादुकां
 कुलकलां कात्यायनीं भैरवीम् । ये ये पुण्यधियो भजन्ति
 परमानन्दाब्धिमध्ये मुदा सर्वाच्छादिततेजसा भयकरीं मोक्षा-
 य सत्त्वोत्तये ॥ ११ ॥ रुद्राणीं प्रणमामि पद्मवदनां कोट्यकं-
 तेजोमयीं नानालङ्कृतभूषणां कुलभुजामानन्दसन्दायिनीम् । श्री-
 मायां कमलान्वितां हृदिगतां सन्तानवीजक्रियां वन्दे वाग्भव-
 रूपिणीं कुलवधूं हुंकारवीजोद्भवाम् ॥ १२ ॥ नमामि वरभैरवीं
 क्षितितलावकालानलां मृणालकुसुमारूपां भुवनदीपसंशोधि-
 नीम् । जगद्भयहरां परां तरति या च योगेश्वरो ममापदसह-
 सकं सकलभोगदा तामहम् ॥ १३ ॥ सास्त्राज्यं प्रददाति या
 भगवती विद्या महालक्षणा साक्षादष्टसमृद्धिदा भुवि महा-
 लक्ष्मीः कुलक्षोभहा । स्वाधिष्ठानमुपहृजे विवसिता विष्णो-
 रनन्तश्रिये वन्दे राजपदप्रदां शुभकरीं कौलेश्वरीं सर्वदा ॥ १४ ॥
 पीठानामधिपाधिपामसुरहं विद्यां शुभां नायिकां सर्वालङ्करणा-
 न्वितां त्रिजगतां क्षोभापहं वारुणीम् । वन्दे पीठगनायिकां

त्रिभुवनच्छायाभिराच्छादितां सर्वेषां हितकारिणीं जयवतामा-
नन्दरूपेश्वरीम् ॥ १५ ॥ क्षेत्रज्ञां मदविह्वलां कुलवतीं सिद्धिप्रियां
प्रेयसीं शशोः शिवट्टकेश्वरस्य महतामानन्दसञ्चारिणीम् ।
साक्षादात्मपरोक्षमां निजमनःसोभापद्मां प्राकिनीम् । वाक्याय-
प्रकटामहं रजतभां वन्दे महामैरवीम् ॥ १६ ॥ सम्पूर्णत्रिभुव-
न्मुखीं कमलमध्यसन्धाविनीं शिरोदशमते दलेऽमृतमङ्गाव्य-
धाराधराम् । प्रणामफलदायिनीं सकलराज्यवश्यां गुणां
नमामि परमाश्रिकां विषयपात्रसंहारिणीम् ॥ १७ ॥ साक्षादहं
त्रिभुवनेऽमृतपूर्णदेहां सन्ध्यादिदेविकमलां कुलपण्डितेन्द्राम् ।
तस्मां भजे दशमते दलमध्यमध्ये कौलेश्वरीं सकलदिव्यजनाश्रयां
त्वाम् ॥ १८ ॥ विश्वेश्वरीं सुरकुले वरकालिके त्वां सिद्धानले
प्रतिदिनं प्रणमामि भक्त्या । भक्तिं धनं जयपदं यदि देहि
दास्यं तस्मिन् महामधुमती लघुमिहभार्याम् ॥ १९ ॥ एतत्
स्तोत्रप्रसादेन कविलावाक्यपतिर्भवेत् । महासिद्धीश्वरो विद्यो
वीरभावपरायणः । सर्वत्र जयमाप्नोति सहि स्याद्भरवक्त्रभः । वाचा-
मौशी भवेत् क्षिप्रं कामरूपी भवेन्नरः । पशुरेव महावीरो दि-
व्यो भवति निश्चितम् । क्रमशो ह्यष्टसिद्धिः स्याद्वाग्मी भवति
निश्चितम् । सर्वा विद्याः प्रसीदन्ति तुष्टाः सर्वदिगौश्वराः ।
यज्ञिः शीतलतां याति जलस्तम्भं स कारयेत् । धनवान्
पुत्रवान् राजा इहलोके भवेन्नरः । स गच्छति च वैकुण्ठे कैलासे
शिदसन्निधौ । मुक्तिरेव महादेव ! यो नित्यं सर्वदा पठेत् । महा-
विद्यापदाम्भोजं स हि पश्यति निश्चितम् । शृणु नाथ ! प्रव-
क्ष्यामि कुमारौतर्पणादिकम् । यासां तर्पणमात्रेण कुलसिद्धि-
र्भवेत् ध्रुवम् । कुलवालां मूलपद्मस्थितां कामविहारिणीम् ।
शतधा मूलमन्त्रेण तर्पयामि तव प्रिये ॥ ११ ॥ मूलाधार-
महातेजश्छातामण्डलमण्डिताम् । सन्ध्यादेवीं तर्पयामि काम-

वीजेन मे शुभे ॥२॥ मूलपङ्कजयोगाङ्गीं कुमारीं श्रीसरस्वतीम् ।
 तर्पयामि कुलद्रव्यैस्तव सन्तोषहेतुना ॥३॥ चारुमूलाधार-
 पद्मे त्रिमूर्तिं बालनायिकाम् । सर्वकल्याणदां देवीं तर्पयामि
 परासृतेः ॥४॥ स्वाधिष्ठानमहापद्मपङ्कजदलान्तःप्रकाशिनीम् ।
 श्रीवीजेन तर्पयामि भोगमोक्षाय केवलम् ॥५॥ स्वाधिष्ठान-
 कुलोक्तासविष्णुसङ्केतगामिनीम् । कालिकां निजवीजेन
 तर्पयामि कुलासृतेः ॥६॥ स्वाधिष्ठानाख्यपद्मस्थं महातेजोमयीं
 शिवाम् । सूर्याणां श्रीर्षमधुना तर्पयामि कुलेश्वरीम् ॥७॥
 मणिपुराब्जमध्ये मनुहरकलेवराम् । उमादेवीं तर्पयामि
 मायावीजेन पार्वतीम् ॥८॥ मणिपूराब्जोन्मये त्रैलोक्यपरि-
 पूजिताम् । मालिनीं मलचित्तस्थं सद्ब्रह्मे तर्पयाम्यहम् ॥९॥
 मणिपूरस्थितां रौद्रीं परमानन्दवर्दिनीम् । आकाशमामिनीं
 देवीं कुब्जिकां तर्पयाम्यहम् ॥१०॥ तर्पयामि महादेवीं मन्त्र-
 साधनतत्पराम् । योगिनीं कालसन्दर्भां तर्पयामि कुलाननाम्
 ॥११॥ शक्तिमन्त्रप्रदां रौद्रीं लोलजिह्वासमाकुलाम् । अपरा-
 जितां महादेवीं तर्पयामि कुलेश्वरीम् ॥१२॥ महाकौलप्रियां
 सिद्धां रुद्रलोकमुखप्रदाम् । रुद्राणीं रुद्रकिरणां तर्पयामि
 मधुप्रियाम् ॥१३॥ षोडशस्वरसंसिद्धिं महारौरवनाशिनीम् ॥
 महासद्यपानचित्तां भैरवीं तर्पयाम्यहम् ॥१४॥ त्रैलोक्यवरदां
 देवीं श्रीवीजमालयाहताम् । महालक्ष्मीं भद्रेश्वर्यां तर्पयाम्यह-
 मम्बिके ॥१५॥ लोकानां हितकर्त्रीं च हिताहितजनप्रियाम् ।
 तर्पयामि रमावीजं पीठाद्यां पीठनायिकाम् ॥१६॥ जयन्तीं
 वेदवेदाङ्गमातरं सूर्यमातरम् । तर्पयामि सुधाभिश्च चित्रां
 माययाहताम् ॥१७॥ तर्पयामि कुलानन्दपारगां परमाननाम् ।
 तर्पयाम्यम्बिकां देवीं महालक्ष्मीं हृदि स्थिताम् ॥१८॥ सर्वेषां
 वरदायाम्बुजतलं चैतन्यविद्यावतां सौख्याय शुभषोडशस्वर-

शुतं श्रीषोडशीमङ्गलम् । आनन्दार्णवपद्मरागखचिते सिंहा-
सने शोभिते त्वां नित्यं परितर्पयामि सकलश्वेताजमध्यासने
॥१८॥ ये नित्यं सुप्रतिष्ठितचारुसकलस्तोत्राङ्गसन्तर्पणं
विद्यादाननिदानमोक्षपरमं मायामयं या न्तिवे । नो सन्ति
क्षितिमण्डलेश्वरिगणाः सर्वे विपत्कारकाः । राजानं वशयन्ति
योगसकलेर्नित्या भवन्ति क्षणात् ॥२०॥ तर्पणात्मकमोक्षाख्यं
पठन्ति यदि मानुषाः । अष्टैश्वर्ययुतो भूत्वा वत्सरात् च प्रप-
श्यति । महायोगी भवेन्नाथ ! मासादभ्यासतः प्रभो ! ॥
त्रैलोक्यं क्षोभयेत् क्षिप्रं वाञ्छाफलमवाप्नुयात् । यः पठेदेक-
भावेन स तर्पणफलं लभेत् । पूजाफलमवाप्नोति कुमारीस्तोत्र-
पाठतः । यो न कुर्यात् कुमार्यर्चनां स्तोत्रञ्च नित्यमङ्गलम् ।
स भवेत्पशुकव्यो हि मृत्युस्तस्य पदे पदे ॥ इति रुद्रजामले
उत्तरखण्डे महाकुलोद्दीपने कुमार्युपचर्याविन्यासे सिद्धमन्त्र-
प्रकरणे दिव्यभावनिर्यये भैरवभैरवीसंवादे कुमारीस्तोत्रं
समाप्तम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कुमारीकवचं शुभम् । त्रैलोक्य-
मङ्गलं नाम महापातकनाशनम् । पठनाद्वारणाल्लोका महा-
सिद्धाः प्रभाकराः । शक्रो देवाधिपः श्रीमान् देवगुरुर्ब्रह्मसतिः ।
सम्यक्तेजोमयो वह्निधर्मराजो भयानकः । वरुणो देवपूज्यो
हि जलानामधिपः स्वयम् । सर्वहर्त्ता महावायुः कुमारः
कुञ्जरेश्वरः । धनाधिपः प्रियः शम्भोः सर्वे देवा दिगीश्वराः ।
त्वमेकः प्रभुरेकात्मा सर्वेशो निर्मलोदयः । एतत् कवचपाठेन
सर्वे भूपा धनाधिपाः । प्रणवो मे शिरः पातु मायासन्ध्यात्मि-
का सती । ललाटोद्भिर्नङ्गामाया पातु मे श्रीसरस्वती । कामा-
ख्या वटुकेशानो विभूतिर्भालमेव तु । चामुण्डावीजरूपा च
सुदनं कालिका मम । पातु मां सूर्यगा नित्यं तथा नेत्रद्वयं

मम । कर्णयुग्मं कामबीजस्वरूपा मां तपस्विनी । रसनाग्रं
 तथा पातु वाग्देवी मालिनी मम । ताल्वग्रं कामरूपा च
 दन्ताग्रं कुञ्जिकाऽवतु । देवी प्रणवरूपा सा पातु नित्यं शिरो
 मम । ओष्ठाधरं शक्तिबीजात्मिका स्वाहा स्वरूपिणी गलदेशं
 महारोद्री पातु मे चापराजिता । ध्रुवीजं मे सदा कण्ठं
 रुद्राणी स्वाहयान्विता । हृदयं षोडशी विद्या पातु षोडशसु-
 खरा । ह्रै वाहू पातु सर्वत्र महालक्ष्मीः प्रधानिका ।
 सर्वमन्त्रस्वरूपा मे चोदरं पीठनायिका । पार्श्वयुग्मं
 तथा पातु हृद्देवी वाग्मवात्मिका । कौशोरी कटिदेशं मे
 मायाबीजस्वरूपिणी । जङ्घायुग्मं जयन्ती मे योगिनी
 कृत्वाकाशिता । सर्वाङ्गमम्बिका देवी पातु मन्त्रार्थगामिनी ।
 केशाग्रं कमला देव ! नासाग्रं नरमोहिनी । चिबुकं चण्डिका-
 देवी कुमारी पातु मे सदा । हृदयं क्षलितादेवी पृष्ठं
 पर्वतवासिनी । त्रिशक्तिः षोडशी देवी लिङ्गं गुह्यं सदाव-
 तु । श्लेशाने चाम्बिका देवी गङ्गागर्भे च भैरवी । शून्यागारे
 पञ्चमुद्रा मन्त्रयन्त्रप्रकाशिनी । चतुष्पथे सदा पातु मामेव
 वज्रधारिणी । श्वासनगता चण्डा मुण्डमालाविभूषिता ।
 पातु मामेव लिङ्गे च ईश्वरी शक्तिरूपिणी । वने पातु महाबाला
 महारण्ये रणप्रिया । महाजले तडागे च शत्रुमध्ये सरस्वती ।
 महाकाशपथे पृथ्वी पातु मां शीतला सदा । रणमध्ये राज-
 लक्ष्मीः कुमारी कुलकामिनी । अर्धनारीश्वरा पातु मम
 पादतलं मङ्गो । नवलक्ष्ममहाविद्या कुमारीरूपधारिणी ।
 कोटिसूर्यप्रतीकाश चन्द्रकोटिसुशीतला । पातु मां वरदा
 वाणी वटुकेश्वरकामिनी । इति ते कथितं नाभ ! कवचं परमा-
 हुतम् । कुमार्याः कुलदायिन्वाः पञ्चतत्त्वार्थपारगम् । यो
 यजति पञ्चतत्त्वेन स्तोत्रेण कवचेन च । आकाशगामिनी सिद्धि-

भवेत्तस्य न संशयः । वज्रदेहो भवेत् क्षिप्रं कवचस्य प्रसादतः ।
सर्वसिद्धोश्चरौ योगी ज्ञानी भवति यः पठेत् । विवादे व्यवहारं
च संग्रामे कुलमण्डले । महापथे श्मशाने च योगसिद्धाङ्गवेपु
च । पठित्वा फलमाप्नोति सत्यं सत्यं कुलेश्वर ! । वशीकरणकवचं
सर्वत्र जयदं शुभम् । पुण्यव्रती पठेन्नित्यं यतिः श्रौमान् भवेद्
ध्रुवम् । सिद्धविद्या कुमारी च ददाति सिद्धिमुत्तमां । पठेद्
यः शृणुयाद्वापि स भवेत् कल्पपादपः । भुक्तिमुक्तिपुष्टिपुष्टिं
राजलक्ष्मीं सुसम्पदम् । प्राप्नोति साधकश्चेष्टो धारयित्वा भवे-
ज्जयौ । असाध्यं साधयेद्द्विद्वान् पठित्वा कवचं शुभम् । कुली-
लानां महासौख्यं धर्मार्थकाममोक्षदम् । योगिनीं दिवसे
नित्यं कुमारीं पूजयेन्निशि । उपचारविशिष्टेण त्रैलोक्यं वश-
मानयेत् । पललस्याशनेनापि मन्त्रेण मुद्रया सह । नाना-
भक्ष्येण भोज्येण गन्धद्रव्येण साधकः । माल्येन स्पर्शरजताल-
ङ्गारेण सुचेलकैः । पूजयित्वा जपित्वा च तर्पयित्वा वराननाम् ।
यज्ञदानतपस्याभिः प्रयोगेन महेश्वर ! । स्तुत्वा कुमारीकवचं
यः पठेदेकभावतः । तस्य सिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं राजराजेश्वरो
भवेत् । वाञ्छाफलमवाप्नोति यद्यन्मनसि वर्त्तते । भूर्जपत्रे
लिखित्वा च कवचं धारयेद् यदि । शनिमङ्गलवारे च नव-
स्याष्टमौदिने । चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां कृष्णपक्षे विशेषतः ।
लिखित्वा धारयेद्द्विद्वान् उत्तराभिमुखो भवन् । महापातक-
युक्तोऽपि मुक्तः स्यात् सर्वपातकैः । योषिद्वामभुजे धृत्वा सर्व-
कल्याणमालभेत् । बहुपुत्रान्विता कान्ता सर्वसम्पत्तिसंयुता ।
तथा श्रीपुरुषश्चेष्टो दक्षिणे धारयेद्भुजे । ऐहिके दिव्यदेहः
स्यात् पञ्चाननसमप्रभः । शिवलोके परे याति वायुवेगौ निरा-
मयः । सूर्यमण्डलमभिद्य परं मोक्षमवाप्नुयात् । लोकाना-
मतिसौख्यदं भयहरं श्रीपादभक्तिप्रदं मोक्षार्थं कवचं शुभं

四三三

५६

नपि

या-

हयः

तसी

५१ :

द्वार-

नि-

पक्षः

ला-

खा-

15

॥

५५

৬৭

1

...

14

11

10

प्रपठतामानन्दसिन्धुवम् । लोकानां कलिकालघोरकलुषध्वंसै-
कहेतुं जयं ये लोकाः प्रपठन्ति धर्ममतुलं मोक्षं व्रजन्ति
क्षणात् ॥

इति रुद्रजामले उत्तरतन्त्रे महातन्त्रोद्दीपने कुमार्युप-
चर्याविन्यासे कुमारीकवचोक्तासे सिद्धमन्त्रप्रकरणे
भावनिर्ययकुमारीकवचं समाप्तम् ॥

शक्तश्चेत् तदा दशमपटलोक्तं कुमारीसहस्रनाम पठेत्
तदत्र ग्रन्थगौरवभिया न लिखितम् ॥

अथ ब्राह्मणप्रशंसा ॥ मत्स्यसूक्ते तृतीयचरणे प्रथमपटले ॥
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्जलं सार्वकालिकम् । येषां वाक्योदके-
नैव शुध्यन्ति मलिना जनाः ॥ योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे त्रयो-
दशपटले ॥ सर्वदेवमयो विप्रो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । ब्रह्मतेजः-
समुद्भूतः सदाप्राकृतिको द्विजः । ब्राह्मणैर्भुज्यते यत्र तत्र
भुङ्क्ते हरिः स्वयम् । तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च खचरा ऋषयो मुनिः ।
पितरो देवताः सर्वे भुञ्जते नात्र संशयः । सर्वदेवमयो विप्र-
स्तस्मात्तं नावमानयेत् ॥ सप्तमपटले ॥ अतोऽविद्यं सविद्यं
वा ब्राह्मणं सर्वदा भजेत् । सन्तुष्टे ब्राह्मणे देवि ! सन्तुष्टाः
सर्वदा सुराः । वितुष्टे ब्राह्मणे देवि ! वितुष्टा वयमेव हि । यद्य-
कार्यं शतं देवि ! ब्राह्मणः समुपाचरेत् । आत्मनो हितकामेन
तथापि तं न चोद्विजेत् । नावमानञ्च कर्त्तव्यं सर्वदा सुर-
सुन्दरि । ब्राह्मणः सर्वदेवात्मा साक्षात्तेजोमयो हि सः ॥ त्रयो-
दशपटले ॥ ब्राह्मणञ्च कुमारीञ्च शक्तिमग्निं श्रुतिञ्च गाम् ।
नित्यमिच्छन्ति ते देवाः यजितुं कर्मभूमिषु ॥ बृहद्बीजतन्त्रे
सप्तमपटले ॥ अध्यापकाय यो वृत्तिं दत्त्वाध्यापयति द्विजान् ।
किं न त्यक्तं भवेत्तेन धर्मार्थकाममिच्छता । पुण्यात् पुण्यतरं
पुण्यं जानीहि सर्वसम्मतम् ॥ योगिनीतन्त्रे तथा ॥ ब्रह्म-

शाधो दुराधर्षः कोऽप्यतस्तं न कोपयेत् । वाग्वज्रं ब्राह्मणानां
हि सदा जानीहि कामिनि ! ॥ त्रयोदशपटले ॥ भवेद्यस्य
ब्रह्मशापो निष्कृतिस्तस्य दूरतः । तत्तत्केनापि दष्टस्य प्रति-
कारो हि तत्तत्तत्तत् । ब्रह्मशापप्रशंसस्य कल्याणं स्यात् प्रति-
क्रिया ॥ कल्पसंख्या तु तत्रैवोक्ता ॥ कल्पमेकं महेशानि !
कलो वर्षशतत्रयम् । नरकान्निष्कृतिर्नास्ति तस्य भावान्न
संशयः । एवं तद्वंशजाः सर्वे षोडशान्दहनिशं प्रिये ! । नाना-
विधमहोत्पातैर्यावत् स्यात् साप्तपौरुषम् । तस्मात् ब्राह्मणं
देवि ! नावमन्येत कुतचित् ॥ इति ब्राह्मणप्रशंसा ॥

अथ तोषयात्रां ॥ योगिनीतन्त्रे मध्यभागे द्वितीयपटले ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ नित्यं निर्वर्त्य स्वर्गहे पितृव्रान्दीमुखानपि ।
अभ्यर्च्य विधिवद्भक्त्या पश्चादयात्रां समाचरेत् । उत्तरे च गते
शुक्ले सानुकूले शुभग्रहे । गुरुपितरोऽनुज्ज्ञातो ब्राह्मणानां विशे-
षतः ॥ भोजयित्वा द्विजान् सप्त ततो यात्रां समाचरेत् । सिंहे
धनुषि मेघे च न गच्छेत् पूर्वपोठकम् । धटे च मन्त्रधे कुम्भे न
गच्छेत् पश्चिमं बुधः । वृषेऽङ्गनायां मकरे न गच्छेद्दक्षिणा-
लयम् ॥ कर्कटे कीटमौने च न गच्छेदुत्तरं सुधौः । चाप-गो-
कन्यकायाञ्च न गच्छेद्दक्षिणकोणकम् । मकरे कर्कटे मीने नैऋत्यां
परिवर्जयेत् । वायव्यां कुम्भमेघे च चापे चैव विवर्जयेत् ।
सिंहे माने कर्कटे च ऐशान्याञ्च विवर्जयेत् ॥ एतत् शूलं
विजानोयाद् योगिनोऽशुणु शङ्करि ! । न गच्छेन्मन्दवारे च धूर्व-
देशं समं प्रिये ! । पश्चिमं सवितुर्वारे दक्षिणं बुधवासरे ॥ कुजाहे
चोत्तरं देशं चन्द्रे चाग्निदिशं प्रिये ! । जीववारे च नैऋत्यां वा-
यव्यां भृगुवासरे । शनिवारे तथैशान्यां सोमे चैव विशेषतः । पूर्व-
देशं महेशानि ! प्रतिपन्नवमीषु च ॥ न गच्छेद् यात्रिको
यात्रां योगिनोऽसम्मुखी यतः । चतुर्दशो तथा षष्ठीं पश्चिमे

५६३
पूर्वि-
मपि
णा-
रूपः
तसी
मी ।
हार-
वीन-
गार्ह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्द-
त्य-
क-

त् विवर्जयेत् ॥ त्रयोदशीं पञ्चमीञ्च न गच्छेद्दक्षिणां
 दिशम् । द्वितीयां दशमीञ्चैव यच्चदेशं विवर्जयेत् ।
 पूर्णिमां सप्तमीञ्चैव वायव्यां सर्वथा त्यजेत् । न गच्छेच्च
 तथैशान्याममावास्यां तथाष्टमीम् ॥ विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्
 प्रतिपत्सु विवर्जयेत् । सौभाग्यं शोभनञ्चैव द्वितीयामति-
 गण्डकम् । सुकर्मा च घृतिञ्चैव तृतीयां परिवर्जयेत् । गण्डो
 वृद्धिर्भुवञ्चैव व्याघातश्च तथैव च ॥ चतुर्थीं वर्जयेद्देवि पञ्चम्यां
 दूषणं तथा । वज्रसिद्धिव्यतीपाते षष्ठ्यां जानीहि शङ्करि ! ॥
 वरोयान् परिवर्जयेत् सप्तम्यां परिवर्जयेत् । अष्टम्यां शिवसिद्धिञ्च
 साध्यञ्च परिवर्जयेत् ॥ नवम्यां शुभशक्रञ्च दशम्यां ब्रह्ममेव वा ।
 एकादश्यां तथैन्द्रन्तु द्वादश्यां वैधृतिं त्यजेत् । प्रतिपदि कृत्ति-
 काञ्च द्वितीयां ज्येष्ठसंज्ञिताम् ॥ अयात्रिके तु नक्षत्रे प्रस्थानं
 न कदाचन । यात्रायान्तु न दुष्येत करणस्य च चिन्तनम् ॥
 जन्ममासे जन्मदिने जन्मनक्षत्रके तथा । अष्टम्याञ्च नव-
 म्याञ्च सदा यात्रां विवर्जयेत् ॥ आपत्काले च यात्रायां
 उषासम्पद्दि पश्चिमे ॥ गोधुलीसमये चैव पूर्वदेशे महे-
 खरि ! । मध्याह्ने दक्षिणे चैव चापराह्णे तथो-
 त्तरे । ऐशान्याञ्च तथा रात्रौ नैऋत्यां सन्ध्ययोर्द्वयोः । मध्य-
 न्दिने तथाग्नेये वायव्यां प्रातरेव हि । वारुणादिषु योगे वा
 यथाकाले समाचरेत् । विना जातदिनं तत्र अष्टमीं नवमीं
 विना । प्राचीदिशं समागच्छन् यात्रां कुर्यादुदङ्मुखः । पश्चिमे
 प्राङ्मुखः कुर्यात् दक्षिणे पश्चिमामुखः । उत्तरे दक्षिणमुखो
 यात्रां कुर्यात् सुसिद्धये । कुसुमं यावकः शङ्खो भेरी भूदेव-
 भूमिपाः । गावश्चत्वरं रथो यानं दक्षिणे सुभगाः स्मृताः ।
 सिद्धात्रं मांसपिण्डञ्च भक्तभाजनजन्तवः । मृत्पिण्डं कुण्डपा-
 हाराः सर्वाश्च दक्षिणे शुभाः । वन्या वै मिथुने वेश्या पूर्ण-

कुम्भास्त्रियस्तथा । पक्षिणः पशवश्चैव चरन्तो वामतः शुभाः ।
 अग्रे दक्षिणे यात्रा शुभदा परिकीर्तिता । तथा क्रीड-
 मयूराश्च युग्मं गच्छन्ति गच्छतः । तदा सिद्धिं विजानीया-
 दन्यथा विघ्नमादिशेत् । गृध्राः श्वेनाश्च चित्वाश्च पार्श्वं गच्छन्ति
 वै यदा । न कुर्व्याद् यात्रिको यात्रां बाधके वचसि स्थिते ॥
 पञ्चमपटले ॥ कामरूपमध्ये ॥ जनार्दनचिह्नशैलं निरूप्य ॥
 उत्तरे तस्य शैलस्य ऐशान्यां विरजस्य च । दक्षिणे चैव शैलस्य
 पश्चिमे शौभ्रलिङ्गकम् । एतन्मध्यतमं क्षेत्रं आगस्थं नाम वै
 परम् । त्रयं शतमितं क्षेत्रमश्वश्वविभक्तं स्मृतम् । एतद्व्यां
 विजानीयादन्यत्क्षोहित्यमुच्यते । तत्र पिण्डप्रदानेन पितॄणां
 परमा गतिः । जनार्दनस्य हस्ते च स्वादु पिण्डं समर्पयेत् ।
 एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ! । परलोके प्रभो !
 मम त्वं हि दाता भविष्यसि । कलिशेषस्य पूर्वं तु धनुरष्ट-
 प्रमाणतः । सा शिला प्रेतभावेन पितॄणां तारणाय च । तत्र
 पिण्डप्रदानेन न प्रेतो जायते क्वचित् । चक्रतीर्थस्य चान्नेये
 धनुर्द्वन्द्वप्रमाणतः । लिङ्गं लोलं परं तीर्थं तिलदुग्धैः प्रतर्पयेत् ।
 जनार्दनं ततो बौध्य मुच्यते वै ऋणत्रयात् । कलिद्वारपरयोः
 सन्धौ धनुरष्टप्रमाणतः । शुक्रेण स्थापितं लिङ्गं शुक्रेशं नामतः
 श्रुतम् । देवं शुक्रेश्वरं दृष्ट्वा को न मुच्येत बन्धनात् । गोले-
 श्वरं तथा दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्याया । अङ्गारेण च सिद्धेशं
 गजादित्यं गजं तथा । मार्कण्डेयेश्वरं दृष्ट्वा पितॄणामनृणो
 भवेत् । गयागोलेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा देवं जनार्दनम् । एतेन
 किं न विहितं नृणां सुकृतिकारणम् । ब्रह्मलोकं नयन्तीह
 पुरुषानेकविंशतिम् । पृथिव्यां यानि तीर्थानि चासमुद्रसरांसि
 च । चक्रतीर्थं च गच्छन्ति वारमेकं दिने दिने । पृथिव्याश्च
 गया पुष्पं गयायां कूपकं तथा । कूपादष्टगुणा देवि । श्रेष्ठा

५६३
 युक्ति-
 मपि
 णा-
 रूपः
 णसी
 शी ।
 द्वार-
 वीन-
 प्राह-
 ला-
 सो-
 ज-
 ति-
 ला-
 सते
 ल-
 न्द्रः

मातृगया शुभे ।। पुत्रो मातृगयां गत्वा ह्यनृणो भवति क्षणाल् ।
 गयायां पिण्डदानेन पितृणामनृणो भवेत् । गयान्तं पिण्ड-
 दानञ्च गयान्तं तीर्थमेव च ॥ तथा ॥ अत्रागस्थे महाक्षेत्रे
 स्वकं पिण्डं ददेत्तु यः । मासद्वयाधिकं वर्षमायुषो वर्द्धते
 क्रमात् । पित्रोश्च जीवतोः पुत्रो न कुर्यादौर्ध्वदेहिकम् । बहु-
 पुत्रे त्वेकपुत्रे पुत्रे वा योगसेविते । जन्मकुष्ठयुते पुत्रे अपुत्रे
 वा महेश्वरि ! । चत्वारिंशत्परं देवि ! स्वयमात्मक्रियां चरेत् ।
 स्वहस्ते तु वृषोत्सर्गं यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । परलोकगते
 देवि ! अक्षयं तदपि स्मृतम् । दम्पत्योर्जीवतोः कुर्यात् वृषो-
 त्सर्गद्वयं सदा । पित्रोश्च जीवतोः पुत्रो न कुर्यादौर्ध्वदेहिकम् ।
 उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कर्पटो-
 वेशं ग्रामस्थं च प्रदक्षिणम् । ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य
 भोजनम् । कृत्वा प्रदक्षिणं गच्छेत् प्रतिग्रहविवर्जितः । गृहा-
 चारत्विमात्रञ्च अगस्त्यगमनं प्रति । स्वर्गारोहणसोपानं
 पितृणान् पदे पदे । दिवा रात्रौ सर्वदा च आगस्थे श्राद्धकृद्
 भवेत् । निरामिषं कृतं श्राद्धं तथा च विष्णुवर्जितम् । शपन्ति
 पितरस्तस्य निराशाः । पितरो गताः । ग्रामश्राद्धे चाममांसं
 प्रदद्यादविचारयन् । पितरोऽधोमुखास्तस्य तिष्ठन्ति नियतं
 प्रिये ! । सामिषञ्च कृतं श्राद्धं भुङ्क्ते यस्तु निरामिषम् ।
 तामिस्रनरकं गच्छेत् पितृभिः सह नान्यथा । निरामिषं कृतं
 येन कुर्यात् श्राद्धं निरामिषम् । कुर्यादामिषभुक् श्राद्धं
 मामिषन्तु वरानने ! । मत्स्यसूक्ते षड्विंशतिपटलेऽपि ॥ न
 कुर्यादामिषैर्हीनं वर्षश्राद्धं महेश्वरि ! । पर्वश्राद्धं गयाश्राद्धमा-
 मिषेण प्रशस्यते । तीर्थश्राद्धं जाद्वीमुखं कुर्यादामिषवर्जितम् ।
 निरामिषकृतं श्राद्धं यस्तु यः श्राद्धं सामिषम् । निराशाः पितरो
 यान्ति श्रापं दत्वा सुदुःखम् । श्राद्धानभास्वते विप्रे श्राद्ध-

यज्ञोक्तवेषु च । ब्राह्मणं भोजयेद्यस्तु भुङ्क्ते विष्टां स शङ्करि ।
 माहिषं बृहदाजस्र एणञ्च चमरं तथा । गोधां कूर्मञ्च शल्लञ्च
 शाशकं शौकरं तथा । वाराहञ्च तथा मेघं आङ्गे देयानि सर्वशः ।
 अकलौ तु गवां मांसं सारमेयञ्च तद्वयम् । हीनेन्द्रियञ्च कृगल-
 भक्षणं तच्च वर्जयेत् । कृष्णछागस्य मांसेन मार्गणैकेन षट्-
 समाः । चामरेण शतं वर्षं सहस्रं गोधिका प्रिये ।। षण्मासञ्च
 वरारोहे ! कुर्मण मासमात्रकम् । शौकरेण तु षण्मासं शाशकेन
 नवैव तु । द्वाविंशच्छात्स्वकेनैव क्षुद्रवाराहकैस्तथा । शताब्दं
 चामरेणैव स्थूलमांसन्तु वर्जयेत् । यत्र वर्ज्यं भवेत् पुंभिश्चतुर्भिः
 षड्भिरेव च । अतिस्थूलमिति प्रोक्तं तस्मात्तत् पूर्वद्वारिभिः ।
 माहिषस्य च गव्यस्य वराहस्य मम प्रिये ।। मार्गस्य बृहदाजस्य
 स्थूलञ्चापि प्रशस्यते । खड्गं पाञ्चनखं भक्ष्यं कापोतं खड्गसंयुतम् ।
 चतुर्मुखं चाविशालं वर्जयेच्च मम प्रिये ।। गोधिकां स्वर्ण-
 खड्गञ्च चामरं कृष्णमेव च । वर्जयेत् कूर्मकं विद्वान् यदि चक्रेण
 चिह्नितम् । सिंहतुण्डं रोहितञ्च राजीवं चित्रकं तथा । महा-
 शङ्खं प्रौष्ठिकञ्च मत्स्यञ्च पार्वतीयकम् । बृहद्रोहितमत्स्यञ्च
 बृहत्प्रौष्ठिकमेव च । बृहच्छल्लञ्च चित्रञ्च आङ्गे यत्नेन योज-
 येत् । मत्स्यांश्च शल्कहीनांश्च सर्पाकारांश्च वर्जयेत् । शल्कहीनस्य
 मध्ये तु प्रदेशं कवचद्वयम् । पोतोधानादिकं यच्च विह्वता-
 कारकञ्च यत् । सर्पास्थान् पीवरांश्चैव वडालीञ्च विवर्जयेत् ।
 तथा । धूमपकञ्च कदलं शर्करां कीटसंयुताम् । माहिषस्य घृतं
 क्षीरमाजं आङ्गे विवर्जयेत् । नारिकेलञ्च तालञ्च खर्जरं
 पीनकं तथा । तक्रं घृतं विना क्षीरं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
 दीपं त्यजेत् वस्त्रवर्च्या प्रत्यक्षं तैलमेव च । कुसुमं नालिका-
 शाकं मालतीकुसुमं तथा । बृहद्विशङ्गे पङ्कजञ्च करवीराणि
 वर्जयेत् । एकजातीयपात्रे तु दद्यादन्नं समाहितः । देवे

युधि-
मपि
या-
रूपः
तासी
शी ।
वार-
वीन-
गर्ह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते

तु प्रथमं दद्यात् पितृपात्रे तदन्तरम् । पितृशेषन्तु देवैः ऽन्नं
 न दद्यात् कदाचन । अन्नं न चालयेत् कापि ग्रामश्राद्धे
 निरग्निके । वृद्धौ तु चालयेदन्नं संक्रमे ग्रहणेषु च ।
 एतद्वनं स्मार्त्तेनापि धृतम् । अष्टमुष्टिप्रमाणेन ब्राह्मणे-
 नेव संक्रमात् । ततोऽधिकञ्च न्यूनञ्च न दद्यात् आह्नकमणि ।
 यः आह्नं पञ्चपात्रे च करोति सुमनोहरे । वर्षाणान्तु शतं साधं
 हस्तिर्भवति निश्चितम् । अश्वत्थस्य च्छुदे देवि ! ब्रह्मपात्रे च
 शङ्करि ! । षण्मासं जायते हस्तिरनन्ता शतपत्रके । मासैकं
 ताम्रपात्रे च रुक्मपात्रे तु वल्सरम् । रौप्ये दशगुणं प्रोक्तं ख-
 ङ्गपात्रे शतोत्तरम् । एकजातीयपात्रे तु मृताहे आह्नक-
 मणि । पार्वणे च तथा वृद्धौ पृथग्जातिञ्च योजयेत् । संव-
 ल्लरं भवेत्तावद् ब्रीह्यैव नियोजयेत् । वर्षाद्भवति यो ब्रीह-
 त्रते आह्ने विवर्जयेत् । धान्यं वर्षासमुद्भूतं तिलं आवणिकञ्च
 यत् । यज्ञादौ च तथा आह्ने द्विस्त्रिंशं परिवर्जयेत् । षष्टि
 धान्यं राजधान्यं बृहन्नान्यञ्च बल्लभम् । सोमधान्यं शीघ्र-
 धान्यं वज्रानिरक्तपाणिकम् । केतकीं कलविद्धञ्च धान्यं नारायणं
 तथा । माधवञ्च प्रदीपञ्च विष्णुधान्यञ्च बल्लभम् । भोगधान्य-
 मशोकञ्च नागाख्यं पञ्चकं तथा । धान्यानि आह्नयोग्यानि
 देवेषु च नियोजयेत् । गोधूमेश्च यवैश्च चापूपैश्च महेश्वरि !
 नोवारांश्च तथा आह्ने देवधान्यं तथा परम् । वसन्ते रोपितं
 धान्यं यत्नेन च विवर्जयेत् । तदन्नभक्षणादेव पापं संक्रमते
 नृणाम् । भक्षणे आवणान्नस्य दरिद्रस्याभिजायते । भक्षणे
 सोमधान्यस्य व्रतं चान्द्रायणं चरेत् । भक्षणे बृहन्नान्यस्य विभवो
 जायते किल । राजधान्यश्चक्षुष्यधान्यं भक्षणादिषु लोकभाक्
 रक्तधान्योदनं भुक्त्वा विजयश्चोभवाप्नुयात् । नारायणं माध-
 वस्य भोगश्च मम सुन्दरि ! । धान्यत्रयोदशं भुक्त्वा नरः स्थाति-

मवाप्नुयात् । निमन्वितो ब्राह्मणश्च यदि आडे नहि व्रजेत् ।
दारुणं नरकं याति पितृभिः सह शाश्वतम् ॥ इति तौथंया-
चादिश्राद्धकथनम् ॥

अथ काशीमाहात्म्यम् ॥ योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे षोडश-
पटले ॥ त्रिपुरासुरजन्मतत्पराजितनिर्जरस्त्वानन्तरम् ।
पृथिवीञ्च रथं कृत्वा चक्रे चन्द्रदिवाकरौ । ब्रह्माणं सारथिं
कृत्वा वेदान्ब्रज्जुं स्तथैव च । देवान् कृत्वा रथाङ्गानि अमांश्चैव
तथा पुनः । धनुः कृत्वा सुमेरुञ्च ज्याञ्च कृत्वा तु वासुकिम् ।
विश्वञ्च सकलं कृत्वा रथस्थं स चराचरम् । वाणं विष्णुं विधा-
यैव त्रिपुरं भस्मसात् कृतम् । चराचरेण सहितं देवदैत्यादिभिः
सह । मया तत्र महेशानि ! पुनः सृष्टिः कृता ततः । यत्र भस्म-
कृतं देवि ! जगदेतच्चराचरम् । महाश्मशानं तद्विद्धि सर्वेषां
लयकारणम् । सृत्तानां सर्वदेवानां तेजस्तत्र व्यवस्थितम् ।
पञ्चक्रोशात्मकं भूत्वा तेजस्तु जगतां तथा । निर्माय मायया देहं
त्रैपुरं भस्म वक्षसि । तत्र सृत्युच्छलेनाहं तुष्टाव परमेश्वरौम् ।
तत्तेजसि महाकाव्यां परां चैतन्यरूपिणौम् । ततस्तेजसि
कालो सा प्रादुर्भूता परा कला । महसा दीप्यमानन्तु तेजः का-
लोति कौर्त्तितम् । मुखमात्रं समादृष्टं महाकाव्यास्तु तेजसि ।
अतो गौरीमुखं नाम मुनिभिः परिगीयते । तददृष्ट्वा परमे-
शानि ! आनन्दो मम जायते ! आनन्दकाननं तस्माद्गीयते
देवतादिभिः । कालीमयं हि तत्तेजः सकलं सं वभूव ह । यथा
सागरजातोऽम्भःशीकरः सागरो भवेत् । तथा मरादितेजो
हि कालीतेजोवभूव ह । यथानानाजलं देवि ! गङ्गायां पतितं
यदि । गङ्गैव जायते सर्वं तथा तेजः सुरेश्वरि ! । सर्वं
काव्यभवत् पूर्णं नास्ति भेदो महेश्वरि ! । अतः काशी
भवैत् काली निश्चितं नात्र संशयः । पञ्चक्रोशात्मिका काशी-

ब्रह्मतेजो मयी यिता । अर्द्धेन्द्रात्मिका देवि ! दृश्यते सर्वजा-
 तिभिः । इयं त्वमाकला काशी क्षयोदयविवर्जिता । तत्र
 विन्दु महादेवि ! मणिकर्ण विराजते । तच्चन्द्राद्युतमेवात्र गङ्गां
 जानोहि कामिनि ! । यानि कानि च तीर्थानि तत्र काव्यां
 महेश्वरि ! । सर्वे तदमृतं देवि ! जानोहि सुरसुन्दरि ! । ताम-
 सोमनिशं देवि ! शिरसा धारयाम्यहम् । अतो हि शङ्करत्वं मे
 निश्चितं सत्यमेव हि । तां कालीं शिरसाधाय पञ्चक्रोश-
 मयीं सदा । अहर्निशं पूजयामि परमानन्दवर्हितः । अतो-
 विश्वेश्वरत्वं मे सदैव नात्र संशयः । ब्रह्मविष्णुादिकानाञ्च य
 ईश्वरः सुरेश्वरि ! । विश्वेश्वरः स एव स्थान्नापरः परमेश्वरि ! ।
 केवलानन्दवान् भूत्वा पूजयामि परां सदा । तत्र तस्याः
 कृपा जाता वाच्यमाना शरीरिणाम् । देव्युवाच । भो देव ! पर-
 मानन्द ! ममानन्दः क्षतस्त्वया । अतः काश्यां मृतानां
 त्वमानन्दं देहि सर्वदा । ईश्वर उवाच ॥ इति श्रुत्वा
 वचस्तस्या मग्नाऽहममृतार्णवे । ददामि परमं ब्रह्म सुमूर्धोः
 कर्णगोचरे । वाराणस्यां सदा देवि ! स्थित्वा ध्यायन्
 परां शिवे ! । जले स्थले चान्तरीक्षे वाराणस्यां मृता-
 स्तु ये । ददामि परमं ब्रह्म तेषां हि कर्णगोचरे । हित्वा हि
 सकलं कर्म सुकृतं दुष्कृतं हि ते ॥ प्रयान्ति ब्रह्म निर्वाणं ममो-
 पदेशतः क्षणात् । तत्सर्वं सुकृतं कर्म दुष्कृतं वा महेश्वरि ! ।
 भवेद्ब्रह्म महाकाव्याः प्रसादाज्ज्ञानयोगतः । काशीलङ्गं हि
 यत्किञ्चित् काशी भवति तत्क्षणात् । काशीस्पर्शनमात्रेण
 काश्यान्तु मृत्युमेति सः । तज्जन्मनि महादेवि ! अथवा पर-
 जन्मनि सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव सुरेश्वरि ! । वज्र-
 तेजो ददित् तूलं स्पर्शमात्रात् क्षणं यथा । शूलो कर्म दहेत्काशी-
 तेजःस्पर्शात् क्षणात्तथा । तूलराशिं दहेद्ब्रह्मः किञ्चित्कालाद्

यथा शिवे ! । तथा दहेत्कर्मराशिं काशीजन्मैकतो नृणाम् ।
 काशीस्थानं पुण्यचयं किं वाहं कथयामि ते । अपि चेत् त्वत्स-
 मा नारी सत्त्वमः पुरुषोऽस्ति चेत् । अण्डजाः खेदजाश्चैव उद्भि-
 ज्जाश्च जरायुजाः । ते सर्वे मुक्तिमायान्ति काश्याच्चेद्भाग्यतो-
 मृताः । इयं वाराणसी देवि ! महातेजोमयी शुभा । युग्मेदा-
 ज्जनैरेव दृश्यते हि चतुर्विधा । कृते रत्नमयी काशी
 त्रेतायां स्वर्णजा स्मृता । द्वापरे सा शिलारूपा कलौ भूमिमयी
 शुभा । नातः परतरं क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते । सत्यं सत्यं
 महादेवि ! शपथेन वदामि ते । संसारबहुलो देवि ! मुक्तिमि-
 च्छति यः पुनः । सामेव शरणं गत्वा तिष्ठेत् काश्यां स
 यन्वितः । स एव पतितो ज्ञानो स एव कुलपातनः । प्राणान्ते-
 ऽपि महादेवि ! काश्या न निःसरेद् द्विजः । स एव परमो मूर्खः
 स एव कुलनाशनः । वृथैव मूर्खलोकेन काशीं प्राप्य
 त्यजेद् यदि । बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि काशीं लभेत्
 पुनः । तदा नैव त्यजेत् काशीं प्राणान्तेऽपि कदाचन ।
 अनायासेन संसारसागरं यस्तितीर्यति । स गच्छेत् स्वर्ग-
 केनापि मम वाराणसीं पुरीम् । अन्नं दद्यादन्नपूर्णां ज्ञानं
 दद्यात् सरस्वती । प्राणान्ते मुक्तिदाताहं काश्यान्व भावना
 किमु ॥ इन्द्रावनकाश्चरादिमाहात्म्यस्त्वत्र ग्रन्थगौरवभिया
 न लिखितम् । अन्येष्वैकीगिनीतन्त्रे पूर्वेखण्डे पञ्चदशपटला-
 दिषु तदन्वेष्यमिति ॥

अप्राणतोषण्यां भक्तिकाण्डाभिधानं सप्तपरिच्छेदान्वितं

पञ्चमकाण्डं समाप्तम् ॥

षष्ठस्य ज्ञानकाण्डस्य निर्वण्योऽत्र विधीयते । आदौ
 पञ्चमहायोगो यमादिस्तदनन्तरम् । षडङ्गयोगकाथनं

पक्ष
 बुद्धि-
 मपि
 णा-
 रूपः
 तसी
 शी ।
 द्वार-
 तीन-
 पाहं-
 ला-
 सो-
 ज-
 ति-
 मा-
 मते
 ल-
 दः
 यं
 म-
 त
 ।

यमानां मुख्यकौर्त्तनम् । नियमानां तथा मुख्यमासनं
 तदनन्तरम् । योगविद्या योगविघ्ना मठक्रिया ततः परम् ।
 प्राणायामस्य भेदश्च कुम्भकस्य ततः परम् । प्राणा-
 यामक्रियाकालाश्चत्वारः परिकीर्त्तिताः । श्रेष्ठमध्याधमत्वेन
 प्राणसिद्धेश्च लक्षणम् । अमोदकेन तेनैव तनुमार्जनजं फलम् ।
 नाडीशुद्धेश्च चिह्नानि कुम्भसिद्धिफलं ततः । वर्जनोयानि
 योगे च ततः सिद्धिकराणि च । अपथ्यपथ्ये योगस्य ततो-
 ऽवस्था मनोन्मनी । कुम्भकाः सप्तधा भिन्ना नेत्यादि तदनन्तरम् ।
 कर्माणि फलयुक्तानि धौल्यादीनि ततः परम् । साधका-
 भ्यासजफलं तद्विघ्नकौर्त्तनं ततः । घटावस्था तत्फलञ्च तद्विघ्नञ्च
 ततः परम् । ततश्च मुद्रादशकं सफलञ्च निरूपितम् । एतदाद्य-
 परिच्छेदसमापनमतः परम् । पृथ्वादिधारणं तस्य फलं
 ध्यानं ततः परम् । समाधिस्तस्यापि फलं प्राणायामफलान्त-
 रम् । तिथिभेदे वामदक्षनासावायुगतिक्रमः । विपरीतगते-
 र्दीर्घो निर्गमे चोपवेशने । वायोः कर्मविशेषे तु फलञ्च वाम-
 दक्षयोः । वायोः कर्मविशेषेऽपि फलं प्रश्ने च दिक्स्थितेः ।
 फलं पूर्णशून्यभेदादतिर्नाद्यास्तथैव च । अङ्गभेदे कार्यभेदे
 पञ्चभूतादयस्ततः । तेषां शुभाशुभे चैव तत्कालस्य निरूपणम् ।
 भूतज्ञानं तदवस्थाः पञ्च बाल्यादिभेदतः । तत्फलञ्च वारभेदे
 वामदक्षफलं ततः । दिगतिर्धमनौ वायौ स्वस्वनाडीफलं ततः ।
 विपरौतै वैपरौत्यं फलस्य तदनन्तरम् । बृहन्नाडीपदे यात्रा
 शुभदा वातवेदतः । यात्रापदानि च बृहन्नाडीहस्तस्य मार्ज-
 नम् । तत्फलं पूर्णरिक्ताङ्गभेदे कर्मनिरूपणम् । वामनासा-
 श्रितं कर्म दक्षनासाश्रितं तथा ॥ सुषुम्नाश्रितकार्याणि भूतरू-
 पादिवेदनम् । भूतगतिः पञ्चभूतभेदे कार्यस्य निषेयः । प्रश्नस्य
 निर्णयो भूतैः शुभाशुभनिरूपणम् । मूलादि चिन्ताविज्ञानं

भूतैस्तात्कालिकी तथा । अवस्थेन्दोः सिद्धिकालः पृथ्वावस्थानि-
रूपणम् । तत्त्वैर्नक्षत्रविज्ञानं निसर्गगतिनिर्णयः । गमनाद्यैर्ग-
तेर्भेदो वायोस्तत् न्यूनकारणम् । फलञ्च तद्दूर्द्धादौ श्वासभेदे
जयाजयौ । तत्त्वे नास्त्रस्य घटनं तत्त्वैर्युद्धे जयादिकम् । प्रवेश-
काले लाभादिर्हानिर्निसरणे तथा । शून्येन घातनिर्णयतिर्भूतेन
स्थाननिर्णयः । जयादिनिर्णयश्चैव वशीकरणमेव च । गर्भज्ञानं
वत्सरस्य शुभाशुभफलं ततः । निदानादिपरिज्ञानं रोगस्य निर्णय-
स्ततः । मृत्युजीवनविज्ञानं कालज्ञानं ततः परम् । वर्षत्रया-
दिविज्ञानं जीवनस्य स्वकस्य च । अरुन्धत्यादिविज्ञानमायु-
र्वृद्धिक्रिया ततः । स्वरज्ञानप्रशंसेति परिच्छेदद्वितीयकम् ॥
राजयोगप्रशंसा च तद्भेदस्तिथिसंख्यकः । भेदानां लक्षण-
ञ्चैव लक्ष्ययोगस्ततः परम् । तस्य पञ्चविधो भेदो राजयोगस्य
लक्षणम् । हटयोगश्च द्विविधो ज्ञानयोगस्तदन्तरम् । बाह्य-
लक्ष्यं तत्फलञ्चाकाशपञ्चकलक्षणम् । षोडशाधारनिर्णीति-
रष्टाङ्गविवृतिस्ततः । पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं पिण्डमध्ये जगत्-
स्थितिः । राजयोगसिद्धिफलं पञ्चसङ्केतमद्भुतम् । अव्यक्तादे-
र्गुणाश्चैव योगादेशस्ततः परम् । योगाधिकारी योगस्य सिद्धि-
कारणमेव च । योगभेदान्मन्त्रयोगो लययोगस्य विस्तृतिः ।
कालपुरुषविज्ञानं तत्फलं तदनन्तरम् । रसनासाधनं तस्य
फलं नानाविधं ततः । परिच्छेदद्वितीयस्य समाप्तिकीर्तनं ततः ।
स्थूलसूक्ष्मक्रमेणैव ब्रह्माण्डस्य निरूपणम् । सर्वदेवाश्च यो मेरुः
सत्यलोकस्तद्दूर्द्धतः । अधो रसातलं तस्य भुवनान्येवमेव च ।
आधारपद्मविस्तारः स्वाधिष्ठानस्य वर्णनम् । तत्र वैकुण्ठ-
गोलोकवर्णनं तदनन्तरम् । मणिपूरवर्णनञ्चानाहतस्य च
वर्णनम् । विशुद्धवर्णनं तस्मादाज्ञाख्यवर्णनं ततः । सहस्रार-
वर्णनञ्चाधो वक्त्रे गुरुदेवयोः । स्थितिबीजञ्च षट्चक्रप्रकारा-

न्त रवर्णनम् । परिच्छेदचतुर्थस्य समापनमिति स्मृतम् ।
 ज्ञानप्रकारं ज्ञानस्य द्वैविध्यं द्वैतवर्जितम् । ज्ञानं तत्फल-
 निर्देशोऽद्वैतज्ञानाकृतिस्ततः । तत्त्वज्ञानं तत्प्रशंसात्मनः
 साक्षित्वनिर्णयः । रथित्वञ्च रथादित्वं शरीरादेस्ततः परम् ।
 भोक्तृमुक्तत्वनिर्णीतिरुत्तमादिनिरूपणम् । ब्रह्मज्ञस्य ध्यान-
 पूजाद्यभावस्तदनन्तरम् । आत्मनिरूपणं ज्ञानं त्रिविधं ज्ञान-
 कारणम् । निर्वाणसाधकं कर्म शिवबीजनिरूपणम् । पाश-
 निरूपणं जीवात्माभिददर्शनं ततः । आत्मनो जन्ममरणाद्यभा-
 वदर्शनं पुनः । पिण्डपदादिनिर्णीतिस्तन्मन्त्रश्रवणजं फलम् ।
 विद्यातत्त्वं ब्रह्मविद्या प्रशंसार्जितपुण्यतः । ब्रह्मज्ञानं परमात्म-
 निर्णयस्तदनन्तरम् । भिक्षुनिष्ठैव सा विद्या ब्रह्मणो जगदु-
 द्भवः । ब्रह्मज्ञानप्राप्तिफलं ब्रह्ममन्त्रप्रशंसनम् । ब्रह्ममन्त्रोद्घृति-
 र्मन्त्रार्थचैतन्ये तदर्चना । ब्रह्मस्तोत्रं तत्त्ववचं तन्नैवेद्यफलं
 ततः । तदर्चकप्रशंसा च तन्मन्त्रस्य पुरस्कृत्या । अन्यान्यपि
 च वेद्यानि यथास्थानं मनोषिभिः । परिच्छेदपञ्चमस्य समा-
 पनमिति स्मृतम् । मात्रादिचक्रविंशञ्च बालादिचक्रमध्यगम् ।
 तस्य व्याख्यानमेतद्वि षष्ठच्छेदसमापनम् । सर्वतोभद्रचक्रञ्च
 तद्व्याख्या प्रक्रियायुता । चक्रं शतपदं तस्मात् तद्व्याख्या
 तदनन्तरम् । प्रश्नप्रवचने वाणी प्रणामो मन्त्र एव च । प्रश्नस्य
 कथने तस्य सङ्केतस्तदनन्तरम् । प्रस्तारचक्रं तस्यापि व्याख्यानं
 तदनन्तरम् । परिच्छेदसप्तमस्य समापनमिदं कृतम् । यथा-
 स्थानमन्यदपि ज्ञेयं धीमद्विरच तु ॥ इदं विस्तृतसप्तभिर्ज्ञान-
 काण्डं परिच्छेदरूपैः प्रसूनैः सुरम्यम् । बुधालोकातां गन्धसुगन्धो-
 ऽनुवारं फलं किन्तु गुर्वस्यलभ्यं नु विविद्धि । क्षमध्वं पण्डिता !
 दीर्घं परपिण्डोपजीविनः । ममाशङ्कादिकं सर्वं शोधं युष्मा-
 भिरुत्तमः ॥ आदेष्टुं सत्वरतया पुनरीक्षितुं नैतच्छब्दमुत्तम-

वचो रचितं ममेदम् । विज्ञापयानि सततं परिवीक्ष्य सर्वं
धीरा ! भवद्भिरतिसूक्ष्मधिया विशोध्यम् ॥

रुद्रजामले उत्तरखण्डे षट्त्रिंशत्पटले । यथा ॥ श्री आन-
न्दभैरव्युवाच ॥ त्रिगुणज्ञानविकलो न पश्यति दिवानिशम् ।
दिवा रात्रौ ज्ञानहेतौ न पश्यति कलेवरम् । इति कृत्या हि
मरणं नृणां जन्मनि जन्मनि । तज्जन्मक्षयहेतोश्च मम योगं
समभ्यसेत् । पञ्चामरामहायोगं कृत्वा स्यादमरो नरः । तत्-
प्रकारं शृणु प्राणवल्लभ ! प्रियदर्शन ! । तव भावेन कथये न
कुच वद शङ्कर ! । यदि नो कस्य निकटे कथ्यते योगसाधनम् ।
विघ्ना घोरा वसन्त्येव गात्रे योगादिकं कथम् । योगयोगा-
द्भवन्मोक्षस्तत्प्रकाशाच्च नाशनम् । अतो न दर्शयेद् योगं
यदीच्छेदात्मनो हितम् । कृत्वा पञ्चामरायोगं प्रत्यहं भक्ति-
संयुतः । पठेत् श्रीकुण्डलौदेवसहस्रनाम चाष्टकम् । महा-
योगी भवेन्नाथ ! श्वासिन नात्र संशयः । पञ्चामरायोगविद्या
सर्वविद्याप्रकाशिनी । कृत्वा पञ्चामरासिद्धिं ततोऽष्टाङ्गादि-
धारणा । आदौ पञ्चामरासिद्धिस्ततोऽल्पयोगसाधनम् । तत्-
प्रकारं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय । अहं जानामि संसारे
केवलं योगपण्डिता । तत्साक्षिणी ह्यहं नाथ ! भक्तानामुद-
याय च । इदानीं कथये तेऽहममरायोगसाधनम् । एवं
कृत्वा नित्यरूपी योगानामङ्कुरायते । योगकालेन पुरुषः
सिद्धिमाप्नोति निश्चितम् । पञ्चामराविधानानि क्रमेण शृणु
शङ्कर ! । नेतीयोगं हि सिद्धानां महाकफविनाशनम् । दन्ती-
योगं प्रवक्ष्यामि हृदयग्रन्थिभेदनम् । धौतीयोगं ततः पश्चात्
सर्वं मलविनाशनम् । नेतीयोगं हि परमं सर्वाङ्गोदरचालनम् ।
चालनं परमं योगं नाडीनां चालनं स्मृतम् । एवं पञ्चामरा-
योगं यमिनामतिगोचरम् । यमनियमकाले तु पञ्चामराक्रियां

यजेत् । अमरासाधनादेव अमरत्वं भवेद्वरम् । एतत्कारण-
 काले च तथा पञ्चामराशनम् । पञ्चामराभक्षणेन अमरी
 योगसिद्धिभाक् । तानि द्रव्याणि वक्ष्यामि तवार्थे परमेश्वर । ।
 येन होना न सिध्यन्ति कल्पकोटिशतेन च । एका तु अमरादूर्वा
 तस्या ग्रन्थिं समानयेत् । अन्या तु विजयादेवी सिद्धिरूपा
 सरस्वती । अन्या तु विल्वपत्रस्था शिवसन्तोषकारिणी । अन्य
 तु योगसिद्धार्थे निर्गुण्डी चामरा मता । अन्या तु कालतुलसी
 श्रोविणोः प्रियतोषणी । एताः पञ्चामरा ज्ञेया योगसाधन-
 कर्मणि । एतासां द्विगुणं ग्राह्यं विजयापत्रमुत्तमम् । ब्राह्मणी
 क्षत्रिया वैश्या शूद्रा सर्वत्र पूजिता । एतद्द्रव्याणि संगृह्य भक्ष-
 येच्चूर्णमुत्तमम् । तच्चूर्णभक्षसमर्थे एतन्मन्त्रादिपञ्चकम् ।
 पठित्वा भक्षणं कृत्वा नरो मुच्येत सङ्कटात् । ॐ हरे अमर-
 पुष्टे । त्वममृतोद्भवसम्भव ! । अमरं मां सदा भद्रे ! कुरुष्व
 त्वं हरप्रिये । ॐ दूर्वायै स्वाहा । इति दूर्वायाः ॥ पुनर्विजया-
 मन्त्रेण शोधयेत् सर्वकन्यकाः ॥ ओं संविदे ब्रह्म इत्यादि ॥
 ओं ब्राह्मण्यै नमः स्वाहा ॥ ओं सिद्धिमूलकरे ! देवीत्यादि ।
 अर्धे राजपुत्रवशङ्करि । राजकन्ये ! त्रिशूलिनि ! । ऐं क्षत्रियायै
 नमः स्वाहा । ओं अज्ञानेन्यनेत्यादि । ह्रीं वैश्यायै नमः
 स्वाहा । ओं नमस्यामीत्यादि । श्रीं शूद्रायै नमः स्वाहा ।
 ओं कायसिद्धिकरे ! देवि ! विल्वपत्रनिवासिनि ! । अमरत्वं
 सदा देहि शिवतुल्यं कुरुष्व माम् । ओं शिवदायै नमः स्वाहा ।
 ओं निर्गुण्डि ! परमेशानि ! योगानामधिदेवते ! । सा मां रक्षतु
 अमरे ! भावसिद्धिप्रदे ! नमः । ओं शोकापहायै नमः स्वाहा ।
 ओं विणोः प्रिये ! महामाये ! कालज्वालनिवासिनि ! । तुल-
 सि ! मां सदा रक्ष मामेकममरं कुरु । ओं ह्रीं श्रीं ऐं ह्रीं
 अमरायै नमः स्वाहा । पुनरेकत्र आहृत्य सर्वासां शोधनं

धरेत् । ओं अमृते ! अमृतोद्भवे ! इत्यादि । धेनुमुद्रां योनिमुद्रां
मत्स्यमुद्रां प्रदर्शयेत् । तत्त्वमुद्राक्रमेणैव तर्पणं कारयेद्बुधः ।
अमन्त्रकं सप्तवारं गुरुनाम्ना शिरेऽर्पयेत् । सप्तवारमिष्टदेव्या
नाम्ना मूर्ध्नि प्रदापयेत् । ततस्तर्पणमाकुर्व्यात् तर्पयामि
नमो नमः । एतद्वाक्यस्य पूर्वं तु दृष्टमन्त्रं समुच्चरेत् । परदेवतां
समुद्बृत्य सर्वाद्यप्रणवं स्मृतम् । ततो मुखे प्रजुहुयात् कुण्डानां
नामपूर्वकम् । ओं वद वदेत्यादि सर्वसत्त्ववशङ्करि । शत्रुकण्ठ-
विशूलिनि ! स्वाहा । एतदुक्त्वा आश्रमौ च वशी साधकसत्तमः ।
पञ्चामरारसानन्दः कुलाचारविधिप्रियः । स्थिरचेता भवेद्
योगो यदि पञ्चामरागतः ॥

दत्तात्रेयसंहितायां प्रथमाध्याये ॥ यमश्च नियमश्चैव
आसनञ्च ततः परम् । प्राणायामश्चतुर्थः स्यात् प्रत्याहारश्च
पञ्चमः । षष्ठौ तु धारणा प्रोक्ता ध्यानं सप्तममुच्यते ।
समाधिरेष्टमः प्रोक्तः सर्वपुण्यफलप्रदः । एवमष्टाङ्गयोगश्च
याज्ञवल्क्यादयो विदुः । कलसाद्यास्तथा सिद्धा हृष्टं कुर्यु-
स्तथा यथा ॥ निरुत्तरतन्त्रे चतुर्थपटले ॥ आसनं प्राण-
संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा । ध्यानं समाधिरेतानि योगा-
ङ्गानि वदन्ति षष्ठः । प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकी-
र्तितः । प्रत्याहारद्विषट्केन जायते धारणा शुभा । धारणा-
द्वादशप्रोक्तं ध्यानं ध्यानविशारदैः । ध्यानद्वादशकैरेव समा-
धिरेभिधौयते । यत् समाधी परं ज्योतिरुत्तरं विश्वतोमुखम् ।
तस्मिन् दृष्टे क्रिया काचिद् यातायातं न विद्यते ॥ दत्तात्रेय-
संहितायाम् । यमा ये दश सम्प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
लघ्वाहारस्तु तेष्वेको मुख्यो भवति नापरः । अहिंसा नियमेष्वेको
मुख्यो भवति नापरः । चतुरशीतिलक्षेषु त्वासनेषूत्तमं शृणु ।
आदिनाथेन सम्प्रोक्तं पद्मासनमिहोच्यते । उत्तानौ चरणौ

युर्वि-
मपि
कणा-
रूपः
हासी
श्री ।
हार-
वीन-
मार्द्ध-
ला-
श्री-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
म्हः
स्व-
क-
तु

कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः । ऊरुमध्ये तथोत्तानी प्राणी कृत्वा
 ततो दृशी । नासाग्रे विन्यसेदङ्गं दन्तमूलञ्च जिह्वया । उत्तो-
 ल्य चिवुकं वक्षः संस्थाप्य पवनं शनैः । यथाशक्त्या समाकृष्य
 पूरयेदुदरं शनैः । यथाशक्त्या समाकृष्य धारयेदुदरं शनैः ।
 यथाशक्त्या ततः पञ्चाद्रेचयेदुदरं शनैः । इदं पद्मासनं प्रोक्तं
 सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ग्रहजामले त्रयोदशपटले ॥ ऊर्वीरु-
 परि मेढ्रान्ते उभे पादतले तथा । पद्मासनं भवेदेतत् सर्वपाप-
 प्रणाशनम् । तथा । युवावस्थोऽपि वृद्धोऽपि व्याधितो वा
 शनैः शनैः । अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति योगे सर्वस्य तन्त्रता ।
 ब्राह्मणः श्रमणो वापि वृद्धो वाप्यहिताऽपि वा । कापालिको
 वा चार्वाकः श्रद्धया सहितः सुधीः । योगाभ्यासरतो नित्यं
 सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् । क्रियायुक्तः स सिद्धः स्यादक्रियस्य कथं
 भवेत् । शास्त्रस्य पाठमात्रेण कथं सिद्धिः प्रजायते । मुण्डो
 वा दण्डधारी वा काषायवसनोऽपि वा । नारायणवदो वापि
 जटिलो भस्मलेपनः । नमः शिवायवादी वा बह्वर्चापूजको-
 ऽपि वा । स्थानडादशपूज्यो वा बहुवत्सलभाषितः । क्रिया-
 हीनोऽथवा क्रूरः कथं सिद्धिमवाप्नुयात् । न वेशधारणं सिद्धेः
 कारणं न च तत्तथा । क्रियैव कारणं सिद्धेः सत्यमेतत्
 साङ्गते । शिश्रोदरार्थं योगस्य कथं वा वेशधारिणः । अन्न-
 पानविहीनास्तु वञ्चयन्ति जनान् किल । उच्चावचैर्विप्रलम्बै-
 र्यजन्ते क्लृप्तमानवाः । योगिनो वयमित्येवं सुखभोगपरायणाः ।
 शनैस्तथाविधानज्ञानं योगाभ्यासविवर्जितान् । कृतार्थान्
 वचनैरेव वर्जयेद्देशधारिणः । एते चाविष्टभूताः स्युर्योगाभ्यासस्य
 सर्वदा । वर्जयेत्तान् प्रयत्नेन ईदृशी सिद्धिदा क्रिया । प्रथमा-
 भ्यासकालेषु प्रवेशस्य सदा मुने ! । आलस्यं प्रथमो विघ्नो द्विती-
 यस्तु प्रकथ्यते । पूर्वोक्तधूर्त्तगोष्ठी च तृतीयो मन्त्रसाधनम् ।

चतुर्थो धातुवादश्च पञ्चमः पापवादकः । एवं बहुविधा विघ्ना
मृगदृष्ट्यासमा मुखे । स्थिरा मनसि जायन्ते तांस्तु ज्ञात्वा
त्यजेत् सुधीः । तथा । सुशोभनं मठं कुर्यात् सूक्ष्मद्वारन्तु
निर्व्रणम् । सुष्ठु लिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः । दिने
दिने सुसंमृष्टं सम्यार्जन्याप्यतन्द्रितैः । वासितञ्च सुगन्धेन
धूपितं गुग्गुलादिभिः ॥ ग्रहजामले द्वादशपटले ॥ ईश्वर
उवाच ॥ हटविया परा गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम् ।
देवी वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशिता । सुवाह्ये धार्मिके
देशे सुभिन्ने निरुपद्रवे । एकान्तं मठमध्ये च स्थातव्यं हट-
योगिनाम् । स्वल्पद्वारमरन्ध्रगर्तपिटकं नात्युच्चनीचायतं
सम्यगोमयसान्द्रलिप्तममलं निःशेषवाह्योज्झितम् । बाह्ये
मण्डपकूपवेदिरचितं प्राकारसंवेष्टितं प्रोक्तं योगमठस्य लक्षण-
मिदं संसारनिस्तारिणि ! ॥ एवंविधमठे स्थित्वा सर्वचिन्ता-
विवर्जितः । गुरूपदिष्टमार्गेण हटयोगं समभ्यसेत् ॥ दत्ता-
त्रेयसंहितायाम् ॥ मलमूत्रादिभिर्दोषैरष्टादशभिरेव च । वर्जि-
तो दारसम्बन्धं वस्त्रं वाऽजिनमेव च । नान्यत्रास्तरणासीनः
परशङ्काविवर्जितः । तस्मिन् शस्तं समास्तीर्य आसनं विष्ट-
रादिकम् । तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासनसमन्वितः । सम-
कायः प्राञ्जलिश्च प्रणम्य चैष्टदेवताम् । ततो दक्षिणहस्तस्या-
प्यङ्गुलेन तु पिङ्गलाम् । निरुध्य पूरयेद्वायुमिड्या तु शनैः
शनैः । यथाशक्त्या निरोधेन ततः कुर्याच्च कुम्भकम् । तत-
स्त्यजेत् पिङ्गलया शनैरेव न वेगतः । पुनः पिङ्गलयाकृष्य
पूरयेद्दुदरं शनैः । धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेन्भारुतं शनैः ।
यथा त्यजेत्तयापूर्य्य धारयेदविरोधतः । एवं प्रातः समासीनः
कुर्याद्विंशतिकुम्भकान् । कुम्भकः सहितो नाम सर्वग्रहविव-
र्जितः । मध्याह्नेऽपि तथा कुर्यात् पुनर्विंशतिकुम्भकान् ।

एवं सायं प्रकुर्वीत पुनर्विंशतिकुम्भकान् । कुर्वीत रैककुम्भाभ्यां
 सहितान् प्रतिवासरम् । कुर्यादेवं चतुर्वारमनालस्यो दिने
 दिने । एवं मासत्रयं कुर्यान्नाडीशुद्धिस्ततो भवेत् ॥ ग्रहजामले
 त्रयोदशपटले ॥ प्राणायामस्त्रिधा प्रोक्तो रैककुम्भकपूरकैः ।
 सहितः केवलश्चेति कुम्भको द्विविधो मतः । रैचश्चापूर्य्य यः
 कार्यः स वै सहितकुम्भकः । यावत्केवलसिद्धिः स्यात् सहितं
 तावदभ्यसेत् । रैचकं पूरकं त्यक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् । प्राणा-
 यामोऽयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः । गुरुपदिष्टमार्गेण प्राणा-
 यामं समाचरेत् । यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवितमुच्यते ।
 मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निबन्धयेत् । मलाकुलासु
 नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः । कथं स्यात्तन्मलौभावः काय-
 शुद्धिः कथं भवेत् । शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम् ।
 तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः । प्राणायामं ततः
 कुर्यान्नित्यं सात्त्विकया धिया । तथा सुषुम्नापार्श्वस्था मलाः
 शोषं प्रयान्ति हि । बद्धपद्मासनो योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
 धारयित्वा यथाशक्ति पुनः सूर्य्येण रैचयेत् । प्राणं सूर्य्येण
 चाक्षय्य पूरयेदुदरं शनैः । विधिवत् कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण
 रैचयेत् । येन त्यजेच्च तेनैव पूरयेदनिरोधतः । रैचयेच्च ततो-
 ऽन्येन रैचयेच्च न वेगतः । चन्द्रेण वामनासया सूर्य्येण दक्षिणना-
 सया इत्यर्थः । प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यथा रैचयेत्
 पीत्वा पिङ्गलया समीरणमथो बद्धा त्यजेदामया । सूर्याचन्द्र-
 मसोरनेन विधिना विम्बद्वयं ध्यायतः शुद्धा नाडिगणा भवन्ति
 यमिनो मासत्रयादूर्ध्वतः ॥ प्रातर्मध्यन्दिनं सायं मध्यरात्रे च
 कुम्भकान् । चतुरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत् । प्राणा-
 यामे महाधर्मो योगिनो मोक्षदायकः । प्राणायामो दिवा-
 रात्री देवि । जलं परित्यजेत् । अधमे द्वादशौ मात्रा मध्यमे

द्विगुणा स्मृता । उत्तमे त्रिगुणा ज्ञेया प्राणायामस्य निर्णये ।
कनीयसि भवेत् स्वेदः कम्पो भवति मध्यमे । उत्तिष्ठत्युत्तमे
प्राणी बद्धपद्मासनो मुहुः । जलेन श्रमजातेन गात्रमार्जन-
माचरेत् । दृढतालयुता दीप्तिस्तेन गात्रस्य जायते । यदा तु
नाडीशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि वाञ्छतः । जायन्ते योगिनो
देहे तानि वक्ष्याम्यशेषतः । शरीरलघुता दीप्तिर्जठराग्नि-
विवर्द्धनम् । कुशत्वञ्च शरीरस्य तस्य जायेत निश्चितम् । पूर्वोक्त-
काले कुर्वन्ति परमाभ्यासमेव च । ततः परं यथेष्टन्तु शक्तिः
स्याद्वायुधारणे । यथेष्टधारणाद्वायोः सिद्धिः कुम्भस्य केवला ।
केवले कुम्भके सिद्धे रेचपूरकवर्जिते । न तस्य दुर्लभं किञ्चित्
त्रिषु लोकेषु दिद्यते ॥

अथ कुम्भकसिद्धिफलम् ॥ प्रस्वेदो जायते पूर्वं मर्दनं
तेन कारयेत् । ततस्तु धारणाद्वायोः क्रमेणैव शनैः शनैः ।
कम्पो भवति देहस्य आसनस्थस्य योगिनः । ततोऽधि-
कतराभ्यासाद्दुर्दुरी जायते ध्रुवम् । यथैव दुर्दुरी गच्छे-
दुत्पत्योत्प्लुत्य भूतले । पद्मासनस्थितो योगी तथा गच्छ-
ति भूतले । ततोऽधिकतराभ्यासाद्भूमित्यागश्च जायते । पद्मा-
सनस्थितो वासौ भूमिमुत्सृज्य वर्त्तते । निराधारो विचित्रं
हि तदा सामर्थ्यमुद्वहेत् । अल्पं वा बहु वा भुक्त्वा योगौ न
व्यथते क्वचित् । अल्पमूत्रपुरीषे तु अल्पनिद्रा च जायते ।
क्रिमयो हृश्चिका नानास्वेदो दुर्गन्धता तनोः । एतानि
सर्वख्यातस्य न जायते कदाचन । अभ्यासकाले प्रथमे शस्तं
क्षीराज्यभोजनम् । ततोऽभ्यासे स्थिरौभूते न तादृङ्गिनियमग्रहः ।
यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेदृश्यः शनैः शनैः । तथैव सेवितो
वायुरन्यथा हन्ति साधकम् । प्राणायामेण युक्तेन सर्वरोगक्षयो
भवेत् । अयुक्ताभ्यासयोगिनः सर्वरोगसमुद्भवः । हिक्का श्वासश्च

८६३

युर्वि-

मपि

हणा-

रूपः

हासी

थी ।

हार-

वीन-

पाद-

ला-

सो-

ज-

ति-

ला-

सते

ल-

द्वः

यं

ह-

स-

कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदना । भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य
व्यतिक्रमात् ॥ इति वायुव्यतिक्रमदोषः ॥

दत्तात्रेयसंहितायाम् ॥ तथा वर्ज्यानि वक्ष्यामि योगविघ्न-
कराणि च । लवणं सर्षपञ्चान्नमुष्णं रुक्षञ्च निन्दकम् । अतीव
भोजनं त्याज्यं स्त्रिया सङ्गमनं बह्व । अग्निसेवा तु सन्ध्याज्या
धूर्तगोष्ठो विशेषतः ॥ ग्रहजामले । अत्याहारः प्रवासश्च
प्रज्वलो नियमग्रहः । जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षडभिर्योगः प्रण-
श्यति ॥ इति वर्जनौयानि ॥

उल्लाहान्निश्चयाद्द्वैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च साहसात् । जनसङ्ग-
परित्यागात् षडभिर्योगो हि सिध्यति । तथा । कटुस्त्वक्तित्त-
लवणोष्णहरीतशाकाः सौवीरतैलबहुसर्षपमत्स्यमद्याः । आज्ञा-
दिमांसदधितक्रकुलत्थकोलाः पिण्याकहिङ्गुलसुनादिमपथ्य-
मस्मिन् ॥ भोजनमहितं विद्यात् पुनरप्युष्णोक्तं भोज्यम् ।
अतिलवणाशनपललकन्दशाकोत्कटं दुष्टम् ॥ वर्जयेद् दुर्ज-
नप्रीतिं वज्जितापस्य सेवनम् । प्रातः स्नानोपवासादि काय-
क्षेत्रविधिं तथा ॥ इत्यपथ्यानि ॥

तथा । गोधूमशालिकलाययवषष्टिकान्नं क्षीराज्यखण्ड-
नवर्नोत्तसितामधूनि । शुण्ठीकणाकणफलादिकपञ्चशाकं दुग्धा-
दिदिव्यमुदकञ्च यमौन्द्रपथ्यम् ॥ मिष्टं सुमधुरं स्निग्धं
रस्यं धातुप्ररोहणम् । मनोऽभिलषितं भोज्यं योगी भोजन-
माचरेत् ॥ इति पथ्यानि ॥

दत्तात्रेयसंहितायाम् ॥ उपायञ्च प्रवक्ष्यामि शीघ्रं योगस्य
सिद्ध्ये । क्षीरं घृतञ्च मिष्टान्नं मिताहारश्च शस्यते । षट्कर्म-
भिर्गतस्थौल्यः कफमेदोमलार्तिगः । प्राणायामं ततः कुर्याद-
नायासेन सिध्यति । प्राणायामैरेव सर्वे विशुध्यन्ति मलाः प्रिये !
सेदञ्च आदिकं न्यस्य कर्मषट्कं न सम्मतम् । सुमनस्कात्म-

को भावो यदि वायुं समभ्यसेत् । षट्कर्मयोगमाप्नोति पवना-
भ्यासतत्परः । ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः ।
अतः सिद्धिं गतास्ते च तस्मात्पवनमभ्यसेत् । यावदुबद्धो मरु-
द्देहे तावच्चित्तं निराशयम् । त्राटकच्चेद्भुवोर्मध्ये तावत्काल-
मयं कुतः । विधिवत् प्राणसंरोधान्नाडीचक्रे विशोषिते । सुषु-
म्नावदनं भित्त्वा मुखाद्विशति मारुतः । मारुते मध्यसञ्चारे
मनःस्थैर्यं प्रजायते । यो मनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था मनो-
न्मनी । तत्सिद्धये विशेषज्ञश्चित्तान् कुर्वीत कुम्भकान् । विचि-
तकुम्भकाभ्यासाद्विचित्रां सिद्धिमाप्नुयात् ॥ अथ त्राटकम् ॥
निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं प्रयत्नतः । अश्रुसम्पातपर्यन्तं
त्राटकं तच्चहेस्वरि ! । यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटिका ॥
विचित्तकुम्भकास्तु । सूर्यभेदनमुड्डाख्यं तमा शीत्कारशीतली ।
भस्त्रिका भ्रामरौ मूर्च्छा प्लावनी सप्त कुम्भकाः । आदौ सूर्यभे-
दनम् ॥ आसने सुखदे योगी बद्धा मुक्तासनं ततः । दक्षना-
द्या समाकृष्य वङ्गस्थं पवनं शनैः । आकेशाग्रान्मखाग्राद्वा
निरोधावधि कुम्भयेत् । ततः शनैः सव्यनाद्या रेचयेत् पवनं
सुधीः ॥ अस्य फलम् ॥ कपालशोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोष-
घ्नम् । पुनः पुनरिदं कार्यं सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥ १ ॥ अथ
उड्डाख्यम् ॥ मुखं संयम्य नासाभ्यां चाकृष्य पवनं शनैः ।
यथा लगति कण्ठान्ते हृदयावधि सखनः । पूर्ववत् कुम्भयेत्
प्राणं रेचयेदिड्या ततः ॥ फलम् ॥ श्लेष्मरोगहरश्चैतदनलै-
र्दीप्तवन्धनम् । नाडीजलोदराधातुगण्डादोषविनाशनम् ।
शच्छता तिष्ठता कार्यमुड्डाख्यं कुम्भकान्विदम् ॥ २ ॥ अथ
शीत्कारः ॥ शीत्कारश्च सदा वक्त्रे प्राणे चैव विजृम्भकम् । एव-
मभ्यासयोगिन कामदेवो द्वितीयकः ॥ फलम् ॥ योगिनीचक्र-
भासाद्य सृष्टिसंहारकारकः । न क्षुधा न तृष्णा निद्रा नैव

युर्वि-
रमपि
कथा-
रूपः
हासी
शी ।
हार-
वीन-
गार्ह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
न्द्रः
खं
ह-
त्

मूर्च्छा प्रजायते । भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च सर्वोपद्रववर्जितः ।
 अनेन च विना सत्यं योगीन्द्रो भूमिमण्डले । रसनातालुमूलने-
 यः प्राणं सततं पिबेत् । यन्नाद्रूढं भवेत् सिद्धिः सर्वरोगक्षयो
 भवेत् ॥ ३ ॥ अथ शीतली ॥ जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत्
 कुम्भकादितः । शनैस्तु घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेदनिलं प्रिये ! ॥
 फलम् ॥ गुल्मप्लीहादिकान् दोषान् ज्वरं रेतःक्षयं सुधाम् ।
 लृणाञ्च शीतली नाम कुम्भकोऽयं निहन्ति वै ॥ ४ ॥ अथ
 भस्त्रिका ॥ सम्यक् पद्मासनं बद्धा समग्रीवोदरं प्रिये ! । मुखं
 संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन, रेचयेत् । तथैव स्वशरीरस्थं पवनं
 चालयेत् स्फुटम् । तथा लगति हृत्कण्ठकपाले श्वसनस्ततः ।
 वेगेन पूरयेत् किञ्चित् हृत्पद्मावधि मारुतम् । पुनर्विरेचयेत्तद्वत्
 पूरयेच्च पुनः पुनः । यथैव लौहकारस्थ भस्त्रां वेगेन चालयेत् ।
 तथैव स्वशरीरस्थं पवनं चालयेच्छनैः । यदा श्मो भवेत्
 पूर्णो बन्धने च तदा लघु । कारयेन्नासिकामध्यं तर्जनीभ्यां
 विना दृढम् । कुम्भकं पूर्ववत् कृत्वा रेचयेदिड्यानिलम् ॥
 फलम् ॥ वातपित्तश्लेष्महरं शरीराग्निविवर्द्धनम् । कुण्डली-
 रोधनञ्चक्रे भारघ्नं शुभदं शुचि । ब्रह्मनाडीमुखे संस्थकफघ्नं
 मलनाशनम् । सम्यङ्मात्रं समुद्भूतं ग्रन्थितयविभेदनम् । विशे-
 षेणैव कर्त्तव्यं भस्त्राख्यं कुम्भकं त्विदम् ॥ ५ ॥ अथ भ्रामरी ॥
 वेदोद्घोषं पूरकं भृङ्गनादं भृङ्गीनादं रेचकं मन्दमन्दम् । योगी-
 न्द्राणमिवमभ्यासयोगाञ्चित्ते जाता काचिदानन्दवल्ली ॥ ६ ॥
 अथ मूर्च्छा ॥ पूरकान्ते गाढतरं बद्धा जालन्धरं शनः । रेचये-
 न्मूर्च्छनाख्योऽयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा ॥ ७ ॥ अथ प्लावनी ॥
 अन्तःप्रवर्तिताधारमरुता पूरितोदरम् । साक्षात्पयस्यगाधि-
 ऽपि भ्रुवते पद्मपत्रवत् ॥ ८ ॥

रुद्रजामले उत्तरखण्डे ॥ नेतीयोगविधानानि शृणुष्व

वीरपूजितः ।। येन सर्वमस्तकस्थकफानां दाहनं भवेत् ।
सूक्ष्मसूत्रं दृढतरं प्रदद्यान्नासिकाविले । मुखरन्ध्रे समा-
नीय सन्ध्यायैनं समाश्रयेत् । पुनः पुनः सदा योगी
यातायातेन घर्षयेत् । क्रमेण वर्धनं कुर्यात् सूत्र-
स्य परमेश्वरः ।। नेतीयोगेन नासाया रन्ध्रं निर्मलकं भवेत् ।
वायोर्गमनकाले तु महासुखमिति प्रभोः ॥ १ ॥ दन्तीयोगं
ततः पश्चात् कुर्यात् साधकसत्तमः । दन्तधावनकाले तु
योगमेतं प्रकाशयेत् । दन्तधावनकाष्ठन्तु सार्द्धहस्तैकसम्भ-
वम् । नातिस्थूलं नातिसूक्ष्मं नवीनं नस्त्रमुत्तमम् । अपक्वं
यन्नतो ग्राह्यं मृणालसदृशं तरुम् । गृहीत्वा दन्तकाष्ठं तत्
प्रातःकाले प्रभक्षयेत् । दन्तकाष्ठाग्रभागञ्च कनिष्ठाङ्गुलिपर्व-
च । एवं दन्तावलीभ्याञ्च चर्वणं सुन्दरश्चरेत् । तत् प्रक्षाल्य
च नीरेण शनैर्निर्गममाचरेत् । शनैः शनैः प्रकर्तव्यं कायवाक्-
चित्तशोधनम् । यावन्न याति काष्ठाय नाभिमूले त्वनाकुलम् ।
तावत् सूक्ष्मतर्गं ग्राह्यमवश्यं प्रत्यहश्चरेत् । हृदये जलचक्रञ्च
यावत् खण्डं न जायते । तावत्कालं सर्वदिने प्रभाते रद-
साधनम् । हृदये कफभाण्डस्य खण्डनं जायते ध्रुवम् । पव-
नागमने सौख्यं प्राप्नोति योगनिर्भरम् । खेचरत्वं लवणजमस्त्र-
त्वं कुम्भकोद्भवम् । मिष्टत्वं शाकदध्यन्नं द्विवारं रात्रिभोज-
नम् । अवश्यं योजयेद् योगी यदि योगमिहेच्छति । एक-
भागं स्वस्वबीजं द्विभागं तण्डुलं मतम् । उत्तमं पक्वमाहृत्य
घृतदुग्धेन भक्षयेत् । अथवा केवलं दुग्धं तर्पणं कारयेद्बुधः ।
कुण्डलीं कुलरूपाञ्च दुग्धेन परितर्पयेत् । कुण्डलीतर्पणं
योगी यदि जानाति शङ्करः ।। अनायासेन योगी स्यात्
स ज्ञानीन्द्रो भवेद् ध्रुवम् ॥

सप्तत्रिंशत्पटले ॥ आनन्दभैरव्युवाच ॥ धीतीयोगं प्रव-

श्यामि यत् कृत्वा निर्मलो भवेत् । अत्यन्तगुह्यं योगञ्च समा-
 तिक्कारणं नृणाम् । यदि नो कुरुते योगं तदा मरणमाप्नुयात् ।
 धीतोयोगं विना नाथ । कः सिध्यति महीतले । सूक्ष्मात्
 सूक्ष्मतरं वस्त्रं द्वाविंशद्वस्तमानतः । एकद्वस्तक्रमेणैव यः
 करोति शनैः शनैः । यावद्द्वाविंशद्वस्तञ्च तावत्कालं क्रियाञ्चरेत् ।
 एतत्क्रियाप्रयोगेण योगी भवति तत्क्षणात् । क्रमेण मन्त्री
 सिद्धः स्यात् कालजालं वशं नयेत् । एतन्मध्ये चासनानि शरीर-
 स्थानि चाचरेत् । दृढासने योगसिद्धिरिति तन्त्रार्थनिर्णयः ।
 सिद्धे मनौ परावाप्तिः पञ्चयोगासनेन च । पार्श्वं चाष्टाङ्गुलं
 वस्त्रं दौर्घं द्वाविंशदीश्वरः । एतत् सूक्ष्मं सुवसनं गृहीत्वा
 कारयेद् यती । जितेन्द्रियः सदा कुर्यात् ज्ञानध्याननिषेवणम् ।
 अनाचारेण हानिः स्यादिन्द्रियाणां बलेन च । महापातक-
 मुख्यानां सङ्गदोषेण हानयः । सम्भवन्ति महादेव ! तव
 योग्यं सुकर्म च । ब्रह्मो वा यौवनस्थो वा बालो वा यत्र तत्र
 वा । एकवर्णाद्दीर्घजीवो स्यादमरो लोकवल्लभः । मन्त्रसिद्धि-
 रिष्टसिद्धिः स सिद्धीनामधीश्वरः । शनैः शनैः सदा कुर्यात्
 कालदोषविनाशनम् । हृदयग्रन्थिभेदेन सर्वावयववर्द्धनम् ।
 धीतोयोगोद्भवं कामं महामरणकारणम् । तस्य त्यागं यः
 करोति सदैव देवविक्रमः । धीतोयोगानन्तरं हि नेङ्गो-
 कर्म चाचरेत् । नेङ्गोयोगमात्रेण आसने नेङ्गोपमः ।
 नेङ्गोसाधनादेव चिरजीवी निरामयः । तत्कारणं प्रवक्ष्यामि
 सावधानाऽवधारय । भुक्ता भुक्षान्नपक्वञ्च वारैकं प्रतिपालयेत् ।
 प्रतिपालयेत् खोदरञ्च कठिनाशाविवर्जितः । पुनः पुनश्चाल-
 नञ्च कुर्यात् खोदरमध्यकम् । कुलालचक्रवत् कुर्याद् भ्रमण-
 खोदरस्य च । सर्वाङ्गचालनादेव कुण्डलीयत्तिचालनम् । चाल-
 नात् कुण्डलीदेव्याश्चेतना सा भवेत् प्रभो । एतस्यानन्तरं

देव ! चालनं परिकीर्तितम् । नाडीनां चालनादेव सर्वविद्या-
निधिर्भवेत् । वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य पञ्चभूतस्य सिद्धिमाक ।
मुण्डासनं हि सर्वत्र सर्वदा कारयेद्बुधः । ऊर्ध्वपञ्चासनं कृत्वा
अधोहस्ते जपं चरेत् । तदा त्रिदिनमाकर्तुं समर्थो मुण्डिका-
सनम् । तदा हि सर्वनाद्यश्च वशोभूता न संशयः । नाडीचाल-
नयोगेन सिद्धिमाप्नोति साधकः । नेङ्गो यो न जानाति
स कथं कर्तुमुद्यतः । स धीरो मानसचरो मतिमान् स जिते-
न्द्रियः । यो नेङ्गोयोगसारं कर्तुमुद्यमपारगः । स चावश्यं
चालनञ्च कुर्याद्वाद्यादिसाधनम् । नेङ्गोयोगमार्गेण नाडी-
चालनतत्परः । भवत्येव महाकाल ! राजराजेश्वरो यथा ।
केवलं प्राणवायोश्च धारणात् चालनं भवेत् । विना चालन-
योगेन देहशुद्धिर्न जायते । चालनं नाडिकादीनां कफपित्ता-
दिनाशनम् । करोति यत्नतो योगी मुण्डासनानिलाशनात् ।
वायुग्रहणमेवं हि नेङ्गोवशकालके । न कुर्यात् केवलं नाथ !
अन्यकाले सदाचरेत् । यावन्नेङ्गो न जानाति तावद्वायुं
न सम्प्रेषेत् । बहुतरं न संघ्राह्यं वायोरोगमलादिकृत् । केवलं
श्वासगणनं यावन्नेङ्गो न सिध्यति । पञ्चामरासाधनाच्च पञ्च-
वायुवशो भवेत् ॥

ग्रहजामले ॥ मेदःश्लेष्माधिकः पूर्वं षट् कर्माणि समा-
चरेत् । अन्यथा नाचरेत्तानि दोषाणामप्यभावतः । धौती
च गजकरिणो वस्तो लौली नतो तथा । कपालभाती
चैतानि षट् कर्माणि महेश्वरि ! । कर्मषट्कमिदं गोप्यं
घटशोधनकारणम् । विचित्रगुणमाधाय पूज्यते योगिपुङ्गवः ॥
तत्र धौती । चतुरङ्गुलविस्तारं हस्तपञ्चदशेन तु । गुरुपदि-
ष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् । ततः प्रत्याहरेच्चैतत् चालनं
धौतकर्म तत् । कासः श्वासः प्लीहा कुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः ।

युर्वि-
मपि
कथा-
रूपः
हासी
शी ॥
हार-
वीन-
पार्श्व-
ला-
सी-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
दः
यं
त-
त्

धौतीकर्मप्रसादेन शुध्यन्ते च न संशयः ॥१॥ अथ गजकरिणी ॥
 उदरगतपदार्थमुद्धमन्ती पवनमपानमुदीर्य कण्ठकाले । क्रम-
 परिचयस्य पायुमार्गाङ्गजकरिणीति निगद्यते सा ॥२॥ अथ वस्ती ।
 नाभिनिम्नजले पायुं न्यस्य चलोत्कटासनम् । आधारानञ्जनं
 कुर्यात् क्षालनं वस्तिकर्म तत् । गुल्मप्लीहोदरा रीगा वात-
 पित्तकफोद्भवाः । वस्तिकर्मप्रभावेण सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
 धात्विन्द्रियान्तःकरणप्रसादं दद्याच्च कान्तिं दहनप्रदीप्तिम् ।
 अशेषदोषोपचयं निहन्त्यादभ्यस्यमानं जनवस्तिकर्म ॥ ३ ॥ अथ
 लौली ॥ भूम्यादावतिवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः । नतांसो
 भ्रामयेदेषा लौली स्यात् परमेश्वरि ॥ फलम् ॥ मन्दाग्निसन्दी-
 पनपाचकादिसन्दीपकानन्दकरी सदैव । अशेषदोषामय-
 शोषणी च हठक्रिया मौलिरियञ्च लौली ॥ ४ ॥ अथ नेती ॥
 सूत्रं वितस्तिमात्रन्तु नासानाले प्रवेशयेत् । मुखेन गणयेच्चैषा
 नती स्यात् परमेश्वरि ॥ फलम् ॥ कपालशोधनी कण्ठ्या
 दिव्यदृष्टिप्रदायिनी । य ऊर्ध्वं जायते रोगो नमयत्याशु तं
 नेती ॥ एवञ्च नेती नेतीति नाममात्रभेदः । नेती तु पूर्व-
 मुक्ता ॥ ५ ॥ अथ कपालभाती ॥ भस्त्रेण लौहकारे च कर्ण-
 पूरौ ससम्भ्रमौ । कपालभाती विख्याता कफदोषविनाशिनी ॥
 इति कपालभाती ॥ ६ ॥

दत्तात्रेयसंहितायाम् ॥ ततोऽधिकतराभ्यासादुबलमुत्प-
 द्यते भृशम् । येन भूचरसिद्धिः स्याद् भूचराणां जये-
 क्षमः । व्याघ्रो लुलापो वन्यो वा ऋक्षो वा गज एव वा ।
 सिंहो वा स्मियते तेन योगिनो हस्तताडनात् । कन्दर्पस्य
 यथा रूपं तथा तस्यापि योगिनः । तस्मिन् काले महाविघ्नो
 योगिनः स्यात् प्रमादतः । तद्रूपवशगा नार्थः काङ्क्षन्ते
 तस्य सङ्गमम् । यदि सङ्गं करोत्येव विन्दुस्तस्य विनश्यति ।

प्राणान्नयो विन्दुहीनादसामर्थ्यं जायते । तस्मात् स्त्रीणां सङ्गवर्जं कुर्यादत्यन्तमादरात् । योगिनस्तस्य सिद्धिः स्यात् सततं विन्दुधारणात् । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रस्यो विन्दुर्हि योगिना । ततो रहस्यमाविष्टः प्रणवं ध्रुतमात्रया । जपेत् पूर्वाजितानां हि पापानां नाशहेतवे । सर्वविघ्नहरश्चायं प्रणवः सर्वदोषहा । एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसम्भवा । ततो भवेद् घटावस्था पवनाभ्यासिनः सदा । प्राणापानौ मनो-वायु जीवात्मपरमात्मकौ । अन्योन्यस्याविरोधेन एवं सङ्घटते यथा । तद्वद् घटद्वयावस्था प्रसिद्धा योगिनां स्मृता । तत्र चिह्नानि यानि स्युस्तानि वक्ष्यामि कानिचित् । पूर्वं यः कथितोऽभ्यासश्चतुर्धा तं परित्यजेत् । दिवा वा यदि वा रात्रौ मासमात्रं समभ्यसेत् । एकवारं प्रतिदिनं कुर्यात् केवलकुम्भकम् । प्रत्याहारो हि एवं स्यादेवं कुर्युर्हि योगिनः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत् प्रत्याहरते स्मृष्टम् । योगो कुम्भक-मास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते । यद्यत् पश्यति चक्षुर्भ्यां तत्तदात्मनि भावयेत् । यद्यत् शृणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मनि भावयेत् । जिह्वया यद्रसयति तत्तदात्मनि भावयेत् । त्वचा यदङ्गं स्पृशति तत्तदात्मनि भावयेत् । एवं ज्ञानेन्द्रियाणां हि तत्संख्याभिस्तु सङ्गयेत् । यामं यामं प्रतिदिनं योगी यत्नादतन्द्रितः । तदा विचित्रसामर्थ्यं जायते योगिनो ध्रुवम् । दूर-श्रुतिर्दूरदृष्टिः क्षणादूरगतिस्तथा । वाक्सिद्धिः कामचारवं तथाऽदृश्यपदं भवेत् । मलमूत्रोपलेपेन लौहानां स्पर्शता तथा । खेचरत्वं तथा स्याच्च सतताभ्यासयोगतः । तदा बुद्धिमता भाव्यं योगिना योगसिद्धये । एते विघ्ना महासिद्धौ न रमन्तेषु बुद्धिमान् । न शीलयेत् कस्मैचित् स्वसामर्थ्यं हि सर्वदा । कदाचिद्दर्शयेन्नर्थो भक्तियुक्ताय वा पुनः । यथा मूर्खो यथा

८६३

युधि-
रमपि
कथा-
रूपः
हासी
शी ।
हार-
वीन-
पाद-
ला-
सी-
ज-
ति-
ला-
पते
ल-
दः
अं
त-
त

मूढो यथा वधिर एव वा । तथा वर्त्तंत लोकेषु स्वसामर्थ्यस्य
 गुप्तये । नोचेत् शिष्या हि बहवो भवन्त्येव न संशयः । स्वस्व-
 कार्थेषु योगीन्द्रं प्रार्थयन्ते जनाः सदा । तत्कर्मकरणव्यग्रः
 स्वाभ्यासे शिथिलो भवेत् । अभ्यासेन विहीनस्तु ततो लौकि-
 कतां व्रजेत् । अविस्मृत्य गुरोर्वाक्यमभ्यासात्तदहर्निशम् । एवं
 भवेद्वटावस्था सहजाभ्यासयोगतः । अनभ्यासेन योगोऽयं
 वृथा गोष्ठ्या न सिध्यति । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन योगमेतं
 समभ्यसेत् । ततः परिचयावस्था जायतेऽभ्यासयोगतः । वायुः
 परिचितो यत्नादात्मना सह कुण्डलौम् । बोधयित्वा सुषुम्नायां
 प्रविशेदविरोधतः । वायुना सह चित्तन्तु प्रविशेत्तु महापथम् ।
 महापथं श्मशानञ्च सुषुम्नाप्येकमेव हि । नाना मतान्तरे भेदाः
 फलभेदो न विद्यते । वर्त्तमानं भविष्यञ्च भूतार्थञ्चापि वेत्त्यसौ ।
 यस्य चित्तं संपवनं सुषुम्नां प्रविशेद्दिवा । भव्याभ्यो च
 विज्ञाय योगी रहसि यत्नतः । पञ्चधा धारणं कुर्यात् तत्तद्भूत-
 भयापहम् ॥

ग्रहजामले चतुर्दशपटले ॥ सशैलवनधात्रीणां यथा-
 धारोऽहिनायकः । सर्वेषां हठतन्त्राणां तथाधारा हि
 कुण्डली ॥ अहिनायकोऽनन्तः ॥ सुप्ता गुरुप्रसादेन यदा
 जागर्ति कुण्डली । तदा पद्मानि सर्वाणि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि
 च । प्राणस्य शून्यपदवी तदा राजपथायते । तदा चित्तं निरा-
 लम्बं तदा कालस्य वञ्चनम् ॥ शून्यपदवी सुषुम्ना तत्रैवोक्ता
 यथा ॥ सुषुम्ना शून्यपदवी ब्रह्मरन्ध्रं महापथः । श्मशानं
 शङ्खिनौ मध्यमार्गश्चेत्येकवाचकम् ॥ राजपथायत इत्यनेन सुख-
 गमनं व्यज्यते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्ने न प्रबोधयितुमीश्वरौम् । ब्रह्म-
 रन्ध्रमुखे सुप्ता मुद्राभ्यासं समाचरेत् । महामुद्रा महाबन्धो
 महावेदश्च खेचरौ । उड्डीयानं मूलबन्धो बन्धो जालन्धरा-

भिधः । करणं विपरीताख्यं वज्जिनीशक्तिचालनम् । इदन्तु
मुद्रादशकं जरामरणनाशनम् । देवेशि ! कथितं दिव्यमष्टै-
श्वर्यप्रदायकम् । वल्लभं सर्वसिद्धानां दुर्लभं मरुतामपि । गोप-
नीयं प्रयत्नेन यथा रत्नकरण्डकम् । कस्यचिन्नैव वक्तव्यं कुल-
स्त्रीसुरतं यथा ॥

अथ महामुद्रा ॥ दत्तात्रेयसंहितायाम् ॥ महामुद्रां प्रव-
क्ष्यामि भैरवोक्तां समादरात् । पार्श्विं वामस्य पादस्य योनि-
स्थाने नियोजयेत् । प्रसाद्य दक्षिणं पादं हस्ताभ्यां धारयेद्-
दृढम् । चिवुकं हृदये न्यस्य पूरयेद्वायुना पुनः । कुम्भकेन
यथाशक्ति धारयित्वा च रेचयेत् । वामाङ्गेन समभ्यस्य दक्षि-
णाङ्गेन चाभ्यसेत् । प्रसारितस्तु यः पादस्तमूरूपरि विन्यसेत् ॥
ग्रहजामले ॥ पादमूलेन वामेन योनिं सम्पीड्य दक्षिणम् ।
पादं प्रसारितं कृत्वा कराभ्यां धारयेद् दृढम् । कण्ठे वक्त्रं
समारोप्य धारयेद्वायुमूर्ध्वतः । यथा दण्डाहतः सर्पो दण्डा-
कारः प्रजायते । ऋज्वौभूता तथा शक्तिः कुण्डली सहसा
भवेत् । तदासौ मरणावस्था जायते हिपुटीश्रिता । अतः शनैः
शनैरेव रेचयेत्तं न वेगतः । इयं खलु महामुद्रा तव स्नेहात्
प्रकाशयति ॥ फलम् ॥ महाक्लेशादयो दोषाः क्षीयन्ते मरणा-
दयः । महामुद्रा तु तेनैव समाख्याता महेश्वरि । । चन्द्राङ्गेन
समभ्यस्य सूर्याङ्गेन समभ्यसेत् । यावत्संख्या भवेत्तुल्या ततो
मुद्रां विसर्जयेत् । न हि पथ्यमपथ्यं वा रसाः सर्वेऽपि नीरसाः ।
अपि भुक्तं विषं घोरं पौयूषमिव जीर्यति । क्षयकुष्ठगुदावर्त्ता
गुदप्लीहपुरोगमाः । तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्राञ्च
योऽभ्यसेत् । कथितेयं महामुद्रा जरामरणनाशिनी । गोप-
नीया प्रयत्नेन न देया यस्य कस्यचित् ॥

अथ महाबन्धः ॥ अयमेव महाबन्धो मुद्रां बद्धा यमभ्य-

सेत् । महाबन्धस्थितो भूमौ स्फिचौ सन्ताडयेच्छनैः । अय-
मेव महाबन्धः सिद्धिरभ्यस्यते नरैः । पाणिं वामस्य पादस्य
योनिस्थाने नियोजयेत् । वामोरुपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं
तथा । पूरयित्वा मुखे वायुं हृदये चिवुकं दृढम् । निष्पीड्य
योनिमाकुञ्च्य मनोमध्ये नियोजयेत् । रेचयेच्च शनैरेवं महा-
बन्धोऽयमुच्यते । अमुं योगी महाबन्धं महासिद्धिप्रदायकम् ।
वामाङ्गञ्च समभ्यस्य दक्षाङ्गे पुनरभ्यसेत् । अयञ्च सर्वनाडीना-
मूर्द्धं गतिनिरोधकः । त्रिवेणीसङ्गमं धत्ते केदारं प्रापयेन्ननः ।
रूपलावण्यसम्पन्ना यथा स्त्री पुरुषं विना । महासुद्रामहा-
बन्धौ निष्फली वेधवर्जितौ ॥ २ ॥

अथ महावेधः ॥ महाबन्धस्थितो योगी कृत्वा प्रकर-
मेकधा । वायुना गतिमाहृत्य विष्टतं कण्ठमुद्रया । समस्त-
युक्तो यो भूमौ स्फिचौ सन्ताडयेच्छनैः । पुटद्वयं सनाकृष्य
वायुश्चरति सत्वरः । सोमसूर्याग्निसन्दग्धो जायते चानृताय
वै । मृतावस्था समुत्पन्ना ततो मृत्युभयं कुतः । राजदण्डश्च
जिह्वायां बन्धः शस्तो भवेद्वितः । महावेधसमाभ्यासो महा-
सिद्धिप्रदायकः । बन्धत्रयं महागुह्यं जरामरणनाशनम् । वर्ज-
वृद्धिकरं चैवाणिमाद्यष्टगुणप्रदम् । अबाधं हरते पापं यामं
यामं दिने दिने । पुण्यसङ्गारसम्भावं पापौघातिहरं सदा ।
सम्यक् शिञ्चावतामेव स्वप्नं प्रथमसाधने । वङ्गिं स्त्रीपथसेवन-
मादौ मज्जनमाचरेत् ॥ ३ ॥

अथ खेचरी ॥ नाऽशनं सिद्धसदृशं न कुम्भाः केवलोपमः ।
न खेचरीसमा मुद्रा न नादसदृशो लयः । हृदिनं चालनं देहे
कलाक्रमेण वर्द्धयेत्तावत् । सा यावद् भूमध्यं स्पृशति साक्षात्
खेचरीसिद्धिः ॥ दत्तात्रेयसंहितायाम् ॥ अन्तः कपालविवरे
जिह्वां व्याहृत्य बन्धयेत् । भूमध्यदृष्टिरप्येषा मुद्रा भवति

खेचरी ॥ ग्रहजामले ॥ सुहीपत्रनिभं शस्त्रं सुतीक्ष्णं सिम्ध-
निर्मलम् । मर्यादायै ततस्तेन रोममात्रं समुच्छिनेत् । कृत्वा
सैन्धवपथ्याभ्यां चूर्णिताभ्यां प्रवर्त्तते ॥ पथ्या हरीतकी ॥ पुनः
सप्तदिने प्राप्ते रोममात्रं समुच्छिनेत् । एवं क्रमेण षण्मासं
नित्ययुक्तः समाचरेत् । षण्मासादासनामूलशिराबन्धो विन-
श्यति ॥ योगिनो वेणुवल्कलधारेणोदानो रसनामूलमेवं क्रमेण
छिन्दन्ति ॥ अथ वागीश्वरीधाम शिरो वस्त्रेण वेष्टयेत् ।
शनैरुत्कर्षयेद् योगी कालवेलाविधानवित् । वागीश्वरीधाम
जिह्वा तस्याः शिरोऽग्रभागः । वस्त्रप्रमाणमपि तत्रैव ॥ वितस्ति-
प्रमितं दैर्घ्यं विस्तारं चतुरङ्गुलम् । सृदुलं धवलं प्रोक्तं वेष्ट-
नालम्बनक्षणम् । पुनः षण्मासमात्रेण पुनः सङ्कर्षणात् प्रिये ! ।
भूमध्यावधि वर्द्धेत तिर्यक्कर्णविलावधि । अधस्तच्चिवुकं मूलं
प्रयाति क्रमकारिता । क्रोशादूर्ध्वं चङ्क्रमति तिर्यक् सङ्क्राव-
धि प्रिये ! । पुनः संवत्सरे देवि ! द्वितीये चैव लीलया ।
ब्रह्मरन्ध्रत आहत्य तिष्ठेत् पवनवन्दिते । सतालुमूलं
सङ्क्रुष्य सप्तवासरमात्मनि । पूर्वोक्तेन प्रकारेण मूलं सर्वं विशो-
धयेत् । अङ्गुल्यग्रेण सङ्क्रुष्य जिह्वां तत्र निवेशयेत् । शनैः
शनैर्मस्तकान्तं महावज्रकवाटभित् । पूर्वं विजयतां विद्या
विख्याता भुवनत्रये । अस्यां षडङ्गं कुर्वीत तथा षट्चक्रभि-
न्त्रया । खे निरस्तसकलक्रियाक्रमयाचिता चरति । शाश्वतो-
दये सशिरोभूसमवायकारिणी ॥ क्रमेणैव प्रकर्त्तव्याभ्यासेन वर-
वर्णिनि । युगपद्विलये तस्य शरीरं विलयं ब्रजेत् । तस्माच्छनैः
शनैः कार्थोऽभ्यासिना योगकः प्रिये ! । एवं वर्षत्रयं कृत्वा
ब्रह्मद्वारं विशिद्भ्रुवम् । षट् चक्राणि विभेद्य शक्तिभुजगो
प्रोत्थाप्य मूलस्थितां भित्त्वा ग्रन्थितमञ्च पश्चिमशिराः प्राकार-
रूपं महत् । नोत्वा प्राणमहः शिरोऽपि विमलं निर्मथ्य चित्तेन

युर्वि-
रमपि
कृष्ण-
रूपः
शशी
श्री ।
द्वार-
वीन-
पार्श्व-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
पते
ल-
ष्टः
धं
न-
त्

तत् तस्मिन् पिबतेन्दुमण्डलगलमुक्तः स साक्षाच्छिवः ॥ नित्यं
यस्तूङ्घ्रिजिह्वा यदि पिबति पुमान् सप्तधारान्तौघं सुखादं
शीतलाङ्गं दुरितभयहरं क्षुत्पिपाशानिवारम् । पिण्डस्थैर्यं
हि तस्मान्मृड इव निवसन्मृत्युरोगात्तरेत्तु दौर्भाग्यं याति
नाशं प्रसरति सकलं त्रिकालो भ्रमित्वा ॥ कपालकुहरे
जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा । भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति
खेचरो । कलां पराङ्मुखीं कृत्वा त्रिपये परिवर्त्तयेत् । सा
भवेत् खेचरीमुद्रा व्योमचक्रं तदुच्यते । रसनामूर्ध्नि गां कृत्वा
क्षणार्धं यस्तु तिष्ठति । विषयान्मुच्यते योगी व्याधिमृत्युजरा-
दिभिः । न रोगमरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा । न च
मूर्च्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् । पीड्यते न स रोगेण
लिप्यते न स कर्मणा । बाध्यते न स कालेन यस्य मुद्रास्ति
खेचरी । चित्तं चरति खे यस्मात् जिह्वा चरति खे गता ।
तेनैषा खेचरी नाम मुद्रासननमस्कृता । खेचर्यामुदितं धेन
विवरं लम्बिकाक्षिकम् । तस्य न चरते विन्दुः कामिन्याश्चेपि-
तस्य च । चलितोऽपि यदा विन्दुः सम्प्राप्तो योनिमण्डले ।
व्रजेत्तूङ्घ्रं हठाच्छ्रुत्या निबद्धो योनिमुद्रया । ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो
भूत्वा सोमपानं करोति यः । मासाङ्गनं न सन्देहो मृत्युं जयति
योगवान् । इन्धनानि यथा वङ्गिस्तेन वर्त्तिञ्च दौषकः । तथा
सोमलतापूर्णं देहं देही न मुञ्चति । नित्यं सोमकलापूर्णं
देहं देही न मुञ्चति । नित्यं सोमकलापूर्णं शरीरं यस्य योगि-
नः । तच्चकेणापि दष्टस्य विषं तस्य न सपति । तस्मादिदं
प्रकुर्वीत नित्ययुक्तः समाहितः । रसनां शेषयेदूर्ध्वं पिबेदमर-
वारुणम् । कुलोर्ध्वं तमहं वन्दे इतरे कुलघातकाः । गोशब्दे-
नोदिता जिह्वा तद्वेशो हि तालुनि । गोमांसमक्षणं तत्
सहापातकनाशनम् । जिह्वाप्रवेशदं भूतवायुना स्थापितं

खलु । चन्द्राद् गलति संसारं तत्स्यादमरवारुणी । मूर्ध्निः
षोडशपत्रपद्मगलितं प्राणादवाप्तं हठादूर्ध्वस्थो रसनां नियम्य
विवरे शक्तिं परां चिन्तयेत् । तत्कल्लोलकलाजलञ्च विमलं
धाराभृतं यः पिबेत् निर्दोषः स मृणालकोमलवपु र्योगी चिरं
जीवति ॥ सुखन्ती यदि लम्बिकाग्रमनिशं जिह्वा रमस्यन्दिनी
सन्नारा कटुकाय दुग्धसदृशी क्षीराज्यतुल्याथवा । व्याधीनां
हरणं जरान्तकरणं शास्त्राङ्गमोद्गीरणं तस्य स्यादमरत्वमष्ट-
गुणवत् सिद्धाङ्गनाकर्षणम् ॥ एकं सृष्टिमयं बीजं एका मुद्रा च
खेचरी । एको देवो निरालम्बो ह्येकावस्था मनोबन्धी । सुचिरं
ज्ञानजनकं पञ्चतत्त्वसमन्वितम् । तिष्ठन्ती खेचरोमुद्रा तस्मिन्
शून्ये निरञ्जने ॥ ४ ॥

अथ मूलबन्धः ॥ पाष्णिभागेन सम्यौघ योनिमाकुञ्चयेद्-
गुदम् । अपानमूर्ध्वमुत्थाप्य मूलबन्धोऽयमुच्यते । अधोगत-
मपानञ्च ऊर्ध्वार्धे कुरुते हठात् । आकुञ्चनेन तं वच्मि
मूलबन्धं महेश्वरि ! । योनिपाष्णीं तु सम्यौघ वायुमाकुञ्चये-
द्वलात् । वारं वारं तथा चोर्ध्वं समायाति समीरणः । प्राणा-
दिनोदितो बिन्दुर्मूलबन्धेन चैकतः । ततो योगस्य संसिद्धिः
प्रप्ता तत्र न संशयः । प्राणापानौ च पवनौ मूलबन्धेन चैक-
ताम् । गत्वा योगस्य संसिद्धिं गच्छतो नात्र संशयः । अपान-
प्राणयोरैक्यात् क्षयान्मूलपुरीषयोः । युवा भवति वृद्धोऽपि
सततं मूलबन्धनात् । अपाने चोर्ध्वं याते सम्प्राप्ते योनिम-
ण्डले । तद्गङ्गा शिखा दीर्घा वर्धते वायुना हता । ततो
यातं बद्धयोनौ प्राणेषु च स्वरूपकम् । तैलाभ्यक्तं प्रदीपन्तु
ज्वलनो देहगस्तथा । तेन कुण्डलिनो सुप्ता सन्तप्ता संजिवर्धते ।
दण्डाहता भुजङ्गोव निखस्य ऋजुतां व्रजेत् । विलं प्रविष्टैव
ततो ब्रह्मनाड्यन्तरं व्रजेत् । तस्मान्नित्यं मूलबन्धः कतव्यः
परमेश्वरि ! ॥ ५ ॥

युर्वि-
रमपि
कणा-
रूपः
हासी
श्री ।
हार-
वीन-
पार्श्व-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
पते
ल-
म्बः
सं-
त-
सु

अथ उड्डीयानम् ॥ बद्धो येन सुषुम्नायां प्राण उड्डीयते
ततः । तस्मादुड्डीयनाख्योऽयं ज्ञातव्यः परमेश्वरि ! । उड्डीनं
कुरुते यस्मादधिश्रान्तो महाखगः । उड्डीयानं तदेव स्यात्
तत्र बन्धो निगद्यते । उदरे पश्चिमे भालं नाभेरूर्ध्वं च कारयेत् ।
उड्डीयानो ह्यसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेशरी । उड्डीयानन्तु सहजं
कथ्यते परमेश्वरि ! । अभ्यासेन वितन्द्रस्तु बद्धोऽपि तरुणो
भवेत् । नाभेरूर्ध्वं मधश्चापि तालुं कुर्यात् प्रयत्नतः । षण्मासा-
भ्यासतो मृत्युं जयत्येव न संशयः । सति वज्रासने पादौ करा-
भ्यां धारयेद् दृढम् । फलुदेशसन्नीपे च बन्धं तत्र प्रपौडयेत् ।
पश्चिमे तालुमुदरे कारयेद्बृहदये गले । शनैः शनैर्यथा प्राणस्तुन्द-
सिद्धिं स गच्छति । सर्वेषामेव बन्धानामुत्तमोऽप्युड्डीयानकः ।
उड्डीयाने महेशानि ! मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत् ॥ दत्तात्रेय-
संहितायाञ्च ॥ उड्डीयानञ्च सहजं मुनिभिः कथितं सदा ।
अभ्यसेद् यस्तु सत्त्वस्थो बद्धोऽपि तरुणयते । नाभेरूर्ध्वं मध-
श्चापि प्राणं कुर्यात् प्रयत्नतः । षण्मासमभ्यसेन्मृत्युं जयत्येव
न संशयः । मूलबन्धस्तु यो नित्यमभ्यसेत् स तु योगवित् ॥६॥

अथ जालन्धरबन्धः ॥ ग्रहजामले ॥ कण्ठमाकुञ्च्य हृदये
स्थापयेच्चिवुकं दृढम् । बन्धो जालन्धराख्योऽयममृताव्ययका-
रकः ॥ दत्तात्रेयसंहितायाञ्च । कण्ठमाकुञ्च्य हृदये मारुतं
धारयेद् दृढम् । जालन्धरे बन्ध एष ह्यमृतद्वयपारगः । नाभि-
स्थानिकपालस्थं सहस्रकमलयुतम् । अमृतं सर्वदास्नायं
विन्दुत्वं याति देहिनाम् । यथाग्निश्च तदमृतं न पिबेच्च पिबेत्
स्वयम् । याति पश्चिममार्गेण एवमभ्यासतः सदा । अमृतं
कुरुते देहं जालन्धरमतोऽभ्यसेत् ॥ ग्रहजामले ॥ बध्नाति हि
शिराजालमध्ये गामि न भोजनम् । अतो जालन्धरो बन्धः कण्ठे
दुःखीघनाशनः । जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठे सङ्कोचने कृते ।

न पीयूषं पचत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति । कण्ठसङ्कोचनेनैव
हं नाद्धौ कुम्भयेद् दृढम् । मध्यचक्रमिदं ज्ञेयं षोडशाधार-
बन्धनम् । बन्धत्रयमिदं श्रेष्ठं महासिद्धनिषेवितम् । सर्वेषां
हठतन्त्राणां कुर्यात् साधनमीश्वरि ! । अध आकुञ्चनेनाश
कण्ठसङ्कोचने कृते । मध्ये पश्चिमतालुः स्यात् प्राणस्तु मध्य-
नाडिगः । ब्रह्मस्थानस्थितो बोधः प्रयाति पवनालयम् । ततो
न जायते मृत्युर्नास्य जरादिकं तथा । मूलस्थानं समाकुञ्च्य
उड्डानास्थन्तु कारयेत् । इडाञ्च पिङ्गलां बद्ध्वा बाहयेत्
पश्चिमां दिशम् । अग्नेनैव विधानेन प्राप्नोति पवनो लयम् । ततो
न जायते मृत्युर्जरारोगादिकं तथा ॥

अथ विपरीतकरणम् । यत्किञ्चित् स्रवते चन्द्रादमृतं
दिव्यरूपिणम् । तत्सर्वं ग्रसते सूर्यस्तेन पिण्डो जरायुतः ।
तत्रास्ति करणं दिव्यं सूर्यस्य मुखबन्धनम् । गुरुपदेशतो
ज्ञेयं न च शास्त्रार्थकोटिभिः । ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरुर्ध्वं भानु-
रधः शशी । करणं विपरोताख्यं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
नित्यमभ्याससंयुक्तं जठराग्निविवर्द्धनम् । स्वाह्वारो निरा-
हारः क्षुधात्तो बलहा भवेत् । आहारं बहुलं तस्य सम्पाद्य
साधकस्य तु । अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्देहं दहेत् क्षणात् ।
अधः शिराश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात् प्रथमे दिने । क्षणाच्च किञ्चि-
दधिकमभ्यसेद्दि दिने दिने । बलितं पलितञ्चैव षण्मासाद्धि
विनाशयेत् । मासमात्रन्तु यो नित्यमभ्यसेत् स तु कर्णजित् ॥
दत्तात्रेयसंहितायामपि ॥ पक्षिणा गुदमायुज्य वाममार्गं चरे-
द्बलात् । वारं वारं यथा चोर्ध्वं समायाति समीरणः । प्राणापानौ
नादविन्दू मूलबन्धेन चैकताम् । महायोगस्य संसिद्धिं याति
नास्थत्र संशयः । करणं विपरोताख्यं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्द्धनम् । आह्वारा बहवस्तास्य

युधि-
रमपि
कणा-
रूपः
हासी
श्री ।
हार-
वीन-
माह-
ला-
सी-
ज-
लि-
ला-
प्रते
ल-
श्च-
यं
र-
म-
ताः
रि-
म-
ताः

स्वल्पाद्याः साङ्गते ! भ्रुवम् । अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दाहं ।
करोति वै । ऊर्ध्वं राहुरधश्चन्द्रस्तथा दृष्टिश्च साङ्गते ! । अधः- ।
शिराश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात् प्रथमे दिने । क्षणात्तु किञ्चि- ।
दधिकमभ्यसेत्तु दिने दिने । बलिश्च पलितश्चैव षण्मासोर्ध्वं ।
न दृश्यते । याममावन्तु यो नित्यमभ्यसेत् स तु योगवित् ॥ जं

अथ वज्रोष्णी ॥ वज्रोष्णी चामरोष्णी च सयोनी च त्रिधातो
मतः । तत्तासां लक्षणं वक्ष्ये कर्तव्यञ्च विशेषतः । स्वेच्छया-
वर्त्तमानोऽपि योगोक्तनियमं विना । वज्रोष्णी यो विजानाति-
स योगी सिद्धिभाजनः । अधोभागे गतं विन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमा- ।
हरेत् । चालितस्तु स्वकं विन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् । तत्र वस्तु-
द्वयं वक्ष्ये दुर्लभं यस्य कस्यचित् । क्षीरश्चैव द्वितीयञ्च नारी ।
च वशवर्त्तिनी । मेद्रेण च शनैः सम्यक् कृत्वाकुञ्चनमभ्यसेत् ।
पुरुषो वापि नारी वा वज्रोष्णी सिद्धिमाप्नुयात् । प्रयत्नतः
गराजालं फुत्कारैः कम्बुं वर्द्धयेत् । शनैः शनैः प्रकुर्व्याच्च वायु-
सञ्चारकारणात् । भार्याभगगतं विन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत् ।
बलितं पलितं विन्दुं विन्दुमाकृष्य रक्षयेत् । एवन्तु रक्षयन्
विन्दुं मृत्युं जयति योगवान् । मरणं विन्दुपातेन जीवितं
विन्दुधारणात् । सुगन्धिर्योगिनो देहो जायते विन्दुधारणात् ।
यावद्विन्दुः स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः । मलायत्तं बलं
पुंसां शुक्रायत्तञ्च जीवितम् । तस्माच्छुक्रं मलश्चैव रक्षणीयं
प्रयत्नतः । ऋतुमत्या रजोऽप्येवं स्वयं विन्दुञ्च रक्षयेत् ।
मेदादाकर्षयेदूर्ध्वं सम्यगभ्यासयोगतः । सहयोन्यमरोष्णी च
वज्रोष्ण्या एव भेदतः । वज्रोष्णी मैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुंसीः साङ्ग-
क्षेपनम् । आसीनयोः सुखेनैव सूक्ष्मव्यापारयोः क्षणात् ।
सहयोनिरियं प्रोक्ता श्रद्धया परमेश्वरि ! । पित्तोत्प्लवणत्वात्
प्रथमाञ्च धारां विहाय निःसारतयान्वधाराम् । निषेवते शीतल-

मध्यधारां कपोलिकैः खण्डमतेरमर्थः । अमरीं यः पिबेन्नित्यं
न्यासं कुर्वन् दिने दिने । वज्रोष्णीमभ्यसेदेवममरोष्णीति
कथ्यते । यक्षणाकुञ्चनेनोर्ध्वं या रजः सा हि योगिनी । अती-
तानागतं ज्ञातं खेचरो च प्रजायते । देहसिद्धिञ्च लभते
वज्रोष्णभ्यासयोगतः । अयं शुभकरो योगो भोगान् भुङ्क्ते
विमुक्तिदः ॥ ८ ॥

अथ शक्तिचालनम् ॥ कुण्डलाङ्गी कुण्डलिनी भुजङ्गी
शक्तिरीश्वरी । कुण्डल्यन्त्यतौ देवौ शब्दाः पर्यायवाचकाः ।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये बाला रण्डा तपस्विनी । बलादाकथ्य
गृहीयात्तद्विष्णोः परमं पदम् । पुच्छं प्रगृह्य भुजङ्गीं सुप्ता-
मुदोधयेदपि । निद्रां विहाय सा ऋज्वी ऊर्ध्वमुत्तिष्ठते
हठात् । वज्रासनस्थितो योगी चालयित्वा तु कुण्डलीम् ।
कुर्यादनन्तरं भस्त्रां कुण्डलीमाशु बोधयेत् । मृत्युवज्रगत-
स्यापि ततो मृत्युभयं कुतः । मुहूर्तद्वयपर्यन्तं निर्भयं
चालनादसौ । ऊर्ध्वमाकर्षते किञ्चित् सुषुम्नां कुण्डलीगताम् ।
तेन कुण्डलिनी तस्याः सुषुम्नायाः समुद्रताः । जह्वाति नित्यं
प्राणोऽयं सुषुम्नां व्रजति स्वनः । तस्मात् सञ्चालयेन्नित्यं शब्द-
गर्भामरुन्धतीम् । यस्याः सञ्चालनेनैव रोगी रोगैर्विमुच्यते ।
येन सञ्चालिता शक्तिः स योगी सिद्धिभाजनः । किमत्र
बहुनोक्तेन कालं जयति लौलया । अभ्यासान्निःसृतां चैन्द्रीं
सह नित्यं समाश्रयेत् । धारयेत्तूतमाङ्गे च दिव्यदृष्टिप्रदा-
यिकाम् । इति मुद्रा दश प्रोक्तास्तव स्नेहान्महेश्वरि ! ।
एकैका चाशु यमिनां महासिद्धिप्रदायिनी । राजयोगं विना
पृथ्वी राजयोगं विना शिला । राजयोगं विना निद्रा विचि-
त्वापि न राजते । मारुतस्य विधिं सर्वं मनोयुक्तं मनोषि-
णाम् । शिवापि मध्यमा नाडी दृढाभ्यासे च योगिनाम् ।

युर्वि-
रमपि
कणा-
रूपः
हासी
शी ।

वार-
मीन-
गार्ह-
ला-
सी-
ज-
ति-
ता-
इति
ल-

पा
पा
ति
र-
पाः
ति-
म।
त्याः

श्रासने प्राणसंयोगे मुद्राभिः सकला भवेत् । उपसन्नेऽपि
मुद्राणां राजयोगः समुद्रवत् । रुद्राणाञ्चापरा मुद्रा तदा
सिद्धिं प्रयच्छति ॥

इति प्राणतोषिण्यां षष्ठे ज्ञानकाण्डे पञ्चामरादिमुद्रादशका-
रूपग्रन्थिकथनं नाम प्रथमः परिच्छेदः ।

दत्तात्रेयसंहितायाम् ॥ पञ्चधारणानन्तरम् ॥ पृथिवीधारणं
वक्ष्ये पार्थिवेभ्यो भयावहम् । नाभेरधो गुदस्थोर्ध्वं घटिकाः
पञ्च धारयेत् । वायुं ततो भवेत् पृथ्वीधारणं तद्भयापहम् ।
पृथिवीसम्भवात्तस्य न सृत्युर्योगिनो भवेत् । नाभिस्थाने
ततो वायुं धारयेत् पञ्च नाडिकाः । ततो जलभयं नास्ति
जलसृत्युर्न योगिनः । नाभ्यूर्ध्वमण्डले वायुं धारयेत् पञ्च
नाडिकाः । आग्नेयी धारणा सेयं न सृत्युस्तस्य वज्रिना । न
दह्यते शरीरं हि प्रक्षिप्ते वज्रिकुण्डके । नाभिभुवोर्हि मध्ये
तु प्रादेशद्वयसंक्षिते । धारयेत् पञ्च घटिका वायुं सैव हि
वायवौ । धारणात्तस्य वायोस्तु योगिनो न भयं भवेत् । भ्रूम-
ध्वादुपरिष्ठात्तु धारयेत् पञ्च नाडिकाः । वायुं योगी प्रयत्नेन
सेयमाकाशधारणा । आकाशधारणं कुर्वन्मृत्युं जयति
तत्त्वतः । यत्र तत्र स्थितो वापि सुखमत्यन्तमश्नुते । एवञ्च
धारणाः पञ्च कुर्याद्योगौ विधानतः । ततो दृढशरीरस्य
सृत्युरस्य न विद्यते । इत्येवं पञ्चभूतानां धारणं यः समभ्य-
सेत् । ब्रह्मणः प्रलये वापि तस्य सृत्युर्न विद्यते । समभ्यसे-
त्तदा ध्यानं घटिकाः षष्टिमिव च । वायुं निरुध्य तां ध्यायेद्
देवतामिष्टसाधिनीम् । सगुणध्यानमेतत् स्यादणिमादिसुख-
प्रदम् । निर्गुणं स्वमिव ध्यायेन्मोक्षमार्गः प्रवर्त्तते । निर्गुण-
ध्यानसम्यक् समाधिञ्च समभ्यसेत् । दिनद्वादशकेनैव समाधिं
समवाप्नुयात् । वायुं निरुध्य मेधावी जीवन्मुक्तो भवेद्भुवम् ।

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः । यदि स्याद्देहमुत्-
सृष्टमिच्छा चेदुत्सृजत् स्वयम् । परं ब्रह्मणि लीयत त्वद्वा
कर्म शुभाशुभम् । अथ नोचेत् समुत्सृष्टं स्वशरीरं यदि
प्रियम् । सर्वलोकेषु विचरेदणिमादिगुणान्वितः । कदाचित्
स्वेच्छया देवो भूत्वा स्वर्गेऽपि सञ्चरेत् । मनुष्यो वापि यक्षो वा
स्वेच्छयापि क्षणाद्भवेत् । सिंही व्याघ्रो गजो वापि स्यादिच्छा-
तोऽन्यजन्मताम् । यथेष्टमेव वर्त्तेत योगी विद्वान्महेश्वरः । कवि-
मार्गोपयुक्तं ते साङ्गतेऽष्टाङ्गयोगतः । सिद्धानां कपिलादीनां
मतं वक्ष्ये ततः परम् । अभ्यासमेदान्तर्द्वेदेन फलं तत्समं
तथा । इत्यनन्तरं जलम्बरादिरुक्तः । तेन दत्तात्रेयमते जलम्बरादिं
विनापि योगी भवतीति सुधीभिर्विभाव्यावगन्तव्यम् । पक्षिणा
शुदमायुज्य वाममार्गं चरेद्बलात् । वारं वारं यथा चीर्द्धं
समायाति समोरणः । प्राणापानौ नादविन्दू मूलबन्धेन चैक-
ताम् । महायोगस्य संसिद्धिं याति नास्त्यत्र संशयः । करणं
विपरीताख्यं सर्वव्याधिविनाशनम् । नित्यमभ्यासयुक्तस्य
जठराग्निविवर्द्धनम् । आहारा बहवस्तस्य सम्पाद्याः साङ्गते ।
ध्रुवम् । अल्पाहारे यदि भवेदग्निर्दाहं करोति वै । ऊर्ध्वं
राहुरधश्चन्द्र तथा दृष्टिश्च साङ्गते । अधःशिरासोर्ध्वपादः
क्षणात् स्यात् प्रथमे दिने । क्षणात्तु किञ्चिदधिकमभ्यसेत्
दिने दिने । बलिश्च पलितञ्चैव पश्मासोर्ध्वं न दृश्यते । याम-
सात्रन्तु यो नित्यमभ्यसेत् स तु योगवित् । वज्रोष्णीं ते प्रव-
क्ष्यामि योगिभिर्गोपितं सदा । अतीव तद्रहस्यं हि न देयं
यस्य कस्यचित् । लभ्यते यदि तस्यैकं योगसिद्धिकरं परम् ।
क्षीरमङ्गरसं चेति द्वयोराद्यश्च लभ्यते । तृतीयं बलिनां
पुंसां स्त्रीभ्यः साध्यमुपागतः । योगाभ्यासरता स्त्री च पुंसां
यत्नेन साधयेत् । पुंसां स्त्री वा तदन्यद्वा स्त्रीत्वं पुंस्त्वमपेक्षया ।

युर्वि-
रमपि
क्षणा-
रूपः
हासी
शी ।
हार-
वीन-
साई-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
पते
ख-
इ-
धं
त

स प्रयोजनमात्रैकसाधनात् सिद्धिमाप्नुयात् । गलितो यदि विन्दुस्तु मूर्द्धि चाकृष्य धारयेत् । एवं हि रक्षिते विन्दौ सत्यं जयति तत्त्वतः । मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुरक्षणात् । विन्दुरक्षाप्रसादेन सर्वे सिध्यन्ति योगिनः । अमरोणिस्तु यथा स्यात् सहयोगिनिस्ततो यथा । तदभ्यासक्रमो ज्ञेयः सिद्धानां सम्प्रदायतः । एतेः सर्वैस्तु कथितैरभ्यसेत् कालयोगतः । ततो भवेद्राजयोगो नान्तरौभवति ध्रुवम् । न दिङ्मात्रेण सिद्धिः स्यादभ्यासो नैव जायते । राजयोगपदं प्राप्य सर्वसङ्कल्पभञ्जकम् । सर्वं कुर्यान्न वा कुर्याद् यथारुचि विचेष्टितम् । तथान्तरा च योगेन निष्पन्ना योगिनः क्रिया । तदावस्था हि नश्यन्ती भक्तिमुक्तिप्रदा भवेत् ॥

प्राणायामस्य फलान्तरन्तु ग्रहयामले ॥ आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सिते तरे । प्रतिपत्क्रमतो हानिस्त्रीणि कृत्वोदयत्ययम् ॥ त्रिपुरासारमुच्चये तु ॥ अमावास्यावध्युदयमाह यथा ॥ आरभ्य दर्शं प्रथमामुदेति वामे पुटे त्रीणि दिनानि देवः । वामे तरे त्रीणि ततो दिनानि पूर्णां तिथिं यावदयैवमेवम् ॥ एकस्य पक्षस्य विपर्ययेण रोगाभिभूतिर्भवतीह पुंसाम् । पक्षद्वये बन्धुसुहृदिपत्तिः पक्षत्रये व्यत्ययो सृतिः स्यात् ॥ ब्रह्मजामले ॥ चन्द्रोदये यदा सूर्यश्चन्द्रः सूर्योदये यदा । अशुभं हानिरुद्देगः शुभं सर्वं नियोजयेत् । चन्द्रोदये वामनाडां वायुगमननिरूपितसमये एवं सूर्योदये दक्षिणनाडां वायुगमननिरूपितसमये कर्मविशेषः । नासिकयोर्वायोः प्रवेशनिर्गमाभ्याञ्च शुभत्वमपि तत्रैव ॥ यात्रादाने विवाहे च वस्त्रालङ्कारधारणे । शुभकर्मसु सर्वेषु प्रवेशे च शशी शुभः । विग्रहयूतयुद्धेषु स्नानभोजनमैथुने । व्यवहारे भये मङ्गे भानुनाडी प्रशस्यते । मोहनं शान्तिकञ्चैव

दिव्यौषधिरसायनम् । विद्यारम्भः स्थिरं कार्यं कर्तव्यञ्च निशा-
करे । दूरयुद्धे जयौ चन्द्रः समासने दिवाकरः । वहन्नाडी-
पदे चैव यात्रा भवति सिद्धिदा ॥ यस्यां नासिकायां प्राणवायो-
र्गतिर्विच्यते तदंशोपादप्रसारणपूर्विका यात्रा सिद्धिदा
भवतीत्यर्थः । शयने च प्रसङ्गे वा युवत्यालिङ्गनेऽपि वा । यः
सूर्येण पिवेच्चन्द्रं स भवेन्नकरध्वजः ॥ सूर्येण दक्षिणनासि-
कास्थप्राणवायुना चन्द्रं नार्थ्या वामनासिकागतप्राणवायुं
पिबति तत्सङ्गमकाले स्वीयनिश्वासमतिनिविष्टः सन्नाकर्षयति ।
तत्फलं तत्रैव । चन्द्रचारी विषं हन्ति सूर्यो बालां वशं नयेत् ।
सुषुम्नायां भवेन्नोच्च एको देवस्त्रिधा मतः । भुक्तमात्रेण मन्दा-
ग्नौ स्त्रीणां वश्येऽथ कर्मणि । शयनं सूर्यवाहेन कर्तव्यं
सर्वदा बुधैः । शान्ते शोके विवादे च ज्वरिते मूर्च्छिते तथा ।
सज्जनस्यापि बोधार्थं चन्द्रचारं प्रवाहयेत् । भुक्तमात्रादौ वाम-
पार्श्वेन श्रान्तादिषु दक्षिणपार्श्वेन शयनं कार्यमिति तात्प-
र्यम् । चतुर्दिक्षूर्ध्वमधस्ताच्चान्यतरस्थानमाश्रित्य यदि दूतः
पृच्छति तदा कस्यां नाद्यां वायुगतिः शुभेत्याह ॥ ऊर्ध्ववा-
माग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथस्थितः । पृष्ठे दक्षे तथाधस्तात् सूर्य-
वाहगतो मतः । पूर्णनाडीगतो दूतो यत् पृच्छति शुभाशुभम् ।
तत्त्वं सिद्धिमाप्नोति शून्ये शून्यं न संशयः । आदौ शून्यगतः
पृच्छेत् पश्चात् पूर्णो विशेद् यदि । तदा सर्वांशसिद्धिः स्यादिति
जानोहि निश्चितम् ॥ इदानीं प्राणवायोः प्रवेशनिर्गमाभ्यां
विशेषमाह ॥ प्रवेशकाले यद्भूतो वाञ्छति स्वप्रयोजनम् ।
तत्त्वं सिद्धिमाप्नोति निर्गमे नास्ति सुन्दरम् ॥ कर्मविशेषे
नाडीविशेषगतिमाह ॥ मारणं मोहनं स्तम्भं विद्वेषोच्चाटनं
तथा । प्रेरणाकर्षणक्षोभं भानुनाद्युदये कुरु । शान्तिकं
पोष्टिकं क्षेमं दिव्यौषधिरसायनम् । योगाभ्यासादिकर्माणि

।युर्वि-
रमपि
कणा-
ररूपः
हासी
।शी ।
।हार-
वीन-
।सार्ध-
।ला-
।सो-
।ज-
।ति-
।ला-
।ते
।ल-
।प्रः
।प्र-
।प्र-

कर्त्तव्यानि निशाकरे ॥ त्रिपुरासारसमुच्चये ॥ भूतानामुदयं
द्वयोरपि बुधः संलक्षयेत् पक्षयोस्तत्रादौ वसुधोदयं निहि-
तधौर्ग्राणस्य दण्डस्युशि । देवेऽधःस्युशि वारिणी हुतवहस्योर्द्धा
गतिश्चोदयं तिर्यक्स्युशि मारुतस्य परितः पृष्ठे मरुद्वर्त्मनः ॥
देवे प्राणवायौ ॥ फलं जामले ॥ पृथ्वीजले शुभे तत्त्वे तेजो
मिश्रफलोदयम् । हानिमृत्युकरौ पुंस्त्रासुभयौ व्योममारुतौ ।

कर्मविशेषे भूतोदयफलम् त्रिपुरासारि ॥ वश्यस्तन्मनयोः
प्रशस्त उदयो भूमेर्जलस्योदयः शस्तः शान्तिकपीष्टिकादिषु
शुभेष्वङ्गाय वङ्गेः पुनः । शत्रोर्मारणदारणादिकरणे उच्चा-
तनोच्छेदयोर्वायोः शान्तिकनिर्विघ्नीकरणयोर्व्योम्नो हित-
श्चोदयः ॥ क्रियत्कालमेकनाडीगतो वायुर्भवति तत्रापि पञ्च-
भूतोदयः केन ज्ञेय इत्यपेक्षायां नाडीगतिकालं स्थानक्रमेण
भूतोदयञ्चाह जामले ॥ एकैकस्य कलाः पञ्च क्रमेणैवोद-
यन्ति ताः । पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । मध्ये
पृथ्वी त्वधश्चाप ऊर्ध्वं वहति चानलः । तिर्यग्वायुप्रवाहश्च
नभो वहति सङ्क्रमे ॥ प्रपञ्चसारिऽपि ॥ पुटयोरुभयोश्च दण्ड-
संस्था पृथिवी तोयमधः क्लशानुरुर्द्धम् । पवनस्त्वथ पार्श्वगो-
ऽपि मध्यं गगनं भूतगतिस्तनूद्भवेयम् ॥ तत्रापि बाल्याद्यवस्था-
भेदमाह ॥ रुद्रजामले उत्तरखण्डे एकादशपटले ॥ स्वकीय-
नासिकाग्रस्थं पञ्चमं परिकीर्तितम् । यन्नासापुटमध्ये तु वायु-
र्भ्रमति भैरवः । तन्नासाप्यूर्ध्वमध्ये तु भावाभावं विचारयेत् ।
आकाशं वायुरूपं हि तैजसं वारुणं प्रभोः । पार्थिवं क्रमशो
ज्ञेयं बाल्यास्तादिक्रमेण तु । वामोदये शुभा वामा दक्षिणे
पुरुषः शुभः । वायूनां गमनं ज्ञेयं गगनावधिरेव च । केवलं
मध्यदेशे तु गमनं पवनस्य च । तदाकाशं विजानौयाद्बाल्य-
भावं प्रकीर्तितम् । तिर्यग्गतिस्तु नासाग्रं वायोरुदयमेव च ।

केवलं भ्रमणं ज्ञेयं सर्वमङ्गलमेव च । किशोरं तद्विजानीया-
 हायोतिर्यगतो विभो ! । केवलार्धनासिकाग्रं वायुं गच्छति
 दण्डवत् । तत्तेजसं विजानीयात्तेजसा बलवान् भवेत् । यौवनं
 तद्विजानीयात् कर्मसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् । यदावाप्य गच्छतीह
 नासापुटमनाकुलम् । जलोदयं विजानीयात् तदा व्यामोह-
 मेव च । तद्वृद्धगतभावश्च विलम्बोऽधिकचेष्टया । प्राप्नोति
 परमां प्रीतिं वारुणार्णोदयेऽरुणम् । यदधो गच्छति क्षिप्रं
 किञ्चिद्दूर्ध्वमगोचरम् । यदा करोति प्राग्बालं तदा रोगाद्
 बलोदयः । पृथिव्या उन्नतं भाग्यं रोगार्तिपरिपीडितम् । अस्त्र-
 मितं महादेव ! अनुलोमविलोमतः । पवनो गच्छति क्षिप्रं वाम-
 दक्षिणभेदतः । वामनासापुटं याति पृथिवी जलमेव च । सदा
 फलाफलं दातुमुदिता कुलमण्डले । तयोर्वै वायवौ शक्तिः फल-
 भागं तदा लभेत् । इत्यवस्थाभेदतत्फलकथनं तत्रैव ॥ यद्येवं
 वामभागे तु बालायाः प्रश्नकर्मणि । यदि तत्र पुमान् प्रश्नं
 करोति वामगामिनी । तदा रोगमवाप्नोति कर्महानिर्भवेद्
 ध्रुवम् । यदि वायूदयो वामे दक्षिणे पुरुषः स्थितः । तदा
 कुफलमाप्नोति द्रव्यागमनदुर्लभम् । अकस्माद्भयहानिः स्यान्म-
 नोगतफलापहम् । सुहृद्भङ्गं विवादश्च भिन्ने भिन्नोदयाच्छुभम् ।
 केवलं वरुणस्यैव पुरुषो दक्षिणे शुभः । अशुभं पृथिव्योदने
 भेदोऽयं वरदुर्लभः । सदोदयं दक्षिणे च वायोस्तैजस एव च ।
 आकाशस्य विजानीयाच्छुभाशुभफलं प्रभो ! । यदि भाग्यव-
 शादेव वायोर्मन्दगतिर्भवेत् । दक्षनासामध्यदेशे तदा वामो-
 दयं शुभम् । तदा वामे विचारश्च वायुतेजःस्वरस्य च । ज्ञात्वो-
 दयं विजानीयान्निश्चे हानिः स्वरे भयम् । एवं स्वभुवनागारे
 यदि गच्छति वायवौ । तस्मिन् काले पुमान् वामदक्षभाग-
 स्थसन्मुखः । तदा कन्यादानफलं यथा प्राप्नोति मानवः ।

अथर्वि-
 रमपि
 कणा-
 रूपः
 हासी
 शी ।
 ।हार-
 वीन-
 माह-
 ।ला-
 ।सी-
 ।ज-
 ति-
 ला-
 वते
 ल-
 शः
 शं
 ।
 ।

तदा वायुप्रसादेन प्राप्नोति धनमुत्तमम् । देशान्तरशुभा वार्त्ता
आयाति पुत्रसम्पदः । इति स्त्रीपुंसभेदेन फलकथनम् ॥

सूक्ष्मसरोदये ॥ गुरुशुक्रबुधेन्दूनां वासरे वामनाडिकाः ।
सिध्यन्ति सर्वकार्येषु कृष्णपक्षे विशेषतः । अर्काङ्गारकसौराणां
वासरे दक्षनाडिका । स्मर्त्तव्या चिरकामिण शुक्ले नैवोदयः स्थितः ।
क्रमादेकैकनाद्यास्तु तत्त्वानां पृथगुद्भवः । अहोरात्रस्य मध्ये
तु ज्ञेया द्वादशसंक्रमाः । वृषकर्कटकन्यालिमृगमौननिशा-
करे । मेषे सिंहे च धनुषि तुलायां मिथुने घटे । उदयो
दक्षिणे ज्ञेयः शुभाशुभविनिर्णयः । इति वारादिभेदेन नाडी-
विशेषफलकथनम् ॥ तिष्ठेत् पूर्वोत्तरे चन्द्रो भानुः पश्चिम-
दक्षिणे । दक्षनाद्याः प्रवाहे तु न गच्छेद्दक्षपश्चिमे । इति
नाडीविशेषेण दिग्ज्ञानम् ॥ वामाचारप्रवाहे तु न गच्छेत्
पूर्व उत्तरे । परिपत्न्यी भवेत्तस्य गतोऽसौ न निवर्त्तते ।
तस्मादत्र न गन्तव्यं बुधैः सर्वहितैः शुभैः । तदा तत्र तु
सङ्घातमृत्युरेव न संशयः ॥ इति वहन्नाडीकस्य दिग्विशेष-
गमननिन्दा ॥ शुक्लपक्षे द्वितीयायामर्के वहति चन्द्रमाः ।
प्रदृश्यते महान्नाभः पुंसः सौम्यं प्रजायते । सूर्योदये यदा
सूर्यश्चन्द्रे चन्द्रोदयो भवेत् । सिध्यन्ति सर्वकार्याणि दिवा-
रात्रिगतान्यपि ॥ इति स्वस्वनाडौफलकथनम् ॥ चन्द्रकार्यं
यदा सूर्यः सूर्यश्चन्द्रोदये भवेत् । उद्देगः कलहो हानिः
शुभं सर्वं निवारयेत् ॥ इति विपरीतनिन्दा ॥ सूर्यस्य वाहे
प्रवदन्ति जालम् एकासने युक्तमनस्थिरश्च । खासेन युक्तस्य
तु शीतरश्मेः प्रवाहकाले फलमन्यदस्याम् ॥ यदि प्रत्यूषकाले
तु विपरीतोदयो भवेत् । चन्द्रस्थाने स्थिति चार्के रविस्थाने च
चन्द्रमाः । प्रथमे मानसोद्देगं धनहानिं द्वितीयके । तृतीये
गमनं ज्ञेयमिष्टनाशं चतुर्थके । पञ्चमे राज्यविभवं षष्ठे सर्वार्थ-

नाशनम् । सप्तमे व्याधिदुःखानि अष्टमे मृत्युमुच्छति ॥ इति
दिनभेदेन विपरीतफलम् ॥ कालत्रयं विनानिष्टं विपरीतं
यदा भवेत् । तदा दुष्टफलं प्रोक्तं किञ्चिद्भूनेऽतिशोभनम् ।
प्रातर्मध्याह्नयोश्चन्द्रः सायंकाले दिवाकरः । तदा नित्यं जयो-
लाभो विपरीतन्तु दुःखदम् ॥ इति कालभेदेन कालफलम् ।
वामे वा दक्षिणे वापि यत्राप्याक्रम्यते स्वरः । कृत्वा तत्पद-
माद्यच्च यात्रा भवति सिद्धिदा ॥ इति वहन्नाडीकस्य यात्रा-
फलम् ॥ चन्द्रः सम्पदकार्याणि रविन्तु विषमं सदा । पूर्ण-
पादं पुरः कृत्वा यात्रा भवति सिद्धिदा । सप्त पादाः शनौ शुके
ज्ञातव्याश्च विचक्षणैः । चन्द्रो रविपदं रुद्र ! कुजमन्दं तथैव
च । साङ्गं सदा गुरुपदौ ज्ञातव्यौ च विचक्षणैः ॥ इति वार-
भेदे पादयात्राभेदः ॥ लोकानां ग्रीष्मं गन्तुञ्च क्षणलायाङ्गमि-
ष्यते । परदले यथा ग्राह्यो हानिश्च कलहागमे । यदङ्गं
वहते नाडी ग्राह्यं गतिकरं नृणाम् । चन्द्रचारे चतुष्पादं
पञ्चपादञ्च भास्करे ॥ इति वारभेदे पादयात्राभेदः ॥

एवञ्च गमनं श्रेष्ठं साधयेद्भवनत्रयम् । यत्राङ्गे चरते वायुस्त-
दङ्गस्य करस्तथा । सुप्तोत्थितमुखं श्रेष्ठं लभते वाञ्छितं फलम् ।
न हानिः कलहो नैव कण्टकैर्नापि भिद्यते । निवर्त्तते सुखे-
न च सर्वोपद्रववर्जितः ॥ इति वहन्नाडीहस्तेन मुखमार्जन-
फलम् । गुरु बन्धुर्नृपश्चात्मा अन्येऽपि शुभदायिनः । पूर्णाङ्गे
खलु कर्त्तव्या कार्यसिद्धिर्मनोषिभिः । ऐतौ चौराम्बुवर्णाद्या
अन्येषाञ्चादिविग्रहः । कर्त्तव्या खलु रिक्तायां जयलाभः
सुखार्थिभिः । दूरदेशे निधातव्यं गमनन्तु हिमद्युतेः । तेभ्यो
न देयो दीप्ते च भवनावर्त्तनञ्च न । तत्किञ्चित् पूर्वमुद्दिष्टं
लाभादिसमरागमम् । तत्सर्वं पूर्वनाडीषु जायते निर्विकल्प-
कम् । शून्यं नाडीविपरीतं यत् पूर्वं प्रतिपादितम् । जायते

युर्वि-
रमवि
कणा-
रूपः
हासी
ग्री ।
हार-
वीन-
पार्श्व-
ला-
सी-
ज-
ति-
ला-
पते
ख-
दः
यं
।
।
।
।

नान्यथा चैव यथा सर्वज्ञभाषितम् । हव्यवाहे खलोच्चाटे
 देवविद्यादिवच्चके । कुपितः स्वादिठो वाद्याः पूर्णस्थाः सुभ-
 यङ्कराः ॥ इति पूर्णरिक्तफलम् ॥ दूराध्वनि शुभश्चन्द्रो निर्विघ्ने-
 ऽभीष्टसिद्धिदः । प्रवेशकार्यहेतुषु सूर्यः शीघ्रं प्रशस्यते ।
 चन्द्रचारौ विषं हन्ति सूर्ये बाला वशं नयेत् । सुषुम्नायां भवे-
 न्मोक्ष एको देवः स्थिरास्थितः । स योगी योगता नाडी योग-
 स्थानेऽपि योग्यता । कार्यानुबन्धनं जीवं कथमूढं समा-
 चरेत् । शुभाशुभानि कार्याणि क्रियतेऽहर्निशं यदा । तदा
 कार्यानुरोधेन कार्यं नाडीप्रचालनम् ॥ इति नाडीचालन-
 कारणम् । चालनन्तु गुरुतो ज्ञातव्यम् ॥

अथेडास्थिरकर्माणि दूराध्वगमने तथा । आश्रमे हर्म्ये प्रासादे
 वस्तूनां सङ्ग्रहेऽपि च । वापोऽक्षुपतङ्गादिप्रतिष्ठान्ते तु देवयोः ।
 याचादाने विवाहे च वस्त्रालङ्कारभूषणे । शान्तिकं पौष्टि-
 कञ्चैव दिव्योषधिरसायनम् । स्वामिसन्दर्शने यात्रावाणिज्या-
 नाञ्च सङ्ग्रहे । गृहप्रवेशे सेवायां कृषीणां वीजवापने । शुभ-
 कर्माणि सन्धौ च निर्गमे वा शुभः शशी ॥ इति कर्मविशेषे
 कर्मनाडीफलम् ॥ विद्यारम्भादिकार्येषु बान्धवानाञ्च दर्शने ।
 जनमुखे च धर्मं च दीक्षायां मन्त्रसाधने । कालव्याधि-
 चिकित्सायां स्वामिसम्बोधने तथा । गजाश्वारोहणे धन्वि-
 गजाश्वानाञ्च बन्धने । परोपकरणे चैव निधीनां स्थापने
 तथा । गीतवाद्यादिनृत्याद्यैर्गीतशास्त्रविचारणे । पुरग्राम-
 निवासे च तिलकच्छत्रधारणे । शान्तिशोके विषादे च
 स्मरिते मूर्च्छितेऽपि वा । स्वजने स्वामिसम्बन्धे धान्यादिर्दारु-
 सङ्ग्रहे । स्त्रिया आनन्दभूषाणां विष्टरागमने तथा । गुरु-
 पूजाविषादानाञ्चालनञ्च वरानने । । इडायां सिद्धिं प्रीतं
 योगस्थानादिकर्म च ॥ इति कर्मविशेषे नाडी ॥ तत्रापि

अर्जयेद्वायुस्तेज आकाशमेव च । सर्वकर्माणि मिथ्यन्ति दिवा
रात्रौ गतानि च । सर्वत्र शुभकार्येषु चन्द्रचारः प्रशस्यते ।

अथ पिङ्गला । कठिनक्रूरविद्यानां पठने पाठने तथा ।
स्त्रीसङ्गवेष्ट्यागमने महानौकादिरोहणे । इष्टकार्यं सुरा-
ग्राने वीरमन्त्र उपासने । बहुलध्वंसदेशादिविषदानादि-
वैरिणाम् । शास्त्राभ्यासे च गमने मृगादिपशुविक्रमे । इष्टका-
काष्ठपाषाणे रत्नघर्षणदारुणे । गोताभ्यासे यन्त्रतन्त्रे दर्श-
पर्वतरोहणे । द्यूते चौरगजाश्वादिरथवाहनसाधने । व्यायामे
मारणोच्चाटे षट्कर्मादिषु साधने । रक्षणीयक्षेत्रतालविश्व-
भूतादिसंग्रहे । खरोष्ट्रमहिषादीनां गजस्थारोहणे तथा ।
नदीजलौघतरणे क्षेपजे लेखने मण्ये । मारणं मोहनं स्तम्भ-
विधेषोच्चाटनं वज्रम् । प्राण आकर्षणे दाने चक्रविक्रयणे
तथा । खड्गहस्ते वैरियुद्धे भोगे वा राजदर्शने । भोजने
व्यवहारे च क्रूरे दीप्ते रविः शुभः । भुक्तमात्रे च मन्दाग्नौ
स्त्रीणां वश्यार्थकर्मणि । शयनं सूर्यवाहने कर्त्तव्यं सर्वदा
बुधैः । क्रूराणि सर्वकर्माणि चराणि विविधानि च । तानि
मिथ्यन्ति सूर्येण नात्र कार्या विचारणा । इति कर्मविशेषे
पिङ्गलाफलम् ।

अथ सुषुम्ना ॥ क्षणं वामे क्षणं दक्षिणे यदा वहति
मारुतः । सुषुम्ना सा च विज्ञेया सर्वकार्यहरा शुभा ।
तस्यां नाद्यां स्थितो बह्निर्ज्वलन्ति कालरूपिणः । विषमं तं
विजानीयात् सर्वकार्यविनाशनम् । यदानुक्रममुल्लङ्घ्य तस्यां
नाद्यां इयं वहति । तदा तस्य विजानीयादशुभं समुपस्थि-
तम् । क्षणं वामे क्षणं दक्षिणे वायुर्विषमं भावमादिशेत् । विप-
रीतफलं ज्ञेयं ज्ञातव्यञ्च वरानने । उभयोरिव सञ्चारी विषमं
तं विदुर्बुधाः । न कुर्यात् क्रूरसौम्यानि तत्सर्वं निष्फलं

वायुर्वि-
षमपि
कणा-
रूपः
हासी
शी ।
हार-
वीन-
साह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सवे
ल-
इः
पं ।

भवेत् । जीविते मारणप्रश्ने लाभालाभौ जयाजयौ । विषमे
वैपरीत्यस्य स स्मरेज्जगदौश्वरम् । ईश्वरं चिन्तितं कार्यं योगा-
भ्यासादिकर्म च । अन्यत् किञ्चिन्न कर्त्तव्यं जयलाभसुखा-
दिभिः । सूर्येण वहमानायां सुषुम्नायां मुहुर्मुहुः । शपं
दद्याद्वरं दद्यात् सर्वदा च तदन्यथा । नाद्यसंक्रमणे काले
तत्त्वसंक्रमणे तथा । शुभं किञ्चिन्न कर्त्तव्यं पुण्यदानादि
कोटिधा । विषमद्वितीयायां त्रिस्थोऽपि मनसापि न चिन्त-
येत् । यात्राहानिकरो तस्य मृत्युकाले न संशयः । पुरो-
नासोर्द्धतश्चन्द्रो दक्षोर्द्धे पृष्ठतो रविः । पूर्णारिक्तविवेकोऽयं
ज्ञातव्यो देशिकैः सदा । ऊर्ध्ववामाग्रतो द्रुतो ज्ञेयो वामपथि
स्थितः । पृष्ठे दक्षे तथाधस्तात् सूर्यवाहो गतो मतः ।
अनादि विषमं सन्धिनिराहारं निराकुलम् । परं सूक्ष्मं विली-
यन्ते सा सन्ध्या सन्धिरुच्यते । विषवत् सन्धिकाप्रश्नः सा सन्ध्या
सन्धिरुच्यते । न वेदं वेदमित्याह वेदो वेदो निगद्यते । पर-
मात्मा हि यत्रास्ति स वेदो वेद उच्यते । इति नाडीव्यसेद-
निर्णयः ॥

श्रीदेव्युवाच । देवदेव ! महादेव ! सर्वसंसारतारक ! ।
स्थितं त्वदीयहृदये रहस्यं वद मे प्रभो ! । श्रीशिव उवाच ॥
स्वरज्ञानरहस्यन्तु न किञ्चिदिष्टदेवता । स्वरज्ञानरतो योगी
स योगी परमो मतः । पञ्चतत्त्वाद्भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं विली-
यते । पञ्चतत्त्वात् परं तत्त्वं तत्त्वात्मानं निरञ्जनम् । तत्त्वानां
नाम विज्ञेयं सिद्धियोगिन योगिनः । भूतानां दुष्टचिह्नानि
जानन्ति हि सुरोत्तमाः । पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश
एव च । पञ्चभूतात्मकं सर्वं यो जानाति स पूजकः । सर्वलोकस्य
जीवेन न भेदं भिन्नतत्त्वकम् । भूर्लोकसत्यपर्यन्तं नाडी-
भेदं पृथक् पृथक् । भूर्लोको नाभिः सत्यं मस्तकं तत्र तल्लोका-

वस्थानात् । वामे वा दक्षिणे वापि उदयश्च प्रकीर्तितः ।
 अष्टधा धातुविज्ञानं शृणु वक्ष्यामि सुन्दरि ! । प्रथमे तत्त्व-
 संख्यायां द्वितीये श्वाससन्धिषु । तृतीये स्वरचिह्नानि चतुर्थे
 प्राणमेव च । पञ्चतत्त्वस्य वर्णः स्यात् षष्ठे च स्थानमेव च ।
 सप्तमे स्वादुसंयुक्तं अष्टमे गतिलक्षणम् । एवमष्टविधं प्राणं
 विषमं तत् चराचरम् । स्वरात्यरतरं देवि ! नान्यत् स्थातुं कदा-
 चन । निरीक्षितव्यं यत्नेन यदा प्रत्यूपकालतः । कालस्य
 वच्चनार्थाय कर्म कुर्वन्ति योगिनः । श्रुत्योरङ्गुष्ठयोर्मध्याङ्गु-
 र्नासापुटद्वये । वदने प्रान्तगोपान्तेऽङ्गुलं देशे दृग्द्वयोः ।
 अस्या भूतपृथिव्यादि तत्त्वज्ञानं भवेत् क्रमात् । पीतश्वेतरुण-
 श्यामविन्दुभिर्निरुपाधिकम् । दर्पणे च समालोक्य तत्र श्वासं
 विनिक्षिपेत् । आकारन्तु विजानीयात्तत्त्वभेदं विचक्षणः ।
 इति भूतप्रक्रिया ॥ चतुरस्रमर्द्धचन्द्रं कौण्ड्यं वर्तुलसम्मितम् ।
 विन्दुभिस्तु न विज्ञेयं साकारैस्तत्त्वलक्षणम् । मध्ये अर्द्धञ्च
 पश्चादर्द्धञ्च वहतेऽनलः । तीर्थवायुप्रवाहञ्च नभो वहति संक्रमे ।
 इति भूतज्ञानप्रकारः । आपः श्वेताः क्षितिः पीता रक्तवर्णा
 हुताशनः । मारुता नीलजौभूता आकाशं सर्ववर्णकम् । इति
 भूतरूपाणि । स्कन्धद्वये स्थितो वज्रिर्नाभिमूले प्रभञ्जनः ।
 जानुदेशे क्षितिस्तोयं पादान्ते मस्तके नभः ॥ इति स्थान-
 विशेषस्थतत्त्वेन भूतज्ञानम् ॥ मन्त्रोयं मधुरस्वादुः काषायं मधुरं
 जलम् । तिक्तं तेजः समीरोऽम्बमाकाशं कटुकं तथा ।
 इति भूतरसाः । अष्टाङ्गुलं वह्नेदायुरनलश्चतुरङ्गुलम् । द्वाद-
 शाङ्गुलं माहेयं षोडशाङ्गुलं वारिणः । इति भूतगतिः । ऊर्ध्व-
 मृत्युरधः शान्तिस्तिर्यग्गुञ्जाटनं तथा । मध्ये स्तम्भं विजानी-
 यान्नभः सर्वत्र मध्यमम् । पृथिव्यां स्थिरकर्माणि चरकर्माणि
 वारुणे । तेजसि क्रूरकर्माणि मारुणोञ्जाटनेऽनिले । व्योम्नि

पृथिवि-
 रमपि
 कणा-
 रूपः
 हासी
 शी ॥
 द्वार-
 वीन-
 पाद-
 ला-
 शो-
 ज-
 ति-
 ला-
 मते
 ल-
 इ-
 प्र-
 तः
 तः
 तः
 तः
 तः

किञ्चिन्न कर्त्तव्यं मध्यमी योगसेवया । इति भूतविशेषे षट्-
 कर्मविशेषः । शून्ये तु सर्वकार्येषु नात्र कार्या विचारणा ।
 पृथ्वीजलाभ्यां सिद्धिः स्थान्मृत्युवङ्गी ज्योतिर्निले । नभस्य
 निष्फलं सर्वं ज्ञातव्यं तत्त्ववेदिभिः । चिरलाभा चित्तिर्ज्ञेया
 तत्क्षणात्तोयतत्त्वतः । हानिः स्वाद्विद्भिवाताभ्यां नभस्य
 विफलं लभेत् । पीतस्थौर्णैर्मध्यवाहौ तनुपौर्ववद्भृतिः ।
 कवोष्णः पार्थिवो वायुः स्थिरकार्यप्रसाधकः । अधोवाहौ
 गुरुध्वानः शोभ्रगः शौणभासितः । यः षोडशाङ्गुलो वायुः
 स पापः शुभकर्मकृत् । आवर्त्तगश्च चोष्णश्च स्वर्णभक्षतुर-
 ङ्गुलः । ऊर्ध्ववाहौ च यः क्रूरकर्मकारी च तैजसः । उष्णशीतः
 कृष्णवर्णस्तथ्यग्नाम्यष्टमाङ्गुलः । वायुः पवनसमो ज्ञेयश्चर-
 कर्मसु सिद्धिदः । यः समीरस्य पवनः सर्वतत्त्वगुणावहः ।
 आवर्त्तं तं विजानोयाद् योगिनां योगदायकम् । पीतश्चैव
 चतुष्कीर्णं मधुरं मध्यमाश्रितः । भोगदं पार्थिवं तत्त्वं प्रवाहे
 द्वादशाङ्गुलम् । श्वेतमर्जुन्दुसङ्काशं स्वादुकाषायमादकम् ।
 लाभकृद्धारुणं तत्त्वं प्रवाहे षोडशाङ्गुलम् । रक्तत्रिकोणतिक्तः
 स्यादूर्ध्वमागप्रवाहकः । दीप्तश्च तैजसं तत्त्वं प्रवाहे चतुर-
 ङ्गुलम् । नीलश्च वर्तुलाकारं स्वाद्वक्त्रं तोर्यगाम्रितम् ।
 चपलं मारुतं तत्त्वं प्रवाहेऽष्टाङ्गुलं स्मृतम् । वर्णाकारं
 स्वादुवहमव्यक्तं सर्वगामिनम् । मोक्षदं नाभसं तत्त्वं सर्वकार्येषु
 निष्फलम् ॥ इत्यङ्गनिविशेषगत्या भूततत्फलम् ॥

पृथ्वीजले शुभे तत्त्व तैजो मिश्रफलोदयम् । हानिमृत्युकरी
 पुंसामुभौ च व्योममारुतौ । अपूर्वपश्चिमे पृथ्वौ तैजश्च दक्षिणे
 तथा । वायुश्च उत्तरे ज्ञेयो मध्यकोणगतं नभः । चन्द्रे पृथ्वी-
 जले स्यातां सूर्य्यं अग्निर्यदा भवेत् । तदा सिद्धिर्न सन्देहः
 सौम्ये सौम्येषु कर्मसु । लाभः पृथ्वीकृतो न स्याद्विशयां

मिदं भवेत् । इति पञ्चभूतेषु शब्दादिगुणपरिमाणम् ॥ यत्कार-
कत् प्रस्फुटिता विदीर्णा अतीता धरा । ददाति सर्वकार्येषु
अवस्थासदृशं फलम् । इति पृथिव्यवस्था । धनिष्ठा रेवती
ज्येष्ठानुराधा अरुणा तथा । अभिजिच्चोत्तराषाढा पृथ्वीतत्त्व-
मुदाहृतम् । पूर्वाषाढा तथाश्लेषा मूलार्द्रा चैव रोहिणी । उत्तर-
भाद्रपदा तोयं आपस्तत्त्वन्वभीष्टदम् । भरणी कृत्तिका पुष्या
मघा पूर्वा च फल्गुनी । पूर्वभाद्रपदास्वाती तेजस्तत्त्व-
मिति प्रिये ! । विशाखोत्तरफल्गुन्यौ हस्ता चित्रा पुनर्वसुः ।
श्रविणी मृगशीर्षा च वायुस्तत्त्वमुदाहृतम् ॥ इति पञ्चभूत-
नक्षत्राणि ॥ बह्वन्नाडीस्थितो भूतो यदि पृच्छेच्छुभाशुभम् ।
तत् सर्वं सिद्धिमायाति शून्ये शून्यं न संशयः । इति पूर्णनाद्या-
दिगतस्य प्रश्नफलम् ॥ तत्त्वैरामो जयं प्रापः सतत्त्वे च
धनञ्जयः । कौरवा निहताः सर्वे मूर्खतत्त्वविपर्यये । जन्मान्तरस्य
संस्कारात् प्रसादादथवा गुरोः । कैश्चित्तु ज्ञायते तत्त्वं वासना-
विमलात्मभिः । कायनगरमध्ये तु मारुतो रक्षपालकः । प्रवेशे
दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशाङ्गुलम् । गमने च चतुर्विंशं
नेत्रवेदाश्च धावने । धावने जवेन गमने । मैथुने पञ्चषष्टिश्च
शयने च शताङ्गुलम् । प्राणस्य सा गतिर्देवि ! स्वभावाद् द्वाद-
शाङ्गुला । भोजने वचने चैव गतिरष्टादशाङ्गुला ॥ इति कार्य-
विशेषे प्राणानां वह्निर्गतिनिर्णयः ॥

एकाङ्गुलिकृते न्यूने प्राणनिष्कामता मता । आन-
न्दस्तु द्वितीये च कविशक्तिस्तृतीयके । वाचाशक्तिश्चतुर्थे
तु दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे । षष्ठे आकाशगमनं खण्डवेगश्च
सप्तमे । अष्टमे सिद्धयश्चाष्टौ नवमे निधनं न च । दशमे
दशमूर्तिः स्याच्छायाणां एकादशे । द्वादशे हंस-
चारश्च गङ्गास्यतरसं पिबेत् । आनखाय प्राणपूरकस्य

भक्ष्यञ्च भोजनम् । एवं प्राणविधिः प्रोक्तः सर्वकार्यफलप्रदः ।
ज्ञातव्यो गुरुवाक्येन न विद्याशास्त्रकोटिभिः । प्रातश्चन्द्रो
रविः सायं यदि दैवेन लभ्यते । मध्याह्ने मध्यरात्री च परं
तत्त्वं प्रवर्तते । दूरयज्ञे जयी चन्द्रः समासन्ने दिवाकरः ।
यात्रादाने विवाहे च प्रवेशे नगरादिके । शुभकार्येषु सर्वेषु
चन्द्रचारः प्रशस्यते ॥ अयनतिथिदिनेशस्तूपतत्त्वेन युक्ती
यदि वहति कदाचिद्दैवयोगेन पुंसः । स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भ-
मात्रे स्वरेण प्रभवति स च विज्जः केशवस्यापि लोकम् ॥ जीववत्त्वे
जीववत्त्वं जीवाङ्गे परिधाय च । जीवो जयति यो युद्धे जीवो
जयति मेदिनीम् । भूमौ जले च कर्त्तव्यं गमनं शस्त्रिकर्म-
सु । वज्रिवायुप्रदीपेषु पुनर्नैव भविष्यति । इति तत्त्वविशेषेण
गतेः शुभाशुभफलम् ॥

जीवेन शस्त्रं बध्नीयात् जीवेनैव विकाशयेत् । जीवे
च प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वथा । आकर्षे प्राणपवनः
समासे हेतुवाहनः । समोत्तरे पदं दद्यात् सर्वकार्याणि
साधयेत् । अपूर्णे शत्रुसंग्रामे पूर्णं वसु वनं तथा । कुरुते
पूर्णतत्त्वस्थो जयत्येको वसुन्धराम् । या नाडी वहते चाङ्गे
तद्वामे व्याधिदेवता । सन्मुखेऽपीदृशी तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ।
आदौ च कुरुते मुद्रां पश्चादयुद्धं समाचरेत् । सर्वमुद्रा कृता येन
तेषां सिद्धिर्न संशयः । यन्त्रप्रवाहेऽपि यथा सूर्यावाहे भटाः
समाः । जाते हि योधकामः समीरणतत्त्वयोर्वादम् । स प्रापित
एषु नीतस्य न प्रातःकालद्वीटा । यदि सम्बहे वायुयुद्धं यदा
तदा सदापेतः ॥ जयत्येव न सन्देहः शत्रुश्च यदि चाग्रतः ।
यत्न नाद्यां वह्नेदायुस्तदंशं प्राणमेव च । आकृष्य गच्छेत्
कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम् । प्रतिपच्चं यदारभ्य पूर्णो ज्ञेयोऽभि-
रक्षितम् । न तस्या रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते । अङ्गुष्ठ-

युधि-
रमपि
कथा-
रूपः
डासी
शी ।
हार-
मीन-
गार्ह-
ला-
सो-
ज-
ति-
ता-
ति-
ल-
द्रः
पं
र

तर्जनौमध्ये पादाङ्गुष्ठे तथा धनुः । युद्धकाले च कर्तव्यं लक्ष-
योधजयो भवेत् । निशाकरे रवौ चारे मध्ये यस्य समोरणः ।
स्थितो रक्षेद्दिगन्तानि जयाकाङ्क्षी नरः सदा । श्वासप्रवेशकाले
तु दूतो जल्पति वाञ्छितम् । तस्यार्थाः सिद्धिमायान्ति निर्ग-
मणैव सुन्दरि ॥ इति श्वासप्रवेशकाले प्रश्नफलम् ॥

लाभादौनि स्वकार्याणि पृष्ठानि कौर्त्तितानि च । सजीवे
सति सिध्यन्ति हानिर्निःसरणे भवेत् । नरो दक्षः स्वकीयश्च
स्त्रिया वामः प्रशस्यते । कुम्भको युद्धकाले च तयो नाडी स्त्रियो
गतिः । हकारस्य सकारस्य विना भेदं स्वरः कथम् । सोऽहं हंसः
पदेनैव जीवो जपति सर्वदा । वामे वा यदि वा दक्षे यदा
पृच्छति पृच्छकः । तत्र घातो न जायते शून्ये घातं विनिर्दि-
शेत् । भूरात्मनो भवेद्घातः पदस्थानं जले भवेत् । ऊरुस्थले-
ऽग्निर्भवनं कटिस्थानेन वायुना । शिरःस्थान्मखतत्त्वेन ज्ञातव्यो
घातनिर्णयः । एवं पञ्चविधो घातः स्वरप्रश्ने
प्रकाशितः । इति तत्त्वेन घातस्थाननिर्णयः ॥ युद्धो-
दये कृतप्रश्ने पूर्णस्य प्रथमो जयः । रिक्ते चैव द्वितीयेषु जयो
भवति नान्यथा । पूर्णनाडीगतप्रश्ने शून्ये गततदग्रतः ।
शून्यस्थानेऽग्रतः शत्रुस्त्रियते नात्र संशयः । वामाचारं
समा नासा यस्य तस्य जयो भवेत् । पृच्छको दक्षिणे भागे
विजयो दक्षिणा शिरा । यदि पृच्छति चन्द्रस्थस्तदा सम्मान-
मादिशेत् । पृच्छेद् यदा तु सूर्यस्थस्तदा जानीहि विग्रहम् ॥
इति वामदक्षिणभेदेन प्रश्ने सन्धिविग्रहकथनम् ॥

पार्थिवे च भवेद् युद्धं सन्धिर्भवति वारुणे । जयो हि तैजसे
भङ्गो मृत्युर्वायो च नाभसे । इति तत्त्वविश्लेषेण युद्धादिज्ञानम् ॥

निवर्त्तिकाप्रमादाद्वा यदा न ज्ञायतेऽनिलः । प्रश्नकाले यदि
कुर्व्याद् बद्धयुद्धेन बुद्धिमान् । निश्चला धारणां ज्ञात्वा पुष्पहस्तो

निपातयेत् । पूर्णाङ्गे पुष्पपतनं शून्ये वा तत्फलं वदेत् ।
तत्फलं पूर्णरिक्तफलम् । तिष्ठन्नुपविशन् वापि प्राणमाकर्षय-
न्निजम् । मनोभङ्गः कृतो येन सर्वकार्येषु जीर्वात । जीवेन
स्थापयेद्वायुजीविनावस्थयेत् पुनः । जीवेन क्रियते नित्यं
युद्धे जयति सर्वथा । स्वरञ्जानी फलादग्रं निष्फलं कोटिधा
भवेत् । इह लोके परैर्णैव स्वरञ्जानो बलौ सदा । दशशता-
युतं लक्ष्मीर्दशभिधचलं क्वचित् । शतक्रतुः सुरेन्द्राणां बलं
कोटिगुणं भवेत् । श्रीदेव्युवाच । परस्परं मनुष्याणां युद्धे
प्रोक्ता जयस्तथा । समे युद्धे समुत्पन्ने मनुष्याणां कथं जयः ।
श्रीशिव उवाच । ध्यायेत्तत्त्वं स्थिरं जीवं जुहुयात् स्थिरमङ्ग-
मम् । इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभो जयस्तथा । निराकारं
समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् । तस्याकारं निराकारं ज्ञानं
भवति तन्मयम् ॥ इति ज्ञानयुद्धविजयप्रकरणम् ॥

अथ वशीकरणम् ॥ श्रीदेव्युवाच । नरयुद्धं हिमयुद्धं
त्वयोक्तञ्च महेश्वर ! । इदानीं वद देवेश ! वशीकरणमुत्तमम् ।
श्रीशिव उवाच । चन्द्रसूर्येण चन्द्रस्य स्थापयेज्जीवमण्डले ।
आजन्मवशगा वामा कथितोऽयं तपोधनैः । जीवेन गृह्यते जीवां
जीवी जीवस्य दीयते । जीवस्थानगतो जीवो बालाजीवाशुका-
रकः । रात्रस्तयामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने । ब्रह्मवोजं
पिबेद् यस्तु बालाजीवहरस्तु सः । अष्टाक्षरं जपित्वा तु
तस्मिन् काले रते सति । तत् क्षणाद्दीयते चन्द्रो मोहमायात
कामिनो । समये वा प्रसङ्गे वा युवत्यालिङ्गनेऽपि वा । तत्-
क्षणाद्वाप्येदाशु मोहयेत् कामिनीन्तु सः । यः सूर्येण पिबे-
च्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः । शिव आलिङ्गते शक्त्या प्रसङ्गे दक्षिणे-
ऽपि वा । सप्त नव त्रयः पञ्च रवौ सङ्गस्तु सूर्यके । चन्द्रे दिवा-
तुरीयाष्टे वश्या भवति कामिनो । सूर्याचन्द्रौ समौ कृत्वा सर्वा-

युर्वि-
रमपि
कथा-
रूपः
हासी
श्री ।
हार-
वीन-
गार्ह-
ला-
शो-
ज-
ति-
हा-
ते
ल-

इः
पि
ते
पि
पि

कृत्यधरोष्ठयौः । महापद्मे सुखं प्रोच्य वारं वारमिदं चरेत् ।
अध्यानमिति पादस्थ यावन्निद्रावशं गता । पश्चाज्जाग्रतवेलायां
चोत्थते गलचक्षुषौ । अनेन विधिना कामी वशयेत् सर्व-
कामिनीः । इदं वचनमन्यास्मिन् इत्याज्ञा परमेश्वरि ! ॥
इति वशीकरणम् ॥

अथ गभप्रकरणम् । ऋतुकाले भवेन्नारी पञ्चमेऽङ्गि यदा
शुचिः । सूर्यावन्दमसौ योगी जीवेन पुत्रसम्भवः । शङ्खा-
वली गवां दुग्धं पृथ्वधो वहते यदा । भर्तुरग्रे वदेद्वाक्यं गर्भं
देहि त्रिभिर्बचः । ऋतुस्नाता पिबेन्नारी ऋतुदानन्तु योजयेत् ।
रूपलवण्यसम्पन्नं नरसिंहं प्रसूयते । सुषुम्नासूर्यगन्धेन
ऋतुज्ञानन्तु योजयेत् । अङ्गहीनः पुमांस्तत्र जायते कृमि-
ग्रहः । विषमाङ्गे दिवा रात्रौ विषमाङ्गे दिनाधिपः । चन्द्र-
नेत्राग्नितत्त्वेषु बन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् । रत्नारम्भे रविः पुंसां
रत्यन्ते च सुधाकरः । अनेन कर्मयोगेन नादण्डे देवदण्डकः ।
रत्नारम्भे रविः पुंसां स्त्रियाश्चैव सुधाकरः । उभयोः सङ्गमे
प्राप्ते बन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ इति पुत्रकन्याजन्मनिदानम् ॥
चन्द्रनाडौ वहेत् प्रश्ने गर्भं कन्या यदा भवेत् । सूर्ये भवेत्तदा
पुत्रो द्वयोगेर्भा विहन्यते । चन्द्रः स्त्री पुरुषः सूर्या मध्यमार्गे
नपुंसकः । शून्ये शून्यं युगे युग्मं गर्भपातश्च संक्रमे । सूर्य-
भागे कृते पुत्रश्चन्द्रवारि तु कन्यका । विषमे गर्भपातः स्याद्द्व-
योरथ नपुंसकः । तत्त्वैरथ विजानीयात् कथितं तत्तु सुन्दरि ! ॥
इति प्रश्ने गर्भं पुत्रादिज्ञानम् ॥ गर्भाधानं मारुते स्यात्
सुदुःखी दिव्ये ख्यातो वारुणे सौख्ययुक्तः । गभसावः स्वल्पजीवो
च बह्वो भोगी भव्यः पार्थिवेऽनर्थयुक्तः ॥ धनवान् सौख्ययुक्तश्च
भागवान् गर्भसंस्थितः । सोत्तमो वरुणे तत्त्वे व्योम्नि गर्भो
विनश्यति । माहेन्द्रे जायते पुत्रो वरुणे दुर्घृता भवेत् ।

प्राणतोषिणी ।

स्थितो जीवस्तत्रस्थः परिपृच्छति । तदा जीवति जीवोऽसौ
यदि रोगैरुपद्रुतः । दक्षिणे यदि वा वामे दुःखरौद्राक्षरो
वदेत् । तदा जीवति जीवोऽसौ चन्द्रः समफलः क्रमात् ।
जीवाकारे च वृद्धात्मा जीवाकारं विलोक्य च । जीवस्थो
जोवितप्रश्ने तस्य स्यात् जीवितं फलम् । वामाचारस्तदा
दत्ते प्रवेशे यत्र वाहने । तत्रस्थः पृच्छते दूतस्तस्य सिद्धिं
संशयः । प्रश्ने चाधःस्थितो जीवो न्यूनं जीवो हि जीवति ।
ऊर्ध्वाचारस्थितो जीवो जीवो याति यमालयम् । विपरीता-
चारप्रश्नं रिक्तायां पृच्छको यदि । विपर्ययश्च विज्ञेयो विषम-
स्थोदये सति । चन्द्रस्थाने स्थितो जीवः सूर्यस्थाने च
पृच्छकः । तदा प्राणविमुक्तोऽसौ यदि रोगैरुपद्रुतः । पिङ्ग-
लायां स्थितो जीवो वामे दूतस्तु पृच्छति । तदापि म्रियते रोगी
यदि वाता महेश्वरः । एकस्य भूतस्य विपर्ययेण रोगाभिभू-
तिर्भवतीह पुंसाम् । तयोर्द्वयोर्बन्धसुहृद्विपत्तिः पक्षत्रयव्यत्यय-
तो मृतिः स्यात् ॥

अथ कालज्ञानम् । मासादौ वत्सरादौ तु पक्षादौ च
यथाक्रमम् । ज्ञेयं कालं परीक्षित वायुचारबलात् सुधीः ।
पञ्चभूतात्मकं दीपं शशिस्रहेन सिञ्चितम् । रक्षयेत् सूर्यवातेन
तेन जीवः स्थिरो भवेत् । मारुतं बन्धयित्वा तु सूर्यं बन्धयते
यदि । अभ्यासाज्जोवितो जीवः सूर्यकालेऽपि वञ्चते । गग-
नात् स्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिञ्चयेत् । शशाङ्कं वारयेद्रात्रौ
दिवाचक्षुर्यो दिवाकरः । इत्यभ्यासे ततो नित्यं स योगी नात्र
संशयः । अहोरात्रं यदैकत्रं वहते यस्य मारुतः । तदा तस्य
भवेदायुः सम्पूर्णं वत्सरत्रयम् । अहोरात्रद्वयं यस्य पिङ्गलायाः
सदागतिः । तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ।
त्रिवारं वहते यस्य पिङ्गलायां सदागतिः । तदा संवत्सरं

चायुः प्रवदन्ति मनोषिणः । सदागतिर्वायुः । रात्रौ चन्द्रो
दिवा सूर्या वह्नेदु यस्य निरन्तरम् । जानीयात्तस्य वै सत्युः
षण्मासाभ्यन्तरे भवेत् । एकादिषोडशाहानि यदि भानुनिर-
न्तरम् । वह्नेदस्य च वै सत्युः शेषाहेन च मासिके । सम्पूर्णं
वहते सूर्यश्चन्द्रमाश्च न दृश्यते । पक्षेन जायते सत्युः काल-
ज्ञानेन भाषितम् । सम्पूर्णं वहते चन्द्रः सूर्या नैव च दृश्यते ।
मासेन जायते सत्युः कालज्ञानेन भाषितम् । मूवं पुरोषं
यस्यैव समकाले प्रवर्तते । तदासौ चलितो ज्ञेयो दशाहे स्त्रियते
ध्रुवम् । अरुन्धतो ध्रुवश्चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च । गता-
युषो न पश्यन्ति चतुर्थं माहमण्डलम् । अरुन्धतो भवेज्जिह्वा
ध्रुवो नासाग्रमेव च । भ्रुवौ विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं माहमण्ड-
लम् । नवध्रुवं सप्तघोषं पञ्चतत्त्वां त्रिनासिकाम् । जिह्वा-
मेकविलां दृष्ट्वा स्त्रियते वा नरो ध्रुवम् । कोणमभ्याङ्गतुल्यन्तु
किञ्चित्पिण्डं निरौक्षयेत् । यदा न दृश्यते विन्दुर्दशाहेन
नरो मृतः ॥ इति कालज्ञानम् ॥

अथ नाडीज्ञानम् । इडा गङ्गेतिविज्ञानं पिङ्गला यमुना-
नदी । मध्ये सरस्वती ज्ञेया प्रयागो योगतस्त्रिभिः । आदौ साध-
नमाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् । बह्वपन्नासनो योगी विदध्या-
दुड्डियानकम् । पूरकं कुम्भकश्चैव रेचकश्च तृतीयकम् ।
ज्ञातव्यं योगिभिर्नित्यं देहसंसिद्धिहेतवे । पूरकं कुरुते
पृथ्वी धातुसाम्यं तथैव च । कुम्भकं स्तम्भनं कुर्यात् जीवरक्षा-
विवर्द्धनम् । रेचको हरते पापं कुम्भादयोगपदं व्रजेत् ।
पश्चात् संग्रामवन्तिष्ठेन्नतु बन्धे च कारयेत् । कुम्भ-
येत् सहजं वायुर्यथाशक्त्या प्रयत्नतः । रेचयेत् चन्द्र-
मार्गेण सूर्येण पूरयेत् सुधीः । चन्द्रमाः पिबते सूर्यं सूर्यः
पिबति चन्द्रकम् । अन्योन्यकालभावेन जीवेदाचन्द्रतारकम् ।

यत्राङ्गे वहते नाडी तन्नाडीबोधनं कुरु । मुखबद्धमुन्मोचयन् वै
 परानाज्ञाय तेषु वा । मुखनासिककर्णानामङ्गुलीभिर्निरुद्धयेत् ।
 तत्त्वोदयमिति ज्ञेयं सम्मुखीकरणं प्रिये ! । तस्य रूपगतं नेदं
 मण्डलीलक्षणविवर्तम् । यो वेत्ति मानवो लोके स क्षुद्रोऽपि-
 च योगवित् । निराशौर्निष्कलो योगो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
 वासनामुन्मनीकृत्य कालं जयति लीलया । यस्य या शंसिता
 शक्तिः सिद्धस्य गुणगङ्गारम् । ब्रह्मपद्मासनस्थो हि गुदवायुं
 निरुद्धयेत् । विमुञ्चेत् प्राणकायं कुम्भकलयमानिले ।
 शक्त्या प्राणि निरुद्धे विवरसुपगतं ब्रह्मचक्रे च
 नित्या निक्षेपाकाशमार्गं शिवचरणरता यान्ति ते केऽपि
 धन्याः ॥ एतज्जानाति यो योगो एतत् पठति नित्यशः ।
 सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वाञ्छितं फलम् । स्वरज्ञानं
 शिवे यस्य लक्ष्मीः पदतले भवेत् । प्राणवत् सर्वदेवानां
 ब्रह्माण्डे भास्करो यथा । मर्त्यलोकेऽयमापूज्यः स्वरज्ञानी
 पूमानपि । नाडीत्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च ।
 नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्ष्मकोटिरसायनम् । एकाक्षरप्रदातारं
 नाडीभेदेन भेदकम् । पृथिव्यां नास्ति तद्व्यं यद्वत्त्वा चाऋणौ
 भवेत् । स्वरतत्त्वं तथा युद्धं दिव्यवश्यत्रयन्तथा । एवं
 प्रवर्तते लोके प्रसिद्धं सिद्धियोगिभिः । एतत् तन्त्रं महा-
 भागे ! पठनात् सिद्धिदायकम् । सुस्थासनं समासीनो नौर-
 ज्ञायतलोचने ! । चिन्तयेत् परमात्मानं यो वदेत् स भवि-
 श्यति ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां षष्ठे ज्ञानकाण्डे स्वरज्ञानरूप-

शाखाकथनं नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥

अथ राजयोगः ॥ योगस्वरोदये । ईश्वर उवाच । राज-
 योगं प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वत्र सिद्धिदम् । गुह्याद्गुह्यतरं देवि !

विद्युत्कोटिसमप्रभा । भुक्तिमुक्तिप्रदा ध्यानादणिमादिगुण-
 प्रदा । सुषुम्नान्तः समाश्रित्य नवचक्रं यथा शृणु । मूला-
 धारं चतुष्पत्रं गुदीर्घं वर्त्तते महत् । तन्मध्ये स्पर्णपीठे तु
 त्रिकोणं मण्डलं परम् । तत्र वह्निशिखाकारा मूर्तिः सर्वत्र
 सिद्धिदा । अस्या ध्यानं मनोमध्ये विना पीठेन वाङ्मयम् ।
 सर्वशास्त्राणि सङ्घर्षं सदा स्फुरति योगवित् । लिङ्गमूले तु
 पीठाभं स्वाधिष्ठानन्तु षड्दलम् । तन्मध्ये बालसूर्याभं मह-
 ज्योतिः सुसिद्धिदम् । ध्यानाच्च वर्द्धते आयुः कन्दर्पसमतं
 व्रजेत् । तृतीयं नाभिदेशे तु दिग्दलं परमाद्भुतम् । महा-
 मेघप्रभं तत्तु, कोटिविद्युत्समन्वितम् । कल्पान्ताग्निसमं
 ज्योतिस्तन्मध्ये संस्थितं स्वयम् । तस्य ध्यानाच्चिरायुः स्याद-
 रोगो जगतां वरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो जगत्क्षोभकरो महान् ।
 अनाहतमष्टपीठं चतुर्थकमलं हृदि । सूर्यपत्रं महाज्योति-
 र्महासूक्ष्मन्तु चाक्षुषम् । सूर्यपत्रं द्वादशदलम् । तन्मध्येऽष्टदलं
 पञ्चमूर्ध्ववक्त्रं महाप्रभम् । प्राणवायोः स्थलच्चास्य लिङ्गाकारन्तु
 कर्णिका । कालिकाख्या कर्णिकेयं अस्या मध्ये तु कुण्डली ।
 पञ्चवत्याः प्रभाङ्गुष्ठप्रमाणा रत्नसन्निभा । तस्यासङ्गी जीव
 इति अनन्तो बलरूपतः । अस्य ध्यानं जगद्दृश्यं स्वेचरीसर्व-
 गो भवेत् । भवन्ति वक्ष्या देवाद्याश्चिन्ताकर्तुर्न चान्यथा ।
 इष्टानिष्टो भवेद्दृश्यः सत्यं सत्यं न संशयः । इष्टसिद्धिर्भवे-
 तस्य सर्वज्ञादिगुणोदयः । कलापत्रं पञ्चमन्तु विशुद्धं कण्ठ-
 देशतः । अस्य मध्ये पुमानेकः कोटिचन्द्रसमप्रभः । नश्यन्त्य-
 साध्यरोगा हि सहस्रायुश्च चिन्तनात् । आज्ञास्थं षष्ठकं चक्रं
 भुवोर्मध्ये द्विपत्रकम् । अग्निज्वालानिभं ज्योतिः पुंसः स्त्रीतो
 विवर्जितम् । ध्यानाच्चास्य सर्वसिद्धिरज्जराभरतां व्रजेत् ।
 चतुःषष्टिदलं तालुमध्ये चक्रन्तु मध्यमम् । पीयूषपूर्णं

च । मध्यलक्षस्तथा ज्ञेयोऽनन्तलक्षस्तथैव च । लक्ष्यं शृणु
 तेषां हि फलं ज्ञात्वा महेश्वरि । । आकाशे दृष्टिमास्थाय मन
 ऊर्ध्वं कारयेत् । ऊर्ध्वलक्षो भवेदेष परमेशस्य चैकता ।
 नामिकोपरि देवेशि ! द्वादशाङ्गुलमानतः । दृष्टिः स्थिरा तु
 कर्त्तव्या अघो लक्ष्मिर्भू भज । अथवा नासिकाग्रे तु स्थिरा
 दृष्टिरियं भवेत् । स्थिरा दृष्टिश्चिरायुः स्यात्तथासौ स्थिरदृष्टिमान् ।
 बाह्यलक्षं स्वयं ज्ञेयं याति तत्त्वनिवासिनाम् । कामिनान्तु
 वह्निर्दृष्टिर्विन्तादिषु सुसिद्धिदा । एषा बाह्यमध्यलक्षा इष्ट-
 चिन्ता निराकुलम् । अन्तर्लक्षं शृणु शुक्रदिग्विदिगादिर्वार्ज-
 तम् । चलज्जाग्रत्सुषुप्तेषु भोजनेषु च सर्वदा । सर्वाङ्गस्थासु
 देवेशि । चित्तं शून्यं नियोजयेत् । कर्त्ता कारयिता शून्यः मूर्ति-
 मान् शून्य ईश्वरः । हर्षशोकघटस्थोऽयं जन्म मृत्युं लभेत् स्वयम् ।
 घटस्थाचिन्त्योर्मूर्तिर्हंतचिन्तास्वरूपपटक् । विषयं विषव-
 द्दुष्टं त्यक्त्वा ज्ञात्वा तु मारुतम् । संज्ञाशून्यमना मूर्त्वा पुण्य-
 पापैर्न लिप्यते । बाह्यमभ्यन्तरं खं हि अन्तर्लक्षमिति
 स्मृतम् । एतद्व्यानात् सदा किञ्चित् दुःखं न स्याच्छिवो
 भवेत् । शून्यन्तु सच्चिदानन्दं निःशब्दं ब्रह्मशब्दितम् । स-
 शब्दं ज्ञेयमाकाशमिति भेदद्वयन्निबह । इदानीं कथयिष्यामि
 राजयोगस्य लक्षणम् । राजयोगे कृते पुंभिः सिद्धिचिह्नं भवे-
 दिति । परिपूर्णं भवेच्चित्तं जगत्स्थोऽपि जगद्बहिः । न क्षोभो
 जन्म मृत्युश्च न दुःखं न सुखं तथा । भेदाभेदौ मनःस्थौ न ज्ञानं
 शीलं कुलं तथा । प्रकाशकुशलसम्बन्धिप्रसङ्गोऽयं निरन्तरम् ।
 सर्वप्रकाशकोऽसौ तु नष्टभेदादिरेव च । अस्य जाते न
 चिह्नञ्च निष्कलोऽयं निरञ्जनः । अनन्तोऽयं महाज्योतिर्वा-
 ङ्मभोगं ददाति च । अस्य चित्ते नानुरागो विरागो
 न भवेदिति । राज्ये प्राप्तेऽपि नो हर्षो हानौ दुःखं भवेन्नहि ।

क्वचिद्वस्तुनि देशस्य निःस्वने केषु कुत्रचित् । विद्याविद्या-
मित्यत्र तौ समा दृष्टिश्च सर्वशः । भोगासक्तादिकर्तृत्वेन मनो नो
भवेत् स्ववत् । लोकमध्ये भवेत् कर्ता मनोमध्येऽपि
निष्कृत्यः । एषोऽपि राजयोगीति सुखे दुःखे समस्तथा ।
हर्षशोकौ न जातेषां नोद्वेगो लोकसङ्गमे । नित्योक्तासे
निराकारे निरासने निरात्मनि । मनसा निश्चलो भूत्वा सदा
तिष्ठेत् समोऽपि च । यथाकाशे असन् वायुगाकाशं व्रजते
स्वयम् । तथाकाशे मनो लीनं राजयोगाक्रिया मता । जगत्-
संसर्गनिर्लेपं पद्मपत्रजलं यथा ॥

इदानीं हठयोगस्तु कथ्यते हठसिद्धिदः । कृत्वासनं पवनानां
शरीरे रोगहारकम् । पूरकं कुम्भकश्चैव रेचकं वायुना भजेत् ।
इत्थं क्रमोत्क्रमं ज्ञात्वा पवनं साधयेत् सदा । धौल्यादिकर्म्म-
षट्कञ्च प्रकुर्याद्वटसाधकः । एतन्नाद्यान् देवेशि । वायुपूर्णं
प्रतिष्ठितम् । ततो मनो निश्चलं स्थातत आनन्द एव हि । हठ-
योगान्न कालः स्यान्नानोनाशो भवेद् यदि । इदानीं हठयोगस्य
द्वितीयं भेदमच्छृणु । आकाशे नासिकायां तु सूर्यकोटिसमं
स्मरेत् । श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णमित्यादिरूपतः । एवं
ध्यात्वा चिरायुः स्यादङ्गाजननवर्जितम् । शिवतुल्यो महात्मासौ
हठयोगप्रसादतः । हठाज्ज्योतिर्मयो भूत्वा ह्यन्तरंग शिवो
भवेत् । अतोऽयं हठयोगः स्यात् सिद्धिदः सिद्धसेवितः ।
इदानीं ज्ञानयोगस्य लक्षणं कथ्यते शिवे । यज्ज्ञात्वा ज्ञान-
सम्पूर्णः शिवः स्यान्न पुनर्भवः । एकमेव जगत् पश्येद्विश्वात्मा
विश्वभावनः । इति कृत्वा तु वै युक्तो ज्ञानयोगं समाचरेत् ।
यत्र तत्र स्थितो वापि सर्वज्ञानमयं जगत् । य एवमस्ति
बोधेन सोऽपि ज्ञानाधिकारवान् । प्राप्नोति शाश्वतीमन्वान्
सदा नित्यपरायणः । यथा न्यग्रोधवीजं हि क्षितौ वप्नु-

पायुर्वि-
रमपि
कणा-
रूपः
हासी
शी ।
प्रहार-
वीन-
सार्ध-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
दः
धं
तु
ताः
ति-
ताः

द्रुमायते । आदावेकस्ततोऽनेकः स्वभावाच्छादनादिभिः ।
 वर्धतेऽहर्निशं वृक्षः पत्रपल्लवविस्तृतः । स्नेहपुष्पफलैर्वोजै-
 विस्तारोऽयं स्वभावतः । तथासौ निर्मलो नित्यो निर्विकारो
 निरञ्जनः । एकोऽनेकः स्वयं भूयान् साधनाद् बहुधा स्थितः ।
 पञ्चतत्त्वमयो बुद्धिमायाहङ्कारविक्रियः । एवं बहुविधं
 विश्वं लोकालोकसुविस्तरम् । एकमेव न चान्योऽस्ति यो
 जानाति स तत्त्ववित् । स्थावराः पर्वताद्या हि जङ्गमाः
 खेचरादयः । जङ्गमस्थावराकारः संसारः स्यात् स ईश्वरः ।
 स्वभावलोलया भाति शून्योऽसौ शून्यबुद्धितः । यदृष्टं विषयं
 वस्तु तदृश्यमिति कथ्यते । यो दृष्टातीतः सोऽदृश्यस्तदा दृष्टं
 हि मन्यते । स्वतन्मूढमेवन्तु संसारं दुःखसङ्कुलम् । यत्नाद्दूरं
 परित्यज्य ज्ञानयोगो भवेत् सुधीः । ज्ञानसंयोग एकस्तु एकस्तु
 ज्ञानयोगवान् । अतो हि ज्ञानतोऽभिन्नं ज्ञेयं ज्ञानात् पृथक्
 पृथक् । दूरीकृत्यैवमापृष्वीभेदवाक्येन दर्शनात् । ज्ञानयोगी
 भवेद् येन ज्ञानयोगस्तु दैककः । एवं ज्ञानान्महेशानि !
 कालजित् शिवतां व्रजेत् । स्वभावभेदमेतत्तु शृणु देवि । प्रय-
 त्ततः । यच्छ्रुत्वा सर्वबोधः स्यात् मुक्तिदः सिद्धिवाञ्छितः ।
 आत्मनो वा पृथिव्याद्याः स्वभावः किञ्चिदुच्यते । आत्मैव पृथिवी
 धात्री कोमला च क्वचिद्दृढा । क्वचिन्मनोहरा सा च विमला
 च मलामला । दुर्गन्धा च सुगन्धा च निर्गन्धा गन्धमोहिनी ।
 स्वर्णरूपा धातुरूपा चित्रा रत्नमयी परा । क्वचित् श्वेता
 क्वचिद्रक्ता क्वचित् पीता च कृष्णला । ऊषरा ऊर्वरा सा तु
 विषामृतमयो सदा । तथा च देवगन्धर्वकिन्नराद्याः स्वगा-
 दयः । सुखसम्पिण्डतो रोगी तथैव क्रोधशान्तधीः । अशे-
 षरूपबलितो नानाबुद्धिरतः स्वयम् । देवतत्त्वं भूतशक्त्या
 जीवसंज्ञा भ्रमात्मिका । ज्ञानयोगी निर्विकारो निस्ताप एक

पूजितः । जिह्वाग्रं प्रभवेद्विद्यां विना शास्त्रावलोकनात् ।
 मूलकन्दोऽथेतलतो ब्रह्मनाडीसमुद्भवा । श्वेतवर्णा ब्रह्मरन्ध्र-
 पथ्यन्तमेव तिष्ठति । एषा तु ब्रह्मरन्ध्राख्या तन्मध्ये वर्तते परा ।
 पञ्चतन्तुममाकारा कोटिसूर्यतडिग्रभा । चलत्यूर्ध्वं महा-
 मूर्तिरस्य ध्यानाद्भवेच्छिवः । अणिमाद्यष्टसिद्धिस्तु समग्रैश्च
 प्रसोदति । ललाटोपरि वा ध्यात्वा चन्द्रं वा ज्योतिरीश्वरम् ।
 नाशयेत् कुठरोगादीन् महायुष्मान् शिवः परः । श्रुवोर्मध्य-
 यवा ध्यात्वा अर्जन्तु तेज ईश्वरम् । स्थिरदृष्टौ राजपूज्यो जीव-
 न्मुक्तः शिवो यथा । आत्मानमात्मरूपं हि ध्यात्वा यो निष्क्रि-
 यो भवेत् । निराशी र्यततस्वोऽयं इतरो न नृपस्थितिः ।

इदानीं शृणु नाडीनां भेदं वक्ष्यामि सिद्धिदम् । मेरुवाञ्छे
 इडानाञ्चो पिङ्गलया समन्विता । सुषुम्ना भानुमार्गेण ब्रह्म-
 हारावधि स्थिता । सरस्वती सुगन्धा तु गान्धारी हस्ति-
 जिह्वका । ज्ञातव्या कर्णयोर्मध्ये नेत्रयोश्च तथान्तिमा ।
 पृषा चालम्बुषा चेति मूलस्था कुचचित् तथा । लिङ्गद्वारादिडा-
 मार्गं ब्रह्मस्थानावधि प्रिये ! । नाड्यन्तं प्रतिलोमेषु सहस्राणां
 द्विसप्ततिः । इदानीं देहमध्यस्थाः कथ्यन्ते दश वायवः ।
 कार्यकारणभावेन कथ्यन्ते तानि चिह्नतः । प्राणवायुर्हृदि
 स्थित्वा श्वासोच्छ्वासं करोति सः । असिकान्तं पीतमीशं
 करोति योगसंज्ञकः । अपानो गुददेशस्थः करोत्याकुञ्चनं स तु ।
 स्तब्धनञ्च तथापानः समानो नाभिमण्डले । तोषकादिपोष-
 कन्तु नाडीनां रुचिदायकः । दीप्ताग्निमध्येऽपि तथा समा-
 नाख्या महाधरा । तालुमध्ये उदानस्तु अश्नाति पिबतीति
 च । शरीरं सकलं व्याप्य व्यानवायुः प्रतिष्ठितः । शरीरे चालनं
 तेषु करोति स्थापयत्यपि । नेत्रमध्ये कूर्मनामा निमेषोन्मेष-
 छदयम् । उदारे नाग आख्यातः ऊर्ध्ववायुः प्रचालने । छकरः

क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भसि । धनद्वयः सच्चिदाकारो मृत-
देहं न सुञ्चति । यद्यपि सर्गकाण्डे सर्वमेतदुक्तं तथापि
कार्यकारणभावज्ञापनाय पुनर्निर्दिष्टमिति न पुनरुक्तम् ।

इदानीं मध्यलक्षन्तु कथ्यते सिद्धिकारकम् । श्वेतं रक्तं तथा
पीतं धूम्राकारन्तु नीलभम् । अग्निज्वालासमानाभा विद्यु-
त्युज्जसमप्रभा । आदित्यमण्डलाकारमथवा चन्द्रमण्डलम् ।
ज्वलदाकाशतुल्यं वा भावयेद्रूपमात्मनः । एतज्ज्योतिर्मयं देहं
मनोमध्यं तु लक्षयेत् । एतेषाञ्च कृते लक्षे नानादुःखं प्रण-
श्यति । मनसस्तु मलो याति महानन्दो भवेत्ततः । कथ्यते
तु देव्यधुनाकाशं पञ्चभिरलक्षणैः । आकाशन्तु महाकाशं परा-
काशं परात्परम् । तत्त्वाकाशं सूर्यकाशमाकाशं पञ्चलक्षणम् ।
सवाद्याभ्यन्तरे नित्यं निराकाशन्तु निर्मलम् । कर्तव्यं लक्ष-
माकाशं साधयेत् साधनं विना । घनान्तरालसदृशं पराकाशं
तथैव च । कल्पान्ताग्निसमं ज्योतिर्महाकाशं स्मरेत्तथा ।
कोटिकोटिप्रदोपात्रं तत्त्वाकाशं स्मरेत्तथा । सूर्यकाशं तथा
कोटिसूर्यविन्दुसमं स्मरेत् । सवाद्याभ्यन्तरे चैवमाकाशं
लक्षयेत्तु यः । शिववद्विहरेद्विहरे पापपुण्यविमर्जितः । एतेषा-
ञ्चैव लक्षणे कर्मद्वाराऽघमाहरेत् । नवचक्रं कलाधारं द्विलक्षं
व्योमपञ्चकम् । समग्रं यो न जानाति स योगी नामधारकः ।
षोडशाधारभेदन्तु शृणु देवि । विशेषतः । अङ्गुष्ठपादयोस्तेजः
सलक्षस्थिरदृष्टिमान् । पादाङ्गुष्ठे य आधारः प्रथमो योग-
तत्त्वतः । द्वितीयं पादमूलन्तु पादमूलपरं स वै । पादस्य
पाष्णीं संस्थाप्य बलवान् प्रभवेत्शुनिः । पादमूलेऽथवा पादा-
ङ्गुष्ठमूलं विधारयेत् । ततोयन्तु गुदाधारो गुदसङ्कोचन-
क्रिया । विकाशकुञ्चनं तस्य स्थिरवायौ च सत्युजित् । लिङ्गा-
धारं चतुर्थन्तु लिङ्गसङ्कोचनन्तु च । लिङ्गसङ्कोचनाभ्यासात्

सायुर्वि-
रिमपि
कषा-
ररूपः
हासी
शयी ।
प्रहार-
वीन-
सार्ध-
ाला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
ष्टः
सं
त-
त-
ताः
रि-
त-
ताः

पश्चिमादण्डमध्यगः । वचनाडीति तन्मध्ये पुनरभ्यसयं
 स्तथा । सञ्चारो वायुमनसोरतिसञ्चार इति त्रिधा । ग्रन्थितय-
 विभेदस्तु तद्भेदो ब्रह्ममार्गतः । ब्रह्मपद्मो वायुपूर्णो भूत्वा तिष्ठति
 योगिराट् । वीर्यं स्तम्भो भवेत्तेन साधयेत्तु सदा युवा ।
 मूलाधारं ब्रह्मपद्मं षट्पद्मे च तथा तथा । पञ्चमं जठराधारं
 तदा बन्धयति क्रमात् । मृत्युना भङ्गसिद्धोऽयं मृत्योरेव क्षय-
 ङ्करः । अनेन पश्चिमादूर्ध्वं वायुः कुर्याद्विशालधीः । बन्धोऽयं
 बुद्धिमनसोः पञ्चमाधारकालजित् । नाभ्याधारो भवेत् षष्ठ-
 स्तत्र प्राणं समभ्यसेत् । स्वयमुत्पद्यते नादो नादतो मुक्तिदन्ततः ।
 सप्तमो हृदयाधारस्तस्मिन् वायुनिबन्धनात् । ऊर्ध्ववक्त्राणि
 पद्मानि विक्रमन्ति महान् भवेत् । कण्ठाधारोऽष्टमस्तत्र
 कण्ठमङ्कोचलक्षणः । जालन्धराख्यो बन्धः स्यात्तस्मिन् सति
 मरुदृढः । नवमो घण्टिकाधारस्तत्र जिह्वाग्रमग्रतः । स-
 म्प्लिवत्यमृतं तस्माद् योगजिन्मृत्युजित्परः । दशमस्तालुका-
 धारस्तत्र जिह्वाग्रतः कृते । चलने दोहने चैव जिह्वा जडति
 लम्बिता । नासिकाप्राप्तजिह्वेयं तालुलग्ना भवेत्ततः ।
 एकादशी भवेज्जिह्वा तलजाधार ईश्वरि । जिह्वाग्रमग्रतः तस्मिन्
 पानीयं मधुरं भवेत् । तत्पौतेषु कविर्गीतिज्योतिष्कन्दो-
 विदां वरः । दन्ताधारो द्वादशेति सर्वरोगक्षयङ्करः । धारये-
 इत्ययोर्मध्ये जिह्वाग्रञ्च बलादपि । धृत्वार्धघटिकामात्रं सर्व-
 रोगन्तु नाशयेत् । नासाधारस्ततो ज्ञेयो नासालक्ष्म्योदशः ।
 मनःस्थिरकरो यस्तु वायुस्थिरकरो महान् । नासापुटे स्थिरा
 दृष्टिराधारोऽयं चतुर्दशः । कृतेऽस्मिन् स्वीयतेजः स्यात् प्रत्यक्षं
 षट्त्रिमासतः । पार्थिवं च्युटति क्षिप्रं प्रत्यक्षं स्वीयतेजसा । पञ्च-
 दशो भ्रुवोर्मध्ये स्थिरदृष्टिस्तथा ध्रुवम् । अस्मिन् दृष्टिः स्थिरा
 क्रोष्टिः किरणानि स्फुरन्ति हि । नेत्राधारः षोडशोऽयमङ्गुल्य-

श्रेष्ठं चालयेत् । पृथ्वीमध्ये तु यत्किञ्चिद्वर्त्तते जठरानलः ।
प्रत्यक्षं तद्भवेत्सर्वं तदाभ्यासान्न संशयः । सर्वज्ञः प्रभवेत्तेन
इति आधारघोडशः ॥

इदानीं योगमष्टाङ्गं शृणु लक्षणसंयुतम् । यमश्च
नियमश्चैव चासनं प्राणसंयमः । प्रत्याहारो धारणा च समा-
धिश्च विशेषतः । अष्टाङ्गयोग एभिस्तु चैतेषां लक्षणं शृणु ।
शान्तिः सन्तोष आहारो निद्रात्या मनसो दमः । शून्यान्तः-
करणश्चेति यमा इति प्रकीर्त्तिताः । चापञ्चस्तु दूरे त्यक्त्वा
मनःस्थेयं विधाय च । एकत्र मेलनं नित्यं प्राणमात्रेण
सा मतिः । सदोदासौनभावस्तु सर्वत्रेच्छाविवर्जनम् । यथा-
स्नामेन सन्तुष्टः परमेश्वरप्राप्तसः । मानदानपरित्याग एते तु
नियमा इति । आसनानि च तावन्ति यावन्तो जीवजन्तवः ।
प्राणायामस्त्रिधा चेति बहुधा प्रथमं शृणु । आसने प्राणसंयमे
न शक्ताः सुकुमारकाः । महापुण्यप्रभावेण शक्यते तु महा-
त्मना । इडां शशिप्रभां ध्यात्वा मन्देन्दुना तु पूरयेत् । पूर-
यित्वा यथाशक्ति ध्यानयोगी तु कुम्भयेत् । महाज्योतिर्मनो
भूत्वा वायुः पूर्णकलेवरः । शक्तिवासस्तु सन्दास्य रेच-
येद्वायुमर्हितः । पिङ्गलामर्कवर्णान्तु त्यजिद्वात्वा शनैः शनैः ।
अयं पतङ्गः काष्ठाग्निप्रत्यासेन पुनः पुनः । कृत्वा कले-
वरं शुद्धं कुर्यादुद्यत्तैर्नहात्मना । मनो निवार्य संसारे
विषयकार्थे तथैव च । मनोविकारभवश्चैव त्यक्त्वा शून्यमयो
भवेत् । प्रत्यहारो भवत्येव सर्वनिन्दाचमत्कृतः । ध्यानस्तु
द्विविधं प्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः । स्थूलं सन्तमयं विद्धि
सूक्ष्मस्तु सन्तवर्जितम् । समाधिर्निश्चला बुद्धिः स्वासोच्छ्वासादि-
वर्जितः । पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं शृण्विदानीं प्रयत्नतः ।
ब्रह्माण्डे सन्ति ये चाण्डाः पिण्डमध्येऽपि ते स्थिताः । तलं पादा-

वायुर्वि-
रिमपि
कणा-
ररूपः
हासी
गशी ।
प्रहार-
वीन-
साई-
ला-
गो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
क्षः
बं
र-
ताः
रि-
म-
ताः

कुष्ठतले तस्योपरि तलातलम् । महातलं गुल्फयोर्मध्ये गुल्फी-
 परिरसातलम् । सुतलं जङ्घयोर्मध्ये वितलं जानुमध्यकम् ।
 ऊर्वोर्मध्येऽतलं प्रोक्तं सप्तपातालमीरितम् । तलं तलातल-
 चेति महातलरसातलम् । सप्तपातालमित्तु सुतलं वितला-
 तलम् । इदानीं पिण्डमध्ये तु सप्तलोकं शृणु प्रिये ! । मूला-
 धारे तु भूर्लोको लिङ्गाग्रे तु भुवस्ततः । स्वर्लोको लिङ्गमूले तु
 मेरुमूले महस्तथा । मेरुच्छिद्रे जनोलोको मेरुनाद्यां तप-
 स्तथा । कमले मर्त्तण्डलोकस्तु इति लोकः पृथक् पृथक् ।
 भूर्भुवः स्वर्महश्चेति जनश्चैव तपस्तथा । सप्तमः सत्यलोकस्तु
 सप्तलोक इति स्मृतः । सप्तलोकैस्तु पातालैर्भुवनानि चतुर्दश ।
 अथ ब्रह्माण्डमध्यस्थाश्चत्वारो लोकपालकाः । पिण्डमध्ये तु
 तान् ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । इन्द्रो ब्रह्मा विष्णुरीशश्च-
 त्वारश्चात्मदेवताः । मूलाधारे चतुष्यत्रे गजारूढो महानिति ।
 सृष्टिकर्त्ता च तत्रैव स्वाधिष्ठाने महान् हरिः । मणिपूरे शूल-
 पाणिरष्टसिद्धीश्वरो महान् । तालुधारे तालुमध्ये ललाटे
 वक्षकण्ठके । शृङ्गाटिका कपाले च लम्बिका ब्रह्मरन्ध्रके ।
 नवचक्रमूर्ध्वचक्रञ्च त्रिकूटेत्येकत्रिंशतिः । ब्रह्माण्डानि वस-
 न्तीति ज्ञातव्यानि प्रयत्नतः । सप्त द्वीपानि कथ्यन्तेऽधुना तानि
 शृणु प्रिये ! । जम्बूद्वीपस्तु मज्जायां शाकद्वीपस्तु मध्यमः ।
 शाल्मद्वीपः शिरोमध्ये मांसमध्ये कुशस्तथा । त्वचि क्रौञ्चो
 लोममध्ये गोमयद्वीप ईरितः । नखमध्ये तथा खेतः सप्त-
 द्वीपा वसुन्धरा । जम्बूः शाकस्तथा शाल्मः कुशः क्रौञ्चश्च
 गोमयः । खेतः सप्तेति खण्डानि सप्तखण्डैर्वसुन्धरा । गुप्ताव्ये-
 नानि रूपाणि देहमध्ये स्थिराणि च । समुद्राः सप्त कथ्यन्ते
 पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः । लवणेषुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजला-
 नकाः । लवणं स्निग्धमध्ये तु इक्षूरक्तं मधु त्वचि । सर्पिर्मंदो

वसा मध्ये दधि क्षीरं ललाटके । वीर्यमध्येऽसृतो ज्ञेयः पादे
कूर्मः स्थितो महान् । इदानीन्तु नवद्वारे नव खण्डानि
संशृणु । पायादौ भारतं खण्डं काश्मीरं त्रिकमण्डलम् ।
द्विजखण्डमेकपादं खण्डं वक्ष्ये समण्डलम् । कैवर्त्तं गर्त्त-
गान्धारं नवखण्डमिति स्थितम् । इदानीं पर्वताश्चाष्टौ कथ्यन्ते
शृणु यत्नतः । मेरुदण्डे सुमेरुस्तु पीठमध्ये हिमालयः । वाम-
स्कन्धे तथा दक्षे मलयो मन्दराचलः । विन्ध्यस्तु दक्षिणे
कर्णे वामे मैनाक ईश्वरि । ललाटे मध्यदेशे तु श्रीशैलः परमे-
श्वरि । तथा ब्रह्मकपाटस्थः कैलासः पर्वतो महान् । सुमेरु-
हिमवान् विन्ध्यो मलयो मन्दरस्तथा । श्रीशैलो मैनाकश्चेति
कैलासोऽष्टौ च पर्वताः । अपरे पर्वताः सर्वे अङ्गुलीमध्य-
वासिनः । शरीरे नवनाडोऽस्या नर्मदा च महेश्वरि । इडायां
यमुना देवि ! पिङ्गलायां सरस्वती । सुषुम्नायां वहेद्गङ्गा चा-
न्योन्यासु च नाडिषु । गङ्गा सरस्वती गोदा नर्मदा यमुना
तथा । कावेरी चन्द्रभागा च वितस्ता च इडावती । द्विस-
प्रतिसहस्रेषु नद्यैनदपरिस्रवः । इतस्ततो देहमध्ये ऋक्षश्च
सप्तविंशतिः । योगाश्च राशयश्चैव ग्रहाश्च तिथयस्तथा । लह-
रीषु मौनमनी चावाहनं स्थापनं तथा । सर्वाङ्गेषु च देवेशि !
समग्रं ऋक्षमण्डलम् । त्रयस्त्रिंशत्कोटयस्तु निवसन्ति च
देवताः । तथा पीठानि सर्वाणि देहमध्ये स्थितानि च ।
हृदये व्योममध्ये तु अनन्ताद्यास्तु वासुकिः । उदरे व्योम-
मध्ये तु परे नागा वसन्ति हि । गन्धर्वकिन्नराः शूरा विद्याधरा-
प्सरदयः । अनेकतीर्थवर्णाश्च गुह्यकाश्च वसन्ति हि । अनन्त-
सिद्धयो बुद्ध्या प्रकाशो वर्तते हृदि । मेघस्य मण्डलं ज्ञेयम्
अश्रुपाते तथैव च । चन्द्रार्कौ नेत्रयोर्मध्ये जङ्घा लोमसु साक्षिणः ।
दृष्टुगुल्मादिकञ्चापि विश्वरूपं स्मरेत्ततः । समग्रदर्शना-

वायुर्वि-
रिमपि
कणा-
ररूपः
हासी
गशी ।
प्रहार-
विन-
सार्ध-
ला-
सो-
ज-
ति-
ला-
सने
ल-

ता
ता
ने
र-
ताः
रि-
ता
ता

भुक्तः स्वर्गभोगञ्च मत्सुखम् । तदेतच्चिन्तया याति रोगशोक-
 विवर्जितः । यत्कर्मा कर्मणा शङ्का मनोमध्ये भवेद्वहिः । तत्-
 कर्मकरणं मुक्तिरित्याह भगवान् शिवः । यस्य दर्शनमात्रेण
 रोगशोकविवर्जितः । परमानन्दचित्तः स्यात्तपस्वी चैव
 कीर्तितः । सप्तद्वीपा भवेदृष्टा तत्त्वज्ञानं ततो भवेत् । सर्व-
 भावं विजानीयाद् वज्रदेहो भवेत्तथा । सर्पदष्टे विषं न
 स्यात् चुधा निद्रा लषा तथा । उष्णता शीतता चेति वाक्सि-
 द्धिः स्यान्न संशयः । विद्युत्पातिऽपि देहस्य क्वचिद्वानिर्न जायते ।
 ततोऽसौ वायुयोगी स्यादृष्ट्वा पृथ्वीकुलान्वितः । अणिमाद्यष्ट-
 सिद्धिः स्यान्महापद्मोदयस्तथा । आगच्छन्ति समीपे च
 निधयो नात्र संशयः । यत्रेच्छा गमनं तत्र स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
 स्फुरत्यान्नाख्यः सर्वत्र समीपे परमेश्वरः । कारणे हारणे
 शक्तौ रक्षणेऽपि च पार्वति । आत्ममध्ये मनो नित्यं निर्जने
 निवसेत् सुधीः । कृत्वात्ममनसोरैक्यं प्राप्नोति परमं पदम् ।
 चन्द्रः सूर्यः स्थिरो यावत् तावदेहस्थितिस्तथा । तावदेकं
 समाभाष्य प्राप्नोति च सदागतिः । स भवेत् कविता धीरा
 निश्चला शान्तिरेव च । गुरुपादप्रसादेन तदैक्यं याति सिद्धि-
 भाक् । अधुना कमलानान्तु शृणु सङ्केतमङ्गुतम् । अनेका-
 कारभेदोत्थं कं स्वरूपन्तु निर्मलम् । कमलं तेन विख्यातं
 त्रिविधं तत्त्वदेहकम् । तत्राधारश्चतुष्पत्रे सत्त्वरजस्तमोदयः ।
 एतद्भावस्थितश्चात्मा साध्वसाधुकारो भवेत् । अस्मिन् सति स्थिरे
 चित्ते यमो वन्द्यैव गच्छति । अनाहतो द्वितीयं यत्कथ्यते
 शृणु श्रद्धया । अनाहते महापौठे चतुरस्रसमन्वितम् । वर्त्ततेऽष्ट-
 दलं पञ्चमधोवक्त्रन्तु सत्पुर्णम् । स्पर्शशब्दरूपरसगन्धा बुद्धि-
 र्मनस्तथा । अहङ्कारः क्रमादेते तत्राष्टदलसंस्थिताः । सपर्या
 पृथगाकारा वर्त्तते तत्र निश्चितम् । ध्यानादात्मप्रकाशोऽस्य

प्रकाशं कमलं ततः । यथा सूर्यप्रकाशेन ऊर्ध्वं वक्त्रं प्रकाशितम् ।
 आत्मध्यानात् सदा तत्र आयुर्वृद्धिर्दिने दिने । शक्तिप्रसन्नता
 स्याच्च रोगशोकविवर्जितः । यस्य मुद्राभ्यासशाली सम्यक् सिद्धा
 च खेचरो । चिदानन्दमयं चित्तं चेतना चन्द्रिकान्विता ।
 परमात्मा महासूर्यः, सूर्य एकः प्रकाशकः । प्रकाशानन्दयोरैक्यं
 कर्त्तव्यञ्च निरन्तरम् । दीप्तस्तथा महाज्योतीरवि भाति परं
 पदम् । सदोदितं मनःसूर्यं चन्द्रज्योतिरिवेक्षते । तन्मध्ये
 नाभिकर्त्तते करणं नो कुलाकुलम् । अव्यक्तान्तु परं तत्त्व-
 मनित्वं वर्त्तते सदा । एको नाम पुमानस्ति तस्मात्तस्मात् परं
 पदम् । तस्मात्तु परमं शून्यं तस्मात् स्यात्तु निरञ्जनम् । एते
 पञ्चगुणोपेताः कथ्यन्ते तद्गुणं यथा । निर्गुणत्वं निर्मलत्वं
 परिपूर्णत्वमेव च । व्यापकत्वं केवलत्वं आनन्दस्य गुणा इति ।
 निराकारत्वनित्यत्वनिजत्वञ्च निरञ्जनम् । निष्किंकेतनता चेति
 तत्पदस्येति तद्गुणाः । स्निग्धताशौर्णतामूर्च्छातीयमण्ड-
 लता इति । गुणाः पञ्च समाख्याताः शून्यस्य परमस्य वै ।
 स्वभावं सहजं सत्यं शान्तिः शान्तिस्वरूपतः । इति ।
 निरञ्जनगुणाः पञ्च एतज्ज्ञानी महेश्वरः । विद्योत्पत्ति-
 स्तदानौन्तु कथ्यते शृणु यत्नतः । आनन्दपरमात्मैति
 परमानन्द एकतः । प्रबोधपरमानन्दचित्तोत्पत्तिप्रबोध-
 वान् । चिदुदयात् प्रकाशश्च एषां पञ्च तथैव च । अविनाशोऽ-
 चयोऽभेदोऽदाहो ह्यखाद्य एव च । एते पञ्च गुणाः प्रोक्ता
 अनादो नादवैरिणा । किरणस्फूर्तिर्विस्फूर्तिर्हृषवत् परमा-
 त्सना । तेतु पञ्च प्रकारेण गुणाः पञ्च प्रकीर्त्तिताः । विचा-
 रश्च प्रमील्लासा विभावश्च लयस्तथा । प्रबोधस्य गुणाः पञ्च
 कीर्त्त्यन्त तेन हेतुना । अभ्यासकर्तृकमनाः सर्वतत्त्वप्रभा
 तथा । चिदुदयस्य पञ्चेति गुणा ज्ञेया विशेषतः । बोधनं

आयुर्वि-
 त्तिमपि
 कणा-
 ररूपः
 हासी
 ताशी ।
 प्रहार-
 विन-
 साहं-
 ला-
 सो-
 ज-
 ति-
 ला-
 सते
 ल-
 दः
 शं
 त-
 ताः
 रि-
 म् ।
 ता

समयवच्च विस्मृतिः सकलप्रभा । प्रकाशस्य गुणाः पञ्च
 चैते ज्ञानकराः शुभाः । एतज्ज्ञाने ततश्चैषां ज्ञानमुत्पद्यते
 महत् । आकाशात् पवनो वायोस्तेजस्तेजस एव च । जलं
 जलात्तथा पृथ्वी एषां पञ्चगुणास्तथा । अगोचरादयानन्त-
 ग्राह्यमेषां तथात्मनः । सञ्चारश्चालनं शेषे पञ्चधून्नाभमम्बरे ।
 उष्मप्रकाशरक्ताभज्वालादाहस्तु तेजसा । प्रकाशादेव शैथिल्य-
 मधुता श्वेततज्जले । स्थूलसाकारकाठिन्यगन्धं पातमृदौ
 तथा । महाभूतानि पञ्चेति देहमध्ये ऽधुना शृणु । महाभूतानि
 पञ्चेति पृथ्वीतेजो मरुत् खकम् । एतेषाञ्च तथा पञ्चगुण-
 स्थानं शृणु प्रिये । अस्थि मांसं लोम नाडौ त्वक् चेति पृथिवी-
 गुणाः । क्षुधादृष्णालस्यनिद्रा ग्लानिश्च पञ्च वारिणः । रागो
 लज्जा भयोद्वेगौ धारणा च मरुद्गुणाः । एतज्ज्ञानेनैव तेषां
 बुद्धिरुत्पद्यते शुभा । यद्यपि सगंक्राण्डे पृथ्वादेर्गुणा
 उक्तास्तथाप्येतज्ज्ञानेनेत्यनेन कार्यकारणभावदर्शनाय पुन-
 रुच्यन्ते । मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चैतन्यमेव च । एते
 पञ्चप्रकाराश्च अन्तःकरणसम्भवाः । मननामननं ज्ञेयं बुद्ध्या-
 दिपञ्च पञ्च तु । विवेकशान्तिसन्तोषक्षमावैराग्यतेति च ।
 एते पञ्चगुणा बुद्धेरहङ्कारगुणान् शृणु । अहम्भावमहङ्गादि-
 युगान्तं हिंसनं तथा । वृत्तिः स्मृतिर्मतिस्वाज्यं निराशं
 चैतिका गुणाः । निःस्पृहता द्वेषताधैर्यं विमर्षचिन्तनं तथा ।
 चित्तेर्गुणास्त्रयो जीवगुणान् शृणु महेश्वरि । आस्था श्रद्धा
 क्षमा भक्तिः सत्यं सत्त्वगुणा इति । त्यागो योगश्च श्रद्धा च सार्थ-
 वस्तुसृष्टा तथा । रसो पञ्चगुणाः चैते तामसस्य गुणान् शृणु ।
 प्रमोदः स्वादकलहौ विवादो भ्रान्तिवर्द्धनम् । वञ्चनञ्च तथा
 शोकस्तामसस्य गुणा इमे । स्वप्नजाग्रत्सुषुप्तानि चैतन्यं
 जीवका गुणाः । एतादृशि सति वृत्तं चैतन्यात्तद्वेदिति ।

प्रकृतोच्छा क्रिया माया वचः पञ्च गुणा इति । आशा लक्षणा-
सृष्टाकाङ्क्षामिथ्यान्तं प्रकृतेरिति । उन्मादो वासना वाञ्छा
चेक्षिता च गुणाः प्रिये ।। शरणं सत्कुलाचारः कार्यनिश्चय
उच्यते । इदं योगरहस्यञ्च न वाचं मूर्खसन्निधौ ॥

योगदेशस्तु तत्रैव ॥ उत्पातरहिते देशे कण्टकादिविवर्जिते ।
अभ्यस्यते सदा योगः समः स्यात् सुखदुःखयोः । सुराजनि
समाश्रित्य कर्तव्यो निरुपद्रवे । देशे तु सर्वशस्यादेः लोभ-
मोहविवर्जिते । स्तुतिर्निन्दा न कर्तव्या साधुना सत्य-
वादिना ॥ योगानधिकारिणमाह तत्रैव ॥ मनोमध्ये दया
नास्ति सदा यः कलहप्रियः । स्वकार्यलोभने शैलो गुरु-
कार्यपराङ्मुखः । एतस्मै च न दातव्यं वक्तव्यं तस्य
सन्निधौ । नजुभयत्न सख्यव्यते न वक्तव्यमित्यर्थः । योगाधि-
कारिणोऽपि तत्रैव ॥ भावाभावविनिर्मुक्तः सर्वग्रहविवर्जितः ।
सदानन्दमयो योगी सदाभ्यासी सदा भवेत् । विरुद्धे दुःखदेशे
च विरूपेऽतिभयानके । एतदनिष्टसंस्पर्शं न्यूनाधिके बलाधिके ।
एवम्भूतस्य कर्माणि सङ्कल्परहितानि च । एवं गच्छन् स्वप्नं
पश्यन् पापपुण्यैर्न लिप्यते । उत्पन्नतत्त्वबोधः स्यात् सदा शील-
स्य सर्वदा । परे दृष्टिविलं न स्याद् विविधानि मृतानि च ।
अन्तःकरणमेतस्य योगिनो निष्क्रियं तु स । सर्वदा सहजस्तस्य
निष्कलाध्यात्मवादिनः । यदा प्रयत्ननिष्पाद्यं आह्वं सर्वम-
कारणम् । यस्य चित्ते हठं नास्ति सहजानन्दनिर्भरम् । कर्त्त-
व्या च स्थिरा दृष्टिस्तेनैव परमं स्थिरम् । मनः स्थिरञ्च
तेनैव कर्त्तव्यं तत्परं पदम् । इदानीं योगमा-
हात्म्यं कथ्यते यद्भवेत्ततः । गुरोरनुग्रहाच्छास्त्रपाठादाचारत-
स्तथा । वेदान्तार्थरहस्यार्थसर्वज्ञानादुपासनात् । आसना-
धारणाज्ञानालयषट्कर्मसाधनात् । आसनाच्चतुरशीति-

प्रायुर्वि-
तरमपि
कणा-
ररूपः
हासी
ाशी ।
प्रहार-
विन-
साह-
ाला-
ासो-
ज-
ति-
ला-
सते
ल-
ष्टः
ष-
ा-
र-
।।
ता

वैराग्यत्यागसम्भवात् । हठयोगाद्वरौप्रध्यात् मुद्रासाधन-
 मानतः । वनवासादुबहुक्ते शाक्त्या मन्त्रादिसाधनात् ।
 बहुदानतपस्तीर्थसेवनाद् दानशिक्षणात् । सन्यात्रयग्रहेणाथ
 षडदशग्रहणात्तथा । शिरोमुण्डगतो न्यासाद् योगतत्त्वञ्च
 विद्यते । गुरुपादोदकं शिष्टसेविना सत्यवादिना । कन्या-
 स्त्रादिदृष्टिपातहर्षगतिविवर्त्तनात् । प्रसादात् सद्गुरोः
 सम्यक् प्राप्नोति परमं पदम् । न गुरोरधिकं तत्त्वं यत्तस्मात्
 परमं पदम् । निमेषार्द्धेन तस्यैव आज्ञापालनतो भवेत् ।
 महानन्दशतप्राप्तिस्तस्मै श्रीगुरवे नमः । नानाविकल्प-
 विभ्रान्तिनाशञ्च कुरुते तु यः । सद्गुरुः स तु विज्ञेयो न तु
 वैरप्रकल्पकः । अतएव महेशानि ! सद्गुरुः शिव आदितः ।
 सत्यवादो च सञ्छीलो गुरुभक्तो दृढव्रतः । स्वल्पाचाररता-
 त्मा यो दानादिशौलसंयुतः । कापट्यलोभविन्यासी महावंश-
 समुद्भवः । ईदृशः सद्गुरुस्तस्य सङ्गतो यत्नवान् भवेत् । तदेव
 मनसः शान्तिं प्राप्नोति परमं पदम् ॥

दत्तात्रेयसंहितायां प्रथमाध्यये तु ॥ योगो हि बहुधा ब्रह्मन् ।
 तत्सर्वम् कथयामि ते । मन्त्रयोगो लयश्चैव हठयोगस्तथैव च ।
 राजयोगश्च सर्वेषां योगानामुत्तमः स्मृतः ॥ इति योगभेदः ॥

आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयः स्मृतः । निष्पत्तिश्चेत्यवस्था च
 चतुर्धा परिकीर्त्तिता । इति योगावस्था । एतेषां विस्तरं वक्ष्ये इत्थं
 श्रोतुमिच्छसि । अङ्गेषु माहकान्यासपूर्वं मन्त्रं जपन् सुधीः ।
 एवञ्च मन्त्रसिद्धिः स्यान्मन्त्रयोगः स उच्यते । शृदुस्तवाधिकारी
 स्याद्वादशाब्दे स्तु साधनात् । प्रायेण लभते ज्ञानं सिद्धिश्चैवाणि-
 मादिका । अल्पबुद्धिरयं योगः सेवते साधकाधमः । मन्त्र-
 योगश्च यः प्रोक्तो योगानामधमः स्मृतः ॥ इति मन्त्रयोगः ॥
 लययोगश्चित्तयोगात् सङ्गैतैश्च प्रजायते । आदिनाथेन सङ्केता-

सयोगिन भूधराणां पतिर्भवितु । वर्षद्वयेन हे नाथ ! कर्त्ता हर्त्ता
 स्वयं प्रभुः । त्रिलोकत्वमवाप्नोति परमानन्ददायकम् । सन्त-
 ताभ्यासयोगिन नास्ति किञ्चित् सुदुर्लभम् । तद्रूपं कृष्णवर्णश्च
 यः पश्येद्गोप्ति निर्मले । षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी
 नात्र संशयः । पौते व्याधिस्तथा रक्ते नीले हृत्वां विनिर्दिशेत् ।
 नानावर्णस्वरूपेऽस्मिन्नुद्देशे जायते महान् । पादगुल्फोदरा-
 णाञ्च विनाशो मृत्युमादिशेत् । अर्द्धवर्षेण वर्षेण क्रमाद्वर्षद्वयेन
 च । विनष्टे दक्षिणे बाहौ स्वबन्धुस्त्रियते ध्रुवम् । वामबाहौ
 तथा भार्या विनश्यति न संशयः । शिरोदक्षिणबाह्वनां
 विनाशे मृत्युमादिशेत् । अग्निरोमासमरणं विना जङ्घे दिने-
 र्नरः । ऋष्टाभिः स्कन्धनाशे तु शरीराद्धं तु तत्क्षणात् । योगा-
 र्णवे ॥ प्रातः पृष्ठगते रवावनिमिषं छायां गते स्वां चिरं दृष्टोद्धं
 नयनेन यं सितनरं छायां गते पश्यति । तत्कर्णांसकरास्यपार्श्व-
 हृदयाभावे क्षणेऽर्कांश्चदिक् भूवाणाक्षिसमाः शिरोविगमतो
 मासांस्त्वसौ जीवति ॥

ज्ञानसारे द्वितीयाध्याये ॥ रसनामर्द्धगां कृत्वा कलाद्धं
 योऽवतिष्ठते । क्षणेन मुच्यते देवि ! व्याधिमृत्युजरा-
 दिभिः । रसना त्वन्तरे नित्यं यावद्ब्रह्मविलं गता ।
 अमृतं रसनाग्रेण पीयमानं विचिन्तयेत् । मासाद्धं जीयते
 मृत्युः सत्यं सत्यं हि पार्वति । । सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो
 योगीन्द्रो नात्र संशयः । रसनातालुमूले च वायुं पौत्वा शनैः
 शनैः । षण्मासाभ्यन्तरे देवि ! महायोगी भविष्यति । रसना-
 स्वादसम्भेदं विशेषं शृणु पार्वति । । क्षीरेण नश्यति व्याधिः
 कटुककण्डूविनाशनम् । सुखादेन महादेवि ! बालपाप-
 विनाशनम् । घृतस्वादनामात्रेण अमरत्वं लभेन्नरः । मधु-
 स्वादरसाच्चैव शास्त्रमुद्गिरते स तु । मिष्टान्नखण्डखाद्यानि

खड्गकखादवर्तिनि । एवमादीन्यनेकानि कामधेनुरूप-
स्थिता । दिव्यकन्या रमेन्नित्यमाकृष्टिर्जायते सदा । अणि-
मादिगुणोपेत ऊर्ध्वरेताः प्रजायते । ह्रिक्कां दद्यात् सदा वक्त्रे
प्राणञ्चैव विजृम्भते । एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ।
योगिनीगणमासाद्य कृष्टिसंहारकारकः । न क्षुधा न तृषा
निद्रालस्यं देवि ! प्रजायते । भवेच्च स्वर्गभासीव सर्वदोष-
विवर्जितः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां षष्ठे ज्ञानकाण्डे राजयोगरूपपञ्चव-

कथनं नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥

योगज्ञानार्थं ब्रह्मब्रह्माण्डत्वेन शरीरमुक्तम् । निर्वाणतन्त्रे
दशमपटले यथा ॥ कथितं वाङ्मदेशस्य ब्रह्माण्डस्य तु लक्ष-
णम् । तन्मध्ये वर्तते साक्षाद्भुवनानि चतुर्दश । तदेव विग्रहं
देवि ! महाब्रह्माण्डमध्यगम् । एवं बहुविधं देवि ! तत्र
ब्रह्माण्डके स्थितम् । ब्रह्मब्रह्माण्डे ये सर्वे तेऽपि यस्य शरी-
रिणः । पृथिव्यां तेऽपि वर्तन्ते जन्तोराकारविग्रहाः । महा-
ब्रह्माण्डमध्ये तु ब्रह्मब्रह्माण्डमेव च । तन्मध्ये जन्तवो देवि !
तन्मध्ये भुवनानि च । दृष्टिमात्रेण भेदोऽस्ति स्थूलसूक्ष्मादि
भेदतः । महाब्रह्माण्डके यद्यत् प्रकारं परमेश्वरि ! तत्तत्सर्वं
हि देवेशि ! ब्रह्मब्रह्माण्डमध्यतः ॥ चतुर्थपटले ॥ शृणु देवि !
प्रवक्ष्यामि ब्रह्मब्रह्माण्डलक्षणम् । मेरुः पर्वतमध्ये च सर्वदेवा-
श्रयः प्रिये ! । महाधीरा नदी तत्र मध्यदेशे तु सा स्थिता ।
सुमेरोऽर्धदेशे च सत्यलोको वरानने ! । अधोभागे महेशानि !
प्रतिष्ठति रसातलम् । एवं क्रमे मेरुमध्ये भुवनानि चतुर्दश ।
पातालसप्तकस्योर्ध्वं ब्रह्मपद्मं महेश्वरि ! । आधारचक्रं तत् पद्मं
धरामध्ये चतुर्दलम् । पद्ममध्ये वीजकोशे क्षितिचक्रं मनो-
हरम् । बलयाकाररूपेण समुद्राः सप्त संस्थिताः । जम्बू-

प्रायुर्वि-
तरमपि
कणा-
ररूपः
हासी
पशी ॥

प्रहार-
वीन-
साध-
ला-
शो-
ज-
ति-
ला-
पते
ल-

इः

पं

त-

पु

तः

र-

ता

द्वीपं मध्यदेशे चतुष्कोणं मनोहरम् । त्रिकोणं
मदनागारं कन्दर्पश्चाधिदेवता । इन्द्ररूपं हि लंबीजं
गजेन्द्रवाहनं शिवे ! । त्रिकोणे मदनागारे लिङ्गरूपी
महेश्वरः । मायाशक्तिर्महेशानि ! भुजगाकाररूपिणी ।
तथैव वेष्टितं लिङ्गं सार्धं त्रिवलयाकृति । लिङ्गच्छिद्रं
स्ववह्नेण समाच्छाद्य सदा स्थितम् । इन्द्रवीजं वरारोहे !
लिङ्गस्य वामदेशके । सुसिद्धं ब्रह्मसदनं नादोपरि सु-
सुन्दरम् । तत्रैव निवसेद् ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता प्रजापतिः । वाम-
भागे च सावित्री वेदमाता सुरेश्वरी । तस्याः प्रसादभासाद्य
सृष्टिं वितनुते सदा । यद्रूपं ब्रह्मसदनं लक्ष्योजनविस्तृतम्
तत् सर्वं परमेशानि ! ऋग्वेदाख्या मयोदितम् । त्रिकोणं पर-
मेशानि ! द्विषष्टिकुण्डलाहिवत् । तदेव पर्वतं प्रोक्तं सर्वदेवा-
श्रयं हि तत् । त्रिकोणमध्ये तद्वाह्ये पश्चापूर्वं वरानने ! ।
स्वावरं पर्वतं पश्य कीटं पशुमनुत्तमम् । खगं नगादिकं देवि !
नास्ति किं पृथिवोत्तले । त्रिकोणवाह्ये गिरिजे ! पर्वतं बहु-
रूपकम् । नीलाचलं मन्दराख्यं पर्वतं चन्द्रशेखरम् । हिमा-
लयं सुवेलञ्च मलयं भस्मपर्वतम् । चतुष्कोणे वसेद्देवि ! एतत्
सप्तकुलाचलम् । दृणगुल्मलतादीनि नानारूपाणि तत्र वै ।
जायन्ते च स्थिरान्ते च पूर्वोक्तो नैव दलना ॥ इति मूलाधार-
कथनम् ॥

पञ्चमपटले ॥ शिव उवाच ॥ एतत् पद्मस्योर्ध्वदेशे भीमाख्यं
पद्मजं शुभम् । पत्रषट्कं तथा द्रुतं चतुर्द्वारविभूषितम् ।
पद्ममध्ये वाजकोपे भुवोलोकं मनोहरम् । सिन्दूरसदृशं रक्त-
वर्णेन भूषितं तदा । तस्योर्ध्वं निवसेद्विष्णुः श्रीवाण्णो वाम-
दक्षिणे । ब्रह्मणा सृज्यते लोकः पाल्यते चक्रपाणिना ।
वैकुण्ठं नाम तत् खगं नानादेवालयं हि तत् । वैकुण्ठस्य

दक्षभागे गोलोकं सर्वमोहनम् । तत्रैव राधिका देवी द्विभुजो
सुरलोधरः । नारदाद्यैः सुरगणैः शोभितं वेदपारगैः । वैकु-
ण्ठसदृशं स्थानं नास्ति ज्ञाने च मामके । अग्रे मध्ये तथा
वामे ज्योतिषां परिपश्यति । नानाभोगयुताः सर्वे नानारत्नो-
पशोभिताः । इन्द्राद्या देवताः सर्वा यथा सर्वं प्रपश्यति ।
तथैव भूमिगाः सर्वे तिष्ठन्ति स्तुतिहेतवे । महातत्त्वमयं
लोकं वेदबाहुविराजितम् । पीताम्बरं शान्तमूर्तिं वनमाला-
विराजितम् । एवं सर्वं भक्तजनं वैकुण्ठे चोपशोभितम् । विष्णु-
शब्दं विष्णुगणं वैष्णवं विष्णुरूपकम् । विष्णुनाम विना नास्ति
वैकुण्ठे परमेश्वरि ! । यद्रूपं गोलोकं धामं तद्रूपं नास्ति मामके ।
ज्ञाने वा चक्षुषोः किं वा ध्यानयोगेन विद्यते । शुद्धतत्त्वमयं
देवि ! नानादेवेन शोभितम् । मध्यदेशे गोलकाख्यं श्रीविष्णो-
र्लोभमन्दिरम् । श्रीविष्णोः सत्त्वरूपस्य यत् स्थलं चित्तमोह-
नम् । तस्य स्थानस्य माहात्म्यं किं मया कथ्यतेऽधुना । तत्रैव
सततं भाति द्विभुजो सुरलोधरः । तदा सत्त्वमयो विष्णुर्भुवनं
पाति निश्चितम् । वैष्णवस्य महामोक्षो यत्रैव परमेश्वरि ! ।
इति स्थानस्य माहात्म्यं संक्षेपेण मयोदितम् । विस्तारेण
न शक्नोमि जन्मान्तरशतेन च । बीजकोषस्य बाह्ये तु वेष्टितं
तोयमण्डलम् । प्रमाणं सुन्दरं तोयं यथा क्षीरोदसागरम् ।
धूम्रस्य ज्योतिषाकारं कोटिचन्द्रसमप्रभम् । बलयाकाररूपेण
सुशुभ्रं तोयमण्डलम् । गङ्गादिसरितः सर्वास्तथैव भान्ति
सुन्दरि ! । इन्द्रादिदेवताः सर्वाः स्तूयमाना निरन्तरम् । गन्ध-
व्यञ्जनागादिकुष्माण्डा भैरवास्तथा । नानासुखविलासेन
सदा चैकाग्रचेतसः । विष्णुगानं प्रकुर्वन्ति स्तुतिभक्तिपरा-
यणाः । वेदगानं प्रकुर्वन्ति चतुर्वक्त्रेण विधसा । मालवा-
द्याश्च षड्रागाः षट्त्रिंशद्रागिणी तथा । वेदगाने च भाषन्तो

वायुर्वि-
तरमपि
। कणा-
। रूपः
। हासी
। शी ।
। द्वार-
। वीन-
। स्तार्द्ध-
। ला-
। सो-
। ज-
। ति-
। ला-
। सते
। ल-
। इ-
। पं-
। ि-
। १

भूर्त्तिमन्तः सदेव हि । मालवेनैव रागेण सामगानं सदा
 प्रिये । । मल्लारेण सदा पूर्वं वसन्तेन तथा पुनः । हिल्लोलेन यजुः-
 पाठं सदा कुर्वन्ति वेधसा । कर्णाटेनैव ऋग्वेदं श्रीरागेण तथा
 शिवे । । निर्दिष्टपाठभेतत्तु अनिर्दिष्टमतः परम् । अत्रैव सन्ति
 ते रागाः सहस्राणि च षोडश । सुरारिमुलरीगानात् सर्वस्तालः
 प्रजायते । तेन तालेन रागेण सदा गायन्ति वेधसा । तद्रा-
 गस्य विभागं हि कुर्वन्ति मुनयो जनाः । वसन्ताद्याश्च ऋतव-
 स्तिष्ठन्ति तत्र सन्ततम् । नानाऋतुप्रसूनेन भूषितं सुरली-
 धरम् । तत्रैव राधिका देव नानासुखविलासिनी । वदन्ती
 मुरलीगानं कुरु कान्त ! प्रमोहणम् । येन शब्देन कामस्य उत्-
 पत्तिर्जायते सदा । तद्रागश्चैव तत्तालं कुरु गानं प्रयत्नतः ।
 एवमानन्दसंयुक्ता महाविशविलासिनी । वामभागे सदा भाति
 राधिका भक्तवत्सला । तथा । आदौ राधां ततः कृष्णं जपन्ति
 ये च मानवाः । सङ्गतिं चैव तेषां हि दास्यामि नात्र संशयः ।
 गुरुणा भावमार्गेण मन्त्रमार्गेण चैव हि । ये जना मां भज-
 न्त्येव ते नरा मत्समाः सदा । या नारी मां मेदेन भजते
 पुरुषं तथा । तत्समाना च सा नारी जायते नात्र संशयः ।
 भक्त्या वाप्यथवाऽभक्त्या जपन्ति युगलं यदि । तव भक्त्या प्रदा-
 स्यामि मङ्गतिं शृणु राधिके ! । इति स्वाधिष्ठानकथनम् ॥

षष्ठपटले ॥ एतत्पद्मस्थोर्द्धदेशे महापद्मं सुदुर्लभम् । दशपत्रं
 नीलवर्णं सहजं घोररूपकम् । डादिफान्तैः सचन्द्रैश्च पङ्कज-
 श्रुतिशोभनम् ॥ तन्मध्ये वीजकोषे निवसति सततं वज्रिवीजं
 सुसिद्धम् । वाद्ये तत् त्रैपुराख्यं नवतपननिभं स्वस्तिकं तत्त्रि-
 भागे ॥ स्वर्लोकाख्यमिदं देवि ! सर्वदेवप्रपूजितम् । साकारं
 वज्रिवीजञ्च सदेव मेप्रवाहनम् । रुद्रालयं हि तत्रैव महा-
 मोहस्य नाशनम् । भद्रकाली महाविद्या वामभागे सुशो-

मिता । भद्रकाली महाविद्या सदा संहारकारिणी । ब्रह्मणा
सृज्यते लोकः पाल्यते विष्णुरूपिणा । परो देवो रुद्ररूपः सदा
संहारकारकः । संहर्तुद्ररूपस्तु भद्रकालिकया सह । रुद्रस्य
भाषणाद्देवि ! किं न सिध्यति भूतले । यद्रूपं कथितं पूर्वं
गोलोकं सर्वमोहनम् । तस्माद्दे सर्वतोभावे रुद्रलोकं चतुर्गु-
णम् । महामोक्षप्रदं नित्यं रुद्रं भस्माङ्गभूषणम् । भद्रकाली
महाविद्या रुद्रस्य वामदेशके । ततः काली महाविद्यां सदैव
मुरलीधरः । आराध्य बहुयत्नेन वैकुण्ठाधिपतिर्भवेत् । गोलो-
काधिपतिर्देवि ! स्तुतिभक्तिपरायणः । कालीपादप्रसादेन
स भवेत्लोकपालकः । लोकानां रक्षणार्थाय सस्त्रीकी मुरलीधरः ।
समाराध्य भद्रकालीं गोलोके निवसेत् सदा । प्रसादं कालिका-
याश्च विष्णुना भुज्यते सदा । अतश्च पालको विष्णुर्महासत्त्व-
परायणः ॥ इति मणिपूरकथनम् ।

सप्तमपटले ॥ एतत्पद्मस्थोद्देशे विमलं पद्मसुत्तमम् । शोभितं
द्वादशैः पत्रैः शोणवन्धूकसन्निभम् । वाञ्छन्ति रिक्तफलदं सिद्धि-
सिन्दूरसोदरम् । पद्ममध्ये बीजकोषे षट्कोणमण्डलं शुभम् ।
मण्डलस्य मध्यदेशे वायुबीजं मनीहरम् । सर्वोच्चं वायुबीजनं
वेदबाहुविराजितम् । लोकत्रयस्य ईशानमौखरं सर्वपूजितम् । या
विद्या भुवनेशानो त्रिषु लोकेषु पूजिता । ईश्वरस्य वामभागे सा
देवी परितिष्ठति । महर्क्षोऽकमिदं भद्रे ! पूजास्थानं सुरेश्वरि ।
तत्रैव मानसं योगं कुरुते योगविहरः । सिन्दूरारक्तचार्चणी
स्फाटिकैर्निर्मिता यतः । अतश्च मानवाः सर्वे ज्योतिषं परि-
पश्यन्ति । सर्वावयवसंयुक्ता देवास्तिष्ठन्ति सन्ततम् । भूमिगाः
परिपश्यन्ति चक्राकारं हि तैजसम् । स्वर्लोकगामिनः सर्वे परि-
पश्यन्ति साकृतिम् । अङ्गत्रेदं न पश्यन्ति स्थूलरूपनिरौचणम् ।
यथैव भूमिगा लोकाः प्रसरन्ति महीतले । तथैव देवताः

८६३

युर्वि-
रमपि
कथा-
रूपः
हासी
गथी ।
ब्रह्म-
नवीन-
त्वाद्दे-
माला-
खासो-
खं ज-
लाति-
माला-
भासते
अमूल-
नरेन्द्रः
नित्यं
सक-
मन्थत्
दाभ-
लस-
पल-
शाङ्क-
नः

६

सर्वाः स्वर्गे तिष्ठन्ति पार्वति ! । भूर्लोकं निवसेद्ब्रह्मा भुवोलोके
 जनार्दनः । स्वर्लोके निवसेच्छम्भुः सदा संहारकारकः । ब्रह्मा-
 दीनाञ्च ईशानः सर्वकर्ता च ईश्वरः । सर्वस्वामिस्वरूपश्च
 सर्वकर्ता च ईश्वरः । गोलोकं कथितं देवि ! यद्रूपं शोभितं
 सदा । तस्माच्छतगुणं देवि ! महर्लोकं सुसुन्दरम् । विस्ती-
 र्णञ्च शतगुणं सर्वं शतगुणं शिवे ! । महर्लोकस्य माहात्म्यं किं
 वक्तुं शक्यते मया । महर्लोके वसेद्यो हि सामान्यभाव-
 तत्परः । तस्मादेव शतैकांशं गोलोके मुरलीधरम् । तदाज्ञां
 प्राप्य सहसा सृज्यते पद्मयोनिना । तदाज्ञया पाति लोकान्
 विभुजी भुक्तीधरः । एवं हि रुद्ररूपेण संहृत्यखिलं जगत् ।
 सर्वकर्ता यतो देवो ह्यत एव महेश्वरि ! । ईश्वरः सर्वकर्ता च
 निर्गुणश्चाचलः शिवः । भुवनेशीं समासाद्य सर्वस्वामी च
 ईश्वरः । अत एव महेशानि । स एव मोक्षदायकः । विश्वमाता
 च सा देवी विश्वपालनकारिणी । मोक्षदा सर्वलोकानां
 मुक्तिदा विश्वमात्मिका । भुवनेशीं विना ईशः किञ्चित् कर्तुं
 न शक्यते । अत एव हि सा देवी मोक्षदा सर्वरूपिणी । इत्य-
 नाहतकथनम् ।

अष्टमपटले ॥ शङ्कर उवाच । अस्योर्ध्वं निर्मलं पद्मं
 सर्वमोहनकारणम् । षोडशैः पत्रकैर्युक्तं मोहान्वाकार-
 नाशनम् । धूममध्ये यथा वह्निस्तथा ज्योतिर्मयं प्रिये ! ।
 पद्ममध्ये वराटे च जनोलोकं सुसुन्दरम् । महामोहान्ध-
 शमनं तद्वाह्ये चन्द्रमण्डलम् । देवहृन्दैर्गाथकैश्च मुनिभिः
 परिशोभितम् । गोलोकस्य लक्षगुणमिदं स्थानं सुदुर्लभम् ।
 दैर्घ्येण च मयोक्तञ्च विस्तीर्णञ्च तथा पुनः । सर्वं लक्षगुणं
 देवि ! गोलोकान्नात्र संशयः । वीजकोषे मणिद्वीपे षट्कोणं
 यन्ममुत्तमम् । यन्त्रमध्ये च हृषभं महासिंहाईदेवकम् ।

तस्योपरि महागौरी दक्षम् ।

वनेत्रः पञ्चवक्त्रश्च

प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनः । विभूतिभूषिताङ्गश्च रजताद्रिसहोदरः ।
व्यात्रचर्मशरो देवोऽणिमादिभिर्विभूषितः । लोकानामिष्टदाता
च लोकानां भयनाशनः । लोकानां भुक्तिजनको लोकानां
मुक्तिदायकः । सदानन्दकरो देवश्चाहंनारौश्वरो विभुः ।
क्वचित् ज्योतिर्मयो देवः क्वचिदाकारवर्जितः । देवानां पूज्य-
रूपश्च देवानां स्वामिरूपकः । भक्तस्य मुक्तिदो नित्यं विष्णु-
त्वदायकः प्रभुः । विष्वपत्रैः पूजकस्य निजसायुज्यदायकः ।
गोलोकाधिपतिं कृत्वा भक्तं रक्षति यः शिवः । तस्य देवस्य
माहात्म्यं विस्तारिण च चण्डिके ! । या गौरी लोकमाता च
ब्रह्माह्वाङ्गस्वरूपिणी । त्रिगुणा सामहादेवी गुणैकेन पिनाक-
धृक् । तस्याः सङ्गं समासाद्य सर्वकर्ता सदाशिवः ॥ इति
विशुद्धस्थानकथनम् ॥

नवमपटले ॥ शङ्कर उवाच ॥ एतत्पद्मस्योर्द्ध्वदेशे ज्ञानपद्मं
सुदुर्लभम् । पद्मद्वयसमायुक्तं पूर्णचन्द्रस्य मण्डलम् । पद्ममध्ये
वीजकोषे स्मरेच्चिन्तामणेः पुरीम् । तन्मध्ये नवकोणञ्च यन्त्रं
परमदुर्लभम् । शम्भुवीजं हि तन्मध्ये साकारं हंसरूपकम् ।
हंसः परं ब्रह्मरूपः साकारः शिवरूपकः । तारचक्षूर्वराजो ह्ये !
निर्गमागमपञ्चवान् । शिवशक्तिपदद्वन्द्वं विन्दुत्रयविलोचनम् ।
विहारस्वास्थ्यं हंसस्य हेमपङ्कजपूजिते । एवं हंसो मणिद्वीपे
तस्य क्रोडे परः शिवः । वामभागे सिद्धकाली सदानन्दस्वरू-
पिणी । तस्याः प्रसादमासाद्य सर्वकर्ता महेश्वरः । तपो-
लोकमिदं भद्रे ! सर्वलोकस्य दुर्लभम् । यत्र ब्रह्मादयो देवा
ध्यानं कुर्वन्ति सर्वदा । मनसापि न लभ्येत योगेन तपसा
न च । तपोलोकं गोलोकस्य चतुर्लक्षणं शिवे ! । ब्रह्मलोकेषु
ये देवा वैकुण्ठे ये सुरादयः । शम्भुलोके वसेद् यो हि ते च

वायुर्वि-
करमपि
एकणा-
ताररूपः
नडासी
काशी ।

ब्रह्महार-
नवीन-
सत्ताहं-
लमाला-
श्वासी
लाभ्य-ज-
कलाति-

मा माला-
मा मासते
वैतन्मूल-
गो नरेन्द्रः
स्य नित्यं
स्यैः सक-
पद्ममन्थत्
तडिदाभ-
प्रविलस-
न्दुरूपल-
। ७। स्वाह-
मादधानः ।
। धृतवेद-

भक्तिपरायणाः । सापि न लभ्येत तपोलोकगतिः शिवे ! ।
 तपोलोकसमो नास्ति लोकमध्ये सुलोचने । सालोक्यं
 हि महर्लोके सारूप्यं जनलोकके । सायुज्यं च तपोलोके
 निर्वाणं हि तद्दुर्लभं । ततो ब्रह्मादयो देवास्तपोलोका-
 र्थिनः सदा । इति ते कथितं कान्ते ! क्रमषट्कस्य
 लक्षणम् । यज्ज्ञानादमरत्वञ्च जीवन्मुक्तञ्च साधकः । यज्-
 ज्ञात्वा जननीगर्भं न विशेत्तु कदाचन ॥ इति ज्ञानस्थान-
 कथनम् ॥

दशमपटले ॥ शङ्कर उवाच । ज्ञानपद्मस्योर्ध्वदेशे सह-
 स्रदलपद्मजम् । अधोवक्त्रं महापद्मं सुमेरोर्मध्यसंस्थितम् ।
 शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं हरितमेव च । विचित्र-
 चित्ररूपेण नानावर्णेन शोभितम् । शुक्लं क्षणात् क्षणाद्रक्तं
 क्षणात् पीतं सुशोभितम् । यस्मिन् क्षणे शुक्लवर्णं हरितं
 वर्णमुत्तमम् । चित्ररूपञ्च चार्वङ्गि ! धत्ते कस्मिन् क्षणे
 क्षणे । एवं नानाविधं देवि ! तत् पद्मं शोभितं सदा ।
 ययैव धाम गोलोकं प्रतिपत्ने तथैव हि । गोलोकाधिपति-
 स्तत्र भक्तिभावपरायणः । कैलासाधिपतिर्देवि ! ध्यानयोगं
 सदाभ्यसेत् । एवं ब्रह्मादयो देवा इन्द्राद्यास्त्रिदिवेश्वराः । स्तुति-
 भक्तिपराः सर्वे दीनभावे सदा स्थिताः । लज्जं लज्जं महेशानि !
 तत्रैव मुरलीधरः । शतलज्जं तत्र रुद्रो ब्रह्मा लज्जशतं प्रिये ! ।
 प्रत्यहं परमेशानि ! ब्रह्माण्डा बहुवोऽभवन् । तन्मध्ये स्थाप-
 येद् ब्रह्मा तत्रैव कमलापतिम् । शिवं बहुविधाकरं तत्रैव
 स्थापयेत्ततः । एवं हि परमेशानि ! नानाशक्तिं प्रविन्य-
 सेत् । प्रतिब्रह्माण्डमध्ये तु ब्रह्मादिदेवतात्रयम् । नाना-
 शक्तियुतं कृत्वा ब्रह्माण्डस्थापनञ्चरेत् । ब्रह्मपद्मे पृथिव्यान्तु
 वर्तन्ते मानुषादयः । ते सर्वे देवि ! ब्रह्माण्डस्तन्मध्ये भुव-

नानि च । पातालसप्तकं तत्र तत्रैव स्वर्गसप्तकम् । एवं चक्रे
सर्वदेहे भुवनानि चतुर्दश । प्रतिदेहं परेशानि ! ब्रह्माण्ड नात्र
संशयः ॥ तथा । स्थानं बहुविधाकारं सर्वदेहस्य चाश्रयम् ।
तन्मध्ये सत्यलोकश्च महारुद्रस्य कारणम् । दशकान्तेन
स्वर्णेन निर्मितं चक्रपाणिना । दिक्षु तोयमण्डलश्च तथा
पूर्णेन्दुमण्डलम् । परितः पारिजातानि मध्ये कल्पद्रुमः पुनः ।
कल्पद्रुमस्य निकटे ज्योतिर्मन्दिरमेव च । ओं उद्यदादित्य-
सङ्काशं चतुर्दशविभूषितम् । मन्दवाद्यसमायुक्तं गन्धपुष्पै-
रलङ्कृतम् । तन्मध्ये वेदिका देवि ! रत्नसिंहासनं प्रिये ! । महा-
कालो परमात्मा चणकाकाररूपतः । माययाच्छादितात्मासी
तन्मध्ये समभागतः । महारुद्रः स एवात्मा महाविष्णुः स एव
हि । महाब्रह्मा स एवात्मा नाममात्रविभेदैकः । एकमूर्ति-
स्त्रिनामानि ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । नानाभावे मनो यस्य
तस्य मोक्षो न विद्यते । ब्रह्माण्डास्तत्र जायन्ते लक्षं लक्षं
सुलोचने । तत्र ब्रह्मा तत्र विष्णुस्तत्र रुद्रः प्रविच्यसेत् ।
एवं ब्रह्माण्डनिर्माणं कृत्वा विष्णुः सनातनः । स जीवमूर्तिं
निर्माय तथा जन्तोश्च विग्रहम् । एवं ब्रह्माण्डं विविधं
नित्यं सृजति निर्गुणम् । निर्गुणे विष्णुरूपश्च सिद्धिकारण-
मेव हि । केचिद्वदन्ति स ब्रह्मा कैश्चिद्विष्णुः प्रकथ्यते । केचि-
द्बुद्धो महापूर्वं एकदेवो निरञ्जनः । आद्याशक्तिगुतो देवश्च-
णकाकाररूपकः । इन्द्रजालस्य दीपाभं चन्द्रसूर्याग्निरूपकम् ।
महाज्योतिर्निराकारं गोलोकं सुमुखं त्वयि । सत्यलोके
वीजक्रीषे चिन्तामणिगृहे शुभे । ध्यायेन्निरञ्जनं देवि !
रत्नसिंहासनीपरि । तस्यान्तिके निजगुरुं पूजाध्यानपरा-
यणः । सकान्तं पूजयेद्देवि ! रजताचलसीदरम् । सुरक्तां
चारुवदनां स्वप्रकाशस्वरूपिणीम् । एवं कान्तायुतं देवं

स वायुर्वि-
प्रकरमपि
मलकणा-
याकाररूपः
स्तान्हासी
प्रप्रकाशी ।
ब्रह्मद्वार-
तभा नवीन-
लसत्सार्ध-
नालिमाला-
। श्वासी-
मूलाब्ज-
मा कलाति-
प्रला माला-
सया भासते
। त्वे तन्मूल-
तेशो नरेन्द्रः
तस्य नित्यं
वन्द्यैः सक-
णपद्ममन्थत्
नं तडिदाभ-
रे प्रविलस-
त्तद्वन्दुरूपल-
ः ॥ ७/
प्रमाद
रो ६

मेव च । प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्वौ भावौ जीवसंस्थितौ । प्रवृत्ति-
मार्गः संसारो निवृत्तिः परमात्मनि । प्रवृत्तिभावचिन्ताया
मध्ये वृक्षाणि चिन्तयेत् । निवृत्तियोगमार्गेण सदैवोर्द्ध-
मुखानि च । एवमेव भावभेदाद् दृष्टसन्देहो न जायते ॥

श्रीतत्त्वचिन्तामणौ तु विशेष उक्तो यथा ॥ मेरोर्वाङ्ग-
प्रदेशे शशिमिहिरशिरे सख्यदक्षेण सन्ने मध्ये नाडी सुषुम्ना
वितयगुणमयो चन्द्रसूर्याग्निरूपा । धुस्तरस्मेरपुष्पश्रित-
तमवपुः कन्दमध्याचिरस्था वज्राख्या मेढ्रदेशोच्छिरसि परि-
णता मध्यमे स्याज्ज्वलन्ती ॥ तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणव-
विलसिता योगिनां योगगम्या लूतातन्तूपमेया सकलसरसि-
जाम्बेरुमध्यान्तराले । भित्त्वा देदौष्यते तदग्रथनरचनया
शुद्धबोधप्रबोधा तन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुखकुहरादा-
दिदेवान्तरास्था ॥ विद्युन्मालाविलासा मुनिमनसि
लसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा शुद्धज्ञानप्रबोधा सकलसुखलसच्छु-
द्धभावाद्यभावा । ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसितसुधासार-
रम्यप्रदेशम् यन्विस्थानं तदेतद्ददनमिति सुषुम्नास्य-
नाद्या लपन्ति ॥ अथाधारपद्मं सुषुम्नास्यलग्नं ध्वजा-
द्योगदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम् । अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णभिरभ्ये-
षकारादिशान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥ अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोण-
चक्रं समुद्रासिशूलाष्टकैरावृतं तत् । लसत्पीतवर्णं तडित्-
कोमलाङ्गं तदभ्यसमास्ते धरायाः स्ववीजम् ॥ चतुर्बाहुभूषं
गजेन्द्रादिरुढं तदङ्गे नवोनार्कतुल्यप्रकाशम् । शिशुः सृष्टि-
कारी लसद्देवाहुर्मुखाभोजलक्ष्मोश्चतुर्भुगवैदः ॥ वसेदत्र देवी
च डाकिन्यभिख्या लसद्देवाह्वज्ज्वला रक्तनेत्रा । समानोदिता-
नेकसूर्यप्रकाशा प्रकाशं वहन्ती सदा शुद्धबुद्धेः ॥ वज्राख्या व-
क्त्रेण दिशसति सततं कर्णिकामध्यस्थं कोणं तत् त्रेपुरास्य

तडिदिष विलसत् कोमलं कामरूपम् । कन्दर्पो नाम वायुर्वि-
लसति सततं तस्य मध्ये समन्तात् जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमपि
हसन् कोटिसूर्यप्रकाशः ॥ तन्मध्ये लिङ्गरूपो द्रुतकमलकणा-
कोमलः पश्चिमास्यो ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिशलयोक्तारूपः
स्वयम्भूः । उद्यत्पूर्णन्दुविश्वप्रकरचयस्त्रिग्वसन्तानहासी
काशीवासी विलासी विलसति सरिदावर्त्तरूपप्रकाशी ।
तस्योर्ध्वे विषतनुशोकविलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनौ ब्रह्महार-
मुखं मुखेन मधुरं सञ्छादयन्ती स्वयम् । शङ्खावर्त्तनिभा नवीन-
चपलामालाविलासास्यदा सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि लसत्सार्द्ध-
विहृत्तावृतिः ॥ कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमाला-
स्पृष्टं वाचं कोमलवाक्यबन्धरचनाभेदाविभेदक्रमैः । खासो-
च्छासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते सा भूलाब्ज-
गह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावलिः ॥ तन्मध्ये परमा कलाति-
कुशला सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा नित्यानन्दपरस्परान्तिचपला माला-
लसदीधितिः । ब्रह्माण्डादिकटाहमेव सकलं यद्भासया भासते
सिद्धं श्रीपरमेश्वरी विजयते नित्यप्रबोधोदया ॥ ध्यात्वेतन्मूल-
पद्मान्तरपथविलसत्कोटिसूर्यप्रकाशम् वाचामीशो नरेन्द्रः
स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी । आरोग्यं तस्य नित्यं
निरवधि स महानन्दचित्तात्मरात्मा वाक्यैर्वाक्यप्रबन्धैः सक-
लसुरगुरुन् सेवते शृङ्गशीलः ॥ सिन्दूरपूररुचिरारुणपद्ममन्यत्
मौषममध्यघटितं ध्वजमूलदेशे । अङ्गच्छदैः परिष्ठितं तडिदाभ-
वर्णैर्वाद्यैः सविन्दुलसितैश्च पुरन्दरान्तैः ॥ तस्यान्तरे प्रविलस-
द्विद्यप्रकाशमन्मोजमल्लमथो वरुणस्य तस्य । अर्द्धेन्दुरूपल-
सितं शरदिन्दुगुम्भं वङ्गारवोजममलं मकराधिरूढः । तस्याङ्ग-
देशशयितो हरिरेव पायाञ्जोलप्रकाशरुचिरश्चिद्यमादधानः ।
पौताम्बरः प्रथमयौवनगर्भधारी श्रीवलक्रीस्तुभधरो दृढवेद-

बाहुः ॥ अत्रैव भाति सततं खलु राकिणी सा नीलाम्बुजोद-
रसहोदरकान्तिशोभा । नानायुधोद्यतलसस्रतताङ्गलक्ष्मीर्दि-
व्याम्बराभरणभूषितमत्तचित्ता ॥

अथ ज्ञानप्रशंसा ॥ निगमकल्पद्रुमे तृतीयपटले ॥ ज्ञानेन
लभते मोक्षं ज्ञानेन पापनाशनम् । ज्ञानेन वीरकर्मा च
ज्ञानेन पशुभावनम् । ज्ञानेन दिव्यभावी च तस्माज्ज्ञानं
विशिष्यते । ज्ञानात् पवित्रं सर्वञ्च ज्ञानेनैव पवित्रकम् ।
यथान्निना दहेत् सर्वं काष्ठगुल्मलतादिकम् । तथा ज्ञानेन
दहन्ते सर्वकर्मफलानि च । ज्ञानञ्च द्विविधञ्चैव भेदाभेदविभे-
दतः । भेदज्ञानेन यत्कार्यं पुण्यपापं युगे युगे । अभेदज्ञान-
मानेन पूर्वकर्मादि दह्यते । अपरञ्च न भूयेत अभेदो मुक्तितां
व्रजेत् । अन्यथा लक्षयुगैर्वा न मुक्तिं स्वर्गतादिकम् । लभते
सर्वदा शश्वोर्भेदज्ञानी न संशयः । अभेदस्य क्रमः कुत्र निश्चितः
केन कर्मणा । भेदः पशूनां भेदो हि दिव्यभाव उदाहृतः ।
भेदाभेदविदो वीरः क्रमे चेवाक्रमं न्यसेत् । क्रमेण यदि कुर्वीत
कामनारहितश्चरन् । तदा कैवल्यफलदं कार्यं ज्ञेयं तथाक्रमम् ।
कामना यदि बध्नीयात् परां वाप्यपरापि वा । क्रमेणाप्यपक्वष्टा
सा पशुपाशिनियन्त्रिता । एकं हयं व्युत्क्रमं वा शोधितञ्च प्रय-
ततः । भेदवर्था नरो मोक्षी भेदबुद्ध्या स्वकर्मभाक् ॥

अथाद्वैतज्ञानम् ॥ मुण्डमालातन्त्रे षष्ठपटले ॥ यावज्जा-
नात्मभावश्च तावदेवं पृथग्विचम् । तावत् क्रिया पृथग्भावा
तावज्ज्ञानाविधा मता । तावद्विज्ञाश्च देवाश्च ब्रह्माविष्णुमहे-
श्वराः । गणेशश्च दिनेशश्च वह्निर्वरुण एव च । कुबेरश्चापि दिग्-
पाला एतत्सर्वं पृथक् पृथक् । तावज्ज्ञानाविधा चेष्टा स्त्रीपुंनपुं-स-
कात्मिका । तावद्विष्वदलं भिन्नं देवेशि । तुलसीदलात् ।
तावज्जवाद्गोणकृष्णा करवीराणि भूतले । विभिन्नानि च देवेशि ।

सत्यं वै तुलसीदलात् । तावद्विष्यच्च वीरश्च तावत्तु पशुभाव-
कः । तावत्तन्मे भेदबुद्धिस्तावद्देवे पृथक् क्रिया । हरी हरे
भवेद्बुद्धिर्जायते जगदम्बिके ! । कराखवदना काली श्रीमदेक-
जटा शिवा । षोडशी भैरवी छिन्ना भिन्ना च भुवनेश्वरी ।
छिन्ना भिन्ना त्वन्नपूर्णा भिन्ना च वगलामुखी । मातङ्गी कमला
भिन्ना भिन्ना वाणी च राधिका । भिन्ना चेष्टा क्रिया भिन्ना भिन्न
आचारसंग्रहः । यावन्नैक्यं पादपद्मे भवान्या नैव जायते ।
अद्वैते तारिणीपादपद्मे परमपावने । ज्ञानसारे समुत्पन्ने
हृत्पद्मनिलये तथा । ऐक्यं भवति चार्वाङ्गि ! सर्वजीवेषु शङ्करि ! ।
ननु जीवेष्वैक्यमिति कथमुक्तं यावतैक्यज्ञानसमुत्पत्तौ सत्यां
शिवशक्तिसर्वजीवानामेकैक्यं तारिणीपादपद्मे इत्यपि न वक्तु-
मुचितं तदानीं सेव्यसेवकत्वभावादिति चेत् सत्यम् । मुमुक्षून्
प्रति ज्ञानमिश्रभक्त्युपदेशार्थमिदमुक्तम् । अत एव भक्तिरव्यभि-
चरिणीत्यग्रे वक्ष्यति । निश्चितैकज्ञानं मुक्तं प्रति नोपदेशापेक्षा
तस्य सर्वथा निश्चिन्तत्वादिति ॥ न च पापं न वा पुण्यं न
स्वर्गो नरकं न च । न सुखं नापि दुःखञ्च न रोगेभ्यो भयं
तथा । न भयं नापि शोकश्च सर्वं ब्रह्मभयं जगत् । ब्राह्मणी
क्षत्रिया वैश्या वैद्यज्ज शूद्रजान्यजा । तथैव तारिणी विद्या यथा
विद्या तथा तथा । एवं ज्ञानं महेशानि ! यदा वै जायते प्रिये ! ।
तदैव विद्या देवेशि ! विद्याविद्याविरोधिनी । जायते नात्र
सन्देहो ब्रह्मानन्दमयो भवेत् । अद्वैतञ्च गुणातीतं निर्गुणं
प्रकृतेः परः । परमानन्दसंयुक्तो मुक्तिं यास्यति निश्चितम् । इति
सत्यं पुनः सत्यं सत्यं वच्मि वरानने ! । तत्त्वज्ञानात् परं
नास्ति नास्ति देवः सदाशिवात् । तदैवाचिरकालेन सोऽहं-
ज्ञानं प्रजायते । नानात्वबुद्धिं छुत्वा वै सात्त्विकीं परमात्मि-
काम् । गृहीत्वा च वरारोहे ! जायते परमार्थवित् । ज्ञानात्

परतरं नास्ति नास्ति नास्ति वरानने ।। लब्धा हि तत्त्वं
 परमं मुच्यते देहबन्धनात् ॥ तथा ॥ नानातन्त्रे पृथक् चेष्टा
 मयोक्ता गिरिनन्दिनि ।। ऐक्यज्ञानं यदा देवि ! तदा सिद्धि-
 मवाप्नुयात् । स्थावरे जङ्गमे चैव यदा तुल्यं मनो भवेत् । किं
 न सिद्ध्यति विश्वेशि ! परब्रह्म च पार्वति !। एवं भुक्तिश्च मुक्तिश्च
 जायते जगदम्बिके !। तत्त्वज्ञानं तथैवान्ते अतो निर्वाणमाप्नु-
 यात् । एकादशपटले ॥ यावन्नानात्वमेव स्यात् तावद्भिन्नं
 महीतले । तावज्जातिश्च गोत्रञ्च तावन्नाम पृथग्विधम् । ताव-
 त्क्षिप्तं पृथक् सर्वं वर्णानां पृथगेव हि । तावन्मित्रविपक्षौ
 च तावत् कलत्रबान्धवौ । तावत् पृथग्विधा पूजा मन्त्र-
 यन्त्रार्थनादिभिः । तावत् पुण्यं तावदेव पापं पुण्यवि-
 र्हेकम् । तावत् त्वञ्चाप्यहमयमियञ्च जायते प्रिये !। यावन्न
 जायते चण्डि ! विद्याविद्याविरोधिनी । अविद्यानाशिनी
 विद्या विद्याविद्याविवर्द्धिनी । या तारिणी महाविद्या विद्या-
 विद्याविरोधिनी । अतएव वरारोहे ! विद्यामुत्पाद्य भूतले ।
 निर्वाणं मोक्षमाप्नोति सत्यं त्रिपुरसुन्दरि !। श्रोदुर्गाचरणा-
 श्रोजे भक्तिरव्यभिचारिणी । तदैव जायते ब्रह्मज्ञानं ब्रह्मसुदुर्ल-
 भम् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्या दिवौकसः । भैरवाश्चैव
 गन्धर्वा विद्याभ्याससमुत्सुकाः । ब्रह्मविद्यासमाविद्या ब्रह्मवि-
 द्यासमा क्रिया । ब्रह्मविद्यासमं ज्ञानं नास्ति नास्ति कदाचन ॥

जगति चात्मद्वयं प्रवृत्तिनिवृत्तिभेदेन कर्मकाण्डं तत्-
 सन्धासञ्च । तथा च ॥ वाजसनेयसंहितोपनिषदः । पूज्य-
 पादशङ्कराचार्यविरचितभाष्यधृततैत्तिरीयके । इमौ द्वावेव पन्था-
 नावनुनिष्क्रान्ततरौ भवतः । क्रियापथश्चैव पुरस्तात् तयोः
 सत्यास एवेत्यवोचदिति । द्वाविमावथ पन्थानौ यत्र वेदाः
 प्रतिष्ठिताः । प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो निवृत्तौ च विभाषितः ॥ इति ।

अतः काव्यकाण्डे भण्डिकाण्डे च प्रवृत्तिमार्गिणः पुरुषार्थ-
सिद्धये सगुणस्थूलमूर्तीश्वरोपासना बहुविधा निरूपिता ।
इदानीन्तु निवृत्तिमार्गिणां सूक्ष्मतमनिर्गुणेश्वरोपासनार्थ-
मात्मतत्त्वमुच्यते । यथा महानिर्वाणतन्त्रे चतुर्दशोक्तासे ॥
ब्रह्मादिदृष्टपर्यन्तं मायया कल्पितं जगत् । सत्यमेकं परं
ब्रह्म विदित्वेवं सुखी भवेत् । विहाय नामरूपाणि नित्ये
ब्रह्मणि निष्कले । परिनिश्चिततत्त्वो यः स मुक्तः कर्मबन्ध-
नात् । न मुक्तिर्जपनाद्धोमादुपवासगतैरपि । ब्रह्मैवाहमिति
ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत् ॥ कुलार्णवे पञ्चमखण्डेऽपि ॥
क्षणं ब्रह्माहस्मोति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् । कोटिजन्मा-
र्जितं पापं तत्क्षणात्तस्य नश्यति ॥ महानिर्वाणतन्त्रे ॥
आत्मा साक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽद्वैतः परात्परः । देहस्थो-
ऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग् भवेत् ॥

नन्वात्मा यदि साक्षित्वेनाभिमतस्तदा य उपधिक्ततः संसारी
विद्याविद्ययोरधिक्ततः संसारगमनाय मोक्षगमनाय च तस्य
साधरणो रथः कथं कल्पितः । यथा कठोपनिषदि तृतीयव-
क्ष्याम् ॥ आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु । बुद्धिन्तु सारथिं
विद्धि मनः प्रग्रहमेव च । इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु
गोचरान् । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनोषिणः ॥ इति ।
एतां व्याचक्षन्ते भगवन्तः शङ्कराचार्याः । रथिनं रथस्वामिनं
विद्धि जानौहि । रथवद्वहयस्थानोयैरिन्द्रियैराकृत्यमाण-
त्वात् शरीरस्य रथत्वम् । बुद्धिन्तु अध्यक्षसायलक्षणं सारथिं
विद्धि बुद्धिनेहप्रधानत्वात् शरीरस्य सारथिनेहप्रधान इव रथः ।
मनः सङ्कल्पविकल्पादिलक्षणं प्रग्रहं रथनां विद्धि मनसा हि
गृहीतानि श्रोत्रादीनि करणानि प्रवर्तन्ते रथनाय वा ।
इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि हयानाहुः । रथकल्पनाकुशलाः शरी-

रथाकर्षणसामान्यात् तेषु इन्द्रियेषु परिकल्पितेषु गोचरान्
 मार्यान् रूपादीन् विषयान् विद्धि । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं
 शरीरेन्द्रियमनोभिः सहितं संयुक्तमात्मानं भोक्तेति संसारो-
 त्याहुर्मनोषिणो विवेकिनः । नहि केवलस्यात्मनो भोक्तृत्व-
 मस्ति बुद्ध्याद्युपाधिक्षतमेव तस्य भोक्तृत्वम् । सत्त्वं देहस्थो-
 ऽपि न देहस्थ इत्यनेनात्मनो निर्लिप्तत्वं दर्शिनमतो निर्लिप्तस्य
 साक्षित्वं विना भोक्तृत्वं घटते इत्यभिप्रायेणात्मा साक्षीत्यु-
 क्तम् । तर्हि सर्वत्र शरीरेषु एकस्यैवात्मनोऽवस्थाननिर्दिष्टत्वं
 शिष्टत्वं वा कस्य केन वा भवतीत्यपेक्षायामुत्तरमाह सैवोप-
 निषत् । यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा तदा । तस्येन्द्रि-
 याण्यवस्थानि दुष्टाश्वा इव सारथेः । यस्तु विज्ञानवान् भवति
 युक्तेन मनसा सदा । तस्येन्द्रियाणि वस्थानि सदृशा इव सार-
 थेः । अतस्तर्हि चैतन्यरूपस्यात्मनः साक्षित्वमात्रमभिमतश्चेत्तदा
 मोक्षः संसारो वा कस्येति सन्देहं निराकरोति सैव । यस्तु विज्ञा-
 नवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः । स तु तत्पदमाप्नोति
 यस्माद्भूयो न जायते । यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदा-
 ऽशुचिः । न स तत्पदमाप्नोति संसारश्चाधिगच्छति । बाल-
 क्रोडितवत् सर्वं रूपनामादिकल्पनम् । विहाय ब्रह्मनिष्ठो यः
 स मुक्तो नात्र संशयः । मनसा कल्पिता मूर्तिर्न नृणां चैक्यो-
 च्छवाधिनी । स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानो मानवास्तथा ।
 मृच्छिलाधातुदार्वादिमूर्त्तौ वीश्वरबुद्धयः । क्षिप्यन्तस्तपसा
 ज्ञानं विना मोक्षं न यान्ति वै । आहारसंयमक्लिष्टा यथेष्टा-
 हारतुन्दिलाः । ब्रह्मज्ञानविहीनाद्येन्द्रिष्कृतिं ते व्रजन्ति किम् ।
 वायुपर्णकणातोयव्रतिनो मोक्षभागिनः । सन्ति चेत् पन्नगा
 मुक्ताः प्रशुपच्चिजलेचराः । उत्तमो ब्रह्मसङ्गाधो ध्यानभावस्तु
 सध्यमः । स्तुतिर्जपोऽधमो भावो वह्निः पूजाऽधमाधमा । योगे

जीवात्मनोरेक्यं पूजनं सर्वकेशयोः । सर्वं ब्रह्मेति विदुषो न
योगो न च पूजनम् ॥ ननु योगा बहुविधास्तूक्ता एव कथं
जीवात्मनोरेक्यमात्रं योग इत्युच्यते इति चेत् सत्यम् । ते
योगाः प्राणायामादिकर्मरूपतया गौणा एव मुख्ययोगस्तु
जीवात्मनोरेक्यमेव । तथा च कुलार्णवे ॥ न पद्मासनतो
योगो न नासाग्रनिरोक्षणात् । ऐक्यं जीवात्मनोराहुयौगं
योगविशारदाः ॥ इति ॥ सहानिर्वाणे ॥ ब्रह्मज्ञानं परं
ज्ञानं यस्य चित्ते विराजते । किं तस्य जपयज्ञाद्यै-
स्तपोभिर्नियमव्रतैः । सत्यं विज्ञानमानन्दमेकं ब्रह्मेति
पश्यतः । स्वभावाद् ब्रह्मभूतस्य किं पूजाध्यानधारणाः । न
पापं नैव सुकृतं न स्वर्गो न पुनर्भवः । नापि ध्येयो न वा
ध्याता सर्वे ब्रह्मेति जानतः । अयमात्मा सदा मुक्तो निर्लिप्तः
सर्ववस्तुषु । किं तस्य बन्धनं कस्मात्सुक्तिमिच्छन्ति दुर्धियः ।
स्वयं विरचितं विश्वमवितर्क्यं सुरैरपि । रोजते तत्र तत्रैव
ह्यप्रविष्टः प्रविष्टवत् । बहिरन्तर्यथाकाशं वस्तूनामेवं सर्वशः ।
तथैव भाति तद्रूपो ह्यात्मा साक्षी स्वरूपतः । न बाह्यमस्ति च
जरा नात्मनो यौवनं जनुः । सदैकरूपश्चिन्मात्रो विकारपरिव-
र्जितः । जन्मयौवनवाद्देक्यं देहस्थैव न चात्मनः । पश्यन्तो-
ऽपि न पश्यन्ति मायाप्राकृतबुद्ध्यः । यथा शरावतोयस्यं रविं
पश्यत्यनेकधा । तथैव मायया देहे बहुधात्मानमौक्षते ॥ गन्ध-
तन्त्रे पञ्चमपटले ॥ नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोष-
वर्जितः । एकः सम्भियते भ्रात्र्या मायया न स्वरूपतः ।
तस्माद्दुर्दैतञ्च मे नास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः । यथाकाशो
घटाकाशो महाकाश इतीरितः । तथा भ्रान्तिर्हिधा प्रोक्ता
ह्यात्मा जीवेश्वरात्मना । नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि
तथैव च । न मनो नैव बुद्धिश्च नैव चित्तमहङ्गतिः । नाहं

पृथ्वी न सलिलं न च वह्निस्तथानिलः । न चाकाशो न
 शब्दश्च न च स्पर्शस्तथा रसः । न हि गन्धो न रूपञ्च न
 सायाहं न संसृतिः । सदा सच्चिस्वरूपात्मा ब्रह्म चैवास्मि
 केवलम् । सोऽहं ब्रह्म न संसारो न मत्तोऽन्यत् कदाचन ।
 इति विद्यात् स्वमात्मानं समाधिः परिकीर्तितः । समाधी
 शुद्धरूपोऽसौ तुरीयस्वर एव हि । तुरीयांशः परा शक्तिर्विज्ञात्मा
 ब्रह्म केवलम् । जीवमीश्वरभावेन विद्यात् सोऽहमिति ध्रुवम् ।
 यथा फेनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः । समुद्रे लीयते तद्वज्ज-
 गदात्मनि लीयते । यस्यैवं परमात्मा न पृथग्भूतः प्रकाशितः ।
 स याति परमं भावं स्वयं साक्षात् परावृतम् । यदा मनसि
 चैतन्यं भाति सर्वत्रगं तदा । योगिभ्यो व्यवधानेन तदा सम्प-
 द्यते स्वयम् । यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ।
 सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा । यदा सर्वाणि भूतानि
 समाधिस्थो न पश्यति । एकीभूतः परेणासौ तदा भवति
 केवलम् । तदा जलजरादुःखव्याधीनामेव भेषजम् । केवलं ब्रह्म-
 विज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः । तस्माद्विज्ञानतो मुक्तिर्नान्यथा
 भावकोटिभिः । मन्त्रोपधिवलैर्यद्वज्जीर्यते भक्षितं विषम् ।
 तद्वत् सर्वाणि कर्माणि जीर्यन्ति ज्ञानिनः क्षणात् । देहाभि-
 माने गलिते विदिते परमात्मनि । यत्र यत्र मनो याति तत्र
 यत्र समाधयः । अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मिन् मुक्तोऽहमिति भाव-
 येत् । सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् । एवं समा-
 धिशुक्तो यः स समाधाय कल्पते । सदाशिवोऽहमित्युक्ता स्वे-
 च्छया विहरिद् यतिः । लिप्यते न स पापेन बध्यते न च कर्म-
 णा । यथाग्निर्विद्रुतस्वर्णमालिन्यं दहति क्षणात् । तथा ब्रह्मा-
 पितामासौ सर्वकर्माणि नाशयेत् । आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा वह्नि-
 देवो विदित्यते । करस्थं कौस्तुभं त्यक्त्वा भ्रमते वायवट्पण्या ॥

मुण्डमालातन्त्रे एकादशपटले ॥ ज्ञानञ्च द्विविधं ज्ञेयं
दुर्ज्ञेयं मनसापि च । ज्ञानं परमतत्त्वाख्यं ज्ञानं
ज्ञेयार्थसाधनम् । अन्यद्विभ्रान्तिविषयं ज्ञानं साधारणं मतम् ।
एवञ्च त्रिविधं शेषमधमं तत्त्ववर्जितम् । तत्त्वज्ञानं वरारोहे !
योगीन्द्राणाञ्च दुर्लभम् । विना तत्त्वपरिज्ञानाद् विफलं पूजनं
जपः । एको देवश्च एकोऽहं नात्मा भिन्नः शरीरतः । घटात्घटात्
महेशानि ! कालचक्राख्योक्त्यात् । एवं ज्ञानं तत्त्वमयं तदा
मुक्तोऽचिरिण तु । नानाकारणमेवास्व पूजनं ध्यानमेव च ।
सेवनञ्चैव तौर्थाणां शरणं तारिणीपदम् । स्तरणं मन्त्रराजस्य
भ्रमणं वै कुलाचले । सलङ्कः सेवनं विष्णोः शङ्करस्यापि
पूजनम् । कालिकापाददुग्धलभजनं ज्ञानकारणम् ॥ क्रियाया
अपि मुक्तिसाधनत्वं दर्शयति द्वितीयपटले । भक्त्या च क्रि-
याया चण्डि ! पूजयेद्यस्तु कालिकाम् । जीवः शिवत्वं लभते
सत्यं सत्यं न संशयः ॥ तथा ॥ सदा क्रिया प्रकर्तव्या क्रियया
सिद्धिमुत्तमाम् । प्राप्नोति साधकश्चेष्टया एव न च त्यजेत् ।
एतत्तु वचनं गृह्यपरमश्रेष्ठोऽप्यविष्यति प्रथमपटले ॥
क्व यमः क्व तपो विष्णुः क्व कलिः कर्कशहंसकः । सर्वञ्च मानसं
क्लेशं सदा सत्यं विभावयेत् । एवं विधानमासाद्य प्रजपे-
द्भावयेत् सुधीः । सोऽचिरिणैव कालेन शिवत्वं लभते जनः ॥
शिवजीवयोरुपाधिमात्रभेद इति यत् प्रागुक्तं तदेव स्पष्टी-
करिष्यते यथा तत्रैव ॥ जीवः शिवः शिवो देवः स जीवः केवलः
शिवः । पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः । पाशस्तु
कुलार्णवे पञ्चमखण्डे ॥ दृष्ट्वा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति
पञ्चमी । कुलं शूलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्त्तिताः ।
पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः ॥ मुण्डमालातन्त्रे
तृतीयपटले ॥ तुषेण बद्धो ब्रौहिः स्यात्तुषाभावे तु तण्डुलः ।

कर्मबद्धो भवेज्जीवः कर्ममुक्तः सदाशिवः ॥ तथा । तोये क्षिप्तं
 हविर्यद्वत्तत्र क्षिप्तं न पूर्ववत् । पृथक्तया गुणेभ्यः स्यात्तद-
 दात्मा इहोच्यते । क्षीरेण सहितं तोयं क्षीरमेव यथा भवेत्
 अविशेषो भवेत्तद्वज्जीवात्मपरमात्मनोः । यथा चन्द्रार्कयो-
 र्विम्बो जलपूर्णघटेषु च । घटे भग्ने जलेष्वेव प्रलीनी चन्द्र-
 सूर्यकौ । न जायते न म्रियते आत्मा तु परमः शिवः ।
 आत्मज्ञानं समासाद्य संसारार्णवदुस्तरम् । तरत्येव सदा
 चण्डि । जीवः शिवत्वमालभेत् । कठोपनिषदि द्वितीयवक्त्रा-
 मपि ॥ न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव
 कश्चित् । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने
 शरीरे ॥ भगवद्गीतायामप्येतत् । केवलं विपश्चिदित्यत्र कदाचि-
 दिति नायं भूत्वा भविता वा न भूय इति च द्वितीयचरणे
 विशेषः ॥ तथा षष्ठपटले ॥ जीवः शिवस्तु विज्ञेयो विश्वेशः
 सर्वदारतिः । ब्रह्मतत्त्वं वरारोहे ! देवानामपि दुर्लभम् ॥
 तथा ॥ जीवः शिवत्वं लभते ज्ञानात्तु वरवर्णिनि ! ।
 विचित्तं गुरुपादाब्जं पार्वत्याः शङ्करस्य च । भजेदेक-
 विधानेन जीवन्मुक्तः स एव हि । पिण्डे युक्ताः पदे युक्ता
 रूपे युक्ता वरानने । गुणातीतेषु ये युक्तास्ते मुक्ता नात्र
 संशयः । न पिण्डं न पदं रूपं न जानामि सुरोत्तम ! । कथं
 तामित्यादिदेवोपश्रान्तम् ॥

शिव उवाच ॥ पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः पदोऽहं
 सम्प्रतिष्ठितः । रूपञ्चापि वरारोहे ! ध्यानमेव न संशयः ।
 महाकुण्डलिनीं शक्तिं ये भजन्ति भुजङ्गिनीम् । स कृतार्थः
 स धन्यश्च स दिव्यो वीरसत्तमः । तथा ॥ ये दिव्याः
 साधकेन्द्राश्च ये वीराः साधकोत्तमाः । पशवः पशवो ज्ञेयाः
 सर्वशास्त्रार्थकोविदाः । साधको मुक्तिमाप्नोति सत्यं सत्यं

वरानने ।। शृणु देवि ! जगद्धात्रि ! सर्वमङ्गलमङ्गलम् । तन्त्रं
शृणुयाद्देवेशि ! ब्रह्मनिर्वाणमामुयात् । तन्त्रश्रवणे कथं
ब्रह्माप्तिरिति नाशङ्कनीयम् ॥ परमार्थरूपान्नायाहृतन्त्र-
शास्त्रस्य तत्त्वज्ञानदर्शकत्वेन ब्रह्मविद्यात्वाद्देदादीनां न
तथात्वम् । तथा च मुण्डकोपनिषत् । हे विद्ये वेदितव्ये
इति इक्ष्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च । तत्र परा
ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं
निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथापरा यया तदक्षरमधि-
गम्यते । ननु ऋग्वेदादिवाह्याद्देदादिवाह्या चेत् परा विद्या
तर्हि कथमुपनिषत् परा विद्या स्यान्मोक्षसाधनञ्च । या वेद-
वाह्याः स्मृतय इति स्मरन्ति कुट्टष्टित्वाभिप्लवत्वादनदेय-
त्वात् । उपनिषदश्च ऋग्वेदादिवाह्यत्वं स्यात् । ऋग्वेदा-
दित्वे च पृथक्करणमनर्थकमप्यपरेऽपि न वेद्याविषयविज्ञानस्य
विवक्षितत्वादुपनिषद्देद्याक्षरविषयं हि वेद्याक्षरविषयं हि
विज्ञानमिह पराविद्येति प्राधान्येन विवक्षितम् । नोपनि-
यच्छुन्दराशिः । वेदशब्देन तु सर्वत्र राशिर्विवक्षितः । शब्द-
राश्यधिगमेऽपि यत्तु आन्तरमन्तरेण गुर्वभिगमनादिलक्षणं
वैराग्यञ्च नाक्षरादिगमः सम्भवतीति पृथक्करणं ब्रह्मविद्यायाः
परा विद्येति ॥

ब्रह्मज्ञानप्रशंसामाह ॥ गायत्रीतन्त्रे प्रथमपटले ॥
तावद्विद्या भवेत् सर्वा यावज्ज्ञानं न जायते । ब्रह्म-
ज्ञानपदं ज्ञात्वा सर्वाश्चैव तिरोहिताः । वेदशास्त्रपुरा-
णानि सामान्यगणिका इव । या पुनः शान्भवो विद्या गुप्ता
कुलवधूरिव । देहस्थाः सर्वविद्याश्च देहस्थाः - सर्वदेवताः ।
देहस्थसर्वतीर्थाणि लभन्ते गुरुवाक्यतः । अध्यात्मविद्या हि
नृणां सौख्यमोक्षकरी भवेत् । कर्मकर्म तथा जाप्यमेतत्

सर्वं निवर्तते ॥ अतएव कुलार्णवे ॥ अभ्यस्य सर्वशास्त्राणि
 तत्त्वं ज्ञात्वा प्रयत्नतः । पलालमिव शान्त्यर्थी सर्वशास्त्राणि
 सन्त्यजेत् ॥ गीतायामपि ॥ त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रै-
 गुण्यो भवार्जुन इत्यादि । गायत्रीतन्त्रे ॥ काष्ठमध्ये
 यथा वह्निः पुष्पे गन्धः पयो घृतम् । देहमध्ये तथा देवः
 पुण्यपापविवर्जितः । आत्मतत्त्वज्ञानस्य बहुजन्मार्जित-
 पुण्यफलत्वं दर्शयति कठोपनिषदि द्वितीयवल्ली । श्रवणा-
 यापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विदुः ।
 आश्चर्योऽस्य वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानु-
 शिष्टः । न नरेणावरिण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्य-
 मानः । अनन्यप्रोक्ते न गौरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्कमनुप्रमा-
 णात् ॥ नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय
 प्रेष्ठः । यां त्वमापः सत्यवृतिर्वतासि त्वाट्टङ्नी भूयान्नाचिकेतः !
 प्रष्टा ॥ जानाम्यहं शेषधिरित्यनित्यम् न ह्यध्रुवैः प्राप्यते
 ध्रुवं तत् । ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः
 प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ कामस्याग्निं जगतः प्रतिष्ठां क्रतो-
 रनन्यमभयस्य पारम् । स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
 धीरो नाचिकेतोऽत्यस्त्राक्षौः ॥ तं दुर्दृशं गूढमनु-
 प्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् । अध्यात्मयोगाधिगमेन
 देवं मत्वा धीरो हर्षंशोकौ जहाति ॥ इतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य
 मर्त्तः प्रगृह्य धर्म्यमनुमेतमाप्य ! स मोदते मोदनौयं हि लब्ध्वा
 विवृतं पद्मं नचिकेतसं मन्ये ॥ अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रा-
 स्मात् कृताकृतात् । अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत् पश्यसि
 तद्वद ॥ सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद-
 दन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण
 ब्रह्मस्योम् ॥ इत्येतत् ॥ नित्यातन्त्रे अष्टमपटले ॥ देव्युवाच ॥

देवदेव ! महादेव ! जगन्निस्तारतारक ! । परमात्मेति
किं नाम कथयस्व महेश्वर ! । ईश्वर उवाच ॥ साधु पृष्टं
त्वया भद्रे ! कथयामि शृणुष्व तत् । यस्य विज्ञानमात्रेण
जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । विरजाख्ये महेशानि ! महापद्मवराटके ।
वैखरीपरमायोगात् पुष्करे तीर्थराजके । निराकारं परं
ज्योतिः परंब्रह्मस्वरूपकम् । सर्वज्ञो निर्गुणो नित्योऽद्वयः
सर्वप्रतिष्ठितः । महाकुण्डलिनीयोगात् यदा तेजोमयो
भवेत् । तदैव चिन्तनीयोऽसौ परमात्मा सुरेश्वरि ! । जीवाद्याः
परमेशानि ! तदंशः परिकीर्त्तिताः ॥

महानिर्वाणतन्त्रे द्वितीयोक्तासि ॥ देव्युवाच ॥ कथितं
यत् परं ब्रह्म परमेशं परात् परम् । यस्योपासनतो मर्त्यो
भुक्तिं सुक्तिञ्च विन्दति । केनोपायेन भगवन् ! परमात्मा प्रसी-
दति । किं तस्य साधनं देव ! मन्त्रः को वा प्रकीर्त्तितः ।
किं ध्यानं किं विधानञ्च परेशस्य परात्मनः । तत्त्वेन श्रोतु-
मिच्छामि कृपया कथय प्रभो ! ॥ सदाशिव उवाच । तव
स्नेहेन वक्ष्यामि मम प्राणाधिकं परम् । ज्ञेयं भवति तद्ब्रह्म
सच्चिद्विष्वक्मयं परम् । यथातथस्वरूपेण लक्षणैर्वा महेश्वरि ! ।
सत्तामात्रं निर्विशेषमवाङ्मनसगोचरम् । असच्चिलोकी-
सद्भावं स्वरूपं ब्रह्मणः स्मृतम् । समाधियोगैस्तद्देव्यं सर्व-
त्र समदृष्टिभिः । इन्द्रातीतैर्निर्विकल्पैर्देहात्माध्यासवर्जितैः ।
यतो विश्वं सदुद्भूतं येन जातञ्च तिष्ठति । यस्मिन् सर्वाणि
लीयन्ते ज्ञेयं तद्ब्रह्म लक्षणैः ॥ ब्रह्मज्ञानन्तु सञ्चासिनामेव
न गृहस्थानाम् । तथा च मुण्डकभाष्ये प्रथमे श्रीशङ्कराचार्य-
पादाः ॥ ज्ञानमात्रे यद्यपि सर्वाश्रमिणामधिकारस्तथापि
सञ्चासनिष्ठा एव ब्रह्मविद्यामोक्षसाधनं न कर्मसंहितेति
भैक्षचर्यां चरन्तः सञ्चासयोगादिति च ब्रुवन् दर्शयति ।

विद्याकर्मविरोधाच्च नहि ब्रह्मात्मैकत्वदर्शनेन सह कम
 स्वप्नेऽपि सम्पादयितुं शक्यम् । विद्यायाः कालविशेषाभा-
 वान्नियतनिमित्तत्वात् कालकर्मसङ्कोचानुपपत्तिः । यत्तु
 गृहस्थेषु ब्रह्मविद्याप्रदानकर्तृत्वादिलिङ्गं न तत् स्थितं
 न्यायं बाधितुमुक्तहते । नहि विधिशतेनापि तमःप्रका-
 शयोरेकत्र सम्भवः शक्यते कर्तुमित्यन्तेनाहुः । तर्हि
 वक्तव्यमात्मस्मिन् धर्मे स्यादित्युपक्रम्य मातापितृः सेवन-
 तत्पर इति । कथमुक्तं गृहस्थस्यैव मातृपितृसेवनसम्भवादिति
 चेन्न । अस्मिन् धर्मे आरभ्यमाणे इति वक्तव्यमन्यथा परो-
 पकारनिरत इति न सङ्गच्छते । ब्रह्मैकनिष्ठस्यात्मपरज्ञाना-
 भावादिति ॥ ब्रह्मणो जगत्सृष्टिमाह मुण्डकोपनिषत् ॥
 यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः
 सम्भवन्ति । यथेशतः पुरुषात् केशलोमानि तथा चरात्
 सम्भवतीह विश्वम् ॥ आत्मज्ञानप्रकारस्तु तृतीयमुण्डकोप-
 निषत् ॥ स वेदैतत् परं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति
 शुभ्रम् । उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुभ्रमेतदतिवर्त्तन्ति
 धीराः ॥ कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते
 तत्र तत्र । पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति
 कामाः ॥ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना
 श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा वृणुते तनुं
 स्वाम् ॥ नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्य-
 लिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विद्यते
 ब्रह्मधाम ॥

ब्रह्मज्ञानप्राप्तिफलमाह व ॥ सम्प्राप्यैनसृषयो सै
 ज्ञानदप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः । ते
 सर्वगः सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ॥

वेदान्तविज्ञानमुनिश्चितार्थाः सञ्चासयोगादुत्तयः शुद्धसत्त्वाः ।
 ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
 सञ्चासिनां ब्रह्मविद्येति यत् प्रागुक्तं तदत्र सुस्पष्टीकृत-
 मुपनिषदेति ॥ तथा ॥ गताः कलाः पञ्चदशप्रतिष्ठा देवाश्च
 सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये
 सर्व एकीभवन्ति ॥ यथा नद्यः स्रन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति
 नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपादिमुक्तः परात्परं
 पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ स यो हवैतत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव
 भवति । ना स्याद्ब्रह्मविकुले भवति तरति शोकं तरति
 पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ महानिर्वाण-
 तन्त्रेऽपि ॥ बहुजन्मार्जितैः पुण्यैः सद्गुरु र्यदि लभ्यते । तदा
 तद्वक्तो लब्ध्वा जन्मसाफल्यमाप्नुयात् । चतुर्वर्गं करे कृत्वा
 परब्रेहं च मोदते । स धन्यः स कृतार्थश्च स कृती स च
 धार्मिकः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । सर्व-
 शास्त्रेषु निष्णातः सर्वलोकप्रतिष्ठितः । यस्य कर्णपथोपान्ते
 प्राप्तो मन्त्रो महामणिः । धन्या माता पिता तस्य पवित्रं
 तत् कुलं शिवे । पितरस्तस्य सन्तुष्टा मोदन्ते त्रिदशैः
 सह । गायन्ति गायनीं गाथां पुलकाङ्कितविग्रहाः ।
 अस्मत्कुले कुलश्रेष्ठो जातो ब्रह्मोपदेशिकः । किमस्माकं
 गयापिण्डैः किं तीर्थआहृतर्पणैः । किं दानैः किं जपै-
 र्होमैः किमन्यैर्बहुसाधनैः । वयमत्तयत्प्राः स्मः सत्पुत्रस्थास्य
 साधनात् । शृणु देवि ! जगद्वन्द्ये ! सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
 परब्रह्मोपासकानां किमन्यैः साधनान्तरैः । मन्त्रग्रहणमात्रेण
 देही ब्रह्ममयो भवेत् । ब्रह्मभूतस्य देवेशि ! किमवाप्यं
 जगत्तये । किं कुर्वन्ति ग्रहा रक्षा देतालाश्टकादयः । तस्य
 दर्शनमात्रेण पलायन्ते पराङ्मुखाः । रक्षितो ब्रह्ममन्त्रेण

प्रावतो ब्रह्मतेजसा । किं बिभेति गृहादिभ्यो मार्त्तं इव
 चापरः । तं दृष्ट्वा भयमापन्नाः सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ।
 विद्रवन्ति च नश्यन्ति पतङ्गा इव पावके । न तस्य दुरितं
 किञ्चिद् ब्रह्मनिष्ठस्य देहिनः । तस्य पूतस्य शुद्धस्य सर्व-
 प्राणिहितस्य च । को वोपद्रवमन्विच्छेदात्मापघातकं विना ।
 ये दृष्ट्वान्ति खलाः पापाः परब्रह्मोपदेशिनः । स्वद्रोहं ते
 प्रकुर्वन्ति नातिरिक्तो यतः स्मृतः । स तु सर्वहितः साधुः
 सर्वेषां प्रियकारकः । तस्यानिष्टे कृते देवि । को वा स्यान्निरूप-
 द्रवः । स्वरूपबुद्ध्या यद्देयं तदेव लक्षणैः शिवे । लक्षणै-
 रासुमिच्छूनां विहितं तत्र साधनम् । तत् साधनं प्रवक्ष्यामि
 शृणुष्ववहिता प्रिये । तत्रादौ कथयास्यामि । मन्त्रोद्धारं
 महेशितुः । प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सच्चित्पदमुदाहरत् । एकं पदान्ते
 ब्रह्मेति मन्त्रोद्धारः प्रकीर्तितः । सन्धिक्रमेण मिलितः
 सप्ताण्यं मनुर्मतः । तारहीनेन देवेभिः षड्वर्ण्यं मनुर्मतः ॥
 एतन्मन्त्रप्रशंसापि तत्तैव ॥ सर्वमन्त्रोत्तमः साक्षाद्भार्थकाम-
 मोद्दः । मात्रसिद्धायपेक्षास्ति नारिमित्रादिदूषणम् । न
 तिथिर्न च नक्षत्रं न च राशिगणस्तथा । कुलाकुलानां नियमो
 न संस्कारोऽत्र विद्यते । सर्वथा सिद्धिमन्त्रोऽयं नात्र कार्या
 विचारणा ॥ मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न जानाति साधकः ।
 अतल्लक्षप्रज्ञोऽपि तस्य मन्त्रो न सिध्यति । अतोऽस्यार्थश्च
 चैतन्यं कथयामि शृणु प्रिये । अकारेण जगत्प्राप्ता
 संहर्ता स्यादुकारकः । मकारेण जगत्स्रष्टा प्रणवार्थं उदाहृतः ।
 स्वच्छन्देन सदास्थायि चिच्चैतन्यं प्रकीर्तितम् । एकमहैत-
 न्यमेषानि । ब्रह्मत्वाद्ब्रह्म गीयते । मन्त्रार्थः कथितो देवि ।
 साधकाभीष्टसिद्धिदः । मन्त्रचैतन्यमेतद्दि तदधिष्ठातृदेवता ।
 तज्ज्ञानं परमेशानि । भक्तानां सिद्धिदायकम् । तस्या-

धिष्ठातृ देवेशि ! सर्वव्यापि सनातनम् । अवितर्क्य निराकारं
वाचातीतं निरञ्जनम् । वाङ्माया कमलाद्येन तारहीनेन
पार्वति ! । दीयते विविधा विद्या मायाश्रीसर्वतोमुखी ।
तारेण तारहीनेन प्रत्येकं सकलं पदम् । युग्मयुग्मक्रमेणापि
मन्त्रोऽयं विविधो भवेत् ॥

अथ ब्रह्ममन्त्रोपासनाप्रकारस्तु तत्रैव ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते
उत्थाय प्रणम्य ब्रह्मदं गुरुम् । ध्यात्वा च परमं ब्रह्म
यथाशक्ति मनुं स्मरेत् । पूर्ववत् प्रणमेद्ब्रह्म प्रातःकृत्यमिदं
स्मृतम् ॥ तथा । अथ सन्ध्याविधिं वक्ष्ये ब्रह्ममन्त्रस्य
शास्त्रवि ! । यां कृत्वा ब्रह्मसम्पत्तिं लभते भुवि मानवः ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने यथादेशे यथासने । पूर्ववत् परमब्रह्म
ध्यात्वा साधकसत्तमः । अष्टोत्तरशतं देवि ! गायत्रीजपमा-
चरेत् । जपं समर्थं विधिवत् पूर्ववत् प्रणमेत् सुधीः । एषा
सन्ध्या मया प्रोक्ता सर्वथा ब्रह्मसाधनम् । गायत्रीं शृणु
चार्वङ्गि ! सर्वपापप्रणाशिनौम् । परमेश्वरं डेऽन्तमुक्त्वा विद्महे
तदनन्तरम् । परतत्त्वाय परतो धीमहीति वदेत् प्रिये ! ।
तदनन्तरमीशानि ! तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् । इयं श्रीब्रह्मगायत्री
चतुर्वर्गप्रदायिनी । यजनं पूजनञ्चैव स्नानं पानञ्च भोजनम् ।
यद्यत् कर्म प्रकुर्वीत ब्रह्ममन्त्रेण साधयेत् । तत् सदिति
वदेद्देवि ! प्रारम्भे सर्वकर्मणाम् । ब्रह्मार्पणमस्तु वाक् पान-
भोजनकर्माणोः । ऋषिः सदाशिवो ह्यस्य छन्दोऽनुष्टुप्-
हृतम् । देवता परमं ब्रह्म सर्वान्तर्यामि निर्गुणम् । चतुर्वर्ग-
फलावाप्तये विनियोगः प्रकीर्तितः । अङ्गन्यासकरन्यासौ
कथयामि शृणु प्रिये ! । तारं सच्चिदेकमिति ब्रह्मेति सकलं
ततः । अङ्गुष्ठतर्जनौमध्यानामिकासु महेश्वरि ! । कनिष्ठयोः
करतलपृष्ठयोः सुरवन्दिते ! । नमःस्वाहावषड्वौषट्फडन्तैश्च

यथाक्रमम् । न्यसेद्यासीक्तविधिना साधकः सुसमाहितः ।
 हृदादिपादपर्यन्तमेवमेवं विधीयते । प्राणायामं ततः
 कुर्यान्मूलेन प्रणवेन वा । मध्यमानामिकाभ्याञ्च दक्षहस्तस्य
 पार्वति ।। वामनासापुटं धृत्वा दक्षनासापुटेन च । पूरयेत्
 पवनं मन्त्रौ मूलमन्त्रमिदं जपन् । अङ्गुष्ठेन दक्षनासां धृत्वा
 कुम्भकयोगतः । जपेद्वात्रिंशतावृत्त्या ततो दक्षिणनासाया ।
 शनैः शनैस्त्यजेद्वायुं जपन् षोडशधा मनुम् । वामनासापुटे-
 ऽप्येवं पूरकुम्भकरेचकम् । पुनर्दक्षिणतः कुर्यात् पूर्ववत् सुर-
 वन्दिते ।। प्राणायामविधिः प्रोक्तो ब्रह्ममन्त्रस्य साधने । ततो
 ध्यानं प्रकुर्वीत साधकाभीष्टसाधनम् ॥ हृदयकमलमध्ये
 निर्विशेषं निरीहं हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।
 जननमरणभीतिध्वंसि सच्चित्स्वरूपं सकलभुवनवीजं ब्रह्म-
 चैतन्यमौडं ॥ ध्यत्वैवं परमं ब्रह्म मानसैरुपचारकैः । पूज-
 येत् परया भक्त्या ब्रह्मसायुज्यहेतवे । गन्धं दद्यान्महीतत्त्वं
 पुष्पमाकाशमेव च । धूपं दद्याद्वायुतत्त्वं दीपं तैजसमर्पयेत् ।
 नैवेद्यं तीयतत्त्वेन प्रदद्यात् परमात्मने । ततो जप्त्वा महामन्त्रं
 मनसा साधकोत्तमः । समर्प्य ब्रह्मणे पञ्चाहहिः पूजां समार-
 भेत् । उपस्थितानि द्रव्याणि गन्धपुष्पादिकानि च । वस्त्रा-
 लङ्कारादीनि भक्ष्यपेयानि यानि च । मन्त्रेणानेन संशोध्य
 ध्यात्वा ब्रह्म सनातनम् । निमील्य नेत्रे मतिमानर्पयेत् परमा-
 त्मने । ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मैव
 तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना । ततो नेत्रे समुन्मील्य जप्त्वा
 मूलं स्वशक्तिः । तज्जपं ब्रह्मसात् कृत्वा स्तोत्रञ्च कवचं पठेत् ।
 स्तोत्रं शृणु महेशानि ! ब्रह्मणः परमात्मनः । यत् श्रुत्वा
 साधको देवि ! ब्रह्मसायुज्यमश्नुते । नमस्ते सते सर्वलोकाश्च-
 याय नमस्तु चिते विश्वरूपात्मकाय । नमोऽद्वैततत्त्वाय

मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय ॥ त्वमेकं शरण्यं
 त्वमेकं वरेण्यं त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम् । त्वमेकं जगत्क-
 र्तृपादप्रहर्तृ त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥ भयानां भयं
 भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम् । महो-
 चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥ परेश !
 प्रभो ! सर्वरूपाविनाशिन्ननिर्देश्य ! सर्वेन्द्रियागम्य ! सत्य ! ।
 अचिन्त्याक्षर ! व्यापक ! व्यक्ततत्त्वाजपाभाप्रकाशीश ! पायादपा-
 यात् ॥ तदेकं स्मरामस्तदेकं भजामस्तदेकं जगत्साक्षिरूपं
 नमामः । सदेकं विधानं निरालम्बमीशं भवाभोधिपोतं शरण्यं
 ब्रजामः ॥ पञ्चरत्नमिदं स्तोत्रं ब्रह्मणः सच्चिदात्मनः । यः पठेत्
 प्रयतो भूत्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् । प्रदोषे यः पठेन्नित्यं सोम-
 वारे विशेषतः । आवर्धेद्योधयेत्प्राज्ञो ब्रह्मनिष्ठान् सबान्भवान् ॥
 इति पञ्चरत्नस्तोत्रं समाप्तम् ॥

कवचं शृणु चार्वङ्गि ! जगन्मङ्गलनामकम् । पठनाद्वारणा-
 द्यस्य ब्रह्मज्ञो जायते ध्रुवम् । परमात्मा शिवः पातु हृदयं पर-
 मेश्वरः । कण्ठं पातु जगत्पाता वदनं सर्वदृष्टिभृत् । करौ
 मे पातु विश्वात्मा पादौ रक्षतु चिन्मयः । सर्वाङ्गं सर्वदा पातु
 परं ब्रह्म सनातनम् । श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य सदाशिवः ।
 ऋषिश्छन्दोऽनुष्टुप्तिः परमब्रह्म देवता । चतुर्वर्गफलावाप्त्यै
 विनियोगः प्रकीर्तितः । यः पठेद्ब्रह्मकवचं ऋषिन्ध्यासपुर-
 सरम् । स ब्रह्मज्ञानमासाद्य साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत् । भूर्जे
 विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्यां धारयेद्यदि । कण्ठे वा दक्षिणे
 वाहौ सर्वसिद्धोऽश्वरो भवेत् । इत्येतत् परमब्रह्मकवचं ते
 प्रकाशितम् । दद्यात् प्रियाय शिष्याय गुरुभक्त्या धीमते ॥
 इति ब्रह्मकवचं समाप्तम् ॥

एवं सम्पूज्य मतिमान् स्वजनैर्वाङ्मवैः सह । महाप्रसादं

स्वीकुर्याद् ब्रह्मणः परमात्मनः । पूजने परमेशस्य नावाहन-
 विसर्जने । सर्वत्र सर्वकालेषु साधयेद्ब्रह्मसाधनम् । अस्नातो
 वा कृतस्नानो भुक्त्वा वापि बुभुक्षितः । पूजयेत् परमात्मानं
 सदा निर्मलमानसः । अनेन ब्रह्ममन्त्रेण भक्ष्यपेयादिकं चरेत् ।
 दीयते परमेशाय तदेव पावनं महत् । गङ्गातोये शिवादी च
 स्वर्गदीपोऽपि वर्त्तते । परब्रह्मार्पिते द्रव्ये स्पृष्टास्पृष्टिर्न
 दुष्यति ॥ तथा । नात्र वर्णविचारोऽस्ति नोच्छ्रिष्टादिविचा-
 रणम् । न कालनियमोऽप्यत्र शौचाशौचं तथैव च ॥ तथा ।
 महापातकयुक्तो वा युक्तो वा चान्यपातकैः । सकृत् प्रसादग्रह-
 णाम्बुच्यते नात्र संशयः । सार्धत्रिकोटितीर्थेषु स्नानदानेन यत्
 फलम् । तत् फलं लभते मर्त्यैर्ब्रह्मार्पितनिषेवणात् ॥ तथा ।
 पुण्यायन्ते क्रियाः सर्वा दुष्कृतं सुकृतायते । स्वेच्छाचारोऽत्र
 विहितो महामन्त्रस्य साधने । किं तस्य वैदिकाचारै-
 स्तान्त्रिकैर्वापि तस्य किम् । ब्रह्मनिष्ठस्य विदुषः स्वेच्छाचारो
 विधिः स्मृतः । कृतेनास्य फलं नास्ति नाकृतेनापि किल्बि-
 षम् । न विघ्नः प्रत्यवायोऽस्य महामन्त्रस्य साधने । अस्मिन्
 धर्मे महेशि । स्यात् सत्यवादी जितेन्द्रियः । परोपकारनिरतो
 निर्विकारः सदाश्रयः । मात्सर्यहीनोऽदम्भौ च दयावान् शुद्ध-
 मानसः । मातापित्रोः प्रीतिकरस्तयोः सेवनतत्परः ॥ तथा ।
 द्वात्रिंशता सहस्रेण जपेनास्य पुरस्क्रिया । तद्दृशांशेन हवनं
 तर्पणं तद्दृशांशतः । सिचनं तद्दृशांशेन तद्दृशांशेन सुन्दरि । ।
 ब्राह्मणान् भोजयेन्नन्तो पुरस्करणकर्म्मणि । भक्ष्याभक्ष्यविचारोऽत्र
 त्याज्यो ग्राह्यो न विद्यते । न कालशुद्धिनियमो नवा स्थाननिरू-
 पणम् । अभक्तो वापि भक्तो वा स्नातो वाऽस्नात एव वा । साध-
 येत् परमं मन्त्रं स्वेच्छाचारेण साधकः । ज्ञानिनो यत्र कुत्रापि
 मरणे मोक्ष एव च ॥ तदुक्तं सुण्डमालातन्त्रे प्रथमपटले ॥

गङ्गाद्वारे प्रयागे वा विमुक्तोऽपावनीमुखे । यत्र कुत्र मृतो
ज्ञानी तत्रैव मोक्षमाप्नुयात् ॥

निश्चासतः पञ्चभूतावस्थाः पूर्वं निरूपिताः । इदानीं
वर्णभेदेनावस्थापञ्चकं निरूपयन् वर्णतः प्रयोजनान्तरमपि
दर्शितवान् । नरपतिजयचर्यास्वरोदयधृतब्रह्मजामले ॥ मातृ-
कायां स्वराः प्रोक्ताः स्वराः षोडशसंख्यया । तेषां द्वावन्तिमौ
त्याज्यौ चत्वारश्च नपुंसकाः । शेषा दशस्वरान्तेषु स्यादेकैको
द्विके द्विके । ज्ञेया अतः स्वराद्याश्च ऋक्षाः पञ्चस्वरोदये ।
स्वरा हि मातृकोच्चारामात्राव्यासं जगत्त्रयम् । तस्मात् स्वरोद्भवं
सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । अकारादिस्वराः पञ्च ब्रह्माद्याः
पञ्च देवताः । निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च इच्छायां शक्तिपञ्चकम् ।
मायाद्याश्चक्रमेदाश्च धराद्यं भूतपञ्चकम् । गन्धाद्या विषयास्ते
च कामवाणा इतीरिताः । पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं
निरञ्जनम् । स्वरभेदे स्थितं ज्ञानं ज्ञायते गुरुतः सदा ।
अकारादिस्वराः पञ्च तेषामष्टौ भिदास्त्वमी । मात्रा वर्णो ग्रहो
जीवो राशिर्भेदोऽपिण्डयोगकौ । प्रभुसो भाषते येन येन गच्छति
शब्दितः । तत्र नाम्नाद्यवर्णं या मात्रा मात्रास्वरः स हि ॥ इति
मात्रास्वरचक्रम् ॥ कादिहान्तान् लिखेद्वर्णान् स्वराधो ङजणो-
ज्झितान् । तिर्यक्पंक्तिक्रमेणैव पञ्चत्रिंशत्प्रकीष्टके । नर-
नामादिमो वर्णो यस्मात् स्वरादधः स्थितः । स स्वरस्तस्य
वर्णस्य वर्णस्वर इहोच्यते । न प्रोक्ता ङजणा वर्णा नामादौ
सन्ति ते नहि । चेद्भवन्ति तदा ज्ञेया जगडास्ते यथाक्रमम् ।
यदि नान्ति भवेद्वर्णः संयुक्ताक्षरलक्षणः । आह्वस्तस्यादिमो
वर्ण इत्युक्तं ब्रह्मजामले ॥ इति वर्णस्वरचक्रम् ॥ अस्वरे
मेषसिंहालिरिः कन्यायुग्मकर्कटाः । उस्वरे च धनुर्मीनौ
एस्वरे च तुलावृषौ । ओस्वरे मृगकुम्भौ च राशिशम्भू-

ग्रहस्वराः । स्वराधः स्थापयेत् खेटं राशेर्यो यस्य नायकः ॥
 इति ग्रहस्वरचक्रम् ॥ षोडशाक्षरो हवर्गः स्यात् कादिवर्गास्तु
 पञ्चकाः । चतुर्वर्णौ यशौ वर्गौ सङ्ख्या वर्गेषु कौर्त्तिताः । नाम्नी
 वर्णाः स्वरा ग्राह्या वर्गाणां वर्णसङ्ख्याया । पिण्डिताः पञ्चभि-
 र्भक्ताः शेषं जीवस्वरं विदुः ॥ इति जीवस्वरचक्रम् ॥
 मेषवृषावकारे च मिथुनाद्याः षडंशकाः । मिथुनांशास्त्रय-
 श्चैव इकारे सिंहकर्कटाः । कन्या तुला उकारे च वृश्चिकस्य
 त्रयोऽंशकाः । एकारे वृश्चिकस्यान्याः कार्मुकं षड्मृगादिमाः ।
 अंशास्त्रयो मृगस्यान्याः कुम्भमीनौ तथौखरे । एवं
 राशिस्वरः प्रोक्ता नदांशप्रक्रमोदयः ॥ इति राशिस्वर-
 चक्रम् ॥ अकारे सप्त ऋक्षाणि रेवत्यादिक्रमेण च । पञ्च पञ्च
 इकारादावेवमृक्षस्वरोदयः ॥ इति नक्षत्रस्वरचक्रम् ॥ माता-
 वणस्वरात् सङ्ख्या सङ्ख्या बीजस्वरात्तथा । पिण्डीकृते शरैः
 शेषः पिण्डस्वर इहोच्यते ॥ इति पिण्डस्वरचक्रम् ॥ माता-
 दिवर्णभेदेन स्वरावुत्पाद्य नामतः । योगे शरहते तत्र
 शेषो योगस्वरो मतः ॥ इति योगस्वरचक्रम् ॥ प्रोक्ता नैसर्गिका-
 खाष्टौ मात्राद्या नामजाः स्वराः । एतेषामुदयान् वक्ष्ये
 द्वादशाब्दादिकालजान् । प्रभवादिक्रमेणैषां स्वराणामस्वरा-
 दितः । उदयो द्वादशाब्दानां प्रत्येकं द्वादशाब्दिकः ।
 अस्यान्तरोदयो वर्षमेकं मासं दिनद्वयम् । लोकाब्धिघटिका
 प्रोक्ता चाष्टत्रिंशत् पलानि च । १ । १ । २ । ४३ । ३८ । १ ॥
 प्रभवाद्यब्दमेकैकमुदयस्वस्वरादितः । द्वादशाब्दस्य वर्षेना त-
 द्भुक्तिं वार्षिकस्वरे । ० । ० । १ । १ । २ । ४३ । ३८ । २ ॥ अस्वरो
 दक्षिणे स्वामी इस्वरस्योत्तरायणे । वर्षभुक्त्यर्धमानेन भोगः
 पाण्मासिकस्वरे । ० । ० । १ । ६ । २१ । ४८ ॥ ३ ॥ अकारादि-
 छराः पञ्च वसन्तादिक्रमोदयाः । एकैकस्मिन् स्वराः पञ्च

द्विसप्ततिर्दिनोदयाः ॥ ७२ ॥ षड्दिनानि वदान्याब्धौ
 वज्रिवेदपलानि च । अन्तरोदय एतस्य ऋतुनाडीखरोदये ॥
 ० ॥ ० ॥ ६ । ३२ । ४३ ॥ ४ ॥ नभस्यमार्गवैशाखे अस्वरस्यो-
 दयो भवेत् । आश्विनश्रावणाषाढे इकारो नायकः स्मृतः ।
 उकारश्चैत्रपौषे स्यादेकारो ज्यैष्ठकार्तिके । ओकारश्चोदयं
 याति माघफाल्गुनमासयोः । द्वे दिने त्र्यब्धयो नाद्यष्टाष्टि-
 शत्यलानि च । अन्तरोदय उक्तोऽसावत्र वै मासिकखरे । ० ।
 ० । १ । २ । ४३ । ३८ ॥ ५ ॥ अस्वरः क्षणपक्षेः शुक्लपक्षे
 इस्वरः । पञ्चान्तरात्मिका भुक्ति र्मासभुक्त्यर्हमानतः । ० । ० ।
 १ । २१ । ४८ ॥ ६ ॥ अकारादिक्रमाद्यस्य नन्दादितिथि-
 पञ्चकम् । दिनखरोदयो दित्यं स्वस्वतिथ्यादि जायते ।
 तिथ्यादौ घटिकाः पञ्च पलानां सप्तविंशतिः । अन्तरोदय
 उक्तोऽसौ दिनखरस्य सूरिभिः । ० । ० । ० । ५ ॥ २७ ॥ ७ ॥
 तिथ्यन्तरोदयमानेन उदयो घटिकाखरे । ज्ञेयमेवं विधाने-
 न समुक्तश्चादिजामले । घटीखरो घटीपञ्चपलानि सप्त-
 विंशतिः । अस्यान्तरोदयः प्रोक्तो घटिकाईप्रमाणतः । ० ।
 ० । ० । ० ॥ ३० ॥ ८ ॥ द्वादशाब्दादिनाद्यन्ताः स्वस्थानाच्च
 स्वकालतः । उदयान्ते पुनस्तत्र अन्तरेकादशोदयैः । वर्षो
 मासो दिनं नाडी पलानि च क्रमादिदम् । कालमानं मया
 प्रोक्तं पञ्चधात्र खरोदये । द्वादशाब्दखरादीनां भुक्तं पल-
 मयन्तु यत् । तद्भुक्तं खरभेदेन लब्धः शेषो द्विकन्तु यत् ।
 लब्धो भुक्तः खरा ज्ञेयाः शेषश्चैवोदितः खरः । अस्मिन्
 षष्ठ्यादिभुक्तेन भुक्तः स्यादुदितः खरः । उदितस्य खरस्य
 स्युर्नामखरवशेन ताः । पञ्च बालादिकावस्थाः स्वस्वकाल-
 प्रमाणतः । आद्यो बालः कुमारश्च युवा वृद्धो मृतस्तथा ।
 निजावस्थास्वरूपेण फलदा नात्र संशयः । किञ्चिज्ज्ञाभकरो

बालः कुमारश्चाईलाभदः । सर्वसिद्धिं युवादत्ते वृद्धे हानि-
 मूर्ते चयः । यात्रायुद्धे विवादे च नष्टे दुष्टे रुजान्विते । बाल-
 खरो भवेद्दुष्टो विवाहादिशुभे शुभः । सर्वेषु शुभकार्येषु
 यात्राकाले तथैव च । कुमारः कुरुते सिद्धिं सङ्ग्रामे सत्ततो
 जयी । शुभाशुभेषु सर्वेषु मन्त्रयन्त्रादिसाधने । सर्वसिद्धिं युवादत्ते
 यात्रायुद्धे विशेषतः । दाने देवार्चने दीक्षागूढमन्त्रप्रजल्पने ।
 वृद्धखरो भवेद्भव्यो रणे भङ्गो भयङ्गमे । विवाहादिशुभं सर्वं
 सङ्ग्रामाद्यशुभं तथा । न कर्त्तव्यं नृभिः किञ्चिद्याते मृत्यु-
 खरोदये । मृतो वृद्धस्तथा बालः कुमारस्तरुणः खरः ।
 यथोत्तरबलाः सर्वे ज्ञातव्याः खरवेदिभिः । यो यस्य पञ्चम-
 स्थाने स खरो मृत्युदायकः । तृतीये तु भवेद्बृद्धिः शेषा
 मध्यफलप्रदाः । मृत्युर्हानिबले नान्नि जयो नान्नि खराधिके ।
 समनान्नि भवेत् साम्यं सन्धिर्जयपराजयौ । एकखरे भवेत्
 साम्यं द्वितीयेऽर्द्धफलं भवेत् । तृतीये च फलं पूर्णं तुर्ये बन्धः
 परे चयः । शरीर्मृत्युखरे प्राप्ते यूनि प्राप्ते स्वकीयके । तत्काले
 प्रारभेद् युद्धं विजयो भवति भ्रुवम् । तत्काले मातृको
 ग्राह्यो दिने वर्णखरस्तथा । पक्षे ग्रहखरो ज्ञेयो मासे
 जीवखरोदयः । ऋतौ राश्यंशको ग्राह्यः प्रमासे धिष्णसम्भवः ।
 शब्दे षिण्डखरो ज्ञेयो योगे द्वादशवार्षिकः । सर्वकाले
 बली वर्णः सर्वव्यापी न संशयः । तस्मात् सर्वत्र यत्नेन वर्णं
 वीक्ष्य शुभाशुभम् ॥ यथा पदा हस्तिपदे प्रविष्टा यथा हि नद्यः
 खलु सागरेषु । यथा हरेर्देहगताश्च देवास्तथा खरा वर्ण-
 फलोदयस्थाः । साधनं मन्त्रयन्त्रस्य यन्त्रयोगश्च सर्वदा ।
 अधोमुखानि कर्माणि मात्राखरबले कुरु । वर्णखरबले सर्वं
 कर्त्तव्यं च शुभाशुभम् । सिद्धिदं सर्वकार्येषु युद्धकाले
 विशेषतः । मारणं मोहनं स्तम्भं विद्वेषोच्चाटनं वशम् ।

विवादं विग्रहं घातं कुर्याद्ब्रह्मसरोदये । यानपानादिकं
सर्वं वस्त्रालङ्कारभूषणम् । विदारम्भं विवाहञ्च कुर्याज्जीव-
स्वरोदये । प्रासादारामहर्माणि देषतास्थापनानि च ।
राजाभिषेचनं दीक्षा कर्त्तव्यं रात्रिके स्वरे । शान्तिकं पौष्टिक-
ञ्चैव प्रवेशो वीजवापनम् । स्त्रीविवाहस्तथा यात्रा कर्त्तव्या
भस्वरोदये । शत्रूणां देशभङ्गश्च कौट्युद्धञ्च वेष्टनम् । सेनाध्यक्ष-
स्तथा मन्त्री कर्त्तव्यः पिण्डकोदये । योगेन साधयेद्योगं
देहस्थं ज्ञानसम्भवम् । आणवं शास्त्रवञ्चैव शाक्त्यञ्च तृतीय-
कम् । तिथिवारी च नक्षत्रं पृथक् पृथक् प्रभाषितम् ।
यत्तदेकत्र सम्मिल्य कुर्याद्दर्शनसरोदये । यस्य नामादिकी
वर्णस्तिथिवारर्चजं सृतम् । तद्दिनं वर्जयेत्तस्य हानिमृत्यु-
करं यतः । अनेन स्वरयोगेण शत्रूणां मारणादिकम् । मन्त्रयन्त्र-
क्रियां मोहं साधयेत्तद्दिने बुधः ॥ १७ ॥ बालस्वरादिकावस्था
भानु १२ सङ्ख्या भवन्ति ताः । उदयास्तक्रमेणैव स्वरभुक्ति-
प्रमाणतः । षटिकाख्ये दिने पक्षे मासे चर्त्तयने तथा ।
वर्षे द्वादशवर्षे च अवस्था जायते स्वरे । भपलानि २७ घटीपञ्च
५ भमासार्धदिनद्वयम् । १ । २ ३० । द्विषट्कं ६ पक्ष-
मासाश्च अवस्थाप्रमितिः क्रमात् । भुक्तस्वरप्रमाणन्तु स्वस्व-
भोगेन भाजयेत् । गतावस्था गताङ्गेन शेषस्तत्कालजो
मतः । पूर्वस्मिन्नस्वरः स्वामी इस्वरो दक्षिणे तथा । उस्वरः
पश्चिमे भागे एसीम्ये मध्य ओस्वरः । यस्यां दिग्द्वयं
याति स्वरस्तत्पञ्चमीं दिशम् । वर्जयेत् सर्वकार्येषु यात्राकाले
विशेषतः । पृच्छते पृच्छकः स्थासुः स्वरस्थास्तमितां दिशम् ।
हानिमृत्यु भयं भङ्गो जायते नात्र संशयः ॥ १८ ॥ तिथ्यादावु-
दयं याति तिथिस्वराद्वटीस्वरः । बालस्वरादिकं प्रश्ने फलं
तस्य वृदाम्यहम् । तिथिभुक्तघटीसङ्ख्यां कृत्वा फलमयीं ततः ।

ऋक्षवङ्गि ३२७ हृते शिषे खरस्तत्कालसम्भवः । समुद्दिश्य
 कृतः प्रश्नः फलं तस्य प्रजायते । यच्च नोदिश्यते किञ्चित् तत्र
 प्रष्टुः शुभाशुभम् । बालोदये यदि पृच्छा लाभार्थं स्वल्पलाभदा ।
 रोगार्थं चिररोगश्च गमे हानिः क्षयो रणे ॥ १ ॥ कुमारोदयवि-
 लायां लाभो भवति पुष्कलः । रुजां नाशो जयो युद्धे यात्रा
 सर्वत्र सिद्धिदा ॥ २ ॥ युवोदये लभेद्राज्यं क्लेशच्छेदश्च
 तत्क्षणात् । सङ्ग्रामे शत्रुहन्ता च यात्रा च फलदा भवेत् ॥ ३ ॥
 वृद्धोदये न लाभः स्यात् क्लेशिनां क्लेशवर्द्धनम् । सङ्ग्रामे भङ्ग-
 मायाति यात्रायां न निवर्त्तते ॥ ४ ॥ मृदोदये यदा भूतः
 पृच्छति स्वं प्रयोजनम् । तत् सर्वं मृत्युर्दं ज्ञेयं युद्धे मृत्युः
 सभङ्गकः ॥ ५ ॥ १८ ॥ श्रोजः खराः पुमांसः स्त्र्यः स्त्रियो
 युग्माः खरा मताः । स्वस्वखरोदये जाते पुंसां स्त्रीणां बलं
 भवेत् । गर्भार्थं पुंस्वरे पुत्रः कन्या कन्याखरोदये । युग्मे युग्मं
 क्षयो नष्टे मातुर्मृत्युश्च संक्रमे । द्युनाडीखरयोः पुंसाः पुं-
 युग्मं स्त्रीयुगं स्त्रियोः । तयोस्तु पुंस्त्रियोः पुंस्त्री युग्मं
 गर्भे विनिर्दिशेत् । जन्मर्त्ते जन्मपादो यस्तुहर्णे योऽक्षरखरः ।
 तेन नाडीखरो ज्ञेयः स्वभावः प्राणिनामिह । चपलः कातरो
 मूर्खः कृपणश्चाजितेन्द्रियः । असत्यबहुभाषी च जातो
 बालखरोदये ॥ १ ॥ व्यवसायी कलाभिन्नः स्त्रीरतः सुभगः
 सुखी । दीर्घायुररिभिः शूरः कुमारोदयसम्भवः ॥ २ ॥
 सर्वलक्षणसम्पूर्णो राजा भवति विश्रुतः । सर्वकालजयी युद्धे
 जातो युवोदये शिशुः ॥ ३ ॥ स्त्रीजितो धार्मिकः कामी
 विवेकी स्थिरसाहसः । सत्यवादी सदाचारः पुमान् वृद्धो-
 दयोद्भवः ॥ ४ ॥ क्लेशो समत्सरः क्रूरो विभ्रमो विकलेन्द्रियः ।
 सर्वकार्यालसे दुष्टो जन्म यस्य मृतोदये ॥ ५ ॥ आद्यतिथे-
 स्त्रयो वर्णा द्वौ वर्णौ शेषयोर्मतौ । एवं तिथिद्वये ज्ञेया

वर्णसङ्ख्या तिथिस्वरे । वर्णास्तिथ्यादि तिथ्याख्या जन्म-
हानिर्मृतिस्तथा । ऋचे त्रिजन्मनि हानौ मृतौ मृत्युर्न
संशयः । २० ॥ स्वरोदये ॥ यदुक्तं जामले तन्त्रे ज्ञातं
गुरुप्रसादतः । स्वरादिनफलं वक्ष्ये पुंसां कर्मप्रकाशकम् ।
योगपिण्डचराश्याख्यजीवखेटाक्षरस्वरान् । उत्पाद्य नाम-
तच्चाष्टौ मात्रान्तान् स्थपयेत् क्रमात् । तस्याधस्तात्त्रिखे-
चाष्टौ द्वादशाब्दाधिकान् स्वरान् । स्वभोगिन समायुक्तान्
भोग्यैकादशांशकः । यथोत्तरबला एते योगाद्या नामजाः
स्वराः । कालोदयाः स्वराद्यापि ज्ञातव्याः स्वरवेदिभिः ।
अकारादिस्वराधस्तात् सङ्ख्यां वेदप्रमाणिकाम् । विन्यस्य
क्रमयोगिन ते च विंशोपकाः स्मृताः । योगे द्वादशवर्षाः
स्युरवस्थाः पिण्डतोऽब्दके । भस्वरादयने ज्ञेयो राशिस्वरा-
दुत्तरस्वरे । जीवान्मासस्वरावस्था ग्रहात् पक्षस्वरे तथा ।
वर्णादिनस्वरे ज्ञेये मात्रास्वराद्वटीस्वरे । द्वादशाब्दाधिकः
कालो यस्याकारादिके स्वरे । स्थितस्तत्र शुभो न स्यात्
पञ्चावस्थाशुभोऽपि च । स्वरौ वृद्धान्तिमौ दुष्टौ बाल-
पूर्वदलं तथा । शेषं सार्धद्वयं भव्यमिति ज्ञेयं शुभाशुभम् ।
द्वादशवर्षिकाद्या ये स्वान्तरोदयसंस्थिताः । ते शुभा एकतः
स्थाप्या अशुभाद्यान्यतः पृथक् । शुभाशुभस्वरूपस्य राशि-
युग्मस्य मध्यतः । एकस्मात् पातिते शेषे ज्ञेयं तद्दिनजं
फलम् । विंशत्या ताडिते शेषे चतुःषष्टिविभाजिते ।
लब्धं विंशोपकास्तत्र शुभाशुभप्रकाशकाः । योगे स्वकर्मतः
पिण्डे शरीरावस्थे सुहृज्जनात् । राशौ स्वकुलतो जीवे स्वरित्ता-
द्ब्रह्मतो रिपोः । वर्णं स्वस्वामितो ज्ञेयं मात्रायां स्त्रीजनात्
फलम् । एवं ज्ञात्वा वदेद्विद्वान् दिने फलं शुभाशुभम् ॥

एतेषां व्याख्यानं प्रक्रिया सङ्केतश्चोच्यते ॥ यथा । मातृका-

यामित्यादि सुगमम् । प्रसुप्त इत्यादि येन नाम्ना प्रसुप्तः पुरुषो
 भाषते धेन च नाम्ना शब्दित आहृतः सन्नागच्छति । तत्र नाम्नि
 आद्यवर्णप्रथमाक्षरे या मात्रा यः स्वरः स मात्रास्वर इत्यर्थः ।
 यथा रामतोषणनाम्नि रेफे आकारमेलनादकारो मात्रास्वर
 इति ॥१॥ कादीत्यादि ॥ पूर्वपश्चिमक्रमेण षट् रेखा देयाः । एवं
 दक्षिणोत्तरक्रमेणाष्टौ रेखा दातव्यास्तदा कोष्ठानां पञ्चत्रिंश-
 द्भवति । तत्र प्रथमकोष्ठके अ इ उ ए ओ एते वर्णा आदौ
 लिखिताः । अधुना ङ ज णकारे हीनान् कादिहान्तान् वर्णानु-
 त्तरदक्षिणरूपपंक्तौ द्वितीयकोष्ठपञ्चके क ख ग घ च एते
 वर्णाः तृतीयकोष्ठपञ्चके छ ज झ ट ठ एते वर्णाः चतुर्थे ड ढ त
 थ द एते पञ्चमे ध न प फ ब एते षष्ठे भ म य र ल एते सप्तमे
 व श ष स ह एते क्रमशो लेखनीयाः । नरनामाद्यवर्णा
 यस्मात् स्वरादधो विलेखनेन पतितः स तस्य वर्णस्वर इति ।
 यथा उक्तनाम्न आद्यवर्णो रेफ एकारादधः पतितः । अतस्तस्य
 वर्णस्वर एकार इति ॥ यदि नाम्नौत्यादि । यदि नामादौ
 संयुक्तवर्णी भवेत् तदा संयुक्तस्याधो वर्णो ग्राह्यः । यथा
 प्राणकृष्णनाम्नि संयुक्ताद्यः पकारो वर्णस्वरो ग्राह्यः । तेन तन्नाम्नो
 वर्णस्वर उकार इति ॥ अस्वरे इत्यादि । अकाराधस्तात्
 मेषसिंहवृश्चिका लेख्याः । एवमिकाराधस्तात् कन्यामिथुन-
 कर्कटाः । अन्यत् स्पष्टम् । मृगो मकरः ॥ स्वराध इत्यादि । यस्य
 राशेः स्वामौ यो ग्रहस्तं तदधस्ताद्विखेत् । अग्निपतिश्च ज्योतिषे
 यथा ॥ मेषस्य वृश्चिकस्वरः शुक्रो वृषतुलाधिपः । बुधः कन्या-
 मिथुनयोर्धनुर्मौनाधिपो गुरुः । शनिः कुम्भमकरयोः कर्कटा-
 धिपतिर्विधुः । सिंहराश्याधिपो भानुरेते जेवाधिपा मताः ॥ एवं
 यो राशिर्यस्मात् स्वरादधः पतितः स स्वरस्तस्य ग्रहस्वर इति ।
 यथा रामतोषणनाम्नि रेफेण तुलाराशिस्वरे स्वराधस्तात् स्थितः

तेन तस्यै स्वरौ ग्रहस्वर इति ॥ षोडशेत्यादि ॥ विसर्गपर्यन्त-
मवर्गः षोडशाक्षरः । कवर्गं चवर्गं टवर्गं तवर्गं पवर्गाः प्रत्येकं
पञ्चाक्षराः । यवर्गश्चवर्गौ प्रत्येकं चतुरक्षरौ वर्गोऽप्ययं संख्या
प्रकीर्तिता । नाम्नोऽक्षराणां वर्गवर्णानुसारेणाङ्गान् सङ्कलय्य
पञ्चभिर्हरेत् । भुक्तावशेषाङ्को यत्संख्यकः स्यादस्वरादिपञ्चके
तत्सङ्ख्याया जीवस्वर इति । यया रामतोषणनान्नि रेफस्य
हौ आकारस्य च हौ मकारस्य पञ्चवर्णमिलिताकारो न गृह्यते
इति सङ्केतः । अतो मकारादकारो न ग्राह्य इति । तकार-
स्यैकतुकारस्य त्रयोदशयकारस्य हौ णकारस्य पञ्च तेन सङ्केतेन
सङ्कलने कृते त्रिंशदङ्काः पञ्चभिर्भुक्ताश्चेत्तदा शेषो न तिष्ठति
शेषाभावे हारकाङ्को ग्राह्य इति सङ्केतात् तस्य नाम्नो जीवस्वर
ओकार इति ॥ मेषेत्यादि ॥ नवांशक्रमेण मेषवृषौ मिथुनस्य
षडंशा अक्षरे लेखनीयाः । एवमिस्वरे मिथुनस्य त्रयोऽंशाः
सिंहकर्कटी च । एवमुकारे कन्यातुले वृश्चिकस्याद्यास्तयो-
ऽंशाः । एस्वरेऽवशिष्टा वृश्चिकस्य षडंशा धनुर्मीकरस्याद्याः
षडंशाः । ओस्वरे मकारावशिष्टांशाः । कुम्भमीनौ च ।
एतेन रामतोषणनान्नि रेफस्य तुलाप्रथमांशनिपातनात्
उस्वरो राशिस्वर इति ॥ अकार इत्यादि ॥ अस्वराधस्तात् रेव-
त्यादिक्रमेण सप्त नक्षत्राणि आर्द्रापर्यन्तानि लेखनीयानि ।
एवमिकारादौ पञ्चपञ्चकत्वाद् यथा इस्वराधस्तात् । ७ । ८ । ९ ।
१० । ११ ॥ उकारे । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ ॥ एकारे ।
१७ । १८ । १९ । २० । २१ ॥ ओकारे । २२ । २३ । २४ । २५ ।
२६ ॥ मात्रेत्यादि । मात्राराद्वस्वर्णस्वराच्च या सङ्ख्या वृत्ता सा
तथा जीवस्वरस्य या सङ्ख्या सा च पिण्डीकर्त्तव्या । अङ्कत्रयस्य
सङ्कलनं कार्यम् । तत्तु पञ्चभिर्हर्त्तव्यं यद्वरणावशिष्टं स्वरपञ्चक-
मध्येऽवशिष्टाङ्कसङ्ख्याया पिण्डस्वरो ज्ञातव्य इति ॥ ६ ॥ यथा

रामतोषणनाम्नी मात्रास्वरोऽकारस्तस्यैका सङ्गा वर्णस्वर
 एकारस्तस्य चतस्रः सङ्गाः जीवस्वर ओकारस्तस्य पञ्चसङ्गा-
 त्रये पिण्डोक्तते दशसङ्गा भवन्ति । पञ्चहतासु दशसङ्गासु
 किञ्चित्तदवशिष्टमत ओस्वरस्तस्य पिण्डस्वर इति ॥७॥ मात्रा-
 दीत्यादि । मात्रादिपिण्डस्वरान्तस्य रसप्तकस्य या या सङ्गा तां
 सर्वमिकीकृत्य पञ्चभिर्हरेत् । शेषो यस्तदङ्गसङ्गाया योग-
 स्वर इति ॥ ८ ॥ यथा रामतोषणनाम्नि मात्रास्वरस्य एकार-
 सङ्गा वर्णस्वरस्य चतस्रः सङ्गाः ग्रहस्वरस्य तिस्रः सङ्गा जीव-
 स्वरस्य पञ्च सङ्गा राशिस्वरस्य तिस्रः सङ्गाः नक्षत्रस्वरस्य तिस्रः
 सङ्गाः पिण्डस्वरस्य पञ्च सङ्गाः । सर्वस्मिन्नङ्गे एकीकृते
 चतुर्विंशतिभूता पञ्चभिर्हृतायां तस्यां चत्वारोऽङ्गाः स्थिताः ।
 तेन तस्मै स्वरौ योगस्वर इति ॥ ८ ॥ प्रोक्ता इत्यादि । नामत
 उत्पन्नाः स्वाभाविका एते मात्राद्या अष्टौ स्वराः । एतेषां
 स्वराणां उदयान् बालादिव्यवहारान् द्वादशाब्दवत्सरायनर्तु-
 मासपक्षतिथिदण्डजान् वक्ष्ये इत्यर्थः । प्रभवदित्यादिस्व-
 रादितोऽस्वरमारभ्येषां स्वराणां षष्टिसंवत्सरे प्रभवदिक्रमेण
 प्रत्येकं द्वादशाब्दिक उदयः स्यादेवं द्वादश द्वादश कृत्वा इकारा-
 दीनां चतुर्णामिति । अत्र अस्वरे । प्रभव १ विभव २ क्रूर
 ३ प्रमोद ४ । ४ । प्राजापत्यः ५ । अङ्गिरा ६ श्रीमुख ७ भाव ८
 युवा ९ धात्री १० इस्वरे ११ बहुधान्याः १२ ॥ ईस्वरे ॥ प्रमाथि
 १३ विक्रम १४ वृष १५ चित्रभालु १६ स्वर्भानु १७ तोरण १८
 पार्थिव १९ व्यय २० सर्वजित् २१ सर्वधारि २२ विरोधि २३
 विक्लताः २४ ॥ उस्वरे ॥ खर २५ नन्दन २६ विजय २७ क्षय
 २८ मन्मथ २९ दुर्मुख ३० हेलम्ब ३१ विलम्ब ३२ विरोध ३३
 शर्वरी ३४ प्रव ३५ । शुभकृत् ३६ । एस्वरे । शोभन
 ३७ क्रोध ३८ विश्वावसु ३९ पराभव ४० प्रवङ्गः ४१ कीलक ४२

सौम्य ४३ साधारण ४४ विरोधि ४५ परिवारि ४६ प्रमाथि ४७
 आनन्दाः ४८ ॥ ओस्वरे ॥ राक्षस ४९ अनल ५० पिङ्गल ५१
 कालसूत्र ५२ सिद्धार्थ ५३ रौद्र ५४ दुर्मित ५५ दुन्दुभि ५६ रक्त
 ५७ रक्ताक्ष ५८ क्रोध ५९ क्रोधाः ६० ॥ व्यवहारसमये द्वादशा-
 ष्टिके कस्योदयः कस्य चान्तरोदय एतज्ज्ञापनार्थं रत्नमाला-
 याम् । शकेन्द्रकालः पृथगाकृतिभिः शशाङ्कनन्दाश्वियुगैः समेतः ।
 शराद्रिवस्विन्दुहृतः स लब्धः षष्ट्याप्तशेषे प्रभवादतोऽब्दाः ॥
 वर्षवर्जन्तु याच्छष्टं सूर्यैः सम्पूर्य खोर्मिभिः । हृते व्युत्क्रमतः
 खाग्निहृतेऽश्मासकादयः ॥ अस्यार्थः । शकाब्दः पृथक् द्विष्ट-
 स्तत्रैक आकृतिभिः २२ द्वाविंशत्या पूरितः । द्वाविंशत्यक्षर-
 च्छन्दस आकृतिनामकरणेनाकृतिः द्वाविंशतिरिति सङ्केतः ।
 शशाङ्कनन्दाश्वियुगैरेकनवत्युत्तरशतद्वयाधिकचतुःसहस्रैः समे-
 तः सोऽङ्कः शराद्रिवस्विन्दुहृतः पञ्चसप्तत्यधिकाष्टादशशतै-
 र्यावत्सङ्ख्यां गन्तुं शक्नोति तावता हृतः कर्तव्यः । स लब्धः
 पूर्वस्थितशकाब्दाङ्केन युतः कार्यः । षष्ट्याप्तशेषे पञ्चादशोऽङ्कः
 पूर्ववत् षष्ट्या हृतलब्धस्यावशिष्टे प्रभवादयोऽब्दा भवन्ति एका-
 वशेषे प्रभवः द्वयवशेषे विभव इत्यादिः ॥ वर्षवर्जमित्यस्यार्थः ।
 वर्षवर्जन्तु यच्छेषं वर्षातिरिक्तं शराद्रिवास्विन्दुहृतावशिष्टं
 यत् तत् सूर्यैर्द्वादशभिः सम्पूर्य खोर्मिभिः षष्ट्या हृतं कर्त-
 व्यम् । व्युत्क्रमत इत्यनेन षष्टिहृतावशेषाङ्का दण्डाः षष्टिहृते
 लब्धेऽंशके खाग्निहृते त्रिंशता हृतेऽवशिष्टा अंशका दिनानीति
 यावत् । लब्धा अङ्का मासा ज्ञेया इति ॥ प्रभवादिषष्टि-
 वर्षाण्युपक्रम्य । तत्राद्या विंशतिर्ब्राह्मी द्वितीया वैष्णवी
 तथा । तृतीया रुद्रदैवत्या श्रेष्ठा मध्याधमा क्रमादिति ।

अधुना प्रक्रिया क्रियते १७४२ शकाब्दे वैशाखशुक्लप्रतिपदि
 शकाङ्कः १७४२ । द्वाविंशत्या २२ पूरितः । ३८३२४ शशाङ्क-

न्दाखियुगेः ४२८१ समेतः संयुक्तः सन् भूतः । ४२६१५ एष एव
 शराद्विवस्विन्दुहृतः १८७५ लब्धः २२ अवशिष्टाङ्कः १३६५
 एष च द्वादश १२ पूरितः सन् जातः १६३८० पूर्ववत् शशाङ्के-
 त्याद्यङ्कैः १८७५ हृतलब्धौ मासः । ८ । अवशिष्ट १३८०
 एष तु त्रिंशता ३० पूरितः सन् जातः ४१४०० पूर्ववत् शरा-
 द्नीत्याद्यङ्कैः १८७५ हृतलब्ध्याः ४ द्वाविंशति २२ दिनानि
 अवशिष्टाङ्कः १५० षष्टि ६० पूरितः सन् जातः ८३० पूर्ववत्
 शराद्नीत्याद्यङ्कैः १८७५ हृतलब्ध्याः ४ दण्डा अवशिष्टाङ्कः
 १५०० षष्टिपूरितः ६० सन् जातः ८०००० पूर्ववत् शराद्नीत्या-
 द्यङ्कैः १८७५ हृतलब्ध्याः ४८ पलानि अवशिष्टं किञ्चिदपि
 नास्ति । एतेन २२ वर्षं ८ मास २२ दिन ४ दण्ड ४८ पलानि
 समुदायप्रक्रियायामायातानि ॥ शकाङ्क १७४२ सम्मतानि
 सन्ति जातानि १७६४ । ८ । २२ । ४ । ४८ । षष्ठ्या हृतलब्ध्याः
 २४ वर्षां ८ मासा २२ दिनानि ४ दण्डाः ४८ पलानीति ।
 तत्र द्वादशाब्दिकस्वरज्ञानार्थं द्वादशभागेन हृते भुक्तस्वर-
 द्वितीय २ इकार ४ तृतीय ३ उकारस्वरो वर्त्तमानः तेन
 द्वादशाब्दिक उकारस्वरोदय इति ॥ अत्र भुक्तभोग्यादिना
 अन्तरोदयोऽप्ये व्यक्तीभविष्यति ॥ अस्यान्तरोदय इति । अस्य
 द्वादशाब्दस्यान्तरोदय एकादशभागेन द्वादशे हृते लब्धवर्षः
 १ मास १ दिन २ दण्ड ४३ पल ३८ एतदेव ॥ वर्षमेक-
 मित्यादि । एतेन वर्षमासदिनदण्डाः पलीकर्त्तव्याः । तद् यथा
 वर्षे द्वादशेन सङ्गुण्य तत्र मासं संयोज्य तं त्रिंशता ३० सङ्गुण्य
 दिनीकृत्य दिनद्वयं २ तत्र दत्त्वा दिनानि षष्ठ्या ६० सङ्गुण्य
 दण्डान् तत्र दत्त्वा दण्डान् षष्ठ्या ६० सङ्गुण्य पलानि दत्त्वा
 हस्तान्तरोदयमानपलानि ८४३४४० भागहारकाणि प्रकृतेर्भुक्त-
 वर्षे द्वादशभिः १२ सङ्गुण्य ३ मासान् त्रिंशता ३० सङ्गुण्य तत्र

दिनानि दत्त्वा तत्र षष्टिगुणितेनैव दण्डान् दत्त्वा षष्ठ्या सङ्गुण्य
६० पलमिलने तेन तत्रान्तरोदयपलमानेन भागे गृहीते
लब्धाङ्कः २ एतेन द्वादशादिकस्वर उकारस्तदादिक ओकारोऽ-
कारश्च द्वौ स्वरावन्तरोदये भुक्तौ इकारो वर्त्तमानश्च भाग-
शेषपलानि ८७३७४० अस्मिन्नन्तरोदये पलमाने पतिते भोग्य-
पतिते भोग्यपलानि ५४००७८ अत्र गते षष्ठ्यामुद्धृते भुक्ते लब्ध-
वर्षमास ३ दिन २ दण्ड ४२ पल २० भोग्यलब्धवर्षः मास ५
दिनम् दण्ड १ पलानि १८ । अन्तरोदयमानन्तु सर्वत्रैकदशांश
एव वर्षादि पलीकृत्य भुक्तान्तरोदयज्ञानप्रकारो यः । द्वादशाब्द-
स्वरादीनां भुक्तं पलमयन्तु यत् । तद्भुक्तं स्वस्वभोगेन लब्धं
शेषो द्विकं भवेत् । इत्यग्रे वक्ष्यते । इति द्वादशस्वरवार्षिकम् ॥

प्रभवेति एकैकं प्रत्येकं प्रभवाद्यब्दं अस्वरादिकस्तदधः ।
प्रभवो विभवः शुक्रः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः । पञ्च वर्षाणि
अकारादिपञ्चस्वरस्य । एवमग्रे पञ्चवर्षाणि ५ पञ्चस्वराणां
५ । एवमाब्दिकस्वरे द्वादशवारं पुनः पुनर्भागः ।
द्वादशाब्दस्यान्तरोदयभुक्तिर्वर्षेणा सती वार्षिकस्वरे तद्भुक्ति-
रन्तरोदयभुक्तिः । वर्ष १० । मास १ । दिन २ दण्ड ४३ पल ४८ ।
प्रकृते न्यासो यथा आब्दिकभुक्तवर्षशून्यं । ० । मासा ८ दिन
२२ दण्डा ४ पल ४८ । अत्राब्दिकभुक्तावकारेकारौ । उकार-
स्वरो वर्त्तमानः । तत्र भुक्तमास ८ दिन २२ दण्ड ४ पल ४८
पलीकृतान्तरोदयमानं ८७३४४० हारकभाण्यपलीकृतमा-
नादि । तत्र हरणास्तम्भभुक्तिस्वरद्वितीयावृत्तौ वर्त्तमानकारस्वरो
भगशेषः गतगम्ये भोगपले अस्मिन् षष्ठ्युद्धृते भोग्यदिनदण्ड-
पलानि इत्याब्दिकस्वरः ॥ अयनस्वर इति ॥ दक्षिणे
दक्षिणायने कर्कटादिराशिषट्के अकारः स्वरः ४ । उत्तरायणे
भकरादिषण्मासे इकार ४ स्वर ४ प्राण्मासिकस्वरे अयनस्वरे

वर्षभुक्त्यर्द्धमानेन वर्षे यदन्तरोदयभुक्तिमानं तदर्द्धमन्तरोदय-
भुक्तिः स्वरमासदिनदण्डपलानि एतत् पलीकरणात् वृत्तहारक-
४ शुद्धिदिनम् ३ अत उत्तरायणे भुक्तमासदिनम् अस्मिन्
पलीकृते हारकेण लब्धस्वरकारात् षष्ठो द्वितीयावृत्तौ
वर्त्तमानकारः भागशेषगतगम्ये षष्ठ्युद्धृतवृत्तभोग्यादि-
दिनदण्डपलानि एतदन्तरं कारप्रवृत्तिरिति अन्यस्वरः ॥

अकारादिति ॥ पञ्चाकाप्सदिस्वरवेधान्तादि षड्रती क्रमेणो-
दयो येषाम् ते तथा ज्ञातव्याः । एकैकस्मिन् प्रत्येकं द्विसप्तति-
दिनोदयाः ७२ प्रोक्ताः । पञ्च ५ स्वराः षड्रतवः ६ तेनाग्रिमस्व-
रस्य द्वादशतिथ्यन्तर्भावेण द्विसप्तति ७२ दिनानि भवन्ति ।
एवं पञ्चस्वरा द्विसप्ततिसन्निवेशः अन्तरोदयमानं
षड्दिनानोल्यादिदिनदण्डपलानि अत्र हारकान्तरोदय-
पलं वैशाखादिषु सौरक्रमेण गतदिनपलीकरणादेतद् वृत्तभाज्यं
हारकेण लब्धभुक्तस्वरः । एतेन वसन्ते अकारोदय-
स्तदधिकश्चतुर्थः स्वरकारो वर्त्तमानः वर्त्तमाने भुक्तशेष-
पलगतगम्यकरणात् गम्यपलम् अस्मिन् षष्ठ्युद्धृतगम्यदिन-
दण्डपलानि एवमग्रेऽपि चिन्त्यम् ॥

ऋतुस्वरः ॥ नभस्य इति ॥ तत्र भाद्रमासवैशाखानाम-
कारोदयः । एवमाश्विनश्रावणाषाढानामिकारः चैत्रपौ-
ष्योरुकारः । ज्यैष्ठकार्तिकयोरेकारः । माघफाल्गुनयोरो-
कारः । उदेति । अत्र मासिकस्वरे द्वे दिने इत्याद्य-
स्यान्तरोदयः । दिन २ दण्ड ४३ पलं ३८ पलीकृतैतद्वारकं
८८१८ अतएव मासः कृष्णादिः स्वरक्रमेण कृष्णपञ्च-
मादितः । वैशाखशुक्लप्रतिपदि गतदिनं अस्य पलीकरणात्
वृत्तभाज्यम् अत्र हारकेण लब्धं तेन पञ्चस्वराः षष्ठस्वरे वर्त्त-
मानाः । स च कारादिक्रमेण द्वितीयावृत्ताकारो वर्त्तमान-

स्तस्य भुक्तपलम् । अस्मिन् षष्ठ्युद्धृतेन षट् स्वराः सप्तमी वर्त्त-
मानस्वराः काराद्वितीयावृत्ताविकारस्तस्य च भुक्तपलभोग्यः
अस्मिन् षष्ठ्युद्धृते वृत्तदिनदण्डपलमिति मासस्वरः ॥

अस्वर इति ॥ पञ्चात्मिकाः पञ्चरूपास्ता अन्तरे मध्ये
भुक्तिरन्तरोदयभुक्तिमासभुक्त्यर्द्धमाने ज्ञेया मानान्तरोदय-
भुक्त्यर्द्धमाना पञ्चस्यान्तरोदयभुक्तिः । सा च दिनं दण्डं
पलम् एतत्पलीकरणाद्वारकः । वैशाखशुक्लप्रतिपदि गतदिनं
अस्मिन् पलीकृते वृत्तं अत्र हारकेण लब्धं तेन शुक्लपञ्च-
कारस्वर इति । स एवान्तरोदये वर्त्तमानप्रथमकारः तेन च
भुक्तभोग्यपलम् अस्मिन् षष्ठ्युद्धृते दिनदण्डपलमिति पञ्चस्वरः ॥

अकारादौति ॥ अकारादिक्रमः येन क्रमेणाकार
इकार उकार एकार ओकार औकारश्च तिर्यक् पंक्ति-
क्रमेण लिखितस्तेन क्रमेण तदधस्तात् नन्दादितिथि-
पञ्चकं प्रतिपदादि त्रिरावृत्तं न्यस्य लिखित्वा नित्य
प्रत्यहं दिनस्वरोदयः । स्वस्वतिथ्यादि यथा स्यात् एवं जायते,
भवति यथा अकारस्याधस्तात् प्रतिपत्षष्ठ्येकादशौतिथय-
स्तासु अकारस्योदयः । द्वितीयासप्तमीद्वादशौषु इकारस्य
तृतीयाष्टमीत्रयोदशौषु उकारस्य । चतुर्थीनवमीचतुर्दशौषु
एकारस्य । पञ्चमीदशमीपौर्णमासीषु औकारस्य । एवं
तिथिषु स्वराणामुदयश्चिन्त्यः । अस्य अन्तरोदयपञ्चघटिका
दण्डाः पलानि सप्तविंशतिः २७ । तथा तिथ्यन्तरोदयमानं
दण्डं ५ पल २७ पलीकृताद्वारक ३२७ वैशाखभुक्तदिनभुक्त-
दण्डं अस्मिन् पलीकृते वृत्तभाज्यहारकेण लब्धभुक्तस्वर-
वर्त्तमानः । स चाध्वारोपक्रमात् पुनरावृत्त्या कारस्तेन भुक्तपल-
भोग्यपलम् । अत्र षष्ठ्युद्धृते दण्डपले अयमर्थोऽग्रे तिथिभुक्तघ-
टीसङ्ख्यां कृत्वा पलं ततः । ऋक्षवर्जि ३२७ शेषे स्वरस्तत्काल-

सम्भवः । इति वक्ष्यते । चक्रन्यासो यथा घटीस्वरस्य तत्स्थ-
त्वात् प्रसङ्गेन तदनन्तरोदयं सङ्गृहयति । अस्येति ॥ अस्य
तिथ्यन्तरोदयस्यान्तरोदया घटिकाईमानतो दण्डार्द्धप्रमाण-
मिति ॥ इति स्वरः ॥

तिथ्यन्तरोदयमानेनेति । तिथ्यन्तरोदयमानेन पूर्व-
कथितेन घटिकाखरे घटीस्वरस्य षष्ठीसप्तस्योरभेदात्
उदयो ज्ञेयो ज्ञातव्यः । आदिजामले उपजीव्यग्रन्थे एवं-
विधानेन प्रकारेण उक्तः । तथा च पञ्चाशदण्डदशमस्य उकार-
स्यान्तरोदयस्तेन च सप्तपञ्चाशत् ५७ पलानि भुक्तानि तत्रान्तरो-
दयो घटिकाईमानेन द्वितीयस्याकारस्य पलं यावदिति घटीस्वरः ॥
अन्तरोदयादिकं यथा भवति तत्कथयति ॥ द्वादशाब्देति ॥
द्वादशाब्दादिस्वराणाद्यन्ता अष्टौ स्वराः संस्थानात् स्वभोगसम-
तात् स्वकालतः स्वभोगकालेन द्वादशाब्दवर्षादिना उदयास्तं
तत्र स्वभोगमानेन एकादशोदयैरन्तः पुनरुदयन्ते इत्यनुयुज्यते ।
अत एवान्तरोदयजिज्ञासायामेकादशेन यो यत्र भागो लभ्यते
स तत्रान्तरोदयमानं भवतीति द्योतितमिति पूर्वं तथैव
कृतमिति ॥ वर्षेति । अत्रान्तरोदयसंज्ञके स्वरोदये पञ्चप्रकारेण
क्रमात् कालमानं समयमानं मयोक्तं वर्षं मासो दिननाडी-
पलानि चेति यथा द्वादशवार्षिके वर्षादिपञ्चापि वार्षिकस्वर-
मासादि अयने दिनानि ऋतौ दिनानि पक्षे दिनानि दिने
दण्डादि घटिकायां पलादीति ॥ गतसमये भुक्तवर्त्तमान-
स्वरज्ञानार्थमाह द्वादशाब्देति । द्वादशाब्दिकस्वराणां यद्भुक्तं
तत् पलमवन्नाय स्वरभोगेण प्रत्येकमेकादशलब्धान्तरोदयमा-
नेन भुक्तं कर्तव्यम् । लब्धं भुक्तस्वरा ज्ञेयम् शेषा वर्त्तमानस्वराः ।
अस्मिन् वर्त्तमानभुक्तपले भागहारपलेषु पातिते भुक्तभोग्यपले
भवतस्त्वत्र भुक्तभोग्य च पञ्चादिना भुक्ते च भुक्तात्

भुक्तमानभोग्यात् भोग्यमानं वर्त्तमानस्य भवति । एतदनुक्रम-
णिका द्वादशाब्दे स्वरस्य व्याख्यानं अनुसरणीया ॥

उदितस्येति । उदितस्य स्वरस्य नामवर्णमिलितेषु स्वस्व-
कालप्रमाणतः स्वस्वभोग्यसमयप्रामाण्यात् बालादिका अवस्थाः
पञ्च स्युः ॥ अवस्थां कथयति ॥ आद्यो बाल इति निजावस्था
बालत्वाद्यनुसारेण फलदा यथा बालाः कार्याः क्षमास्वये-
त्यादि ॥ किं लाभ इत्यादि ॥ नष्टे गतद्रव्ये दष्टे सर्पादिदष्टे
रुजान्विते सरोगे एतेषु कार्येषु बालस्वरो निषिद्धः । यथा
यस्य बालस्वरोदयस्तदानीं द्रव्यनाशे सर्पदंशे सरोगे च निषिद्धं
फलमित्यर्थः । विवाहादिषु शुभकार्येषु शुभदः । यात्रायां
युद्धे च दीक्षामन्त्रोपदेशे च तत्र मृत्युस्वरोदयेषु बालस्वरा-
वधिकस्यष्टस्वरोदयो योगस्वराद्यधिकनाम अष्टौ स्वरास्तेषां तेषां
बालान्ततदवधिका द्वादशाब्दादि शिष्टं तदन्तरोदयः बाला-
दिपञ्चस्वरव्यवस्थेत्यग्रे व्यक्तीभविष्यति ॥ स्वराणां न्यूनाधिक-
बलमाह ॥ मृत इति ॥ मृताद्धृतो बली ततः कुमार इति
र्थेयम् । अयमर्थः । एकस्य मृतस्वरोदयः अपरस्य वृद्धादि-
स्वरस्तदा पूर्वोपेक्षया परो जनः सङ्गमे जयम् यो यास्यति ।
यस्य बालस्वरमधिकृत्य यः पञ्चमे स्थाने स्वरः स तस्य
मृत्युदायक इति मृतत्वेनाभिधीयते । तृतीये युद्धस्वरोदये
सकलक्रियासु वृद्धिः । शेषा बालकुमारवृद्धा वृद्धा मृत्युरिति ॥
हीनस्वरे सति मृत्युर्भवति उदितस्वराधिक्ये जयः । साम्ये
साम्यं समता योधयोः सन्धानं सन्धिः जयपराजयौ वा समौ ॥
एकस्वर इति ॥ एक उभयोर्योधयोर्बालवशे तु तदा साम्यं
जयभङ्गौ समौ । द्वितीयेऽर्द्धफलं बालोपेक्षया कुमारैर्ऽर्द्धजयः
यूनि पूर्णफलं वृद्धे वृद्धः बन्धनं पराच्छत्रोर्जयश्च ॥ शत्रोरिति ॥
शत्रोः मृत्युस्वरे पञ्चमस्वरे उदिते स्वकीययूनि तस्मिन् तत्र

जयो निश्चितः । नामजाय स्वरोत्पत्तिं द्वादशाक्षरैः पूर्वं
 प्रतिज्ञातुं दर्शयति ॥ तत्काल इति ॥ तत्काले घटीस्वरे
 मात्रास्वरे उदेतीति सङ्ग्राहः । तथा दिने तिथौ वर्णस्वरमुप-
 क्रम्य बालादिकव्यवस्थापक्षे पक्षस्वरोदये ग्रहस्वरोदय इति
 ज्ञेयः । मासे मासस्वरे जीवस्वरोदयः जीवस्वरावधिका बालादि-
 चिन्ता ॥ ऋतौ राश्यांस्वरे राशिस्वराधिका बालादिव्यवस्था ॥
 तद्यथा ॥ नरहरिनामस्वरे चिन्ता षष्मासे अयनस्वरेऽपि यत्-
 मभवो नक्षत्रस्वरः तदवधिका बालादिचिन्ता । अष्टे वर्षस्वरे
 पिण्डतः पिण्डस्वराद्बालादिव्यवस्था । द्वादशवार्षिके द्वादशा-
 ब्दिके योगस्वर इति तदवधिका बालादिव्यवस्था ॥ तद्यथा
 रामतोषणान्नि मात्रास्वरोकारः वर्णस्वर एकारः ग्रहस्वरकारः
 जीवस्वरकारः राशिस्वरकारः पिण्डस्वरकारः योगस्वरकारः
 इत्यष्टौ नामजा मात्रास्वराद्या योगास्ताः प्रथमं लिखिताः । घ-
 ट्यादिद्वादशाब्दान्ताकृष्टावाद्यौ स्थूलक्रमेण ततोऽन्तरोदयक्रमेण
 लिखिताः । यत्र स्थूले सूक्ष्मे बालादिजिज्ञासा भवति
 अचेदं व्यवहरणीयम् । यथा मात्रास्वरकार इति स्थूलक्रमो-
 दितः घटीस्वरकारः स च कारावधिकः पञ्चमः । अन्तरोदय-
 घटीस्वरे कारोदयः मात्रास्वरकारः ॥ इति बालस्वरोदयः ॥
 एवं वर्णस्वरकारस्तदवधिकः प्रतिपद्यकार उदितः स च
 पञ्चमो निषिद्धः । अत्रान्तरोदयकारोदयः सवर्णावधिकश्चतुर्थी
 द्वन्द्व इति फलदः ग्रहस्वरोकारस्तदवधिकपक्षस्वरे स्थूल-
 क्रमेणोदितकारः स च काराद्वितीयः कुमारो भवति अन्तरो-
 दयेऽपि कारः सोऽपि कारो द्वितीयः कुमार इति तत्फलदः ।
 एवं जीवस्वरोऽकारः तस्य मासे उदयः मासस्वरस्तु कारः
 स चाकारावधिकस्थूलक्रमेण स्वरान्तरोदयः स च
 काराद्वितीयः इति कुमारफलदः । एतः राशिस्वरकारः

तस्य गतावुदय ऋतुस्वरकारः स च राशिस्वरात् द्वितीयः ॥
 इति स्वरोदयः । कार उदितः जीवराशिस्वरः इति बालोदयः
 एवं नक्षत्रस्वरकारः । तस्यानयने उदयः स च राशिस्वरा-
 त्तृतीय इति स्वरोदयः । अन्तरोदयः कारोदयः स च नक्षत्र-
 स्वरात्तृतीयः इति युवस्वरः । एवं पिण्डस्वरकारस्तस्य वार्षिक-
 स्वर उदयः । वार्षिकस्वरकारः स पिण्डस्वरात् पञ्चमः
 अन्तरोदये कारोदयः स च पिण्डस्वराच्चतुर्थो वृद्धः । एवं
 योगस्वरकारस्तस्य द्वादशवार्षिके उदयः । द्वादशवार्षिके
 स्वरकारो योगस्वराद्द्वितीयः । कुमारः अन्तरोदयः कारः
 स एव योगस्वरः । इति बालोदयः । मात्रादियोगान्तास्तु
 स्वराणां नामजानां कालजवैपरीत्यक्रमव्यस्तघटीस्वरादि-
 द्वादशवार्षिकस्वरेषु अष्टस्वरसमुत्पत्तिक्रमनिरसनं हृदा परि-
 भावनीयमिति ॥ अत्र नामजाष्टस्वरेष्विति प्राशस्त्यमवस्था-
 पेक्षणीयम् । वर्णस्वरस्योपदर्शयति सर्वकालेबली वर्ण
 इति । वर्णो वर्णस्वरः सर्वकालबली सर्वस्मिन् काले द्वादशाब्द-
 रूपे बली बलवान् स्वफलदः । अत्र संशयो न ।
 हेतुगर्भविशेषणमाह सर्वव्यापीति सर्वेषां मात्रास्वरग्रहादीनां
 व्यापी व्यापकः तेषामेतद्ग्राप्यत्वात् यतो वर्णस्वरबलेनाति-
 बलिनोऽपि तस्य तेषामपि नैरपेक्षेण फलवत्वमिति तस्माद्धेतोः
 सर्वप्रयत्नेन शुभाशुभं वीक्ष्यम् ॥ यथा पदा ॥ यथा हस्तिपद-
 चिह्ने अन्यपदचिह्नानि प्रविष्टानि तथा मात्रास्वराः कारादयः
 सप्तवर्णफलोदयस्थाः फलदानार्थं प्रविष्टाः । वर्णफलोदयस्था
 इति क्वचित् पाठः । वर्णफलं पुरस्कृत्य उदयस्थाः वर्णबलेन
 बलिन इत्यर्थः । तत्र विशेषमाह । साधनं वर्णबले युद्धे विशे-
 षतो वर्णबलं ग्राह्यम् । योगेन योगस्वरेण शरीरस्य ज्ञानसम्भवं
 योगं साधयेत् । आणवं अणिमादिसिद्धिभवम् । शास्त्रं शम्भु-

विषयकं शास्त्रेयं गौर्यादिभवम् ॥ इति स्वरचक्रविवरणम् ।
 वर्णंति वर्णस्वराधिकपृथक्प्रकाशिततिथिनक्षत्रादीनां बाला-
 दिव्यवस्थासु दर्शयन्नाह तिथिंवाराविति । तिथिः नन्दादिः ।
 वारो मङ्गलादिः । पृथक् पृथक् भिन्नक्रमेण सर्वं सम्प्राप्तं तत्
 सर्वमेकत्र सर्वस्वरस्थाने स्थितं तस्मिन् वक्तुं लोकेत्य वर्णस्वरोदयं
 कुर्यात् । अयमर्थः । अकारादिपञ्चको वर्णः स्वरस्तदधः स्वरच-
 क्रतिथिवारनक्षत्रबले न्यस्तानि तानि बालस्वरस्य बालत्वे
 बालादिकुमारादित्वे कुमारादिफलदानि यथा श्रीरामतोषण-
 नान्नि कारोपस्थिते इकारो वर्णस्वरो बालस्तदधश्चक्रान्तरस्थिता
 द्वितीयासप्तमौहादशीतिथयो बालाः । एवं तदधो बुधचन्द्री
 वारौ तौ बालौ तदधश्चक्रान्तरस्थानि नक्षत्राणि बालानि तद-
 ग्रिमतिथिवारनक्षत्राणि कुमारादीनि व्यवहरणीयानि । एवम-
 न्यनान्नापि व्यवहारः कर्त्तव्यः ॥

यस्येति । यस्य पुंसो नामादिकं वर्णं नामाद्याच्चरं
 तिथिवारौ नक्षत्रञ्च स्मृतं तदौयपञ्चमस्वरोदया यस्मिन्
 दिने तद्दिनं तस्याभिमतक्रियासु वर्जयेत् । यदृच्छं यद्दिनं
 तद्दिनं तस्य हानिमृत्त्युकरम् । अनेनेति ॥ अनेन स्वरयोगेण
 यदा शत्रोर्मृतस्वरोदयः स्वस्य बालाद्युदयो विशेषः कुमा-
 रयुवोदयस्तदा शत्रूणां सावर्णादिकं मन्त्रादिक्रियाञ्च
 तद्दिने बुधः पण्डितः साधयेत् कुर्यादित्यर्थः ॥ इति तिथि-
 वारनक्षत्रस्वरचक्रविवरणम् ॥ बालादीनां प्रत्येकं फलान्वाह
 बालेति ॥ बालस्वरादिकावस्था भानुसङ्घा भवन्ति ताश्च
 स्वभोगप्रमाणक्रमेणोदयन्तु घटिकाख्ये दिने पक्षे मासे
 ऋतौ अयने वर्षे द्वादशवार्षिके द्वादश भागाः । अयने षण्मासे
 पक्षे द्वादशभागः वर्षे मासो द्वादशभागः द्वादशवर्षे एकवर्षे
 प्रति क्रमात् एवं भोगप्रमाणात् स्वस्वावस्था भवन्ति । भुक्त-

स्वप्रमाणत्विति । यस्य बालादिस्वस्थावस्था घटीस्वरादौ
 ज्ञातुमिष्यते तेन यद्भुक्तं तत् पूर्वं प्रत्येकं पलीकृत्य
 स्वस्वभोगद्वादशभागेन विभजेत् । भागे हृते यत्तत्त्वं तत्सङ्गा-
 गतावस्थाशेषो वर्त्तमानावस्थाशेषे । तु गतगम्यकरणात् गते
 षष्ठ्याद्युद्धृते गतसमयः गम्ये षष्ठ्याद्युद्धृते गम्यसमयो वर्त्तमाना-
 वस्था आयाति । क्रमणिका यथा । नाम्नो युवतिथिः दतीया
 तस्य गतदण्डः । अत्र द्वादशावस्थाजिज्ञासायां भुक्तदण्डं
 पलीकृत्य पलानि तत्र संयोज्य वृत्ततिथिद्वादशभागेन पलीकृत्य
 तत् पञ्चदण्डेन वृत्तम् अनेन भागे गृहीते लब्धम् । चतस्रोऽव-
 स्थागताः पञ्चमौवर्त्तमाना भागशेषाः । अस्मिन् भागहारके
 पातिते भोग्यं उभयत्र षष्ठ्या हरणात् लब्धपलम् । एतेन पञ्च-
 मावस्थायां गतं गम्यञ्च सार्द्धदण्डद्वयात्मकम् । यत्र तु दिनमा-
 ससम्भावना तत्र दण्डे षष्ठ्युद्धृते मास इति प्रकृते च द्वादशा-
 वस्था मध्ये वा पञ्चमावस्था कथितास्ति सा अशनफलदा
 एवमन्येषु घटीस्वरादिस्वरावस्थाः कार्याः । अवस्थाश्लोकास्तु
 ग्रन्थे लिख्यन्ते ॥ शूला च बाला शिशुहासिका च कुमारिका
 यौवनराज्यदा च । क्लेशप्रमोदा जरिता तथासौ मृता च बाल-
 स्वरजाद्यवस्थाः ॥ १ ॥ स्वस्थामृता मेघनिघर्षवृद्धा महोदया
 शान्तिकरी न च स्त्री । वृद्धा समा सा तु गुणोदया च मङ्गल्यदा
 द्वादशिका कुमारे ॥ २ ॥ उत्साहधैर्योग्रजरा बला च मङ्गल्य-
 योगा च सकामपुष्टिः । शाखी च सिंहा बधनेश्वरी च शान्ता-
 भिधा द्वादशिका युवाख्ये ॥ ३ ॥ वैकल्यशेषा खलु या च मोघा-
 च्युतिक्षमा दुःखितरात्रिनिद्रा । बुद्धिप्रसङ्गा च तथा च
 चण्डा जरा मृता द्वादशिका च वृद्धिः ॥ ४ ॥ चिन्ता च
 बद्धा प्रतिघातकी च शेषो महीज्वालभवाक्षिदा च । प्राणी
 किरा भेदकरी वदाद्या मृत्युक्षया द्वादशमृत्युजाश्च ॥ ५ ॥

एवं षष्टिरवस्था स्युरवस्थापञ्चकं सदा । तामु सर्वासु
 विज्ञेयं स्वनामसदृशं फलम् । प्रथमश्लोकात् शिशुहासिका
 च यौवनराज्यदा च मेघनिघर्षा वृद्धा च गुणोदया च
 ॥ ५ ॥ उत्साहधैर्योग्रजवा च बाला सकामपुष्टिः वैकल्यशेषा
 च दुःखितो रात्रिर्निद्रा च महीजवा च भाववह्निदा च ॥
 इत्यवस्था ॥ पूर्वस्मिन्निति ॥ पूर्वस्मिन् प्रदेशे अस्वरस्वामी
 एवमष्टस्विकारादयः मध्ये ओकारः नन्दायामस्वरः प्राच्या-
 मुदेति तत्राग्निस्वरो दक्षिणा इत्यादि ॥ याम्यम् ॥ यत्तिथौ
 यः स्वरः यस्यां सर्वदा उदयं याति तत्पञ्चमीं दिशं सर्व-
 कार्येषु वर्जयेत् । विशेषतो यात्रायां यथा इकारस्वरो द्वितीया-
 सप्तमौहादशेषु दक्षिणा दिगुणेति तत्पञ्चमी दिक् पूर्वाशा-
 मन्तव्या । तत्र मृतस्वरस्योदितत्वात् मध्यदिक् व्यवस्था कथं
 कार्या इति संशये प्रतिपत् षष्ठ्यकादशेषु अकारोदयः पूर्वदि-
 शीति तत्पञ्चमप्रवेशो मध्यं प्रासादादावूर्द्धाधःस्थितगृहादि न
 गच्छेदिति सम्बन्धनीयम् ॥

पृच्छत इति ॥ स्वरस्य दिक् क्रमेणोदितस्य पञ्चमीं
 दिशं लक्ष्मीकृत्य अवस्थासु पृच्छको यदि प्रश्नं करोति
 तदा हान्यादिकं जायते अत्र संशयो न । तथा च
 द्वितीयाकारस्य दक्षिणदिश्युदयात् पूर्वदिगस्तमिता तदरति
 स्थिते पृच्छके फलमेव वक्तव्यमित्यर्थः ॥ इति दिक्स्वर-
 विवरणम् ॥ तिथिस्वरे अन्तरोदयस्थबालादिस्वरस्य प्रश्नात्
 फलमुपपदस्याह तिथ्यादाविति ॥ तिथ्यादौ तिथ्युपक्रमे
 तिथिस्वरादारभ्य बालस्वरादिको घटीस्वर उदयं
 याति । तत्र प्रश्ने सति तस्य बालादिस्वरस्य बलं वदामि
 तदुदयप्रकारमाह तिथीति ॥ तिथेर्यावती घटी दण्डरूपा
 भुक्ता तत्सङ्गा षष्ठ्या सङ्गुण्य फलमयीं कृत्वा तत्र

ऋत्तवर्जिते सप्तविंशत्यधिकशतवर्जिते यत्नत्वं तत्तिथि-
स्वरावधिके भुक्तः स्वरः शेषे तत्कालसम्भवः । तात्कालिक-
स्वरो ज्ञातव्यः । स एव तिथेरन्तरोदयघटीस्वर इति दातव्यः ।
तिथेरन्तरोदयवर्णस्वरक्रमिका बालादिव्यवस्था घटीस्वरे तु
मात्रास्वराद्बालादिव्यवस्थेत्युक्तेरव्यवस्थितः पक्षः । फलभागित्व-
मुपदर्शयति यमुद्दिश्येति ॥ यं जनमुद्दिश्य प्रश्नः कृतस्तस्य
फलं प्रजायते फलभागित्वं भवति तन्नाम्नो बालादिस्वरवर्णने-
त्यर्थः । यत्र किञ्चिन्नाम नोद्दिश्यते प्रकाशयते तत्र प्रष्टुरेव
शुभमशुभञ्च फलं वच्छमाणां वक्तव्यम् । एतत् फलं श्लोकपञ्च-
केनाह कुमारेत्यादि स्फुटम् ॥

विषमसमभेदेन प्रश्नान्तरमाह ओजस्वरा इति ॥ ओजाः
प्रथमतस्तोरपञ्चमाः पुरुषस्वराः स्युः युग्मस्वरान् इकारोकारान्
स्त्रिय इति विदुः । एवमन्यत् । स्वस्वरे स्वपत्नीयस्वरे पुंसां स्त्रीणां
बलं जायते । तथा च पुंस्वरे वर्तमाने बालादौ पुमान् बलवान्
अश्वीने तु पुत्रोत्पत्तिः । एवं स्त्रीषु अन्यदाह गर्भार्थ इति ।
गर्भप्रश्ने पुंस्वरे पुत्रोत्पत्तिः समे कन्योत्पत्तिः युग्मविषय-
स्वरावधिस्वरनिर्व्यूहे प्रश्ने युग्मञ्च भवति नष्टस्वरावसाने क्षयो
भवति गर्भनाशो वाच्यः । संक्रमे स्वरप्रारम्भे मातुर्मृत्यु-
र्भवति । युग्मगर्भयोग्यतायोग्यमाह द्युनाडीस्वरयोरिति
द्युर्दिवसः नाडी घटी तत्तन्निरूपितन्धरौ दिनस्वरघटीस्वरौ
तयोः सतोः पुंयुग्मं पुरुषद्वयम् । समन्धरयोः कन्याद्वयम्
पुंस्त्रियोः एको विषमः स्वरो द्वितोयः समस्वरः तदा पुंस्त्री
कन्या पुत्रश्च इति गर्भयुग्मगर्भविगये प्रश्ने विनिर्दिशेत्
वदेदिति तात्कालिकस्वरः ॥ जन्मर्च इति ॥ जन्मर्चं
जन्मनक्षत्रे जन्मपादा जन्मनक्षत्रपादिका तद्वर्णं शतपदचक्रोक्त-
चित्रे पादप्रकारस्वाक्षरे योऽक्षरो वर्णस्वरः यथा केकौह-

ह्रीत्स्वरचतुष्टयं पुनर्वसुपादिकाचतुष्टयस्य तेन प्रथमद्वितीय-
पादिकयोः ककारः तस्य वर्णस्वरोऽकारः तृतीयचतुर्थयोर्हकार-
स्तस्य वर्णस्वर ओकारस्तत्पादिकयोर्जातस्य वर्णस्वरो नाडी-
स्वर इहाह्वयः प्राणिनां स्वभावः स्वभावसिद्ध इत्यर्थः ॥
नडीस्वरप्रयोजनं जन्मन्याह च पलेति । तिथिस्वरो विशिष्य
तदन्तरोदयस्वरो वा नाडीस्वरावधिकबालादिस्वरे श्लोकपञ्चकेन
फलं स्मृतम् ॥ तत्कालस्वरे जातकनिर्णयः ॥

अथ योध्योर्युद्धे को जयी स्यादित्याह । ककारादि-
जकारान्ता वर्णास्तथा पञ्च ऋस्वस्वराः कखगघचक्जभटठडढ-
तथदध अ इ उ ए ओ एते सिते शुक्लपक्षे बलिनः
स्युः । शेषा धनपफबभमयरलवशषसह आ ई ऊ ऐ औ
एते सर्वे सितेतरं कृष्णपक्षे बलिनः स्युः ॥ एकस्वर इति ॥
यत्रोभयः स्वरः एकः पृथक्पक्षयोर्वर्णानामादौ भवति
तत्र पक्षबलं ग्राह्यं शुक्लकृष्णविभेदतः । यथा कर्मधर्मरसुकयो-
रेकपक्षाक्षरयोर्नामादिवर्णस्वरः ककारः शुक्लपक्षे वकारः कृष्ण-
पक्षेऽस्तीति तत्र पक्षे तौ प्रत्येकं जयिनी शुक्लकृष्णभेदादिति
स्वरैक्यया वाचा एकपक्षान्तरान्यतरतामाह ॥ एकपक्षाक्षर
इति ॥ द्वयोर्योध्योरेकपक्षाक्षरयोर्नामादिवर्णस्वरः ककारः ।
एकश्चेत्तदा शुक्लपक्षे गौरी गौरवर्णः । अपरे कृष्णपक्षे
कृष्णवर्णः श्यामवर्णः निश्चितं जयति यथा कर्मगौरवर्णः
धर्मः सितेतरः श्यामवर्णः स्वरश्चोभयोरेकोऽकारः पञ्चै-
कञ्च तत्र कर्मगौरवर्त्वेन शुक्लपक्षे जयी तदितरश्यामवर्णत्वात्
कृष्णपक्षे जयीति ॥

यस्मिन्निति ॥ यस्मिन् एकपक्षाक्षरे एक एव स्वरः
योषो गौरी कृष्णी वा ऋस्वदीर्घौ भवतः तत्र यदि
ऋस्वो यो वर्षस्वरे लिखनक्रमेण स्वरासन्नाक्षरः सन् स

तदा जयी भवति । यस्तयोर्दीर्घः स यदि खराद्वाच्चर-
स्तदा जयी भवतीत्यर्थः ॥ प्रमाणे । त ॥ प्रमाणं ऋस्वादि
नामजात्या वर्णा गौरवर्णादयः । तेषामैक्यं समता योधयोर्यदि
भवति तत्र यायिस्थायिविभेदतो युद्धबलं ज्ञेयम् । एतदेव
व्यक्तीकृत्य व्यवस्थापयति योधयोरिति । योधयोः सर्वभेदेन
प्रमाणादिना पूर्वज्ञोक्तकथितेनैक्ये समतायां यूनि मारके च
खरे उदिते सति यायी प्रथमोद्यतो जयी । तथा तेनैव प्रका-
रेण बाले वृद्धे अन्तिमे मृते च खरे स्थायी प्रतिवादी जयी ।
बालतिथित्रयोपरिस्थिते सप्ताक्षरेष्वक्षरभेदेन तिथिषु प्रत्येकं
फलमाह आद्यतिथेरिति । प्रतिपत्षष्ठ्येकादशीनामुपरि अक-
च्छुद्धभव इति सप्ताक्षराणि सन्ति । तेषां ता एव तिथयो
बालास्तासु आद्यतिथेः प्रतिपदस्तयोर्वर्णा अकारककारच्छकाराः
एवं शेषयोः षष्ठ्येकादशोर्द्धौ वर्णौ मतौ । ततः षष्ठ्यां डकार-
धकारौ एकादश्यां भकारजकारौ एवं तिथिखरे तिथित्रये
वर्णसङ्ख्या ज्ञेया ॥ वर्णतिथ्यादौति ॥ एवं यस्यास्तिथेर्यो
वर्णस्तस्य सा तिथिर्भवति । तदाद्येकाद्यनुक्रमेण तिथित्रयस्य
यमहादिस्तथा मृतिरिति मासत्रयं यस्य ककारस्य प्रतिपञ्चम-
नाम्नी षष्ठ्यहादिनाम्नी एकादशी मृतिनामिका । अत्र प्रत्येकं
फलमाह श्रीजन्मनीत्यादि ॥ इति स्वरप्रकारविशेषनिर्णयः ॥

अस्मिन् दिने पुरुषस्य किं फलं स्यादिति स्वरभेदेन विचा-
रयन्नाह यदुक्तमिति । तदहं दिनफलं खरादकारादिखरात्
मात्रादिनामकात् दिनफलं वक्ष्ये । कौटुशं पुंसां धर्मादिप्रका-
शनं पुंसामित्युपलक्षणम् अन्येषामपि यद् जामले जामलादौ
तन्मे गुरुप्रसादतो गुरुपदेशाज्ज्ञातम् । प्रकारमुपदर्शयन्नाह
योगेति ॥ योगस्वरपिण्डस्वरराशिस्वरजीवस्वरग्रहस्वरवर्णस्व-
रनक्षत्रस्वर मात्रास्वरास्तान् अष्टौ खरान्नाम उत्पाद्य स्थापयेत्

तिथ्यर्कपङ्क्तिक्रमेण लिखेत् । तस्येति ॥ तस्य योगस्वरादेरध-
स्तात् द्वादशाब्दादिकालजान् द्वादशाब्दाब्दायनत्तुमासपक्षदि-
नघटोसम्भवानष्टौ स्वरात्रामादौ लिखेत् कथञ्चूतान् स्वरभी-
गेन समायुक्तान् स्थूलक्रमेणान्तरोदयमानेन च विशिष्य सहि-
तान् । भोगमाह भोगाश्चैकादशांशकः स्थूलमानं प्रत्येकमेकाद-
शेन यो भोगः प्राप्यते वर्षादि यो यस्मिन् यः स भोगोत्पत्ति-
रित्यर्थः । यथा द्वादशवार्षिके वर्षमेकमादौ दिनद्वयं लोका-
ब्धिनाडिका अष्टत्रिंशत् १ । १ । २ । ४३ । तत्पलानि चेत्यादि
यथायथमष्टानीकानीति तत्रैव योगस्वरादिकान्तस्वराणां
स्वराधिकस्वरेषु बालादिव्यवस्था । यथोत्तरेति । स्वरवेदिभि-
रते स्वरा यथोत्तरवला ज्ञातव्याः । के ते योगादिका मात्रान्ता
अष्टौ नामजा नामत उत्पादिताः तथा तेनैव प्रकारेण फलो-
दयाश्चापि द्वादशाब्दादिका घटौपर्यन्ता सवयोदिता यथो-
त्तरवला ज्ञातव्याः । यथा योगस्वरात् पिण्डस्वरो बली पिण्डा-
नक्षत्रस्वर एवं क्रमेणापि तथा द्वादशाब्दिकस्वराद्वाधिको
वार्षिकादयनस्वर एवं क्रमेणाग्रतोऽपि ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥

अकारादीति ॥ अकारादिक्रमात् अ इ उ ए ओ एवं
क्रमेण लिखित्वा तदधस्तात् वेदाश्चत्वारस्तत्प्रमाणिका-
श्चतुःसङ्ख्या विन्यस्य स्वरत्रैविशेषोपका मता स्वीकृता
इत्यर्थः । प्रयोजनन्तु अस्याष्टस्वरेषु प्रत्येकमत एव चतुःसङ्ख्या-
विन्यासः शुभाशुभकोटिद्वये विभास्यत इति पूर्वप्रतिज्ञातानां
नामजाष्टस्वराणां द्वादशाब्दिककालजां बालादिवस्थां सूचयन्
कुतः कुत्र सा चिन्तनीयेत्याह योगादिति । योगात् योगस्व-
रात् बालभूतात् द्वादशवर्षे बालादिवस्थाः स्युः । अयमर्थः द्वाद-
शवार्षिकस्वरे यः स्वरोऽकारादिषु उदितः स योगस्वरमानम-
धिकृत्य बालादिस्वरैः स्थले विशिष्यान्तरोदये सूक्ष्मे व्यवस्थाप-

नीय इति एवमग्रे ऽपि सप्तावस्थाः कथिता वर्षैर्बाला बोद्धव्याः ॥
तद् यथा पिण्डतः पिण्डस्वरादाब्दिके वार्षिकस्वराद्भस्वरात्
नक्षत्रस्वरात् अयने मकरकर्कटादिराशिषु द्वयोराशिस्वरात्
ऋतुस्वराज्जीवस्वरान्मासस्वरे अवस्था बालाद्यवस्था ग्रहात् ग्रह-
स्वरात् पक्षस्वरे वर्णात् वर्षस्वरात्तिथिस्वरे मात्रास्वरात् घटी-
स्वरे बालाद्यवस्था चिन्तनीयेति ॥

द्वादशाब्दिक इति ॥ अकारादिस्वरे अ इ उ ए ओ
एवंरूपद्वादशाब्दिककालः समयः स्थितः स यदि पञ्चावस्थासु
शुभः स्यात् पञ्चावस्थासु अकारादिक्रमस्थितासु अशुभदो
निषिद्धफलदः अन्तरोदयक्रमेण न स्यात् तदा शुभः स्यात्
अवस्थासु पञ्चावस्थासु स्वरोदयवर्षमासदिननाडीपलरूपासु न
शुभः स्यात्तदा शुभो न स्यात् । यद्वा पञ्चावस्थाशुभोऽपि
पञ्चावस्थायां बालादिक्रमेण वर्षमासदिनेत्यादिक्रमेण शुभोऽपि
यदि दिनचर्यायां कथितप्रकारेणाभद्रकराशिरवशिष्यते तदा
शुभो न स्यात् । यदा पञ्चावस्थाशुभः पञ्चस्वस्थासु अशुभः शुभ-
ग्रहः न शुभोऽशुभग्रहः स्यात्तदा फलं वाच्यं परिशेषक्रमेण
इत्यभिप्रायः । यथा ये बालादिस्वरा अन्तरोदयगतास्तेषा-
मस्तराशिपतिरशुभः शुभश्च तदुपरिस्थितस्वरेषु विंशोपकारं
परिकल्प्य शुभाशुभकोटिद्वयाङ्कमालिख्य स्वल्पस्य बहुषु पात-
नात् परिशेषेण यदि शुभग्रहराशिस्तदा शुभं अन्यथा अशुभं
सामान्यतो ज्ञात्वा विंशत्ये त्यादिप्रकारेण वर्त्तमानस्वरं निरूप्य
तदधःस्थग्रहवर्गेण फलं वाच्यं परिशेषे शुभग्रहकोटिः विंशत्ये-
त्यादिक्रमेणाशुभकोटिस्तदा मिश्रफलं वाच्यं परिशेषे तु शुभ-
ग्रहकोटिस्तदा मिश्रफलं वाच्यं लाभालाभौ धातुमूलजीवाधि-
पग्रहवर्गेण तत्तद्द्रव्याणामिह परिपाटी चिन्तनीया । प्रागुक्त-
दिनफलव्यवस्थार्थं बालादिषु व्यवस्थामाह स्वराविति । द्वादशस्तमौ

वृद्धसूतो स्वरौ दृष्टौ निषिद्धफलदौ तथा बालापूर्वफलं बालस्वर-
प्रथमार्द्धं तथा दृष्टमित्यर्थः । शेषं सार्द्धद्वयं बालोत्तरार्द्धसहित-
कुमारयूनोरिति तत्र इत्यनेन प्रकारेण शुभाशुभं ज्ञेयम् ॥

द्वादश इति ॥ स्वान्तरोदयसंस्थिता ये द्वादशवार्षिकाद्या
अष्टौ ते शुभाः बालोत्तरार्द्धकुमारयुवानः स्वरा विंशोपसङ्ख्यास-
हिता एकत एकदेशे स्थाप्या अशुभा बालपूर्वार्द्धसूतहृदस्वरा
विंशोपकाः स्थाप्याः । विंशोपकाः प्रत्येकं कुमारानीनां चत्वारः ।
बालो मिश्रफलत्वेनोभयत्र द्विसङ्ख्या तत्र प्रथमार्द्धसमये अशु-
भद्विः ॥४२॥ उत्तरार्द्धसमये शुभद्विः ॥४२॥ शुभाशुभेति ॥ शुभरू-
पस्वाशुभस्वरूपस्य च राशियुग्मस्य मध्यतः एकस्मादस्मिन् पातिते
शेषे शुभराशयः शुभराशौ वा स्वरूपं तद्दिनजं फलं भवतीत्यर्थः ॥
रोगादिकस्य फलं कुतो वा स्यादित्याकाङ्क्षायामाह विंशत्येति ।
शेषे पातितशेषे विंशत्या ताडिते गुणिते चतुःषष्टिविभाजिते
चतुःषष्ट्या हृतभागे लब्धं तत्तत्र तेषां मध्ये विंशोपकाः शुभाः
शुभप्रकाशकाः । यथा एकलाभे योगतः द्विलाभे पिण्डतः एक-
मष्टपर्यन्तेन मात्रान्तात् फलम् । तत्तत्कथितादिति पञ्चस्वरेषु
प्रत्येकं चतुःसङ्ख्या विन्यस्य विंशतिसङ्ख्या भवति तेन विंशत्या
गुणः योगादिमात्रान्ता स्वराणामष्टसङ्ख्या द्वादशाब्दादिघट्य-
न्तस्वराणामप्यष्टसङ्ख्या अतोऽष्टाभिरष्टगुणनाचतुःषष्टिसङ्ख्या
भागद्वारकेत्यभिप्रायः ॥ चतुःषष्टिविभाजिते इति नैवपाठः । तत्र
चतुःषष्ट्याशत भागो ग्राह्य इति ॥

योगादिसङ्ख्यालाभे एकादिक्रमेण कुतः फलं स्यादि-
त्याह ॥ योग इति ॥ योगलब्धे एकसङ्ख्यालाभे स्वक-
र्मातः स्वव्यापारात् पिण्डे द्विसङ्ख्यालाभे शरीरात् स्वकौ-
यादेव भे नक्षत्रे तत्सङ्ख्यालब्धे सूक्ष्मजनात् राशौ
चतुःसङ्ख्यातो लब्धे स्वकुलतः स्वकुलजनात् जीवे पञ्च-

सङ्ग्रातो लब्धे स्वचित्तात् स्वधनात् स्वचित्तादिपाठे स्वमानसात्
 सुखं दुःखं वा भवतीति । ग्रहतो ग्रहे स्वसङ्ग्रातो लब्धे रिपोः
 शत्रुजनात् ग्रहत इत्यत्र सर्वे भक्तिकष्टमिति । वर्षे सप्तसङ्ग्रातो
 लब्धे स्वस्वामितः सेव्यात् सर्वेषामष्टसङ्ग्रातो लब्धे अष्ट-
 लब्धायां स्त्रीजनात् शुभं फलं अशुभं फलं वा भवतीति प्रकारः
 सामान्यतः प्राप्तोऽर्द्धव्यक्तीकरणाय लिख्यते । यस्य देवदत्तादि-
 नान्नो दिनफलं ज्ञातुमिच्छते तन्नाम्नो माताद्यष्टस्वरानुत्पाद्य
 व्युत्क्रमेण योगस्वरमुपक्रम्य मात्रान्ता तिर्य्यक्क्रमेणालिख्य
 द्वादशाब्दिकध्वन्यन्तान् स्थूलक्रमेण विंशत्यान्तरोदयक्रमेणाष्ट-
 स्वरानुत्पाद्य तदधोऽनुक्रमेण लिखित्वा तत्र योगस्वरादितः
 प्रत्येकं बालकुमारादिव्यवस्थां विधाय पञ्चस्वरविंशोपकं प्रत्येकं
 चतुःसङ्ग्रहाव्यवस्थितमत्र लिखेत् । तद् यथा बालोत्तरार्द्धं समये
 द्वयं कुमारे यूनि च प्रत्येकं चतुश्चतुः कृत्वा शुभराशिं परि-
 कल्प्य लिखेत् । बालपूर्वार्द्धं समये द्वयं द्वे सृते च चतुश्चतुः-
 सङ्ग्रामशुभकोटौ लिखित्वा शुभाशुभराश्वोरन्तरे यत्रावशिष्यते
 तन्नामसदृशं फलं भवति । तत्र यदवशिष्यते तद्विंशमे सङ्गुण-
 चतुःषष्ट्या हरणात् यत्तत्त्वं तत्संख्यायोगादिषु ते भुक्तस्वराः तदु-
 त्पत्तिज्ञानार्थं सकलसाधारणाधिकशत १०० शकवर्षीयशुक्ल-
 प्रतिपदि द्वादशाब्दाद्यष्टस्वराः स्वान्तरोदयस्था गतगम्यरूपाः
 पूर्वं लिखिताः । तथा दिनदर्शनार्थं लिख्यन्ते यथा श्रीरामतोषण-
 नान्नो माताद्यष्टस्वरा व्युत्क्रमेण योगादिकाः यद्यप्यादौ
 योगस्वरादिद्वादशाब्दादिस्वरूपेऽप्युत्तिष्ठेन प्रथमत एव स्वरा
 व्यवस्थापयितुमर्हति । तत्रापि मातादिस्वरसप्तकव्यवस्थाव्यति-
 रेकेण तद्व्यवस्था न भवतीति शेषे तस्य कथनमिति तात्पर्य्यम् ।
 अत्र द्वादशाब्दाद्यन्तरोदये योगस्वराद्यवधिकबालादिकव्यव-
 स्थाया योगस्वरकारस्तदवधिको द्वादशाब्दे उदितकारो बाल-

स्तस्योत्तरार्द्धमिति शुभराशौ द्विसंख्यापिण्डस्वर एकारस्तद-
वधिको वर्ष उदितकारो वृद्धस्तस्याशुभकोटी चतुःसंख्या ।
नक्षत्रस्वरकारस्तदवधिकोऽयने उदित एकारो युवा शुभराशौ
तस्य चतुःसंख्या । राशिस्वरकारस्तदवधिक ऋतौ उदितकारो
बालस्तस्योत्तरार्द्धमिति शुभराशौ द्विसंख्या । वस्त्रोकारस्तद-
वधिको मास उदितकारः कुमारस्तस्य राशौ चतुःसंख्या । ग्रह-
स्वरोऽकारस्तदवधिकः पक्ष उदितः कारस्तस्य शुभराशौ चतुः-
संख्या । वर्षस्वरकारस्तदवधिको दिने उदितकारोऽत्यशुभराशौ
तस्य चतुःसंख्या । मात्रास्वरकारस्तदवधिको घट्युदितकारो
बालस्तस्योत्तरार्द्धमिति शुभराशौ द्विसंख्या । एतावता बाल-
तयोत्तरार्द्धत्वेन षट्संख्या कुमारद्वयस्य चाष्टौ यूनः कारस्य
चत्वारः वर्तुलीकरणादष्टादश १८ । शुभराशौ द्वित्वमद्याष्टौ च
बालत्रयस्य भुक्तपूर्वार्द्धस्य षट् ६ । वर्तुलीकरणादशुभराशौ चतु-
र्दशसंख्या १४ । राशिद्वयेऽधिकराशेरन्यो राशिः पातनीयः ।
प्रकृते यूनश्चाष्टमराशेरधिकशुभराशौ पातनादवशेषः । अवशेषेण
शुभराशिस्थितौ फलं शुभं स्यात् । शेषे चतुःसंख्यायां विंशतिगु-
णितायां वृत्तं ८० । अत्र चतुःषष्टिहरणाल्लव्यशेषः । एवं द्वितीयो
वर्त्तमानः पिण्डः स्वरः शुभः शुभफलं शरीरं चिन्तनीयं शरीरं
मृत्यूपलक्षणं स्वीयजनादित्यर्थः । एवं साधारणे द्वादशाब्दादि-
समयनिरूपितस्वरेऽपि प्रतिव्यक्ति नामजस्वराणां बालकुमारा-
दिव्यवस्थामुत्पाद्य यथायथं कर्माणि दिनफले च कर्त्तव्या-
नीति ॥ एवमिति ॥ एवमनेन प्रकारेण विद्वान् पण्डितो ज्ञात्वा
शुभाशुभं वा फलं वदेत् ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां षष्ठे काम्यमाण्डे शिद्धागुरुपदेशलव्य-
फलकवालादिचक्रकथनं नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चक्रं वैलोक्यदोपकम् । विख्यातं

सर्वतोभद्रं सद्यः प्रत्ययकारकम् । ऊर्ध्वं गा दश विन्यस्य तिर्य्य-
 ग्रैश्चास्तथा दश । एकाशीतिपदं चक्रं ८१ जायते नात्र
 संशयः । अकारादिस्वराः कोष्ठे त्वीशादी विदिशि क्रमात् ।
 सृष्टिमार्गेण दातव्याः षोडशैव चतुर्भ्रमम् । कृत्तिकादीनि
 ध्रिष्णानि पूर्वाशादी लिखेद्बुधः । सप्तसप्तक्रमादेतान्यष्टाविं-
 शतिसंख्यया । लेख्या अवकहडाः प्राच्यां मटपवताश्च
 दक्षिणे । लयभजश्चाश्च वारुण्यां पसदचलास्तथोत्तरे । तय-
 स्स्वयो वृषाद्याश्च पूर्वाशादिक्रमाद्बुधः । राशयो द्वादश ज्ञेया
 मेषान्ताः सृष्टिमार्गतः । शेषेषु कोष्ठकेष्वेवं नन्दादितिधिपञ्च-
 कम् । वाराणां सप्तकं लेख्यं भौमादिप्रक्रमेण च । रवेर्मेष-
 तुले प्रोक्ते चन्द्रस्य वृषवृश्चिकौ । भौमस्य मृगश्रकौ च कन्या-
 मीनौ बुधस्य च । जीवस्य कर्कमकरौ मीनकन्ये सितस्य च ।
 तुलामेषौ च मन्दस्य उच्चनीची प्रकौर्त्तितौ । शन्यर्कराहु-
 केत्वाराः क्रूराः शेषाः शुभग्रहाः । क्रूरयुक्तो बुधः क्रूरः
 क्षीणचन्द्रस्तथैव च । यस्मिन्बृचे स्थितः खेडस्ततो
 वेधत्रयं भवेत् । ग्रहदृष्टिवशेनात्र वामसन्मुखदिक्षिणे ।
 भुक्तं भोग्यं तथा क्रान्तं विद्धं क्रूरग्रहेण भम् । शुभा-
 शुभेषु कार्येषु वर्जनीयं प्रयत्नतः । वक्रगे दक्षिणा दृष्टिर्वामा
 दृष्टिश्च शीघ्रगे । मध्यचारे तथा मध्या ज्ञेया भौमादिपञ्चके ।
 सूर्य्यमुक्ता घटीयन्त्रे शीघ्राश्चार्के द्वितीयगे । समास्तृतोयगे
 ज्ञेया मन्दा भानौ चतुर्थगे । मन्दाः स्युः पञ्च घष्टेऽर्के अतिव-
 क्रान्ताः नगाष्टगे । नवमे दशमे भानौ जायते कुटिला गतिः ।
 द्वादशैकादशे सूर्य्यं लभन्ते शीघ्रतां पुनः । राहुकेतू सदा
 वक्रौ शीघ्रगौ चन्द्रभास्करौ । गतेरेकस्वभावत्वादेसां सृष्टित्रयं
 सदा । क्रूरा वक्रा महाक्रूराः सौम्या वक्रा महाशुभाः । स्युः
 सहजस्वभावस्थाः सौम्याः क्रूराश्च शीघ्रगाः । घड्याः षण्ठाश्चैव

धफडाः स्थभजास्तथा । एतत्त्रिकं त्रिकं विद्धं विद्धैः कफभदेः
क्रमात् । घडङ्गा रौद्रवेधेन प्रणठा हस्तगे ग्रहे । धफडाः पूर्वा-
बाढायां खभजा भाद्र उत्तरे । रवौ शसौ यजौ तत्र डञ्जी चैव
परस्परम् । एकेन द्वितीयं विद्धं शुभाशुभग्रहव्यधे । श्रवणादि-
स्वरो वेधे नैकवेधे द्वयोर्व्यधः । युग्मस्वरात्मके वेधे चानुस्वारवि-
सर्गयोः । कोणस्थधिष्णयोर्मध्ये अन्धादिपादगे ग्रहे । अस्वरा-
दिचतुष्कस्य वेधः पूर्वतिथेस्तथा । एकादिक्रूरवेधेन फलं पुंसां
प्रजायते । उद्देगश्च भयं हानीरोगो मृत्युः क्रमेण च । ऋते भ-
मोऽक्षरे हानिः स्वरे व्याधिभयं तिथौ । राशौ विद्धे महाविघ्नः
पञ्चविद्धो न जीवति । एकविद्धे भयं युद्धे युग्मवेधे धनचयः ।
तिवेधेन भवेद्भङ्गो मृत्युर्वेधे चतुर्ग्रहे । यथा दुष्टफलाः क्रूरा-
स्तथा सौम्याः शुभावहाः । क्रूरयुक्तः पुनः सौम्यो ज्ञेयः
क्रूरफलप्रदः । अर्कवेधे मनस्तापो द्रव्यहानिश्च भूसुते ।
रोगपीडाकरः सौरीराहुकेतू च विघ्नदौ । चन्द्रे मिश्रफलं
पुंसां रतिलाभश्च भार्गवे । बुधवेधे भवेत् प्रज्ञा जीवः सर्व-
शुभप्रदः । खल्लेखस्थे बलं पूर्णं पादोनं मित्रमे गृहे ।
अर्धं समगृहे ज्ञेयं पादं शत्रुगृहे स्थिते । इदञ्च सौम्य-
क्रूराणां बलं स्थानवशात् स्वयम् । एतदेव फलं ज्ञेयं
सौम्यैः क्रूरैर्विपर्यये । स्थानवेधसमायोगे यत्सङ्घा-
जायते बलं । तत्सङ्घां वेध्यवस्तूनां बलं ज्ञात्वा फलं
वदेत् । वक्रग्रहे फलं द्विघ्नं त्रिगुणं खोच्चसंस्थिते । स्वभावजं
फलं शीघ्रे नीचस्थेऽर्धफलं ग्रहः । तिथिराश्वंशनचक्रं
विद्धं क्रूरग्रहेण यत् । शुभाशुभेषु कार्येषु वर्जनोयं
प्रयत्नतः । न नन्दति विवाहे च यात्रायां न निवर्तते ।
स रोगान्मुच्यते रोगो वेधवेलाक्ततोद्यमः । रोगकाले
भवेद्वेधः क्रूरखिचरसम्भवः । वक्रगत्या भवेन्मृत्युः शीघ्रे चाप्य-

रुजान्वितः । वेदस्थाने भवेद्भङ्गो दुर्गं खण्डिः प्रजायते ।
 कविप्रवेशनं तत्र योधाघातश्च तत्र वै । यत्र पूर्वादिकाष्टायां
 वृषराश्यादिगो रविः । सा दिगस्तमिता ज्ञेया तिस्रः शेषाः
 सदोदिताः । ईशानस्थाः स्वराः प्राच्यां ज्ञेया आग्नेययाम्यके ।
 नैऋतस्थास्तु वारुण्यां वायव्यां सौम्यगा मताः । नक्षत्राणि
 स्वरा वर्णा राशयस्त्रिधयो दिशः । ते सर्वेऽस्तमिता ज्ञेया
 यत्र भानुस्त्रिमासिकः । नक्षत्रेऽस्ते रुजा वर्णे हानिः शोक-
 स्तथा स्वरे । राशौ विघ्नस्तथा भीतिः पञ्चास्ते मरणं
 भ्रुवम् । यात्रा युद्धं विवादश्च द्वारं प्रासादहर्म्ययोः । न
 कर्त्तव्यं शुभं चान्यदस्ताशाभिमुखं नरैः । अस्ताशायां स्थितं
 यस्य पुंसो नामाद्यमक्षरम् । स आर्त्तः सर्वकार्येषु ज्ञेयो
 दैवहतो नरः । कवौ कोटे तथा युद्धे चातुरङ्गे महाहवे ।
 वर्ज्या अस्तङ्गता योधा यदीच्छेद्विजयं रणे । नक्षत्रेऽभ्यु-
 दिते पुष्टिर्वर्णे लाभः स्वरे सुखम् । राशौ जयस्त्रिधौ तेजः
 पदाग्निः पञ्चक्रोदये । प्रश्नकाले भवेदुविद्धं यत्तन्मन् क्रूर-
 खेचरैः । तद्दृष्टं शोभनं सौम्यैर्मिश्रैर्मिश्रफलं मतम् ।
 ग्रहाविद्वच्च यत्तन्मन् फलं तस्य स्वभावतः । ज्ञातव्यमीक्षणै
 केन्द्रे भाषितं यच्चरादिकम् । क्रूरैरुभयतो विद्धा यस्याक्षर-
 तिबिस्वराः । राशिर्ध्विष्णुश्च पञ्चापि तस्य मृत्युर्न संशयः ।
 मण्डलं नगरं ग्रामं दुर्गं देवालयं पुरम् । क्रूरोभय-
 स्थिते वेधे विनश्यति यथाक्रमम् । कृत्तिकादिद्वित्रिकर्त्तु
 क्रूरवेधे च कूर्मतः । सर्वे नामिच्छदेशाद्या विनश्यन्ति
 यथाक्रमम् । कृत्तिकायां तथा पुष्ये रेवत्याञ्च पुनर्वसौ ।
 वेधे सति क्रमाद्देधो वर्णेषु ब्राह्मणादिषु । तैलं भाण्डं रसो
 धान्यं गजाश्वादिचतुष्पदाः । सर्वं महार्घ्यतां याति यत्र
 क्रूरो व्यवस्थितः । क्रूरवेधसमायोगी यस्योपग्रहसम्भवः । तस्य

मृत्युर्न सन्देहो रोगाद्यापि रणेऽपि वा । सूर्यभात् पञ्चमं
 धिष्णं ज्ञेयं विद्युन्मुखाभिधम् । शूलच्चाष्टतमं प्रोक्तं सन्नि-
 पातं चतुर्दशम् । केतुमष्टादशं विद्यादुक्ता स्यादेकविंशतिः ।
 द्वाविंशतितमे कल्पस्तयोविंशे च वज्रकम् । निर्घातश्च चतुर्विंशे
 उक्ताश्चाष्टावुपग्रहाः । प्रस्थाने विघ्नदाः प्रोक्ताः सर्वकार्येषु
 सर्वदा । जन्मभं कर्म चाधानं वैनाशं सामुदायिकम् ।
 साङ्घातिकमिदं धिष्णप्राष्टकं सर्वजनीनकम् । जातिदेशाभिषे-
 कैश्च नवाधिष्ठानभूपतेः । वेधं ज्ञात्वा फलं ब्रूहि सौम्यैः क्रूरैः
 शुभाशुभम् । जन्मभं जन्मनक्षत्रं दशमं कर्मसंज्ञितम् । एक-
 विंशं तथाधानं त्रयोविंशं विनाशकम् । अष्टादशञ्च नक्षत्रं
 सामुदायिकसंज्ञकम् । साङ्घातिकञ्च विज्ञेयं ऋक्षं षोडशमेव
 हि । शरीरं राज्यजातं हि जातिनामधनाभिधम् । देशभं देश-
 नामर्चं राज्यर्चञ्चाभिषेककम् । मृत्युः स्याज्जन्ममे विद्धे कर्ममे
 क्लेश एव च । आधानमे प्रवासः स्याद् विनाशे वर्षविग्रहः ।
 सामुदायिकमेऽनिष्टं हानिः साङ्घातिके तथा । जातिमे कुल-
 नाशः स्याद् बन्धनञ्चाभिषेकमे । देशमे देशभङ्गश्च क्रूरो वरं
 शुभैः शुभम् । उपग्रहसमायोगे मृत्युर्भवति नान्यथा । भयं
 भङ्गश्च घातश्च मृत्युर्भङ्गयुता मृतिः ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मजामले । एकाशीतिपदे
 चक्रे ग्रहवेधात् शुभाशुभम् । क्रूरैरेकादिपञ्चास्ते युधि वेधे फलं
 लभेत् । तिथिर्धिष्णं स्वरा राशिर्वर्णश्चैव तु पञ्चमः । यद्दिने
 विध्यते चन्द्रात् तद्दिने स्यात् शुभाशुभम् । देशः कालस्ततः
 पण्यमिति त्रीण्यर्घ्यनिर्णये । चिन्तनीयानि वेधा-
 नि सर्वकालं विचक्षणैः । देशोऽथ मण्डलं स्थानमिति देश-
 स्त्रिधोच्यते । वर्षं मासं दिनञ्चेति त्रिकालेऽपि च कथ्यते ।
 धातुर्मूलञ्च जीवश्च पण्यमेवं त्रिधा मतम् । अथ त्रिकत्रयस्यास्य

वक्ष्यामि स्वामिखेचरान् । देशेश राहुमन्देज्या मण्डलस्वामिनः पुनः । केतुसूर्यसिताः स्थाननाथाश्चन्द्रारचन्द्रजाः । वर्षेश राहुकेत्वार्कजीवा मासाधिपाः पुनः । भौमोऽर्कस्तु सितो ज्ञेयश्चन्द्रः स्याद्विवसाधिपः । धात्रीशाः सौरिपोतारा जीवेश ज्ञेन्दुसूरयः ॥ मूलेशाः केतुशुक्रार्का इति पञ्चाधिपा ग्रहाः । पुं ग्रहा राहुकेत्वार्कजीवभूमिसुता मताः । स्त्रीग्रहौ सितशीतांशू सौरिसौम्यौ नपुंसकौ । सितेन्दू सितवर्णेशौ रक्तेशौ भौम्यभास्करी । पीतौ सौम्यगुरू कृष्णा राहुकेत्वार्कजा मताः । ग्रहे वक्रोदयो यः स्यादुदये च बलाधिकः । देशादोनां स एवैकः स्वामिखेटस्तथा मतः । वक्रोदयः स्वहर्म्येषु पूर्णवीर्यो भवेद् ग्रहः । तदग्रपृष्ठगे खेटे बलं त्रैराशिकं मतम् । उच्चस्थे च बलं पूर्णं नीचांशस्थे बलं दलम् । त्रैराशिकवशाज्ज्ञेयमन्तरं तु बलं बुधैः । एवं देशादिनाथानां वेधो ज्ञेयो गृहं प्रति । सुहृदः शत्रवो मध्यास्थिन्तनोयाः प्रयत्नतः । स्वमितसमशत्रूणां वेधादेशादिके क्रमात् । शुभो ग्रहः शुभं दत्ते चतुस्त्रिद्वैकपादतः । दुष्टं दुष्टग्रहः कुर्यादेकद्वित्रिचतुष्पदैः । विद्वः पूर्णदृशा पश्यन् तत्पादेन फलं ग्रहः । विदधात्यन्यथा ज्ञेयं फलं दृष्ट्यनुसारतः । वर्णादिस्वरराशीनां मेषाद्ये राशिमण्डले । ग्रहदृष्टिवशात् सोऽपि वेधो वर्णादिके मतः । स्वरवर्णाः स्वचक्रोक्तास्त्यिवेधस्य पीडकाः । तिथौ वर्णं च राशौ च स्वदृष्ट्या दृष्टिर्ज फलम् । अशुभो वा शुभो वापि शुक्रौ वेध्यतिथौ ग्रहः । सर्वं निजफलं दत्ते कृष्णपक्षे तु तद्वलम् । खेटकस्यांशको ज्ञेया पूर्णा दृष्टिः सदा बुधैः । दृष्टिहीने पुनर्वेधे न स्यात् किञ्चिच्छुभाशुभम् । सौम्यः पूर्णदृशा पश्यन् विध्यन् वर्णादिपञ्चके । फलं विंशोपकान् पञ्च क्रूरश्च चतुरो दिशेत् । वेध्यवर्णादिके यावत् स्थाने वेधे च यावतौ । दृष्टिस्तदनुमानेन वाच्या विंशोपका

बुधेः । एवं विंशोपेका यत्र सम्भवन्ति शुभाशुभम् ।
 तस्मादेवं विधानेन तेषां ज्ञेयं शुभाशुभम् । वर्त्तमानार्थ-
 विंशांशकल्पना तेषु च क्रमात् । वर्त्तमानार्थके दद्यादुत्पाद्य
 च शुभाशुभम् । देशध्वंसः प्रजापीडा मृतिः प्राणिवधस्तथा ।
 यत्र दृष्टिस्तु तत्र स्याद् दुर्भिक्षं मण्डले स्फुटम् । अकालेऽपि
 फलं पुष्पं वृक्षाणां यत्र जायते । स्वजातिमांसभुक्तिश्च दुर्भिक्षं
 तत्र रौरवम् । परचक्रागमस्तत्र दुर्भिक्षञ्च स्वराज्यके । ऋतौ
 विपर्ययो यत्र दुर्भिक्षं मण्डले भवेत् । भूमिकम्पो रजःपातो
 रक्तपातश्च जायते । देशे सर्वसुखोपेतं वेधाद्धर्षो भवेद्भयम् ।
 दीपो यथा गृहस्थान्तरुद्योतयति सर्वतः । तस्येदं सर्वतोभद्र-
 चक्रं ज्ञानप्रकाशकम् ॥

अस्य व्याख्यानं प्रक्रिया सङ्केतश्चोच्यते ऊर्ध्वगति ।
 पूर्वपश्चिमक्रमेण रेखादशकं विन्यस्योत्तरदक्षिणक्रमेण पुन-
 स्तत्र रेखादशकं न्यसेत् । एतेनैकाशीतिः कोष्ठकानि
 भवन्ति । तत्र कोष्ठे ईशानादिकोणकोष्ठेषु दृष्टिमार्गणादावी-
 शानकोणौ ततश्चाग्निकोणौ ततो नैऋते ततश्च वायव्ये एवं
 चतुरावृत्त्या अकारादिस्वरान् लिखेत् । पूर्वदिग्बधिसप्तसप्त-
 क्रमेण कृत्तिकादन्यष्टाविंशतिनक्षत्राणि चतुर्दिक्षु प्रथमपंक्तौ
 लिखेत् । तदधःपंक्तौ अवकहृत्वादिवर्णविंशतिकं तदधः-
 पंक्तौ वृषादिराशिद्वादशकञ्च लिखेत् । अवशिष्टकोष्ठपञ्चके
 नन्दादितिथिपञ्चकं लिखेत् । तत्रेशाने अ उ लृ औ इति
 स्वरचतुष्कम् । आग्नेये आ ई लृ औ इति स्वरचतुष्कम् ।
 नैऋते इ ऋ ए अ इति स्वरचतुष्कम् । वायव्ये ई ऋ ऐ अः
 इति स्वरचतुष्कञ्च लिखेत् । ततः पूर्वदिशि प्रथमे पंक्तौ कृत्ति-
 कादौनि सप्त ऋक्षाणि द्वितीयपंक्तौ अवकहृडेति । तृतीयपंक्तौ
 वृषमिथुनकर्कटेति । तदधःकोष्ठे नन्दादितिथिञ्च लिखेत् । ततो

दक्षिणदिशि पूर्ववत् पंक्तिक्रमेण मघादीनि मटपवतेति सिंह-
कन्यातुलेति भद्राच्च लिखेत् । पश्चिमायां दिशि पूर्ववत् तत्र
नन्दाकोष्ठे रविमण्डलौ भद्राकोष्ठे इन्दुबुधौ जयाकोष्ठे गुरुं
रिक्ताकोष्ठे शुक्रं पूर्णाकोष्ठे शनिं लिखेत् । ग्रहाणां बलविज्ञानाय
उच्चनोचस्थानमाह रवेर्मेष इत्यादि ॥ ग्रहाधीना हि सकल-
शुभाशुभचिन्तेत्यतो ग्रहाणां क्रूरसौम्यत्वमाह शन्यर्केति ।
शनिरविराहुर्केतुमङ्गलाः क्रूराश्च बुधगुरुशुक्राः शुभाः । बुधस्तु
क्रूरयुक्तः पापः । एवं क्षीणचन्द्रः क्षीणस्तु ज्योतिषे । कृष्णाष्ट-
मीदलादूर्ध्वं यावत् शुक्लाष्टमीदलम् । तावदेव शशी क्षीणः पूर्णः
स्यादन्यतः शशी ॥ इति । एतत्कथनप्रयोजनमाह यस्मिन्निति ।
यत्र चक्रे ग्रहाश्रयनक्षत्रस्य वामसम्मुखदक्षिणक्रमेण नक्षत्रेण
सह वेधत्रयं भवेत् । भुक्तग्रहाश्रयनक्षत्रे पूर्वं भोग्यं तन्नक्षत्रात्
परम् आक्रान्तं ग्रहेणाधिष्ठितम् । तत्र कर्म न कर्तव्यमित्यर्थः ॥

दृष्टिफलं कथयति वक्रगति ॥ मङ्गलादिग्रहपञ्चके वक्र-
गामिणि सति दक्षिणा दृष्टिर्ज्ञातव्या । अत्र दक्षिणवेधफलं
वाच्यं शीघ्रगामिणि वामदृष्टिर्वामवेधफलं वाच्यम् । मध्यचारे
प्रकृतगतौ मध्या सम्मुखे दृष्टिर्ज्ञेया तत्र सम्मुखवेधफलं वाच्यम् ।
ग्रहाणां वक्रशीघ्रादिसमयमाह सूर्य्ययुक्तं इति । सूर्य्येण सह
एकराशिस्था ग्रहा अंशविशेषे अस्ता भवन्ति । उक्तञ्च ज्योति-
स्तत्त्वे । सूर्य्येण युक्ता अग्रिमराशिं गता उदिताः स्युः । सूर्य्यं
द्वितीयगे ग्रहाक्रान्तराशेरग्रिमराशिगते सूर्य्ये तु ग्रहाः शीघ्राः
शीघ्रगतयो भवन्ति । एवं क्रमेण तृतीयराशिगे सूर्य्ये ग्रहाः
समाः प्रकृतगतयो भवन्ति । चतुर्थे सूर्य्ये मन्दाश्चक्रपूर्वसम-
गतयो भवन्ति । एवं पञ्चमराशिगे सूर्य्येऽपि सप्तमाष्टमराशिगे
सूर्य्ये ग्रहा अतिवक्रगतयो भवन्ति । एवं नवमदशमराशिगे
सूर्य्ये ग्रहाणामकुटिला सहजा गतिर्जायते । एकादशद्वादश-

राशिगो सूर्यो ग्रहाः शीघ्रगतयो भवन्ति । एषा वक्रशीघ्रादि-
 गतिस्तु मङ्गलादिपञ्चकानामिव । अन्येषां गतिविशेषमाह
 राहुकेतू इति । राहुकेतुचन्द्रसूर्याणामेकगतित्वात् सदा दृष्टि-
 त्रयं वामदक्षिणमध्यदृष्टिः सदैव भवति । क्रूरा इत्यादि ।
 शन्यादिग्रहा वक्रगतयः सन्तो महाक्रूरा एवं सौम्याः शुभ-
 ग्रहा वक्राः सन्तो महाशुभा भवन्ति । तथाच तयोः शुभाशु-
 भयोर्वक्रगत्योर्दृष्ट्यनुकूलिण शुभं विरुद्धं फलं भवति । सह-
 जगत्या प्रकृतगत्या स्वभावे स्वराशी स्थिता वक्रा वा उभय-
 थापि सौम्याः शुभग्रहा महाशुभा भवन्ति । एवं सौम्याः
 क्रूराश्च ग्रहाः शीघ्रगाः सन्तोऽपि शुभा भवन्ति । क प म द
 इत्यक्षरचतुष्टये विद्धे सति घ ङ छेल्यक्षरद्विकं ष ण ठेति ध फ
 डेति त्रिकं थ भ जेति त्रिकं यथाक्रमं विद्धं भवति । तथा च
 घकारे विद्धे घ ङ छेति वर्णद्वयं विद्धं भवति । एवं पकारे
 विद्धे ष ण ठेति वर्णद्वयं भकारे विद्धे ध फ डेति वर्णद्वयं दकारे
 विद्धे थ भ जेति वर्णद्वयं क्रमेण विद्धं भवति । आर्द्रानक्षत्रे
 विद्धे सति क घ ङ छेति वर्णचतुष्कं विद्धम् । एवं हस्तानक्षत्रे
 विद्धे प ष ण ठेल्यक्षरचतुष्कं पूर्वाषाढानक्षत्रे विद्धे भ ध फ
 डेति वर्णचतुष्कं उत्तरभाद्रपदक्षत्रे विद्धे द थ घ जेति वर्णचतुष्कं
 क्रमाद् विद्धं भवति । रवावित्यादिवचनोपात्तौ एकविंशत्यन्तौ
 यौ द्वौ द्वौ वर्णौ स्तः तयोर्मध्ये शुभाशुभग्रहैरेकस्मिन् विद्धे
 सति अपरमपि विद्धं भवति । एवमनुस्वारविसर्गयोरैकस्मिन्
 विद्धेऽपरमपि ॥

कोणस्थेति ॥ कोणस्थनक्षत्रयोः भरणीक्षत्तिकयोरश्लेषा-
 मघयोर्विशाखानुराधयोः श्रवणाधनिष्ठयोरन्याद्यपादगतं
 ग्रहे सति प्रत्येकमकारादिस्वरचतुष्केषु पूर्णातिथेः पञ्च-
 मीदंशमीपौर्णमास्यमावस्यानां वेधो भवति । यथा भरण्या

अन्यपादे कृत्तिकाया आद्यपादे यदि ग्रहो वर्तते तदा अका-
रादयः स्वराश्चत्वारो विद्वाः पूर्णातिथ्या सह भवन्ति एवमन्य-
ष्वपि कोणेषु ज्ञेयम् ॥ एकैत्यादि ॥ एकक्रूरवेधे उद्वेगः
द्विवेधे भयं त्रिवेधे हानिश्चतुर्वेधे रोगः पञ्चवेधे मृत्युः ॥ ऋक्षे-
त्यादि ॥ पापग्रहेण नक्षत्रे विद्धे सति भ्रमो बुद्धिभ्रंशः ।
अन्यत् सुगमम् ॥ युद्धे विशेषमाह एकेति । नामवर्णादिके
एकपापेन विद्धे युद्धे भयं द्वाभ्यां धनहानिस्त्रिभिर्भङ्गश्चतुर्भिर्मृ-
त्युरित्यर्थः ॥ शुभग्रहफलमाह यथेति ॥ अर्कैत्यादि ॥ मृगशुक्ला
मङ्गलः सौरिः शनिः । चन्द्रेत्यादि । यदि चन्द्रः क्षीणस्तदा
पापफलं यदा पूर्णचन्द्रस्तदा शुभफलं सर्वप्रकारेण शुभफलदः ।
ग्रहाणां यादृग्वलं तादृक् फलं स्यादिति बलं दर्शयति खल्वे-
त्यादि सुगमम् । इदञ्चेति स्थानबलं शुभाशुभग्रहाणां
तुल्यम् । फलन्तु विपर्ययेण ज्ञेयम् । यदा पापग्रहः पूर्णबल-
स्तदा फलं मन्दं यदा शुभग्रहः पूर्णबलस्तदा अतीव शुभम् ॥
तिथौत्यादि ॥ तिथिराशिनवांशक्रमेण नक्षत्रञ्च यत् क्रूरग्रहेण
विद्धं यत्तद्वज्रं तत्र शुभकर्मा न कर्तव्यमित्यर्थः । वैधफल-
माह न नन्दतीत्यादि सुगमम् । विघ्ननक्षत्रादौ राज्ञा दुर्गे
कृते खण्डिः खण्डनं जायते तस्य भङ्गी भवतीति तात्पर्यम् ।
कविडाकारीति प्रसिद्धस्तस्य तस्य प्रवेशनं विघ्ननक्षत्रदिक्कृत-
दुर्गे भवति । एवं तत्र कोष्ठे कृते योधानामवघातश्च । अत्र तु
यत् सेनाङ्गनामाद्यवर्णी बिद्धपुरुषस्य दुर्गादिर्वा पापग्रहविद्धो
भवति इत्यप्यूहम् । यत्रेति यत्र पूर्वादिदिशि वृषादिनिराग्निर्गो
रविर्भवति सा दिगस्तमिता ज्ञेया इत्यर्थः । क्षिप्वा दिश
उदिता भवन्ति । ईशानेति ॥ ईशानदिक्स्थाः स्वराः अ उ
लृ ओ एवं रूपाश्चत्वारः प्राच्यां तत्र स्थिता ज्ञेयास्तस्यामस्तमि-
तायां तेष्वस्तमिता ज्ञेया इत्यर्थः । एवमन्यत्र नक्षत्राणीति ॥

यत्र दिशि राशित्रयभोगक्रमेण सूर्यः स्थितस्तत्रस्था नक्षत्रवर्ण-
 राशितिथिवाराः सर्वेऽस्तमिता भवन्ति । तत्फलमाह नक्ष-
 त्रेति । सुगमम् ॥ यात्रेति ॥ शुभं यात्रादि अशुभं मरणादि
 अस्तदिगभिमुखं नरैर्न कार्यमित्यर्थः ॥ अस्ताशायामिति ॥
 यस्य पुंसी नामाक्षरमस्तदिशिस्थं भवति स देवहत इव ज्ञेयः ।
 कराविति सुगमम् ॥ पदावभिमतलाभः प्रश्नेति । प्रश्नलग्नं अशु-
 भविद्विज्ञेत्तदा अशुभं शुभविद्विज्ञेत्तदा शुभं शुभाशुभविद्विज्ञेत्तदा
 मिश्रम् ॥ ग्रहाविद्वेत्यादि ॥ ग्रहेणाविद्वं लग्नं चरस्थिरद्वयात्म-
 करूपं ग्रहदृष्ट्यनुसारेण च यद्यत् फलं स्वभावजफलञ्च वाच्य-
 मित्यर्थः । अयमभिप्रायः ॥ यज्ञलग्नमस्मिन् चक्रे ग्रहेणाविद्वं
 स्यात् तस्य केन्द्रगतदृष्ट्यनुसारेण फलं वाच्यम् । किन्तु स ग्रहो
 यदि स्वामिव्यतिरिक्तपापः स्यात् तदा कार्यस्यासिद्धिर्वाच्या
 यदि स शुभस्तदा कार्यसिद्धिर्मिश्रश्चेन्मिश्रफलं वाच्यम् ॥
 चरादिसंज्ञा दौषिकायाम् ॥ चरस्थिरद्वयात्मकनामधेया मेघा-
 दयोऽभी क्रमशः प्रदिष्टा इति ॥ क्रूरैरित्यादि ॥ पापग्रहैर्यस्य
 वर्णादयः पञ्चमोत्क्रमाभ्यां मण्डलादिकं पापविद्विज्ञेत्तदा विन-
 श्यति । मण्डलं देशः ॥ नगरं राजस्थितिस्थानम् । दुर्गं कोटादि ।
 देवालयः प्रसिद्धः । पुरं राजनामचिह्नितराजधानी । कृत्तिके-
 त्यादि कूर्मचक्रे त्रीणि त्रीणि कृत्वा सप्तविंशतिनक्षत्राणि
 नवभागक्रमेणाङ्गानि व्यवस्थेयानि । तत्र कृत्तिकादिनक्षत्रत्रिके
 क्रूरविद्वे सति नाभिस्थदेशा नश्यन्ति एवमन्यत्र । अयमभि-
 प्रायः । कूर्मचक्रे सर्वतोभद्रचक्रे च यदि पापविद्वं नक्षत्रं
 स्यात्तदा तत्रक्षत्राङ्कितदेशा नश्यन्ति महोपद्रुता भवन्ति ।
 एकचक्रे विद्विज्ञेत्तदा किञ्चिदुपद्रुता इति ॥ कृत्तिकाया-
 मिति ॥ कृत्तिकायां विद्यायां ब्राह्मणो विध्यति एवं पुण्ये विद्वे
 क्षत्रियो विध्यति रेवत्यां वैश्यः पुनर्वसौ शूद्रश्च । तत्र शुभविद्वे

शुभं पापविद्धे अशुभं मिथ्ये मिथ्यफलम् । मतान्तरे त्वन्यवेधे-
नापि यदाह वराहः । पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञान्तु
पुथ्येण सद्योत्तराणि । सपौष्णमैत्रं पितृदेवतञ्च प्रजापतेर्भञ्च
क्षणीवलानाम् ॥ आनित्यहस्ताभिजिदश्विभानि वणिग् जनानां
प्रवदन्ति भानि । मूलत्रिवेदानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभ-
विष्णुतायाम् ॥ सौम्येन्दुचित्रावसुदेवतानि सेव्राजनस्त्रास्यमुपा-
गतानि । सर्पं विशाखा श्रवणाभरणश्चाण्डालजातेरपि निर्दि-
शन्ति ॥ तौल्यमिति ॥ तौल्यं तुलनार्हद्रव्यं भाण्डं रत्नं रसो
घृततेलादि । धान्यं शस्यं महार्घ्यतामधिकन्यूनतामित्यर्थः ।
शुभवेधे सुभिक्षमिति । क्रूरवेध इति शुगमम् ॥ उपग्रहमाह
सूर्यभादिति शुगमम् । नाडीनक्षत्रमाह ज्येष्ठा भेति ।
इदं नक्षत्रषट्कं सर्वजनसाधारणं ज्ञातव्यम् । जातिभसुक्तम् ।
देशभं देशनामाद्यचरेण शतपदचक्रे ज्ञातव्यम् । यस्मिन्नुच्चे
राशोऽभिषेको भवति तन्नक्षत्रमभिषेकभम् । तत्र क्रूरवेध-
फलमुक्तं शुभफलं वाच्यम् । तिथिरिति यस्मिन् दिने शुभाशुभ-
वेधे सति चन्द्रवेधेन तद्विध्यते तिथ्यादिपञ्चकेषु यत्र
यदा चन्द्रवेधस्तदा तस्य कथितफलं वाच्यम् । तिथ्यादिपञ्चके
विद्धे चन्द्रयोगो यदा भवेत् । तदुक्तं फलं तदा वाच्यं
तद्दिने ग्रहसम्भवम् ॥ देश इति ॥ पण्यं विक्रये-
द्रव्यम् । धातुरिति धातुः स्वर्णादिपृथिव्यन्तः । मूलं वृक्षादि-
गुल्मान्तम् । जीवो मनुष्यादिकीटपर्यन्तः । देशेत्यादि राहुश-
निवृहस्यतयः देशस्वराः । केतुरविशुक्ता मण्डलेशाः । चन्द्रमण्ड-
लबुधाः स्थानपतयः । राहुकेतुशनिवृहस्यतयो वर्षाधिपाः । रवि-
भीमबुधशुक्रा मासाधिपाः । चन्द्रो दिवसाधिपः । शनिराहुकुजा
धात्वधिपाः । बुधचन्द्रवृहस्यतयो जीवेशाः । रविकेतुशुक्रा,
मूलेयाः । राहुकेतुरविजीवमङ्गलाः पुरुषाधिपाः । शुक्रचन्द्री

स्त्रीग्रहौ । शनिबुधौ नपुंसकौ । गृहे इति । गृहे स्वगृहे
 स्वस्वराशौ यथा सिंहं सूर्य इत्यादि वक्रो भुक्तांशेषु पराहत्य
 गमने स्वहर्म्येषु स्वगृहेषु तत्पूर्वपरगृहेऽपि पूर्णबल इति
 त्रैराशिकं बलम् । उच्चेति दलमर्द्धम् । अन्तरे उच्चनीचमध्ये
 त्रैराशिकवशादनुपातेन बलं ज्ञेयम् । अनुपातो यथा । उच्चा-
 वधिप्रतिराशिर्त्रिंशांशके प्रत्येकं दश दश विकला हानिरिव
 नीचावधिप्रतिराशिर्त्रिंशांशके प्रत्येकं दश दश विकला वृद्धि-
 रिति । एवमिति । तत्तत्प्रभुत्वविषयकदेशादौ वेधचिन्ता कार्या
 इत्यर्थः । एवं गृहं प्रति वेधका ग्रहाः के सुहृदः के वा शत्रवः
 के वा मध्या इति चिन्तनीयम् । यथा मण्डलस्वामी सूर्यः
 तस्य मित्राणि चन्द्रकुजगुरवः । तेर्यदि मण्डलं विद्धं तदा
 शुभफलम् । सौम्यो बुधस्तस्य वेधान्न निषिद्धं शनिशुक्रौ शत्रू
 तयोर्वेधाद्विरुद्धफलमेव मन्येष्वपि ज्ञेयम् । स्वमित्रेति देशादिके
 देशमण्डलपण्ये स्वस्य मित्रस्य समस्य शत्रोश्च वेधात् शुभग्रहः
 शुभफलं ददाति चतुस्त्रिंशकपादकैः । तथा च स्ववेधे पूर्णं
 मित्रवेधे पादोनं समवेधेऽर्द्धं शत्रुवेधे पादफलमिति । दुष्ट-
 ग्रहो विरुद्धफलं दत्ते तथा च स्ववेधे पादफलं मित्रवेधे
 अर्द्धफलं समवेधे पादोनं शत्रुवेधे पूर्णम् । विद्धमिति
 विद्धराशिं पूर्णदृष्ट्या पश्यन् यदाश्चरं यदा विद्धम्
 करोति तदा पादेन फलं विदधाति दृष्टानुसारतोऽत्र विपरीत-
 क्रमो यथा । पूर्णदृष्ट्यात्र कपालफलं तथा पाददृष्ट्या पूर्णफलम् ।
 अर्द्धदृष्ट्या पादत्रयं पादत्रयदृष्ट्या अर्द्धम् ॥ वर्णंति ॥ मेषादिद्वा-
 दशराशिषु वर्णं आदिभूतो येषां अ इ उ ए ओ इत्येतेषां वर्ण-
 सङ्घटनतो रविर्बुधो वा एवं क्रमेण राश्यांशकव्यवस्थितराशीनां
 ग्रहदृष्टिवशाद्देधफलदः सोऽपि वेधो वर्णादिको मतः । यत्रांशक-
 वेधस्तत्र तत्रवांशवर्णस्वरयोरपि वेधस्तत्रापि फलं विद्धनवांशक-

राशौ ग्रहस्य दृष्टिवशेन । स्वरवर्णेति ॥ एषां ये च वर्णास्ते
स्वरचक्रोक्ता नामजाः स्वीयचक्रे कथिताः । ककारादिनाम्नः
ककारो वर्णः अकारस्वरः एवं स्वस्ववर्णाः पापग्रहविद्धाः
पीडकास्तिथिवेधाश्चैतादृशाः पीडका एव । एवं तिथौ यो वर्णो
यश्च राशिस्तत्रापि शुभाशुभग्रहवेधात् स्वदृष्ट्या पाददृष्टिक्रमेण
दृष्टिजं फलं ज्ञेयम् । अशुभेति ॥ पापग्रहः शुभग्रहो वा
शुक्लपक्षे तिथिवेधं कुर्वन् सर्वं स्वकीयफलं दृष्टिकल्पितं
दत्ते कृष्णपक्षे तु तदर्धमिति । खेटेति । ग्रहस्य अंशके
पूर्णा दृष्टिः पण्डितैः सदा चिन्तनीया यतो दृष्टिर्ह्येते वेधे
पुनः किञ्चिदपि शुभाशुभफलं न स्यादिति हेतुगर्भेण योजना ।
सौम्येति ॥ एवं प्रकारेण वर्णादिपञ्चके वर्णस्वरर्क्षराशि-
तिथ्यात्मके विद्धे सति ग्रहो वेधकः शुभाशुभफलं दत्ते ।
सौम्य इति ॥ दिशि सर्वतोभद्रचक्रपूर्वादौ वर्णादिपञ्चके
पूर्णदृशा पश्यन् बिध्यन् पञ्चविंशोपकान् पतितपादं पञ्चपञ्च-
विंशोपकसंज्ञकं फलं शुभग्रहो ददाति । क्रूरग्रहः प्रतिपादं
चतुर्विंशोपकान् फलं ददाति । वृषादिराशित्रये अवदहडा-
वर्णाः कृत्तिकादीनि सप्तभानि सिंहादित्रये मटपवभा वर्णा
मघादीनि सप्तभानि वृश्चिकादित्रये णमभजखा वर्णा अनुराधा-
दीनि सप्तभानि कुम्भादित्रये गशदचला वर्णा धनिष्ठादीनि
सप्तभानि एवं नक्षत्राणि वर्णाश्च राशीनां ज्ञेयाः

यदि पश्यन्ति ते खेटाः पाददृष्ट्या प्रकल्पयेत् । विंशोपकाः स्युः
पञ्चैव प्रतिपादं शुभग्रहैः । अशुभैर्वेदमिता ज्ञेयाः पाददृष्ट्या
विचक्षणैरिति ॥ वेधे इति ॥ वर्णादिपञ्चके वेधे यावदुद्दृष्ट-
वलं स्थानवेधे च यावती दृष्टिस्तदनुमानेन बुधैर्विंशोपका
वाच्या इति । एवमिति ॥ एवं प्रकारेण यचाशुभे शुभे वा
ग्रहे दृष्ट्यादिवलभेदेन विंशोपका व्यवस्थाक्रमेण सम्भवन्ति

शुभग्रहविंशोपका एकत्र धार्या अशुभग्रहविंशोपका अपरत्र धार्याः । तेषां मध्ये परस्परं ये यस्मान्नूनास्ते अधिके परिशोधनीयाः । शेषं यदृष्ट्यं तच्चिह्नितं शुभमशुभं वा फलं वाच्यम् । यत्र यावती दृष्टिरित्यस्यार्थो विविच्य लिख्यते । द्वितीये दशमे वा वेधे पञ्चविंशोपकाः । नवमे पञ्चमे वा दशविंशोपकाः । चतुर्थेऽष्टमे वा प्रत्येकं पञ्चदश । समसप्तके विंशतिः ॥ तथा च दृष्टिकथने ज्योतिःशास्त्रम् । पादैकदृष्टिर्दशमे द्वितीये द्विपाददृष्टिर्नवपञ्चके च । द्विपाददृष्टिश्चतुरष्टके च सम्पूर्णदृष्टिः समसप्तके चेति ॥ सर्वक्रूरग्रहाणां पादद्वयं चत्वारश्चत्वारो विंशोपका जायन्ते । इति सम्पूर्णदृष्टौ षोडशविंशोपका भवन्ति । एवं क्रमेण यत्र यत्र ये विंशोपकाः शुभात्मका अशुभात्मका भवन्ति तत्र शुभग्रहविंशोपकान् एकत्रैव परचक्रक्रूरग्रहविंशोपकान् लिखित्वा यो यत्र पतति तं तत्र पातयित्वा अवशिष्टौ यदि शुभग्रहस्य तदनुमानेन शुभम् । पापग्रहस्य चेत्तदा अशुभं फलं भवति ॥

वर्तमानेत्यादि । तेषु विक्रोयद्रव्येषु वर्तमानधान्यादिद्रव्य-
मूल्ये तन्नामनक्षत्रस्वरवर्णतिथिराशिभेदेन पूर्वोक्तप्रकारेण
विंशांशकल्पना अन्योन्यपरिशोधनपर्यन्ता कार्या । ततोऽवशि-
ष्टविंशोपकभागे परिकल्पनेन शुभग्रहादिष्वेकावशेषे विंशत्यंशो
मूल्ये ऋसति । तद्विशेषे द्वौ भागौ ऋसतः । एवमधिके चिन्त-
नीयम् । यत्र देशादेर्वर्णादिपञ्चकं शुभक्रूरविंशोपकशेष एवं
क्रमेण एकद्वित्रादिविंशान्तभागान्मध्ये अधिकौक्रियते । मूल्य-
मेवाधिकं भवति शुभाशुभञ्चोत्पाद्यम् । एवं यत्रादौ पापग्रह-
वेधस्तत्राशुभं किञ्चिद्वस्तु वेधादपि चिन्तनीयम् । यत्र देशा-
देर्वर्णादिपञ्चकं शुभमात्रेण बिम्बितवातीव शुभम् । यत्र पापमा-
त्रेण तत्रातीवशुभम् । यत्र भूतवेधस्तत्र दृष्टिभेदेन विंशोप-

कान् परिकल्प्य शुभाशुभविंशोपकाच्छुभमशुभफलं वाच्यम् ।
देश इत्यादि यत्र देशे क्रूरग्रहवेधे सति तद्दृष्टिरधिका कथि-
तप्रकारेण सम्यद्यते तस्य विनाशः । एवं तस्मिन् देशे प्रजा-
पोड़ाप्रकारोपद्रवः । राजविनाशो मण्डले च दुर्भिन्नम् । कूर्म-
चक्रं पापग्रहपोड़ा यत्र सर्वतोभद्रेऽपि पापग्रहपोड़ा तस्या-
वश्यं देशदेविनाशः प्रजापोड़ादिकञ्च फलं भवति । एतत्-
सकलनिमित्तान्युपदर्शयति । अकालेऽपीत्यादि । यत्र देशा-
दौ वृक्षाणामकाले पुष्पाद्युद्गमनसमयान्यसमये पुष्पं फलं वा
भवति तत्र स्वजातिमांसभुक्तिर्मनुष्यमांसं मनुष्यो भुङ्क्ते एव-
मन्यजातीयानामपि तत्र रौरवं भयानकं दुर्भिन्नं यत्रैव भवति
तत्र परचक्रागमोऽपि भवति । सुराजके शोभनराज्ञि अपि
देशे दुर्भिन्नम् । ऋतोरित्यादि । यत्र देशे ऋतो विपर्ययः
अन्यादृशः क्रमः पौषादिसम्भावितकुहेलिकादिर्ग्रीष्मादौ सम्भ-
वति यथा साधारणक्रमे शीतलसमये उष्णता ग्रीष्मादौ शैत्यम् ।
अन्यत्तु धर्मवहेतुविपर्ययो वा तत्रापि दुर्भिन्नं भवति ।
भूकम्प इत्यादि । सर्वसुखोपेतदेशे विधात् पापग्रहकृतो दौर्घ-
भूमिकम्पो रजःपातो धूलीवृष्टिः रक्तवृष्टिर्वा जायते ॥ दीपो
यथेति । इदं सर्वतोभद्रचक्रं तथा ज्ञानप्रकाशकम् । यथा
दीपो गृहस्थान्तर्मध्यं द्योतयति । यथा दीपद्योतवशेन गृहा-
न्तर्वर्तिद्रव्यज्ञानं भवति तथास्मात् सर्वतोभद्रचक्रात् सर्व-
विषयकज्ञानमुत्पद्यते ॥

चक्रं शतपदं बह्वे ऋक्षांशाक्षरसम्भवम् । नामादिवर्णतो
ज्ञेया ऋक्षराश्यांशकास्तथा । तिर्यग्गूर्वुगता रेखा रुद्रसङ्ख्या
लिखेद्बुधः । जायते कोष्ठकानान्तु शतमेकं न संग्रयः । विन्ध्य-
स्यावकहडादीनि रुद्रादिविदिशि क्रमात् । पञ्च पञ्च क्रमेणैव
शुद्धवर्णान् नियोजयेत् । पञ्चस्वरसमायोगादेकैकं पञ्चधा कुरु ।

कुर्यात् कुपुभुदुस्थाने त्रीणि त्रीण्यक्षराणि च । कुघडस्था
भवेत् स्तम्भे रौद्रे त्वीशानयोगके । पुषणठो भवेत् स्तम्भे
हस्ते आग्नेयसंज्ञिते । भवेदुभुधफटाः स्तम्भे पूर्वाषाढे च
नैऋते । हयभजा भवेत् स्तम्भे वायव्ये भाद्र उत्तरे । एवं
स्तम्भचतुष्कञ्च ज्ञातव्यं स्वरवेदिभिः । धिष्ण्यानि कृत्तिकादीनि
प्रत्येकं चतुरक्षरैः । साभिजित्यं शकस्तत्र शतैकं द्वादशाधि-
कम् । यट्क्षांशककोष्ठस्थः क्रूरः सौम्योऽपि वा ग्रहः । सौम्य-
वेधे शुभं ज्ञेयमशुभं क्रूरखेचरैः । मिश्रैर्मिश्रफलं तत्र निर्वेधेन
शुभाशुभम् । यदुक्तं सर्वतोभद्रे ग्रहोपग्रहवेधतः । शुभाशुफलं
सर्वं तदिहापि विचिन्तयेत् ।

अस्यार्थः । शतपदं कोष्ठचक्रं वक्ष्ये किम्भूतं ऋक्षां-
शाक्षरसम्भवम् । ऋक्षस्य नक्षत्रस्य येऽंशाः पादरूपा-
स्तेषां यान्यक्षराणि वक्ष्यमाणानि तैः सम्भवो यस्य तत् ।
तत्तदक्षरघटितमित्यर्थः । नामादिर्वर्णेन नक्षत्रसम्बन्धांशो
ज्ञेयः । चक्रन्यासमाह तिर्यगित्यादि । रुद्रसंख्या एकादश-
संख्याः । रेखास्तिर्यग्गूढं गताः पूर्वपश्चिमक्रमेणैकादश दक्षिणो-
त्तरक्रमेणाप्येकादश लिखेत् । ईशाणकोणमारभ्य पूर्वपंक्तौ
प्रथमकोष्ठपञ्चकेषु अवकहडिति वर्णपञ्चकं शुद्धमकारस्वरमाचयुक्तं
नियोजयेत् लिखेत् । एवमाग्नेयकोणाद्वारभ्य दक्षिणपश्चि-
मोत्तरपंक्तिषु कोष्ठपञ्चकेषु मटपरतेति लयभजखेति गशद-
चलेति वर्णपञ्चकं क्रमेण लिखेत् । अइउएओ इति पञ्चस्वर-
योगेन लिखितवर्णः पञ्चधातुः । अइउएओ वविवुवेवो इति
क्रमेणाधोऽधो लिखेदिति तात्पर्यार्थः । लिखितमध्ये कुपु-
भुदुस्थाने अन्यानि त्रीणि त्रीण्यक्षराणि कुर्यात्लिखेदित्यर्थः ।
ईशानकोणावस्थितस्तम्भे आर्द्रानक्षत्रे कुघडक इति वर्ण-
चतुष्कम् एवमग्निकोणे हस्तानक्षत्रे पुषणठेति वर्णचतुष्कम्

जैर्ऋतकोणस्तम्भे पूर्वाषाढानक्षत्रे भुधफटेति वर्णचतुष्कं
वायुकोणस्तम्भे उत्तरभाद्रपदनक्षत्रे हयभजेति वर्णचतुष्कम् ।
एवं प्रत्येकं वर्णचतुष्टयं मात्रादिचतुष्टये व्यवस्थापकस्वरवेदिभिः
स्तम्भचतुष्टयं ज्ञातव्यम् । धिष्ण्यानीत्यादि । न्यस्ताक्षरेष्वकार-
मारभ्य चतुर्भिश्चतुर्भिर्क्षरैः साभिजित्सहितानि कृत्तिकादीन्य-
ष्टाविंशतिनक्षत्राणि भवन्ति । तत्र प्रतिनक्षत्रं चत्वारश्चत्वारो-
ऽंशा द्वादशाधिकशतसङ्ख्या भवन्ति । एतेन अइउए कृत्तिका ।
ओववीवु रोहिणी । वेवोककि मृगशिराः । कुघडङ्क आर्द्रा ।
केकोहृहि पुनर्वसुः । हुहेहोड पुष्या । डिडुडेडो अश्लेषा । ममि-
सुमे मघा । मोटटिटु पूर्वफल्गुनी । टेटोपपि उत्तरफल्गुनी ।
पुषण्ठ हस्ता । पेपोववि चित्रा । व्यवेवोत स्वाती । तितुतेतो
विशाखा । ललिलुले अनुराधा । नोययिथु ज्येष्ठा । येयोभमि
मूला । भुधफट पूर्वाषाढा । भेभोजजि उत्तराषाढा । जुजेजोथ
अभिजित् । खिखुखेखो श्रवणा । गगिगेगो धनिष्ठा । शोशशिशु
शतभिषा । शेशोददि पूर्वभाद्रपदम् । हखभज उत्तरभाद्रप-
दम् । देदोचवि रेवती । चुचेचोल अश्विनी । लिलुललो
भरणी । इत्यष्टाविंशतिनक्षत्राणि ॥

प्रयोजनसुपदर्शयति यदृक्षांशक इत्यादि । क्रूरः सौम्यो
वा ग्रहः यस्मिन्नक्षत्रे स्थितस्तस्मात् पुनस्तित्थ्येकक्रमेण पुंसः
पुरुषस्य नामाद्यक्षरं वेधयेत् । यदौति योजनीयम् । वेध-
फलमाह सौम्यवेध इत्यादि । शुभवेधे शुभं पापवेधे त्वशुभ-
मिति । मिश्रैः शुभपापैर्वेधे मिश्रं शुभाशुभम् । वेधशून्येन
किमपीति । सर्वतोभद्रचक्रे ग्रहतो ग्रहवेधतो यत् फलमुक्तं
तदत्रापि । पेपोववोति चित्रानक्षत्रं तेन रामतोषणान्न-
श्चित्रानक्षत्रं तृतीयपादाश्रिततुलाराशिरेवमन्यनाम्नोऽपि
नक्षत्रं यम् । प्रश्ने ज्ञे तु प्रष्टारं दृष्ट्वा ॐ मनश्चिन्तितवस्तूनां प्रष्टु-

रास्येन भाषिणीम् । तां वर्णरूपिणीं वन्दे भारतीं भक्तवल्ललाम् ।
इत्यनेन सरस्वतीं नत्वा मनसा शतधा वाग्भवं स्वीयेष्टमन्त्रं
वा जप्त्वा किमर्थमत्रागतस्त्वं कथयेत्यादि पृच्छेत् । ततः प्रष्टा
प्रथमं यद्वदिष्यति तस्याद्यक्षरेण लग्ननवांशकौ ज्ञात्वा ग्रह-
वेधवशेन ग्रहदृष्टिवशेन च धातुमूलजोवादिकं वर्णाका-
रादिकं तच्छुभाशुभञ्च वाच्यमिति ॥

त्रयोदशोद्भूता रेखास्तिर्व्यथेखास्तथा दश । भवेयुः
कोष्ठकास्तत्र संख्यायाश्चोत्तरं शतम् । कवर्गं नवधालिख्य
कोष्ठके प्रथमेऽष्टमे । द्वितीये सप्तमे चाद्या नटाभ्यां
तस्य त्रिषष्ठके । यशौ वर्गौ चतुर्थे च तथा वर्गञ्च
पञ्चमे । नवहादशके ताद्यान् शेषे पाद्यान् द्विकोष्ठके ।
चतुरक्षरसंयोगे अश्विन्यादिक्रमेण च । ज्ञेया नवांशका
वर्णा मेषादौ राशिमण्डले । भौमं शुक्रं बुधं चन्द्रं
भानुं सौम्यं सितं कुजम् । गुरुं सौरिं शनिं जीवं विदध्यात्
कोष्ठकोपरि । कोष्ठकाक्षरतो ज्ञेयश्चन्द्रस्तत्कालसम्भवः ।
तदधीनं फलं सर्वं लाभालाभं जयाजयम् । इष्टनाद्या हता-
धिष्णोः षष्टिभागाप्तशेषकै । अश्विन्यादीन्दुभुक्तेन योगात्तत्-
कालचन्द्रमाः । क्रूरक्षेत्राक्षरे चन्द्रे न शुभं सर्वकर्मसु । शुभ-
क्षेत्रे शुभन्त्वेवं प्रस्तारे चन्द्रनिर्णयः । च तु ४ स्त्रि ३ मुनयः
७ सूर्याः १२ सप्त ७ नन्द ८ गुणे ३ षवः ५ । मासाः १२
शैलाः ७ इना १२ स्तुत्या २४ राशौनाञ्च ध्रुवा इमे ॥ गुणाः ३
शैला ७ युगाः ४ पञ्च सप्त पञ्च ५ तयो ३ युगाः ४ । नागा ८
वाणा ५ रसा ६ भूता ५ मासादेरंशका ध्रुवाः । अंशकेनांशकं
गुण्यं ध्रुवयुक्तकृतं पुनः । स्वगुणे गुणयेत् पश्चात् मूलाद्भाज-
येत् सुधीः । षष्टि ६० वर्णा ५ रविः १२ पक्षौ २ वज्रि ३ नेत्रं
२ रवि १२ स्तथा । चन्द्रभूसुतशुक्राणां गुरुक्षरविसौरिणाम् ।

नाडीफली यशौ वर्गा वर्गी दिनफलोदयः । कः पक्षेण च मासेन
टतपा त्वयनाव्यक्तैः । प्रश्नकाले विवाहे च घाते जन्मनि सङ्करे ।
शशाङ्कस्य फलं श्रेष्ठं सर्वशास्त्रे प्रकाशितम् ॥ इति प्रस्तारचक्रम् ॥

अस्यार्थः प्रक्रिया सङ्केतश्चोच्यते । त्रयोदश इत्यादि ।
एतेन ऊर्द्धाधःक्रमेण नव कोष्ठानि द्वादशस्थानेषु भवन्ति । तत्र
वर्गक्षेमविन्यासः । नवांशक्रमेण द्वादशसु नव नव पादिका
भवन्ति इति दर्शयन्नाह कवर्गमित्यादि । कवर्गप्रथमे मेघे
अष्टमे वृश्चिके ऊर्द्धाधःक्रमेण नवकोष्ठकेन नवधा नवप्रकारेण
क ख ग घ ङ क ख ग घ एवं विलिख्य तथैव द्वितीये वृषरूपे
सप्तमे तुलारूपे चाद्यान् चकारादीन् वर्गवर्णान् लिखेत् ।
त्रिषष्ठके मिथुनकन्यास्वरूपे टाद्यान् टकारादीन् वर्णान्
विलिख्य चतुर्थे कर्कटरूपे यशवर्गौ तथैवावर्गे अ इ उ ए ऐ ओ
औ अं अः स्वरूपं पञ्चमे सिंहस्वरूपे नवद्वादशे धनुर्मीनस्वरूपे
ताद्यान् तवर्गवर्णान् शेषे द्विकोष्ठके मकरकुम्भस्वरूपाद्यान्
पवर्गवर्णान् लिखेत् । चतुरक्षरेति । क ख ग घ एवं क्रमेण
मेलनादश्लिख्यादिसप्तविंशतिनक्षत्राणि भवन्ति । तत्र नव-
भिर्नवभिरक्षरेर्नवांशैः पादिकारूपैर्द्वादश राशयस्तदंशा व्यव-
स्थिता इति ॥ भौममिति ॥ विदध्यालिखेत् । तत्काल-
सम्भव एव नक्षत्रमाने सप्तविंशतिनक्षत्राणामन्यतमभोग-
भागस्थश्चन्द्रः कोष्ठाक्षरतत्तत्पादिकारूपनवांशस्थो ज्ञेयः ।
इष्टनाद्य इति ॥ इष्टदण्डाः सप्तविंशतिभिः पूरिताः पुनः
षष्ठ्या हरणेन लब्धमेकनक्षत्रं पञ्चदशाद्यन्तरपलावशेषे
नक्षत्रस्य प्रथमप्रथमपादिका तदुपरि त्रिंशांशदण्डाभ्यन्तरे
द्वितीयपादिका तदुपरि पञ्चचत्वारिंशत्पलाभ्यन्तरे तृतीय-
पादिका तदुपरि षष्ठ्यभ्यन्तरे चतुर्थपादिके तु तत्तदवशेषे तत्र
तत्र तात्कालिकश्चन्द्रः स्थाप्यः । एतेनैतदायातं षष्ठ्याप्तं यत्त-

इत्तनक्षत्रं यच्छेषं तद्भुज्यमानमिति तत्र चन्द्रभुक्तनक्षत्राङ्क-
योगेन यदि सप्तविंशत्यधिकं भवति तदा सप्तविंशतिमपास्य
तात्कालिकचन्द्रः स्थाप्य इति सत्युदयं गन्तव्यमिति ॥

तात्कालिकीकरणप्रकारमुपदर्शयति । इष्टनाडी नक्षत्रभु-
क्तदण्डा धिण्यैः सप्तविंशत्याहताः कर्त्तव्याः । तत्र षष्टिभागाप्त-
शेषिके अधिकरणे षष्ट्या हरणादग्रे भुक्तनक्षत्रसंख्याङ्के शेषे च
भुज्यमाणनक्षत्रशरीरे उपर्यधःक्रमेण ऋते प्रकृतक्रमेणाश्वी-
त्यादौन्दुभुक्तेन नक्षत्राङ्केन युक्तो यदि सप्तविंशतिमपास्याव-
शिष्टं भुक्तनक्षत्रं शेषञ्च तदप्रमाणनक्षत्रभागश्चन्द्रभुज्यमान एवं
तत्कालचन्द्रो भवति । नक्षत्रभोगसमयस्तु त्रयोदशपलाधिकद-
ण्डद्वयाधिक इत्यर्थः । अपवादस्तु पले षष्टिन्यूनाधिकनक्षत्रमाने
सति भवति । तत्फलान्युपदर्शयति क्रूरक्षेत्राक्षरमिति ॥ चन्द्रे
क्रूरक्षेत्राक्षरे पापग्रहराश्चक्षरस्थे सर्वकर्मसु न शुभम् । शुभ-
क्षेत्रे शुभग्रहराशिनक्षत्रे चन्द्रे स्थिते सति शुभं कालमिति ।
प्रस्तारे चक्रे चन्द्रनिर्णयः कथितः । कथितफलं कदा स्यादि-
त्यादिशङ्कायामाह ॥ नाडौफलाविति ॥ यशौ यवर्गश्वर्गौ
नाडौफलौ दिनाभ्यन्तरफलदौ तत्र चन्द्रेणैकपादिकालङ्घने
त्रयस्त्रिंशत्पलानि तदुपरि कार्यसिद्धिरेवं प्रतिपादमवधिक-
पादलङ्घने तत्पादपवमानं वर्तुलीकृत्य दण्डरूपः समयो
वक्तव्यः । स च राशिशेषे पलत्रयन्यूनाः पञ्च दण्डाः परं
भवन्ति । अवर्गौ दिनफलोदय एकदिनेन कथितफलदाता
कः कवर्गः पक्षे । चवर्गो मासे । टः टवर्ग ऋतून् प्रति । तपौ
तवर्गपवर्गौ अयनाब्दयोः । षण्मासे तवर्गः अब्दे पवर्गः फलदात-
रोति । प्रश्नकाल इति । एतेषु कार्येषु शशाङ्कस्यानेन प्रकारेण
सर्वशास्त्रेषु गोपितेषु न प्रकटीकृतप्रश्नकाले विवाहे कृत्यादी
तत्कालचन्द्रात् शुभाशुभं चिन्त्यम् ॥ इति प्रस्तारचक्रम् ॥

जयति निखिलमान्यः प्राणकृष्णः शरण्यः सुकृतवित्त-
कोर्त्युत्सर्गगण्यो वरेण्यः । लिपिकृतनवकीर्त्याख्ये एकोऽति-
पुण्यो निरसितगुणिदैव्यो गौडभूमध्यधन्यः ॥ श्रीरामतोषण-
लिपिप्रतिरुद्धशाखं व्याकोषपुष्पसुरभीकृतदिग्विभागम् । सख्यै-
कलभ्यमतिकर्मठगम्यभावं श्रीप्राणकृष्णहृदये मुदमातनोतु ॥

इति श्रीप्राणकृष्णविश्वासानुमतायां श्रीरामतोषणविद्या-
लङ्कारभट्टाचार्यविरचितायां श्रीप्राणतोषिण्यां पञ्च-
पुष्पस्तवकान्वितं षष्ठं ज्ञानकाण्डं सप्तमम् ॥

महाकालोक्तासप्रथितरतियुद्धप्रणयिनी गलङ्गेणीवन्धा गगन-
वसना स्त्रिन्नवदना । नवाश्लोदस्निग्धा शवविहितरक्तेक्षणयुता
हृदि ध्वान्तागारे तडिदिव सदा सा स्फुरतु मे ॥ निर्गुणाख्यस्य
काण्डस्य सप्तमस्य विधीयते । निर्घण्टः प्रथमस्तत्र पशुभावादि-
निर्णयः । भावत्रयफलं पूर्वाह्लादी भावत्रयं ततः । पशुभावे
सिद्धिवीजं दिव्यवीरप्रशंसनम् । पश्चादिलक्षणं तेषां कृत्या-
कृत्यविनिर्णयः । भावत्रयस्योत्तमत्वादिनिर्णीतिस्ततः परम् ।
आरम्भादिप्रभेदेन भावत्रयनिरूपणम् । भावनिरूपणं ब्रह्म-
चर्यनिरूपणं ततः । ताम्रस्य धारणफलमङ्गभेदादनेकधा ।
आश्रमत्रयमात्रन्तु कलौ ज्ञेयं मनीषिभिः । गृहस्थकृत्यमातिथ्यं
पित्रार्चा दारलक्षणम् । परस्त्रीवर्जनं पुत्रकन्यादिलालनादि च ।
कृत्याकृत्ये गृहस्थस्यान्यद्विज्ञेयं यथास्थलम् । भिक्षुकाश्रम-
कृत्यादि कलौ तत्प्रतिषेधनम् । दशावधूतनामानि ततोऽवधूत-
निर्णयः । तत्कृत्यं लक्षणं तेषां प्रशंसा च ततः परम् । ओं
तत्सदिति निर्देशफलं तस्य प्रशंसनम् । आचारभेदकथनमिति
च्छेदोऽग्रिमः स्मृतः । पूर्णाभिषेकस्तस्यापि प्रयोगस्तदनन्तरम् ।
अभिषेकान्तरं वीरप्रशंसा वीरकृत्यकम् । वैधेतरसुरापाण-
निषिद्धं शास्त्रसम्मतम् । द्रव्याभावे चानुकल्पविधानं तदन-

न्तरम् । असंस्कृतसुरापाणनिन्दा विप्राधिकारिता । तत्र
 तत्फलसंयुक्ता शापमुक्तिफलं ततः । रसासक्तौ जपफलं
 मानसो भाव एव च । धर्मः पञ्चमकारस्य निर्णयस्तदन-
 न्तरम् । फलं पञ्चमकाराणां तैर्विनार्चननिन्दनम् । वैष्ण-
 वानां पञ्चतत्त्वं पञ्चतत्त्वस्य शोधनम् । स्वयम्भूकुसु-
 मादीनां निरूपणमतः परम् । तदुत्पत्तिप्रकारश्च तेषां
 शोधनमेव च । कारणानां मन्त्रादिश्च पात्राणां स्थापन-
 क्रमः । तर्पणस्य क्रमश्चैव तत्त्वमुद्रानिरूपणम् । तर्पण-
 स्थाननिर्णीतिर्भावेभेदक्रमेण तु । तत्त्वशुद्धिरिति च्छेदद्विती-
 यस्य समापनम् ॥ वीरपूजा तु तन्त्रादौ द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ।
 ऋष्यादिन्यसनं ध्यानं पौठपूजादिरेव च । ततो महाकालपूजा
 परनिन्दा ततः परम् । जपाद्धेन फलप्राप्तिर्वीजञ्च सिद्धि-
 कारणम् । ब्राह्मणादिविभेदेन पुरश्चर्याविधिस्ततः । माला-
 सिद्धिक्रमादिश्च ततः कूलवटीक्रमः । अन्यान्यपि साधनानि
 प्रयोगतयं ततः परम् । सिद्धिर्न जायते चेत्तत्रोपायान्तरमेव
 च । दक्षिणादिसाधनञ्च द्वितीयायजनक्रमः । महामन्त्र-
 प्रशंसा च मन्त्रशुद्ध्यादिरेव च । द्वितीयानामशतकं वीरहो-
 मस्ततः परम् । द्रव्यदानफलञ्चैव सुराभेदफलं ततः । महा-
 शङ्खप्रकरणमशोकादिनतिस्ततः । पर्वतादौ करणीयं नति-
 मन्त्रस्ततः परम् । श्मशानादिक्रियानिन्दा तेषामकरणे ततः ।
 रसास्त्रादश्च वीराणां तत्फलं तदनन्तरम् । षट्कर्मसाधनञ्चैव
 वीराणां तदनन्तरम् । तृतीयपरिच्छेदस्य समापनमिदं
 स्मृतम् । कुलाचारः कुलीनस्य लक्षणं तदनन्तरम् । कुला-
 चारो द्विधा कौलकर्तव्यं तदनन्तरम् । कौलनिन्दानिषेधश्च
 गृहावधूतनिर्णयः । रात्रिकृत्यं कुलाचारः कौलप्रशंसनं
 ततः । अन्तर्यामप्रकरणं ज्ञानहोमविधिस्ततः । श्रोत्रक्रस्य

क्रमो लोभपाननिन्दा ततः परम् । अज्ञानि पाननिन्दादिपूजके
लक्षणादि च । आवश्यकं पञ्चशुद्धिर्मण्डलस्य च लक्षणम् ।
तर्पणे यन्निषिद्धञ्च विहितञ्च ततः परम् । द्रव्यशुद्ध्यादि च
ततो गुरुपत्तिक्रमस्ततः । कुलाचारक्रमश्चैव कुपात्रादिनिषेध-
नम् । अस्नातादेः कुलद्रव्यनिषेधस्तदनन्तरम् । उच्छिष्टस्पर्श-
नस्यैव प्रतिषेधस्ततः परम् । द्रव्यभाण्डोद्धारदोषश्चक्रविघ्नः
सशान्तिकः । प्रौढोल्लासे ज्ञानिमत्तज्ञानचिद्भान्यतः परम् ।
चक्रे च परिहासादिवर्जनं पात्रगोपनम् । पशुसङ्केन कृत्यं
यद् वाग्वादादिविवर्जनम् । पशुशास्त्रवर्जनञ्चाश्वह्वानस्य
निन्दनम् । अक्रामो गुरुशक्त्यादावर्जनं देवताधिया । बला-
त्कारनिषेधश्चाममांसाद्यभिवन्दनम् । कुलशास्त्रादिनिन्दायाः
प्रतिषेधस्ततः परम् । आनन्दरूपकथनमतिपानादिनिन्दनम् ।
मुखार्थपानदोषश्चानुकल्पस्तदनन्तरम् । धूसूरादिनिषेधश्च सर्वा-
नुकल्प एव च । पारम्यर्थं विना पञ्चतत्त्वसेवनगर्हणम् ।
महापापं पशूनान्तु पञ्चतत्त्वनिषेवणे । चक्रानुष्ठाननिर्णीति-
स्ततश्च पात्रवन्दनम् । पात्रमानञ्च चक्रेशशक्त्युच्छिष्टविचा-
रणम् । शान्तिस्तोत्रं ततश्चक्रसमाप्तिक्रमनिर्णयः । आनन्द-
स्तोत्रकथनमानन्दोल्लासनिर्णयः । इति च्छेदचतुर्थस्य समाप्ति-
रभिधीयते ॥ चक्रपञ्चककर्तव्यानुष्ठानञ्चक्रनाम च । चक्राधि-
कारी श्रीराजचक्रशक्त्यादिनिर्णयः । महाचक्रशक्तिसुधा-
शुद्ध्यादिनिर्णयस्ततः । देवचक्रस्य शक्त्यादिनिर्णयस्तदनन्त-
रम् । वीरचक्रे तथा शक्त्यादिनिर्णीतिस्ततः परम् । माचा-
दिनिर्णयः सङ्केताञ्जवीरविवर्जनम् । पशुचक्रस्य शक्त्यादि-
निर्णीतिस्तदनन्तरम् । कुलशक्तिः स्वीयशक्तिपूजनं प्रथमं
ततः । परशक्त्यर्चनं सिद्धमन्त्रिणामेव केवलम् । शक्ति-
साधनकर्माणि शक्त्याङ्गपीठनिर्णयः । तत्र तत्र जपफलं

नानाशक्तिफलं ततः । शक्तेः पूजा च शीर्षादी जपनि-
र्णय एव च । लिङ्गमन्त्रजपादिश्च होमः पूर्णाहुतिस्ततः ।
चक्रे च कामनासिद्धिकथनं तदनन्तरम् । लतासाधन-
मन्यच्च शय्याशुद्धिस्ततः परम् । नवशक्तिविनिर्देशः
कापालिक्यादिलक्षणम् । वेश्याविशेषनिर्देशो विपरीतजपे
फलम् । वयःक्रमेण सा शक्तिः काव्यादिनामधारिणी ।
श्यामादिविद्यासिद्धिश्च शक्तिविशेषयोगतः । तत्प्रयो-
गश्चैव योनिर्धानं स्तोत्रं ततः परम् । कवचं योनियोगे
च जपस्य फलनिर्णयः । नवपुष्पविनिर्णीतिः शक्तिप्राशस्त्य-
निश्चयः । शक्त्यर्पितफलञ्चैव शक्त्यङ्गे देवतास्थितिः । अन्य-
ज्ञतासाधनञ्चाच्चान्येन्यदारसङ्गमः । स्त्रीदेहे सर्वतौर्यानि
योनिपूजाविधिस्ततः । योनिपूजाविधा योनिस्मरणादिफलं
ततः । आवाहनादिरहितं योनिपूजनमेव च । शक्तिपादो-
दकादेश पानादिजफलं ततः । भगतत्त्वकुन्तलयोर्माहात्म्यं
तदनन्तरम् । बन्धाच्चेति परिच्छेदपञ्चमस्य समापनम् । ज्ञेय-
मन्यद् यथास्थानं धीमद्भिर्ग्रन्थमध्यतः ॥ भावसारमतियत्न-
चिन्तनै रामतोषणविनिर्मितं बुध ! । पश्य काण्डमिदमेव
निर्गुणं मोक्षमिच्छसि भवार्णवादयदि ॥

अथ भावनिर्णयः ॥ रुद्रजामले उत्तरखण्डे षष्ठपटले ॥
पशुभावस्थितां नाथ ! देवतां शृणु विस्तरात् । दुर्गापूजां विष्णु-
पूजां शिवपूजाञ्च नित्यशः । अवश्यं हि यः करोति स पशुरु-
त्तमः स्मृतः । केवलं शिवपूजाञ्च यः करोति च साधकः ।
पशूनां मध्यतः श्रीमान् शिवया सह चोत्तमः । केवलं
वैष्णवो धीरः पशूनां मध्यमः स्मृतः । भूतानां देवतानाञ्च
सेवां कुर्वन्ति सर्वदा । पशूनां मध्यमाः प्रोक्ता नरकस्था न
संशयः । त्वत्सेवां मम सेवाञ्च ब्रह्मविष्णुादिसेवनम् ।

कृतान्यसर्वभूतानां नायिकानां महाप्रभो ! । यच्छिषीनां भूति-
नीनां ततः सेवां शुभप्रदाम् । यः पशुब्रह्मक्षणादिसेवाञ्च
कुरुते सदा । तथा श्रीतारकब्रह्मसेवां ये वा नरोत्तमाः ।
तेषामसाध्या भूतादिदेवता सर्वकामहा । वर्जयेत्
पशुमार्गेण विष्णुपूजापरो जनः । द्वितीयपटले ॥ नित्यं
श्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पिष्टतर्पणम् । देवतादर्शनं पीठदर्शनं
तीर्थदर्शनम् । गुरोराज्ञापालनञ्च देवतानित्यपूजनम् । पशु-
भावस्थितो मर्त्यो महासिद्धिं लभेद्भुवम् ॥ षष्ठपटले ॥ पुन-
र्भावं पशोरेव शृणु सादरपूर्वकम् । अकस्मात् सिद्धि-
माप्नोति पशुर्नारायणोपमः । वैकुण्ठनगरे याति चतुर्भुज-
कलेवरः । शङ्खचक्रगदापद्महस्तो गरुडवाहनः । महाधर्मस्व-
रूपोऽसौ महाविद्याप्रसादतः । पशुभावं महाभावं भावानां
सिद्धिदं परम् । आदौ भावं पशोः कृत्वा पश्चादावश्यकं चरेत् ।
वीरभावं महाभावं सर्वभावोत्तमोत्तमम् । तत्पश्चादति-
सौन्दर्यं दिव्यभावं महाफलम् ॥ इति भावाः ॥

भावफलमपि तत्रैव ॥ फलाकाङ्क्षी मोक्षगामी सर्वभूत-
हिते रतः । विद्याकाङ्क्षी धनाकाङ्क्षी रत्नाकाङ्क्षी च यो नरः ।
कुर्याद्भावत्रयं दिव्यं भावसाधनमुत्तमम् । भावेन लभते राज्यं
धनं रत्नं महाफलम् । वाराणस्यां कोटिलिङ्गपूजनेन च यत्
फलम् । तत् फलं लभते मर्त्यः क्षणादेव न संशयः ॥ इति
भावफलम् ॥

भावविशेषफलमपि तत्रैव ॥ आदौ दशदण्डेन पशु-
भावमथापि वा । मध्याह्ने दशदण्डेन वीरभावमुदाहृतम् ।
सायाह्ने दशदण्डे तु दिव्यभावं शुभप्रदम् । अथवा पशुभावेन
यजेदिष्टादिदेवताम् । जन्मावधि जपेन्मन्त्रो महासिद्धिमवा-
प्नुयात् । पीठब्राह्मणमात्रेण महाषोढाश्रमेण च । पशुभावस्थितो

मन्त्री सिद्धिमैकामवाप्नुयात् । यदि पूर्वपरस्थाञ्च महाकौलि-
कदेवताम् । कुलमार्गस्थितो मन्त्री सिद्धिमाप्नोति निश्चितम् ।
यदि विद्याः प्रसीदन्ति वीरभावं तदा भवेत् । वीरभाव-
प्रसादेन दिव्यभावमवाप्नुयात् । दिव्यभावं वीरभावं ये गृह्णन्ति
नरोत्तमाः । वाक्काकल्पद्रुमलतापतयस्ते न संशयः । आश्रमी
ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्रविशारदः । भूत्वा भ्रामन्महापीठं
साल्वाभ्युक्तो भवेद् यतिः । किमन्येन पलेनापि यदि भावा-
दिकं भवेत् । भावग्रहणमात्रेण मम ज्ञानी भवेन्नरः । वाक्य-
सिद्धिर्भवेत् क्षिप्रं वाणी हृदयगामिनी । नारायणं प्रविहाय
लक्ष्मीस्तिष्ठति मन्दिरे । मम पूर्णोत्तमा दृष्टिस्तस्य देहे न
संशयः । अवश्यं सिद्धिमाप्नोति सत्यं सत्यं सदाशिव ! ॥ तथा ।
भावस्तु त्रिविधो देव ! दिव्यवीरपशुकमात् । गुरवश्च त्रिधा
चात्र तथैव मन्त्रदेवता । दिव्यभावो महादेव ! श्रेयान् स सर्व-
सिद्धिदः । द्वितीयो मध्यमः प्रोक्तस्तृतीयः सर्वनिन्दितः ।
बहुजापात्तथा होमात् क्रायक्लेशादिविस्तारैः । न भावेन
महादेव ! मन्त्रतन्त्राः फलप्रदाः ॥ तथा । प्रथमं दिव्यभावन्तु
कौलिके शृणु यत्नतः । सर्वदेवार्चितां विद्यां तेजःपुञ्जप्रपूरि-
ताम् । तेजोमयीं जगत् सर्वां विभाव्य मूर्त्तिकल्पनाम् ॥

एकादशपटले ॥ त्रिविधं दिव्यभावञ्च वेदागमविवेकजम् ।
वेदार्थमधमं प्रोक्तं मध्यमञ्चागमोद्भवम् । उत्तमं सफलं प्रोक्तं
विवेकोल्लाससम्भवम् । तत्रैव त्रिविधं भावं दिव्यवीरपशुकमम् ।
दिव्यवीरैकजं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् । उत्तमं तद्विजानीया-
दानन्दरससागरम् । मध्यमञ्चागमोल्लासं वीरभावं क्रियान्वि-
तम् । वेदोद्भवं फलार्थञ्च पशुभावं हि चाधमम् । सर्वहिन्दा-
समाख्याप्तं भावानामधमं पशोः । उत्तमे उत्तमं ज्ञानं भाव-
सिद्धिप्रदं नृणाम् । मध्यमे मधुमतराश्च मत्कुलागमसम्भवम् ।

अकालमृत्युहरणं भावानामतिदुर्लभम् । वीरभावं विना
नाथ ! न सिध्यति कदाचन । अधमे अधमं व्याख्यानिन्दार्थ-
वाचकं सदा । यदा निन्दां न करोति तदा तत्फलमाप्नु-
यात् । पशुभावेऽपि सिद्धिः स्याद्यदि वेदं सदाभ्यसेत् ।
वेदार्थचिन्तनं नित्यं वेदपाठश्च निप्रियम् । सर्वनिन्दाविरहितं
हिंसालस्यविदर्जितम् । लोभमोहकामक्रोधमदमात्सर्वव-
र्जितम् । यदि भावस्थितो मन्त्री पशुभावोऽपि सिद्धिमाप्नु-
यात् । पशुभावं महाभावं ये जानन्ति महीतले । किमसाध्यं महा-
देव ! अमाभ्यासेन यान्ति तत् । अमाधीनं जगत् सर्वं अमाधी-
नाश्च देवताः । अमाधीनं जगत् सर्वं अमाधीनं परं तपः ।
अमाधीनं कुलाचारं पशुभावोपलक्षणम् । वेदार्थज्ञानमात्रेण
पशुभावं कुलप्रियम् । स्मृत्यागमपुराणाणि वेदार्थविहितानि च ।

भावाश्चमप्रकारमाह तत्रैव ॥ अभ्यस्य सर्वशास्त्राणि
तत्त्वं ज्ञात्वा तु बुद्धिमान् । पल्लवान् धान्यार्थी सर्वशा-
स्त्राणि सन्त्यजेत् । ज्ञानी भूत्वा भावसारमाश्रयेत् साधको-
त्तमः । वेदे वेदक्रिया कार्या मदुक्तवचनादयतः । पशूनां
अमदाहानामिति लक्षणमौरितम् । आगमार्थक्रिया कार्या
सदा मत्कुलचेष्टया । वीराणामुद्धतानाञ्च मच्छरीरानु-
गामिनाम् । मच्छ्रेष्ठाकुलतत्त्वानामिति लक्षणमौरितम् ।
विवेकसूत्रसंज्ञानां क्रियासु दृढचेतसाम् । सर्वत्र समभावानां
भावमात्रं हि साधनम् । सर्वत्र मत्पदाम्भोजसम्भवं हि
चराचरम् । दृष्ट्वा यत् कुरुते कर्म चातुलं फलसिद्धिदम् । अख-
ण्डज्ञानचित्तानामिति भावं विवेकिनाम् । निर्मलानन्ददिव्या-
नामिति लक्षणमौरितम् । दिव्यन्तु त्रिविधं भावं यो जानाति
महीतले । न नश्यति महावीरः कदाचित् साधकोत्तमः ।
क्रमेण दिव्यभावादीनाञ्चित्य साधयेद् यदि । दिव्यभावे महा-

सिद्धिं प्राप्नोति साधकोत्तमः । दिव्यभावं विना नाथ ! मत्-
 पदाश्वोजदर्शनम् । य इच्छति महादेव ! समूढः साधकः
 कथम् । पशुभावं हि प्रथमे द्वितीये वीरभावकम् । तृतीये
 दिव्यभावश्च इति भावत्रयं क्रमात् । तत्रकारं शृणु शिव !
 त्रैलोक्यपरिपालन ! । भावत्रयविशेषज्ञः षडाधारस्य भेदिनः ।
 पञ्चतत्त्वार्थभावज्ञो दिव्याचाररतः सदा । स एव भवति
 श्रीमान् साध्यानामादिपारगः । शिववद्विहरेल्लोके अष्टैश्वर्य-
 समन्वितः । सर्वत्र शुचिभावेन आनन्दघनसाधनम् । जापनं
 धारणं वापि चित्तमायाति यत्नतः । एकान्ते निर्जने देशे सिद्धो
 भवति निश्चितम् । तत्कालं वीजभावार्थं भावमात्रं हि साध-
 नम् । भावेन लभ्यते सिद्धिर्वीरादश्च कुत्रचित् । रात्रौ
 सभ्यादि सम्पूज्य ताम्बूलपूरिताननः । विजयानन्दसम्पूर्णं
 जीवात्मपरमात्मनोः । ऐक्यं चित्ते समादाय आनन्दोद्रेकस-
 म्रमः । यो जपेत् सकलां रात्रिं गतभीर्निर्जने गृहे । स भवेत्
 कालिकादासो दिव्यानामुत्तमोत्तमः । एवं भावत्रयं ज्ञात्वा यः
 कर्म साधयेत्ततः । अष्टैश्वर्ययुतो भूत्वा सर्वज्ञो भवति ध्रुवम् ॥
 कुञ्जिकातन्त्रे सप्तमपटले च । भावश्च त्रिविधो देवि !
 दिव्यवीरपशुक्रमात् । विश्वञ्च देवतारूपं भावयेत् सुरसुन्दरि ! ।
 स्त्रीमयञ्च जगत् सर्वं पुरुषं शिवरूपिणम् । अभेदे चिन्तयेद्
 यस्तु स एव देवतात्मकः । देवतात्मको देवतास्वभाव इत्यर्थः ।
 सुर्वत्राभेदचिन्तनेन शिवशक्तिमयत्वमखिलस्येत्यायातश्चेत्तदा
 स्नानादिकं न कर्तव्यमिति शङ्कानिरासायोक्तं तत्रैव यथा ।
 नित्यस्नानं नित्यदानं त्रिसन्ध्यञ्च जपार्चनम् निर्मलं वसनं
 देवि ! परिधानं समाचरेत् । वेदशास्त्रे दृढज्ञानं गुरौ देवि
 तथैव च । मन्त्रे चैव दृढज्ञानं पिण्डदेवार्चनं तथा । बलिवस्यं
 तथा आह्वं नित्यकार्यं श्रुचिस्मृते ! । शत्रुं मित्रसमं देवि !

वित्तयेत् महेश्वरि ।। अन्नञ्चैव महेशानि । सर्वेषां परिवर्ज-
येत् । गुरोरन्नं महेशानि ! भोक्तव्यं सर्वसिद्धये । कदर्थञ्च
महेशानि ! निष्ठुरं परिवर्जयेत् । देवतानिन्दकं दृष्ट्वा नाला-
पञ्च समाचरेत् । सत्यञ्च कथयेद्देवि ! न मिथ्या च कदाचन ।
केवलं दिव्यभावेन पूजयेत् परमेश्वरीम् । गुरोराराधनं देवि !
प्रत्यहं चिन्तयेत् सुधीः । सर्वञ्च देवतारूपं परमेष्ठिनरूपकम् ।
एकाग्रामे स्थितो नित्यं त्रिसन्ध्यां पूजयेद्गुरुम् । गुरुतुल्यं
महेशानि । नमस्कुर्याद्वरानने ।। स्त्रीणां पादतलं दृष्ट्वा गुरु-
वद्भावयेत् सदा । श्रीखण्डपङ्कं रुधिरं भूषितं सुमनोहरम् ।
शरीरं कारयेद्देवि ! गन्धर्वदेवमुत्तमम् । त्रिपुण्ड्रं भस्मना
वापि रक्तचन्दनकेन वा । रुद्राक्षभूषणं देवि ! सर्वाङ्गे च
महेश्वरि ।। केवलं भैरवो भूत्वा यजेद्देवीं सनातनीम् । प्रत्यहञ्च
जलिं दद्याद् देवताभावसिद्धये । सप्तयाञ्च गृहीत्वा तु पूजादौ
च महेश्वरि ।। निशीथे पूजनञ्चैव कर्त्तव्यञ्च महेश्वरि ।। कुलवृक्षं
तथा दृष्ट्वा कर्त्तव्यञ्च वरानने । प्रणामं वन्दनञ्चैव प्रत्यहञ्च
महेश्वरि ।। रात्रौ चैव यजेद्देवीं न दिवापि कदाचन । रात्रौ
ताम्रमूलपूरास्यो जपेन्मन्त्रं महेश्वरि ।। सर्वञ्चैव महादेवि !
परदेव्यै समर्पयेत् ॥ पशुभावकर्त्तव्याकर्त्तव्यगर्भतद्भावनिन्दामाह
तत्रैव ॥ पशुभावरता ये च केवलं पशुरूपिणः । रात्रौ यन्त्रञ्च
मन्त्रञ्च न स्पृशेन्न जपेत् क्वचित् । संशयो बलिदाने च तन्त्रे
च संशयः सदा । मन्त्रे चाक्षरबुद्धिश्च अविश्वासी गुरौ सदा ।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिर्भेदको दैवते पुनः । निरामिषेण देवेशि !
देवतायाः प्रपूजनम् । अज्ञानेन सदा स्नानं प्रत्यहं देवताड-
नम् । सर्वेषाञ्चैव निन्दान्तु यः कुर्याच्च महेश्वरि ।। स एव
पशुभावेन अधमः परिकीर्तितः ॥ नित्यातन्त्रे प्रथमपटलेऽपि ॥
रात्रौ नैव यजेद्देवीं सन्ध्यायां वापराह्णके । ऋतुकालं विना

देवि ! रमणं परिवर्जयेत् । मांसादिकं महेशानि । त्यजेत्
पञ्चसु पर्वसु । यदन्यद्देविहितं कुर्यान्नियमतत्परः ॥ इति
पशुभावनिन्दा ॥

दिव्यवीरयोरुत्तमत्वमपि तत्रैव ॥ उत्तमो दिव्यभावश्च
वीरभावश्च मध्यमः । अधमः पशुभावश्च देवि ! सत्यं न संशयः ।
पशुभावे स्त्रिता मन्त्राः केवलं वर्णरूपिणः । कर्त्तव्यञ्च महेशानि ।
देवताभावबोधनम् । तस्मात् खलु प्रयत्नेन वीर-
भावेन साधयेत् । दृष्ट्वा कुलस्त्रियं देवि ! कुलवृत्तं विशेषतः ।
कुलगीहं तथा देवि ! नमस्कुर्याद्वरानने ! । कुलस्त्रियं महेशानि ।
तन्त्रमन्त्रविशारदाम् । दूतौ यागरताञ्चैव वेश्यां वा
पुंश्चलीं तथा । वृद्धां वा युवतीं वापि नमस्कुर्याद्वरानने ! ॥

पिच्छिलातन्त्रे दशमपटले । दिव्यवीरौ महाभावोत्तमौ मत्तौ ।
पशुभावकः । वैष्णवः पशुभावेन पूजयेत् परमेश्वरम् । शक्तिमन्त्रे
वरारोहे ! पशुभावो भयानकः । दिव्यैर्वीरैर्महेशानि । जायते
सद्भिरुत्तमा । दिव्ये वीरे न भेदोऽस्ति भेदो वीरौ महोद्वतः ।
दिव्यवीरौ प्रवक्ष्यामि सर्वभावोत्तमौ मत्तौ । विना शक्तिं न
पूजास्ति मत्तप्रमांसं विना प्रिये ! । मुद्राञ्च मैथुनञ्चापि विना
नैव प्रपूजयेत् । स्त्रीभगं पूजनाधारः स्वर्णरूप्यात्मकः कुशः ।
अभावे सर्वद्रव्याणामनुकल्पः कलौ युगे । अथवा परमेशानि !
मानसं सर्वमाचरेत् । स्नानन्तु मानसं प्रोक्तं वैदिको मानसः
सदा । यत्र भुक्त्वा महापूजा मानसं भोजनन्तु तत् । स्वकीयां
परकीयां वा मानसन्तु रमेत् स्त्रियम् । मानसं मद्यमांसादि
सोऽकुर्यात् साधकोत्तमः । स्वयम्भूकुसुमं तद्वन्दनसं समुपाचरेत् ।
मानसं भगरोमादि मानसं भगपूजनम् । सर्वन्तु मानसं कुर्यात्-
त्तेन सिध्यति साधकः । न कलौ प्रकृताचारः संशयात्मनि नैव
सः । मानसेनैव भावेन सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥ निगमकल्पद्रुमे

द्वितीयपटले ॥ पशूनाञ्चैव वीराणां दिव्यानां परमेश्वर ! ।
 आरम्भश्च समाप्तिश्च तेषाञ्चैव पृथक् पृथक् । पशुभावसमा-
 प्तिश्च वीरभावावरञ्चकः । दिव्यावरञ्चको वीरभावनाशक
 एव च । यथा बाल्यं यौवनञ्च वृद्धभावः क्रमात् प्रियम् । यथा
 पुष्पं फलञ्चैव बीजञ्चैव यथाक्रमम् । यथा दुग्धं नवनीतं घृत-
 ञ्चेति महेश्वर ! । यथा सङ्कल्पकार्यञ्च दक्षिणा चेति भैरव ! ।
 तथा भावत्रयं ज्ञेयमारम्भारम्भजन्मकम् । अज्ञानप्रभवं सर्वं जगत्
 स्थावरजङ्गमम् । अज्ञानरज्जुभिर्वद्धः सृजामीह पुनः पुनः ।
 अज्ञानञ्च क्रियामूलं यावत्तत्त्वं न विन्दति । तत्त्वे समुद्भूते
 किञ्चित् क्रियायां नास्ति वासना । वासनारहितो यस्तु ह्यभि-
 प्रेक्षः प्रपूर्वकः । तस्यापि कारणं कार्यं शृणु महात्म्यसम्भवम् ।
 अतएव महेशानि ! वीराणां कारणं पशुः । दिव्यानां वीर-
 भावश्च तस्मात् किञ्चिन्न विद्यते । महाकथं त्यजतः कोऽपि
 यदि शुद्धिं न चाचरेत् । कार्यं न विद्यते तस्य यथेष्टकुल-
 भागिनः ॥ अतएव वामकेश्वरतन्त्रे एकपञ्चाशत्पटले ॥ जन्म-
 मात्रं पशुभावं वर्षषोडशकावधि । ततश्च वीरभावस्तु
 यावत् पञ्चाशतो भवेत् । द्वितीयांशे वीरभावस्तृतीयो दिव्य-
 भावकः । एवं भावत्रयेणैव भावसैक्यं भवेत् प्रिये ! । ऐक्य-
 ज्ञानात् कुलाचारो येन देवमयो भवेत् । भावो हि मानसो
 धर्मो मनसैव सदाभ्यसेत् । आश्रमिणो भावग्रहणस्य प्रागु-
 क्तत्वेनाश्रमज्ञानाकाङ्क्षायामाश्रमा निरूप्यन्ते । तत्रापि ब्रह्म-
 चर्यस्य प्रथमोपस्थितत्वात् तदेवादी निरूप्यते ॥

निर्वाणतन्त्रे चतुर्दशपटले । यथा । ब्रह्मार्चनं प्रदक्ष्यामि शृणु
 देवि ! समाहिता । यस्याचरणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।
 गैरिकं वसनं कुर्याद् देवताध्यानतत्परः । फलमूलाहाररतो दुग्धं
 गन्धं समाहरेत् । शाल्युद्भवं न गृह्णीयात् शूद्राणीतं तथा

जलम् । ऋतुकालं विना नैव स्वकान्तागमनं चरेत् । गृह-
स्थोऽपि महेशानि । ब्रह्मचारी सदा गुरुः । उदासीनः कदा-
चिद्गै गुरुकर्माधिपो भवेत् । तस्य शिष्यस्य कल्याणं कदा-
चिन्नास्ति चण्डिके । न खलोमादिकं देवि ! न त्याज्यं ब्रह्म-
चारिणा । सदैव तु सदा भावं सदैव ध्यानतत्परः । त्रिशूलं
धारयेच्चैकं त्रिशिखां वापि धारयेत् । ताम्रयुक्तञ्च रुद्राक्षं
कर्णयुग्मे निवेशयेत् ॥

ताम्रधारणस्य फलमुक्तम् योगसारे द्वितीयपरिच्छेदे ॥
बाहो च धारणात्ताम्रं ब्रह्महत्यां व्यपोहति । हस्तयो-
र्धारणादेव सर्वतीर्थफलं लभेत् । कर्णयोर्धारणात्ताम्रं
कोटितीर्थफलं लभेत् । कण्ठे च धारणात्ताम्रं योगी मोक्ष-
मवाप्नुयात् ॥ ताम्रमिति षष्ठ्यर्थे द्वितीया ॥

ब्रह्मचर्यफलमुक्तं निर्वाणतन्त्रे चतुर्दशपटले ॥ यद्देशे विद्यते
देवि ! ब्रह्मचारी तपोधनः । तद्देशे च स्थिरा लक्ष्मीर्जायते
नात्र संशयः ॥ वस्तुतस्तु कौलस्य ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति ॥
तदुक्तं महानिर्वाणतन्त्रे अष्टमोऽङ्कासि ॥ श्रीसदाशिव उवाच ॥
चत्वारः कथिता वर्णा आश्रमा अपि सुव्रते । आचारश्चापि
वर्णानामाश्रमाणां पृथक् पृथक् । कृतादौ कलिकाले तु वर्णाः
पञ्च प्रकीर्त्तिताः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव
च । एतेषां सर्ववर्णानामाश्रमौ द्वौ महेश्वरि ! । तेषामाचा-
रधर्माश्च शृणुष्वाम्ये ! वदामि ते । पुरैव कथितं तावत् कलि-
सम्भवचेष्टितम् । तपःस्वाध्यायहोनानां नृणामव्याधुषामपि ।
केशप्रयासशक्तानां कुतो देहपरिश्रमः । ब्रह्मचर्याश्रमो नास्ति
वानप्रस्थोऽपि न प्रिये ! । गृहस्थो भिक्षुकश्चैव आश्रमौ द्वौ
कलौ युगे । इति लिखितस्तु स आश्रमः क्वचित् क्वचित् व्यव-
हारदर्शनादिति ॥

अथ गार्हस्थ्यम् ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥ अथ वक्ष्ये गृहस्थस्य
लक्षणं शृणु चण्डिके ।। पाठो होमश्चातिथीनां सेवनं देव-
पूजनम् । पितृश्राद्धं कुलाचारं तत्त्वज्ञानं समाचरेत् । निज-
कान्ता सदा पूज्या निजकान्ता हि देवता । मानसं पूजनं
कुर्यात् मानसं जपमाचरेत् । मानसो हि महाधर्मो मानसं
नास्ति पातकम् ॥ महानिर्वाणतन्त्रे ॥ गृहस्थस्य क्रियाः
सर्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे ।। नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः
कदापि गृहमेधिनाम् । विप्राणामितरेषाञ्च वर्णानामितरे
कलौ । उभयत्राश्रमे देवि ! सर्वेषामधिकारिता । सर्वेषा-
मेव संस्कारकर्माणि शैववर्त्मना । कर्मणामितरेषाञ्च कर्मलिङ्गं
पृथक् पृथक् । जातमात्रो गृहस्थः स्यात् संस्कारादाश्रमी
भवेत् । गार्हस्थ्यं प्रथमं कुर्याद् यथाविधि महेश्वरि ! तत्त्व-
ज्ञाने समुत्पन्ने वैराग्यं जायते यदा । तदा सर्वं परित्यज्य
सत्यासाश्रममाश्रयेत् । विद्यामुपार्जयेद्बाल्ये धनदारांश्च यौवने ।
प्रौढे धर्म्याणि कर्माणि चतुर्थे प्रव्रजेत् सुधीः । मातरं पितरं
वृद्धं भार्याञ्चैव पतिव्रताम् । शिशुञ्च तनयं हित्वा माव-
धूताश्रमं व्रजेत् । मातृः पितृन् शिशून् दारान् स्वजनान्
बान्धवानपि । यः प्रव्रजति हित्वैतान् स महापातकी भवेत् ।
मातृहा पितृहा स स्यात् स्त्रीवधी विप्रघातकः । असन्तर्प्य तु
पितृादौ न यो गच्छेद्भिक्षुकाश्रमे । ब्राह्मणो विप्रभिन्नश्च स्वस्व-
वर्णाक्तसंस्कृत्याम् । शैवेन वर्त्मना कुर्यादेष धर्मः कलौ
युगे ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ को वा धर्मो गृहस्थस्य भिक्षुकस्य च किं
विभो ! । विप्रस्य विप्रभिन्नानां संस्कारादीनि मे वद ॥ श्रीसदा-
शिव उवाच ॥ गार्हस्थ्यं प्रथमं धर्मं सर्वेषां मनुजन्मनाम् ।
तदेव कथयाम्यादौ शृणु कौलिनि । तत्त्वतः । ब्रह्मनिष्ठो गृहस्थः
स्याद् ब्रह्मज्ञानपरायणः । यदयत् कर्म प्रकुर्वीत तद्ब्रह्मणि

समर्पयेत् । न मिथ्याभाषणं नान्यन्न चासाध्यं समाचरेत् ।
देवतातिथिपूजासु गृहस्थो निरतो भवेत् ॥

अतिथिर्यथा नारदपञ्चरात्रे षष्ठाध्याये ॥ अतिथिः पूजितो
येन विश्वञ्च तेन पूजितम् । अतिथिर्यस्य तुष्टो हि तस्य तुष्टो
हरिः स्वयम् । अधिष्ठातातिथिर्गृहे सन्ततं सर्वदेवताः । तीर्था-
न्येनानि सर्वाणि पुण्यानि च व्रतानि च । तपांसि यज्ञाः सत्यञ्च
शौलं धर्मः सुकर्म च । अपूजितैरतिथिभिः साङ्गं सर्वैः प्रयान्ति
ते । अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य
देवाश्च पुण्यधर्महुताशनाः । यशः प्रतिष्ठा लक्ष्मीश्चापौष्टदेवो
गुरुस्तथा । निराशाः प्रतिगच्छन्ति त्यक्त्वा पापञ्च पूरुषम् ।
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नेर्गुरुतल्पगैः । विश्वासघातिभि-
र्दुष्टैर्मित्रद्रोहिभिरेव च । सत्यघ्नेश्च कृतघ्नेश्च कीर्त्तिघ्नैः पापि-
भिस्तथा । आलापवारकैश्चैव कन्याविक्रयिभिस्तथा । सोमा-
पहारिभिश्चैव मिथ्यासाध्यप्रदाटभिः । ब्रह्मस्वहारिभिश्चैव
तथा स्थाप्यस्य हारिभिः । वृषवाहैर्देवलैश्च तथैव याम-
याजिभिः । शूद्रान्नभोजिभिश्चैव शूद्रश्राद्धाहभोजिभिः । श्रीकृष्ण-
विमुखैर्विप्रैर्हिंसैर्नरविघातकैः । गुरावभक्तै रोगार्तैः शस्त्रान्मथ्या-
प्रवादभिः । विप्रस्त्रोगामिभिः शूद्रैर्मातृगामिभिरेव च । अश्व-
त्यघातिभिश्चैव पत्नीभिः पतिघातिभिः । पित्रमातृघातिभिश्च
*शरणागतघातिभिः । ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रैः शिलास्वर्णाप-
हारिभिः । तुल्यदोषो भवत्येभिर्यस्यातिथिरनर्चितः । मातरं
पितरश्चैव साक्षात् प्रत्यक्षदेवताम् । सदा गृही निषेवेत सदा
सर्वप्रयत्नतः । तुष्टायां मातरि शिवे ! तुष्टे पितरि पार्वति ! ।
तव प्रीति र्भवेद्देवि । परं ब्रह्म प्रसीदति । त्वमाद्ये ! जगतां
माता पिता ब्रह्म परात् परम् । युवयोः प्रीणनं यत् स्यात्
तस्मात् किं गृहिणां तपः । आसनं भोजनं वस्त्रं पानं भजन-

मेव च । तत्तत् समयमाज्ञाय मातुः पित्रे नियोजयेत् । आव-
येन्मृदुलां वाणीं सर्वदा प्रियमाचरेत् । पित्रो राज्ञानुसारी
स्यात् स पुत्रः कुलपावनः । औदत्यं परिहासञ्च तदर्थं बहु-
भाषणम् । पितोरग्रे न कुर्वीत यदौच्छेदात्मनो हितम् । मातरं
पितरं वीक्ष्य नत्वोत्तिष्ठेत् ससम्भ्रमः । विनाश्रया नोपविशेत्
संस्थितः पितृशसने । विद्याधनमदोन्मत्तो यः कुर्यात् पितृ-
हेलनम् । स याति नरकं घोरं सर्वधर्मवहिष्कृतः ।
मातरं पितरं पुत्रदारानतिथिसोदरान् । हित्वा गृहो न भुञ्जी-
यात् प्राणैः कण्ठगतैरपि । वञ्चयित्वा गुरुन् बन्धून् यो भुङ्क्ते
सोदरभ्रिः । इहैव लोके गच्छाऽसौ परत्र नारकी भवेत् । गृहस्थो
गोपधेदारान् विद्यामभ्यासयेत् सुतान् । गोपयेत् स्वजनान् बन्धु-
नेष धर्मः सनातनः । जनन्या वर्द्धिता देहो जनकेन प्रवर्द्धितः ।
स्वजनैः शिक्षितः प्रीत्या सोऽधमस्तान् परित्यजेत् । एषामर्थं
महेशानि । कृत्वा कष्टशतान्यपि । प्रीणयेत् सततं यस्तु धर्मो
ह्येष सनातनः । स धन्यः पुरुषो लोके स कृती परमार्थवित् ।
ब्रह्मनिष्ठः सत्यसन्धो यो भवेद्भुवि मानवः । न भार्यां ताडयेत्
कापि मातृवत् पालयेत् सदा । न त्यजेद्दीरकष्टेऽपि यदि साध्वी
पतिव्रता । स्थितेषु स्त्रीयदारिषु स्त्रियमन्यां न संस्पृशेत् ।
दुष्टेन चेतसा विद्वानन्यथा नारकौ भवेत् । विरले शयनं वासं
त्यजेत् प्राज्ञः परस्त्रिया । अयुक्तभाषणञ्चैव स्त्रियै शौच्यं न
दर्शयेत् । धनेन वाससा प्रेम्णा श्रद्धया नृतभाषणैः । सततं
तोषयेद्दाराप्राप्यं क्वचिदाचरेत् । उत्सवे लोकयात्रायां
तीर्थस्नाननिकेतने । न पत्नीं प्रेषयेत् प्राज्ञः पुत्रामात्यविव-
र्जिताम् । यस्मिन् नरे महेशानि ! तुष्टा भार्या पतिव्रता ।
सर्वं धर्मं कृतं तेन भवति प्रिय एव सः । चतुर्वर्षावधि सुतान्
पालयेत् पालयेत् पिता । ततः षोडशपर्यन्तं गुणान् विद्याञ्च

शिञ्चयेत् । विंशत्यब्दाधिकान् पुत्रान् प्रेरयेद् गृहकर्मसु । तत-
 स्तान् तुल्यभावेन मत्वा स्नेहं प्रदर्शयेत् । कन्याप्येवं पालनीया
 शिञ्चणीयाति यत्नतः । देया वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता ।
 एवं क्रमेण भ्रातृंश्च स्वसृग्मादसुतानपि । ज्ञातीन् मित्राणि
 भृत्यांश्च पालयेत्तोषयेद्गृही । ततः स्वधर्मनिरतानेकग्राम-
 निवासिनः । अभ्यागतानुदासीनान् गृहस्थः परिपालयेत् ।
 यद्येवं नाचरेद्देवि ! गृहस्थो विभवे सति । पशुरेव स विज्ञेयः
 स पापी लोकगर्हितः । निद्रालस्यं देहयत्नं केशविन्यासमेव च ।
 आसत्तिमशने वस्त्रे नातिरिक्तं समाचरेत् । युक्ताहारो युक्त-
 निद्रो मितवाञ्छितमैथुनः । स्वच्छो नम्रः शुचिर्दक्षो युक्तः
 स्यात् सर्वकर्मसु । शूरः शत्रौ विनीतः स्याद्बान्धवे गुरुसन्निधौ ।
 जुगुप्सितान्न मन्येत नावमन्येत मानिनः । सौहृदं व्यवहारांश्च
 प्रवृत्तिं प्रकृतं नृणाम् । सहवासेन तर्कं च विदित्वा विश्वसे-
 ततः । एष द्वेष्टुपरि क्षुद्रात् समयं वीक्ष्य बुद्धिमान् । प्रदर्शये-
 दात्मभावान्नैव धैर्यं विलङ्घयेत् । स्त्रियं यशः पौरुषञ्च गुप्तये
 कथितञ्च यत् । कृतं यदुपकाराय धर्मज्ञो न प्रकाशयेत् ।
 जुगुप्सितप्रवृत्तौ च लिखितेऽपि पराजयः । गुरुणा लघुना
 वापि यशस्त्रौ न विवादयेत् । विद्याधनयशोधर्मान् यत्नमान-
 सुपार्जयेत् । व्यसनञ्चासतां सङ्गं मिथ्याद्रोहं परित्यजेत् ।
 अवस्थानुगताद्येष्टाः समयानुगताः क्रियाः । तस्मादवस्थां समयं
 वीक्ष्य कर्म समाचरेत् । योगक्षेमरतो दक्षो धार्मिकः प्रिय-
 ब्राम्हणः । मितवाञ्छितहास्यः स्यान्मान्याये तु विशेषतः ।
 जितेन्द्रियः प्रसन्नात्मा सुचिन्तः स्याद्दृढव्रतः । अप्रमत्तो दीर्घ-
 दर्शो मातास्पर्शान् विशोधयेत् । सत्त्वं सद्दु प्रियं धीरो वाक्यं
 हितकरं वदेत् । आत्मोत्कर्षं तथा निन्द्य परेषां परिवर्जयेत् ।
 जलाशयश्च वृक्षश्च विश्रामगृहमध्वनि । सेतुः प्रतिष्ठितो व्रैन

तेन लोकत्रयं जितम् । सन्तुष्टौ पितरौ यस्मिन्ननुरक्ताः सुहृ-
ज्जनाः । गायन्ति यद्यशो लोकास्तेन लोकत्रयं जितम् ।
सत्यमेव व्रतं यस्य दया दीनेषु सर्वथा । कामक्रोधौ यस्य
वश्यौ तेन लोकत्रयं जितम् । शौचन्तु द्विविधं देवि ! बाह्याभ्य-
न्तरभेदतः । ब्रह्मण्यात्मापणं यत्तत् शौचमान्तरिकं स्मृतम् ।
अङ्घ्रिर्वा भस्मना वापि मलानामपकर्षणम् । देहशुद्धिर्भवेद्येन
वहिःशौचं तदुच्यते । भस्मात्र याज्ञिकं श्रेष्ठं मृत्स्नापि मल-
वर्जिता । निदान्ते मैथुनस्यान्ते त्यागे च मलमूत्रयोः । भोज-
नान्ते मले स्पृष्टे वहिःशौचं विधीयते । किन्त्वत्र बहुनोक्तेन
शौचाशौचविधौ शिवे ! । मनः पूतं भवेद्येन गृहस्थस्तु तदा-
चरेत् । सन्ध्या त्रैकालिकी कार्या वैदिकी तान्त्रिकी क्रमात् ।
उपासनादिभेदेन पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥ तथा । अर्घ्य-
दानं दिनेशाय गायत्रीजपनं तथा । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं
वा दशधापि वा । जपानां नियमो भद्रे ! सर्वत्राङ्गिककर्मणि ।
शूद्रसामान्यजातीनामधिकारोऽस्ति केवलम् । आगमोक्तविधौ
देवि ! सर्वसिद्धिस्ततो भवेत् ॥

निर्वाणतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ गृहस्थस्य दिव्यमूर्तिं
चन्दनादि-विभूषिताम् । सर्वेषां पित्रूपोऽसौ गृहस्थः
साधुरूपकः । सदा दानरतः श्रोमान् सदा यज्ञपरा-
यणः । स्थापयेत् पञ्च तत्त्वानि गृहमध्ये प्रयत्नतः ॥ तदैव
सर्वसिद्धीशो भवत्येव न संशयः । यस्मिन्नन्त्रे विचारोऽपि
सिद्धादिगणदूषणम् । तत्तत् सर्वं महेशानि ! गृहस्थस्य सुनि-
श्चितम् । सुविचार्य महामन्त्रं गृह्णीयात् साधकोत्तमः ।
एकाक्षरं तथा कूटे मालासन्दादिके तथा । विचारो नास्ति
देवेशि ! स्वप्नलब्धे तथैव हि । तथापि च गृहस्थस्य सुवि-
चार्य महामनुः । दण्डिनी भूषणं नास्ति सर्वमन्त्रस्य दीक्षणे ।

गृहस्थाश्रममासाद्य तत्त्वज्ञानेषु यो रतः । स मुक्तः सर्वपापेभ्यः
 स तु साक्षान्महेश्वरः । अन्नदानेन यत् पुण्यं तोयदानेन यत्
 फलम् । तत्तत्सर्वं गृहस्थस्य नान्यस्य सुरसुन्दरि । ॥ नित्या-
 तन्त्रे अष्टमपटले ॥ देव्युवाच ॥ कथितं परमेशान ! कौलाचा-
 रस्य लक्षणम् । वर्त्तते तत्कथं नाथ ! गृहस्थेषु च राजसु । ईश्वर
 उवाच । सत्त्वं रजस्तम इति गुणत्रयविभेदतः । सर्वेषु वर्त्तते
 देवि । कौलधर्मः सनातनः । सत्त्वं स्याद्वक्तियोगेन सर्वोत्प-
 त्तेरकारणम् । अत एव महेशानि ! गृहस्थाः सात्त्विका
 मताः । रजः स्यात् कर्मयोगेन कर्मकर्त्ता महीपतिः ।
 अत एव महेशानि ! राजा राजसिकः स्मृतः । तमोभावस्थितः
 शम्भुर्योगीशः परमेश्वरः । अत एव तमोभावमाश्रयेत्
 मङ्गवर्जितः । शक्तिचक्रं राजचक्रं वीरचक्रं महेश्वरि ! ।
 अत एव प्रकर्त्तव्यं क्रमेण परमेश्वरि ! ॥ कुञ्जिकातन्त्रे
 मसमपटले ॥ अशोकं विल्ववृक्षं च शिवां चैव सुरेश्वरि !
 दृष्ट्वा प्रणामं कुर्याच्च सर्वकामार्थसिद्धये । उलूकं शङ्खचिल्लञ्च
 गृध्रं चैव सुरेश्वरि ! । नमस्कुर्यान्महाकालीं युद्धेषु जयमाल-
 भेत् । चतुष्पथं श्मशानञ्च नमस्कुर्याद्विशेषतः । तन्त्रज्ञं चावधूतञ्च
 नमस्कुर्याद्वरानने । उपासकं सदा दृष्ट्वा मधुरं भाषणं चरेत् ।
 समयञ्च विना देवि ! न सिद्धिः स्यात् कदाचन । तस्माच्चैव
 प्रयत्नेन गृहीयान्नात्र संशयः ॥

अथ यत्याश्रमः ॥ निर्वाणतन्त्रे त्रयोदशपटले ॥ सर्व-
 सन्नसंयुक्तो ब्राह्मणो गमनं चरेत् । गत्वा च दण्डिनिकटे
 प्रणमेद्वह्निवद्भुवि । त्वमेव देवदेवेश ! त्वमेव द्राणकारकः ।
 त्वमेव जगतां वस्ता पाहि मां शरणागतम् । वस्तोत्यत्वान्तर्भूत-
 ष्वर्थो विवर्चितो वस्ता वासयितेति यावत् । इति श्रुत्वा
 दण्डधारी पप्रच्छ सादरास्त्रनम् । कस्त्वं कस्य सुतस्त्वं

हि केन वागमनं वद । श्रुत्वा तदचनं विप्रः प्रोवाचात्म-
निवेदनम् । विप्रवंशे समुद्भूतो ह्यमुकोऽहं विवेकवान् ।
नास्ति मे तु पिता साक्षाद्नास्ति मे स्त्रीसुतादिकम् । मृतौ च
मातापितरौ मृता भ्रातादयः सुताः । पश्चात् स्वकान्तानां
तु ह्यहमत्यन्ततापवान् । अतएव हि भोः स्वामिन् ! देहि मे
परमाश्रमम् । एतेन पित्रादिषु तिष्ठत्सु यत्थाश्रमो न भव-
तीति सूचितम् । तान् विहाय दण्डस्य धर्तुर्दोषकथनगर्भ-
दण्डवचनं तत्रैव ॥ सत्यं कुरु द्विजश्रेष्ठ ! यदुक्तं वै ममान्तिके ।
मिथ्याभाषणदोषेण ब्रह्मवर्त्म विवर्जितम् । भवत्येव न सन्देहो
द्विज ! मत्पुरतो वद । स्थितायां यौवनयुतकान्तायां परमे-
श्वरि ! । सर्वे हि विफलं तस्य यः कुर्याद्दण्डधारणम् । विद्यते
पितरौ देवि ! यः कुर्याद्दण्डधारणम् । सञ्चासो विफलस्तस्य
रौरवाख्यं गमिष्यति । विद्यते बालभावेन यस्य कान्ता सुत-
स्तथा । सञ्चासधारणं तस्य वृथा हि परमेश्वरि ! । स गुरु-
श्चापि शिष्यश्च रौरवाख्यं प्रपद्यते । इत्यादि दृढवाक्यञ्च
श्रुत्वा दण्डी जितेन्द्रियः । सञ्चासदानं तस्यैव दद्या-
श्रुत्वा शाश्वतौम् ॥ इत्यादिना दोषदर्शनेन पुनः पित्रादि-
भरणनिश्चायकं दृढवाक्यं श्रुत्वा तस्य सञ्चासदानमर्पयेदित्य-
न्वयः ॥

तत्रकारमाह । आदौ दशाक्षरं मन्त्रं प्रथमे आवधेद्गुरुः ॥
श्रीशङ्कर उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि मन्त्रं दशाक्षरं
परम् । यस्य श्रवणमात्रेण मूढोऽपि विष्णुरूपपृष्ठम् । पुंमन्त्रो-
ऽपि च देवेशि ! शक्तिमन्त्रं जपेद् यदि । अज्ञात्वा तं महा-
मन्त्रं स भवेद्ब्रह्मराक्षसः । अज्ञात्वा तं महामन्त्रं तत्त्वज्ञानी
भवेद् यदि । तथापि नरकं गच्छेदिति वेदस्य सम्मतम् ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि दर्शनं मन्त्रमुत्तमम् । मयावीजं बधू-

बीजं लक्ष्मीः काली च पाशकम् । गगनं पक्षिवीजञ्च वज्रि-
 कान्ता ततः प्रिये । इति ते कथितं चण्डि ! दशाक्षरमनुत्त-
 मम् । यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभते नात्र संशयः । अस्य ग्रहण-
 मात्रेण नरो नारायणी भवेत् । अस्य प्रसादमात्रेण दण्डी
 निर्वाणतां व्रजेत् । दण्डोपरि जपेदेतद्दशार्णं परमेश्वरि ! ।
 अस्मान्मन्त्रान्महामन्त्रा जायन्ते नात्र संशयः । सर्वो देवसमा-
 चारो दशार्णज्जायते ध्रुवम् । महाविद्योपासकश्च दशार्णं न
 हि पश्यति । इह लोके दरिद्रश्च परे च ब्रह्मराक्षसः । तस्माद्
 यत्नेन देवेशि ! दशार्णं आवयेद्गुरुः । केवलं अवणं कुर्यान्न
 जपेत् साधकोत्तमः । आवयेद् यो दशार्णञ्च स नरो गुरुस-
 त्तमः । मन्त्रदाता यदा देवि ! तवेव स गुरुः स्मृतः । दशा-
 र्णदाता यो देवि ! स एव परमो गुरुः । यथामरतरङ्गिण्या
 असमाः सकलापगाः । दशार्णस्य समो नास्ति मन्त्रस्य सुर-
 पूजिते ! ॥ तथा ॥ अतः परम् प्रवक्ष्यामि यद्रूपं दण्डधारणम् ।
 साधुरूपो गृहस्थश्च ब्राह्मणो ब्रह्मवादकः । सर्वमायासमा-
 त्यक्तः सर्वधर्मपरायणः । जितेन्द्रियो जितक्रोधः समत्वं
 सर्वजातिषु । पुत्रे रिपौ समत्वञ्च सन्ध्यायां पौष्टिके तथा ।
 कायप्राणे न सम्बन्धो मृत्युर्वायु युगान्तिके । ब्रह्मज्ञानं विना
 ज्ञानं यस्य चित्ते मनोरमम् । सत्यासधारणं कार्यं विप्राणां
 मुक्तिहेतवे । यो विप्रो धारयेद्दण्डं सैव आरायणः स्वयम् ।
 चतुर्भुजाः प्रजायन्ते दण्डधारणमात्रतः । तत् श्रुत्वा च महा-
 रम्भगमनं कारयेत्ततः । क्रोधं वा क्रोशयुग्मं वा वेगेन
 गमनञ्चरेत् । गुरुणा सह शिष्येण पृष्ठे पृष्ठे विधानतः ।
 तिष्ठ तिष्ठ महाबाहो ! मां त्यक्त्वा नहि गच्छेत् । शिष्यः परमे-
 ष्वस्त्वं त्वत्समो नास्ति भूतले । क्षन्तव्यमपराधं मे त्वमेव
 विष्णुरुपपृक् । त्वमेव जगतां वन्द्यस्त्वमेव सर्वपूजितः । त्वमेव

परमो हंसस्तिष्ठतिष्ठेति मा ब्रज । स शिष्यो दण्डिना देवि !
 इति वाक्यं वदेद्यतः । अतः स परमो हंसः पथि गते प्रमो-
 हितः । तस्यैव दर्शनार्थाय चान्तरीक्षे च देवताः । सस्त्रीकाः
 सपरीवाराद्यानन्ति दिग्विदिक्षु च । एतस्मिन् समये दण्डी
 सान्त्वयेच्छिष्यमुत्तमम् । फुत्कारं बहुशो दत्त्वा मन्त्रेणानेन
 सुव्रतः । फुत्कारैर्वायुविगैश्च पुनः प्राणान् प्रयोजयेत् । जन्मान्त-
 रञ्च तस्यैव तत्क्षणे जायते किल । जन्मान्तरं यमालोक्य
 संस्कारमाचरेद्गुरुः । दण्डान्तिके समानीय अन्नप्राशनमाच-
 रेत् । असुकस्त्वं समाभाष्य पुनः वक्तुं विनिश्चेपेत् । इति
 नाम्ना तु संख्याय मह्यसंस्कारमाचरेत् । ततोऽपि दण्डिना
 देवि ! शिष्याय ज्ञानहेतवे । शृणु शिष्य ! महाधीर ! महाकथं
 हृदये कुरु । जन्मान्तरन्तु तस्यैव प्राणाधिकं विकारयेत् ।
 मृतदेहस्वरूपोऽयं शरीरोऽयं न संशयः । विरतो भव सर्वत्र
 तोषाद्वाहारचेष्टया । ब्राह्मणेनैव यद्वत् तन्मात्रभोजनं
 कुरु । पञ्चतत्त्वं सदा सेव्यं गुप्तभावो जितेन्द्रियः । सदैव
 मानसीं पूजां सदा मानसतर्पणम् । त्रिसन्ध्यं मानसं योगं
 नाभिकुण्डे प्रयत्नतः । सदैव मानसं भोगं त्यागं कुरु प्रयत्नतः ।
 षड्वर्गेषु जितो भूत्वा नरो नारायणः स्वयम् । भवत्येव न
 सन्देहो दण्डधारणमात्रतः । पितृवंशे सप्तदश मातृवंशे
 त्रयोदश । कान्तायाः सप्तमश्चैव लक्ष्मीनारायणो भवेत् । इति
 श्रुत्वा वचस्तस्य शिष्यश्चैवात्रवीक्ष्वचः । यदुक्तं मयि सुक्तयथं
 तत्करोमि निरन्तरम् । पञ्चतत्त्वं सदा सेव्यं कस्मान्नाभी वदस्व
 मे । यत्रैव वर्तते दण्डी बहुशिष्यसमावृतः । तत्र गत्वा
 प्रयत्नेन बहुशिष्यं विचेष्टय । अथवा वीरमध्ये तु यत्नेन
 गमनं चर । तत्त्वज्ञानं गृहस्थस्य सन्निधाने ब्रजेत् किल ।
 सुदूरमपि गन्तव्यं यत्रासौ कुलनायकः । भिक्षुचर्या न च

स्वार्थं देवतायाः कृते पुनः । आचार्यपत्नीं दृष्ट्वा तु भिक्षां
 कुर्यात् समाहितः । हे मातर्देहि मे भिक्षां कुण्डलीं तर्पया-
 म्यहम् । एवमुक्त्वा ततो दण्डी महासंस्कारमाचरेत् । दण्डा-
 न्तिके समानीय होमघेहिभिर्पूर्वकम् । ततो हुमेत् करं धृत्वा
 आर्ज्यैरष्टाहुतीः पुनः ॥ विपरीतक्रमेणैव कुर्यादङ्गविशो-
 धनम् । ततः कुर्यात् प्रयत्नेन अन्तर्यज्ञोपवीतकम् । शिखां
 तस्य शिखां मन्ये पूगमध्ये विधारयेत् । मूलेन यज्ञसूत्रन्तु
 तस्मिन्नेव निवेशयेत् । घृतैर्मृत्तिकाया पूगं विलिप्य शोधये-
 ततः । तत्पूगं मूलमन्त्रेण कुण्डमध्ये विनिक्षिपेत् । पूर्णाहुतिं
 ततो दद्यात् तत्पूगमानयेत् सुधीः । सयज्ञसूत्रं सशिखं तत्पूगं
 प्रेषयेत् प्रिये ! । मूलमन्त्रं जपेत्तत्र गजान्तकसहस्रकम् । ततश्च
 श्रावयेन्मन्त्रं कालिकायाश्च सुन्दरि ! । अथवा श्रावयेन्मन्त्रं
 ताराया दुर्लभं परम् । मूलमन्त्रं समुच्चार्य पूगभस्म प्रयत्नतः ।
 भक्षणात् तत्क्षणे साक्षादन्तर्यज्ञोपवीतवान् । भवत्येव न
 सन्देहो नरो नारायणः स्वयम् । विल्वदण्डं समानीय वंशस्थेकं
 समानयेत् । विल्वदण्डे न्यसेद्यासान् कालिकायाः प्रयत्नतः ।
 जीवन्त्यासं ततः कृत्वा दण्डे देवीं विचिन्तयेत् । विल्वे स्थितश्च
 चैतन्यं वंशदण्डे नियोजयेत् । इष्टदेवीस्वरूपोऽयं दण्डश्च
 परमेश्वरि ! । शिष्यस्य दक्षिणे हस्ते दण्डस्थापनमाचरेत् ।
 कमण्डलुं समानीय वारुणं प्रजपेत् सुधीः । वारुणीं निक्षि-
 पेत्तत्र ततो मूलमनुं जपेत् । अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तस्य वाम-
 करे न्यसेत् । गैरिकं कपिलं वस्त्रं यत्नेन परिधापयेत् । दण्ड-
 धारणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । अद्यावधि महाभायां
 दण्डोपरि विभावय । कुरु पूजां महाकात्या दण्डोपरि हृदा
 ततः । साक्षान्नारायणस्त्वं हि धर्माधर्मपरो भव । तव माता
 पिता स्वामी सर्वे दण्डान्तिके स्थितम् ॥ इति परमाश्रमग्रहणम् ॥

दण्डिनो भिक्षाचरणप्रकारस्तु तत्रैव ॥ सुदूरं गमनं गेहे
गृहस्थस्य द्विजस्य च । नारायणं समाभाष्य द्वारे तस्य व्रजेत्
सुधोः । दण्डगमनानन्तरं गृहस्थकर्त्तव्यमाह तत्रैव ॥ इति
श्रुत्वा गृहस्थश्च पुटाञ्जलिपरो भवेत् । द्वारे च दण्डिनं दृष्ट्वा
प्रणमेद्ब्रह्मणो वरः । भिक्षां दद्यात् प्रयत्नेन मधु मांसं विना
प्रिये ! । आदाय भिक्षां देवेशि ! चौरवद्गमनं चरेत् ॥ दण्डिनो-
ऽर्वास्थितिप्रकारोऽपि तत्रैव ॥ गृहस्थस्थालये देवि ! रात्रि-
वासञ्च कारयेत् । तथा हि नगरं गत्वा त्रिरात्रं वसतिं चरेत् ।
तौर्थ्यसूमिं ततो गत्वा सप्तरात्रं वसेत्ततः ॥ दण्डिनं दृष्ट्वा ब्राह्म-
णस्य कर्त्तव्यमुक्तं तत्रैव ॥ ब्राह्मणो दण्डिनं दृष्ट्वा प्रणमेद्विधि-
पूर्वकम् । तोयपूर्णञ्च देवेशि ! किं वा शून्यं कमण्डलुम् ।
दृष्टिमात्रेण तत्पात्रं पूर्णं कुर्याद्विजोत्तमः । कमण्डलौ जल-
दानफलमपि तत्रैव ॥ कुशाग्रमाणं विन्दुञ्च यदि यद्यात् कम-
ण्डलौ । समुद्रसप्तदानस्य फलं स लभते ध्रुवम् ॥ जलदान-
निन्दापि तत्रैव ॥ दद्यान्न यदि सोऽहेन स भवेदापदाश्रयः ।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि स पुनर्विष्टपौ भवेत् । इति ते कथितं चण्डि !
सञ्ज्ञासधारणं परम् । न वक्तव्यं पशोरग्रे प्राणान्तेऽपि कदा-
चन । वस्तुतस्तु कलौ दण्डग्रहणं नास्ति ॥ दीर्घकालं ब्रह्म-
चर्यं धारणञ्च कमण्डलौ । इत्यादिभिर्वचनैरुद्धाहृतत्वादि-
धृतैर्निषिद्धत्वात् ॥

महार्हानर्वाणतन्त्रे अष्टमोक्षासेऽपि ॥ भिक्षुकोऽप्याश्रमे-
र्देवि ! वेदोक्तं दण्डधारणम् । कलौ नास्त्येव तत्त्वज्ञो
यतस्तत् श्रीतसंस्कृतिः । शैवसंस्कारविधिनावधूताश्रम-
धारणम् । तदेव कथितं भद्रे ! सञ्ज्ञासग्रहणं कलौ ॥ नारद-
पञ्चरात्रे द्वितीयरात्रे च ॥ कलौ च दण्डग्रहणं नैव निर्वाण-
कारणम् । परं वेदविरुद्धञ्च विपरीताय कल्प्यते ॥ इत्यादिभिः

प्रतिषिद्धत्वाच्च ॥ यत्तु निर्वाणतन्त्रे चतुर्दशपटले ॥ ब्राह्मणेन
 विनान्यत्र सत्रासो नास्ति चण्डिके ! । कुर्यान्मोहेन योऽन्यत्र
 स वे पापाश्रयो नरः । गुप्तभावेन देवेशि । शृणु मन्त्राणवस्त्रमे ! ।
 सत्राभिना सदा सेव्यं पञ्चतत्त्वं वरानने ! । द्वादशाब्दस्य मध्ये
 तु यदि मृत्युर्न जायते । दण्डं तोषे विनिश्चितं भवेत् परम-
 हंसकः । अवधूताचाररतो हंसः परमपूर्वकः । सैव चानन्द-
 विख्यातो द्वादशाब्दे सरस्वती ॥ इति वचनमपि कलौतरपरम् ।
 सरस्वतीति दशानामावधूतमध्ये संज्ञाविशेषः तत्प्रमाणन्तु ॥
 तौर्याश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागरः । सरस्वती भारती च
 पुरीति दश कौत्सिताः ॥ इति ॥ एषां लक्षणवृहच्छङ्करविजये ॥
 विद्यारण्यस्वामिधृतं यथा ॥ त्रिवेणी सङ्गमे तीर्थं तत्त्वमस्यादि-
 लक्षणे । स्नायात्तत्त्वार्थभावेन तीर्थनामा स उच्यते ॥ १ ॥
 आश्रमग्रहणे प्रौढ आशापाशविर्वाजितः । यातायातविनिर्मुक्त
 एतदाश्रमलक्षणम् ॥ २ ॥ सुरम्ये निर्भरे देशे वने वासं करोति
 यः । आशापाशविनिर्मुक्तो वननामा स उच्यते ॥ ३ ॥ अरण्ये
 संस्थितो नित्यमानन्दनन्दने वने । त्यक्त्वा सर्वमिदं विश्वमानन्द-
 लक्षणं किल ॥ ४ ॥ वासो गिरिवरे नित्यं कीर्ताभ्यासे हि
 तत्परः । गम्भीरचलबुद्धिश्च गिरिनामा स उच्यते ॥ ५ ॥
 वसेत् पर्वतमूलेषु प्रौढो यो ध्यानधारणात् । सारात्सारं विजा-
 नाति पर्वतः परिकीर्तितः ॥ ६ ॥ वसेत् सान्निध्यहीरो वन-
 रत्नपरिग्रहः । मर्यादाञ्च न लङ्घेत सान्निध्यः परिकीर्तितः ॥
 ७ ॥ स्वरज्ज्ञानवशो नित्यं स्वरवादी कवी सान्निध्यः संसारसागर
 साराभिज्ञो यो हि सरस्वती ॥ ८ ॥ विज्ञानमयः सम्पूर्णः सर्व-
 भारं परित्यजेत् । दुःखभारं न जानाति सान्निध्यः परिकीर्तितः
 ॥ ९ ॥ ज्ञानतत्त्वेन सम्पूर्णः पूर्णतत्त्वपदे स्थितः । पदब्रह्मरतो
 नित्यं पुरीनामा स उच्यते ॥ १० ॥ केवलनिर्वाणतन्त्रदर्शिनः

स्वधुनापि तथाचरन्ति । अवधूततापि चतुर्थाश्रमिणामेव ॥
तथा च योनितन्त्रे ॥ चतुर्थाश्रमिणां मध्ये अवधूताश्रमो
महान् । तत्राहं कुलयोगिन महादेवत्वमागतः ॥

अथावधूताश्रमः ॥ महानिर्वाणतन्त्रे अष्टमोऽस्तीति ॥ श्रीसदा-
शिव उवाच ॥ अवधूताश्रमो देवि ! कलौ सत्र्यास उच्यते ।
विधिना येन कर्तव्यं तत्सर्वं शृणु साम्प्रतम् । ब्रह्मज्ञाने समु-
त्पन्ने विरते सर्वकर्मणि । अध्यात्मविद्यानिपुणः सत्र्यासाश्रम-
माचरेत् । विहाय वृद्धौ पितरौ शिष्यं भार्यां पतिव्रताम् ।
त्यक्त्वा समर्थान् बन्धून् प्रव्रजन्नारकौ भवेत् । सम्पाद्य गृह-
कर्माणि परितोषागमानपि । निर्ममो निलयाङ्गच्छेन्नृष्कामो
विजितेन्द्रियः । आहूय स्वजनान् बन्धून् ग्रामस्थान् प्रति-
वासिनः । प्रीत्यानुमतिमन्विच्छेद्ब्रह्मज्जिर्गमिषुर्नरः । तेषा-
मनुज्ञामादाय प्रणम्य परदेवताम् । ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य निर-
पेक्षो गृहादि यत् । मुक्तः संसारपाशैर्यः परमानन्दवर्हितः ।
कुलावधूतं ब्रह्मज्ञं गत्वा सम्प्रार्थयेदिदम् । गृहाश्रमे परं
ब्रह्मन् । समैतद् विगतं वयः । प्रसादं कुरु मे नाथ ! सत्र्यास-
ग्रहणं प्रति । निवृत्तगृहकर्माणं विचार्य विधिवद्गुरुः । शान्तं
विवेकिनं वीक्ष्य द्वितीयाश्रममादिशेत् । ततः शिष्यः कृत-
स्नानो यतात्मा विहिताङ्गिकः । ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं देवर्षी-
श्चार्चयेत् पितृन् । देवा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्च
सगणैः सह । ऋषयः सनकाद्याश्चात्रयाद्या देवर्षयस्तथा । अत्र
ये पितरः पूज्या वक्ष्यामि शृणु तानपि । पिता पितामहश्चैव
प्रपितामह एव च । माता पितामहौ देवि ! तथैव प्रपितामहौ ।
मातामहादयोऽप्येवं मातामह्यादयोऽपि च । प्राच्यासृषीन्
यजेद्देवान् दक्षिणस्यां पितृन् यजेत् । मातामहान् प्रतीच्यान्
पूजयेद्वासकर्मणि । पूर्वादिक्लमतो दद्यादासनानां इयं इयम् ।

देवादीन् क्रमतस्तत्रावाह्य पूजां समाचरेत् । समर्थं विधिव-
 त्तेभ्यः पिण्डान् दद्यात् पृथक् पृथक् । पिण्डप्रदानविधिना
 दत्त्वा पिण्डं यथाक्रमम् । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रार्थयेत्
 पित्रदेवताः । हृष्यध्वं पितरो ! देवा ! देवर्षिमाढका ! गणाः ॥
 गुणातोतपदे यूयमनृणौकुरुताचिरात् । आनृण्यमर्थयित्वा
 तु प्रणम्य च पुनः पुनः । ऋणत्रयविनिर्मुक्तमात्मश्राद्धं प्रक-
 ल्पयेत् । पितामह्यात्मैव सर्वेषां तत्पिता प्रपितामहः । आत्म-
 श्चात्मारपणार्थाय कुर्यादात्मक्रियां सुधीः । उत्तराभिमुखो
 भूत्वा पूर्ववत् कल्पितासने । आवाह्यात्मपितृन् देवि ! दद्यात्
 पिण्डं समर्चयन् । प्रागग्रान् दक्षिणाग्रांश्च पश्चिमाग्रान् यथा-
 क्रमात् । पिण्डार्थमास्तरिर्द्धानुदग्रान् स्वस्वकर्मणि । समाप्य
 श्राद्धकर्माणि गुरुदर्शितवर्त्मना । मुमुक्षुश्चित्तशुद्धार्थमिमं मन्त्रशतं
 जपेत् । ह्रीं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वार-
 कमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । उपासनानुसारेण
 विद्यां मण्डलपूर्वकम् । संस्थाप्य कलसं तत्र गुरुः पूजां समा-
 रभेत् । ततस्तु परमं ब्रह्म ध्यात्वा शाश्वतवर्त्मना । विधाय
 पूजां ब्रह्मज्ञो ब्रह्मस्थापनमाचरेत् । प्रागुक्तसंस्कृते वज्री सङ्घ-
 त्योक्ताहुतिं गुरुः । दत्त्वा शिष्यं समाह्वय साकल्यं हावयेत्
 तम् । आदौ व्याहृतिभिर्हुत्वा प्राणहोमं प्रकल्पयेत् । प्राणो-
 ऽपानः समानश्चोदानव्यानी च वायवः । तत्र होमं ततः
 कुर्याद्देहामेध्यस्य मुक्तये । पृथिवी सलिलं वह्निर्वायुराकाश-
 मेव च । गन्धो रसश्च रूपञ्च स्पर्शः शब्दो यथाक्रमात् । ततो
 वाक्पाणिपादाश्च पायूपस्थौ ततः परम् । श्रोत्रं त्वक् नयनं
 जिह्वा घ्राणवृद्धीन्द्रियाणि च । एतानि मे, पदान्तो च शुद्धान्ति
 पदमुच्यते । ह्रीं ज्योतिरिहं विरजा विपाप्मा भूयासं द्विष्ट
 इत्यपि । चतुर्विंशतितत्त्वानि कर्माणि वैदिकानि च । हुत्वाग्नी

निष्क्रियो देहं मृतवच्चिन्तयेत्ततः । विभाव्य मृतवत्कार्यं रहितं
सर्वकर्मणा । स्मरन् तत् परमं ब्रह्म यज्ञसूत्रं समुद्धरेत् । ऐं
लोो हुं इति मन्त्रेण स्कन्धादुत्तार्यं तत्त्ववित् । यज्ञसूत्रं
करे धृत्वा पठित्वा व्याहृतित्वयम् । वज्रिजायां समुच्चार्य
घृताक्तमनले क्षिपेत् । हुत्वेवमुपवोतश्च कामवौजं समुच्चरन् ।
क्षित्वा शिखां करे कृत्वा घृतमध्ये नियोजयेत् । ब्रह्मपुत्ति !
शिखे ! त्वं हि बालरूपा सनातनी । दीयते पावके स्थानं गच्छ
देवि ! नमोऽस्तु ते । कामं मायां कूर्चमन्त्रं वज्रिजायामुदी-
रयेत् । शिखामाश्रित्य पितरो देवा देवर्षयस्तथा । सर्वांश्चा-
श्रयकर्माणि निवसन्ति शिखोपरि । ततः सन्तर्प्य ताः सर्वा
देवर्षिपितृदेवताः । शिखासूत्रपरित्यागाद्देही ब्रह्ममयो
भवेत् । यज्ञसूत्रशिखात्यागात् सत्यासः स्याद्विजम्बनाम् । शूद्रा-
णामितरेषाञ्च शिखां हुत्वेव संस्क्रिया । ततो मुक्तशिखासूत्रः
प्रणमेद्दण्डवद्गुरुम् । गुरुरत्याप्य तं शिष्यं दक्षकर्णं वदेदिमम् ।
तत्त्वमसि महाप्राज्ञ ! हंसः सोऽहं विभावय । निर्ममो निरह-
ङ्कारः स्वभावेन सुखं चर । ततो घटञ्च वज्रिञ्च विसृज्य ब्रह्म-
तत्त्ववित् । आत्मस्वरूपं तं मत्वा प्रणमेच्छिरसा गुरुम् ।
नमस्तुभ्यं नमो मद्यं तुभ्यं नमः नमो नमः । त्वमेव त्वदहमेव
विश्वरूप ! नमोऽस्तु ते । ब्रह्ममन्त्रोपासकानां तत्त्वज्ञानां जिता-
त्मनाम् । स्वमन्त्रेण शिखाच्छेदात् सत्यासग्रहणं भवेत् ।
ब्रह्मज्ञानविज्ञानां किं यज्ञैः आद्यपूजनैः । स्वेच्छाचारपरा-
णाम् प्रत्यवायो न विद्यते । ततो निर्द्वन्द्वरूपोऽसौ निष्कामः
स्थिरमानसः । निर्ममो विहरेच्छिष्यः साक्षाद्ब्रह्ममयो भुवि ।
मुक्तो विधिनिषेधाभ्यां निर्योगक्षेममात्मवित् । सुखदुःखसमो
धीरो जितात्मा विगतसृहः । स्थिरात्मा प्राप्तदुःखोऽपि सुखे
प्राप्तेऽपि निःसृहः । सदानन्दः शुचिः शान्तो निरपेक्षो निरा-

कुलः । नोद्वेजकः स्याज्जीवानां सदा प्राणिहिते रतः । विग-
तामर्षभीर्दान्तो, निःसङ्कल्पो निरुद्यमः । शोकद्वेषविमुक्तः
स्याच्छत्रौ मित्रे समो भवेत् । शीतवातातपसहः समो माना-
पमानयोः । समः शुभाशुभे तुष्टो यदृच्छालाभवस्तुना ।
निस्त्रैगुण्यो निर्विकल्पो निर्लोभः स्यात्त्वसञ्चयी । यथा सत्य-
मुपाश्रित्य सृष्टा विश्वं प्रतिष्ठति । आत्माश्रितस्तथा देहो जान-
न्न बन्धं सुखी भवेत् । इन्द्रियाण्येव कुर्वन्ति स्वं स्वं कर्म पृथक्
पृथक् । आत्मा साक्षी विनिलिप्तो ज्ञात्वेवं मोक्षभागभवेत् ।
वातुप्रतिग्रहं निन्दामनृतं क्रीडनं स्त्रिया । रेतस्तागमसूयाञ्च
सञ्चासौ परिवर्जयेत् । सर्वत्र समदृष्टिः स्यात् कीटे दैवे तथा
नरे । सर्वं ब्रह्मेति जानीयात् परिव्राट् सर्वकर्मसु । विप्रान्नं
श्वपचान्नं वा यस्मात्तस्मात् समागतम् । देशं कालं तथा
चान्नमश्रीयादविचारयन् । अध्यात्मशास्त्राध्ययनैः सदा तत्त्व-
विचारणैः । अवधूतो नयेत् कालं स्वेच्छाचारपरायणः ।
सञ्चासिनां सृतं कायं दाहयेन्न कदाचन । सम्पूज्य गन्ध-
पुष्पाद्यैर्निखनेहाप्सु मज्जयेत् । अप्राप्तयोगमर्त्त्यानां सदा
कामाभिलाषिणाम् । प्रभावाज्जायते देवि ! प्रवृत्तिः कर्मस-
ङ्गुले । अत्रापि ते सानुरक्ता ध्यानार्चा जपसाधने । श्रेयस्तदेव
जानन्तस्तत्रैव दृढनिश्चयः । अतः कर्मविधानानि प्रोक्तानि
चित्तशुद्धये । नामरूपं बहुविधं तदर्थं कल्पितं मया । ब्रह्म-
ज्ञानं विना देवि ! कर्मसञ्चयनं विना । कुर्वन् कल्पशतं कर्म
न भवेन्मुक्तिभाजनः । कुलावधूतस्तत्त्वज्ञो जीवन्मुक्तो नरा-
क्षतिः । साक्षान्नारायणं मत्वा गृहस्थस्तं प्रपूजयेत् । यतेर्दर्श-
नमात्रेण विमुक्तः सर्वपातकात् । तीर्थव्रततपोदानसर्वयज्ञ-
फलं लभेत् ॥ इत्यवधूताश्रमः ॥

तद्वेदास्तु चतुर्दशीज्ञासे ॥ देव्युवाच ॥ द्विविधावाश्रमौ

प्रोक्ता गार्हस्थो भैक्षुकस्तथा । किमिदं श्रूयते चित्रमवधूता-
श्चतुर्विधाः । एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वतः कथय प्रभो ॥
चतुर्विधावधूतानां लक्षणं सविशेषतः ॥ श्रीसदाशिव उवाच ॥
ब्रह्ममन्त्रोपासका ये ब्राह्मणक्षत्रियादयः । गृहाश्रमे वसन्ती-
ऽपि ज्ञेयास्ते यतयः प्रिये ॥ पूर्णाभिषेकविधिना संस्कृता ये
च मानवाः । शैवावधूतास्ते ज्ञेयाः पूजनीयाः कुलार्चिते ॥
ब्रह्मावधूताः शैवाश्च साग्रिमाचारवर्तिनः । विदध्यः सर्वकर्माणि
शश्वदौरितवर्त्मना । विना ब्रह्मार्पितञ्चैते तथा चक्रार्पितं
विना । निषिद्धमन्नं तोयञ्च न गृह्णीयुः कदाचन । ब्रह्मावधूत-
कीलानां कीलानामभिषेकिणाम् । प्रागेव कथितं धर्ममाचा-
राश्च वरानने ॥ स्नानं सत्र्यसनं पानं दानञ्च दाररक्षणम् ।
सर्वभागममाणेण शैवब्रह्मावधूतयोः ॥

निर्वाणतन्त्रे चतुर्दशपटले ॥ श्रीशङ्कर उवाच ॥ शृणु
देवि ! प्रवक्ष्यामि अवधूतो यथा भवेत् । वीरस्य मूर्तिं
जानीयात् सदा तत्त्वपरायणः । यद्रूपं कथितं सर्वं
सत्यासधारणं परम् । तद्रूपसर्वकर्माणि प्रकुर्याद्दीरवत्सलम् ।
दण्डिनो मुण्डनं चामावास्यायामाचरेद्यथा । तथा नैव
प्रकुर्यात्तु वीरस्य मुण्डनं प्रिये ॥ असंस्कृतं केशजाल-
मुक्तालम्बिकचोच्चयम् । अस्थिमालाविभूषा वा रुद्राक्षानपि
धारयेत् । दिगम्बरो वा वीरेन्द्रश्चाथवा कौपिनी भवेत् ।
रक्तचन्दनसिक्ताङ्गं कुर्याद्भस्माङ्गभूषणम् ॥

योगसारे द्वितीयपरिच्छेदे ॥ नृकरोटिं विधायैव काष्ठदण्डं
तथा प्रिये ॥ परशुं चाजिनञ्चैव योगौव धारयेत् सदा । खट्वाङ्गं
धारयेद्योगी वासरूपकवाससी । कपाले धारयेच्चन्द्रं चन्द-
नाद्यैर्विशेषतः । ईषत्पिङ्गलकं वस्त्रं धारयेत् सर्वदा सुतः ।
सुत इति शिवस्य सम्बोधनम् ॥ सुदर्शनाख्यं यज्ञक्रं तत्

सन्धारयेद्बुधः । विपश्चीं कपिलञ्चैव मण्डुडिण्डिमभर्भरान् ।
 वादयन् डमरुं योगी यत्र कुलाश्रमे स्थितः ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥
 क्षमा दानं ततो ध्यानं बालभावेन शैलजे ! । शिवोऽहं भैरवा-
 नन्दो मुक्तोऽहं कुलनायकः । एवं भावपरो मन्त्रो हेतुयुक्तः
 सदाशिवः । संविदासेवनं कुर्यात् सदा कारणसेवनम् । भवेत्
 साक्षात् स पुरुषः शम्भुरूपो न संशयः ॥ महानिर्वाणतन्त्रे ॥
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः सामान्य एव च । कुलावधूत-
 संस्कारे पञ्चानामधिकारिता ॥ निर्वाणतन्त्रे ॥ निर्वाणमुक्ति-
 माप्नोति ब्राह्मणो वीरभावतः । अवधूतः क्षत्रियश्च महायोगी
 न संशयः । स्वरूपोऽपि भवेद्वैश्यः शूद्रोऽपि सह लोकवान् ।
 सम्पूर्णफलमाप्नोति विप्रो निर्वाणतां व्रजेत् । त्रिभागं फल-
 माप्नोति क्षत्रियो वीरभावतः । पादद्वयन्तु वैश्यस्य शूद्रस्य एक-
 पादकम् ॥ दशानामवधूतानां प्रत्येकं नाम प्रागुक्तमिदानी-
 मपि तेषां प्रधानत्वेनाङ्गीकरणार्थं संज्ञाकथनं गर्भलक्षणवि-
 शेषमाह तत्रैव ॥ अवधूतस्य चाख्यानं शृणुष्व पर्वतात्मजे ! ।
 वनारख्ये भारती च गिरिश्च पुरिरेव च । एकस्थाने तु संस्थित्य
 इष्टध्यानादिकं चरेत् । यो मन्त्रदानं तपसा स वनः परिकी-
 र्त्तितः । स्रस्तकेशो जटाजूटः सदा वातूलवद्भवेत् । अन्तर्यामी
 महावीरोऽरण्यसङ्गश्च शैलजे ! । नानाशास्त्रेषु यो विज्ञो नाना-
 कर्मविशारदः । स देष्टदेवीभावेन भावयेद्यो हि चामलाम् ।
 स एव भारती वीरो महान्नानो जितेन्द्रियः । स दीर्घबाहुर्वी-
 रो मुक्तकेशो दिगम्बरः । सर्वत्र समभावेन भावयेद्यो नरो-
 त्तमः । इष्टदेवीं विना नास्ति स गिरिः परिकीर्त्तितः । नाना-
 देशेषु पीठेषु चेत्येषु तीर्थभूमिषु । भ्रमणं कुरुते नित्यं कुर्या-
 द्यज्ञेन पूजनम् । देवतायाः सदा ध्यानं श्रीगुरोः पूजनं तथा ।
 अन्तर्यामिषु यो निष्ठः स वीरः पुरिरेव च । अवधूताश्रमे देवि !

यस्य भक्तिः सुनिश्चला । तस्य तुष्टा भवेत् काली किं न
सिध्यति भूतले । अवधूतं समालोक्य शश्वत् पूजनं चरेत् ।
शक्तितः पञ्चतत्त्वानि यत्र नैव निवेदयेत् । अशक्तः परमेशानि !
भक्तितः परितोषयेत् ॥ महानिर्वाणतन्त्रे ॥ भक्तावधूतो
द्विविधः पूर्णपूर्णाभिमतः । पूर्णः परमहंसाख्यः परिव्राडपरः
स्मृतः । कृतावधूतसंस्कारो यदि स्याज्ज्ञानदुर्बलः । तदा लोका-
लये तिष्ठन्नात्मानं स तु शोधयेत् । रक्षन् स्वजातिचिह्नञ्च कुर्वन्
कर्माणि केवलम् । सदा ब्रह्मपरो भूत्वा साधयेज्ज्ञानमुत्तमम् ॥

मुण्डमालातन्त्रे द्वितीयपटले ॥ अवधूतः शिवः
साक्षादवधूतः सदाशिवः । अवधूतो शिवा देवो अवधूताशुभं
शृणु । चतुराश्रमिणां मध्ये अवधूताश्रमो महान् । अवधूतश्च
द्विविधो गृहस्थश्च चितानुगः । सचेलश्चापि दिग्वासा विधि-
योनिविहारवान् । सदारः सर्वदारस्थो अट्टहासो दिगम्बरः ।
गृहावधूतो देवेशि ! द्वितीयस्तु सदाशिवः । अवधूतस्य ओं
तत्सदिति मन्त्रेण कर्म कर्तव्यमाह महानिर्वाणतन्त्रे ॥ ओं
तत्सन्मन्त्रमुच्चार्य सोऽहस्मोति चिन्तयन् । कुर्यादात्मोचितं कर्म
सदा वैराग्यमाश्रितः । कुर्वन् कर्माण्यनासक्तो नलिनीदल-
नीरवत् । यतेतात्मानमुद्धर्तुं तत्त्वज्ञानविवेकतः । सर्वेषामों-
तत्सदिति निर्देशेन कर्मफलमाह तत्रैव ॥ ओं तत्सदिति
मन्त्रेण यो यत्कर्म समाचरेत् । गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभी-
ष्टाय तद्भवेत् । तन्मन्त्रक्रियमाणकर्मणः सम्पूर्णत्वमपि
तत्रैव ॥ जपहोमप्रतिष्ठा च संस्काराद्यखिलाः क्रियाः । ओं
तत्सदिति निष्पन्नाः सम्पूर्णाः स्युर्न संशयः । किमन्यैर्बहुभि-
र्मन्त्रैः किमन्यैर्भूरिसाधनैः । ब्राह्मोपनिषत्तन्त्रेण सर्व-
कर्माणि साधयेत् । सुखसाध्यमबाहुल्यं सम्पूर्णफलदायकम् ।
नास्त्ये तस्मान्नहामन्त्रादुपायान्तरमम्बिके ! । पुरप्रदेशे देहे वा

लिखित्वा धारयेदिदम् । गेहे तस्य महातीर्थं देहः पुण्यमयी
भवेत् । निगमागमतन्त्राणां सारात्सारतरो मनुः । श्रीं तस्मदिति
देवेशि ! तवाग्रे सत्यमीरितम् । चतुर्विधानां तत्त्वानामन्ये-
षामपि वस्तुनाम् । मन्त्रान्यैः शोधनेनालं स्याच्चेदेतेन शोधि-
तम् । पश्यन् सर्वत्र सद्रूपं जपस्तत्सन्महामनुम् । स्वेच्छा-
चारः शुद्धचित्तः स एव भुवि कौलराट् । जपादस्य भवेत् सिद्धो
मुक्तः स्यादर्णचित्तनात् । साक्षाद्ब्रह्ममयो देही सार्थमेनं जपे-
न्ननुम् । त्रिपदीऽयं महामन्त्रः सर्वकारणकारणम् । साधना-
दस्य मन्त्रस्य भवेन्मृत्युञ्जयः स्वयम् । युग्मयुग्मपदं वापि
प्रत्येकं पदमेव वा । जप्तेतस्य महेशानि ! साधकः सिद्धिभा-
ग्भवेत् ॥ इति मन्त्रप्रशंसा ॥

शैवावधूतस्य सर्व कर्मानधिकारमाह तत्रैव ॥ शैवावधूत-
संस्कारविधूताखिलकर्मणः । नापि देवे न वा पित्रे नार्धे
कृत्येऽधिकारिता ॥

अथ परमहंसः ॥ चतुर्णामवधूतानां तुरीयो हंस उच्यते ।
त्रयोऽन्ये योगभोगादग्रा मुक्ताः सर्वे शिवोपमाः । हंसो न
कुर्यात् क्षीसङ्गं न विधत्ते परिग्रहम् । प्रारब्धमश्वन्
विहरेन्निषेधविधिवर्जितः । त्यजत् स्वजातिचिह्नानि कर्माणि
गृहमेधिनाम् । तुरीयो विचरेत् क्षीणीं निःसङ्गलो
निरुद्यमः । सदात्मभावसन्तुष्टः शोकमोहविवर्जितः । निर्नि-
केतस्तितिष्ठुः स्यान्निःसङ्गो निरुपद्रवः । नार्पणं भक्ष्यपे-
यानां न तस्य ध्यानधारणा । मुक्तो विमुक्तो निर्द्वन्द्वो हंसा-
चारपरो यतिः । इति ते कथितं देवि ! चतुर्णां कुलयोगि-
नाम् । लक्षणं सविशेषेण साधूनां मतस्वरूपिणाम् । एतेषां
दर्शनात् स्वर्गादालापात् परितोषणात् । सर्वतीर्थफललावाप्ति-
र्जायते मनुजकृत्नाम् ॥

अथ आचारभेदाः ॥ वेदाचारस्तु पूर्वमुक्तः । अधुना वैष्णवा-
दिरुच्यते । नित्यातन्त्रे प्रथमपटले ॥ अथ वक्ष्ये महेशानि !
वैष्णवाचारमुत्तमम् । यस्य विज्ञानमात्रेण कालः स्याद्विहिता-
ञ्जलिः । वेदाचारक्रमेणैव सदा नियमतत्परः । मैथुनं तत्क-
थालापं कदाचिन्नैव कारयेत् । हिंसां निन्दाञ्च कौटिल्यं
वर्जयेन्मांसभोजनम् । रात्रौ मालाञ्च यन्त्रञ्च सृष्टेन्नैव कदा-
चन । विष्णुं समर्चयेद्देवि ! विष्णौ कर्म निवेदयेत् । भावयेत्
सर्वदा देवि ! सर्वे विष्णुमयं जगत् । इति वैष्णवाचारः ॥

तथा ॥ शृणु चार्वाङ्गि ! सुभगे ! शैवाचारं सुदुर्लभम् । वेदा-
चारक्रमेणैव शैवे शाक्ते व्यवस्थितम् । तद्विशेषं महादेवि !
केवलं पशुघातनम् । इदानीं शृणु वक्ष्यामि दक्षिणाचारम-
द्विजे ! । दक्षिणामूर्त्तिमुनिना आश्रितोऽसौ यतः पुरा । अतएव
महेशानि ! दक्षिणाचार उच्यते । प्रावर्त्तकोऽयमाचारः प्रथमो
दिव्यवीरयोः । वेदाचारक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
स्वीकृत्य विजयां रात्रौ जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ तृतीयपटले ॥
दिव्यवीरमतं भद्रे ! शृणु सर्वाङ्गसुन्दरि ! । समासतः प्रव-
क्ष्यामि पञ्चमाचारमुत्तमम् । दिवसेषु महेशानि ! ब्रह्मचारी
समाहितः । पञ्चतत्त्वानुकल्पेन रात्रौ देवीं समर्चयेत् । अपरं
शृणु वक्ष्यामि सारात्सारं परात्परम् । ब्रह्मानन्दमये ज्ञाने
तव स्नेहेन पार्वति ! । वेदशास्त्रपुराणेषु गूढो ज्ञानसमुच्चयः ।
काष्ठमध्ये यथा वज्रिस्तथा देवि ! प्रतिष्ठितः । अश्वमेधकृतौ
नैव वाजिहत्या यथा भवेत् । तथैव परमेशानि ! यज्ञे दोषो
न विद्यते । शुद्धाशुद्धं भवेच्छुद्धं शोधनादेव पार्वति ! । एत-
देव महेशानि ! सिद्धान्ताचारलक्षणम् ॥ समयाचारतन्त्रे
द्वितीयपटले ॥ स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुद्धवेशधरस्तथा । देवपूजा-
रतो नित्यं तथा विष्णुपरो दिवा । नक्तं द्रव्यादिकं सर्वं यथा ।

लाभेन चोत्तमम् । विधिवत् क्रियते भक्त्या स सर्वञ्च फलं
लभेत् ॥ कुलाचारं पश्चादुपपादयिष्यति ॥ इत्याचारभेदाः ॥
इति श्रीप्राणतोषिण्यां सप्तमे निर्गुणकाण्डे पशुभावादिनिर्ण-
यादिरूपग्रन्थिकथनं नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

अथ पूर्णाभिषेकः ॥ महानिर्वाणतन्त्रे दशमोक्तासे ॥ श्रीसदा-
शिव उवाच ॥ विधानमेतत् परमं गुप्तमासीज्जगत्त्रये । गुप्त-
भावेन कुर्वन्तो नरा मोक्षं ययुः पुरा । प्रबले कलिकाले तु
प्रकाशे कुलवर्त्मनः । नक्तं वा दिवसे कुर्व्यात् सप्रकाशाभि-
षेचनम् । नाभिषेकं विना कौलः केवलं मद्यसेवनात् । पूर्णा-
भिषिक्तः कौलः स्याच्चक्राधीशः कुलार्चकः । तत्राभिषेकपूर्वाह्ने
सर्वविघ्नोपशान्तये । यथाशक्त्युपचारिण विघ्नेशं पूजयेद्गुरुः ।
गुरुश्चेन्नाधिकारी स्याच्छुभपूर्णाभिषेचने । तथाभिषिक्त-
कौलेन तत्सर्वं साधयेत् प्रिये ! । खान्ताणं विन्दुसंयुक्तं बीजमस्य
प्रकीर्तितम् । गणकोऽस्य ऋषिश्छन्दो नीलद्विभस्तस्य देवता ।
कर्त्तव्यकर्मणो विघ्नशान्त्यर्थं विनियोगिता । षड्दीर्घयुक्त-
मूलेन षडङ्गानि समाचरेत् । प्राणायामं ततः कृत्वा ध्याये-
द्गणपतिं शिवे ! ॥ सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मेर्द-
धानम् खड्गं पाशाङ्कुशेष्टान्यरुणकरलसद्वारुणीपूर्णकुम्भम् ।
बालेन्दूहोत्तमौलिं करिपतिवदनं बीजपूराद्रङ्गं भोगीन्द्रा-
बद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥ ध्यात्वैवं मानसै-
रिष्ट्वा पीठशक्तिं प्रपूजयेत् । तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा भोगदा
कामरूपिणी । उग्रा तेजस्वती सत्या मध्ये विघ्नविनाशिनी ।
पूर्वादितोऽर्चयित्वैताः पूजयेत् कमलासनम् । पुनर्ध्यात्वा गणेश-
शानं पञ्चतत्त्वोपचारकैः । अभ्यर्च्य च चतुर्दिक्षु गणेशं गण-
नायकम् । गणनाथं गणक्रीडं यजेत् कौलिनि । सत्तमः । एक-
दन्तं वक्रतुण्डं लम्बोदरगजाननी । महादेवश्च विकटः

धूस्वामं विघ्ननाशनम् । ततो ब्राह्मीमुखा शक्तीर्दिकपालांश्च
प्रपूजयेत् । तेषामस्त्राणि सम्पूज्य विघ्नराजं विसर्जयेत् ।
एवं सम्पूज्य विघ्नेशमधिवासनमाचरेत् । भोजयेच्च पञ्चतत्त्वै-
र्ब्रह्मज्ञानं कुलसाधकान् । ततः परदिने स्नातः कृतनित्यो-
दितक्रियः । आजन्मकृतपापानां क्षयार्थं तिलकाञ्चनम् ।
उत्सृजेत् कौलद्वयार्थं भोज्यैकैकमपि प्रिये ! । अर्घ्यं दत्त्वा
दिनेशाय ब्रह्मविष्णुनवग्रहान् । अर्चयित्वा मातृगणान् वसुधारां
प्रकल्पयेत् । कर्मणोऽभ्युदयार्थाय वृद्धिश्चाद्यं समाचरेत् । ततो
गत्वा गुरोः पार्श्वं प्रणम्य प्रार्थयेद्दिदम् । एहि नाथ ! कुलाचार !
नलिनीकुलवल्लभ ! । त्वत्पदाभोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि कपा-
निधे ! । आज्ञां देहि महाभाग ! शुभपूर्णाभिषेचने । निर्विघ्नं
कर्मणः सिद्धिर्मुपैमि त्वत्प्रसादतः । शिवशक्त्याञ्जया वत्स !
कुरु पूर्णाभिषेचनम् । मनोरथमयी सिद्धिर्जायतां शिवशासनात् ।
इत्यमाज्ञां गुरोः प्राप्य सर्वोपद्रवज्ञान्तये । आयुलक्ष्मीवला-
रोग्यावास्यै सङ्कल्पमाचरेत् । ततस्तु कृतसङ्कल्पो वस्त्रालङ्कार-
भूषणैः । कारणैः शुद्धिसहितैरभ्यर्च्य वृणुयाद्गुरुम् । गुरुर्मनो-
हरे गेहे गैरिकादिविचित्रिते । चित्रध्वजपताकाभिः फल-
पुष्पेण शोभिते । किङ्किणीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते ।
ष्टतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविवर्जिते । कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपैः
सुवासिते । व्यजनैश्चामरैर्वर्णैर्दर्पणाद्यैरलङ्किते । सार्धहस्ताभितः
वेदीमुच्चकैश्चतुरङ्गलाम् । रचयेन्मृगमयीं तत्र चूर्णैरक्षतसम्भवे ।
मण्डलं सर्वतोभद्रं विदध्यात् श्रीगुरुस्ततः । स्वस्वकल्पोक्त-
विधिना कुर्यादर्चाविधिक्रियाम् । कृत्वा पूर्वोक्तविधिना
पञ्चतत्त्वानि शोधयेत् । संशोध्य पञ्चतत्त्वानि पूर्वकल्पित-
मण्डले । स्वर्णं वा राजतं ताम्रं मृगमयं घटमेव वा । चालितं
चन्द्रवौजेन दध्यक्षतविचर्चितम् । स्थापयेद्ब्रह्मवौजेन सिन्दुरे-

णाङ्कयेत् श्रिया । क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्विन्दुविभूषितैः ।
मूलमन्त्रप्रजापेन पूरयेत् कारणेन तम् । अथवा तीर्थतोयेन
शुद्धेन पाथसापि वा । नवरत्नं सुवर्णं वा घटमध्ये विनि-
क्षिपेत् । पनसोडुम्बराश्वत्थवकुलाम्बसमुद्भवम् । पक्षवं तन्मुखे
दद्याद्वाग्भवेन कृपानिधिः । शरावं मार्त्तिकञ्चापि फलाक्षत-
समन्वितम् । रमां मायां समुच्चार्य स्थापयेत् पक्षवोपरि ।
वक्षीयाद् वस्त्रयुग्मेन ग्रीवां तस्य वरानने । शक्तौ रक्तं
शिवे विष्णौ श्वेतवासः प्रकीर्तितम् । स्थां स्थीं मायां रमां
स्मृत्वा स्थिरीकृत्य घटान्तरे । निक्षिप्य पञ्चतत्त्वानि नवपा-
त्राणि विन्यसेत् । राजतं शक्तिपात्रं स्याद्गुह्यपात्रं हिरण्ययम् ।
श्रीपात्रन्तु महाशङ्खं ताम्राख्यन्यानि कल्पयेत् । पाषाणदारु-
लोहानां पात्राणि परिवर्जयेत् । शक्त्या प्रकल्पयेत् पात्रं
महादेव्याः प्रपूजने । पात्राणां स्थापनं कृत्वा गुरुन् देवीं
प्रतर्पयेत् । ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्चयेत् सुधीः । दर्श-
यित्वा धूपदीपौ सर्वभूतबलिं हरिम् । प्राणायामं ततः कृत्वा
ध्यात्वावाह्य महेश्वरीम् । स्वशक्त्या पूजयेदष्टां वित्तशाल्यं
विवर्जयेत् । होमन्तु कृत्वा निष्पाद्य कुमारीशक्तिसाधनम् ।
पुष्पचन्दनवासोभिरर्चयेत् स गुरुः शिवे । अनुगृह्णन्तु कौला
मे शिष्यं प्रति कुलव्रताः । पूर्णाभिषेकसंस्कारे भवद्विरनुम-
न्यताम् । एवं पृच्छति चक्रं शे ते ब्रूयुर्गुरुमादरात् । महा-
मायाप्रसादेन प्रभावात् परमात्मनः । शिष्यो भवति पूर्णस्ते
परतत्त्वपरायणः । शिष्येण च गुरुर्देवीमर्चयित्वा र्चिते घटे ।
कामं मायां रमां जप्त्वा चालयेद्घटमुत्तमम् । उत्तिष्ठ ब्रह्मकल-
समुत्तरामिसुखं गुरुः । मन्त्रैरेतैर्वक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत् कृपा-
न्वितः । शुभपूर्णाभिषेकस्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः । हन्ते-
ऽनुष्टुप् देवताद्या प्रणवं बीजमौरितम् । शुभपूर्णाभिषेकाद्यै

विनियोगः प्रकीर्तितः । गुरवस्त्वामिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहे-
 खराः । दुर्गालक्ष्मीभवान्यस्त्वामिषिञ्चन्तु मातरः ॥ १ ॥
 षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी । एतास्त्वाम-
 मिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ २ ॥ जयदुर्गा विशालाक्षी
 ब्रह्माणी च सरस्वती । एतास्त्वामिषिञ्चन्तु वगला वरदा शिवा
 ॥ ३ ॥ नारसिंही च वाराक्षी वैष्णवी वनमालिनी । इन्द्राणी
 वारुणी रौद्री त्वामिषिञ्चन्तु शक्तयः ॥ ४ ॥ भैरवी भद्रकाली च
 तुष्टिः पुष्टिश्चमा क्षमा । अद्वा कान्तिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु
 ते सदा ॥ ५ ॥ महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।
 उग्रचण्डा प्रचण्डा च अभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥ ६ ॥ मत्स्यः कूर्मो
 वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा । रामो भार्गवरामस्त्वामिषि-
 च्चन्तु वारिणा ॥ ७ ॥ असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधीन्मत्तभयङ्करः ।
 कपाली भीषणश्च त्वामिषिञ्चन्तु वारिणा ॥ ८ ॥ काली कपा-
 लिनी कुक्का कुरुकुक्का विरोधिनी । विप्रचित्ता महोग्रा त्वा-
 मभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥ ९ ॥ इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवन-
 स्तथा । धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ॥ १० ॥
 रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जौवः सितः शनिः । राहुः केतुः स-
 नक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥ ११ ॥ नक्षत्रं करणं योगो
 वाराः पक्षौ दिनानि च । ऋतुर्मासो हायनस्त्वामिषिञ्चन्तु
 सर्वदा ॥ १२ ॥ लवणेषुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः । समुद्रा-
 स्त्वामिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ १३ ॥ अनन्ताद्या महा-
 नागाः सुपर्णाद्याः पतत्रिणः । तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिञ्चन्तु
 त्वां दिगीश्वराः ॥ १४ ॥ पातालभूतलव्योमचारिणः क्षेम-
 चारिणः । पूर्णाभिषेकसन्तुष्टा अभिषिञ्चन्तु पाथसा ॥ १५ ॥
 दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा दौर्भाग्यं तथा शुचः । विनश्यन्त्वभिषे-
 केन कालीबीजेन ताडिताः ॥ १६ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च ग्रहा

ये रिष्टकारिणः । विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमावीजेन ताडिताः ॥
 १७ ॥ अभिसारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये । मनोवाक्-
 कायजा दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात् ॥ १८ ॥ नश्यन्तु विपदः
 सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः । अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णाः सन्तु
 मनोरथाः ॥ १९ ॥ इत्येकाधिकविंशत्या मन्त्रैः संसिक्तसाधनम् ।
 पशोर्मुखास्त्रमन्त्रं पुनः संश्रावयेद्गुरुः ॥ पूर्वोक्तनाम्ना
 सम्बोध्य ज्ञापयन् शक्तिसाधकान् । दद्यादौन् कुलनाथान्त-
 माख्यानं कौलिको गुरुः । श्रुतमन्त्रगुरौ देवि ! सम्पूज्य
 निजदेवताम् । पञ्चतत्त्वोपचारेण गुरुमभ्यर्चयेत्ततः । गोभू-
 हिरण्यवासांसि यानालङ्करणानि च । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा
 यजेत्कौलान् शिवात्मकान् । कृतकौलार्चनो धीरः शान्तोऽति-
 विनयान्वितः । श्रीगुरोश्चरणौ स्पृष्ट्वा भक्त्या न त्वेदमर्थयेत् ।
 श्रीनाथ ! जगतां नाथ ! मन्नाथ ! करुणानिधे ! । परामृतप्र-
 दानेन पूरयास्मन्ननोरथम् । आज्ञा मे दीयतां कौलाः ! प्रत्यक्ष-
 शिवरूपिणः ! । मच्छिष्याय विनोताय ददामि परमामृतम् ।
 चक्रेश ! परमेशान ! कौलपङ्कजभास्कर ! । कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं
 देह्यमुष्मैः कुलामृतम् । आज्ञामादाय कौलानां परमामृत-
 पुरितम् ॥ सशुद्धिकं पानपात्रं शिष्यहस्ते समर्पयेत् । हृद्या-
 कथं गुरौ देवीं सुवसंलग्नभस्मना । स्वस्य शिष्यस्य कौलानां
 कूर्चं च तिलकं न्यसेत् ॥ कूर्चं भ्रूमध्ये ॥ ततः प्रसादतत्त्वानि
 कौलेभ्यः परिवेशयेत् । भक्तानुष्ठानविधिना विदध्यात् पान-
 भोजनम् । इति ते कथितं देवि ! शुभपूर्णाभिषेचनम् । ब्रह्मा-
 ज्ञानैकजननं शिवत्वफलसाधनम् । नवरात्रं सप्तरात्रं पञ्च-
 रात्रं त्रिरात्रकम् । अथवाप्येकरात्रञ्च कुर्यात् पूर्णाभिषेच-
 नम् । संस्कारेऽस्मिन् महेशानि ! पञ्चकल्पाः प्रकीर्त्तिताः ।
 नवरात्रे विधातव्यं सर्वतोभद्रमण्डलम् । नवनाभं सप्तरात्रे

पञ्चाङ्गं पञ्चरात्रके । त्रिरात्रं चैकरात्रे च पञ्चमष्टदलं प्रिये ! ।
मण्डले सर्वतोभद्रे नवनाभेऽपि साधकैः । स्थापनीया नव-
घटाः पञ्चाङ्गे पञ्चसङ्ग्रहाः । नलिनेऽष्टदले देवि ! घटस्त्वेकः
प्रकीर्तितः । अङ्गावरणदेवांश्च केशरादिषु पूजयेत् । पूर्णाभि-
षेकसिद्धानां कौलानां निर्मलात्मनाम् । दर्शनात् स्पर्शनाद्वाणा-
द्गुरुशुद्धिर्विधीयते । शक्तैर्वा वैष्णवैः शैवैः सौरैर्गणपतैरपि ।
कौलवर्त्माश्रितः साधुः साधयेदतियत्नतः । तथा शक्तिपूजनं
स्यात् पञ्चतत्त्वादि शोधयेत् । स्नेष्टपूजाविधानेन न तु चक्रे-
श्वरो भवेत् ॥ तथा ॥ उक्ताः प्रयोगा बहवः कर्माणि विविधानि
च । ब्रह्मैकनिष्ठकौलस्य त्यागानुष्ठानयोः समम् । एकमेव
परं ब्रह्म जगदाहृत्य तिष्ठति । सर्वं तदन्वितं कर्म जानन्तो
हि रताः प्रिये ! । पृथक्त्वेन यजन्तोऽपि तत् प्रयान्ति विशन्ति
च । सर्वे ब्रह्मणि सर्वत्र ब्रह्मैव पर्यवस्यति । ज्ञेयः स एव
सत्कौलो जीवन्मुक्तो न संशयः ॥

अथ पूर्णाभिषेकप्रयोगः ॥ महानिर्वाणतन्त्रे ॥ अभिषेक-
पूर्वाह्ने सवविघ्नोपशान्त्यर्थं यथाशक्त्युपचारिण गुरुर्विघ्नेशं
पूजयेत् । गुरुस्तत्र चेन्नाधिकारी तदाभिषिक्तकौलं गुरुत्वेन
स्वीकृत्य तेन सर्वं कारयेत् । गमिति गणेशस्य वीजं कृत-
नित्यक्रिय आसने उपविश्याचान्तोऽर्घ्यस्थापनादिभूतशुद्धान्तं
कर्म कृत्वा ऋथादिन्यासं कुर्याद् यथा । गणक ऋषिर्नील-
च्छन्दो विघ्नराजो देवता स्वकर्त्तव्यपूर्णाभिषेककर्मणः सर्वविघ्न-
शान्त्यर्थं जपे विनियोगः । शिरसि ओं गणक ऋषये नमः ।
मुखे नीलच्छन्दसे नमः । हृदि विघ्नराजाय देवताये नमः ।
गां हृदयाय नम इत्यादिनाङ्गन्यासकरन्यासौ विधाय मूलेन
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्यथा ॥ सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतर-
जठरं हस्तपद्मैर्दधानं खड्गं पाशाङ्गुशेष्टान्यरुणकरलसहारुणौ-

पूर्णकुम्भम् । बालेन्दूद्दीप्तमौलिं करिपतिवदनं वीजपूराद्गण्डं
 भोगीन्द्रावद्भूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम् ॥ एवं
 श्वात्वा मानसोपचारेण सम्पूज्य यन्त्रे घटे वा पीठशक्तीः पूज-
 येद्यथा । एते गन्धपुष्पे श्रीं तोत्रायै नमः । एवं सर्वत्र प्रण-
 वादिनमोऽन्तेन ज्वालिन्यै नन्दायै कामरूपिण्यै उग्रायै
 तेजस्वत्यै सत्यायै मध्ये विघ्ननाशिन्यै पूर्वादिक्रमेण धूजयेत् ।
 तत एते गन्धपुष्पे श्रीं कमलासनाय नमः । पुनर्ध्यात्वा घटादौ
 दत्त्वा गणेश इहागच्छेत्यावाह्य प्राद्यादिभिः पञ्चतत्त्वोपचारेण
 सम्पूज्य चतुर्दिक्षु एते गन्धपुष्पे गणेशाय नमः । एवं गण-
 नायकाय गणनाथाय गणक्रीडाय एकदन्ताय वक्रतुण्डाय
 लम्बोदराय गजाननाय महादेवाय विकटाय धूमाभाय विघ्न-
 नाशनाय सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन गन्धपुष्पाभ्यां पूजयेत् ।
 ब्राह्मै माहेश्वर्यै कौमार्यै वैष्णव्यै वाराह्यै इन्द्रायै नारसिंह्यै
 महालक्ष्म्यै इन्द्रादिद्रिक्पालेभ्यो वज्राद्यस्त्रेभ्यो नम इत्यनेन
 पूजयित्वा ततो यथाशक्ति मूलमन्त्रं जप्त्वा जपं समर्थं प्रणम्य
 गणपते क्षमस्वेति विसर्जयेत् । ततो दीक्षापङ्क्त्युक्तमधिवासनं
 कृत्वा ब्रह्मज्ञकुलसाधकान् पञ्चतत्त्वैर्भोजयेत् । ततः परदिने
 स्नातः कृतनित्यक्रियः श्रीं तत्त्वदित्युच्चार्य श्रीं अद्येत्यादि अमुके
 मासि अमुकराशिखे भास्करेऽमुके पक्षेऽमुकतिथौ अमुकगोत्रः
 श्रीअमुकदेवशर्मा आजन्मज्ञानाज्ञानकृतपापक्षयकाम एतत्
 सतिलकाञ्चनं विष्णुदैवतं यथासम्भवगोब्रह्मन् ब्राह्मणायाहं
 सम्प्रददे ॥ इति तिलकाञ्चनमुत्सृज्य दक्षिणां दद्यात् । ततः
 कौलद्वयार्थं भोज्यमेकमुत्सृजेत् । ततः सूर्याग्राह्यं दत्त्वा
 ब्रह्मविष्णुनवग्रहान् सम्पूज्य गौर्यादिषोडशमातृकापूजावसु-
 धारासम्पातनायुथसूक्तजपामुदयिकश्राद्धानि कृत्वा गुरोः
 पार्श्वे गत्वा प्रणम्य प्रार्थयेत् । श्रीं ह्रीं नाथ ! कुलाचार !

नलिनीकुलवल्लभ ! ॥ त्वत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्ध्नि कृपा-
निधे ! ॥ आज्ञां देहि महाभाग ! शुभपूर्णाभिषेचने । निर्विघ्नं
कर्मणः सिद्धिमुपैमि त्वत्प्रसादतः ॥ ततो गुरवदेत् ॥ ओं शिव-
शक्त्याज्ञया वत्स ! कुरु पूर्णाभिषेचनम् । मनोरथमयी सिद्धि-
र्जायतां शिवशासनात् । इति गुरोरनुज्ञां गृहीत्वा अद्येत्यादि
अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा आयुर्लक्ष्मीवलारोग्यप्राप्ति-
कामो महानिर्वाणतन्त्रीयदशमपरिच्छेदोक्तपूर्णाभिषेकमहं
करिष्ये । इति सङ्कल्प्य ओं यज्जाग्रत इति ओं देवो व इति वा
पठेत् । ततः ओं साधुभवानास्तामित्यादि कर्म कृत्वा वस्त्रा-
लङ्कारादिना सशुद्धिकारणेन च गुरुमभ्यर्च्य ओं अद्येत्यादि
मत्सङ्कल्पितमहानिर्वाणतन्त्रीयदशमपरिच्छेदोक्तपूर्णाभिषेक-
कर्मणि अमुकगोत्रं श्रीअमुकानन्दनाथं गुरुत्वेन गुरुकर्म-
करणाय वा भवन्तमहं वृणे इति शिष्ये वदति । ओं वृतो-
ऽस्मीति गुरुर्ब्रूयात् । ततः शिष्यः, ओं यथाविहितं गुरुकर्म
कुरु इति शिष्ये वदति । ओं यथाज्ञानतः करवाणीति गुरु-
र्ब्रूयात् । ततो गुरुर्मनोहरगृहे सुचित्रिते चित्रध्वजपताका-
चन्द्रालपाद्युपशोभिते धूपगुग्गुल्वादिभिः सुवासिते घृतप्रदौप-
मालाविगतान्धकारलेशे चतुरङ्गुलोच्छायसार्द्धहस्तमितमृगमय-
त्रेदिकायां सर्वतोभद्रादिमण्डलं पञ्चवर्णरजोभिर्विदध्यात् ॥

तत्र क्रमः ॥ नवरात्राभिषेके सर्वतोभद्रं सप्तरात्राभि-
षेके नवनाभं पञ्चरात्राभिषेके पञ्चाब्जं त्रिरात्रैकरात्राभिषेके
अष्टदलपद्मं निर्माय तत्र घटस्थापनं दीक्षापद्धत्युक्तं कुर्यात् ।
ततः पञ्चतत्त्वादिकं संशोध्य ठमिति चन्द्रबीजेन घटे दध्यक्षतौ
दद्यात् । ओमिति ब्रह्मबीजेन घटं स्थापयेत् । श्रीमिति
लक्ष्मीबीजेन घटे सिन्दूरं दद्यात् । सविन्दुकैः चकाराद्यकारा-
न्तीवर्णैर्मूलमन्त्रेण ठकारेण घटं पूरयेत् । अथवा तीर्थतोषिणः

शुद्धजलेन वा पूरयेत् । नवरत्नं स्वर्णं वा घटमध्ये निक्षिपेत् ।
 पनसोडुम्बराश्वत्थकुलास्त्राणां पञ्चपल्लवानि ऐमिति वाग्भव-
 वोजेन घटमुखे दद्यात् । फलाक्षतयुक्तनूतनगरावं श्रीमिति
 क्लीमिति मन्त्रेण तदुपरि दद्यात् । वस्त्रयुग्मेन घटस्य ग्रीवां
 बध्नीयात् । तत्र क्रमः । शाक्ते रक्तेन शैवे वैष्णवे च श्वं तेन ।
 ततः स्थां स्थीं क्लीमिति श्रीमिति मन्त्रेण घटं स्थिरौकृत्य घट-
 श्रीपात्रयोर्मध्ये दक्षिणादितो नव पात्राणि स्थापयेत् । तत्र
 क्रमः । शक्तिपात्रं राजतं गुरुपात्रं हिरण्यं वीरपात्रं महा-
 शङ्खमात्मपात्रमपि तथा । अथवा पाषाणदारुलौहभिर्धानि
 पात्राणि कुर्यात् । ततो गुरुं देवीञ्च कारणेन तर्पयेत् । ततः
 कारणपूर्णघटे स्वस्वकल्पोक्तविधिना देवतां सम्पूज्य यथा-
 शक्ति जप्त्वा जपं समर्थं बलिदानादिकं कृत्वा स्तवकवचादिकं
 पठित्वाष्टोत्तरं सहस्रं शतं वा हुत्वा गन्धपुष्पवस्त्रमाल्यपात्रा-
 दिभिः कुमारौशक्तिसाधकान् सम्पूज्य । ओं अनुगृह्णन्तु कौला
 मे शिष्यं प्रति कुलव्रताः । पूर्णाभिषेक संस्कारे भवद्भिरनुमन्य-
 ताम् । इति चक्रेश्वरे पठति त्रै ब्रूयुः । ओं महामायाप्रभावेण
 प्रभावात् परमात्मनः । शिष्यो भवति पूर्णस्ते परतत्त्वपरा-
 यणः । ततो गुरुः पूर्वीक्तघटे शिष्येण देवीमर्चयित्वा श्रीमिति
 क्लीमिति जप्त्वा घटं चालयेत् । ओं उत्तिष्ठ ब्रह्मकलस ! देवता-
 भौष्टसिद्धिदः । सर्वतीर्थान्बुपूर्णेन धूरयास्य मनोरथम् । इति
 पठित्वा । सदाशिव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः शिष्येष्टदेवता प्रणवो
 वोजं आयुःकीर्त्तिकलारोग्याद्यवाप्त्यै पूर्णाभिषेके विनियोगः ।
 ओं गुरुवस्त्राभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । दुर्गालक्ष्मी-
 भवान्यस्वामिभिषिञ्चन्तु मातरः ॥ १ ॥ षोडशी तारिणी
 नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी । एतास्वामिभिषिञ्चन्तु मन्त्रपूतेन
 क्षारिणा ॥ २ ॥ जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती ।

एतस्त्वामभिषिञ्चन्तु वगला वरदा शिवा ॥ ३ ॥ नारसिंही च
 वाराही वेषावो वनमालिनी । इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वामि-
 षिञ्चन्तु शक्तयः ॥ ४ ॥ भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा
 क्षमा । श्रद्धा कान्तिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा ॥ ५ ॥
 महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती । उग्रचण्डा प्रच-
 ण्डाद्या अभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥ ६ ॥ मत्स्यः क्रूर्मो वराहश्च नृसिंही
 वामनस्तथा । रामो भार्गवरासस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥ ७ ॥
 असिताङ्गो रुरुक्षुण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः । कपाली भीषणश्च
 त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥ ८ ॥ काली कपालिनी कुक्ता
 कुरुकुक्ता विरोधिनी । विप्रचित्ता महोद्या त्वामभिषिञ्चन्तु
 सर्वदा ॥ ९ ॥ इन्द्रोऽग्निः शमनी रक्षी वरुणः पवनस्तथा ।
 धनदश्च तथेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ॥ १० ॥ रविः सोमो
 मङ्गलश्च बुधो जिवः सितः शनिः । राहुः केतुः सनक्ष्त्रा अभि-
 षिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥ ११ ॥ नक्षत्रं करणं योगा वाराः पक्षौ
 दिनानि च । ऋतुर्मासो हासनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥ १२ ॥
 लवणेषुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः । समुद्रास्त्वामभिषिञ्चन्तु
 मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ १३ ॥ अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्याः
 पतत्रिणः । तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ॥ १४ ॥
 घातालभूतलव्योमचारिणः क्षेमचारिणः । पूर्णाभिषेकसन्तु-
 ष्टास्त्वामभिषिञ्चन्तु पाथसा ॥ १५ ॥ दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगा
 दौर्मनस्यं तथा शुचः । विनश्यन्त्वभिषेकेण कालीवीजेन
 ताडिताः ॥ १६ ॥ भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ग्रहा ये रिष्टकार-
 काः । विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमावीजेन ताडिताः ॥ १७ ॥
 अभिचारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये । मनोवाक्कायजा
 दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात् ॥ १८ ॥ नश्यन्तु विपदः सर्वाः
 सम्पदः सन्तु सुस्थिराः । अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः

॥१८॥ इत्येतैर्मन्त्रैः शिष्यमभिषिच्य पशोर्मुखाद् यन्मन्त्रो लब्धस्त्वं
 पुनस्त्वं गुरुः आवयेत् । पूर्वाक्तनाम्ना शिष्यं सम्बोधय शक्तिसाध-
 कान् विज्ञाप्य गुरुरानन्दनाथान्तं नाम शिष्याय दद्यात् ।
 श्रुतमन्त्रो गुरौ इष्टदेवतां सम्पूज्य पञ्चतत्त्वैर्गुरुमर्चयेत् । ततो
 गोभूर्गृह्णस्ववासोयानालङ्करणानि गुरवे दक्षिणां दद्यात् ।
 ततः पञ्चतत्त्वैः कौलशक्तिसाधकान् अभ्यर्च्य गुरोश्चरणौ स्पृष्ट्वा
 प्रार्थयेद् यथा । श्रौनाथ ! जगतां नाथ ! मन्नाथ ! करुणा-
 निधे ! । परामृतप्रदानेन पूरयास्मन्ननोरथम् ॥ ततो गुरुः ॥
 आज्ञा मे दीयतां कौलाः ! प्रत्यक्षशिवरूपिणः ! । सच्छिष्याय
 विनोताय ददामि परमामृतम् ॥ ते ब्रूयुः ॥ चक्रेश ! परमे-
 शान ! कौलपङ्कजभास्कर ! । कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं देह्यमुष्मै
 कुलामृतम् ॥ इति कौलाज्ञामादाय शुद्धिसहितं कारणपात्रं
 शिष्याय दद्यात् । ततः सुवलग्नभस्मना सर्वेषां ललाटे तिलकं
 दद्यात् । ततश्चक्रसम्पूर्णं कृत्वा यथेष्टं विहरेदिति ॥ इति
 पूर्णाभिषेकप्रयोगः ॥

पूर्णाभिषेकानन्तरन्तु वामकेश्वरतन्त्रे चतुःपञ्चाशत्पटले ॥
 भैरव उवाच ॥ मण्डपं विधिवत् कुर्यात् पूजोपकरणानि च ।
 परमहंसेन गुरुणा पूर्णाभिषेचनञ्चरेत् । नवरत्नं जले स्थाप्य
 जलेनापूर्य कुम्भकम् ॥ द्विषञ्चाशत्पटले ॥ नातिह्रस्वं नाति-
 दीर्घं कलसाष्टकमुत्तमम् । अभिषेकात्मकमिति रत्नादिभिर-
 लङ्कितम् । ईशाने च पुनः कुम्भं स्वर्णादिभिरलङ्कितम् । वस्त्रेण
 वेष्टयेत् कुम्भान् माल्यचन्दनपूर्वकम् । गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः
 समुद्राश्च सरांसि च । नदा ऋदाः पुण्यतमा नद्यः पाताल-
 वर्त्मगाः । सर्वतीर्थाणि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् । रमा-
 वीजेन जप्तेन पङ्कवं प्रतिपादयेत् । कूर्चेन फलदानं स्यात्
 स्त्रीबीजेन स्थिराकृतिः । सिन्दूरं वङ्गिवीजेन पुष्पं प्रेतेन

विन्यसेत् । मूलेन प्रणवेनापि दूर्वां दद्याद्विचक्षणः । हुं
फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद्दर्भेण ताडनम् । ईशकुम्भे यजे-
द्देवीं सङ्कल्पोक्तविधानतः । सङ्कल्पोक्तेन विधिना यजेदावरणं
ततः । बलिं दद्यात् प्रयत्नेन होमयेत्तन्त्रवित् सुधीः । आग-
मोक्तविधानेन कुर्यात्तल कुशण्डिकाम् । त्रिमध्वाक्तेन विधिना
विष्णुपत्रेण होमयेत् ॥ उपचारैः षोडशैस्तु पुनर्देवीं प्रपूजयेत् ।
पुनरावरणं देवि ! पूजयेद् वनतः सुधीः । ततः पूर्णाहुतिं
दत्त्वा प्रकुर्याद् गुरुपूजनम् । सुवेद्याः पूजयेदष्टौ कुमारीश्च
प्रपूजयेत् ॥

चतुःपञ्चाशत्पटले ॥ पूजावसाने देवेशि ! कलसै-
रभिषेचयेत् । विशिष्यतश्च तन्मन्त्रं वक्ष्यामि शृणु सादरात् ।
ओं ह्रीं श्रीं ह्रसोः पुत्र ! त्वं सर्वसिद्धीश्वरो भव । इति पूर्वकल-
सेन गुरुः सिञ्चेच्छिशुं शुभम् । ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रों ह्रीः हंसः
पुत्र ! त्वं वेतालो भव । इत्यग्निकलसेनैव गुरुः सिञ्चेच्छिशुं
शुभम् । ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ह्रसोः हंसः पुत्र ! त्वमणिमादिसिद्धी-
श्वरो भव । इति दक्षिणकलसेन गुरुः सिञ्चेच्छिशुं शुभम् ।
ओं हुं ह्रीं क्रों श्रीं पुत्र ! त्वमञ्जनासिद्धीश्वरो भव । इति नैऋ-
तकलसेन गुरुः सिञ्चेच्छिशुं शुभम् । अं आं ऐं क्रों श्रीं ह्रीं
पुत्र ! त्वं लविमादिसिद्धीश्वरो भव । इति वारुणकलसेन गुरुः
सिञ्चेच्छिशुं शुभम् । ओं आं ऐं क्रों ह्रीं पुत्र ! त्वं काश्यपसिद्धी-
श्वरो भव । इति मरुत्कलसेन गुरुः सिञ्चेच्छिशुं शुभम् ।
ऐं ओं ह्रीं पुत्र ! त्वं स्तम्भनादिसिद्धीश्वरो भव । इति कुबेरक-
लसेन गुरुः सिञ्चेच्छिशुं शुभम् । हंस ऐं ह्रीं नवनवनामक-
रणाभिधानपूर्वकं पुत्र ! त्वमाकर्षणसिद्धीश्वरो भव । इतीशान-
कलसेन गुरुः सिञ्चेत् शिशुं शुभम् । दक्षिणान्तं क्रियाकाण्डं
कुर्यात्साधकसत्तमः ॥ इत्यभिषेकप्रकरणम् ॥

अथ वीरप्रशंसा ॥ उत्पत्तितन्त्रे त्रिषष्टिपटले ॥ यत्र वीरो
वसेद्देवि ! दिव्यो वा परमेश्वरि ! । तत्र सर्वाणि तीर्थाणि
वसन्ति वीरसाधने । यो वीरः स शिवः साक्षाद्देव एव न
संशयः । यत्र वीरो वसेद्देवि ! तत्र कस्य भयं भवेत् । नाका-
लमरणं तत्र न दुर्भिक्षभयं तथा । राजप्रीडाभयं देवि ! तत्र
नास्ति कदाचन ॥

अथ वीरकृत्यं तत्रैव ॥ कुलाचाररतो वीरः कुलसङ्गी
सदा भवेत् । संविदासेवनं कुर्यात् सोमपानं महेश्वरि ! ।
सर्वथा कुरुते देवि ! वीरश्चोद्धतमानसः । दिव्यस्तु देवता-
प्रायश्चन्दनागुरुलेपनैः । रक्तचन्दनगन्धैश्च सुदिग्धो नात्र
संशयः । भस्माङ्गधूसरो वीर उन्नतवद्विचेष्टितः । सुरापान-
रतो नित्यं वलिपूजापरायणः । नरश्चागश्च महिषो मेघः
शूकर एव च । शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मो दश स्मृताः ।
वानरश्च श्वरश्चैव गजाश्चादिविहङ्गमाः । इत्यादिभिर्वलेर्दानैः
पूजयेत् खेष्टदेवताम् ॥ तथा । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं प्रकु-
र्याच्च दिने दिने । कुलवारे कुलर्क्षे च तिथौ चन्दनके तथा ।
भैरव्याः कल्पितं चक्रं संस्थाप्य पूर्ववत् प्रिये ! । सुराणां शोधनं
कुर्याद् यथावत् परमेश्वरि ! । प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा
द्विजोत्तमाः । निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ।
ननु ब्रह्महत्यासुरापानमित्यादि स्मृत्युक्तेन महापातकजनकस्य
सुरापानस्य निषिद्धत्वात् सुरापानरत इति सुराणां शोधनम्
इति च कथं सङ्गच्छत इति चेत् सत्यम् । तत्तद्वचनं नैमित्तिक-
वैधेतरपाननिषेधकमित्यवगन्तव्यमन्यथा वेदविरुद्धत्वेन तत्तत्-
स्मृतेरप्रामाण्यापत्तिः स्यात् । तथा च सौत्रामणीष्टौ वाजपेय-
यागे च सुराग्रहान् गृह्णाति सोमग्रहांश्च सुराग्रहांश्च गृह्णाति
वाजसङ्गी सुराग्रहान् हवन्तीत्यादि । इति हंसः शुचिसदि-

त्यादिना सुराशीधनञ्चोक्तम् । तर्हि मद्यमदेयमपेयमग्राह्यमिति
श्रुत्यन्तरस्य का गतिरिति चेन्नैवमर्थापरिज्ञानेन दोषमाशङ्कसे ।
तथा हि देवताभ्योऽदेयं देवतासम्प्रदानकभिन्नं मद्यमपेय-
मग्राह्यञ्चेति तस्या अर्थः । निमित्तयागादौतरत्न मद्यदानपाना-
दिनिषेधार्था वा सा श्रुतिरिति मन्तव्यम् । नराश्वमेधौ मद्यञ्च
कौलवर्ज्यं हिजातिभिरित्यादिवचनैकवाक्यतया कलौतरपरत्वं
वाजपेयादीनामिति न वाच्यम् । विद्याकरवाजपेयिप्रभृतीनां
नामानुसारेण कलावपि तस्यावधारितत्वात् । विजयाञ्चानु-
कल्पञ्च हिजो दद्याद् युगे युगे ॥ इत्यादिवचनादनुकल्पेन
यागनिर्वाह इति तु कुधियां सिद्धान्तः सुख्यालाभ एवानु-
कल्पस्य उक्तत्वात् ॥

तथा च निरुत्तरतन्त्रे पञ्चमपटले ॥ द्रव्याभावे चानु-
कल्पेः पूजयेत् परदेवतामिति । सुराभावे च गोक्षीरं
हिजो दद्याद् युगे युगे । इत्यादिवचनादनुकल्पेन यागनिर्वाह
इति तु कुधियां सिद्धान्तो सुख्यालाभ एवानुकल्पस्योक्तत्वात् ॥
तथा च निरुत्तरतन्त्रे पञ्चमपटले ॥ द्रव्याभावे चानुकल्पैः
पूजयेत् परदेवतामिति । सुराभावे च गोक्षीरं हिजो दद्याद्
युगे युगे । इति चोक्तमत एव । न सांसभक्षणे दोषो न दोषो
मद्यपानतः । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ।
इति मद्यपानदोषाभावो मनुना उक्त इति असंस्कृतसुरापान-
परं वा । तदुक्तमुत्पत्तितन्त्रे ॥ असंस्कृतां सुरां पीत्वा ब्राह्मणो
ब्रह्महा भवेत् । संस्कृतान् सुरां पीत्वा ब्राह्मणो ज्वलदग्निवत् ।
सौत्वामण्यां कुलाचारे ब्राह्मणः प्रपिबेत् सुराम् । अन्यत्र
कामतः पीत्वा ब्राह्मण्यादेव होयते । यद्वा सुरानिषेधकवचना-
नि अनभिषिक्तपराणोति ज्ञेयम् । तन्नैव सर्वेषां सुरापानविधि-
दर्शनात् । तत्प्रमाणान्तु किञ्चित्लिखितम् । लेखितव्यञ्च यत्तु

मातृकाभेदतन्त्रे तृतीयपटले ॥ सर्वयज्ञाधिपो विप्रः संशयो
 नास्ति पार्वति ! । सौत्रामण्यां महायज्ञे चत्वारो ब्राह्मणा-
 दयः । ब्राह्मणस्य महामोक्षं मद्यपाने प्रियंवदे ! । ब्राह्मणः
 परमेशानि ! यदि पानादिकञ्चरेत् । तत्क्षणाच्छिवरूपोऽसौ
 सत्यं सत्यं हि शैलजे ! । तोये तोयं यथा लीनं तेजसं तेजसे
 यथा । घटे भग्ने यथाकाशं वायौ वायुर्यथा प्रिये ! । तथैव
 मद्यपानेन ब्राह्मणो ब्रह्मणि प्रिये ! । लीयते नात्र सन्देहः
 परमात्मनि शैलजे ! । सायुज्यादिमहामोक्षं नियुक्तं क्षत्रिया-
 दिषु । मद्यपानं विना देवि ! तत्त्वज्ञानं न लभ्यते । अत
 एव हि विप्रस्तु मद्यपानं समाचरेत् । वेदमातृजपेनैव
 ब्राह्मणो न हि शैलजे ! । ब्रह्मज्ञानं यदा देवि ! तदा ब्राह्मण
 उच्यते । देवानाममृतं ब्रह्म तदेव लौकिकी सुरा । सुरत्वं
 भोगमात्रेण सुरा तेन प्रकीर्तिता । इति ब्राह्मणस्य मद्यपान-
 विधायकवचनं तदप्यभिषिक्तब्राह्मणपरम् । ननु अभिषेके
 सस्त्रवर्णं परित्यज्य शिवत्वं लभते ध्रुवमिति प्रागुक्तवचना-
 दभिषिक्तस्य जातिविचाराभावात् कथमभिषिक्तपरमिति चेत्
 सत्यम् । स्वजातिचिह्नरक्षकस्य ज्ञानदुर्बलस्य पानार्थमेतद्वचन-
 मित्यवेहि । अथवा अभिशप्तसुरापाणनिषेधार्थं सुरापाणनिषि-
 द्धवचनम् । सुरा तु चतुर्गुण एव पवित्रकारिणी । केवलमभि-
 शापेनैवापेया अतः शापमोचनपूर्वरूपतया पेयेव तदाह तत्रैव ॥
 मन्त्रवयं सदा पाठ्यं ब्रह्मशापादिमोचनम् । प्रकुर्यात्तर्हि
 येनैव तदा ब्रह्ममयो सुरा । हविरारोपमात्रेण वज्रिर्दीप्तो
 यथा भवेत् । शापमोचनमात्रेण सुरा मुक्तिप्रदायिनी । अत
 एव हि देवेभिः । ब्राह्मणः पानमाचरेत् । स ब्राह्मणः स वेदज्ञः
 सोऽग्निहोत्रो स दीक्षितः । बहु किं कथ्यते देवि ! स एव
 नियुक्तात्मकः । मुक्तिमार्गमिदं देवि ! गोप्तव्यं पश्यसङ्कटे ।

प्रकाशात् सिद्धिदानिः स्यान्निन्दनौयो न चान्यथा । यदि
शापमोचनादप्यग्राह्यत्वं तस्या इत्युच्यते तदा गायत्रीग्रहण-
मपि ब्राह्मणानामसङ्गतं स्यात्तत्रापि शापदर्शनादिति । उत्प-
त्तितन्त्रे । कुलस्त्रीसेवनं कुर्यात् सर्वथा परमेश्वरि ।। रमते
युवतिं रम्यां कामोन्मत्तविशालिनीम् । नटीं कापालिकां
वेश्यां हडिपानां वराङ्गनाम् । शूद्राणीं स्नेच्छरमणीं यवनीं
परमेश्वरि ।। मातृयोनिविचारोऽस्ति मातृयोनिं विना प्रिये ।।
कुलाचारपरो वीरः कुलपूजापरायणः । भगलिङ्गसमायोगा-
दाकृष्य जपमाचरेत् । निश्चलन्तु भवेच्चित्तं कोटिसूर्यग्रहेण
किम् । चले चित्ते भवेद्ग्राधिर्निश्चले निश्चलं यथा ॥ तथा ॥
शवानां साधनं देवि ! लतासाधनमुत्तमम् । चितायाः साधनं
देवि ! सिद्धिरस्ति कलौ युगे । महाकाव्या महापीठे यत्र कुत्र
महेश्वरि ।। बलिदानं नरस्यापि हृताङ्गाधा भविष्यति । निवृ-
त्तं हि ततो देवि ! बलिदानं नरादिकम् । ततः प्रभृति देवेशि !
भावद्वयं विवर्जयेत् ॥ एतद्वचनं प्रबलकलीतरपरम् ॥ तदुक्तं
महानिर्वाणतन्त्रे ॥ दिव्यवीरमयो भावः कलौ नास्ति कदा-
चन । केवलं पशुभावेन मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥

उत्पत्तितन्त्रे चतुःषष्टिपटले ॥ भावः को वा महादेव !
वीरः को वा महेश्वर ! । दिव्य एव कथं देव ! वद मे शङ्कर !
स्वयम् । इति देवोपश्रानन्तरं महादेव उवाच ॥ भावस्तु मानसो
धर्मः स तु साङ्गः कथं भवेत् । निर्विकल्पं महेशानि ! परं
ब्रह्ममयो भवेत् । मानसः कारणं देवि ! शिव एव न संशयः ।
सिद्धमन्त्रो भवेद्दीरो न वीरो मद्यपानतः । कलौ तु भारते
वर्षे लोका भारतवासिनः । गृहे गृहे सुरां पीत्वा वर्णभ्रष्टा
भवन्ति हि । दिव्ये वीरे न भेदोऽस्ति ज्ञानी स्यात् कुल-
साधनैः । त्रिसूत्रज्ञः कुलाचारो ज्ञानी कुलगुरुः स्मृतः ।

षट्चक्रं षोडशाधारं त्रैलोक्यं ध्योमपञ्चकम् । स्वदेहे वै न
जानन्ति कथं सिध्यन्ति योगिनः ॥

अथ पञ्चमकारः ॥ निर्वाणतन्त्रे एकादशपटले ॥ शङ्कर
उवाच ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि तत्त्वं परमगोपनम् । श्रुत्वा
गोपय यत्नेन स्वयोनिमिव सुन्दरि ! । गुप्तसाधनतन्त्रे सप्तम-
पटले ॥ शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि तत्त्वं परमगोपनम् । मन्त्रो-
द्धारक्रमेणैव तत्सर्वं कथयामि ते । भमं तकारसंयुक्तं धान्तं
वायुयुतं कुरु । विन्दुयुक्तं पुनर्भान्तं साकारं विन्दुसंयुतम् ।
चन्द्रबीजं समुच्चार्य अकारसंयुतं कुरु । पुनर्भान्तं तकारान्तं
चन्द्रं वायुसमन्वितम् । पुनर्भान्तं महेशानि ! पञ्चमस्वर-
भूषितम् । धान्तं वह्निसमारूढमाकारसंयुतं कुरु । पुन-
र्भान्तं महेशानि ! सूर्यस्वरसमन्वितम् । तान्तकुमारसंयुक्तं
धान्तमकारसंयुतम् । पञ्चतत्त्वमिदं देवि ! सर्वतन्त्रेषु गोपि-
तम् । कैवल्यतन्त्रे प्रथमपटले ॥ पञ्चतत्त्वात् परं नास्ति
शाक्तानां सुखमोक्षयोः । केवलैः पञ्चमैरेव सिद्धो भवति
साधकः । एषां मध्ये महेशानि ! परतत्त्वं विशिष्यते ॥ तथा ॥
केवलेनाद्ययोगिन साधको भैरवो भवेत् । द्वितीयेन च तत्त्वेन
महाभैरवतां व्रजेत् । तृतीयेन च तत्त्वेन साधकः शिवरूप-
धृक् । चतुर्थेन वरारोहे ! रुद्ररूपधरो भवेत् । परेण परतां
याति मम तुल्यो न संशयः । मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा
मैथुनमेव च । पञ्चतत्त्वमिदं देवि ! निर्वाणमुक्तिहेतवे ।
मकारपञ्चकं देवि ! देवानामपि दुर्लभमिति ॥ कामाख्यातन्त्रे
पञ्चमपटले ॥ मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि । स्त्रीभिः
साङ्गं महासाधुरर्चयेद् जगदम्बिकाम् । अन्यथा च महानिन्दा
गीयते पण्डितैः सुरैः । कायेन मनसा वाचा तस्मात्तत्त्वपरो
भवेत् । कालिकातारिणीदीक्षां गृहीत्वा मद्यसेवनम् । न

करोति नरो यस्तु सकलौ पतितो भवेत् । वेदिके तान्त्रिके
चैव जपहोमवहिष्कृतः । अब्राह्मणः स एवोक्तः स एव हस्ति-
मूर्खकः । शुनीमूत्रसमं तस्य तर्पणं यत् पिबेच्चपि । काली-
तारामनुं प्राप्य वीराचारं करोति न । शूद्रत्वं तच्छरीरेण
प्राप्नुयात् स न चान्यथा ।

समयाचारतन्त्रे द्वितीयपटले । या सुरा सर्वकार्येषु
कथिता भुवि मुक्तिदा । तस्या नाम भवेद्देवि ! तीर्थं
पानं सुदुर्लभम् । शूद्राणां भक्ष्ययोग्यानां यन्मांसं देव-
निर्मितम् । वेदमन्त्रेण विधिवत् प्रोक्ता सा शुद्धिरुत्तमा ।
भक्ष्ययोग्याश्च कथिता ये ये मत्स्या वरानने ! । ते रहस्ये मया
प्रोक्ता मीनाः सिद्धिप्रदायकाः । पृथुका तण्डुला भृष्टा गोधूम-
चणकादयः । तस्य नाम भवेद्देवि ! मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी ।
भगलिङ्गस्य योगिन मेथुनं यज्ञवेत् प्रिये ! । तस्य नाम भवे-
द्देवि ! पञ्चमं परिकीर्तितम् । प्रथमन्तु भवेन्मद्यं मांसञ्चैव
द्वितीयकम् । मत्स्यञ्चैव तृतीयं स्यान्मुद्रा चैव चतुर्थिका ।
पञ्चमं पञ्चमं विद्यात् पञ्चेते नामतः स्मृताः ॥

मत्स्यादिशब्दस्य त्यत्तिस्तु कुलार्णवतन्त्रे पञ्चमखण्डे सप्तदशो-
क्तासे ॥ मायामलादिशमनान्मोक्षमार्गनिरूपणात् । अष्टदुःखा-
दिविरहान्मत्स्येति परिकीर्तितः । माङ्गल्यजननाद्देवि ! संविदा-
नन्ददानतः । सर्वदेवप्रियत्वाच्च मांस इत्यभिधीयते ॥ तथा ।
पञ्चमं देवि ! सर्वेषु मम प्राणप्रियं भवेत् । पञ्चमेन विना देवि !
चण्डीमन्त्रं कथं जपेत् । यदि पञ्चमकारेषु भ्रान्तिं चेत् कुरुते
प्रिये ! । तस्य सिद्धिः कथं देवि ! चण्डीमन्त्रं कथं जपेत् ।
आनन्दं परमं ब्रह्म मकारास्तस्य सूचकाः ॥ अथैषां फलम्
निर्वाणतन्त्रे एकादशपटले ॥ अष्टैश्वर्यं परं मोक्षं मद्यपानेन
शैलजे ! । मांसभक्षणमात्रेण साक्षान्नारायणो भवेत् । मत्स्य-

अक्षयमात्रेण काली प्रत्यक्षतामियात् । मुद्रासिवनमात्रेण
भूसुरो विष्णुरूपधृक् । मेधुनेन महायोगी मम तुल्यो न
संशयः ॥ तथा ॥ एकां शक्तिं समानीय एक एव तु साधकः ।
पूजयेद्बहुयत्नेन पञ्चतत्त्वेन कौलिकः । एवं कृत्वा लभेत्
सिद्धिं नान्यस्य दृष्टिगोचरे । शैवे शाक्ते गणपत्ये सौरे चान्दे
सुलोचने । तत्त्वज्ञानमिदं प्रोक्तं वैष्णवे शृणु यत्नतः ॥ द्वादश-
पटले ॥ गुरुतत्त्वं मन्त्रतत्त्वं मनस्कृतत्वं सुरेश्वरि ! । देवतत्त्वं
ध्यानतत्त्वं पञ्चतत्त्वं वरानने ! । तत्रादौ श्रीगुरोस्तत्त्वं स्नेहाद-
व्यामि पार्वति ! । सतैलं वर्तिकायुक्तं देहस्थं ब्रह्मतेजसम् ।
गुरुणा मन्त्रदानेन तत्त्वज्ञं दीपितं भवेत् । देवतायाः शरीरं
हि मन्त्रादुत्पद्यते ध्रुवम् । अतएव हि तस्यात्मा देवरूपो न
संशयः । ईश्वरस्य तु यदोर्थं तदेव अक्षयात्मकम् । तेन वर्णा-
त्मकं देहं जन्तोरेव न संशयः । मन्त्रवर्णं सर्ववर्णमयास्ते पर-
मेश्वरि ! । वर्णतत्त्वमिदं देवि ! सर्वस्वं मम यज्ञवेत् । स्वयं
देवो न चान्योऽस्मि निर्मलो देवरूपकः । सर्वत्र देवतां ध्यायेत्
दण्डगुल्मलतादिषु । ध्यानेन लभते सर्वं ध्यानेन विष्णुरूपकः ।
ध्यानेन सिद्धिमाप्नोति विना ध्यानं न सिध्यति । इति ते
कथितं तत्त्वं वैष्णवस्य सुरेश्वरि ! । यज्ज्ञानादमरत्वञ्च विष्णु-
रूपो भवेन्नरः । ते नरा न हि गच्छन्ति कदाचिद्यममन्दि-
रम् ॥

तत्त्वशोधनप्रकारस्तु कैवल्यतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ श्रीशिव
उवाच ॥ शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि तेषां वै शोधनक्रियाम् ।
पञ्चासनेन संविश्य करपुटं समाचरेत् । वामे गुरुन् नमस्कृत्य
दक्षिणे गणपतिं स्मरेत् । मध्ये देवीं नमस्कृत्य प्राणायामत्रयं
चरेत् । शरीरे मातृकां न्यस्य ऋष्यादिन्यासमाचरेत् । स्वकल्पो-
क्तविधानेन षडङ्गन्यासमाचरेत् । पञ्चाङ्गमौ त्रिकोणं वा षट्

क्रोणं वा महेश्वरि ! । विलिख्य मण्डलं शुद्धं तस्योपरि घटं
न्यसेत् । त्रिकोणं वेत्यादिवाङ्मयं सन्निधोगशिष्टचकारवत् समु-
च्चयसूचकम् । तेन तन्मण्डलद्वयं कर्तव्यमित्यर्थः । वक्ष्यमाणभाव-
चूडामणिवचनैकवाक्यत्वादिति स्वतन्त्रतन्त्रवचनैकवाक्यत्वा-
दिति तथा च चतुरस्रमपि ॥ बहुधा प्रोक्षणं कृत्वा फट्कारेण
पुनः पुनः । ततस्तस्मिन् कारणन्तु मूलेनैव च स्थापयेत् । माट-
कारेण देवेशि ! विपरीतेन चैव हि । पुनः फट्कारमन्त्रेण
प्रोक्षणं कारयेत् सुधीः । ततो वियच्छक्तिबीजं चतुर्दशस्वरा-
न्वितम् । नादविन्दुयुतं कृत्वा तस्योपरि शतं जपेत् । ततो
मूलं जपेन्मन्त्रं मायाबीजं ततः परम् । धेतुं योनिं गालि-
नीञ्च त्रिखण्डं मीनसंज्ञकम् । दर्शयित्वा वरारोहे !
घटं धृत्वा पठेन्मनुम् । ओं एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं
ध्रुवम् । कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् । ओं सूर्य-
मण्डलसम्भूते ! वरुणालयसम्भवे ! । अमाबीजमये ! देवि !
शुक्रशापादिमुच्यताम् । ओं वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं
यदि । तेन सत्येन देवेशि ! ब्रह्महत्यां व्यपोहतु । ततः षड्-
ङ्गयुक्तञ्च वकारं विन्दुसंयुतम् । एवं सकारणञ्चापि वर्णाक्षर-
समन्वितम् । जप्त्वा मन्त्री ततो ध्यायेत् स्वमन्त्रं कुलमुन्दरि ! ।
आनन्दभैरवं ध्यायेद् यथा तन्वानुसारतः । रक्तवर्णं चतुर्बाहुं
त्रिनेत्रं वरदं शिवम् । जटाजूटधरं देवं वासुकीकण्ठभूषितम् ।
डमरुञ्च कपालञ्च मुद्गरं पाशमुत्तमम् । धारिणं तं भजेद्देवं
व्याघ्रचर्माम्बरं शिवम् । एवं ध्यात्वा महेशानि ! तस्य मध्ये
प्रपूजयेत् । मायाबीजं ततो हुँ फट् मन्त्रेणानेन सन्त्यजेत् ।
ततस्तस्मिन् महेशानि ! आनन्दभैरवीं स्मरेत् । आनन्दभैरवीं
देवीं वराभयलसत्कराम् । घोररूपां वरारोहां त्रिनेत्रां रक्तवा-
ससम् । रक्तवर्णां महारौद्रीं सहस्रभैरवान्विताम् । ब्रह्मविष्णु-

महेशाद्यैः स्तूयमानां शिवां भजे । इति ध्यात्वा महेशानि !
 तेनैव मनुना यजेत् । तयोरैक्यं विभाव्यैव गायत्रीं दशधा
 जपेत् । भैरवं ङेऽन्तकञ्चोक्ता विद्महे तदनन्तरम् । सुधादेव्यै
 ततः पश्चाद्भोमहीति ततो वदेत् । तन्नो देवि । ततः पश्चात्तद-
 न्ते च प्रचोदयात् । इति ते कथिता देवि ! गायत्री परमा-
 च्छरी । तस्याः स्मरणमात्रेण द्रव्यशुद्धिश्च जायते । तस्य प्रसा-
 दादीशोऽहं सत्यं सत्यं न संशयः । तस्य मध्ये मूलमन्त्रं
 विल्वदण्डैर्लिखेत् सकृत् । रक्तवस्त्रेण सम्पूज्य सुधां वस्त्रेण
 गोपयेत् ॥ कारणशब्दार्थस्तु तत्रैव ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां
 विषयाणाञ्च पार्वति । । सर्वेषां कारणं यस्मात् कारणं परिकी-
 र्त्तितम् । अस्माकञ्च महेशानि ! शरीरकारणं हि तत् ।
 मृत्युञ्जयोऽहं वीरेशि ! वीरकार्यप्रसादतः । निर्विकारेण
 देवेशि ! निर्विकल्पेन चेतसा । सेव्यमानं कुलं भद्रे ! भुक्ति-
 मुक्तिप्रदायकम् । निर्विकल्पो महेशानि ! मुक्तिभागौ न
 संशयः । सविकल्पो वरारोहे ! रौरवं याति निश्चितम् ॥

अथ मांसादिशोधनं तृतीयपटले ॥ श्रीशिव उवाच ॥
 वस्येऽहं परमेशानि ! मांसादेः शोधनं प्रिये ! । पूर्ववन्मण्डलं
 कृत्वा पूजयेन्मण्डलोपरि । आधारशक्तिं कूर्मञ्च अनन्तं पृथिवीं
 तथा । तन्मध्ये स्थापयेन्मांसं मत्स्यं मुद्राञ्च पार्वति ! । हुं-
 वोजेन च संमन्त्र्य फट्कारैः प्रोक्षणञ्चरेत् । वारुणेन च धेन्वादिं
 दर्शयेत् साधकोत्तमः । ततो मायां बधूञ्चैव श्रीवीजं क्रमशो
 जपेत् । शुद्धिमन्त्रं पठेद्भक्त्या मूलमन्त्रं समुच्चरन् । पवित्रं
 कुरु देवेशि ! मांसं मत्स्यं कुलेश्वरि ! । मुद्रां शस्योद्भवां दिव्यां
 पूजार्थं कुलनायिके ! । ततो हुं फट् वारुणञ्च तस्योपरि
 जपेत् प्रिये ! । मूलमन्त्रं च तन्मध्ये दशधा जपनं चरेत् ॥

अथ शक्तिशोधनं तत्रैव ॥ इदानीं कथयिष्यामि नारोणां

शोधनं प्रिये ।। अग्रे वा दक्षिणे वापि संस्थाप्य मण्डलोपरि ।
भाले च मण्डलं कुर्याच्चैः पुरं सिन्दुरेण च । नयने कज्जलं
दद्यान्मूलमन्त्रं जपेत् सुधीः । अन्यैश्च विविधैर्द्रव्यैर्मन्त्रयेत्
शक्तिमयतः । ताम्बूलं वदने दद्यादिष्टमूर्तिं विभाव्य च ।
ततः षडङ्गमन्त्रैश्च षडङ्गन्यासमाचरेत् । मातृकार्णे ततो न्यस्य
ऋष्यादिन्यासमाचरेत् । मूलेन व्यापकं कृत्वा मूर्ध्नि मूलं
शतं जपेत् । हृदये कामवीजञ्च बध्नीजञ्च सञ्चपेत् । नाभौ
श्रीं गुह्यदेशे च सर्ववीजञ्च पार्वति ।। मौलौ च वाग्भवं कामं
कुण्डलीं कुलकुण्डलीम् । शक्तिवीजं जपेन्नन्तौ सर्वसिद्धीश्वरौ
भवेत् । वामे मायां श्रावयेच्च कर्णे चैव महेश्वरि ।। एवं
क्रमेण देवेशि । नारीशुद्धिः प्रजायते ॥ इति शक्तिशोधनम् ॥

शुद्धशक्तिफलमाह तत्रैव ॥ साधिता च जगद्वाती यदय-
हदति पार्वति ।। तत् सर्वं सत्यतां याति सत्यं सत्यं न संशयः ।
दीक्षितानाञ्च देवेशि ! शुद्धिर्नास्ति कदापि हि ॥

श्यामारहस्यधृतपञ्चमकारशोधनादिर्यथा ॥ स्वामे षट्-
कोणान्तर्गतत्रिकोणविन्दुं विलिख्य वाह्ये वृत्तचतुरस्रं विधाय
सामान्यार्घ्यादकेनाभ्युक्ष्य तत्राधारशक्तिभ्यो नम इति पूजयेत् ।
नम इत्याधारं प्रक्षाल्य मण्डलोपरि संस्थाप्य मं वज्रिमण्डलाय
दशकलात्मने नम इति सम्पूज्य फड़िति कलसं प्रक्षाल्य कार-
णेन सम्पूज्य रक्तवस्त्रमाभ्यादना भूषयित्वा ओं इत्याधारोप-
रि देवीबुद्ध्या संस्थाप्य मं वज्रिमण्डलाय दशकलात्मने नम
इत्याधारं पूजयित्वा अं अकर्मण्डलाय द्वादशकलात्मने नम
इति कलसं सम्पूज्य उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम
इति पूजयेत् । ततः फड़िति दर्भैर्द्रव्यं सन्ताप्य हुमित्यवगुण्ठ-
नमुद्रयावगुण्ठा मूलमन्त्रेण संवीक्ष्य नम इत्यभ्युक्षणं कृत्वा
मूलेन त्रिधा गन्धमादाय ओं इति कुम्भे पुष्पं दत्त्वा द्रव्य-

मध्ये हसौः इत्यनेन त्रिकोणं विलिखेत् । हसौः हसौः नम इति
इष्टा क्रीं क्रीं परमस्वामिनि परमाकाशशून्यवाहिनि चन्द्र-
सूर्याग्निभक्षिणि पात्रं शिवशिव स्वाहा । इति घटं धृत्वा
दशधा प्रजप्य ऐं क्रीं क्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यं
धीमहि तन्नोर्द्ध्वं नारीश्वरः प्रचोदयात् । इति तदुपरि जप्त्वा
शापमोचनं कुर्यात् ॥

तदुक्तं स्वतन्त्रे ॥ ततश्च कारणं दिव्यं समा-
नीय घटस्थितम् । वेष्टितं रक्तवस्त्रेण रक्तमात्रेण भूषितम् ।
वामभागे महेशानि ! मण्डलं चतुरस्रकम् । तत्र संस्थापये-
द्भक्त्या देवीबुद्ध्या वरानने ! । मण्डले कलसे द्रव्ये वज्रकर्के शशि-
मण्डलम् । इति पूजयेदित्यर्थः ॥ भावचूडामणौ च ॥ वामभागे
तु षट्कोणं तन्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रकम् । लिखित्वा तत्र कुम्भं वै
सौवर्णं राजतञ्च वा । ताम्रं भूमिमयं वापि यद्वा लौहविव-
र्जितमिति ॥ तन्त्वान्तरे च ॥ आधारे स्थापयेन्मन्त्री सौवर्णं
वाथ राजतम् । कांस्यजं मृन्मयं वाति घटमव्रणशालिनम् ॥
सुवर्णादिमयघटस्य प्रत्येकफलमाह तत्रैव ॥ सौवर्णं भोगदं
प्रोक्तं राजतं मोक्षदं तथा । कांस्यं शान्तिकरञ्चैव मृन्मयं
पुष्टिदं भवेत् ॥

अथ शापमोचनमन्त्रास्तदुक्तं कुमारोतन्त्रे ॥ अन्यच्च शृणु
देवेशि ! यथा पानादिकर्मणि । दोषो न जायते देवि ! तान्
वै मन्त्रान् शृणुष्व मे । एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् । सूर्यमण्डलसम्भूते !
वरुणालयसम्भवे ! । अमावीजमये ! देवि ! शुक्रशापादिमुच्यताम् ।
वेदानां प्रणवो वीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ॥ इति । तेन सत्ये-
न ते देवि ! ब्रह्महत्यां व्यपोहति । एवं मन्त्रत्रयेणैव अभिमन्त्रा
सुरां शुभाम् । प्रदद्यात् कालिकायै च ततो नैवेद्यभुग्भवेत् ।

इति मन्त्रत्रयं देवि ! षट् पृथ्वा त्रिधा पठेत् । ततः ओं
 वां वो वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः
 इति त्रिधा पठेत् । इति ब्रह्मशापविमोचनम् ॥ ततः ओं शं
 शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापाविमोचितायै सुधादेव्यै नमः इति
 दशधा जपेत् । इति शुक्रशापविमोचनम् ॥ ततः ऐं ह्रीं श्रीं
 क्रां क्रौं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः कृष्णशापं विमोचय अमृतं आवय
 आवय स्वाहा । इति दशधा जपेत् । इति कृष्णशापविमोचनम् ॥

अथ उत्तरतन्त्रे ॥ ओं हंसः शुचिसहसुरन्तरीचं सञ्जीता
 वेदिसदतिथिर्दुरीनसत् । नृसहरसदृतसहोमसदजा गोजा
 ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् । इति द्रव्योपरि वारत्रयं पठेत् ।
 ततो द्रव्यमध्ये आनन्दभैरवं आनन्दभैरवोच्च ध्यायेत् ॥ यथा ॥
 सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् । अष्टादशभुजं देवं
 पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरि स्थितम् ।
 वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् । कपालखट्टाङ्गधरं
 घण्टाडमलवादिनम् । पाशाङ्कुशधरं देव गदामुषलधारिणम् ।
 खड्गखेटकपट्टाशमुद्गरं शूलदण्डधृक् । विचित्रं खेटकं मुण्डं
 वरदाभयपाणिनम् । लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः ।
 एवं ध्यात्वा हसन्मलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट् । इत्यानन्द-
 भैरवं वारत्रयं जपेत् ॥

अथानन्दभैरवीं ध्यायेद् यथा । भावयेच्च सुधां
 देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् । हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां
 त्रिलोचनाम् । अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ।
 प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम् । एवं
 ध्यात्वा हसन्मलवरयोः सुधादेव्यै वीषट् । इत्यानन्दभैरवीं
 सम्पूज्य द्रव्यमध्ये शक्तिचक्रं लिखेत् । ततस्त्रिपञ्चया दक्षिणा-
 वर्त्तेन अं १६ कं १६ खं १६ क्रमेण विलिख्य मध्ये हं लं चं

विलिखेत् । ततः शिवशक्त्योः समायोगाद् द्रव्यमध्ये अमृतत्वं
विचिन्त्य धेनुमुद्रया अमृतौकृत्य वमिति वरुणवोजं मूलमन्त्र-
च्चाष्टधा जप्त्वा देवतामयं भावयन् घटं धृत्वा पठेत् । इति द्रव्य-
शुद्धिः ॥ तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे ॥ ततश्च भावयेद्द्रव्यं मध्ये रक्त-
निभं प्रिये ! । अकथादित्रिपंक्त्या तु हलक्षत्रयमण्डितम् ।
पूर्वाक्तयोनिमुद्रायां शिवशक्त्याः समागमे । अमृतं चिन्तयेद्द्रव्य-
मष्टधा अमृतं जपेत् । अष्टधा मूलमन्त्रञ्च जपेद्भृत्वा घटं ततः ।
एतत्तु कारणं देवि ! सुरसङ्घनिषेवितम् । अत एव तस्या नाम
सुरेति भुवनत्रये । अस्या गन्धः केशवस्तु तेन गन्धेन कौलिकः ।
पूजयेच्च परां देवीं कार्त्तिकामं दक्षिणां शिवाम् ॥

अथ मांसशोधनम् ॥ ओं प्रतद्विष्णुस्तव ते वीर्येण मृगो
न भीमः कुचरो गरिष्ठा यस्योरुषु त्रिषु विक्रमे धियन्ति भुव-
नानि विश्वा । इत्यनेन मांसं शोधयेत् । ततः ओं त्र्यम्बकं
यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो-
मुक्षीय मामृतात् ॥ इति मौनशुद्धिः ॥

ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवौव
चक्षुराततम् । ओं तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ इति मुद्राशुद्धिः ॥

ओं विष्णोर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंसतु । आसि-
ञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते । गर्भं देहि सिनीवालो
गर्भं देहि सरस्वति ! । गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-
सजौ ॥

अथ स्वयम्भूकुसुमादि ॥ मुण्डमालातन्त्रे द्वितीयपटले ॥
हरसम्पर्कहीनाया लतायाः काममन्दरे । जातं कुसुममादौ
यन्माहादेव्यै निवेदयेत् । स्वयम्भूकुसुमं देवि ! रक्तचन्दनसंज्ञि-
तम् । तथा त्रिशूलपुष्पञ्च वज्रपुष्पं वरानने ! । अनुकल्पं

लोहिताक्षचन्दनं हरवल्लभम् ॥ समायाचारतन्त्रे द्वितीय-
पटले ॥ स्त्रीणां ऋतुः प्रथमतो यस्मिन् वयसि जायते । गृह्णी-
यादाशु सुभगे ! ब्रह्मादीनाञ्च दुर्लभम् । स्वयम्भूकुसुमं नाम
देवताप्रीतये सदा । यदि भाग्यवशाद्देवि ! लभते कुं-
सुमन्दिदम् । ततः स्वदेवतानाञ्च कुर्यात् स्नानमनुत्तमम् ।
वाञ्छितं लभते मन्त्री सत्यं सत्यं वरानने ! । इदं रहस्यं
कथितं देवतास्नानहेतवे । न कुर्याद्भक्षणं देवि ! एतयो-
रभयोरपि । एतयोः शक्तिकुसुमस्वयम्भूकुसुमयोरित्यर्थः ॥ तथा ॥
जीवद्भर्तृकनारीणां पञ्चमं कारयेत् प्रिये ! । तस्या भगस्य
यद्रव्यं तत्कुण्डोद्भवमुच्यते । मृतभर्तृकनारीणां पञ्चमञ्चैव
कारयेत् । तस्या भगस्य यद्रव्यं तन्नोलोद्भवमुच्यते । कुण्ड-
गोलोद्भवं पुष्पं अभावे शृणु सुन्दरि ! । अभावे स्वयम्भूकुसुमा-
भावे ॥ वल्लीपुष्पाणि सर्वाणि तरोः पुष्पाणि यानि च । तानि
सर्वाणि सुभगे ! देवतायै निवेदयेत् । अपराजितायाः पुष्पं
यद्वज्रपुष्पञ्च यद्वेत् । करवीरस्य यत् पुष्पं यत् पुष्पं बन्धुजी-
वकम् । कमलस्य च यत् पुष्पं यत् पुष्पं चम्पकस्य च ।
विशेषतस्तु योग्यानि पुष्पाणि सुरसुन्दरि ! । वर्वरापत्र-
पुष्पाणि विष्वपत्राणि सुन्दरि ! । पूजार्थं सर्वमादाय सर्व-
सौभाग्यसिद्धये ॥

उत्पत्तितन्त्रे प्रथमपटले ॥ स्वयम्भूकुसुमैर्हृत्वा स्वयम्भू-
पुष्पपूजनम् । यः करोति सहादेवि ! स वीरः शिव
एव तु ॥ गन्धर्वतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ आनीय कन्यकां
दिव्यां प्रमदां यौवनान्विताम् । प्रोक्षितां मूलमन्त्रेण सुशी-
लाञ्चारुहासिनीम् । सर्वदानन्दहृदयां घृणालज्जाविवर्जिताम् ।
गुरुभक्तां सुवेशाञ्च देवतापूजने रताम् । तस्य गात्रे न्यसेन्मन्त्री
पञ्चकामान् शवानपि । पञ्चकूटं न्यसेन्मन्त्री पञ्चाशन्मातृका

न्यसेत् । दिव्यमालां समादाय साधको विजितेन्द्रियः । सह-
स्रैकप्रमाणेन जपेत् स्वप्नावतीं ततः । अनेनैव विधानेन भवे-
दाकर्षणं महत् । तस्यास्तु मदनागारे पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
सर्वसङ्क्षोभिणीं मुद्रां बद्धा योनिं प्रचालयेत् । कामेश्वरीस्वरूपां
तां चिन्तयेत् साधकोत्तमः । कामेश्वरस्वरूपञ्च आत्मानमपि
भावयन् । स्वयमक्षोभितो भूत्वा साधकः पञ्चमं चरन् । तस्याः
पुष्पं स्वयं यावद्रक्षणीयं प्रयत्नतः । ताम्बूलगन्धपुष्पैश्च प्रत्यहं
पूजयेच्च ताम् । नानारसान्नपानेन तृप्तिमाचर्य यत्नतः । वस्त्रा-
लङ्कारभूषाद्यैस्तस्याः सन्तोषमानयेत् । यथाकाले तथा पुष्पं
स्वयं तद्योग्यरूपतः । गृह्णीयात्तु प्रयत्नेन स्वयम्भूकुसुमं हि
तत् । स्वयम्भूकुसुमं दिव्यं त्रैलोक्येष्वपि दुर्लभम् । प्राप्नोति
साधकश्चेष्टो दुर्लभं साधयेद्भुवि । स्वयम्भूपुष्पयोगेन साक्षात्तेन
सदाचरेत् । विद्यां स्वप्नावतीं जप्त्वा क्षिप्रमाकर्षणं भवेत् ।
देवताश्च ग्रहा नागा दानवा राक्षसाश्च ये । राजानश्च स्त्रियः
सर्वा नित्यं वश्या भवन्ति हि । स्वयम्भूकुसुमैः पूजां प्रत्यहं
यः समाचरेत् । जप्त्वा वै दिव्यमालायां सर्वकाममुपालभेत् ॥

अथ स्वयम्भूकुसुमादिशुद्धिः ॥ ॐ, क्लृ, क्लृ, क्लृ, स्वाहा
अमृते ! अमृतोद्भवे ! अमृतेश्वरि ! अमृतवर्षिणि ! अमृतं
आवय आवय स्वाहा । इति कुण्डगोलोद्भवादिशुद्धिः ॥ ततः
सर्वं हुं इत्यवगुण्ठा धेनुमुद्रया मृतीकृत्य तालवयं दत्त्वा दश-
दिग्बन्धनञ्च कृत्वा तदुपरि मूलं सप्तधा जपेदिति शोधनम् ॥
हसत्तमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट् । इत्यानन्दभैरवं सस्मृज्य
अर्घ्यपात्रं धृत्वा पठेत् । ऐं क्रीं सौः ब्रह्माण्डखण्डसम्भूत-
मशेषरससम्भवम् । आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमाहर ।
ऐं खण्डेकरसानन्दककरे रयमुधाशुनि । खच्छन्दस्फुरणामत्र
निधेन्नकुलरूपिणि ॥ क्लीं अकुलस्थामृताकारे शुद्धिज्ञानकरे

परे । अमृतत्वं निधेच्छास्मिन् वस्तुनि क्षिप्ररूपिणि ।। सौः
तद्रूपेणैकरस्यञ्च कृत्वास्वैतत्स्वरूपिणि । भूत्वा परामृता-
कारं मयि विस्फुरणं कुरु । ऐं ह्रूं वूं अं अमृते अमृतो-
द्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं आवय आवय स्वाहा । ऐं वदवद-
वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्षिन्ने क्लीदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु
कुरु ऐं क्लीं सौः महामोक्षं कुरु ह्रीः ह्रसौः । अनेन
कारणमभिमन्त्र्य तत्र देवीमावाह्य तालत्रयदिग्वन्धनं
कृत्वा अवगुण्ठनमुद्रया अवगुण्ठा धेनुमुद्रयामृतौकत्य
योनिमुद्रां प्रदर्श्य हसौर्नम इति सम्पूज्य तत्र शङ्खमुद्रां
प्रदर्श्य षडङ्गेन सकलीकृत्य मत्स्यमुद्रया पात्रमाच्छाद्य
मूलं दशधा जप्त्वा देवीस्वरूपं पात्रं भावयेत् । ततो
देव्या आज्ञां गृहीत्वा घटश्रीपात्रयोर्मध्ये पात्राणि स्थापयेत् ।
ततो घटसमीपे गुरुपात्रं ततो भोगपात्रं ततः शक्तिपात्रं
योगिनोपात्रं वीरपात्रं बलिपात्रं पाद्यपात्रमाचमनीयपात्रञ्च
स्थापयेत् सामान्यार्घ्यवत् । ततो मत्स्यमांसादियुक्तकारणेन
तत्त्वमुद्रया श्रीपात्रात् स्वमूर्ध्नि श्रीआनन्दभैरवं तर्पयामीति
तत्त्वन्त्वेण त्रिः सन्तर्प्य तत्त्वन्त्वेण अमुकानन्दनाथगुरुश्रीपा-
दुक्तां तर्पयामि इति त्रिः सकृद्वा सन्तर्प्य एवं परमपरापरपर-
मेष्ठिगुरुन् तर्पयेत् । ततः श्रीपात्रामृतेन देवीं सायुधां सवा-
हनां सपरिवारां हृदि तर्पयेत् ॥ तत्त्वमुद्रा यथा निरुत्तरतन्त्रे
चतुर्दशपटले ॥ अङ्गुष्ठानामिकायोगाहामहस्तस्य पार्वति ! ।
तर्पयेत् कालिकां देवीं सायुधां सपरौकराम् । अङ्गुष्ठो भैरवो
देवश्चानामा शक्तिरुच्यते । शिवशक्तिसमायोगात्तर्पयेद्देवि ! देव-
ताम् । तर्पणं त्रिविधं देवि ! श्रेष्ठं मध्यं कनीयसम् । श्रेष्ठञ्च
दिव्यभावस्य वीरभावस्य मध्यमम् । कनीयसं पशूनाञ्च हृदि यन्त्रे
जले क्रमात् । ततस्तत्त्वशुद्धिं कुर्यात् । तदुक्तं श्रुतौ । प्राणा-

पानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा
भूयासं स्वाहा ॥ १ ॥ ओं पृथिव्यप्तेजोवायुकाशानि मे शुध्य-
न्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्माभूयासं स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ प्रक-
त्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्राणि मे इत्यादि ॥ ३ ॥ ओं त्वक्चक्षुर्जिह्वा-
घ्राणवचांसि मे इत्यादि ॥ ४ ॥ ओं पाणिपादपायूपस्थशब्दा
मे इत्यादि ॥ ५ ॥ ओं वायुतेजःसलिलभूम्यात्मनो मे इत्यादि
॥ ६ ॥ ओं स्पर्शरूपरसगन्धघोषाणि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहमि-
त्यादि ॥ ७ ॥ इति सप्तमात्रान् पठित्वा कारणेन करतलं सम्मार्ज्यं
दक्षहस्ते त्रिकोणं लिखित्वा कलासदृशीं शुद्धिं त्रिकोणद-
क्षिणोत्तरसम्मुखमध्ये तु निधाय वामहस्ताङ्गुष्ठमध्यमानामा-
योगैरेकां गृहीत्वा मूलमन्त्रान्ते ह्रीं श्रीं आत्मतत्त्वेन स्थूल-
देहं शोधयामि स्वाहा । अनेनाधःशुद्धिं सूक्ष्मत्वे ह्रीं श्रीं विद्या-
तत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा । अनेन दक्षिणस्थं सूक्ष्मत्वे
ह्रीं श्रीं शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा । अनेनोत्तरस्थं
सूक्ष्मत्वे ह्रीं श्रीं सर्वतत्त्वेन तत्त्वत्रयाश्रयं जीवं शोधयामि
स्वाहा । अनेन वाममध्यमाञ्च सूक्ष्मत्वे वस्त्रेण हस्ती संशोध्य
हस्ताभ्यां सर्वाङ्गं मार्जयेदिति तत्त्वशुद्धिः ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां सप्तमे निगुणकाण्डे पूर्णाभिषेकादि-
कथनं नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥

अथ वीराचारपूजा ॥ क्लृप्तकलासदीपिकायां तृतीयपटले ॥
आदौ दीपनी देवेशि ! वक्तव्या वीरपूजिते ! । यस्य विज्ञान-
मात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । सर्वेषामेव देवानां दीपनीया
प्रकीर्तिता । चतुर्वर्गप्रदा विद्या सिद्धिविद्यासु पार्वति ! ।
अनया तु विना विद्या न सिध्यति कदाचन । विना पूजां
विना ध्यानं विनाचारं महेश्वरि ! । साधको ज्ञानमात्रेण
भवेन्मुक्तो महानघः । तत्कुले नैव दारिद्र्यं तद्भोले नास्त्यप-

ण्डितः । प्राणं देयाद्वनं देयात् कुलं देयात् स्त्रियोऽपि च । एनां
 विद्यां महेशानि ! न दद्याद्यस्य कस्यचित् । कालीवीजत्रयं
 कूर्चयुगलं तदनन्तरम् । लज्जावीजद्वयं देवि ! दक्षिणे कालिके
 तथा । पुनस्तान्येव वीजानि वङ्गिकान्तावधर्मनुः । भैरवोऽस्य
 ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदाहृतम् । दक्षिणाकालिका प्रोक्ता
 देवता तन्त्रगोपिता । वीजं शक्तिञ्च देवेशि ! कूर्चं लज्जां
 क्रमात् प्रिये ! । अङ्गन्यासकरन्यासौ मायया परिकीर्त्तिता ।
 करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् । चतुर्भुजां महा-
 देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् । सद्यः कृतशिरःखड्गवामोर्ध्वध-
 करास्त्रुजाम् । अभयं वरदञ्चैव दक्षिणाधोर्ध्वपाणिकाम् । महा-
 मेघप्रभां श्यामां करकङ्कालकान्विताम् । कण्ठावसक्तमुण्डालीं
 गलद्रुधिरचर्चिताम् । घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नत-
 पयोधराम् । श्वरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थिताम् । महा-
 कालेन च समं विपरीतरतातुराम् । एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन
 मद्यैर्मसैश्च भक्तितः । रक्तपुष्पै रक्तपद्मै रक्ताम्बरसमन्वितैः ।
 सम्पूज्य यत्नतो मन्त्री परिवारान् समर्चयेत् । पीठपूजां ततो
 देवि ! आधारशक्तिपूर्वकम् । प्रकृतिं कमठञ्चैव शेषं पृथ्वीं तथैव
 च । सुधास्त्रुभिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा । श्मशानं
 पारिजातञ्च तन्मूले मणिवेदिकाम् । तस्योपरि मणेरः पीठं
 न्यसेत् साधकस्तमः । चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवाञ्च नर-
 मुण्डकान् ॥ धर्माद्यधर्मादीश्चैव ओं ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।
 केशरेषु च पूर्वादिष्विच्छाज्ञानक्रिया तथा । कामिनी कामदा
 चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च । श्रियानन्दा महेशानि ! मध्ये
 चैव मनोन्मनी । कालीं कपालिनीं कुक्कुटां कुरुकुक्कुटां विरो-
 धिनीम् । विप्रचित्तां महेशानि ! वह्निः षट्कोणके बुधः ।
 उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां न्यसेत् पद्मत्रिकोणके । मातृां सुद्रां मिता-

ज्वैव न्यसेच्चान्यत्रिकोणके । सर्वाः श्यामा असिकरा मुखमाला-
 विभूषिताः । तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः ।
 दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्ववाहनभूषिताः । एवं ध्यात्वा प्रय-
 त्नेन पूजयेदष्टपत्रके । ब्रह्माणीं नारायणीञ्चैव तथा माहे-
 श्वरौ प्रिये । अपराजिताञ्च कौमारीं वाराहौमर्षयेद्बुधः ।
 नारसिंहीं प्रपूज्यैव ततो दक्षिणतो यजेत् । महाकालं यजे-
 द्वे वि ! विपरीतरतान्तरे । दिगम्बरं मुक्तकेशं चण्डवेशं प्रय-
 त्नतः । एवं सम्पूज्य यत्नेन यजेन्मन्त्रमनन्यधीः । विना मद्यं
 विना मांसं यदि देवीं प्रपूजयेत् । देवताशापमाप्नोति मृते
 नरकमश्नुते । विना परस्त्रिया देवि ! जपेद् यदि तु साधकः ।
 शतक्रोतिजपेनेव तस्य सिद्धिर्न जायते । स्त्रियो गतिः स्त्रियः
 प्राणाः स्त्रियः सिद्धिर्न संशयः । नारीणां स्मरणे काली
 स्मारिता स्यान्न संशयः । कण्ठे कण्ठं मुखे वक्त्रं वक्षोजं चोरसि
 प्रिये । कुलागारे तथा दण्डं दत्त्वा यो जपते नरः । जपा-
 द्देनैव देवेशि । साक्षाद्भवति कालिका । तस्यै कुलरसं देवि !
 प्राययित्वा यथोचितम् । स्वयं पीत्वा जपेन्मन्त्रं सिद्धिर्भवति
 नान्यथा । एतस्य च प्रयोगेण ग्लानिर्यस्य प्रजायते । कालि-
 कामन्त्रवर्गेषु नाधिकारो स उच्यते । लक्ष्मात्रजपेनैव पुरश्चर-
 णमुच्यते । क्षत्रियाणां हिलक्षं स्याद्वैश्यानाञ्च त्रिलक्षकम् ।
 शूद्राणान्तु चतुर्लक्षं पुरश्चरणमुच्यते । लक्षमात्रं जपेद्देवि !
 हविष्याशी दिवा शुचिः । रात्रौ निशीथे तावच्च पीत्वा कुल-
 रसं प्रिये । कुलनारीगणोपेतो जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । एवमुक्त-
 विधानेन दशांशं होममाचरेत् । तद्दशांशं तर्पणञ्च तद्दशांश-
 भिक्षेचनम् । तद्दशांशविप्रभोज्यं कीर्तितं परमेश्वरि ! । पुष्पिणी-
 मकरन्देन होमतर्पणमाचरेत् । एवं प्रयोगमात्रेण सिद्धौ
 भवति नान्यथा । वाक्सिद्धिं लभते देवि ! कवित्वं निर्मलं

प्रिये ! । धनेनापि कुवेरः स्याद्विद्यया स्याद्वहस्यति । आक-
 ल्पजौवनी भूत्वा अन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् । प्रयोगारम्भकाले च
 सुरा दुग्धमयी भवेत् । लोहितं वा भवेद्देवि ! मांसं पुष्पमयं
 भवेत् । सुरापात्रं भवेच्छून्यं मांसपात्रं विशेषतः । कला
 कलान्तरञ्चैव पुष्पं पुष्पान्तरं भवेत् । नवनीतं मांसतुल्यं
 मांसं पुष्पं भवेत् प्रिये ! । एवं ज्ञात्वा साधकेन्द्रो जायते च
 क्रमेण तु । यस्यात्र प्रत्ययो देवि ! लभते नात्र संशयः । मनो-
 योर्मं तदर्द्धं स्याद्यज्ञेन वरवर्णिनि ! । सौवर्णं राजतञ्चैव तथा
 मौक्तिकमेव च । विद्रुमं पद्मरागञ्च तथैव वरवर्णिनि ! । प्रोक्तं
 मालाचतुष्कञ्च समभागेन मालिकाम् । ग्रथयेत् पट्टसूत्रेण
 पुष्पिणी गृहवर्तिनी । लोहितेन वरारोहे ! सर्पाकारां सुशो-
 भनाम् । स्नापयेत् पञ्चगव्येन मकरन्देन पार्वति ! । तारं
 मायां कूर्चयुग्मं माले माले पदं तथा । वङ्गिकान्तां समु-
 च्चार्य्य शतं जम्बाभिमन्त्रयेत् । स्नापयेत् पीठमध्ये तु शून्यागारे
 वरानने ! । ततस्तां मालिकां देवि ! गृहीत्वा यत्नतः सुधीः ।
 ज्ञात्वा सिद्धिन्तु निकटे महोत्सवमयाचरेत् । षोडशाब्दां
 सुयुवतीं समानीय प्रयत्नतः । तामुद्वर्त्य स्वयं गन्धैः स्नापये-
 च्छुद्धवारिणा । दिव्यालङ्कारशोभाभिर्दिव्यपुष्पैः सुगन्धिभिः ।
 पूजयित्वा च मिष्टान्नैर्भोजयेत्तां वराननाम् । आसवं पाययेद्
 यद्भान्निश्चयं तन्मयं पिबेत् । ततो मन्त्रो रमयेत्तां रतिमिच्छति
 सा यदा । तस्या हस्ते ततो मालां दत्त्वा तां याचयेद्बुधः ।
 नीत्वा मालां तथा दत्तां ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः । तदा जपेद-
 ह्वरात्रौ साक्षाद्भवति नान्यथा । तत्रापि प्रत्ययो नो चेत्
 कलामध्ये विशेद्बुधः । पर्यङ्कस्य चतुष्पार्श्वे पट्टसूत्रं मनो-
 रमम् । बद्धा द्वाविंशतिग्रन्थिं रमापुटितमूलकैः । निवेश्यैव
 स्वरत्नार्थं प्राञ्चालीं सैन्धवीं तथा । वक्ष्यमाणक्रमेणैव वस्त्रोपरि

निधापयेत् । षोडशाब्दां परलतां गणिकाञ्च विशिषतः ।
 समानोय प्रयत्नेन दिव्यपुष्पैर्निवेदयेत् । भोजयेन्मिष्टभोज्यानि
 क्षीमवस्त्रं परिधापयेत् । लेपयेद्दिव्यगन्धेन भूषणैर्भूषयेत्
 स्वयम् । रमयेत् परया भक्त्या साधकः सिद्धिहेतवे । जप-
 स्वाङ्घ्रिजपेनैव सिद्धिर्भवति नान्यथा । विना मद्यं महेशानि !
 न सिध्यति कदाचन । तस्मादादौ प्रयत्नेन पीत्वा तां पाय-
 येदुबुधः । तत्रापि प्रत्ययो नो चेच्चारुहोमं प्रकल्पयेत् ।
 निशीथे निर्भयो देवि ! श्मशाने प्रान्तरे तथा । गन्धैः स्नाना-
 दिकं कृत्वा पादशौचादिपूर्वकम् । घटमारोपयेत्तत्र सौवर्णं
 राजतं तथा । ताम्रं वा तं महेशानि ! विभवानुक्रमेण तु ।
 कल्पयित्वा निशाभागे पूजयेत् परमेश्वरीम् । उपाचारैर्यथाशक्ति
 वित्तशाल्यं विवर्जयेत् । देवौपूजां विधायैव पिष्टन्तु परिदाप-
 येत् । चरौ निधाय यत्नेन चतुष्पिष्टकवर्तुलम् । ततश्चरुं पाय-
 येत्तु कुण्डमध्ये तु पूजयेत् । रक्तां घनां बलाकाञ्च नीलां कालीं
 कलावतीम् । द्वारेषु पूजयेन्मन्त्री लोकपालान् प्रयत्नतः ।
 ग्रहान् सम्पूजयेन्मन्त्रौ चतुष्कोणक्रमेण तु । हविर्धारां हुमे-
 न्मन्त्रौ यथाशक्त्या ततश्चरुम् । श्रावयेन्मूलमन्त्रेण मधुना सिद्धि-
 हेतवे । हुता सञ्छादयेन्मन्त्रौ हुताशं पीतवाससा । पूजयेद्
 यत्नतो मन्त्रौ ततो दक्षिणकालिकाम् । धूपदौपैश्च नैवेद्यैः
 प्रदक्षिणमथाचरेत् । पिष्टवर्तुलसङ्घातं सुवर्णादि प्रजायते ।
 एकेनैव प्रयोगेण यदि सिद्धिर्भवेत् प्रिये । । तथा होमो
 द्वितीयेन रौप्यं वापि सुरेश्वरि ! । तृतीयेन भवेत्ताम्रं
 लौहं तुर्य्येण च स्मृतम् । एषामन्यतमां ज्ञात्वा
 साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् । सिद्ध्यायां कालिकायाञ्च नैन्द्रं
 दुर्लभमुच्यते । गुरुमूलमिदं सर्वं तस्मादादौ समर्चयेत् । तस्य
 प्रसादमात्रेण सिद्धो भवति नान्यथा । तत्रापि प्रत्ययो नोचेत्

प्रदक्षिणमथाचरेत् । अमावस्यादिने चैव निशीथे गत-
साध्वसः । श्मशाने प्रान्ते वापि गत्वा देवीं प्रपूजयेत् । सद्य-
मांसोपचारैश्च धूपदीपैर्मनोरमैः । नैवेद्यैः सामिषान्नेश्च तथैव
वरवर्णिनि ! । द्रव्यैर्लोहितवस्त्रैश्च स्वर्णाभरणभूषितैः । जप-
मूलं श्लोघरुद्धं प्रदक्षिणमथाचरेत् । प्रणमेद्वण्डवद्भूमावनिशं
गिरिसम्भवे ! । निशायामुत्तमं यावन्निशाशेषं महेश्वरि ! ।
यदि भोतिर्भवेत्तत्र तदा हृदतरो भवेत् । दन्तादन्ति विधा-
यैव मनसैव मनुं स्मरेत् । अवश्यं श्रूयते शब्दः शिखा च
दृश्यते स्थले । यदि तत्र भवेद्देवि ! शब्दो गुणगुणो भवेत् ।
ततः परलतासक्तः पुनः कार्यं तथैव च । तदा भवति चार्वङ्गि !
देववाणी सुशोभना । सिद्धिमावश्यकं ज्ञात्वा महोत्सवमथा-
चरेत् । तथापि प्रत्ययो नोचेत् भगयागमथाचरेत् । कामिनो
युवती यन्नात् पुष्पिताञ्च विशेषतः । तामानीय प्रयत्ने न स्वञ्च
भूषणमाचरेत् । तामुद्वर्त्य स्वयं गन्धैर्भूषणैर्वसनैस्तथा ।
मिष्टान्नैर्भोजयित्वा च भक्त्या परमया शिवे ! । तां विवस्त्रां
विधायैव स्थापयेदूर्ध्वतल्पगे । ततः पूजां विधायैव नाना-
सम्भारसंयुतैः । तत्रैव रचयेद्यन्त्रं रक्तचन्दनयावकैः । भग-
नासां भगप्राणां भगदेहां भगस्तनीम् । पूजयेदष्टपत्रेषु मध्ये
देवीं प्रपूजयेत् । रक्तगन्धै रक्तमाल्यै रक्तवस्त्रैर्मनोरमैः । पूजये-
द्भक्तितो मन्त्रौ देवीदर्शनकाम्यया । एतस्मिन् समये देवि !
रतिमिच्छति सा यदा । लतान्तु रमयेद्देवि ! यावद्दोमं करोति
न । पुष्पिणीमकरन्देन ततो ह्रीमं समाचरेत् । ओं नमस्ते
भगमालायै भगरूपधरे ! शुभे ! । भगरूपे ! महाभागे ! भोग-
मोक्षेकदायिनि ! । भगवत्याः प्रसादेन मम सिद्धिर्भविष्यति ।
कालि ! कालकलारूपे ! कुलोने ! कुलरूपिणि ! । कुलमार्ग-
प्रसादेन मम सिद्धिर्भविष्यति । एवं स्तुत्वा महेशानि ! कूर्च-

योजसहस्रकम् । जप्यं देवेशि ! वचसा नारसिंहं शतावधि ।
 उन्मत्ता सा स्वयं ब्रूते यदा साक्षाद्भविष्यति । अवश्यं कथयेत्
 कान्ता नात्र कार्य्या विचारणा । इति ते कथितं देवि !
 गुह्याहुं ह्यतर् परम् । प्रकाशात् कार्य्यहानिः स्यात्तस्माद्यत्नेन
 गोपयेत् । अत्राशक्तो महेशानि ! कलावटीं समाचरेत् ।
 कुङ्कुमं चन्दनं चन्द्रं एकौकृत्य तु पेषयेत् । जपेत् सहस्रं
 देवेशि ! देवीञ्चैव प्रपूजयेत् । कामिनीं पूजयेद्भक्त्या तस्या
 मूर्ध्नि कारयेत् । तिलकं वक्ष्यमात्रेण स्वयं शिरसि धार-
 यन्तु । रमा वाष्पी भवानी च सर्वसम्प्राप्तिनो तथा । ड्युता
 परमेशानि ! वङ्गिकान्तावधिर्मनुः । अनेन शतजप्तेन तिलकं
 मूर्ध्नि कारयेत् । कलाञ्च पूजयेद्यद्वाद्वाभरणभूषिताम् ।
 पाययेत् सा स्वयं यत्नात् स्वयं पीत्वा च यत्नतः । जायते देववाणो
 च ततो देवो न संशयः । एवं भूत्वा वरारोहे ! ततो यत्नं
 समाचरेत् । अथवा देवदेवेशि ! नमनीभूय विचक्षणः । नमनां
 परलतां पश्यन् जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । यामोत्तरं समारभ्य
 यामद्वयमतन्द्रितः । मद्यमांसोपचारैश्च पूजयित्वाष्टदेवताम् ।
 रक्षाथं खड्गपाणिस्तु स्वपार्श्वेऽपि नियोजयेत् । गणनाथं चैत्र-
 पालं वटुकं योगिनीं तथा । बलिभिः सामिषान्नैश्च यजेत्
 परमसुन्दरि ! । वृत्तप्रदीपं प्रज्वाल्य ततो देवीं समर्चयेत् ।
 ततः सहस्रं जपतो देवतादर्शनं भवेत् । अथवा नियमौ भूत्वा
 भूतलिप्यभिसम्पुटम् । जपेत् प्रतिदिनं देवि ! सहस्रं
 सिद्धिहेतवे । दिवारात्रौ संस्मरणं हविस्थाशनमेव च । सर्वदा
 धीतवस्तञ्च परिधाय प्रयत्नतः । स्नेच्छसम्भाषणञ्चैव पिष्टकं
 यत्नतस्त्यजेत् । केवलं दुग्धपायो स्यादथवा यावकाशनः ।
 शकाहारो जलाहारो निराहारोऽथवा भवेत् । तीर्थमासाद्य
 निवसेद्भुवो वा प्रियमेव च । कुमारीं पूजयेद्यद्वाद्वाभरण-

संयुताम् । मासे पूर्णं वरारोहे ! निशीथे गतसाध्वसः । महा-
 पूजां प्रकुर्वीत लतामण्डलमध्यगः । मद्यैर्मांसैश्च विविधैरन्यैश्च
 विविधैस्तथा । सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या सर्वदा तिमिरालये ।
 सहस्रजपमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा । साक्षादायाति सा
 देवी सत्यं सत्यं न संशयः । साक्षादयाति वरारोहे ! भवे-
 दिन्दुसमो नरः । अञ्जनं पादुकासिद्धिः खड्गसिद्धिर्वरानने ! ।
 अजरामरता देवि ! कामिनीसिद्धिहेतवे । तथा मधुमती-
 सिद्धिर्जायते नात्र संशयः । देवचेटीशतं तस्या वश्यं
 भवति नान्यथा । स्वर्गं मर्त्यं च पाताले स यत्र गन्तुमिच्छति ।
 तत्रैव चेटिकाः सर्वा नयन्ति नात्र संशयः । रक्षा वापि घृताची
 वा यदि जपति साधकः । तदैव याति सा देवी नात्र
 कार्या विचारणा । इच्छासृत्युर्भवेद्देवि ! किमन्यत् कथ-
 यामि ते । एष विधिर्दक्षिणाया गुह्यस्तन्वसहस्रके । तव स्नेहा-
 वरारोहे ! कथितो हि न संशयः । अथवा गणिकां गत्वा
 पूजयेद्भक्तिभावतः । तथा सह जपेन्मन्त्रं पिवेदनिशमासवम् ।
 निवेद्य परया भक्त्या पाययेत्तां प्रयत्नतः । एवं ज्ञात्वा विधा-
 नन्तु मासमेकं वरानने ! । प्रत्यहं होमयेद्दिद्वान् नित्यं
 स्याद्विप्रभोजनम् । मासे पूर्णं साधकेन्द्रो निशीथे तु लतायुतः ।
 साक्षात् पूजाक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम् । महातिमिर-
 मध्यस्थो जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । तत्क्षणाज्जायते सिद्धिः सत्यं
 देवि ! वदामि ते । अथवा निम्बकाष्ठेन पाञ्चालीं रचये-
 द्बुधः । कान्ताकारामसिद्धाञ्च स्नातामूर्द्ध्वकरिवतीम् । गत्वा
 निर्जनदेशे तु महाकान्तारके प्रिये ! । तत्र पूजाविधिं
 कृत्वा प्रयोगविधिमाचरेत् । विलिखेच्चन्दनेनैव भुवि मन्त्रं
 मनोरमे ! । पाञ्चालीं स्थापयेत्तत्र रक्तवस्त्रोपरि प्रिये ! ।
 तत्र गत्वा चतुर्दिक्षु कौलकान् रोपयेत् प्रिये ! । तत्रैव लोक-

पालांश्च स्वस्वमन्त्रेण कीलितान् । गणेशं वटुकं क्षेत्रं
 योगिनीं चन्द्रदिक्षु च । सम्पूज्य विधिवन्मन्त्रौ दूर्वाक्षतसम-
 न्वितः । ओं ये चात्र संस्थिता भूताः श्वेताः कुष्माण्डरूपिणः ।
 योगिन्यो यातुधानाश्च महारौद्राश्च ये तथा । गन्धर्वा विघ्न-
 कर्तारः किन्नराश्च पिपीलिकाः । चिपिटाः शङ्कराश्चैव चोर-
 दंष्ट्रा महोल्कटाः । सूचीमुखामहापापाः पापकर्मरताश्च ये ।
 ताडितास्तु मया सर्वे प्रयान्तु शङ्कराक्षया । कूर्चमन्त्रं
 ससुचार्यं ताडयेदक्षतेर्भृशम् । महापूजाविधानेन देवीं
 सम्पूज्य यत्नतः । ततः पुत्तलिकाभाले मूलमन्त्रं लिखेत् सुधीः ।
 पूजयेद्देवतास्तस्या अङ्गे देवि ! यथोचिताः । ललाटे कालि-
 काश्चैव नेत्रयोर्भद्रकालिकाम् । कर्णयोर्गुह्यकालौश्च जिह्वायां
 सिद्धिकालिकाम् । श्लेशानकालिकां मूर्ध्नि महाकालौश्च
 वक्षसि । कक्ष्याञ्च कालिकां यत्नाद् गले श्रौयीनिकालिकाम् ।
 एवं सम्पूज्य यत्नेन हृदि मूलं शतं जपेत् । अन्यकारे महाघोरं
 निर्जने वा सुरालये । सहस्रजपमात्रेण साक्षाद्भवति नान्यथा ।
 अथवापि चितामध्ये रश्मामूलं समाश्रयेत् । पूजयेत् परया
 भक्त्या नानाभरणसंयुताम् । मद्यमांसोपचारेण तरुणीगण-
 मध्यगः । आनिशीथं जपेन्मन्त्रं साक्षाद्भवति नान्यथा । अथवा
 कर्णिकारस्य बीजेन परमेश्वरि ! । रचयेन्मालिकां दिव्यां
 रक्तवस्त्रेण पावति । । पुष्पिणोऽष्टहरक्तेन शोभयेत् परमेश्वरि ! ।
 ततोऽपि धूपयेद्देवि ! कालागुरुसमुद्भवैः । धूमैरभोजनयने ।
 देवीं सम्पूज्य यत्नतः । मद्यमांसोपचारैस्तु साक्षाद्भवति नान्य-
 था । इति ते कथितं देवि ! गुह्याद् गुह्यतरं परम् । प्रकाशात्
 सिद्धिहानिः स्यात्तस्माद् यत्नेन गोपयेत् । अथवा काकजङ्घाया
 खतां दग्ध्वा प्रयत्नतः । तद्भस्मना वरारोहे ! भूषयेत् स्वतनुं
 तथा । ततश्चितायां देवेशि ! नग्नोभूय विचक्षणः । जपे-

देकान्तरात्मा च साक्षाद्भवति नान्यथा । अथवापि वराहाणां
 भुक्तानां भुवि रोपयेत् । तत्र देवीं समभ्यर्च्य मद्यमांसप्रयोगतः ।
 पूजयेत् परमेशानि ! नानाद्रव्यैर्मनोरमैः । पूजयित्वा प्रय-
 त्नेन जपेन्मन्त्रमनन्यधोः । ततः साक्षाद्धारोहे ! नात्र कार्या
 विचारणा । अथवापि वरारोहे ! प्रयोगविधिमाचरेत् । नर-
 मुण्डं समानीय मार्जारस्यापि पार्वति ! गोमुण्डं सार्द्धं मानोय
 भूमौ निक्षिप्य यत्नतः । ततः पोठं समारोप्य देवीं ध्यात्वा तु
 साधकः । पूजयद्दर्शनात् तामासवादिसमन्वितः । जपेत्
 परया भक्त्या सहस्रावधि साधकः । ततः साक्षाद्भवेद्देवि ! नात्र
 कार्या विचारणा । अथवा वनितां रम्यां गत्वा देवेशि ! यत्नतः ।
 पीत्वा तदधरं सम्यक् कर्पूरेण तु पूरयेत् । तदुयोनी कुङ्कुम-
 च्चैव तत्कर्णे क्षौद्रमेव च । ततो भुक्त्वा तु तां कान्तां तन्मन्त्रं
 परमेश्वरि ! तत् कुङ्कुमञ्च तत् क्षौद्रमेकीकृत्य प्रयत्नतः ।
 तदेव तिलकं कृत्वा निशीथे गतसाध्वसः । सहस्रञ्च जपेन्मन्त्री
 ततः साक्षाद्भवेत्तदा । अथवापि शरीरोत्तराधारेण वरानने !
 यत्नं निर्माय यत्नेन तत्र देवीं समर्चयेत् । मद्यमांसोपचारैश्च
 अकेपुष्पैर्वरानने ! सहस्रजपमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
 अथवा परमेशानि ! गङ्गातीरे वसेत् सुधीः । उपवासद्वयं कृत्वा
 कुर्यात् स्नानमतन्द्रितः । ततो देवीं समभ्यर्च्य धूपदीपैर्मनो-
 रमैः । हविष्यान्नैश्च नैवेद्यैः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः । भुक्त्वा
 पीत्वा स्त्रिया सार्द्धं निशीथे गतसाध्वसः । जपेत् सहस्रं देवेशि !
 ततः सिद्धिर्वरानने ! अथवा वटमूलस्थो दिग्वासा मुक्त-
 केशवान् । लताभिर्वेष्टितो भूत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधोः । ततः
 साक्षाद्भवेद्देवि ! नात्र कार्या विचारणा । एतेनापि प्रयोगेण
 यदि साक्षान्न जायते । ततो देवि ! प्रवक्ष्यामि उपायं परमा-
 ज्ञतम् । एकेनैव प्रयोगेण यदि साक्षान्न जायते । द्वितीयं

वापि कुर्वीत तृतीयं वायवा प्रिये ! । तृतीयेन नचेत् सिद्धि-
 स्तत्रोपायं वदामि ते । वस्त्रे शुक्ले तथा रक्ते पीते वा नील-
 वाससि । पुत्तलीं रचयेद्देव्याः सर्वावयवसुन्दरीम् । पूजयेत्
 क्रोधरूपेण रक्तवस्त्रैर्मनोहरैः । तत्र देवीं जपेद् यन्त्रे समभ्यर्च्य
 सहस्रकम् । रक्तचन्दनबीजेन तत्र कल्पितमालया । ततः
 शास्त्रलिकाष्ठेन निम्बकाष्ठेन वा प्रिये ! । वङ्गिं प्रज्वाल्य
 यत्नेन तत्र वङ्गिं प्रपूजयेत् । ततः पुत्तलिकाभाले लिखेन्मन्त्रं
 वरानने ! । सिन्दूरपुत्तलीं देवि ! ततो वङ्गौ तु तापयेत् ।
 ताडयेन्मूलमन्त्रेण मूलमन्त्रेण रक्षयेत् । चालयेत् शुद्धदुग्धेन
 अथवा दधिवारिणा । ततो हुंकारं प्रजपेत् सहस्रं परमेश्वरि ! ।
 ततः साक्षाद्देवे वि ! नात्र कार्या विचारणा । अथवा ताडये-
 द्देवि ! नारसिंहेन पार्वति ! । हविष्याशी दिवा भूत्वा ब्रह्म-
 चारिसमो नरः । रात्रौ ताम्बूलपूरास्यो तलामण्डलमध्यगः ।
 नारसिंहेन देवेशि ! पुटितन्तु मनुं जपेत् । ततो लज्जजपेनैव
 साक्षाद्भवति नान्यथा । अवश्यं जायते साक्षान्ममैव वचनं
 यथा । अथवापि वरारोहे ! नौकालौहेन पार्वति ! । शूलं
 निर्माय यत्नेन पटे देवोन्तु कल्पयेत् । तां पूजयेत् प्रयत्नेन
 रक्तचन्दनपुष्पकैः । पूजयित्वा प्रयत्नेन तस्याङ्गे पीठदेवताम् ।
 आवाह्य विधिवद्भक्त्या जपेन्मन्त्रमनन्यधीः । शूलं सम्पूजयेद्
 यत्नात्तीक्ष्णं परमदुर्लभम् । ओं महाशूल ! नमस्तुभ्यं सर्वदैत्या-
 न्तकारिणे । अस्त्रद्वयं समुच्चार्य ततः शूलेन वक्षसि । उद्य-
 मेनैव सा कालो आयाति च न संशयः । अवश्यं जायते साक्षा-
 न्ममैव वचनं यथा । अथवा कालिकाबीजं शतं संलिख्य
 यत्नतः । पूर्वपत्रे कुङ्कुमेन मन्त्रं स्वर्णशलाकया । विलिख्य
 भुवि देवेशि ! तत्र कान्तां समानयेत् । तद्वात्र पूजयेद्देवीं
 नान्मभरणसंयुताम् । निशीथे तु जपेन्मन्त्रमेकान्ते कान्तया

सह । जपेन्मन्त्रं सहस्रन्तु ततः साक्षाद्भवेद्भुवम् । इति ते
कथितं देवि ! गुह्याद्गुह्यतरं परम् । अप्रकाश्यमिदं देवि !
गोपयेत् मातृजारवत् ॥

चतुर्दशपटले ॥ दक्षिणायाश्च विद्याया गुह्याग्राश्चापि
सुन्दरि ! । महाकाल्या महाविद्या सिद्धिकाल्याश्च पार्वति ! ।
श्मशानकालिकायाश्च नायिकायाश्च शैलजे ! । तन्मायिकानां
देवेशि ! वक्ष्यते साधनं ततः । उक्तञ्च परमेशानि ! वक्तव्यञ्चापि
पार्वति ! । कालौवीजं महेशानि ! मन्त्रः सर्वोत्तमोत्तमः ।
त्रिगुणा देवि ! विख्याता विद्या परमदुर्लभा । पूर्वोक्तं सकलं
कुर्यात् फलं तावद्भवेत् प्रिये ! । नमोऽन्तो वा भवेन्मन्त्री वषड-
न्तोऽपि भाविनि ! । लज्जाद्यो वा भवेद्देवि ! वाग्भवाद्यो
महामनुः । एतन्मन्त्रं वरारोहे ! सर्वतन्त्रेषु गोपितम् । भैरवो-
ऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द इति स्मृतम् । पूजाध्यानादिकं
सर्वं पूर्ववत् परिकीर्तितम् । साधनं सकलं देवि ! पूर्ववत्
परिकीर्तितम् । या ख्याता त्र्यक्षरी विद्या स्वाहान्ता परिकी-
र्तिता । पञ्चाक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता । ध्यानं
पूजादिकं सर्वं पूर्ववत् परिकीर्तितम् । साधनं सकलं देवि !
लतागणसमन्वितम् । एकाक्षरी महाविद्या स्वाहान्ता त्र्यक्षरी
स्मृता । साधनं परमेशानि ! मद्यमांसोपचारतः । एकाक्षरी
महाविद्या स्वाहान्ता परिकीर्तिता । फडन्ता वा महेशानि !
वषडन्ता समोरिता । नमोऽन्ता वा महेशानि ! सर्वसिद्धि-
प्रदायिनी । पूर्ववीजं वरारोहे ! काली चान्द्रं वरानने ! ।
कालिकाया महाविद्या गोपिता सर्वतन्त्रके । धरावीजं वरा-
रोहे ! काली लक्ष्मीश्च वाग्भवम् । एतन्मन्त्राक्षरं देवि !
कालिकायाः सुदुर्लभम् । एतेषां मन्त्रवर्याणां ऋषिः स्यादुग्र
भैरवः । छन्दोऽनुष्टुपिति ख्यातं देवता दक्षिणेरिता ॥

अथ वक्ष्ये महेशानि । गुह्यकाल्याः शुभावहा । कालीवीज-
 त्रयं देवि ! गुह्यकालीयुतं ततः । स्वाहान्ता कथिता विद्या
 विद्येयं परमा मता । नमोऽन्ता वापि सा ज्ञेया षष्ठ्यन्तापि
 सा स्मृता । कालीवीजं समुद्धृत्य धरावीजं समुद्धरेत् । लज्जा-
 वीजं समुद्धृत्य कूर्चवीजं समुद्धरेत् । स्वाहान्ता कथिता विद्या
 चतुर्वर्गफलप्रदा । कूर्चलज्जायुगं देवि ! तथा काली प्रकी-
 र्त्तिता । स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
 एतासामेव विद्यानां ह्यन्त उष्णिगिति स्मृतम् । ऋषिः स्वाह-
 क्षिणामूर्त्तिर्देवता दक्षिणा स्मृता । कूर्चत्रयं वरारोहे ! स्वाहान्ता
 हि प्रकीर्त्तिता । कालीवीजं समुद्धृत्य कालीकालीपदं तथा ।
 महाकालीपदं तस्मात् स्वाहान्तः प्रतिमानतः । सर्वतन्त्रेषु
 विख्यातो महाकाल्या महामनुः । कालीवीजं समुद्धृत्य महा-
 काली च ड्युता । स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफल-
 प्रदा । असितावीजमुद्धृत्य महाकालीपदं द्विधा । स्वाहान्ता
 कथिता विद्या महाभूतिविवर्द्धिनी । काली लक्ष्मी रमा
 माया स्मै परः परिकीर्त्तितः । नमोऽन्तोऽयं मनुर्देवि ! साक्षा-
 न्मक्तिप्रदो मतः । कालीवीजं समुद्धृत्य लज्जावीजं समुद्धरेत् ।
 सिद्धिकालीपदं ड्यन्तमसितान्तं वरानने । एतासामेव
 विद्यानां गायत्रीच्छन्द ईरितम् । देवतास्या महाकाली चतु-
 र्वर्गफलप्रदा । स्वाहान्ता वा वरारोहे ! षष्ठ्यन्ता वापि
 कालिका लज्जावीजं समुद्धृत्य निजवीजं समुद्धरेत् । सिद्धि-
 कालो ततो ड्यन्ता स्वाहान्तेयं प्रकीर्त्तिता । नमोऽन्ता सा
 महादेवी चतुर्वर्गफलप्रदा । असितामेतदुद्धृत्य भवानीवीज-
 समुद्धरेत् । वाग्भवं परमेशानि ! परावीजं ततः स्मृतम् । काली-
 कालीपदं तस्मात् सिद्धिकालीपदं ततः । षष्ठ्यन्तासौ महा-
 विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता । रमावीजत्रयं देवि ! लज्जावीज-

त्रयं तथा । कामवीजत्रयं देवि ! सिद्धिकाली च ड्युता ।
 स्वाहान्ता कथिता विद्या मुक्तिमार्गप्रदीपिका । एतासां
 सौम्यविद्यानां गायत्रीच्छन्द ईरितम् । ऋषिः स्यात् कपिलो
 देवि ! देवता सिद्धिकालिका । कालीबीजं समुद्रुल्य श्मशान-
 कालिकापदम् । ड्युतं परमेशानि ! सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।
 कालीबीजं समुद्रुल्य कूर्चबीजं वरानने ! । स्वाहान्ता कथिता
 विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिनी । कूर्चद्वयं वरारोहे ! देवीबीजं
 महेश्वरि ! । सर्वसिद्धिप्रदा विद्या सर्वशास्त्राविरोधिनी ।
 विश्वामित्रो मुनिः प्रोक्तो गायत्रीच्छन्द उच्यते । श्मशान-
 कालिका देवी सर्वतन्त्रेषु गोपिता । एतासां साधनं देवि !
 पूर्वोक्तं परमेश्वरि ! । सर्वासां वक्ष्यमाणन्तु पुरस्सरणमुच्यते ।
 अनेनापि प्रयोगेण सिद्धिर्भवति नान्यथा । श्मशानकालिका-
 यास्तु कलायामुपवेशनम् । कलास्थाने महेशानि ! कुमारी-
 योग उच्यते । अष्टवर्षा तु या बाला द्वादशाधो महेश्वरि ! ।
 स्थापयेत्तु चतुष्पाश्वं मिष्टभोजनभोजिता । पूजयेत् परया
 भक्त्या स्वयं भुञ्जीत साधकः । पाययेदासवं यत्नात् स्वयञ्चापि
 पिबेत्ततः । सकारञ्च घकारञ्च लकारेण समन्वितम् । जपे-
 दष्टोत्तरशतं तासां कर्णं पृथक् पृथक् । तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन कृत्वा
 वक्षसि साधकः । अङ्गन्यासयुतं देवि ! जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
 एतस्मिन् समये देवि ! रतिमिच्छति सा यदा । तदा तां
 रमयेन्मन्त्री पीडा न जायते यथा । शनैरधरपानञ्च शनै-
 र्वक्षोजमर्दनम् । शनैर्गुदनिवेशञ्च शनैरालिङ्गनं प्रिये ! ।
 यद्यत्र जायते पीडा तदा सिद्धिर्विनाशिनी । एवं प्रयोगे तु
 कालो साक्षाद्भवति नान्यथा । इति ते कथितं देवि ! गुह्या-
 न्नृह्यतरं परम् । भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत् ।
 तदा सिद्धिर्विलम्बेन निष्फलं नैव जायते । अविश्वासी न

कर्तव्यं आलस्यं नैव पार्वति ! । सर्वेषां मन्त्रवर्याणां सार-
मुद्रित्यं पार्वति ! । दुग्धमध्ये यथा सपिः काष्ठमध्ये यथानलः ।
तथा समुद्रतः सारो देवि ! नास्त्यत्र संशयः । स्वयं सिद्धा
हि तै मन्त्राः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः । इति ते कोटितं देवि !
गोपनीयं प्रयत्नतः ॥

तोडलतन्त्रे चतुर्थपटले ॥ शृणु चार्वाङ्ग ! सुभगे ! तारायाः
पूजनं महत् । मन्त्रेणाचमनं कृत्वा गुरुदेवं नमस्कृतः । जलं
संशोध्य हस्तौ च पादौ च क्षालयेत्ततः । मन्त्रेणाचमनं
कृत्वा ततः पीठं विचिन्तयेत् । शिखां बद्ध्वा ततो देवि !
विविधं विघ्ननाशनम् । भूम्यासनञ्च संशोध्य वस्त्रे ग्रन्थं
विधाय च । कायवाक्शोधनं कृत्वा ततः पुष्पविशोधनम् ।
यन्त्रं कृत्वा साधकेन्द्रः सामान्यार्घ्यञ्च विन्यसेत् । द्वार-
पालांश्च सम्पूज्य पीठपूजां समाचरेत् । पीठशक्तींश्च लक्ष्म्या-
द्यास्ततः पीठमनु यजेत् । भूतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि विशेष इह
यद्वेत् । कूर्चयुक्तेन हंसेन पूरकेण सुरेश्वरि ! । कुण्डल्या
सह चात्मानं चतुर्विंशतिवोजकम् । तत्र लीनानि देवेशि !
परमात्मनि साधकः । मायया सन्दहेत् पापं पुरुषं कज्जल-
प्रभम् । कुम्भकेन वरारोहे ! भस्म कुर्याद्विचक्षणः । बधू-
वोजेन देवेशि ! भस्मना सह रेचयेत् । पूरकेण तु कूर्चेन
ललाटेऽमृतसञ्चयम् । चिन्तयेत् परमेशानि ! कुम्भकेना-
मृताम्बुधिम् । आं ह्रीं क्लीं वज्रिजायान्तं हृदि चैकादशं
जपेत् । ततस्तु चिन्तयेद्दीमानाः काराद्रक्तपङ्कजम् । तस्योपरि
पुनर्द्वायेत् टाङ्काराद्रक्तपङ्कजम् । तस्योपरि पुनर्द्वायेत् हुङ्कारं
नीलसन्निभम् । तस्योपरि पुनर्द्वायेद्बीजभूषितकर्तृकाम् ।
तस्योपरि परं विन्दुं शिवरूपञ्च अव्ययम् । बालुकायाः सह-
स्रैकभागं विन्दुं सुदुर्लभम् । विन्दुमध्ये मणिद्वीपं शतयोजन-

विस्तृतम् । विन्दुमध्ये परं ज्योतिर्वुद्दुदाकारमण्डलम् । यथैक-
वुद्दुदे देवि । प्रतिविम्बं प्रपश्यति । तथा निरोक्षणं कार्यं
प्रकुर्याज्ज्ञानचक्षुषा । मणिदोपन्तु तन्मध्ये सुवर्णबालुका-
मयम् । परितो भावयेन्नन्वी पारिजातं रत्नोद्गरम् । मध्ये कल्प-
द्रुमं ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् । उदयादित्यसङ्काशं सहस्रा-
दित्यवर्चसम् । चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारभूषितम् । बहुचास-
वण्टादिदेवकन्यादिशोभितम् । मन्दवायुसमायुक्तं गन्धधूपैरल-
ङ्कृतम् । तन्मध्ये वेदिकां ध्यायेन्नानारत्नोपशोभिताम् । सुवर्णसूच-
रचितं चिन्तयेच्छत्रमुत्तमम् । तदधश्चिन्तयेन्नन्वी रत्नसिंहासनं
प्रिये ! । तत्र देवीं चिन्तयेच्च यथोक्तध्यानयोगतः । योगसारो-
क्तकैर्देवि ! उपचारैः प्रपूजयेत् । प्राणायामं ततः कृत्वा
ऋष्यादिन्यासमाचरेत् । तालत्रयं क्रीटिकाभिर्दशदिग्बन्धन-
ञ्चरेत् । षोढा न्यासं ततः कृत्वा व्यापकं तदनन्तरम् । दिशे-
षार्घ्यं च संस्थाप्य पञ्चतत्त्वं विशोधयेत् । सुधादेशं समानीय
विपञ्चीकरमाचरेत् । कुम्भे पुष्पं समादाय त्रिकोणे त्रिः
प्रपूजयेत् । वामदेवं त्रिधा चोक्ता खेचरीं दशधा जपेत् । तथा
चानन्दगायत्रीमृचञ्च त्रिजपेत् सुधीः । ब्रह्मशापं शक्रशापं
कृष्णशापं सुरेश्वरि ! । दिग्जपावाशयेद्बोमान् ततो मन्त्रत्रयं
पठेत् । कुरिकाञ्च मृतञ्चैव शीतिरस्करिणीं प्रिये ! । पावसा-
नञ्च त्रिजम्भा शोधनादीन् समाचरेत् । वारुणं त्रिजपेद्देवि !
चामृतं सप्तधा जपेत् । विद्यतत्त्वे धेनुमुद्रां प्रदर्श्य मूलमष्टधा ।
कुण्डलिनीं समुत्थाप्य शिवोऽहं भावयिष्यतः । मांसं मीनं
शोधयित्वा मुद्राशोधनमाचरेत् । शक्तिञ्च कुलपुष्पञ्च त्थोयेश
साधकोत्तमः । देवान् पितॄन् ऋषीञ्चैव तर्पयेदिष्टदेवताम् ।
शोधितं द्रव्यमादाय विशेषार्घ्यं विनिक्षिपेत् । ततो ब्रह्ममयं
ध्यात्वा पूजाध्यानं समाचरेत् । नासास्थानात् समानीय पीठे

पुष्पं निधाय च । ततश्चावाहनं कृत्वा पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत् ।
 षडङ्गेन च सम्पूज्य पुनर्मुद्राः प्रदर्शयेत् । जीवन्त्यासं ततः
 कृत्वा उपचारैः प्रपूजयेत् । षडङ्गानि च सम्पूज्य अक्षोभ्यं
 पूजयेदधः । गुरुपंक्तिं पूजयित्वा दलमूलेषु पूजयेत् । महा-
 पूर्वांश्च काल्यादीन् यजेद्देवीरोचनादिकान् । पुनर्देवीं प्रपूज्याथ
 बलिं दद्याद्विचक्षणः । प्राणायामं ततः कृत्वा मन्त्रध्यानं
 समाचरेत् । जपं कृत्वा महेशानि ! देव्या हस्तौ समपणम् ।
 प्राणायामं ततः कृत्वा तत्त्वस्वीकारमाचरेत् । तस्यै दत्त्वा
 स्वयं पीत्वा प्रजपेत् साधकोत्तमः । पीत्वा पीत्वा जपित्वा च
 मुक्तः कोटिकुलैः सह । प्रतिपात्रे जपेन्नन्वमष्टोत्तरशतं सुधीः ।
 स्तुतिञ्च कवचं स्मृत्वा चाष्टाङ्गं प्रणमेत्ततः । विशेषार्घ्यं प्रदा-
 तव्यमात्मानञ्च समर्पयेत् । रुद्ररूपी स्वयं भूत्वा संहारेण
 विसर्जयेत् । अङ्गन्यासं महेशानि ! प्राणायामं ततः परम् ।
 ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा चण्डाल्युच्छिष्टपूर्विकाम् । निर्माल्य-
 वासिनीं डेन्तां चण्डेश्वर्यै नमो नमः । निर्माल्यं धारयेत्
 शीर्षे चन्दनञ्च ललाटके । गुरुस्थाने लिखेद्दिन्दुं विहरेद्देवो
 यथा । संक्षेपपूजनं देवि ! मानसं तत्त्ववर्जितम् । तत्रोक्त-
 माचरेदत्र नान्यत् सञ्चारयेत् सुधीः । अन्यसञ्चारणाद्देवि !
 क्रुद्धा भवति तारिणी ॥ तत्रोक्तं बाह्यपूजाप्रकरणोक्तम् ॥
 तत्त्वज्ञानं मानसञ्च शक्तिमात्रे हि पार्वति ! ।

पिच्छिलातन्त्रे द्वादशपटले ॥ यस्मिन् क्षणे महामन्त्रः
 श्रूयते सावधानतः । तद्वीर्यन्ते शरीरस्थपातकानि महान्त्यपि ।
 प्रयोगं मन्त्रशुद्धादेः कथयामि महेश्वरि ! । मन्त्रशुद्धिं विधा-
 याथ कुर्यान्नान्यशिखां ततः । कुङ्कुमां मूर्ध्नि सञ्चर्य महासेतुं
 जपेत्ततः । नाभौ जपेत्तु निर्वाणं ध्यायेत् कुण्डलिनीं ततः ।
 प्राणायामं विधायथ षडङ्गन्यासमाचरेत् । ततः ऋष्यादिवि-

न्यासो जपेत् सप्तच्छदां सक्तत् । ध्रुवेण पुटितं मन्त्रं सप्तधा
प्रजपेत् प्रिये ! । मन्त्रादौ प्रणवं दत्त्वा सक्तजपेन्महेश्वरि ! ।
प्रणवं वाथ मायां वा वाग्भवं वाथ दीपनोम् । मन्त्रादौ दत्त्वा
प्रजपेत् सप्तधा परमेश्वरि ! कालीमन्त्रे तु देवेशि ! क्रीं मूलं
सप्तधा जपेत् । विद्यामन्त्रञ्च मन्त्रादौ दत्त्वा च सप्तधा जपेत् ।
स्वगुरुं मूर्ध्नि सञ्चिन्त्य हृदि देवीं ततः परम् । स्वयं काम-
कलारूपं भावयन् जपमाचरेत् । जपस्यान्ते शिवं ध्यात्वा
ध्यानस्थान्ते पुनर्जपेत् । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा प्रजपेन्ननुम् ।
श्यामाया दीपनीं विद्यारतुं मन्त्रादितः शिवे ! । दत्त्वा जपेत्
सप्तवारं ततो जपसमर्पणम् । अन्यासां प्रणवं मायां दीपनीं
वा जपस्य च । सेतुं जप्त्वा सप्तवारं प्रणवान्तं मनुं जपेत् ।
समर्पयेज्जपं पश्चात् प्राणायामान् समाचरेत् । जपस्यात्र विधा-
नन्तु कथितञ्चानुषङ्गतः ॥

अथ ताराशतनामस्तोत्रम् ॥ श्रीशिव उवाच ॥ तारिणी
तरला तन्वी तारा तरुणवल्लरी । तीररूपा तरस्थामा तनु-
क्षीणपयोधरा । तुरीया तरला तीव्रगमना नीलवाहिनी ।
उग्रतारा जया चण्डी श्रीमदेकजटा शिवा । तरुणा शाश्वती
क्लिन्नभाला च भद्रतारिणी । उग्रा उग्रप्रभा नीला कृष्णा
नीलसरस्वती । द्वितीया शोभिनी नित्या नवीना नित्यनूतना ।
चण्डिका विजयाराध्या देवी गगनवाहिनी । अट्टहास्या करा-
लास्या चरस्थादिति पूजिता । सगुणा सगुणाराध्या हरौन्द्र-
देवपूजिता । रक्तप्रिया च रक्ताक्षी रुधिरासवभूषिता । बलि-
प्रिया बलिरता दुर्गा बलवती बला । बलप्रिया बलरता बल-
रामप्रपूजिता । अर्द्धकेशेश्वरो केशा केशवेशविभूषिता ।
पद्ममाला च पद्माक्षी कामाख्या गिरिनन्दिनी । दक्षिणा चैव
दक्षा च दक्षजा दक्षिणे रता । वज्रपुष्पप्रिया रक्तप्रिया सुकु

मभूषिता । माहेश्वरी महादेवप्रिया पञ्चविभूषिता । इडा च
 पिङ्गला चैव सुषुम्ना प्राणरूपिणी । गान्धारी पञ्चमौ पञ्चा-
 ननादिपरिपूजिता । इत्येतत् कथितं देवि ! रहस्यं परमा-
 झुतम् । श्रुत्वा मोक्षनवाप्नोति तारादेव्याः प्रसादतः । य इदं
 पठति स्तोत्रं तारास्तुतिरहस्यकम् । सर्वसिद्धियुतो भूत्वा
 विहरेत् क्षितिमण्डले । तस्यैव मन्दसिद्धिः स्यान्मम सिद्धि-
 नुत्तमा । भवत्येवं महामाये ! सत्यं सत्यं न संशयः । मन्दे
 मङ्गलवारे च यः पठेन्नशि संयुतः । तस्यैव मन्दसिद्धिः स्याद्वा-
 णपत्यं लभेत्त सः । अद्वयाश्चद्वया वापि पठेत्तारारहस्यकम् ।
 सोऽचिरैव कालेन जीवन्मुक्तः शिवो भवेत् । सहस्रावर्तना-
 देवि ! पुरश्चर्यफलं लभेत् । एवं सततयुक्ता ये ध्यायन्तस्त्वा-
 मुपासते । ते कृतार्था महेशानि । मृत्युसंसारबन्धनात् ॥ इति
 मुण्डमालातन्त्रे तारिणीशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ तारिणीस्तोत्रानन्तरं महानीलतन्त्रे ॥ घोररूपे !
 महामारे ! सर्वशत्रुवशङ्करि ! भक्तेभ्यो वरदे ! देवि ! चाहि
 मां शरणागतम् । सुरासुरार्चिते ! देवि ! सिद्धगन्धर्वसेविते ! ।
 जाडपापहरे ! देवि ! चाहि मां शरणागतम् । जटाजूटसमा-
 युक्ते ! लोलजिह्वानुकारिणि ! । द्रुतबुद्धिकरे ! देवि ! चाहि मां
 शरणागतम् । सौम्यरूपे ! घोररूपे ! चण्डरूपे ! नमोऽस्तु ते ।
 सृष्टिरूपे ! नमस्तुभ्यं चाहि मां शरणागतम् । अष्टम्याञ्च चतु-
 र्दशां नवम्याञ्चैकमानसः । षण्मासैः सिद्धिमाप्नोति नात्र
 कार्या विचारणा । बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देहि
 मे । कुबुद्धिं हर मे देवि ! चाहि मां शरणागतम् । इन्द्रादि-
 दिविषद्वन्द्वन्दिते ! करुणामयि ! । तारे ! ताराधिनायास्ये !
 चाहि मां शरणागतम् । मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी धन-
 माप्नुयात् । विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकाम् ।

इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु सततं लभते नरः । तस्य शत्रुः क्षयं याति
महाप्रज्ञा च जायते । पीडायां वापि संग्रामे जप्ये दाने तथा
भये । य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः । स्तोत्रे-
णानेन देवेशि ! स्तुत्वा देवो सुरेश्वरीम् । सर्वान् कामान्वा-
प्नोति सर्वविद्यानिधिर्भवेत् । इति ते कथितं दिव्यं स्तोत्रं
सारस्वतप्रदम् । अस्मात् परतरं नास्ति स्तोत्रं तन्त्रे महेश्वरि ! ॥
इति बृहन्नीलतन्त्रे द्वितीयपटले तारिणीस्तोत्रं समाप्तम् ॥

✓ अथ वीरहोमः ॥ कैवल्यतन्त्रे पञ्चमपटले ॥ शृणु पार्वति !
वक्ष्यामि बाह्यहोमविधिं प्रिये ! । आन्त्रायेषु च सर्वेषु व्यासेन
कथितं पुरा । संक्षेपात् कथयिष्यामि येन मुक्तिं लभेन्नरः ।
भूमिद्विकोणमालिख्य मूलमन्त्रेण साधकः । भूर्भुवः स्वेति
मन्त्रेण वज्रं संस्थापयेत्ततः । तत्र देवो समावाह्य परिवार-
समन्विताम् । पूजयेद्विविधैर्द्रव्यैर्निर्विकल्पेन चैतसा । मर्द्येन
प्रथमं दद्यादाहुतिं मूलमुच्चरन् । एकं मांसेन मत्स्येन मुद्रया
च कुलेश्वरि ! । रन्ध्रामूलसमुद्भूतैर्मांजन्या गलितैः सह ।
जुहुयादान्धयोगिन सकृद्द्वारत्रयञ्च वा । घृतेन हवनञ्चैकं
रक्तपुष्पेण चैव हि । कुण्डोद्भवेन देवेशि ! वारद्वयमुदाहृतम् ।
गोलेन घृतयुक्तेन सकृद्धोमो विशिष्यते । गोपीचन्दनसिन्दूरै-
र्दशवारं हुमेत् शुचौ । वोरपुष्पेण गव्येन विल्वपत्रेण सुन्दरि ! ।
सकृद्धोमो भवेद्वज्रं ततो गव्येन चैककम् । पूर्णाहुतिं ततो
दद्यात् पिण्याकैर्लवणान्वितैः । ततो मूलं जपेन्मन्त्रो चाष्टो-
त्तरशतं प्रिये ! । जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य विसृजेद्वज्रमण्डले ।
इति ते कथितं देवि ! कैवल्यसाधनं प्रिये ! । अस्मात्
परतरं नास्ति सत्यमेतद्ब्रवीमि ते । इदं रहस्यं परमं
पशुभ्यो न प्रकाशयेत् । प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् सत्यं
सत्यं न संशयः ॥ इति वीरहोमः ॥

इति सम्पूज्य हुत्वा च सामयिकैः सह द्रव्यपानादिकं
कुर्यात् ॥ देव्यै द्रव्यदानफलन्तु मुण्डमालातन्त्रे ॥ पूज-
यित्वा महादेवीं सुरामांसकलादिभिः । अन्नैर्नानाविधैर्देव !
परितोष्य स तादृश इति । सुरादानफलेनैव महायोगेश्वरो
भवेत् ॥

सुराभेदस्तु तत्रैव ॥ सुरा तु द्विविधा प्रोक्ता स्फाटिकी
डाकिनी तथा । काञ्चिकौस्फाटिकीदाने धनवृद्धिरनुत्तमा ।
डाकिनोदानमात्रेण सर्ववश्यो भवेद्भुवम् । काञ्चिकौमुद्रया
देवि ! योऽर्चयेत् परमेश्वरीम् । महासिद्धीश्वरो भूत्वा वसेत्
कल्पशतानि च । अन्नदातुर्महादेवि ! महासिद्धिरनुत्तमा ॥

अथ महाशङ्खः ॥ नित्यातन्त्रे द्वितीयपटले ॥ ईश्वर
उवाच ॥ महाशङ्खस्य माहात्म्यं कथयामि तवानवे ! ।
स्वयोनिरिव गोप्रव्यं सर्वदा पशुसङ्कटे । भगरूपा महासाया
शुक्रतर्पणतत्परा । जगदाकर्षिणी विद्या जगद्गुह्या वरानने ! ॥
तत्रैव गृह्यते सारं जगतां वीजरूपकम् । तद्बीजं परमेशानि !
पञ्चाशद्वर्णरूपकम् । गर्भं प्राप्य भवेदस्थि शिशोर्मज्जासम-
न्वितम् । तदस्थिताईमप्यस्ति पञ्चाशद्वर्णरूपकम् । वर्ण-
मालासु देवेशि ! शतं सञ्ज्ञप्य यत् फलम् । एकेनोच्चारणे-
नास्थिमालायां तत् प्रकीर्तितम् ॥ इति महाशङ्खमालाजप-
फलम् ॥

तन्मालाकरणे वर्जनोपमाह तत्रैव ॥ स्वेच्छासृतं स्त्रियं
विप्रं तिर्यग्योनिगतं तथा । रोगिणं यवनं वृद्धं दौर्घितञ्चापि
वर्जयेत् । ग्राह्यमपि तत्रैव ॥ वज्राहतं सर्पदष्टं पतित्वा वा
जले मृतम् । व्याघ्रादिनिहतं वापि सम्मुखे वा रणे मृतम् ।
चण्डालाद्याः प्रधानास्ते अधमाः शूद्रजातयः ॥ वृहन्नीलतन्त्रे
चतुर्थपटले ॥ युद्धे मृतस्य देवेशि ! चण्डालस्यास्थिकेन च ।

मस्तकस्य विशेषेण महाशङ्खं प्रकीर्तितम् ॥ नित्यातन्त्रे ॥
अतएव महेशानि ! अस्थिमालागले मम । प्रथमपटले ॥
समाश्रित्य महाशङ्खमालां वीरपदं व्रजेत् ॥

अथ महाशङ्खमालाकरणम् ॥ मुण्डमालातन्त्रे द्वितीय-
पटले ॥ नराङ्गुल्यस्थिभिर्माला ग्रथिता पर्वभेदतः । सर्वसिद्धि-
प्रदा मोक्षदायिनी वरवर्णिनि ! । नाड्या सङ्गृथिता माला
कार्या रक्तेन वाससा । नाडौभिर्ग्रथिता माला महासिद्धि-
प्रदा प्रिये ॥ स्वतन्त्रतन्त्रेऽपि ॥ आनीय छिन्नशीर्षन्तु
नरस्य पतितस्य च । तुलसीगोमयासृष्टं तथा गङ्गोदकेन
च । यवनब्राह्मणान्यस्य तत् कार्यं साधकैर्जनैः । असृष्टं
तच्च जानोयात् शालग्रामशिलादिभिः ॥

अथ महाशङ्खमालासंस्कारस्तत्रैव ॥ गुरुं तत्र प्रणम्यादौ
संस्कर्त्याञ्जपमालिकाम् । कृतनित्यक्रियो मन्त्री मालाञ्च
क्रमतो यजेत् । ओं ह्रीं श्रीं क्लीं क्लीं फट् स्वाहा । इति
मन्त्रेण सप्तधाभिमन्त्र्य चषकादिपात्रादौ निक्षिपेत् । तत
आवाहन्त्यादिमुद्रया देवीं तत्रावाह्य सपरिवारामुपचारैः
सम्पूज्य तां वमिति धेनुमुद्रयामृतौक्त्य कवचेनावगुण्ठय मत्स्य-
मुद्रयाच्छाद्य देवोस्वरूपां तां मालां ध्यायन् बिन्दुप्रक्षेपं
कुर्यात् । तत्र मन्त्रः ॥ ओं ह्रीं स्वाहा । ओं ह्रं स्वाहा ।
ॐ ह्रः स्वाहा । ओं फट् स्वाहा । ओं ह्रीं श्रीं स्वाहा ।
ओं ह्रीं ह्रं स्वाहा । ओं ह्रीं फट् स्वाहा । इति सप्तार्च्य-
विन्दुप्रक्षेपणं कृत्वा कस्तूरीं धूपयित्वा चषकादिपात्रादुत्तोल्य
मालामभिमन्त्रयेत् । तत्र मन्त्रः ॥ ओं ह्रीं श्रीं महावर्जिणि !
महाघोररूपे । कर्कशमहास्थिमण्डले ! प्रविश सर्वसिद्धिं प्रयच्छ
ओं ह्रीं श्रीं ह्रीं स्वाहा । ओं महाकपालिनि ! महाघोररूपे !
स्वाहा । इत्यनेनामन्त्र्य दूर्वाक्षतैरभ्यर्च्य कामवीजिनोद्दीपनं

कृत्वा उपचारैरभ्यर्च्य मातृकामन्त्रेण सन्दीप्य ओंकारेण
 वेष्टयेत् । ततः हं ह्रीं हूं ओं हूं ओं हूं ओं हूं हूं ओं
 हूं फट् हूं ओं स्वाहा । ओं हूं महायोगिनि ! त्रिभुवन-
 तारिणि ! महाशङ्खास्थिमध्ये निवासं कुरु सर्वसिद्धिं देहि
 सुरामांसोपहारान् गृह्ण गृह्णापय ह्रीं श्रीं हूं फट्
 स्वाहा । इत्यनेन यथोक्तद्रव्येण बलिं दत्त्वा संहारमुद्रया देवीं
 विसृज्य निभृतस्थाने मालाः स्थापयेत् । विन्दुप्रक्षेप इत्यत्र
 विन्दुः सुराविन्दुरित्यर्थः । एवं शोधयित्वा पञ्चाम्बाला-
 संस्कारविधानेनापि संस्कारः करण्योय इति तान्त्रिकाः ॥ तन्त्रे ॥
 अकस्मादौहिता माला महाशङ्खाख्यमालया । तथा चैवास्थि-
 घटिता महाशङ्खाः प्रकोत्तिताः । अत्रास्थिपदेन गुणदेशादि
 थाद्यमिति तान्त्रिकाः । इति महाशङ्खमालासंस्कारः ॥

कुलिकातन्त्रे सप्तमपटले ॥ अशोकं विल्ववृक्षञ्च शिवा-
 च्चैव सुरेश्वरि ! । दृष्ट्वा प्रणामं कुर्याच्च सर्वकामार्थसिद्धये ।
 उलूकं शङ्खचिह्नञ्च गृध्रञ्चैव सुरेश्वरि ! । नमस्कुर्व्यान्महा-
 कालीं युद्धे च जयमालभेत् । चतुष्पथं श्मशानञ्च नमस्कुर्व्या-
 दिशेषतः । तन्त्रज्ञञ्चावधूतञ्च नमस्कुर्व्याद्वरानने । । उपासकं
 सदा दृष्ट्वा मधुरं भाषणञ्चरेत् ॥

वृहन्नौलतन्त्रे षष्ठपटले ॥ पर्वते निर्जने चैव विजने शून्य-
 मण्डपे । चतुष्पथे कलामध्ये यदि देवान्महेश्वरि ! । क्षणं
 ध्यात्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथासुखम् । गृध्रं वीक्ष्य
 महाकालीं नमस्कुर्व्यादतन्द्रितः । क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बूकीं
 वमदूर्तिकाम् । कुररं श्येनभूकाकौ कृष्णमार्जारमेव च ॥

एवेषां प्रणाममन्त्रस्तत्रैव ॥ कृशोदरि ! महाचण्डे ! मुक्त-
 कैशि ! बलिप्रिये ! । कुलाचारप्रसन्नाख्ये ! नमस्ते शङ्करप्रिये ! ।
 श्मशाने च शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजन् । प्रणम्यानेन मन्त्रेण

मन्त्री सुखमवाप्नुयात् । घोरदंष्ट्रे । करालास्थे ! किटिशब्द-
प्रणादिनि । । गुरुघोषवरास्काले । नमस्ते चण्डनादिनि । ।
रक्तवस्त्रं रक्तपुष्पं विलोक्य त्रिपुराश्विकाम् । विलोक्य दण्ड-
वद्भूमाविमं मन्त्रं पठेन्नरः । बभ्रुकपुष्पसङ्काशे ! त्रिपुरे !
भयनाशिनि ! । भाग्योदयसमुत्पन्ने ! नमस्ते वरवर्णिनि ! ।
क्षणवर्णे तथा पुष्पं राजानं राजपुत्रकम् । हस्त्यश्वरथशस्त्राणि
कालवीरं तथा शिवम् । महिषं कुलनाथञ्च दृष्ट्वा महिषम-
र्दिनीम् । प्रणम्य जयदुर्गां वा स तु विघ्नेन लिप्यते । जयदेवि !
जगद्धात्रि ! पूर्णे ! आद्ये ! त्रिदैवते ! । भक्त्यो वरदे ! देवि !
मुण्डमालाविभूषिते ! । रक्तधारासमाकोर्णे ! वरदे ! त्वां नमा-
म्यहम् । सर्वविघ्नहर ! देवि ! नमस्ते हरवल्लभे ! । एतेषां
दर्शनेनैव यदि नैवं प्रकुर्वते । शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य सिद्धिर्न
जायते । एतेषां मारणोच्चाटहिंसनं वागुरादिभिः । क्रियते
येन पापात्मा स मे भक्तः कथं भवेत् ॥ इति वीरकृत्यम् ॥

अथ वीराणां नैष्कर्म्यसाधनार्थं रसास्वादो वामकेश्वरतन्त्रे
त्रयःपञ्चाशत्पटले ॥ भैरव उवाच ॥ क्रियाकाण्डप्रकथने तन्त्रं
बहुतरं भवेत् । किञ्चित्तत्त्वमतेषां सङ्क्षेपात् कथयामि ते ।
काव्यशास्त्रे नवरसा योगे चाष्टौ रसाः स्मृताः । अष्टादशप्र-
कारा हि विद्यायां परिकीर्तिताः । भक्तियोगे नवरसा ऋतवो
विषये स्मृताः । पञ्चमाद्या रसा देवि ! पञ्चपञ्चाशतः स्मृताः ।
भेदं रसानां वक्ष्यामि शृणुष्वार्वाहता प्रिये ! । शृङ्गारवीरक-
रुणाहास्याद्भुतभयानकाः । वीभत्सः शान्तको रौद्रो नवधा
काव्यशास्त्रके । यमश्च नियमश्चैव आसनं प्राणसंयमः । प्रत्या-
हारो धारणा च ध्यानं समाधिरष्टधा । योगे शास्त्रे मन्त्रादेवि !
कथिता विस्तरात् प्रिये ! । छन्दः पादौ च वेदस्य सुखं
व्याकरणं स्मृतम् । शिक्षा घ्राणं महेशानि ! हस्तौ कल्पोऽथ

कथ्यते । ज्योतिषं देवि । तन्नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते । अङ्गानि
वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरैः । धर्मशास्त्रं पुराणञ्च
विद्या ह्येताश्चतुर्दश । आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः ।
अर्थशास्त्रसमायुक्ता विद्याष्टादशधा रसाः । मननं कीर्त्तनं
ध्यानं स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-
समर्पणम् । इत्थं देवि ! नवरसा भक्तियोगे प्रकीर्त्तिताः ।
सगन्धवनिताश्चय्यावस्त्रालङ्करणानि च । कथिताः परमे-
शानि ! विषये ऋतवो रसाः । खाद्याः पञ्चरसा गौडी माध्वो-
क्षुफलशस्यकाः । एतेषु रसभावज्ञा ये ते वै रसिकाः स्मृताः ।
कृत्यविधिर्जपविधिर्द्रव्यशोधनिको विधिः । वाञ्छ्यमानसिकौ-
पूजाविधिश्च परमेश्वरि ! । पुरश्चर्याविधिर्देवि ! कर्मकाण्डानि
पञ्चधा । त्रिधा कृत्यविधिर्देवि ! प्रातः सायं दिनं तथा । अनु-
भूय रसान् सर्वान् क्रियाकाण्डं विधाय च । साधकः स्थिरचि-
त्तेन कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम् ॥

चतुष्पञ्चाशत्पटले ॥ देव्युवाच ॥ मन्त्रप्रकथनं नाथ !
वेदप्रकथनं कथम् । तत्तद्रसानां वचनैश्चित्तं मोहयसीव मे ।
साम्प्रतं संशयच्छेदकारणं ब्रूहि मे प्रभो ! । आश्चर्याख्यानमेवं
हि श्रवणात् कौतुकं महत् ॥ श्रीभैरव उवाच ॥ तन्त्रोक्तं वेद-
वाक्यञ्च सर्वज्ञानस्य कारणम् । भेदं रसानां वक्ष्यामि शृणुष्व-
वहिता मयि । शृङ्गारो वीरतो ज्ञेयस्तस्मिन् ते करुणादयः ।
शृङ्गारादिष्टृणादिश्च अपि शृङ्गारतो भवेत् । शृङ्गारस्तु यदा
देवि ! परमार्थकसूचकः । तदैव परमा शान्तीरुद्रत्वं सम्प्रप-
द्यते । तेषां प्रकरणार्थन्तु शृणु प्राणाधिके ! मयि । पादं विना
शरीरस्य न गतिर्विद्यते प्रिये ! । हृन्दसा वेदमार्गे तु प्रवि-
शेन्न कदाचन । अलङ्कारं विना हृन्दो न शोभेत प्रियंवदे ! ।
चक्षुः परोक्षभेदः स्याज्ज्योतिःशास्त्रं तथैव च । चन्द्रसूर्यस्य

ग्रहणाज्जोतिः प्रत्यक्षतामियात् । वेदशाखा निरुक्तं स्याच्छा-
स्त्राभिर्ब्रह्म जायते । गानकार्थं श्रूयमाणे भक्तिर्भवति ब्रह्मणि ।।
तदेव गानकृत्यञ्च मुखनासिकयोर्भवेत् । गानं विना न नृत्यं
स्यात् नृत्यं गानेन जायते । शिञ्जाशास्त्रं नाटकादिशब्द-
व्याकरणं स्मृतम् । अविनाभावसम्बन्धाद् द्वयोरेव शुचि-
स्मितिः ।। वेदाः षडङ्गसंहिता ब्रह्मव्याख्यानतत्पराः । न्यायेन
साङ्गे मीमांसा ब्रह्म निर्णीयते ध्रुवम् । ब्रह्मज्ञाने तु जीवस्य
परमात्मविचारणम् । धर्मशास्त्रानुसारेण व्यवस्थादिनिरूपतः ।
पुराणाख्यानि तेनैव जायते सततं प्रिये ।। ब्रह्मानन्दपरो
जीव आत्मसंरक्षणोत्सुकः । आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वञ्च सम-
भ्यसेत् । अथ सन्धानतो देवि ! पूर्णज्ञानो च साधकः । मधुनेक्षु-
रसेनैव दुग्धादिफलशस्यकैः । गन्धमाल्यादिना देवि ! वस्त्राला-
ङ्कारणादिना । शय्यायां वनितारूपं पूजयेज्जगदम्बिकाम् ।
वनितापूजने देवि ! शृङ्गाररससाधनम् । पूजनं कर्मकाण्डञ्च
पञ्चधा तत् प्रकीर्तितम् । तत्सर्वं स्याधयेद्दीरो देवीसम्प्राप्तिहेतवे ।
पूजने नवधा भक्तिरसोक्तासञ्च जायते । तदा योगं समभ्यस्य
समाधिस्थो भवेद्यतिः । अतएव महेशानि ! पुरैव कथितं
मया । अनुभूय स्वरान् सर्वान् पञ्चपञ्चाशतः प्रिये ।। विषये
कर्मकाण्डेषु निष्कामी भवति प्रिये ।। निष्कामे फलमाश्चर्यं
तेन लभ्यति देवता । देही देहं समाश्रित्य न च कर्म परित्य-
जेत् । दिव्यां क्रियां समाप्यैवं देवीयावादि कर्मणा । पूर्णज्ञान-
रसानन्दाज्जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥

अथ वीराणां षट्कर्मसाधनम् ॥ योगिनीतन्त्रे पूर्वखण्डे
चतुर्थपटले ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देवदेव ! जगद्वन्द्य ! सुरा-
सुरनमस्कृत !। इदानीं श्रोतुमिच्छामि वीरषट्कर्मसाधनम् ।
धन्यं पुण्यवतां राज्ञां बाह्यादिकवयोजुषाम् । स्त्रियान्तु

सिद्धिसंस्थानां सर्वभोगविलासिनाम् ॥

षट् कर्माण्याह तत्रैव ॥ ईश्वर उवाच ॥ शान्तिवश्यस्तम्भ-
नानि विद्मेषोच्चाटने तथा । मारणं परमेशानि ! षट्कर्मेदं
प्रकौत्तितम् । तारिणीं कालिकां हिन्नामधिकृत्य जग-
न्मयि ।। कथयामि तव स्नेहाद् द्रुतसिद्धिकरं परम् । रति-
र्वाणो रमा ज्येष्ठा मातङ्गी कुलकामिनी । दुर्गा चैव भद्र-
काली कर्मादौ कर्मसिद्धये । षोडशैरुपचारैश्च यजेद्दीरः
स्वशक्तिकः ॥

षट्कर्मेणां मारणव्यतिरिक्तानां मारणस्य स्थानमाह
तत्रैव ॥ शून्यागारे मङ्गारण्ये देवतायतनेऽपि वा । पञ्च-
कर्मं प्रकुर्वीत मारणन्तु श्रवोपरि । तदभावे पितृभूमौ
वासांसि कथयामि ते । मुख्यं दिग्म्बरं ज्ञेयं द्वीपिचर्म द्विती-
यकम् । तदभावे रक्तलीमं नान्यदस्त्रं प्रकल्पयेत् ॥ शान्त्या-
दिषु क्रमेणैव पूजापात्रमाह ॥ स्वर्णमादौ द्वितीये च राजतं
स्तम्भे शिला । विद्मेषोच्चाटने तांस्त्रं कपालं मारणे शुभम् ।
विप्रान्योऽपि नरः प्रोक्तो युवा च कृष्णवर्णकः । अदुर्मित्रा
व्याधिमृता आसनस्य शुभावहाः । अभावे स्फाटिकी जप्या
इन्द्राक्षैर्वा जपेत् प्रिये ।। मृदौ वा कोमले वापि विष्टरे वा
सुरेश्वरि ।। मुखे वा योनिके देवि । त्वचे व्याघ्रस्य वा
प्रिये ! एकहस्ते द्विहस्ते च चतुर्हस्ते समन्ततः । स्थिरा-
सनश्चरेत् सम्यक् न भयं तत्र चिन्तयेत् । भये जाते महे-
शानि ! भैरवोक्तमनुं स्मरेत् । विषञ्च वज्रजालेन हनुयुग्म-
मतः परम् । सर्वभूतानृतः कूर्चमन्त्रान्ते भैरवो मनुः । ततो
भूतबलिं दद्यात् साधको धर्मसम्पितम् । तच्च तैलं महेशानि !
उद्दह्य कालकञ्चरेत् । कुजवारादियोगेन पञ्चकर्मं समाचरेत् ।
शनी च मारणं देवि ! निश्चितं वीरवन्दिते ।। रात्रियोगे न

कर्त्तव्यं सर्वकर्म शुचिस्मिते ।। प्राग् विद्वान् प्रजयेत् सम्यक्
स्वमन्त्रं संयुतं शिवे ।। प्रयोगस्य फलावाप्त्यै स्वस्वरक्षाकरं
महत् । ततः शोधनदिने मन्त्री याममात्रगते निशि ।
मादिभिः पञ्चभिर्द्रव्यैर्यथा कुलविलासिनीम् । दिग्वासा
गलिताशेषचिकुरः कुलकौलिके ।। शक्तियुक्तो जपेद्दिव्यां
सदा तां मनसा स्मरन् । हृत्सङ्ख्यां महेशानि ।। शक्ति-
पूजापुरःसरम् । प्रत्यहं भोजयेद्विद्वान् कौलिकान्यान् दिनान्ति-
मे । मांसं मद्यं तथा मत्स्यं हुमेद् द्वौ द्वौ शतं शतम् । दक्षिणां
गुरवे दद्याद् गुरुरूपेण शास्त्रवि ।। एवमुक्तविधानेन दिव्यो
वा वीरपुङ्गवः । यदि कुर्यान्महेशानि ! देवानपि तथा
नयेत् । नापेक्षा जायते कान्ते ! अवश्यं फलभाग् भवेत् ।
महाप्रयोगे देवेशि ! कृष्णच्छागं बलिं हरत् । पूजान्ते सततं
देवि ! दशांशैर्वह्निमर्चयेत् । विधिः सर्वत्र कथितो दिव्यवीर-
पशुकृमात् । क्रमेण फलमाप्नोति व्यत्यये पातकौ भवेत् ।
इति ते कथितं तुभ्यं सम्यक् षट्कर्मगोचरम् । गोपनीयं
खले दृष्टे पशुपामरसन्निधौ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ सुरा वा किंविधा देव ! शक्तिर्वा
कीदृशी शुभा । षट्कर्मसु यथायोग्यं वद मे करुणानिधे ! ॥
ईश्वर उवाच ॥ माध्वी शान्तिकरी प्रोक्ता वश्ये च
स्फाटिकी शुभा । स्तम्भने डाकिनी ज्ञेया विद्महे
पैष्टिकी मता । उच्चाटने तथा गौडी मारणे भैरवी
मता । एतासां लक्षणं देवि ! कथितं कुलमोहने ! ॥ शक्ति-
भेदमाह तत्रैव ॥ पद्मिनी शान्तिदा प्रोक्ता वश्ये च शङ्खिनी
मता । स्तम्भनोच्चाटने देवि ! प्रशस्ता नागवल्लभा । मारणे
च तथा शस्ता डाकिनी शत्रुमृत्युदा ॥ पद्मिन्यादिलक्षण-
मपि तत्रैव ॥ गौराङ्गी दीर्घकेशी या सदा चामृतभाषिणी ।

रक्तनेत्रा सुशीला च पद्मिनी साधने शुभा । मन्त्रसिद्धिकरी
 ह्येषा शङ्खिनी सापि भाविनी । दीर्घाङ्गी सा शङ्खिनी स्या-
 ज्जगद्वन्नकारिणी । श्यामाङ्गी शुभदेहा च न खर्वा नाति-
 दीर्घिका । दीर्घकेशी ईषत्युष्टा मृदुभाषा च नागिनी ।
 कृष्णाङ्गी च कृशाङ्गी च दन्तुरा मदतापिता । क्रुशकेशी दीर्घ-
 घ्राणा सदा निष्ठुरवादिनी । सदा क्रुद्धा दीर्घदेहा महाराव-
 परायणा । निर्लज्जा हास्यहीना च निद्रालुर्बहुभक्षिका । इयं
 सा डाकिनी प्रोक्ता नृत्ययोगे प्रशस्यते । एतास्तु शक्तयो देवि !
 सर्वजातिसमुद्भवाः । सापत्याश्च युवत्यश्च जातपुत्रादिकाः शुभाः ।
 गृह्या कुलरसैः पूज्या भक्तिभावेन कामिनी ।

श्रीदेव्युवाच ॥ केन केन च मन्त्रेण मन्त्री षट्कर्म्मभाग् भवेत् ।
 तत्तन्मन्त्रे महेशानि ! यद्यहं तव वक्ष्ये । श्रीईश्वर उवाच ॥
 एकाक्षरं कालिकायास्तारायास्तु त्रिवीजकम् । वज्रवैरोचनीया-
 या मन्त्रेकादशाक्षरः । सर्वतेजोऽपहारी च मनुराख्यात एव च ।
 बहुनात्र किमुक्तेन शृणु मन्त्राण्वल्लभे ! । केवलं शक्तिवीजेन
 जपेद्देवि ! समाहितः । अवश्यं फलमाप्नोति नान्यथा वीर-
 वन्दिते ! । खलो यदि फलप्राप्तः सरलो यदि निष्फलः । भवे-
 दत्र महेशानि ! तदा सर्वं हृथा भवेत् । अहं धाता तथा
 प्राता रक्षासु द्रोहणं शिवे ! । तथापि फलसिद्धिः स्याच्चित्त-
 मेतन्नगात्मजे ! । एवन्तु मारणं देवि ! विशेषात् कथयामि
 ते । सान्तं वज्रिसमायुक्तं वामनेत्रत्रिभूषितम् । कूर्चयुग्मं
 ततो देवि ! अमुकं मारय इयम् । चतुर्दशाक्षरो मन्त्रो
 स्वाहान्तः शत्रुनाशकः । खदिराङ्गारमादाय कुजाष्टस्यां विशे-
 षतः । लेखयेत् पुत्तलीं शत्रुस्वरूपां लीहपत्रके । निशायां
 मस्तके नेत्रे खलाटे हृदये करे । नाभौ गुह्ये कटौ पृष्ठे क्रमो-
 क्तेन पदद्वये । मन्त्रवर्णान् समालिख्य प्रतिष्ठां तत्र कारयेत् ।

संहारमुद्रां बद्धा तु ध्यायेद्देवीं जयप्रदाम् । दीर्घाकारां कृष्ण-
वर्णां सदोर्द्धतनमस्तकाम् । नृमुण्डयुगलं हस्ते चर्वयन्तीं
दिगम्बरीं । शत्रुनाशकरीं देवीं ध्यायेत् शत्रुक्षयाय च । एवं
ध्यात्वेष्टिकाचूर्णैर्वा महस्तेन शङ्करि ! । ओं शत्रुनाशकर्यै नमः
इति दत्त्वा महेश्वरि ! । हरिद्राचूर्णसहितां धारां दद्यादनेन
तु । अमुकस्य शोणितञ्च पिव पिवेति तत्परम् । मांसं खादय
खादय क्लीं नम इति मन्त्रम् । मध्याह्ने मध्यरात्री तु पूजयित्वा
यथाष्टकम् । जपेदेकादशाहे च रोगः स्यान्नात्र संशयः । दण्डा-
धिकैकविंशाहे मृत्युरेव रिपोर्भवेत् । अथवान्यप्रकारेण शत्रु-
क्षयमहं वदे । पुंगोशक्तु समादाय पूजयेदुष्णवारिणा ।
विपरीतक्रमेणैव जपपूजादिकञ्चरेत् । महादेवाय नम इति
पुंगोशक्तु समाहरेत् । शिवाय नम इति मन्त्रेण घटनञ्च
समाचरेत् । पशुपतये नम इति प्राणान् संस्थापयेत्ततः ।
लौहपात्रे महेशानि ! खदिराङ्गारयोगतः । शत्रुप्रतिकृतिं
लिख्य तत्र संस्थापयेच्छिवम् । ततो ध्यायेन्महारुद्रं ध्यानन्तु
सुसमाहितः । शत्रोर्वधः स्थितं रुद्रं ज्वलदग्निसमप्रभम् । वाम-
हस्तधरं केशं दक्षिणं प्राणकर्षणम् । नरचर्मास्त्रं देवं महा-
व्यालादिवेष्टितम् । पिनाकधृक् इहागच्छागच्छेत्यादिना-
वाह्य यत्नतः । शूलपाणये नम इति स्थापयेत् साधकोत्तमः ।
महेश्वराय नम इति पाद्यादिना प्रपूजयेत् । ईशानादीस्तथा-
मूर्तीर्व्युत्क्रमेण प्रपूजयेत् । अग्निकोणादिपर्यन्तं पूर्वरीत्या
महेश्वरि ! । नमः शिवायेति मूलमष्टाविंशति सञ्जपेत् । हुं
क्षमस्वेति वामेन करेण तु विसर्जयेत् । अजित ! केशव ! विष्णो !
हरे ! सत्य ! जनार्दन ! । हंस ! नारायण ! स्वाहा मन्त्रमेव
सकञ्जपेत् । हुं नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा नम इत्यपि
सकञ्जपेत् । एवमेकादशाहेन शत्रुच्छादनमञ्जसा । अवश्यं

जायते देवि ! सत्यं सत्यं त्रिलोचने ! ॥ इति शत्रुच्छादनम् ॥

अथ स्तम्भनम् ॥ कथयामि महादेवि ! वैरस्तम्भनमुत्तमम् । कुम्भकारस्य पयनादानयेत् पिठरं पुनः । एकः स्वयं प्रदिक् स्फुटं यत् कर्तं साधकोत्तमः । आनीय च डखामध्याङ्गस्य पर्युषितं तथा । निक्षिप्य पिठरे शुष्कनालिकापत्रविस्तरम् । भस्मोपरि च संस्थाप्य वटिकायाः सुरेश्वरि ! । ऐशान्यां विवरं कृत्वा शनेर्वारं महेश्वरि ! । पूर्णमध्याङ्गकाले च निर्जने सति भाविनि ! । चतुर्दिक्षु वाटिकाया गर्तस्य निकटात् प्रिष्टे ! । तत्रावति महादेवी चौरभ्यो रक्षयामि च । प्रस्कन्दमनसा देवि ! भूमौ परिक्रमं चरेत् । तावतीञ्च ततो भूमिं वामावर्त्तेन भाविनि ! परिक्रम्य पुनस्तत्र गर्तस्य निकटं व्रजेत् । तत्रैव निर्जने गर्तं शलाकां लौहनिर्मिताम् । रोपयित्वा तदुपरि पिठरं सशरावकम् । संस्थाप्य मृद्धिः सम्पूर्य तद्गतं गृहमाव्रजेत् । गतिस्तम्भो भवेद्देवि ! चौरादीनां तथा खलु । त्वया योगवरो देव ! दुर्जमी वसुधातले । पिशाचभूतवेतालकुम्भाण्डब्रह्मराक्षसाः । दानवानां तथान्येषां गतिस्तत्र न जायते । धनपुत्रसमृद्धिस्तु वर्धतेऽहर्निशं तथा । दिने दिने धर्मबुद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥

वृहन्नीलतन्त्रे ॥ अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि वशीकरणमुत्तमम् । येन विज्ञानमात्रेण मन्त्राः सिध्यन्ति तत्क्षणात् । प्रतिमां कारयेद्देवि ! पलेन रजतस्य च । पलाङ्गेन महेशानि ! साध्यस्य प्रतिमां शिवे ! । हरितालं पलाङ्गञ्च हरिद्राचूर्णकं तथा । गर्तं कृत्वा सार्द्धहस्तं तत्र निक्षिप्य सुन्दरि ! । रक्तासनं तत्र दत्त्वा विशेत्तद्गतमानसः । चतुर्दिक्षु महेशानि ! पताका विनिवेशयेत् । रक्तासने चोपविश्य पूर्वस्थो जपमारभेत् । पूजाया नियमं देवि ! जानीहि नगनन्दिनि ! । तिल-

पूर्णघटं तत्र स्थापयेत्तत्र देशिकः । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणान्
संस्थापयेद्बुधः । अधः कृत्वा पूजयित्वा प्रबालमालया जपेत् ।
दशसाहस्रजापेन प्रयोगार्हो भवेत्ततः । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य ज्ञाया-
वौजं द्वितीयकम् । का त्वं त्वक्काकिनीयुक्तं वामकर्णेन्दु-
भूषितम् । ततो रक्तपदं ब्रूयाच्चासुण्डे तदनन्तरम् । साध्य-
नाम ततो न्यस्य वशमानय तत्परम् । वज्रिजायावधिर्मन्त्रो
जपेद्दशसहस्रकम् । दशांशादिप्रमाणेन होमादींश्च समा-
चरेत् । प्रातः स्नात्वा हविष्याशी शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः । प्रातः-
कालं समारभ्य जपेत्तन्मन्त्रिनावधि । जपे समाप्ते देवेशि !
हुमेहिने दिने शुभे ! । जातिपुष्पस्य होमेन वश्येन्नात्र
संशयः । कर्पूरमिश्रितैस्तोयैस्तर्पयेत् परदेवताम् । पूर्वं
प्रणवमुद्धृत्य चासुण्डां प्रवदेत्ततः । तर्पयान्यग्निजायान्तं मन्त्रं
जानीहि सुन्दरि ! । अनेनैव विधानेन सन्तर्प्य परदेवताम् ।
सिद्धिप्रयोगाद्देवेशि ! जायते नात्र संशयः ॥ अभिषेकं ततः
कुर्यात्तैरविः प्राणवक्त्रमे । प्राणवच्च महेशानि ! चासुण्डां
तदनन्तरम् । अभिषिञ्चामि तत्पद्मात् हृदन्तेनाभिषिञ्च-
येत् । तद्दशांशेन देवेशि ! ब्राह्मणान् भोजयेत्तदा । एवं
कृते महेशानि ! वशीकरणमुत्तमम् । जायते नात्र सन्देहः
सत्यं सत्यं न संशयः । कामतुल्यं नारीणां रिपूणां शमनो-
पमः । यावज्जीवितपर्यन्तं स्मरवाण इवेश्वरि ! । जायते
नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं सुरगणार्थिते ! । श्वेतापराजिताभूत्वं
पेषयेद्दोषनाशुतम् । शतेनामन्त्रितं कृत्वा तिलकं कारये-
त्ततः । वश्येन्नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं महेश्वरि ! । चन्द्रसूर्या-
वपि वृथा तदा निष्फलभाग्भवेत् । रक्तवस्त्रेण चासुण्डां
तोषयेद्बहुयुक्तः । सुवर्णं दक्षिणा देया वित्तानुसारतः प्रिये ! ।
आयन्ते महतीं पूजां कुर्यात्तत्र वरानने ! । पञ्चदिनप्रयो-

मेण राजानं वशमानयेत् । तव प्रीत्यै महादेवि । कथितं
भुवि दुर्लभम् ॥

अथ विद्वेषणम् ॥ तत्रैव ॥ विद्वेषणं महेशानि ! शृणु-
ष्वेकमनाः प्रिये ! । करवीररसेनैव तथा धुस्तूरकेण वा ।
काकोलूकौ समालिख्यौ भूर्जपत्रे महेश्वरि ! । साध्यानां
नामसंहितं नम्रं संलेख्य साधकः । एतयोर्धाट्टशं वैरं ताट्ट-
शञ्चामुकयोर्भवेत् । वज्रिजायावर्ष्मिन्मन्त्रः सर्वविद्वेषकारकः ।
महाकालोदेवताया पूजा तस्याः शुभप्रदा । पञ्चसहस्रमनेन
जपं कुर्यात् शचिस्मित ! ।

अथ मारणम् ॥ तत्रैव ॥ मारणञ्च विशेषेण शृणुष्वैक-
मनाः प्रिये ! । निहतं कृष्णमार्जारं मस्तकं तत्र तं नयेत् ।
मिन्दूरेण समायुक्तं कुर्यात् साधकसत्तमः । तज्जिह्वायां महा-
देवि ! साध्यनाम लिखेत् प्रिये ! । साध्यनाम लिखित्वा तु
काशीनाम जपेन्मुदा । निजबीजेन घटितं त्र्यक्षरं प्रजपेत्ततः ।
दशसाहस्रजापेन मारयेदरिमग्रतः । श्लशानकालिकां तत्र
चावाह्यं पूजयेत्ततः । लौहालङ्कारसंयुक्तं वस्त्रं देव्यै निवे-
दयेत् । दक्षिणास्यो जपेन्मन्त्रं ततः सिद्धी भवेन्मनुः — अन्नं
पक्वा महादेवि ! निर्जने दापयेत् प्रिये ! । अर्द्धरात्रौ बलिं
दत्त्वा खनेद्वरिगृहे यदि । सप्ताहमध्ये देवेभिः शत्रुर्याति
यमालयम् । इति ते कथितं देवि ! साराङ्गारतरं मतम् । तव
छादहारोहे ! प्रकाशितमिदं पुनः ॥

कामाख्यातन्त्रे षष्ठपटले ॥ पूजयित्वा महादेवीं पञ्चत-
न्त्रेण शम्भवि ! । महानन्दमयो भूत्वा साधयेत् साधनं महत् ।
स्वयं सूत्रं महेशानि । कूर्चदोजेन शोधयेत् । तर्पयेद्भैरवीं
घोरां शत्रुनाम्ना पिबेत् स्वयम् । दशदिक्षु महापीठे प्रक्षिपे-
दनलेपि च । नम्रो भूत्वा भवेत्तत्र शत्रुनाशो भवेद्भवम् ।

शक्रशोणितमूलेषु वीरो घृणी भवेद् यदि । भैरवी कुपिता
तस्य सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ यथा ॥ स सृत्पात्रं समादाय
साध्यनाम लिखेच्छिवे । वायुना पुटितं कृत्वा स्वमूलं तत्र
निक्षिपेत् । मायावीजं महेशानि ! अष्टोत्तरशतं जपेत् ।
भैरव्यै तर्पयेद्देवि ! मारणोच्चाटनं भवेत् । स्वमूत्रञ्च समादाय
वामहस्तेन पार्वति ! शोधितं भैरवीपात्रे निक्षिपेत् साध-
कोत्तमः । उन्मादो जायते शत्रु स्मियते वा महेश्वरि ! ।
मोहितः क्षोभितो वापि वश्यो वापि भवेद् ध्रुवम् ॥

एतेषां शान्तिस्तु योगिनोत्तम्ये ॥ शान्तिकं शृणु सर्वज्ञे !
येन जीवेत साधकः । उर्वेशो प्रथमं नीत्वा युगान्तकारकं
परम् । स्नानद्वयेन संयुक्तं धूमिनीत्रितयं ततः । अस्य मन्त्रस्य
देवेशि ! सहस्राष्टप्रमाणतः । जपं कुर्यान्महेशानि ! अन्नपूर्णा
च देवता । पूजयेद्विविधैर्भक्ष्यैर्नारससमन्वितैः । चर्यं चोष्यं
तथा लेह्यं पेयं दद्यान्मनोहरम् । दद्यांशादिप्रमाणेन होमा-
दींश्च समाचरेत् । पद्मपुष्पस्य होमेन शान्तिर्भवति सुन्दरि ! ।
मधुना तर्पयेद्देवीं चान्नपूर्णं परां गतिम् । प्रथमं हनि देवेशि !
जलेन पूरयेद्दृढम् । तद्वटे पूजयेद्देवीं त्वावाञ्छा सुरसुन्दरीम् ।
मन्त्रेणानेन देवेशि ! यदि कुर्यात् प्रयोगकम् । सर्वव्याधि-
र्विनाशेन नात्र कार्या विचारणा ॥

इति श्रीप्राणतोषिण्यां सप्तमे निर्गुणकाण्डे वीराक्षरपूजादि-
षट्कर्मकथनं नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥

अथ कुलाचारः ॥ नित्यातन्त्रे तृतीयपटले ॥ कुलाचार-
विधिं वक्ष्ये सावधानावधारय । यस्य विज्ञानमात्रेण कर्त्ता
हर्त्ता सदाशिवः । दिक्कालनियमो नास्ति तिस्यादिनियमो न
च । नियमो नास्ति देवेशि ! महामन्त्रस्य साधने ॥ कौल-
लक्षणान्तु तत्रैव ॥ क्वचित् शिष्टः क्वचिद् व्यष्टः क्वचिद् भूत-

पिशाचवत् । नानाविशधराः कौला विचरन्ति महीतले ।
 कर्दमे चन्दनेऽभेदः पुष्पे शची तथा प्रिये ।। श्मशाने भवने
 देवि ! तथैव काञ्चने तृणे । न भेदो यस्य देवेशि ! स कौलः
 परिकीर्तितः । मथित्वा ज्ञानदण्डेन वेदागममहोदधिम् ।
 सारमेतन्महादेवि ! कौलाचारं प्रकल्पितम् ॥ समयाचारतन्त्रे ॥
 आर्द्रशुष्कविभागेन द्विधाचारं पुनः शृणु । आर्द्राचारस्तु
 विज्ञेयो मकारैः पञ्चभिर्युतः । मकारपञ्चरहितः शुष्काचारः
 प्रकीर्तितः । कलौ विशेषतो देवि ! आर्द्राचारः फलप्रदः ॥
 गुप्तसाधनतन्त्रे प्रथमपटले ॥ कुलाचारं महाज्ञानं गोप्तव्यं
 पशुसङ्कटे । प्रगोप्तव्यं महादेवि ! स्वयोनिरिव पार्वति ।।
 वेदागमपुराणानि यानि शास्त्राणि पार्वति ।। तन्मध्ये सार-
 भूतं हि कुलाचारं सुदुर्लभम् । वक्तृकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटि-
 शतेरपि । कुलाचारस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते । किञ्चि-
 त्तथापि चापल्यात् कथयामि शृणुष्व मे । शक्तिमूलं जगत्
 सर्वं शक्तिमूलं परं तपः । शक्तिमाश्रित्य निवसेद् यत्र कुला-
 श्रमे वसन् । साधकस्थोचितां शक्तिं साधकाज्जानुवर्त्तिनीम् ।
 इह लोके सुखी भूत्वा देवीदेहे प्रलीयते । साधकेन्द्रो महा-
 सिद्धिं लब्ध्वा याति हरेः पदम् ॥

मुण्डमालातन्त्रे पञ्चमपटले ॥ कुलधर्मं समाश्रित्य ये
 वसन्ति महीतले । ते शिवास्ते शिवा जीवा भवन्ति कुल-
 धर्मतः । कुलीनः शङ्करो ज्ञेयः कुलीनस्तु हरिः स्वयम् ।
 कुलीनो वासजो देवः कुलीनस्तु पितामहः । कुलीना मुनयः
 सर्वे कुलीनाः पितरः स्मृताः ॥ तथा ॥ मूर्खो वा पण्डितो
 वापि ब्राह्मणो वा वरानने !। क्षत्रियो वैश्यजः शूद्रश्चण्डालो
 वरवर्णिनि ।। सर्वे तुल्याः कुलीनाश्च एतत् सर्वार्थसाधनम् ।
 शृणु देवि । वरारोहे । मम वाक्यं शुचिस्मृते ।। शृङ्गाररस-

लावण्यकोविदः सर्वकर्मसु । शृङ्गाराज्जायते सृष्टिः शृङ्गारा-
ज्जायते रतिः । शृङ्गाराच्छङ्करस्तुष्टः शृङ्गारादपि पार्वती ।
प्रह्वारशब्दं ललितं कर्कशं वा सुरेश्वरि ! । शृङ्गारशब्दमात्रेण
जना यास्यन्ति सन्नतिम् । स्त्रियो देवाः स्त्रियः पुण्याः स्त्रिय
एव विभूषणम् । स्त्रौघे षो नैव कर्तव्यस्तासु निन्दाप्रहारकम् ।
वर्जयेदेव देवेशि ! घृणालज्जाविवर्जितः । स्त्रीरूपं तारिणी-
रूपं यो वेत्ति धरणीतले । स श्रीपतिश्च विज्ञेयः स ज्ञेयः
पार्वतीपतिः ॥ तथा ॥ कुलमार्गगतो जीवः शिव एव न
संशयः । कुलधर्मार्थगो जन्तुर्विहरेत् कुलमार्गके । कुल-
पुष्पं समाश्रित्य कुलीनाश्चममाश्रयेत् ॥ षष्ठपटले ॥ कुलवारे
कुलीनन्तु कुलधर्मं कुलव्रतं । आश्रयेत् परमानन्दं परमा-
नन्दमेव च ॥ कुलीनानां भक्तिर्नास्तौत्यादिवचनेनापि दोष-
माह तत्रैव ॥ न कुलीने परा बुद्धिर्न कुलीने परा गतिः । न
कुलीने परा भक्तिर्न कुलीने परा क्रिया । एवं वदति यो जन्तुः
स मुक्तिं नैव याति वै । इहैव स्वर्गो देवेशि ! इह कौलास-
मन्दिरम् । इहैव भक्तिर्भुक्तिश्च मुक्तिरव्यभिचारिणी । भोगः
स्वर्गश्च मोक्षश्च करस्थश्चैव शङ्करि ! । शाक्तानां त्रिपुरेशानि !
सत्यं वच्मि न संशयः ॥

निर्वाणतन्त्रे एकादशपटले ॥ यस्मिन् देशे य आचारो
निर्दिष्टो मन्त्रसाधने । तदाचारविशिष्टो यः कौलिकः स हि
कीर्तितः । महानिर्वाणतन्त्रे चतुर्थोक्तासे ॥ कुलाचारेण पूतात्मा
साक्षाच्छिवमयो भवेत् । यत्रास्ति भोगबाहुल्यं तत्र योगस्य
का कथा । योगोऽपि भोगविरहः कौलस्तूभयमश्रुते ॥

अथ कौलार्चनफलं तत्रैव ॥ एकश्चेत् कुलतत्त्वज्ञः पूजितो
येन सुव्रते ! । सर्वे देवाश्च देव्यश्च पूजिता नात्र संशयः ।
पृथिवीं हेमसम्पूर्णां दत्त्वा यत् फलमाप्नुयात् । तस्मात् कोटि

गुणं पुण्यं लभते कौलिकार्चनात् । श्वपचोऽपि कुलज्ञानी
ब्राह्मणादतिरिच्यते । कुलाचारविहीनस्तु ब्राह्मणः श्वपचा-
धमः । कौलधर्मात् परो धर्मी नास्ति ज्ञाने तु मामके ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण ब्रह्मज्ञानी नरो भवेत् । अयन्तु परमो
मार्गो गुप्तोऽस्ति पशुसङ्कटे । व्यक्तीभविष्यति चिरात् संहृत्ते
प्रबले कलौ । कलिकाले प्रवृत्ते हि सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
न स्थास्यन्ति विना कौलान् पशवो मानवा भुवि ॥

अथ कुलाचारप्रशंसा ॥ कुलार्णवे पञ्चमखण्डे द्वितीयो-
क्तासे ॥ मथित्वा ज्ञानदण्डेन वेदागममहार्णवम् । सारज्ञेन
मया देवि ! कुलधर्मः समुद्धृतः । एकतः सकला धर्मा
यज्ञतीर्थव्रतादयः । एकतः कुलधर्मश्च तत्र कौलोऽधिकः
प्रिये ! । प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रस्रजुवक्रगाः । तथैव
समयाः सर्वे प्रविष्टाः कुलमेव हि । यथा हस्तिपदे लीनं सर्व-
प्राणिपदं भवेत् । तथैव समयाः सर्वे प्रविष्टाः कुलमेव हि ॥
तथा ॥ मेरुसर्षपयोर्यद्वत् सूर्यखद्योतयोर्यथा । तथान्य-
समयस्यापि कौलस्य महदन्तरम् । दर्शनेषु च सर्वेषु विना-
भ्यासेन मानवाः । मोक्षं लभन्ते कौले तु सद्य एव न संशयः ॥
तथा ॥ योगो चेन्नैव भोगी स्याद् भोगी चेन्नैव योगवित् । भोग-
योगात्मकं कौलमतः सर्वात्मकं प्रिये ! । भोगो योगायते
साक्षात् पातकं सुकृतायते । मोक्षायते च संसारः कुलधर्मं
कुलेश्वरि ! । ब्रह्मेन्द्राच्युतरुद्रादिदेवता मुनिपुङ्गवाः ।
कुलधर्मपरा देवि ! मनुष्येषु च का कथा । विहाय सर्व-
धर्मांश्च नानागुरुमताय च । कुलमेव विज्ञानीयाद्यदीच्छे-
च्छ्रियमात्मनः । पूर्वजन्मकृताभ्यासात् कुलज्ञानं प्रकाशते ।
सुसोध्यितप्रत्ययवदुपदेशादिकं विना ॥

दिवा कुलाचारनिषेधस्तु ॥ वामकेश्वरतन्त्रे एकपञ्चाश-

त्पटले ॥ न दिवा च कुलाचारः पूर्णज्ञानेन चान्यथा । आचारो
द्विविधो देवि ! वामदक्षिणभेदतः । जन्ममात्रं दक्षिणं हि
अभिषेकेन वामकम् । निरुत्तरतन्त्रे प्रथमपटले ॥ रात्रौ
कुलक्रियां कुर्याद्दिवा कुर्याच्च वैदिकीम् । दिवा रात्रौ यजे-
द्देवीं योगी योगप्रभेदतः ॥ वामकेश्वरतन्त्रे ॥ गुरोराराधना-
द्देवि ! मन्त्रसाधनतः प्रिये ! । चतुर्णामाश्रमाणां हि चाव-
धूताश्रमो महान् । अवधूताश्रमं गच्छेत् साधकः स्थिरमानसः ।
कामक्रोधलोभमोहमदमात्मवर्जितः । अवधूतः शिवः
साक्षान्मम प्राणसमः प्रिये ! । अवधूतश्च द्विविधो गृहस्थश्च दिग-
म्बरः । सचेलश्च सदारश्च भावकः साधकः शुचिः । गुरुभक्ति-
रतो ज्ञानी वाङ्माभ्यन्तरधर्मकृत् । अष्टाङ्गाभ्यासनिरतः
प्राणायामपरायणः । निष्कामी ज्ञानशुद्धात्मा शिवार्चनपरा-
यणः । गृहावधूतो देवेशि ! द्वितीयश्च सदाशिवः । दिग-
म्बरावधूतो हि पञ्चाचारपरायणः । सदानन्दः सदाशान्तो
दिग्वासाः सर्वदायकः । सर्वभोगी सर्वजातिधर्मकर्मरतः
सदा । न कलौ शोधयेन्मद्यमगम्यागमनं न हि । गृहावधूतैः
कार्यन्तु कर्तव्यञ्च दिगम्बरैः । संविदासवयोर्मध्ये संविदैव
गरीयसी । संविदापानमात्रेण स वीरः स च साधकः ।
एवंविधो विधानज्ञः कुलीनो भवति प्रिये ! । तदैव दिव्य-
भावश्च जायते नात्र संशयः । ये शाक्ता ब्राह्मणा देवि !
क्षत्रिया ब्राह्मणाः स्मृताः । वैश्याश्च ब्राह्मणा देवि ! सर्वे
शूद्रा द्विजोत्तमाः । अन्तःशाक्ता वह्निःशैवाः सभायां वैष्णवा
मताः । नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले । अभि-
षिक्तो गृहस्थश्च सदावधूतकश्च सः । कर्त्ता पाता च संहर्त्ता
शिवतुल्यो न संशयः । वाङ्मपूजा प्रकर्त्तव्या गुरुवाक्यानु-
सारतः । अन्तर्यामिका पूजा सर्वपूजोत्तमोत्तमा । वह्निः-

पूजा विधातव्या यावज्ज्ञानं न जायते । ज्ञाने जाते च देवेभिः । देवतामूर्त्तिभावना । अथवा देवतामूर्त्तिमालम्ब्य साधयेत् सुधीः ॥

कामाख्यातन्त्रे पञ्चमपटले ॥ स ब्राह्मणो वैष्णवः स शक्तो गाणपतश्च सः । स शैवः परमार्थज्ञः स एव पूर्णदौर्जितः । पावनानौह तीर्थाणि सर्वेषामिति सम्मतम् । तीर्थाणां पावनः कौली गिरिजे ! बहु किं वचः । तस्यैव जननी धन्या धन्या हि जनकादयः । तस्य ज्ञातिकुटुम्बाश्च धन्या आलापिनो जनाः । नन्दन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते सुदा । अपि नः सकुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति ॥

अथान्तर्यामिः ॥ सुण्डमालातन्त्रे षष्ठपटले ॥ ध्यायेत्तु पूजयेद्देवं मनसा वचसा हृदा । तदेव साधको लोके चान्तर्यामपरायणः । अन्तर्यामिं महामाये ! साधकानामगम्यकम् । ब्रह्माण्डं वै शरीरन्तु सर्वेषां प्राणधारिणाम् । ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरि । शरीरं तत्त्वघटितं नानारसपरिप्लुतम् । चन्द्रविम्बसमायुक्तं नादविन्दुविभूषितम् । शरीरं शङ्करस्यापि दुर्लभं मुक्तिदायकम् । यावन्मुक्तिर्भूमायामेव ! तावदेव हि साधकः ॥

नित्यातन्त्रे चतुर्थपटले ॥ अथान्तर्यजनं वक्ष्ये शृणु सर्वज्ञसुन्दरि ! न पुनर्जननोर्गर्भं यज्ज्ञात्वा याति साधकः । आधारे कुण्डलीं देवीं चिन्तयेद्भुजगाकृतिम् । पूरकेण महेशानि ! त्वया चक्राणि षट् ततः । सहस्रानन्दसन्दोहमन्दिरं प्रापयेत् सुधीः । योजयित्वा पूरकेण साधकः परमात्मनि । शिवशक्तिसमायोगात् सुखी भूयान्निरन्तरम् । विकाशितं भवेद्देहं सकलं तत्प्रभावतः । अनाहतादहिः पद्मं प्रोड्गशरं विचिन्तयेत् । तन्मध्ये चिन्तयेन्मन्त्री सुधासागरमुत्तमम् ।

शतयोजनविस्तीर्णं बलयाकारमुज्ज्वलम् । तन्मध्ये परमेशानि ।
मणिहीपं मनोहरम् । पारिजातादिरचितैरुद्यानैः परि-
शोभितम् । कल्पवृक्षं महादेवि ! मध्यस्थाने विचिन्तयेत् ।
चतुर्वेदान्वितैः शास्त्रैश्चतुर्भिरुपशोभितम् । चिन्तामणिगृहं
तस्य मूले देवि ! विचिन्तयेत् । सुवर्णरचितं नानारत्नसञ्चय-
रञ्जितम् । प्रवालमेखलायुक्तं घण्टाचामरराजितम् । तन्मध्ये
परमेशानि ! चिन्तयेन्मणिवेदिकाम् । तस्योपरि महादेवि !
मणिपीठं मनोहरम् । स्वकल्पतन्त्रमुक्तं तदुयोनिरूपं विचि-
न्तयेत् । भ्रूमध्ये परमेशानि ! यच्चाद्रं पात्रमुत्तमम् । तत्रस्थ-
ममृतं देवि ! तत्र योनौ विनिक्षिपेत् । तेनैव विद्युदाकारं
योनिमध्ये विचिन्तयेत् । आकाशाज्जायते वायुर्वायोऋत्य-
द्यते रविः । रवेरुत्पद्यते नीरं नीरादुत्पद्यते मही । अनेनैव
विधानेन पञ्चभूतात्मकं भवेत् । सर्वेन्द्रियसमायुक्तं सर्वायुध-
समन्वितम् । सर्वालङ्काररचितं देवीदेहं विचिन्तयेत् । स्नात्वाथ
पुष्करे तीर्थे पूजयेत् परदेवताम् । पादपात्रत्रयं भद्रे !
अर्घ्यपात्रत्रयं तथा । तथाचमनपात्रञ्च त्रयं कुर्याद् वरानने । ।
स्नानपात्राष्टकं देवि ! नियोज्याथ दले दले । पादं
चरणयोर्दत्त्वा कुण्डलिन्यमृतामृतैः । पात्राभ्यां परमेशानि !
पादोदकमथाहरेत् । मनसार्घ्यं त्रिधा कृत्वा गुणत्रयविभे-
दतः । सुवर्णदोलया देवोमानयेत् कुलभैरवः । स्नापयेन्मधु-
गन्धाद्यैः सुवर्णकलसाष्टकैः । चीनया गात्रमार्जन्या
गात्रनीरं समुद्धरेत् । पट्टवस्त्रं ततो देव्यै निवेद्य परिधा-
पयेत् । कञ्चुकञ्च निवेद्याथ शङ्खं बाहुचतुष्टये । निवेदये-
न्महादेव्यै गजदन्तविनिर्मितम् । नानालङ्करणं देव्यै निवेद्य
साधकोत्तमः । भक्तियुक्तेन मनसा स्वस्वस्थाने नियोजयेत् ।
सुगन्धितैलं चिकुरे दत्त्वाथ कुलभैरवः । सुवर्णकङ्कतिकया

केशसंस्कारमाचरेत् । ततस्तु त्रिवलीं बद्ध्वा केशपाशं नियोजयेत् । सिन्दूरतिलकं दद्याद् भूमध्ये कञ्जलैः सुधीः । नेत्रेष्वरक्ष्येद्देव्याश्चामीकरशलाकया । अलक्तं चरणे दत्त्वा नखराग्रे कराम्बुजे । अनर्घ्यरत्नघटितं दद्याच्च नूपुरद्वयम् । सुवर्णरचितं दद्यात् पादुकायुगलं शुचिः । निवेदयेत् किरोटञ्च नानारत्नविनिर्मितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुसीदकुङ्कुमादिभिः । कुर्थादालेपनं देव्याः कुण्डगोलादिभिस्तथा । रत्नपद्मसहस्राणि मूलदेव्यै निवेदयेत् । समानीय ततः पीठे पुनश्च स्वर्णदोलया । चतुर्विंशतितत्त्वेन गन्धं देव्यै निवेदयेत् । तेजोरूपं महेशानि ! दीपं देव्यै निवेदयेत् । अश्वरं चामरं सूर्यं दद्याद्दर्पणमुत्तमम् । चन्द्रं ह्रत्वं महेशानि ! षट्पद्ममेखलां तथा । अनाहतध्वनिमयीं घण्टाञ्च विनिवेदयेत् । सुधारसाम्बुधिं दद्यात् ततस्तु मां सपर्वतम् । ब्रह्माण्डपूरितं देव्यै पायसं विनिवेदयेत् । आनन्दं विनिवेद्याथ निष्कलः कुलभैरवः । मनोनर्त्तकसम्भूतशृङ्गारादिरसोत्तमैः । नृत्यैर्गीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत् परमेश्वरीम् । एवमेव विधानेन सम्पूज्य प्रजपेन्ननुम् ॥

शाक्तानन्दतरङ्गिण्यां षष्ठोक्तासे ॥ कश्चित् कश्चिद्विशेषो यथा ॥ आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा वहिर्देवं हि मृग्यते । करस्यं कौस्तुभं त्यक्त्वा भ्रमते काचदृषण्या । प्रत्यक्षीकृत्य हृदये हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम् । यस्य यस्य हि देवस्य यथा भूषणवाहनम् । तदैव पूजने तस्य चिन्तयेत् परमेश्वरि ! । अथान्तर्गजनं वक्ष्ये येन देवमयो भवेत् । सुखामने समासीनः प्राङ्मुखो वायुदङ्गखः । स्वकीयहृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम् । रत्नहीपन्तु तन्मध्ये सुवर्णबालुकामयम् । मन्दारपारिजाताद्यैः कल्पवृक्षैः सुपुष्पितैः । सर्वतोऽलङ्कृतैर्दिव्यैर्नि-

त्वपुष्पफलद्रुमैः । नानासुगन्धिकुसुमगन्धामोदितदिङ्मुखम् ।
 उत्पुष्पकुसुमामोदप्रहृष्टशृङ्गसङ्कुलम् । कूजत्कोकिलसङ्घेन
 वाचालितदिगन्तरम् । सर्वतोऽलङ्कृतं दिव्यं लसत्काञ्चन-
 पङ्कजम् । मौक्तिकैः कुसुमैः स्रग्भिर्मुकुलैः स्वर्णतोरणैः । तन्मध्ये
 संस्मरेद्देवि ! कल्पवृक्षं मनोहरम् । चतुःशाखाचतुर्वेदं गुण-
 चयमसन्वितम् । पीतं कृष्णं तथा श्वेतं रक्तं पुष्पञ्च सुन्दरि ! ।
 हरितञ्च विचित्रञ्च नानापुष्पविराजितम् । कोकिलैर्भ्रमरै-
 र्देवि ! शोभितं बहुपक्षिभिः । एवं कल्पद्रुमं ध्यात्वा तदधो
 रत्नवेदिकाम् । तत्रोपरि महद्भग्नं चिन्तयेद्रत्नमण्डपम् ।
 उदयदादित्यसङ्काशं रत्नसोपानमण्डितम् । ध्वजावलीसमा-
 कौर्णं चतुर्द्वारसमन्वितम् । नानारत्नविशोभाढ्यं रत्नप्राकार-
 मण्डितम् । स्वस्वस्थानस्थितावस्थैर्लोकपालैरधिष्ठितम् । सिद्ध-
 चारणगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः । किन्नरैरप्सरोगणैर्युतम् । किङ्कि-
 णीजालसम्बन्धपताकाभिरलङ्कितम् । महामाणिक्यवैदूर्य-
 रत्नचामरभूषितम् । स्थूलसुक्ताफलोद्दामलम्बमानैरलङ्कितम् ।
 चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमादिविलेपितम् । तन्मध्ये संस्मरे-
 द्देवि ! महामाणिक्यवेदिकाम् । उदयदकेन्दुकिरणां चतुर-
 सोपशोभिताम् । ध्यायेत् सिंहासनं तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्म-
 कम् । सिंहासने महेशानि ! प्रसूततूलिकां न्यसेत् । पीठ-
 पूजां ततः कृत्वा स्वकल्पोक्तक्रमेण तु । प्रेतपद्मासने तत्र
 चिन्तयेत् परमेश्वरीम् । आत्मन्यभौष्टदेवानां ध्यानं ध्यान-
 मिहोच्यते । श्रीरत्नपादुके दत्त्वा नीत्वा तां स्नानमन्दिरे ।
 सिंहासनोपविष्टायमुद्धर्तनमथाचरेत् । कर्पूरागुरुकस्तूर्यां
 तथा मृगमदेन च । रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रैर्नानागन्धसमन्वितैः ।
 देश्या उद्धर्तनं कृत्वा गन्धतेलं विलेपयेत् । दिव्यवारिसहस्रस्रै

स्वर्णकुम्भसहस्रकैः । आनीय वारिणा स्नातां चिन्तयेत् पर-
 देवताम् । दुकूलैर्मार्जितं गात्रं दुकूले परिधे तथा । कङ्क-
 त्या केशं संस्कुर्व्याद्विधिवद् बन्धनं तथा । पटगुच्छं केशपाशै-
 र्नानारत्नोपशोभितम् । पादयोर्नूपुरे दद्यान्नासाग्रे गजमौ-
 त्तिकम् । निवेदयेद् यथाशक्त्या पुष्पमालाञ्च भूषणम् । सर्वा-
 ङ्गलेपनं कार्यं गन्धचन्दनसिक्तकैः । काञ्चनाञ्चितकञ्चूली
 शोभिता हृदयोपरि । समाधौ चिन्तयेद्देवीं भूतशृङ्गादिकं
 दिशेत् । न्यासजालं विधायाथ समाधौ पूजयेत् सदा । षोड-
 शानामुपचारैर्हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम् । रत्नसिंहासनं दद्यात्
 स्वागतं कुशलं वदेत् । पाद्यञ्च पादयोर्देवि । शिरस्पर्शं
 निवेदयेत् । परामृतमाचमनं प्रदद्यान्मुखपङ्कजे । मधुपर्कं
 सुखे दद्यात् त्रिधा आचमनं सुखे । हेमपात्रगतं दिव्यं पर-
 मान्नं परिष्कृतम् । कपिलाष्टतसंयुक्तमन्नञ्च व्यञ्जनान्वितम् ।
 सुधास्रुधिं मांसशैलं मत्स्यराशिं फलाति च । भक्ष्यं भोज्यं
 तथा लेह्यं चर्यं चोष्यं तथैव च । सकर्पूरञ्च ताम्बूलं मानसं
 परिकल्पयेत् । आवरणान् ततो देव्याः पूजनं मनसैव हि ।
 इत्यमन्तः समाराध्य मानसैव जपेन्ननुम् । सहस्रादिजपं
 कृत्वा देव्यै सोदकमर्पयेत् । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च
 सदाशिवः । अत एव महादेव्याः पर्यङ्कं समुदाहृतम् ।
 पयःफेननिभां शय्यां नानापुष्पोपशोभिताम् । पुष्पशय्याञ्च
 संस्कुर्व्यात्तत्र देवीं सुरेश्वरीम् । चिन्तयेत् साधको योगी
 नानासुखविलासिनीम् । नृत्यगीतैः सवाद्यैश्च तोषयेत् पर-
 मेश्वरीम् । ततो होमं प्रकुर्वीत पूजासाफल्यहेतवे । अथ
 होमं प्रवक्ष्यामि येन चिन्तयतां व्रजेत् । अथाधरामये कुण्डे
 चिदग्नौ होमयेत्ततः ॥

महानिर्वाणतन्त्रे पञ्चमपटले ॥ हृत्पद्ममासनं दद्यात्

सहस्रारच्युतामृतैः । पाद्यं चरणयोर्दद्यान्मनसाध्यं निवेदयेत् ।
 तेनामृततेनाचमनं स्नानीयमपि कल्पयेत् । आकाशतत्त्वं
 वसनं गन्धन्तु गन्धतत्त्वकम् । चित्तं प्रकल्पयेत् पुष्पं धूपं
 प्राणान् प्रकल्पयेत् । तेजस्तत्त्वञ्च दीपार्थं नैवेद्यञ्च सुधासुधिम् ।
 अनाहतध्वनिं घण्टां वायुतत्त्वञ्च चामरम् । नृत्यमिन्द्रिय-
 कर्माणि चाञ्चल्यं मनसस्तथा । पुष्पं नानाविधं दद्यादात्मनो
 भावसिद्धये । अमायामनहङ्कारमरागममदं तथा । अमो-
 हकमदम्भञ्च अहं प्राप्नोमके तथा । अमात्मैक्यमलोभञ्च दश-
 पुष्पं प्रकीर्तितम् । अहिंसां परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम् ।
 दयालुमाञ्जनपुष्पं पञ्चपुष्पं ततः परम् । इति पञ्चदशैः पुष्पै-
 र्भावपुष्पैः प्रपूजयेत् । सुधासुधिं मांसशैलं भर्जितं मीन-
 पर्वतम् । मुद्राराशिं सुभक्तञ्च वृताक्तं पायसं तथा । कुला-
 मृतञ्च तत् पुष्पं पोटलालनवारि च । कामक्रोधौ तु विक्लतौ
 बलिं दत्त्वा जपं चरेत् । माला वर्णमयी प्रोक्ता कुण्डलीसूत्र-
 यन्त्रिता । सविन्दुं वर्णमुज्ज्वल्य मूलमन्त्रं समुच्चरेत् । अका-
 रादिष्वकारान्तमनुलोमविलोमतः । पुनर्लङ्कारमारभ्य औक्-
 ण्टान्तमनुं जपेत् । विलोम इति विख्यातः चकारो भेद-
 रुच्यते । अष्टवर्गान्तिमेवैर्यैः सह मूलमथाष्टकम् । एवमष्टो-
 त्तरशतं जप्त्वा तेन समर्पयेत् । सर्वान्तरात्मनिलये साहा
 ज्योतिःस्वरूपिणी । गृहाणान्तर्जपं मातराये । कालि । नमो-
 ऽस्तु ते । समर्प्य जपमेतेन साष्टाङ्गं प्रणमेद्विया । इत्यन्तर्यजनं
 कृत्वा वह्निःपूजां समाचरेत् ॥

अथान्तर्होमः ॥ नित्यातन्त्रे सप्तमपटले ॥ ज्ञानहोमविधिं
 वक्ष्ये शृणु सर्वाङ्गसुन्दरि ! । यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता
 सदाशिवः । आत्मेति चतुरस्रन्तु विचिन्त्य वीरवन्ति ! ।
 ज्ञात्मान्तरात्मा परमज्ञानात्मा परमेश्वरि ! । यतुभिरेतैर्देवेशि !

कुर्यात्तु चतुरस्रकम् । अर्द्धमात्रां योनिरूपां कुण्डमध्ये विचि-
न्तयेत् । आनन्दं मेखलां कुर्याद्विरेखां बलयं तथा । ज्ञानान्निं
तत्र देवेशि ! योजयेत् कुलभैरवः । शब्दाख्यं मातृकारूपं
संविदग्नीं ततो हुमेत् । अक्षराणीह मे देवि ! निःशब्दे
ब्रह्म जायते । पुण्यं पापं विकल्पञ्च सङ्कल्पं वीरवन्दिते ! ।
कृत्यञ्चाकृत्यमीशानि ! हवींष्येतानि पार्वति ! । चिन्तयेन्मूल-
विद्याञ्च जुहुयान्मनसा सुचा । तदा संविन्मयः साक्षात् परं
ब्रह्मपदं व्रजेत् ॥

अथ पञ्चाहुतयः ॥ श्यामारहस्ये मूलान्ते ॥ नाभि-
चेतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा सुचा । ज्ञानप्रदोपतिं नित्य-
मचवृत्तीर्जुहोम्यहम् । स्वाहा । अनेन प्रथमाहुतिं दद्यात् ॥
ततो मूलान्ते ॥ धर्माधर्महविर्ज्ञात आत्माग्नौ मनसा सुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमचवृत्तीर्जुहोम्यहम् । स्वाहा इति
द्वितीयाहुतिं दद्यात् ॥ ततो मूलान्ते ॥ प्रकाशाकाशहस्ता-
भ्यामवलम्बोन्मनोसुचा । धर्माधर्मकलास्त्रेहपूर्णमग्नौ जुहो-
म्यहम् । वज्रिजायान्तमन्त्रेण तृतीयाहुतिमादिशेत् ॥
अनेन तृतीयाहुतिं दद्यात् मूलान्ते ॥ अन्तर्निरन्तरनिरन्धन-
मेधमाने मायान्धकारपरिपन्थिनि संविदग्नी । कस्मिंश्चिद-
द्भुतमरीचिविकाशभूमौ विश्वं जुहोमि वसुधादिशि वाव-
सानम् ॥

अथ श्रीचक्रक्रमः ॥ कुलार्णवे पञ्चमखण्डे पञ्चमोक्तासे ॥
आधारिणं विना भ्रंशो न च लप्यन्ति मातरः । तस्माद्विधि-
वदाधारं कल्पयेत् कुलनायिके ! । आधारं त्रिपदं प्राहुः षट्-
पदं वा चतुष्टयम् । अथवा वर्तुलाकारं कुर्याद्देवि ! मनो-
हरम् । इति पात्राधारकथनम् ॥

स्वर्णरूप्यमिलाकूर्मकपात्रालावुत्पृणयम् । नारिकेलञ्च

शङ्खश्च मुक्ताशक्तिसमुद्भवम् ॥ पुण्यवृक्षसमुद्भूतं पात्रं कुर्या-
द्विचक्षणः । अतिसूक्ष्ममतिस्थूलं छिन्नं भिन्नञ्च वर्जयेत् । इति
पात्रकथनम् ॥ सुवर्णरौप्यताम्राणि सर्वसिद्धिकराणि च ।
शान्तिके च शिलापात्रं स्तम्भने चैव मृण्मयम् । नारिकेलञ्च
वज्रदावभिचारे च कूर्मजम् । शङ्खं ज्ञानप्रदं मुक्ताशक्ति-
विद्याप्रदायिनो । कपालालावुपात्राणि योगसिद्धिकराणि
च । पुण्यवृक्षजपात्राणि सर्वपापहराणि च । उक्तेष्वेतेषु
देवेश ! पात्रमेकं प्रकल्पयेत् ॥ इति कर्मविशेषे पात्रफलम् ॥

एतदनन्तरं कुलद्रव्यकरणमुक्ता-इत्यादि मद्ये हेतूनि मद्या-
न्यन्यानि कारयेत् । पानसं द्राक्षमाधूकं खार्जूरं तालमैक्षवम् ।
मधूयं सीधुमाध्वीकमैरेयं नारिकेलजम् । मद्यान्येकादशै-
तानि भुक्तिमुक्तिकराणि च । द्वादशन्तु सुरामयं सर्वेषा-
मुत्तमं प्रिये ! । गौड़ो पैटो च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा
सुरा । सर्वसिद्धिकरी पैटो गौड़ी भोगप्रदायिनी । माध्वी
मुक्तिकरी प्रोक्ता सुरा स्याद्देवता प्रिये ! । इति त्रिविधसुरा-
कथनम् ॥

विद्याप्रदैक्ष्वी माला माध्वी राज्यप्रदा भवेत् । तालजा
स्तम्भने शस्ता खार्जूरौ रिपुनाशिनी । नारिकेलमवा श्रीदा
पानसौ च शुभप्रदा । मधूकजा ज्ञानकरी माध्वीका रोग-
नाशिनी । मैरेयाख्या महेशानि ! सर्वपापापहारिणी ।
इत्येकादशमद्यफलम् ॥ क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मद्यं वल्कलसम्भवम् ।
मधुपुष्पसमुद्भूतमासवं तण्डुलोद्भवम् । तद्वन्मन्त्राणमात्रेण शतक्रतु-
फलं लभेत् । तस्य सम्पर्कमात्रेण तीर्थकोटिफलं लभेत् ।
देवि ! तत्पानतः साक्षाल्लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ॥ मद्याभावे
वटिकोक्ता तत्रैव ॥ मद्यमांसादिविजयां चाष्टगन्धैः सुमि-
श्रिताम् । सम्मर्द्य वटिकां कृत्वा सङ्गृह्याथ विचक्षणः । मद्या-

भावे तु वटिकां जले संयोज्य तर्पयेत् । वटिकाभावे द्रव्या-
न्तरेण तर्पणमुक्तं तत्रैव ॥ गुडमिश्रेण तक्त्रेण तर्पयेन्मधु-
भाजिना । सौवीरेणाथवा कुर्व्यादेतत् कर्म न लोपयेत् । प्रमा-
दाद् यदि लुप्येत देवताशापमाप्नुयात् । मांसञ्च त्रिविधं
प्रोक्तं खभूजलचरं प्रिये ! । यथासम्भवमेष्वेकं तर्पणार्थं
प्रकल्पयेत् । मांससन्दर्शनेनापि सुरादर्शनवत् फलम् । पितृ-
देवादियज्ञेषु वैश्वहिंसा विधीयते । आत्मार्यं प्राणिनां हिंसा
कदाचिन्नोदिता प्रिये ! । अनिमित्तं ह्येवं वापि हृदयेन्न कदा-
चन । देवतार्थं द्विजार्थं वा हत्वा पापैर्न लिप्यते ॥ मांसा-
भावे मांसप्रतिनिधिरुक्तस्तत्रैव ॥ मांसाभावे तु लसुनं सार्द्रकं
नागरन्तु वा । आदाय पूजयेद्देवीं नान्यथा निष्फलं भवेत् ॥
मत्स्यमांसतत्प्रतिनिध्यभावे केवलकारणेनापि तर्पणमुक्तम्
तत्रैव ॥ मत्स्यमांसादिह्येनेन मद्येनापि च तर्पयेत् । न कुर्व्या-
न्मत्स्यमांसाभ्यां विना द्रव्येण पूजनम् ॥ तर्पणफलमुक्तं तत्रैव ॥
पिशितं तिलमात्रन्तु तिलार्द्धमपि बिन्दुना । सक्तत्पित-
मात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत् । कुलपूजासमं नास्ति पुण्य-
मन्यज्जगत्त्रये । तस्माद् यः पूजयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तयोः
स भाजनम् । अनधीतञ्च शास्त्रज्ञी गुरुभक्तो दृढव्रतः ।
कुलपूजारतो यस्तु स मे प्रियतमो भवेत् । चतुर्णा-
मपि वर्णानामाश्रमाणामधोऽखरि ! । पुंस्त्रीनपुंसकानाञ्च
पूजिता त्वं सदाशिवे ! । इहामुल्ल फलं दद्यात् पूज्या
सुरवधूरिव । कुलपूजादिकं विना यश्चैतत् करोति
तस्य दोषमाह तत्रैव ॥ कुलपूजां विना यस्तु करोत्येतत्
सुदुर्मतिः । स याति नरकं घोरमेकविंशतिभिः कुलैः ॥ आरा-
धनैः त्र्यशक्तानां कृत्यमुक्तं तत्रैव ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुल-
पूजारतो भवेत् । लभते सर्वसिद्धिञ्च नात्र कार्या विचारणा ।

आराधनासमर्थश्चेद्दद्यादर्चनसाधनम् । यो दातुं नैव शक्नोति
 कुर्त्यादर्चनदर्शनम् ॥ शैवादीनामपि कुलद्रव्येण पूजनमुक्तं
 तत्रैव ॥ शैवे च वैष्णवे शाक्ते सौरे च गणदर्शने । बौद्धे पाशु-
 पते साङ्गो व्रते कलामुखे तथा । सदक्षवामसिद्धान्ते वैजिका-
 दिषु पार्वति ! । विनालिपिशिताभ्याञ्च पूजनं विफलं
 भवेत् । कुलद्रव्यैर्विना कुर्त्याञ्जपयज्ञतपोव्रतम् । निष्फलञ्च
 भवेद्देवि ! भस्मनोव यथाहुतिः । एतेन वैष्णवे कुलाचारा-
 भाव इति येनोक्तं तेनेत्यादिवचनं न श्रुतमिति भाति ॥

कुलाचारकरणफलमाह तत्रैव ॥ यथेवानुचरा राज्ञः प्रियाः
 स्युर्न वह्निश्चराः । तथान्तर्याग्निष्ठा ये ते प्रिया देवि ! नापरे ।
 समर्पयन्ति ये भक्त्या कराभ्यां पिशितासवम् । उत्पादयति
 चानन्दं मत्प्रियाः कौलिकाश्च ते । आवयोः परमाकारं
 सच्चिदानन्दलक्षणम् । कुलद्रव्योपभोगेण परिस्फुरति नान्यथा ।
 अन्तःस्थान्मभवोद्भासो मनोवाचामगोचरः । कुलद्रव्योपभोगेण
 जायते नान्यथा प्रिये ! । शैविते च कुलद्रव्ये कुलतत्त्वार्थदर्-
 शिनः । जायते भैरवावेशः सर्वत्र समदर्शिनः । तमःपरि-
 हृतं वेष्टम यथा दीपेन दृश्यते । तथा मायाहृतो ह्यात्मा द्रव्य-
 पानेन दृश्यते । मन्त्रपूतं कुलद्रव्यं गुरुदेवार्पितं प्रिये ! । ये
 पिबन्ति जनास्तेषां स्तन्यपानं न विद्यते । सुरा शक्तिः शिवो
 मांसं तद्वक्तो भैरवः स्वयम् । तयोरैक्यं समुत्पन्नमानन्दो
 मोक्ष उच्यते । आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तत्तु देहेष्ववस्थितम् ।
 अस्याभिव्यञ्जकं मद्यं योगिभिस्तेन पीयते । निःसङ्गो निर्भयो
 वीरो निर्द्वन्द्वो निष्कृतूहलः । निर्णीतवेदशास्त्रार्थो वरदां
 वारुणीं पिबेत् ॥

संस्कृतद्रव्यदानफलन्तु तत्रैव ॥ मन्त्रसंस्कारसंशुद्धा-
 न्नपानेन पार्वति ! । जायते देवताभावो भवबन्धविमो-

चकः। ब्राह्मणस्य सदा पेयं क्षत्रियस्य रणागमि। गोलम्भनै
 च वेश्यस्य शूद्रस्यान्येष्टिकमेणि। देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य
 देवि ! शास्त्रोक्तवर्त्मना ॥ अर्थलोभादिना कुलद्रव्यपाने दोष-
 स्तत्रैव ॥ गुरुं स्मरन् पिबन्मद्यं खादन्मांसं न दोषभाक्।
 हृत्त्यर्थं सर्वदेवानां ब्रह्मज्ञानार्थमेव च। सेवेत मधुमांसानि
 हृत्त्यया चेत् स पातकी। मन्त्रार्थस्मरणार्थाय मनसः स्थैर्य-
 हेतवे। भवपाशनिवृत्त्यर्थं मधुपानं समाचरेत्। सेवते यः
 सुखार्थाय मद्यादीनि स पातकी। प्राशयेद्देवताप्रीत्यै ह्यभि-
 लासविवर्जितः। मत्स्यमांससवादीनां मादनानां निषेवणम्।
 यागकालं विनान्यत्र दूषणं कथितं प्रिये !। यथा क्रतुषु
 विप्राणां सोमपानं विधीयते। मधुपानं तथा कार्यं समये
 भोगमोक्षदम्। श्रीगुरोः कुलशास्त्रेभ्यः सम्यग्विज्ञाय वासनाम् ॥
 पञ्चमुद्रां निषेवेत चान्यथा पातकी भवेत्। अयद्वा भैरवं
 देवमकृत्वा मन्त्रतर्पणम्। पशुपानविधौ पीत्वा कौलोऽपि
 नरकं व्रजेत्। कौलज्ञाने ह्यसिद्धो यस्तद्द्रव्यं भोक्तुमिच्छति।
 स महापातकी देवि ! सर्वकर्मवहिष्कृतः। समयाचारहीनस्य
 खैरवृत्तेर्दुरात्मनः। न सिद्धयः कुलभ्रंशस्तत्संसर्गं न कार-
 येत्। यः शास्त्रविधिसुत्सृज्य वर्त्तते कामचारतः। न स
 सिद्धिमवाप्नोति परत्र न परां गतिम्। स्वेच्छया वर्त्तमानो
 यो दीक्षासंस्कारवर्जितः। न तस्य सद्गतिः कापि तपस्तीर्थ-
 व्रतादिभिः। असंस्कृतं पिबेद्द्रव्यं बलात्कारेण मैथुनम्। स्वप्रि-
 येण हतं मांसं रौरवं नरकं व्रजेत्। कौलाः पशुव्रताद्यैव पच-
 ह्यविडम्बकाः। केशसङ्घा स्थिता यावत्तावत्तिष्ठति रौरवे।
 कुलद्रव्याणि सेवन्ते येऽन्यदर्शनमाश्रिताः। तदङ्गरोमसङ्घातं
 पलाशो स निगद्यते। खलत्वादिन्द्रियगणं सम्पाद्यात्मनि
 योजयेत्। मांसाशी स भवेद्देवि ! श्रेष्ठाः स्युः प्राणिहिंसकाः।

अप्रबुद्धा पशोः शक्तिं प्रबुद्धा कौलिकस्य च । शक्तिं तां सेवयेद्
यस्तु स भवेच्छक्तिसेवकः । परशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्द-
निभेरः । य आस्ते मैथुनं यत् स्यादितरे स्त्रीनिषेवकाः ।
इत्यादिपञ्चमुद्राणां वासनां कुलनायिके ! ज्ञात्वा गुरुमुखा-
द्देवि ! यः सेवेत स मुच्यते ॥

षष्ठोल्लासे ॥ पूजकलक्षणादि ॥ पूजाभिषेकसहितो देवि !
शास्त्रार्थतत्त्ववित् । देवतागुरुभक्तश्च नियतं योऽर्चयेत् प्रिये ! ।
कुलागमरहस्यज्ञी देवताराधनोत्सुकः । गुरुपदेशसंयुक्तः
पूजयेत् कुलनायिके ! । शुद्धात्मा चातिसंहृष्टः क्रोधलील्यविव-
र्जितः । पशुव्रतादिविमुखः सम्मुखस्तर्पयेत् प्रिये ! । मन्त्रयोगेन
देवेशि ! कुर्यात् श्रीचक्रपूजनम् । तदहन्तु त्वया साङ्गं गृह्णा-
मि स्वयमादरात् । भैरवोऽहमिति ज्ञानात् सर्वज्ञादिगुणा-
न्वितः । इति सच्चिन्म योगीशः कुलपुजारतो भवेत् । इत्यादि-
लक्षणोपेतः कौलिको नियतव्रतः । यस्त्वां समर्चयेद्देवि !
भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम् । एकान्ते विजनेऽरण्ये देशे बाधा-
विवर्जिते । सुखासने समासने प्राङ्मुखो वायुदङ्मुखः ।
आत्मस्थानमनुद्रव्यदेवशुद्धिस्तु पञ्चधा । यावन्न कुरुते देवि !
तावद्देवार्चनं कृतः । पञ्चशुद्धिं विधायेत्यं पश्चाद् यजनमा-
चरेत् । सा पूजा सफला ज्ञेया चान्यथा निष्फलं भवेत् । मण्ड-
लेन विना पूजा विफला कथिता प्रिये ! । तस्मान्मण्डलमा-
लित्य विधिवत् तत्र पूजयेत् ॥

मण्डललक्षणं तत्रैव ॥ अखण्डमण्डलाकाकारं विश्वं व्याप्य
अवस्थितम् । त्रैलोक्यं मण्डितं येन मण्डलं तत् सदाशिवम् ।
उद्यानचतुरस्रं स्यात् कामरूपञ्च वर्तुलम् । जालन्धरोर्ध्वचन्द्राभं
व्रस्रं पूर्णगिरिर्भवेत् । अभ्यर्च्य मण्डलं पश्चादाधारान् स्थाप-
येत् क्रमात् । सामान्यं श्रीगुरोर्भोगवलिपात्राणि पञ्चधा ।

द्विपात्रं वा त्रिपात्रं वा एकपात्रं न कारयेत् । स्वदक्षिणादि-
वामान्तं संस्थाप्यार्चासवेन तु । सम्पूज्य मूलमन्त्रेण कुले-
श्वरि ! विधानवित् । तत्र साधप्रमाणन्तु मन्त्रं मांसञ्च
निर्क्षिपेत् ॥

तर्पणे निषिद्धसुरामाह तत्रैव ॥ नष्टैः पर्युषितोच्छिष्टै-
र्दुर्गन्धैर्गन्धवर्जितैः । हेतुभिः परपात्रस्थैस्तर्पणं विफलं भवेत् ॥
असंस्कृता सुरा पापकलहव्याधिदुःखदा । आयुःश्रीकीर्त्ति-
सौभाग्यधनधान्यविनाशिनी । तस्मात् संस्कृत्य विधिवत् कुल-
द्रव्यं ततोऽर्चयेत् । अन्यथा याति नरकं भोक्ता दाता न
संशयः ॥

सुराशोधनप्रकारस्तु तत्रैव ॥ वीक्षणप्रोक्षणध्यानमन्त्र-
मुद्राविशोधितम् । द्रव्यं तर्पणयोग्यं स्यादेवताप्रौतिकारणम् ॥
प्रत्येकं पञ्चमकारशोधनमन्त्रोऽपि तत्रैव ॥ प्रथमं हंसः
सदसत् प्रतद्विष्णुरनन्तरम् । त्र्यम्बकन्तु तृतीयं स्याच्चतुर्थं
तत्पदादिकम् । विष्णुर्योनिकमित्यादि पञ्चमं कल्पनामृतम् ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चद्विचतुर्वारमम्बिके ! । संस्कृत्याभ्यर्च्य पात्रन्तु
पूजयेद्देनुमुद्रया । ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितं महापात्रं पीयूषरसमेव ह । शुद्धद्रव्येण तेनापि
शुद्धपुष्पाक्षतैरपि । न्यासपूर्वोक्तमन्त्रेस्तु आत्मानं पूजयेत्
प्रिये ! । मूर्ध्नि श्रीगुरुपंक्तिञ्च मूलाधारे च पादुकाम् ॥

✓ गुरुपंक्तिक्रममाह तत्रैव ॥ दिव्यौघे चादिनाथाश्च तच्छ-
क्तीश्च सदाशिवः । तत्पत्नी चेश्वरस्तस्य भार्या रुद्रश्च तदुधः ।
विष्णुश्च तत्प्रियो ब्रह्मा तत्कान्ता हादमेरिताः । सिद्धौघे सनक-
श्चैव सनन्दश्च सनातनः । सनत्कुमारश्च सनत्कुजातश्च रिमु-
चजाः । दत्तात्रेयो दैवतको यामदेवस्ततः परम् । ततो
व्यासः शुक्रश्चैव एकादश समीरिताः । मानवीघे वृसिंहश्च

महेशो भार्गवस्तथा । महेन्द्रो माधवो विष्णुः षडैते परि-
कीर्त्तिताः । नमो यो योजयेद्देवि ! दिव्यौघे परमं शिवम् ।
महाशिवञ्च सिद्धौघे मानवीघे सदाशिवम् । ततः पौठं सुम-
भ्यर्च्य देवीमावाहयेत् प्रिये ! । महापद्मवनान्तःस्थे । कार-
णानन्दविग्रहे । । सर्वभूतहिते ! मातरेह्येहि परमेश्वरि ! ।
देवेभि ! भक्तिसुलभे ! सर्वाभरणसंयुते ! । यावत्त्वां पूजयामीह
तावत्त्वं सुस्थिरा भव । मन्त्रेणानेन चावाह्यं यजेद्देवीमन-
न्यधौ । ध्यात्वा मुद्राः प्रदर्श्यार्च्यद्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥

अथ कुलाचारचक्रम् ॥ कुलार्णवे पञ्चमखण्डे एकादशो-
क्तासे ॥ यदि स्याद्दीक्षितो ज्येष्ठः कुलपूजादिवर्जितः । तत्-
कनिष्ठस्तत्क्रमश्चेत् कुलपूजां समाचरेत् ॥ तत्समीपं ततो
गत्वा नमस्कृत्य गुरुं यथा । तस्मै निवेद्य तत्सर्वं शेषं भुञ्जीत
पार्वति ! । पूजामध्ये गुरो ज्येष्ठे पूज्ये वापि समागते । नत्वा
ब्रूयात् स्थितिं शिष्यमाचरेत्तदनुज्ञया । ज्येष्ठस्य च कनिष्ठस्य
शिष्यावेकत्र संस्थितौ । तत्र पूज्यवदाचारः कथितः कुल-
नायिके ! । अज्ञातकालप्राप्तश्चेत् पौर्वापर्यन्तु चिन्तयेत् ।
स्मृत्वा तस्य गुरुं देवि ! समवेशेन तर्पयेत् । नित्यार्चनं दिवा
कुर्याद्वात्री नैमित्तिकार्चनम् । उभयोः काम्यकर्माणि चेति
शास्त्रस्य निर्णयः । न स्नात्वा नासनस्थो वा भुक्त्वा च प्रलप-
न्नपि । गन्धपुष्पाक्षताकल्पवस्त्राद्यैरनलङ्घितः । अविन्यस्त-
शरीरो वा कुलपूजां न चाचरेत् । विना मन्त्रेण या पूजा
विना मासेन तर्पणम् । विना शक्त्या च यत् पानं निष्फलं
कथितं प्रिये ! । औचक्रमेको वा कुर्यादेकपातञ्च नार्चयेत् ।
नार्चयेदेकहस्तेन न पिबेदेकपाणिना । मत्स्यमांसासवैर्देवि !
नार्चयेत् पशुसन्निधौ । प्रणम्य प्रविशेच्चक्रं निर्गच्छेच्च प्रणम्य
च । औचक्रदर्शनं देवि ! नेत्रयोः पापनाशनम् । अना-

चारान् सदाचारान् चक्रस्थान् शक्तिकौलिकान् । शिवगौरी-
 धिया देवि ! भावयेन्नावमानयेत् । कुलाचार्यगृहं गत्वा
 भक्त्या पापविशुद्धये । याचेदमृतगन्धञ्च तदभावे जलं पिबेत् ।
 कुलाचार्येण यच्छ्रुत्वा दत्तं पात्रन्तु भक्तितः । नमस्कृत्य तु
 गृह्णीयादन्यथा नरकं व्रजेत् । अस्नात्वा वापि भुक्त्वा वा लोभा-
 द्वापि कुलेश्वरि ! । यः सेवते कुलद्रव्यं स दारिद्र्यमवाप्नु-
 यात् । उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गणाहतः । परा-
 झ्रुखो विवादौ च न पिबेत्तु कुलामृतम् । योगामृतेन निष्ठिव्य
 मद्यभाण्डपङ्क्तिभ्रमात् । ऊर्ध्वनालेन पानाच्च देवताशापमाप्नु-
 यात् । एकासने निविष्टा ये भुञ्जते चैकभाजने । एकपात्रे
 पिबन्त्यम्बु ते यान्ति नरकं प्रिये ! । यः सेवते कुलद्रव्यमेक-
 ग्रामे स्थिते गुरौ । तत्कुलज्ञे च तत्पुत्रे सज्येष्टे कुल-
 देशिके । विनानुज्ञां कुलेशानि ! सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ।
 उच्छिष्टो न स्पृशेच्चक्रे कुलद्रव्याणि पार्वति ! । वह्निः प्रक्षाल्य
 च करोी कुलद्रव्याणि दापयेत् । मद्यभाण्डं समुवृत्य न पात्रं
 पूरयेत् प्रिये ! । भोगपात्रं सुराकुम्भे निक्षिपेन्न कदाचन ।
 चक्रमध्ये शुचिधिया करप्रक्षालनादिकम् । यः करोति
 विमूढात्मा स भवेदापदां पदम् । निष्ठोवनं मलं मूत्रमधो-
 वायुविसर्जनम् । श्रीचक्रमध्ये यः कुर्यात् स भवेत् योगिनी-
 पशुः । चक्रमध्ये घटे भग्ने पात्रे च पतिते भुवि । दीप-
 नाशे च शान्त्यर्थं श्रीचक्रं कारयेत् प्रिये ! ।

प्रौढोक्तासे सति ज्ञानिमत्तयोर्विज्ञानं यथा तत्रैव ॥ मन्वान्
 जपन्ति ध्यायन्ति स्तुवन्ति प्रणमन्ति च । बोधयन्ति च पृच्छन्ति
 नन्दन्ति ज्ञानिनः प्रिये ! । मत्ता हसन्ति गच्छन्ति विवदन्ते
 धरस्परम् । रुदन्ति श्रियमिच्छन्ति तिन्दन्ति ज्ञानिनः प्रिये ! ।
 परिहासं प्रलापञ्च वितण्डां बहुभाषणम् । औदासीन्यं भयं

क्रोधं चक्रमर्ध्यं विवर्जयेत् । पात्रहस्तो महादेवि ! न भस्मे-
चक्रमध्यतः । पूर्णपात्रं करे कृत्वा न तिष्ठेत् चिरं प्रिये ! ।
नालपेत् पात्रहस्तः सन् न निन्द्यात् पात्रमम्बिके ! । न
पद्मां संस्पृशेत् पात्रं न विन्दुं पातयेदधः । नैकहंस्तेन
दातव्यं न मुद्रावर्जितं प्रिये ! । पात्रं न चालयेत् स्थानात्
न कुर्यात् पात्रसङ्कुलम् । सशब्दं न पिबेन्मद्यं तथैव न च
पूरयेत् । नान्योन्यं ताडयेत् पात्रं न पात्रं पातयेदधः । साधारं
नोद्धरेत् पात्रमनाधारे च निक्षिपेत् । रिक्तपात्रं न कुर्वीत
न पात्रं भ्रामयेत् प्रिये ! । न पात्रं लङ्घयेद्भीमान् पात्रं
नोत्पातयेत् क्वचित् । प्रक्षाल्य गोपयेत् पात्रमित्याज्ञा पर-
मेस्वरि ! । यदसन्दीपितोक्तासः कौलिकः पशुमीक्षते । पठित्वा
पशुशास्त्राणि सङ्गच्छेद्वा पशुस्त्रियम् । कुर्यात् पशुप्रसङ्गं वा
पशुकार्याणि वा चरेत् । श्रीचक्रस्थं कुलद्रव्यं यः पशुभ्यः
प्रयच्छति । लेह्याल्लोभाद्भयाद्वापि स भवेद्योगिनीपशुः । रिपु-
णापि न कर्तव्यो वाग्वादश्चक्रमध्यतः । पिष्टमात्रसमं पश्येत्
तेनोक्तं पुरुषं सहेत् । यथा स्त्रीपुत्रमित्रादि दृष्ट्वा चेतः प्रहृष्यति ।
तथा चेत् कौलिकान् दृष्ट्वा स भवेद् योगिनीप्रियः ॥

तथा ॥ नित्यं समर्चयेद्भक्त्या पशुहस्ते न निक्षिपेत् । स्वदार-
वन्निषेवेत् कुलशास्त्राणि पार्वति ! । पशुशास्त्राणि सर्वाणि वर्ज-
येत् परदारवत् । श्वचर्मस्थं यथा क्षीरं न पेयं स्याद्विजातिभिः ।
तथा पशुसुखाङ्गर्मे न श्रितव्यं कौलिकैः । यः शृणोति कुला-
चारं यथाशास्त्रं यो वदेत् । तावुभौ गच्छतः साक्षाद् योगि-
नीवीरमेलनम् । अश्वहाना ये चात्र कुलधर्मे कुलेश्वरि ! ।
नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसंज्ञवम् ॥ तथा ॥ गुरुशक्तिं
वीरभार्यां कुमारीं व्रतधारिणीम् । व्यङ्गाङ्गीं विक्कताङ्गीञ्च
कुञ्जामपि न कारयेत् । सुताञ्च भगिनीं पौत्रीं स्नुषां वापि

प्रियामपि । न कामयेद्गुरोरग्रे कुर्यान्वान्योन्यगूहनम् ।
 कृष्णां शुक्लां कृष्णवर्णां कुमारीञ्च कथोदरीम् । मनोहरां
 यौवनस्थामर्चयेद्देवताधिया । एकदापि न सेवेत बलेन कुल-
 योगिनीम् । चक्रमध्ये स्वयं चुब्वां कामयेत् कुलसुन्दरि ।।
 आममांसं सुराकुम्भं मत्तेभं सिद्धलिङ्गिनम् । सहकारमशो-
 कञ्च क्रीडालीनाः कुमारिकाः । एकहृत्तं श्मशानञ्च समूहं
 योषितामपि । नारीञ्च रक्तवसनां दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः । गुरु-
 शक्तिं सुतं ज्येष्ठं कनिष्ठं कुलदेशिकम् । कुलदर्शनशास्त्राणि
 कुलद्रव्याणि कौलिकान् । प्रेरकान् सूचकान् वापि वाचकान्
 दर्शकांस्तथा । शिचकान् बोधकान् योगियोगिनीसिद्ध-
 रूपकान् । कन्यां कुमारिकां नग्नमुन्मत्तामपि योषितम् ।
 न निन्देन्न जुगुप्सेत सहासं नावमानयेत् । नाप्रियं नानृतं
 ब्रूयात् कस्यापि कुलयोगिनः । कुरूपा चेति कृष्णेति न वदेत्
 कुलयोषितम् । परीक्षयेन्न भक्तानां वीराणाञ्च कृताकृतं । न
 पश्येत् पतितां नग्नमुन्मत्तां प्रकटस्तनीम् । दिवसे न रमेत्
 कान्तां तदयोनिं नैव बोधयेत् । या काचिदङ्गना लोके सा
 मादृक्कुलसम्भवा । कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनितानामति-
 क्रमात् । स्त्रियं शतापराधेन पुष्पेणापि न ताडयेत् । दोषान्न
 गणयेत् स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत् । तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः
 कुलहृत्तेषु सर्वदा । तत्पत्रेषु न भोक्तव्यमर्चयेत्तु विशेषतः ।
 न स्वप्यात् कुलहृत्ताधो न चोपद्रवमाचरेत् । दृष्ट्वा भक्त्या नम-
 स्कुर्याच्छेदयेन्न कदाचन । श्लेष्मातककरञ्जानि निम्बाश्वत्थ-
 कदम्बकाः । विस्त्रो वटोडुम्बरश्च तिन्तिडिर्दशमाः स्मृताः ।
 प्रायश्चित्तं भृगोः पातं सश्यासं व्रतधारणम् । तीर्थयात्राभि-
 गमनं कौलः पञ्च विवर्जयेत् । वीरहत्या हथापानं वीरद्रव्या-
 पहारिता । वीरस्त्रीगमनञ्चैव तत्संसर्गश्च पञ्चमः । महा-

पातकमित्युक्तं कौलिकानां कुलान्वये । शैवे तत्त्वपरिज्ञातं
गारुडे विषभक्षणम् । ज्योतिषे ग्रहणं सारं कौलेऽनुग्रहनि-
ग्रही ॥

अथानन्दस्वरूपकथनम् ॥ समयाचारतन्त्रे प्रथमपटले ॥
आनन्दं परमं ब्रह्म परशक्तिः सदाशिवः । आनन्देन विना
भ्रंशो न च लुप्यन्ति देवताः । द्रव्यशुद्धादिसकलमानन्दा-
र्थञ्च भैरवि ! । आनन्दे जायमाने तु भक्षयेन्न कदाचन ।
अतिपानाद्भवेन्मत्तो जपपूजादि निष्फलम् । बुद्धिनाशो भवे-
द्देवि । अत एव मितं चरेत् । सुखार्थं भक्षयेद्यस्त्वापदस्तस्य
पदे पदे । अतिसङ्गोभतोऽत्यर्थलोकादिनिन्दा च जायते ॥
तथा ॥ सर्वं ब्रह्ममयं पश्यन् स च दोषैर्न लिप्यते । मोहाद्वा
कामतो वापि यः कश्चिदिह वर्तते । सोऽधमः साधकानाञ्च
नारको भवति ध्रुवम् । इह लोके निन्दितः स्यात् परे च नरकं
व्रजेत् ॥

अथानुकल्पः ॥ समयान्नागतन्त्रे ॥ गव्यादीनामभावे तु
नित्यं कर्म न लोपयेत् । प्रमादाल्लोपयेद् यस्तु नरकं लभते
ध्रुवम् । द्रव्यं चतुर्दशं प्रोक्तं तच्छृणुष्व पृथक् पृथक् । तेषां
मध्ये इयं द्रव्यं न ग्राह्यञ्च कदाचन । क्षीरं दधि तथा तक्रं
घृतं क्षौद्रं गुडं तथा । शर्करा शीतलं तोयमैक्षवं नारिकेल-
कम् । आस्फेनं विजयाञ्चैवमुन्नतञ्च विषं तथा । धुस्तूरञ्च
विषं देवि ! द्रव्यं प्राणहरात्मकम् । अन्यानि यानि द्रव्याणि
आनन्दार्थं पिबेन्नरः ॥ तथा ॥ सर्वद्रव्याद्यभावे तु आर्द्रकं
परिकीर्तितम् । जलं वा क्षीरतक्रं वा नित्यं कर्म समापयेत् ।
मकारपञ्चकाभावे पञ्चमं परिकीर्तितम् । अभावे पञ्चमे
देवि ! मनसा पञ्चमं व्रजेत् ॥

अथ पारम्पर्यापदेशादिं विना पञ्चतत्त्वसेवननिन्दा ॥

कुलार्णवे पञ्चमखण्डे द्वितीयोऽङ्कात् ॥ गुरुपदेशरहिता मोह-
यन्तीह केचन । मोहयन्ति जनान् केचित् स्वयं पूर्वविमो-
हिताः । दुराचारपराः केचिद्वाचयन्ति च पामराः । बहवः
कौलिकं धर्मं मिथ्याज्ञानविडम्बकाः । स्वबुद्ध्या बलयन्तीशं
पारम्यर्थविवर्जिताः । मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत
वै । मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः । मांसभक्षण-
मात्रेण यदि पुण्यगतिर्भवेत् । लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्य-
भाजो भवन्विह । स्त्रीसम्भोगेन देवेशि ! यदि मोक्षं व्रजन्ति
वै । सर्वेऽपि जन्तवो लोके सुक्ताः स्युः स्त्रीनिषेवणात् । कुल-
मार्गं महान् देवि ! न मया निन्दितः क्वचित् । आचाररहिता
येऽत्र निन्दितास्ते च सर्वदा । अन्यथा कौलिके धर्मं आचारः
कथितो मया । विचरन्त्यन्यथा देवि ! मूढाः पण्डितमानिनः ।
कृपाणधारा गमनादव्याघ्रकण्ठावलम्बनात् । भुजङ्गधारणाञ्जून-
मशङ्कां कुलवर्णनम् । व्रथापानन्तु देवेशि ! सुरापानं तदुच्यते ।
यस्मिन्पातकं त्रैयं वेदादिषु निरूपितम् । अनात्रेयमनासेव्य-
मसृश्यञ्चाप्यपेयकम् । मद्यं मांसं पशूनान्तु कौलिकानां
महाफलम् । यत्तु । अमेध्यानि द्विजातीनां मद्यान्येकादशैव
तु । द्वादशन्तु सुरामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम् । तस्माद् ब्राह्मण-
राजन्यो वैश्यश्च न सुरां पिबेत् । इति द्विजातिपाननिषेधक-
वचनं तदपि पूर्ववचनेकवाक्यतया पशुपरमनभिषिक्तपरं वा ॥

चक्रानुष्ठानं यथा श्यामारहस्यधृतम् ॥ चक्राकारेण पञ्चधा-
कारेण वा भिन्नभिन्नासने स्वशक्तियुक्तश्चेत् युग्मयुग्मक्रमेण
पद्मासनेनोर्पावश्य सामयिकललाटे चन्दनं दत्त्वा शिवशक्ति-
बुद्ध्या पुष्पञ्च दद्यात् । ततो यदि गुरुस्तत्र तिष्ठति तदादौ
गन्धादिना तं पूजयित्वा तत्पात्रे पुष्पं दत्त्वा शुद्धि-
सहितं तस्मै समर्प्य प्रणमेत् । गुरोर्भावे तत्पात्रं जले

क्षिपेत् । ततः शक्तिपात्रं शुद्धिसहितं शक्त्यै दत्त्वा साम-
यिकेभ्योऽपि ज्येष्ठानुक्रमेण वीरपात्रात् परासृतं शुद्धिसहितं
दद्यात् । ततः सामयिकोऽपि भक्त्या हस्तद्वयेन सङ्गृह्य तदु-
परि मूलमन्त्रमष्टधा जप्त्वा पूर्ववदानन्दभैरवं भैरवीञ्च
सन्तर्प्य गुरुन् देवताञ्च सन्तर्पयेत् । स्वस्वकृत्योक्तविधिना
भूतशुद्धिं कुर्यात् । ततश्चक्रनायकस्तैः सह पात्रवन्दनं
कुर्यात् यथा । श्रीमद्भैरवशेखरप्रविलसच्चन्द्रासृतप्लावितं
चेताधौश्वरयोगिनीसुरगणैः सिद्धैः समाराधितम् । आनन्दा-
र्णवकं महात्मकमिदं सान्नालिखण्डासृतं वन्दे श्रीप्रथमं ऋरा-
म्बुजगतं देवं विशुद्धिप्रदम् ॥ इत्यभिमन्त्र्य वामहस्तेन पात्र-
मुत्तोल्य अन्योन्यवन्दनं कृत्वा गृह्णामीति गुरुशक्तिसाध-
केश्वराणामाज्ञां गृह्णीयात् । ते जुषस्वेति ब्रूयुः ॥ ततो
मूलाधारात् कुण्डलिनीं दृष्टदेवतास्वरूपां आजिह्वान्तां
विभाव्य गुरुपादुकां स्मृत्वा शिवोऽहमिति विचिन्त्य हस्ताभ्यां
पात्रं धृत्वा मूलमुच्चरन् कुण्डलिनीमुखे देवीं तर्पयेत् ॥ एत-
दुक्तमुदयाकरपद्धत्याम् ॥ कृत्वा मन्त्रतनुं स्मरेत् गुरुरपदं
देवीं कलां चिन्मयीं पश्चाद् वात्रितयं हृदासनवृतं दीपैर्युतं
कज्जलैः । पुष्पादिष्वभिमन्त्रितञ्च निविडं मन्मोहकाध्वंसकं
ये सच्चिन्ध पिवन्ति यान्ति खलु ते भुक्तिञ्च मुक्तिं पराम् ॥

तन्मान्तरे च ॥ सिन्दूरतिलकं भाले पाणी च मंदिरा-
सवम् । कृत्वा पिबेद्गुरुं ध्यायंस्तथा देवीञ्च चिन्मयीम् ।
ततः पात्रमाधारोपरि संस्थाप्य पुनस्तेन क्रमेण परासृतं
गृहीत्वा पात्रवन्दनं कुर्यात् । यथा ॥ मद्यं मीनरसावहं
यदि तया दातुञ्च पेयादिभिः किञ्चिच्चक्षुरक्तपङ्कजदृशा
तस्यै समावेदितम् । वामे स्वात्मविशुद्धिशुद्धिकमलं पाणी
विधायाम्बुके वन्दे पात्रमहं द्वितीयमधुना नन्दैकसंवर्द्धनम् ॥

ततः पूर्ववत् पात्रं स्वीकृत्य अन्यत् पात्रवन्दनं कुर्यात् ॥
 यथा ॥ सर्वान्नायकलाकलापकलितं कौतूहलद्योतनं चन्द्रो-
 पेन्द्रमहेन्द्रशम्भुवरुणब्रह्मादिभिः सेवितम् । ध्यातं देवगणैः
 परं मुनिगणैर्मोक्षार्थिभिः सर्वदा वन्दे पात्रमहं तृतीयमधुना
 चात्मावबोधक्षमः ॥ तृतीयपात्राभिवन्दनं कृतवान्यत् पात्र-
 वन्दनं कुर्यात् ॥ यथा ॥ हैमं मीनरसावहं हरिहरब्रह्मादिभिः
 सेवितं मुद्रामैथुनधर्मकर्मनिरतं चाराम्भतित्ताश्रयम् । आचा-
 र्याष्टकसिद्धिभैरवकलामांसेन संशोधितं पायात् पञ्चमकार-
 तत्त्वमहितं पात्रं चतुर्थं नमः ॥ इति चतुर्थपात्रवन्दनं कृत्वा-
 न्यत् पात्रवन्दनं कुर्यात् यथा । आधारे भुजगाधिराजवलये
 पात्रं महीमण्डलं मद्यं सप्तसमुद्रवारिपिशितं चाष्टौ च दिग्-
 दन्तिनः । सोऽहञ्चैव विभावयन् प्रतिदिनं तारागणैरक्षितो-
 ऽप्यादित्यप्रमुखैः सुरासुरगणैराज्ञाकरैः किङ्करैः ॥ इति पञ्चमं
 पात्रं स्वीकुर्यात् । ततो यावद्दृष्ट्यादिकं न चलति तावत्
 पानादिकं कार्यम् ।

अथास्य प्रमाणं यथा ॥ रुद्रजामले ॥ साधकेभ्यश्च
 शक्तिभ्यो दद्यान्निष्काल्यचन्दनम् । सामयिकैः समं कुर्या-
 हेवि ! पानादिभक्षणम् ॥ अन्यत्रापि । निविशेच्चक्ररूपेण
 गन्तव्याकारेण वा यथा । शक्तियुक्तो वसेद्वापि युग्मयुग्मविधा-
 गतः । शिवशक्तिधिया सर्वं चक्रमध्ये समर्पयेत् ॥ तन्वा-
 न्तरे च ॥ ततः पुष्पं समादाय गुरोः पात्रे निवेदयेत् । गुरवे
 च निवेद्याथ शक्तये दत्त्वा स्वयं हरेत् ॥ भावचूडामणौ च ॥
 साक्षाद् यदि गुरुर्न स्यात्तदा तोये विसर्जयेत् ॥

अथ पानपात्रपरिमाणं यथा कुलसारि ॥ नयनाग्नि-
 वाणसङ्क्रान्तैस्तु परमेश्वरि ! । हेतुपात्रं प्रकर्तव्यमित्युक्तं
 कुत्तसाधने । इतोऽप्यधिकपात्रान्तु न कर्तव्यञ्च साधकैः ।

कर्षं लौकिकतोलकमित्यर्थः । तदुक्तं कुलोत्तमे ॥ गुञ्जा
द्वादशमाषः स्यात्तदष्टौ कर्ष उच्यते ॥ अथोत्तरतन्त्रे ॥ अनुज्ञां
पुरतो लब्ध्वा गृह्णामीति स्वयं वदेत् । जुषस्वेत्यभ्यनुज्ञातो
गुरुणा वा कुलीनकैः । गृह्णीयाच्च स्वयं सिद्धो बह्वपद्मान्नः
सुधीः ॥

कुलार्णवे ॥ एकासने निविष्टा ये भुञ्जीरश्चैव
भाजने । एकपात्रे पिबन्त्येवं ते यान्ति नरकाधमे । एक-
पात्रमिति सर्वे स्मिलित्वा नैकपात्रे पिबेत् । न तु प्रतिवारं
द्रव्यपाने भिन्नभिन्नपात्रं कार्यम् अनुष्ठानलक्षणापत्तेः
सम्प्रदायविरोधाच्च वचनान्तरदर्शनाच्च ॥ स्वशक्तिं वीर-
शक्तिं वा दीक्षितां गुरुमग्रणीम् । पाययित्वा पिबेद्द्रव्यमिति
शास्त्रस्य निर्णयः । गुरुशक्तियुतानाञ्च गुरुज्येष्ठकनिष्ठयोः ।
उच्छिष्टं भक्षयेत् स्त्रीणां ताभ्यो नोच्छिष्टमर्पयेत् । चक्रमध्ये
च नियतं नान्यथा पतनं भवेत् । कनिष्ठानां स्वशिष्याणां
दद्यात् खोच्छिष्टमेव हि । दद्यात् स्नेहेन योऽन्येभ्यः स
भवेदापदां पदम् ॥ अन्यत्रापि ॥ शक्त्युच्छिष्टं पिबेद्द्रव्यं
वीरोच्छिष्टञ्च चर्वणम् । शक्तिवीरप्रसादेन किं न सिध्यति
भूतले ॥

चक्रेश्वरेण स्वशक्त्युच्छिष्टमपि पेयम् । तद्व्यमाणन्तु ॥
शक्त्युच्छिष्टमविचार्य पिबेच्चक्रेश्वरो यदि । आकल्पं नरकं
भुक्त्वा विष्ठायां जायते क्रिमिरिति । अविचार्येति इय-
मभिषिक्ता नाभिषिक्ता वेति विचारमकृत्वेति तु कौलावलौ-
कारः ॥ पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पुनः पतन्ति भूतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते । इदञ्च वचनं ध्यान-
जपाद्यवसरविषयम् । न तु पशुसंसर्गविषयकञ्च । प्रकटे
सिद्धिहानिः स्यादित्यादिश्रवणात् । यावन्न चलते दृष्टिर्यावन्न

चलते मनः । तावत् पानं प्रकत्तव्यं पशुपानमतः परम् ।
इतिवचनेन ध्यानाद्यपेक्षितत्वाच्च ॥

ततः शान्तिस्तोत्रं पठेत् ॥ तदुक्तं डामरे ॥ पौत्वा
स्वामिजनैः साङ्गं शान्तिस्तोत्रं ततः पठेत् । नश्यन्तु प्रेतकु-
आण्डा नश्यन्तु दूषका नराः । साधकानां शिवाः सन्तु आम्नाय-
परिपालिनाम् । जयन्ति मातरः सर्वा जयन्ति योगिनीगणाः ।
जयन्ति सिद्धिडाकिन्यो जयन्ति गुरुपंक्तयः । जयन्ति सिद्धि-
डाकिन्यो जयन्ति गुरवः सदा । जयन्ति साधकाः सर्वे
विशुद्धाः कौलिकाश्च ये । समयाचारसम्पन्ना जयन्ति पूजका
नराः । नन्दन्तु अणिमासिद्धा नन्दन्तु कुलपालकाः । इन्द्राद्या
देवताः सन्तु हृष्यन्तु वास्तुदेवताः । चन्द्रसूर्यादयो देवा-
स्तृप्यन्तु मम भक्तिः । नक्षत्राणि ग्रहा योगाः करणा राशयश्च
ये । सर्वे ते सुखिनो यान्तु सर्पादन्यास्तु पक्षिणः । पशवस्तुरगा-
श्चैव पर्वताः कन्दरा गुहाः । ऋषयो ब्राह्मणाः सर्वे शान्तिं
कुर्वन्तु मे सदा । स्तुता मे विदिताः सन्तु सिद्धास्तिष्ठन्तु
पूजकाः ॥ ये ये पापधियः सुदूषणरता मन्त्रिन्दकाः पूजने
वेदाचारविमर्दनदृष्टदया भ्रष्टाश्च ये साधकाः । दृष्ट्वा चक्रम-
पूर्वमन्दहृदया ये कौलिका दूषकास्ते ते यान्तु विनाशमत्र
समये श्रीभैरवस्याज्ञया ॥ द्दष्टारः साधकानाञ्च सदैवान्नाय-
दूषकाः । डाकिनीनां मुखे यान्तु हृष्णास्तत्पिप्पितैस्तु ते ॥
ये वा शक्तिपरायणाः शिवपरा ये वैष्णवाः साधवः सर्वस्माद-
खिले सुराधिपमजं सेव्यं सुरैः सन्ततम् । शक्तिं विष्णुधिया
शिवञ्च सुधियः श्रीकृष्णबुद्ध्या तु ये सेवन्ते त्रिपुरन्वभेद-
मतयो गच्छन्तु मोक्षन्तु ते ॥ श्रवणो नाशमायान्तु मम निन्दा-
कराश्च ये । द्दष्टारः साधकानाञ्च ते नश्यन्तु शिवान्नया ।
ततो यथाशक्ति विधिना शिवशक्तियोगं कृत्वा देवीपादे स्वमा-

त्मानं समर्थं श्रीपादसुतोत्तम देव्या उपरि त्रिर्भामयित्वा पुनः
संस्थाप्य संहारमुद्रया स्वहृदि समानीय श्रीदक्षिणकालिके !
क्षमस्वेति विसृजेत् ॥ ओं कालिकायैः नमः ॥

अथानन्दस्तोत्रम् ॥ मनोभुवो मङ्गलमूलमुद्रां सौन्दर्य-
लक्ष्मीं पुरिवेजयन्तीम् । श्रीसुन्दरोमिन्दुकलावतंसां सानन्द-
मानन्दमयीं स्मरामि ॥ १ ॥ श्रीसुन्दरोपूजनतत्पराणां
हालाभिरालोहितलोचनानाम् । अस्माकमानन्दितमान-
सानां माहेश्वराणां दिवसाः प्रयान्तु ॥ २ ॥ विधाय
धारां वदने सुरायाः श्रीकृष्णमभ्यर्च्य कुलक्रमेण । आस्ता-
दयन्तः पिशितं मृगाक्षीमालिङ्ग्य मोक्षं सुधियो लभन्ते ॥ ३ ॥
दिने दिने सिद्धिघटोऽस्तु पूर्णं दिने दिने तर्पणमस्तु देव्याः ।
दिने दिने सङ्घटतां द्वितीयां दिने दिने साधकसङ्गमोऽस्तु ॥ ४ ॥
आस्तादयन्तः पिशितस्य खण्डमाकण्ठपूर्णं मदिरां पिबामः ।
वामेक्षणासङ्गममादधाना भुक्तिञ्च सुक्तिञ्च परां व्रजामः ॥ ५ ॥
न स्वादुलभः पिशितस्य यस्मिन् पञ्चाक्षरी पूर्णरतिर्न यत्र ।
न यत्र सङ्गो मृगलोचनायास्तत्तद्दिनं दुर्दिनमेव मन्ये ॥ ६ ॥
प्रवर्तकानां सहसाय लक्ष्मीः प्रयाति देहं सुपदक्रमेण । श्रीसु-
न्दरीसाधकनिन्दकानां प्राणाधमानीह लयं प्रयान्ति ॥ ७ ॥
अङ्गेषु कुठादि गृहेष्वलक्ष्मीमूर्कत्वमास्ये भवनं श्मशानम् ।
श्रीसुन्दरीसाधकनिन्दकानासायुः क्षयं गच्छति तत्क्षणेन ॥ ८ ॥
श्रीसुन्दरीसाधकपुङ्गवानां यथा यथा निन्दितमातनोति ।
जनः समं पुत्रकलत्रमितैस्तथा तथा नाशमुपैति शीघ्रम् ॥ ९ ॥
हालां पिवन् दीक्षितमन्दिरेषु स्वपन्निशायां गणिकागृहेषु ।
गृहे गृहे भोजनमेव कुर्वन् बन्धुम्यते साधकचक्रवर्ती ॥ १० ॥
अनन्तरं कालवशाच्च योऽहं सोऽहं भविष्यामि न मे विवादः ।
श्रीसुन्दरीं जन्मनि जन्मनि त्वां यज्ञैरवोऽहं जननीं स्मरामि ॥ ११ ॥

विकल्पवाटीतटसन्निविष्टे प्रवर्तमानाः पञ्चवो वराकाः ।
 प्रविश्य मोहाम्बुनिधावगाधे भ्रमन्त्यनापादितकौलमार्गाः
 ॥ १२ ॥ नान्यं विलोकेत च वान्यमोहे नान्यं स्मरन्नापरमा-
 श्रयामि । कदापि नाहं परमात्मरूपां श्रीसुन्दरीं चेतसि
 विस्मरामि ॥ १३ ॥ विलोक्य सिन्दूरमयं सुधाभिः श्रीचक्रराजं
 निश्चि जृम्भवन्तः । श्रीसुन्दरीं चेतसि चिन्तयन्तो हेलालिलोकै-
 र्वश्यन्ति लोकान् ॥ १४ ॥ उन्मूलनं पातकभूरुहाणामुन्म्यादनं
 चित्तकुतूहलानाम् । आकर्षणं पङ्कुरुहेक्षणानामैरेयपानं वय-
 माचरामः ॥ १५ ॥ वाराणसीजङ्गमुताप्रयागकेदारतीर्थाणि
 विलोकितानि । तेनैव मन्ये जगतो वृतानि श्रीसुन्दरीचिन्त-
 नमेव यस्य ॥ १६ ॥ वामे चन्द्रमुखीं मुखे च मधुरं पात्रं करा-
 श्चोरुहे मूर्ध्नि श्रीगुरुचिन्तनं भगवतीध्यानास्पदं मानसे ।
 जिह्वायां जपसाधनं परिणतिः कौलाङ्गनाचिन्तनं यत् पात्रं
 नियतं पिबेत्तदमृतं भक्तिश्च मुक्तिप्रदम् ॥ १७ ॥ वामे रामा
 रमणकुशला दक्षिणे पानपात्रं चाग्रे न्यस्तं मरिचसहितं शूक-
 रस्योष्णमांसम् । स्कन्धे वीणा ललितसुभगा सहस्ररूपां प्रपञ्चः
 कौलो धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ १८ ॥ यत्रास्ति
 भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।
 श्रीसुन्दरीपूजनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्य एव ॥ १९ ॥
 एकेन शुष्कचणकेन घटं पिबामि कुम्भं पिबामि सहसा लव-
 णाद्रकेण । आस्वादयामि यदि रोहितसुण्डखण्डं गङ्गां
 पिबामि यमुनां सह सागरेण ॥ २० ॥ करे पात्रं मुखे स्तोत्र-
 मानन्दो हृदयाम्बुजे । मूर्ध्नि श्रीनाथपादस्य स्मरणं किमतः
 परम् ॥ २१ ॥ पोत्वा मद्यं पठेत् स्तोत्रं साधकः कुलभैरवः ।
 कुलसौमङ्गलनिरतः कुलकार्यं समाचरेत् ॥ २२ ॥ अलिपिशित-
 पुरन्ध्रीयामपूजारतोऽहं बहुविधकुलमार्गारम्भसम्भावितोऽ-

हम् । गुरुचरणरतोऽहं भैरवीमाश्रितोऽहं पशुजनविरतोऽहं
भैरवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २३ ॥ इति कुलार्णवे आनन्दस्तोत्रं
समाप्तम् ॥

अथानन्दोल्लासः ॥ कुलार्णवे पञ्चमखण्डे सप्तमोल्लासे ॥
आरम्भस्तरुणश्चैव यौवनं प्रौढ एव च । तदन्ते चोन्मनाश्चैव
तत्त्वोल्लासस्ततः परम् । समाधिरिति विज्ञेयस्तरुणोल्लासस्तु
सप्तमः । तत्त्वत्रयं स्यादारम्भः कथितं कुलनायिके । कथित-
स्तरुणोल्लासो ह्यरुणं सुखमखिके । यौवनं मनसः सम्य-
गुल्लासः कथितः प्रिये । स्वलनं दृष्टनोवाचां प्रौढमित्यभि-
धीयते । समुल्लासपरि चक्रे य इच्छेत् पादमेलनम् । आदौ
प्रौढसमुल्लासं नैव कुर्यात् कैदाचन ॥ तथा ॥ प्रौढोल्लासमधि-
कृत्य ॥ तदारूढेषु वीरेषु कार्याकार्यं न विद्यते । इच्छैव
शास्त्रसम्पत्तिरित्याज्ञा परमेश्वरि ! तत्र यद्यत् कृतं कर्म
शुभं वा यदि वाऽशुभम् । तत् सर्वं देवताप्रीत्यै जायते सुर-
सुन्दरि ! जप्यो जपफलं तन्द्रा समाधिरभिधीयते । विक्रि-
या पूजनं देवि । हृदनं भैरवो बलिः । मुक्तिः स्याच्छक्तिसंयो-
गात् स्तोत्रं तत्कालभाषणम् । न्यासोऽवयवसंस्पर्शः कण्डूति-
र्हवनक्रिया । वीक्षणं ध्यानमीशानि ! शयनं वन्दनं भवेत् ।
तत्त्वन्धासे कृता नाना या चेष्टा सा च तत्क्रिया । कार्याकार्य-
विचारन्तु यः करोति स पातकी । एतच्चक्रगता वीरा विज्ञेयाः
परयोगिनः । येनाप्लावन्ति मनुजाः साक्षाद्भैरवरूपताम् ।
सम्मोदकपरानन्दतर्पणं ज्ञानवर्त्तनम् । वेणुवीणादिवाद्यञ्च
कवितारचनादिकम् । रोदनं भाषसम्पातः समुत्थानं विजृम्भणम् ।
गमनं विक्रिया देवि ! योग इत्यभिधीयते । चक्रेऽस्मिन् योगिनी-
वीरयोगिन्यो मदमन्थराः । समाचरन्ति देवेशि ! यथोल्लासं
मनोगतम् ॥ शनैः पृच्छन्ति पार्श्वस्थानाविस्मृत्यात्मवीक्षि-

तम् । निधाय वदने पात्रं निर्वाणा निवसन्ति च । मत्ता
 स्वपुरुषं मत्वा कान्तान्धमवलम्बते ॥ तथैव पुरुषस्यापि
 प्रौढोऽन्तोक्ताससंयुतः । पुरुषः पुरुषं मोहादालिङ्गत्यङ्गनाज-
 नम् । पृच्छन्ति स्वपतिं सुग्धा कस्त्वं का त्वमिहागता । किं
 कार्यं वयमायाताः किमर्थमिह संस्थिताः । उद्यानं किमिदं
 हन्त ! गृहं किं वागतं किमु ? सुखे सन्पूर्य्य मदिरां पाययन्ति
 स्त्रियो नरान् । उपदेशमुखे क्षिप्त्वा निक्षिपन्ति प्रियानने ।
 गृह्णन्त्यन्यस्य पात्राणि व्यञ्जनानि च शाश्ववि । धृत्वा
 शिरसि नृत्यन्ति मद्यभाण्डानि योगिनः । अज्ञानात् कर-
 तालान्तमस्यष्टाक्षरगीतकम् । प्रखलत्पदविन्यासं दृष्यन्ति
 कुलशक्तयः । योगिनो मदमत्ताश्च पतन्ति प्रमदोरसि । मदा-
 कुलाश्च योगिन्यः पतन्ति पुरुषोपरि । मनोरथसुखं पूर्णं
 कुर्वन्ति च परस्परम् । इत्यादिविविधाश्चेष्टाः कुर्वन्ति कुल-
 नायिके । विवृतिं मनसो हित्वा यदुक्तासः प्रवर्तते । तदा
 तु देवताभावं भजन्ते योगिपुङ्गवाः । कौलिकान् भैरवा-
 वेशान् यो वा निन्दति मूढधीः । तत्त्वाश्रयस्य सन्देहो
 योगिन्यः कुलनायिकाः । न निन्देन्न हसद्वापि चक्रमध्ये
 मदाकुलान् । एतच्चक्रमगतां वार्त्तां बहिर्नैव प्रकाशयेत् ।
 तैभ्यश्च भोजनं कुर्यात् नाहितञ्च समाचरेत् । भक्त्या संरक्षये-
 देतान् गोपयेच्च प्रयत्नतः । चक्रे मदाकुलान् दृष्ट्वा चिन्तये-
 ह देवताधिया । मोदते वन्दते भक्त्या स गच्छेद् योगिनीपदम् ।
 पश्येदेवंविधं चक्रं यो भक्त्या कौलिकः प्रिये । व्रततीर्थ-
 तपोदानयज्ञकोटिफलं लभेत् । उन्मादात् पतनोत्थानात्
 मूर्च्छना च सुहृसुहृः । जन्मत्तत्वेन उक्तासि प्रष्टे वीरसमन्विते ।
 चिरं सन्निदधाते तौ यौ वित्तः पराक्षरौ । परं ब्रह्मात्मसंस्थान-
 काङ्क्षिणं कुलनायिके । देहेन्द्रियाणां सनस्रधानवस्था निग

क्षैते । समवस्थासिधा तस्मिन् तत्त्वोक्तासि समं प्रिये ! ।
 परमन्त्रस्वरूपोऽसौ जायते मूर्च्छना परा । मूर्च्छनासन्नि-
 कर्षोऽपि न्यूनं मुक्तेः परं विदुः । अन्तर्लब्धो वहिर्दृष्टिर्निम-
 षोन्मेषवर्जितः । एषा च शाश्वतो मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
 एषा च खेचरो मुद्रा शिवस्य समवाहिनी । सर्वोत्तीर्णः सदा
 हन्ता सागरस्य समाकृतिः । अनयोक्तासिनी वीरा शिव एव
 न संशयः । न किञ्चिदपि जानन्ति आत्मध्यानपरायणाः ।
 तदा मत्परमं सौख्यमिति वक्तुं न शक्यते । स्वयमेवानुभवति
 शर्कराक्षीरपानवत् । ईदृशं तादृशं सौख्यमिति वक्तुं न
 शक्यते । दृश्यते कुलकादेश्च तद्ब्रह्मध्यानमुत्तमम् । यत् सुखं
 विद्यते ध्याने देहादेशकं परम् । कथितुं नैव शक्नोमि प्रवृ-
 ष्णन्तु समाहितः । ब्रह्मध्यानामृतानन्दपराः सुकृतिनो नराः ।
 क्षणेऽप्यन्तर्हिते तस्मिन् मोचयन्ति हतप्रभाः । सप्तमोक्तास-
 युक्तानां तद्भक्तानां महाफलम् । अष्टौ त्रिकालज्ञानोत्थाः
 प्रत्ययाश्च कुलेश्वरि ! । अष्टावस्थाश्च कम्पाद्या जायन्ते नात्र
 संशयः । बहुनात्र किमुक्तेन अणिमाद्यष्टसिद्धयः । प्रती-
 हारीपदं प्राप्ताः सेवन्ते सुनितां चिरम् । ये गुणाः परमेशस्य
 पञ्चतत्त्वतनोः शुभाः । ते गुणाः कुलतत्त्वज्ञे ! तत्त्वज्ञानां समा-
 हृताः । आरम्भः स्तवनोक्तासो यौवनं प्रौढमेव च । नन्दन्ति
 योगादित्युक्तबोक्षनाः स्वप्न उच्यते । अनवस्था सुषुप्तिः स्याद-
 वस्थात्रयसंयुतात् । सप्तोक्तासं यो हि वेत्ति स मुक्तः स च
 कोलिकः । प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः । निवृत्ते
 भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् । स्त्री वाय पुरुषः षण्ड-
 झाण्डालो वा द्विजातयः । चक्रमध्ये न भेदोऽस्ति सर्वे देव-
 समाः प्रिये ! । नगरौनिर्भराद्यन्वु गङ्गां प्राप्य यथेकताम् ।
 याति ओचक्रमध्ये चैकत्वं मानवास्तथा । क्षीरेण

सहितं तोयं क्षीरमेव यथा भवेत् । तथा श्रीचक्रमध्ये तु जातिभेदो न विद्यते । स्वर्गादिपुण्यलोकेषु देवादभ्यो यथा न हि । तथैव चक्रमध्ये तु देवताः सर्वमानवाः । जातिभेदो न चक्रास्मिन् सर्वे शिवसमाः स्मृताः । वेदोपस्थितमेवं हि सर्वं ब्रह्मेति चाब्रवीत् । बहुनात्र किमुक्तेन चक्रमध्ये कले श्वरि ! । मद्रूपाः पुरुषाः सर्वे त्वद्रूपा योषितः प्रिये ! । चक्रमध्ये तु मूढात्मा जातिभेदं करोति यः । तं भक्षयन्ति योगिन्यः शपन्ति कुलनायिके ! । स्त्रीणामन्यतमं स्थानं पुंसामन्यतमं पृथक् । अथवा मिथुनं कृत्वा क्रमात्तमुपवेशयेत् । पुंस्त्वाकारेण वा सम्यक् चक्राकारेण वा प्रिये ! । शिवशक्तिधिया सर्वाश्चक्रमध्ये समर्चयेत् । अविभक्तौ यथाचारौ लक्ष्मीनारायणौ प्रिये ! । यथा वाणीसदानन्दौ तथा वीरः सशक्तिकः । मद्यकुम्भसहस्रैश्च मांसभारशतैरपि । न तुष्टामि वरारोहे ! भगलिङ्गामृतं विना । न चक्राङ्कं न पद्माङ्कं न वज्राङ्कमिदं जगत् । लिङ्गाङ्कश्च भगाङ्कश्च तस्माच्छक्ति-शिवात्मकम् । शिवशक्त्यात्मसंयोगो यस्मिन् काले प्रजायते । स सन्ध्याकुलनिष्ठानां समाधिः स विधीयते । कामुको न स्त्रियं गच्छेदनिच्छन्तीमदीक्षिताम् । सद्यः संस्कारसंशुद्धां विहितां तां व्रजेत् स्त्रियम् ॥ इति तत्त्वत्रयोक्तासपानभेदाभि-चोदितम् । समासेन कुलेशानि ! किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ इत्यनन्दोक्तासः ॥

अथ पञ्चचक्रानुष्ठानम् ॥ यथा निरुत्तरतन्त्रे दशमपटले ॥ श्रीशिव उवाच ॥ सर्वजात्युद्भवा शक्तिः योगिभिः पूज्यते सदा । यां यां पश्यति योगीन्द्रस्तां तामिव प्रपूजयेत् । वीर-शक्तिर्विशेषेण शृणुष्व वरवर्णिनि ! । पुरश्चर्या कृता वीरा प्रशस्ता वीरसाधने । पुरश्चर्याविहीनाश्चेन्न योज्याः कुल-

साधने ।। योज्याश्चेत् सिद्धिहानिः स्याद्दीरवं नरकं व्रजेत् ।
 वीरशक्तिं विना देवि ! न कुर्यात् कुलसाधनम् । तदभावे
 हीनजातौ प्रशस्ता वीरसाधने । पञ्चचक्रे प्रशस्ता यास्ताः
 शृणुष्व वरानने ।। चक्रं पञ्चविधं प्रोक्तं तत्र शक्तिं प्रपूजयेत् ।
 राजचक्रं महाचक्रं देवचक्रं तृतीयकम् । वीरचक्रं चतुर्थञ्च
 पशुचक्रञ्च पञ्चमम् । पञ्चचक्रे यजेद्दिव्य वीरश्च कुलसुन्दरि ।।
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च पञ्चचक्रे प्रपूजयेत् । बलीयसि च देवेशि !
 शिवचक्रे प्रपूजयेत् । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वीरचक्रेण पूजयेत् ।
 योगिभिः पूज्यते देवि ! पूर्वचक्रेषु कामिनो ॥ माता च
 भगिनी चैव दुहिता च स्नुषा तथा । गुरुपत्नी च पञ्चैता
 राजचक्रे प्रपूजयेत् । गौडो वाय्यथवा माध्वी सुरा शस्ता कुले-
 श्वरि ।। शुद्धिच्छागोद्भवा शस्ता तृतीयोद्दालकस्तथा । सुद्रा
 गोधूमजा शस्ता स्वयम्भूकुसुमं तथा । कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यमनु-
 कल्पं नियोजयेत् । रक्तचन्दनं तथा श्वेतमनुकल्पञ्च चन्दनम् ।
 वस्त्रालङ्कारभूषाद्येर्गन्धमाल्यानुलेपनैः । पूजयेत् परया भक्त्या
 देवताभ्यो निवेदयेत् । भक्ष्यं नानाविधं द्रव्यं नानावस्त्रसम-
 न्वितम् । आसनं शुद्धिसंयुक्तं ताभ्यो दद्यात् पुनः पुनः । प्रणम्य
 प्रजपेन्नन्दं दृष्ट्वा ताश्च सहस्रकम् । अङ्गं नैव स्पृशेत्तासां स्पृशेच्च
 नरकं व्रजेत् । मधुमत्ता यदा तास्तु न स्वपन्ति सुसम्पदाः ।
 तत्तदेवं भवेत् सर्वं सत्यं सत्यं न संशयः । षष्टिवर्षसहस्राणि
 ब्रह्मलोके महीयते । माता भगिनी स्नुषा कन्या वीरपत्नी
 कुलेश्वरि ।। महाचक्रे यजेदेताः पञ्चशक्तीः पुनः पुनः । द्रव्य-
 दाने तु सम्पूज्या न शक्ती शिवयोजनम् । योजने सिद्धि-
 हानिः स्याद्दीरवं नरकं व्रजेत् । महाव्याधिर्मवेदे वि ! धनहानिः
 प्रजायते । सदैव दुःखमाप्नोति सर्वं तस्य विनश्यति । आद्यञ्च
 गौडिकं प्रोक्तं द्वितीयं कुक्कुटोद्भवम् । तृतीयं रोहितं प्रोक्तं

चतुर्थं शशसम्भवम् । करवीरोद्भवं पुष्पं चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
 पूजयेत् परया भक्त्या शिवलोके महीयते । षष्टिवर्षसहस्राणि
 तत्र देवीं प्रपूजयेत् । अष्टम्याञ्च चतुर्दश्याममायाञ्च कुजेऽ-
 हनि । राजचक्रे महाचक्रे भक्त्या शक्तिं प्रपूजयेत् । शुक्ल-
 पक्षे गुरोर्वारे चतुर्थीसप्तमीतिथौ । महाचक्रे यजेद्भक्त्या
 सर्वकामार्थसिद्धये । देवचक्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व वरवर्णिनि ! ।
 विदग्धाः सर्वजातीनां पञ्च कन्याः प्रपूजयेत् । गौड़िकं फलदं
 रस्यं द्वितीयं पक्षिसम्भवम् । तृतीयं शालमल्यन्तु चतुर्थं धान्य-
 सम्भवम् । सुगन्धि सर्वपुष्पञ्च देवचक्रे नियोजयेत् । देवचक्रे
 यजेच्छक्तिं देवचक्रे महीयते । षष्टिवर्षसहस्राणि देवकन्यां
 प्रपूजयेत् । पञ्चकन्या यजेच्चक्रे, नातिरिक्ताः कदाचन ।
 लोभाद्वा कामतो वापि कृलाद्वा वरवर्णिनि ! । यदि स्यात् सङ्गम-
 स्तासां रौरवं नरकं व्रजेत् । अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयो-
 रपि । पितृभूमिं समागम्य वीरचक्रे प्रपूजयेत् । दिव्य-
 वीरान्वितो मन्त्री यजेत् शक्तिं बलीयसीम् ॥ श्रीदेव्युवाच ॥
 मात्रादयः पञ्चकन्या यतीनाञ्च कथं प्रभो ! ॥ श्रीशिव उवाच ॥
 मात्रादयः पञ्चकन्या हीनजाता यतः प्रिये ! । चतुर्वर्णोद्भवां
 वेश्यां विशेषेण बलीयसीम् । भूमोन्द्रकन्यका माता दुहिता
 रजकौमुदा । श्वपची च स्वसा ज्ञेया कापाली च क्षुधा स्मृता ।
 योगिनो निजशक्तिः स्यात् पञ्चकन्याः प्रकीर्तिताः । गुरोः
 समीपे कर्त्तव्यमथवा भ्रातृभिः सह । सिद्धमन्त्रो भवेद्दीरो
 न वीरो मद्यपानतः । अभिषिक्तो भवेद्दीरः अभिषिक्ता च
 कोलिको । एवञ्च वीरशक्तिञ्च वीरचक्रे नियोजयेत् । क्रम-
 सङ्केतकञ्चैव पूजासङ्केतमेव च । मन्त्रसङ्केतकञ्चैव यन्त्रसङ्केतक-
 न्तथा । लिखनं मन्त्रयन्त्राणां सङ्केतं गुरुमार्गतः । सङ्के-
 तजं विना वीरं यदि चक्रे नियोजयेत् । निष्फलं पूजनं देवि !

दुखं तस्य पदे पदे । सङ्केतहीनी यो वीरो नाभिषेकी गुरु-
 क्रमात् । कूपे भ्रष्टः स पापिष्ठस्तं त्यजेद्वीरचक्रके । नाभि-
 षिक्तं वामचक्रे नाभिषिक्तां च कौलिकीम् । निवेश्य रौरवं
 याति सत्यं सत्यं न संशयः । एवं क्रमं विना देवि ! वीर-
 चक्रे वसेद्यदि । सिद्धिहानिः सिद्धिहानी रौरवं नरकं व्रजेत् ।
 सर्वमद्यं सर्वशुद्धिं सर्वमीनं कुलेश्वरि ।। सर्वमुद्रां सर्वपुष्पं
 स्वयम्भूकुसुमं तथा ॥ कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं नानारससम-
 न्वितम् । प्रदद्यात् साधकश्रेष्ठो वीरचक्रे पुनः पुनः । स्वशक्तिं
 पूजयेत्तत्र तदुच्छिष्टं पिबेत् प्रिये ।। चर्यं स्वज्येष्ठतो ग्राह्यं
 कनिष्ठाय निवेदयेत् । एकासने न भुञ्जीत भोजनं नैक-
 भाजने । परस्परमुपस्पर्शं न कर्तव्यं कदाचन । एवं क्रमेण
 देवेशि ! वीरचक्रे समाचरेत् । आनीय हीनजां देवीं शक्ति-
 मन्त्रेण शोधयेत् । संशोध्य हीनजां देवीं वीरशक्तिं निवे-
 दयेत् । मधुमत्ताय वीराय यो दद्याद्हीनजां शुभाम् । वीराय
 शक्तिदानन्तु वीरचक्रे विधीयते । चक्रभिन्ने चरेहानं रौरवं
 नरकं व्रजेत् । घातयेद्गोपयेद्वापि न निन्देन्न निरीक्षयेत् ।
 कामं क्रोधञ्च मात्सर्यं विकारं लोभमेव च । कुलनिन्दां दुरा-
 लापं गोपयेद्दुष्टकं प्रिये ।। मन्त्रं मुद्रामक्षमालां योनिञ्च
 वीरसङ्गमम् । मण्डलञ्च घटं पीठं सिद्धद्रव्याणि गोपयेत् ।
 पण्डितं वीरसन्तानं चैत्रं देवीञ्च योगिनीम् । कुलाचार-
 गुरुं दूतीं मनसापि न निन्दयेत् । देवीं गुरुं सुधां विद्यां
 श्रेष्ठां शक्तिं क्रियात्मजाम् । योगिनीं भैरवीतत्त्वमात्मतत्त्वं
 प्रपूजयेत् । विमाता दुहिता भग्नौ स्नुषा पत्नी च पञ्चमी ।
 पशुचक्रे यजेद्भीमान् पशवस्तोषणञ्चरेत् । गन्धं पुष्पञ्च मास्यञ्च
 वस्त्राणि भूषणानि च । सिन्दूरागुरुकस्तूरीनानापुष्पाणि
 सुन्दरि ।। भक्ष्यं नानाविधं द्रव्यं फलं नानाविधं प्रिये ।।

एतदद्रव्यगणं यस्तु भक्त्या ताभ्यो निवेदयेत् । षष्टिवर्ष-
सहस्राणि क्षितो राजा भवेद्भुवम् । वीरचक्रे तदा सिद्धि-
र्भवत्येव न संशयः ॥

अथ कुलशक्तयः ॥ रेवतीतन्त्रे तृतीयपटले ॥ शक्तयः
परमेशानि ! विदग्धाः सर्वयोषितः । नटी कापालिकी वेश्या
मालिनी कुङ्कुमालिनी । चण्डाली च कुलाली च रजकी
नापिताङ्गना । गोपिनी योगिनी शुद्धा ब्राह्मणी राजकन्यका ।
कोचाङ्गना च देवेशि ! तथैव शङ्खकारिणी । एताः षड्-
विंशतः कन्या देवानामपि दुर्लभाः । दैवज्ञा व्याधवामा च
तथा मांसापहारिणी । बौद्धा च यवनी देवि ! तथा रसप-
सारिणी । वेश्या चतुर्विधा प्रोक्ता द्विविधा कुङ्कुमालिनी ।
धीवरी द्विविधा प्रोक्ता तथैव गणिकाङ्गना । कुम्भकारी द्विधा
प्रोक्ता तथैव गोपिनी स्मृता । वातवैद्याङ्गना देवि ! यवनी
द्विविधा स्मृता । बौद्धकन्या त्रिधा देवि ! तथा कोचाङ्गना
प्रिये ! । पूर्वोक्ताभिः सहैकत्र चतुःषष्टिश्च शक्तयः ॥

गुप्तसाधनतन्त्रे चतुर्थपटले ॥ शिव उवाच ॥ शृणु पार्वति !
वक्ष्यामि अतिगुह्यतरं महत् । प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात्त-
स्माद् यत्नेन गोपयेत् । स्वशक्तिं परशक्तिं वा दौर्घ्वात् यौव-
नान्विताम् । विदग्धां शोभनां शुद्धां घृणालज्जाविवर्जिताम् ।
आनीय कुलसाधनं कुर्व्यादित्युत्तरेणान्वयः । तत्र व्यवस्था-
माह निरुत्तरतन्त्रे अष्टमपटले ॥ स्वशक्तिसिद्धिमादाय
सिद्धमन्त्रस्ततो भवेत् । सिद्धमन्त्रः कुलाचारे परयोषां प्रपू-
जयेत् । सिद्धमन्त्रो यजेत् शक्तिं कायेन मनसापि वा । पर-
योषां विशेषेण परयोषां प्रपूजयेत् । सिद्धमन्त्रप्रकारस्तु
नवमपटले ॥ आनीय च कुलं रम्यं कुलशक्तिं कुलार्चने ।
स्वचक्रं विविधं देवि ! शक्तिभाले लिखेत्ततः । ततः काम-

कलादेवी वीरकोणे लिखेत्ततः । तन्मध्ये देवमन्त्रं विहितं ।
 कामलाञ्छितम् । तत्र देवीं समावाह्य ध्यात्वैव च प्रपूजयेत् ।
 ततो लक्ष्म्यं सञ्चय्य स्थिरधीः कुलसाधकः । ततस्तच्छक्ति-
 कर्णं च ऋषिच्छन्दःसमन्वितम् । मूलमन्त्रं त्रिरावृत्त्या कथयेद्
 वामकर्णके । अद्यप्रभृति शक्ति ! त्वं कुलदेवार्चनं कुरु ॥ ततः
 शक्तिः पठति । गुरोराज्ञां समादाय घृणालज्जाविबर्जिता ।
 शिवोक्तविधिना देव ! करिष्यामि कुलार्चनम् । त्राहि नाथ !
 कुलाचारकामिनौकामनायक ! । त्वत्पादाभोरुहच्छायां
 देहि मे कुलवर्त्मनि । गते च प्रथमे यामे स्वकुलं कुलको-
 परि । वामभागे समानीय रक्तवस्त्रसमन्वितम् ॥ नानागन्ध-
 समायुक्तं नानारत्नसमन्वितम् । ललाटे मन्त्रमालिख्य मध्ये
 नामविचर्चितम् । ताम्बूलपूरितमुखस्ताम्बूलारणलोचनः ।
 कुलाकुलजपं कृत्वा ध्रुवमायाति तत्क्षणात् । एवमाकर्षिते
 मन्त्रे सिद्धमन्त्रः कुलेश्वरि ! । तावत् प्रयोगः कर्तव्यो यावत्
 सिद्धिर्न जायते । सिद्धमन्त्रः कुलाचारे कुलयोषां प्रपूजयेत्
 इति ॥ शक्त्यङ्गे जपस्थानमाह ॥ समयाचारतन्त्रे ॥ अथे-
 दानीं प्रवक्ष्यामि जपार्थं पीठमुत्तमम् । पूर्णागिरिश्च प्रथम-
 सुड्डीयानां द्वितीयकम् । जालन्धरं तृतीयञ्च कामरूपं चतु-
 र्थकम् । कृते पूर्णागिरिश्चैव त्रेतायाञ्च द्वितीयकः । जालन्धरं
 द्वापरे तु कामरूपं कलौ युगे । चतुःपीठानि पीठानि शक्ति-
 देहेषु यानि च । तानि चत्वारि वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतराणि
 च । शक्तेः सर्वशरीरं यत् पीठं पूर्णागिरिः स्मृतम् । तस्याः
 शिरश्च सुभगे ! उड्डीयानां प्रकीर्तितम् । स्तनौ जालन्धरं
 ज्ञेयं कामरूपं भगस्तथा । सर्वेषु कामपीठन्तु देवानामपि
 दुर्लभम् । एषु पीठेषु च स्थित्वा यं यं मन्त्रं जपेत् प्रिये ! ।
 तत्तत्फलमवाप्नोति देवताश्च प्रसीदति ॥ तथा ॥ नानाशक्त्या

सहालापं ये च कुर्वन्ति साधकाः ॥ ते शीघ्रकालात् सुभगे ।
 फलं प्राप्स्यन्ति मानवाः । तामानीय साधकेन्द्रो दद्यात्
 पाद्यादिकं शुभम् । पञ्चाचारेण तां शक्तिं पूजयित्वा यथा-
 विधि । शतं शीघ्रं शतं भाले शतं सिन्दूरमण्डले । शतं मुखे
 शतं कण्ठे शतं हृदयमण्डले । शतद्वन्द्वं स्नानद्वन्द्वे शतं नाभौ
 जपेत् सुधीः । योनिपीठे शतं जप्त्वा साधकः स्थिरमानसः ।
 एवं सहस्रं सञ्छप्य देवोरूपां विचिन्तयेत् । शिवशक्तिस्वरूपाञ्च
 चिन्तयेत् साधकोत्तमः । शिवमन्त्रेण देवेशि ! खलिङ्गं
 पूजयेदथ । ताम्बूलं तन्मुखे दत्त्वा साधको हृष्टमानसः । तद-
 नुज्ञां समादाय योनौ लिङ्गं विनिक्षिपेत् । ओं धर्माधर्म-
 हविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा सुखा । सुषुम्नावर्त्मना नित्य-
 मच्चवृत्तिर्जुहोम्यहम् । स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण हुनेत् सर्वसमृद्धये ।
 ततो जपेत् सहस्रं वै शक्तियुक्तो भवेन्नरः । शतं वापि प्रजप्रत्यं
 ततो न्यूनं न कारयेत् । ततः पूर्णाहुतिं दद्यान्मन्त्रेणानेन
 साधकः । प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनाः सुचा । धर्मा-
 धर्मकलास्त्रे हपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् । स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण
 पूर्णाहुतिं समाचरेत् । शक्रोत्सारणकाले तु महादेव्यै निवे-
 दयेत् । एवं कृते मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः । यं यं प्रार्थ-
 यते कामं तं तमाप्नोति निश्चितम् । रोगी रोगात् प्रमुच्येत
 धनेन च धनाधिपः । वायुतुल्यबलो लोके दुर्जयः शत्रुमर्दनः ।
 कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः । एतत्कल्पेन देवेशि !
 किं न सिध्यति भूतले । अष्टैश्वर्यमवाप्नोति स एव श्रौसदा-
 शिवः ॥

निरुत्तरतन्त्रे द्वादशपटलेऽपि ॥ अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि
 साधनं भुवि दुर्लभम् । कृते येन लभेत् सिद्धिं देवानामपि
 दुर्लभाम् । ललाटे शक्तिमन्त्रस्तु त्रिराष्ट्रया लिखेद्बुधः ।

तन्मध्ये कामबीजञ्च विलिखित् कामलाञ्छितम् । कामेन
 पुटितं कृत्वा पूजयेत् परमेश्वरीम् । सम्पूज्य कालिकां देवीं
 यन्त्रञ्च परिपूजयेत् । तत्त्वचिन्तापरो योगी जपेत्तन्त्रं निरा-
 कुलम् । संकृष्टं कुलपुष्पान् पूजयेच्च पुनः पुनः । सहस्रं तर्प-
 येत् पीठे यन्त्रप्रक्षालनोदकैः । एवं कृते लभेत् सिद्धिं सत्यं
 सत्यं न संशयः । अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि पुरस्चरणमुत्तमम् ।
 शतं भाले शतं केशं शतं सिन्दूरमण्डले । शतमेकं सुखाब्जो-
 पुष्पवक्त्रे शतद्वयम् । शतद्वन्द्वं कुचद्वन्द्वे शतञ्च नाभिमण्डले ।
 शतमेकं कुलागारे प्रजपेद्भक्तिभावतः । एवं दशशतं जप्त्वा
 कुलागारे ततो जपेत् । पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं गजान्तकसह-
 स्रकम् । ततस्तु तत्त्वयोगीन शतमष्टोत्तरं जपेत् । पूजनञ्च
 ततस्तत्र पुरस्चरणमुच्यते । अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि कुला-
 गारस्य साधनम् । येन कृते कुलेशानि ! सर्वपापक्षयो
 भवेत् । कुलागारे कुलाष्टस्यां कुलमाह्वय पूजयेत् । तर्पणञ्च
 जपं होमं तत्तदक्षयतां व्रजेत् । कदलीतरुमूलञ्च द्विगुणं यदि
 दृश्यते । तत्र तु महती पूजा कर्त्तव्या वरवर्णिनि ! ॥ ततस्तु
 ब्रह्मवक्त्रेण होमं कुर्याद्विचक्षणः । होमं कृत्वा जपेन्मन्त्रं कोटी-
 कोटीगुणं भवेत् । द्विगुणं रजनीमूलं संवीक्ष्य यो जपेन्ननुम् ।
 स भवेत् सर्वसिद्धौशस्तस्य पुण्यं न गण्यते । रजनीं स्वेच्छ्या-
 ह्वय साधनं कुलभूषणम् । विपरीतं जपेन्मन्त्रं तस्य पुण्यं
 न गण्यते ॥ रजन्याञ्च कुलागारे पूजने निपुणो यदि ।
 त्वत्समा रजनीकान्ता कमला वाय राधिका । त्रिषु लोकेषु
 सा धन्या ब्रह्मविष्णुशिवालिका । सिद्धविद्या महाविद्या
 सिद्धविद्याफलप्रदा । तस्याः प्रसादमात्रेण दुष्टमन्त्रोऽपि
 सिध्यति । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तामेव शरणं व्रजेत् । रजन्यां
 रजनीयोगं विहरेद् यदि साधकः । बलाद्वा पूजयेत्तत्र सर्वं

तन्निष्फलं भवेत् । येन तेन प्रकारेण रजनीतोषणश्चरेत् ।
वाह्याद्वा क्रीडनाद्वापि वशाद्वा तोषयेत् सदा । यं यं भावं
रजन्याश्च तं तं भावं प्रकल्पयेत् । अतिरिक्तः कृतो भावो
रीरवं नरकं व्रजेत् । कलायाः सम्मतिं कृत्वा साधयेत् कुल-
साधनम् । असम्मतकुलासङ्गात् सिद्धिहानिः प्रजायते । यो
गच्छेद्रजनीगिहं कुलसाधनवर्जितः । स एव नरकं याति
सत्यं सत्यं न संशयः । क्रीडाद्वा कामतो वापि द्वेषाद्वा वर-
वर्णिनिः । न गच्छेद्रजनीगिहं गच्छेच्च नरकं व्रजेत् ।
अज्ञात्वा कुलसङ्केतं कुलमार्गं विशेद्यदि । स याति नरकं
घोरं का कथा परजन्मनि ॥

अथ शय्याशुद्धिः ॥ ओं आः सुरेखे वज्ररेखे हुँ फट् स्वाहा ।
इत्यनेन शय्यायां त्रिकोणं विलिख्य ओं ह्रीं आधारशक्तये
कमलासनाय नमः । इति मनसा सम्पूज्य ओं ह्रीं मृतकाय
नमः फट् इति मन्त्रेण वामहस्तेन घातत्रयं दत्त्वा क्खोटि-
काभिर्दशदिग्बन्धनं कृत्वा । ओं शय्ये ! त्वं मृतरूपासि साध-
नीयासि साधकैः । अतोऽत्र जय्यते मन्त्रो ह्यस्माकं सिद्धिदा
भव ॥ इति प्रार्थनां कृत्वा जपादिकं कुर्यात् ॥

गुप्तसाधनतन्त्रे प्रथमपटले ॥ पञ्चाचारेण देवेशि ! कुल-
शक्तिं प्रपूजयेत् । नटो कापालिको वेश्या रजकी नापिता-
ङ्गना । ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका । माला-
कारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिताः । विशेषवैदग्ध्ययुताः
सर्वा एव कुलाङ्गनाः । रूपयौवनसम्पन्ना शीलसौभाग्य-
शालिनौ । पूजनीया प्रयत्नेन ततः सिद्धिर्भवेद् भ्रुवम् ॥

अत्र विशेषयति निरुत्तरतन्त्रे चतुर्दशपटले ॥ नटो
कापालिको वेश्या रजकी नापिताङ्गना । योगिनी श्वपची
शुङ्गी भृमीन्द्रतनया तथा । गोपिनी मालाकारस्य आसां

कार्यविभेदतः । चतुर्वर्णोद्भवा रम्या कापाली सा प्रकीर्तिता ॥
 पूजाद्रव्यं समालोक्य वेश्या रमणमिच्छति । चतुर्वर्णोद्भवा रम्या
 सा वेश्या परिकीर्तिता ॥ पूजाद्रव्यं समालोक्य सर्वतः कुरुते
 च या । पूजाद्रव्यं समालोक्य राजावस्थां प्रकाशयेत् । सर्व-
 वर्णोद्भवा रम्या रजकौ सा प्रकीर्तिता ॥ पूजाद्रव्यं समा-
 लोक्य कुलजा वीरमाश्रयेत् । सम्यज्य पशुभर्तारं कर्म-
 चाण्डालिनी स्मृता ॥ विपरीतरता पत्नी पात्रं या परि-
 पृच्छति । सर्ववर्णोद्भवा रम्या सा शौण्डी परिकीर्तिता ॥
 सर्वदा यन्त्रसंस्कारो यस्याश्च परिजायते । सैव भूमौन्दजा
 रम्या सीरवर्णोद्भवा प्रिये ! ॥ आत्मानं गोपयेद् या च सर्वदा
 पशुसङ्कटे । सर्ववर्णोद्भवा रम्या गोपिनी सा प्रकीर्तिता ॥
 पूजाद्रव्यं समालोक्य या मालेव रता भवेत् । सर्ववर्णोद्भवा
 रम्या मालिनी सा प्रकीर्तिता ॥

वेश्याया विशिषस्तु तत्रैव ॥ गुप्तवेश्या महावेश्या कुलवेश्या
 महोदया । राजवेश्या देववेश्या ब्रह्मवेश्या च सप्तधा ॥
 कुलजा गुप्तवेश्या स्यात् निर्लज्जा मदनातुरा । पशुभर्ताश्रिता
 लोके गुप्तवेश्या प्रकीर्तिता ॥ कुलजा कुलवेश्या स्यात् महावेश्या
 प्रकीर्तिता । भगलिङ्गकलापीठे चुम्बयेच्च पुनः पुनः । एवंविधा
 कुलीना चेद् ब्रह्मवेश्या प्रकीर्तिता ॥ दिव्यशक्तिर्वीरशक्तिस्तासां
 संपन्ना प्रकीर्तिता । चतुर्वर्णोद्भवानाञ्च सञ्ज्ञेताः परिभाषिताः ।
 वेश्यावद्भ्रमते यस्मात् तस्माद्देश्या प्रकीर्तिता ॥ वर्णसङ्करतो
 जाता सर्ववेश्या प्रकीर्तिता ॥ कुलमार्गे प्रवृत्ता या सा वेश्या
 मोक्षदायिनी ॥ चुम्बनालिङ्गनं घातं रतिनिग्रहदर्शनम् । आम-
 न्त्रणं त्रिसन्ध्यञ्च भगलिङ्गस्य कीर्तनम् । वेश्यानाञ्च जपाङ्गेन
 शङ्करेण पुरोदितम् । जपाङ्गेन विना वेश्या वर्जनीया कुला-
 र्चने । जपाङ्गं प्रत्यहं कुर्यात् सा शिवैः सह मोदिता । निशायां

प्रजपेन्नन्दं स्वयम्भूशिवयोगतः । वेश्यानां जपमात्रन्तु पुर-
 स्करणमुच्यते । विपरीतं जपेन्नन्दं सा काली नात्र संशयः ।
 योषितां मन्त्रसिद्धिः स्याद् विपरीतरती प्रिये ! । विपरीत-
 रती जप्त्वा निर्वाणपदवीं व्रजेत् । विपरीतरती जप्त्वा काली-
 बद्धिरेद्भुवि । विपरीतरती काली विपरीता च तारिणी ।
 विपरीता च या वेश्या सा काली नात्र संशयः ॥ योषिद्विद्या
 न सिध्यन्ति विपरीतरतिं विना । विपरीतरता वेश्या त्रिषु
 लोकेषु पूजिता ॥ गाढमालिङ्गनं दत्त्वा पूजयित्वा पुनः पुनः ।
 कटाक्षैर्दर्शयेद्दुयन्दं दक्षिणाकालिकेरिता । एवंविधा पुर-
 स्चर्या वेश्यायाश्च कुलेश्वरि ! । एवंविधा भवेद्देश्या न वेश्या
 कुलटा प्रिये ! । कुलटासङ्गमादेवं रौरवं नरकं व्रजेत् । वीर-
 शक्तिर्भवेद्देश्या सा शस्ता कुलसाधने । पुरश्चर्याकृता वेश्या
 योजयेत् कुलसाधने ॥ शिवलिङ्गगता साध्वी शिवलिङ्गगता
 सती । शिवलिङ्गगता वेश्या कौर्त्तिता सा पतिव्रता ॥ शोनिश्च
 जनिका माता लिङ्गश्च जनकाः दिता । मातृभावं पित्र्यभाव-
 सुभयोरपि चिन्तयेत् । लिङ्गरूपो महाकालो योनिरूपा च
 कालिका । तयोर्योगपरा धन्या तयोर्योगपरो महान् । स्वभैरवं
 विना वेश्या शिवपूजां करोति यः । रौरवे नरके घोरे वसे-
 दाभूतसङ्भवम् । स्वभैरवीं विना वीरो मनसान्यां न संस्मरेत् ।
 स्मरणे नरकं याति महाव्याधिपरो भवेत् । नानाचाराश्रिता
 वेश्या पशुसङ्गगता च या । वर्जनीया प्रयत्नेन कुलसाधन-
 कर्मणि । योज्या चेत् सिद्धिदानिः स्यात् श्रेष्ठवेश्या कुला-
 र्चने । रोगः शोको भवेत्तस्या धनहानिः क्षणे क्षणे । तस्मात्
 सर्वप्रयत्नेन स्वशिवश्च समाश्रयेत् । जपपूजादिकं वेश्या स्वशिवे
 परिकल्पयेत् । पुष्पिता काममापन्ना सदा रमणमिच्छुका ।
 सर्वसिद्धिप्रदा वेश्या कालिकारूपधारिणी । पित्र्यभूमिः समा-

ख्याता सदाशिवनिवासिनी । शिव एव नरो ज्ञेयो लिङ्गरूप-
धरो यतः । शिवस्थानं श्मशानं स्यात् श्मशानं कुलजं गुरुम् ।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि । श्मशानस्थेन यत्कार्य-
मवश्यं गुरु तद्भवेत् ॥ तथा ॥ मातृमुखे पितृमुखं जपेत्
दत्त्वा सनातनीम् । सर्वप्रापविनिर्मुक्तो निर्वाणपदवीं व्रजेत् ॥
परजन्मे गुप्तवेश्याप्यथवा कुलजा भवेत् । शुक्रोत्सारणकाले
तु निर्वाणं विद्धि पार्वति ! । तत्काले हि महाकालः कुल-
मार्गप्रवेशिनाम् । शुक्रोत्सारणकालान्तु ज्ञापयेन्मनसापि वा ।
अङ्गभङ्गक्रमेणैव कुलीनाय प्रकाशयेत् । शुक्रोत्सारणकालस्य
ज्ञापनात् कालिका स्वयम् ॥ जपाङ्गे कालिका देवि ! महा-
कालं विमोहयेत् ॥ कुलीना ब्रह्मवेश्या चेन्नाल्पस्य तपसः
फलम् । बहूनां जन्मनामन्ते ब्रह्मवेश्या प्रजायते । त्वत्समा
प्रकृतिः काचिद् यद्यस्ति भुवि मण्डले । न तथा त्वत्समा शक्ति-
स्त्रिषु लोकेषु विद्यते । सा चैव दक्षिणा काली मदनातुर-
विह्वला । वेदेभ्यो जायते कर्म कर्मणा बन्धनं भवेत् । वैदिकं
कर्म सन्त्यज्य सुरतेषु सदा जपेत् । आगमोक्तपतिः शम्भु-
रागमोक्तपतिर्गुरुः । स पतिः कुलजायाश्च न पतिश्च विवा-
हितः । विवाहितपतित्यागे दूषणं न कुलार्चने । विवाहित-
पतिं नैव त्यजेद्देवोक्तकर्मणि । आगमोक्तपतिस्त्राता आम-
मोक्तपतिः शिवः । सिद्धविद्या न सिध्यन्ति आगमोक्तपतिं
विना । कुलजा गुरवे देवि ! पतित्वे वरणञ्चरेत् । तदा सा
गुप्तवेश्या स्यात् कुलजा च पतिं विना । गुप्तवेश्या भवेत् सैव
कुलमार्गप्रवर्त्तिका । कुलमार्गप्रवृत्ता या सा मुक्ता नात्र
संशयः । कुलजा गुरवे देवि ! यदि न स्यात् पतीच्छुका ।
तस्याः शिवो महाकालः सत्यं सत्यं न संशयः । षोडशाब्दा
यदा सा स्यात् काली विक्रमतत्परा । तारा पञ्चदशाब्दे च

सुन्दर्यब्दे चतुर्दशे । त्रयोदशब्दोन्मुखी सा द्वाद-
 शाब्दा च भैरवी । एकादशगुणोपेता ब्रह्मवेश्या कुलेश्वरि ! ।
 महासाध्वी समाख्याता त्रिषु लोकेषु दुर्लभा । स्वर्गे मर्त्ये च
 पाताले या या तिष्ठति चाङ्गना । सर्वासामपि भर्ता च दिव्यो
 वीरश्च साधकः । योगी दिव्यो यदा वीरः सर्वनारीपति-
 भवेत् । दिव्योऽपि वीरभावेन सर्वजात्युद्भवां यजेत् । गुप्त-
 वेश्या महावेश्या अयोध्या मथुरा प्रिये ! । या या च कुल-
 वेश्या स्यान्मदोदया च कालिका । राजवेश्या देववेश्या द्वारका
 परिकीर्तिता । काञ्ची च राजवेश्या स्याद् देववेश्या ह्यव-
 न्तिका । द्वारावती ब्रह्मवेश्या गुप्तैता मोक्षदायिकाः । कुलीना
 भगवती साक्षात् काली तारा सरस्वती । कुलीना भैरवी
 साक्षात् कुलीना छिन्नमस्तका । कुलीना सुन्दरी देवि !
 कुलीना महिषमर्दिनी । कुलीना भुवना बाला कुलीना
 वगलामुखी । धूमावती कुलीना च मातङ्गी कुलनायिका ! ।
 कुलीना चात्रपूर्ण च कुलीना त्वरिता तथा । पतिव्रता
 कुलीना च सती साञ्ची महोदया । कुलीना मन्त्रयन्त्राणां
 सिद्धिदा नात्र संशयः । कुलजा देवकन्या च कुलीना योगिनौ-
 गणा । रश्मोर्वशी रती रामा कुलीना च तिलोत्तमा । एताः
 सर्वाः पृथग्वेश्या विहरन्ति कुलात्मजाः । कुलजा कुलवेश्या या
 कुलधर्मपरायणा । पशुभर्ताश्रिता लोला कामकौतुकलालसा ।
 कुलवर्मक्रमेणैव सदैव रमणोत्सुका । विदग्धवीरभावेन वीर-
 गोपनतत्परा । विहिता स्याद्वीनजाश्च पूजयेदथ वाग्यतः ।
 ब्रह्मचारी गृहस्थोऽपि विहितान्यां न चाचरेत् । अर्चिते
 सिद्धिदानिः स्याददुःखं तस्य पदे पदे । हीनजां विहितां
 वेश्यां मनसा च प्रपूजयेत् । तद्योगं चिन्तयेद्दीमान् शतमष्टौ-
 त्तरं जपेत् । जप्ता प्रणम्य देवेशि ! भक्ष्यद्रव्यं निवेदयेत् ।

कामाद्वा मोहतो वापि हीनजां यदि चेच्छति । रौरवं नरकं ,
याति हीनजासङ्गमेन च । हीनजासङ्गं देवि ! मनसा न
स्मरेत् कलौ । कुलकर्म्मप्रवृत्ता या , सा मुक्ता नात्र संशयः ।
कुलजा कुलवेश्या च वीरमेकं समाश्रयेत् । सन्त्यज्य प्रशु-
भर्त्तारं कुलमार्गं प्रवेशयेत् । कुलमार्गं समाश्रित्य वीरमेकं
समाश्रयेत् । कुलमार्गप्रवृत्ता च पतिहीना भवेद् यदि ।
कुलजा वा कुलीना वा परजन्यनि जायते । कुलधर्म्मरता शस्ता
कुलधर्म्मोत्सुका तथा । पूजार्हा सा महेशानि ! पतिहीनां
प्रपूजयेत् । लोकाचारक्रमेणैव पूजार्हा लज्जिता यदि । तां
विहाय कुलेशानि ! कुलजाञ्च प्रपूजयेत् । कुलीनादर्शने-
नैव सर्वपापक्षयो भवेत् । गङ्गास्मरणमात्रेण यथा पापक्षयो
भवेत् । कुलजा च कुलीना या मन्त्रतन्त्रफलप्रदा । महा-
वेश्या भवेत् सेव सर्ववेश्याफलप्रदा । यासाञ्च सिद्धविद्यानां
प्रशस्ता वा कुलार्चने । सेव शक्तिर्विशेषेण सर्ववेश्या प्रकीर्तिता ॥

विद्याविशेषे शक्तिविशेषे उक्तस्त्रयोदशपटले यथा ॥
श्यामाविद्या न सिध्येत ब्राह्मणीगमनं विना । छिन्नमस्ता न
सिध्येत कापालोगमनं विना । सिद्धविद्या न सिध्येत भूमीन्द्र-
तनयां विना । रजक्यास्तु गृहे देवि ! भैरवी च सुसिध्यति ।
साध्या सा विहिता प्रोक्ता विहिता द्रुतसिद्धिदा । साधये-
द्रजनीं सर्वां ब्राह्मणीं यावनीं विना । सर्वारम्भान् परित्यज्य
साधयेद्विजजां द्विजः । राजराजेश्वरी साक्षाद् द्विजजारूप-
धारिणी । द्विजजातोषणादेव द्रुतं सिध्यति सुन्दरी । श्रेष्ठ-
वर्णीभूवां रम्यां साधने नैव साधयेत् । साधने सिद्धिहानिः
स्याद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

अथ प्रयोगः ॥ गतयामायां रात्रौ स्वशक्तिं परशक्तिं वा
तुलिकोपरि स्वामभागे संस्थाप्य तस्या अङ्गे स्वकल्पोक्त-

न्यासान् विधाय अदौचितायां शुद्धिं कुर्यात् । यथा ॥ ऐं क्लीं
 सौः त्रिपुरायै इमां स्वशक्तिं पवित्रौकुरु मम शक्तिं कुरु स्वाहा ।
 इत्यनेन जलविन्दुभिरभिषिच्य तस्या वामकर्णे अभेदबुद्ध्या
 मायावौजं वदेत् ॥ ततो योनिं ध्यायेद्यथा । अतिसुल-
 लितगात्रां हास्यवक्त्रां त्रिनेत्रां जितजलदसुकान्तिं पट्टवस्त्र-
 प्रकाशम् । अभयवरकराब्ज्यां रत्नभूषातिभक्त्यां सुरतरुतल-
 पीठे रत्नसिंहासनस्थाम् । हरिहरविधिवन्त्यां बुद्धिशुद्धिस्वरूपां
 मदनरससमाक्तां कामिनां कामदात्रीम् । निखिलजनविलासो-
 द्दामरूपां भवानीं कलिकलुषनिहन्त्रीं योनिरूपां भजामि ॥ इति
 योनिं ध्यात्वा सम्पूज्य योन्युपरि हसौः इति योनिमन्त्रमष्टो-
 त्तरशतं जप्त्वा समर्प्य स्तवकवचादिकं पठेद्यथा ॥ श्रीदेव्युवाच ॥
 भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! कुलशास्त्रार्थपारग ! । सर्वं मे कथितं
 नाथ ! न त्वेकः परमेश्वर ! । श्रीयोनिः स्तवराजं हि तथा
 कवचमुत्तमम् । श्रोतुमिच्छामि सर्वज्ञ ! यदि तेऽस्ति कृपा
 मयि । सारभूतं महादेव ! निगमान्तर्गतं रहः । यदि
 नो कथ्यते देव ! प्राणत्यागं करोम्यहम् । दिवांनिशि महा-
 भाग ! ममाशु पतितं भवेत् । अतस्ते देवदेवेश ! कथतां मे
 दयानिधे ! ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि
 देहत्यागं कथं कुरु । अत्यन्तगोपनीयं हि निगमे कथितं
 पुरा । ब्रह्मविष्णुब्रह्मादीनां न मया कथितं पुरा । अकथ्यं
 परमेशानि ! इदानीं किं करोमि ते । तव स्नेहेन
 बद्धोऽहं कथयामि तव प्रिये ! । मातर्देवि ! महाभागी ! यदि
 कस्मै प्रकाश्यते । शपथं कुरु मे दुर्गे ! यदि त्वं मयिया
 स्मृता । ब्रह्मा यदि चतुर्वक्त्रैः पञ्चवक्त्रैः सदाशिवः । वर्णितुं
 स्तवराजञ्च न शक्नोति कदाचन । सम्यग्बन्धुं न शक्नोमि
 संचेपात् कथयामि ते ॥ अस्य श्रीयोनिस्तवराजस्य कुला-

चार्थं ऋषिः कीलिकच्छन्दः त्रीयोनिरूपा दशविद्यात्मिका
 देवता सर्वसाधने विनियोगः । श्रीं योनिरूपे ! महामाये !
 सर्वसम्पत्प्रदे ! शुभे ! । कृपया सर्वसिद्धिं मे देहि देहि जग-
 न्मयि ! ॥ १ ॥ सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे ! सर्वशक्तिसमान्ति ! ।
 कृपयेत्यादि ॥ २ ॥ महाघोरे ! महाकालि ! कुलाचारप्रिये !
 सदा । कृपयेत्यादि ॥ ३ ॥ घोरदंष्ट्रे ! चोग्रतारे ! सर्वशत्रु-
 विनाशिनि ! । कृपयेत्यादि ॥ ४ ॥ योनिरूपे ! महाविद्ये !
 सर्वदा मोक्षदायिनि ! । कृपयेत्यादि ॥ ५ ॥ जगद्धात्रि !
 महाविद्ये ! जगदुद्धारकारिणि ! । कृपयेत्यादि ॥ ६ ॥ जग-
 द्धात्रि ! महामाये ! योनिरूपे ! सनातनि ! । कृपयेत्यादि ॥ ७ ॥
 जय देवि ! जगन्मातः ! सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ! । कृपये-
 त्यादि ॥ ८ ॥ सिद्धिदात्रि ! महामाये ! सर्वसिद्धिप्रदायिनि ! ।
 कृपयेत्यादि ॥ ९ ॥ महालक्ष्मि ! महादेवि ! महामोक्षप्रदा-
 यिनि ! । कृपयेत्यादि ॥ १० ॥ गौरी लक्ष्मीश्च मातङ्गौ दुर्गा
 च नवचण्डिका । वगलामुखौ भुवनेशौ भैरवी च तथा प्रिये ! ।
 किन्नमस्ता च काली च योनिरूपा सनातनी । कृपये-
 त्यादि ॥ ११ ॥ काली कपालिनी कुक्का कुरुकुक्का विरोधिनी ।
 नायिका विप्रचित्ताया अन्योऽया नायिकाः स्मृताः । वसन्ति
 योनिमाश्रित्य ताभ्योऽपीह नमो नमः ॥ १२ ॥ अणिमाद्यष्ट-
 सिद्धिश्च वसत्यस्याः समीपतः । नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु योग-
 मोक्षप्रदायिनि ! ॥ १३ ॥ सर्वशक्तिमयि ! देवि ! सर्वकल्पा-
 नाशिनि ! । हे योने ! हर विघ्नं मे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ १४ ॥
 आधारभूते ! सर्वेषां पूजकानां प्रियंवदे ! । स्वर्गपाताल-
 वासिन्यै योने च नमो नमः ॥ १५ ॥ विष्णुसिद्धिप्रदे ! देवि !
 विष्णुसिद्धिप्रदायिनि ! । ब्रह्मसिद्धिप्रदे ! देवि ! रामचन्द्रस्य
 सिद्धिदे ! । शक्रादीनाञ्च सर्वेषां सिद्धिदायै नमो नमः ॥ १६ ॥

इति ते कथितं देवि ! सर्वसिद्धिप्रदायकम् । स्तोत्रं योने-
र्महेशानि ! प्रकाशितमिदं त्वयि ! । सर्वसिद्धिप्रदं स्तोत्रं यः
पठेत् कौलिकः प्रिये ! । लिखित्वा पुस्तके देवि ! रक्तद्रव्यैश्च
मुन्दरि ! । तस्यासाध्यानि कर्माणि सुसिद्धानि कुलेश्वरि ! ।
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति नास्त्येव भुवनत्रये । यः पठेत् प्रात-
रुत्थाय भाणपत्रं लभेन्नरः । रात्रौ कान्तासमायोगे यः पठेत्
साधकोत्तमः । स्तवेनानेन संस्तुत्य साधकः किं न साधयेत् ।
खलङ्कतां स्वकान्ताञ्च लोलाहावविभूषिताम् । रक्तवस्त्रपरी-
धानां कृत्वा सम्यूज्य साधकः । भोजयित्वा ततो देवि ! स्वयं
भुञ्जीत तत्परः । मत्स्यमांसादिकान् भुङ्क्ता क्रोडे कृत्वा स्वयो-
षितम् । रात्रौ यदि जपेन्नृत्वं सा 'दुर्गा' स सदाशिवः । भव-
त्येव न सन्देहो मम वक्ताद्विनिर्गतम् । येन दत्तं मयि स्तोत्रं
स एव मद्गुरुः स्मृतः । तस्यैव यदि भक्तिः स्यात् स भवेज्जग-
दौश्वरः । नमोऽस्तु स्तवराजाय नमः स्तवप्रकाशिने । यत्ना-
स्ते स्तवराजोऽयं तत्तास्ते श्रीसदाशिवः । इति शक्तिकागम-
सर्वस्वे हरपार्वतौसंवादे श्रीयोनिस्तवराजः समाप्तः ॥

अथ योनिकवचम् ॥ देव्युवाच ॥ भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि
कवचं पश्माद्भुतम् । इदानीं देवदेवेश ! कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
महादेव उवाच ॥ शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि अतिगुह्यतमं
प्रिये ! । यस्यै कक्ष्यै न दातव्यं दातव्यं निष्फलं भवेत् ॥
अस्य श्रोयोनि कवचस्य गुप्तकृषिः कुलटाच्छन्दो राजविघ्नोत्पात-
विनाशे विनियोगः । क्लीं योनिर्मै सदा पातु स्वाहा विघ्न-
विनाशिनी । शत्रुनाशात्मिका योनिः सदा मां पातु सागरि ।
ब्रह्मात्मिका महायोनिः सर्वान् कामान् प्ररक्षतु । राजहारे
महाचोरे क्लीं योनिः सर्वदावतु । हमात्मिका सदा देवी
योनिरूपा जगन्मयी । सर्वार्हं पातु मां नित्यं सभायां राज-

वैश्वमिनि । वेदात्मिका सदा योनिर्वेदरूपा सरस्वती । कीर्तिं
 श्रीकान्तिमारोग्यं पुत्रपौत्रादिकं तथा । रक्ष रक्ष महायोनि !
 सर्वसिद्धिप्रदायिनि ! । रजोयोगात्मिका योनिः सर्वत्र मां
 सदावतु । इति ते कथितं देवि ! कवचं सर्वसिद्धिम् ।
 त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं राजोपद्रवनाशकृत् । सभायां वाक्-
 पतिश्चैव राजवैश्वमिनि राजवत् । सर्वत्र जयमाप्नोति कवचस्य
 जपेन हि । श्रीयोन्याः सङ्गमे देवि ! पठेदेवमनन्यधीः । स
 एव सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा । मातृकाक्षरसम्पुटं
 कृत्वा यदि पठेन्नरः । भुञ्जते विपुलान् भोगान् दुर्मया सह
 मोदते । इति गुह्यतमं देवि ! सर्वधर्मीत्तमोत्तमम् । भूजे
 वा ताडिपत्रे वा लिखित्वा धारयेद् यदि । हरिचन्दनमिश्रेण
 रोचना कुङ्कुमेन च । शिखायामथवा कण्ठे शिवः सोऽपि न
 संशयः । शरत्काले महाष्टम्यां नवम्यां कुलसुन्दरि ! । पूजा-
 काले पठेदेतत् जयौ नित्यं न संशयः ॥ इति शक्तिकागम-
 सर्वस्वे हरगौरीसंवादे श्रीयोनिःकवचं समाप्तम् ॥

इति कवचं पठित्वा अस्या अङ्गे षडङ्गन्यासं कृत्वा योनौ
 मातृकान्यासं योनिवोजन्यासञ्च कृत्वा तदनुच्चां लब्ध्वा ताम्बू-
 लादिकं दत्त्वा लिङ्गोपरि ऐं इति लिङ्गमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा
 इयं गौरी अहं शिव इति विभाव्य मातृमुखे पितृमुखं दत्त्वा
 मूलमुच्चार्य श्रीं धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्मान्नौ मनसा मुचा ।
 सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षरवृत्तिर्जुहोम्यहम् । इति मन्त्रं पठित्वा
 लिङ्गं योनौ प्रवेश्य निधुवनासक्तशिवशक्त्योरभेदं विभाव्य
 अक्षुब्धः स्थिरमानसः सत् वर्णमालया अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा
 प्रजप्य मूलान्ते । ॐ प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनीमुचा ।
 धर्माधर्मकलास्ते ह्यपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् । स्वाहा इति मन्त्रेण
 शुभ्रं त्यजेत् ॥ एकदा ताडने देवि ! एकदा यदि उच्चरेत् ।

• स कालश्चलापाङ्गि ! कोटिसूर्यग्रहेः समः । गलच्चन्द्रं गृहीत्वा
कुण्डगोलादिकं कुर्यात् । भर्तृमत्यां कुण्डं विधवायां गोल-
मिति । पूर्वोक्तक्रमेण संशोध्य तेन पूजयेत्तर्पयेच्च । ततो
योनिषोढं प्रक्षाल्य तेनोदकेन मूलमुच्चार्य सायुधां सपरिवारां
सवाहनां महाकालसहितां अमुकदेवीं तर्पयामि स्वाहा । इति
योनौ त्रिस्तर्पयेत् पूजयेच्च ॥

आरम्भक्रमः ॥ आलिङ्गनं चुम्बनञ्च स्ननयोर्मर्दनं ततः ।
दर्शनं स्पर्शनं योनीविकाशो लिङ्गधर्षणम् । प्रवेशः स्नापनं शक्ते-
र्नव पुष्पाणि पूजने । शिवशक्तिसमायोगो योग एव न संशयः ।
श्रीलारो मन्त्रजापस्तु वचनं स्तवनं भवेत् । आलिङ्गनञ्च
कस्तूरी कर्पूरं चुम्बनं भवेत् । जखदन्तचतादीनि पुष्पाणि
विविधानि च । मैथुनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातो विसर्जनम् ।
अष्टोत्तरशतेनापि योनिमारब्ध्व धर्मवित् । मैथुनं यः प्रयात्वेव
स तु सर्वं फलं लभेत् । लतारतेषु जप्तव्यं महापातकमुक्तये ।
रजोऽवस्थां समादाय तन्मूलेष्विष्टदेवताम् । पूजयित्वा महा-
रात्रौ त्रिदिनं जपमाचरेत् । लक्ष्मीषोढसहस्राणि लभते नात्र
संशयः । पृथ्वीसुतुमतीं वीर्य सहस्रं यदि नित्यशः । तदा
घादो सुसिद्धान्तर्हन्तं क्षितितलं विशेत् ॥ नित्यश इति
षोडशदिनं यावद् । कुलागारं पुष्पिताया दृष्ट्वा जपति यो
नरः । अयुतैकप्रमाणेन स भवेत् कल्पपादपः ॥

अथ शक्तिप्रशंसादि ॥ पञ्चमपटले ॥ शक्तिं विना महि-
शानि ! सदाहं शवरूपकः । शक्तियुक्तो यदा देवि ! शिवोऽहं
सर्वकामदः । शक्तियुक्तं जपेन्मन्त्रं न मन्त्रं केवलं जपेत् ।
सावित्रीसहितो ब्रह्मा सिद्धोऽभून्नगनन्दिनि । दारावत्यां क्षण-
देवः सिद्धोऽभूत् सत्यया सह । तथा कोचबधूसङ्गाभ्रम सिद्धि-
वर्दानने । ईश्वरोऽहं महादेवि । केवलं शक्तियोगतः । शक्ति-

योगेन देवेशि ! यदि सिद्धिर्न जायते । तदैव परमेशानि !
मम वाक्यं वृथा भवेत् । गङ्गा काशी प्रयागादि पुष्करं नैमिषं
तथा । वदरो च तथा रेवा उत्कलं गण्डकी तथा । सिन्धुः
सरस्वती चैव पीठानि विविधानि च । सर्वं त्यक्त्वा महेशानि !
स्त्रीसङ्गं यन्नतश्चरेत् । स्त्रीसङ्गे सिद्धिमाप्नोति मम वाक्यं न
चान्यथा । यद्वत्तं जलगण्डूषं शक्तिवक्त्रे सुरेश्वरि ! । सिन्धु-
रूपं महेशानि ! तज्जलं नात्र संशयः । स्त्रीयेष्टदेवीभावेन
भोजयेत्ताञ्च यन्नतः ॥ शक्तिश्च कथ्यते देवि ! शृणुष्व सुर-
सुन्दरि ! । त्रयोदशाब्दादूर्ध्वं या पञ्चविंशतिवार्षिकी । अप्र-
सूता विशेषेण पञ्चमेऽपि भवेत् प्रिये ! । सुन्दरी तु विशेषेण
प्रसूता वाप्रसूतिका । अवश्यं पञ्चमं कुर्यात् शक्तिमात्रे महे-
श्वरि ! । पञ्चपञ्चीकृते देवि ! यः कुर्यात् पूजनादिकम् । तद-
क्षयं लभेत् पुण्यं नात्र कार्या विचारणा । गुरुं सन्तोषये-
द्भक्त्या तत्पत्नीं तत्सुतां लताम् । नानाभक्षणवस्त्राद्यैस्तथा
द्रव्येण सुन्दरि ! । पञ्चमार्थं च या शक्तिस्तस्यां कुर्याच्च
पञ्चमम् । तस्यां स्तोत्रं प्रकुर्वीत विशेषेण शृणु प्रिये ! ।
द्रव्यादिभूषणैश्चैव भक्ष्यभोज्यैर्विशेषतः । नानाभक्षणवस्त्राद्यै-
स्तथैव सुखनादिभिः । स्नानार्थं देवतानाञ्च रहस्यं परमं
शृणु । येन स्नाने कृते देवि ! देवता सुप्रसीदति । रात्री
पञ्चमकारेषु कृत्वा पञ्चमकारकम् । भगमध्ये च यद्द्रव्यं
गृह्णीयाच्च प्रयत्नतः । तच्च कुण्डोद्भवं तोयं ज्ञेयं देवि ! वरा-
प्नने ॥ लभते भाग्ययोगेन देवानामपि दुर्लभम् । तस्मिन्
किञ्चिज्जलं क्षिप्त्वा ताम्रपात्रे विनिक्षिपेत् । तद्द्रव्यस्नान-
मात्रेण देवता सुप्रसीदति ॥

उत्तरतन्त्रे द्वितीयपटले ॥ सर्वपीठमयी शक्तिः सर्वदेव-
रूपिणी । सर्वमन्त्रमयी शक्तिश्चतुर्वर्गप्रदायिनी । शक्तौ

मनुष्यबुद्धिस्तु यः करोति वरानने ।। न तस्य मन्त्रसिद्धिः
 स्याद्विपरीतफलं लभेत् । शक्तः सम्पूजनाद्देवि ! सर्वदेवा-
 च्चक्रं प्रिये !। शक्तो यद्दीयते देवि ! वस्त्रादिभूषणं प्रिये !।
 देव्यङ्गे दत्तमेतत्तु महासौख्यप्रदायकम् । देव्यै यद्यद्वरारोहे !
 दत्तं वस्त्रविभूषणम् । इहैव शतसंख्येन दीयते च तदा पुनः ।
 पानि भ्रान्तिर्भवेद् येन घृणा स्याद्रक्तरेतसोः । तमालोक्त्य वरा-
 रोहे ! कुलीनः पशुतामियात् ॥

पुरश्चरणरसोक्तासतन्त्रे चतुर्दशपटले ॥ कलौ तु भारते
 वर्षे स्त्रीसङ्गं परमं पदम् । न धूपं चञ्चलापाङ्गि ! न दीपं
 वरवर्णिनि !। नैवेद्यं चञ्चलापाङ्गि ! तन्त्रोक्तं षोडशं प्रिये !।
 द्रव्यं नास्ति महेशानि ! कथं सिद्धिर्भविष्यति । अतएव महेश-
 शानि ! सदानन्दमयं यतः । पूजनं चञ्चलापाङ्गि ! प्रिया-
 ङ्गेषु व्यवस्थितम् । सदानन्दमयी नारी स्वकौया परगोचरा ।
 यस्या अङ्गे महेशानि ! सर्वतीर्थाणि सन्ति वै । तां विहाय
 महेशानि ! अन्यस्थाने जपेदर्थदि । तस्य सर्वं वृथा देवि !
 उक्तो भवति ध्रुवम् ॥

निगमकल्पद्रुमे तृतीयपटले ॥ सप्तलक्षा महाविद्या
 कथितास्तव सुव्रत !। रोमकूपे वसन्त्येता मन्त्ररूपाः पृथक्
 पृथक् । यावन्ति सन्ति रोमाणि शरीरे प्राणवत्तम !। ताव-
 द्देवाश्च देव्यश्च सन्ति तस्यां कलेवरे । तिस्रः कोट्यस्तदन्ते
 तीर्थाणि जाङ्गवोजले । जाङ्गवौ योनिमूले च सततं परि-
 संस्थिता । मूत्रस्थाने सदा मुक्तिः स्थापिता त्वं न संशयः । प्रह-
 तिश्च पुमाश्चैव परं ब्रह्म प्रकौर्त्तितम् ॥ योनितन्त्रेऽपि ॥ का-
 तारा योनिगर्जे कुन्तले छिन्नमस्तिका । वगलामुखी च मात-
 वसेद् योनिः समीपतः । त्रिकोणे त्रिपुरा देवी तत्पार्श्वे भैर-
 वस्वयम् ॥ इत्यादिपुरश्चरणरसोक्तासि । पीठानि चञ्चलापाङ्गि

कलौ गुह्यं भविष्यति । पञ्चाशत्पीठसंयुक्तं स्त्रीणामङ्गं शुभ-
प्रदम् । तत्कथं मूढलोकश्च विहाय स्त्रीपदं महत् । अन्य-
पीठेषु तीर्थेषु मन्त्रन्तु प्रजपेत् प्रिये ! ॥ एतस्मिन् रूपे देवानां
दक्षिर्भवति पार्वति ! । नारीव्यामं तदा कृत्वा अन्यपीठं
व्रजेत् प्रिये ! । सा स्त्री तु परमेशानि ! सा चान्मूर्तिर्नि-
चान्यथा । नारीप्रसङ्गे चार्वाङ्ग ! सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥
इति शक्तिप्रशंसा ॥

अथ प्रकारान्तर लतासाधनम् ॥ उत्तरतन्त्रे प्रथमपटले ॥
वल्लीमूले वरारोहे ! लेखन्यङ्गसमुत्थया । यो लिखेन्मन्त्र-
वर्णाञ्च तस्य सिद्धो भवेन्नतुः । तस्य दर्शनमात्रेण मुक्ताः सन्ति
च पापिनः ॥ वल्लीमूले योनौ ॥ अङ्गसमुत्थया शेफसा ॥ शैल-
कन्या कलानाथे कलानाथसमन्विते । यद्द्रव्यं जायते देवि !
तद्द्रव्यं मम दुर्लभम् । माहात्म्यं तस्य वक्तुं वै समर्थः सुर-
वन्दिते ! । जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्तुकोटिशतैरपि । पुर-
श्चरणकर्मादि दुःसाध्यं परमेश्वरि ! । शङ्केतमिदमेवात्र
सुगोप्यं पशुसन्निधौ ॥ अपरन्तु द्वितीयपटले ॥ शङ्करोपरि
संस्थाप्य कलां कामशरादिताम् ॥ यस्तु चिन्तयते भक्त्या स एव
कल्पपादपः ॥ शङ्करोपरि विपरीतरत्नी ॥ वल्लीमूलसमु-
द्भूतं पाशं करेण सन्निभम् । समूलं सुन्दरारक्तं पतत्रोव स-
लोभितम् । स्वादन्नं व्यञ्जनैर्युक्तं द्राक्षारससमन्वितम् । नव-
मीतं कलाजातं कदलीनाथसम्भवम् । रम्भारम्भेशयोरास्यं
तान्तवं परमं प्रिये ! ॥ एकत्र सकलं कृत्वा मुक्तकेशो दिग-
वरः । चत्वरे वा श्मशाने वा बलिं दद्याद्दरानने ! । स्त्रीरू-
पे च सा देवी गृह्णाति परमेश्वरी । एवं कर्तुं समर्थो यः
एव भगवान् स्वयम् । यामिनीतिमिरे भानौ मुखे हाटक-
ते । आवर्त्ते कामरूपे च खञ्जने च सुरेश्वरि ! । मुक्ता-

द्वन्द्वे च चापि च विम्बे च तिलपुष्पके । पद्मनाले धरायाञ्च
रश्मायाञ्च वरानने । यो जपेत् परमेशानि ! किमसाध्यं भवेत्
प्रिये । यामिनीतिमिरि कैशे । भानौ सिन्दूरमण्डले । हाटक-
पर्वते स्नानयुगले । आवर्त्ते नाभौ । कामरूपे योनी । खञ्जने
चतुर्दये । सुक्ताद्वन्द्वे दन्ते । चापे भ्रुवि । विम्बे ओष्ठे । तिल-
पुष्पे नासिकायाम् । पद्मनाले बाहुद्वये । धरायाञ्च उरुद्वये ।
रश्मायाञ्च नितम्बे ॥ देयुवाच ॥ कथमेव महादेव ! पर-
शक्त्या क्रियां चरेत् । परदारकृते दोषः कथं नैव प्रजायते ।
कथं परस्त्रियां कार्यः परेण सह सङ्गमः । साध्वोत्वं नश्यति
चिप्रं तस्मान्नैतत्समाचरेत् ॥

दृष्ट्वौलतन्त्रे चतुर्थपटलेऽपि ॥ परदारविधौ देवि ! निन्दा-
वादः प्रवर्त्तते । तासां सङ्गान्महेशानि ! तामिस्रं नरकं
ब्रजेत् । वेदार्थमिति विज्ञाय कथं कुर्याच्च साधकः । सिद्धान्त-
यति तत्रैव ॥ परदारान्न गच्छेन् गच्छेच्च प्रजपेद् यदि ।
श्रुतिद्वयविरोधाच्च गच्छेन् परयोषितः । उत्तरतन्त्रेऽपि ॥
पूजाकालं विना नान्यं पुरुषं मनसा स्थयेत् । पूजाकाले च
देवेशि ! वेश्याञ्च परितोषयेत् । साध्वोत्वं न हतं तस्याशुस्वना-
निङ्गनैः प्रिये । काश्यादि सर्वतीर्थानि सर्वपुण्यानि सुव्रते ।।
तस्या देहे वसन्त्येव सर्वे मन्त्राश्च सुन्दरि ।। विकल्पो नात्र
कर्त्तव्यस्त्वया गिरिवरात्मजे ।।

अथ योनिपूजा ॥ निरुत्तरतन्त्रे प्रथमपटले ॥ योनि-
रूपा महाकाली शवः शय्या प्रकीर्त्तितः । श्मशानं द्विविधं
देवि । चिता योनिर्महेश्वरि ।। तथा ॥ कलापूजां विन
देवि । या काचित् क्रियते क्रिया । सा क्रिया त्वभिचारात्
सत्यं सत्यं न संशयः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलापूजां सम-
चरेत् । योनिरूपा कला देवि ! दक्षिणैव न संशयः । दिव

वीरो बरारोहे ! कलापूजां समाचरेत् । पशुभावाश्रितो मन्त्री
कलां नैव प्रपूजयेत् । कलाया द्विविधा पूजा गुप्ता व्यक्ता कुले-
खरि ।। गुप्ता च साधकैः कार्या निर्जने च महार्नाथ ।
व्यक्ता दिवा प्रकर्तव्या लोकाचारक्रमेण तु । लोकाचारं
विना देवि ! गोपनं नैव जायते । गोपनं सिद्धिमूलञ्च सत्यं
सत्यं न संशयः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च कुलसुन्दरि ।।
कलयासवयोगेन कलापूजां समाचरेत् । द्रव्याभावे द्विजो
दद्याच्चानुकल्पं युगे युगे । कलायाश्चानुकल्पश्च कलायाश्चैव
चिन्तनम् । कलापूजां विना देवि ! दक्षिणा न फलप्रदा ॥

कलात् स्त्रीष्टदेवतोपलक्षणम् ॥ तथाच समयाचारतन्त्रे
द्वितीयपटले ॥ अथेदानीं प्रवक्ष्यामि भगपूजां समासतः । गुरोः
प्रसादाद् यन्मन्त्रं नित्यं जपति साधकः । तेनैव मनुना मन्त्री
भगपूजां करोति च । तदापि भगमध्ये वै चिन्तयेद्भगरूपि-
णीम् । शिवो भूत्वा स्मरेद्देवो तदेव मेलनञ्चरेत् । शक्तिं शक्ति-
मयीं चिन्तेत्तदा वै मैथुनं चरेत् । मैथुनासक्तयोगेन मानसं
जपमाचरेत् । यथोक्तं कुरुते देवि ! प्राप्यते परमं पदम् ।
यानि कानि च मन्त्राणि कथितानि बरानने ।। जप्तव्यानि
च देवेशि ! सर्वतन्त्रेषु निश्चितम् ॥ तथा ॥ भगस्य स्मरणे
पुण्यं भगस्य दर्शने तथा । भगस्य स्पर्शनाद्देवि ! यत् पुण्यं
सम्प्राप्यते । तत् सुखं न जपेर्हामैनं ध्यानैस्तपसा तथा ।
पञ्च पञ्च कते देवि ! यत् पुण्यं भुवि जायते । न तत् पुण्यञ्च
सुभगे ! कीटितोर्वस्य दर्शने । जपो होमस्तथा दानं दौक्षा
योगादिकल्पना । कृतपञ्चमभक्तस्य कलां नार्हन्ति
षोडशीम् ॥

निगमकल्पद्रुमे षष्ठपटले ॥ आवाहनादिरहितां दोनि-
पूजां विधाय च । मूलमन्त्रेण तद्दयोन्यां पूजयेदिष्टदेवताम् ।

मायावीजं योनिमन्त्रं तेन तां परिपूजयेत् । स्वशक्त्या भक्ति-
योगेन पूजयेद्विभवावधि । ततो योनीं शतं मन्त्रं जपेत्
साधकसत्तमः । भर्गे लिङ्गं ततो दद्यादिष्टमूर्तिं विचिन्तयन् ।
गाढं निपोडयेत्तां तु स्वशक्त्या कुलभैरवः । घाते घाते ब्रह्म-
हत्याशतं हन्यात् सुधाकरः । कामशास्त्रप्रसङ्गेन यथा
सन्तोषणं भवेत् । पुनः पुनः कारणादि मुखे दद्यात् सुसाधकः ।
वीर्यपातादिसमये जपेन्मन्त्रमुदारधीः । ततस्तु द्रव्यमादाय
महादेव्यै निवेदयेत् । एवं कृत्वा महादेवि ! जठरे न पुनर्भवेत् ।
सत्यं सत्यं महादेवि ! ममेतद्वियोगमुत्तमम् । बहुना किमि-
होक्तेन शृणु मध्याणवत्समैः ॥

बृहन्नीलतन्त्रे षष्ठपटले ॥ अथवा कामरूपस्य दर्शनं यदि
जायते । तदा भगादिदेवीनां पूजां तत्र विधीयते । यदि
भाग्यवशेनैव कुलदृष्टिः प्रजायते । तदेव मानसीं पूजां तत्र
तासां प्रकल्पयेत् । भगिनीं भगजिह्वायु भगमास्यां भगमालि-
नीम् । भगाङ्गाय भगाक्षीम् भगवर्णां भगवत्चाम् । भग-
स्तनीं भगनाशां भगव्यं भगसर्पिणीम् । तत्र सम्पूज्य गन्धाद्यै-
र्मानसेर्गुरुमेव च । नमस्कृत्य विधानेन स्वयमर्चोभितः सुधीः ॥
निगमकल्पद्रुमे ॥ योनिर्वा स्तनपद्मं वा भानु कृष्णभरोरुहम् ।
चामरं वा नितम्बं वा दर्शनं यदि जायते । तदा जपेन्मन्त्र-
राजं नमस्कृत्य पुनः पुनः । तेषाञ्चापि महादेवि ! सुक्तिरस्ति
करस्थिता । शक्त्याः पादोदकं यस्तु पिवेद्भक्तिपरायणः ।
उच्छिष्टं वापि भुञ्जीत तस्य सिद्धिरखण्डिता । महाकवे यदि
विश्वासो जायते शिवशङ्करि ! । तदा वाक्यं मया प्रोक्तं
अन्यथा चेन्न चाचरेत् । यात्राकाले योनिस्तत्त्वमात्राय य-
गच्छति । कुन्तलं शिरसा धृत्वा तस्य शत्रुर्विनश्यति । सभा-
विजयी भूयाद्राजकार्ये तथैव च । सत्यमेतन्महाभाग ! म

वाक्यं वृथा न हि । येन तेन प्रकारेण योनिपूजापरायणः ।
 स याति परमं स्थानं देवैरपि सुदुर्लभम् । अत्युत्कटे च
 योगादौ तथैव राजवेश्मनि । महोपद्रवमुत्पाति यदि योनिं
 प्रपूजयेत् । तदा योनिर्भृहादेवी चोद्धरेत् सर्वशङ्कटात् । दूत्रो-
 ऽधिकं न किञ्चित्तु विद्यते मम वाक्यतः । सत्यमेतन्न सन्देहो
 यद्यहं तव वल्लभः । सर्वधर्म्मं परित्यज्य योनिपूजारतो
 भवेत् । तदेव परमां प्रीतिर्लज्जाकेवल्यमाप्नुयात् । तोया-
 नाञ्च यथा गाङ्गं गव्यानाञ्च यथा घृतम् । तथा देवि ! मैथुनं मे
 भवेत् प्रियतमं प्रिये ! ॥ निगमकल्पद्रुमे ॥ ऊरुद्वयञ्च कान्ताया
 ऊर्वोरुपरि संन्यसेत् । ग्रीवामाक्रम्य पाणिभ्यां स्तनद्वन्द्वं क्वचित्
 क्वचित् । चुम्बनं बहुधा वक्त्रे बन्धोऽयं कामसुन्दरः । योनौ
 लिङ्गं समादाय हस्तोपरि पदद्वयम् । केशानाक्रम्य पाणिभ्यां
 स्तनद्वन्द्वं क्षणे क्षणे । चुम्बनं सर्वगात्रेषु पिवेदोष्ठाधरं मुहुः ।
 दृढघातेन च रमेत् बन्धोऽयं रतिपण्डितः । स्कन्धयोर्विन्यसेत्
 पादौ योनौ लिङ्गं तथा क्षिपेत् । शिरश्चाक्रम्य हस्ताभ्यां
 दन्ताघातक्रमात् क्रमम् । चुम्बनं चक्षुर्वदने स्तनयोर्मर्दनं
 मुहुः । रमेत् स्वशक्तिः कामी बन्धोऽयं काममर्दनः । उरस्था-
 सनमास्थाय चौरस्यपरमूर्खकम् । स्कन्धावाक्रम्य पाणिभ्यां
 गण्डे चुम्बनपूर्वकम् । रमेच्च सुदृढाघातैर्बन्धोऽयं कामकौतुकः ।
 एवं क्रमेण देवेशि ! बहुबन्धोऽस्ति भैरवि । कामरत्नादितन्त्रेषु
 निशेषेण प्रकाशितम् । विशेषबन्धं सङ्केपात् प्रसङ्गात्त्वयि
 चोदितम् ॥

अथ षोडशबन्धाः ॥ रतिरहस्ये ॥ बन्धाश्चतुरशीतिः
 स्युर्मुनिना परिकीर्त्तिताः । तस्मादाकथ्य लिखिताः षोडश-
 प्रेमहेतवः । पादौ स्कन्धयुगे नार्याः क्षिप्त्वा लिङ्गं भगे लघु ।
 कामयेत् कामुको नारीं बन्धः काकपदो हि सः ॥ पादमेकं

करे धृत्वा द्वितीयं स्नानसंस्थितम् । नारीञ्च कामयेत् कामी
 बन्धो वेणुविदारकः ॥ ऊरुमूलोपरि न्यस्य योषिदुरुयुगं यदि
 घोवां धृत्वा कराभ्यान्तु बन्धो नागरको मतः ॥ पौडयेदुरु-
 युग्मेन कामुकं यदि सुन्दरी । रतिपाशं समाख्यातं कामि-
 नीनां सुखावहम् ॥ स्त्रोजङ्घान्तरितो दोर्भ्यां गाढमालिङ्ग
 सुन्दरीम् । बन्धयेद्वन्धनं कामी बन्धो मायूरसंज्ञकः । नारी-
 पादौ खड्गस्तेन धारयेद् गलके यदि । स्वनार्पितकरः कामी
 बन्धः स्याद्वि विलासवान् । योषित्पादं हृदि न्यस्य द्वितीयं
 स्नानमाश्रितः । स्तनी धृत्वा रमेत्कामो बन्धस्तनभरः ।
 नारीपादद्वयं कामो धारयेत् स्तनमण्डले । धृतकण्ठो रमे-
 नारी बन्धोऽयं रतिसुन्दरः । त्राय्यां ऊरुद्वयं धृत्वा कराभ्यां
 पौडयेत् पुनः । कामयेन्निर्भरं कामी बन्धोऽयं सुखसङ्गमः ।
 धृत्वा वामकरेणोरुं पादञ्च सिरसि स्थितम् । सुदृढं रमयेत्
 कामो स्मरचक्रः प्रकीर्तितः । खजानुद्वयमध्याभ्यां धारये-
 न्निर्भरं स्त्रियम् । वामे निःशङ्कितः कामी बन्धोऽयं नागपाशकः ।
 स्त्रीपदद्वयमाकृष्य विमुखः क्षिप्तलिङ्गकः । योनिमापौडयेत्
 कामी बन्धः कुलिशनामकः । इत्यादिबन्धविन्यासे गाढमुत्पा-
 दयते सुखम् । तस्मादिदम्भसंघातैर्वन्धाः कार्य्याः प्रयत्नतः ।
 बन्धः सर्वाल्लना कार्य्या नायके सर्वथा सुखे । तेन सञ्जायते
 कामः पुरुषे मैथुने खलु ॥ १६ ॥ स्त्रिय अनोय पूर्वाङ्गे चिबुकैः
 पृष्ठतः क्रमात् । धृतोदरे रमेत् पश्चात् बन्धोऽयं रतिसुन्दरः ।
 शय्यासीनस्तनी नारी उत्क्षिप्तजघनी यदि । कान्तं कामयेत्
 पश्चात् बन्धोऽयं स्वर्गसङ्गमः ॥ इत्यधोमुखी द्वौ कर्त्तव्यौ ॥
 उद्धृत्य पादमेकान्तु संस्थाप्य चापरं भुवि । कुड्याश्रितां रमे-
 त्कामो बन्धो दीलायितः स्मृतः । पादाभ्यां मध्यमावेष्ट्य समा-
 लिङ्गाश सुन्दरीम् । चुम्ब्य सुखं प्रियायास्तु बन्धो नागेश्वरी

मंतः ॥ स्त्रियं सुखं समालिङ्गानुचुम्ब्य च सुखं मुहुः ।
 प्रियाधाः कटिमांकुष्य स्वकण्ठे धारयेत् प्रियाम् । कीमचालन-
 मेवांशु प्रदद्यात् पुरुषो दृढः ॥ नारीपादद्वयं कृत्वा कान्त-
 स्योरुद्वयोपरि । कटिमालोकयेद्यस्तु बन्धोऽयं संपदः स्मृतः ।
 कान्तक्रीडे स्थिता नारी भूमौ दत्तपदद्वया । हृदये दत्त-
 हस्ता च बन्धो लीलानलोत्तमः ॥ विपरीतरतिः ॥ भग-
 निःक्षिप्तलिङ्गायाः सुन्दर्या लेदितं प्रियम् । तथा सम्पुटक-
 चेति नारीलिङ्गप्रवर्त्तनम् ॥ इति सुखरतम् ॥ इति श्रीप्राण-
 तः ण्यां पञ्चपुष्पस्तवकान्वितं सप्तमं निर्गुणज्ञानकाण्डं
 समाप्तम् ॥

अथौषधम् ॥ मत्स्यसूक्ते एकविंशति पटले ॥ दीपं
 कृत्वा ताम्रपात्रे कज्जलं पातयेदथ । गवां घृतेन
 चालोष्ठ चक्षुषी त्वथ रञ्जयेत् । जन्मान्तरे यथा रूपं तादृ-
 शञ्च प्रपश्यति ॥ १ ॥ काकमाची दक्षमूलं शिखायां धारयेत्तु
 यः । निन्दां करोति देवेशि ! अर्द्धशूलं हरत्यपि ॥ २ ॥
 कृष्णतुलस्याः पत्ररसं मधुना सारनालकम् । तैलेन संयुतं
 कृत्वा मन्दाग्नौ तापयेत्ततः । कर्णे तु तापयेद्देवि ! कर्ण-
 कौट्यादिकं हरत् ॥ ३ ॥ मृङ्गराजं सारनालं अर्द्धशूलं हरि-
 दथ ॥ ४ ॥ जम्बुपत्ररसेनापि कर्णस्य परिपूरणात् । कर्ण-
 कोटः पतदाशु रात्रौ दद्यान्न संशयः ॥ ५ ॥ सहदेवामूलपत्रं
 कर्णे बद्ध्वा व्यथां हरित् ॥ ६ ॥ हस्तिशूण्डापत्ररसैश्चक्षुषौ परि-
 पूरयेत् । चक्षुर्व्यथां हरिदाशु तथा वृहदसोर्ध्मणी ॥ ७ ॥ शूण्डो-
 निखदलरसं पिष्ट्वा चक्षुश्छदे प्रिये ! । विलेपयति पञ्चस्यां
 चक्षुशूलं विनश्यति ॥ ८ ॥ अपामार्गस्य सूलञ्च रोचना सरलं
 तथा । गव्यमुस्तकसंयुक्तं ताम्रपात्रे तु पेययेत् । अञ्जना-
 चक्षुषौ देवि ! सर्वशूलं विनश्यति ॥ ९ ॥ तुलस्याः कृष्ण-

पत्रस्य रसेन कटुतैलकम् । लवणं वारनालञ्च भीमवारे प्रद-
 नतः । चक्षुष्मदे महेशानि ! पटलं याति संचयम् ॥ १० ॥
 अजल्लोपमांसञ्च महिषस्य तथैव च । गोधामांसञ्च तज्जिह्वा
 भीमवारे तथा निशि । खादिराग्नौ पचेद्देवि ! क्षणाद्वात्रास-
 नाशनम् ॥ ११ ॥ कार्पासकोमलफलत्रयं स्वात्मां समाहरत्
 चर्वित्वा चक्षुषोर्देवि ! पूरणाञ्च विनश्यति ॥ १२ ॥ चक्षुरोगे-
 न सन्देहास्तिमिरस्य तथा शृणु । रक्तचन्दनसंयोगान्मधुना सह
 रौद्रके । कियदुष्णमञ्जनाञ्च तिमिरं हन्ति सुन्दरि ! ॥ १३ ॥
 मधुयुक्ते वटफले पृष्ठे चक्षुषि लेपनात् । तथा रोगं हरिदाश
 तथैव च पुनर्णवाम् ॥ १४ ॥ घृतेन भर्जितां भवेत् चक्षुस्तेज-
 स्करं महत् ॥ १५ ॥ निम्बनिर्यासपत्रं वा तैलेन सह भक्षणात् ।
 चक्षुस्तेजस्करं देवि ! पामरीशूलदण्डकम् । नारिकेलोदकसम-
 तथा रोगं हरत्यपि ॥ १६ ॥ त्रिफला गुडसयुक्ता गुडमादृक्-
 संयुतम् । द्वाभ्यां प्रभाते देवेशि ! क्षणात् कामलनाशनम् ॥ १७ ॥
 धात्रीं तप्रीदकैर्भवेत् तथा रोगो विनश्यति । पुराणकण्टकी-
 मञ्जा तथा वामन्तिकालमा । शर्षपस्योघ्रतैलेन किञ्चिदुष्णेन
 भावयेत् । त्रिवारं लेपनादेव सर्वां हन्ति विचर्चिकाम् ॥ १८ ॥
 चलदलस्य त्वचा शुष्कं दग्ध्वा सर्षपतैलके । परण्डतेलेन
 देवेशि ! उष्णेन परिलेपनात् । एतद्विचर्चिकां हन्ति ताल-
 मूलो तथैव च ॥ १९ ॥ यनमरीचवीजेन तमःपक्षे विक्षे-
 षतः । अजादुग्धसमेतेन लेपात् सर्वविचर्चिकाम् । हन्ति
 देवि ! न सन्देहस्तथाजौपलमूलकाम् ॥ २० ॥ मानं शुष्क-
 ततो दग्धा शङ्खचूर्णेन लेपयत् । गात्रविचर्चिकां हन्यालेपा-
 दारत्रयेण तु ॥ २१ ॥ मानं शुष्कं पुराणञ्च घृतेन सह भक्षणात्
 शङ्खवातं हरिदाश पटुस्यक्ष्णमर्कटम् ॥ २२ ॥ द्विवर्षीयं समा-
 नीय देग्मिमानञ्च पावति ! । क्षतं कृत्वा ततो लेपादप्यग्नि-

मिति तथा जङ्गमवारणे ॥ ५२ ॥ नीलकण्ठस्य पञ्चञ्च भुज-
 मस्य च कञ्चुकम् । समभागे कृतं धूपं पूर्ववद्भवति ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
 हयमारस्य रक्तस्य गृहीत्वा कुसुमं बुधः । अश्वं सवेतसञ्चैव
 सन्ध्याज्यं तेन दर्पणम् । अश्वोद्गर्दभानाञ्च रूपं पश्येदन-
 वशीः ॥ ५४ ॥ शूकराखण्डभस्य वानरस्य तथैव च । गृह्णी-
 यात्तु नखं तावत् पुटान्मौ दाहयेत्ततः । पश्चात्पाण्डूकवश्या दर्पणं
 मार्जयेदथ । तेषां रूपाणि संपश्येन्नात्र कार्या विचारणा ॥
 ऋतुमत्या दुर्भगायास्तद्दिनावधि सप्तके । वासरे शर्ष-
 पान् श्वेतान् योनौ प्रचेपयेद्बुधः । भक्ष्यैस्तैः शर्षपैर्योऽयं स्पृश-
 त्वेतेव तं व्रजेत् ॥ अङ्गोष्ठचवौजस्य गृह्णीयात्तैलमेव तु ।
 मोचिके तु ततो वृश्चत्तस्य दोहदेमेव च । बलपुष्टिकरञ्चैव
 आयुर्वृद्धिकरं परम् ॥ जम्बोरफलपत्रञ्च सैन्धवेन समन्वितम् ।
 दन्तक्षेपं भवेत्तोक्ष्णं माषपुष्पं घृतौदनम् । आयुर्वृद्धिकरञ्चैव
 चिरकाले बलं भवेत् ॥ कूर्ममांसं बलं हीनं मांसञ्च कोर-
 कस्य च । अल्पायुर्याति वै शीघ्रं हंसमांसेन पावति ॥
 भृगुस्य शोकरञ्चैव स्नुहीकर्दमसंयुतम् । मांसयुक्ते अर्कदुग्धं
 मन्दारफलसंयुतम् । वाते रजनिंसंयुक्तं तालमूली सभक्तकम् ।
 मरुतो च कृदे दद्याज्जिह्वारोगे कुलेश्वरि । पर्यटं सुडंसंयुक्तं
 दधिभक्तं निवेदयेत् । उष्णं कृत्वा पाययेच्च नाभौ संलेपये-
 ततः । अशोकमूलं पिण्याकं कफरोगे गलग्रहे । अण्डरोगे
 पर्णशिरां माणसूलन्तथैव च । तालमूलञ्च कुसाण्डं वात-
 सारे शिरोषकम् ॥ त्रयोविंशति पटले ॥ दन्तशूले मारुतञ्च
 सैन्धवं पिप्पलीयकम् । समूलं दन्तिसारञ्च दन्तरोगोपशान्तये ।
 क्षते कौटे प्रजाते च मन्दाराग्रं सचूर्णकम् । स्नुहीक्षौरसमेतञ्च
 कीटः पतति तत्क्षणात् ॥ इति गवादीनां क्षते मत्स्यक्षे-
 द्रष्टव्यम् ॥

अथ वक्ष्ये महेशानि ! तुरगाणां चिकित्सितम् । वात-
 दद्यात् पललतां शृङ्गवेरं सपिप्पलीम् । यमानीं नारिकेलञ्च
 मुखवासकमूलकम् । कोषलञ्च गुडञ्चैव पिण्डं तापहरं परम् ॥
 जीरं सर्जरसं कोलं दूर्वाधन्याकसंयुतम् । योगपत्रं मिमा-
 शाकं मरीचं लवणान्वितम् । वासन्तीमूलसहितं त्रिपुण्ड्र-
 श्मपापहम् । ब्रह्मत्पानोयमूलपत्रं काङ्गस्य वीजप्रवकम् ।
 शृङ्गवेरं यवञ्चैव हरिद्रादयमेव च । एतत्पिण्डं वातहरं शल-
 पुष्टिकरं परम् । अरण्यवदरीं सूक्तिं कानने रामवासकम् ।
 खर्जूरस्य च वीजेन सगुडेन ज्वरं हरेत् । धान्यमूलं रविमूलं
 कालञ्जरसमन्वितम् । सोमधान्येन तद्दद्याच्छर्दिकारोग-
 नाशनम् ॥ तथा ॥ अपामार्गं विडङ्गञ्च सैन्धवं नागकेशरम् ।
 सैन्धवेन समायुक्तं अचिरोगो विनश्यति । चर्च्चिकायान्तु भेकस्य
 तैलं भेरुण्डकस्य च । निशायोगेन दातव्यं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥
 नागेश्वरस्य तैलेन मधुवृक्षस्य चूर्णितम् । दग्धं कृत्वा ददेत्ते पं-
 तस्थे देवि ! विचर्च्चिका ॥
 षड्विंशति प्रष्टवे ॥ दानवस्य च पुष्पाणि घृतसिक्तानि भक्ष-
 येत् । रक्तस्रावं ऋतुस्नानं जलम्भारञ्च नश्यति ॥ उत्तराशा-
 मुखो भूत्वा कन्यासूत्रेण वेष्टयेत् । विष्णुकान्तामपामार्गं
 तथा जोरमरीचकम् । एकैकेन पिबेत् पौत्वा सुखं सूयेत्
 गर्भिणी । माहौषनवनीतेन तथा कविकलाचनम् । विलिख्य
 ताभ्यां देवेशि ! लिङ्गं स्थलं भवेदनु । रक्तभेरुण्डमूलञ्च तथा
 जलदलपत्रकम् । मरीचञ्च प्रियङ्गुञ्च पिष्ट्वा लिङ्गं विवर्धयेत् ॥
 गुवाकपुष्पमेकान्तु गोक्षीरेण समं पिबेत् ॥ स्वात्यां वा जन्म-
 दिवसे अपुष्पा पुष्पिता भवेत् ॥ हस्तिशृण्खलास्ततो मूलं
 कलविडङ्गस्य नासिकाम् । घृतेन भर्जितं भवेदिन्द्रियः प्रबलो
 भवेत् ॥

नागार्जुनकृतकक्षपुटे द्वितीयपटले ॥ मूदारवटमूलस्य
जलेन सह घर्षयेत् । विभूत्या संयुतं देवि । तिलकं लोकवश-
कत् ॥ १ ॥ पुष्पे पुनर्नवामूलं रुदन्तीं मूलिकां तथा । यव-
मूलं तथा बध्वा कण्ठे सप्ताभिमन्त्रितम् । पूज्यो भवति सर्वत्र
मन्त्रमत्रैव कथ्यते ॥ ऐं पुरं क्षोभय भगवति गम्भीरे लक्ष्मी
स्वाहा । अमुं मन्त्रमयुतद्वयं जपेत् ततः सिद्धिः ॥ १ ॥
उद्यातपत्रमञ्जिष्ठा कुङ्कुमं तगरं समम् । स्नाने पाने तथा स्पर्शे
दत्तं वश्यं भवत्यलम् ॥ २ ॥ सिंहीमूलं हरेत् पुष्पे कट्यां बद्धा
जगत्प्रियः ॥ ३ ॥ निशि कृष्णचतुर्दश्यां महानीलो श्मशानतः ।
उद्धृत्य नरतैलेन चाञ्जनेनैव वश्यकत् ॥ ४ ॥ तन्मूलं वन्धयेद्वस्त्रे
सर्वलोकप्रियो भवेत् ॥ ५ ॥ चन्द्रं पुष्पे समुद्धृत्य ब्रह्मदण्डोद्य-
मूलकम् । भोजने सर्वसत्त्वानां वशीकरणमुत्तमम् । उल्क-
द्वयं तुल्यं कुमार्या रोचनं सुधीः । अञ्जने रोचने वश्य-
मानयेद्भुवनत्रयम् ॥ ६ ॥ ओं नमो यक्षिणि अमुकं वश-
मानय स्वाहा ओं । अस्य मन्त्रस्य पूर्वमेवायुतं जप्त्वा तत
उद्यातपत्रादि सर्वप्रयोगाः । शतवारमभिमन्त्रिता सिद्धा
भवति चोषधिः । सर्वेषामेव मन्त्राणां मन्त्रध्यानं पृथक् पृथक् ।
तत्तत्स्थाने यथासङ्ग्रामनुक्ते त्वयुतं जपेत् । सृगशीर्षे तु
सङ्काङ्क्षां सुरक्तकरवीरकम् । नवाङ्गुलं कीलकं तत् सप्तवाराभि-
मन्त्रितम् । यस्य नाम्ना खनेद्भूमौ स वश्यो भवति ध्रुवम् ।
ओं हुं हुं स्वाहा । शतमष्टोत्तरं जप्त्वा पूर्वमेवारभेन्नरः ॥ ७ ॥
तृतीय पटले ॥ कुङ्कुमं चन्दनञ्चैव रोचनं शशिमिश्रितम् ।
गवां क्षीरेण तिलकं राजवश्यकरं परम् । ओं ह्रीं सः अमुकं
वशं कुरु कुरु स्वाहा । पूर्वमेव सहस्रं जप्त्वा ततोऽनेन मन्त्रेण
पूर्ववत् तिलकं कुर्यात् । ओं ह्रीं रक्तचामुण्डै कुरु कुरु
अमुकं वशमानय स्वाहा । इति चामुण्डामन्त्रैः सर्वसिद्धौ

भवति ॥ मञ्जिष्ठा कुङ्कुमञ्चैव बाला मोदा कुमारिका
चितामस्य स्वरक्तञ्च नियमैरेव भावयेत् । पुष्टेण गुटिक
कृत्वा भक्ष्ये पाने च दापयेत् । पृष्ठो वा राजवश्यः स्यात्
चण्डमन्त्रप्रभावतः ॥ ८ ॥

अथ विवादजयः ॥ गोजिह्वा शिखिमूला वा सुखे
शिरसि संस्थिता । कुरुते सर्ववादिषु जयं पुष्टे समुद्धृता
मार्गशीर्षे तु पूर्णायां शिखिमूलं समुद्धरेत् । बाहौ शिरे
शिखे धार्यं विवादे विजयो भवेत् । बन्धनान्मच्यते जन्तुः
शिखामन्त्रान्न संशयः ॥ २ ॥ मेघनादस्य मूलञ्च चक्रस्यान्तर-
वेष्टितम् । परदारौ भवेन्मूकोऽथवा याति दिगन्तरम् ।
निशि कृष्णवतुर्दंष्ट्रां महानौलीं स्मृशानतः । आदाय बन्धये-
द्बस्ते विवादे विजयो भवेत् । श्वेतगुञ्जान्वितं मूलं सुखस्य
दुष्टतुण्डजित् । उक्त योगानां चण्डमन्त्रेण सिद्धिः ॥ मन्त्रस्तु
ओं सुदर्शनाय हुं फट् स्वाहा । पूर्वमेवायुतं जप्त्वा चण्डमन्त्रस्य
सिद्धये । ततो ह्यौषधियोगस्य सप्ताभिमन्त्रितो भवेत् ॥ ४ ॥
शक्तपञ्चयुते पुष्टे गुञ्जामूलं समुद्धरेत् । बद्धं शिरसि तत्सर्वं
चौरवाधाहरं परम् ॥

योगसारे प्रथमपरिच्छेदे ॥ देवीवाक्यम् ॥ व्याधिनाश-
महं वक्ष्ये पलमात्रं घृतं पिवेत् । पठित्वानेन मनुना यः
पिवेत् साधकोत्तमः । सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः ।
मन्त्रं तस्य प्रवक्ष्यामि शृणु मङ्गैरवोत्तम । तारं माया
भृगुः शम्भुः पुनर्भृगुरुदाहृतः ॥ सृष्टियुक्तो गुरुश्चैव तथा चन्द्रः
शिवः स्मृतः । एतन्मन्त्रं समाख्यातं घृतशुद्धिरितोरितम् ॥ १ ॥

दृष्टानाशं प्रवक्ष्यामि रक्तचन्दनतोलकम् । चर्पयित्वा वाम-
हस्ते गृहीत्वा साधकोत्तमः । तोलकं जलसंमिश्र्य मनुनाष्टो-
त्तरं शतम् । तत्तदुपरि संजप्य यः पिवेत् साधकोत्तमः ।

साहाज्यायते तस्य दृष्टानाशस्तु भैरवं ! । सर्वेषां भक्षणं
 शक्तं समाहञ्च कुलेश्वर ! । सर्वमष्टोत्तरशतं पिबेज्जम्बा च
 साधकः । शब्दबीजद्वयं भद्रे ! नाशयद्वितयं वदेत् । दृष्टेति
 समुच्चार्य ततः स्वाहा मनुर्मतः । अनेन मनुना देव ! दृष्टाना-
 शाशोऽभिजायते ॥ २ ॥ आहारनाशनार्थाय कृष्णचित्रां समा-
 हरित् । तोलाद्वै वा तद्वै वा तद्वै वा सुरेश्वर ! । आनीय
 मनुनानेन वटिकां कारयेद्बुधः । घृतेनालोष्य देवेश ! मनु-
 नानेन भक्षयेत् ॥ कामबीजं समुच्चार्य क्षुन्नाशिनि पदं ततः ।
 निवारयपदं चोक्ता स्वाहेति च मनुर्मतः ॥ ३ ॥ अथवान्य-
 प्रकारेण क्षुन्निवृत्तिर्विधीयते । हविष्याशौ भवेदादौ पश्चा-
 ज्जपति मातृकाम् । पश्चाद्घृतं प्रयोक्तव्यं मनुनानेन शङ्कर ! ।
 हसोर्वा येन मनुना भक्षयेत् साधकोत्तमः ॥ ४ ॥ अथवा सर्पिषा
 देव जिह्वामालोष्य यत्नतः । यावदोष्ठं परिव्याप्तं जिह्वया
 कुलभैरवः ! । तावत्प्रमार्जयेज्जिह्वां यावदोष्ठसमां नयेत् । अने-
 नैव प्रकारेण क्षुन्निवृत्तिर्भविष्यति ॥ ५ ॥ अथवान्यप्रकारेण
 क्षुन्निवृत्तिर्विधीयते । प्रत्यहं विजयाधूमं ब्रह्मरन्ध्रेण मन्त्र-
 वित् । पानं करोति देवेश ! क्षुन्नाशो जायते ध्रुवम् । ब्रह्म-
 मन्त्रमहं वक्ष्ये येन क्षुन्नाशनं भवेत् । सम्बर्त्तकचन्द्रवक्त्रि
 भौतिको विन्दुसंयुतः । एवं बीजत्रयं देव ! समुच्चार्य कुले-
 श्वर ! । अनेन मनुना देव ! विजयाधूमशोधनम् । शोधयित्वा
 पिबेद्भूमं न दोषो जायते हर ! ॥ ६ ॥ अथ मूत्रप्रनाशार्थं
 वक्ष्यामि मन्त्रमुत्तमम् । अश्वगन्धां समानीय अस्त्रमन्त्रेण
 मन्त्रयेत् । तोलकं सर्पिषा देव ! मिश्रयित्वा पिबेत् सुधीः ।
 लिङ्गमूले कामबीजं जम्बा च स्तम्भयेद्विद्या । द्वात्रिंशत्तोलकं
 दुग्धं मरोचं तोलकद्वयम् । सन्मिश्र प्रपचेद्यन्त्राद्यावत् शुष्कं
 समानयेत् । ततो वै वाग्भवं जम्बा भक्षयेत् साधकोत्तमः ॥

अनेनैव विधानेन मूत्रनाशोऽभिजायते ॥ ७ ॥ पुरीषनाश-
 नार्थाय विडङ्गं तोलकद्वयम् । पिप्पलीतोलकं ग्राह्यं शुण्ठी-
 तोलकत्रयम् । तेजपत्रस्य चारेण मिश्रयित्वा जपेन्मनु-
 शतमष्टोत्तरं जप्त्वा मिश्रयेद्बहु यत्नतः । मन्त्रं तस्य प्रवक्ष्यामि
 शृणुष्वानन्दभैरव ! । श्रीर्माया वाग्भवच्चैव शक्तिबीजत्रयं तथा ।
 शिववायुजलं पृथ्वी वज्रिजाया ततः परम् । मन्त्रयित्वा
 पिबेद्द्रव्यं पुरीषं नाशयेद् भ्रुवम् ॥ ८ ॥ शुक्रस्तम्भं प्रवक्ष्यामि
 शृणु मङ्गैरवीत्तम ! । पिष्ट्वा चैरण्डकं मूलं नाभिमूले विले-
 पयेत् । रोहितमल्यपित्तेन तन्मूलं लेपयेच्छिव ! । शब्द-
 बीजैर्मन्त्रयित्वा स्तम्भयेत् शुक्रशोणितम् । शब्दबीजं समुद्धृत्य
 मर्दयेदस्त्रमुच्चरन् । स्तम्भयेन्नियतं शुक्रं तथोक्तं कुलसुन्दर ! ।
 मन्त्रेणानेन शुक्रस्य स्तम्भनं कारयेद्बुधः ॥ ९ ॥ शुक्रस्तम्भनं
 प्रोक्तमालस्यनाशनं शृणु । हुङ्गारध्वनिमाह्वय करतालद्वय-
 द्वयम् । कृत्वा वेतालमूलञ्च पिष्ट्वा यो भक्षयेत् सुधीः । फट्-
 कारैर्मन्त्रयित्वा च तालमूलं पिबेत् सुधीः । ततो मधु पिबे-
 द्बीमानालस्यनाशनं भवेत् ॥ १० ॥ निद्रानाशं प्रवक्ष्यामि
 शृणुष्वानन्दभैरव ! । अलक्तकं तोलकाङ्गं तोलाङ्गं कटु-
 तैलकम् । श्वेतधूपं मिश्रयित्वा मनुना मन्त्रयेत् सुधीः । मनु-
 तस्य प्रवक्ष्यामि येन निद्राक्षयो भवेत् । निद्रा यमसमा-
 देव ! निद्रा व्याधिकरो मता । निद्रायां सर्वदोषः स्यान्नि-
 द्रया ज्ञाननाशनम् । निद्रया लीयते सर्वं निद्रया नरकं
 व्रजेत् । तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं निद्रानाशन्तु भैरव ! । सख्यं
 वज्रिसंयुक्तं चन्द्रखण्डसमन्वितम् । क्रमाक्षयं समुद्धृत्य वज्रि-
 जायां परे वदेत् । शतमष्टोत्तरं जप्त्वा मर्दयेद्बहुयत्नतः । प्रत्यहं
 चक्षुषोर्दद्यान्निद्रानाश इतीरितः ॥ ततो जपेद्वाग्भवन्तु चक्षुषो-
 र्मीध्रभागयोः । ततो ध्यायेत् कुलगुरुं कुलदेवीं प्रयत्नतः ।

यद्येवमुद्यत्नेन निद्राया नाशनं द्रुतम् । श्रीं निद्रे देवि !
महामयि ! जगन्निर्वाणकारिणि ! । मां जहि त्वं जगद्धात्रि !
मां जहि परमेश्वरि ! । प्रणवं पूर्वमुच्चार्य निद्रापतिपदं ततः ।
निद्रापतिपदं ब्रूयात् ततो ब्रूयात् सनातनी । वक्त्रिजायां
ततो ब्रूयात् निद्राक्षयमनुर्मतः । एतन्मन्त्रजपादेव निद्रानाशो
भवेद् भ्रुवम् । शतमष्टोत्तरं वापि सहस्रं वा कुलेश्वर ! ।
जह्वा निद्रा क्षयं याति किमन्यत् कथयामि ते । अत्र स्थित-
स्येत्यध्याहाराज्जमेत्यनेनैककर्तृ कता ॥ ११ ॥ अथान्यत् सम्प्र-
वक्ष्यामि चेन्द्रियाणाञ्च नियहम् । योनितन्त्रोक्तमार्गेण कुला-
धारं करोति हि ॥ कान्तां मनोरमां देव ! आनीय बहुयत्नतः ।
पूजयेत्तेन मार्गेण कामयेवमुद्यत्नतः ॥ एवं संस्कारयोगेन शुक्र-
स्तम्भो भवेन्नृणाम् ॥ यस्य यद्देवताभावो यद्रूपा देवता स्मृता ।
तत्तद्रूपजगत्सर्वं ध्यात्वा च मदितां पिबेत् ॥ ततः प्राणायाम-
योगे वायुश्चापि वशं नयेत् । ततो घृतं समालोच्य नालमूलं
गृथा शिव ! । पिष्ट्वा पूर्वोक्तमनुनां जह्वा च साधकः पिबेत् ।
विश्व्याधिविनिर्मुक्तो नरो भवति तत्क्षणात् ॥ गुरुपादरजो
यात्वा मधुमांससमन्वितम् । सुरायुक्तं महादेव ! मर्दये-
मुद्यत्नतः । ततः पूर्वोक्तमन्त्रेण सम्मन्त्र्याष्टदिनं पिबेत् । एवं
संस्कारयोगेन दृष्टानाशो भवेद् भ्रुवम् ॥ ३ ॥ कुलेश्वरीं ततो
यात्वा कृष्णचित्रां ततः पिबेत् । ततः पिबेन्मद्यमांसं घृतं वा
जमेव ! । एवं संस्कारयोगेन क्षुद्राशो जायते भ्रुवम् ॥
वाक्चिन्तामणिनिर्मितातिवितता सर्वैर्गुणैरन्विता ।
साक्षात्कल्पलताश्रितार्थसहिता विश्वोपकारे हिता ॥
ध्यात्वा विज्ञसमाजितातिफलित श्रीप्राणतोषिण्यसौ ।
दृष्टव्या भवता सता मतिमता शुभ्रातिशुभ्रा लता ॥

इति श्रीप्राणतोषिणी समाप्ता ।